जय, काल-विनाशिनि काली जय-जय
जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।
सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे ॥
ारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥
ाम । गौरीशंकर सीताराम ॥
ाम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
राम । पतितपावन सीताराम ॥

[संस्करण १,१५,०००]

जिसमें दूसरे किसीका अहित होता हो—ऐसी बात न कभी सोचो, न कभी कहो, न कभी करो और न कभी समर्थन ही करो। जिससे परिणाममें दूसरेका अहित होता है, उससे अपना हित कभी हो ही नहीं सकता ।

अतएव अपना हित चाहते हो तो जिसमें दूसरेका हित होता हो—सदा वही सोचो, सदा वही कहो, सदा वही करो और सदा उसीका समर्थन करो ।

इससे सबका हित होगा और सबके रूपमें अभिव्यक्त भगवान् प्रसन्न होंगे ।

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु. ९.००
विदेशमें रु. १३.२५
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

इस अङ्कका
रु० ९.०
विदेशमें १३
(१५ शिलिं

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवान् अग्निदेव

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

हिंदू वाङ्मयके दिव्यतम रत्न हैं—श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस, जिनमें श्रेय-प्रेयका पूर्ण विवेचन है। ये वास्तवमें सार्वभौम तथा सर्वकल्याणकारी पवित्र ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंका आश्रय लेनेसे लोक, परलोक और परमार्थ—सभी सुधरते हैं। भारत ही नहीं, भारतके बाहर भी इन ग्रन्थोंकी गौरवपूर्ण तथा मङ्गलमयी श्रेष्ठताका समादर है। इन ग्रन्थोंका दिव्यालोक जन-जनतक पहुँच सके तथा उनकी जागतिक या आध्यात्मिक उन्नतिके पथको आलोकित किया जा सके, एतदर्थ गीता और रामायण-परीक्षाकी व्यवस्था की गयी थी। परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र पुरस्कृत भी होते हैं। सैकड़ों स्थानोंपर परीक्षा-केन्द्र हैं। विशेष विवरणकी जानकारी नियमावलीसे हो सकती है। परीक्षा-सम्बन्धी सभी बातोंकी जानकारीके लिये नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार करें—

व्यवस्थापक—गीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश होकर) जनपद—पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

साधक-संघ

उसी मानवका जीवन श्रेष्ठ है, जो भगवत्परायणता, दैवीसम्पत्तिके गुण, सदाचार, आस्तिकता और सात्त्विकतासे सम्पन्न है। मानवमात्रका जीवन ऐसे दिव्य भावोंसे परिपूर्ण हो, एतदर्थ 'साधक-संघ' की स्थापना की गयी। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्णका या आश्रमका हो, नारी या पुरुष हो, हिंदू या अहिंदू हो, बिना कोई शुल्क दिये इस संघका सदस्य बन सकता है। इस संघके सदस्यको कुल २८ नियमोंका पालन करना होता है, जिसका स्पष्टीकरण एक प्रपत्रपर छपा है। प्रत्येक सदस्यको ३० पैसे मनीआर्डरसे अथवा डाकटिकटके रूपमें भेजकर 'साधक-दैनन्दिनी' मँगवा लेनी चाहिये तथा प्रतिदिन उसमें नियमपालनका विवरण लिख लेना चाहिये। इस संघके सदस्योंका यह एक अनुभूत तथ्य है कि जो श्रद्धा एवं तत्परतापूर्वक नियम-पालनमें संलग्न रहता है, उसके जीवनका स्तर श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर होता चला जाता है। इस समय इसके लगभग दस हजार (१०,०००) सदस्य हैं। लोगोंको स्वयं इसका सदस्य बनना तथा अपने सगे-सम्बन्धियों-स्वजनों-सुपरिचितोंको सदस्य बनाना चाहिये। इससे सम्बन्धित किसी भी प्रकारका पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये—संयोजक, साधक-संघ, पत्रालय—गीतावाटिका, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानस हिंदूसमाजके ऐसे दिव्य ग्रन्थ-रत्न हैं, जिनके अध्ययनसे तथा प्रतिपाद्य सिद्धान्तोंके मननसे अन्तरमें अचिन्त्य अलौकिक ज्योति प्रस्फुटित हो उठती है। एक ओर व्यक्तिका व्यक्तिगत जीवन समुन्नत होता है तो दूसरी ओर समाजका सम्पूर्ण वातावरण श्रेष्ठ गुणोंसे सुवासित होता है। आजके तमसाच्छन्न समाजमें तो ऐसे दिव्य ग्रन्थोंके अधिकाधिक पाठ और स्वाध्यायकी आवश्यकता है, जिससे इनके आदर्शोंका अधिकाधिक प्रचार हो तथा उनकी जन-मानसमें प्रतिष्ठा हो। इसी उद्देश्यसे 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ'की स्थापना हुई। इसके सदस्योंको नियमितरूपसे गीता और मानसका पाठ-स्वाध्याय करना होता है। गत वर्ष सदस्योंकी संख्या ५५,००० से अधिक थी। इस संस्थाके द्वारा श्रीगीताके ६ प्रकारके और श्रीरामायणके ३ प्रकारके एवं उपासना-विभागमें नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी या मानसिक पूजा करनेवाले सदस्य बनाकर श्रीगीता और श्रीरामायणके अध्ययन एवं उपासनाके लिये प्रेरणा की जाती है। विशेष जानकारीके लिये पत्रव्यवहार करना चाहिये। पता इस प्रकार है—

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, 'गीताभवन', पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश होकर) जनपद—पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

'कल्याण'के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

(१) यह 'अग्निपुराण—गर्ग-संहिता-अङ्क' नामक विशेषाङ्क प्रस्तुत है। इसमें अग्निपुराणके २०० अध्याय हैं और गर्ग-संहिताके नौ खण्डोंके कुल मिलाकर २०१ अध्याय हैं। शेष अग्निपुराणके माहात्म्यसहित १८२ अध्याय और गर्ग-संहिताके दसवें अश्वमेधखण्ड तथा माहात्म्य—दोनोंके मिलाकर ६६ अध्याय आगामी वर्षके विशेषाङ्कमें देनेकी बात है। अग्निपुराणमें विविध विषयोंका अत्यन्त उपादेय वर्णन होनेके साथ ही मोक्षके विभिन्न साधन भी बड़ी सुन्दर रीतिसे बताये गये हैं। यों इसमें वैध 'भोग' तथा 'भगवत्प्राप्ति' दोनोंके साधनोंका सुन्दर वर्णन है। गर्ग-संहिता तो भगवान्‌की लीला-कथाओं तथा उनके सर्वतोमुखी परम उपादेय ललित चरित्रोंका सरस भण्डार ही है। वर्तमान काम-भोग-परायण लोगोंकी भोगोन्मुखी विनाशी प्रवृत्तिके समय, इस प्रकारके साहित्यकी बहुत आवश्यकता है, जो आजके राजनीति, समाज-कल्याण, सेवा, शिक्षा, अर्थजगत् आदि सभी क्षेत्रोंके विनाशके प्रवाहमें पतित कर्तव्यविमुख मानवसमूहको उधरसे लौटाकर भगवान्‌की ओर लगानेमें सहायक हो, जिससे वास्तविक कर्तव्य, विकास, अभ्युदय, ऐश्वर्य, धर्म, सुख और समुन्नतिके स्वरूपका ज्ञान हो और वह उसी ओर अग्रसर होकर जीवनको सफल करे। इसीलिये 'कल्याण'का यह विशेषाङ्क प्रकाशित किया जा रहा है। इसका यथार्थ उद्देश्य तो लोककल्याणके द्वारा 'भगवत्प्रीति'का सम्पादन ही है।

(२) इस विशेषाङ्कमें ७०० पृष्ठकी पाठ्य-सामग्री है। सूची आदि अलग हैं। तिरंगे, इकरंगे बहुत-से चित्र भी हैं। अवश्य ही हम जितने और जैसे चित्र देना चाहते थे, उतने और वैसे परिस्थितिवश नहीं दिये जा सके हैं। पर जो दिये गये हैं, वे सुन्दर तथा उपयोगी हैं। चित्र बहुत समीप-समीप न रहें, इसलिये उनके कथा-प्रसङ्गोंके साथ न दिये जाकर प्रायः इधर-उधर लगाये गये हैं। पाठक महोदय क्षमा करें।

(३) कागज, डाक-महसूल, वेतन आदिका व्यय बढ़ जानेके कारण गत वर्ष 'कल्याण'में बहुत घाटा रहा। इस वर्ष कागजोंका मूल्य और बढ़ गया है। वी० पी०, रजिस्ट्री, लिफाफे आदिमें भी डाक-महसूल बढ़ रहा है। कर्मचारियोंका वेतन-व्यय भी बहुत बढ़ा है। कम वजनके छपाईके कागज बहुत कम बनने लगे हैं और अधिक वजनके लेनेपर खर्च और भी बढ़ जायगा। इन सब खर्चोंकी बढ़ी रकमोंको जोड़नेपर तो 'कल्याण'का वर्तमान ९.०० रुपया वार्षिक मूल्य लगभग पौनी कीमतके बराबर होगा। कागजकी इस मूल्यवृद्धि तथा डाक-महसूल बढ़नेका पहले पता भी नहीं था; अतएव ९.०० रुपये ही वार्षिक मूल्य रक्खा गया था, जब कि एक विशेषाङ्कका मूल्य भी इससे बहुत अधिक पड़ रहा है। इस अवस्थामें 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको चाहिये कि वे प्रयत्न करके अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाकर रुपये भिजवानेकी कृपा करें।

(४) इस बार विशेषाङ्क इतनी अधिक देरसे जा रहा है, जिसकी कल्पना भी नहीं थी। अनिवार्य परिस्थितिके कारण ही ऐसा हुआ है। ग्राहक महानुभावोंको व्यर्थ ही बहुत परेशान होना पड़ा, हमें इस बातका बड़ा खेद है। ग्राहकोंकी सहज प्रीति तथा आत्मीयताके भरोसे ही हमारी उनसे क्षमाकी प्रार्थना है। इस देरीके कारण फरवरी तथा मार्चके साधारण अङ्क भी साथ ही भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।

(५) 'कल्याण'का विशेषाङ्क तो निकल गया है; पर इस समय देशमें चारों ओर जैसी अशान्ति, अव्यवस्था, उच्छृङ्खलता, अनियमितता, अनुशासनहीनता आदिका विस्तार हो रहा है, उसे देखते कहा नहीं जा सकता कि 'कल्याण'का प्रकाशन कबतक हो सकेगा या किस रूपमें होगा। अतएव ग्राहकोंको यह मानकर संतोष करना चाहिये कि उनके भेजे हुए नौ रुपयेके पूरे मूल्यका उन्हें यह विशेषाङ्क मिल गया है। अगले अङ्क भेजे जा सके तो अवश्य जायँगे, नहीं तो उनके लिये मनमें क्षोभ न करें। परिस्थितिवश ही ऐसी प्रार्थना करनी पड़ रही है।

(६) जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क भेजे जानेके बाद शेष ग्राहकोंके नाम वी० पी० जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका कार्ड तुरंत लिख दें, ताकि वी० पी० भेजकर 'कल्याण'को व्यर्थ नुकसान न उठाना पड़े।

(७) मनीआर्डर-कूपनमें और वी०पी भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें स्पष्टरूपसे अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या याद न हो तो 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नये ग्राहक बनते हों तो 'नया-ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर 'मैनेजर, कल्याण'के नाम भेजें। उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें।

(८) ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें 'अग्निपुराण—गर्ग-संहिता-अङ्क' नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे वी० पी० चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनको 'नया ग्राहक' बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण प्रयत्नसे आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और आप 'कल्याण'के प्रचारमें सहायक बनेंगे। आपके 'विशेषाङ्क'के लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये।

(९) 'अग्निपुराण—गर्ग-संहिता-अङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे, तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग तीन सप्ताह तो लग ही सकते हैं। ग्राहक महोदयोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जायगा। इसलिये यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

(१०) 'कल्याण'-व्यवस्था-विभाग, 'कल्याण'-सम्पादन-विभाग, 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) और 'साधक-संघ'के नाम गीताप्रेसके पतेपर अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये तथा उनपर केवल 'गोरखपुर' न लिखकर पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)—इस प्रकार लिखना चाहिये।

(११) सजिल्द अङ्क भी देरसे ही जा सकेंगे। ग्राहक महोदय क्षमा करें।

श्रीहरिः

अग्निपुराणकी विषय-सूची

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

रेखाचित्र

इनके अतिरिक्त पञ्चशलाका-वेध, राहुचक्र, सर्पाकार राहु, नरचक्र, रक्षायन्त्र—रेखाचित्र तथा कई चक्र-सम्बन्धी कोष्ठक लेखोंके बीच-बीचमें दिये गये हैं।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनि वेदव्यासप्रणीत

अग्निपुराण

(मूल संस्कृतका हिंदी-अनुवाद)

मूल पाठके संशोधक और अनुवादक—

पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, पाण्डेय 'राम'

भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले आठ भाव-पुष्प

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वपुष्पं दया भूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते ॥
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम् ।
सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः ॥
एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यत्येवार्चितो हरिः ।
पुष्पान्तराणि सन्त्यत्र बाह्यानि मनुजोत्तम ॥

(अग्निपुराण २०२ । १७-१९)

'अहिंसा' (किसी भी प्राणीका तन-मन-वचनसे न बुरा चाहना, न करना, न समर्थन करना) प्रथम पुष्प है । 'इन्द्रिय निग्रह' (इन्द्रियोंको मनमाने विषयोंमें न जाने देना) दूसरा पुष्प है । 'प्राणिमात्रपर दया' (दूसरेके दुःखको अपना दुःख समझकर उसे दूर करनेके लिये चेष्टा) तीसरा सर्वोपयोगी पुष्प है । 'शान्ति' (किसी भी अवस्थामें चित्तका क्षुब्ध न होना) चतुर्थ पुष्प सबसे बढ़कर है । 'शम' (मनका वशमें रहना) पाँचवाँ पुष्प है । 'तप' (स्वधर्मके पालनार्थ कष्ट सहना) छठा पुष्प है । 'ध्यान' (इष्टदेवके स्वरूपमें चित्तकी तदाकार-वृत्ति) सातवाँ पुष्प है और आठवाँ पुष्प 'सत्य' है । इन पुष्पोंसे भगवान् केशव संतुष्ट होते हैं । इन्हीं आठ पुष्पोंके द्वारा पूजित होनेपर ही भगवान् हरि प्रसन्न होते हैं । हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! इनके अतिरिक्त बाह्य पुष्प भी इस भूमण्डलपर हैं ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ये च भागवता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः । पूजयन्ति सदा विष्णुं ते वस्त्याज्याः सुदूरतः ॥
यस्तिष्ठन् प्रस्वपन् गच्छन्नुत्तिष्ठन् स्खलिते स्थिते । संकीर्तयन्ति गोविन्दं ते वस्त्याज्याः सुदूरतः ॥

(अग्निपुराण)

वर्ष ४४ } गोरखपुर, सौर माघ २०२६, जनवरी १९७० { संख्या १
 पूर्ण संख्या ५१८

यमराजका दूतोंके प्रति आदेश

जिनका चित्त लगा श्रीहरिमें, हरिके शरणागत एकान्त ।
सदा पूजते रहते हैं जो हरिको यहाँ भागवत शान्त ॥
अथवा उठते और बैठते, सोते, चलते जो शुभधाम ।
गिरते-पड़ते और खड़े होते जो लेते हरिका नाम ॥
करते संकीर्तन जिस स्थलमें ऐसे जो मानव बड़भाग ।
मत जाना उनके समीप तुम, उन्हें दूरसे देना त्याग ॥

(अग्निपुराण ३८ । ३८–४०)

अग्निपुराणका संक्षिप्त परिचय

भारतीय जीवन-संस्कृतिके मूलाधार 'वेद' हैं। वेद भगवान्‌के स्वाभाविक उच्छ्वास हैं, अतः वे भगवत्स्वरूप ही हैं। श्रुत ब्रह्मवाणीका संरक्षण परम्परासे ऋषियोंद्वारा होता रहा, इसीलिये इसे 'श्रुति' कहते हैं। भगवदीय वाणी वेदोंके सत्यको समझनेके लिये षडङ्ग, अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिषका अध्ययन आवश्यक था। परंतु जन-साधारणके लिये यह भी सहज सम्भव न होनेसे पुराणोंका कथोपकथन आरम्भ हुआ, जिससे वैदिक सत्य रोचक ऐतिहासिक आख्यायिकाओंद्वारा जन-जनतक पहुँच सके। इसीलिये कहा जाता है कि पुराणोंका कथोपकथन उतना ही प्राचीन है, जितना वैदिक ऋचाओंका सकलन और वंशानुवंश संरक्षण। अध्ययनकी पाश्चात्य विश्लेषण विवेचन-पद्धतिको सर्वोपरि मानकर पुराणोंको ईसा-जन्मके आस-पास अथवा उसके बादका ठहराना सर्वथा भ्रान्त तथा अनुचित है। भारतके आदिकालमें समाजका प्रतिभासम्पन्न समुदाय जिस प्रकार वेदोंके अध्ययन-अध्यापन-निर्वचनमें निमग्न रहा, उसी प्रकार उसी कालमें समाजके साधारण समुदायको धर्ममें लगाये रखनेके लिये पुराणोंका कथन-श्रवण-प्रवचन होता रहा। शतपथब्राह्मण (१४ । २ । ४ । १०) में आया है कि 'चारों वेद, इतिहास, पुराण—ये सब महान् परमात्माके ही निःश्वास हैं।' अथर्ववेद (११ । ७ । २४)में आया है—'यज्ञसे यजुर्वेदके साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए।'

जो पुरातन आख्यान ऋषियोंकी स्मृतियोंमें सुरक्षित थे और जो वंशानुवंश ऋषि-कण्ठोंसे कीर्तित थे, उन्हींका संकलन और विभागीकरण भगवान् वेदव्यासद्वारा हुआ। उन आख्यायिकाओंको व्यवस्थित करके प्रकाशमें लानेका श्रेय भगवान् वेदव्यासको है, इसी कारण वे पुराणोंके प्रणेता कहलाये; अन्यथा पुराण भी वेदोंकी भाँति ही अनादि, अपौरुषेय एवं प्रामाणिक हैं।

भगवान् वेदव्यासद्वारा प्रणीत अठारह महापुराणोंमें अग्निपुराणका एक विशेष स्थान है। विष्णुस्वरूप भगवान् अग्निदेवद्वारा महर्षि वसिष्ठजीके प्रति उपदिष्ट यह अग्निपुराण ब्रह्मस्वरूप है, सर्वोत्कृष्ट है तथा वेद-तुल्य है। देवताओंके लिये सुखद और विद्याओंका सार है। इस दिव्य पुराणके पठन-श्रवणसे भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है।

पुराणोंके पाँच लक्षण बताये गये हैं—१. सृष्टि-उत्पत्ति वर्णन, २. सृष्टि-विलय-वर्णन, ३. वंश-परम्परा-वर्णन, ४. मन्वन्तर-वर्णन और ५. विशिष्ट व्यक्ति-चरित्र-वर्णन। पुराणके पाँचों लक्षण तो अग्निपुराणमें घटित होते ही हैं, इनके अतिरिक्त वर्ण्य-विषय इतने विस्तृत हैं कि अग्निपुराणको 'विश्वकोष' कहा जाता है। मानवके लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक हितके लगभग सभी विषयोंका वर्णन अग्निपुराणमें मिलता है। प्राचीनकालमें न तो मुद्रणकी प्रथा थी और न ग्रन्थ ही सहज सुलभ होते थे। ऐसी परिस्थितिमें विविध विषयोंके महत्त्वपूर्ण विवेचनका एक ही स्थानपर एक साथ मिल जाना, यह एक बहुत बड़ी बात थी। इसी कारण अग्निपुराण बहुत जनप्रिय और विद्वद्वर्ग-समादृत रहा।

सम्पूर्ण सृष्टिके कारण भगवान् विष्णु हैं, अतः अग्निपुराणमें भगवान्‌के विविध अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन किया गया है। भगवान् विष्णु ही मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण और बुद्धके रूपमें अवतरित हुए तथा कल्किके रूपमें अवतरित होंगे। भगवान्‌के अवतारोंकी संख्या निश्चित नहीं है; परंतु सभी अवतारोंका हेतु यही है कि सभी वर्ण और आश्रमके लोग अपने-अपने धर्ममें दृढतापूर्वक लगे रहें।

जगत्‌की सृष्टिके आदिकारण श्रीहरि अवतार लेकर धर्मकी व्यवस्था और अधर्मका निराकरण ही करते हैं।

भगवान् विष्णुसे ही जगत्‌की सृष्टि हुई। प्रकृतिमें भगवान् विष्णुने प्रवेश किया। क्षुब्ध प्रकृतिसे महत्तत्त्व, फिर अहंकार उत्पन्न हुआ। फिर अनेक लोकोंका प्रादुर्भाव हुआ, जहाँ स्वायम्भुव मनुके वंशज एवं कश्यप आदिके वंशज परिव्याप्त हो गये। भगवान् विष्णु आदिदेव हैं और सर्वपूज्य हैं। प्रत्येक साधकको आत्म-कल्याणके लिये विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। भगवान्‌की पूजाका विधान क्या है, पूजाके अधिकारकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, यज्ञके लिये कुण्डका निर्माण एवं अग्निकी स्थापना किस तरह की जाय, शिष्यद्वारा आचार्यके अभिषेकका विधान क्या है तथा भगवान्‌का पूजन एवं हवन किस प्रकार सम्पन्न किया जाय, इसका विस्तृत वर्णन अग्निपुराणमें है। मन्त्र एवं विधिसहित पूजन-हवन करनेवाला अपने पितरोंका उद्धारक एवं मोक्षका अधिकारी होता है।

देव-पूजनके समान महत्त्व ही देवालय-निर्माणका है। देवालय-निर्माण अनेक जन्मके पापोंको नष्ट कर देता है। निर्माण-कार्यके अनुमोदनमात्रसे ही विष्णुधामकी प्राप्तिका अधिकार मिल जाता है। कनिष्ठ, मध्य और श्रेष्ठ-इन तीन श्रेणीके देवालयोंके पाँच भेद अग्निपुराणमें बताये गये हैं—१. एकायतन तथा २. त्र्यायतन, ३. पञ्चायतन, ४. अष्टायतन, ५. षोडशायतन। मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करनेवालेको देवालय-निर्माणसे दूना फल मिलता है। अग्निपुराणमें विस्तारसे बताया गया है कि श्रेष्ठ देव-प्रासादके लक्षण क्या हैं।

देवालयमें किस प्रकारकी देव-प्रतिमा स्थापित की जाय, इसका बड़ा सूक्ष्म, एवं अत्यन्त विस्तृत वर्णन इसमें है। शालग्रामशिला अनेक प्रकारकी होती है। द्वि-चक्र एवं श्वेतवर्ण शिला 'वासुदेव' कहलाती है, कृष्णकान्ति एवं दीर्घ-छिद्रयुक्त 'नारायण' कहलाती है। इसी प्रकार इसमें संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, परमेष्ठी, विष्णु, नृसिंह, वाराह, कूर्म, श्रीधर आदि अनेक प्रकारकी शालग्राम-शिलाओंका विशद वर्णन है। देवालयमें प्रतिष्ठित करनेके लिये भगवान् वासुदेवकी, दशावतारोंकी, चण्डी, दुर्गा, गणेश, स्कन्द आदि देवी-देवताओंकी, सूर्यकी, ग्रहोंकी, दिक्पाल, योगिनी एवं शिवलिङ्ग आदिकी प्रतिमाओंके श्रेष्ठ लक्षणोंका वर्णन है। देवालयमें श्रेष्ठ लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीविग्रहोंकी स्थापना सभी प्रकारके मङ्गलोंका विधान करती है। अग्निपुराणोक्त विधिके अनुसार देवालयमें देव-प्रतिमाकी स्थापना और प्राण-प्रतिष्ठा करानेसे परम पुण्य होता है। श्रेष्ठ साधकके लिये यही उचित है कि अत्यन्त जीर्ण, अङ्गहीन, भग्न तथा शिलामात्रावशिष्ट (विशेष चिह्नोंसे रहित) देव-प्रतिमाका उत्सवसहित विसर्जन करे और देवालयमें नवीन मूर्तिका न्यास करे। जो देवालयके साथ अथवा उससे अलग कूप, वापी, तडागका निर्माण करवाता या वृक्षारोपण करता है, वह भी बहुत पुण्यका लाभ करता है।

भारतवर्षमें पञ्चदेवोपासना अति प्राचीन है। गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु और सूर्य ये पाँचों देव आदिदेव भगवान्‌की ही पाँच अभिव्यक्तियाँ हैं; परंतु सब तत्त्वतः एक ही हैं। गणपति-पूजन, सूर्य-पूजन, शिव-पूजन, देवी-पूजन और विष्णु-पूजनके महत्त्वका भी अग्निपुराणमें स्थान-स्थानपर प्रतिपादन हुआ है।

साधनाके क्षेत्रमें श्रेष्ठ गुरु, श्रेष्ठ मन्त्र, श्रेष्ठ शिष्य और सम्यक् दीक्षाका बड़ा महत्त्व है। जिससे शिष्यमें ज्ञानकी अभिव्यक्ति करायी जाय, उसीका नाम 'दीक्षा' है। पाश-मुक्त होनेके लिये जीवको आचार्यसे मन्त्राराधनकी दीक्षा लेनी चाहिये। सविधि दीक्षित शिष्यको शिवत्वकी प्राप्ति शीघ्र होती है।

जहाँ भक्त-मन-वाञ्छा-कल्पतरु भगवान्‌के सिद्ध श्रीविग्रहोंके देवालय हैं, अथवा जहाँ सर्वलोकवन्दनीय श्रीहरिके प्रीत्यर्थ ऋषि-मुनियोंने कठिन साधना की है,

वही भूमि 'तीर्थ' कहलाती है, जिसके सेवनसे भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। तीर्थ-सेवनका फल सबको समान नहीं होता। जिसके हाथ-पैर और मन संयमित हैं तथा जो जितेन्द्रिय, लघ्वाहारी, अप्रतिग्रही, निष्पाप है, उसी तीर्थयात्रीको तीर्थ-सेवनका यथार्थ फल मिलता है। ऐसे तीर्थयात्रीको पुष्कर, कुरुक्षेत्र, काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थोंका सेवन करना चाहिये। गया-तीर्थमें शास्त्रोक्त विधिसे श्राद्ध करनेपर नरकस्थ पितर स्वर्गके अधिकारी और स्वर्गस्थ पितर परमपदके अधिकारी होते हैं।

काम-क्रोधग्रस्त मानवद्वारा नहीं चाहते हुए भी अज्ञानवश बलात् पापाचरण हो जाता है। पातक तो अनेक प्रकारके हैं; पर कभी-कभी ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुतल्पगमन-जैसे महापातक भी घटित हो जाते हैं। इन पातकोंसे विमुक्तिका उपाय 'प्रायश्चित्त' है। पातक, उपपातक, महापातकके परिशमनार्थ अनेक प्रकारके प्रायश्चित्तका निर्देश किया गया है। यदि कुछ भी न हो सके तो भगवान् विष्णुकी स्तुति करे। भगवान् विष्णुके समस्तपापनाशक स्तोत्रके आश्रयसे समस्त पातक विनष्ट हो जाते हैं।

आत्मशुद्धि तथा शरीर-शुद्धिका एक महान् साधन 'व्रत' भी है। शास्त्रोक्त नियमको ही 'व्रत' कहते हैं। इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि विशेष नियम व्रतके ही अङ्ग हैं। व्रत करनेवालेको किंचित् कष्ट सहन करना पड़ता है, अतः इसे 'तप' भी कहते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरीका अभाव—ये दस नियम सामान्यतः सम्पूर्ण व्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं। भगवान् अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठको तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष, संक्रान्ति आदिके अवसरपर होनेवाले स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी व्रत बताये हैं, जिनसे आत्यन्तिक कल्याणका सम्पादन होता है।

ग्रहों और नक्षत्रोंकी स्थिति भी मानवकी सफलता-असफलताको प्रभावित करती तथा शुभ-अशुभका विधान करती है। इसी कारण ज्योतिषशास्त्रका संक्षेपमें भगवान् अग्निदेवने सुन्दर उपदेश दिया, जिससे शुभ-अशुभका निर्णय करनेवाले विवेककी प्राप्ति हो सके। वर-वधूके गुण, विवाहादि संस्कारोंके मुहूर्तका निर्णय, 'काल'को समझनेके लिये गणित, युद्धमें विजय प्राप्तिके लिये विविध योग, शत्रुके वशीकरणके लिये शान्ति, वशीकरण आदि षट् तान्त्रिक कर्म, ग्रहण-दान और ग्रहोंकी महादशा आदिका सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया गया है। इस विवेचनमें ज्योतिषशास्त्रकी प्रायः उपयोगी बातें समाविष्ट हो गयी हैं।

व्यष्टि और समष्टिके हितके लिये अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार व्यक्तिमात्रके लिये स्वधर्म-पालन आवश्यक है। स्वधर्म-पालन ही सुख शान्ति तथा मोक्षकी सीढ़ी है। यज्ञ करना-कराना, वेद पढ़ना-पढ़ाना और स्वाध्याय ब्राह्मणके कर्म हैं। दान देना, वेदाध्ययन करना, यज्ञानुष्ठान करना क्षत्रिय-वैश्यके सामान्य धर्म हैं। प्रजा-पालन और दुष्टदमन क्षत्रियके तथा कृषि-गोरक्षा-व्यापार वैश्यके धर्म हैं। सेवा एवं शिल्परचना शूद्रका धर्म है। ब्रह्मचर्याश्रम मानवके पवित्र जीवन-प्रासादके लिये 'नींवका पत्थर' है। अन्तेवासीको आजके विद्यार्थियों-जैसा विलास-प्रमादपूर्ण जीवन नहीं, कठोर संयमित-नियमित-अनुशासित जीवन व्यतीत करनेकी आवश्यकता है, जिससे वह वैयक्तिक और सामाजिक धर्मोंके पालनकी क्षमता प्राप्त कर सके। विवाहके उपरान्त गृहस्थाश्रमकी सम्पूर्ण दिनचर्याका उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि गृही नित्य देवाराधन, द्रव्य शुद्धि, शौचाशौच-विचार एवं शुद्ध आचरणद्वारा किस प्रकार आत्मकल्याण और समाजकल्याणका सम्पादन करे। सद्गृहस्थके लिये तो यहाँतक कहा गया है कि 'श्री और समृद्धिके लिये गाय, चूल्हा, चाकी, ओखली, मुसल, झाड़ू एवं खंभेका भी पूजन करे।' पौत्रके जन्मके बाद गृहस्थ-को वानप्रस्थ धारण करके पत्नीसहित तपःपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिये। संन्यासीका जीवन तो त्यागका मूर्तिमान् स्वरूप है। संन्यासी शरीरके प्रति उपेक्षाभाव

रखता हुआ एकाकी विचरता है और मननशील रहता है। कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस—इन चार प्रकारके संन्यासियोंमें अन्तिम सर्वश्रेष्ठ है, जो नित्य ब्रह्ममें स्थित है।

वास्तु-विद्याका भी अग्निपुराणमें यत्र-तत्र प्रभूत वर्णन है। भूमिके विस्तारका दिग्दर्शन कराते हुए विभिन्न द्वीप तथा देशोंका वर्णन किया गया है। रहनेके लिये गृह-निर्माण कैसे हो, फिर नगर-निर्माणकी योजना कैसी हो—इसे भी युक्तिपूर्वक समझाया गया है। गृह-निर्माण और नगर-निर्माणके साथ देव-प्रतिमा और देवालय-निर्माणका भी विस्तृत विवरण है। नगर, ग्राम तथा दुर्गमें गृहों तथा प्रासादोंकी वृद्धि हो, इसकी सिद्धिके लिये ८१ पदोंका वास्तुमण्डल बनाकर वास्तु-देवताकी पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पूजामें पुष्पोंका विशेष स्थान है। देव-पूजनमें मालती, तमाल, पाटल, पद्म आदि विभिन्न पुष्पोंके विभिन्न फल होते हैं; परंतु देवपूजनके लिये श्रेष्ठ पुष्प हैं—अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, दया, शम, तप, सत्य आदि। इन भाव-पुष्पोंसे अर्चित श्रीहरि शीघ्र संतुष्ट होते हैं। भाव-पुष्पोंसे अर्चना करनेवालेको नरक-यातना नहीं सहनी पड़ती; अन्यथा पापाचारीको अवीचि, ताम्र, रौरव, तामिस्र आदि नरकोंके कष्ट भोगने पड़ते हैं। पुण्यात्मा-को स्वर्गकी प्राप्ति होती है। विशेष पर्वपर, विशेष तीर्थमें, विशेष तिथिमें दानका अलग-अलग फल होता है। दानसे मोक्षतककी प्राप्ति हो सकती है; परंतु फलकी कामनासे दिया गया दान मोक्षकी प्राप्ति न करवाकर व्यर्थ चला जाता है। गायत्री-मन्त्रकी व्याख्या करते हुए भगवान् अग्निदेवने बताया है कि 'जो लोग भगवती गायत्रीका एवं गायत्री-मन्त्रका आश्रय लेते हैं, उनके शरीर और प्राण दोनोंकी रक्षा होती है।'

राज्यमें सुख-शान्ति बनाये रखनेके लिये राजाको अपने धर्मका भलीभाँति पालन करना चाहिये। शत्रुसूदन, प्रजापालक, सुदण्डधारी, संयमी, रण-कलाविद्, न्यायप्रिय, दुर्ग-रक्षित, नीतिकुशल राजा ही अपने धर्मका पालन कर सकता है। जो राजा धनुर्वेदके शिक्षण-प्रशिक्षणकी पूर्ण व्यवस्था रखता है और जो लोक-व्यवहारमें परम कुशल है, उसका पराभव नहीं होता।

स्वप्न और शकुनका भी जीवनपर शुभ और अशुभ प्रभाव पड़ता है। सभी स्वप्न या शकुन प्रभावशाली नहीं होते; पर जिनसे अशुभ होता है, उनके निवारणका उपाय भी बताया गया है। शुभ-लक्षणसम्पन्न स्त्री या पुरुषकी संगति सदा कल्याणकारी होती है; अतः इनके लक्षणोंका भी विस्तृत वर्णन है। जीवन श्रीयुक्त रहे, अतः हीरा, मोती, प्रवाल, शङ्ख आदि रत्नोंको परीक्षाके उपरान्त ही धारण करना चाहिये, जिससे शुभका विधान हो।

भगवान् अग्निदेवने चारों वेदोंकी सभी शाखाओंका विस्तृत वर्णन करके चारों वेदोंकी विभिन्न ऋचाओं या सूक्तोंके सहित पाठ, जप-हवन करनेका विधान बताया, जिससे भुक्ति-मुक्तिकामी पुरुषको अभीष्टकी प्राप्ति तथा सभी उत्पातोंकी शान्ति होती है। जैसे ऋग्वेदके 'अग्निमीळे पुरोहितम्'—इस सूक्तका सविधि जप करनेसे इष्टकामनाओंकी पूर्ति होती है। भगवान् अग्निदेव-ने सूर्य, चन्द्र, यदु, पूरु आदि अनेक वंशोंका वर्णन किया, जिनका चरित्र सुननेसे पापोंका क्षय होता है। यदुवंशमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार धर्म-संरक्षण, अधर्म-नाश, सुर-पालन और दैत्य-मर्दनके लिये ही हुआ था—

देवक्यां वसुदेवात्तु कृष्णोऽभूत्तपसान्वितः॥
धर्मसंरक्षणार्थाय ह्यधर्महरणाय च।
सुरादेः पालनार्थं च दैत्यादेर्मथनाय च॥
(अग्निपुराण २७६। १-२)

स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी ज्ञान भी मनुष्यके लिये आवश्यक है। अतः स्वास्थ्यके सिद्धान्त, रोगके भेद एवं कारण, औषधिका विवेचन, वैद्यका कर्तव्य, उपचारके उपाय, शरीरके अवयव, गज और अश्वकी चिकित्सा आदिका वर्णन करते हुए आयुर्वेदका ज्ञान कराया गया है, जो मृतको भी प्राण-प्रदाता है। अनिष्ट-निवारण मन्त्रोंके प्रयोगोंद्वारा भी होता है, अतः मन्त्र-तन्त्रकी परिभाषा और भेद-प्रभेद बताकर शिव, सूर्य, गणपति, लक्ष्मी, गौरी

आदि देवी-देवताओंके अनेक मन्त्र और मण्डल बताये गये हैं, जिनको सिद्ध करके प्रयोग करनेसे विष-शमन, बालग्रह आदिका निवारण होता है।

समाजमें उसका बड़ा आदर होता है, जिसकी वाणीमें रस है, जिसमें अभिव्यक्तिकी कुशलता है और जिसमें प्रस्तुतीकरणकी क्षमता है। अतः अग्निपुराणमें काव्य-मीमांसाका अनतिविस्तृत वर्णन है। काव्याङ्ग, नाटक-निरूपण, रस-भेद, शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्द-गुण आदि शास्त्रीय विषयोंकी सूक्ष्म विवेचना है। यह इसीलिये कि '**अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।**' (अग्नि० ३३९। १०)

लोक-परलोक और परमार्थके सर्वोपयोगी स्थूल-सूक्ष्म विषयोंके वर्णनका यही उद्देश्य है कि मानव सुखी, शान्त, समृद्ध एवं स्वस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए परम तत्त्वको प्राप्त करे। जीवनमें अर्थ और काम दोनों हों, पर वे हों धर्मके द्वारा नियन्त्रित। जीवन धर्मनिष्ठ हो और अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति हो। धर्मशास्त्रका उपदेश देते हुए बताया गया है कि "धर्म वही है, जिससे भोग और मोक्ष, दोनों प्राप्त हो सकें। वैदिक कर्म दो प्रकारका है—एक 'प्रवृत्त' और दूसरा 'निवृत्त'। कामनायुक्त कर्मको 'प्रवृत्तकर्म' कहते है। ज्ञानपूर्वक निष्काम-भावसे जो कर्म किया जाता है, उसका नाम 'निवृत्तकर्म' है। वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा—ये परम उत्तम कर्म निःश्रेयस (मोक्षरूप कल्याण) के साधक हैं। इन सबमें भी सबसे उत्तम आत्मज्ञान है।" (अग्नि० १६२। ३-७)

'भुक्ति'से भी महत्त्वपूर्ण 'मुक्ति' है, जिससे जीवात्मा सभी प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होकर परमात्मस्वरूप हो जाता है। 'ज्ञान' वही है, जो ब्रह्मको प्रकाशित करे और 'योग' वही है, जिससे चित्त ब्रह्मसे संयुक्त हो जाय। '**ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैकचित्तता।**' (अग्नि० २७२। १)। अतः भगवान् अग्निदेवने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि, अर्थात् अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया, जिससे आत्मा परमात्मचैतन्यरूप हो जाय। परमात्म-चैतन्यकी प्राप्ति ही परम प्राप्तव्य है। इसीकी प्राप्तिके दो प्रधान मार्ग—ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठाका प्रतिपादन करनेवाली श्रीमद्भगवद्गीताका संक्षेपमें कथन करनेके उपरान्त यमगीताका भी वर्णन किया गया है।

वस्तुतः शरीरसे आत्मा पृथक् है। नेत्र, मन, बुद्धि आदि आत्मा नहीं है। आत्मा इनका नहीं, ये आत्माके हैं। जीवात्मा परमात्माका सनातन अंश है। ब्रह्मत्वकी प्राप्तिमें ही जीवनकी परम सफलता है। इसके लिये ज्ञानयोग श्रेष्ठ साधन है। साधनाके द्वारा जीव जगत्के स्थूल-सूक्ष्म बन्धनोंसे मुक्त होकर ब्रह्मत्वकी प्राप्ति कर लेता है। साधकको 'शरीर-भाव'से अतीत होना आवश्यक है। अपवादकी बात दूसरी है। अन्यथा सभीको अभ्यास करना ही पड़ता है। इसीलिये पूजा, व्रत, तप, वैराग्य और देवाराधनका विधान है। आत्मोत्कर्षके लिये सभीको अपने-अपने स्तरके अनुकूल साधन-पथ चुनना चाहिये। सभीका स्तर एक नहीं, अतः सभीका अधिकार भी समान नहीं। देवोपासनासे भी परमतत्त्वकी प्राप्ति हो सकती है। देवोपासकोंका जो 'विष्णु' है, वही याज्ञिकोंका 'यज्ञपुरुष' है और वही ज्ञानियोंका 'मूर्तिमान् ज्ञान' है। जीवात्मा किसी पथका आश्रय ले, अन्तिम उद्देश्य यही है कि आत्मा और परमात्माका एकत्व प्रकाशित हो जाय। सच्चा श्रेय तो सदा परमार्थमें ही निहित रहता है। परमार्थकी दृष्टिसे तो आत्मा और परमात्माका नित्य अभिन्नत्व है। अग्निपुराणमें श्रीसूतजीने कहा है—"भगवान् विष्णु ही सारसे भी सार तत्त्व हैं। वे सृष्टि और पालन आदिके कर्ता और सर्वत्र व्यापक हैं। 'वह विष्णुस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ'—इस प्रकार उन्हें जान लेनेपर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है।"

ऐसे वेदसम्मत, सर्वविद्यायुक्त और ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराणका जो पठन, श्रवण, अध्ययन और मनन करता है, उसे भोग और मोक्ष—दोनोंकी ही प्राप्ति होती है—

सारात्सारो हि भगवान् विष्णुः सर्गादिकृद्विभुः।
ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥
(अग्नि० १। ४)

भगवान् श्रीकृष्ण

॥ श्रीहरिः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अग्निपुराण

पहला अध्याय

मङ्गलाचरण तथा अग्नि और वसिष्ठके संवाद-रूपसे अग्निपुराणका आरम्भ

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम्।
ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन् वासुदेवं नमाम्यहम् ॥

'लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, महादेवजी, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं तथा भगवान् वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ' ॥ १ ॥

नैमिषारण्यकी बात है। शौनक आदि ऋषि यज्ञोंद्वारा भगवान् विष्णुका यजन कर रहे थे। उस समय वहाँ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे सूतजी पधारे। महर्षियोंने उनका स्वागत-सत्कार करके कहा—॥ २ ॥

ऋषि बोले—सूतजी! आप हमारी पूजा स्वीकार करके हमें वह सारसे भी सारभूत तत्त्व बतलानेकी कृपा करें, जिसके जान लेनेमात्रसे सर्वज्ञता प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

सूतजीने कहा—ऋषियो! भगवान् विष्णु ही सारसे भी सारतत्त्व हैं। वे सृष्टि और पालन आदिके कर्ता और सर्वत्र व्यापक हैं। 'वह विष्णुस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ'—इस प्रकार उन्हें जान लेनेपर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। ब्रह्मके दो स्वरूप जाननेके योग्य हैं—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। दो विद्याएँ भी जाननेके योग्य हैं—अपरा विद्या और परा विद्या। यह अथर्ववेदकी श्रुतिका कथन है। एक समयकी बात है, मैं, शुकदेवजी तथा पैल आदि ऋषि बदरिकाश्रमको गये और वहाँ व्यासजीको नमस्कार करके हमने प्रश्न किया। तब उन्होंने हमें सारतत्त्वका उपदेश देना आरम्भ किया ॥ ४–६ ॥

व्यासजी बोले—सूत! तुम शुक आदिके साथ सुनो। एक समय मुनियोंके साथ मैंने महर्षि वसिष्ठजीसे सारभूत परात्पर ब्रह्मके विषयमें पूछा था। उस समय उन्होंने मुझे जैसा उपदेश दिया था, वही तुम्हें बतला रहा हूँ ॥ ७ ॥

वसिष्ठजीने कहा—व्यास! सर्वान्तर्यामी ब्रह्मके दो स्वरूप हैं। मैं उन्हें बताता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें ऋषि मुनि तथा देवताओंसहित मुझसे अग्निदेवने इस विषयमें जैसा, जो कुछ भी कहा था, वही मैं (तुम्हें बता रहा हूँ)। अग्निपुराण सर्वोत्कृष्ट है। इसका एक-एक अक्षर ब्रह्मविद्या है, अतएव यह 'परब्रह्मरूप' है। ऋग्वेद आदि सम्पूर्ण वेद-शास्त्र 'अपरब्रह्म' हैं। परब्रह्मस्वरूप अग्निपुराण सम्पूर्ण देवताओंके लिये परम सुखद है। अग्निदेवद्वारा जिसका कथन हुआ है, वह आग्नेय-पुराण वेदोंके तुल्य सर्वमान्य है। यह पवित्र पुराण अपने पाठकों और श्रोताजनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। भगवान् विष्णु ही कालाग्निरूपसे विराजमान हैं। वे ही ज्योतिर्मय परात्पर परब्रह्म हैं। ज्ञानयोग तथा कर्मयोगद्वारा उन्हींका पूजन होता है। एक दिन उन विष्णुस्वरूप अग्निदेवसे मुनियोंसहित मैंने इस प्रकार प्रश्न किया ॥ ८–११ ॥

वसिष्ठजीने पूछा—अग्निदेव! संसारसागरसे पार लगानेके लिये नौकारूप परमेश्वर ब्रह्मके स्वरूपका वर्णन कीजिये और सम्पूर्ण विद्याओंके सारभूत उस विद्याका उपदेश दीजिये, जिसे जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ॥ १२ ॥

अग्निदेव बोले—वसिष्ठ! मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही कालाग्निरुद्र कहलाता हूँ। मैं तुम्हें सम्पूर्ण विद्याओंकी सारभूता विद्याका उपदेश देता हूँ, जिसे अग्निपुराण कहते हैं। वही सब विद्याओंका सार है, वह ब्रह्मस्वरूप है। सर्वमय एवं सर्वकारणभूत ब्रह्म उससे भिन्न नहीं है। उसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित आदिका तथा मत्स्य-कूर्म आदि रूप धारण करनेवाले भगवान्का वर्णन है। ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुकी स्वरूपभूता दो विद्याएँ हैं—एक परा और दूसरी अपरा। ऋक्, यजुः, साम और अथर्व-नामक वेद, वेदके छहों अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष और छन्दःशास्त्र तथा मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक (आयुर्वेद), गान्धर्व वेद (संगीत),

धनुर्वेद और अर्थशास्त्र—यह सब अपरा विद्या है तथा परा विद्या वह है, जिससे उस अदृश्य, अग्राह्य, गोत्ररहित, चरणरहित, नित्य, अविनाशी ब्रह्मका बोध हो। इस अग्निपुराणको परा विद्या समझो। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने मुझसे तथा ब्रह्माजीने देवताओंसे जिस प्रकार वर्णन किया था, उसी प्रकार मैं भी तुमसे मत्स्य आदि अवतार धारण करनेवाले जगत्कारणभूत परमेश्वरका प्रतिपादन करूँगा ॥ १३—१९ ॥

इस प्रकार व्यासद्वारा सूतके प्रति कहे गये आदि आग्नेय महापुराणमें पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

मत्स्यावतारकी कथा

वसिष्ठजीने कहा—अग्निदेव! आप सृष्टि आदिके कारणभूत भगवान् विष्णुके मत्स्य आदि अवतारोंका वर्णन कीजिये। साथ ही ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराणको भी सुनाइये, जिसे पूर्वकालमें आपने श्रीविष्णुभगवान्‌के मुखसे सुना था ॥ १ ॥

अग्निदेव बोले—वसिष्ठ! सुनो, मैं श्रीहरिके मत्स्यावतार-का वर्णन करता हूँ। अवतार-धारणका कार्य दुष्टोंके विनाश और साधु-पुरुषोंकी रक्षाके लिये होता है। बीते हुए कल्पके अन्तमें 'ब्राह्म'नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था। मुने! उस समय 'भू' आदि लोक समुद्रके जलमें डूब गये थे। प्रलयके पहलेकी बात है। वैवस्वतमनु भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये तपस्या कर रहे थे। एक दिन जब वे कृतमाला नदीमें जलसे पितरोंका तर्पण कर रहे थे, उनकी अञ्जलिके जलमें एक बहुत छोटा-सा मत्स्य आ गया। राजाने उसे जलमें फेंक देने-का विचार किया। तब मत्स्यने कहा—'महाराज! मुझे जलमें न फेंको। यहाँ ग्राह आदि जल जन्तुओंसे मुझे भय है।' यह सुनकर मनुने उसे अपने कलशके जलमें डाल दिया। मत्स्य उसमें पड़ते ही बड़ा हो गया और पुनः मनुसे बोला—'राजन्! मुझे इससे बड़ा स्थान दो।' उसकी यह बात सुनकर राजाने उसे एक बड़े जलपात्र (नाद या कूँडा आदि) में डाल दिया। उसमें भी बड़ा होकर मत्स्य राजासे बोला—'मनो! मुझे कोई विस्तृत स्थान दो।' तब उन्होंने पुनः उसे सरोवरके जलमें डाला; किंतु वहाँ भी बढ़कर वह सरोवर-के बराबर हो गया और बोला—'मुझे इससे बड़ा स्थान दो।' तब मनुने उसे फिर समुद्रमें ही ले जाकर डाल दिया। वहाँ वह मत्स्य क्षणभरमें एक लाख योजन बड़ा हो गया। उस अद्भुत मत्स्यको देखकर मनुको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'आप कौन हैं? निश्चय ही आप भगवान् श्रीविष्णु जान पड़ते हैं। नारायण! आपको नमस्कार है। जनार्दन! आप किसलिये अपनी मायासे मुझे मोहित कर रहे हैं?' ॥ २—१० ॥

मनुके ऐसा कहनेपर सबके पालनमें संलग्न रहनेवाले मत्स्यरूपधारी भगवान् उनसे बोले—'राजन्! मैं दुष्टोंका नाश और जगत्‌की रक्षा करनेके लिये अवतीर्ण हुआ हूँ। आजसे सातवें दिन समुद्र सम्पूर्ण जगत्‌को डुबा देगा। उस समय तुम्हारे पास एक नौका उपस्थित होगी। तुम उसपर सब प्रकारके बीज आदि रखकर बैठ जाना। सप्तर्षि भी तुम्हारे साथ रहेंगे। जबतक ब्रह्माकी रात रहेगी, तबतक तुम उसी नावपर विचरते रहोगे। नाव आनेके बाद मैं भी इसी रूपमें उपस्थित होऊँगा। उस समय तुम मेरे सींगमें महासर्प-मयी रस्सीसे उस नावको बाँध देना।' ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य अन्तर्धान हो गये और वैवस्वत मनु उनके बताये हुए समयकी प्रतीक्षा करते हुए वहीं रहने लगे। जब नियत समयपर समुद्र अपनी सीमा लाँघकर बढ़ने लगा, तब वे पूर्वोक्त नौकापर बैठ गये। उसी समय एक सींग धारण करनेवाले सुवर्णमय मत्स्यभगवान्‌का प्रादुर्भाव हुआ। उनका विशाल शरीर दस लाख योजन लंबा था। उनके सींगमें नाव बाँधकर राजाने उनसे 'मत्स्य'नामक पुराणका श्रवण किया, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। मनु भगवान् मत्स्यकी नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा स्तुति भी करते थे। प्रलयके अन्तमें ब्रह्माजीसे वेदको हर लेनेवाले 'हयग्रीव' नामक दानवका वध करके भगवान्‌ने वेद-मन्त्र आदिकी रक्षा की। तत्पश्चात् वाराहकल्प आनेपर श्रीहरिने कच्छपरूप धारण किया ॥ ११—१७ ॥

इस प्रकार अग्निदेवद्वारा कहे गये विद्यासार-स्वरूप आदि आग्नेय महापुराणमें 'मत्स्यावतार-वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

समुद्र-मन्थन, कूर्म तथा मोहिनी अवतारकी कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं कूर्मावतारका वर्णन करूँगा। यह सुननेपर सब पापोंका नाश हो जाता है। पूर्वकालकी बात है, देवासुर-संग्राममें दैत्योंने देवताओंको परास्त कर दिया। वे दुर्वासाके शापसे भी लक्ष्मीसे रहित हो गये थे। तब सम्पूर्ण देवता क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके पास जाकर बोले—'भगवन् ! आप देवताओंकी रक्षा कीजिये।' यह सुनकर श्रीहरिने ब्रह्मा आदि देवताओंसे कहा—'देवगण ! तुमलोग क्षीरसमुद्रको मथने, अमृत प्राप्त करने और लक्ष्मीको पानेके लिये असुरोंसे संधि कर लो। कोई बड़ा काम या भारी प्रयोजन आ पड़नेपर शत्रुओंसे भी संधि कर लेनी चाहिये। मैं तुम लोगोंको अमृतका भागी बनाऊँगा और दैत्योंको उससे वञ्चित रक्खूँगा। मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको नेती बनाकर आलस्यरहित हो मेरी सहायतासे तुमलोग क्षीरसागरका मन्थन करो।' भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर देवता दैत्योंके साथ संधि करके क्षीरसमुद्रपर आये। फिर तो उन्होंने एक साथ मिलकर समुद्र मन्थन आरम्भ किया। जिस ओर वासुकि नागकी पूँछ थी, उसी ओर देवता खड़े थे। दानव वासुकि नागके निःश्वाससे क्षीण हो रहे थे और देवताओंको भगवान् अपनी कृपादृष्टिसे परिपुष्ट कर रहे थे। समुद्र-मन्थन आरम्भ होनेपर कोई आधार न मिलनेसे मन्दराचल पर्वत समुद्रमें डूब गया ॥ १—७ ॥

तब भगवान् विष्णुने कूर्म (कछुए-) का रूप धारण करके मन्दराचलको अपनी पीठपर रख लिया। फिर जब समुद्र मथा जाने लगा, तो उसके भीतरसे हलाहल विष प्रकट हुआ। उसे भगवान् शंकरने अपने कण्ठमें धारण कर लिया। इससे कण्ठमें काला दाग पड़ जानेके कारण वे 'नीलकण्ठ' नामसे प्रसिद्ध हुए। तत्पश्चात् समुद्रसे वारुणीदेवी, पारिजात वृक्ष, कौस्तुभमणि, गौएँ तथा दिव्य अप्सराएँ प्रकट हुईं। फिर लक्ष्मीदेवीका प्रादुर्भाव हुआ। वे भगवान् विष्णुको प्राप्त हुईं। सम्पूर्ण देवताओंने उनका दर्शन और स्तवन किया। इससे वे लक्ष्मीवान् हो गये। तदनन्तर भगवान् विष्णुके अंशभूत धन्वन्तरि, जो आयुर्वेदके प्रवर्तक हैं, हाथमें अमृतसे भरा हुआ कलश लिये प्रकट हुए। दैत्योंने उनके हाथसे अमृत छीन लिया और उसमेंसे आधा देवताओंको देकर वे सब चलते बने। उनमें जम्भ आदि दैत्य प्रधान थे। उन्हें जाते देख भगवान् विष्णुने स्त्रीका रूप धारण किया। उस रूपवती स्त्रीको देखकर दैत्य मोहित हो गये और बोले—'सुमुखि ! तुम हमारी भार्या हो जाओ और यह अमृत लेकर हमें पिलाओ।' 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान्ने उनके हाथसे अमृत ले लिया और उसे देवताओंको पिला दिया। उस समय राहु चन्द्रमाका रूप धारण करके अमृत पीने लगा। तब सूर्य और चन्द्रमाने उसके कपट-वेषको प्रकट कर दिया ॥ ८—१४ ॥

यह देख भगवान् श्रीहरिने चक्रसे उसका मस्तक काट डाला। उसका सिर अलग हो गया और भुजाओंसहित धड़ अलग रह गया। फिर भगवान्को दया आयी और उन्होंने राहुको अमर बना दिया। तब ग्रहस्वरूप राहुने भगवान् श्रीहरिसे कहा—'इन सूर्य और चन्द्रमाको मेरेद्वारा अनेकों बार ग्रहण लगेगा। उस समय संसारके लोग जो कुछ दान करें, वह सब अक्षय हो।' भगवान् विष्णुने 'तथास्तु' कहकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ राहुकी बातका अनुमोदन किया। इसके बाद भगवान्ने स्त्रीरूप त्याग दिया; किंतु महादेवजीको भगवान्के उस रूपका पुनर्दर्शन करनेकी इच्छा हुई। अतः उन्होंने अनुरोध किया—'भगवन् ! आप अपने स्त्रीरूपका मुझे दर्शन करावें।' महादेवजीकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीहरिने उन्हें अपने स्त्रीरूपका दर्शन कराया। वे भगवान्की मायासे ऐसे मोहित हो गये कि पार्वतीजीको त्यागकर उस स्त्रीके पीछे लग गये। उन्होंने नग्न और उन्मत्त होकर मोहिनीके केश पकड़ लिये। मोहिनी अपने केशोंको छुड़ाकर वहाँसे चल दी। उसे जाती देख महादेवजी भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। उस समय पृथ्वीपर जहाँ जहाँ भगवान् शंकरका वीर्य गिरा, वहाँ-वहाँ शिवलिङ्गोंका क्षेत्र एवं सुवर्णकी खानें हो गयीं। तत्पश्चात् 'यह माया है'—ऐसा जानकर भगवान् शंकर अपने स्वरूपमें स्थित हुए। तब भगवान् श्रीहरिने प्रकट

होकर शिवजीने कहा—'रुद्र ! तुमने मेरी मायाको जीत लिया। पृथ्वीपर तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो मेरी इस मायाको जीत सके।' भगवान्‌के प्रयत्नसे दैत्योंको अमृत नहीं मिलने पाया; अतः देवताओंने उन्हें युद्धमें मार गिराया। फिर देवता स्वर्गमें विराजमान हुए और दैत्यलोग पातालमें रहने लगे। जो मनुष्य देवताओंकी इस विजयगाथाका पाठ करता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है ॥ १५—२३ ॥

इस प्रकार विद्याओंके सारभूत आदि आग्नेय महापुराणमें 'कूर्मावतार-वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम अवतारकी कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं वराहावतारकी पापनाशिनी कथाका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें 'हिरण्याक्ष' नामक दैत्य असुरोंका राजा था। वह देवताओंको जीतकर स्वर्गमें रहने लगा। देवताओंने भगवान् विष्णुके पास जाकर उनकी स्तुति की। तब उन्होंने यज्ञवाराहरूप धारण किया और देवताओंके लिये कण्टकरूप उस दानवको दैत्योंसहित मारकर धर्म एवं देवताओं आदिकी रक्षा की। इसके बाद वे भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। हिरण्याक्षके एक भाई था, जो 'हिरण्यकशिपु'के नामसे प्रसिद्ध था। उसने देवताओंके यज्ञभाग अपने अधीन कर लिये और उन सबके अधिकार छीनकर वह स्वयं ही उनका उपभोग करने लगा। भगवान्‌ने नृसिंहरूप धारण करके उसके सहायक असुरोंसहित उस दैत्यका वध किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवताओंको अपने-अपने पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। उस समय देवताओंने उन नृसिंहका स्तवन किया।

पूर्वकालमें देवता और असुरोंमें युद्ध हुआ। उस युद्धमें बलि आदि दैत्योंने देवताओंको परास्त करके उन्हें स्वर्गसे निकाल दिया। तब वे श्रीहरिकी शरणमें गये। भगवान्‌ने उन्हें अभय-दान दिया और कश्यप तथा अदितिकी स्तुतिसे प्रसन्न हो, वे अदितिके गर्भसे वामन-रूपमें प्रकट हुए। उस समय दैत्यराज बलि गङ्गाद्वारमें यज्ञ कर रहे थे। भगवान् उनके यज्ञमें गये और वहाँ यजमानकी स्तुतिका गान करने लगे ॥ १—७ ॥

वामनके मुखसे वेदोंका पाठ सुनकर राजा बलि उन्हें वर देनेको उद्यत हो गये और शुक्राचार्यके मना करनेपर भी बोले—'ब्रह्मन् ! आपकी जो इच्छा हो, मुझसे माँगें। मैं आपको वह वस्तु अवश्य दूँगा।' वामनने बलिसे कहा—'मुझे अपने गुरुके लिये तीन पग भूमिकी आवश्यकता है; वही दीजिये।' बलिने कहा—'अवश्य दूँगा।' तब संकल्पका जल हाथमें पड़ते ही भगवान् वामन 'अवामन' हो गये। उन्होंने विराट् रूप धारण कर लिया और भूर्लोक, भुवर्लोक एवं स्वर्गलोकको अपने तीन पगोंसे नाप लिया। श्रीहरिने बलिको सुतललोकमें भेज दिया और त्रिलोकीका राज्य इन्द्रको दे डाला। इन्द्रने देवताओंके साथ श्रीहरिका स्तवन किया। वे तीनों लोकोंके स्वामी होकर सुखसे रहने लगे।

ब्रह्मन् ! अब मैं परशुरामावतारका वर्णन करूँगा, सुनो। देवता और ब्राह्मण आदिका पालन करनेवाले श्रीहरिने जब देखा कि भूमण्डलके क्षत्रिय उद्धत स्वभावके हो गये हैं, तो वे उन्हें मारकर पृथ्वीका भार उतारने और सर्वत्र शान्ति स्थापित करनेके लिये जमदग्निके अंशद्वारा रेणुकाके गर्भसे अवतीर्ण हुए। भृगुनन्दन परशुराम शस्त्र विद्याके पारंगत विद्वान् थे। उन दिनों कृतवीर्यका पुत्र राजा अर्जुन भगवान् दत्तात्रेयजीकी कृपासे हजार बाँहें पाकर समस्त भूमण्डलपर राज्य करता था। एक दिन वह वनमें शिकार खेलनेके लिये गया ॥ ८—१४ ॥

वहाँ वह बहुत थक गया। उस समय जमदग्नि मुनिने उसे सेनासहित अपने आश्रमपर निमन्त्रित किया और कामधेनुके प्रभावसे सबको भोजन कराया। राजाने मुनिसे कामधेनुको अपने लिये माँगा; किंतु उन्होंने देनेसे इनकार कर दिया। तब उसने बलपूर्वक उस धेनुको छीन लिया। यह समाचार पाकर परशुरामजीने हैहयपुरीमें जा उसके साथ युद्ध किया और अपने फरसेसे उसका मस्तक काटकर रणभूमिमें उसे मार गिराया। फिर वे कामधेनुको साथ लेकर अपने आश्रमपर लौट आये। एक दिन परशुरामजी जब वनमें गये हुए थे, कृतवीर्यके पुत्रोंने आकर अपने पिताके वैरका बदला लेनेके लिये जमदग्नि मुनिको

वक्ता व्यास, श्रोता सूत [अग्नि० अ० १

वक्ता वसिष्ठ, श्रोता व्यास-शुकदेव [अग्नि० अ० १

वक्ता अग्निदेव, श्रोता वसिष्ठ [अग्नि० अ० १

वक्ता नारद, श्रोता वाल्मीकि [अग्नि० अ० ५

मार डाला। जब परशुरामजी लौटकर आये तो पिताको मारा गया देख उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने इक्कीस बार समस्त भूमण्डलके क्षत्रियोंका संहार किया। फिर कुरुक्षेत्रमें पाँच कुण्ड बनाकर वहीं उन्होंने अपने पितरोंका तर्पण किया और सारी पृथ्वी कश्यप-मुनिको दान देकर वे महेन्द्र पर्वतपर रहने लगे। इस प्रकार कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन तथा परशुराम अवतारकी कथा सुनकर मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है ॥ १५—२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वराह, नृसिंह, वामन तथा परशुरामावतारकी कथाका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीरामावतार-वर्णनके प्रसङ्गमें रामायण-बालकाण्डकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं ठीक उसी प्रकार रामायणका वर्णन करूँगा, जैसे पूर्वकालमें नारदजीने महर्षि वाल्मीकिजीको सुनाया था। इसका पाठ भोग और मोक्ष—दोनोंको देनेवाला है ॥ १ ॥

देवर्षि नारद कहते हैं—वाल्मीकिजी! भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माजीके पुत्र हैं मरीचि। मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य और सूर्यसे वैवस्वत-मनुका जन्म हुआ। उसके बाद वैवस्वत-मनुसे इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति हुई। इक्ष्वाकुके वंशमें ककुत्स्थ नामक राजा हुए। ककुत्स्थके रघु, रघुके अज और अजके पुत्र दशरथ हुए। उन राजा दशरथसे रावण आदि राक्षसोंका वध करनेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णु चार रूपोंमें प्रकट हुए। उनकी बड़ी रानी कौसल्याके गर्भसे श्रीरामचन्द्रजीका प्रादुर्भाव हुआ। कैकेयीसे भरत और सुमित्रासे लक्ष्मण एवं शत्रुघ्नका जन्म हुआ। महर्षि ऋष्यशृङ्गने उन तीनों रानियोंको यज्ञसिद्ध चरु दिये थे, जिन्हें खानेसे इन चारों कुमारोंका आविर्भाव हुआ। श्रीराम आदि सभी भाई अपने पिताके ही समान पराक्रमी थे। एक समय मुनिवर विश्वामित्रने अपने यज्ञमें विघ्न डालनेवाले निशाचरोंका नाश करनेके लिये राजा दशरथसे प्रार्थना की (कि आप अपने पुत्र श्रीरामको मेरे साथ भेज दें)। तब राजाने मुनिके साथ श्रीराम और लक्ष्मणको भेज दिया। श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ जाकर मुनिसे अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा पायी और ताड़का नामवाली निशाचरीका वध किया। फिर उन बलवान् वीरने मारीच नामक राक्षसको मानवास्त्रसे मोहित करके दूर फेंक दिया और यज्ञ-विघातक राक्षस सुबाहुको दल-बलसहित मार डाला। इसके बाद वे कुछ कालतक मुनिके सिद्धाश्रममें ही रहे। तत्पश्चात् विश्वामित्र आदि महर्षियोंके साथ लक्ष्मणसहित श्रीराम मिथिलानरेशका धनुष-यज्ञ देखनेके लिये गये ॥ २—९ ॥

[अपनी माता अहल्याके उद्धारकी वार्ता सुनकर संतुष्ट हुए] शतानन्दजीने निमित्त-कारण बनकर श्रीरामसे विश्वामित्र मुनिके प्रभावका* वर्णन किया। राजा जनकने अपने यज्ञमें मुनियोंसहित श्रीरामचन्द्रजीका पूजन किया। श्रीरामने धनुषको चढ़ा दिया और उसे अनायास ही तोड़ डाला। तदनन्तर महाराज जनकने अपनी अयोनिजा कन्या सीताको, जिसके विवाहके लिये पराक्रम ही शुल्क निश्चित किया गया था, श्रीरामचन्द्रजीको समर्पित किया। श्रीरामने भी अपने पिता राजा दशरथ आदि गुरुजनोंके मिथिलामें पधारनेपर सबके सामने सीताका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। उस समय लक्ष्मणने भी मिथिलेश-कन्या उर्मिलाको अपनी पत्नी बनाया। राजा जनकके छोटे भाई कुशध्वज थे। उनकी दो कन्याएँ थीं—श्रुतकीर्ति और माण्डवी। इनमें माण्डवीके साथ भरतने और श्रुतकीर्तिके साथ शत्रुघ्नने विवाह किया। तदनन्तर राजा जनकसे भलीभाँति पूजित हो श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठ आदि महर्षियोंके साथ वहाँसे प्रस्थान किया। मार्गमें जमदग्निनन्दन परशुरामको जीतकर वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ जानेपर भरत और शत्रुघ्न अपने मामा राजा युधाजित्‌की राजधानीको चले गये ॥ १०—१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्रीरामायण-कथाके अन्तर्गत बालकाण्डमें आये हुए विषयका वर्णन' सम्बन्धी पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

* यहाँ मूलमें 'प्रभावतः' पद 'प्रभावः'के अर्थमें है। यहाँ 'तसि' प्रत्यय पञ्चम्यन्तका बोधक नहीं है। सार्वविभक्तिक 'तसि'के नियमानुसार प्रथमान्त पदसे यहाँ 'तसि' प्रत्यय हुआ है, ऐसा समझना चाहिये।

छठा अध्याय

अयोध्याकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—भरतके ननिहाल चले जानेपर [लक्ष्मणसहित] श्रीरामचन्द्रजी ही पिता-माता आदिके सेवा-सत्कारमें रहने लगे। एक दिन राजा दशरथने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन! मेरी बात सुनो। तुम्हारे गुणोंपर अनुरक्त हो प्रजाजनोंने मन-ही-मन तुम्हें राज-सिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया है—प्रजाकी यह हार्दिक इच्छा है कि तुम युवराज बनो; अतः कल प्रातःकाल मैं तुम्हें युवराजपद प्रदान कर दूँगा। आज रातमें तुम सीता-सहित उत्तम व्रतका पालन करते हुए संयमपूर्वक रहो।' राजाके आठ मन्त्रियों तथा वसिष्ठजीने भी उनकी इस बातका अनुमोदन किया। उन आठ मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार हैं—दृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राज्यवर्धन, अशोक, धर्मपाल तथा सुमन्त्र*। इनके अतिरिक्त वसिष्ठजी भी [मन्त्रणा देते थे।] पिता और मन्त्रियोंकी बातें सुनकर श्रीरघुनाथजीने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और माता कौसल्याको यह शुभ समाचार बताकर देवताओं-की पूजा करके वे संयममें स्थित हो गये। उधर महाराज दशरथ वसिष्ठ आदि मन्त्रियोंको यह कहकर कि 'आपलोग श्रीरामचन्द्रके राज्याभिषेककी सामग्री जुटायें', कैकेयीके भवनमें चले गये। कैकेयीके मन्थरा नामक एक दासी थी, जो बड़ी दुष्टा थी। उसने अयोध्याकी सजावट होती देख, श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी बात जानकर रानी कैकेयीसे सारा हाल कह सुनाया। एक बार किसी अपराधके कारण श्रीरामचन्द्रजीने मन्थराको उसके पैर पकड़कर घसीटा था। उसी वैरके कारण वह सदा यही चाहती थी कि रामका वनवास हो जाय ॥१–८॥

मन्थरा बोली—कैकेयी! तुम उठो, रामका राज्याभिषेक होने जा रहा है। यह तुम्हारे पुत्रके लिये, मेरे लिये और तुम्हारे लिये भी मृत्युके समान भयंकर वृत्तान्त है—इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ९ ॥

मन्थरा कुबड़ी थी। उसकी बात सुनकर रानी कैकेयीको प्रसन्नता हुई। उन्होंने कुब्जाको एक आभूषण उतारकर दिया और कहा—'मेरे लिये तो जैसे राम हैं, वैसे ही मेरे पुत्र भरत भी हैं। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे भरतको राज्य मिल सके।' मन्थराने उस हारको फेंक दिया और कुपित होकर कैकेयीसे कहा ॥ १०-११ ॥

मन्थरा बोली—ओ नादान! तू भरतको, अपनेको और मुझे भी रामसे बचा। कल राम राजा होंगे। फिर रामके पुत्रोंको राज्य मिलेगा। कैकेयी! अब राजवंश भरतसे दूर हो जायगा। [मैं भरतको राज्य दिलानेका एक उपाय बताती हूँ।] पहलेकी बात है। देवासुर संग्राममें शम्बरासुरने देवताओंको मार भगाया था। तेरे स्वामी भी उस युद्धमें गये थे। उस समय तूने अपनी विद्यासे रातमें स्वामीकी रक्षा की थी। इसके लिये महाराजने तुझे दो वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी। इस समय उन्हीं दोनों वरोंको उनसे माँग। एक वरके द्वारा रामका चौदह वर्षोंके लिये वनवास और दूसरेके द्वारा भरतका युवराज-पदपर अभिषेक माँग ले। राजा इस समय वे दोनों वर दे देंगे ॥ १२–१५ ॥

इस प्रकार मन्थराके प्रोत्साहन देनेपर कैकेयी अनर्थमें ही अर्थकी सिद्धि देखने लगी और बोली—'कुब्जे! तूने बड़ा अच्छा उपाय बताया है। राजा मेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगे।' ऐसा कहकर वह कोपभवनमें चली गयी और पृथ्वीपर अचेत-सी होकर पड़ रही। उधर महाराज दशरथ ब्राह्मण आदिका पूजन करके जब कैकेयीके भवनमें आये तो उसे रोषमें भरी हुई देखा। तब राजाने पूछा—'सुन्दरी! तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो रही है? तुम्हें कोई रोग तो नहीं सता रहा है? अथवा किसी भयसे व्याकुल तो नहीं हो? बताओ, क्या चाहती हो? मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करता हूँ। जिन श्रीरामके बिना मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता, उन्हींकी शपथ खाकर कहता हूँ, तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करूँगा। सच-सच बताओ, क्या चाहती हो?' कैकेयी बोली—'राजन्! यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं, तो अपने सत्यकी रक्षाके लिये पहलेके दिये

---

* वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड ७। ३ में इन मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार आये हैं—धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्र।

हुए दो वरदान देनेकी कृपा करें। मैं चाहती हूँ, राम चौदह वर्षोंतक संयमपूर्वक वनमें निवास करें और इन सामग्रियोंके द्वारा आज ही भरतका युवराज-पदपर अभिषेक हो जाय। महाराज! यदि ये दोनों वरदान आप मुझे नहीं देंगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी।' यह सुनकर राजा दशरथ वज्रसे आहत हुएकी भाँति मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। फिर थोड़ी देरमें चेत होनेपर उन्होंने कैकेयीसे कहा ॥ १६–२३ ॥

दशरथ बोले—पापपूर्ण विचार रखनेवाली कैकेयी! तू समस्त संसारका अप्रिय करनेवाली है। अरी! मैंने या रामने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू मुझसे ऐसी बात कहती है? केवल तुझे प्रिय लगनेवाला यह कार्य करके मैं संसारमें भलीभाँति निन्दित हो जाऊँगा। तू मेरी स्त्री नहीं, कालरात्रि है। मेरा पुत्र भरत ऐसा नहीं है। पापिनी! मेरे पुत्रके चले जानेपर जब मैं मर जाऊँगा तो तू विधवा होकर राज्य करना ॥ २४–२५½ ॥

राजा दशरथ सत्यके बन्धनमें बँधे थे। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको बुलाकर कहा—'बेटा! कैकेयीने मुझे ठग लिया। तुम मुझे कैद करके राज्यको अपने अधिकारमें कर लो। अन्यथा तुम्हें वनमें निवास करना होगा और कैकेयीका पुत्र भरत राजा बनेगा।' श्रीरामचन्द्रजीने पिता और कैकेयीको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की और कौसल्याके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन्हें सान्त्वना दी। फिर लक्ष्मण और पत्नी सीताको साथ ले, ब्राह्मणों, दीनों और अनाथोंको दान देकर, सुमन्त्रसहित रथपर बैठकर वे नगरसे बाहर निकले। उस समय माता-पिता आदि शोकसे आतुर हो रहे थे। उस रातमें श्रीरामचन्द्रजीने तमसा नदीके तटपर निवास किया। उनके साथ बहुत-से पुरवासी भी गये थे। उन सबको सोते छोड़कर वे आगे बढ़ गये। प्रातःकाल होनेपर जब श्रीरामचन्द्रजी नहीं दिखायी दिये तो नगरनिवासी निराश होकर पुनः अयोध्या लौट आये। श्रीरामचन्द्रजीके चले जानेसे राजा दशरथ बहुत दुखी हुए। वे रोते-रोते कैकेयीका महल छोड़कर कौसल्याके भवनमें चले आये। उस समय नगरके समस्त स्त्री-पुरुष और रनिवासकी स्त्रियाँ फूट-फूटकर रो रही थीं। श्रीरामचन्द्रजीने चीरवस्त्र धारण कर रक्खा था। वे रथपर बैठे-बैठे शृङ्गवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ निषादराज गुहने उनका पूजन, स्वागत-सत्कार किया। श्रीरघुनाथजीने इङ्गुदी-वृक्षकी जड़के निकट विश्राम किया। लक्ष्मण और गुह दोनों रातभर जागकर पहरा देते रहे ॥ २६–३३ ॥

प्रातःकाल श्रीरामने रथसहित सुमन्त्रको विदा कर दिया तथा स्वयं लक्ष्मण और सीताके साथ नावसे गङ्गा-पार हो वे प्रयागमें गये। वहाँ उन्होंने महर्षि भरद्वाजको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले वहाँसे चित्रकूट पर्वतको प्रस्थान किया। चित्रकूट पहुँचकर उन्होंने वास्तुपूजा करनेके अनन्तर (पर्णकुटी बनाकर) मन्दाकिनीके तटपर निवास किया। रघुनाथजीने सीताको चित्रकूट पर्वतका रमणीय दृश्य दिखलाया। इसी समय एक कौएने सीताजीके कोमल श्रीअङ्गमें नखोंसे प्रहार किया। यह देख श्रीरामने उसके ऊपर सींकके अस्त्रका प्रयोग किया। जब वह कौआ देवताओंका आश्रय छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आया, तब उन्होंने उसकी केवल एक आँख नष्ट करके उसे जीवित छोड़ दिया। श्रीरामचन्द्रजी-के वनगमनके पश्चात् छठे दिनकी रातमें राजा दशरथने कौसल्यासे पहलेकी एक घटना सुनायी, जिसमें उनके द्वारा कुमारावस्थामें सरयूके तटपर अनजानमें यज्ञदत्त-पुत्र श्रवणकुमारके मारे जानेका वृत्तान्त था। "श्रवणकुमार पानी लेनेके लिये आया था। उस समय उसके घड़ेके भरनेसे जो शब्द हो रहा था, उसकी आहट पाकर मैंने उसे कोई जंगली जन्तु समझा और शब्दवेधी बाणसे उसका वध कर डाला। यह समाचार पाकर उसके पिता और माताको बड़ा शोक हुआ। वे बारंबार विलाप करने लगे। उस समय श्रवणकुमारके पिताने मुझे शाप देते हुए कहा—'राजन्! हम दोनों पति-पत्नी पुत्रके बिना शोकातुर होकर प्राण-त्याग कर रहे हैं; तुम भी हमारी ही तरह पुत्रवियोगके शोकसे मरोगे; [तुम्हारे पुत्र मरेंगे तो नहीं, किंतु] उस समय तुम्हारे पास कोई पुत्र मौजूद न होगा।' कौसल्ये! आज उस शापका मुझे स्मरण हो रहा है। जान पड़ता है, अब इसी शोकसे मेरी मृत्यु होगी।" इतनी कथा कहनेके पश्चात् राजाने 'हा राम!' कहकर स्वर्गलोकको प्रयाण किया। कौसल्याने समझा, महाराज शोकसे आतुर हैं; इस समय नींद आ गयी होगी। ऐसा विचार करके वे सो गयीं। प्रातःकाल जगानेवाले सूत, मागध और बन्दीजन सोते हुए महाराजको जगाने लगे; किंतु वे न जगे ॥ ३४–४२ ॥

तब उन्हें मरा हुआ जान रानी कौसल्या 'हाय! मैं

मारी गयी' कहकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। फिर तो समस्त नर-नारी फूट-फूटकर रोने लगे। तत्पश्चात् महर्षि वसिष्ठने राजाके शवको तैलभरी नौकामें रखवाकर भरतको उनके ननिहालसे तत्काल बुलवाया। भरत और शत्रुघ्न अपने मामाके राजमहलसे निकलकर सुमन्त्र आदिके साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरीमें आये। यहाँका समाचार जानकर भरतको बड़ा दुःख हुआ। कैकेयीको शोक करती देख उसकी कठोर शब्दोंमें निन्दा करते हुए बोले—'अरी! तूने मेरे माथे कलङ्कका टीका लगा दिया—मेरे सिरपर अपयशका भारी बोझ लाद दिया।' फिर उन्होंने कौसल्याकी प्रशंसा करके तैलपूर्ण नौकामें रखे हुए पिताके शवका सरयूतटपर अन्त्येष्टि-संस्कार किया। तदनन्तर वसिष्ठ आदि गुरुजनोंने कहा—'भरत! अब राज्य ग्रहण करो।' भरत बोले—'मैं तो श्रीरामचन्द्रजीको ही राजा मानता हूँ। अब उन्हें यहाँ लानेके लिये वनमें जाता हूँ।' ऐसा कहकर वे वहाँसे दल-बलसहित चल दिये और शृङ्गवेरपुर होते हुए प्रयाग पहुँचे। वहाँ महर्षि भरद्वाजने उन सबको भोजन कराया। फिर भरद्वाजको नमस्कार करके वे प्रयागसे चले और चित्रकूटमें श्रीराम एवं लक्ष्मणके समीप आ पहुँचे। वहाँ भरतने श्रीरामसे कहा—'रघुनाथजी! हमारे पिता महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो गये। अब आप अयोध्यामें चलकर राज्य ग्रहण करें। मैं आपकी आज्ञाका पालन करते हुए वनमें जाऊँगा।' यह सुनकर श्रीरामने पिताका तर्पण किया और भरतसे कहा—'तुम मेरी चरणपादुका लेकर अयोध्या लौट जाओ। मैं राज्य करनेके लिये नहीं चलूँगा। पिताके सत्यकी रक्षाके लिये चीर एवं जटा धारण करके वनमें ही रहूँगा।' श्रीरामके ऐसा कहनेपर सदल-बल भरत लौट गये और अयोध्या छोड़कर नन्दिग्राममें रहने लगे। वहाँ भगवान्‌की चरणपादुकाओंकी पूजा करते हुए वे राज्यका भलीभाँति पालन करने लगे ॥ ४३—५१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत अयोध्याकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

अरण्यकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—मुने! श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठ तथा माताओंको प्रणाम करके उन सबको भरतके साथ विदा कर दिया। तत्पश्चात् महर्षि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनसूयाको, शरभङ्गमुनिको, सुतीक्ष्णको तथा अगस्त्यजीके भ्राता अग्निजिह्व मुनिको प्रणाम करते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यमुनिके आश्रमपर जा उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और मुनिकी कृपासे दिव्य धनुष एवं दिव्य खड्ग प्राप्त करके वे दण्डकारण्यमें आये। वहाँ जनस्थानके भीतर पञ्चवटी नामक स्थानमें गोदावरीके तटपर रहने लगे। एक दिन शूर्पणखा नामवाली भयंकर राक्षसी राम, लक्ष्मण और सीताको खा जानेके लिये पञ्चवटीमें आयी; किंतु श्रीरामचन्द्रजीका अत्यन्त मनोहर रूप देखकर वह कामके अधीन हो गयी और बोली ॥ १—४ ॥

शूर्पणखाने कहा—तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? मेरी प्रार्थनासे अब तुम मेरे पति हो जाओ। यदि मेरे साथ तुम्हारा सम्बन्ध होनेमें [ये दोनों सीता और लक्ष्मण बाधक हैं तो] मैं इन दोनोंको अभी खाये लेती हूँ ॥ ५ ॥

ऐसा कहकर वह उन्हें खा जानेको तैयार हो गयी। तब श्रीरामचन्द्रजीके कहनेसे लक्ष्मणने शूर्पणखाकी नाक और दोनों कान भी काट लिये। कटे हुए अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खरके पास गयी और इस प्रकार बोली—'खर! मेरी नाक कट गयी। इस अपमानके बाद मैं जीवित नहीं रह सकती। अब तो मेरा जीवन तभी रह सकता है, जब कि तुम मुझे रामका, उनकी पत्नी सीताका तथा उनके छोटे भाई लक्ष्मणका गरम-गरम रक्त पिलाओ।' खरने उसको 'बहुत अच्छा' कहकर शान्त किया और दूषण तथा त्रिशिराके साथ चौदह हजार राक्षसोंकी सेना ले श्रीरामचन्द्रजीपर चढ़ाई की। श्रीरामने भी उन सबका सामना किया और अपने बाणोंसे राक्षसोंको बींधना आरम्भ किया। शत्रुओंकी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसहित समस्त चतुरङ्गिणी सेनाको उन्होंने यमलोक पहुँचा दिया तथा अपने साथ युद्ध करनेवाले भयंकर राक्षस खर, दूषण एवं त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया। अब शूर्पणखा लङ्कामें गयी और रावणके सामने जा पृथ्वीपर गिर पड़ी।

उसने क्रोधमें भरकर रावणसे कहा—'अरे! तू राजा और रक्षक कहलानेयोग्य नहीं है। खर आदि समस्त राक्षसोंका संहार करनेवाले रामकी पत्नी सीताको हर ले। मैं राम और लक्ष्मणका रक्त पीकर ही जीवित रहूँगी; अन्यथा नहीं' ॥ ६—१२ ॥

शूर्पणखाकी बात सुनकर रावणने कहा—'अच्छा, ऐसा ही होगा।' फिर उसने मारीचसे कहा—'तुम स्वर्णमय विचित्र मृगका रूप धारण करके सीताके सामने जाओ और राम तथा लक्ष्मणको अपने पीछे आश्रमसे दूर हटा ले जाओ। मैं सीताका हरण करूँगा। यदि मेरी बात न मानोगे, तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।' मारीचने रावणसे कहा—'रावण! धनुर्धर राम साक्षात् मृत्यु हैं।' फिर उसने मन-ही मन सोचा—'यदि नहीं जाऊँगा, तो रावणके हाथसे मरना होगा और जाऊँगा तो श्रीरामके हाथसे। इस प्रकार यदि मरना अनिवार्य है तो इसके लिये श्रीराम ही श्रेष्ठ हैं, रावण नहीं; [क्योंकि श्रीरामके हाथसे मृत्यु होनेपर मेरी मुक्ति हो जायगी।] ऐसा विचारकर वह मृगरूप धारण करके सीताके सामने बारंबार आने जाने लगा। तब सीताजीकी प्रेरणासे श्रीरामने [दूरतक उसका पीछा करके] उसे अपने बाणसे मार डाला। मरते समय उस मृगने 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकार लगायी। उस समय सीताके कहनेसे लक्ष्मण अपनी इच्छाके विरुद्ध श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। इसी बीचमें रावणने भी मौका पाकर सीताको हर लिया। मार्गमें जाते समय उसने गृध्रराज जटायुका वध किया। जटायुने भी उसके रथको नष्ट कर डाला था। रथ न रहनेपर रावणने सीताको कंधेपर बिठा लिया और उन्हें लङ्कामें ले जाकर अशोकवाटिकामें रक्खा। वहाँ सीतासे बोला—'तुम मेरी पटरानी बन जाओ।' फिर राक्षसियोंकी ओर देखकर कहा—'निशाचरियो! इसकी रखवाली करो' ॥ १३—१९½ ॥

उधर श्रीरामचन्द्रजी जब मारीचको मारकर लौटे, तो लक्ष्मणको आते देख बोले—'सुमित्रानन्दन! वह मृग तो मायामय था—वास्तवमें वह एक राक्षस था; किंतु तुम जो इस समय यहाँ आ गये, इससे जान पड़ता है, निश्चय ही कोई सीताको हर ले गया।' श्रीरामचन्द्रजी आश्रमपर गये; किंतु वहाँ सीता नहीं दिखायी दीं। उस समय वे आर्त होकर शोक और विलाप करने लगे—'हा प्रिये जानकी! तू मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी?' लक्ष्मणने श्रीरामको सान्त्वना दी। तब वे वनमें घूम-घूम सीताकी खोज करने लगे। इसी समय इनकी जटायुसे भेंट हुई। जटायुने यह कहकर कि 'सीताको रावण हर ले गया है' प्राण त्याग दिया। तब श्रीरघुनाथजीने अपने हाथसे जटायुका दाह-संस्कार किया। इसके बाद इन्होंने कबन्धका वध किया। कबन्धने शापमुक्त होनेपर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'आप सुग्रीवसे मिलिये' ॥ २०—२४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत अरण्यकाण्डकी कथाका वर्णन' विषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

किष्किन्धाकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजी पम्पा-सरोवरपर जाकर सीताके लिये शोक करने लगे। वहाँ वे शबरीसे मिले। फिर हनुमान्‌जीसे उनकी भेंट हुई। हनुमान्‌जी उन्हें सुग्रीवके पास ले गये और सुग्रीवके साथ उनकी मित्रता करायी। श्रीरामचन्द्रजीने सबके देखते-देखते ताड़के सात वृक्षोंको एक ही बाणसे बींध डाला और दुन्दुभि नामक दानवके विशाल शरीरको पैरकी ठोकरसे दस योजन दूर फेंक दिया। इसके बाद सुग्रीवके शत्रु वालीको, जो भाई होते हुए भी उनके साथ वैर रखता था, मार डाला और किष्किन्धापुरी, वानरोंका साम्राज्य, रुमा एवं तारा—इन सबको ऋष्यमूक पर्वतपर वानरराज सुग्रीवके अधीन कर दिया। तदनन्तर किष्किन्धापुरीके स्वामी सुग्रीवने कहा—'श्रीराम! आपको सीताजीकी प्राप्ति जिस प्रकार भी हो सके, ऐसा उपाय मैं कर रहा हूँ।' यह सुननेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने माल्यवान् पर्वतके शिखरपर वर्षाके चार महीने व्यतीत किये और सुग्रीव किष्किन्धामें रहने लगे। चौमासेके बाद भी जब सुग्रीव दिखायी नहीं दिये, तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणने किष्किन्धामें जाकर कहा—'सुग्रीव!

तुम श्रीरामचन्द्रजीके पास चलो। अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहो, नहीं तो वाली मरकर जिस मार्गसे गया है, वह मार्ग अभी बंद नहीं हुआ है। अतएव वालीके पथका अनुसरण न करो।' सुग्रीवने कहा—'सुमित्रानन्दन! विषयभोगमें आसक्त हो जानेके कारण मुझे बीते हुए समयका भान न रहा। [अतः मेरे अपराधको क्षमा कीजिये]' ॥ १–७ ॥

ऐसा कहकर वानरराज सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके पास गये और उन्हें नमस्कार करके बोले—'भगवन्! मैंने सब वानरोंको बुला लिया है। अब आपकी इच्छाके अनुसार सीताजीकी खोज करनेके लिये उन्हें भेजूँगा। वे पूर्वादि दिशाओंमें जाकर एक महीनेतक सीताजीकी खोज करें। जो एक महीनेके बाद लौटेगा, उसे मैं मार डालूँगा।' यह सुनकर बहुत-से वानर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओंके मार्गपर चल पड़े तथा वहाँ जनककुमारी सीताको न पाकर नियत समयके भीतर श्रीराम और सुग्रीवके पास लौट आये। हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीकी दी हुई अँगूठी लेकर अन्य वानरोंके साथ दक्षिण दिशामें जानकीजीकी खोज कर रहे थे। वे लोग सुप्रभाकी गुफाके निकट विन्ध्यपर्वतपर ही एक माससे अधिक कालतक ढूँढ़ते फिरे; किंतु उन्हें सीताजीका दर्शन नहीं हुआ। अन्तमें निराश होकर आपसमें कहने लगे—'हमलोगोंको व्यर्थ ही प्राण देने पड़ेंगे। धन्य है वह जटायु, जिसने सीताके लिये रावणके द्वारा मारा जाकर युद्धमें प्राण त्याग दिया था' ॥ ८–१३ ॥

उनकी ये बातें सम्पाति नामक गृध्रके कानोंमें पड़ीं। वह वानरोंके (प्राणत्यागकी चर्चासे उनके) खानेकी ताकमें लगा था। किंतु जटायुकी चर्चा सुनकर रुक गया और बोला—'वानरो! जटायु मेरा भाई था। वह मेरे ही साथ सूर्यमण्डलकी ओर उड़ा चला जा रहा था। मैंने अपनी पाँखोंकी ओटमें रखकर सूर्यकी प्रखर किरणोंके तापसे उसे बचाया। अतः वह तो सकुशल बच गया; किंतु मेरी पाँखें जल गयीं, इसलिये मैं यहीं गिर पड़ा। आज श्रीरामचन्द्रजीकी वार्ता सुननेसे फिर मेरे पंख निकल आये। अब मैं जानकीको देखता हूँ; वे लङ्कामें अशोक-वाटिकाके भीतर हैं। लवणसमुद्रके द्वीपमें त्रिकूट पर्वतपर लङ्का बसी हुई है। यहाँसे वहाँतकका समुद्र सौ योजन विस्तृत है। यह जानकर सब वानर श्रीराम और सुग्रीवके पास जायँ और उन्हें सब समाचार बता दें' ॥ १४–१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत किष्किन्धाकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

सुन्दरकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—सम्पातिकी बात सुनकर हनुमान् और अङ्गद आदि वानरोंने समुद्रकी ओर देखा। फिर वे कहने लगे—'कौन समुद्रको लाँघकर समस्त वानरोंको जीवन-दान देगा?' वानरोंकी जीवन-रक्षा और श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी प्रकृष्ट सिद्धिके लिये पवनकुमार हनुमान्‌जी सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघ गये। लाँघते समय अवलम्बन देनेके लिये समुद्रसे मैनाक पर्वत उठा। हनुमान्‌जीने दृष्टिमात्रसे उसका सत्कार किया। फिर [छाया-ग्राहिणी] सिंहिकाने सिर उठाया। [वह उन्हें अपना ग्रास बनाना चाहती थी, इसलिये] हनुमान्‌जीने उसे मार गिराया। समुद्रके पार जाकर उन्होंने लङ्कापुरी देखी। राक्षसोंके घरोंमें खोज की; रावणके अन्तःपुरमें तथा कुम्भ, कुम्भकर्ण, विभीषण, इन्द्रजित् तथा अन्य राक्षसोंके गृहोंमें जा-जाकर तलाश की; मद्यपानके स्थानों आदिमें भी चक्कर लगाया; किंतु कहीं भी सीता उनकी दृष्टिमें नहीं पड़ीं। अब वे बड़ी चिन्तामें पड़े। अन्तमें जब अशोकवाटिकाकी ओर गये तो वहाँ शिंशपा-वृक्षके नीचे सीताजी उन्हें बैठी दिखायी दीं। वहाँ राक्षसियाँ उनकी रखवाली कर रही थीं। हनुमान्‌जीने शिंशपा-वृक्षपर चढ़कर देखा। रावण सीताजीसे कह रहा था—'तू मेरी स्त्री हो जा'; किंतु वे स्पष्ट शब्दोंमें 'ना' कर रही थीं। वहाँ बैठी हुई राक्षसियाँ भी यही कहती थीं—'तू रावणकी स्त्री हो जा।' जब रावण चला गया तो हनुमान्‌जीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'अयोध्यामें दशरथ नामवाले एक राजा थे। उनके दो पुत्र राम और लक्ष्मण वनवासके लिये गये। वे दोनों भाई श्रेष्ठ पुरुष हैं। उनमें श्रीरामचन्द्रजीकी

पत्नी जनककुमारी सीता तुम्हीं हो। रावण तुम्हें बलपूर्वक हर ले आया है। श्रीरामचन्द्रजी इस समय वानरराज सुग्रीवके मित्र हो गये हैं। उन्होंने तुम्हारी खोज करनेके लिये ही मुझे भेजा है। पहचानके लिये गूढ़ संदेशके साथ श्रीरामचन्द्रजीने अँगूठी दी है। उनकी दी हुई यह अँगूठी ले लो'॥ १-९॥

सीताजीने अँगूठी ले ली। उन्होंने वृक्षपर बैठे हुए हनुमान्जीको देखा। फिर हनुमान्जी वृक्षसे उतरकर उनके सामने आ बैठे, तब सीताने उनसे कहा—'यदि श्रीरघुनाथजी जीवित हैं तो वे मुझे यहाँसे ले क्यों नहीं जाते?' इस प्रकार शङ्का करती हुई सीताजीसे हनुमान्जीने इस प्रकार कहा—'देवि सीते! तुम यहाँ हो, यह बात श्रीरामचन्द्रजी नहीं जानते। मुझसे यह समाचार जान लेनेके पश्चात् सेना-सहित राक्षस रावणको मारकर वे तुम्हें अवश्य ले जायँगे। तुम चिन्ता न करो। मुझे कोई अपनी पहचान दो।' तब सीताजीने हनुमान्जीको अपनी चूड़ामणि उतारकर दे दी और कहा—'भैया! अब ऐसा उपाय करो, जिससे श्रीरघुनाथजी शीघ्र आकर मुझे यहाँसे ले चलें। उन्हें कौएकी आँख नष्ट कर देनेवाली घटनाका स्मरण दिलाना; [आज यहीं रहो] कल सबेरे चले जाना; तुम मेरा शोक दूर करनेवाले हो। तुम्हारे आनेसे मेरा दुःख बहुत कम हो गया है।' चूड़ामणि और काकवाली कथाको पहचानके रूपमें लेकर हनुमान्जीने कहा—'कल्याणि! तुम्हारे पतिदेव अब तुम्हें शीघ्र ही ले जायँगे। अथवा यदि तुम्हें चलनेकी जल्दी हो, तो मेरी पीठपर बैठ जाओ। मैं आज ही तुम्हें श्रीराम और सुग्रीवके दर्शन कराऊँगा।' सीता बोलीं—'नहीं, श्रीरघुनाथजी ही आकर मुझे ले जायँ'॥१०-१५½॥

तदनन्तर हनुमान्जीने रावणसे मिलनेकी युक्ति सोच निकाली। उन्होंने रक्षकोंको मारकर उस वाटिकाको उजाड़ डाला। फिर दाँत और नख आदि आयुधोंसे वहाँ आये हुए रावणके समस्त सेवकोंको मारकर सात मन्त्रि-कुमारों तथा रावणपुत्र अक्षयकुमारको भी यमलोक पहुँचा दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित्ने आकर उन्हें नागपाशसे बाँध लिया और उन वानरवीरको रावणके पास ले जाकर उससे मिलाया। उस समय रावणने पूछा—'तू कौन है?' तब हनुमान्जीने रावणको उत्तर दिया—'मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ। तुम श्रीसीताजीको श्रीरघुनाथजीकी सेवामें लौटा दो; अन्यथा लङ्कानिवासी समस्त राक्षसोंके साथ तुम्हें श्रीरामके बाणोंसे घायल होकर निश्चय ही मरना पड़ेगा।' यह सुनकर रावण हनुमान्जीको मारनेके लिये उद्यत हो गया; किंतु विभीषणने उसे रोक दिया। तब रावणने उनकी पूँछमें आग लगा दी। पूँछ जल उठी। यह देख पवनपुत्र हनुमान्जीने राक्षसोंकी पुरी लङ्काको जला डाला और सीताजीका पुनः दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। फिर समुद्रके पार आकर अङ्गद आदिसे कहा—'मैंने सीताजीका दर्शन कर लिया है।' तत्पश्चात् अङ्गद आदिके साथ सुग्रीवके मधुवनमें आकर, दधिमुख आदि रक्षकोंको परास्त करके, मधुपान करनेके अनन्तर वे सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और बोले—'सीताजीका दर्शन हो गया।' श्रीरामचन्द्रजीने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमान्जीसे पूछा—॥ १६-२४॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—कपिवर! तुम्हें सीताका दर्शन कैसे हुआ? उसने मेरे लिये क्या संदेश दिया है? मैं विरहकी आगमें जल रहा हूँ। तुम सीताकी अमृतमयी कथा सुनाकर मेरा संताप शान्त करो॥ २५॥

नारदजी कहते हैं—यह सुनकर हनुमान्जीने रघुनाथजीसे कहा—'भगवन्! मैं समुद्र लाँघकर लङ्कामें गया था। वहाँ सीताजीका दर्शन करके, लङ्कापुरीको जलाकर यहाँ आ रहा हूँ। यह सीताजीकी दी हुई चूड़ामणि लीजिये। आप शोक न करें; रावणका वध करनेके पश्चात् निश्चय ही आपको सीताजीकी प्राप्ति होगी।' श्रीरामचन्द्रजी उस मणिको हाथमें ले, विरहसे व्याकुल होकर रोने लगे और बोले—'इस मणिको देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो मैंने सीताको ही देख लिया। अब मुझे सीताके पास ले चलो; मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता।' उस समय सुग्रीव आदिने श्रीरामचन्द्रजीको समझा-बुझाकर शान्त किया। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी समुद्रके तटपर गये। वहाँ उनसे विभीषण आकर मिले। विभीषणके भाई दुरात्मा रावणने उनका तिरस्कार किया था। विभीषणने इतना ही कहा था कि 'भैया! आप सीताको श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कर दीजिये।' इसी अपराधके कारण उसने इन्हें ठुकरा दिया था। अब वे असहाय थे। श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको अपना मित्र बनाया और लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। इसके बाद श्रीरामने समुद्रसे लङ्का जानेके लिये रास्ता माँगा। जब उसने मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने बाणोंसे उसे बींध डाला।

अब समुद्र भयभीत होकर श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर बोला—'भगवन्! नलके द्वारा मेरे ऊपर पुल बँधाकर आप लङ्कामें जाइये। पूर्वकालमें आपहीने मुझे गहरा बनाया था।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने नलके द्वारा वृक्ष और शिलाखण्डोंसे एक पुल बँधवाया और उसीसे वे वानरोंसहित समुद्रके पार गये। वहाँ सुवेल पर्वतपर पड़ाव डालकर वहींसे उन्होंने लङ्कापुरीका निरीक्षण किया ॥ २६—३३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत सुन्दरकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

युद्धकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे अङ्गद रावणके पास गये और बोले—'रावण! तुम जनककुमारी सीताको ले जाकर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजी-को सौंप दो। अन्यथा मारे जाओगे।' यह सुनकर रावण उन्हें मारनेको तैयार हो गया। अङ्गद राक्षसोंको मार-पीटकर लौट आये और श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'भगवन्! रावण केवल युद्ध करना चाहता है।' अङ्गदकी बात सुनकर श्रीरामने वानरोंकी सेना साथ ले युद्धके लिये लङ्कामें प्रवेश किया। हनुमान्, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, नल, नील, तार, अङ्गद, धूम्र, सुषेण, केसरी, गज, पनस, विनत, रम्भ, शरभ, महाबली कम्पन, गवाक्ष, दधिमुख, गवय और गन्धमादन—ये सब तो वहाँ आये ही, अन्य भी बहुत-से वानर आ पहुँचे। इन असंख्य वानरोंसहित [कपिराज] सुग्रीव भी युद्धके लिये उपस्थित थे। फिर तो राक्षसों और वानरोंमें घमासान युद्ध छिड़ गया। राक्षस वानरोंको बाण, शक्ति और गदा आदिके द्वारा मारने लगे और वानर नख, दाँत एवं शिला आदिके द्वारा राक्षसोंका संहार करने लगे। राक्षसोंकी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। हनुमान्ने पर्वतशिखरसे अपने वैरी धूम्राक्षका वध कर डाला। नीलने भी युद्धके लिये सामने आये हुए अकम्पन और प्रहस्तको मौतके घाट उतार दिया ॥ १—८ ॥

श्रीराम और लक्ष्मण यद्यपि इन्द्रजित्के नागास्त्रसे बँध गये थे, तथापि गरुड़की दृष्टि पड़ते ही उससे मुक्त हो गये। तत्पश्चात् उन दोनों भाइयोंने बाणोंसे राक्षसी सेनाका संहार आरम्भ किया। श्रीरामने रावणको युद्धमें अपने बाणोंकी मारसे जर्जरित कर डाला। इससे दुःखित होकर रावणने कुम्भकर्णको सोतेसे जगाया। जागनेपर कुम्भकर्णने हजार घड़े मदिरा पीकर कितने ही भैंस आदि पशुओंका भक्षण किया। फिर रावणसे कुम्भकर्ण बोला—'सीताका हरण करके तुमने पाप किया है। तुम मेरे बड़े भाई हो, इसलिये तुम्हारे कहनेसे युद्ध करने जाता हूँ। मैं वानरोंसहित रामको मार डालूँगा' ॥ ९—१२ ॥

ऐसा कहकर कुम्भकर्णने समस्त वानरोंको कुचलना आरम्भ किया। एक बार उसने सुग्रीवको पकड़ लिया, तब सुग्रीवने उसकी नाक और कान काट लिये। नाक और कानसे रहित होकर वह वानरोंका भक्षण करने लगा। यह देख श्रीरामचन्द्रजीने अपने बाणोंसे कुम्भकर्णकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। इसके बाद उसके दोनों पैर तथा मस्तक काटकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। तदनन्तर कुम्भ, निकुम्भ, राक्षस मकराक्ष, महोदर, महापार्श्व, मत्त, राक्षसश्रेष्ठ उन्मत्त, प्रघस, भासकर्ण, विरूपाक्ष, देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय युद्धमें कूद पड़े। तब इनको तथा और भी बहुत-से युद्धपरायण राक्षसोंको श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण एवं वानरोंने पृथ्वीपर सुला दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित् (मेघनाद-) ने मायासे युद्ध करते हुए वरदानमें प्राप्त हुए नागपाशद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणको बाँध लिया। उस समय हनुमान्जीके द्वारा लाये हुए पर्वतपर उगी हुई 'विशल्या' नामकी ओषधिसे श्रीराम और लक्ष्मणके घाव अच्छे हुए। उनके शरीरसे बाण निकाल दिये गये। हनुमान्जी पर्वतको जहाँसे लाये थे, वहीं उसे पुनः रख आये। इधर मेघनाद निकुम्भिलादेवीके मन्दिरमें होम आदि करने लगा। उस समय लक्ष्मणने अपने बाणोंसे इन्द्रको भी परास्त कर देने-वाले उस वीरको युद्धमें मार गिराया। पुत्रकी मृत्युका

समाचार पाकर रावण शोकसे संतप्त हो उठा और सीताको मार डालनेके लिये उद्यत हो उठा; किंतु अविन्ध्यके मना करनेसे वह मान गया और रथपर बैठकर सेनासहित युद्ध-भूमिमें गया। तब इन्द्रके आदेशसे मातलिने आकर श्रीरघुनाथजीको भी देवराज इन्द्रके रथपर बिठाया॥१३—२२॥

श्रीराम और रावणका युद्ध श्रीराम और रावणके युद्धके ही समान था—उसकी कहीं भी दूसरी कोई उपमा नहीं थी। रावण वानरोंपर प्रहार करता था और हनुमान् आदि वानर रावणको चोट पहुँचाते थे। जैसे मेघ पानी बरसाता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीने रावणके ऊपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उन्होंने रावणके रथ, ध्वज, अश्व, सारथि, धनुष, बाहु और मस्तक काट डाले। काटे हुए मस्तकोंके स्थानपर दूसरे नये मस्तक उत्पन्न हो जाते थे। यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीने ब्रह्मास्त्रके द्वारा रावणका वक्षःस्थल विदीर्ण करके उसे रणभूमिमें गिरा दिया। उस समय [मरनेसे बचे हुए सब] राक्षसोंके साथ रावणकी अनाथा स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विभीषणने उन सबको सान्त्वना दे, रावणके शवका दाह-संस्कार किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीके द्वारा सीताजीको बुलवाया। यद्यपि वे स्वरूपसे ही नित्य शुद्ध थीं, तो भी उन्होंने अग्निमें प्रवेश करके अपनी विशुद्धताका परिचय दिया। तत्पश्चात् रघुनाथजीने उन्हें स्वीकार किया। इसके बाद इन्द्रादि देवताओंने उनका स्तवन किया। फिर ब्रह्माजी तथा स्वर्गवासी महाराज दशरथने आकर स्तुति करते हुए कहा—'श्रीराम! तुम राक्षसोंका संहार करनेवाले साक्षात् श्रीविष्णु हो।' फिर श्रीरामके अनुरोधसे इन्द्रने अमृत बरसाकर मरे हुए वानरोंको जीवित कर दिया। समस्त देवता युद्ध देखकर, श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा पूजित हो, स्वर्गलोकमें चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने लङ्काका राज्य विभीषणको दे दिया और वानरोंका विशेष सम्मान किया॥२३—२९॥

फिर सबको साथ ले, सीतासहित पुष्पक विमानपर बैठकर श्रीराम जिस मार्गसे आये थे, उसीसे लौट चले। मार्गमें वे सीताको प्रसन्नचित्त होकर वनों और दुर्गम स्थानोंको दिखाते जा रहे थे। प्रयागमें महर्षि भरद्वाजको प्रणाम करके वे अयोध्याके पास नन्दिग्राममें आये। वहाँ भरतने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वे अयोध्यामें आकर वहीं रहने लगे। सबसे पहले उन्होंने महर्षि वसिष्ठ आदिको नमस्कार करके क्रमशः कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर राज्य-ग्रहण करके ब्राह्मणों आदिका पूजन किया। अश्वमेध-यज्ञ करके उन्होंने अपने आत्मस्वरूप श्रीवासुदेवका यजन किया, सब प्रकारके दान दिये और प्रजाजनोंका पुत्रवत् पालन करने लगे। उन्होंने धर्म और कामादिका भी सेवन किया तथा वे दुष्टोंको सदा दण्ड देते रहे। उनके राज्यमें सब लोग धर्मपरायण थे तथा पृथ्वीपर सब प्रकारकी खेती फली-फूली रहती थी। श्रीरघुनाथजीके शासनकालमें किसीकी अकालमृत्यु भी नहीं होती थी॥३०—३५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत युद्धकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

उत्तरकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—जब रघुनाथजी अयोध्याके राजसिंहासनपर आसीन हो गये, तब अगस्त्य आदि महर्षि उनका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार हुआ। तदनन्तर उन ऋषियोंने कहा—'भगवन्! आप धन्य हैं, जो लङ्कामें विजयी हुए और इन्द्रजित्-जैसे राक्षसको मार गिराया। [अब हम उनकी उत्पत्ति-कथा बतलाते हैं, सुनिये—] ब्रह्माजीके पुत्र मुनिवर पुलस्त्य हुए और पुलस्त्यसे महर्षि विश्रवाका जन्म हुआ। उनकी दो पत्नियाँ थीं—पुष्पोत्कटा और कैकसी। उनमें पुष्पोत्कटा ज्येष्ठ थी। उसके गर्भसे धनाध्यक्ष कुबेरका जन्म हुआ। कैकसीके गर्भसे पहले रावणका जन्म हुआ, जिसके दस मुख और बीस भुजाएँ थीं। रावणने तपस्या की और ब्रह्माजीने उसे वरदान दिया, जिससे उसने समस्त देवताओंको जीत लिया। कैकसीके दूसरे पुत्रका नाम कुम्भकर्ण और तीसरेका विभीषण था। कुम्भकर्ण सदा नींदमें ही पड़ा रहता था; किंतु विभीषण बड़े धर्मात्मा

हुए। इन तीनोंकी बहन शूर्पणखा हुई। रावणसे मेघनाद-का जन्म हुआ। उसने इन्द्रको जीत लिया था, इसलिये 'इन्द्रजित्' के नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई। वह रावणसे भी अधिक बलवान् था। परंतु देवताओं आदिके कल्याण-की इच्छा रखनेवाले आपने लक्ष्मणके द्वारा उसका वध करा दिया।' ऐसा कहकर वे अगस्त्य आदि ब्रह्मर्षि श्रीरघुनाथजीके द्वारा अभिनन्दित हो अपने-अपने आश्रमको चले गये। तदनन्तर देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभावित श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे शत्रुघ्नने लवणासुरको मारकर एक पुरी बसायी, जो 'मथुरा' नामसे प्रसिद्ध हुई। तत्पश्चात् भरतने श्रीरामकी आज्ञा पाकर सिन्धु-तीर-निवासी शैलूष नामक बलोन्मत्त गन्धर्वका तथा उसके तीन करोड़ वंशजोंका अपने तीखे बाणोंसे संहार किया। फिर उस देशके [गान्धार और मद्र] दो विभाग करके, उनमें अपने पुत्र तक्ष और पुष्करको स्थापित कर दिया ॥ १—९ ॥

इसके बाद भरत और शत्रुघ्न अयोध्यामें चले आये और वहाँ श्रीरघुनाथजीकी आराधना करते हुए रहने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने दुष्ट पुरुषोंका युद्धमें संहार किया और शिष्ट पुरुषोंका दान आदिके द्वारा भलीभाँति पालन किया। उन्होंने लोकापवादके भयसे अपनी धर्मपत्नी सीताको वनमें छोड़ दिया था। वहाँ वाल्मीकि मुनिके आश्रममें उनके गर्भसे दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम कुश और लव थे। उनके उत्तम चरित्रोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी-को भलीभाँति निश्चय हो गया कि ये मेरे ही पुत्र हैं। तत्पश्चात् उन दोनोंको कोसलके दो राज्योंपर अभिषिक्त करके, 'मैं ब्रह्म हूँ' इसकी भावनापूर्वक ध्यानयोगमें स्थित होकर उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे भाइयों और पुरवासियों-सहित अपने परमधाममें प्रवेश किया। अयोध्यामें ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके वे अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे। उनके बाद सीताके पुत्र कोसल जनपदके राजा हुए ॥ १०—१३ ॥

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी! देवर्षि नारदसे यह कथा सुनकर महर्षि वाल्मीकिने विस्तारपूर्वक रामायण नामक महाकाव्यकी रचना की। जो इस प्रसङ्गको सुनता है, वह स्वर्गलोकको जाता है ॥ १४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत उत्तरकाण्डकी कथाका वर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

हरिवंशका वर्णन एवं श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं हरिवंशका वर्णन करूँगा। श्रीविष्णुके नाभि-कमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजीसे अत्रि, अत्रिसे सोम, सोमसे [बुध एवं बुधसे] पुरूरवा उत्पन्न हुए। पुरूरवासे आयु, आयुसे नहुष तथा नहुषसे ययातिका जन्म हुआ। ययातिकी पहली पत्नी देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। उनकी दूसरी पत्नी शर्मिष्ठाके गर्भसे, जो वृषपर्वाकी पुत्री थी, द्रुह्यु, अनु और पूरु—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। यदुके वंशमें 'यादव' नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए। उन सबमें भगवान् वासुदेव सर्वश्रेष्ठ थे। परम पुरुष भगवान् विष्णु ही इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वसुदेव और देवकीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे योगनिद्राने क्रमशः छः गर्भ, जो पूर्वजन्ममें हिरण्यकशिपुके पुत्र थे, देवकीके उदरमें स्थापित किये। देवकीके उदरसे सातवें गर्भके रूपमें बलभद्रजी प्रकट हुए थे। ये देवकीसे रोहिणीके गर्भमें खींचकर लाये गये थे, इसलिये [संकर्षण तथा] रौहिणेय कहलाये। तदनन्तर श्रावण मासके* कृष्णपक्षकी अष्टमीको आधी रातके समय चार भुजाधारी भगवान् श्रीहरि प्रकट हुए। उस समय देवकी और वसुदेवने उनका स्तवन किया। फिर वे दो बाँहोंवाले नन्हें-से बालक बन गये। वसुदेवने कंसके भयसे अपने शिशुको यशोदाकी शय्यापर पहुँचा दिया और यशोदाकी नवजात बालिकाको देवकीकी शय्यापर लाकर सुला दिया। बच्चेके रोनेकी आवाज

* शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे लेकर कृष्णपक्षकी अमावस्यातक एक मास होता है। इस मान्यताके अनुसार गणना करनेपर आजकी गणनाके अनुसार जो भाद्रपद कृष्ण अष्टमी है, वही श्रावण कृष्ण अष्टमी सिद्ध होती है। गुजरात, महाराष्ट्रमें अब भी ऐसा ही मानते हैं।

सुनकर कंस आ पहुँचा और देवकीके मना करनेपर भी उसने उस बालिकाको उठाकर शिलापर पटक दिया। उसने आकाशवाणीसे सुन रक्खा था कि देवकीके आठवें गर्भसे मेरी मृत्यु होगी। इसीलिये उसने देवकीके उत्पन्न हुए सभी शिशुओंको मार डाला था ॥ १—९ ॥

कंसके द्वारा शिलापर पटकी हुई वह बालिका आकाशमें उड़ गयी और वहींसे इस प्रकार बोली—'कंस ! मुझे पटकनेसे तुम्हारा क्या लाभ हुआ ? जिनके हाथसे तुम्हारा वध होगा, वे देवताओंके सर्वस्वभूत भगवान् तो इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार ले चुके' ॥ १०-११ ॥

ऐसा कहकर वह चली गयी। उसीने देवताओंकी प्रार्थनासे शुम्भ आदि दैत्योंका वध किया। तब इन्द्रने इस प्रकार स्तुति की—'जो आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रकाली, भद्रा, क्षेम्या, क्षेमकरी तथा नैकबाहु* आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं, उन जगदम्बाको मैं नमस्कार करता हूँ।' जो तीनों समय इन नामोंका पाठ करता है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं।† उधर कंसने भी (बालिकाकी बात सुनकर) नवजात शिशुओंका वध करनेके लिये पूतना आदिको सब ओर भेजा। कंस आदिसे डरे हुए वसुदेवने अपने दोनों पुत्रोंकी रक्षाके लिये उन्हें गोकुलमें यशोदापति नन्दजीको सौंप दिया था। वहाँ बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई गौओं तथा ग्वाल-बालोंके साथ विचरा करते थे। यद्यपि वे सम्पूर्ण जगत्के पालक थे, तो भी व्रजमें गोपालक बनकर रहे। एक बार श्रीकृष्णके ऊधमसे तंग आकर मैया यशोदाने उन्हें रस्सीसे ऊखलमें बाँध दिया। वे ऊखल घसीटते हुए दो अर्जुन-वृक्षोंके बीचसे निकले। इससे वे दोनों वृक्ष टूटकर गिर पड़े। एक दिन श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सो रहे थे। वे माताका स्तनपान करनेकी इच्छासे अपने पैर फेंक-फेंककर रोने लगे। उनके पैरका हलका-सा आघात लगते ही छकड़ा उलट गया ॥ १२—१७ ॥

पूतना अपना स्तन पिलाकर श्रीकृष्णको मारनेके लिये उद्यत थी; किंतु श्रीकृष्णने ही उसका काम तमाम कर दिया। उन्होंने वृन्दावनमें जानेके पश्चात् कालिय-नागको परास्त किया और उसे यमुनाके कुण्डसे निकालकर समुद्रमें भेज दिया। बलरामजीके साथ जा, गदहेका रूप धारण करनेवाले धेनुकासुरको मारकर, उन्होंने तालवनको क्षेमयुक्त स्थान बना दिया तथा वृषभरूपधारी अरिष्टासुर और अश्वरूपधारी केशीको मार डाला। फिर श्रीकृष्णने इन्द्रयागके उत्सवको बंद कराया और उसके स्थानमें गिरिराज गोवर्धनकी पूजा प्रचलित की। इससे कुपित हो इन्द्रने जो वर्षा आरम्भ की, उसका निवारण श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको धारण करके किया। अन्तमें महेन्द्रने आकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उन्हें 'गोविन्द'की पदवी दी। फिर अपने पुत्र अर्जुनको उन्हें सौंपा। इससे संतुष्ट होकर श्रीकृष्णने पुनः इन्द्रयागका भी उत्सव कराया। तदनन्तर एक दिन वे दोनों भाई कंसका संदेश लेकर आये हुए अक्रूरके साथ रथपर बैठकर मथुरा चले गये। जाते समय श्रीकृष्णमें अनुराग रखनेवाली गोपियाँ, जिनके साथ वे भाँति-भाँतिकी मधुर लीलाएँ कर चुके थे, उन्हें बहुत देरतक निहारती रहीं। मार्गमें अक्रूरने उनकी स्तुति की। मथुरामें एक रजक (धोबी) को, जो बहुत बढ़-बढ़कर बातें बना रहा था, मारकर श्रीकृष्णने उसके सारे वस्त्र ले लिये ॥ १८—२३ ॥

एक मालीके द्वारपर उन्होंने बलरामजीके साथ फूलकी मालाएँ धारण कीं और मालीको उत्तम वर दिया। कंसकी दासी कुब्जाने उनके शरीरमें चन्दनका लेप कर दिया, इससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसका कुबड़ापन दूर कर दिया—उसे सुडौल एवं सुन्दरी बना दिया। आगे जानेपर रङ्गशालाके द्वारपर खड़े हुए कुवलयापीड नामक मतवाले हाथीको मारा और रङ्गभूमिमें प्रवेश करके श्रीकृष्णने मञ्चपर बैठे हुए कंस आदि राजाओंके समक्ष चाणूर नामक मल्लके साथ [उसके ललकारनेपर] कुश्ती लड़ी और बलरामने मुष्टिक नामवाले पहलवानके साथ दंगल शुरू किया। उन दोनों भाइयोंने चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य पहलवानोंको भी [बात-की-बातमें] मार गिराया। तत्पश्चात् श्रीहरिने मथुराधिपति कंसको मारकर उसके पिता उग्रसेनको यदुवंशियोंका राजा बनाया। कंसके दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति। वे दोनों जरासन्धकी पुत्रियाँ थीं।

---

* नैकबाहुका अर्थ है—अनेक बाँहोंवाली। इससे द्विभुजा, चतुर्भुजा, अष्टभुजा तथा अष्टादशभुजा आदि सभी देवियोंका ग्रहण हो जाता है।

† आर्या दुर्गा वेद गर्भा अम्बिका भद्रकाल्यपि।
भद्रा क्षेम्या क्षेमकरी नैकबाहुर्नमामि ताम् ॥
त्रिसंध्यं यः पठेन्नाम सर्वान् कामान् स चाप्नुयात् ॥
(अग्नि० १२। १२-१३)

उनकी प्रेरणासे जरासन्धने मथुरापुरीपर घेरा डाल दिया और यदुवंशियोंके साथ बाणोंसे युद्ध करने लगा। बलराम और श्रीकृष्ण जरासन्धको परास्त करके मथुरा छोड़कर गोमन्त पर्वतपर चले आये और द्वारका नगरीका निर्माण करके वहीं यदुवंशियोंके साथ रहने लगे। उन्होंने युद्धमें वासुदेव नाम धारण करनेवाले पौण्ड्रकको भी मारा तथा भूमिपुत्र नरकासुरका वध करके उसके द्वारा हरकर लायी हुई देवता, गन्धर्व तथा यक्षोंकी कन्याओंके साथ विवाह किया। श्रीकृष्णके सोलह हजार आठ रानियाँ थीं, उनमें रुक्मिणी आदि प्रधान थीं ॥ २४—३१ ॥

इसके बाद नरकासुरका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो स्वर्गलोकमें गये। वहाँसे इन्द्रको परास्त करके रत्नोंसहित मणिपर्वत तथा पारिजात वृक्ष उठा लाये और उन्हें सत्यभामाके भवनमें स्थापित कर दिया। श्रीकृष्णने सान्दीपनि मुनिसे अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण की थी। शिक्षा पानेके अनन्तर उन्होंने गुरुदक्षिणाके रूपमें गुरुके मरे हुए बालकको लाकर दिया था। इसके लिये उन्हें 'पञ्चजन' नामक दैत्यको परास्त करके यमराजके लोकमें भी जाना पड़ा था। वहाँ यमराजने उनकी बड़ी पूजा की थी। उन्होंने राजा मुचुकुन्दके द्वारा कालयवनका वध करवा दिया। उस समय मुचुकुन्दने भी भगवान्‌की पूजा की। भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेव, देवकी तथा भगवद्भक्त ब्राह्मणोंका बड़ा आदर-सत्कार करते थे। बलभद्रजीके द्वारा रेवतीके गर्भसे निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। श्रीकृष्णद्वारा जाम्बवतीके गर्भसे साम्बका जन्म हुआ। इसी प्रकार अन्य रानियोंसे अन्यान्य पुत्र उत्पन्न हुए। रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ था। वे अभी छः दिनके थे, तभी शम्बरासुर उन्हें मायाबलसे हर ले गया। उसने बालकको समुद्रमें फेंक दिया। समुद्रमें एक मत्स्य उसे निगल गया। उस मत्स्यको एक मल्लाहने पकड़ा और शम्बरासुरको भेंट किया। फिर शम्बरासुरने उस मत्स्यको मायावतीके हवाले कर दिया। मायावतीने मत्स्यके पेटमें अपने पतिको देखकर बड़े आदरसे उसका पालन-पोषण किया। बड़े हो जानेपर मायावतीने प्रद्युम्नसे कहा—'नाथ! मैं आपकी पत्नी रति हूँ और आप मेरे पति कामदेव हैं। पूर्वकालमें भगवान् शंकरने आपको अनङ्ग (शरीर-रहित) कर दिया था। आपके न रहनेसे शम्बरासुर मुझे हर लाया है। मैंने उसकी पत्नी होना स्वीकार नहीं किया है। आप मायाके ज्ञाता हैं, अतः शम्बरासुरको मार डालिये' ॥ ३२—३९ ॥

यह सुनकर प्रद्युम्नने शम्बरासुरका वध किया और अपनी भार्या मायावतीके साथ वे श्रीकृष्णके पास चले गये। उनके आगमनसे श्रीकृष्ण और रुक्मिणीको बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रद्युम्नसे उदारबुद्धि अनिरुद्धका जन्म हुआ। बड़े होनेपर वे उषाके स्वामी हुए। राजा बलिके बाण नामक पुत्र था। उषा उसीकी पुत्री थी। उसका निवासस्थान शोणितपुरमें था। बाणने बड़ी भारी तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उसको अपना पुत्र मान लिया था। एक दिन शिवजीने बलोन्मत्त बाणासुरकी युद्धविषयक इच्छासे संतुष्ट होकर उससे कहा—'बाण! जिस दिन तुम्हारे महलका मयूरध्वज अपने-आप टूटकर गिर जाय, उस दिन यह समझना कि तुम्हें युद्ध प्राप्त होगा।' एक दिन कैलास पर्वतपर भगवती पार्वती भगवान् शंकरके साथ क्रीडा कर रही थीं। उन्हें देखकर उषाके मनमें भी पतिकी अभिलाषा जाग्रत् हुई। पार्वतीजीने उसके मनोभावको समझकर कहा—'वैशाख मासकी द्वादशी तिथिको रातके समय स्वप्नमें जिस पुरुषका तुम्हें दर्शन होगा, वही तुम्हारा पति होगा।' पार्वतीजीकी यह बात सुनकर उषा बहुत प्रसन्न हुई। उक्त तिथिको जब वह अपने घरमें सो गयी, तो उसे वैसा ही स्वप्न दिखायी दिया। उषाकी एक सखी चित्रलेखा थी। वह बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी कन्या थी। उसके बनाये हुए चित्रपटसे उषाने अनिरुद्धको पहचाना कि वे ही स्वप्नमें उससे मिले थे। उसने चित्रलेखाके ही द्वारा श्रीकृष्ण-पौत्र अनिरुद्धको द्वारकासे अपने यहाँ बुला मँगाया। अनिरुद्ध आये और उषाके साथ विहार करते हुए रहने लगे। इसी समय मयूरध्वजके रक्षकोंने बाणासुरको ध्वजके गिरनेकी सूचना दी। फिर तो अनिरुद्ध और बाणासुरमें भयंकर युद्ध हुआ ॥ ४०—४७ ॥

नारदजीके मुखसे अनिरुद्धके शोणितपुर पहुँचनेका समाचार सुनकर, भगवान् श्रीकृष्ण प्रद्युम्न और बलभद्रको साथ ले, गरुड़पर बैठकर वहाँ गये और अग्नि एवं माहेश्वर ज्वरको जीतकर शंकरजीके साथ युद्ध करने लगे। श्रीकृष्ण और शंकरमें परस्पर बाणोंके आघात-प्रत्याघातसे युक्त भीषण युद्ध होने लगा। नन्दी, गणेश और कार्तिकेय आदि प्रमुख वीरोंको गरुड आदिने तत्काल परास्त कर दिया। श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रका प्रयोग किया, जिससे भगवान् शंकर जँभाई लेते हुए सो गये। इसी बीचमें श्रीकृष्णने

बाणासुरकी हजार भुजाएँ काट डालीं। जृम्भणास्त्रका प्रभाव कम होनेपर शिवजीने बाणासुरके लिये अभयदान माँगा, तब श्रीकृष्णने दो भुजाओंके साथ बाणासुरको जीवित छोड़ दिया और शंकरजीसे कहा—॥ ४८–५१ ॥

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! आपने जब बाणासुरको अभयदान दिया है, तो मैंने भी दे दिया। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो भेद मानता है, वह नरकमें पड़ता है* ॥५२॥

अग्निदेव कहते हैं—तदनन्तर शिव आदिने श्रीकृष्णका पूजन किया। वे अनिरुद्ध और उषा आदिके साथ द्वारकामें जाकर उग्रसेन आदि यादवोंके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ ५३ ॥

अनिरुद्धके वज्र नामक पुत्र हुआ। उसने मार्कण्डेय मुनिसे सब विद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया। बलभद्रजीने प्रलम्बासुरको मारा, यमुनाकी धाराको खींचकर फेर दिया, द्विविद नामक वानरका संहार किया तथा अपने हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको गङ्गामें झुकाकर कौरवोंके घमंडको चूर-चूर कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण अनेक रूप धारण करके अपनी रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ विहार करते रहे। उन्होंने असंख्य पुत्रोंको जन्म दिया। [अन्तमें यादवोंका उपसंहार करके वे परमधामको पधारे।] जो इस हरिवंशका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त करके अन्तमें श्रीहरिके समीप जाता है ॥ ५४–५६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'हरिवंशका वर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

महाभारतकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं श्रीकृष्णकी महिमाको लक्षित करानेवाला महाभारतका उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसमें श्रीहरिने पाण्डवोंको निमित्त बनाकर इस पृथ्वीका भार उतारा था। भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्माजीसे अत्रि, अत्रिसे चन्द्रमा, चन्द्रमासे बुध और बुधसे इलानन्दन पुरूरवाका जन्म हुआ। पुरूरवासे आयु, आयुसे राजा नहुष और नहुषसे ययाति उत्पन्न हुए। ययातिसे पूरु हुए। पूरुके वंशमें भरत और भरतके कुलमें राजा कुरु हुए। कुरुके वंशमें शान्तनुका जन्म हुआ। शान्तनुसे गङ्गानन्दन भीष्म उत्पन्न हुए। उनके दो छोटे भाई और थे—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। ये शान्तनुसे सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। शान्तनुके स्वर्गलोक चले जानेपर भीष्मने अविवाहित रहकर अपने भाई विचित्रवीर्यके राज्यका पालन किया। चित्राङ्गद बाल्यावस्थामें ही चित्राङ्गद नामवाले गन्धर्वके द्वारा मारे गये। फिर भीष्म संग्राममें विपक्षीको परास्त करके काशिराजकी दो कन्याओं—अम्बिका और अम्बालिकाको हर लाये। वे दोनों विचित्रवीर्यकी भार्याएँ हुईं। कुछ कालके बाद राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मासे ग्रस्त हो स्वर्गवासी हो गये। तब सत्यवतीकी अनुमतिसे व्यासजीके द्वारा अम्बिकाके गर्भसे राजा धृतराष्ट्र और अम्बालिकाके गर्भसे पाण्डु उत्पन्न हुए। धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्रोंको जन्म दिया, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था ॥ १–८ ॥

राजा पाण्डु वनमें रहते थे। वे एक ऋषिके शापवश शतशृङ्ग मुनिके आश्रमके पास स्त्री-समागमके कारण मृत्युको प्राप्त हुए। [पाण्डु शापके ही कारण स्त्री-सम्भोगसे दूर रहते थे,] इसलिये उनकी आज्ञाके अनुसार कुन्तीके गर्भसे धर्मके अंशसे युधिष्ठिरका जन्म हुआ। वायुसे भीम और इन्द्रसे अर्जुन उत्पन्न हुए। पाण्डुकी दूसरी पत्नी माद्रीके गर्भसे अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल-सहदेवका जन्म हुआ। [शापवश] एक दिन माद्रीके साथ सम्भोग होनेसे पाण्डुकी मृत्यु हो गयी और माद्री भी उनके साथ सती हो गयी। जब कुन्तीका विवाह नहीं हुआ था, उसी समय [सूर्यके अंशसे] उनके गर्भसे कर्णका जन्म हुआ था। वह दुर्योधनके आश्रयमें रहता था। दैवयोगसे कौरवों और पाण्डवोंमें वैरकी आग प्रज्वलित हो उठी। दुर्योधन बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। उसने लाक्षाके बने हुए घरमें पाण्डवोंको रखकर आग लगाकर उन्हें जलानेका प्रयत्न किया; किंतु पाँचों पाण्डव अपनी माताके साथ उस जलते हुए घरसे बाहर निकल गये।

* श्रीकृष्ण उवाच—
त्वया यस्माद् दत्तं बाणस्याभयमेव तत्। आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नरकमाप्नुयात्॥ (अग्नि० १२। ५२)
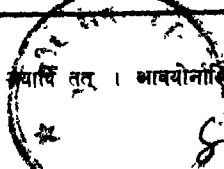
वहाँसे एकचक्रा नगरीमें जाकर वे मुनिके वेषमें एक ब्राह्मणके घरमें निवास करने लगे। फिर बक नामक राक्षसका वध करके वे पाञ्चाल-राज्यमें, जहाँ द्रौपदीका स्वयंवर होनेवाला था, गये। वहाँ अर्जुनके बाहुबलसे मत्स्यभेद होनेपर पाँचों पाण्डवोंने द्रौपदीको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। तत्पश्चात् दुर्योधन आदिको उनके जीवित होनेका पता चलनेपर उन्होंने कौरवोंसे अपना आधा राज्य भी प्राप्त कर लिया। अर्जुनने अग्निदेवसे दिव्य गाण्डीव धनुष और उत्तम रथ प्राप्त किया था। उन्हें युद्धमें भगवान् कृष्ण-जैसे सारथि मिले थे तथा उन्होंने आचार्य द्रोणसे ब्रह्मास्त्र आदि दिव्य आयुध और कभी नष्ट न होनेवाले बाण प्राप्त किये थे। सभी पाण्डव सब प्रकारकी विद्याओंमें प्रवीण थे ॥ ९ - १६ ॥

पाण्डुकुमार अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ खाण्डव वनमें इन्द्रके द्वारा की हुई वृष्टिका अपने बाणोंकी [छत्राकार] बाँधसे निवारण करते हुए अग्निको तृप्त किया था। पाण्डवोंने सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पायी। युधिष्ठिर राज्य करने लगे। उन्होंने प्रचुर सुवर्णराशिसे परिपूर्ण राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया। उनका यह वैभव दुर्योधनके लिये असह्य हो उठा। उसने अपने भाई दुःशासन और वैभवप्राप्त सुहृद् कर्णके कहनेसे शकुनिको साथ ले, द्यूतसभामें जूएमें प्रवृत्त होकर, युधिष्ठिर और उनके राज्यको कपट द्यूतके द्वारा हँसते-हँसते जीत लिया। जूएमें परास्त होकर युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार बारह वर्ष व्यतीत किये। वे वनमें भी पहलेहीकी भाँति प्रतिदिन बहुसंख्यक ब्राह्मणोंको भोजन कराते थे। [एक दिन उन्होंने] अठासी हजार द्विजोंसहित दुर्वासाको [श्रीकृष्ण-कृपासे] परितृप्त किया। वहाँ उनके साथ उनकी पत्नी द्रौपदी तथा पुरोहित धौम्यजी भी थे। बारहवाँ वर्ष बीतनेपर वे विराट-नगरमें गये। वहाँ युधिष्ठिर सबसे अपरिचित रहकर 'कङ्क' नामक ब्राह्मणके रूपमें रहने लगे। भीमसेन रसोइया बने थे। अर्जुनने अपना नाम 'बृहन्नला' रक्खा था। पाण्डव-पत्नी द्रौपदी रनिवासमें सैरन्ध्रीके रूपमें रहने लगी। इसी प्रकार नकुल-सहदेवने भी अपने नाम बदल लिये थे। भीमसेनने रात्रिकालमें द्रौपदीका सतीत्व-हरण करनेकी इच्छा रखनेवाले कीचकको मार डाला। तत्पश्चात् कौरव विराटकी गौओंको हरकर ले जाने लगे, तब उन्हें अर्जुनने परास्त किया। उस समय कौरवोंने पाण्डवोंको पहचान लिया। श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राने अर्जुनसे अभिमन्यु नामक पुत्रको उत्पन्न किया था। उसे राजा विराटने अपनी कन्या उत्तरा ब्याह दी ॥ १७—२५ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेनाके स्वामी होकर कौरवोंके साथ युद्ध करनेको तैयार हुए। पहले भगवान् श्रीकृष्ण परम क्रोधी दुर्योधनके पास दूत बनकर गये। उन्होंने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा दुर्योधनसे कहा—'राजन्! तुम युधिष्ठिरको आधा राज्य दे दो या उन्हें पाँच ही गाँव अर्पित कर दो; नहीं तो उनके साथ युद्ध करो।' श्रीकृष्णकी बात सुनकर दुर्योधनने कहा—'मैं उन्हें सुईकी नोकके बराबर भूमि भी नहीं दूँगा; हाँ, उनसे युद्ध अवश्य करूँगा।' ऐसा कहकर वह भगवान् श्रीकृष्णको बंदी बनानेके लिये उद्यत हो गया। उस समय राजसभामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने परम दुर्धर्ष विश्वरूपका दर्शन कराकर दुर्योधनको भयभीत कर दिया। फिर विदुरने अपने घर ले जाकर भगवानका पूजन और सत्कार किया। तदनन्तर वे युधिष्ठिरके पास लौट गये और बोले—'महाराज! आप दुर्योधनके साथ युद्ध कीजिये' ॥ २६—२९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आदिपर्वसे आरम्भ करके [उद्योगपर्व-पर्यन्त] महाभारत-कथाका संक्षिप्त वर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

कौरव और पाण्डवोंका युद्ध तथा उसका परिणाम

अग्निदेव कहते हैं—युधिष्ठिर और दुर्योधनकी सेनाएँ कुरुक्षेत्रके मैदानमें जा डटीं। अपने विपक्षमें पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण आदि गुरुजनोंको देखकर अर्जुन युद्धसे विरत हो गये, तब भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—"पार्थ! भीष्म आदि गुरुजन शोकके योग्य नहीं हैं। मनुष्यका शरीर विनाशशील है; किंतु आत्माका कभी नाश नहीं होता। यह आत्मा ही परब्रह्म है। 'मैं ब्रह्म हूँ'—इस प्रकार तुम उस आत्माको समझो। कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें समान-भावसे रहकर कर्मयोगका आश्रय ले क्षात्रधर्मका पालन करो।" श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुन रथारूढ़ हो युद्धमें

प्रवृत्त हुए। उन्होंने शङ्खध्वनि की। दुर्योधनकी सेनामें सबसे पहले पितामह भीष्म सेनापति हुए। पाण्डवोंके सेनापति शिखण्डी थे। इन दोनोंमें भारी युद्ध छिड़ गया। भीष्म-सहित कौरवपक्षके योद्धा उस युद्धमें पाण्डव-पक्षके सैनिकोंपर प्रहार करने लगे और शिखण्डी आदि पाण्डव-पक्षके वीर कौरव-सैनिकोंको अपने बाणोंका निशाना बनाने लगे। कौरव और पाण्डव-सेनाका वह युद्ध, देवासुर-संग्रामके समान जान पड़ता था। आकाशमें खड़े होकर देखनेवाले देवताओंको वह युद्ध बड़ा आनन्ददायक प्रतीत हो रहा था। भीष्मने दस दिनोंतक युद्ध करके पाण्डवोंकी अधिकांश सेनाको अपने बाणोंसे मार गिराया ॥ १–७ ॥

दसवें दिन अर्जुनने वीरवर भीष्मपर बाणोंकी बड़ी भारी वृष्टि की। इधर द्रुपदकी प्रेरणासे शिखण्डीने भी पानी बरसानेवाले मेघकी भाँति भीष्मपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। दोनों ओरके हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल एक दूसरेके बाणोंसे मारे गये। भीष्मकी मृत्यु उनकी इच्छाके अधीन थी। उन्होंने युद्धका मार्ग दिखाकर वसु-देवताके कहनेपर वसुलोकमें जानेकी तैयारी की और बाण-शय्यापर सो रहे। वे उत्तरायणकी प्रतीक्षामें भगवान् विष्णु-का ध्यान और स्तवन करते हुए समय व्यतीत करने लगे। भीष्मके बाण-शय्यापर गिर जानेके बाद जब दुर्योधन शोकसे व्याकुल हो उठा, तब आचार्य द्रोणने सेनापतित्वका भार ग्रहण किया। उधर हर्ष मनाती हुई पाण्डवोंकी सेनामें धृष्टद्युम्न सेनापति हुए। उन दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, जो यमलोककी आबादीको बढ़ानेवाला था। विराट और द्रुपद आदि राजा द्रोणरूपी समुद्रमें डूब गये। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त दुर्योधनकी विशाल वाहिनी धृष्टद्युम्नके हाथसे मारी जाने लगी। उस समय द्रोण कालके समान जान पड़ते थे। इतनेहीमें उनके कानोंमें यह आवाज आयी कि 'अश्वत्थामा मारा गया'। इतना सुनते ही आचार्य द्रोणने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये। ऐसे समयमें धृष्टद्युम्नके बाणोंसे आहत होकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८–१४ ॥

द्रोण बड़े ही दुर्धर्ष थे। वे सम्पूर्ण क्षत्रियोंका विनाश करके पाँचवें दिन मारे गये। दुर्योधन पुनः शोकसे आतुर हो उठा। उस समय कर्ण उसकी सेनाका कर्णधार हुआ। पाण्डव-सेनाका आधिपत्य अर्जुनको मिला। कर्ण और अर्जुनमें भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्रोंकी मारकाटसे युक्त महा-भयानक युद्ध हुआ, जो देवासुर-संग्रामको भी मात करनेवाला था। कर्ण और अर्जुनके संग्राममें कर्णने अपने बाणोंसे शत्रु-पक्षके बहुत-से वीरोंका संहार कर डाला; किंतु दूसरे दिन अर्जुनने उसे मार गिराया ॥ १५–१७ ॥

तदनन्तर राजा शल्य कौरव-सेनाके सेनापति हुए; किंतु वे युद्धमें आधे दिनतक ही टिक सके। दोपहर होते-होते राजा युधिष्ठिरने उन्हें मार गिराया। दुर्योधनकी प्रायः सारी सेना युद्धमें मारी गयी थी। अन्ततोगत्वा उसका भीमसेनके साथ युद्ध हुआ। उसने पाण्डव-पक्षके पैदल आदि बहुत-से सैनिकोंका वध करके भीमसेनपर धावा किया। उस समय गदासे प्रहार करते हुए दुर्योधनको भीमसेनने मौतके घाट उतार दिया। दुर्योधनके अन्य छोटे भाई भी भीमसेनके ही हाथसे मारे गये थे। महाभारत-संग्रामके उस अठारहवें दिन रात्रिकालमें महाबली अश्वत्थामाने पाण्डवोंकी सोयी हुई एक अक्षौहिणी सेनाको सदाके लिये सुला दिया। उसने द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, उसके पाञ्चालदेशीय बन्धुओं तथा धृष्टद्युम्नको भी जीवित नहीं छोड़ा। द्रौपदी पुत्रहीन होकर रोने-बिलखने लगी। तब अर्जुनने सींकके अस्त्रसे अश्वत्थामाको परास्त करके उसके मस्तककी मणि निकाल ली। [उसे मारा जाता देख द्रौपदीने ही अनुनय-विनय करके उसके प्राण बचाये।] ॥ १८–२२ ॥

इतनेपर भी दुष्ट अश्वत्थामाने उत्तराके गर्भको नष्ट करनेके लिये उसपर अस्त्रका प्रयोग किया। वह गर्भ उसके अस्त्रसे प्रायः दग्ध हो गया था; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसको पुनः जीवन दान दिया। उत्तराका वही गर्भस्थ शिशु आगे चलकर राजा परीक्षितके नामसे विख्यात हुआ। कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा—ये तीन कौरवपक्षीय वीर उस संग्राममें जीवित बचे। दूसरी ओर पाँच पाण्डव, सात्यकि तथा भगवान् श्रीकृष्ण—ये सात ही जीवित रह सके; दूसरे कोई नहीं बचे। उस समय सब ओर अनाथा स्त्रियोंका आर्तनाद व्याप्त हो रहा था। भीमसेन आदि भाइयोंके साथ जाकर युधिष्ठिरने उन्हें सान्त्वना दी तथा रणभूमिमें मारे गये सभी वीरोंका दाह-संस्कार करके उनके लिये जलाञ्जलि दे धन आदिका दान किया। तत्पश्चात् कुरुक्षेत्रमें शरशय्यापर आसीन शान्तनुनन्दन भीष्मके पास जाकर युधिष्ठिरने उनसे समस्त शान्तिदायक धर्म, राजधर्म (आपद्धर्म), मोक्षधर्म तथा दानधर्मकी बातें सुनीं। फिर वे राजसिंहासनपर आसीन हुए। इसके बाद उन शत्रुमर्दन

राजाने अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें ब्राह्मणोंको बहुत धन दान किया। तदनन्तर द्वारकासे लौटे हुए अर्जुनके मुखसे मूसल-काण्डके कारण प्राप्त हुए शापसे पारस्परिक युद्धद्वारा यादवोंके संहारका समाचार सुनकर युधिष्ठिरने परीक्षितको राजासनपर बिठाया और स्वयं भाइयोंके साथ महाप्रस्थान कर स्वर्गलोकको चले गये ॥ २३-२७ ॥*

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भीष्मपर्वसे लेकर अन्ततकका महाभारत-कथाका संक्षेपमें वर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

यदुकुलका संहार और पाण्डवोंका स्वर्गगमन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! जब युधिष्ठिर राजसिंहासन पर विराजमान हो गये, तब धृतराष्ट्र गृहस्थ आश्रमसे वानप्रस्थ आश्रममें प्रविष्ट हो वनमें चले गये। [अथवा ऋषियोंके एक आश्रमसे दूसरे आश्रमोंमें होते हुए वे वनको गये।] उनके साथ देवी गान्धारी और पृथा (कुन्ती) भी थीं। विदुरजी दावानलसे दग्ध हो स्वर्ग सिधारे। इस प्रकार भगवान् विष्णुने पृथ्वीका भार उतारा और धर्मकी स्थापना तथा अधर्मका नाश करनेके लिये पाण्डवोंको निमित्त बनाकर दानव-दैत्य आदिका संहार किया। तत्पश्चात् भूमिका भार बढ़ानेवाले यादवकुलका भी ब्राह्मणोंके शापके बहाने मूसलके द्वारा संहार कर डाला। अनिरुद्धके पुत्र वज्रको राजाके पदपर अभिषिक्त किया। तदनन्तर देवताओंके अनुरोधसे प्रभासक्षेत्रमें श्रीहरि स्वयं ही स्थूल शरीरकी लीलाका संवरण करके अपने धामको पधारे ॥ १-४ ॥

वे इन्द्रलोक और ब्रह्मलोकमें स्वर्गवासी देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। बलभद्रजी शेषनागके स्वरूप थे; अतः उन्होंने पातालरूपी स्वर्गका आश्रय लिया। अविनाशी भगवान् श्रीहरि ध्यानी पुरुषोंके ध्येय हैं। उनके अन्तर्धान हो जानेपर समुद्रने उनके निजी निवासस्थानको छोड़कर शेष द्वारकापुरीको अपने जलमें डुबा दिया। अर्जुनने मरे हुए यादवोंका दाह-संस्कार करके उनके लिये जलाञ्जलि दी और धन आदिका दान किया। फिर भगवान् श्रीकृष्णकी रानियोंको, जो पहले अप्सराएँ थीं और अष्टावक्रके शापसे मानवीरूपमें प्रकट हुई थीं, लेकर हस्तिनापुरको चले। मार्गमें डंडे लिये हुए ग्वालोंने अर्जुनका तिरस्कार करके उन सबको छीन लिया। यह भी अष्टावक्रके शापसे ही सम्भव हुआ था। इससे अर्जुनके मनमें बड़ा शोक हुआ। फिर महर्षि व्यासके सान्त्वना देनेपर उन्हें यह निश्चय हुआ कि 'भगवान् श्रीकृष्णके समीप रहनेसे ही मुझमें बल था।' हस्तिनापुरमें आकर उन्होंने भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरसे, जो उस समय प्रजावर्गका पालन करते थे, यह सब समाचार निवेदन किया। वे बोले—'भैया! वही धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ है और वे ही घोड़े हैं; किंतु भगवान् श्रीकृष्णके बिना सब कुछ उसी प्रकार नष्ट हो गया, जैसे अश्रोत्रियको दिया हुआ दान।' यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने राज्यपर परीक्षित्को स्थापित कर दिया ॥ ५-११ ॥

इसके बाद बुद्धिमान् राजा संसारकी अनित्यताका विचार करके द्रौपदी तथा भाइयोंको साथ ले महाप्रस्थानके पथपर अग्रसर हुए। मार्गमें वे श्रीहरिके अष्टोत्तरशत नामोंका जप करते हुए यात्रा करते थे। उस महापथमें क्रमशः द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीमसेन एक-एक करके गिर पड़े। इससे राजा शोकमग्न हो गये। तदनन्तर वे इन्द्रके द्वारा लाये हुए रथपर आरूढ हो [दिव्यरूप-धारी] भाइयोंसहित स्वर्गको चले गये। वहाँ उन्होंने दुर्योधन आदि सभी धृतराष्ट्रपुत्रोंको देखा। तदनन्तर [उनपर कृपा करनेके लिये अपने धामसे पधारे हुए] भगवान् वासुदेवका भी दर्शन किया। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। यह मैंने तुम्हें महाभारतका प्रसङ्ग सुनाया है। जो इसका पाठ करेगा, वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होगा ॥ १२-१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आश्रमवासिक पर्वसे लेकर स्वर्गारोहण-पर्यन्त महाभारत-कथाका संक्षिप्त वर्णन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

* यद्यपि इस अध्यायके अन्ततक महाभारतकी पूरी कथा समाप्त हुई-सी जान पड़ती है, तथापि आश्रमवासिक पर्वसे लेकर स्वर्गारोहण पर्वतकका वृत्तान्त कुछ विस्तारसे कहना शेष रह गया है; इसलिये अगले (पंद्रहवें) अध्यायमें उसे पूरा किया गया है।

सोलहवाँ अध्याय

बुद्ध और कल्कि अवतारोंकी कथा

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं बुद्धावतारका वर्णन करूँगा, जो पढ़ने और सुननेवालोंके मनोरथको सिद्ध करनेवाला है। पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंमें घोर संग्राम हुआ। उसमें दैत्योंने देवताओंको परास्त कर दिया। तब देवतालोग 'त्राहि त्राहि' पुकारते हुए भगवानकी शरणमें गये। भगवान् मायामोहमय रूपमें आकर राजा शुद्धोदनके पुत्र हुए। उन्होंने दैत्योंको मोहित किया और उनसे वैदिक धर्मका परित्याग करा दिया। वे बुद्धके अनुयायी दैत्य 'बौद्ध' कहलाये। फिर उन्होंने दूसरे लोगोंसे वेद-धर्मका त्याग करवाया। इसके बाद माया-मोह ही 'आर्हत' रूपसे प्रकट हुआ। उसने दूसरे लोगोंको भी 'आर्हत' बनाया। इस प्रकार उनके अनुयायी वेद-धर्मसे वञ्चित होकर पाखण्डी बन गये। उन्होंने नरकमें ले जानेवाले कर्म करना आरम्भ कर दिया। वे सब-के-सब कलियुगके अन्तमें वर्णसंकर होंगे और नीच पुरुषोंसे दान लेंगे। इतना ही नहीं, वे लोग डाकू और दुराचारी भी होंगे। वाजसनेय (बृहदारण्यक) मात्र ही 'वेद' कहलायेगा। वेदकी दस-पाँच शाखाएँ ही प्रमाणभूत मानी जायँगी। धर्मका चोला पहने हुए सब लोग अधर्ममें ही रुचि रखनेवाले होंगे। राजारूपधारी म्लेच्छ मनुष्योंका ही भक्षण करेंगे॥ १—७॥

तदनन्तर भगवान् कल्कि प्रकट होंगे। वे श्रीविष्णुयशाके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हो याज्ञवल्क्यको अपना पुरोहित बनायेंगे। उन्हें अस्त्र-शस्त्र-विद्याका पूर्ण परिज्ञान होगा। वे हाथमें अस्त्र-शस्त्र लेकर म्लेच्छोंका संहार कर डालेंगे तथा चारों वर्णों और समस्त आश्रमोंमें शास्त्रीय मर्यादा स्थापित करेंगे। समस्त प्रजाको धर्मके उत्तम मार्गमें लगायेंगे। उसके बाद श्रीहरि कल्किरूपका परित्याग करके अपने धाममें चले जायँगे। फिर तो पूर्ववत् सत्ययुगका साम्राज्य होगा। साधुश्रेष्ठ! सभी वर्ण और आश्रमके लोग अपने-अपने धर्ममें दृढ़तापूर्वक लग जायँगे। इस प्रकार सम्पूर्ण कल्पों तथा मन्वन्तरोंमें श्रीहरिके अवतार होते हैं। उनमेंसे कुछ हो चुके हैं, कुछ आगे होनेवाले हैं; उन सबकी कोई नियत संख्या नहीं है। जो मनुष्य श्रीविष्णुके अंशावतार तथा पूर्णावतारसहित दस अवतारोंके चरित्रोंका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा निर्मल-हृदय होकर परिवारसहित स्वर्गको जाता है। इस प्रकार अवतार लेकर श्रीहरि धर्मकी व्यवस्था और अधर्मका निराकरण करते हैं। वे ही जगत्की सृष्टि आदिके कारण हैं॥ ८—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'बुद्ध तथा कल्कि—इन दो अवतारोंका वर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

जगत्की सृष्टिका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं जगत्की सृष्टि आदिका, जो श्रीहरिकी लीलामात्र है, वर्णन करूँगा; सुनो। श्रीहरि ही स्वर्ग आदिके रचयिता हैं। सृष्टि और प्रलय आदि उन्हींके स्वरूप हैं। सृष्टिके आदिकारण भी वे ही हैं। वे ही निर्गुण हैं और वे ही सगुण हैं। सबसे पहले सत्स्वरूप अव्यक्त ब्रह्म ही था; उस समय न तो आकाश था और न रात दिन आदिका ही विभाग था। तदनन्तर सृष्टिकालमें परमपुरुष श्रीविष्णुने प्रकृतिमें प्रवेश करके उसे क्षुब्ध (विकृत) कर दिया। फिर प्रकृतिसे महत्तत्त्व और उससे अहंकार प्रकट हुआ। अहंकार तीन प्रकारका है—वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप तामस। तामस अहंकारसे शब्द-तन्मात्रावाला आकाश उत्पन्न हुआ। आकाशसे स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुका प्रादुर्भाव हुआ। वायुसे रूप-तन्मात्रा-वाला अग्नितत्त्व प्रकट हुआ। अग्निसे रस-तन्मात्रावाले जलकी उत्पत्ति हुई और जलसे गन्ध-तन्मात्रावाली भूमिका प्रादुर्भाव हुआ। यह सब तामस अहंकारसे होनेवाली सृष्टि है। इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे प्रकट हुई हैं।

दस इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवीं इन्द्रिय मन- (के भी अधिष्ठाता देवता)—ये वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकारकी सृष्टि हैं । तत्पश्चात् नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छावाले भगवान् स्वयम्भूने सबसे पहले जलकी ही सृष्टि की और उसमें अपनी शक्ति (वीर्य) का आधान किया । जलको 'नार' कहा गया है; क्योंकि वह नरसे उत्पन्न हुआ है । 'नार' (जल) ही पूर्वकालमें भगवान्का 'अयन' (निवास-स्थान) था; इसलिये भगवान्को 'नारायण' कहा गया है ॥ १—७½ ॥

स्वयम्भू श्रीहरिने जो वीर्य स्थापित किया था, वह जलमें सुवर्णमय अण्डके रूपमें प्रकट हुआ । उसमें साक्षात् स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी प्रकट हुए, ऐसा हमने सुना है । भगवान् हिरण्यगर्भने एक वर्षतक उस अण्डके भीतर निवास करके उसके दो भाग किये । एकका नाम 'द्युलोक' हुआ और दूसरेका 'भूलोक' । उन दोनों अण्ड-खण्डोंके बीचमें उन्होंने आकाशकी सृष्टि की । जलके ऊपर तैरती हुई पृथ्वीको रक्खा और दसों दिशाओंके विभाग किये । फिर सृष्टिकी इच्छावाले प्रजापतिने वहाँ काल, मन, वाणी, काम, क्रोध तथा रति आदिकी तत्तद्रूपसे सृष्टि की । उन्होंने आदिमें विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्रधनुष, पक्षियों तथा पर्जन्यका निर्माण किया । तत्पश्चात् यज्ञकी सिद्धिके लिये मुखसे ऋक्, यजु और सामवेदको प्रकट किया । उनके द्वारा साध्यगणोंने देवताओंका यजन किया । फिर ब्रह्माजीने अपनी भुजासे ऊँचे-नीचे (या छोटे-बड़े) भूतोंको उत्पन्न किया, सनत्कुमारकी उत्पत्ति की तथा क्रोधसे प्रकट होनेवाले रुद्रको जन्म दिया । मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ इन सात ब्रह्मपुत्रोंको ब्रह्माजीने निश्चय ही अपने मनसे प्रकट किया । साधुश्रेष्ठ ! ये तथा रुद्रगण प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं । ब्रह्माजीने अपने शरीरके दो भाग किये । आधे भागसे वे पुरुष हुए और आधेसे स्त्री बन गये; फिर उस नारीके गर्भसे उन्होंने प्रजाओंकी सृष्टि की । (ये ही स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपाके नामसे प्रसिद्ध हुए । इनसे ही मानवीय सृष्टि हुई ।) ॥ ८—१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जगत्की सृष्टिका वर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! स्वायम्भुव मनुसे उनकी तपस्विनी भार्या शतरूपाने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की । वह कमनीया कन्या (देवहूति) कर्दम ऋषिकी भार्या हुई । राजा प्रियव्रतसे सम्राट् कुक्षि और विराट नामक सामर्थ्यशाली पुत्र उत्पन्न हुए । उत्तानपादसे सुरुचिके गर्भसे उत्तमनामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुनीतिके गर्भसे ध्रुवका जन्म हुआ । हे मुने ! कुमार ध्रुवने सुन्दर कीर्ति बढ़ानेके लिये तीन[1] हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया । उसपर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने उसे सप्तर्षियोंके आगे स्थिर स्थान (ध्रुवपद) दिया । ध्रुवके इस अभ्युदयको देखकर शुक्राचार्यने उनके सुयशका सूचक यह श्लोक पढ़ा 'अहो ! इस ध्रुवकी तपस्याका कितना प्रभाव है, इसका शास्त्र-ज्ञान कितना अद्भुत है, जिसे आज सप्तर्षि भी आगे करके स्थित हैं ।' उस ध्रुवसे उनकी पत्नी शम्भुने श्लिष्टि और भव्य नामक पुत्र उत्पन्न किये । श्लिष्टिसे उसकी पत्नी सुच्छायाने क्रमशः रिपु, रिपुंजय, पुण्य, वृकल और वृकतेजा - इन पाँच निष्पाप पुत्रोंको अपने गर्भमें धारण किया । रिपुके वीर्यसे बृहतीने चाक्षुष और सर्वतेजाको अपने गर्भमें स्थान दिया ॥ १ - ७ ॥

चाक्षुषसे वीरण प्रजापतिकी कन्या पुष्करिणीके गर्भसे मनुको जन्म दिया । मनुसे नड्वलाके गर्भसे दस उत्तम पुत्र उत्पन्न हुए । [उनके नाम ये हैं -] ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न और अभिमन्यु । ऊरुके अंशसे आग्नेयीने अङ्ग, सुमना, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरा और गय नामक महान् तेजस्वी छः पुत्र उत्पन्न किये । अङ्गसे सुनीथाने एक ही संतान वेनको जन्म दिया । वह प्रजाओंकी रक्षा न करके सदा पापमें ही लगा रहता था । उसे मुनियोंने कुशोंसे मार डाला । तदनन्तर

[1] १—श्रीमद्भागवतके वर्णनानुसार ध्रुव केवल छः मास तपस्या करके सिद्धिके भागी हुए थे । इस अग्निपुराणमें तपस्याकाल बहुत अधिक कहा गया है । कल्पभेदसे दोनों ही वर्णन संगत हो सकते हैं ।

ऋषियोंने संतानके लिये वेनके दायें हाथका मन्थन किया। हाथका मन्थन होनेपर राजा पृथु प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनियोंने कहा—'ये महान् तेजस्वी राजा अवश्य ही समस्त प्रजाको आनन्दित करेंगे तथा महान् यश प्राप्त करेंगे।' क्षत्रियवंशके पूर्वज वेन-कुमार राजा पृथु अपने तेजसे सबको दग्ध करते हुए-से धनुष और कवच धारण किये हुए ही प्रकट हुए थे; वे सम्पूर्ण प्रजाकी रक्षा करने लगे ॥८—१४॥

राजसूय-यज्ञमें दीक्षित होनेवाले नरेशोंमें वे सबसे पहले भूपाल थे। उनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। स्तुतिकर्ममें निपुण अद्भुतकर्मा सूत और मागधोंने उनका स्तवन किया। वे प्रजाओंका रञ्जन करनेके कारण 'राजा' नामसे विख्यात हुए। उन्होंने प्रजाओंकी जीवन-रक्षाके निमित्त अन्नकी उपज बढ़ानेके लिये गोरूपधारिणी पृथ्वीका दोहन किया। उस समय एक साथ ही देवता, मुनिवृन्द, गन्धर्व, अप्सरागण, पितर, दानव, सर्प, लता, पर्वत और मनुष्यों आदिके द्वारा अपने-अपने विभिन्न पात्रोंमें दुही जानेवाली पृथिवीने सबको इच्छानुसार दूध दिया, जिससे सबने प्राण धारण किये। पृथुके जो दो धर्मज्ञ पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे अन्तर्धि और पालित। अन्तर्धान (अन्तर्धि) के अंशसे उनकी शिखण्डिनी नामवाली पत्नीने 'हविर्धान'को जन्म दिया। अग्निकुमारी धिषणाने हविर्धानके अंशसे छः पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम ये हैं—प्राचीनबर्हिष्, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन। राजा प्राचीनबर्हिष् प्रायः यज्ञमें ही लगे रहते थे, जिससे उस समय पृथिवीपर दूर-दूरतक पूर्वाग्र कुश फैल गये थे। इससे वे ऐश्वर्यशाली राजा 'प्राचीनबर्हिष्' नामसे विख्यात हुए। वे एक महान् प्रजापति थे ॥ १५—२१ ॥

प्राचीनबर्हिष्से उनकी पत्नी समुद्र-कन्या सवर्णाने दस पुत्रोंको अपने गर्भमें धारण किया। वे सभी 'प्रचेता'नामसे प्रसिद्ध हुए और सब-के-सब धनुर्वेदमें पारगत थे। वे एक समान धर्मका आचरण करते हुए समुद्रके जलमें रहकर दस हजार वर्षोंतक महान् तपमें लगे रहे। अन्तमें भगवान् विष्णुसे प्रजापति होनेका वरदान पाकर वे सन्तुष्ट हो जलसे बाहर निकले। उस समय प्रायः समस्त भूमण्डल और आकाश बड़े-बड़े सघन वृक्षोंसे व्याप्त हो गया था। यह देख उन्होंने अपने मुखसे प्रकट अग्नि और वायुके द्वारा सब वृक्षोंको जला दिया। तब वृक्षोंका यह संहार देख राजा सोम इन प्रचेताओंके पास जाकर बोले—

"आपलोग अपना कोप शान्त करें; ये वृक्षगण आपको एक 'मारिषा' नामवाली सुन्दरी कन्या अर्पण करेंगे। यह कन्या तपस्वी मुनि कण्डुके अंशसे प्रम्लोचा अप्सराके गर्भसे [स्वेद-बिन्दुके रूपमें] प्रकट हुई है। मैंने ही भविष्यकी बातें जानकर इसे कन्यारूपमें उत्पन्न कर पाल-पोसा है। इसके गर्भसे दक्ष उत्पन्न होंगे, जो प्रजाकी वृद्धि करेंगे" ॥ २२—२७ ॥

प्रचेताओंने उस कन्याको ग्रहण किया। तत्पश्चात् उसके गर्भसे दक्ष उत्पन्न हुए। दक्षने चर, अचर, द्विपद और चतुष्पद आदि प्राणियोंकी मानसिक सृष्टि करके अन्तमें बहुत-सी स्त्रियोंको उत्पन्न किया। उनमेंसे दसको तो उन्होंने धर्मराजके अर्पण किया और तेरह कन्याएँ कश्यपको दीं। सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको और दो कन्याएँ अङ्गिराको दीं। पूर्वकालमें मानसिक सङ्कल्पसे सृष्टि होती थी। उसके बाद उन दक्ष-कन्याओंसे मैथुनद्वारा देवता और नाग आदि प्रकट हुए। अब मैं धर्मराजसे उनकी दस पत्नियोंके गर्भसे जो संतानें हुईं, उस धर्मसर्गका वर्णन करूँगा। विश्वा नामवाली पत्नीसे विश्वेदेव प्रकट हुए। साध्याने साध्योंको जन्म दिया। मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसुगण प्रकट हुए। भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्त नामक पुत्र उत्पन्न हुए। धर्मराजके द्वारा लम्बासे घोष नामक पुत्र हुआ और यामि नामक पत्नीसे नागवीथी नामवाली कन्या उत्पन्न हुई। पृथिवीका सम्पूर्ण विषय भी मरुत्वतीसे ही प्रकट हुआ। सङ्कल्पाके गर्भसे सङ्कल्पोंकी सृष्टि हुई। चन्द्रमासे उनकी नक्षत्ररूपिणी पत्नियोंके गर्भसे आठ पुत्र हुए ॥ २८—३४ ॥

उनके नाम ये हैं—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। आपके वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनि नामक पुत्र हुए। ध्रुवका पुत्र लोकान्तकारी काल हुआ और सोमका पुत्र वर्चा हुआ। धरकी पत्नी मनोहराके गर्भसे द्रविण, हुतहव्यवह, शिशिर, प्राण और रमण उत्पन्न हुए। अनिलका पुत्र पुरोजव और अनल (अग्नि-) का अविज्ञात था। अग्निका पुत्र कुमार हुआ, जो सरकंडोंकी ढेरीपर उत्पन्न हुआ। उसके पीछे शाख, विशाख और नैगमेय नामक पुत्र हुए। कुमार कृत्तिकाके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण 'कार्त्तिकेय' कहलाये तथा

कृत्तिकाके दूसरे पुत्र सनत्कुमार नामक यति हुए। प्रत्यूषसे देवलका जन्म हुआ और प्रभाससे विश्वकर्माका। ये विश्वकर्मा देवताओंके बढ़ई थे और हजारों प्रकारकी शिल्पकारीका काम करते थे। उनके ही निर्माण किये हुए शिल्प और भूषण आदिके सहारे आज भी मनुष्य अपनी जीविका चलाते हैं। सुरभीने कश्यपजीके अंशसे ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया तथा हे साधुश्रेष्ठ ! सतीने अपनी तपस्या एवं महादेवजीके अनुग्रहसे सम्भावित होकर चार पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं - अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और रुद्र। त्वष्टाके पुत्र महायशस्वी श्रीमान् विश्वरूप हुए। हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली—ये ग्यारह रुद्र प्रधान हैं। यों तो सैकड़ों-लाखों रुद्र हैं, जिनसे यह चराचर जगत् व्याप्त है ॥ ३५—४५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वैवस्वत मनुके वंशका वर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

कश्यप आदिके वंशका वर्णन

अग्निदेव बोले—हे मुने ! अब मैं अदिति आदि दक्ष-कन्याओंसे उत्पन्न हुई कश्यपजीकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ - चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामक बारह देवता थे, वे ही पुनः इस वैवस्वत मन्वन्तरमें कश्यपके अंशसे अदिति के गर्भमें आये थे। वे विष्णु, शक्र (इन्द्र), त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग और अंशु नामक बारह आदित्य * हुए। अरिष्टनेमिकी चार पत्नियोंसे सोलह संतानें उत्पन्न हुईं। विद्वान् बहुपुत्रके [उनकी दो पत्नियोंसे कपिला, लोहिता आदिके भेदसे] चार प्रकारकी विद्युत्स्वरूपा कन्याएँ उत्पन्न हुईं। अङ्गिरा मुनिसे (उनकी दो पत्नियोंद्वारा) श्रेष्ठ ऋचाएँ हुईं तथा कृशाश्वके भी [उनकी दो पत्नियोंसे] देवताओंके दिव्य आयुध† उत्पन्न हुए ॥ १—४ ॥

जैसे आकाशमें सूर्यके उदय और अस्तभाव बारबार होते रहते हैं, उसी प्रकार देवतालोग युग युगमें (कल्प-कल्पमें) उत्पन्न [एवं विनष्ट] होते रहते हैं।* कश्यपजीसे उनकी पत्नी दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुए। फिर सिंहिका नामवाली एक कन्या भी हुई, जो विप्रचित्ति नामक दानवकी पत्नी हुई। उसके गर्भसे राहु आदिकी उत्पत्ति हुई, जो 'सैंहिकेय' नामसे विख्यात हुए। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए, जो अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे। इनमें पहला ह्राद, दूसरा अनुह्राद और तीसरे प्रह्राद हुए, जो महान् विष्णुभक्त थे और चौथा संह्राद था। ह्रादका पुत्र ह्रद हुआ। संह्रादके पुत्र आयुष्मान् शिवि और बाष्कल थे। प्रह्रादका पुत्र विरोचन हुआ और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ। हे महामुने ! बलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें बाणासुर ज्येष्ठ था। पूर्वकल्पमें इस बाणासुरने भगवान् उमापतिको [भक्तिभावसे] प्रसन्न कर उन परमेश्वरसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मैं आपके पास ही विचरता रहूँगा।' हिरण्याक्षके पाँच पुत्र थे—शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शङ्कु और आर्य। कश्यपजीकी दूसरी पत्नी दनुके गर्भसे सौ दानव-पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५—११ ॥

* यहाँ दी हुई आदित्योंकी नामावली हरिवंशके हरिवंश-पर्वगत तीसरे अध्यायमें श्लोक सं० ६०-६१ में कथित नामावलीसे ठीक-ठीक मिलती है।

† 'प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठाः कृशाश्वस्य सुरायुधाः।'

इस अर्धालीमें पूरे एक श्लोकका भाव सन्निविष्ट है। अतः उस सम्पूर्ण श्लोकपर दृष्टि न रक्खी जाय तो अर्थको समझनेमें भ्रम होता है। हरिवंशके निम्नाङ्कित (हरि० ३ । ६५) श्लोकसे उपर्युक्त पङ्क्तियोंका भाव पूर्णतः स्पष्ट होता है—

प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः।
कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च ॥

सम्पूर्ण दिव्यास्त्र कृशाश्वके पुत्र हैं, इस विषयमें वा० रामायण बाल०, सर्ग २१के श्लोक १३-१८ तथा मत्स्यपुराण ६ । ६ द्रष्टव्य हैं।

* इस अर्धालीके भावको समझनेके लिये भी हरिवंशके निम्नाङ्कित श्लोकपर दृष्टिपात करना आवश्यक है—

एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि।
सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥
(हरि०, हरि० ३ । ६६)

—यही भाव मत्स्यपुराण ६ । ७ में भी आया है।

इनमें स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा थी और पुलोमा दानवकी पुत्री थी शची। उपदानवकी कन्या हयशिरा थी और वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा। पुलोमा और कालका—ये दो वैश्वानरकी कन्याएँ थीं। ये दोनों कश्यपजीकी पत्नी हुईं। इन दोनोंके करोड़ों पुत्र थे। प्रह्लादके वंशमें चार करोड़ 'निवातकवच' नामक दैत्य हुए। कश्यपजीकी ताम्रा नामवाली पत्नीसे छः पुत्र हुए। इनके अतिरिक्त काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका और शुचिग्रीवा आदि भी कश्यपजीकी भार्याएँ थीं, उनसे काक आदि पक्षी उत्पन्न हुए। ताम्राके पुत्र घोड़े और ऊँट थे। विनताके अरुण और गरुड नामक दो पुत्र हुए। सुरसासे हजारों साँप उत्पन्न हुए और कद्रूके गर्भसे भी शेष, वासुकि और तक्षक आदि सहस्रों नाग हुए। क्रोधवशाके गर्भसे दंशनशील दाँतवाले सर्प प्रकट हुए। धरासे जल-पक्षी उत्पन्न हुए। सुरभिसे गाय-भैंस आदि पशुओंकी उत्पत्ति हुई। इराके गर्भसे तृण आदि उत्पन्न हुए। खसासे यक्ष-राक्षस और मुनिके गर्भसे अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसी प्रकार अरिष्टाके गर्भसे गन्धर्व उत्पन्न हुए। इस तरह कश्यपजीसे स्थावर-जङ्गम जगत्‌की उत्पत्ति हुई ॥ १२-१८ ॥

इन सबके असंख्य पुत्र हुए। देवताओंने दैत्योंको युद्धमें जीत लिया। अपने पुत्रोंके मारे जानेपर दितिने कश्यपजीको सेवासे संतुष्ट किया। वह इन्द्रका संहार करनेवाले पुत्रको पाना चाहती थी; उसने कश्यपजीसे अपना वह अभिमत वर प्राप्त कर लिया। जब वह गर्भवती और व्रतपालनमें तत्पर थी, उस समय एक दिन भोजनके बाद बिना पैर धोये ही सो गयी। तब इन्द्रने यह छिद्र (त्रुटि या दोष) ढूँढ़कर उसके गर्भमें प्रविष्ट हो उस गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये; [किंतु व्रतके प्रभावसे उनकी मृत्यु नहीं हुई।] वे सभी अत्यन्त तेजस्वी और इन्द्रके सहायक उनचास मरुत् नामक देवता हुए। मुने! यह सारा वृत्तान्त मैंने सुना दिया। श्रीहरि-स्वरूप ब्रह्माजीने पृथुको नर-लोकके राजपदपर अभिषिक्त करके क्रमशः दूसरोंको भी राज्य दिये—उन्हें विभिन्न समूहोंका राजा बनाया। अन्य सबके अधिपति [तथा परिगणित अधिपतियोंके भी अधिपति] साक्षात् श्रीहरि ही हैं ॥ १९-२२ ॥

ब्राह्मणों और ओषधियोंके राजा चन्द्रमा हुए। जलके स्वामी वरुण हुए। राजाओंके राजा कुबेर हुए। द्वादश सूर्यों (आदित्यों-) के अधीश्वर भगवान् विष्णु थे। वसुओंके राजा पावक और मरुद्गणोंके स्वामी इन्द्र हुए। प्रजापतियोंके स्वामी दक्ष और दानवोंके अधिपति प्रह्लाद हुए। पितरोंके यमराज और भूत आदिके स्वामी सर्वसमर्थ भगवान् शिव हुए तथा शैलों (पर्वतों-) के राजा हिमवान् हुए और नदियोंका स्वामी सागर हुआ। गन्धर्वोंके चित्ररथ, नागोंके वासुकि, सर्पोंके तक्षक और पक्षियोंके गरुड राजा हुए। श्रेष्ठ हाथियोंका स्वामी ऐरावत हुआ और गौओंका अधिपति साँड़। वनचर जीवोंका स्वामी शेर हुआ और वनस्पतियोंका प्लक्ष (पकड़ी)। घोड़ोंका स्वामी उच्चैःश्रवा हुआ। सुधन्वा पूर्व दिशाका रक्षक हुआ। दक्षिण दिशामें शङ्खपद और पश्चिममें केतुमान् रक्षक नियुक्त हुए। इसी प्रकार उत्तर दिशामें हिरण्यरोमक राजा हुआ। यह प्रति-सर्गका वर्णन किया गया ॥ २३-२९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिसर्गविषयक कश्यपवंशका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

सर्गका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! [प्रकृतिसे] पहले महत्तत्त्वकी सृष्टि हुई, इसे ब्राह्मसर्ग समझना चाहिये। दूसरी तन्मात्राओंकी सृष्टि हुई, इसे भूतसर्ग कहा गया है। तीसरी वैकारिक सृष्टि है, इसे ऐन्द्रियकसर्ग कहते हैं। इस प्रकार यह बुद्धिपूर्वक प्रकट हुआ प्राकृतसर्ग तीन प्रकारका है। चौथे प्रकारकी सृष्टिको 'मुख्यसर्ग' कहते हैं। 'मुख्य' नाम है—स्थावरों (वृक्ष-पर्वत आदि-) का। जो 'तिर्यक्स्रोता' कहा गया है, अर्थात् जिससे पशु-पक्षियोंकी उत्पत्ति हुई है, वह तैर्यग्योन्य-सर्ग पाँचवाँ है। ऊर्ध्व स्रोताओंकी सृष्टिको देव-सर्ग कहते हैं, यह छठा सर्ग है। इसके पश्चात् अर्वाक्स्रोताओंकी सृष्टि हुई—यही सातवाँ मानव-सर्ग है। आठवाँ अनुग्रह-सर्ग है, जो सात्त्विक और तामस भी है। ये अन्तवाले पाँच 'वैकृतसर्ग' हैं और आरम्भके तीन 'प्राकृतसर्ग' कहे गये हैं। प्राकृत और वैकृत सर्ग तथा नवें प्रकारका कौमार-सर्ग—ये कुल नौ सर्ग ब्रह्माजीसे प्रकट हुए, जो इस जगत्‌के मूल कारण

हैं। ख्याति आदि दक्ष-कन्याओंसे भृगु आदि महर्षियोंने ब्याह किया। कुछ लोग नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत— इस भेदसे तीन प्रकारकी सृष्टि मानते हैं। जो प्रतिदिन होनेवाले अवान्तर-प्रलयसे प्रतिदिन जन्म लेते रहते हैं, वह 'नित्यसर्ग' कहा गया है॥ १—८॥

भृगुसे उनकी पत्नी ख्यातिने धाता-विधाता नामक दो देवताओंको जन्म दिया तथा लक्ष्मी नामकी कन्या भी उत्पन्न की, जो भगवान् विष्णुकी पत्नी हुई। इन्द्रने अपने अभ्युदयके लिये इन्हींका स्तवन किया था। धाता और विधाताके क्रमशः प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए। मृकण्डुसे मार्कण्डेयका जन्म हुआ। उनसे वेदशिरा उत्पन्न हुए। मरीचिके सम्भूतिके गर्भसे पौर्णमास नामक पुत्र हुआ और अङ्गिराके स्मृतिके गर्भसे अनेक पुत्र तथा सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक चार कन्याएँ हुईं। अत्रिके अंशसे अनसूयाने सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक पुत्रोंको जन्म दिया। इनमें दत्तात्रेय महान् योगी थे। पुलस्त्य मुनिकी पत्नी प्रीतिके गर्भसे दत्तोलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुलहसे क्षमाके गर्भसे सहिष्णु एवं सर्वपादिकका* जन्म हुआ। क्रतुके सन्नतिसे बालखिल्य नामक साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए, जो अँगूठेके पोरुओंके बराबर और महान् तेजस्वी थे। वसिष्ठसे ऊर्जाके गर्भसे राजा, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, शुक्र और सुतपा—ये सात ऋषि प्रकट हुए॥ ९—१५॥

स्वाहा एवं अग्निसे पावक, पवमान और शुचि नामक पुत्र हुए। इसी प्रकार अजसे अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, अनग्नि एवं साग्नि पितर हुए। पितरोंसे स्वधाके गर्भसे मेना और वैधारिणी नामक दो कन्याएँ हुईं। अधर्मकी पत्नी हिंसा हुई; उन दोनोंसे अमृत नामक पुत्र और निकृति नामवाली कन्याकी उत्पत्ति हुई। [इन दोनोंने परस्पर विवाह किया और] इनसे भय तथा नरकका जन्म हुआ। क्रमशः माया और वेदना इनकी पत्नियाँ हुईं। इनमेंसे मायाने [भयके सम्पर्कसे] समस्त प्राणियोंके प्राण लेनेवाले मृत्युको जन्म दिया और वेदनाने नरकके संयोगसे दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया। इसके पश्चात् मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजीसे एक रोता हुआ पुत्र हुआ, जो रुदन करनेके कारण 'रुद्र' नामसे प्रसिद्ध हुआ। तथा हे द्विज! उन पितामह (ब्रह्माजी) ने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव आदि नामोंसे पुकारा। रुद्रकी पत्नी सतीने अपने पिता दक्षपर कोप करनेके कारण देहत्याग किया और हिमवान्की कन्यारूपमें प्रकट होकर पुनः वे शंकरजीकी ही धर्मपत्नी हुईं। किसी समय नारदजीने ऋषियोंके प्रति विष्णु आदि देवताओंकी पूजाका विधान बतलाया था। स्नान आदि पूर्वक की जानेवाली उन पूजाओंका विधिवत् अनुष्ठान करके स्वायम्भुव मनु आदिने भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त किये थे॥ १६—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जगत्-सृष्टिका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाका विधान

नारदजी बोले—अब मैं विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाका वर्णन करता हूँ तथा समस्त कामनाओंको देनेवाले पूजा-सम्बन्धी मन्त्रोंको भी बतलाता हूँ। भगवान् विष्णुके पूजनमें सर्वप्रथम परिवारसहित भगवान् अच्युतको नमस्कार करके पूजन आरम्भ करे, इसी प्रकार पूजा-मण्डपके द्वारदेशमें क्रमशः दक्षिण-वाम भागमें धाता और विधाताका तथा गङ्गा और यमुनाका भी पूजन करे। फिर शङ्खनिधि और पद्मनिधि—इन दो निधियोंकी, द्वारलक्ष्मी-की, वास्तु-पुरुषकी तथा आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी पूजा करे। तदनन्तर अधर्म आदिका (अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यका) पूजन करे तथा एक कमलकी भावना करके उसके मूल, नाल, पद्म, केसर और कर्णिकाओंकी पूजा करे।

फिर ऋग्वेद आदि चारों वेदोंकी, सत्ययुग आदि युगोंकी, सत्त्व आदि गुणोंकी और सूर्य आदिके मण्डलकी

* कहीं-कहीं कर्मपादिक नाम मिलता है।

पूजा करे। इसी प्रकार विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा आदि जो शक्तियाँ हैं, उनकी पूजा करे तथा प्रह्वी, सत्या, ईशा, अनुग्रहा, निर्मलमूर्ति दुर्गा, सरस्वती, गण (गणेश), क्षेत्रपाल और वासुदेव [संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध] आदिका पूजन करे। इनके बाद हृदय, सिर, चूड़ा (शिखा), वर्म (कवच), नेत्र आदि अङ्गोंकी, फिर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म नामक अस्त्रोंकी, श्रीवत्स, कौस्तुभ एवं वनमालाकी तथा लक्ष्मी, पुष्टि, गरुड़ और गुरुदेवकी पूजा करे। तत्पश्चात् इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, जल (वरुण), वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त—इन दिक्पालोंकी, इनके अस्त्रोंकी, कुमुद आदि विष्णु-पार्षदों या द्वारपालोंकी और विष्वक्सेनकी आवरण-मण्डल आदिमें पूजा आदि करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १—८ ॥

अब भगवान् शिवकी सामान्य पूजा बतायी जाती है—इसमें पहले नन्दीका पूजन करना चाहिये, फिर महाकालका। तदनन्तर क्रमशः दुर्गा, यमुना, गण आदिका, वाणी, श्री, गुरु, वास्तुदेव, आधारशक्ति आदि और धर्म आदिका अर्चन करे। फिर वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरिणी, बलविकरिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा कल्याणमयी मनोन्मनी—इन नौ शक्तियोंका क्रमसे पूजन करे। **'ह्रां ह्रं ह्रां शिवमूर्तये नमः।'**—इस मन्त्रसे हृदयादि अङ्ग और ईशान आदि मुखसहित शिवकी पूजा करे। **'ह्रौं शिवाय ह्रौं।'** इत्यादिसे केवल शिवकी अर्चना करे और **'ह्रां'** इत्यादिसे ईशानादि[1] पाँच मुखोंकी आराधना करे। **'ह्रीं गौर्यै नमः।'** इससे गौरीका और **'गं गणपतये नमः।'** इस मन्त्रसे गणपतिकी, नाम-मन्त्रोंसे इन्द्र आदि दिक्पालोंकी, चण्डकी और हृदय, सिर आदिकी भी पूजा करे ॥ ९—१२½ ॥

अब क्रमशः सूर्यकी पूजाके मन्त्र बताये जाते हैं। इसमें दण्डी सर्वप्रथम पूजनीय हैं। फिर क्रमशः पिङ्गल, उच्चैःश्रवा और अरुणकी पूजा करे। तत्पश्चात् प्रभूत, विमल, सोम, दोनों संध्याकाल, परसुख और स्कन्द आदिकी मध्यमें पूजा करे। इसके बाद दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतो-मुखी—इन नौ शक्तियोंकी पूजा होनी चाहिये। तत्पश्चात् (**'ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय पीठाय नमः।'** इस मन्त्रसे) सूर्यके आसनका स्पर्श और पूजन करे। फिर **'ॐ खं खखोल्काय नमः।'** इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी मूर्तिकी उद्भावना करके उसका अर्चन करे। तत्पश्चात् **'ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।'** इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी पूजा करे। इसके बाद हृदयादिका पूजन करे—**'ॐ आं नमः।'** इससे हृदयकी **'ॐ अर्काय नमः।'** इससे सिरकी पूजा करे। इसी प्रकार अग्नि, ईश और वायुमें अधिष्ठित सूर्यदेवका भी पूजन करे। फिर **'ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालिन्यै शिखायै नमः।'** इससे शिखाकी, **'ॐ हुं कवचाय नमः।'** इससे कवचकी, **'ॐ भां नेत्राभ्यां नमः।'** इससे नेत्रकी और **'ॐ रम् अर्कास्त्राय नमः।'** इससे अस्त्रकी पूजा करे। इसके बाद सूर्यकी शक्ति रानी संज्ञाकी तथा उनसे प्रकट हुई छायादेवीकी पूजा करे। फिर चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—क्रमशः इन ग्रहोंका और सूर्यके प्रचण्ड तेजका पूजन करे। अब संक्षेपसे पूजन बतलाते हैं—देवताके आसन, मूर्ति, मूल, हृदय आदि अङ्ग और परिचारक इनकी ही पूजा होती है ॥ १३—१९ ॥

भगवान् विष्णुके आसनका पूजन **'ॐ श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः ह्रीं।'** इस मन्त्रसे करना चाहिये। इसी मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी मूर्तिका भी पूजन करे। यह सर्वमूर्तिमन्त्र है। इसीको त्रैलोक्यमोहन मन्त्र भी कहते हैं। भगवान्‌के पूजनमें **'ॐ क्लीं हृषीकेशाय नमः।'** **'ॐ हुं विष्णवे नमः।'**—इन मन्त्रोंका उपयोग करे। सम्पूर्ण दीर्घ स्वरोंके द्वारा हृदय आदिकी पूजा करे; जैसे—**'ॐ आं हृदयाय नमः।'** इससे हृदयकी, **'ॐ ईं शिरसे नमः।'** इससे सिरकी, **'ॐ ऊं शिखायै नमः।'** इससे शिखाकी, **'ॐ ऐं कवचाय नमः।'** इससे कवचकी, **'ॐ ऐं नेत्राभ्यां नमः।'** इससे नेत्रोंकी और **'ॐ औं अस्त्राय नमः।'** इससे अस्त्रकी पूजा करे। पाँचवीं अर्थात् परिचारकोंकी पूजा संग्राम आदिमें विजय आदि देनेवाली है। परिचारकोंमें चक्र, गदा, शङ्ख, मुसल, खड्ग, शार्ङ्गधनुष, पाश, अंकुश, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, 'श्रीं' इस बीजसे युक्त श्री—महालक्ष्मी, गरुड, गुरुदेव और इन्द्रादि देवताओंका पूजन किया जाता है। [इनके पूजनमें प्रणवसहित नामके आदि अक्षरमें अनुस्वार लगाकर चतुर्थी विभक्तियुक्त नामके अन्तमें 'नमः' जोड़ना

---

१. ईशान, वामदेव, सद्योजात, अघोर और तत्पुरुष—ये शिवके पाँच मुख हैं। ह्रां ईशानाय नमः। ह्रीं वामदेवाय नमः। ह्रूं सद्योजाताय नमः। ह्रैं अघोराय नमः। ह्रौं तत्पुरुषाय नमः।—इन मन्त्रोंसे इन मुखोंकी पूजा करनी चाहिये।

चाहिये। जैसे '**ॐ वं वास्तव नमः।' 'ॐ गं गङ्गायै नमः।'** इत्यादि] सरस्वतीके आसनकी पूजामें '**ॐ ऐं देव्यै सरस्वत्यै नमः।**' इस मन्त्रका उपयोग करे और उनकी मूर्तिके पूजनमें '**ॐ ह्रीं देव्यै सरस्वत्यै नमः।**' इस मन्त्रसे काम ले। हृदय आदिके लिये पूर्ववत् मन्त्र हैं। सरस्वतीके परिचारकोंमें लक्ष्मी, मेधा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी, प्रभा, मति, दुर्गा, गण, गुरु और क्षेत्रपालकी पूजा करे ॥ २०—२४ ॥

तथा '**ॐ गं गणपतये नमः।**'—इस मन्त्रसे गणेशकी, '**ॐ ह्रीं गौर्यै नमः।**' इस मन्त्रसे गौरीकी, '**ॐ श्रीं श्रियै नमः।**' इससे श्रीकी, '**ॐ ह्रीं त्वरितायै नमः।**' इस मन्त्रसे त्वरिताकी, '**ॐ ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः।**' इस मन्त्रसे त्रिपुराकी पूजा करे। इस प्रकार 'त्रिपुरा' शब्द भी चतुर्थी विभक्त्यन्त हो और अन्तमें 'नमः' शब्दका प्रयोग हो। जिन देवताओंके लिये कोई विशेष मन्त्र नहीं बतलाया गया है, उनके नामके आदिमें प्रणव लगावे। नामके आदि अक्षरमें अनुस्वार लगाकर उसे बीजके रूपमें रक्खे तथा पूर्ववत् नामके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और 'नमः' शब्द जोड़ ले। पूजन और जपमें प्रायः सभी मन्त्र ॐकारयुक्त बताये गये हैं। अन्तमें तिल और घी आदिसे होम करे। इस प्रकार ये देवता और मन्त्र धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ देनेवाले हैं। जो पूजाके इन मन्त्रोंका पाठ करेगा, वह समस्त भोगोंका उपभोग कर अन्तमें देवलोकको प्राप्त होगा ॥ २५—२७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाके विधानका वर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

पूजाके अधिकारकी सिद्धिके लिये सामान्यतः स्नान-विधि

नारदजी बोले—विप्रवरो! पूजन आदि क्रियाओंके लिये पहले स्नान-विधिका वर्णन करता हूँ। पहले नृसिंह-सम्बन्धी बीज या मन्त्रसे* मृत्तिका हाथमें ले। उसे दो भागोंमें विभक्त कर एक भागके द्वारा [नाभिसे लेकर पैरोंतक लेपन करे, फिर दूसरे भागके द्वारा] अपने अन्य सब अङ्गोंमें लेपन कर मल-स्नान सम्पन्न करे। तदनन्तर शुद्ध स्नानके लिये जलमें डुबकी लगाकर आचमन करे। 'नृसिंह'-मन्त्रसे न्यास करके आत्म-रक्षा करे। इसके बाद [तन्त्रोक्त रीतिसे] विधि-स्नान करे† और प्राणायामादिपूर्वक हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर-मन्त्रसे हाथमें मिट्टी लेकर उसके तीन भाग करे। फिर नृसिंह-मन्त्रके जपपूर्वक [उन तीनों भागोंसे तीन बार] दिग्बन्ध[1] करे। इसके बाद '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' इस वासुदेव-मन्त्रका जप करके संकल्पपूर्वक तीर्थ-जलका स्पर्श करे। फिर वेद आदिके मन्त्रोंसे अपने शरीरका और आराध्यदेवकी प्रतिमा या ध्यानकल्पित विग्रहका मार्जन करे। इसके बाद अघमर्षण-मन्त्रका जपकर वस्त्र पहनकर आगेका कार्य करे। पहले अङ्गन्यास कर मार्जन-मन्त्रोंसे मार्जन करे। इसके बाद हाथमें जल लेकर नारायण-मन्त्रसे प्राण-संयम करके जलको नासिकासे लगाकर सूँघे। फिर भगवान्का ध्यान करते हुए जलका परित्याग कर दे। इसके बाद अर्घ्य देकर ['**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' इस] द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करे। फिर अन्य देवता आदिका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। योगपीठ आदिके क्रमसे दिक्पालतकके मन्त्रों और देवताओंका, ऋषियोंका, पितरोंका, मनुष्योंका तथा

* नृसिंह—बीज 'क्ष्रौं' है। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥

† सोमशम्भुकी कर्मकाण्डक्रमावलीके अनुसार मिट्टीके एक भागको नाभिसे लेकर पैरोंतक लगावे और दूसरे भागको शेष सारे शरीरमें। इसके बाद दोनों हाथोंसे आँख, कान, नाक बंद करके जलमें डुबकी लगावे। फिर मन-ही-मन कालाग्निके समान तेजस्वी अस्त्रका स्मरण करते हुए जलसे बाहर निकले। इस तरह मलस्नान एवं संध्योपासन सम्पन्न करके (तन्त्रोक्त रीतिसे) विधि-स्नान करना चाहिये। (द्रष्टव्य श्लोक ९, १० तथा ११)।

1. प्रत्येक दिशामें वहाँके विघ्नकारक भूतोंको भगानेकी भावनासे उक्त मृत्तिकाको बिखेरना 'दिग्बन्ध' कहलाता है।

स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण भूतोंका तर्पण करके आचमन करे। फिर अङ्गन्यास करके अपने हृदयमें मन्त्रोंका उपसंहार कर पूजन-मन्दिरमें प्रवेश करे। इसी प्रकार अन्य पूजाओंमें भी मूल आदि मन्त्रोंसे स्नान-कार्य सम्पन्न करे॥ १—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पूजाके लिये सामान्यतः स्नान-विधिका वर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

देवताओं तथा भगवान् विष्णुकी सामान्य पूजा-विधि

नारदजी बोले—ब्रह्मर्षियो! अब मैं पूजाकी विधिका वर्णन करूँगा, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। हाथ-पैर धोकर, आसनपर बैठकर आचमन करे। फिर मौनभावसे रहकर सब ओरसे अपनी रक्षा करे।* पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके स्वस्तिकासन या पद्मासन आदि कोई-सा आसन बाँधकर स्थिर बैठे और नाभिके मध्यभागमें स्थित धूएँके समान वर्णवाले, प्रचण्ड वायुरूप 'यं' बीजका चिन्तन करते हुए अपने शरीरसे सम्पूर्ण पापोंको भावना-द्वारा पृथक् करे। फिर हृदय-कमलके मध्यमें स्थित तेजकी राशिभूत 'क्ष्रौं' बीजका ध्यान करते हुए ऊपर, नीचे तथा अगल-बगलमें फैली हुई अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे उस पापको जला डाले। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष आकाशमें स्थित चन्द्रमाकी आकृतिके समान किसी शान्त ज्योतिका ध्यान करे और उससे प्रवाहित होकर हृदय-कमलमें व्याप्त होनेवाली सुधामय सलिलकी धाराओंसे, जो सुषुम्ना-योनिके मार्गसे शरीरकी सब नाडियोंमें फैल रही हैं, अपने निष्पाप शरीरको आप्लावित करे। इस प्रकार शरीरकी शुद्धि करके तत्त्वोंका नाश करे। फिर हस्तशुद्धि करे। इसके लिये पहले दोनों हाथोंमें अस्त्र एवं व्यापकमुद्रा करे और दाहिने अँगूठेसे आरम्भ करके करतल और करपृष्ठतक न्यास करे॥ १—६॥

इसके बाद एक-एक अक्षरके क्रमसे बारह अङ्गोंवाले द्वादशाक्षर मूल-मन्त्रका अपने देहमें बारह मन्त्र-वाक्यों-द्वारा न्यास करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, अस्त्र, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, घुटना, पैर—ये शरीरके बारह स्थान हैं, इनमें ही द्वादशाक्षरके एक-एक वर्णका न्यास करे। (यथा—ॐ ॐ नमः हृदये। ॐ नं नमः शिरसि। ॐ मों नमः शिखायाम्। इत्यादि)। फिर मुद्रा समर्पणकर भगवान् विष्णुका स्मरण करे और अष्टोत्तर-शत (१०८) मन्त्रका जप करके पूजन करे॥ ७-८॥

बायें भागमें जलपात्र और दाहिने भागमें पूजाका सामान रखकर 'अस्त्राय फट्।' मन्त्रसे उसको धो दे; इसके पश्चात् गन्ध और पुष्प आदिसे युक्त दो अर्घ्य-पात्र रक्खे। फिर हाथमें जल लेकर 'अस्त्राय फट्।' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर योगपीठको सींच दे। उसके मध्य भागमें सर्वव्यापी चेतन ज्योतिर्मय परमेश्वर श्रीहरिका ध्यान करके उस योगपीठपर पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अग्नि आदि दिक्पाल तथा अधर्म आदिके विग्रहकी स्थापना करे। उस पीठपर कच्छप, अनन्त, पद्म, सूर्य आदि मण्डल और विमला आदि शक्तियोंकी कमलके केसरके रूपमें और ग्रहोंकी कर्णिकामें स्थापना करे। पहले अपने हृदयमें ध्यान करे। फिर मण्डलमें आवाहन करके पूजन करे। [आवाहनके अनन्तर] क्रमशः अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिको पुण्डरीकाक्ष-विद्या ('ॐ नमो भगवते पुण्डरी-काक्षाय।'—इस मन्त्र-) से अर्पण करे॥ ९—१४॥

मण्डलके पूर्व आदि द्वारोंपर भगवान्के विग्रहकी सेवामें रहनेवाले पार्षदोंकी पूजा करे। पूर्वके दरवाजेपर गरुडकी, दक्षिणद्वारपर चक्रकी, उत्तरवाले द्वारपर गदाकी और ईशान तथा अग्निकोणमें शङ्ख एवं धनुषकी स्थापना करे। भगवान्के बायें-दायें दो तूणीर, बायें भागमें तलवार

---

* अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम्।
सर्वेषामविरोधेन पूजाकर्म समारभे॥

इत्यादि मन्त्रोंद्वारा अथवा कवच आदिके मन्त्रोंसे रक्षा करे। दाहिने हाथमें रक्षा-सूत्र बाँधकर भी रक्षा की जाती है। इसका मन्त्र है—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥

और चर्म (ढाल), दाहिने भागमें लक्ष्मी और वाम भागमें पुष्टि देवीकी स्थापना करे। भगवान्‌के सामने वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभको स्थापित करे। मण्डलके बाहर दिक्पालोंकी स्थापना करे। मण्डलके भीतर और बाहर स्थापित किये हुए सभी देवताओंकी उनके नाम-मन्त्रोंसे पूजा करे। सबके अन्तमें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये ॥ १५–१७ ॥

अङ्गोंसहित पृथक्-पृथक् बीज-मन्त्रोंसे और सभी बीज-मन्त्रोंको एक साथ पढ़कर भी भगवान्‌का अर्चन करे। मन्त्र-जप करके भगवान्‌की परिक्रमा करे और स्तुतिके पश्चात् अर्घ्य-समर्पण कर हृदयमें भगवान्‌की स्थापना कर ले। फिर यह ध्यान करे कि 'परब्रह्म भगवान् विष्णु मैं ही हूँ' [—इस प्रकार अभेदभावसे चिन्तन करके पूजन करना चाहिये।] भगवान्‌का आवाहन करते समय 'आगच्छ' (भगवन्! आइये।) इस प्रकार पढ़ना चाहिये और विसर्जनके समय 'क्षमस्व' (*हमारी त्रुटियोंको क्षमा कीजियेगा।*)—ऐसी योजना करनी चाहिये ॥ १८-१९ ॥

इस प्रकार अष्टाक्षर आदि मन्त्रोंसे पूजा करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है। यह भगवान्‌के एक विग्रहका पूजन बताया गया। अब नौ व्यूहोंके पूजनकी विधि सुनो ॥२०॥

दोनों अँगूठों और तर्जनी आदिमें वासुदेव, बलभद्र आदिका न्यास करे। इसके बाद शरीरमें अर्थात् सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य अङ्ग, जानु और चरण आदि अङ्गोंमें न्यास करे। फिर मध्यमें एवं पूर्व आदि दिशाओंमें पूजन करे। इस प्रकार एक पीठपर एक व्यूहके क्रमसे पूर्ववत् नौ व्यूहोंके लिये नौ पीठोंकी स्थापना करे। नौ कमलोंमें नौ मूर्तियोंके द्वारा पूर्ववत् नौ व्यूहोंका पूजन करे। कमलके मध्यभागमें जो भगवान्‌का स्थान है, उसमें वासुदेवकी पूजा करे ॥ २१–२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सामान्यपूजा-विषयक वर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

कुण्ड-निर्माण एवं अग्नि-स्थापन-सम्बन्धी कार्य आदिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं अग्नि-सम्बन्धी कार्यका वर्णन करूँगा, जिससे मनुष्य सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंका भागी होता है। चौबीस अङ्गुलकी चौकोर भूमिको सूतसे नापकर चिह्न बना दे। फिर उस क्षेत्रको सब ओरसे बराबर खोदे। दो अङ्गुल भूमि चारों ओर छोड़कर खोदे हुए कुण्डकी मेखला बनावे। मेखलाएँ तीन होती हैं, जो 'सत्त्व, रज और तम' नामसे कही गयी हैं। उनका मुख पूर्व, अर्थात् बाह्य दिशाकी ओर रहना चाहिये। मेखलाओंकी अधिकतम ऊँचाई बारह अङ्गुलकी रक्खे, अर्थात् भीतरकी ओरसे पहली मेखलाकी ऊँचाई बारह अङ्गुल रहनी चाहिये। [उसके बाह्यभागमें दूसरी मेखलाकी ऊँचाई आठ अङ्गुलकी और उसके भी बाह्यभागमें तीसरी मेखलाकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी रहनी चाहिये।] इसकी चौड़ाई क्रमशः आठ, दो और चार अङ्गुलकी होती है ॥ १–३ ॥*

योनि सुन्दर बनायी जाय। उसकी लंबाई दस अङ्गुल-की हो। वह आगे-आगेकी ओर क्रमशः छः, चार और

---

* शारदातिलकमें उद्धृत वसिष्ठसंहिताके वचनानुसार पहली मेखला बारह अङ्गुल चौड़ी होनी चाहिये और चार अङ्गुल ऊँची, दूसरी आठ अङ्गुल चौड़ी और चार अङ्गुल ऊँची, फिर तीसरी चार-चार अङ्गुल चौड़ी तथा ऊँची रहनी चाहिये। यथा—

प्रथमा मेखला तत्र द्वादशाङ्गुलविस्तृता।
चतुर्भिरङ्गुलैस्तस्याश्चोन्नतिश्च समन्ततः ॥
तस्याश्चोपरि वप्रः स्याच्चतुरङ्गुलमुन्नतः।
अष्टाभिरङ्गुलैः सम्यग् विस्तीर्णस्तु समन्ततः ॥
तस्योपरि पुनः कार्यो वप्रः सोऽपि तृतीयकः।
चतुरङ्गुलविस्तीर्णश्चोन्नतश्च तथाविधः ॥

इस क्रमसे बाहरकी ओरसे पहली मेखलाकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी होगी, फिर बादवाली उससे भी चार अङ्गुल ऊँची होनेके कारण मूलतः आठ अङ्गुल ऊँची होगी तथा तीसरी उससे भी चार अङ्गुल ऊँची होनेसे मूलतः बारह अङ्गुल ऊँची होगी। अग्निपुराणमें इसी दृष्टिसे भीतरकी ओरसे पहली मेखलाको बारह अङ्गुल ऊँची कहा गया है। चौड़ाई तो भीतरकी ओरसे बाहरकी ओर देखनेपर पहली बारह अङ्गुल चौड़ी, दूसरी आठ अङ्गुल चौड़ी तथा तीसरी चार अङ्गुल चौड़ी होगी। यहाँ मूलमें जो आठ, दो और चार अङ्गुलका विस्तार बताया गया है, इसका आधार अन्वेषणीय है।

दो अङ्गुल ऊँची रहे अर्थात् उसका पिछला भाग छः अङ्गुल, उससे आगेका भाग चार अङ्गुल और उससे भी आगेका भाग दो अङ्गुल ऊँचा होना चाहिये। योनिका स्थान कुण्डकी पश्चिम दिशाका मध्यभाग है। उसे आगेकी ओर क्रमशः नीची बनाना चाहिये। उसकी आकृति पीपलके पत्तेकी-सी होनी चाहिये। उसका कुछ भाग कुण्डमें प्रविष्ट रहना चाहिये। योनिका आयाम चार अङ्गुलका रहे और नाल पंद्रह अङ्गुल बड़ा हो। योनिका मूलभाग तीन अङ्गुल और उससे आगेका भाग छः अङ्गुल विस्तृत हो। यह एक हाथ लंबे-चौड़े कुण्डका लक्षण कहा गया है। दो हाथ या तीन हाथके कुण्डमें नियमानुसार सब वस्तुएँ तदनुरूप द्विगुण या त्रिगुण बढ़ जायँगी ॥ ४—६ ॥*

अब मैं एक या तीन मेखलावाले गोल और अर्ध-चन्द्राकार आदि कुण्डोंका वर्णन करता हूँ। चौकोर कुण्डके आधे भाग, अर्थात् ठीक बीचो-बीचमें सूत रखकर उसे किसी कोणकी सीमातक ले जाय; मध्यभागसे कोणतक ले जानेमें सामान्य दिशाओंकी अपेक्षा वह सूत जितना बढ़ जाय, उसके आधे भागको प्रत्येक दिशामें बढ़ाकर स्थापित करे और मध्यस्थानसे उन्हीं बिन्दुओंपर सूतको सब ओर घुमावे तो गोल आकार बन जायगा।† कुण्डार्धसे बढ़ा हुआ जो कोणभागार्ध है, उसे उत्तर दिशामें बढ़ाये तथा उसी सीधमें पूर्व और पश्चिम दिशामें भी बाहरकी ओर यत्नपूर्वक बढ़ाकर चिह्न कर दे। फिर मध्यस्थानमें सूतका एक सिरा रखकर दूसरा छोर पूर्व दिशावाले चिह्नपर रक्खे और उसे दक्षिणकी ओरसे घुमाते हुए पश्चिम दिशाके चिह्नतक ले जाय। इससे अर्धचन्द्राकार चिह्न बन जायगा। फिर उस क्षेत्रको खोदनेपर सुन्दर अर्धचन्द्र-कुण्ड तैयार हो जायगा ॥ ७—९ ॥‡

कमलकी आकृतिवाले गोल कुण्डकी मेखलापर कमलदलके चिह्न बनाये जायँ। होमके लिये एक सुन्दर स्रुक् तैयार करे।

---

* अर्थात् एक हाथके कुण्डकी लंबाई चौड़ाई २४ अङ्गुलकी होती है, दो हाथके कुण्डकी चौंतीस अङ्गुल और तीन हाथके कुण्डकी एकतालीस अङ्गुल होती है। इसी तरह अधिक हाथोंके विषयमें भी समझना चाहिये।

† एक हाथ या २४ अङ्गुलके चौकोर क्षेत्रमें कुण्डार्ध होता है—१२ अङ्गुल और कोणभागार्ध है—१८ अङ्गुल। अतिरिक्त हुआ ६ अङ्गुल। उसका आधा भाग है—३ अङ्गुल। इतीको सब ओर बढ़ाकर सूत घुमानेसे गोल कुण्ड बनेगा।

‡ कुण्ड-निर्माणके लिये निम्नाङ्कित परिभाषाको ध्यानमें रखना चाहिये—८ परमाणुओंका एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणुओंका १ रेणु, ८ रेणुओंका १ बालाग्र, ८ बालाग्रोंकी १ लिक्स्या, ८ लिक्स्याओंकी १ यूका, ८ यूकाओंका १ यव, ८ यवोंका १ अङ्गुल, २१ अङ्गुलोंके पर्वकी १ रत्नि तथा २४ अङ्गुलका १ हाथ होता है। एक-एक हाथ लंबे-चौड़े कुण्डको 'चतुरस्र' कहते हैं। चारों दिशाओंकी ओर एक-एक हाथ भूमिको मापकर जो कुण्ड तैयार किया जाता है, उसकी 'चतुरस्र' या 'चतुष्कोण' संज्ञा है।

इसकी रचनाका प्रकार यों है—पहले पूर्व-पश्चिम आदि दिशाओंका सम्यक् परिज्ञान कर ले। फिर जितना बड़ा क्षेत्र अभीष्ट हो, उतनेहीमें पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओंमें कील गाड़ दे। यदि २४ अङ्गुलका क्षेत्र अभीष्ट हो तो ४८ अङ्गुलका सूत लेकर उसमें बारह-बारह अङ्गुलपर चिह्न लगा दे। फिर सूतको दोनों कीलोंमें बाँध दे। फिर उस सूतके चतुर्थांश चिह्नको कोणकी दिशाकी ओर खींचकर कोणका निश्चय करे। इससे चारों कोण शुद्ध होते हैं। इस प्रकार समान चतुरस्र क्षेत्र शुद्ध होता है। क्षेत्रशुद्धिके अनन्तर कुण्डका खनन करे। चतुर्भुज क्षेत्रमें भुज और कोटिके अङ्कोंमें गुणा करनेपर जो गुणनफल आता है, वही क्षेत्रफल होता है। इस प्रकार २४ अङ्गुलके क्षेत्रमें २४ अङ्गुल भुज और २४ अङ्गुल कोटि परस्पर गुणित हों तो ५७६ अङ्गुल क्षेत्रफल होगा।

चतुरस्र क्षेत्रको चौबीस भागोंमें विभक्त करे। फिर उसमेंसे तेरह भागको व्यासार्ध माने और उतने ही विस्तारके परकालसे क्षेत्रके मध्यभागसे आरम्भ करके मण्डलाकार रेखा खींचनेपर उत्तम वृत्त कुण्ड बन जायगा।

चतुरस्र क्षेत्रके शतांश और पञ्चमांशको जोड़कर उतना अंश क्षेत्रमानमेंसे घटा दे। फिर जो क्षेत्रमान शेष रह जाय, उतने ही विस्तारका परकाल लेकर क्षेत्रके मध्यभागमें लगा दे और अर्ध-वृत्ताकार रेखा खींचे। फिर अर्धचन्द्रके एक अग्रभागसे दूसरे अर्धभागतक पड़ी रेखा खींचे। इससे अर्धचन्द्रकुण्ड समीचीन होगा। उदाहरणार्थ—२४ अङ्गुलके क्षेत्रका पञ्चमांश ४ अङ्गुल, ६ यवा, ३ यूका, १ लिक्स्या (या लिक्षा) और ५ बालाग्र होगा। उस क्षेत्रका शतांश ०अङ्गुल, ०यवा, ३ यूका, ०लिक्षा और ४ बालाग्र होगा। इन दोनोंका योग ४ अङ्गुल ६ यवा, ६ यूका, २ लिक्षा और १ बालाग्र होगा। यह मान २४ अङ्गुलमें घटा दिया जाय तो शेष रहेगा १९ अङ्गुल, १यवा, १ यूका, ५ लिक्षा और ७ बालाग्र। इतने विस्तारके परकालसे अर्धचन्द्र बनाना चाहिये। अग्निपुराणमें इन कुण्डोंके निर्माणकी विधि अत्यन्त संक्षेपसे लिखी गयी है; अतः अन्य ग्रन्थोंका मत भी यहाँ दे दिया गया है।

जो अपने बाहुदण्डके बराबर हो। उसके दण्डका मूलभाग चतुरस्र हो। उसका माप सात या पाँच अङ्गुलका बताया गया है। उस चतुरस्रके तिहाई भागको खुदवाकर गर्त बनावे। उसके मध्यभागमें उत्तम शोभायमान वृत्त हो। उक्त गर्तको नीचेसे ऊपरतक तथा अगल-बगलमें बराबर खुदावे। बाहरका अर्धभाग छीलकर साफ करा दे (उसपर रंदा करा दे)। चारों ओर चौथाई अङ्गुल, जो शेषके आधेका आधा भाग है, भीतरसे भी छीलकर साफ (चिकना) करा दे। शेषार्धभागद्वारा उक्त खातकी सुन्दर मेखला बनवावे। मेखलाके भीतरी भागमें उस खातका कण्ठ तैयार करावे, जिसका सारा विस्तार मेखलाकी तीन-चौथाईके बराबर हो। कण्ठकी चौड़ाई एक या डेढ़ अङ्गुलके मापकी हो। उक्त स्रुक्के अग्रभागमें उसका मुख रहे, जिसका विस्तार चार या पाँच अङ्गुलका हो ॥१०—१४॥

मुखका मध्य भाग तीन या दो अङ्गुलका हो। उसे सुन्दर एवं शोभायमान बनाया जाय। उसकी लंबाई भी चौड़ाईके ही बराबर हो। उस मुखका मध्य भाग नीचा और परम सुन्दर होना चाहिये। स्रुक्के कण्ठदेशमें एक ऐसा छेद रहे, जिसमें कनिष्ठिका अङ्गुलि प्रविष्ट हो जाय। कुण्ड (अर्थात् स्रुक्के मुख) का शेष भाग अपनी रुचिके अनुसार विचित्र शोभासे सम्पन्न किया जाय। स्रुक्के अतिरिक्त एक स्रुवा भी आवश्यक है, जिसकी लंबाई दण्डसहित एक हाथकी हो। उसके डंडेको गोल बनाया जाय। उस गोल डंडेकी मोटाई दो अङ्गुलकी हो। उसे खूब सुन्दर बनाना चाहिये। स्रुवाका मुख-भाग कैसा हो? यह बताया जाता है। थोड़ी-सी कीचड़में गाय अथवा बछड़ेका पैर पड़नेपर जैसा पदचिह्न उभर आता है, ठीक वैसा ही स्रुवाका मुख बनाया जाय, अर्थात् उस मुखका मध्य भाग दो भागोंमें विभक्त रहे। उपर्युक्त अग्निकुण्डको गोबरसे लीपकर उसके भीतरकी भूमिपर बीचमें एक अङ्गुल मोटी एक रेखा खींचे, जो दक्षिणसे उत्तरकी ओर गयी हो। उस रेखाको 'वज्र' की संज्ञा दी गयी है। उस प्रथम उत्तराग्र रेखापर उसके दक्षिण और उत्तर पार्श्वमें दो पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। इन दोनों रेखाओंके बीचमें पुनः तीन पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। इनमें पहली रेखा दक्षिण भागमें हो और शेष दो क्रमशः उसके उत्तरोत्तर भागमें खींची जायँ। मन्त्रज्ञ पुरुष इस प्रकार उल्लेखन (रेखा-करण) करके उस भूमिका अभ्युक्षण (सेचन) करे। फिर प्रणवके उच्चारणपूर्वक भावनाद्वारा एक विष्टर (आसन) की कल्पना करके उसके ऊपर वैष्णवी शक्तिका आवाहन एवं स्थापन करे ॥ १५—२० ॥

देवीके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—'वे दिव्य रूपवाली हैं और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हैं।' तत्पश्चात् यह चिन्तन करे कि 'देवीको संतुष्ट करनेके लिये अग्निदेवके रूपमें साक्षात् श्रीहरि पधारे हैं।' साधक (उन दोनोंका पूजन करके शुद्ध कांस्यादि-पात्रमें रक्खी और ऊपरसे शुद्ध कांस्यादि पात्रद्वारा ढकी हुई अग्निको लाकर, क्रव्याद-अंशको अलग करके, ईक्षणादिसे शोधित उस*) अग्निको कुण्डके भीतर स्थापित करे। तत्पश्चात् उस अग्निमें प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तर्जनीके अग्रभागके बराबरकी) समिधाएँ देकर कुशोंद्वारा तीन बार परिसमूहन करे। फिर पूर्वादि सभी दिशाओंमें कुशास्तरण करके अग्निकी उत्तर दिशामें पश्चिमसे आरम्भ करके क्रमशः पूर्वादि दिशामें पात्रासादन करे—समिधा, कुशा, स्रुक्, स्रुवा, आज्यस्थाली, चरुस्थाली तथा कुशाच्छादित घी, (प्रणीता-पात्र, प्रोक्षणीपत्र) आदि वस्तुएँ रक्खे। इसके बाद प्रणीताको सामने रखकर उसे जलसे भर दे और कुशासे प्रणीताका जल लेकर प्रोक्षणीपात्रका प्रोक्षण करे। तदनन्तर उसे बायें हाथमें लेकर दाहिने हाथमें गृहीत प्रणीताके जलसे भर दे। प्रणीता और हाथके बीचमें पवित्रीका अन्तर रहना चाहिये। प्रोक्षणीमें गिराते समय प्रणीताके जलको भूमिपर नहीं गिरने देना चाहिये। प्रोक्षणीमें अग्निदेवका ध्यान करके उसे कुण्डकी योनिके समीप अपने सामने रक्खे। फिर उस प्रोक्षणीके जलसे आसादित वस्तुओंको तीन बार सींचकर समिधाओंके बोझको खोलकर उसके बन्धनको सरकाकर सामने रक्खे। प्रणीतापात्रमें पुष्प छोड़कर उसमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके उसे अग्निसे उत्तर दिशामें कुशके ऊपर स्थापित कर दे (और अग्नि तथा प्रणीताके मध्य भागमें प्रोक्षणीपात्रको कुशापर रख दे) ॥ २१—२५ ॥

तदनन्तर आज्यस्थालीको घीसे भरकर अपने आगे रक्खे। फिर उसे आगपर चढ़ाकर सम्प्लवन एवं उत्पवनकी क्रियाद्वारा घीका संस्कार करे। (उसकी विधि इस

* वह्निं शुद्धपात्रानीतं शुद्धपात्रोपरिस्थितम्।
क्रव्यादांशं परित्यज्य ईक्षणादिविशोधितम्॥ इति सोमशम्भुः

प्रकार है—) प्रादेशमात्र लंबे दो कुश हाथमें ले। उनके अग्रभाग खण्डित न हुए हों तथा उनके गर्भमें दूसरा कुश अङ्कुरित न हुआ हो। दोनों हाथोंको उत्तान रक्खे और उनके अङ्गुष्ठ एवं कनिष्ठिका अङ्गुलिसे उन कुशोंको पकड़े रहे। इस तरह उन कुशोंद्वारा घीको थोड़ा-थोड़ा उठाकर ऊपरकी ओर तीन बार उछाले। प्रज्वलित तृण आदि लेकर घीको देखे और उसमें कोई अपद्रव्य (खराब वस्तु) हो तो उसे निकाल दे। इसके बाद तृण अग्निमें फेंककर उस घीको आगपरसे उतार ले और सामने रक्खे। फिर स्रुक् और स्रुवाको लेकर उनके द्वारा होम-सम्बन्धी कार्य करे। पहले जलसे उनको धो ले। फिर अग्निसे तपाकर सम्मार्जन कुशों-द्वारा उनका मार्जन करे (उन कुशोंके अग्रभागोंद्वारा स्रुक्-स्रुवाके भीतरी भागका तथा मूल भागसे उनके बाह्य भागका मार्जन करना चाहिये)। तत्पश्चात् पुनः उन्हें जलसे धोकर आगसे तपावे और अपने दाहिने भागमें स्थापित कर दे। उसके बाद साधक प्रणवसे ही अथवा देवताके नामके आदिमें 'प्रणव' तथा अन्तमें 'नमः' पद लगाकर उसके उच्चारणपूर्वक होम करे ॥ २६—२९½ ॥

हवनसे पहले अग्निके गर्भाधानसे लेकर सम्पूर्ण संस्कार अङ्ग-व्यवस्थाके अनुसार सम्पन्न करने चाहिये। मतान्तरके अनुसार नामान्तव्रत, व्रतबन्धान्तव्रत (यज्ञोपवीतान्त), समावर्त-नान्त अथवा यज्ञाधिकारान्त संस्कार अङ्गानुसार करने चाहिये। साधक सर्वत्र प्रणवका उच्चारण करते हुए पूजनोपचार अर्पित करे और अपने वैभवके अनुसार प्रत्येक संस्कारके लिये अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा होम करे। पहला गर्भाधान-संस्कार है, दूसरा पुंसवन, तीसरा सीमन्तोन्नयन, चौथा जातकर्म, पाँचवाँ नामकरण, छठा चूडाकरण, सातवाँ व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत), आठवाँ वेदारम्भ, नवाँ समावर्तन तथा दसवाँ पत्नीसंयोग (विवाह-) संस्कार है, जो यज्ञके लिये अधिकार प्रदान करनेवाला है। क्रमशः एक-एक संस्कार-कर्मका चिन्तन और तदनुरूप पूजन करते हुए हृदय आदि अङ्ग-मन्त्रोंद्वारा प्रति कर्मके लिये आठ-आठ आहुतियाँ अर्पित करे* ॥ ३०—३५ ॥

तदनन्तर साधक मूलमन्त्रद्वारा स्रुवासे पूर्णाहुति दे। उस समय मन्त्रके अन्तमें 'वौषट्' पद लगाकर प्लुतस्वरसे सुस्पष्ट मन्त्रोच्चारण करना चाहिये। इस तरह वैष्णव-अग्निका संस्कार करके उसपर विष्णु-देवताके निमित्त चरु पकावे। वेदीपर भगवान् विष्णुकी स्थापना एवं आराधना करके मन्त्रोंका स्मरण करते हुए उनका पूजन करे। अङ्ग और आवरण-देवताओंसहित इष्टदेव श्रीहरिको आसन आदि उपचार अर्पित करते हुए उत्तम रीतिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। फिर गन्ध-पुष्पोंद्वारा अर्चना करके सुरश्रेष्ठ नारायणदेवका ध्यान करनेके अनन्तर अग्निमें समिधाओंका आधान करे और अग्नीश्वर श्रीहरिके समीप 'आघार' संज्ञक दो घृताहुतियाँ दे। इनमेंसे एकको तो वायव्य-कोणमें दे और दूसरीको नैर्ऋत्यकोणमें। यही इनके लिये क्रम है। तत्पश्चात् 'आज्यभाग' नामक दो आहुतियाँ क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशामें दे और उनमें अग्निदेवके दायें-बायें नेत्रकी भावना करे। शेष सब आहुतियोंको इन्हींके बीचमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक देना चाहिये। जिस क्रमसे देवताओंकी पूजा की गयी हो, उसी क्रमसे उनके लिये आहुति देनेका विधान है। घीसे इष्टदेवकी मूर्तिको तृप्त करे। इष्टदेव-सम्बन्धी हवन-संख्याकी अपेक्षा दशांशसे अङ्ग-देवताओंके लिये होम करे। घृत आदिसे, समिधाओंसे अथवा घृताक्त तिलोंसे सदा यजनीय देवताओंके लिये एक-एक सहस्र या एक-एक शत आहुतियाँ देनी चाहिये। इस प्रकार होमान्त-पूजन समाप्त करके स्नानादिसे शुद्ध हुए शिष्योंको गुरु बुलाकर अपने आगे बिठावे। वे सभी शिष्य उपवासव्रत किये हों। उनमें पाश-बद्ध पशुकी भावना करके उनका प्रोक्षण करे ॥ ३६—४२ ॥

---

* आचार्य सोमशम्भुने संस्कारोंके चिन्तनका क्रम इस प्रकार बताया है—अग्निस्थापन ही श्रीहरिके द्वारा वैष्णवी देवीके गर्भमें बीजका आधान है। शैव होम-कर्ममें वागीश शिवके द्वारा वागीश्वरी शिवाके गर्भमें बीजाधान होता है। तत्पश्चात् देवीके परिधान-संवरण, शौचाचमन आदिका चिन्तन करके हृदय-मन्त्र (नमः) के द्वारा गर्भाग्निका पूजन करे, यथा—'ॐ गर्भाग्नये नमः।' पूजनके पश्चात् उस गर्भकी रक्षाके लिये भावना-द्वारा देवीके पाणिपल्लवमें 'अस्त्राय फट्' बोलकर कुशाका कङ्कण बाँध दे। फिर पूर्वोक्त मन्त्रसे अथवा सद्योजात-मन्त्रसे अग्निकी पूजा कर गर्भाधान-संस्कारके निमित्त हृदय-मन्त्र (हृदयाय नमः) से ही आहुतियाँ दे। तृतीय मासमें पुंसवनकी भावना करके, वामदेव-मन्त्रसे पूजन करके शिरोमन्त्र (शिरसे स्वाहा) द्वारा आहुति देनेका विधान है। षष्ठ मासमें सीमन्तोन्नयनकी भावना और पूजा करके 'शिखायै वषट्' इस मन्त्रसे आहुतियाँ देनी चाहिये। इसी तरह नामकरणादि संस्कारोंका भी पूजन-हवनादिके द्वारा सम्पादन कर लेना चाहिये।

तदनन्तर उन सब शिष्योंको भावनाद्वारा अपने आत्मासे संयुक्त करके अविद्या और कर्मके बन्धनोंसे आबद्ध हो लिङ्गशरीरका अनुवर्तन करनेवाले चैतन्य (जीव) का, जो लिङ्गशरीरके साथ बँधा हुआ है, ध्यान-मार्गसे साक्षात्कार करके उसका सम्यक् प्रोक्षण करनेके पश्चात् वायुबीज (यं) के द्वारा उसके शरीरका शोषण करे। इसके बाद अग्निबीज (रं) के चिन्तनसे अग्नि प्रकट करके यह भावना करे कि 'ब्रह्माण्ड' संज्ञक सारी सृष्टि दग्ध होकर भस्मकी पर्वताकार राशिके समान स्थित है। तत्पश्चात् भावनाद्वारा ही जलबीज (वं) के चिन्तनसे अपार जलराशि प्रकट करके उस भस्मराशिको बहा दे और संसार अब वाणीमात्रमें ही शेष रह गया है—ऐसा स्मरण करे। तदनन्तर वहाँ (लं) बीजस्वरूपा भगवान्‌की पार्थिवी शक्तिका न्यास करे। फिर ध्यानद्वारा देखे कि समस्त तन्मात्राओंसे आवृत शुभ पार्थिव-तत्त्व विराजमान है। उससे एक अण्ड प्रकट हुआ है, जो उसीके आधारपर स्थित है और वही उसका उपादान भी है। उस अण्डके भीतर प्रणवस्वरूपा मूर्तिका चिन्तन करे ॥ ४१–४७ ॥

तदनन्तर अपने आत्मामें स्थित पूर्वसंस्कृत लिङ्ग-शरीरका उस पुरुषमें संक्रमण करावे, अर्थात् यह भावना करे कि वह पुरुष लिङ्गशरीरसे युक्त है। उसके उस शरीरमें सभी इन्द्रियोंके आकार पृथक्-पृथक् अभिव्यक्त हैं तथा वह पुरुष क्रमशः बढ़ता और पुष्ट होता जा रहा है। फिर ध्यानमें देखे कि वह अण्ड एक वर्षतक बढ़कर और पुष्ट होकर फूट गया है। उसके दो टुकड़े हो गये हैं। उसमें ऊपरवाला टुकड़ा द्युलोक है और नीचेवाला भूलोक। इन दोनोंके बीचमें प्रजापति पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है। इस प्रकार वहाँ उत्पन्न हुए प्रजापतिका ध्यान करके पुनः प्रणवसे उन शिशुरूप प्रजापतिका प्रोक्षण करे। फिर यथास्थान पूर्वोक्त न्यास करके उनके शरीरको मन्त्रमय बना दे। उनके ऊपर विष्णुहस्त रक्खे और उन्हें वैष्णव माने। इस तरह एक अथवा बहुत-से लोगोंके जन्मका ध्यानद्वारा प्रत्यक्ष करे (शिष्योंके भी नूतन दिव्य जन्मकी भावना करे)। तदनन्तर मूलमन्त्रसे शिष्योंके दोनों हाथ पकड़कर मन्त्रोपदेष्टा गुरु नेत्रमन्त्र (वौषट्) के उच्चारणपूर्वक नूतन एवं छिद्ररहित वस्त्रसे उनके नेत्रोंको बाँध दे। फिर देवाधिदेव भगवान्‌की यथोचित पूजा सम्पन्न करके तत्त्वज्ञ आचार्य हाथमें पुष्पाञ्जलि धारण करनेवाले उन शिष्योंको अपने पास पूर्वाभिमुख बैठावे ॥ ४८–५३ ॥

इस प्रकार गुरुद्वारा दिव्य नूतन जन्म पाकर वे शिष्य भी श्रीहरिको पुष्पाञ्जलि अर्पित करके पुष्प आदि उपचारोंसे उनका पूजन करें। तदनन्तर पुनः वासुदेवकी अर्चना करके वे गुरुके चरणोंका पूजन करें। दक्षिणारूपमें उन्हें अपना सर्वस्व अथवा आधी सम्पत्ति समर्पित कर दें। इसके बाद गुरु शिष्योंको आवश्यक शिक्षा दें और वे (शिष्य) नाम-मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करें। फिर मण्डलमें विराजमान शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्वक्सेनका यजन करें, जो द्वारपालके रूपमें अपनी तर्जनी अङ्गुलिसे लोगोंको तर्जना देते हुए अनुचित क्रियासे रोक रहे हैं। इसके बाद श्रीहरिकी प्रतिमाका विसर्जन करे। भगवान् विष्णुका सारा निर्माल्य विष्वक्सेनको अर्पित कर दे।

तदनन्तर प्रणीताके जलसे अपना और अग्निकुण्डका अभिषेक करके वहाँके अग्निदेवको अपने आत्मामें लीन कर ले। इसके पश्चात् विष्वक्सेनका विसर्जन करे। ऐसा करनेसे भोगकी इच्छा रखनेवाला साधक सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुको पा लेता है और मुमुक्षु पुरुष श्रीहरिमें विलीन होता—सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ५४–५८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुण्डनिर्माण और अग्नि-स्थापनसम्बन्धी कार्य आदिका वर्णन' विषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पचीसवाँ अध्याय

वासुदेव, संकर्षण आदिके मन्त्रोंका निर्देश तथा एक व्यूहसे लेकर द्वादश व्यूहतकके व्यूहोंका एवं पञ्चविंश और षड्विंश व्यूहका वर्णन

नारदजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं वासुदेव आदिके आराधनीय मन्त्रोंका लक्षण बता रहा हूँ। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूह-मूर्तियोंके नामके आदिमें ॐ, फिर क्रमशः 'अ आ अं अः' ये चार बीज तथा 'नमो भगवते' पद जोड़ने चाहिये और अन्तमें 'नमः' पदको जोड़ देना चाहिये। ऐसा करनेसे इनके पृथक्-पृथक् चार मन्त्र बन जाते हैं।* इसके बाद नारायण-मन्त्र है, जिसका स्वरूप है—'ॐ नमो नारायणाय।' 'ॐ तत्सद् ब्रह्मणे ॐ नमः।'—यह ब्रह्ममन्त्र है। 'ॐ विष्णवे नमः।'—यह विष्णुमन्त्र है। 'ॐ क्षौं ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमः।'—यह नरसिंहमन्त्र है। 'ॐ भूर्नमो भगवते वराहाय।'—यह भगवान् वराहका मन्त्र है। ये सभी मन्त्रराज हैं। उपर्युक्त नौ मन्त्रोंके वासुदेव आदि नौ नायक हैं, जो उपासकोंके वल्लभ (इष्टदेवता) हैं। इनकी अङ्ग-कान्ति क्रमशः जवाकुसुमके सदृश अरुण, हल्दीके समान पीली, नीली, श्यामल, लोहित, मेघ-सदृश, अग्नितुल्य तथा मधुके समान पिङ्गल है। तन्त्रवेत्ता पुरुषोंको स्वरके बीजोंद्वारा क्रमशः पृथक्-पृथक् 'हृदय' आदि अङ्गोंकी कल्पना करनी चाहिये। उन बीजोंके अन्तमें अङ्गोंके नाम रहने चाहिये—(यथा—ॐ आं हृदयाय नमः। ॐ ईं शिरसे स्वाहा। ॐ ऊं शिखायै वषट्। इत्यादि) ॥ १—५½ ॥

जिनके आदिमें व्यञ्जन अक्षर होते हैं, उनके लक्षण अन्य प्रकारके हैं। दीर्घ स्वरोंके संयोगसे उनके भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। उनके अन्तमें अङ्गोंके नाम होते हैं और उन अङ्ग-नामोंके अन्तमें 'नमः' आदि पद जुड़े होते हैं। (यथा—क्लां हृदयाय नमः। क्लीं शिरसे स्वाहा। इत्यादि)। ह्रस्व स्वरोंसे युक्त बीजवाले अङ्ग 'उपाङ्ग' कहलाते हैं। देवताके नाम-सम्बन्धी अक्षरोंको पृथक्-पृथक् करके, उनमेंसे प्रत्येकके अन्तमें बिन्द्वात्मक बीजका योग करके उनसे अङ्गन्यास करना भी उत्तम माना गया है। अथवा नामके आदि अक्षरको दीर्घ स्वरों एवं ह्रस्व स्वरोंसे युक्त करके अङ्ग-उपाङ्गकी कल्पना करे और उनके द्वारा क्रमशः न्यास करे। हृदय आदि अङ्गोंकी कल्पनाके लिये व्यञ्जनोंका यही क्रम है। देवताके मन्त्रका जो अपना स्वर-बीज है, उसके अन्तमें उसका अपना नाम देकर अङ्गसम्बन्धी नामोंद्वारा पृथक्-पृथक् वाक्यरचना करके उससे युक्त हृदयादि द्वादश अङ्गोंकी कल्पना करे। पाँचसे लेकर बारह अङ्गोंतकके न्यास-वाक्यकी कल्पना करके सिद्धिके अनुरूप उनका जप करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—ये छः अङ्ग हैं। मूलमन्त्रके बीजोंका इन अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। बारह अङ्ग ये हैं—हृदय, सिर, शिखा, हाथ, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, जानु, जङ्घा और पैर। इनमें क्रमशः न्यास करना चाहिये। कं टं पं शं वैनतेयाय नमः।—यह गरुडसम्बन्धी बीजमन्त्र है। खं ठं फं षं गदायै नमः।—यह गदा-मन्त्र है। गं डं बं सं पुष्ट्यै नमः।—यह पुष्टिदेवी-सम्बन्धी मन्त्र है। घं ढं भं हं श्रियै नमः।—यह श्रीमन्त्र है। चं णं मं क्षं—यह पाञ्चजन्य (शङ्ख) का मन्त्र है। छं तं पं कौस्तुभाय नमः।—यह कौस्तुभ-मन्त्र है। जं खं वं सुदर्शनाय नमः।—यह सुदर्शनचक्रका मन्त्र है। सं वं दं लं श्रीवत्साय नमः।—यह श्रीवत्स-मन्त्र है ॥ ६—१४ ॥

ॐ वं वनमालायै नमः।—यह वनमालाका और ॐ पं० पद्मनाभाय नमः।—यह पद्म या पद्मनाभका मन्त्र है। बीजरहित पदवाले मन्त्रोंका अङ्गन्यास उनके पदोंद्वारा ही करना चाहिये। नामसंयुक्त जात्यन्त पदोंद्वारा हृदय आदि पाँच अङ्गोंमें पृथक्-पृथक् न्यास करे। पहले प्रणवका उच्चारण, फिर हृदय आदि पूर्वोक्त पाँचों अङ्गोंके नाम; क्रम यह है। (उदाहरणके लिये यों समझना चाहिये—'ॐ हृदयाय नमः।' इत्यादि।) पहले प्रणव तथा हृदय-मन्त्रका उच्चारण करे। (अर्थात्—'ॐ हृदयाय नमः' कहकर हृदयका स्पर्श करे।) फिर 'पराय शिरसे स्वाहा' बोलकर

---

* ॐ अं नमो भगवते वासुदेवाय नमः। ॐ आं नमो भगवते संकर्षणाय नमः। ॐ अं नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः। ॐ अः नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः।

१. हृदयकी 'नमः', सिरकी 'स्वाहा', शिखाकी 'वषट्', कवचकी 'हुम्', नेत्रकी 'वौषट्' तथा अस्त्रकी 'फट्' जाति है।

मस्तकका स्पर्श करे । तत्पश्चात् इष्टदेवका नाम लेकर शिखाको छूये । अर्थात् 'वासुदेवाय शिखायै वषट् ।'—बोलकर शिखाका स्पर्श करे। इसके बाद 'आत्मने कवचाय हुम् ।'—बोलकर कवच-न्यास करे। पुनः देवताका नाम लेकर, अर्थात् 'वासुदेवाय अस्त्राय फट् ।'—बोलकर अस्त्र-न्यासकी क्रिया पूरी करे। आदिमें 'ॐकारादि' जो नामात्मक पद है, उसके अन्तमें 'नमः' पद जोड़ दे और उस नामात्मक पदको चतुर्थ्यन्त करके बोले। एक व्यूहसे लेकर षड्विंश व्यूहतकके लिये यह समान मन्त्र है। कनिष्ठासे लेकर सभी अङ्गुलियोंमें हाथके अग्रभागमें प्रकृतिका अपने शरीरमें ही पूजन करे। 'पराय' पदसे एक-मात्र परम पुरुष परमात्माका बोध होता है। वही एकसे दो हो जाता है, अर्थात् प्रकृति और पुरुष—दो व्यूहोंमें अभिव्यक्त होता है। 'ॐ परायाव्यक्तात्मने नमः ।'—यह व्यापक-मन्त्र है। वसु, अर्क (सूर्य) और अग्नि—ये त्रिव्यूहात्मक मूर्तियाँ हैं—इन तीनोंमें अग्निका न्यास करके हाथ और सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक-न्यास करे ॥ १५—२० ॥

वायु और अर्कका क्रमशः दायें और बायें दोनों हाथोंकी अँगुलियोंमें न्यास करे तथा हृदयमें मूर्तिमान् अग्निका चिन्तन करे। त्रिव्यूह-चिन्तनका यही क्रम है। चतुर्व्यूहमें चारों वेदोंका न्यास होता है। ऋग्वेदका सम्पूर्ण देह तथा हाथमें व्यापक-न्यास करना चाहिये। अङ्गुलियोंमें यजुर्वेदका, हथेलियोंमें अथर्ववेदका तथा हृदय और चरणोंमें शीर्ष-स्थानीय सामवेदका न्यास करे। पञ्चव्यूहमें पहले आकाशका पूर्ववत् शरीर और हाथमें व्यापक-न्यास करे। फिर अँगुलियोंमें भी आकाशका न्यास करके वायु, ज्योति, जल और पृथ्वीका क्रमशः मस्तक, हृदय, गुह्य और चरण—इन अङ्गोंमें न्यास करे। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन पाँच तत्त्वोंको 'पञ्चव्यूह' कहा गया है। मन, श्रवण, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका—इन छः इन्द्रियोंको षड्व्यूहकी संज्ञा दी गयी है। मनका व्यापक-न्यास करके शेष पाँचका अङ्गुष्ठ आदिके क्रमसे पाँचों अँगुलियोंमें तथा सिर, मुख, हृदय, गुह्य और चरण—इन पाँच अङ्गोंमें भी न्यास करे। यह 'करणात्मक व्यूहका न्यास' कहा गया है। आदिमूर्ति जीव सर्वत्र व्यापक है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये सात लोक 'सप्तव्यूह' कहे गये हैं। इनमेंसे प्रथम भूर्लोकका हाथ एवं सम्पूर्ण शरीर न्यास करे। भुवर्लोक आदि पाँच लोकोंका अङ्गुष्ठ आदिके क्रमसे पाँचों अँगुलियोंमें तथा सातवें सत्यलोकका हथेलीमें न्यास करे। इस प्रकार यह लोकात्मक सप्त व्यूह है, जिसका पूर्वोक्त क्रमसे शरीरमें न्यास किया जाता है। अब यज्ञात्मक सप्तव्यूहका परिचय दिया जाता है। सप्तयज्ञस्वरूप यज्ञपुरुष परमात्मदेव श्रीहरि सम्पूर्ण शरीर एवं सिर, ललाट, मुख, हृदय, गुह्य और चरणमें स्थित हैं, अर्थात् उन अङ्गोंमें उनका न्यास करना चाहिये। वे यज्ञ इस प्रकार हैं—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम—ये छः यज्ञ तथा सातवें यज्ञात्मा—इन सात रूपोंको 'यज्ञमय सप्तव्यूह' कहा गया है ॥ २१—२८½ ॥

बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये आठ तत्त्व अष्टव्यूहरूप हैं। इनमेंसे बुद्धितत्त्वका हाथ और शरीरमें व्यापक-न्यास करे। फिर उपर्युक्त आठों तत्त्वोंका क्रमशः चरणोंके तलवों, मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य देश और पैर—इन आठ अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। इन सबको 'अष्टव्यूहात्मक पुरुष' कहा गया है। जीव, बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-गुण—इनका समुदाय 'नवव्यूह' है। इनमेंसे जीवका दोनों हाथोंके अँगूठोंमें न्यास करे और शेष आठ तत्त्वोंका क्रमशः दाहिने हाथकी तर्जनीसे लेकर बायें हाथकी तर्जनीतक आठ अंगुलियोंमें न्यास करे। सम्पूर्ण देह, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु और पाद—इन नौ स्थानोंमें उपर्युक्त नौ तत्त्वोंका न्यास करके इन्द्रका पूर्ववत् व्यापक-न्यास किया जाय तो यही 'दशव्यूहात्मक न्यास' हो जाता है ॥ २९—३३ ॥

दोनों अङ्गुष्ठोंमें, तलद्वयमें, तर्जनी आदि आठ अँगुलियोंमें तथा सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य (उपस्थ और गुदा), जानुद्वय और पादद्वय—इन ग्यारह अङ्गोंमें ग्यारह इन्द्रियात्मक तत्त्वोंका जो न्यास किया जाता है, उसे 'एकादशव्यूह-न्यास' कहा गया है। वे ग्यारह तत्त्व इस प्रकार हैं—मन, श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ। मनका व्यापक-न्यास करे। अङ्गुष्ठद्वयमें श्रवणेन्द्रियका न्यास करके शेष त्वचा आदि आठ तत्त्वोंका तर्जनी आदि आठ अँगुलियोंमें न्यास करना चाहिये। शेष जो ग्यारहवाँ तत्त्व (उपस्थ) है, उसका तलद्वयमें न्यास करे। मस्तक, ललाट, मुख, हृदय,

नाभि, चरण, गुह्य, ऊरुद्वय, जङ्घा, गुल्फ और पैर—इन ग्यारह अङ्गोंमें भी पूर्वोक्त ग्यारह तत्त्वोंका क्रमशः न्यास करे। विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, केशव, नारायण, माधव और गोविन्द—यह 'द्वादशात्मक व्यूह' है। इनमेंसे विष्णुका तो व्यापक-न्यास करे और शेष भगवन्नामोंका अङ्गुष्ठ आदि दस अँगुलियों एवं करतलमें न्यास करके, फिर पादतल, दक्षिण पाद, दक्षिण जानु, दक्षिण कटि, सिर, शिखा, वक्ष, वाम कटि, मुख, वाम जानु और वाम पादादिमें भी न्यास करना चाहिये॥ ३४—३९॥

यह द्वादशव्यूह हुआ। अब पञ्चविंश एवं षड्विंश व्यूहका परिचय दिया जाता है। पुरुष, बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ, भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पचीस तत्त्व हैं। इनमेंसे पुरुषका सर्वाङ्गमें व्यापक-न्यास करके, दसका अङ्गुष्ठ आदिमें न्यास करे। शेषका करतल, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु, जानु, पैर, जानु, उपस्थ, हृदय और मूर्धामें क्रमशः न्यास करे। इन्हींमें सर्वप्रथम परम-पुरुष परमात्माको सम्मिलित करके उनका पूर्ववत् व्यापक-न्यास कर दिया जाय तो षड्विंश व्यूहका न्यास सम्पन्न हो जाता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि अष्टदल-कमलकर्णिकामें प्रकृतिका चिन्तन करके उसका पूजन करे। उस कमलके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दलोंमें हृदय आदि चार अङ्गोंका न्यास करे। अग्निकोण आदिके दलोंमें अस्त्र एवं वैनतेय (गरुड) आदिको पूर्ववत् स्थापित करे। इसी तरह पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि दिक्पालोंका चिन्तन करे। इन सबके ध्यान-पूजनकी विधि एक-सी है। (सूर्य, सोम और अग्निरूप) त्रिव्यूहमें अग्निका स्थान मध्यमें है। पूर्वादि दिशाओंके दलोंमें जिनका आवास है, उन देवताओंके साथ कमलकी कर्णिकामें नाभस (आकाशकी भाँति व्यापक आत्मा) तथा मानस (अन्तरात्मा) विराजमान हैं॥ ४०—४८॥

साधकको चाहिये कि वह सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये तथा राज्यपर विजय पानेके लिये विश्वरूप (परमात्मा-) का यजन करे। सम्पूर्ण व्यूहों, हृदय आदि पाँचों अङ्गों, गरुड आदि तथा इन्द्र आदि दिक्पालोंके साथ ही उन श्रीहरिकी पूजाका विधान है। ऐसा करनेवाला उपासक सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर सकता है। अन्तमें विष्वक्सेनकी नाम-मन्त्रसे पूजा करे। नामके साथ 'वौं' बीज लगा ले, अर्थात् 'वौं विष्वक्सेनाय नमः।' बोलकर उनके लिये पूजनोपचार अर्पित करे॥ ४९-५०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वासुदेवादि मन्त्रोंके लक्षण [तथा न्यास] का वर्णन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

मुद्राओंके लक्षण

नारदजी कहते हैं—मुनिगण! अब मैं मुद्राओंका लक्षण बताऊँगा। सानिध्य (संनिधापिनी) आदि मुद्राके प्रकार-भेद हैं। पहली मुद्रा अञ्जलि है, दूसरी वन्दनी है और तीसरी हृदयानुगा है। बायें हाथकी मुट्ठीसे दाहिने हाथके अँगूठेको बाँध ले और बायें अङ्गुष्ठको ऊपर उठाये रक्खे। सारांश यह है कि बायें और दाहिने—दोनों हाथोंके अँगूठे ऊपरकी ओर ही उठे रहें। यही 'हृदयानुगा' मुद्रा है।

१. दोनों हाथोंके अँगूठोंको ऊपर करके मुट्ठी बाँधकर दोनों मुट्ठियोंको परस्पर सटानेसे 'संनिधापिनी मुद्रा' होती है।

२. 'आदि' पदसे 'आवाहनी' आदि मुद्राओंको ग्रहण करना चाहिये। उनके लक्षण ग्रन्थान्तरसे जानने चाहिये।

३. यहाँ अञ्जलिको प्रथम मुद्रा कहा गया है 'अञ्जलि' और 'वन्दनी'—दोनों मुद्राएँ प्रसिद्ध हैं; अतः उनका विशेष लक्षण यहाँ नहीं दिया गया है। तथापि मन्त्रमहार्णवमें अञ्जलिको ही 'अञ्जलिमुद्रा' कहते हैं, यह परिभाषा दी गयी है—'अञ्जल्यञ्जलिमुद्रा स्यात्।'

४. हाथ जोड़कर नमस्कार करना ही 'वन्दनी' मुद्रा है। ईशान शिव गुरुदेव-पद्धतिमें इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

'बद्ध्वाञ्जलिं पङ्कजकोशकल्पं यद्दक्षिणज्येष्ठिकया तु वामाम्।
ज्येष्ठां समाक्रम्य तु वन्दनीयं मुद्रा नमस्कारविधौ प्रयोज्या॥'

अर्थात् कमल-मुकुलके समान अञ्जलि बाँधकर, जब दाहिने अँगूठेसे बायें अँगूठेको दबा दिया जाय तो 'वन्दनी मुद्रा' होती है। इसका प्रयोग नमस्कारके लिये होना चाहिये। (उत्तरार्ध क्रियापाद सप्तम पटल ९)

(इसीको कोई 'संरोधिनी'[1] और कोई 'निष्ठुरा'[2] कहते हैं)। व्यूहार्चनमें ये तीन मुद्राएँ साधारण हैं । अब आगे ये असाधारण (विशेष) मुद्राएँ बतायी जाती हैं । दोनों हाथोंमें अँगूठेसे कनिष्ठातककी तीन अँगुलियोंको नवाकर कनिष्ठा आदिको क्रमशः मुक्त करनेसे आठ मुद्राएँ बनती हैं । 'अ क च ट त प य श'—ये जो आठ वर्ग हैं, उनके जो पूर्व बीज (अं कं चं टं इत्यादि) हैं, उनको ही सूचित करनेवाली उक्त आठ मुद्राएँ हैं—ऐसा निश्चय करे । फिर पाँचों अँगुलियोंको ऊपर करके हाथको सम्मुख करनेसे जो नवीं मुद्रा बनती है, वह नवम बीज (क्षं) के लिये है ॥ १—४½ ॥

दाहिने हाथके ऊपर बायें हाथको उतान रखकर उसे धीरे-धीरे नीचेको झुकाये । यह वराहकी मुद्रा मानी गयी है । ये क्रमशः अङ्गोंकी मुद्राएँ हैं । बायीं मुट्ठीमें बँधी हुई एक-एक अँगुलीको क्रमशः मुक्त करे और पहलेकी मुक्त हुई अँगुलीको फिर सिकोड़ ले । बायें हाथमें ऐसा करनेके बाद दाहिने हाथमें भी यही क्रिया करे । बायीं मुट्ठीके अँगूठेको ऊपर उठाये रक्खे । ऐसा करनेसे मुद्राएँ सिद्ध होती हैं ॥ ५—७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मुद्रालक्षण-वर्णन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

शिष्योंको दीक्षा देनेकी विधिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—महर्षिगण ! अब मैं सब कुछ देनेवाली दीक्षाका वर्णन करूँगा । कमलाकार मण्डलमें श्रीहरि-का पूजन करे । दशमी तिथिको समस्त यज्ञ-सम्बन्धी द्रव्यका संग्रह एवं संस्कार (शुद्धि) करके रख ले । नरसिंह-बीज-मन्त्र (क्ष्रौं) से सौ बार उसे अभिमन्त्रित करके, उस मन्त्र-के अन्तमें 'फट्' लगाकर बोले तथा राक्षसोंका विनाश करने-के उद्देश्यसे सब ओर सरसों छींटे । फिर वहाँ सर्वस्वरूपा प्रासादरूपिणी शक्तिका न्यास करे । सर्वौषधियोंका संग्रह करके बिखेरनेके उपयोगमें आनेवाली सरसों आदि वस्तुओंको शुभ पात्रमें रखकर साधक वासुदेव-मन्त्रसे उनका सौ बार अभिमन्त्रण करे । तदनन्तर वासुदेवसे लेकर नारायणपर्यन्त पूर्वोक्त पाँच मूर्तियों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण) के मूल-मन्त्रोंद्वारा पञ्चगव्य तैयार करे और कुशाग्रसे पञ्चगव्य छिड़ककर उस भूमिका प्रोक्षण करे । फिर वासुदेव-मन्त्रसे उत्तान हाथके द्वारा समस्त विकिर वस्तुओंको सब ओर बिखेरे । उस समय पूर्वाभिमुख खड़ा हो, मन-ही-मन भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए तीन बार उन विकिर वस्तुओंको सब ओर छींटे । तत्पश्चात् वर्धनीसहित कलशपर स्थापित भगवान् विष्णुका अङ्गसहित पूजन करे । अस्त्र-मन्त्र-से वर्धनीको सौ बार अभिमन्त्रित करके अविच्छिन्न जलधारासे सींचते हुए उसे ईशानकोणकी ओर ले जाय । कलशको पीछे ले जाकर विकिरपर स्थापित करे । विकिर-द्रव्योंको कुशद्वारा एकत्र करके कुम्भेश और कर्करीका यजन करे ॥ १—८ ॥

पञ्चरत्नयुक्त सवस्त्र वेदीपर श्रीहरिकी पूजा करे । अग्नि-में भी उनकी अर्चना करके पूर्ववत् मन्त्रोंद्वारा उनका संतर्पण करे । तत्पश्चात् पुँण्डरीक-मन्त्र[1]से उखा (पात्रविशेष)का प्रक्षालन करके उसके भीतर सुगन्धयुक्त घी पोत दे । इसके

---

१. यहाँ मूलमें 'हृदयानुगा' मुद्राका जो लक्षण दिया गया है, वही अन्यत्र 'संरोधिनी मुद्रा'का लक्षण है । मन्त्रमहार्णवमें 'संनिधापिनी मुद्रा'का लक्षण देकर कहा है—'अन्तःप्रवेशिताङ्गुष्ठा सैव संरोधिनी मता ।' अर्थात् संनिधापिनीको ही यदि उसकी मुट्ठियोंके भीतर अङ्गुष्ठका प्रवेश हो तो 'संरोधिनी' कहते हैं । हृदयानुगामें बायीं मुट्ठीके भीतर दाहिनी मुट्ठीका अँगूठा रहता है और बायां अँगूठा खुला रहता है, परंतु संरोधिनीमें दोनों ही अँगूठे मुट्ठीके भीतर रहते हैं, यही अन्तर है ।

२. ईशानशिवगुरुदेवमिश्रने शब्दान्तरसे यही बात कही है । उन्होंने संनिरोधिनीको निष्ठुराकी संज्ञा दी है—'तत्र तन्मुष्ट्योः करयोः स्थितोर्ध्वकयेष्ठायुगं यत्र समुन्नताग्रम् । सा संनिधापिन्यथ सैव गर्भाङ्गुष्ठा भवेन्न्वेदिह निष्ठुराख्या ॥'

१. पुण्डरीक-मन्त्र—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

बाद साधक उसमें गायका दूध भरकर वासुदेव-मन्त्रसे उसका अवेक्षण करे और संकर्षण-मन्त्रसे सुसंस्कृत किये गये दूधमें घृताक्त चावल छोड़ दे। इसके बाद प्रद्युम्न-मन्त्रसे करछुल-द्वारा उस दूध और चावलका आलोडन करके धीरे-धीरे उसे उलटे-पलटे। जब खीर या चरु पक जाय, तब आचार्य अनिरुद्ध-मन्त्र पढ़कर उसे आगसे नीचे उतार दे। तदनन्तर उसपर जल छिड़के और घृतालेपन करके हाथमें भस्म लेकर उसके द्वारा नारायण-मन्त्रसे ललाट एवं पार्श्व-भागोंमें ऊर्ध्व-पुण्ड्र करे। इस प्रकार सुन्दर संस्कारयुक्त चरुके चार भाग करके एक भाग इष्टदेवको अर्पित करे, दूसरा भाग कलशको चढ़ावे, तीसरे भागसे अग्निमें तीन बार आहुति दे और चौथे भागको गुरु शिष्योंके साथ बैठकर खाय; इससे आत्मशुद्धि होती है। (दूसरे दिन एकादशीको) प्रातःकाल ऐसे वृक्षसे दाँतन ले, जो दूधवाला हो। उस दाँतनको नारायण-मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर ले। उसका दन्तशुद्धिके लिये उपयोग करके फिर उसे त्याग दे। अपने पातकका स्मरण करके पूर्व, अग्निकोण, उत्तर अथवा ईशानकोणकी ओर मुँह करके अच्छी तरह स्नान करे। फिर 'शुभ' एवं 'सिद्ध' की भावना करके, अर्थात् 'मैं निष्पाप एवं शुद्ध होकर शुभ सिद्धिकी ओर अग्रसर हुआ हूँ'—ऐसा अनुभव करके आचमन-प्राणायामके पश्चात् मन्त्रोपदेष्टा गुरु भगवान् विष्णु-से प्रार्थना करके उनकी परिक्रमाके पश्चात् पूजागृहमें प्रवेश करे ॥ ९—१७ ॥

प्रार्थना इस प्रकार करे—'देव! संसार-सागरमें मग्न पशुओंको पाशसे छुटकारा दिलानेके लिये आप ही शरणदाता हैं। आप सदा अपने भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखते हैं। देवदेव! आज्ञा दीजिये, प्राकृत पाश-बन्धनोंसे बँधे हुए इन पशुओंको आज आपकी कृपासे मैं मुक्त करूँगा।' देवेश्वर श्रीहरिसे इस प्रकार प्रार्थना करके पूजागृहमें प्रविष्ट हो, गुरु पूर्ववत् अग्नि आदिकी धारणाओंद्वारा शिष्यभूत समस्त पशुओंका शोधन करके संस्कार करनेके पश्चात्, उनका वासुदेवादि मूर्तियोंसे संयोग करे। शिष्योंके नेत्र बाँधकर उन्हें मूर्तियोंकी ओर देखनेका आदेश दे। शिष्य उन मूर्तियोंकी ओर पुष्पाञ्जलि फेंकें, तदनुसार गुरु उनका नाम-निर्देश करें। पूर्ववत् शिष्यों-से क्रमशः मूर्तियोंका मन्त्ररहित पूजन करावे। जिस शिष्यके हाथका फूल जिस मूर्तिपर गिरे, गुरु उस शिष्यका वही नाम रक्खे। कुमारी कन्याके हाथसे काता हुआ लाल रंगका सूत लेकर उसे छः गुना करके बट दे। उस छः गुने सूतकी लंबाई पैरके अँगूठेसे लेकर शिखातककी होनी चाहिये। फिर उसे भी मोड़कर तिगुना कर ले। उक्त त्रिगुणित सूतमें प्रक्रिया-भेदसे स्थित उस प्रकृति देवीका चिन्तन करे, जिसमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है और जिससे ही समस्त जगत्का प्रादुर्भाव हुआ करता है। उस सूत्रमें प्राकृतिक पाशोंको तत्त्वकी संख्याके अनुसार ग्रथित करे, अर्थात् २४ गाँठें लगाकर उनको प्राकृतिक पाशोंके प्रतीक समझे। फिर उस ग्रन्थियुक्त सूतको प्यालेमें रखकर कुण्डके पास स्थापित कर दे। तदनन्तर सभी तत्त्वोंका चिन्तन करके गुरु उनका शिष्य-के शरीरमें न्यास करे। तत्त्वोंका वह न्यास सृष्टि-क्रमके अनुसार प्रकृतिसे लेकर पृथिवीपर्यन्त होना चाहिये॥ १८—२६॥

तीन, पाँच, दस अथवा बारह जितने भी सूत्र-भेद सम्भव हों, उन सब सूत्र-भेदोंके द्वारा बटे हुए उस सूत्रको ग्रथित करके देना चाहिये। तत्त्वचिन्तक पुरुषोंके लिये यही उचित है। हृदयसे लेकर अङ्गपर्यन्त पाँच अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्र पढ़कर सम्पूर्ण भूतोंको प्रकृतिक्रमसे (अर्थात् कार्य-तत्त्व-का कारण-तत्त्वमें लयके क्रमसे) तन्मात्रास्वरूपमें लीन करके उस मायामय सूत्रमें और पशु (जीव-)के शरीरमें भी प्रकृति, लिङ्गशक्ति, कर्ता, बुद्धि तथा मनका उपसंहार करे। तदनन्तर पञ्चतन्मात्र, बुद्धि, कर्म और पञ्चमहाभूत—इन बारह रूपों-में अभिव्यक्त द्वादशात्माका सूत्र और शिष्यके शरीरमें चिन्तन करे। तत्पश्चात् इच्छानुसार सृष्टिकी सम्पात-विधिसे हवन करके, सृष्टि-क्रमसे एक-एकके लिये सौ-सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति करे। प्यालेमें रखे हुए ग्रथित सूत्रको ऊपरसे ढककर उसे कुम्भेशको अर्पित करे। फिर यथोचित रीतिसे अधिवासन करके भक्त शिष्यको दीक्षा दे। करनी, कैंची, धूल या बालू, खड़िया मिट्टी और अन्य उपयोगी वस्तुओंका भी संग्रह करके उन सबको उसके वामभागमें स्थापित कर दे। फिर मूल-मन्त्रसे उनका स्पर्श करके अधिवासित करे। तत्पश्चात् श्रीहरिके स्मरणपूर्वक कुशोंपर भूतोंके लिये बलि दे और कहे—'नमो भूतेभ्यः।' इसके बाद चँदोवों, कलशों और लड्डुओंसे मण्डपको सुसज्जित करके मण्डलके भीतर भगवान् विष्णुका पूजन करे। फिर अग्निको घीसे तृप्त करके, शिष्योंको पास बुलाकर बद्धपद्मासनसे बिठावे और दीक्षा दे। बारी-बारीसे उन सबका प्रोक्षण करके विष्णुहस्तसे उनके मस्तकका स्पर्श करे। प्रकृतिसे विकृतिपर्यन्त, अधिभूत और अधिदैवतसहित सम्पूर्ण सृष्टिको आध्यात्मिक करके अर्थात्

सबको अपने आत्मामें स्थित मानकर, हृदयमें ही क्रमशः उसका संहार करे ॥ २७—३६½ ॥

इससे तन्मात्रस्वरूप हुई सारी सृष्टि जीवके समान हो जाती है । इसके बाद कुम्भेश्वरसे प्रार्थना करके गुरु पूर्वोक्त सूत्रका संस्कार करनेके अनन्तर, अग्निके समीप आ, उसको अपने पास ही रख ले । फिर मूल मन्त्रसे सद्योशके लिये सौ आहुतियाँ दे । इसके बाद उदासीनभावसे स्थित सद्योशको पूर्णाहुति अर्पित करके गुरु श्वेत रज (बालू) हाथमें लेकर उसे मूल-मन्त्रसे सौ बार अभिमन्त्रित करे । फिर उससे शिष्यके हृदयपर ताडन करे । उस समय वियोगवाची क्रिया-पदसे युक्त बीज-मन्त्रों एवं क्रमशः पादादि इन्द्रियोंसे घटित वाक्यकी योजना करके अन्तमें 'हुं फट्' का उच्चारण करे* । इस प्रकार पृथिवी आदि तत्त्वोंका वियोग कराकर आचार्य भावनाद्वारा उन्हें अग्निमें होम दे । इस तरह कार्य-तत्त्वोंका कारण-तत्त्वोंमें होम अथवा लय करते हुए क्रमशः अखिल तत्त्वोंके आश्रयभूत श्रीहरिमें सबका लय कर दे । विद्वान् पुरुष इसी क्रमसे सब तत्त्वोंको श्रीहरितक पहुँचाकर, उन सम्पूर्ण तत्त्वोंके अधिष्ठानका स्मरण करे । उक्त रीतिसे ताडन-द्वारा भूतों और इन्द्रियोंसे वियोग कराकर शुद्ध हुए शिष्यको अपनावे और प्रकृतिसे उसकी समताका सम्पादन करके पूर्वोक्त अग्निमें उसके उस प्राकृतभावका भी हवन कर दे । फिर गर्भाधान, जातकर्म, भोग और लयका अनुष्ठान करके उस-उस कर्मके निमित्त वहाँ आठ-आठ बार शुद्ध्यर्थ होम करे। तदनन्तर आचार्य पूर्णाहुतिद्वारा शुद्ध तत्त्वका उद्धार करके अव्याकृत प्रकृतिपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्का क्रमानुसार परम तत्त्वमें लय कर दे । उस परम तत्त्वको भी ज्ञानयोगसे परमात्मामें विलीन करके बन्धनमुक्त हुए जीवको अविनाशी परमात्मपद-में प्रतिष्ठित करे । तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष यह अनुभव करे कि 'शिष्य शुद्ध, बुद्ध, परमानन्द-संदोहमें निमग्न एवं कृतकृत्य हो चुका है ।' ऐसा चिन्तन करनेके पश्चात् गुरु पूर्णाहुति दे । इस प्रकार दीक्षा-कर्मकी समाप्ति होती है ॥ ३७—४७ ॥

अब मैं उन प्रयोग-सम्बन्धी मन्त्रोंका वर्णन करता हूँ, जिनसे दीक्षा, होम और लय सम्पादित होते हैं । 'ॐ यं भूतानि वियुङ्क्ष्व हुं फट् ।' (अर्थात् भूतोंको मुझसे अलग करो ।)—इस मन्त्रसे ताडन करनेका विधान है । इसके द्वारा भूतोंसे वियोजन (बिलगाव) होता है । यहाँ वियोजन-के दो मन्त्र हैं । एक तो वही है, जिसका ऊपर वर्णन हुआ है और दूसरा इस प्रकार है—'ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम् ।' (मैं भूतोंको अपनेसे दूर गिराता हूँ) । इस मन्त्रसे 'आपातन' (वियोजन) करके पुनः दिव्य प्रकृतिसे यों संयोजन किया जाता है । उसके लिये मन्त्र सुनो— 'ॐ यं भूतानि युङ्क्ष्व ।' अब होम-मन्त्रका वर्णन करता हूँ । उसके बाद पूर्णाहुतिका मन्त्र बताऊँगा । 'ॐ भूतानि संहर स्वाहा ।' —यह होम-मन्त्र है और 'ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं वौषट् ।' —यह पूर्णाहुति-मन्त्र है । पूर्णाहुतिके पश्चात् तत्त्वमें शिष्यको संयुक्त करे । विद्वान् पुरुष इसी तरह समस्त तत्त्वोंका क्रमशः शोधन करे । तत्त्वोंके अपने-अपने बीजके अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर ताडनादिपूर्वक तत्त्व-शुद्धिका सम्पादन करे ॥ ४८—५३ ॥

'ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि ।' 'ॐ दें (नमः) बुद्धीन्द्रियाणि ।'—इन पदोंके अन्तमें 'वियुङ्क्ष्व हुं फट् ।' की संयोजना करे । पूर्वोक्त 'यं' बीजके समान ही इन उपर्युक्त बीजोंसे भी ताडन आदिका प्रयोग होता है । 'ॐ सुं गन्धतन्मात्रे वियुङ्क्ष्व हुं फट् ।', 'ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं स्वं युङ्क्ष्व प्रकृत्या अं जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा ।'—ये क्रमशः संयोजन और होमके मन्त्र हैं । तदनन्तर पूर्णाहुतिका विधान है । इसी प्रकार उत्तरवर्ती कर्मोंमें भी प्रयोग किया जाता है । ॐ रां रसतन्मात्रे । ॐ लें रूपतन्मात्रे । ॐ वं स्पर्शतन्मात्रे । ॐ यं शब्द-तन्मात्रे । ॐ मं नमः । ॐ सों अहंकारे । ॐ नं बुद्धौ । ॐ ॐ प्रकृतौ । यह दीक्षायोग एकव्यूहात्मक मूर्तिके लिये संक्षेप-से बताया गया है । नवव्यूहादिक मूर्तियोंके विषयमें भी ऐसा ही प्रयोग है । मनुष्य प्रकृतिको दग्ध करके उसे निर्वाणस्वरूप परमात्मामें लीन कर दे । फिर भूतोंकी शुद्धि करके कर्मेन्द्रियोंका शोधन करे ॥ ५४—५९ ॥

तत्पश्चात् ज्ञानेन्द्रियोंका, तन्मात्राओंका, मन-बुद्धि एवं अहंकारका तथा लिङ्गात्माका शोधन करके सबके अन्तमें पुनः प्रकृतिकी शुद्धि करे । 'शुद्ध हुआ प्राकृत पुरुष ईश्वरीय धाममें प्रतिष्ठित है । उसने सम्पूर्ण भोगोंका अनुभव कर लिया है और अब वह मुक्तिपदमें स्थित है ।'—इस प्रकार ध्यान करे और पूर्णाहुति दे । यह अधिकार-प्रदान

* यथा 'ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि वियुङ्क्ष्व हुं फट्; ॐ यं (नमः) भूतानि वियुङ्क्ष्व हुं फट् ।' इत्यादि ।

भगवान्—मत्स्यावतार [अग्निपुराण अ० २
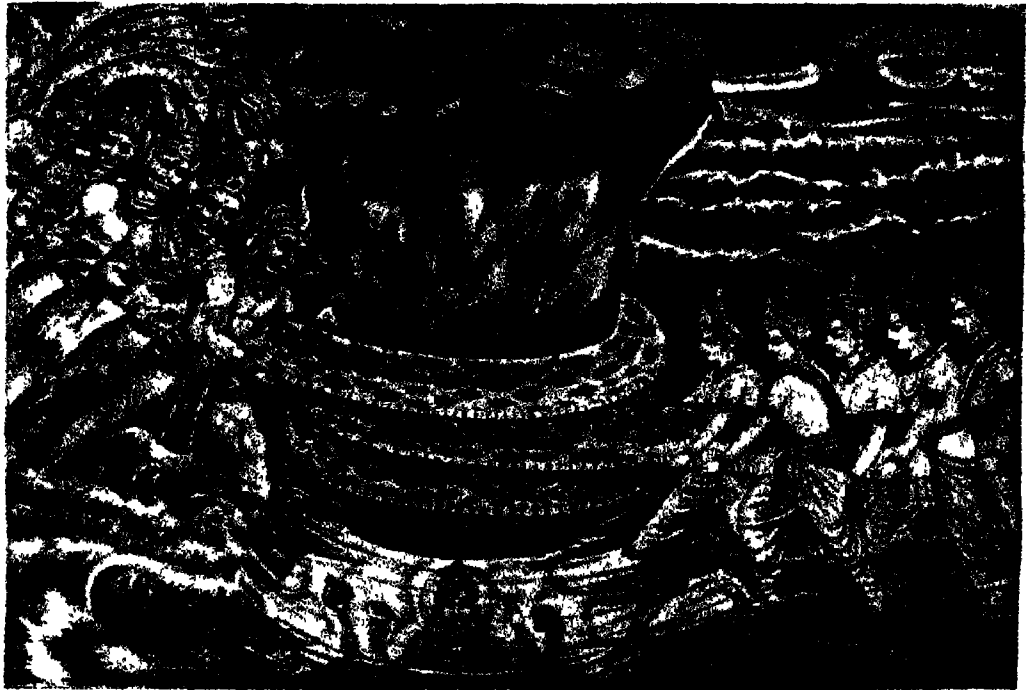
भगवान्—कूर्मावतार [अग्निपुराण अ० ३

करनेवाली दीक्षा है। पूर्वोक्त मन्त्रके अङ्गोंद्वारा आराधना करके, तत्त्वसमूहको समभाव (प्रकृत्यवस्था) में पहुँचाकर, क्रमशः इसी रीतिसे शोधन करके, अन्तमें साधक अपनेको सम्पूर्ण सिद्धियोंसे युक्त परमात्मरूपसे स्थित अनुभव करते हुए पूर्णाहुति दे—यह साधक-विषयक दीक्षा कही गयी है। यदि यज्ञोपयोगी द्रव्यका सम्पादन (संग्रह) न हो सके, अथवा अपनेमें असमर्थता हो तो समस्त उपकरणोंसहित श्रेष्ठ गुरु पूर्ववत् इष्टदेवका पूजन करके, तत्काल उन्हें अधिवासित करके, द्वादशी तिथिमें शिष्यको दीक्षा दे दे। जो गुरुभक्त, विनयशील एवं समस्त शारीरिक सद्गुणोंसे सम्पन्न हो, ऐसा शिष्य यदि अधिक धनवान् न हो तो वेदीपर इष्टदेवका पूजनमात्र करके दीक्षा ग्रहण करे। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक, सम्पूर्ण अध्वाका सृष्टिक्रमसे शिष्यके शरीरमें चिन्तन करके, गुरु पहले बारी-बारीसे आठ आहुतियोंद्वारा एक-एककी तृप्ति करनेके पश्चात्, सृष्टिमान् हो, वासुदेव आदि विग्रहोंका उनके निज-निज मन्त्रोंद्वारा पूजन एवं हवन करे और हवन-पूजनके पश्चात् अग्नि आदिका विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त होमद्वारा संहारक्रमसे तत्त्वोंका शोधन करे ॥ ६०—६८ ॥

दीक्षाकर्ममें पहले जिन सूत्रोंमें गाँठें बाँधी गयी थीं, उनकी वे गाँठें खोल, गुरु उन्हें शिष्यके शरीरसे लेकर, क्रमशः उन तत्त्वोंका शोधन करे। प्राकृतिक अग्नि एवं आधिदैविक विष्णुमें अशुद्ध-मिश्रित शुद्ध-तत्त्वको लीन करके पूर्णाहुतिद्वारा शिष्यको उस तत्त्वसे संयुक्त करे। इस प्रकार शिष्य प्रकृतिभावको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् गुरु उसके प्राकृतिक गुणोंको भावनाद्वारा दग्ध करके उसे उनसे छुटकारा दिलावे। ऐसा करके वे शिशुस्वरूप उन शिष्योंको अधिकारमें नियुक्त करें। तदनन्तर भावमें स्थित हुआ आचार्य भक्तिभावसे शरणमें आये हुए यतियों तथा निर्धन शिष्योंको 'शक्ति' नामवाली दूसरी दीक्षा दे। वेदीपर भगवान् विष्णुकी पूजा करके पुत्र (शिष्य-विशेष) को अपने पास बिठा ले। फिर शिष्य देवताके सम्मुख हो तिर्यग्-दिशाकी ओर मुँह करके स्वयं बैठे। गुरु शिष्यके शरीरमें अपने ही पर्वोंसे कल्पित सम्पूर्ण अध्वाका ध्यान करके आधिदैविक यजनके लिये प्रेरित करनेवाले इष्टदेवका भी ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करे। फिर पूर्ववत् ताडन आदिके द्वारा क्रमशः सम्पूर्ण तत्त्वोंका वेदीगत श्रीहरिमें शोधन करे। ताडनद्वारा तत्त्वोंका वियोजन करके उन्हें आत्मामें गृहीत करे और पुनः इष्टदेवके साथ उनका संयोजन एवं शोधन करके, स्वभावतः ग्रहण करनेके अनन्तर ले आकर क्रमशः शुद्ध तत्त्वके साथ संयुक्त करे। सर्वत्र ध्यानयोग एवं उत्तान मुद्राद्वारा शोधन करे ॥ ६९—७७ ॥

सम्पूर्ण तत्त्वोंकी शुद्धि हो जानेपर जब प्रधान (प्रकृति) तथा परमेश्वर स्थित रह जायँ, तब पूर्वोक्त रीतिसे प्रकृतिको दग्ध करके शुद्ध हुए शिष्योंको परमेश्वरपदमें प्रतिष्ठित करे। श्रेष्ठ गुरु साधकको इस तरह सिद्धिमार्गसे ले चले। अधिकारारूढ़ गृहस्थ भी इसी प्रकार आलस्य छोड़कर समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करे। जबतक राग (आसक्ति) का सर्वथा नाश न हो जाय, तबतक आत्म-शुद्धिका सम्पादन करता रहे। जब यह अनुभव हो जाय कि 'मेरे हृदयका राग सर्वथा क्षीण हो गया है', तब पापसे शुद्ध हुआ संयमशील पुरुष अपने पुत्र या शिष्यको अधिकार सौंपकर मायामय पाशको दग्ध करके संन्यास ले, आत्मनिष्ठ हो, देहपातकी प्रतीक्षा करता रहे। अपनी सिद्धिसम्बन्धी किसी चिह्नको दूसरोंपर व्यक्त न होने दे ॥ ७८—८१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सर्वदीक्षा-विधि-कथन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

आचार्यके अभिषेकका विधान

नारदजी कहते हैं—महर्षियो ! अब मैं आचार्यके अभिषेकका वर्णन करूँगा, जिसे पुत्र अथवा पुत्रोपम श्रद्धालु शिष्य सम्पादित कर सकता है। इस अभिषेकसे साधक सिद्धिका भागी होता है और रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है। राजाको राज्य और स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। इससे अन्तःकरणके मलका नाश होता है। मिट्टीके बहुत-से घड़ोंमें उत्तम रत्न रखकर एक स्थानपर स्थापित करे। पहले एक घड़ा बीचमें रक्खे; फिर उसके चारों ओर घट स्थापित करे। इस तरह एक सहस्र या एक सौ आवृत्तिमें उन सबकी स्थापना करे। फिर मण्डपके भीतर कमलाकार

मण्डलमें पूर्व और ईशानकोणके मध्यभागमें पीठ या सिंहासनपर भगवान् विष्णुको स्थापित करके पुत्र एवं साधक आदिका सकलीकरण करे । तदनन्तर शिष्य या पुत्र भगवत्पूजनपूर्वक गुरुकी अर्चना करके उन कलशोंके जलसे उनका अभिषेक करे । उस समय गीत-वाद्यका उत्सव होता रहे । फिर योगपीठ आदि गुरुको अर्पित कर दे और प्रार्थना करे—'गुरुदेव ! आप हम सब मनुष्योंको कृपापूर्वक अनुगृहीत करें ।' गुरु भी उनको समय-दीक्षाके अनुकूल आचारका उपदेश दे । इससे गुरु और साधक भी सम्पूर्ण मनोरथोंके भागी होते हैं ॥ १—५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आचार्यके अभिषेककी विधिका वर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

मन्त्र-साधन-विधि, सर्वतोभद्रादि मण्डलोंके लक्षण

नारदजी कहते हैं—मुनिवरो ! साधकको चाहिये कि वह देव-मन्दिर आदिमें मन्त्रकी साधना करे । घरके भीतर शुद्ध भूमिपर मण्डलमें परमेश्वर श्रीहरिका विशेष पूजन करके चौकोर क्षेत्रमें मण्डल आदिकी रचना करे । दो सौ छप्पन कोष्ठोंमें 'सर्वतोभद्र मण्डल' लिखे । (क्रम यह है कि पूर्वसे पश्चिमकी ओर तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर बराबर सत्रह रेखाएँ खींचे । ऐसा करनेसे दो सौ छप्पन कोष्ठ हो जायँगे । उनमेंसे बीचके छत्तीस कोष्ठोंको एक करके उनके द्वारा कमल बनावे, अथवा उसे कमलका क्षेत्र निश्चित करे । इस कमलक्षेत्रके बाहर चारों ओरकी एक-एक पंक्तिको मिटाकर उसके द्वारा पीठकी कल्पना करे, अथवा उसे पीठ समझे । फिर पीठसे भी बाहरकी दो-दो पंक्तियोंका मार्जन करके, उनके द्वारा 'वीथी'की कल्पना करे । फिर चारों दिशाओंमें द्वार-निर्माण करे । पूर्वोक्त पद्मक्षेत्रमें सब ओर बाहरके बारहवें भागको छोड़ दे और सर्व-मध्य-स्थानपर सूत्र रखकर, पद्म-निर्माणके लिये विभाग-पूर्वक समान अन्तर रखते हुए, सूत घुमाकर, तीन वृत्त बनावे । इस तरह उस चौकोर क्षेत्रको वर्तुल (गोल) बना दे । इन तीनोंमेंसे प्रथम तो कर्णिकाका क्षेत्र है, दूसरा केसरका क्षेत्र है और तीसरा दल-संधियोंका क्षेत्र है । शेष चौथा अंश दलाग्रभागका स्थान है । कोणसूत्रोंको फैलाकर कोणसे दिशाके मध्यभागतक ले जाय तथा केसरके अग्रभागमें सूत रखकर दल-संधियोंको चिह्नित करे ॥ १—६½ ॥

फिर सूत गिराकर अष्टदलोंका निर्माण करे । दलोंके मध्यगत अन्तरालका जो मान है, उसे मध्यमें रखकर उससे दलाग्रको घुमावे । तदनन्तर उसके भी अग्रभागको घुमावे । उनके अन्तराल-मानको उनके पार्श्वभागमें रखकर बाह्य-क्रमसे एक-एक दलमें दो-दो केसरोंका उल्लेख करे । यह सामान्यतः कमलका चिह्न है । अब द्वादशदल कमलका वर्णन किया जाता है । कर्णिकार्धमानसे पूर्व दिशाकी ओर सूत रखकर क्रमशः सब ओर घुमावे । उसके पार्श्वभागमें भ्रमणयोगसे छः कुण्डलियाँ होंगी और बारह मत्स्यचिह्न बनेंगे । उनके द्वारा द्वादशदल कमल सम्पन्न होगा । पञ्चदल आदिकी सिद्धिके लिये भी इसी प्रकार मत्स्यचिह्नोंसे कमल बनाकर, आकाशरेखासे बाहर जो पीठभाग है, वहाँके कोष्ठोंको मिटा दे । पीठभागके चारों कोणोंमें तीन-तीन कोष्ठकोंको उस पीठके पायोंके रूपमें कल्पित करे । अवशिष्ट जो चारों दिशाओंमें दो-दो जोड़े, अर्थात् चार-चार कोष्ठक हैं, उन सबको मिटा दे । वे पीठके पाटे हैं । पीठ-के बाहर चारों दिशाओंकी दो-दो पंक्तियोंको वीथी (मार्ग-) के लिये सर्वथा लुप्त कर दे (मिटा दे); तदनन्तर चारों दिशाओंमें चार द्वारोंकी कल्पना करे । (वीथीके बाहर जो दो पंक्तियाँ शेष हैं, उनमेंसे भीतरवाली पंक्तिके मध्यवर्ती दो-दो कोष्ठ और बाहरवाली पंक्तिके मध्यवर्ती चार-चार कोष्ठोंको एक करके द्वार बनाने चाहिये ।) ॥ ७—१४ ॥

द्वारोंके पार्श्वभागोंमें विद्वान् पुरुष आठ शोभा-स्थानोंकी कल्पना करे और शोभाके पार्श्वभागमें उपशोभा-स्थान बनाये । उपशोभाओंकी संख्या भी उतनी ही बतायी गयी है, जितनी कि शोभाओंकी । उपशोभाओंके समीपके स्थान 'कोण' कहे गये हैं । तदनन्तर चारों दिशाओंमें दो-दो मध्यवर्ती कोष्ठकोंका और उससे बाह्य पंक्तिके चार-चार मध्यवर्ती कोष्ठकों-का द्वारके लिये चिन्तन करे । उन सबको एकत्र करके मिटा दे—इस तरह चार द्वार बन जाते हैं । द्वारके दोनों

पार्श्वोंमें क्षेत्रकी बाह्य-पंक्तिके एक-एक और भीतरी पंक्तिके तीन-तीन कोष्ठोंको 'शोभा' बनानेके लिये मिटा दे। शोभाके पार्श्वभागमें उसके विपरीत करनेसे, अर्थात् क्षेत्रकी बाह्य-पंक्तिके तीन-तीन और भीतरी पंक्तिके एक-एक कोष्ठको मिटानेसे उपशोभाका निर्माण होता है। तत्पश्चात् कोणके भीतर और बाहरके तीन-तीन कोष्ठोंका भेद मिटाकर—एक करके चिन्तन करे * ॥ १५—१८ ॥

इस प्रकार सोलह-सोलह कोष्ठोंसे बननेवाले दो सौ छप्पन कोष्ठवाले मण्डलका वर्णन हुआ। इसी तरह दूसरे मण्डल भी बन सकते हैं। बारह-बारह कोष्ठोंसे (एक सौ चौवालीस) कोष्ठकोंका जो मण्डल बनता है, उसमें भी मध्यवर्ती छत्तीस पदों (कोष्ठों-) का कमल होता है। इसमें वीथी नहीं होती*। एक पंक्ति पीठके लिये होती है। शेष दो पंक्तियोंद्वारा पूर्ववत् द्वार और शोभाकी कल्पना होती है। (इसमें उपशोभा नहीं देखी जाती। अवशिष्ट छः पदोंद्वारा कोणोंकी कल्पना करनी चाहिये।)† एक हाथके मण्डलमें बारह अङ्गुलका कमल-क्षेत्र होता है। दो हाथके मण्डलमें कमलका स्थान एक हाथ लंबा-चौड़ा होता है। तदनुसार वृद्धि करके द्वार आदिके साथ मण्डलकी रचना करे। दो हाथका पीठ-रहित चतुरस्र-मण्डल हो तो उसमें चक्राकार कमल (चक्राब्ज-) का निर्माण करे। नौ अङ्गुलोंका 'पद्मार्ध' कहा गया है। तीन अङ्गुलोंकी 'नाभि' मानी गयी है। आठ अङ्गुलोंके 'अरे' बनावे और चार अङ्गुलोंकी 'नेमि'। क्षेत्रके तीन भाग करके, फिर भीतरसे प्रत्येकके दो भाग करे। भीतरके जो पाँच कोष्ठक हैं, उनको अरे या आरे बनानेके लिये आस्फालित (मार्जित) करके उनके ऊपर 'अरे' अङ्कित करे। वे अरे इन्दीवरके दलोंकी-सी आकृतिवाले हों, अथवा मातुलिङ्ग (बिजौरा नीबू-) के आकारके हों या कमलदलके समान विस्तृत हों, अथवा अपनी इच्छाके अनुसार उनकी आकृति अङ्कित करे। अरोंकी संधियोंके बीचमें सूत रखकर उसे बाहरकी नेमितक ले जाय और चारों ओर घुमावे।

* श्रीविद्यार्णव-तन्त्र, बारहवें श्वासमें इस सर्वतोभद्रमण्डलका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—चौकोर क्षेत्रमें पूर्वसे पश्चिमकी सत्रह रेखाएँ खींचकर, उनके ऊपर उत्तरसे दक्षिणकी ओर उतनी ही रेखाएँ खींचे। इस तरह दो सौ छप्पन कोष्ठोंका चतुरस्र मण्डल तैयार होगा। उनमें बीचके छत्तीस कोष्ठोंको एक करके, उनके बाहरकी एक-एक पंक्तिको चारों दिशाओंमें मिटाकर, पीठकी कल्पना करे। पीठके बाहर चारों दिशाओंकी दो-दो पंक्तियोंको एक करके सम्मार्जनपूर्वक वीथीकी कल्पना करे। बीचके छत्तीस कोष्ठोंको जो एक किया गया है, वह कमलका क्षेत्र है; उस क्षेत्रमें ही बाहरकी ओरसे बारहवाँ भाग खाली छोड़ दे। अर्थात् यदि वह क्षेत्र बारह अङ्गुल लम्बा-चौड़ा है तो चारों ओरसे एक-एक अङ्गुलको खाली छोड़ दे। शेष भागमें सबसे बीचके केन्द्रमें सूत रखकर क्रमशः तीन गोल रेखाएँ खींचे। वे तीनों एक-दूसरीसे समान अन्तरपर हों। इनमें सबसे भीतरी या बीचके वृत्तको कमलकी कर्णिका माने। उससे बाहरकी वीथीको केसरका स्थान मानकर उस केसरस्थानको सोलह भागोंमें विभक्त करे और उसके चिह्नका अवलम्बन करते हुए दूसरे और तीसरे वृत्तोंमें अन्तरालमानसूत्रके मानसे गुरुकी बतायी हुई युक्तिद्वारा सोलह अर्धचन्द्रोंकी कल्पना करे। उनके द्वारा आठ दलोंका निर्माण करके तृतीय वृत्तसे बाहर छोड़े हुए एक अंशके खाली स्थानसे बीचके चिह्नका अवलम्बन करते हुए एक और वृत्त बनावे। वहाँ गुरुकी बतायी युक्तिसे दलाग्रोंका निर्माण करे। एक-एक दलके मूलमें जिस तरह दो-दो केसर दीख पड़ें, उस तरहकी रचना करके कमलको साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न करके पद्मक्षेत्रसे बाहर जो एक पंक्तिरूप चतुरस्र पीठ है, उसके चारों कोणोंमें तीन-तीन कोष्ठोंको पीठके पाये माने और एकीकृत शेष कोष्ठोंको पीठके अन्य अङ्ग होनेकी कल्पना करे। पीठके बाहरकी वीथीरूप दो-दो पंक्तियोंका भलीभाँति मार्जन करके वीथीके बाहरकी एक पंक्तिमें चारों दिशाओंके जो मध्यवर्ती दो-दो कोष्ठ हैं, उनको एक करके सबसे बाहरी पंक्तिमें भी चारों दिशाओंके मध्यवर्ती चार-चार कोष्ठोंको मिटाकर चार द्वार निर्माण करे। इन द्वारोंके उभयपार्श्वमें दोनों पंक्तियोंके कोष्ठोंमेंसे भीतरी पंक्तिके तीन और बाहरी पंक्तिके एक—इन चार कोष्ठोंको एक करके 'शोभा' बनावे। शोभाके पार्श्वभागोंमें भीतरी पंक्तिका एक और बाहरी पंक्तिके तीन—इन चार कोष्ठोंको एक करके 'उपशोभा' बनावे। अवशिष्ट जो छः-छः कोष्ठ हैं, उनके द्वारा चारों कोणोंकी कल्पना करे। इस प्रकार सर्वतोभद्रमण्डलका निर्माण करके, कमलकी कर्णिका, केसर, दलाग्र-पीठ, वीथी, द्वार, शोभा, उपशोभा और कोण-स्थानोंको पाँच प्रकारके रंगसे रञ्जित करके उक्त मण्डलकी शोभा बढ़ावे।

* 'नैवात्र वीथिका।' (शारदातिलक, तृतीय पटल ११२)

† द्वारशोभे यथा पूर्वमुपशोभा न दृश्यते ॥
अवशिष्टैः पदैः कुर्यात् षड्भिः कोणानि तन्त्रवित्।

(शारदा० ३। ११२-११३)

अरेके मूलभागको उसके संधि-स्थानमें सूत रखकर घुमावे तथा अरेके मध्यमें सूत्र-स्थापन करके उस मध्य-भागके सब ओर समभावसे सूतको घुमावे। इस तरह घुमानेसे मातुलिङ्गके समान 'अरे' बन जायँगे ॥१९-२६॥

चौदह पदोंके क्षेत्रको सात भागोंमें बाँटकर पुनः दो-दो भागोंमें बाँटे अथवा पूर्वसे पश्चिम तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर पंद्रह-पंद्रह समान रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेसे एक सौ छियानबे कोष्ठक सिद्ध होंगे। वे जो कोष्ठक हैं, उनमेंसे बीचके चार कोष्ठोंद्वारा 'भद्रमण्डल' लिखे। उसके चारों ओर वीथीके लिये स्थान छोड़ दे। फिर सम्पूर्ण दिशाओंमें कमल लिखे। उन कमलोंके चारों ओर वीथीके लिये एक-एक कोष्ठका मार्जन कर दे। तत्पश्चात् मध्यके दो-दो कोष्ठ ग्रीवाभागके लिये विलुप्त कर दे। फिर बाहरके जो चार कोष्ठ हैं, उनमेंसे तीन-तीनको सब ओर मिटा दे। बाहरका एक-एक कोष्ठ ग्रीवाके पार्श्वभागमें शेष रहने दे। उसे द्वारशोभाकी संज्ञा दी गयी है।

बाह्य कोणोंमें सातको छोड़कर भीतर-भीतरके तीन-तीन कोष्ठोंका मार्जन कर दे। इसे 'नवनाल' या 'नवनाभ-मण्डल' कहते हैं। उसकी नौ नाभियोंमें नवव्यूहस्वरूप श्रीहरिका पूजन करे। पचीस व्यूहोंका जो मण्डल है, वह विश्वव्यापी है, अथवा सम्पूर्ण रूपोंमें व्याप्त है। बत्तीस हाथ अथवा कोष्ठवाले क्षेत्रको बत्तीससे ही बराबर-बराबर विभक्त कर दे, अर्थात् ऊपरसे नीचेको तैंतीस रेखाएँ खींचकर उनपर तैंतीस आड़ी रेखाएँ खींचे। इससे एक हजार चौबीस कोष्ठक बनेंगे। उनमेंसे बीचके सोलह कोष्ठोंद्वारा 'भद्रमण्डल' की रचना करे। फिर चारों ओरकी एक-एक पंक्ति छोड़ दे। तत्पश्चात् आठों दिशाओंमें सोलह कोष्ठकोंद्वारा आठ भद्रमण्डल लिखे। इसे 'भद्राष्टक'की संज्ञा दी गयी है ॥२७-३४॥

उसके बादकी भी एक पंक्ति मिटाकर पुनः पूर्ववत् सोलह भद्रमण्डल लिखे। तदनन्तर सब ओरकी एक-एक पंक्ति मिटाकर प्रत्येक दिशामें तीन-तीनके क्रमसे बारह द्वारोंकी रचना करे। बाहरके छः कोष्ठ मिटाकर बीचके पार्श्वभागोंके चार मिटा दे। फिर भीतरके चार और बाहरके दो कोष्ठ 'शोभा'के लिये मिटावे। इसके बाद उपद्वारकी सिद्धिके लिये भीतरके तीन और बाहरके पाँच कोष्ठोंका मार्जन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् 'शोभा'की कल्पना करे। कोणोंमें बाहरके सात और भीतरके तीन कोष्ठ मिटा दे। इस प्रकार जो पञ्चविंशतिका व्यूहमण्डल तैयार होता है, उसके भीतरकी कमल-कर्णिकामें परब्रह्म परमात्माका यजन करे। फिर पूर्वादि दिशाओंके कमलोंमें क्रमशः वासुदेव आदिका पूजन करे। तत्पश्चात् पूर्ववर्ती कमलपर भगवान् वराहका पूजन करके क्रमशः सम्पूर्ण (अर्थात् पचीस) व्यूहोंकी पूजा करे। यह क्रम तबतक चलता रहे, जबतक छब्बीसवें तत्त्व—परमात्माका पूजन न सम्पन्न हो जाय। इस विषयमें प्रचेताका मत यह है कि एक ही मण्डलमें इन सम्पूर्ण कथित व्यूहोंका क्रमशः पूजन-यज्ञ सम्पन्न होना चाहिये। परंतु 'सत्य' का कथन है कि मूर्तिभेदसे भगवान्‌के व्यक्तित्वमें भेद हो जाता है; अतः सबका पृथक्-पृथक् पूजन करना उचित है। बयालीस कोष्ठवाले मण्डलको आड़ी रेखाद्वारा क्रमशः विभक्त करे। पहले एक-एकके सात भाग करे; फिर प्रत्येकके तीन-तीन भाग और उसके भी दो-दो भाग करे। इस प्रकार एक हजार सात सौ चौंसठ कोष्ठक बनेंगे। बीचके सोलह कोष्ठोंसे कमल बनावे। पार्श्वभागमें वीथीकी रचना करे। फिर आठ भद्र और वीथी बनावे। तदनन्तर सोलह दलके कमल और वीथीका निर्माण करे। तत्पश्चात् क्रमशः चौबीस दलके कमल, वीथी, बत्तीस दलके कमल, वीथी, चालीस दलके कमल और वीथी बनावे। तदनन्तर शेष तीन पंक्तियोंसे द्वार, शोभा और उपशोभाएँ बनेंगी। सम्पूर्ण दिशाओंके मध्यभागमें द्वारसिद्धिके लिये दो, चार और छः कोष्ठकोंको मिटावे। उसके बाह्यभागमें शोभा तथा उपद्वारकी सिद्धिके लिये पाँच, तीन और एक कोष्ठ मिटावे। द्वारोंके पार्श्वभागोंमें भीतरकी ओर क्रमशः छः तथा चार कोष्ठ मिटावे और बीचके दो-दो कोष्ठ लुप्त कर दे। इस तरह छः उपशोभाएँ बन जायँगी। एक-एक दिशामें चार-चार शोभाएँ और तीन-तीन द्वार होंगे। कोणोंमें प्रत्येक पंक्तिके पाँच-पाँच कोष्ठ छोड़ दे। वे कोण होंगे। इस तरह रचना करनेपर सुन्दर अभीष्ट मण्डलका निर्माण होता है ॥ ३५-५० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सर्वतोभद्र आदि मण्डलके लक्षणका वर्णन' नामक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

भद्रमण्डल आदिकी पूजन-विधिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—मुनिवरो ! पूर्वोक्त भद्रमण्डलके मध्यवर्ती कमलमें अङ्गोंसहित ब्रह्मका पूजन करना चाहिये। पूर्ववर्ती कमलमें भगवान् पद्मनाभका, अग्निकोणवाले कमलमें प्रकृतिदेवीका तथा दक्षिण दिशाके कमलमें पुरुषकी पूजा करनी चाहिये। पुरुषके दक्षिण भागमें अग्निदेवताकी, नैर्ऋत्यकोणमें निर्ऋतिकी, पश्चिम दिशावाले कमलमें वरुणकी, वायव्यकोणमें वायुकी, उत्तर दिशाके कमलमें आदित्यकी तथा ईशानकोण-वाले कमलमें ऋग्वेद एवं यजुर्वेदका पूजन करे। द्वितीय आवरणमें इन्द्र आदि दिक्पालोंका और षोडशदलवाले कमलमें क्रमशः सामवेद, अथर्ववेद, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, मन, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राणेन्द्रिय, भूर्लोक, भुवर्लोक तथा सोलहवेंमें स्वर्लोकका पूजन करना चाहिये ॥ १-४ ॥

तदनन्तर तृतीय आवरणमें चौबीस दलवाले कमलमें क्रमशः महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम, व्यष्टि मन, व्यष्टि बुद्धि, व्यष्टि अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, जीव, समष्टि मन, समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व), समष्टि अहंकार तथा प्रकृति—इन चौबीसकी अर्चना करे। इन सबका स्वरूप शब्दमात्र है—अर्थात् केवल इनका नाम लेकर इनके प्रति मस्तक झुका लेना चाहिये। इनकी पूजामें इनके स्वरूपका चिन्तन अनावश्यक है। पचीसवें अध्यायमें कथित वासुदेवादि नौ मूर्ति, दशविध प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, पायु और उपस्थ, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि और पाद—इन बत्तीस वस्तुओंकी बत्तीस दलवाले कमलमें अर्चना करनी चाहिये। ये चौथे आवरणके देवता हैं। उक्त आवरणमें इनका साङ्ग एवं सपरिवार पूजन होना चाहिये ॥५-९॥

तदनन्तर बाह्य आवरणमें पायु और उपस्थकी पूजा करके बारह मासोंके बारह अधिपतियोंका तथा पुरुषोत्तम आदि छब्बीस तत्त्वोंका यजन करे। उनमेंसे जो मासाधिपति हैं, उनका चक्राब्जमें क्रमशः पूजन करना चाहिये। आठ, छः, पाँच या चार प्रकृतियोंका भी पूजन वहीं करना चाहिये। तदनन्तर लिखित मण्डलमें विभिन्न रंगोंके चूर्ण डालनेका विधान है। कहाँ, किस रंगके चूर्णोंका उपयोग है, यह सुनो। कमलकी कर्णिका पीले रंगकी होनी चाहिये। समस्त रेखाएँ बराबर और श्वेत रंगकी रहें। दो हाथके मण्डलमें रेखाएँ अँगूठेके बराबर मोटी होनी चाहिये। एक हाथके मण्डलमें उनकी मोटाई आधे अँगूठेके समान रखनी चाहिये। रेखाएँ श्वेत बनायी जायँ। कमलको श्वेत रंगसे और संधियोंको काले या श्याम (नीले) रंगसे रँगना चाहिये। केसर लाल-पीले रंगके हों। कोणगत कोष्ठोंको लाल रंगके चूर्णसे भरना चाहिये। इस प्रकार योगपीठको सभी तरहके रंगोंसे यथेष्ट विभूषित करना चाहिये। लता-वल्लरियों और पत्तों आदिसे वीथीकी शोभा बढ़ावे। पीठके द्वारको श्वेत रंगसे सजावे और शोभा-स्थानोंको लाल रंगके चूर्णसे भरे। उपशोभाओंको नीले रंगसे विभूषित करे। कोणोंके शङ्खोंको श्वेत चित्रित करे। यह भद्र-मण्डलमें रंग भरनेकी बात बतायी गयी है। अन्य मण्डलोंमें भी इसी तरह विविध रंगोंके चूर्ण भरने चाहिये। त्रिकोण मण्डलको श्वेत, रक्त और कृष्ण रंगसे अलंकृत करे। द्विकोणको लाल और पीलेसे रँगे। चक्राब्जमें जो नाभिस्थान है, उसे कृष्ण रंगके चूर्णसे विभूषित करे ॥ १०-१७ ॥

चक्राब्जके अरोंको पीले और लालसे रँगे। नेमिको नीले तथा लाल रंगसे सजावे और बाहरकी रेखाओंको श्वेत, श्याम, अरुण, काले एवं पीले रंगोंसे रँगे। अगहनीके चावलका पीसा हुआ चूर्ण आदि श्वेत रंगका काम करता है। कुसुम्भ आदिका चूर्ण लाल रंगकी पूर्ति करता है। पीला रंग हल्दीके चूर्णसे तैयार होता है। जले हुए चावलके चूर्णसे काले रंगकी आवश्यकता पूर्ण होती है। शमी-पत्र आदिसे श्याम रंगका काम लिया जाता है। बीज-मन्त्रोंका एक लाख जप करनेसे, अन्य मन्त्रोंका उनके अक्षरोंके बराबर लाख बार जप करनेसे, विद्याओंको एक लक्ष जपनेसे, बुद्ध-विद्याओंको दस हजार बार जपनेसे, स्तोत्रोंका एक सहस्र बार पाठ करनेसे अथवा सभी मन्त्रोंको पहली बार एक लाख जप करनेसे उन मन्त्रोंकी तथा अपनी भी शुद्धि होती है। दूसरी बार एक लाख जपनेसे मन्त्र क्षेत्रीकृत

होता है। बीज-मन्त्रोंका पहले जितना जप किया गया हो, उतना ही उनके लिये होमका भी विधान है। अन्य मन्त्रादिके होमकी संख्या पूर्वजपके दशांशके तुल्य बतायी गयी है। मन्त्रसे पुरश्चरण करना हो तो एक-एक मासका व्रत ले। पृथ्वीपर पहले बायाँ पैर रक्खे। किसीसे दान न ले। इस प्रकार दुगुना और तिगुना जप करनेसे ही मध्यम और उत्तम श्रेणीकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अब मैं मन्त्रका ध्यान बताता हूँ, जिससे मन्त्र-जपजनित फलकी प्राप्ति होती है। मन्त्रका स्थूलरूप शब्दमय है; इसे उसका बाह्य विग्रह माना गया है। मन्त्रका सूक्ष्मरूप ज्योतिर्मय है। यही उसका आन्तरिक रूप है। यह केवल चिन्तनमय है। जो चिन्तनसे भी रहित है, उसे 'पर' कहा गया है। वाराह, नरसिंह तथा शक्तिके स्थूलरूपकी ही प्रधानता है। वासुदेवका रूप चिन्तनरहित (अचिन्त्य) कहा गया है ॥ १८—२७ ॥

अन्य देवताओंका चिन्तामय आन्तरिक रूप ही सदा 'मुख्य' माना गया है। 'वैराज' अर्थात् विराट्का स्वरूप 'स्थूल' कहा गया है। लिङ्गमय स्वरूपको 'सूक्ष्म' जानना चाहिये। ईश्वरका जो स्वरूप बताया गया है, वह चिन्तारहित है। बीज-मन्त्र हृदयकमलमें निवास करनेवाला, अविनाशी, चिन्मय, ज्योतिःस्वरूप और जीवात्मक है। उसकी आकृति कदम्ब-पुष्पके समान है—इस तरह ध्यान करना चाहिये। जैसे घड़ेके भीतर रक्खे हुए दीपककी प्रभाका प्रसार अवरुद्ध हो जाता है; वह संहतभावसे अकेला ही स्थित रहता है; उसी प्रकार मन्त्रेश्वर हृदयमें विराजमान हैं। जैसे अनेक छिद्रवाले कलशमें जितने छेद होते हैं, उतनी ही दीपककी प्रभाकी किरणें बाहरकी ओर फैलती हैं, उसी तरह नाडियोंद्वारा ज्योतिर्मय बीजमन्त्रकी रश्मियाँ आँतोंको प्रकाशित करती हुई देव-देहको अपनाकर स्थित हैं। नाडियाँ हृदयसे प्रस्थित हो नेत्रेन्द्रियोंतक चली गयी हैं। उनमेंसे दो नाडियाँ अग्नीषोमात्मक हैं, जो नासिकाओंके अग्रभागमें स्थित हैं। मन्त्रका साधक सम्यक् उद्घात-योगसे शरीरव्यापी प्राणवायुको जीतकर जप और ध्यानमें तत्पर रहे तो वह मन्त्रजनित फलका भागी होता है। पञ्चभूततन्मात्राओंकी शुद्धि करके योगाभ्यास करनेवाला साधक यदि सकाम हो तो अणिमा आदि सिद्धियोंको पाता है और यदि विरक्त हो तो उन सिद्धियोंको लाँघकर, चिन्मय स्वरूपसे स्थित हो, भूतमात्रसे तथा इन्द्रियरूपी ग्रहसे सर्वथा मुक्त हो जाता है ॥ २८—३६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भद्र-मण्डलादिविधि-कथन' नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

'अपामार्जन-विधान' एवं 'कुशापामार्जन' नामक स्तोत्रका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब मैं अपनी तथा दूसरोंकी रक्षाका उपाय बताऊँगा। उसका नाम है—मार्जन (या अपामार्जन)। यह वह रक्षा है, जिसके द्वारा मानव दुःखसे छूट जाता है और सुखको प्राप्त कर लेता है। उन सच्चिदानन्दमय, परमार्थस्वरूप, सर्वान्तर्यामी, महात्मा, निराकार तथा सहस्रों आकारधारी व्यापक परमात्माको मेरा नमस्कार है। जो समस्त कल्मषोंसे रहित, परम शुद्ध तथा नित्य ध्यानयोग-रत है, उसे नमस्कार करके मैं प्रस्तुत रक्षाके विषयमें कहूँगा, जिससे मेरी वाणी सत्य हो।* महामुने! मैं भगवान् वाराह, नृसिंह तथा वामनको भी नमस्कार करके रक्षाके विषयमें जो कुछ कहूँगा, मेरा वह कथन सिद्ध (सफल) हो।† मैं भगवान् त्रिविक्रम (त्रिलोकीको तीन पगोंसे नापनेवाले विराट्स्वरूप), श्रीराम, वैकुण्ठ (नारायण) तथा नरको भी नमस्कार करके जो कहूँगा, वह मेरा वचन सत्य सिद्ध हो‡ ॥ १—५ ॥

अपामार्जनविधानम्

वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम।
हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम् ॥ ६ ॥

---

* ॐ नमः परमार्थाय पुरुषाय महात्मने।
अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने ॥
निष्कल्मषाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत् तत् सिध्यतु मे वचः ॥

† वराहाय नृसिंहाय वामनाय महात्मने।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत् तत् सिध्यतु मे वचः ॥

‡ त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत् तत् सिध्यतु मे वचः ॥

(३१ । २—५)

अपराजित चक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः ।
अखण्डितानुभावैस्त्वं सर्वदुःखहरो भव ॥ ७ ॥
हरामुकस्य दुरितं सर्वं च कुशलं कुरु ।
मृत्युबन्धार्तिभयदं दुरिष्टस्य च यत्फलम् ॥ ८ ॥

भगवन् वराह ! नृसिंहेश्वर ! वामनेश्वर ! त्रिविक्रम ! हयग्रीवेश, सर्वेश तथा हृषीकेश ! मेरा सारा अशुभ हर लीजिये । किसीसे भी पराजित न होनेवाले परमेश्वर ! अपने अखण्डित प्रभावशाली चक्र आदि चारों आयुधोंसे समस्त दुष्टोंका संहार कर डालिये । प्रभो ! आप अमुक (रोगी या प्रार्थी) के सम्पूर्ण पापोंको हर लीजिये और उसके लिये पूर्णतया कुशल-क्षेमका सम्पादन कीजिये । दोषयुक्त यज्ञ या पापके फलस्वरूप जो मृत्यु, बन्धन, रोग, पीडा या भय आदि प्राप्त होते हैं, उन सबको मिटा दीजिये ॥ ६–८ ॥

पराभिध्यानसहितैः प्रयुक्तं चाभिचारिकम् ।
गरस्पर्शमहारोगप्रयोगं जरया जर ॥ ९ ॥
ॐ नमो वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्गिने ।
नमः पुष्करनेत्राय केशवायादिचक्रिणे ॥ १० ॥
नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे ।
महाहवरिपुस्कन्धघृष्टचक्राय चक्रिणे ॥ ११ ॥
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः ।
महायज्ञवराहाय शेषभोगाङ्कशायिने ॥ १२ ॥
तप्तहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचन ।
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥
काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामभूषिणे ।
तुभ्यं वामनरूपायाक्रमते गां नमो नमः ॥ १४ ॥

दूसरोंके अनिष्ट-चिन्तनमें संलग्न लोगोंद्वारा जो आभिचारिक कर्मका, विषमिश्रित अन्न-पानका या महारोगका प्रयोग किया गया है, उन सबको जरा-जीर्ण कर डालिये— नष्ट कर दीजिये । ॐ भगवान् वासुदेवको नमस्कार है । खड्गधारी श्रीकृष्णको नमस्कार है । आदिचक्रधारी कमल-नयन केशवको नमस्कार है । कमलपुष्पके केसरोंकी भाँति पीत-निर्मल वस्त्र धारण करनेवाले भगवान् पीताम्बरको प्रणाम है । जो महासमरमें शत्रुओंके कंधोंसे घृष्ट होता है, ऐसे चक्रके चालक भगवान् चक्रपाणिको नमस्कार है । अपनी दंष्ट्रापर उठायी हुई पृथ्वीको धारण करनेवाले वेद-विग्रह एवं शेषशय्याशायी महान् यज्ञवराहको नमस्कार है । दिव्यसिंह ! आपके केशान्त प्रतप्त-सुवर्णके समान कान्तिमान् हैं, नेत्र प्रज्वलित पावकके समान तेजस्वी हैं तथा आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण है; आपको नमस्कार है । अत्यन्त लघुकाय तथा ऋग्, यजु और साम तीनों वेदोंसे विभूषित आप कश्यपकुमार वामनको नमस्कार है । फिर विराट्‌रूपसे पृथ्वीको लाँघ जानेवाले आप त्रिविक्रमको नमस्कार है ।९–१४।

वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि वै ।
मर्द मर्द महादंष्ट्र मर्द मर्द च तत्फलम् ॥ १५ ॥
नारसिंह करालास्य दन्तप्रान्तानलोज्ज्वल ।
भञ्ज भञ्ज निनादेन दुष्टान् पश्यार्तिनाशन ॥ १६ ॥
ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक् ।
प्रशमं सर्वदुःखानि नयत्वस्य जनार्दन ॥ १७ ॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसं ज्वरम् ।
चातुर्थिकं तथात्युग्रं तथैव सततं ज्वरम् ॥ १८ ॥
दोषोत्थं संनिपातोत्थं तथैवागन्तुकं ज्वरम् ।
शमं नयाशु गोविन्द छिन्धि छिन्ध्यस्य वेदनाम् ॥ १९ ॥

वराहरूपधारी नारायण ! समस्त पापोंके फलरूपसे प्राप्त सम्पूर्ण दुष्ट रोगोंको कुचल दीजिये, कुचल दीजिये । बड़े-बड़े दाढ़ोंवाले महावराह ! पापजनित फलको मसल डालिये, नष्ट कर दीजिये । विकटानन नृसिंह ! आपका दन्त-प्रान्त अग्निके समान जाज्वल्यमान है । आर्तिनाशन ! आक्रमणकारी दुष्टोंको देखिये और अपनी दहाड़से इन सबका नाश कीजिये, नाश कीजिये । वामनरूपधारी जनार्दन ! ऋक्, यजुः एवं सामवेदके गूढ़ तत्त्वोंसे भरी वाणीद्वारा इस आर्त-जनके समस्त दुःखोंका शमन कीजिये । गोविन्द ! इसके त्रिदोषज, संनिपातज, आगन्तुक, ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक तथा अत्यन्त उग्र चातुर्थिक ज्वरको एवं सतत बने रहनेवाले ज्वरको भी शीघ्र शान्त कीजिये । इसकी वेदनाको मिटा दीजिये, मिटा दीजिये ॥ १५—१९ ॥

नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखं चोदरसम्भवम् ।
अनिश्वासमतिश्वासं परितापं सवेपथुम् ॥ २० ॥
गुदघ्राणाङ्घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम् ।
कामलादींस्तथा रोगान् प्रमेहांश्चातिदारुणान् ॥ २१ ॥
भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगांश्च वल्गुलीम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान् ॥ २२ ॥

ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ।
कफोद्भवाश्च ये केचिद् ये चान्ये सांनिपातिकाः ॥ २३ ॥
आगन्तुकाश्च ये रोगा लूताविस्फोटकादयः ।
ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥ २४ ॥
विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन च ।
क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः ॥ २५ ॥
अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ २६ ॥

इस दुखियाके नेत्ररोग, शिरोरोग, उदररोग, श्वासावरोध, अतिश्वास (दमा), परिताप, कम्पन, गुदरोग, नासिका-रोग, पादरोग, कुष्ठरोग, क्षयरोग, कामला आदि रोग, अत्यन्त दारुण प्रमेह, भगंदर, अतिसार, मुखरोग, वल्गुली, अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र तथा अन्य महाभयंकर रोगोंको भी दूर कीजिये । भगवान् वासुदेवके संकीर्तनमात्रसे जो भी वातज, पित्तज, कफज, संनिपातज, आगन्तुक तथा लूता (मकरी), विस्फोट (फोड़े) आदि रोग हैं, वे सभी अपमार्जित होकर शान्त हो जायँ । वे सभी भगवान् विष्णुके नामोच्चारणके प्रभावसे विलुप्त हो जायँ । वे समस्त रोग श्रीहरिके चक्रसे प्रतिहत होकर क्षयको प्राप्त हों । 'अच्युत', 'अनन्त' एवं 'गोविन्द'—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ॥ २०—२६ ॥

स्थावरं जङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि यद्विषम् ।
दन्तोद्भवं नखभवमाकाशप्रभवं विषम् ॥ २७ ॥
लूतादिप्रभवं यच्च विषमन्यत्तु दुःखदम् ।
शमं नयतु तत्सर्वं वासुदेवस्य कीर्तनम् ॥ २८ ॥
ग्रहान् प्रेतग्रहांश्चापि तथा वै डाकिनीग्रहान् ।
वेतालांश्च पिशाचांश्च गन्धर्वान् यक्षराक्षसान् ॥ २९ ॥
शकुनीपूतनाद्यांश्च तथा वैनायकान् ग्रहान् ।
मुखमण्डीं तथा क्रूरां रेवतीं वृद्धरेवतीम् ॥ ३० ॥
वृद्धिकाख्यान्ग्रहांश्चोग्रांस्तथा मातृग्रहानपि ।
बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानिमान् ॥ ३१ ॥
वृद्धाश्च ये ग्रहाः केचिद् ये च बालग्रहाः क्वचित् ।
नरसिंहस्य ते दृष्ट्या दग्धा ये चापि यौवने ॥ ३२ ॥
सटाकरालवदनो नारसिंहो महाबलः ।
ग्रहानशेषान्निःशेषान् करोतु जगतो हितः ॥ ३३ ॥
नरसिंह महासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन ।
ग्रहानशेषान् सर्वेश खाद खादाग्निलोचन ॥ ३४ ॥

स्थावर, जङ्गम, कृत्रिम, दन्तोद्भूत, नखोद्भूत, आकाशोद्भूत तथा लूतादिसे उत्पन्न एवं अन्य जो भी दुःखप्रद विष हों—भगवान् वासुदेवका संकीर्तन उनका प्रशमन करे । बालरूपधारी श्रीहरि (श्रीकृष्ण) के चरित्रका कीर्तन ग्रह, प्रेतग्रह, डाकिनीग्रह, वेताल, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, शकुनी-पूतना आदि ग्रह, विनायकग्रह, मुख-मण्डिका, क्रूर रेवती, वृद्धरेवती, वृद्धिका नामसे प्रसिद्ध उग्र ग्रह एवं मातृग्रह—इन सभी बालग्रहोंका नाश करे । भगवन् ! आप नरसिंहके दृष्टिपातसे जो भी वृद्ध, बाल तथा युवा ग्रह हों, वे दग्ध हो जायँ । जिनका मुख सटा-समूहसे विकराल प्रतीत होता है, वे लोकहितैषी महाबलवान् भगवान् नृसिंह समस्त बालग्रहोंको निःशेष कर दें । महासिंह नरसिंह ! ज्वालामालाओंसे आपका मुखमण्डल उज्ज्वल हो रहा है । अग्निलोचन ! सर्वेश्वर ! समस्त ग्रहोंका भक्षण कीजिये, भक्षण कीजिये ॥ २७—३४ ॥

ये रोगा ये महोत्पाता यद्विषं ये महाग्रहाः ।
यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः ॥ ३५ ॥
शस्त्रक्षतेषु ये दोषा ज्वालागर्दभकादयः ।
तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दनः ॥ ३६ ॥
किंचिद्रूपं समास्थाय वासुदेवास्य नाशय ।
क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ॥ ३७ ॥
सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत ।
सुदर्शन महाज्वाल छिन्धि छिन्धि महारव ॥ ३८ ॥
सर्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं यान्तु विभीषण ।
प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि दक्षिणोत्तरतस्तथा ॥ ३९ ॥
रक्षां करोतु सर्वात्मा नरसिंहः स्वगर्जितैः ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥ ४० ॥
रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः ।
यथा विष्णुर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४१ ॥
तेन सत्येन दुष्टानि शममस्य व्रजन्तु वै ।

वासुदेव ! आप सर्वात्मा परमेश्वर जनार्दन हैं । इस व्यक्तिके जो भी रोग, महान् उत्पात, विष, महाग्रह, क्रूर भूत, दारुण ग्रहपीडा तथा ज्वालागर्दभक आदि शस्त्र-क्षत-जनित दोष हों, उन सबका कोई भी रूप धारण करके नाश करें । देवश्रेष्ठ अच्युत ! ज्वाला-मालाओंसे अत्यन्त भीषण सुदर्शन-चक्रको प्रेरित करके समस्त दुष्ट रोगोंका शमन कीजिये । महाभयंकर सुदर्शन ! तुम प्रचण्ड ज्वालाओंसे सुशोभित और महान् शब्द करनेवाले हो। अतः सम्पूर्ण दुष्ट राक्षसोंका संहार करो,

संहार करो । वे तुम्हारे प्रभावसे क्षयको प्राप्त हों । पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशामें सर्वात्मा नृसिंह अपनी गर्जनासे रक्षा करें । स्वर्गलोकमें, भूलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा आगे-पीछे अनेक रूपधारी भगवान् जनार्दन रक्षा करें । देवता, असुर और मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णुका ही स्वरूप है; इस सत्यके प्रभावसे इसके दुष्ट रोग शान्त हों ॥ ४१ ॥

यथा विष्णौ स्मृते सद्यः संक्षयं यान्ति पातकाः ॥ ४२ ॥
सत्येन तेन सकलं दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ।
यथा यज्ञेश्वरो विष्णुर्देवेष्वपि हि गीयते ॥ ४३ ॥
सत्येन तेन सकलं यन्मयोक्तं तथास्तु तत् ।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ॥ ४४ ॥
वासुदेवशरीरोत्थैः कुशैर्निर्णाशितं मया ।
अपामार्जतु गोविन्दो नरो नारायणस्तथा ॥ ४५ ॥
तथास्तु सर्वदुःखानां प्रशमो वचनाद्धरेः ।
अपामार्जनकं शस्तं सर्वरोगादिवारणम् ॥ ४६ ॥
अहं हरिः कुशा विष्णुर्हता रोगा मया तव ॥ ४७ ॥

श्रीविष्णुके स्मरणमात्रसे पापसमूह तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इस सत्यके प्रभावसे इसके समस्त दूषित रोग शान्त हो जायँ । यज्ञेश्वर विष्णु देवताओंद्वारा प्रशंसित होते हैं; इस सत्यके प्रभावसे मेरा कथन सत्य हो । शान्ति हो, मङ्गल हो । इसका दुष्ट रोग शान्त हो । मैंने भगवान् वासुदेवके शरीरसे प्रादुर्भूत कुशोंसे इसके रोगोंको नष्ट किया है । नर-नारायण और गोविन्द—इसका अपामार्जन करें । श्रीहरिके वचनसे इसके सम्पूर्ण दुःखोंका शमन हो जाय । समस्त रोगादिके निवारणके लिये 'अपामार्जन-स्तोत्र' प्रशस्त है । मैं श्रीहरि हूँ, कुशा विष्णु हैं । मैंने तुम्हारे रोगोंका नाश कर दिया है' ॥ ४२—४७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुशापामार्जन-स्तोत्रका वर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

निर्वाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यसे सम्पादनीय संस्कारोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन् ! बुद्धिमान् पुरुष निर्वाणादि दीक्षाओंमें अड़तालीस संस्कार करावे । उन संस्कारोंका वर्णन सुनिये, जिनसे मनुष्य देवतुल्य हो जाता है । सर्वप्रथम योनिमें गर्भाधान, तदनन्तर पुंसवन-संस्कार करे । फिर सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, चार ब्रह्मचर्यव्रत—वैष्णवी, पार्थी, भौतिकी और श्रौतिकी, गोदान, समावर्तन, सात पाकयज्ञ—अष्टका, अन्वष्टका पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री एवं आश्वयुजी, सात हविर्यज्ञ—आधान, अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्ध तथा सौत्रामणी, सात सोमसंस्थाएँ—यज्ञश्रेष्ठ अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र एवं आप्तोर्याम; सहस्रेश यज्ञ—हिरण्याङ्घ्रि, हिरण्याक्ष, हिरण्यमित्र, हिरण्यपाणि, हेमाक्ष, हेमाङ्ग, हेमसूत्र, हिरण्यास्य, हिरण्याङ्ग, हेमजिह्व, हिरण्यवान् और सब यज्ञोंका स्वामी अश्वमेधयज्ञ तथा आठ गुण—सर्वभूतदया, क्षमा, आर्जव, शौच, अनायास, मङ्गल, अकृपणता और अस्पृहा—ये संस्कार करे । इष्टदेवके मूल-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे । सौर, शाक्त, वैष्णव तथा शैव—सभी दीक्षाओंमें ये समान माने गये हैं । इन संस्कारोंसे संस्कृत होकर मनुष्य भोग-मोक्षको प्राप्त करता है । वह सम्पूर्ण रोगादिसे मुक्त होकर देववत् हो जाता है । मनुष्य अपने इष्टदेवताके जप, होम, पूजन तथा ध्यानसे इच्छित वस्तुको प्राप्त करता है ॥ १—१३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यसे सम्पादनीय संस्कारोंका वर्णन' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

तैंतीसवाँ अध्याय

पवित्रारोपण, भूतशुद्धि, योगपीठस्थ देवताओं तथा प्रधान देवताके पार्षद—आवरणदेवोंकी पूजा

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! अब मैं पवित्रारोपण*की विधि बताऊँगा । वर्षमें एक बार किया गया पवित्रारोपण सम्पूर्ण वर्षभर की हुई श्रीहरिकी पूजाका फल देनेवाला है । आषाढ़ (की शुक्ला एकादशी-) से लेकर कार्तिक (की शुक्ला एकादशी) तकके बीचके कालमें ही 'पवित्रारोपण' किया जाता है । प्रतिपदा धनद-तिथि है । द्वितीया आदि तिथियाँ क्रमशः लक्ष्मी आदि देवताओंकी हैं । यथा—लक्ष्मीकी द्वितीया, गौरीकी तृतीया, गणेशकी चतुर्थी, सरस्वती [तथा नाग देवताओं] की पञ्चमी, स्वामी कार्तिकेयकी षष्ठी, सूर्यकी सप्तमी, मातृकाओंकी अष्टमी, दुर्गाकी नवमी, नागों [या यमराज] की दशमी, ऋषियों तथा भगवान् विष्णुकी एकादशी, श्रीहरिकी द्वादशी, कामदेवकी त्रयोदशी, शिवकी चतुर्दशी तथा ब्रह्माकी पौर्णमासी एवं अमावास्या तिथि है । जो मनुष्य जिस देवताका भक्त है, उसके लिये वही तिथि पवित्र है ॥ १—३ ॥

पवित्रारोपणकी विधि सब देवताओंके लिये समान है; केवल मन्त्र आदि प्रत्येक देवताके लिये पृथक्-पृथक् बोले । पवित्रक बनानेके लिये सोने-चाँदी और ताँबेके तार तथा कपास आदिके सूत होने चाहिये †॥ ४ ॥

---

* वर्षभरके पूजा-विधानकी सम्पूर्ण त्रुटियोंका दोष दूर करके उस कर्मकी साङ्गोपाङ्ग सम्पन्नता एवं उससे समस्त इष्ट फलोंकी प्राप्तिके लिये 'पवित्रारोपण' अत्यन्त आवश्यक कर्म है । इसे न करनेपर मन्त्र-साधक या उपासकको सिद्धिसे वञ्चित होना पड़ता है । जैसा कि आचार्य सोमशम्भुने कहा है—

> सर्वपूजाविधिच्छिद्रपूरणाय पवित्रकम् ।
> कर्तव्यमन्यथा मन्त्री सिद्धिभ्रंशमवाप्नुयात् ॥
> (क० क्र० ३१४)

अतएव म० विष्णु-रहस्यमें भी कहा गया है—

> तस्माद् भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः ।
> वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः ॥
> (वाचस्पत्ये हेमाद्रौ)

पवित्रारोपण सभी देवताओंके लिये उनके उपासकोंद्वारा कर्तव्य है । इसके न करनेसे वर्षभरके देवपूजनके फलसे हाथ धोना पड़ता है । यह कर्म अत्यन्त पुण्यदायक माना गया है ।

सबसे पहले शास्त्रोंमें इसके लिये उत्तम कालका विचार किया गया है, जिसका दिग्दर्शन मूलके दूसरे तथा तीसरे श्लोकोंमें कराया गया है । सोमशम्भुके मतसे इसके लिये आषाढ़ मास उत्तम, श्रावण मध्यम तथा भाद्रपद कनिष्ठ है । वे इससे आगे बढ़नेकी आज्ञा नहीं देते । परंतु 'विष्णुरहस्य'के अनुसार भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणका मुख्यकाल श्रावण-शुक्ला द्वादशी है । वैसे तो यह सिंहगत सूर्य और कन्यागत सूर्यमें, अर्थात् भादों और आश्विनकी शुक्ला द्वादशीको भी किया जा सकता है । कार्तिकमें इसके करनेका सर्वथा निषेध है—

> 'तुलास्थे न कदाचन ।'

† पवित्रक बनानेके लिये सोने, चाँदी या ताँबेके तार गृहीत हैं और रेशम तथा कपासके सूतोंसे भी इसका निर्माण होता है । सोमशम्भुके विचारसे सोने, चाँदी तथा ताँबेके तारोंसे पवित्रक बनानेका विधान क्रमशः सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुगके लिये रहा है । कलियुगमें रूईके सूतोंसे भी काम लिया जा सकता है । शक्ति हो तो रेशमी सूतोंके पवित्रक अर्पित करने चाहिये । विष्णु-रहस्यमें दर्भसूत्र, पद्मसूत्र, क्षौमसूत्र पट्ट-सूत्र तथा शुद्ध कपासका सूत्र—इन सबके द्वारा पवित्रक बनानेका विधान है ।

कपासका सूत ब्राह्मणीका काता हुआ हो, ऐसा अग्निपुराणका विचार है । उसके अभावमें किसी भी सूतको उसका संस्कार करके उपयोगमें लाया जा सकता है । सोमशम्भुके मतमें ब्राह्मणकन्याओं-द्वारा काता हुआ सूत ग्राह्य है । 'विष्णुरहस्य'के अनुसार ब्राह्मणकी कन्या, पतिव्रता ब्राह्मणी तथा सुशीला ब्राह्मणजातीया विधवा भी पवित्रकके लिये सूत तैयार कर सकती है ।

सूतमें केश न लगा हो, वह टूटा या जला न हो, मदिरा तथा रक्त आदिके स्पर्शसे दूषित न हुआ हो, मैला या नीलका रँगा न हो—इस तरहके सूत्र वर्जित हैं । उपर्युक्त रूपसे शुद्ध सूत लेकर, उसे एक बार तिगुना करके पुनः तिगुना करे और उन नौ तन्तुओं-के सूतसे पवित्रक बनाये । पवित्रककी चार श्रेणियाँ हैं—कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम और वनमाला । 'कनिष्ठ' पवित्रकका निर्माण सत्ताईस

१. कोई-कोई विद्वान् प्रतिपदाको अग्निकी और द्वितीयाको ब्रह्माजीकी तिथि मानते हैं ।

ब्राह्मणीके हाथका काता हुआ सूत सर्वोत्तम है। वह न मिले तो किसी भी सूतको उसका संस्कार करके उपयोगमें लेना चाहिये। सूतको तिगुना करके, उसे पुनः तिगुना करे और उसीसे, अर्थात् नौ तन्तुओंद्वारा पवित्रक बनाये। एक सौ आठसे लेकर अधिक तन्तुओंद्वारा निर्मित पवित्रक उत्तम आदिकी श्रेणीमें गिना जाता है। [पवित्रारोपणके पूर्व] इष्ट देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—'प्रभो! क्रियालोपजनित दोषको दूर करनेके लिये आपने जो साधन बताया है, देव! वही मैं कर रहा हूँ। जहाँ जैसा पवित्रक आवश्यक है, वहाँके लिये वैसा ही पवित्रक अर्पित होगा। नाथ! आपकी कृपासे इस कार्यमें कोई विघ्न-बाधा न आवे। अविनाशी परमेश्वर! आपकी जय हो'॥ ५—७॥

इस प्रकार प्रार्थना करके मनुष्य पहले इष्टदेवके मण्डलके लिये गायत्री-मन्त्रसे पवित्रक बाँधे। इष्टदेव नारायणके लिये गायत्री मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमो नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।'* इष्टदेवताके नामके अनुरूप ही यह गायत्री है। देव-प्रतिमाओंपर अर्पित करनेके लिये अनेक प्रकारका पवित्रक होता है। एक तो विग्रहकी नाभितक पहुँचता है, दूसरा जाँघोंतक और तीसरा घुटनों-तक पहुँचता है। [ये क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तम श्रेणीमें परिगणित हैं।] एक चौथा प्रकार भी है, जो पैरोंतक लटकता है। यह पैरोंतक लटकनेवाला पवित्रक 'वनमाला' कहा जाता है। वह एक हजार आठ तन्तुओंसे तैयार किया जाता है। [इसका माहात्म्य सबसे अधिक है।] साधारण माला अपनी शक्तिके अनुसार बनायी जाती है। अथवा वह सोलह अङ्गुलसे दुगुनी बड़ी होनी चाहिये। कर्णिका, केसर और दल आदिसे युक्त जो यन्त्र या चक्र आदि मण्डल है, उस मण्डलको जो नीचेसे ऊपरतक ढक ले, ऐसा पवित्रक उसके ऊपर चढ़ाना चाहिये। एकचक्र और एकाब्ज आदि मण्डल (चक्र) में, उस मण्डलका मान जितने अङ्गुलका हो, उतने अङ्गुल मानवाला पवित्रक अर्पित करना चाहिये। वेदीपर अपने सत्ताईस अङ्गुलके मापका पवित्रक अर्पित करे॥ ८—१२॥

आचार्योंके लिये, पिता-माता आदिके लिये तथा पुस्तकपर चढ़ानेके लिये [या स्वयं धारण करनेके लिये] जो पवित्रक बनावे, वह नाभितक ही लंबा होना चाहिये। उसमें बारह गाँठें लगी हों तथा उस पवित्रकपर गन्ध (चन्दन, रोली या केसर) लगाया गया हो। (वह उसीमें रँगा गया हो†।) ब्रह्मन्! वनमालामें दो-दो अङ्गुल-की दूरीपर क्रमशः एक सौ आठ गाँठें रहनी चाहिये।[1]‡

तन्तुओंसे होता है। वह शुभ होता है तथा उसके अर्पणसे सुख, आयु, धन और पुत्रकी प्राप्ति बतायी गयी है। चौवन तन्तुओंसे बनाये गये पवित्रकको 'मध्यम'की संज्ञा दी गयी है। वह और भी उत्तम है। इसके अर्पणसे पुण्य दिव्य भोग तथा दिव्य धाममें निवासका सुख प्राप्त होना बताया गया है। 'उत्तम' संज्ञक पवित्रक एक सौ आठ तन्तुओंसे बनता है। ऐसा पवित्रक जो भगवान् विष्णुको अर्पित करता है, वह विष्णुधाममें जाता है। एक हजार आठ तन्तुओंसे निर्मित पवित्रकको 'वनमाला' कहते हैं। वह भगवद्भक्ति प्रदान करनेवाली मानी गयी है। 'कनिष्ठ पवित्रक'की लंबाई नाभितककी होती है, 'मध्यम पवित्रक' जाँघतक लटकता है और 'उत्तम' घुटनोंतकका लंबा होता है। कालिकापुराण अध्याय ५८ में भी यही बात कही गयी है। यथा—

कनिष्ठं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रं तु मध्यमम्।
पवित्रं चोत्तमं प्रोक्तं जानुमात्रं प्रमाणतः॥

'वनमाला' भगवत्प्रतिमाके बराबर बनायी जाती है। वह पैरोंतक लंबी होती है। उसके अर्पणसे उपासकके जन्म-मृत्युमय संसार-बन्धनका उच्छेद हो जाता है।

विष्णुरहस्यमें तन्तु-देवताओंका भी वर्णन है तथा पवित्रकके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक स्वरूपका भी विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है।

* श्रीनारायणकी प्राप्तिके लिये हम ज्ञानार्जन करें। वासुदेवके लिये ध्यान लगावें। वे भगवान् विष्णु हमें अपने भजन-ध्यानकी ओर प्रेरित करें।

† सोमशम्भुका कथन है कि पवित्रक लालचन्दन या केसर आदि किसी एक रंगसे रँगा रहे। यथा—

रक्तचन्दनकाश्मीरकस्तूरीमन्द्ररोचनाः।
हरिद्रा गैरिकं चैषां रञ्जेदेकतमेन तत्॥ (२८२—२८३)

१. सोमशम्भुका भी यही मत है—

द्व्यङ्गुला द्व्यङ्गुलास्तत्र ··· ग्रन्थयः ॥ २९०—९१॥

‡ विष्णुरहस्यमें भी यही कहा गया है—

शतमष्टोत्तरं कार्यं ग्रन्थीनां तु विधानतः।
मुनीन्द्र वनमालायाम् ··· ··· ··· ··· ·····॥

अथवा कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तम पवित्रकमें क्रमशः बारह, चौबीस तथा छत्तीस गाँठें रखनी चाहिये। मन्द, मध्यम और उत्तम मालार्थी पुरुषोंको अनामिका, मध्यमा और अङ्गुष्ठसे ही पवित्रक-माला ग्रहण करनी चाहिये। अथवा कनिष्ठ आदि नामवाले पवित्रकमें समानरूपसे बारह-बारह ही गाँठें रहनी चाहिये। [केवल तन्तुओंकी संख्यामें और लंबाईमें भेद होनेसे उनकी भिन्न संज्ञाएँ मानी जाती हैं।] सूर्य, कलश तथा अग्नि आदिके लिये भी यथासम्भव विष्णु भगवान्‌के तुल्य ही पवित्रक अर्पित करना उत्तम माना गया है। पीठके लिये पीठकी लंबाईके अनुसार तथा कुण्डके लिये भी मेखलापर्यन्त लंबा पवित्रक होना चाहिये। विष्णु-पार्षदोंके लिये यथाशक्ति सूत्र-ग्रन्थि देनी चाहिये। अथवा बिना ग्रन्थिके ही सत्रह सूत्र चढ़ावे और भद्र नामक पार्षदको त्रिसूत्र (तिरसुत) अर्पित करे ॥ १३—१७ ॥

पवित्रकको रोचना, अगुरु-कर्पूर-मिश्रित हल्दी एवं कुङ्कुमके रंगसे रँग देना चाहिये। भक्त पुरुष एकादशीको स्नान, संध्या आदि करके पूजागृहमें आकर भगवान् श्रीहरिका यजन करे। उनके समस्त परिवारको बलि देकर उसकी अर्चना करे। द्वारके अन्तमें 'क्षं क्षेत्रपालाय नमः।'—बोलकर क्षेत्रपालकी पूजा करे। द्वारके ऊपर 'श्रियै नमः।' कहकर श्रीदेवीकी पूजा करे। द्वारके दक्षिण देशमें 'धात्रे नमः।', 'गङ्गायै नमः।'—इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए 'धाता' तथा 'गङ्गा'जीकी अर्चना करे और वाम देशमें 'विधात्रे नमः।', 'यमुनायै नमः।'—बोलकर विधाता एवं यमुनाजीकी पूजा करे। इसी तरह द्वारके दक्षिण-वाम देशमें क्रमशः 'शङ्खनिधये नमः।' 'पद्मनिधये नमः।' बोलकर शङ्खनिधि एवं पद्मनिधिकी पूजा करे। [फिर मण्डपके भीतर दाहिने पैरके पार्ष्णिभागको तीन बार पटककर विघ्नोंका अपसारण करे।] * तदनन्तर 'सारङ्गाय नमः' बोलकर विघ्नकारी भूतोंको दूर भगावे। [इसके बाद 'ॐ ह्रां वास्तवाधिपतये ब्रह्मणे नमः।' इस मन्त्रका उच्चारण करके ब्रह्माके स्थानमें पुष्प चढ़ावे।] फिर आसनपर बैठकर भूतशुद्धि करे ॥ १८—२१ ॥

* दक्षपार्ष्णित्रिभिर्घातैर्भूमिष्ठांस्त्रिविधानिति ।
विघ्नानुत्सारयेन्मन्त्री यागमन्दिरमध्यगः ॥
(सोमशम्भुरचित कर्मकाण्ड-क्रमावली ११८)

१. अग्निपुराणमें भूत-शुद्धिके लिये केवल उद्धात-मन्त्र दिये गये हैं। सामान्य पाठकको भूतशुद्धिका सम्यक् परिचय करानेके लिये यहाँ 'मन्त्र-महार्णव' में दिया हुआ प्रकार प्रस्तुत किया जाता है।

भूतशुद्धि

पहले—

ॐ सूर्यः सोमो यमः कालः संध्या भूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो मम साक्षिणः ॥
भो देव प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम।
तन्निःसारय चित्तान्मे पापं तेऽस्तु नमो नमः ॥

—ये दोनों मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करे। तदनन्तर अपने दक्षिण भागमें—'श्रीगुरुभ्यो नमः।' बोलकर श्रीगुरुजनोंको तथा वामभागमें 'ॐ गणेशाय नमः।'—बोलकर श्रीगणेशजीको प्रणाम करे। तत्पश्चात् कुम्भक प्राणायाम करते हुए मूलाधार चक्रसे कमलनाल-सी प्रतीत होनेवाली परम-देवता कुण्डलिनीको उठाकर यह भावना करे कि यह कुण्डलिनी वहाँसे ऊपरकी ओर उठती हुई ब्रह्मरन्ध्र-तक जा पहुँची है। प्रदीप-कलिकाके आकारवाले हृदयस्थ जीवको साथ ले, सुषुम्नानाडीके पथसे ब्रह्मरन्ध्रमें जाकर स्थित हो गयी है। उस अवस्थामें 'हं सः सोऽहम्।' इस मन्त्रसे जीवको परब्रह्म परमात्मासे संयुक्त कर दे। तदनन्तर अपने शरीरके पैरोंसे लेकर घुटनोंतकके भागमें चौकोर आकृतिवाले वज्राङ्कित भू-मण्डलका चिन्तन करे, उसकी कान्ति सुवर्णके समान है तथा वह 'ॐ लम्' इस भू-बीजसे युक्त है। फिर घुटनोंसे लेकर नाभि-तकके भागमें अर्धचन्द्राकार, जलके स्थानभूत सोममण्डलकी भावना करे। वह दो कमलोंसे अङ्कित, श्वेत वर्णवाला तथा 'ॐ वम्' इस वरुण-बीजसे विभूषित है। इसके बाद नाभिसे लेकर हृदयतकके भागमें त्रिकोणाकार, स्वस्तिक-चिह्नसे अङ्कित, रक्तवर्ण अग्निमण्डलका चिन्तन करे, जो 'ॐ रम्'—इस अग्निबीजसे युक्त है।

तत्पश्चात् हृदयसे लेकर भ्रूमध्यतकके भागमें गोलाकार, षड्-बिन्दु-विलसित, धूम्रवर्ण वायुमण्डलकी भावना करे, जो 'ॐ यम्' इस वायुबीजसे युक्त है। तदनन्तर भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त भागमें गोलाकार, स्वच्छ, मनोहर आकाशमण्डलका चिन्तन करे, जो 'ॐ हम्'—इस आकाशबीजसे युक्त है। इस प्रकार भूतगणकी भावना करके पूर्वोक्त भूमण्डलमें पादेन्द्रिय, गमन,

उसकी विधि यों है—

ॐ हूं हः फट् हूं गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः ।

ॐ हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः ।

ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः ।

ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ।

ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।

—इस प्रकार पाँच उद्घात-वाक्योंका उच्चारण करके गन्धतन्मात्रस्वरूप भूमिमण्डलको, वज्रचिह्नित सुवर्णमय चतुरस्र पीठको तथा इन्द्रादि देवताओंको अपने

घ्राण, गन्ध, ब्रह्मा, निवृत्तिकला, समान वायु तथा गन्तव्य देश—इन आठ पदार्थोंका चिन्तन करे। (सोम या) जल-मण्डलमें हस्तेन्द्रिय, ग्रहण, ग्राह्य, रसना, रस, विष्णु, प्रतिष्ठाकला तथा उदानवायुका ध्यान करे। तेजोमण्डलमें पायु-इन्द्रिय, विसर्ग, विसर्जनीय, नेत्र, रूप, शिव, विद्याकला तथा व्यानवायु—ध्येय हैं। वायुमण्डलमें उपस्थ, आनन्द, स्त्री, स्पर्शन, स्पर्श, ईशान, शान्तिकला तथा अपानवायु—ये आठ पदार्थ चिन्तनीय हैं। इसी तरह आकाशमण्डलमें वाग्, वक्तव्य, वदन, श्रोत्र, शब्द, सदाशिव, शान्त्यतीता कला तथा प्राणवायु—इन आठ वस्तुओंका चिन्तन करना चाहिये।

इस तरह भूतोंका चिन्तन करके पूर्व-पूर्व कार्यका उत्तरोत्तर कारणमें ब्रह्मपर्यन्त विलीन करे। उसका क्रम इस प्रकार है—'ॐ लं फट्।' बोलकर 'पाँच गुणवाली पृथिवीका जलमें उपसंहार करता हूँ।'—इस भावनाके साथ भूमिका जलमें लय करे। फिर 'ॐ वं हुं फट्।'—यह बोलकर 'चार गुणवाले जल-तत्त्वका अग्निमें उपसंहार करता हूँ'—इस भावनाके साथ जलका अग्निमें लय करे। तदनन्तर 'ॐ रं हुं फट्।' बोलकर 'तीन गुणोंसे युक्त तेजका वायुतत्त्वमें उपसंहार करता हूँ'—इस भावनाके साथ अग्निका वायुमें लय करे। फिर 'ॐ यं हुं फट्।' यह बोलकर 'दो गुणवाले वायुतत्त्वका आकाशतत्त्वमें उपसंहार करता हूँ'—इस भावनाके साथ वायुका आकाशमें लय करे। इसके बाद 'ॐ हं हुं फट्।' ऐसा बोलकर 'एक गुणवाले आकाशका अहंकारमें उपसंहार करता हूँ'—इस संकल्पके साथ आकाशका अहंकारमें लय करे। इसी क्रमसे अहंकारका महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वका प्रकृतिमें और प्रकृति या मायाका आत्मामें लय करे।

इस प्रकार शुद्ध सच्चिन्मय होकर पापपुरुषका चिन्तन करे—'वासनामय पाप बायीं कुक्षिमें स्थित है। उसका रंग काला है। वह अँगूठेके बराबर है। ब्रह्महत्या उसका सिर, सुवर्णकी चोरी बाँह, मदिरापान हृदय, गुरुतल्पगमन कटिप्रदेश तथा इन सबके साथ संसर्ग ही उसके दोनों पैर हैं। उपपातक-राशि उसका मस्तक है। उसके हाथमें ढाल और तलवार है। उस दुष्ट पापपुरुषका मुँह नीचेकी ओर है। वह अत्यन्त दुःसह है।' ऐसे पापपुरुषका चिन्तन करके पूरक प्राणायाममें 'ॐ यं'—इस वायुबीजका बत्तीस या सोलह बार जप करके उत्पादित वायुद्वारा उसका शोषण करे। तत्पश्चात् कुम्भक प्राणायाममें चौसठ बार जपे गये 'ॐ रम्'—इस अग्निबीजद्वारा उत्थापित आगकी ज्वालामें अपने शरीरसहित उस पापपुरुषको जलाकर भस्म कर दे। तदनन्तर रेचक प्राणायाममें 'ॐ यम्'—इस वायुबीजका सोलह या बत्तीस बार जप करके उत्थापित वायुद्वारा दक्षिणनाडीके मार्गसे उस भस्मको बाहर निकाले। इसके बाद देहगत भस्मको 'ॐ वम्'—इस प्रकार उच्चारित अमृत-बीजके द्वारा आप्लावित करके 'ॐ लम्'—इस भूबीजके द्वारा उस भस्मको घनीभूत पिण्डके आकारमें परिणत कर दे और भावनामें ही देखे कि वह सोनेके अण्डेके समान जान पड़ता है। तदनन्तर 'ॐ हम्'—इस आकाशबीजका जप करते हुए, उस पिण्डके दर्पणकी भाँति स्वच्छ होनेकी भावना करे और उसके द्वारा मस्तकसे लेकर चरण-नखपर्यन्त अवयवोंकी मनके द्वारा रचना करे।

इसके बाद पुनः सृष्टिमार्गका आश्रय ले, ब्रह्मसे प्रकृति, प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे ओषधि, ओषधिसे अन्न, अन्नसे वीर्य और वीर्यसे पुरुष-शरीरकी उत्पत्ति करके 'ॐ हं सः सोऽहम्।'—इस मन्त्रद्वारा ब्रह्मके साथ संयुक्त हो, एकीभूत हुए जीवको अपने हृदय-कमलमें स्थापित करे। तदनन्तर कुण्डलिनीको पुनः मूलाधारगत हुई देखे। फिर इस प्रकार प्राणशक्तिका ध्यान करे—

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवगुणमथ चाप्यङ्कुशं पञ्च बाणान्।
बिभ्राणा सृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः॥

'जो लालसागरमें स्थित एक पोतपर प्रफुल्ल अरुण कमलके आसनपर विराजमान हैं, अपने कर-कमलोंमें पाश, इक्षुमयी प्रत्यञ्चासे युक्त कोदण्ड, अङ्कुश तथा पाँच बाण लिये रहती हैं, जिन्होंने खूनसे भरा खप्पर भी ले रक्खा है, तीन नेत्र जिनके मुखमण्डलकी शोभा बढ़ाते हैं, जो उभरे हुए पीन उरोजोंसे सुशोभित हैं तथा बालरविके समान जिनकी अरुण-पीत कान्ति है, वे प्राणशक्तिस्वरूपा परा देवी हमारे लिये सुखकी सृष्टि करनेवाली हों।'

युगल चरणोंमें स्थित देखते हुए उनका चिन्तन करे। इस प्रकार शुद्ध हुए गन्धतन्मात्रको रसतन्मात्रमें लीन करके उपासक इसी क्रमसे रसतन्मात्रका रूपतन्मात्रमें संहार करे। 'ॐ हूं हः फट् हूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः।', 'ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः।', 'ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।', ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।'—इन चार उद्घात-वाक्योंका उच्चारण करके जानुसे लेकर नाभितकके भागको श्वेत कमलसे चिह्नित, शुक्लवर्ण एवं अर्धचन्द्राकार देखे। ध्यानद्वारा यह चिन्तन करे कि 'इस जलीय भागके देवता वरुण हैं।' उक्त चार उद्घातोंके उच्चारणसे रसतन्मात्राकी शुद्धि होती है। इसके बाद इस रसतन्मात्राका रूपतन्मात्रामें लय कर दे॥ २२–३०॥

'ॐ हूं हः फट् हूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः।' 'ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।' 'ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।'

—इन तीन उद्घातवाक्योंका उच्चारण करके नाभिसे लेकर कण्ठतकके भागमें त्रिकोणाकार अग्निमण्डलका चिन्तन करे। 'उसका रंग लाल है; वह स्वस्तिकाकार चिह्नसे चिह्नित है। उसके अधिदेवता अग्नि हैं।' इस प्रकार ध्यान करके शुद्ध किये हुए रूपतन्मात्रको स्पर्शतन्मात्रमें लीन करे। तत्पश्चात् ॐ हूं हः फट् हूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः।', 'ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।'—इन दो उद्घात-वाक्योंके उच्चारणपूर्वक कण्ठसे लेकर नासिकाके बीचके भागमें गोलाकार वायुमण्डलका चिन्तन करे—'उसका रंग धूमके समान है। वह निष्कलङ्क चन्द्रमासे चिह्नित है।' इस तरह शुद्ध हुए स्पर्शतन्मात्रका ध्यानद्वारा ही शब्दतन्मात्रमें लय कर दे। इसके बाद 'ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।' —इस एक उद्घात-वाक्यसे शुद्ध स्फटिकके समान आकाशका नासिकासे लेकर शिखातकके भागमें चिन्तन करे। फिर उस शुद्ध हुए आकाशका (अहंकारमें) उपसंहार करे॥ ३१–३७॥

तत्पश्चात् क्रमशः शोषण आदिके द्वारा देहकी शुद्धि करे। ध्यानमें यह देखे कि 'यं' बीजरूप वायुके द्वारा पैरोंसे लेकर शिखातकका सम्पूर्ण शरीर सूख गया है। फिर 'रं' बीज द्वारा अग्निको प्रकट करके देखे कि सारा शरीर अग्निकी ज्वालाओंमें आ गया और जलकर भस्म हो गया। इसके बाद 'वं' बीजका उच्चारण करके भावना करे कि ब्रह्मरन्ध्रसे अमृतका बिन्दु प्रकट हुआ है। उससे जो अमृतकी धारा प्रकट हुई है, उसने शरीरके उस भस्मको आप्लावित कर दिया है। तदनन्तर 'लं' बीजका उच्चारण करते हुए यह चिन्तन करे कि उस भस्मसे दिव्य देहका प्रादुर्भाव हो गया है। इस प्रकार दिव्य देहको उद्भावना करके करन्यास और अङ्गन्यास करे। इसके बाद मानस-यागका अनुष्ठान करे। हृदय-कमलमें मानसिक पुष्प आदि उपचारोंद्वारा मूल-मन्त्रसे अङ्गोंसहित देवेश्वर भगवान् विष्णुका पूजन करे। वे भगवान् भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। भगवान्‌से मानसिक पूजा स्वीकार करनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—'देव! देवेश्वर केशव! आपका स्वागत है। मेरे निकट पधारिये और यथार्थरूपसे भावना-द्वारा प्रस्तुत इस मानसिक पूजाको ग्रहण कीजिये।' योगपीठको धारण करनेवाली आधारशक्ति कूर्म, अनन्त (शेषनाग) तथा पृथ्वीका पीठके मध्यभागमें पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अग्निकोण आदि चारों कोणोंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्यका पूजन करे। पूर्व आदि मुख्य दिशाओंमें अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्यकी अर्चना करे।* पीठके मध्य-

* आधारशक्ति कूर्मरूपा शिलापर विराजमान है। गोदुग्धके समान धवल उसका गौर कलेवर है और बीजाङ्कुर-मयी आकृति है। उसके पूजनका मन्त्र है—'ॐ ह्रां आधार-शक्तये नमः।' भगवान् अनन्त श्रीहरिके आसन हैं। उनकी अङ्ग-कान्ति कुन्द, इन्दु (चन्द्रमा) के समान धवल है; ऊपर उठे नाल-दण्डवाले कमल-मुकुलके सदृश उनकी आकृति है तथा वे ब्रह्मशिलापर आरूढ हैं। पूजनका मन्त्र है—'ॐ ह्रां अनन्तासनाय नमः।' धर्म आदिके पूजनके मन्त्र यों हैं—'ॐ ह्रां धर्माय नमः—आग्नेये।', 'ॐ ह्रां ज्ञानाय नमः—नैर्ऋते।' 'ॐ ह्रां वैराग्याय नमः—वायव्ये।', 'ॐ ह्रां ऐश्वर्याय नमः—ऐशाने।' (सोमशम्भु-रचित कर्मकाण्ड-क्रमावली १६१–१६४ के आधारपर)। इसी तरह 'ॐ ह्रां अधर्माय नमः।' इत्यादि रूपसे मन्त्रोंकी ऊहा करके अज्ञानादिकी भी अर्चना करे। शारदातिलकमें आधारशक्तिका ध्यान एक देवीके रूपमें

भागमें सत्वादि गुणोंका, कमलका, माया और अविद्या नामक तत्त्वोंका, कालतत्त्वका, सूर्यादि-मण्डलका तथा पक्षिराज गरुडका पूजन करे। पीठके वायव्यकोणसे ईशान कोणतक गुरुपंक्तिकी पूजा करे ॥ ३८–४५ ॥

गण, सरस्वती, नारद, नलकूबर, गुरु, गुरुपादुका, परम गुरु और उनकी पादुकाकी पूजा ही गुरुपंक्तिकी पूजा है। पूर्वसिद्ध और परसिद्ध शक्तियोंकी केसरोंमें पूजा करनी चाहिये। पूर्वसिद्ध शक्तियाँ ये हैं—लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति, कीर्ति, शान्ति, कान्ति, पुष्टि तथा तुष्टि। इनकी क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें पूजा की जानी चाहिये। इसी तरह इन्द्र आदि दस दिक्पालोंका भी उनकी दिशाओंमें पूजन आवश्यक है। इन सबके बीचमें श्रीहरि विराजमान हैं। परसिद्धा शक्तियाँ—धृति, श्री, रति तथा कान्ति आदि हैं। मूल-मन्त्रसे भगवान् अच्युतकी स्थापना की जाती है। पूजाके प्रारम्भमें भगवान्से यों प्रार्थना करे—'हे भगवन्! आप मेरे सम्मुख हों। (ॐ अभिमुखो भव।) पूर्व दिशामें मेरे समीप स्थित हों।' इस तरह प्रार्थना करके स्थापनाके पश्चात् अर्घ्य-पाद्य आदि निवेदन कर गन्ध आदि उपचारों-द्वारा मूल-मन्त्रसे भगवान् अच्युतकी अर्चना करे। ॐ भीषय भीषय हृदयाय नमः। ॐ त्रासय त्रासय शिरसे नमः। ॐ मर्दय मर्दय शिखायै नमः। ॐ रक्ष रक्ष नेत्रत्रयाय नमः। ॐ प्रध्वंसय प्रध्वंसय कवचाय नमः। ॐ हूं फट् अस्त्राय नमः। इस प्रकार अग्निकोण आदि दिशाओंमें क्रमसे मूलबीजद्वारा अङ्गोंका पूजन करे ॥४६–५१॥

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें मूर्त्यात्मक आवरणकी अर्चना करे। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार मूर्तियाँ हैं। अग्निकोण आदि कोणोंमें क्रमशः श्री, रति, धृति और कान्तिकी पूजा करे। ये भी श्रीहरिकी मूर्तियाँ हैं। अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी परिचर्या करे। पूर्वादि दिशाओंमें शार्ङ्ग, मुसल, खड्ग तथा वनमालाकी अर्चना करे। उसके बाह्यभागमें पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशानकी पूजा करके नैर्ऋत्य और पश्चिमके बीचमें अनन्तकी तथा पूर्व और ईशानके बीचमें ब्रह्माजीकी अर्चना करे। इनके बाह्य-भागमें वज्र आदि अस्त्रमय आवरणोंका पूजन करे। इनके भी बाह्यभागमें दिक्पालोंके वाहनरूप आवरण पूजनीय होते हैं। पूर्वादिके क्रमसे ऐरावत, छाग, भैंसा, वानर, मत्स्य, मृग, शश (खरगोश), वृषभ, कूर्म और हंस—इनकी पूजा करनी चाहिये। इनके भी बाह्यभागमें पृश्निगर्भ और कुमुद आदि द्वारपालोंकी पूजाकी विधि कही गयी है। पूर्वसे

बताया गया है। वह कूर्मशिलापर आरूढ है। उसका मनोहर मुख शरत्कालके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है तथा उसने अपने हाथोंमें दो कमल धारण किये हैं। उक्त आधारशक्तिके मस्तकपर भगवान् कूर्म विराजमान हैं। उनकी कान्ति नीली है। 'ॐ हां कूर्माय नमः।'—इस मन्त्रसे उनका भी पूजन करे। कूर्मके ऊपर ब्रह्मशिला (इष्टदेवकी प्रतिमाके नीचेकी आधारभूता शिला) है, उसपर कुन्द-सदृश गौर अनन्तदेव विराज रहे हैं। उनके हाथमें चक्र है। (नाभिसे नीचे उनकी आकृति सर्पवत् है और नाभिसे ऊपर मनुष्यवत्।) वे मस्तकपर पृथ्वीको धारण करते हैं। इस झाँकीमें पूर्वोक्त मन्त्रद्वारा उनकी पूजा करके उनके सिरपर विराजमान भूदेवीका ध्यान और पूजन करे। 'वे तमालके समान श्यामवर्णा हैं। हाथोंमें नील कमल धारण करती हैं। उनके कटि-प्रदेशमें सागरमयी मेखला स्फुरित हो रही है।' ('ॐ हां वसुधायै नमः।' 'ॐ हां सागराय नमः।'—इससे पृथ्वी तथा समुद्रकी पूजा करके) उसके ऊपर रत्नमय द्वीपका, उस द्वीपमें मणिमय मण्डपका तथा वहाँ शोभा पानेवाले वाञ्छापूरक कल्पवृक्षोंका चिन्तन और पूजन करना चाहिये। उन कल्पवृक्षोंके नीचे मणिमयी वेदिकाका ध्यान करे। उक्त वेदीपर योगपीठ स्थापित है। उस पीठके जो पाये हैं, वे ही धर्म आदि रूप हैं। इनमें धर्म लाल, ज्ञान श्याम, वैराग्य हरिद्रातुल्य पीत तथा ऐश्वर्य नील है। धर्मकी आकृति वृषभके समान है। ज्ञान सिंहके, वैराग्य भूतके तथा ऐश्वर्य हाथीके रूपमें विराजमान है। कोणोंमें धर्मादिका और दिशाओंमें अधर्मादिका पूजन करनेके अनन्तर पीठस्थित कमलका ध्यान करे। वह तीन प्रकारका है—पहला आनन्दकन्द, दूसरा संविन्नाल और तीसरा सर्वतत्त्वात्मक है। इस त्रिविध कमलका पूजन करके साधक प्रकृतिमय दलोंका, विकृतिमय केसरोंका तथा पचास अक्षरोंसे युक्त कर्णिकाका पूजन करे। तत्पश्चात् कलाओं-सहित सूर्य, चन्द्रमा और अग्निमण्डलका पूजन करे। कमलादिके पूजनका मन्त्र यों समझना चाहिये—'आनन्दकन्दाय संविन्नालाय सर्वतत्त्वात्मकाय कमलाय नमः।', 'प्रकृतिमयदलेभ्यो नमः।', 'विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः।,' 'द्वादशकलात्मकसूर्यमण्डलाय नमः।', 'षोडशकलात्मकचन्द्रमण्डलाय नमः।', 'दशकलात्मकवह्निमण्डलाय नमः।'

—(शारदातिलक, चतुर्थ पटल ५१–६१)

लेकर उत्तरतक प्रत्येक द्वारपर दो-दो द्वारपालोंकी पूजा आवश्यक है। तदनन्तर श्रीहरिको नमस्कार करके बाह्य-भागमें बलि अर्पण करे। 'ॐ विष्णुपार्षदेभ्यो नमः।' बोलकर बलिपीठपर उनके लिये बलि समर्पित करे ॥ ५२—५७ ॥

ईशानकोणमें 'ॐ विश्वाय विष्वक्सेनात्मने नमः।'—इस मन्त्रसे विष्वक्सेनकी अर्चना करे। इसके बाद भगवान्‌के दाहिने हाथमें रक्षासूत्र बाँधे। उस समय भगवान्‌से इस प्रकार कहे—'प्रभो! जो एक वर्षतक निरन्तर की हुई आपकी पूजाके सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिमें हेतु है, वह पवित्रा-रोहण (या पवित्रारोपण) कर्म होनेवाला है; उसके लिये यह कौतुक (मङ्गल-सूत्र) धारण कीजिये।' ॐ नमः। इसके बाद भगवान्‌के समीप उपवास आदिका नियम ग्रहण करे और इस प्रकार कहे—'मैं उपवासके साथ नियमपूर्वक रहकर इष्टदेवको संतुष्ट करूँगा। देवेश्वर! आजसे लेकर जबतक वैशेषिक (विशेष उत्सव) का दिन न आ जाय, तबतक काम, क्रोध आदि सारे दोष मेरे पास किसी तरह भी न फटकने पावें।' व्रती यजमान यदि उपवास करनेमें असमर्थ हो तो नक्त-व्रत (रातमें भोजन) किया करे। हवन करके भगवान्‌की स्तुतिके बाद उनका विसर्जन करे। भगवान्‌का नित्य-पूजन लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाला है। 'ॐ ह्रीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः।'—यह भगवान्‌की पूजाके लिये मन्त्र है ॥ ५८—६३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सर्वदेवसाधारणपवित्रारोपण-विधि-कथन' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

पवित्रारोपणके लिये पूजा-होमादिकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुनीश्वर! निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए साधक यागमण्डपमें प्रवेश करे और सजावटसे यज्ञके स्थानकी शोभा बढ़ावे [तथा निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर भगवान्‌को नमस्कार करे]—'वेदों तथा ब्राह्मणोंके हितकारी देवता अव्ययात्मा भगवान् श्रीधरको नमस्कार है।' ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद आपके स्वरूप हैं; शब्दमात्र आपके शरीर हैं; आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है।* सायंकाल सर्वतोभद्रादि-मण्डलकी रचना करके यजन-पूजन-सम्बन्धी द्रव्योंका संग्रह करे। हाथ-पैर धो ले। सब सामग्रीको यथास्थान जँचाकर हाथमें अर्घ्य लेकर मनुष्य उसके जलसे अपने मस्तकको सींचे। फिर द्वारदेश आदिमें भी जल छिड़के। तदनन्तर द्वारयाग (द्वारस्थ देवताओंका पूजन) आरम्भ करे। पहले तोरणेश्वरोंकी भलीभाँति पूजा करे। पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे अश्वत्थ, उदुम्बर, वट तथा पाकर—ये वृक्ष पूजनीय हैं। इनके सिवा पूर्व दिशामें ऋग्वेद, इन्द्र तथा शोभनकी, दक्षिणमें यजुर्वेद, यम तथा सुभद्रकी, पश्चिममें सामवेद, वरुण तथा सुधन्वाकी और उत्तरमें अथर्ववेद, सोम एवं सुहोत्रकी अर्चना करे ॥ १—५ ॥

तोरण (फाटक) के भीतर पताकाएँ फहरायी जायँ, दो-दो कलश स्थापित हों और कुमुद आदि दिग्गजोंका पूजन हो। प्रत्येक दरवाजेपर दो-दो द्वारपालोंकी उनके नाम-मन्त्रसे ही पूजा की जाय। पूर्व दिशामें पूर्ण और पुष्करका, दक्षिण दिशामें आनन्द और नन्दनका, पश्चिममें वीरसेन और सुषेणका तथा उत्तर दिशामें सम्भव और प्रभव नामक द्वारपालोंका पूजन करना चाहिये। अस्त्र-मन्त्र (फट्) के उच्चारणपूर्वक फूल बिखेरकर विघ्नोंका अपसारण करनेके पश्चात् मण्डपके भीतर प्रवेश करे। भूतशुद्धि, न्यास और मुद्रा करके शिखा (वषट्) के अन्तमें 'फट्' जोड़कर उसका जप करते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें सरसों छींटे। इसके बाद वासुदेव-मन्त्रसे गोमूत्र, संकर्षण-मन्त्रसे गोमय, प्रद्युम्न-मन्त्रसे गोदुग्ध, अनिरुद्ध-मन्त्रसे दही और नारायण-मन्त्रसे घृत लेकर सबको घृतपात्रमें एकत्र करे; अन्य वस्तुओंका भाग घीसे अधिक होना चाहिये। इन सबके मिलनेसे जो वस्तु तैयार होती है, उसे 'पञ्चगव्य' कहा गया है। पञ्चगव्य एक, दो या तीन बार अलग-अलग बनावे। इनमेंसे एक तो मण्डप (तथा वहाँकी वस्तुओं) का प्रोक्षण करनेके लिये है, दूसरा प्राशनके लिये और तीसरा स्नानके उपयोगमें आता है। इस कलशोंकी स्थापना करके उनमें इन्द्रादि

* नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्ययात्मने।
ऋग्यजुःसामरूपाय शब्ददेहाय विष्णवे ॥ १ ॥

लोकपालोंकी पूजा करे। पूजन करके उन्हें श्रीहरिकी आज्ञा सुनावे—'लोकपालगण ! आपको इस यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीहरिकी आज्ञासे यहाँ सदा स्थित रहना चाहिये' ॥६—१२॥

याग-द्रव्य आदिकी रक्षाकी व्यवस्था करके विकिर[1] (विघ्न-निवारणके लिये सब ओर छींटे जानेवाले सर्षप आदि) द्रव्योंको बिखेरे। सात[2] बार अस्त्र-सम्बन्धी मूल-मन्त्र (अस्त्राय फट्) का जप करते हुए ही उक्त वस्तुओंको सब ओर बिखेरना चाहिये। फिर उसी तरह अस्त्र-मन्त्रका जप करके कुश[3]-कूर्च ले आवे। उन्हें ईशान कोणमें रखकर उन्हींके ऊपर कलश और वर्धनीको स्थापित करे। कलशमें श्रीहरिका साङ्ग पूजन करके वर्धनीमें अस्त्रकी अर्चना करे। वर्धनीकी छिन्न धारासे यागमण्डपको प्रदक्षिणाक्रमसे सींचते हुए कलशको उसके उपयुक्त स्थानपर ले जाय और स्थिर आसनपर स्थापित करके उसकी पूजा करे। कलशके भीतर पञ्चरत्न डाले। उसके ऊपर वस्त्र लपेटे। फिर उसपर गन्ध आदि उपचारोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करे। वर्धनीमें भी सोनेका टुकड़ा डाले। उसके बाद उसपर अस्त्रकी पूजा करके, उसके वाम-भागमें पास ही, वास्तु-लक्ष्मी तथा 'भूविनायक'की अर्चना करे। संक्रान्ति आदिके समय इसी प्रकार श्रीविष्णुके स्नान-अभिषेककी व्यवस्था करे। मण्डपके कोणों और दिशाओंमें कुल मिलाकर आठ और मध्यमें एक—इस प्रकार नौ पूर्ण कलशोंको, जिनमें छिद्र न हों, स्थापित करके उनमें पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा पञ्चगव्य डाले। पूर्व आदिके कलशोंमें उक्त वस्तुएँ डालनी चाहिये। अग्निकोण आदिके कलशोंमें उक्त वस्तुओंके अतिरिक्त पञ्चामृतयुक्त जल अधिक डालनेका विधान है। पाद्यकी अङ्गभूता चार वस्तुएँ हैं—दही, दूध, मधु और गरम जल ॥ १३—१९ ॥

किन्हींके मतमें कमल, श्यामाक (तिन्नीका चावल), दूर्वादल और विष्णुक्रान्ता ओषधि—इन चार वस्तुओंसे युक्त जल 'पाद्य' कहलाता है*। इसी तरह अर्घ्यके भी आठ अङ्ग कहे गये हैं। जौ, गन्ध, फल, अक्षत, कुश, सरसों, फूल और तिल—इन आठ द्रव्योंका अर्घ्यके लिये संग्रह करना चाहिये†। जाती (जायफल), लवङ्ग और कङ्कोलयुक्त जलका आचमन‡ देना चाहिये। इष्टदेवको मूलमन्त्रसे पञ्चामृतद्वारा स्नान करावे। बीचवाले कलशसे भगवान्के मस्तकपर शुद्ध जलका छींटा दे। कलशसे निकले हुए जल एवं कूर्चाग्रका स्पर्श करे। फिर शुद्ध जलसे पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय निवेदन करे। तत्पश्चात् वस्त्रसे भगवान्के श्रीविग्रहको पोंछकर वस्त्र धारण करावे और वस्त्रके सहित उन्हें मण्डलमें ले जाय। वहाँ भलीभाँति पूजा करके प्राणायामपूर्वक कुण्ड आदिमें होम करे। (हवनकी विधि—) दोनों हाथ धोकर कुण्डमें या वेदीपर तीन पूर्वाग्र रेखाएँ खींचे। ये रेखाएँ दक्षिणकी ओरसे आरम्भ करके क्रमशः उत्तरकी ओर खींची जायँ। फिर इन्हींके ऊपर तीन उत्तराग्र रेखाएँ खींचे। (ये भी दाहिनेसे आरम्भ करके क्रमशः बायें खींची जायँ) ॥२०—२५॥

तत्पश्चात् अर्घ्यके जलसे इन रेखाओंका प्रोक्षण करे

---

१. शारदातिलक (पटल ४ श्लोक १४-१५) में लाजा, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वाङ्कुर तथा अक्षतको 'विकिर' कहा है; ये समस्त विघ्नसमूहका नाश करनेवाले हैं—

लाजाश्चन्दनसिद्धार्थभस्मदूर्वाङ्कुराक्षताः ।
विकिरा इति संदिष्टाः सर्वविघ्नौघनाशनाः ॥

२. शारदातिलकमें भी सात बार अस्त्र-मन्त्र-जपपूर्वक विकिर-विकिरणका विधान है। यथा—

विकिरान् विकिरेत्तत्र सप्तजप्ताञ्छराणुना ॥

३. पचीस कुशोंसे बँधा हुआ कूर्च 'ब्रह्मकूर्च' कहा गया है। दो दर्भोंका सामान्य कूर्च तथा पाँच-पाँच कुशोंका विशेष कूर्च होता है। सत्रह कुशोंका 'महाकूर्च' होता है। कूर्चोंका दण्ड एक बित्तेका, उसकी मध्यग्रन्थि एक अङ्गुलकी और उसके अग्रभागकी ऊँचाई तीन अङ्गुलकी होनी चाहिये।

(ईशानशिव गुरुदेवपद्धति, सप्तम पटल १४—१५)

* शारदातिलकमें भी यही बात कही गयी है—

पाद्यं पादाम्बुजे दद्याद् देवस्य हृदयाणुना।
एतच्छ्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् ॥
(पटल ४ । ९३)

† गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः ।
सदूर्वैः सर्वदेवानामेतदर्घ्यमुदीरितम् ॥
(शा० ति० ४ । ९५-९६)

‡ सुधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् ।
जातीलवङ्गकङ्कोलैस्तद्युक्तं तन्त्रवेदिभिः ॥
(शा० ति० ४ । ९४)

और योनिमुद्रा दिखावे। अग्निका आत्मरूपसे चिन्तन करके मनुष्य योनियुक्त कुण्डमें उसकी स्थापना करे। इसके बाद दर्भ, स्रुक्, स्रुवा आदिके साथ पात्रासादन करे। बाहुमात्रकी परिधियाँ, इध्मव्रश्चन, प्रणीतापात्र, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, घी, दो-दो सेर चावल तथा अधोमुख स्रुक् और स्रुवाकी जोड़ी। प्रणीता एवं प्रोक्षणीमें पूर्वाग्र कुश रख ले। प्रणीताको जलसे भरकर भगवान्‌का ध्यान-पूजन करके उसको अग्निके पश्चिम अपने आगे और आसादित द्रव्योंके मध्यमें रखे। प्रोक्षणीको जलसे भरकर पूजनके पश्चात् दाहिने रखे। आगपर चरुको चढ़ाकर पकावे और अग्निसे दक्षिण दिशामें ब्रह्माजीकी स्थापना करे। कुण्ड या वेदीके चारों ओर पूर्वादि दिशामें कुश (बर्हिष्) बिछाकर परिधियोंको स्थापित करे। तदनन्तर गर्भाधानादि संस्कारके द्वारा अग्निका वैष्णवीकरण करे। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म एवं नामकरणादि-समावर्तनान्त संस्कार करके प्रत्येक कर्मके लिये आठ-आठ आहुतियाँ दे तथा स्रुवायुक्त स्रुक्‌के द्वारा पूर्णाहुति प्रदान करे ॥ २६—३३ ॥

कुण्डके भीतर ऋतुस्नाता लक्ष्मीका ध्यान करके हवन करे। कुण्डके भीतर जो लक्ष्मी हैं, उन्हें 'कुण्डलक्ष्मी' कहा गया है। वे ही त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं। 'वे सम्पूर्ण भूतोंकी तथा विद्या एवं मन्त्र-समुदायकी योनि हैं। परमात्मस्वरूप अग्निदेव मोक्षके कारण एवं मुक्तिदाता हैं। पूर्व दिशाकी ओर कुण्डलक्ष्मीका सिर है, ईशान और अग्निकोणकी ओर उसकी भुजाएँ हैं, वायव्य तथा नैर्ऋत्यकोणमें जंघाएँ हैं, उदरको 'कुण्ड' कहा है तथा योनिके स्थानमें कुण्ड-योनिका विधान है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण ही तीन मेखलाएँ हैं।' इस प्रकार ध्यान करके प्रणवमन्त्रसे मुष्टिमुद्राद्वारा पंद्रह समिधाओंका होम करे। फिर वायुसे लेकर अग्निकोणतक 'आघार' नामक दो आहुतियाँ दे। इसी तरह आग्नेयसे ईशानान्ततक 'आज्य-भाग' नामक आहुतियोंका हवन करे। आज्यस्थालीमेंसे उत्तर, दक्षिण और मध्यभागसे घृत लेकर द्वादशान्तसे, अर्थात् मूलको बारह बार जप कर अग्निमें भी उन्हीं दिशाओंमें उसकी आहुति दे और वहीं उसका त्याग करे *। इसके बाद 'भूः स्वाहा' इत्यादि रूपसे व्याहृति होम करे। कमलके मध्यभागमें संस्कार-सम्पन्न अग्निदेवका 'विष्णु' रूपमें ध्यान करे। 'वे सात जिह्वाओंसे युक्त हैं, करोड़ों सूर्योंके समान उनकी प्रभा है, चन्द्रोपम मुख है और सूर्य-सदृश देदीप्यमान नेत्र हैं।' इस तरह ध्यान करके उनके लिये एक सौ आठ आहुतियाँ दे। अथवा मूल-मन्त्रसे उसकी आधी एवं आठ आहुतियाँ दे। अङ्गोंके लिये भी दस-दस आहुतियाँ दे ॥ ३४—४१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पवित्रारोपण-सम्बन्धी पूजा-होम-विधिका वर्णन' विषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

१—मन्त्र-महार्णवमें योनिमुद्राका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके। अनामिकोर्ध्वसंश्लिष्टे दीर्घमध्यमयोरपि ॥ (पू० ख० १ तरं० २)

* प्रादेशमात्र ग्रन्थियुक्त दो कुशा लेकर, घीके बीचमें डालकर, उसके दो भाग करके, उसे शुक्ल और कृष्ण—दो पक्षोंके रूपमें स्मरण करे। तदनन्तर वामभागमें इडानाडी, दक्षिणभागमें पिङ्गलानाडी और मध्यभागमें सुषुम्ना नाडीका ध्यान करके हवन करे। 'ॐ नमः।'—इस मन्त्रद्वारा स्रुवसे दक्षिण भागकी ओरसे घी लेकर दाहिने नेत्रमें 'ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये।' कहकर एक आहुति दे। फिर उत्तर भागसे घी लेकर 'ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय।' बोलकर एक आहुति अग्निके वामनेत्रमें दे। इसके बाद बीचसे घी लेकर 'अग्नीषोमाभ्यां नमः।' इस मन्त्रसे एक आहुति अग्निके भालस्थ नेत्रमें दे। फिर स्रुवद्वारा दक्षिण भागसे घी लेकर अग्निके मुखमें 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' बोलकर एक आहुति दे। इसके बाद व्याहृति-होम करना चाहिये [मन्त्रमहार्णवसे]। जिस भागसे आज्याहुति ली जाय, अग्निके उसी भागमें उसका सम्पात या त्याग करे। जैसा कि कहा है—

'स्वाहान्तहोमं विधाय 'स्वाहा' इत्यस्यान्ते वषाद् भागादाज्याहुतिर्गृहीता तस्मिन्नेव भागे तस्य सम्पातं कुर्यात्।'

(शा० ति० ५ पटल, श्लोक ५८ की टीका)

पैंतीसवाँ अध्याय

पवित्राधिवासन-विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुनीश्वर ! सम्पाताहुतिसे पवित्राओंका सेचन करके उनका अधिवासन करना चाहिये। नृसिंह-मन्त्रका जप करके उन्हें अभिमन्त्रित करे और अस्त्र-मन्त्र (अस्त्राय फट् ।) से उन्हें सुरक्षित रक्खे। पवित्राओंमें वस्त्र लपेटे हुए ही उन्हें पात्रमें रखकर अभिमन्त्रित करना चाहिये। बिल्व आदिके सम्पर्कसे युक्त जलद्वारा मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन सबका एक या दो बार प्रोक्षण करना चाहिये। गुरुको चाहिये कि कुम्भपात्रमें पवित्राओंको रखकर उनकी रक्षाके उद्देश्यसे उस पात्रसे पूर्व-दिशामें सकर्षण-मन्त्रद्वारा दन्तकाष्ठ और आँवला, दक्षिण-दिशामें प्रद्युम्न-मन्त्रद्वारा भस्म और तिल, पश्चिम-दिशामें अनिरुद्ध-मन्त्रद्वारा गोबर और मिट्टी तथा उत्तर-दिशामें नारायण-मन्त्रद्वारा कुशोदक डाले। तदनन्तर अग्निकोणमें हृदय-मन्त्रसे कुङ्कुम तथा रोचना, ईशानकोणमें शिरोमन्त्रद्वारा धूप, नैर्ऋत्यकोणमें शिखामन्त्रद्वारा दिव्य मूलपुष्प तथा वायव्यकोणमें कवच-मन्त्रद्वारा चन्दन, जल, अक्षत, दही और दूर्वाको दोनेमें रखकर छींटे। मण्डपको त्रिसूत्रसे आवेष्टित करके पुनः सब ओर सरसों बिखेरे ॥ १—६ ॥

देवताओंकी जिस क्रमसे पूजा की गयी हो, उसी क्रमसे, उनके लिये उनके अपने-अपने नाम-मन्त्रोंसे गन्धपवित्रक[1] देना चाहिये। द्वारपाल आदिको नाम-मन्त्रोंसे ही गन्ध-पवित्रक अर्पित करे। इसी क्रमसे कुम्भमें भगवान् विष्णुको सम्बोधित करके पवित्रक दे—'हे देव ! यह आप भगवान् विष्णुके ही तेजसे उत्पन्न रमणीय तथा सर्वपातकनाशन पवित्रक है। यह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है, इसे मैं आपके अङ्गमें धारण कराता हूँ।' धूप-दीप आदिके द्वारा सम्यक् पूजन करके मण्डपके द्वारके समीप जाय तथा गन्ध, पुष्प और अक्षतसे युक्त वह पवित्रक स्वयंको भी अर्पित करे। अपनेको अर्पण करते समय इस प्रकार कहे—'यह पवित्रक भगवान् विष्णुका तेज है और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है; मैं धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिके लिये इसे अपने अङ्गमें धारण करता हूँ।' आसनपर भगवान् श्रीहरिके परिवार आदिको एवं गुरुको पवित्रक दे। गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिसे भगवान् श्रीहरिकी पूजा करके गन्ध-पुष्पादिसे पूजित पवित्रक श्रीहरिको अर्पित करे। उस समय 'विष्णुतेजोभवम्' इत्यादि मूल-मन्त्रका उच्चारण करे ॥ ७—१२ ॥

तदनन्तर अग्निमें अधिष्ठातारूपसे स्थित भगवान् विष्णुको पवित्रक अर्पित करके उन परमेश्वरसे यों प्रार्थना करे—'केशव ! आपका श्रीविग्रह क्षीरसागरमें महानाग (अनन्त) की शय्यापर शयन करनेवाला है। मैं प्रातःकाल आपकी पूजा करूँगा; आप मेरे समीप पधारिये।' इसके बाद इन्द्र आदि दिक्पालोंको बलि अर्पित करके श्रीविष्णु-पार्षदोंको भी बलि भेंट करे। इसके बाद भगवान्‌के सम्मुख युगल-वस्त्र भूषित तथा रोचना, कर्पूर, केसर और गन्ध आदिके जलसे पूरित कलशको गन्ध-पुष्प आदिसे विभूषित करके मूलमन्त्रसे उसकी पूजा करे। फिर मण्डपसे बाहर आकर पूर्व दिशामें लिये हुए मण्डल-त्रयमें पञ्चगव्य, चरु और दन्तकाष्ठका क्रमशः सेवन करे।* रातमें पुराणश्रवण तथा स्तोत्रपाठ करते हुए जागरण करे। पर प्रेपक बालकों, स्त्रियों तथा भोगीजनोंके उपयोगमें आनेवाले गन्धपवित्रकको छोड़कर शेषका तत्काल अधिवासन करे ॥ १३—१८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पवित्राधिवासन-विधिका वर्णन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

---

१. सूत्रको केवल त्रिगुणित करके पवित्रा बनायी जाय तो उसे 'गन्धपवित्रक' कहते हैं। इसमें एक गाँठ होती है और थोड़ेसे तन्तु। कोई-कोई इसे 'कनिष्ठसंख्य' भी कहते हैं। जैसा कि वचन है—

'त्रिसूत्री गन्धसूत्रे स्यात्।'

तत्र गन्धपवित्रं स्यादेकग्रन्थ्यल्पतन्तुकम्। कनिष्ठसंख्यमित्येके त्रिसूत्रेण विनिर्मितम् ॥

(ईशानशिव गुरुदेवपद्धति, क्रियापाद २१ पटल १२, १६)

* बहिर्निर्गत्य प्राचीनेषु त्रिषु मण्डलेषु दीक्षोक्तमार्गेण पञ्चगव्यं चरुं दन्तधावनं च भजेत्।

(ईशानशिव गुरुदेवपद्धति, उत्तरार्ध, क्रियापाद २१वाँ पटल)

छत्तीसवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! प्रातःकाल स्नान आदि करके, द्वारपालोंका पूजन करनेके पश्चात् गुप्त स्थानमें प्रवेश करके, पूर्वाधिवासित पवित्रकमेंसे एक लेकर प्रसादरूपसे धारण कर ले। शेष द्रव्य-वस्त्र, आभूषण, गन्ध एवं सम्पूर्ण निर्माल्यको हटाकर भगवान्‌को स्नान करानेके पश्चात् उनकी पूजा करे। पञ्चामृत, कषाय एवं शुद्ध गन्धोदकसे नहलाकर भगवान्‌के निमित्त पहलेसे रखे हुए वस्त्र, गन्ध और पुष्पको उनकी सेवामें प्रस्तुत करे। अग्निमें नित्यहोमकी भाँति हवन करके भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना करनेके अनन्तर उनके चरणोंमें मस्तक नवावे। फिर अपने समस्त कर्म भगवान्‌को अर्पित करके उनकी नैमित्तिकी पूजा करे। द्वारपाल, विष्णु, कुम्भ और वर्धनीकी प्रार्थना करे। 'अतो देवाः' इत्यादि मन्त्रसे, अथवा मूल-मन्त्रसे कलशपर श्रीहरिकी स्तुति-प्रार्थना करे—"हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! आपको नमस्कार है। इस पवित्रकको ग्रहण कीजिये। यह उपासकको पवित्र करनेके लिये है और वर्षभर की हुई पूजाके सम्पूर्ण फलको देनेवाला है। नाथ ! पहले मुझसे जो दुष्कृत (पाप) बन गया हो, उसे नष्ट करके आप मुझे परम पवित्र बना दीजिये। देव ! सुरेश्वर ! आपकी कृपासे मैं शुद्ध हो जाऊँगा।"* हृदय, सिर आदि मन्त्रोंद्वारा पवित्रकका तथा अपना भी अभिषेक करके विष्णुकलशका भी प्रोक्षण करनेके बाद भगवान्‌के समीप जाय। उनके रक्षाबन्धनको हटाकर उन्हें पवित्रक अर्पण करे और कहे—"प्रभो ! मैंने जो ब्रह्मसूत्र तैयार किया है, इसे आप ग्रहण करें। यह कर्मकी पूर्तिका साधक है; अतः इस पवित्रारोपण कर्मको आप इस तरह सम्पन्न करें, जिससे मुझे दोषका भागी न होना पड़े" ॥ १—९½ ॥

द्वारपाल, योगपीठासन तथा मुख्य गुरुओंको पवित्रक चढ़ावे। इनमें कनिष्ठ श्रेणीका (नाभितकका) पवित्रक द्वारपालोंको, मध्यम श्रेणीका (जाँघतक लटकनेवाला) पवित्रक योगपीठासनको और उत्तम (घुटनेतकका) पवित्रक गुरुजनोंको दे। साक्षात् भगवान्‌को मूल-मन्त्रसे वनमाला (पैरोंतक लटकनेवाला पवित्रक) अर्पित करे। 'नमो विष्वक्सेनाय' मन्त्र बोलकर विष्वक्सेनको भी पवित्रक चढ़ावे। अग्निमें होम करके अग्निस्थ विश्वादि देवताओंको पवित्रक अर्पित करे। तदनन्तर पूजनके पश्चात् मूल-मन्त्रसे प्रायश्चित्तके उद्देश्यसे पूर्णाहुति दे। अष्टोत्तरशत अथवा पाँच औपनिषदमन्त्रोंसे पूर्णाहुति देनी चाहिये। मणि या मूँगेकी मालाओंसे अथवा मन्दार-पुष्प आदिसे अष्टोत्तर-शतकी गणना करनी चाहिये। अन्तमें भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—"गरुडध्वज ! यह आपकी वार्षिक पूजा सफल हो। देव ! जैसे वनमाला आपके वक्षःस्थलमें सदा शोभा पाती है, उसी तरह पवित्रकके इन तन्तुओंको और इनके द्वारा की गयी पूजाको भी आप अपने हृदयमें धारण करें। मैंने इच्छासे या अनिच्छासे नियमपूर्वक की जानेवाली पूजामें जो त्रुटियाँ की हैं, विघ्नवश विधिके पालनमें जो न्यूनता हुई है, अथवा कर्मलोपका प्रसङ्ग आया है, वह सब आपकी कृपासे पूर्ण हो जाय। मेरे द्वारा की हुई आपकी पूजा पूर्णतः सफल हो ॥" १०—१५½ ॥

इस प्रकार प्रार्थना और नमस्कार करके अपराधोंके लिये क्षमा माँगकर पवित्रकको मस्तकपर चढ़ावे। फिर यथायोग्य बलि अर्पित करके दक्षिणाद्वारा वैष्णव गुरुको संतुष्ट करे। यथाशक्ति एक दिन या एक पक्षतक ब्राह्मणोंको भोजन-वस्त्र आदिसे संतोष प्रदान करे। स्नानकालमें पवित्रकको उतारकर पूजा करे। उत्सवके दिन किसीको आनेसे न रोके और सबको अनिवार्यरूपसे अन्न देकर अन्तमें स्वयं भी भोजन करे। विसर्जनके दिन पूजन करके पवित्रकोंका विसर्जन करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—"हे पवित्रक ! मेरी इस वार्षिक पूजाको विधिवत् सम्पादित करके अब तुम मेरेद्वारा विसर्जित हो विष्णुलोकको पधारो।" उत्तर और ईशानकोणके बीचमें विष्वक्सेनकी पूजा करके उनके भी पवित्रकोंकी अर्चना करनेके पश्चात् उन्हें ब्राह्मण-को दे दे। उस पवित्रकमें जितने तन्तु कल्पित हुए हैं, उतने सहस्र युगोंतक उपासक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

* कृष्ण कृष्ण नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम्।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम्॥
पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम्।
शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर॥
(अग्नि० ३६। ६, ७)

साधक पवित्रारोपणसे अपनी सौ पूर्व पीढ़ियोंका उद्धार करके दस पहले और दस बादकी पीढ़ियोंको विष्णुलोकमें स्थापित करता और स्वयं भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ १९—२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विष्णु-पवित्रारोपणविधि-निरूपण' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये साधारण पवित्रारोपणकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! अब संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये पवित्रारोपणकी विधि सुनो। पहले जो चिह्न कहे गये हैं, उन्हीं लक्षणोंसे युक्त पवित्रक देवताको अर्पित किया जाता है। उसके दो भेद होते हैं 'स्वरस' और 'अनल्प'। पहले निम्नाङ्कित रूपसे इष्टदेवताको निमन्त्रण देना चाहिये—'जगत्‌के कारणभूत ब्रह्मदेव ! आप परिवार सहित यहाँ पधारें। मैं आपको निमन्त्रित करता हूँ। कल प्रातःकाल आपकी सेवामें पवित्रक अर्पित करूँगा।' फिर दूसरे दिन पूजनके पश्चात् निम्नाङ्कित प्रार्थना करके पवित्रक भेंट करे—'संसारकी सृष्टि करनेवाले आप विधाताको नमस्कार है। यह पवित्रक ग्रहण कीजिये। इसे अपनेको पवित्र करनेके लिये आपकी सेवामें प्रस्तुत किया गया है। यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है।' 'शिवदेव ! वेदवेत्ताओंके पालक प्रभो ! आपको नमस्कार है। यह पवित्रक स्वीकार कीजिये। इसके द्वारा आपके लिये मणि, मूँगे और मन्दार-कुसुम आदिसे प्रतिदिन एक वर्षतक की जानेवाली पूजा सम्पादित हो।' 'पवित्रक ! मेरी इस वार्षिक-पूजाका विधिवत् सम्पादन करके मुझसे विदा लेकर अब तुम स्वर्गलोकको पधारो।' 'सूर्यदेव ! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक लीजिये। इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे आपकी सेवामें अर्पित किया गया है। यह एक वर्षकी पूजाका फल देनेवाला है।' 'गणेशजी ! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक स्वीकार कीजिये। इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे दिया गया है। यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है।' 'शक्ति देवि ! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक लीजिये। इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे आपकी सेवामें भेंट किया गया है। यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है' ॥ १—९½ ॥

'पवित्रकका यह उत्तम सूत नारायणमय और अनिरुद्धमय है। धन-धान्य, आयु तथा आरोग्यको देनेवाला है, इसे मैं आपकी सेवामें दे रहा हूँ। यह श्रेष्ठ सूत प्रद्युम्नमय और संकर्षणमय है, विद्या, संतति तथा सौभाग्यको देनेवाला है। इसे मैं आपकी सेवामें अर्पित करता हूँ। यह वासुदेवमय सूत्र धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको देनेवाला है। संसारसागरसे पार लगानेका यह उत्तम साधन है, इसे आपके चरणोंमें चढ़ा रहा हूँ। यह विश्वरूपमय सूत्र सब कुछ देनेवाला और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है; भूतकालके पूर्वजों और भविष्यकी भावी संतानोंका उद्धार करनेवाला है, इसे आपकी सेवामें प्रस्तुत करता हूँ। कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम एवं परमोत्तम—इन चार प्रकारके पवित्रकोंका मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः दान करता हूँ' ॥ १०—१४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'संक्षेपतः सर्वदेवसाधारण पवित्रारोपण' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय

देवालय-निर्माणसे प्राप्त होनेवाले फल आदिका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुनिवर वसिष्ठ ! भगवान् वासुदेव आदि विभिन्न देवताओंके निमित्त मन्दिरका निर्माण करानेसे जिस फल आदिकी प्राप्ति होती है, अब मैं उसीका वर्णन करूँगा। जो देवताके लिये मन्दिर-जलाशय आदिके निर्माण करानेकी इच्छा करता है, उसका वह शुभ संकल्प ही उसके हजारों जन्मोंके पापोंका नाश कर देता है। जो मनसे भावनाद्वारा भी मन्दिरका निर्माण करते हैं, उनके सैकड़ों जन्मोंके पापोंका नाश हो जाता है। जो लोग भगवान् श्रीकृष्णके लिये किसी दूसरेके द्वारा बनवाये जाते हुए मन्दिरके निर्माण-कार्यका अनुमोदन मात्र कर देते हैं,

वे भी समस्त पापोंसे मुक्त हो उन अच्युतदेवके लोक (वैकुण्ठ अथवा गोलोकधामको) प्राप्त होते हैं । भगवान् विष्णुके निमित्त मन्दिरका निर्माण करके मनुष्य अपने भूतपूर्व तथा भविष्यमें होनेवाले दस हजार कुलोंको तत्काल विष्णुलोकमें जानेका अधिकारी बना देता है । श्रीकृष्ण-मन्दिरका निर्माण करनेवाले मनुष्यके पितर नरकके क्लेशोंसे तत्काल छुटकारा पा जाते हैं और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो बड़े हर्षके साथ विष्णुधाममें निवास करते हैं । देवालयका निर्माण ब्रह्महत्या आदि पापोंके पुञ्जका नाश करनेवाला है ॥ १—५ ॥

यज्ञोंसे जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती है, वह भी देवालयका निर्माण करानेमात्रसे प्राप्त हो जाता है । देवालयका निर्माण करा देनेपर समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त हो जाता है । देवता-ब्राह्मण आदिके लिये रणभूमिमें मारे जानेवाले धर्मात्मा शूरवीरोंको जिस फल आदिकी प्राप्ति होती है, वही देवालयके निर्माणसे भी सुलभ होता है । कोई शठता (कंजूसी) के कारण धूल-मिट्टीसे भी देवालय बनवा दे तो वह उसे स्वर्ग या दिव्यलोक प्रदान करनेवाला होता है । एकायतन (एक ही देव-विग्रहके लिये एक कमरेका) मन्दिर बनवानेवाले पुरुषको स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है । त्र्यायतन-मन्दिरका निर्माता ब्रह्मलोकमें निवास पाता है । पञ्चायतन-मन्दिरका निर्माण करनेवालेको शिवलोककी प्राप्ति होती है और अष्टायतन-मन्दिरके निर्माणसे श्रीहरिकी संनिधिमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता है । जो षोडशायतन-मन्दिरका निर्माण कराता है, वह भोग और मोक्ष, दोनों पाता है । श्रीहरिके मन्दिरकी तीन श्रेणियाँ हैं—कनिष्ठ, मध्यम और श्रेष्ठ । इनका निर्माण करानेसे क्रमशः स्वर्गलोक, विष्णुलोक तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है । धनी मनुष्य भगवान् विष्णुका उत्तम श्रेणीका मन्दिर बनवाकर जिस फलको प्राप्त करता है, उसे ही निर्धन मनुष्य निम्नश्रेणीका मन्दिर बनवाकर भी प्राप्त कर लेता है । धन-उपार्जनकर उसमेंसे थोड़ा-सा ही खर्च करके यदि मनुष्य देव मन्दिर बनवा ले तो बहुत अधिक पुण्य एवं भगवान्‌का वरदान प्राप्त करता है । एक लाख या एक हजार या एक सौ अथवा उसका आधा (५०) मुद्रा ही खर्च करके भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवानेवाला मनुष्य उस नित्य धामको प्राप्त होता है, जहाँ साक्षात् गरुडकी ध्वजा फहरानेवाले भगवान् विष्णु विराजमान होते हैं ॥ ६—१२½ ॥

जो लोग बचपनमें खेलते समय धूलिसे भगवान् विष्णुका मन्दिर बनाते हैं, वे भी उनके धामको प्राप्त होते हैं । तीर्थमें, पवित्र स्थानमें, सिद्धक्षेत्रमें तथा किसी आश्रम-पर जो भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाते हैं, उन्हें अन्यत्र मन्दिर बनानेका जो फल बताया गया है, उससे तीन गुना अधिक फल मिलता है । जो लोग भगवान् विष्णुके मन्दिरको चूनेसे लिपाते और उसपर बन्धूकके फूलका चित्र बनाते हैं, वे अन्तमें भगवान्‌के धाममें पहुँच जाते हैं । भगवान्‌का जो मन्दिर गिर गया हो, गिर रहा हो, अथवा आधा गिर चुका हो, उसका जो मनुष्य जीर्णोद्धार करता है, वह नवीन मन्दिर बनवानेकी अपेक्षा दूना पुण्यफल प्राप्त करता है । जो गिरे हुए विष्णु मन्दिरको पुनः बनवाता और गिरे हुएकी रक्षा करता है, वह मनुष्य साक्षात् भगवान् विष्णुका स्वरूप प्राप्त करता है । भगवान्‌के मन्दिरकी ईंटें जबतक रहती हैं, तबतक उसका बनवानेवाला विष्णुलोकमें कुलसहित प्रतिष्ठित होता है । इस संसारमें और परलोकमें वही पुण्यवान् और पूजनीय है ॥ १३—२० ॥

जो भगवान् श्रीकृष्णका मन्दिर बनवाता है, वही पुण्यवान् उत्पन्न हुआ है, उसीने अपने कुलकी रक्षा की है । जो भगवान् विष्णु, शिव, सूर्य और देवी आदिका मन्दिर बनवाता है, वही इस लोकमें कीर्तिका भागी होता है । सदा धनकी रक्षामें लगे रहनेवाले मूर्ख मनुष्यको बड़े कष्टसे कमाये हुए अधिक धनसे क्या लाभ हुआ, यदि वह उससे श्रीकृष्णका मन्दिर ही नहीं बनवाता । जिसका धन पितरों, ब्राह्मणों और देवताओंके उपयोगमें नहीं आता तथा बन्धु-बान्धवोंके भी उपयोगमें नहीं आ सका, उसके धनकी प्राप्ति व्यर्थ हुई । जैसे प्राणियोंकी मृत्यु निश्चित है, उसी प्रकार कमाये हुए धनका नाश भी निश्चित है । मूर्ख मनुष्य ही क्षणभङ्गुर जीवन और चञ्चल धनके मोहमें बँधा रहता है । जब धन दानके लिये, प्राणियोंके उपभोगके लिये, कीर्तिके लिये और धर्मके लिये काममें नहीं लाया जा सके तो उस धनका मालिक बननेमें क्या लाभ है ? इसलिये प्रारब्धसे मिले अथवा पुरुषार्थसे, किसी भी उपायसे धनको प्राप्तकर उसे उत्तम ब्राह्मणोंको दान दे, अथवा कोई स्थिर कीर्ति बनवावे । चूँकि दान और कीर्तिसे भी बढ़कर मन्दिर

बनवाना है, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य विष्णु आदि देवताओं-का मन्दिर आदि बनवावे। भक्तिमान् श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा यदि भगवान्के मन्दिरका निर्माण और उसमें भगवान्का प्रवेश (स्थापन आदि) हुआ तो यह समझना चाहिये कि उसने समस्त चराचर त्रिभुवनको रहनेके लिये भवन बनवा दिया। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ भी भूत, वर्तमान, भविष्य, स्थूल, सूक्ष्म और इससे भिन्न है, वह सब भगवान् विष्णुसे प्रकट हुआ है। उन देवाधिदेव सर्वव्यापक महात्मा विष्णुका मन्दिरमें स्थापन करके मनुष्य पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता [मुक्त हो जाता है]। जिस प्रकार विष्णुका मन्दिर बनवानेमे फल बताया गया है, उसी प्रकार अन्य देवताओं—शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, दुर्गा और लक्ष्मी आदिका भी मन्दिर बनवानेसे होता है। मन्दिर बनवानेसे अधिक पुण्य देवताकी प्रतिमा बनवानेमे है। देव-प्रतिमाकी स्थापना-सम्बन्धी जो यज्ञ होता है, उसके फलका तो अन्त ही नहीं है। कच्ची मिट्टीकी प्रतिमासे लकड़ीकी प्रतिमा उत्तम है, उससे ईंटकी, उससे भी पत्थरकी और उससे भी अधिक सुवर्ण आदि धातुओंकी प्रतिमाका फल है। देवमन्दिरका प्रारम्भ करने मात्रसे सात जन्मोंके किये हुए पापका नाश हो जाता है तथा बनवानेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका अधिकारी होता है; वह नरकमें नहीं जाता। इतना ही नहीं, वह मनुष्य अपनी सौ पीढ़ीका उद्धार करके उसे विष्णुलोकमें पहुँचा देता है। यमराजने अपने दूतोंसे देवमन्दिर बनानेवालोंको लक्ष्य करके ऐसा कहा था—॥ २१—३५ ॥

यम बोले—(देवालय और) देव-प्रतिमाका निर्माण तथा उसकी पूजा आदि करनेवाले मनुष्योंको तुमलोग नरकमें न ले आना तथा जो देव-मन्दिर आदि नहीं बनवाते, उन्हें खास तौरपर पकड़ लाना। जाओ! तुम-लोग संसारमें विचरो और न्यायपूर्वक मेरी आज्ञाका पालन करो। संसारके कोई भी प्राणी कभी तुम्हारी आज्ञा नहीं टाल सकेंगे। केवल उन लोगोंको तुम छोड़ देना जो कि जगत्पिता भगवान् अनन्तकी शरणमें जा चुके हैं; क्योंकि उन लोगोंकी स्थिति यहाँ (यमलोकमें) नहीं होती। संसारमें जहाँ भी भगवान्में चित्त लगाये हुए, भगवान्की ही शरणमें पड़े हुए भगवद्भक्त महात्मा सदा भगवान् विष्णुकी पूजा करते हों, उन्हें दूरसे ही छोड़कर तुमलोग चले जाना। जो स्थिर होते, सोते, चलते, उठते, गिरते, पड़ते या खड़े होते समय भगवान् श्रीकृष्णका नाम-कीर्तन करते हैं, उन्हें दूरसे ही त्याग देना। जो नित्य-नैमित्तिक कर्मोंद्वारा भगवान् जनार्दनकी पूजा करते हैं, उनकी ओर तुमलोग आँख उठाकर देखना भी नहीं; क्योंकि भगवान्का व्रत करनेवाले लोग भगवान्को ही प्राप्त होते हैं* ॥ ३६—४१ ॥

जो लोग फूल, धूप, वस्त्र और अत्यन्त प्रिय आभूषणों-द्वारा भगवान्की पूजा करते हैं, उनका स्पर्श न करना; क्योंकि वे मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके धामको पहुँच चुके हैं। जो भगवान्के मन्दिरमें लेप करते या बुहारी लगाते हैं, उनके पुत्रोंको तथा उनके वंशको भी छोड़ देना। जिन्होंने भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाया हो, उनके वंशमें सौ पीढ़ीतकके मनुष्योंकी ओर तुमलोग बुरे भावसे न देखना। जो लकड़ीका, पत्थरका अथवा मिट्टीका ही देवालय भगवान् विष्णुके लिये बनवाता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्रतिदिन यज्ञोंद्वारा भगवान्की आराधना करनेवालेको जो महान् फल मिलता है, उसी फलको, जो विष्णुका मन्दिर बनवाता है, वह भी प्राप्त करता है। जो भगवान् अच्युतका मन्दिर बनवाता है, वह अपनी बीती हुई सौ पीढ़ीके पितरोंको तथा होनेवाले सौ पीढ़ीके वंशजोंको भगवान् विष्णुके लोकको पहुँचा देता है। भगवान् विष्णु सप्तलोकमय हैं। उनका मन्दिर जो बनवाता है, वह अपने कुलको तारता है, उन्हें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति कराता है और स्वयं भी अक्षय लोकोंको

---

* यम उवाच—

प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरकं नराः ।
देवालयाद्यकर्तारं आनेयास्ते विशेषतः ॥
विचरध्वं यथान्यायं नियोगो मम पाल्यताम् ।
नाज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् ॥
केवलं ये जगत्तातमनन्तं समुपाश्रिताः ।
भवद्भिः परिहर्तव्यास्तेषां नात्रास्ति संस्थितिः ॥
यत्र भागवता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः ।
पूजयन्ति सदा विष्णुं ते च त्याज्याः सुदूरतः ॥
यस्तिष्ठन् प्रस्वपन् गच्छन्नुत्तिष्ठन् स्खलिताः स्थिताः ।
संकीर्तयन्ति गोविन्दं ते वस्त्याज्याः सुदूरतः ॥
नित्यनैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति जनार्दनम् ।
नावलोक्या भवद्भिस्ते तद्व्रता यान्ति तद्गतिम् ॥

(अग्निपु० ३८ । ३६-४१)

प्राप्त होता है। मन्दिरमें ईंटके समूहका जोड़ जितने वर्षोंतक रहता है, उतने ही हजार वर्षोंतक उस मन्दिरके बनवानेवालेकी स्वर्गलोकमें स्थिति होती है। भगवान्‌की प्रतिमा बनानेवाला विष्णुलोकको प्राप्त होता है, उसकी स्थापना करनेवाला भगवान्‌में लीन हो जाता है और देवालय बनवाकर उसमें प्रतिमाकी स्थापना करनेवाला सदा भगवान्‌के लोकमें निवास पाता है* ॥ ४२—५० ॥

अग्निदेव बोले—यमराजके इस प्रकार आज्ञा देनेपर यमके दूत भगवान् विष्णुकी स्थापना आदि करनेवालोंको यमलोकमें नहीं ले जाते। देवताओंकी प्रतिष्ठा आदिकी विधिका भगवान् हयग्रीवने ब्रह्माजीसे वर्णन किया था ॥ ५१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'देवालय-निर्माण माहात्म्यादिका वर्णन' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके लिये भूपरिग्रहका विधान

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाके विषयमें कहूँगा, ध्यान देकर सुनिये। इस विषयमें मेरे द्वारा वर्णित पञ्चरात्रों एवं सप्तरात्रोंका ऋषियोंने मानवलोकमें प्रचार किया है। वे संख्यामें पच्चीस हैं। (उनके नाम इस प्रकार हैं—) आदिहयशीर्षतन्त्र, त्रैलोक्यमोहनतन्त्र, वैभवतन्त्र, पुष्करतन्त्र, प्रह्लादतन्त्र, गार्ग्यतन्त्र, गालवतन्त्र, नारदीयतन्त्र, श्रीप्रश्नतन्त्र, शाण्डिल्यतन्त्र, ईश्वरतन्त्र, सत्यतन्त्र, शौनकतन्त्र, वसिष्ठोक्त ज्ञानसागरतन्त्र, स्वायम्भुवतन्त्र, कापिलतन्त्र, तार्क्ष्य (गारुड) तन्त्र, नारायणीयतन्त्र, आत्रेयतन्त्र, नारसिंहतन्त्र, आनन्दतन्त्र, आरुणतन्त्र, बौधायनतन्त्र, अष्टाङ्गतन्त्र और विश्वतन्त्र ॥ १—५ ॥

इन तन्त्रोंके अनुसार मध्यदेश आदिमें उत्पन्न द्विज देवविग्रहोंकी प्रतिष्ठा करे। कच्छदेश, कावेरीतटवर्ती देश, कौंकण, कामरूप, कलिङ्ग, काञ्ची तथा काश्मीर देशमें उत्पन्न ब्राह्मण देवप्रतिष्ठा आदि न करे। आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी—ये पञ्चमहाभूत पञ्चरात्र हैं। जो चेतना-शून्य एवं अज्ञानान्धकारसे आच्छन्न हैं, वे पञ्चरात्रसे रहित हैं। जो मनुष्य यह धारणा करता है कि 'मैं पापमुक्त परब्रह्म विष्णु हूँ'—वह देशिक होता है। वह समस्त बाह्य लक्षणों (वेष आदि) से हीन होनेपर भी तन्त्रवेत्ता आचार्य माना गया है ॥ ६—८½ ॥

देवताओंकी नगराभिमुख स्थापना करनी चाहिये। नगरकी ओर उनका पृष्ठभाग नहीं होना चाहिये। कुरुक्षेत्र, गया आदि तीर्थस्थानोंमें अथवा नदीके समीप देवालयका निर्माण कराना चाहिये। ब्रह्माका मन्दिर नगरके मध्यमें तथा इन्द्रका पूर्व दिशामें उत्तम माना गया है। अग्निदेव तथा मातृकाओंका आग्नेयकोणमें, भूतगण और यमराजका दक्षिणमें, चण्डिका, पितृगण एवं दैत्यादिका मन्दिर नैर्ऋत्यकोणमें बनवाना चाहिये। वरुणका पश्चिममें, वायुदेव और नागका वायव्यकोणमें, यक्ष या कुबेरका उत्तर दिशामें, चण्डीश-महेशका ईशानकोणमें और विष्णुका मन्दिर सभी

* ये पुष्पधूपवासोभिर्भूषणैश्चातिवल्लभैः। अर्चयन्ति न ते ग्राह्या नराः कृष्णालये गताः ॥
उपलेपनकर्तारः सम्मार्जनपराश्च ये। कृष्णालये परित्याज्यास्तेषां पुत्रास्तथा कुलम् ॥
येन चायतनं विष्णोः कारितं तत्कुलोद्भवम्। पुंसां शतं नावलोक्यं भवद्भिर्दुष्टचेतसा ॥
यस्तु देवालयं विष्णोर्दारुशैलमयं तथा। कारयेन्मृन्मयं वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महाफलम्। प्राप्नोति तत्फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम् ॥
कुलानां शतमागामि समतीतं तथा शतम्। कारयन् भगवद्धाम नयत्यच्युतलोकताम् ॥
सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम्। तारयत्यक्षयाँल्लोकानक्षय्यान् प्रतिपद्यते ॥
इष्टकाचयविन्यासो यावन्त्यब्दानि तिष्ठति। तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुर्दिवि संस्थितिः ॥
प्रतिमाकृद् विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरौ। देवसद्मप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे ॥
(अग्निपु० ३८। ४२—५०)

ओर बनवाना श्रेष्ठ है। ज्ञानवान् मनुष्यको पूर्ववर्ती देव-मन्दिरको संकुचित करके अल्प, समान या विशाल मन्दिर नहीं बनवाना चाहिये ॥ ९-१३½ ॥

(किसी देव-मन्दिरके समीप मन्दिर बनवानेपर) दोनों मन्दिरोंकी ऊँचाईके बराबर दुगुनी सीमा छोड़कर नवीन देव-प्रासादका निर्माण करावे। विद्वान् व्यक्ति दोनों मन्दिरोंको पीड़ित न करे। भूमिका शोधन करनेके बाद भूमि-परिग्रह करे। तदनन्तर प्राकारकी सीमातक माष, हरिद्राचूर्ण, खील, दधि और सक्तुसे भूतबलि प्रदान करे। फिर अष्टाक्षरमन्त्र पढ़कर आठों दिशाओंमें सक्तु बिखेरते हुए कहे—'इस भूमिखण्डपर जो राक्षस एवं पिशाच आदि निवास करते हों, वे सब यहाँसे चले जायँ। मैं यहाँ-पर श्रीहरिके लिये मन्दिरका निर्माण करूँगा।'* फिर भूमिको हलसे जुतवाकर गोचारण करावे। आठ परमाणुका 'रथरेणु' माना गया है। आठ रथरेणुका 'त्रसरेणु' माना जाता है। आठ त्रसरेणुका 'बालाग्र' तथा आठ बालाग्रकी 'लिक्षा' कही जाती है। आठ लिक्षाकी 'यूका', आठ यूकाका 'यवमध्यम', आठ यवका 'अङ्गुल', चौबीस अङ्गुलका 'कर' और अट्ठाईस अङ्गुलका 'पद्महस्त' होता है† ॥ १४—२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके लिये 'भूपरिग्रहका वर्णन' नामक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ अध्याय

वास्तुमण्डलवर्ती देवताओंके स्थापन, पूजन, अर्घ्यदान तथा बलिदान आदिकी विधि

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! पूर्वकालमें सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके लिये भयंकर एक महाभूत था। देवताओंने उसे भूमिमें निहित कर दिया। उसीको 'वास्तु-पुरुष' माना गया है। चतुःषष्टि पदोंसे युक्त क्षेत्रमें अर्धकोण-में स्थित ईश (या शिखी) को घृत एवं अक्षतोंसे तृप्त करे। फिर एक पदमें स्थित पर्जन्यको कमल तथा जलसे, दो पदोंमें स्थित जयन्तको पताकासे, दो कोष्ठोंमें स्थित महेन्द्रको भी उसीसे, द्विपदस्थ रविको सभी लाल रंगकी वस्तुओंसे संतुष्ट करे। दो पदोंमें स्थित सत्यको वितान (चँदोवों)से एवं एक-पदस्थ भृशको घृतसे, अग्निकोणवर्ती अर्धपदमें स्थित व्योम (आकाश-) को शाकुननामक औषधके गूदेसे, उसी कोणके दूसरे अर्धपदमें स्थित अग्निदेवको स्रुक्से, एकपदस्थ पूषाको लाजा (खील) से, द्विपदस्थ वितथको स्वर्णसे, एकपदस्थ गृहक्षतको माखनसे, एक पदमें स्थित यमराजको उड़दमिश्रित भातसे, द्विपदस्थ गन्धर्वको गन्धसे, एकपदस्थ भृङ्गको शाकुन-जिह्वा नामक ओषधिसे, अर्धपदमें स्थित मृगको नीले वस्त्रसे, अर्धकोष्ठके निम्नभागमें विद्यमान पितृगणको कृशर (खिचड़ी) से, एकपदस्थ दौवारिकको दन्तकाष्ठसे एवं दो पदोंमें स्थित सुग्रीवको यव-निर्मित पदार्थ (हलुवा आदि) से परितुष्ट करे ॥ १—७½ ॥

द्विपदस्थ पुष्पदन्तको कुश-समूहोंसे, दो पदोंमें स्थित वरुणको पद्मसे, द्विपदस्थ असुरको सुरासे, एक पदमें स्थित शोषको घृतमिश्रित जलसे, अर्धपदस्थित पाप (या पापयक्ष्मा) को यवान्नसे, अर्धपदस्थ रोगको माँड़से, एकपदस्थित नाग (सर्प)को नागपुष्पसे, द्विपदगत मुख्यको भक्ष्य-पदार्थोंसे, एकपदस्थ भल्लाटको मूँग-भातसे, एकपद-संस्थित सोमको मधुयुक्त खीरसे, दो पदोंमें आधाष्ठित ऋषिको शालूकसे, एक पदमें विद्यमान अदितिको लोपिकासे एवं अर्धपदस्थ दितिको पूरियोंद्वारा संतुष्ट करे। फिर ईशानस्थित ईशके निम्न भाग-में अर्धपदस्थित 'आप'को दुग्धसे एवं उसके नीचे अर्ध

---

* राक्षसाश्च पिशाचाश्च येऽस्मिंस्तिष्ठन्ति भूतले। सर्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्यामहं हरेः ॥

† श्रीविद्यार्णवतन्त्रमें यह मान इस प्रकार दिया गया है—

वातायनपथं प्राप्य ये भान्ति रविरश्मयः। तेषु सूक्ष्मा विसर्पन्ते रेणवस्त्रसरेणवः ॥
परमाणोरष्टगुणस्त्रसरेणुरुदाहृतः । तेऽष्टौ केशाग्रमास्तेऽष्टौ लिक्षा यूकास्तदष्टकम् ॥
तदष्टकं यवस्तेऽष्टावङ्गुलिः समुदाहृता। सा तूत्तमाङ्गुलिः सप्तयवा सैव तु मध्यमा ॥
षड्यवा चाधमा प्रोक्ता मानाङ्गुलमितीरितम् ॥ (१२ । १—४)

पदमें अधिष्ठित आप-वत्सको दहीसे संतुष्ट करे। साथ ही पूर्ववर्ती कोष्ठ-चतुष्टयमें मरीचिको लड्डू देकर तृप्त करे। ब्रह्माके ऊर्ध्वभागके कोणस्थित कोष्ठमें अर्धपदस्थ सावित्रको रक्तपुष्प निवेदन करे। उसके निम्नवर्ती अर्ध कोष्ठकमें स्थित सविताको कुशोदक प्रदान करे। चार पदोंमें स्थित विवस्वान्को रक्तचन्दन, नैर्ऋत्यकोणवर्ती अर्धकोष्ठमें स्थित सुराधिप इन्द्रको हरिद्रामिश्रित जलका अर्घ्य दे। उसीके अर्धभागमें कोणवर्ती कोष्ठकमें स्थित इन्द्रजय (अथवा जय) को घृतका अर्घ्य दे। चतुष्पदमें मित्रको गुडयुक्त पायस दे। वायव्यकोणके आधे कोष्ठकमें प्रतिष्ठित रुद्रको पकायी हुई उड़द (या उसका बड़ा) एवं उसके अधोवर्ती अर्धकोष्ठमें स्थित यक्ष (या रुद्रदास) को आर्द्रफल (अंगूर, सेब आदि) समर्पित करे। चतुष्पदवर्ती महीधर (या पृथ्वीधर-) को उड़दमिश्रित अन्न एवं माष (उड़द)की बलि दे। मध्यवर्ती कोष्ठ-चतुष्टयमें भगवान् ब्रह्माके निमित्त तिल-तण्डुल स्थापित करे। चरकीको उड़द और घृतसे; स्कन्दको खिचड़ी तथा पुष्पमालासे, विदारीको लाल कमलसे, कन्दर्पको एक पलके तोलवाले भातसे, पूतनाको पलपित्तसे, जम्भकको उड़द एवं पुष्पमालासे, पापा या पापराक्षसीको पित्त, पुष्पमाला एवं अस्थियोंसे तथा पिलिपिच्छको भाँति-भाँतिकी मालाके द्वारा संतुष्ट करे। तदनन्तर ईशान आदि दिक्पालोंको लाल उड़दकी बलि दे। इन सबके अभावमें अक्षतोंसे सबकी पूजा करनी चाहिये।* राक्षस, मातृका, गण, पिशाच, पितर एवं क्षेत्रपालको भी इच्छानुसार (दही-अक्षत या दही-उड़दकी) बलि प्रदान करनी चाहिये ॥ ८—२१ ॥*

वास्तु-होम एवं बलि-प्रदानसे इनकी तृप्ति किये बिना प्रासाद आदिका निर्माण नहीं करना चाहिये। ब्रह्माके स्थानमें श्रीहरि, श्रीलक्ष्मीजी तथा गणदेवताकी पूजा करें। फिर भूमि, वास्तुपुरुष एवं वर्धनीयुक्त कलशका पूजन करे। कलशके मध्यमें ब्रह्मा तथा दिक्पालोंका यजन करे। फिर स्वस्तिवाचन एवं प्रणाम करके पूर्णाहुति दे। ब्रह्मन्! तदनन्तर गृहपति हाथमें छिद्रयुक्त जलपात्र लेकर विधिपूर्वक दक्षिणावर्त मण्डल बनाते हुए सूत्रमार्गसे जलधाराको घुमावे। फिर पूर्ववत् उसी मार्गसे सात बीजोंका वपन करे। उसी मार्गसे खात (गड्ढे)का आरम्भ करे। तदनन्तर मध्यमें हाथभर चौड़ा एवं चार अङ्गुल नीचा गर्त खोद ले। उसको लीप-पोतकर पूजन प्रारम्भ करे। सर्वप्रथम चार भुजाधारी श्रीविष्णु भगवान्का ध्यान करके उन्हें कलशसे अर्घ्य-प्रदान करे। फिर छिद्रयुक्त जलपात्र (झारी)से गर्तको भरकर उसमें श्वेत पुष्प डाले। उस श्रेष्ठ दक्षिणावर्त गर्तको बीज एवं मृत्तिकासे भर दे।[1] इस प्रकार अर्घ्यदानका कार्य निष्पन्न करके आचार्यको गो-वस्त्रादिका दान करे। ज्यौतिषी और स्थपति (राजमिस्त्री)का यथोचित सत्कार करके विष्णु-भक्त और सूर्यका पूजन करे। फिर भूमिको यत्नपूर्वक जलपर्यन्त खुदवावे। मनुष्यके बराबरकी गहराईसे नीचे यदि शल्य (हड्डी आदि) हो तो वह गृहके लिये दोषकारक नहीं होता है। अस्थि (शल्य) होनेपर घरकी दीवार टूट जाती है और गृहपतिको सुख नहीं प्राप्त होता है। खुदाईके समय जिस जीव-जन्तुका नाम सुनायी दे जाय, वह शल्य उसी जीवके शरीरसे उद्भूत जानना चाहिये ॥ २२—३१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वास्तु-देवताओंके अर्घ्य-दान-विधान आदिका वर्णन' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

शिलान्यासकी विधि

भगवान् हयग्रीव बोले—अब मैं शिलान्यासस्वरूपा पाद-प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। पहले मण्डप बनाना चाहिये; फिर उसमें चार कुण्ड बनावे। वे कुण्ड क्रमशः कुम्भन्यास, इष्टकान्यास, द्वार और स्तम्भके शुभ आश्रय होंगे। कुण्डका तीन चौथाई हिस्सा कंकड़ आदिसे भर दे और बराबर करके उसपर वास्तुदेवताका पूजन करे। नींवमें डाली

* वर्तमान समयमें अक्षतसे ही सबका पूजन करना चाहिये। इससे शास्त्रीय आज्ञाका भी परिपालन होता है तथा हिंसा आदि दोषकी भी प्राप्ति नहीं होती है।

१. कलशकी स्थापना। २. ईंट या [2]पत्थरकी स्थापना।

जानेवाली ईंटें खूब पकी हों; बारह-बारह अङ्गुलकी लंबी हों तथा विस्तारके तिहाई भागके बराबर, अर्थात् चार अङ्गुल उनकी मोटाई होनी चाहिये । अगर पत्थरका मन्दिर बनवाना हो तो ईंटकी जगह पत्थर ही नींवमें डाला जायगा । एक-एक पत्थर, एक-एक हाथका लंबा होना चाहिये । (यदि सामर्थ्य हो तो) ताँबेके नौ कलशोंकी, अन्यथा मिट्टीके बने नौ कलशोंकी स्थापना करे । जल, पञ्चकषाय, सर्वौषधि और चन्दनमिश्रित जलसे उन कलशों- को पूर्ण करना चाहिये । इसी प्रकार सोना, धान आदिसे युक्त तथा गन्ध-चन्दन आदिसे भलीभाँति पूजित करके उन जलपूर्ण कलशोंद्वारा 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं, 'शं नो देवीरभिष्टय' आदि मन्त्रों 'तरत्स मन्दी' इत्यादि मन्त्र एवं पावमानी ऋचाओंके तथा 'उदुत्तमं वरुण', 'कया नः' और 'वरुणस्योत्तम्भनमसि' इत्यादि मन्त्रोंके पाठपूर्वक 'हंसः शुचिषद्' इत्यादि मन्त्र तथा श्रीसूक्तका भी उच्चारण करते हुए बहुत-सी शिलाओं अथवा ईंटोंका अभिषेक करे । फिर उन्हें नींवमें स्थापित करके मण्डपके भीतर एक शय्यापर पूर्वमण्डलमें भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे । अरणी-मन्थनद्वारा अग्नि प्रकट करके द्वादशाक्षर-मन्त्रसे उसमें समिधाओंका हवन करना चाहिये ॥ १—९ ॥

'आघार' और 'आज्यभाग' नामक आहुतियाँ प्रणव- मन्त्रसे ही करावे । फिर अष्टाक्षर-मन्त्रसे आठ आहुति देकर ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा— इस प्रकार तीन व्याहृतियोंसे क्रमशः लोकेश्वर अग्नि, सोमग्रह और भगवान् पुरुषोत्तमके निमित्त हवन करे । इसके बाद प्रायश्चित्तसंज्ञक हवन करके प्रणवयुक्त द्वादशाक्षर मन्त्रसे उड़द, घी और तिलको एक साथ लेकर पूर्णाहुति-हवन करना चाहिये । तत्पश्चात् आचार्य पूर्वाभिमुख होकर आठ दिशाओंमें स्थापित कलशोंपर पृथक्-पृथक् पद्म आदि देवताओंका स्थापन-पूजन करे । बीचमें भी धरती लीपकर पत्थरकी एक शिला और कलश स्थापित करे । इन नौ कलशोंपर क्रमशः नीचे लिखे देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये ॥ १०—१३ ॥

पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, आनन्द, पद्म और शङ्ख—इनको आठ कलशोंमें और पद्मिनीको मध्य- वर्ती कलशपर स्थापित करे ॥ १४ ॥

इन कलशोंको हिलावे-डुलावे नहीं; उनके निकट पूर्व आदिके क्रमसे ईशान कोणतक एक-एक ईंट रख दे । फिर उनपर उनकी देवता विमला आदि शक्तियोंका न्यास (स्थापन) करना चाहिये * । बीचमें 'अनुग्रहा'की स्थापना करे । इसके बाद इस प्रकार प्रार्थना करे— 'मुनिवर अङ्गिराकी सुपुत्री इष्टका देवी, तुम्हारा कोई अङ्ग टूटा-फूटा या खराब नहीं हुआ है; तुम अपने सभी अङ्गोंसे

---

१. तन्त्रके अनुसार निम्नाङ्कित पाँच वृक्षोंका कषाय;—जामुन, सेमर, खिरेंटी, मौलसिरी और बेर । यह कषाय वृक्षकी छालको पानीमें भिगोकर निकाला जाता है और कलशमें डालने एवं दुर्गा- पूजन आदिके काम आता है ।

२. ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः । ॐ ता न ऊर्जे दधातन । ॐ महे रणाय चक्षसे । ॐ यो वः शिवतमो रसः । ॐ तस्य भाजयतेह नः । ॐ उशतीरिव मातरः । ॐ तस्मा अरं गमाम वः । ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ । ॐ आपो जनयथा च नः ।

(यजु०, अ० ११, मन्त्र ५०, ५१, ५२)

३. शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि- स्रवन्तु नः ॥ (अथर्व०, १ । ६ । १) ।

४. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥ उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥ ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥ आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ (ऋ०, मं०, ९, सू० ५८ । १—४)

५. ऋग्वेद, नवम मण्डल, अध्याय १, २, ३के सूक्तोंको 'पावमानसूक्त' तथा ऋचाओंको 'पावमानी ऋचाएँ' कहते हैं ।

६. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा- वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ (यजु०, १२ । १२)

७. कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ (यजु०, ३६ । ४)

८. वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥

(यजु०, ४ । ३६)

९. हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥

(यजु० १० । २४; कठ० २ । २ । २)

* विमला आदि शक्तियोंके नाम इस प्रकार हैं— विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना तथा अनुग्रहा ।

पूर्ण हो। मेरा अभीष्ट पूर्ण करो। अब मैं प्रतिष्ठा करा रहा हूँ' ॥ १५-१७ ॥

उत्तम आचार्य इस मन्त्रसे इष्टकाओंकी स्थापना करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर मध्यवाले स्थानमें गर्भाधान करे। [उसकी विधि यों है—] एक कलशके ऊपर देवेश्वर भगवान् नारायण तथा पद्मिनी (लक्ष्मी) देवीको स्थापित करके उनके पास मिट्टी, फूल, धातु और रत्नोंको रक्खे। इसके बाद लोहे आदिके बने हुए गर्भ-पात्रमें, जिसका विस्तार बारह अङ्गुल और ऊँचाई चार अङ्गुल हो, अस्त्रकी पूजा करे। फिर ताँबेके बने हुए कमलके आकारवाले एक पात्रमें पृथ्वीका पूजन करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'सम्पूर्ण भूतोंकी ईश्वरी पृथ्वीदेवी! तुम पर्वतोंके आसनसे सुशोभित हो; चारों ओर समुद्रोंसे घिरी हुई हो; एकान्तमें गर्भ धारण करो। वसिष्ठकन्या नन्दा! वसुओं और प्रजाओंके सहित तुम मुझे आनन्दित करो। भार्गवपुत्री जया! तुम प्रजाओंको विजय दिलानेवाली हो। [मुझे भी विजय दो।] अङ्गिराकी पुत्री पूर्णा! तुम मेरी कामनाएँ पूर्ण करो। महर्षि कश्यपकी कन्या भद्रा! तुम मेरी बुद्धि कल्याणमयी कर दो। सम्पूर्ण बीजोंसे युक्त और समस्त रत्नों एवं ओषधियोंसे सम्पन्न सुन्दरी जया देवी! तथा वसिष्ठपुत्री नन्दा देवी! यहाँ आनन्दपूर्वक रम जाओ। हे कश्यपकी कन्या भद्रा! तुम प्रजापतिकी पुत्री हो, चारों ओर फैली हुई हो, परम महान् हो; साथ ही सुन्दरी और सुकान्त हो, इस गृहमें रमण करो। हे भार्गवी देवी! तुम परम आश्चर्यमयी हो; गन्ध और माल्य आदिसे सुशोभित एवं पूजित हो; लोकोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली देवि! तुम इस गृहमें रमण करो। इस देशके सम्राट्, इस नगरके राजा और इस घरके मालिकके बाल-बच्चोंको तथा मनुष्य आदि प्राणियोंको आनन्द देनेके लिये पशु आदि सम्पदाकी वृद्धि करो।' इस प्रकार प्रार्थना करके वास्तु-कुण्डको गोमूत्रसे सींचना चाहिये ॥ १८-२८ ॥

यह सब विधि पूर्ण करके कुण्डमें गर्भको स्थापित करे। यह गर्भाधान रातमें होना चाहिये। उस समय आचार्यको गौ-वस्त्र आदि दान करे तथा अन्य लोगोंको भोजन दे। इस प्रकार गर्भपात्र रखकर और ईंटोंको भी रखकर उस कुण्डको भर दे। तत्पश्चात् मन्दिरकी ऊँचाईके अनुसार प्रधानदेवताके पीठका निर्माण करे। 'उत्तम पीठ' वह है, जो ऊँचाईमें मन्दिरके आधे विस्तारके बराबर हो। उत्तम पीठकी अपेक्षा एक चौथाई कम ऊँचाई होनेपर मध्यम पीठ, कहलाता है और उत्तम पीठकी आधी ऊँचाई होनेपर 'कनिष्ठ पीठ' होता है। पीठ-बन्धके ऊपर पुनः वास्तु-याग (वास्तुदेवताका पूजन) करना चाहिये। केवल पाद-प्रतिष्ठा करनेवाला मनुष्य भी सब पापोंसे रहित होकर देवलोकमें आनन्द-भोग करता है ॥ २९-३२ ॥

'मैं देव-मन्दिर बनवा रहा हूँ, ऐसा जो मनसे चिन्तन भी करता है, उसका शारीरिक पाप उसी दिन नष्ट हो जाता है। फिर जो विधिपूर्वक मन्दिर बनवाता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है! जो आठ ईंटोंका भी देवमन्दिर बनवाता है, उसके फलकी सम्पत्तिका भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। इसीसे विशाल मन्दिर बनवानेसे मिलनेवाले महान् फलका अनुमान कर लेना चाहिये ॥ ३३-३५ ॥

गाँवके बीचमें अथवा गाँवसे पूर्वदिशामें यदि मन्दिर बनवाया जाय तो उसका दरवाजा पश्चिमकी ओर रखना चाहिये और सब कोणोंमेंसे किसी ओर बनवाना हो तो गाँवकी ओर दरवाजा रक्खे। गाँवसे दक्षिण, उत्तर या पश्चिमदिशामें मन्दिर बने, तो उसका दरवाजा पूर्वदिशाकी ओर रखना चाहिये ॥ ३६-३७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सर्वशिलाविन्यासविधान आदिका कथन' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

प्रासाद-लक्षण-वर्णन

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं सर्व-साधारण प्रासाद (देवालय) का वर्णन करता हूँ, सुनो। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जहाँ मन्दिरका निर्माण कराना हो, वहाँके चौकोर क्षेत्रके सोलह भाग करे। उसमें मध्यके चार भागोंद्वारा आयसहित गर्भ (मन्दिरके भीतरी भागकी रिक्त भूमि) निश्चित करे तथा शेष बारह

भागोंको दीवार उठानेके लिये नियत करे। उक्त बारह भागोंमेंसे चार भागकी जितनी लंबाई है, उतनी ही ऊँचाई प्रासादकी दीवारोंकी होनी चाहिये। विद्वान् पुरुष दीवारोंकी ऊँचाईसे दुगुनी शिखरकी ऊँचाई रक्खे। शिखरके चौथे भागकी ऊँचाईके अनुसार मन्दिरकी परिक्रमाकी ऊँचाई रक्खे। उसी मानके अनुसार दोनों पार्श्व भागोंमें निकलनेका मार्ग (द्वार) बनाना चाहिये। वे द्वार एक-दूसरेके समान होने चाहिये। मन्दिरके सामनेके भूभागका विस्तार भी शिखरके समान ही करना चाहिये। जिस तरह उसकी शोभा हो सके, उसके अनुरूप उसका विस्तार शिखरसे दूना भी किया जा सकता है। मन्दिरके आगेका सभामण्डप विस्तारमें मन्दिरके गर्भसूत्रसे दूना होना चाहिये। मन्दिरके पादस्तम्भ आदि भित्तिके बराबर ही लंबे बनाये जायँ। वे मध्यवर्ती स्तम्भोंसे विभूषित हों। अथवा मन्दिरके गर्भका जो मान है, वही उसके मुख-मण्डप (सभामण्डप या जगमोहन) का भी रक्खे। तत्पश्चात् इक्यासी पदों (स्थानों) से युक्त वास्तु-मण्डपका आरम्भ करे ॥ १—७ ॥

इनमें पहले द्वारन्यासके समीपवर्ती पदोंके भीतर स्थित होनेवाले देवताओंका पूजन करे। फिर परकोटेके निकटवर्ती एवं सबसे अन्तके पदोंमें स्थापित होनेवाले बत्तीस देवताओंकी पूजा करे* ॥ ८ ॥

यह प्रासादका सर्वसाधारण लक्षण है। अब प्रतिमाके मानके अनुसार दूसरे प्रासादका वर्णन सुनो ॥ ९ ॥

जितनी बड़ी प्रतिमा हो, उतनी ही बड़ी सुन्दर पिण्डी बनावे। पिण्डीके आधे मानसे गर्भका निर्माण करे और गर्भके ही मानके अनुसार भित्तियाँ उठावे। भीतोंकी लंबाईके अनुसार ही उनकी ऊँचाई रक्खे। विद्वान् पुरुष भीतकी ऊँचाईसे दुगुनी शिखरकी ऊँचाई करावे। शिखरकी अपेक्षा चौथाई ऊँचाईमें मन्दिरकी परिक्रमा बनवावे तथा इसी ऊँचाईमें मन्दिरके आगेके मुख-मण्डपका भी निर्माण करावे ॥ १०—१२ ॥

गर्भके आठवें अंशके मापका रथकोंके निकलनेका मार्ग (द्वार) बनावे। अथवा परिधिके तृतीय भागके अनुसार वहाँ रथकों (छोटे-छोटे रथों) की रचना करावे तथा उनके भी तृतीय भागके मापका उन रथोंके निकलनेके मार्ग (द्वार) का निर्माण करावे। तीन रथकोंपर सदा तीन वामोंकी स्थापना करे ॥ १३—१४ ॥

शिखरके लिये चार सूत्रोंका निपातन करे। शुकनासाके ऊपरसे सूतको तिरछा[1] गिरावे। शिखरके आधे भागमें सिंहकी प्रतिमाका निर्माण करावे। शुकनासापर सूतको स्थिर करके उसे मध्य संधितक ले जाय ॥ १५-१६ ॥

इसी प्रकार दूसरे पार्श्वमें भी सूत्रपात करे। शुकनासाके ऊपर वेदी हो और वेदीके ऊपर आमलसार नामक कण्ठसहित कलशका निर्माण कराया जाय। उसे विकराल न बनाया जाय। जहाँतक वेदीका मान है, उससे ऊपर ही कलशकी कल्पना होनी चाहिये। मन्दिरके द्वारकी जितनी चौड़ाई हो, उससे दूनी उसकी ऊँचाई रखनी चाहिये। द्वारको बहुत ही सुन्दर और शोभासम्पन्न बनाना चाहिये। द्वारके ऊपरी भागमें सुन्दर मङ्गलमय वस्तुओंके साथ गूलरकी दो शाखाएँ स्थापित करे (खुदवावे) ॥ १७—१९ ॥

द्वारके चतुर्थांशमें चण्ड, प्रचण्ड, विष्वक्सेन और वत्सदण्ड—इन चार द्वारपालोंकी मूर्तियोंका निर्माण करावे। गूलरकी शाखाओंके अर्ध भागमें सुन्दर रूपवाली

* नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीय पाद, ५६वें अध्यायके ६०० से लेकर ६०३ तकके श्लोकोंमें भी यही बात कही गयी है।

१. शिखरके चार भाग करके नीचेके दो भागोंको 'शुकनासा' कहते हैं। उसके ऊपरके तीसरे भागमें वेदी होती है, जिसपर उसका कण्ठमात्र स्थित होता है। सबसे ऊपरके चतुर्थ भागमें 'आमलसार' संज्ञक कण्ठका निर्माण कराया जाना चाहिये। जैसा कि मत्स्यपुराणमें कहा है—

चतुर्धा शिखरं भक्त्वा अर्धभागद्वयस्य तु।
शुकनासं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता॥
कण्ठमामलसारं तु चतुर्थे परिकल्पयेत्।
(२६९ । १८ १९)

लक्ष्मीदेवीके श्रीविग्रहको अङ्कित करे। उनके हाथमें कमल हो और दिग्गज कलशोंके जलद्वारा उन्हें नहला रहे हों। मन्दिरके परकोटेकी ऊँचाई उसके चतुर्थांशके बराबर हो। प्रासादके गोपुरकी ऊँचाई प्रासादसे एक चौथाई कम हो। यदि देवताका विग्रह पाँच हाथका हो तो उसके लिये एक हाथकी पीठिका होनी चाहिये॥ २०—२२॥

विष्णु-मन्दिरके सामने एक गरुडमण्डप तथा भौमादि धामका निर्माण करावे। भगवान्‌के श्रीविग्रहके सब ओर आठों दिशाओंके ऊपरी भागमें भगवत्प्रतिमासे दुगुनी बड़ी अवतारोंकी मूर्तियाँ बनावे। पूर्व दिशामें वराह, दक्षिणमें नृसिंह, पश्चिममें श्रीधर, उत्तरमें हयग्रीव, अग्निकोणमें परशुराम, नैर्ऋत्यकोणमें श्रीराम, वायव्यकोणमें वामन तथा ईशानकोणमें वासुदेवकी मूर्तिका निर्माण करे। प्रासाद-रचना आठ, बारह आदि समसंख्यावाले स्तम्भोंद्वारा करनी चाहिये। द्वारके अष्टम आदि अंशको छोड़कर जो वेध होता है, वह दोषकारक नहीं होता है॥ २३—२६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रासाद आदिके लक्षणका वर्णन' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

मन्दिरके देवताकी स्थापना और भूतशान्ति आदिका कथन

हयग्रीवजी कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं मन्दिरमें स्थापित करनेयोग्य देवताओंका वर्णन करूँगा, आप सुनें। पञ्चायतन मन्दिरमें जो बीचका प्रधान मन्दिर हो, उसमें भगवान् वासुदेवको स्थापित करे। शेष चार मन्दिरोंमेंसे अग्निकोणवाले मन्दिरमें भगवान् वामनकी, नैर्ऋत्यकोणमें नरसिंहकी, वायव्यकोणमें हयग्रीवकी और ईशानकोणमें वराहभगवान्‌की स्थापना करे। अथवा यदि बीचमें भगवान् नारायणकी स्थापना करे तो अग्निकोणमें दुर्गाकी, नैर्ऋत्यकोणमें सूर्यकी, वायव्यकोणमें ब्रह्माकी और ईशानकोणमें लिङ्गमय शिवकी स्थापना करे। अथवा ईशानमें रुद्ररूपकी स्थापना करे। अथवा एक-एक आठ दिशाओंमें और एक बीचमें—इस प्रकार कुल नौ मन्दिर बनवावे। उनमेंसे बीचमें वासुदेवकी स्थापना करे और पूर्वादि दिशाओंमें परशुराम राम आदि मुख्य-मुख्य नौ अवतारोंकी तथा इन्द्र आदि लोकपालोंकी स्थापना करनी चाहिये। अथवा कुल नौ धामोंमें पाँच मन्दिर मुख्य बनवावे। इनके मध्यमें भगवान् पुरुषोत्तमकी स्थापना करे॥ १—५॥

पूर्व दिशामें लक्ष्मी और कुबेरकी, दक्षिणमें मातृकागण, स्कन्द, गणेश और शिवकी, पश्चिममें सूर्य आदि नौ ग्रहोंकी तथा उत्तरमें मत्स्य आदि दस अवतारोंकी स्थापना करे। इसी प्रकार अग्निकोणमें चण्डीकी, नैर्ऋत्यकोणमें अम्बिकाकी, वायव्यकोणमें सरस्वतीकी और ईशानकोणमें लक्ष्मीजीकी स्थापना करनी चाहिये। मध्यभागमें वासुदेव अथवा नारायणकी स्थापना करे। अथवा तेरह कमरोंवाले देवालयके मध्यभागमें विश्वरूप भगवान् विष्णुकी स्थापना करे॥ ६—८॥

पूर्व आदि दिशाओंमें केशव आदि द्वादश विग्रहोंको स्थापित करे तथा इनसे अतिरिक्त गृहोंमें साक्षात् ये श्रीहरि ही विराजमान होते हैं। भगवान्‌की प्रतिमा मिट्टी, लकड़ी, लोहा, रत्न, पत्थर, चन्दन और फूल—इन सात वस्तुओंकी बनी हुई सात प्रकारकी मानी जाती है। फूल, मिट्टी तथा चन्दनकी बनी हुई प्रतिमाएँ बननेके बाद तुरंत पूजी जाती हैं। [अधिक कालके लिये नहीं होतीं।] पूजन करनेपर ये समस्त कामनाओंको पूर्ण करती हैं। अब मैं शैलमयी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ, जहाँ प्रतिमा बनानेमें शिला (पत्थर) का उपयोग किया जाता है॥ ९—११॥

उत्तम तो यह है कि किसी पर्वतका पत्थर लाकर प्रतिमा बनवावे। पर्वतोंके अभावमें जमीनसे निकले हुए पत्थरका उपयोग करे। ब्राह्मण आदि चारों वर्णवालोंके लिये क्रमशः सफेद, लाल, पीला और काला पत्थर उत्तम माना गया है। यदि ब्राह्मण आदि वर्णवालोंको उनके वर्णके अनुकूल उत्तम शिला न मिले तो उसमें आवश्यक वर्णकी कमीकी पूर्ति करनेके लिये नरसिंह-मन्त्रसे हवन करना चाहिये। यदि शिलामें सफेद रेखा हो तो वह बहुत

ही उत्तम है, अगर काली रेखा हो तो वह नरसिंह-मन्त्रसे हवन करनेपर उत्तम होती है। यदि शिलासे काँसेके बने हुए घण्टेकी-सी आवाज निकलती हो और काटनेपर उससे चिनगारियाँ निकलती हों तो वह 'पुँल्लिङ्ग' है, ऐसा समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त चिह्न उसमें कम दिखायी दें, तो उसे 'स्त्रीलिङ्ग' समझना चाहिये और पुँल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग-बोधक कोई रूप न होनेपर उसे 'नपुंसक' मानना चाहिये। तथा जिस शिलामें कोई मण्डलका चिह्न दिखायी दे, उसे सगर्भा समझकर त्याग देना चाहिये ॥ १२-१५ ॥

प्रतिमा बनानेके लिये वनमें जाकर वनयाग आरम्भ करना चाहिये। वहाँ कुण्ड खोदकर और उसे लीपकर मण्डपमें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये तथा उन्हें बलि समर्पणकर कर्ममें उपयोगी टंक आदि शस्त्रोंकी भी पूजा करनी चाहिये। फिर हवन करनेके पश्चात् अगहनीके चावलके जलसे अस्त्र-मन्त्र (अस्त्राय फट्) के उच्चारण-पूर्वक उस शिलाको सींचना चाहिये। नरसिंह-मन्त्रसे उसकी रक्षा करके मूल-मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) से पूजन करे। फिर पूर्णाहुति-होम करके आचार्य भूतोंके लिये बलि समर्पित करें। वहाँ जो भी अव्यक्तरूपसे रहनेवाले जन्तु, यातुधान (राक्षस), गुह्यक और सिद्ध आदि हों अथवा और भी जो हों, उन सबका पूजन करके इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये ॥ १६-१९ ॥

'भगवान् केशवकी आज्ञासे प्रतिमाके लिये हमलोगोंकी यह यात्रा हुई है। भगवान् विष्णुके लिये जो कार्य हो, वह आपलोगोंका भी कार्य है। अतः हमारे दिये हुए इस बलिदानसे आपलोग सर्वथा तृप्त हों और शीघ्र ही यह स्थान छोड़कर कुशलपूर्वक अन्यत्र चले जायँ' ॥ २०-२१ ॥

इस प्रकार सावधान करनेपर वे जीव बड़े प्रसन्न होते हैं और सुखपूर्वक उस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। इसके बाद कारीगरोंके साथ चरुका चरु भक्षण करके रातमें सोते समय स्वप्न-मन्त्रका जप करे। 'जो समस्त प्राणियोंके निवास-स्थान हैं, व्यापक हैं, सबको उत्पन्न करने-वाले हैं, स्वयं विश्वरूप हैं और सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, उन स्वप्नके अधिपति भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। देव! देवेश्वर! मैं आपके निकट सो रहा हूँ। मेरे मनमें जिन कार्योंका संकल्प है, उन सबके सम्बन्धमें मुझसे कुछ कहिये' ॥ २२-२४ ॥

'ॐ ॐ हूं फट् विष्णवे स्वाहा।' इस प्रकार मन्त्र-जप करके सो जानेपर यदि अच्छा स्वप्न हो तो सब शुभ होता है और यदि बुरा स्वप्न हुआ तो नरसिंह-मन्त्रसे हवन करनेपर शुभ होता है। सबेरे उठकर अस्त्र-मन्त्रसे शिलापर अर्घ्य दे। फिर अस्त्रकी भी पूजा करे। कुदाल (फावड़े), टंक और शस्त्र आदिके मुखपर मधु और घी लगाकर पूजन करना चाहिये। अपने-आपका विष्णुरूपसे चिन्तन करे। कारीगरको विश्वकर्मा माने और शस्त्रके भी विष्णुरूप होनेकी ही भावना करे। फिर शस्त्र कारीगरको दे और उसका मुख-पृष्ठ आदि उसे दिखा दे ॥ २५-२७ ॥

कारीगर अपनी इन्द्रियोंको वशमें रक्खे और हाथमें टंक लेकर उससे उस शिलाको चौकोर बनावे। फिर पिण्डी बनानेके लिये उसे कुछ छोटी करे। इसके बाद शिलाको वस्त्रमें लपेटकर रथपर रक्खे और शिल्पशालामें लाकर पुनः उस शिलाका पूजन करे। इसके बाद कारीगर प्रतिमा बनावे ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्दिरके देवताकी स्थापना, भूत-शान्ति, शिला-लक्षण और प्रतिमा-निर्माण आदिका निरूपण' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण

भगवान् हयग्रीव बोले—ब्रह्मन्! अब मैं तुम्हें वासुदेव आदिकी प्रतिमाके लक्षण बताता हूँ, सुनो। मन्दिरके उत्तर भागमें शिलाको पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रख-कर उसकी पूजा करे और उसे बलि अर्पित करके कारीगर शिलाके बीचमें सूत लगाकर उसका नौ भाग करे। नवें भागको भी १२ भागोंमें विभाजित करनेपर एक-एक भाग अपने अङ्गुलसे एक अङ्गुलका होता है। दो अङ्गुलका एक गोलक होता है, जिसे 'कालनेत्र' भी कहते हैं ॥ १—३ ॥

उक्त नौ भागोंमेंसे एक भागके तीन हिस्से करके उसमें पार्ष्णि-भागकी कल्पना करे। एक भाग घुटनेके लिये तथा एक भाग कण्ठके लिये निश्चित रक्खे। मुकुटको एक बित्ता रक्खे। मुँहका भाग भी एक बित्तेका ही होना चाहिये। इसी प्रकार एक बित्तेका कण्ठ और एक ही बित्तेका हृदय भी रहे। नाभि और लिङ्गके बीचमें एक बित्तेका अन्तर होना चाहिये। दोनों ऊरु दो बित्तेके हों। जंघा भी दो बित्तेकी हो। अब सूत्रोंका माप सुनो—॥ ४—६ ॥

दो सूत पैरमें और दो सूत जङ्घामें लगावे। घुटनोंमें दो सूत तथा दोनों ऊरुओंमें भी दो सूतका उपयोग करे। लिङ्गमें दूसरे दो सूत तथा कटिमें भी कमरबन्ध (करधन) बनानेके लिये दूसरे दो सूतोंका योग करे। नाभिमें भी दो सूत काममें लावे। इसी प्रकार हृदय और कण्ठमें दो सूतका उपयोग करे। ललाटमें दूसरे और मस्तकमें दूसरे दो सूतोंका उपयोग करे। बुद्धिमान् कारीगरोंको मुकुटके ऊपर एक सूत करना चाहिये। ब्रह्मन्! ऊपर सात ही सूत देने चाहिये। तीन कक्षाओंके अन्तरसे ही छः सूत्र दिलावे। फिर मध्य-सूत्रको त्याग दे और केवल सूत्रोंको ही निवेदित करे॥ ७—११॥

ललाट, नासिका और मुखका विस्तार चार अङ्गुलका होना चाहिये। गला और कानका भी चार-चार अङ्गुल विस्तार करना चाहिये। दोनों ओरकी हनु (ठोढ़ी) दो-दो अङ्गुल चौड़ी हो और चिबुक (ठोढ़ीके बीचका भाग) भी दो अङ्गुलका हो। पूरा विस्तार छः अङ्गुलका होना चाहिये। इसी प्रकार ललाट भी विस्तारमें आठ अङ्गुलका बताया गया है। दोनों ओरके शङ्ख दो-दो अङ्गुलके बनाये जायँ और उनपर बाल भी हों। कान और नेत्रके बीचमें चार अङ्गुलका अन्तर रहना चाहिये। दो-दो अङ्गुलके कान एवं पृथुक बनावे। भौंहोंके समान सूत्रके मापका कानका स्रोत कहा गया है। बिंधा हुआ कान छः अङ्गुलका हो और बिना बिंधा हुआ चार अङ्गुलका। अथवा बिंधा हो या बिना बिंधा, सब चिबुकके समान छः अङ्गुलका होना चाहिये॥ १२—१६॥

गन्धपात्र, आवर्त तथा शष्कुली (कानका पूरा घेरा) भी बनावे। एक अङ्गुलमें नीचेका ओठ और आधे अङ्गुलका ऊपरका ओठ बनावे। नेत्रका विस्तार आधा अङ्गुल हो और मुखका विस्तार चार अङ्गुल हो। मुखकी चौड़ाई डेढ़ अङ्गुलकी होनी चाहिये। नाककी ऊँचाई एक अङ्गुल हो और ऊँचाईसे आगे केवल लंबाई दो अङ्गुलकी रहे। करवीर-कुसुमके समान उसकी आकृति होनी चाहिये। दोनों नेत्रोंके बीच चार अङ्गुलका अन्तर हो। दो अङ्गुल तो आँखके घेरेमें आ जाता है, सिर्फ दो अङ्गुल अन्तर रह जाता है। पूरे नेत्रका तीन भाग करके एक भागके बराबर तारा (काली पुतली) बनावे और पाँच भाग करके, एक भागके बराबर दृक्तारा (छोटी पुतली) बनावे। नेत्रका विस्तार दो अङ्गुलका हो और द्रोणी आधे अङ्गुलकी। उतना ही प्रमाण भौंहोंकी रेखाका हो। दोनों ओरकी भौंहें बराबर रहनी चाहिये। भौंहोंका मध्य दो अङ्गुलका और विस्तार चार अङ्गुलका होना चाहिये॥ १७—२२॥

भगवान् केशव आदिकी मूर्तियोंके मस्तकका पूरा घेरा छत्तीस अङ्गुलका होवे अथवा बत्तीस अङ्गुलका। नीचे ग्रीवा (गला) पाँच नेत्र (अर्थात् दस अङ्गुल) की हो और इसके तीन गुना अर्थात् तीस अङ्गुल उसका वेष्टन (चारों ओरका घेरा) हो। नीचेसे ऊपरकी ओर ग्रीवाका विस्तार आठ अङ्गुलका हो। ग्रीवा और छातीके बीचका अन्तर ग्रीवाके तीन गुने विस्तारवाला होना चाहिये। दोनों ओरके कंधे आठ-आठ अङ्गुलके और सुन्दर अंस तीन-तीन अङ्गुलके हों। सात नेत्र (यानी चौदह अङ्गुल) की दोनों बाहें और सोलह अङ्गुलकी दोनों प्रबाहुएँ हों (बाहु और प्रबाहु मिलकर पूरी बाँह समझी जाती है)। बाहुओंकी चौड़ाई छः अङ्गुलकी हो। प्रबाहुओंकी भी इनके समान ही होनी चाहिये। बाहुदण्डका चारों ओरका घेरा कुछ ऊपरसे लेकर नौ कला अथवा सत्रह अङ्गुल समझना चाहिये। आधेपर बीचमें कूर्पर (कोहनी) है। कूर्परका घेरा सोलह अङ्गुलका होता है। ब्रह्माजी! प्रबाहुके मध्यमें उसका विस्तार सोलह अङ्गुलका हो। हाथके अग्रभागका विस्तार बारह अङ्गुल हो और उसके बीच करतलका विस्तार छः अङ्गुल कहा गया है। हाथकी चौड़ाई सात अङ्गुलकी करे। हाथके मध्यमा अङ्गुलीकी लंबाई पाँच अङ्गुलकी हो और तर्जनी तथा अनामिकाकी लंबाई उससे आधा अङ्गुल कम अर्थात् ४॥ अङ्गुलकी करे। कनिष्ठिका और अँगूठेकी लंबाई चार अङ्गुलकी करे। अँगूठेमें दो पोर बनावे और बाकी सभी अँगुलियोंमें तीन-तीन पोर रक्खे। सभी अँगुलियोंके एक-एक पोरके आधे भागके बराबर प्रत्येक अँगुलीके नखकी नाप समझनी चाहिये। छातीकी जितनी माप हो, पेटकी

उतनी ही रक्खे। एक अङ्गुलके छेदवाली नाभि हो। नाभिसे लिङ्गके बीचका अन्तर एक बित्ता होना चाहिये ॥ २३—३३ ॥

नाभि—मध्याङ्ग (उदर)का घेरा बयालीस अङ्गुलका हो। दोनों स्तनोंके बीचका अन्तर एक बित्ता होना चाहिये। स्तनोंका अग्रभाग—चुचुक यवके बराबर बनावे। दोनों स्तनोंका घेरा दो पदोंके बराबर हो। छातीका घेरा चौसठ अङ्गुलका बनावे। उसके नीचे और चारों ओरका घेरा 'वेष्टन' कहा गया है। इसी प्रकार कमरका घेरा चौवन अङ्गुलका होना चाहिये। ऊरुओंके मूलका विस्तार बारह-बारह अङ्गुलका हो। इसके ऊपर मध्यभागका विस्तार अधिक रखना चाहिये। मध्यभागसे नीचेके अङ्गोंका विस्तार क्रमशः कम होना चाहिये। घुटनोंका विस्तार आठ अङ्गुलका करे और उसके नीचे जंघाका घेरा तीन गुना, अर्थात् चौबीस अङ्गुलका हो; जंघाके मध्यका विस्तार सात अङ्गुलका होना चाहिये और उसका घेरा तीन गुना, अर्थात् इक्कीस अङ्गुलका हो। जंघाके अग्रभागका विस्तार पाँच अङ्गुल और उसका घेरा तीन गुना—पंद्रह अङ्गुलका हो। चरण एक-एक बित्ते लंबे होने चाहिये। विस्तारसे उठे हुए पैर अर्थात् पैरोंकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी हो। गुल्फ (घुट्टी) से पहलेका हिस्सा भी चार अङ्गुलका ही हो ॥ ३४—४० ॥

दोनों पैरोंकी चौड़ाई छः अङ्गुलकी, गुह्यभाग तीन अङ्गुलका और उसका पञ्जा पाँच अङ्गुलका होना चाहिये। पैरोंमें प्रदेशिनी, अर्थात् अँगूठा चौड़ा होना उचित है। शेष अँगुलियोंके मध्यभागका विस्तार क्रमशः पहली अँगुलीके आठवें-आठवें भागके बराबर कम होना चाहिये। अँगूठेकी ऊँचाई सवा अङ्गुल बतायी गयी है। इसी प्रकार अँगूठेके नखका प्रमाण और अँगुलियोंसे दूना रखना चाहिये। दूसरी अँगुलीके नखका विस्तार आधा अङ्गुल तथा अन्य अँगुलियोंके नखोंका विस्तार क्रमशः ज़रा-ज़रा-सा कम कर देना चाहिये ॥ ४१—४३ ॥

दोनों अण्डकोष तीन-तीन अङ्गुल लंबे बनावे और लिङ्ग चार अङ्गुल लंबा करे। इसके ऊपरका भाग चार अङ्गुल रक्खे। अण्डकोषोंका पूरा घेरा छः-छः अङ्गुलका होना चाहिये। इसके सिवा भगवान्‌की प्रतिमा सब प्रकारके भूषणोंसे भूषित करनी चाहिये। यह लक्षण उद्देश्यमात्र (संक्षेपसे) बताया गया है ॥ ४४-४५ ॥

इसी प्रकार लोकमें देखे जानेवाले अन्य लक्षणोंको भी दृष्टिमें रखकर प्रतिमामें उसका निर्माण करना चाहिये। दाहिने हाथोंमेंसे ऊपरवाले हाथमें चक्र और नीचेवाले हाथमें पद्म धारण करावे। बायें हाथोंमेंसे ऊपरवाले हाथमें शङ्ख और नीचेवाले हाथमें गदा बनावे। यह वासुदेव श्रीकृष्णका चिह्न है, अतः उन्हींकी प्रतिमामें रहना चाहिये। भगवान्‌के निकट हाथमें कमल लिये हुए लक्ष्मी तथा वीणा धारण किये पुष्टि देवीकी भी प्रतिमा बनावे। इनकी ऊँचाई (भगवद्विग्रहके) ऊरुओंके बराबर होनी चाहिये। इनके अलावा प्रभामण्डलमें स्थित मालाधर और विद्याधरका विग्रह बनावे। प्रभा हस्ती आदिसे भूषित होती है। भगवान्‌के चरणोंके नीचेका भाग अर्थात् पादपीठ कमलके आकारका बनावे। इस प्रकार देव-प्रतिमाओंमें उक्त लक्षणोंका समावेश करना चाहिये ॥ ४६—४९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षणका वर्णन' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

पिण्डिका आदिके लक्षण

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं पिण्डिकाका लक्षण बता रहा हूँ। पिण्डिका लंबाईमें प्रतिमाके समान ही होती है, परंतु उसकी ऊँचाई प्रतिमासे आधी होती है। पिण्डिकाको चौसठ कुटों (पदों या कोष्ठकों) से युक्त करके नीचेकी दो पङ्क्ति छोड़ दे और उसके ऊपरका जो कोष्ठ है, उसे चारों ओर दोनों पार्श्वोंमें भीतरकी ओरसे मिटा दे। इसी तरह ऊपरकी दो पङ्क्तियोंको त्यागकर उसके नीचेका जो एक कोष्ठ (या एक पङ्क्ति) है, उसे भीतरकी ओरसे यत्नपूर्वक मिटा दे। दोनों पार्श्वोंमें समान रूपसे यह क्रिया करे ॥ १—३ ॥

दोनों पार्श्वोंके मध्यगत जो दो चौक हैं, उनका भी मार्जन कर दे। तदनन्तर उसे चार भागोंमें बाँटकर विद्वान्

पुरुष ऊपरकी दो पङ्क्तियोंको मेखला माने। मेखलाभागकी जो मात्रा है, उसके आधे मानके अनुसार उसमें खात खुदावे। फिर दोनों पार्श्वभागोंमें समानरूपसे एक-एक भागको त्यागकर बाहरकी ओरका एक पद नाली बनानेके लिये दे दे। विद्वान् पुरुष उसमें नाली बनवाये। फिर तीन भागमें जो एक भाग है, उसके आगे जल निकलनेका मार्ग रहे ॥ ४–६ ॥

नाना प्रकारके भेदसे यह शुभ पिण्डिका 'भद्रा' कही गयी है। लक्ष्मी देवीकी प्रतिमा ताल (हथेली) के मापसे आठ तालकी बनायी जानी चाहिये। अन्य देवियोंकी प्रतिमा भी ऐसी ही हो। दोनों भौंहोंको नासिकाकी अपेक्षा एक-एक जौ अधिक बनावे और नासिकाको उनकी अपेक्षा एक जौ कम। मुखकी गोलाई नेत्रगोलकसे बड़ी होनी चाहिये। वह ऊँचा और टेढ़ा-मेढ़ा न हो। आँखें बड़ी-बड़ी बनानी चाहिये। उनका माप सवा तीन जौके बराबर हो। नेत्रोंकी चौड़ाई उनकी लंबाईकी अपेक्षा आधी करे। मुखके एक कोनेसे लेकर दूसरे कोनेतककी जितनी लंबाई है, उसके बराबरके सूतसे नापकर कर्णपाश (कानका पूरा घेरा) बनावे। उसकी लंबाई उक्त सूतसे कुछ अधिक ही रक्खे। दोनों कंधोंको कुछ झुका हुआ और एक कलासे रहित बनावे। ग्रीवाकी लंबाई डेढ़ कला रखनी चाहिये। वह उतनी ही चौड़ाईसे भी सुशोभित हो। दोनों ऊरुओंका विस्तार ग्रीवाकी अपेक्षा एक नेत्र* कम होगा। जानु (घुटने), पिण्डली, पैर, पीठ, नितम्ब तथा कटिभाग—इन सबकी यथायोग्य कल्पना करे ॥ ७–११½ ॥

हाथकी अँगुलियाँ बड़ी हों। वे परस्पर अवरुद्ध न हों। बड़ी अँगुलीकी अपेक्षा छोटी अँगुलियाँ सातवें अंशसे रहित हों। जंघा, ऊरु और कटि—इनकी लंबाई क्रमशः एक-एक नेत्र कम हो। शरीरके मध्यभागके आस-पासका अङ्ग गोल हो। दोनों कुच घने (परस्पर सटे हुए) और पीन (उभड़े हुए) हों। स्तनोंका माप हथेलीके बराबर हो। कटि उनकी अपेक्षा डेढ़ कला अधिक बड़ी हो। शेष चिह्न पूर्ववत् रहें। लक्ष्मीजीके दाहिने हाथमें कमल और बायें हाथमें बिल्वफल हो।† उनके पार्श्वभागमें हाथमें चँवर लिये दो सुन्दरी, स्त्रियाँ खड़ी हों‡। सामने बड़ी नाकवाले गरुडकी स्थापना करे। अब मैं चक्राङ्कित (शालग्राम) मूर्ति आदिका वर्णन करता हूँ ॥ १२–१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पिण्डिका आदिके लक्षणका वर्णन' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

शालग्राम-मूर्तियोंके लक्षण

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं शालग्रामगत भगवन्मूर्तियोंका वर्णन आरम्भ करता हूँ, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। जिस शालग्राम-शिलाके द्वारमें दो चक्रके चिह्न हों और जिसका वर्ण श्वेत हो, उसकी 'वासुदेव' संज्ञा है। जिस उत्तम शिलाका रंग लाल हो और जिसमें दो चक्रके चिह्न संलग्न हों, उसे भगवान् 'संकर्षण' का श्रीविग्रह जानना चाहिये। जिसमें चक्रका सूक्ष्म चिह्न हो, अनेक छिद्र हों, नील वर्ण हो और आकृति बड़ी दिखायी देती हो, वह 'प्रद्युम्न' की मूर्ति है।[1] जहाँ कमलका चिह्न हो, जिसकी आकृति गोल और रंग पीला[2] हो तथा

---

* नेत्रकी जो लंबाई और चौड़ाई है, उतने मापको 'एक नेत्र' कहते हैं।

† मत्स्यपुराणमें दाहिने हाथमें श्रीफल और बायें हाथमें कमलका उल्लेख है—

'पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे करे।' (२६१ । ४१)

‡ मत्स्यपुराणमें अनेक चामरधारिणी स्त्रियोंका वर्णन है—'पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः।' (२६१ । ४५)

१. वाचस्पत्यकोषमें संकलित गरुडपुराण (४५ वें अध्याय) के निम्नाङ्कित वचनसे 'प्रद्युम्न-शिलाका पीतवर्ण सूचित होता है।' यथा—'तथा प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः।'

२. उक्त ग्रन्थके अनुसार ही अनिरुद्धका नीलवर्ण सूचित होता है। यथा—अनिरुद्धस्तु वर्तुलो नीलो द्वारि त्रिरेखश्च।

जिसमें दो-तीन रेखाएँ शोभा पा रही हों, यह 'अनिरुद्ध'का श्रीअङ्ग है। जिसकी कान्ति काली, नाभि उन्नत और जिसमें बड़े-बड़े छिद्र हों, उसे 'नारायण'का स्वरूप समझना चाहिये। जिसमें कमल और चक्रका चिह्न हो, पृष्ठभागमें छिद्र हो और जो बिन्दुसे युक्त हो, वह शालग्राम 'परमेष्ठी' नामसे प्रसिद्ध है। जिसमें चक्रका स्थूल चिह्न हो, जिसकी कान्ति श्याम हो और मध्यमें गदा-जैसी रेखा हो, उस शालग्रामकी 'विष्णु' संज्ञा है ॥ १-४ ॥

नृसिंह-विग्रहमें चक्रका स्थूल चिह्न होता है। उसकी कान्ति कपिल वर्णकी होती है और उसमें पाँच बिन्दु सुशोभित होते हैं।[3]

वाराह-विग्रहमें शक्ति नामक अस्त्रका चिह्न होता है। उसमें दो चक्र होते हैं, जो परस्पर विषम (समानतासे रहित) हैं। उसकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान नीली होती है। वह तीन स्थूल रेखाओंसे चिह्नित एवं शुभ होता है।[4] जिसका पृष्ठभाग ऊँचा हो, जो गोलाकार आवर्तचिह्नसे युक्त एवं श्याम हो, उस शालग्रामकी 'कूर्म' (कच्छप) संज्ञा है[5] ॥ ५-६ ॥

जो अंकुशर्का-सी रेखासे सुशोभित, नीलवर्ण एवं बिन्दु-युक्त हो, उस शालग्राम-शिलाको 'हयग्रीव' कहते हैं। जिसमें एक चक्र और कमलका चिह्न हो, जो मणिके समान प्रकाशमान तथा पुच्छाकार रेखासे शोभित हो, उस शालग्रामको 'वैकुण्ठ' समझना चाहिये।[6] जिसकी आकृति बड़ी हो, जिसमें तीन बिन्दु शोभा पाते हों, जो काँचके समान श्वेत तथा भरा-पूरा हो, वह शालग्राम-शिला मत्स्यावतारधारी भगवान्‌की मूर्ति मानी जाती है।[7] जिसमें वनमालाका चिह्न और पाँच रेखाएँ हों, उस गोलाकार शालग्राम-शिलाको 'श्रीधर' कहते हैं[8] ॥ ७-८ ॥

गोलाकार, अत्यन्त छोटी, नीली एवं बिन्दुयुक्त शाल-ग्राम-शिलाकी 'वामन' संज्ञा है।[9] जिसकी कान्ति श्याम हो, दक्षिण भागमें हारकी रेखा और बायें भागमें बिन्दुका चिह्न हो, उस शालग्राम-शिलाको 'त्रिविक्रम' कहते हैं[10] ॥ ९ ॥

जिसमें सर्पके शरीरका चिह्न हो, अनेक प्रकारकी आभाएँ दीखती हों तथा जो अनेक मूर्तियोंसे मण्डित हो, वह शालग्राम-शिला 'अनन्त' (शेषनाग) कही गयी है।[11] जो स्थूल हो, जिसके मध्यभागमें चक्रका चिह्न हो तथा अधोभागमें सूक्ष्म बिन्दु शोभा पा रहा हो, उस शालग्रामकी 'दामोदर' संज्ञा है।[12] एक चक्रवाले शालग्रामको सुदर्शन कहते हैं, दो चक्र होनेसे उसकी 'लक्ष्मीनारायण' संज्ञा होती है। जिसमें तीन चक्र हों, वह शिला भगवान् 'अच्युत' अथवा 'त्रिविक्रम' है। चार चक्रोंसे युक्त शालग्रामको 'जनार्दन', पाँच चक्रवालेको 'वासुदेव', छः चक्रवालेको 'प्रद्युम्न' तथा सात चक्रवालेको 'संकर्षण' कहते हैं। आठ चक्रवाले शालग्रामकी 'पुरुषोत्तम' संज्ञा है। नौ चक्रवालेको 'नवव्यूह' कहते हैं। दस चक्रोंसे युक्त शिलाकी 'दशावतार' संज्ञा है। ग्यारह चक्रोंसे युक्त होनेपर उसे 'अनिरुद्ध', द्वादश चक्रोंसे चिह्नित होनेपर 'द्वादशात्मा' तथा इससे अधिक चक्रोंसे युक्त होनेपर उसे 'अनन्त' कहते हैं ॥ १०-१३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शालग्रामगत मूर्तियोंके लक्षणका वर्णन' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

---

३. पृथुचक्रो नृसिंहोऽथ कपिलोऽव्यात्त्रिबिन्दुकः। अथवा पञ्चबिन्दुस्तत्पूजनं ब्रह्मचारिणाम् ॥ (इति गरुडपुराणेऽपि)

४. वराहः शुभलिङ्गोऽव्याद् विषमस्थद्विचक्रकः। नीलस्त्रिरेखः स्थूलः। (ग० पु०)

५. अथ कूर्ममूर्तिः स बिन्दुमान्। कृष्णः स वर्तुलावर्तः पातु चोन्नतपृष्ठकः। (ग० पु०)

६. हयग्रीवोऽङ्कुशाकारः पञ्चरेखः सकौस्तुभः। वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राम्बुजोऽसितः ॥ (ग० पु०)

७. मत्स्यो दीर्घाम्बुजाकारो हाररेखश्च पातु वः। (ग० पु०)

८. श्रीधरः पञ्चरेखोऽव्याद् वनमाली गदान्वितः। (ग० पु०) (वाचस्पत्यकोषसे संकलित)

९. वामनो वर्तुलो ह्रस्वः वामचक्रः सुरेश्वरः। (ग० पु०)

१०. वामचक्रो हाररेखः श्यामो वोऽव्यात् त्रिविक्रमः। (ग० पु०)

११. नानावर्णोऽनेकमूर्तिर्नागभोगी त्वनन्तकः। (ग० पु०)

१२. स्थूलो दामोदरो नीलो मध्येचक्रः सनीलकः। (ग० पु०)

सैंतालीसवाँ अध्याय

शालग्राम-विग्रहोंकी पूजाका वर्णन

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब मैं तुम्हारे सम्मुख पूर्वोक्त चक्राङ्कित शालग्राम-विग्रहोंकी पूजाका वर्णन करता हूँ, जो सिद्धि प्रदान करनेवाली है। श्रीहरिकी पूजा तीन प्रकारकी होती है—काम्या, अकाम्या और उभयात्मिका। मत्स्य आदि पाँच विग्रहोंकी पूजा काम्या अथवा उभयात्मिका हो सकती है। पूर्वोक्त चक्रादिसे सुशोभित वराह, नृसिंह और वामन—इन तीनोंकी पूजा मुक्तिके लिये करनी चाहिये। अब शालग्राम-पूजनके विषयमें सुनो, जो तीन प्रकारकी होती है। इनमें निष्कला पूजा उत्तम, सकला पूजा कनिष्ठ और मूर्तिपूजाको मध्यम माना गया है। चौकोर मण्डलमें स्थित कमलपर पूजाकी विधि इस प्रकार है—हृदयमें प्रणवका न्यास करते हुए षडङ्गन्यास करे। फिर करन्यास और व्यापक न्यास करके तीन मुद्राओंका प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् चक्रके बाह्यभागमें पूर्व दिशाकी ओर गुरुदेवका पूजन करे। पश्चिम दिशामें गणका, वायव्यकोणमें धाताका एवं नैर्ऋत्यकोणमें विधाताका पूजन करे। दक्षिण और उत्तर दिशामें क्रमशः कर्ता और हर्ताकी पूजा करे। इसी प्रकार ईशानकोणमें विष्वक्सेन और अग्निकोणमें क्षेत्रपालकी पूजा करे। फिर पूर्वादि दिशाओंमें ऋग्वेद आदि चारों वेदोंकी पूजा करके आधारशक्ति, अनन्त, पृथिवी, योगपीठ, पद्म तथा सूर्य, चन्द्र और ब्रह्मात्मक अग्नि—इन तीनोंके मण्डलोंका यजन करे। तदनन्तर द्वादशाक्षर मन्त्रसे आसनपर शिलाकी स्थापना करके पूजन करे। फिर मूल मन्त्रके विभाग करके एवं सम्पूर्ण मन्त्रसे क्रमपूर्वक पूजन करे। फिर प्रणवसे पूजन करनेके पश्चात् तीन मुद्राओंका प्रदर्शन करे॥ १—९॥

इस प्रकार यह शालग्रामकी प्रथम पूजा निष्कला कही जाती है। पूर्ववत् षोडशदलकमलसे युक्त मण्डलको अङ्कित करे। उसमें शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग—इन आयुधोंकी तथा गुरु आदिकी पहलेकी भाँति पूजा करे। पूर्व और उत्तर दिशाओंमें क्रमशः धनुष् और बाणकी पूजा करे। प्रणवमन्त्रसे आसन समर्पण करे और द्वादशाक्षर मन्त्रसे शिलाका न्यास करना चाहिये। अब तीसरे प्रकारकी कनिष्ठ पूजाका वर्णन करता हूँ, सुनो। अष्टदलकमल अङ्कित करके उसपर पहलेके समान गुरु आदिकी पूजा करे। फिर अष्टाक्षर मन्त्रसे आसन देकर उसीसे शिलाका न्यास करे॥ १०—१३½॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शालग्राम आदिकी पूजाका वर्णन' विषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

चतुर्विंशति-मूर्तिस्तोत्र एवं द्वादशाक्षर स्तोत्र

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! ओंकारस्वरूप केशव अपने हाथोंमें पद्म, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं*। नारायण शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र धारण करते हैं, मैं प्रदक्षिणापूर्वक उनके चरणोंमें नतमस्तक होता हूँ। माधव गदा, चक्र, शङ्ख और पद्म धारण करनेवाले हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ। गोविन्द अपने हाथोंमें क्रमशः चक्र, गदा, पद्म और शङ्ख धारण करनेवाले तथा बलशाली हैं। श्रीविष्णु गदा, पद्म, शङ्ख एवं चक्र धारण करते हैं, वे मोक्ष देनेवाले हैं। मधुसूदन शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा धारण करते हैं। मैं उनके सामने भक्तिभावसे नतमस्तक होता हूँ। त्रिविक्रम क्रमशः पद्म, गदा, चक्र एवं शङ्ख धारण करते हैं। भगवान् वामनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म शोभा पाते हैं, वे सदा मेरी रक्षा करें॥ १—४॥

* अस्त्र-धारणका यह क्रम दाहिने भागके नीचेवाले हाथसे आरम्भ होकर बायें भागके नीचेवाले हाथतक आता है। अर्थात् केशव दायें भागके निचले हाथमें पद्म, ऊपरवाले हाथमें शङ्ख, बायें भागके ऊपरवाले हाथमें चक्र और नीचेवाले हाथमें गदा धारण करते हैं। ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिये। मतान्तरके अनुसार दाहिने हाथके ऊपरवाले हाथसे भी यह क्रम आरम्भ होता है।

श्रीधर कमल, चक्र, शार्ङ्ग धनुष एवं शङ्ख धारण करते हैं। वे सबको सद्गति प्रदान करनेवाले हैं। हृषीकेश गदा, चक्र, पद्म एवं शङ्ख धारण करते हैं, वे हम सबकी रक्षा करें। वरदायक भगवान् पद्मनाभ शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा धारण करते हैं। दामोदरके हाथोंमें पद्म, शङ्ख, गदा और चक्र शोभा पाते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म धारण करनेवाले वासुदेवने ही सम्पूर्ण जगत्‌का विस्तार किया है। गदा, शङ्ख, पद्म और चक्र धारण करनेवाले संकर्षण आपलोगोंकी रक्षा करें ॥५—७॥

वाद (युद्ध-) कुशल भगवान् प्रद्युम्न चक्र, शङ्ख, गदा और पद्म धारण करते हैं। अनिरुद्ध चक्र, गदा, शङ्ख और पद्म धारण करनेवाले हैं, वे हमलोगोंकी रक्षा करें। सुरेश्वर पुरुषोत्तम चक्र, कमल, शङ्ख और गदा धारण करते हैं, भगवान् अधोक्षज पद्म, गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले हैं। वे आपलोगोंकी रक्षा करें। नृसिंहदेव चक्र, कमल, गदा और शङ्ख धारण करनेवाले हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। श्रीगदा, पद्म, चक्र और शङ्ख धारण करनेवाले अच्युत आपलोगोंकी रक्षा करें। शङ्ख, गदा, चक्र और पद्म धारण करनेवाले बालवटुरूपधारी वामन, पद्म, चक्र, शङ्ख और गदा धारण करनेवाले जनार्दन, शङ्ख, पद्म, चक्र और गदाधारी यज्ञस्वरूप श्रीहरि तथा शङ्ख, गदा, पद्म एवं चक्र धारण करनेवाले श्रीकृष्ण मुझे भोग और मोक्ष देनेवाले हों ॥ ८—१२ ॥

आदिमूर्ति भगवान् वासुदेव हैं। उनसे संकर्षण प्रकट हुए। संकर्षणसे प्रद्युम्न और प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका प्रादुर्भाव हुआ। इनमेंसे एक-एक क्रमशः केशव आदि मूर्तियोंके भेदसे तीन-तीन रूपोंमें अभिव्यक्त हुआ। (अतः कुल मिलाकर बारह स्वरूप हुए) *। चौबीस मूर्तियोंकी स्तुतिसे युक्त इस द्वादशाक्षर स्तोत्रका जो पाठ अथवा श्रवण करता है, वह निर्मल होकर सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है † ॥ १३—१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्रीहरिकी चौबीस मूर्तियोंके स्तोत्रका वर्णन' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

---

* तात्पर्य यह है कि वासुदेवसे केशव, नारायण और माधवकी, संकर्षणसे गोविन्द, विष्णु और मधुसूदनकी, प्रद्युम्नसे त्रिविक्रम, वामन और श्रीधरकी तथा अनिरुद्धसे हृषीकेश, पद्मनाभ एवं दामोदरकी अभिव्यक्ति हुई।

† इस अध्यायमें बारह श्लोक स्तुतिके हैं। प्रत्येक श्लोकमें भगवान्‌की दो-दो मूर्तियोंका स्तवन हुआ तथा इन बारहों श्लोकोंके आदिका एक-एक अक्षर जोड़नेसे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह द्वादशाक्षर मन्त्र बनता है। इसीलिये इसे द्वादशाक्षर-स्तोत्र एवं चौबीस मूर्तियोंका स्तोत्र कहते हैं।

श्रीभगवानुवाच—

ॐरूपः केशवः पद्मशङ्खचक्रगदाधरः। नारायणः शङ्खपद्मगदाचक्री प्रदक्षिणम् ॥ १ ॥
ततो गदी माधवोऽरिशङ्खपद्मी नमामि तम्। चक्रकौमोदकीपद्मशङ्खी गोविन्द ऊर्जितः ॥ २ ॥
मोक्षदः श्रीगदी पद्मी शङ्खी विष्णुश्च चक्रधृक्। शङ्खचक्राब्जगदिनं मधुसूदनमानमे ॥ ३ ॥
भक्त्या त्रिविक्रमः पद्मगदी चक्री च शङ्ख्यपि। शङ्खचक्रगदापद्मी वामनः पातु मां सदा ॥ ४ ॥
गतिदः श्रीधरः पद्मी चक्रशार्ङ्गी च शङ्ख्यपि। हृषीकेशो गदी चक्री पद्मी शङ्खी च पातु नः ॥ ५ ॥
वरदः पद्मनाभस्तु शङ्खाब्जारिगदाधरः। दामोदरः पद्मशङ्खगदाचक्री नमामि तम् ॥ ६ ॥
तेने गदी शङ्खचक्री वासुदेवोऽब्जभृज्जगत्। संकर्षणो गदी शङ्खी पद्मी चक्री च पातु वः ॥ ७ ॥
वादी चक्री शङ्खगदी प्रद्युम्नः पद्मभृत्प्रभुः। अनिरुद्धश्चक्रगदी शङ्खी पद्मी च पातु नः ॥ ८ ॥
सुरेशोऽर्यब्जशङ्खाढ्यः श्रीगदी पुरुषोत्तमः। अधोक्षजः पद्मगदी शङ्खचक्री च पातु वः ॥ ९ ॥
देवो नृसिंहश्चक्राब्जगदी शङ्खी नमामि तम्। अच्युतः श्रीगदी पद्मी चक्री शङ्खी च पातु वः ॥१०॥
बालरूपी शङ्खगदी उपेन्द्रश्चक्रपद्म्यपि। जनार्दनः पद्मचक्री शङ्खधारी गदाधरः ॥११॥
यज्ञः शङ्खी पद्मचक्री हरिः कौमोदकीधरः। कृष्णः शङ्खी गदी पद्मी चक्री मे भुक्तिमुक्तिदः ॥१२॥
आदिमूर्तिर्वासुदेवस्तस्मात्संकर्षणोऽभवत्। संकर्षणाच्च प्रद्युम्नः प्रद्युम्नादनिरुद्धकः ॥१३॥
केशवादिप्रभेदेन एकैकः स्यात्त्रिधा क्रमात् ॥१४॥
द्वादशाक्षरकं स्तोत्रं चतुर्विंशतिमूर्तिमत्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि निर्मलः सर्वमाप्नुयात् ॥१५॥

उनचासवाँ अध्याय

मत्स्यादि दशावतारोंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं तुम्हें मत्स्य आदि दस अवतार-विग्रहोंका लक्षण बताता हूँ। मत्स्य-भगवान्‌की आकृति मत्स्यके समान और कूर्म भगवान्‌की प्रतिमा कूर्म (कच्छप)के आकारकी होनी चाहिये। पृथ्वीके उद्धारक भगवान् वराहको मनुष्याकार बनाना चाहिये, वे दाहिने हाथमें गदा और चक्र धारण करते हैं। उनके बायें हाथमें शङ्ख और पद्म शोभा पाते हैं। अथवा पद्मके स्थानपर वाम भागमें पद्मा देवी सुशोभित होती हैं। लक्ष्मी उनके बायें कूर्पर (कोहनी) का सहारा लिये रहती हैं। पृथ्वी तथा अनन्त चरणोंके अनुगत होते हैं। भगवान् वराहकी स्थापनासे राज्यकी प्राप्ति होती है और मनुष्य भवसागरसे पार हो जाता है। नरसिंहका मुँह खुला हुआ है। उन्होंने अपनी बायीं जाँघपर दानव हिरण्यकशिपुको दबा रक्खा है और उस दैत्यके वक्षको विदीर्ण करते दिखायी देते हैं। उनके गलेमें माला है और हाथोंमें चक्र एवं गदा प्रकाशित हो रहे हैं॥ १-४॥

वामनका विग्रह छत्र एवं दण्डसे सुशोभित होता है अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज बनाया जाय। परशुरामके हाथोंमें धनुष और बाण होना चाहिये। वे खड्ग और फरसेसे भी शोभित होते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके श्रीविग्रहको धनुष, बाण, खड्ग और शङ्खसे सुशोभित करना चाहिये। अथवा वे द्विभुज माने गये हैं। बलरामजी गदा एवं हल धारण करनेवाले हैं, अथवा उन्हें भी चतुर्भुज बनाना चाहिये। उनके बायें भागके ऊपरवाले हाथमें हल धारण करावे और नीचेवालेमें सुन्दर शोभाशाली शङ्ख, दायें भागके ऊपरवाले हाथमें मुसल धारण करावे और नीचेवाले हाथमें शोभायमान सुदर्शन चक्र॥५-७॥

बुद्धदेवकी प्रतिमाका लक्षण यों है। बुद्ध ऊँचे पद्ममय आसनपर बैठे हैं। उनके एक हाथमें वरद और दूसरेमें अभयकी मुद्रा है। वे शान्तस्वरूप हैं। उनके शरीरका रंग गोरा और कान लंबे हैं। वे सुन्दर पीत वस्त्रसे आवृत हैं। कल्की भगवान् धनुष और तूणीरसे सुशोभित हैं। म्लेच्छोंके संहारमें लगे हैं। वे ब्राह्मण हैं। अथवा उनकी आकृति इस प्रकार बनावे—वे घोड़ेकी पीठपर बैठे हैं और अपने चार हाथोंमें खड्ग, शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करते हैं॥८-९॥

ब्रह्मन्! अब मैं तुम्हें वासुदेव आदि नौ मूर्तियोंके लक्षण बताता हूँ। दाहिने भागके ऊपरवाले हाथमें उत्तम चक्र—यह वासुदेवकी मुख्य पहचान है। उनके एक पार्श्वमें ब्रह्मा और दूसरे भागमें महादेवजी सदा विराजमान रहते हैं। वासुदेवकी शेष बातें पूर्ववत् हैं। वे शङ्ख अथवा वरदकी मुद्रा धारण करते हैं। उनका स्वरूप द्विभुज अथवा चतुर्भुज होता है। बलरामके चार भुजाएँ हैं। वे दायें हाथमें हल और मुसल तथा बायें हाथमें गदा और पद्म धारण करते हैं। प्रद्युम्न दायें हाथमें चक्र और शङ्ख तथा बायें हाथमें धनुष-बाण धारण करते हैं। अथवा द्विभुज प्रद्युम्नके एक हाथमें गदा और दूसरेमें धनुष है। वे प्रसन्नतापूर्वक इन अस्त्रोंको धारण करते हैं। या उनके एक हाथमें धनुष और दूसरेमें बाण है। अनिरुद्ध और भगवान् नारायणका विग्रह चतुर्भुज होता है॥ १०-१३॥

ब्रह्माजी हंसपर आरूढ होते हैं। उनके चार मुख और चार भुजाएँ हैं। उदर-मण्डल विशाल है। लंबी दाढ़ी और सिरपर जटा—यही उनकी प्रतिमाका लक्षण है। वे दाहिने हाथोंमें अक्षसूत्र और स्रुवा एवं बायें हाथोंमें कुण्डिका और आज्यस्थाली धारण करते हैं। उनके वाम भागमें सरस्वती और दक्षिण भागमें सावित्री हैं। विष्णुके आठ भुजाएँ हैं। वे गरुड़पर आरूढ हैं। उनके दाहिने हाथोंमें खड्ग, गदा, बाण और वरदकी मुद्रा है। बायें हाथोंमें धनुष, खेट, चक्र और शङ्ख हैं। अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज भी है। नृसिंहके चार भुजाएँ हैं। उनकी दो भुजाओंमें शङ्ख और चक्र हैं तथा दो भुजाओंसे वे महान् असुर हिरण्यकशिपुका वक्ष विदीर्ण कर रहे हैं॥१४-१७॥

वराहके चार भुजाएँ हैं। उन्होंने शेष नागको अपने करतलमें धारण कर रक्खा है। वे बायें हाथसे पृथ्वीको और वाम भागमें लक्ष्मीको धारण करते हैं। जब लक्ष्मी उनके साथ हों, तब पृथ्वीको उनके चरणोंमें संलग्न बनाना चाहिये। त्रैलोक्यमोहनमूर्ति श्रीहरि गरुड़पर आरूढ हैं। उनके आठ

भुजाएँ हैं। वे दाहिने हाथोंमें चक्र, खड्ग, मुसल और अंकुश धारण करते हैं। उनके बायें हाथोंमें शङ्ख, शार्ङ्गधनुष, गदा और पाश शोभा पाते हैं। वाम भागमें कमलधारिणी कमला और दक्षिण भागमें वीणाधारिणी सरस्वतीकी प्रतिमाएँ बनानी चाहिये। भगवान् विश्वरूपका विग्रह बीस भुजाओंसे सुशोभित है। वे दाहिने हाथोंमें क्रमशः चक्र, खड्ग, मुसल, अंकुश, पट्टिश, मुद्गर, पाश, शक्ति, शूल तथा बाण धारण करते हैं। बायें हाथोंमें शङ्ख, शार्ङ्गधनुष, गदा, पाश, तोमर, हल, फरसा, दण्ड, छुरी और उत्तम ढाल लिये रहते हैं। उनके दाहिने भागमें चतुर्भुज ब्रह्मा तथा बायें भागमें त्रिनेत्रधारी महादेव विराजमान हैं। जलशायी जलमें शयन करते हैं। इनकी मूर्ति शेषशय्यापर सोयी हुई बनानी चाहिये। भगवती लक्ष्मी उनकी एक चरणकी सेवामें लगी हैं। विमला आदि शक्तियाँ उनकी स्तुति करती हैं। उन श्रीहरिके नाभिकमलपर चतुर्मुख ब्रह्मा विराज रहे हैं॥ १७–२४½॥

हरिहर-मूर्ति इस प्रकार बनानी चाहिये—वह दाहिने हाथमें शूल तथा ऋष्टि धारण करती है और बायें हाथमें गदा एवं चक्र। शरीरके दाहिने भागमें रुद्रके चिह्न हैं और वाम भागमें केशवके। दाहिने पार्श्वमें गौरी तथा वाम पार्श्वमें लक्ष्मी विराज रही हैं। भगवान् हयग्रीवके चार हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और वेद शोभा पाते हैं। उन्होंने अपना बायाँ पैर शेषनागपर और दाहिना पैर कच्छपकी पीठपर रख छोड़ा है। दत्तात्रेयके दो बाँहें हैं। उनके वामाङ्कमें लक्ष्मी शोभा पाती है। भगवान्‌के पार्षद विष्वक्सेन अपने चार हाथोंमें क्रमशः चक्र, गदा, हल और शङ्ख धारण करते हैं॥ २५–२८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मत्स्यादि दशावतारोंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन' नामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

चण्डी आदि देवी-देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण

श्रीभगवान् बोले—चण्डी बीस भुजाओंसे विभूषित होती है। वह अपने दाहिने हाथोंमें शूल, खड्ग, शक्ति, चक्र, पाश, खेट, आयुध, अभय, डमरू और शक्ति धारण करती है। बायें हाथोंमें नागपाश, खेटक, कुठार, अंकुश, पाश, घण्टा, आयुध, गदा, दर्पण और मुद्गर लिये रहती है। अथवा चण्डीकी प्रतिमा दस भुजाओंसे युक्त होनी चाहिये। उसके चरणोंके नीचे कटे हुए मस्तकवाला महिष हो। उसका मस्तक अलग गिरा हुआ हो। वह हाथोंमें शस्त्र उठाये हो। उसकी ग्रीवासे एक पुरुष प्रकट हुआ हो, जो अत्यन्त कुपित हो। उसके हाथमें शूल हो, वह मुँहसे रक्त उगल रहा हो। उसके गलेकी माला, सिरके बाल और दोनों नेत्र लाल दिखायी देते हों। देवीका वाहन सिंह उसके रक्तका आस्वादन कर रहा हो। उस महिषासुरके गलेमें खूब कसकर पाश बाँधा गया हो। देवीका दाहिना पैर सिंहपर और बायाँ पैर नीचे महिषासुरके शरीरपर हो॥ १–५॥

वे चण्डीदेवी त्रिनेत्रधारिणी हैं तथा शस्त्रोंसे सम्पन्न रहकर शत्रुओंका मर्दन करनेवाली हैं। नवकमलात्मक पीठपर दुर्गाकी प्रतिमामें उनकी पूजा करनी चाहिये। पहले कमलके नौ दलोंमें तथा मध्यवर्तिनी कर्णिकामें इन्द्र आदि दिक्पालोंकी तथा नौ तत्त्वात्मिका शक्तियों* के साथ दुर्गाकी पूजा करे॥ ६½॥

दुर्गाजीकी एक प्रतिमा अठारह भुजाओंकी होती है। वह दाहिने भागके हाथोंमें मुण्ड, खेटक, दर्पण, तर्जनी, धनुष, ध्वज, डमरू, ढाल और पाश धारण करती है; तथा वाम भागकी भुजाओंमें शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, बाण, चक्र और शलाका लिये रहती है। सोलह बाँहवाली दुर्गाकी प्रतिमा भी इन्हीं आयुधोंसे युक्त होती है। अठारहमेंसे दो भुजाओं तथा डमरू और

* इन नौ तत्त्वात्मिका शक्तियोंकी नामावली इस प्रकार समझनी चाहिये—अग्निपुराण अध्याय २१ में—लक्ष्मी, मेधा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी, प्रभा, मति और दुर्गा—ये नाम आये हैं। तथा तन्त्रसमुच्चय और मन्त्रमहार्णवके अनुसार इन शक्तियोंके ये नाम हैं—प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया तथा सर्वसिद्धिदा।

तर्जनी—इन दो आयुधोंको छोड़कर शेष सोलह हाथ उन पूर्वोक्त आयुधोंसे ही सम्पन्न होते हैं। रुद्रचण्डा आदि नौ दुर्गाएँ इस प्रकार हैं—रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा और अतिचण्डिका। ये पूर्वादि आठ दिशाओंमें पूजित होती हैं तथा नवीं उग्रचण्डा मध्यभागमें स्थापित एवं पूजित होती हैं। रुद्रचण्डा आदि आठ देवियोंकी अङ्गकान्ति क्रमशः गोरोचनाके सदृश पीली, अरुणवर्णा, काली, नीली, शुक्लवर्णा, धूम्रवर्णा, पीतवर्णा और श्वेतवर्णा है। ये सब-की-सब सिंहवाहिनी हैं। महिषासुरके कण्ठसे प्रकट हुआ जो पुरुष है, वह शस्त्रधारी है और ये पूर्वोक्त देवियाँ अपनी मुट्ठीमें उसका केश पकड़े रहती हैं॥ ७—१२॥

ये नौ दुर्गाएँ 'आलीढा'[1] आकृतिकी होनी चाहिये। पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धिके लिये इनकी स्थापना (एवं पूजा) करनी उचित है। गौरी ही चण्डिका आदि देवियोंके रूपमें पूजित होती हैं। वे ही हाथोंमें कुण्डी, अक्षमाला, गदा और अग्नि धारण करके 'रम्भा' कहलाती हैं। वे ही वनमें 'सिद्धा' कही गयी हैं। सिद्धावस्थामें वे अग्निसे रहित होती हैं। 'ललिता' भी वे ही हैं। उनका परिचय इस प्रकार है—उनके एक बायें हाथमें गर्दन-सहित मुण्ड है और दूसरेमें दर्पण। दाहिने हाथमें फलाञ्जलि है और उससे ऊपरके हाथमें सौभाग्यकी मुद्रा॥ १३—१४½॥

लक्ष्मीके दायें हाथमें कमल और बायें हाथमें श्रीफल होता है। सरस्वतीके दो हाथोंमें पुस्तक और अक्षमाला शोभा पाती है और शेष दो हाथोंमें वे वीणा धारण करती हैं। गङ्गाजीकी अङ्गकान्ति श्वेत है। वे मकरपर आरूढ हैं। उनके एक हाथमें कलश है और दूसरेमें कमल। यमुना देवी कछुएपर आरूढ हैं। उनके दोनों हाथोंमें कलश है और वे श्यामवर्णा हैं। इसी रूपमें इनकी पूजा होती है। तुम्बुरुकी प्रतिमा वीणासहित होनी चाहिये। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। शूलपाणि शंकर वृषभपर आरूढ हो मातृकाओंके आगे-आगे चलते हैं। ब्रह्माजीकी प्रिया सावित्री गौरवर्णा एवं चतुर्मुखी हैं। उनके दाहिने हाथोंमें अक्षमाला और स्रुक् शोभा पाते हैं और बायें हाथोंमें वे कुण्ड एवं अक्षपात्र लिये रहती हैं। उनका वाहन हंस है। शंकरप्रिया पार्वती वृषभपर आरूढ होती है। उनके दाहिने हाथोंमें धनुष-बाण और बायें हाथोंमें चक्र-धनुष शोभित होते हैं। कौमारी शक्ति मोरपर आरूढ होती है। उसकी अङ्गकान्ति लाल है। उसके दो हाथ हैं और वह अपने हाथोंमें शक्ति धारण करती है॥ १५—१९॥

लक्ष्मी (वैष्णवी शक्ति) अपने दायें हाथोंमें चक्र और शङ्ख धारण करती हैं तथा बायें हाथोंमें गदा एवं कमल लिये रहती हैं। वाराही शक्ति भैंसेपर आरूढ होती है। उसके हाथ दण्ड, शङ्ख, चक्र और गदासे सुशोभित होते हैं। ऐन्द्री शक्ति ऐरावत हाथीपर आरूढ होती है। उसके सहस्र नेत्र हैं तथा उसके हाथोंमें वज्र शोभा पाता है। ऐन्द्री देवी पूजित होनेपर सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। चामुण्डाकी आँखें वृक्षके खोखलेकी भाँति गहरी होती हैं। उनका शरीर मांसरहित—कंकाल दिखायी देता है। उनके तीन नेत्र हैं। मांसहीन शरीरमें अस्थिमात्र ही सार है। केश ऊपरकी ओर उठे हुए हैं। पेट सटा हुआ है। वे हाथीका चमड़ा पहनती हैं। उनके बायें हाथोंमें कपाल और पट्टिश है तथा दायें हाथोंमें शूल और कटार। वे शवपर आरूढ होती और हड्डियोंके गहनोंसे अपने शरीरको विभूषित करती हैं॥ २०—२२½॥

विनायक (गणेश) की आकृति मनुष्यके समान है; किंतु उनका पेट बहुत बड़ा है। मुख हाथीके समान है और सूँड़ लंबी है। वे यज्ञोपवीत धारण करते हैं। उनके मुखकी चौड़ाई सात कला है और सूँड़की लंबाई छत्तीस अङ्गुल। उनकी नाड़ी (गर्दनके ऊपरकी हड्डी) बारह कला विस्तृत और गर्दन डेढ़ कला ऊँची होती है। उनके कण्ठभागकी लंबाई छत्तीस अङ्गुल है* और गुह्यभागका घेरा डेढ़ अङ्गुल। नाभि और ऊरुका विस्तार बारह अङ्गुल है। जाँघों और पैरोंका भी यही माप है। वे दाहिने हाथोंमें गजदन्त और फरसा धारण करते हैं तथा बायें हाथोंमें लड्डू एवं उत्पल लिये रहते हैं॥ २३—२६॥

१. वाचस्पत्य कोषमें आलीढका लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

कुञ्चवामपदं पश्चात्तच्चजानूरुदक्षिणम्।
वितस्त्यः पञ्च विस्तारे तदालीढं प्रकीर्तितम्॥

जिसमें मुड़ा हुआ बायाँ पैर तो पीछे हो और तने हुए घुटने तथा जङ्घाका दाहिना पैर आगेकी ओर हो, दोनोंके बीचका विस्तार पाँच बित्ता हो तो इस प्रकारके आसन या अवस्थानको 'आलीढ' कहा गया है।

हरिहर भगवान् [अग्नि० अ० ४९

स्कन्द स्वामी [अग्नि० अ० ५०

चण्डी बीसभुजा [अग्नि० अ० ५०

दुर्गा अठारह भुजा [अग्नि० अ० ५०

स्कन्द स्वामी मयूरपर आरूढ हैं। उनके उभय पार्श्वमें सुमुखी और विडालाक्षी मातृका तथा शाख और विशाख अनुज खड़े हैं। उनके दो भुजाएँ हैं। वे बाल-रूपधारी हैं। उनके दाहिने हाथमें शक्ति शोभा पाती है और बायें हाथमें कुक्कुट। उनके एक या छः मुख बनाने चाहिये। गाँवमें उनके अर्चाविग्रहको छः अथवा बारह भुजाओंसे युक्त बनाना चाहिये, परंतु वनमें यदि उनकी मूर्ति स्थापित करनी हो तो उनके दो ही भुजाएँ बनानी चाहिये। कौमारी-शक्तिके छहों दाहिनी भुजाओंमें शक्ति, बाण, पाश, खड्ग, गदा और तर्जनी (मुद्रा)—ये अस्त्र रहने चाहिये और छः बायें हाथोंमें मोरपंख, धनुष, खेट, पताका, अभयमुद्रा तथा कुक्कुट होने चाहिये। रुद्रचर्चिका देवी हाथीके चर्म धारण करती हैं। उनके मुख और एक पैर ऊपरकी ओर उठे हैं। वे बायें-दायें हाथोंमें क्रमशः कपाल, कर्तरी, शूल और पाश धारण करती हैं। वे ही देवी 'अष्टभुजा'के रूपमें भी पूजित होती हैं॥ २७—३१॥

मुण्डमाला और डमरूसे युक्त होनेपर वे ही 'रुद्रचामुण्डा' कही गयी हैं। वे नृत्य करती हैं, इसलिये 'नाट्येश्वरी' कहलाती हैं। ये ही आसनपर बैठी हुई चतुर्मुखी 'महालक्ष्मी' (की तामसी मूर्ति) कही गयी है, जो अपने हाथोंमें पड़े हुए मनुष्यों, घोड़ों, भैंसों और हाथियोंको खा रही हैं। 'सिद्धचामुण्डा' देवीके दस भुजाएँ और तीन नेत्र हैं। ये दाहिने भागके पाँच हाथोंमें शस्त्र, खड्ग तथा तीन डमरू धारण करती हैं और बायें भागके हाथोंमें घण्टा, खेटक, खट्वाङ्ग, त्रिशूल (और ढाल) लिये रहती हैं। 'सिद्धयोगेश्वरी' देवी सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। इन्हीं देवीकी स्वरूपभूता एक दूसरी शक्ति हैं, जिनकी अङ्गकान्ति अरुण है। ये अपने दो हाथोंमें पाश और अंकुश धारण करती हैं तथा 'भैरवी' नामसे विख्यात हैं। 'रूपविद्या' देवी बारह भुजाओंसे युक्त कही गयी हैं। ये सब-की-सब श्मशानभूमिमें प्रकट होनेवाली तथा भयंकर हैं। इन आठों देवियोंको 'अम्बाष्टक'[1] कहते हैं॥ ३२—३६॥

'क्षमादेवी' शिवाओं (शृगालियों) से आवृत हैं। वे एक बूढ़ी स्त्रीके रूपमें स्थित हैं। उनके दो भुजाएँ हैं। मुँह खुला हुआ है। दाँत निकले हुए हैं तथा वे धरतीपर घुटनों और हाथका सहारा लेकर बैठी हैं। उनके द्वारा उपासकोंका कल्याण होता है। यक्षिणियोंकी आँखें स्तब्ध (एकटक देखनेवाली) और बड़ी होती हैं। शाकिनियाँ वक्र-दृष्टिसे देखनेवाली होती हैं। अप्सराएँ सदा ही अत्यन्त रमणीय एवं सुन्दर रूपवाली हुआ करती हैं। इनकी आँखें भूरी होती हैं॥ ३७-३८॥

भगवान् शंकरके द्वारपाल नन्दीश्वर एक हाथमें अक्षमाला और दूसरेमें त्रिशूल लिये रहते हैं। महाकालके एक हाथमें तलवार, दूसरेमें कटा हुआ सिर, तीसरेमें शूल और चौथेमें खेट होना चाहिये। भृङ्गीका शरीर कृश होता है। वे नृत्यकी मुद्रामें देखे जाते हैं। उनका मस्तक कूष्माण्डके समान स्थूल और गंजा होता है। वीरभद्र आदि गण हाथी और गायके समान कान और मुखवाले होते हैं। घण्टाकर्णके अठारह भुजाएँ होती हैं। वे पाप और रोगका विनाश करनेवाले हैं। वे बायें भागके आठ हाथोंमें वज्र, खड्ग, दण्ड, चक्र, बाण, मुसल, अंकुश और मुद्गर तथा दायें भागके आठ हाथोंमें तर्जनी, खेट, शक्ति, मुण्ड, पाश, धनुष, घण्टा और कुठार धारण करते हैं। शेष दो हाथोंमें त्रिशूल लिये रहते हैं। घण्टाकी मालासे अलंकृत देव घण्टाकर्ण विस्फोटक (फोड़े, फुंसी एवं चेचक आदि) का निवारण करनेवाले हैं॥ ३९—४३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चण्डी आदि देवी-देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका निरूपण' नामक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५०॥

---

[1] रुद्रचण्डा, अष्टभुजा (या रुद्रचामुण्डा), नाट्येश्वरी, चतुर्मुखी महालक्ष्मी, सिद्धचामुण्डा, सिद्धयोगेश्वरी, भैरवी तथा रूपविद्या—इन आठ देवियोंको ही 'अम्बाष्टक' कहा गया है।

इक्यावनवाँ अध्याय

सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! सात अश्वोंसे जुते हुए एक पहियेवाले रथपर विराजमान सूर्यदेवकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये। भगवान् सूर्य अपने दोनों हाथोंमें दो कमल धारण करते हैं। उनके दाहिने भागमें दावात और कलम लिये दण्डी खड़े हैं और वाम भागमें पिङ्गल हाथमें दण्ड लिये द्वारपर विद्यमान हैं। ये दोनों सूर्यदेवके पार्षद हैं। भगवान् सूर्यदेवके उभय पार्श्वमें बालव्यजन (चँवर) लिये 'राज्ञी' तथा 'निष्प्रभा' खड़ी हैं।* अथवा घोड़ेपर चढ़े हुए एकमात्र सूर्यकी ही प्रतिमा बनानी चाहिये। समस्त दिक्पाल हाथोंमें वरद मुद्रा, दो-दो कमल तथा शस्त्र लिये क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें स्थित दिखाये जाने चाहिये ॥ १—३ ॥

बारह दलोंका एक कमल-चक्र बनावे। उसमें सूर्य, अर्यमा† आदि नामवाले बारह आदित्योंका क्रमशः बारह दलोंमें स्थापन करे। यह स्थापना वरुण-दिशा एवं वायव्य-कोणसे आरम्भ करके नैर्ऋत्यकोणके अन्ततकके दलोंमें होनी चाहिये। उक्त आदित्यगण चार-चार हाथवाले हों और उन हाथोंमें मुद्गर, शूल, चक्र एवं कमल धारण किये हों। अग्निकोणसे लेकर नैर्ऋत्यतक, नैर्ऋत्यसे वायव्यतक, वायव्यसे ईशानतक और वहाँसे अग्निकोणतकके दलोंमें उक्त आदित्योंकी स्थिति जाननी चाहिये ॥ ४ ॥

बारह आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं—वरुण, सूर्य, सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गभस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा मित्र और विष्णु। ये मेष आदि बारह राशियोंमें स्थित होकर जगत्‌को ताप एवं प्रकाश देते हैं। ये वरुण आदि आदित्य क्रमशः मार्गशीर्ष मास (या वृश्चिक राशि) से लेकर कार्तिक मास (या तुलाराशि-) तकके मासों (एवं राशियों) में स्थित होकर अपना कार्य सम्पन्न करते हैं। इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः काली, लाल, कुछ-कुछ लाल, पीली, पाण्डुवर्ण, श्वेत, कपिलवर्ण, पीतवर्ण, तोतेके समान हरी, धवलवर्ण, धूम्रवर्ण और नीली है। इनकी शक्तियाँ द्वादशदल कमलके केसरोंके अग्रभागमें स्थित होती हैं। उनके नाम इस प्रकार है—इडा, सुषुम्ना, विश्वार्चि, इन्दु, प्रमर्दिनी (प्रवर्द्धिनी), प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वर्नान्तस्था (घनान्तस्था) और अमृताख्या। वरुण आदिकी जो अङ्गकान्ति है, वही इन शक्तियोंकी भी है। केसरोंके अग्रभागोंमें इनकी स्थापना करे। सूर्यदेवका तेज प्रचण्ड और मुख विशाल है। उनके दो भुजाएँ हैं। वे अपने हाथोंमें कमल और खड्ग धारण करते हैं ॥ ५—१० ॥

चन्द्रमा कुण्डिका तथा जपमाला धारण करते हैं। मङ्गलके हाथोंमें शक्ति और अक्षमाला शोभित होती हैं। बुधके हाथोंमें धनुष और अक्षमाला शोभा पाते हैं। बृहस्पति कुण्डिका और अक्षमालाधारी हैं। शुक्रका भी ऐसा ही स्वरूप है। अर्थात् उनके हाथोंमें भी कुण्डिका और अक्षमाला शोभित होती हैं। शनि किङ्किणी-सूत्र धारण करते हैं। राहु अर्द्धचन्द्रधारी हैं तथा केतुके हाथोंमें खड्ग और दीपक शोभा पाते हैं। अनन्त, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्ख और कुलिक आदि सभी मुख्य नागगण सूत्रधारी होते हैं। फन ही इनके मुख हैं। ये सब-के-सब महान् प्रभापुञ्जसे उद्भासित होते हैं। इन्द्र वज्रधारी हैं। ये हाथीपर आरूढ होते हैं। अग्निका वाहन बकरा है। अग्निदेव शक्ति धारण करते हैं। यम दण्डधारी हैं और भैंसेपर आरूढ होते हैं। निर्ऋति खड्गधारी हैं और मनुष्य उनका वाहन है। वरुण मकरपर आरूढ हैं और पाश धारण करते

---

* 'राज्ञी' और 'निष्प्रभा'—ये चँवर डुलानेवाली स्त्रियोंके नाम हैं। अथवा इन नामोंद्वारा सूर्यदेवकी दोनों पत्नियोंकी ओर संकेत किया गया है। 'राज्ञी' शब्दसे उनकी रानी 'संज्ञा' गृहीत होती हैं और 'निष्प्रभा' शब्दसे 'छाया'। ये दोनों देवियाँ चँवर डुलाकर पतिकी सेवा कर रही हैं।

† सूर्य आदि द्वादश आदित्योंके नाम नीचे गिनाये गये हैं और अर्यमा आदि द्वादश आदित्योंके नाम १९ वें अध्यायके दूसरे और तीसरे श्लोकोंमें देखने चाहिये। वे नाम वैवस्वत मन्वन्तरके आदित्योंके हैं। चाक्षुष मन्वन्तरमें वे ही 'तुषित' नामसे विख्यात थे। अन्य पुराणोंमें भी आदित्योंकी नामावली तथा उनके मासक्रममें यहाँकी अपेक्षा कुछ अन्तर मिलता है। इसकी संगति कल्पभेदके अनुसार माननी चाहिये।

हैं। वायुदेव ध्वजधारी हैं और मृग उनका वाहन है। कुबेर मेषपर चढ़ते और गदा धारण करते हैं। ईशान जटाधारी हैं और वृषभ उनका वाहन है ॥ ११—१५ ॥

समस्त लोकपाल द्विभुज हैं। विश्वकर्मा अक्षसूत्र धारण करते हैं। हनुमान्‌जीके हाथमें वज्र है। उन्होंने अपने दोनों पैरोंसे एक असुरको दबा रक्खा है। किंनर-मूर्तियाँ हाथमें वीणा लिये हों और विद्याधर माला धारण किये आकाशमें स्थित दिखाये जायँ। पिशाचोंके शरीर दुर्बल-कङ्कालमात्र हों। वेतालोंके मुख विकराल हों। क्षेत्रपाल शूलधारी बनाये जायँ। प्रेतोंके पेट लंबे और शरीर कृश हों ॥ १६—१८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पालादि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन' नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

बावनवाँ अध्याय

चौसठ योगिनी आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! अब मैं चौसठ योगिनियोंका वर्णन करूँगा। इनका स्थान क्रमशः पूर्व दिशासे लेकर ईशानपर्यन्त है। इनके नाम इस प्रकार हैं— १. अक्षोभ्या, २. रूक्षकर्णी, ३. राक्षसी, ४. क्षपणा, ५. क्षमा, ६. पिङ्गाक्षी, ७. अक्षया, ८. क्षेमा, ९. इला, १०. नीलालया, ११. लोला, १२. रक्ता (या लक्ता), १३. बलाकेशी, १४. लालसा, १५. विमला, १६. दुर्गा (अथवा हुताशा), १७. विशालाक्षी, १८. ह्रींकारा (या हुंकारा), १९. वडवामुखी, २०. महाक्रूरा, २१. क्रोधना, २२. भयंकरी, २३. महानना, २४. सर्वज्ञा, २५. तरला, २६. तारा, २७. ऋग्वेदा, २८. हयानना, २९. सारा, ३०. रससंग्राही (अथवा मुसंग्राही या रुद्रसंग्राही), ३१. शबरा (या शम्बरा), ३२. तालजङ्घिका, ३३. रक्ताक्षी, ३४. सुप्रसिद्धा, ३५. विद्युज्जिह्वा, ३६. करङ्किणी, ३७. मेघनादा, ३८. प्रचण्डा, ३९. उग्रा, ४०. कालकर्णी, ४१. वरप्रदा, ४२. चण्डा (अथवा चन्द्रा), ४३. चण्डवती (या चन्द्रावली), ४४. प्रपञ्चा, ४५. प्रलयान्तिका, ४६. शिशुवक्त्रा, ४७. पिशाची, ४८. पिशितासवलोलुपा, ४९. धमनी, ५०. तपनी, ५१. रागिणी (अथवा वामनी), ५२. विकृतानना, ५३. वायुवेगा, ५४. बृहत्कुक्षि, ५५. विकृता, ५६. विश्वरूपिका, ५७. यमजिह्वा, ५८. जयन्ती, ५९. दुर्जया, ६०. जयन्तिका (अथवा यमान्तिका), ६१. बिडाली, ६२. रेवती, ६३. पूतना तथा ६४. विजयान्तिका ॥ १—८ ॥

योगिनियाँ आठ अथवा चार हाथोंसे युक्त होती हैं। इच्छानुसार शस्त्र धारण करती हैं तथा उपासकोंको सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली हैं। भैरवके बारह हाथ हैं। उनके मुखमें ऊँचे दाँत हैं तथा वे सिरपर जटा एवं चन्द्रमा धारण करते हैं। उन्होंने एक ओरके पाँच हाथोंमें क्रमशः खड्ग, अंकुश, कुठार, बाण तथा जगत्‌को अभय प्रदान करनेवाली मुद्रा धारण कर रक्खी है। उनके दूसरी ओरके पाँच हाथ धनुष, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, पाशकार्द्ध एवं वरकी मुद्रासे सुशोभित हैं। शेष दो हाथोंमें उन्होंने गजचर्म ले रक्खा है। हाथीका चमड़ा ही उनका वस्त्र है और वे सर्पमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। प्रेतपर आसन लगाये मातृकाओंके मध्यभागमें विराजमान हैं। इस रूपमें उनकी प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिये। भैरवके एक या पाँच मुख बनाने चाहिये ॥ ९—११ ॥

पूर्व दिशासे लेकर अग्निकोणतक विलोम-क्रमसे प्रत्येक दिशामें भैरवको स्थापित करके क्रमशः उनका पूजन करे। बीज-मन्त्रको आठ दीर्घ स्वरोंमेंसे एक-एकके द्वारा भेदित एवं अनुस्वारयुक्त करके उस-उस दिशाके भैरवके साथ संयुक्त करे और उन सबके अन्तमें 'नमः' पदको जोड़े। यथा— **ॐ हां भैरवाय नमः—प्राच्याम्। ॐ हीं भैरवाय नमः—ऐशान्याम्। ॐ हूं भैरवाय नमः—उदीच्याम्। ॐ हैं भैरवाय नमः—वायव्ये। ॐ हैं भैरवाय नमः—प्रतीच्याम्। ॐ हों भैरवाय नमः—नैर्ऋत्याम्। ॐ हौं भैरवाय नमः—अवाच्याम्। ॐ हः भैरवाय नमः—आग्नेय्याम्।** इस प्रकार इन मन्त्रोंद्वारा क्रमशः उन दिशाओंमें भैरवका पूजन करे। इन्हींमेंसे छः बीजमन्त्रोंद्वारा षडङ्गन्यास एवं

उन अङ्गोंका पूजन भी करना चाहिये* ॥ १२ ॥

उनका ध्यान इस प्रकार है—भैरवजी मन्दिर अथवा मण्डलके आग्नेयदल (अग्निकोणस्थ दल) में विराजमान सुवर्णमयी रसनासे युक्त, नाद, बिन्दु एवं इन्दुसे सुशोभित तथा मातृकाधिपतिके अङ्गसे प्रकाशित हैं। (ऐसे भगवान् भैरवका मैं भजन करता हूँ ।) वीरभद्र वृषभपर आरूढ हैं । वे मातृकाओंके मण्डलमें विराजमान और चार भुजाधारी हैं । गौरी दो भुजाओंसे युक्त और त्रिनेत्रधारिणी हैं । उनके एक हाथमें शूल और दूसरेमें दर्पण है । ललिता-देवी कमलपर विराजमान हैं । उनके चार भुजाएँ हैं । वे अपने हाथोंमें त्रिशूल, कमण्डलु, कुण्डी और वरदानकी मुद्रा धारण करती हैं । स्कन्दकी अनुचरी मातृकागणोंके हाथोंमें दर्पण और शलाका होनी चाहिये ॥ १३—१५ ॥

चण्डिका देवीके दस हाथ हैं । वे अपने दाहिने हाथोंमें बाण, खड्ग, शूल, चक्र और शक्ति धारण करती हैं और बायें हाथोंमें नागपाश, ढाल, अङ्कुश, कुठार तथा धनुष लिये रहती हैं । वे सिंहपर सवार हैं और उनके सामने शूलसे मारे गये महिषासुरका शव है ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चौसठ योगिनी आदिकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन' नामक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ अध्याय

लिङ्ग आदिका लक्षण

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—कमलोद्भव ! अब मैं लिङ्ग आदिका लक्षण बताता हूँ, सुनो । लंबाईके आधेमें आठसे भाग देकर आठ भागोंमेंसे तीन भागको त्याग दे और शेष पाँच भागोंमें चौकोर विष्कम्भका निर्माण कराये । फिर लंबाईके छः भाग करके उन सबको एक, दो और तीनके क्रमसे अलग-अलग रक्खे । इनमें पहला भाग ब्रह्माका, दूसरा विष्णुका और तीसरा शिवका है । उन भागोंमें यह 'वर्द्धमान' भाग कहा जाता है । चौकोर मण्डलमें कोण सूत्रके आधे मापको लेकर उसे सभी कोणोंमें चिह्नित करे । ऐसा करनेसे आठ कोणोंका 'वैष्णवभाग' सिद्ध होता है, इसमें संशय नहीं है । तदनन्तर उसे षोडश कोण और फिर बत्तीस कोणोंसे युक्त करे ॥ १ —४ ॥

* यथा—ॐ हां हृदयाय नमः । ॐ हीं शिरसे स्वाहा । ॐ हूं शिखायै वषट् । ॐ हैं कवचाय हुम् । ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ हः अस्त्राय फट् ।

१. श्रीविद्यार्णवतन्त्रके ११ वें श्वासमें लिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि इस प्रकार दी गयी है—

अपनी रुचिके अनुसार लिङ्ग कल्पित करके उसके मस्तकका विस्तार उतना ही रक्खे, जितनी पूजित लिङ्गभागकी ऊँचाई हो । जैसा कि शैवागमका वचन है—'लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो भवेत् ।' लिङ्गके मस्तकका विस्तार जितना हो, उससे तिगुने सूत्रसे वेष्टित होने योग्य लिङ्गकी स्थूलता (मोटाई) रक्खे । शिवलिङ्गकी जो स्थूलता या मोटाई है, उसके सूत्रके बराबर पीठका विस्तार रक्खे । तत्पश्चात् पूज्य लिङ्गका जो उच्च अंश है, उससे दुगुनी ऊँचाईसे युक्त वृत्ताकार या चतुरस्र पीठ बनावे । पीठके मध्यभागमें लिङ्गके स्थूलतामापसूचक नापसूत्रके द्विगुण सूत्रसे वेष्टित होने योग्य स्थूल कण्ठका निर्माण करे । कण्ठके ऊपर और नीचे समभागसे तीन या दो मेखलाओंकी रचना करे । तदनन्तर लिङ्गके मस्तकका जो विस्तार है, उसको छः भागोंमें विभक्त करे । उनमेंसे एक अंशके मानके अनुसार पीठके ऊपरी भागमें सबसे बाहरी अंशके द्वारा मेखला बनावे । उसके भीतर उसी मानके अनुसार उससे संलग्न अंशके द्वारा खात (गर्त) की रचना करे । पीठसे बाह्यभागमें लिङ्गके समान ही बड़ी अथवा पीठमानके आधे मानके बराबर बड़ी, मूलदेशमें दीर्घांश मानके समान विस्तारवाली और अग्रभागमें उसके आधे मानके तुल्य विस्तारवाली नाली बनावे । इसीको 'प्रणाल' कहते हैं । प्रणालके मध्यमें मूलसे अग्रभागपर्यन्त जलमार्ग बनावे । प्रणालका जो विस्तार है, उसके एक तिहाई विस्तारवाले खातरूप जलमार्गसे युक्त पीठ-सदृश मेखलायुक्त प्रणाल बनाना चाहिये । यह स्फटिक आदि रत्नविशेषों अथवा पाषाण आदिके द्वारा शिवलिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि है । यथा—

लिङ्गमस्तकविस्तारं पूज्यभागसमं नयेत् । . . . . लक्षणमाचरेत् ॥ १—८ ॥

तत्पश्चात् चौंसठ कोणोंसे युक्त करके वहाँ गोल रेखा बनावे। तदनन्तर श्रेष्ठ आचार्य लिङ्गके शिरोभागका कर्तन करे। इसके बाद लिङ्गके विस्तारको आठ भागोंमें विभाजित करे। फिर उनमेंसे एक भागके चौथे अंशको छोड़ देनेपर छत्राकार सिरका निर्माण होता है। जिसकी लंबाई-चौड़ाई तीन भागोंमें समान हो, वह समभागवाला लिङ्ग सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। देवपूजित लिङ्गमें लंबाईके चौथे भागसे विष्कम्भ बनता है। अब तुम सभी लिङ्गोंके लक्षण सुनो ॥ ५—८ ॥

विद्वान् पुरुष सोलह अङ्गुलवाले लिङ्गके मध्यवर्ती सूत्रको, जो ब्रह्म और रुद्रभागके निकटस्थ है, लेकर उसे छः भागोंमें विभाजित करे। वैयमन-सूत्रोंद्वारा निश्चित जो वह माप है, उसे 'अन्तर' कहते हैं। जो सबसे उत्तरवर्ती लिङ्ग है, उसे आठ जौ बड़ा बनाना चाहिये; शेष लिङ्गोंको एक-एक जौ छोटा कर देना चाहिये। उपर्युक्त लिङ्गके निचले भागको तीन हिस्सोंमें विभक्त करके ऊपरके एक भागको छोड़ दे। शेष दो भागोंको आठ हिस्सोंमें विभक्त करके ऊपरके तीन भागोंको त्याग दे। पाँचवें भागके ऊपरसे घूमती हुई एक लंबी रेखा बनावे और एक भागको छोड़ कर बीचमें उन दो रेखाओंका संगम करावे। यह लिङ्गोंका साधारण लक्षण बताया गया; अब पिण्डिकाका सर्वसाधारण लक्षण बताता हूँ, मुझसे सुनो ॥ ९—१३ ॥

ब्रह्मभागमें प्रवेश तथा लिङ्गकी ऊँचाई जानकर विद्वान् पुरुष ब्रह्मशिलाकी स्थापना करे और उस शिलाके ऊपर ही उत्तम रीतिसे कर्मका सम्पादन करे। पिण्डिकाकी ऊँचाईको जानकर उसका विभाजन करे। दो भागकी ऊँचाईको पीठ समझे। चौड़ाईमें वह लिङ्गके समान ही हो। पीठके मध्यभागमें खात (गड्ढा) करके उसे तीन भागोंमें विभाजित करे। अपने मानके आधे विभागमें 'बाहुल्य'की कल्पना करे। बाहुल्यके तृतीय भागसे मेखला बनावे और मेखलाके ही तुल्य खात (गड्ढा) तैयार करे। उसे क्रमशः निम्न (नीचे झुका हुआ) रक्खे। मेखलाके सोलहवें अंशसे खात निर्माण करे और उसीके मापके अनुसार उस पीठकी ऊँचाई, जिसे 'विकाराङ्ग' कहते हैं, करावे। प्रस्तरका एक भाग भूमिमें प्रविष्ट हो, एक भागसे पिण्डिका बने, तीन भागोंसे कण्ठका निर्माण कराया जाय और एक भागसे पट्टिका बनायी जाय ॥ १४—१९ ॥

दो भागसे ऊपरका पट्ट बने; एक भागसे शेष-पट्टिका तैयार करायी जाय। कण्ठपर्यन्त एक-एक भाग प्रविष्ट हो। तत्पश्चात् पुनः एक भागसे निर्गम (जल निकलनेका मार्ग) बनाया जाय। यह शेष पट्टिका तक रहे। प्रणाल (नाली) के तृतीय भागसे निर्गम बनना चाहिये। तृतीय भागके मूलमें अङ्गुलिके अग्रभागके बराबर विस्तृत खात बनावे, जो तृतीय भागसे आधे विस्तारका हो। वह खात उत्तरकी ओर जाय। यह पिण्डिकासहित साधारण लिङ्गका वर्णन किया गया ॥ २०—२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'लिङ्ग आदिके लक्षणका वर्णन' नामक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ अध्याय

लिङ्ग-मान एवं व्यक्ताव्यक्त लक्षण आदिका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं दूसरे प्रकारसे लिङ्ग आदिका वर्णन करता हूँ, सुनो। लवण तथा घृतसे निर्मित शिवलिङ्ग बुद्धिको बढ़ानेवाला होता है। वस्त्रमय लिङ्ग ऐश्वर्यदायक होता है। उसे तात्कालिक (केवल एक बार ही पूजाके उपयोगमें आनेवाला) लिङ्ग माना गया है। मृत्तिकासे बनाया हुआ शिवलिङ्ग दो प्रकारका होता है—पक्व तथा अपक्व। अपक्वसे पक्व श्रेष्ठ माना गया है। उसकी अपेक्षा काष्ठका बना हुआ शिवलिङ्ग अधिक पवित्र एवं पुण्यदायक है। काष्ठमय लिङ्गसे प्रस्तरका लिङ्ग श्रेष्ठ है। प्रस्तरसे मोतीका और मोतीसे सुवर्णका बना हुआ 'लौह लिङ्ग' उत्तम माना गया है। चाँदी, ताँबे, पीतल, रत्न तथा रस (पारद) का बना हुआ शिवलिङ्ग भोग-मोक्ष देनेवाला एवं श्रेष्ठ है। रस (पारद आदि) के लिङ्गको राँगा, लोहा (सुवर्ण, ताँबा) आदि तथा रत्नके भीतर आबद्ध करके स्थापित करे। सिद्ध आदिके द्वारा स्थापित स्वयम्भूलिङ्ग आदिके लिये माप आदि करना अभीष्ट नहीं है ॥ १—५ ॥

बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) के लिये भी यही बात है।

(अर्थात् उसके लिये भी 'वह इतने अङ्गुलका हो'—इस तरहका मान आदि आवश्यक नहीं है ।) वैसे शिवलिङ्गोंके लिये अपनी इच्छाके अनुसार पीठ और प्रासादका निर्माण करा लेना चाहिये । सूर्यमण्डलस्थ शिवलिङ्गको दर्पणमें प्रतिबिम्बित करके उसका पूजन करना चाहिये । वैसे तो भगवान् शंकर सर्वत्र ही पूजनीय हैं, किंतु शिवलिङ्गमें उनके अर्चनकी पूर्णता होती है । प्रस्तरका शिवलिङ्ग एक हाथसे अधिक ऊँचा होना चाहिये । काष्ठमय लिङ्गका मान भी ऐसा ही है । चल शिवलिङ्गका स्वरूप अङ्गुल-मानके अनुसार निश्चित करना चाहिये तथा स्थिर लिङ्गका द्वारमान, गर्भमान एवं हस्तमानके अनुसार । गृहमें पूजित होनेवाला चललिङ्ग एक अङ्गुलसे लेकर पंद्रह अङ्गुल तकका हो सकता है ॥ ६–८ ॥

द्वारमानसे लिङ्गके तीन भेद हैं । इनमेंसे प्रत्येकके गर्भमानके अनुसार नौ-नौ भेद होते हैं । [इस तरह कुल सत्ताईस हुए । इनके अतिरिक्त] करमानसे नौ लिङ्ग और हैं । इनकी देवालयमें पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार सबको एकमें जोड़नेसे छत्तीस लिङ्ग जानने चाहिये । ये ज्येष्ठमानके अनुसार हैं । मध्यममानसे और अधम (कनिष्ठ-) मानसे भी छत्तीस-छत्तीस शिवलिङ्ग हैं—ऐसा जानना चाहिये । इस प्रकार समस्त लिङ्गोंको एकत्र करनेसे एक सौ आठ शिवलिङ्ग हो सकते हैं । एकसे लेकर पाँच अङ्गुल तकका चलशिवलिङ्ग 'कनिष्ठ' कहलाता है, छः से लेकर दस अङ्गुल तकका चल लिङ्ग 'मध्यम' कहा गया है तथा ग्यारहसे लेकर पंद्रह अङ्गुल तकका चल शिवलिङ्ग 'ज्येष्ठ' जानने योग्य है । महामूल्यवान् रत्नोंका बना हुआ शिवलिङ्ग छः अङ्गुलका, अन्य रत्नोंसे निर्मित शिवलिङ्ग नौ अङ्गुलका, सुवर्णभारका बना हुआ बारह अङ्गुलका तथा शेष वस्तुओंसे निर्मित शिवलिङ्ग पंद्रह अङ्गुलका होना चाहिये ॥ ९–१३ ॥

लिङ्ग-शिलाके सोलह अंश करके उसके ऊपरी चार अंशोंमेंसे पार्श्ववर्ती दो भाग निकाल दे । फिर बत्तीस अंश करके उसके दोनों कोणवर्ती सोलह अंशोंको लुप्त कर दे । फिर उसमें चार अंश मिलानेसे 'कण्ठ' होता है । तात्पर्य यह कि बीस अंशका कण्ठ होता है और उभय पार्श्ववर्ती ३×४=१२ अंशोंको मिटानेसे ज्येष्ठ चल लिङ्ग बनता है । प्रासादकी ऊँचाईके मानको सोलह अंशोंमें विभक्त करके उनमेंसे चार, छः और आठ अंशोंद्वारा क्रमशः हीन, मध्यम और ज्येष्ठ द्वार निर्मित होता है । द्वारकी ऊँचाईमेंसे एक चौथाई कम कर दिया जाय तो वह लिङ्गकी ऊँचाईका मान है । लिङ्गशिलाके गर्भके आधे भागतककी ऊँचाईका शिवलिङ्ग 'अधम' (कनिष्ठ) होता है और तीन भूतांश (३×५=) पंद्रह अंशोंके बराबरकी ऊँचाईका शिवलिङ्ग 'ज्येष्ठ' कहा गया है । इन दोनोंके बीचमें बराबरकी ऊँचाईपर सात जगह सूत्रपात (सूतद्वारा रेखा) करे । इस तरह नौ सूत (सूत्रनिर्मित रेखाचिह्न) होंगे । इन नौ सूतोंमेंसे पाँच सूतोंकी ऊँचाईके मापका शिवलिङ्ग 'मध्यम' होगा । लिङ्गोंकी लंबाई (या ऊँचाई) उत्तरोत्तर दो-दो अंशके अन्तरसे होगी । इस तरह लिङ्गोंकी दीर्घता बढ़ती जायगी और नौ लिङ्ग निर्मित होंगे *॥ १४–१८ ॥

यदि हाथके मापसे नौ लिङ्ग बनाये जायँ तो पहला लिङ्ग एक हाथका होगा, फिर दूसरेके मापमें पहलेसे एक हाथ बढ़ जायगा; इस प्रकार जबतक नौ हाथकी लंबाई पूरी न हो जाय तबतक शिला या काष्ठकी मापमें एक-एक हाथ बढ़ाते रहेंगे । ऊपर जो हीन, मध्यम और उत्तम—तीन प्रकारके लिङ्ग बताये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन भेद हैं । बुद्धिमान् पुरुष एक-एक लिङ्गमें विभागपूर्वक तीन-तीन लिङ्गका निर्माण करावें । छः अङ्गुल और नौ अङ्गुलके शिवलिङ्गोंमें भी तीन-तीन लिङ्ग-निर्माण करावे । स्थिर लिङ्ग द्वारमान, गर्भमान तथा हस्तमान—इन तीन दीर्घ प्रमाणों (मापों) के अनुसार बनाना चाहिये । उक्त तीन मापोंके अनुसार ही उसकी तीन संज्ञाएँ हैं—भगेश, जलेश तथा देवेश । विष्कम्भ (विस्तार-) के अनुसार लिङ्गके चार रूप लक्षित करे । दीर्घप्रमाणके अनुसार सम्पादित होनेवाले तीन रूपोंमें निर्दिष्ट लिङ्गको शुभ आय आदिसे युक्त करके निर्मित करावे । उन त्रिविध लिङ्गोंकी लंबाई चार या आठ आठ हाथकी हो—यह अभीष्ट है । वे क्रमशः त्रितत्त्वरूप अथवा त्रिगुणरूप हैं । जो लिङ्ग जितने हाथका हो, उसका अङ्गुल बनाकर आय-संख्या (८), स्वर-संख्या (७), भूत-संख्या (५) तथा अग्नि-संख्या (३) से पृथक्-पृथक् भाग दे । जो शेष बचे उसके अनुसार शुभाशुभ फलको जाने ॥ १९–२४ ॥

* 'समराङ्गणसूत्रधार' में कहा है कि दो-दो अंशकी वृद्धि करते हुए तीन हाथकी लंबाई तक पहुँचते-पहुँचते नौ लिङ्ग निर्मित हो सकते हैं—'द्व्यंशवृद्ध्या नवैवं स्युरा हस्तत्रितयावधेः ।'

ध्वजादि आयोंमेंसे ध्वज, सिंह, हस्ती और वृषभ—ये श्रेष्ठ हैं।* अन्य चार आय अशुभ हैं। (सात संख्यासे भाग देनेपर जो शेष बचे, उसके अनुसार स्वरका निश्चय करे।) स्वरोंमें षड्ज, गान्धार तथा पञ्चम शुभदायक हैं। [पाँचसे भाग देनेपर जो शेष बचे, उसके अनुसार पृथ्वी आदि भूतोंका निश्चय करे।] भूतोंमें पृथ्वी ही शुभ है। [तीनसे भाग देनेपर जो शेष रहे, तदनुसार अग्नि जाने।] अग्नियोंमें आहवनीय अग्नि ही शुभ है। उक्त लिङ्गकी लंबाईको आधा करके उसमें आठसे भाग देनेपर यदि शेष सातसे अधिक हो तो वह लिङ्ग 'आढ्य' कहा जाता है। यदि पाँचसे अधिक शेष रहे तो वह 'अनाढ्य' है। यदि छः अंशसे अधिक शेष हो तो वह लिङ्ग 'देवेड्य' है और यदि तीन अंशसे अधिक शेष हो तो उस लिङ्गको 'अर्कतुल्य' माना जाता है। ये चारों ही प्रकारके लिङ्ग चतुष्कोण होते हैं। पाँचवाँ 'वर्धमान' संज्ञक लिङ्ग है, उसमें व्याससे नाह बढ़ा हुआ होता है। व्यासके समान नाह एवं व्याससे बढ़ा हुआ नाह—इस प्रकार इन लिङ्गोंके दो भेद हो जाते हैं। विश्वकर्म-शास्त्रके अनुसार इन सबके बहुत-से भेद बताये जायँगे। आढ्य आदि लिङ्गोंकी स्थूलता आदिके कारण तीन भेद और होते हैं। उनमें एक-एक यवकी वृद्धि करनेसे ये सब आठ प्रकारके लिङ्ग होते हैं। फिर हस्तमानसे 'जिन' संज्ञक लिङ्गके भी तीन भेद होंगे। उसको सर्वसम लिङ्गमें जोड़ लिया जायगा ॥ २५–२९ ॥

अनाढ्य, देवार्चित तथा अर्कतुल्यमें भी पाँच-पाँच भेद होनेसे ये पच्चीस होंगे। ये सब एक, जिन और भक—भेदोंसे पचहत्तर हो जायँगे। सबका आकलन करनेसे पंद्रह हजार चार सौ शिवलिङ्ग हो सकते हैं।* इसी

* 'अपराजितपृच्छा'के 'आयाधिकार' नामक नौसठवें सूत्रमें आयोंके नाम इस प्रकार दिये गये हैं—ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, गर्दभ, गज और ध्वांक्ष (काक)। इनकी स्थिति पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिण-क्रमसे है। देवालयके लिये ध्वज, सिंह, वृष और गज—ये आय श्रेष्ठ कहे गये हैं। अधमोंके लिये शेष आय सुखावह हैं। सत्ययुगमें ध्वज, त्रेतामें सिंह, द्वापरमें वृषभ और कलियुगमें गजी नामक आयका प्राधान्य है। सिंह नामक आय मुख्यतः राजाओंके लिये कल्याणकारक है; ब्राह्मणके लिये ध्वज प्रशस्त है तथा वैश्यके लिये वृष। ध्वज आयमें अर्थलाभ होता है और धूम्रमें संताप। सिंह आयमें विपुल भोग उपस्थित होते हैं। श्वान नामक आयमें कलह होता है। वृषभमें धन-धान्यकी वृद्धि होती है। गर्दभमें स्त्रियोंका चरित्र दूषित होता है। हाथी नामक आयमें सब लोग शुभ देखते हैं और काक नामक आय होनेपर निश्चय ही मृत्यु होती है। (श्लोक ९–१६)

* अग्निपुराण अध्याय ५४ के २८ वें श्लोकमें विश्वकर्माके कथनानुसार लिङ्ग-भेदोंकी परिगणना की गयी है और सब मिलाकर चौदह हजार चौदह सौ भेद कहे गये हैं। इस प्रकरणका मूल पाठ अपने शुद्धरूपमें उपलब्ध नहीं हो रहा है; अतएव यहाँ दी हुई गणना बैठ नहीं रही है। परंतु विश्वकर्माके शास्त्र 'अपराजित-पृच्छा'के अवलोकनसे इन भेदोंपर विशेष प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार समस्त लिङ्ग-भेद १४४२० होते हैं। किस प्रकार, सो बताया जाता है—प्रस्तरमय लिङ्ग कम-से-कम एक हाथका होता है, उससे कम नहीं। उसका अन्तिम आयाम नौ हाथका बताया गया है। इस प्रकार एक हाथसे लेकर नौ हाथतकके लिङ्ग बनाये जायँ तो उनकी संख्या नौ होती है। इनका प्रस्तार यों समझना चाहिये।

एक हाथसे तीन हाथतकके शिवलिङ्ग 'कनिष्ठ' कहे गये हैं। चारसे छः हाथतकके 'मध्यम' माने गये हैं और सातसे नौ तकके 'उत्तम' या 'ज्येष्ठ' कहे गये हैं। इन तीनोंके प्रमाणमें पादवृद्धि करनेसे कुल ३३ शिवलिङ्ग होते हैं। यथा—

एक हाथ[1], सवा हाथ[2], डेढ़ हाथ[3], पौने दो हाथ, दो हाथ, सवा दो हाथ, ढाई हाथ, पौने तीन हाथ, तीन हाथ, सवा तीन हाथ[10], साढ़े तीन हाथ[11], पौने चार हाथ[12], चार हाथ[13], सवा चार हाथ[14], साढ़े चार हाथ[15] पौने पाँच हाथ[16], पाँच हाथ[17], सवा पाँच हाथ[18], साढ़े पाँच हाथ[19], पौने छः हाथ[20], छः हाथ[21], सवा छः हाथ[22], साढ़े छः हाथ[23], पौने सात हाथ[24], सात हाथ[25], सवा सात हाथ[26], साढ़े सात हाथ[27], पौने आठ हाथ[28], आठ हाथ[29], सवा आठ हाथ[30], साढ़े आठ हाथ[31], पौने नौ हाथ[32], नौ हाथ[33]।

इन तैंतीसोंके नाम विश्वकर्माने क्रमशः इस प्रकार बताये हैं—१. भव, २. भवोद्भव, ३. भाव, ४. संसारभयनाशन, ५. पाशुयुक्त, ६. महातेज, ७. महादेव, ८. परात्पर, ९. ईश्वर, १०. शेखर, ११. शिव, १२. शान्त, १३. मनोह्लादक, १४. रुद्रतेज, १५. सद्यात्मक (सद्योजात), १६. वामदेव, १७. अघोर, १८. तत्पुरुष, १९. ईशान, २०. मृत्युंजय, २१. विजय, २२. किरणाक्ष, २३. अघोरास्त्र, २४. श्रीकण्ठ, २५. पुण्यवर्धन, २६. पुण्डरीक, २७. सुवक्त्र, २८. उमातेजः, २९. विश्वेश्वर, ३०. त्रिनेत्र, ३१. त्र्यम्बक, ३२. घोर, ३३. महाकाल।

[illegible] आठ अङ्गुलके विस्तारवाला लिङ्ग भी एकाङ्गुल-मान, [illegible] एवं गर्भमानके अनुसार नौ भेदोंसे युक्त है। इन सबके कोण तथा अर्द्धकोणस्थ सूत्रोंद्वारा कोणोंका छेदन (विभाजन) करे। लिङ्गके मध्यभागके विस्तारको ही प्रत्येक विभागका विस्तार मानकर, तदनुसार मध्य, ऊर्ध्व और अध—इन विभागोंकी स्थापना करे। मध्यम विभागसे ऊपरका अष्टकोण या षोडश कोणवाला विभाग शिवका अंश है। पाद या मूलभागसे जानुपर्यन्त लिङ्गका अधोभाग है, यह ब्रह्माका अंश है तथा जानुसे नाभि-पर्यन्त लिङ्गका मध्यम भाग है, जो भगवान् विष्णुका अंश है ॥ ३०–३३ ॥

मूर्धान्तभाग भूतभागेश्वरका है। व्यक्त-अव्यक्त सभी लिङ्गोंके लिये ऐसी ही बात है। जिस शिवलिङ्गमें पाँच लिङ्गकी व्यवस्था है, वहाँ शिरोभाग गोलाकार होना चाहिये—ऐसा बताया जाता है। वह गोलाई छत्राकार हो, मुर्गेके अंडेके समान हो; नवोदित चन्द्रके सदृश हो या त्रपुषके आकारकी हो। ['पुरुषाकृति'के स्थानमें 'त्रपुषाकृति' पाठ हो तो गोलाई त्रपुषके समान आकारवाली हो-ऐसा अर्थ लेना चाहिये।] इस प्रकार एक-एकके चार भेद होते हैं। कामनाओंके भेदसे इनके फलमें भी भेद होता है, यह बताऊँगा। लिङ्गके मस्तक-भागका विस्तार जितने अङ्गुलका हो, उतनी संख्यामें आठसे भाग दे। इस प्रकार मस्तकको आठ भागोंमें विभक्त करके आदिके जो चार भाग हैं, उनका विस्तार और ऊँचाईके अनुसार ग्रहण करे। एक भागको छाँट देनेसे 'पुण्डरीक' नामक लिङ्ग होता है, दो भागोंको लुप्त कर देनेसे 'विशाल' संज्ञक लिङ्ग होता है, तीन भागोंका उच्छेद कर देनेपर उसकी 'श्रीवत्स' संज्ञा होती है तथा चार भागोंके लोपसे उस लिङ्गको 'शत्रुकारक' कहा गया है। शिरोभाग सब ओरसे सम हो तो श्रेष्ठ माना गया है। देवपूज्य लिङ्गमें मस्तक-भाग कुक्कुटके अण्डकी भाँति गोल होना चाहिये ॥ ३४–३८ ॥

चतुर्भागात्मक लिङ्गमेंसे ऊपरका दो भाग मिटा देनेसे 'त्रपुष' नामक लिङ्ग होता है। यह (त्रपुष) अनाद्यसंज्ञक शिवलिङ्गका सिर माना गया है। अब अर्द्ध-चन्द्राकार सिरके विषयमें सुनो—शिवलिङ्गके प्रान्तभागमें एक अंशके चार अंश करके एक अंशको त्याग दिया जाय तो वह 'अमृताक्ष' नाम धारण करता है। दूसरे, तीसरे और चौथे अंशका लोप करनेपर क्रमशः उन शिवलिङ्गोंकी 'पूर्णेन्दु,' 'बालेन्दु' तथा 'कुमुद' संज्ञा होती है। ये क्रमशः चतुर्मुख, त्रिमुख और एकमुख होते हैं। इन तीनोंको 'मुखलिङ्ग' भी कहते हैं। अब मुखलिङ्गके विषयमें सुनो—पूजाभागकी त्रिविध कल्पना करनी चाहिये—मूर्तिपूजा, अग्निपूजा तथा पदपूजा। पूर्ववत् द्वादशांशका त्याग करके छः भागोंद्वारा छः स्थानोंकी अभिव्यक्ति करे। सिरको ऊँचा करना चाहिये तथा ललाट, नासिका, मुख, चिबुक तथा ग्रीवाभागको भी स्पष्टतया व्यक्त करे। चार भागों (या अंशों) द्वारा दोनों भुजाओं तथा नेत्रोंको प्रकट करे। प्रतिमाके प्रमाणके अनुसार मुकुलाकार हाथ बनाकर विस्तारके अष्टमांशसे चारों मुखोंका निर्माण करे। प्रत्येक मुख सब ओरसे सम होना चाहिये। यह मैंने चतुर्मुखलिङ्गके विषयमें बताया है; अब त्रिमुखलिङ्गके विषयमें बताया जाता है, सुनो—॥ ३९–४४ ॥

त्रिमुखलिङ्गमें चतुर्मुखकी अपेक्षा कान और पैर अधिक रहेंगे। ललाट आदि अङ्गोंका पूर्ववत् ही निर्देश करे। चार अंशोंसे दो भुजाओंका निर्माण करे, जिनका पिछला भाग सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हो। विस्तारके अष्टमांशसे तीनों मुखोंका विनिर्गम (प्राकट्य) हो। [अब एकमुखलिङ्गके विषयमें सुनो—] एकमुख पूर्व दिशामें बनाना चाहिये; उसके नेत्रोंमें सौम्यभाव रहे। (उग्रता न हो।) उसके ललाट, नासिका, मुख और ग्रीवामें विवर्तन (विशेष उभाड़) हो। बाहु-विस्तारके पञ्चमांशसे पूर्वोक्त अङ्गोंका निर्माण होना चाहिये। एकमुखलिङ्गको बाहुरहित बनाना

पूर्वोक्त क्रमसे पादार्धवृद्धि करनेपर ६५ तक संख्या पहुँचेगी।
,, ,, दो अङ्गुल वृद्धि करनेपर ९७ ,, ,, ,,
,, ,, एक अङ्गुल वृद्धि ,, ,, १९३ ,, ,, ,,
,, ,, अर्द्धाङ्गुल वृद्धि ,, ,, ३८५ ,, ,, ,,
,, ,, अङ्गुलका चतुर्थांश बढ़ानेपर ७६९ ,, ,, ,,
,, ,, एक-एक मूँगकेमानकी वृद्धि करनेपर १४४२ ,, ,,
,, ,, मुद्ग-प्रमाण लिङ्गोंमें प्रत्येकके दस भेद करनेपर १४४२० ,,

भगवान्—वराहावतार [अग्निपुराण, अ० ४

भगवान्—नृसिंहावतार [अग्निपुराण, अ० ४

चाहिये। एकमुखलिङ्गमें विस्तारके छठे अंशसे मुखका निर्गमन हितकर कहा गया है। मुखयुक्त जितने भी लिङ्ग हैं, उन सबका शिरोभाग त्रपुषाकार या कुक्कुटाण्डके समान गोलाकार होना चाहिये ॥ ४५-४८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'लिङ्गमान एवं व्यक्ताव्यक्त लक्षण आदिका वर्णन' नामक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पचपनवाँ अध्याय

पिण्डिकाका लक्षण

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं प्रतिमाओंकी पिण्डिकाका लक्षण बता रहा हूँ। पिण्डिका लंबाईमें तो प्रतिमाके बराबर होनी चाहिये और चौड़ाईमें उससे आधी। उसकी ऊँचाई भी प्रतिमाकी लंबाईसे आधी हो और उस अर्द्धभागके बराबर ही वह सुविस्तृत हो। अथवा उसका विस्तार लंबाईके तृतीयांशके तुल्य हो। उसके एक तिहाई भागको लेकर मेखला बनाये। पानी बहनेके लिये जो खात या गर्त हो, उसका माप भी मेखलाके ही तुल्य रहे। वह खात उत्तर दिशाकी ओर कुछ नीचा होना चाहिये। पिण्डिकाके विस्तारके एक चौथाई भागमें जलके निकलनेका मार्ग (प्रणाल) बनाना चाहिये। मूल भागमें उसका विस्तार मूलके ही बराबर हो, परंतु आगे जाकर वह आधा हो जाय। पिण्डिकाके विस्तारके एक तिहाई भागके अथवा पिण्डिकाके आधे भागके बराबर वह जलमार्ग हो। उसकी लंबाई प्रतिमाकी लंबाईके तुल्य ही बतायी गयी है। अथवा प्रतिमा ही उसकी लंबाईके तुल्य हो। इस बातको अच्छी तरह समझकर उसका सूत्रपात करे ॥ १-५ ॥

प्रतिमाकी ऊँचाई पूर्ववत् सोलह भागकी संख्याके अनुसार करे। छः और दो अर्थात् आठ भागोंको नीचेके आधे अङ्गमें गतार्थ करे। इससे ऊपरके तीन भागको लेकर कण्ठका निर्माण करे। शेष भागोंको एक-एक करके प्रतिष्ठा, निर्गम तथा पट्टिका आदिमें विभाजित करे। यह सामान्य प्रतिमाओंमें पिण्डिकाका लक्षण बताया गया है। प्रासादके द्वारके दैर्घ्य-विस्तारके अनुसार प्रतिमा-गृहका भी द्वार कहा गया है। प्रतिमाओंमें हाथी और व्याल (सर्प या व्याघ्र आदि) की मूर्तियोंसे युक्त तत्तत्-देवताविषयक शोभाकी रचना करे ॥ ६-८ ॥

श्रीहरिकी पिण्डिका भी सदा यथोचित शोभासे सम्पन्न बनायी जानी चाहिये। सभी देवताओंकी प्रतिमाओंके लिये वही मान बताया जाता है, जो विष्णु-प्रतिमाके लिये कहा गया है तथा सम्पूर्ण देवियोंके लिये भी वही मान बताया जाता है, जो लक्ष्मीजीकी प्रतिमाके लिये कहा गया है ॥ ९-१० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पिण्डिकाके लक्षणका वर्णन' नामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ अध्याय

प्रतिष्ठाके अङ्गभूत मण्डपनिर्माण, तोरण-स्तम्भ, कलश एवं ध्वजके स्थापन तथा दस दिक्पाल-यागका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! मैं प्रतिष्ठाके पाँच अङ्गोंका वर्णन करूँगा। प्रतिमा पुरुषका प्रतीक है तो पिण्डिका प्रकृतिका। अथवा प्रतिमा नारायणका स्वरूप है तो पिण्डिका लक्ष्मीका। उन दोनोंके योगको 'प्रतिष्ठा' कहते हैं। इसलिये इच्छानुरूप फल चाहनेवाले मनुष्योंद्वारा इष्ट-देवताकी प्रतिष्ठा (स्थापना) की जाती है। आचार्यको चाहिये कि वह मन्दिरके सामने गर्भसूत्रको निकालकर आठ, सोलह अथवा बीस हाथका मण्डप तैयार करे। इनमें आठ हाथका मण्डप 'निम्न', सोलह हाथका 'मध्यम' और बीस हाथका 'उत्तम' माना गया है। मण्डपमें देवताके स्नानके लिये, कलश-स्थापनके लिये तथा याग सम्बन्धी द्रव्योंको रखनेके लिये आधा स्थान सुरक्षित कर ले। फिर मण्डपके

आधे या तिहाई भागमें सुन्दर वेदी बनावे। उसे बड़े-बड़े कलशों, छोटे-छोटे घड़ों और चँदोवे आदिसे विभूषित करे। पञ्चगव्यसे मण्डपके भीतरके स्थानोंका प्रोक्षण करके वहाँ सब सामग्री रक्खे। तत्पश्चात् गुरु वस्त्र एवं माला आदिसे अलंकृत हो, भगवान् विष्णुका ध्यान करके उनका पूजन करे ॥ १—५ ॥

अँगूठी आदि भूषणों तथा प्रार्थना आदिसे मूर्तिपालक विद्वानोंका सत्कार करके कुण्ड-कुण्डपर उन्हें बिठावे। वे वेदोंके पारंगत हों। चौकोर, अर्धचन्द्र, गोलाकार अथवा कमल-सदृश आकारवाले कुण्डोंपर उन विद्वानोंको विराजमान करना चाहिये। पूर्व आदि दिशाओंमे तोरण (द्वार) के लिये पीपल, गूलर, वट और प्लक्षके वृक्षके काष्ठका उपयोग करना चाहिये। पूर्व दिशाका द्वार 'सुशोभन' नामसे प्रसिद्ध है। दक्षिण दिशाका द्वार 'सुभद्र' कहा गया है, पश्चिमका द्वार 'सुकर्मा' और उत्तरका 'सुहोत्र' नामसे प्रसिद्ध है। ये सभी तोरण-स्तम्भ पाँच हाथ ऊँचे होने चाहिये। इनकी स्थापना करके 'स्योना पृथिवि नो—'[1] (शु० यजु० ३६। १३) इस मन्त्रसे पूजन करे। तोरण-स्तम्भके मूलभागमें मङ्गल अङ्कुर (आम्र-पल्लव, यवाङ्कुर आदि)से युक्त कलश स्थापित करे ॥ ६—९ ॥

तोरणस्तम्भके ऊपरी भागमें सुदर्शनचक्रकी स्थापना करे। इसके अतिरिक्त विद्वान् पुरुषोंको वहाँ पाँच हाथका ध्वज स्थापित करना चाहिये। उस ध्वजकी चौड़ाई सोलह अङ्गुलकी हो। सुरश्रेष्ठ ! उस ध्वजका दण्ड सात हाथ ऊँचा होना चाहिये। अरुणवर्ण, अग्निवर्ण (धूम्रवर्ण), कृष्ण, शुक्ल, पीत, रक्त तथा श्वेत—ये वर्ण क्रमशः पूर्वादि दिशाओंके ध्वजमें होने चाहिये। कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित—ये क्रमशः पूर्व आदि ध्वजोंके पूजनीय देवता हैं। इनमें करोड़ों दिव्य गुण विद्यमान हैं। कलश ऐसे पके हुए हों कि सुपक्व बिम्बफलके समान लाल दिखायी देते हों। वे एक-एक आढक जलसे पूर्णतः भरे हों। उनकी संख्या एक सौ अट्ठाईस हो। उनकी स्थापना ऐसे समय करनी चाहिये, जब कि 'कालदण्ड' नामक योग न हो। उन सभी कलशोंमें सुवर्ण डाला गया हो। उनके कण्ठभागमें वस्त्र लपेटे गये हों। वे जलपूर्ण कलश तोरणसे बाहर स्थापित किये जायँ ॥ १०—१५ ॥

वेदीके पूर्व आदि दिशाओं तथा कोणोंमें भी कलश स्थापित करने चाहिये। पहले पूर्वादि चारों दिशाओंमें चार कलश स्थापित करे। उस समय 'आजिघ्र कलशं'[2] आदि मन्त्रका पाठ करना चाहिये। उन कलशोंमें पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे इन्द्र आदि दिक्पालोंका आवाहनपूर्वक पूजन करे। इन्द्रका आवाहन करते समय इस प्रकार कहे—'ऐरावत हाथीपर बैठे और हाथमें वज्र धारण किये देवराज इन्द्र ! यहाँ आइये और अन्य देवताओंके साथ मेरे पूर्व द्वारकी रक्षा कीजिये। देवताओंसहित आपको नमस्कार है।' इस तरह आवाहन करके विद्वान् पुरुष 'त्रातारमिन्द्रम्'[3]—इत्यादि मन्त्रसे उनकी अर्चना एवं आराधना करे ॥ १६—१८ ॥

इसके बाद निम्नाङ्कितरूपसे अग्निदेवका आवाहन करे—'बकरेपर आरूढ शक्तिधारी एवं बलशाली अग्निदेव ! आइये और देवताओंके साथ अग्निकोणकी रक्षा कीजिये। यह पूजा ग्रहण कीजिये। आपको नमस्कार है।' तदनन्तर 'अग्निर्मूर्द्धा'[4] इत्यादिसे अथवा 'अग्नये नमः।'—इस मन्त्रसे अग्निकी पूजा करे। यमराजका आवाहन—'महिषपर आरूढ, दण्डधारी, महाबली सूर्यपुत्र यम ! आप यहाँ पधारिये और दक्षिण द्वारकी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके 'वैवस्वतं सङ्गमनम्०' इत्यादि मन्त्रसे यमराजकी पूजा करे। निर्ऋतिका आवाहन—'बल और वाहनसे सम्पन्न खड्गधारी निर्ऋति ! आइये। आपके लिये यह अर्घ्य है, यह पाद्य है। आप नैर्ऋत्य दिशाकी रक्षा कीजिये।' इस तरह आवाहन करके 'एष ते निर्ऋते'[5] इत्यादिसे मनुष्य अर्घ्य आदि उपचारोंद्वारा निर्ऋतिकी पूजा करे ॥ १९—२२½ ॥

---

१. पूरा मन्त्र इस प्रकार है—ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ (शु० यजु० ३६। १३)

२—आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥ (यजु० ८। ४२)

३—त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ (यजु० २०। ५०)

४. अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ (यजु० ३। १२)

५. एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहा। (यजु० ९। ३५)

वरुणका आवाहन—'मकरपर आरूढ पाशधारी महाबली वरुणदेव ! आइये और पश्चिम द्वारकी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके, 'उरुꣳ हि राजा वरुणः०'[6] इत्यादि मन्त्रोंद्वारा आचार्य वरुण-देवताका अर्घ्य आदिसे पूजन करे। वायुदेवताका आवाहन—'अपने वाहनपर आरूढ ध्वजधारी महाबली वायुदेव ! आइये और देवताओं तथा मरुद्गणोंके साथ वायव्यकोणकी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।' 'वात आवातु०'[7] इत्यादि वैदिक मन्त्रसे अथवा 'ॐ नमो वायवे०।' इस मन्त्रसे वायुकी पूजा करे॥ २३—२५½॥

सोमका आवाहन—'बल और वाहनसे सम्पन्न गदाधारी सोम ! आप यहाँ पधारिये और उत्तर द्वारकी रक्षा कीजिये। कुबेरसहित आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके, 'सोमꣳ राजानं'[8] इत्यादिसे अथवा 'सोमाय नमः।' इस मन्त्रसे सोमकी पूजा करे। ईशानका आवाहन—'वृषभपर आरूढ महाबलशाली शूलधारी ईशान ! पधारिये और यज्ञ-मण्डपकी ईशान-दिशाका संरक्षण कीजिये। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके 'ईशानमस्य०' इत्यादिसे अथवा 'ईशानाय नमः।' इस मन्त्रसे ईशानदेवताका पूजन करे। ब्रह्माका आवाहन—'हाथके अग्रभागमें स्रुक् और स्रुवा लेकर हंसपर आरूढ हुए अजन्मा ब्रह्माजी ! आइये और लोकसहित यज्ञमण्डपकी ऊर्ध्व-दिशाकी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके 'हिरण्य-गर्भः०'[9] इत्यादिसे अथवा 'नमस्ते ब्रह्मणे' इस मन्त्रसे ब्रह्माजीकी पूजा करे॥ २६—३०॥

अनन्तका आवाहन—'कच्छपकी पीठपर विराजमान, नागगणोंके अधिपति, चक्रधारी अनन्त ! आइये और नीचेकी दिशाकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। अनन्तेश्वर ! आपको नमस्कार है।' इस प्रकार आवाहन करके 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यो'[10] इत्यादिसे अथवा 'अनन्ताय नमः।' इस मन्त्रसे भगवान् अनन्तकी पूजा करे॥ ३१-३२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दस दिक्पालोंके पूजनका वर्णन' नामक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

कलशाधिवासकी विधिका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! प्रतिष्ठाके लिये अथवा देवपूजनके लिये जिस भूमिको ग्रहण करे, वहाँ नारसिंह-मन्त्रका पाठ करते हुए राक्षसोंका अपसारण करनेवाले अक्षत और सरसों छींटे तथा पञ्चगव्यसे उस भूमिका प्रोक्षण करे। रत्नयुक्त कलशपर अङ्ग देवताओंसहित श्रीहरिका पूजन करके, वहाँ अस्त्र-मन्त्रसे एक सौ आठ करकों (कमण्डलुओं) का पूजन करे। अविच्छिन्न धारासे वेदीका सेचन करके वहाँ व्रीहि (धान, जौ आदि) को संस्कारपूर्वक बिखेरे तथा कलशको प्रदक्षिणाक्रमसे घुमाकर उस बिखेरे हुए अन्नके ऊपर स्थापित करे। वस्त्रवेष्टित कलशपर पुनः भगवान् विष्णु और लक्ष्मीकी पूजा करे। तत्पश्चात् 'योगेयोगे'* इत्यादि मन्त्रसे मण्डलमें शय्या स्थापित करे। स्नान-मण्डपमें कुशके ऊपर शय्या और शय्याके ऊपर तूलिका (रूईभरा गद्दा) बिछाकर, दिशाओं

६. उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ। अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्।
(ऋ० मं० १ सू० २४। ८)

७. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे। प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ (ऋ० मं० १० सू० १८६। १)

८. सोमꣳ राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे। आदित्यान् विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्। (ऋ० मं० १० सू० १४१। ३ तथा यजु० ९। २६)

९. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजु० १३। ४)

१०. नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥ (यजु० १३। ६)

* योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये॥ (यजु० ११। १४)

और विदिशाओंमें विद्याधिपतियों (भगवान् विष्णुके ही विभिन्न विग्रहों) का पूजन करे। पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम और वामनका तथा अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ एवं दामोदरका पूजन करे। दामोदरका पूजन ईशानकोणमें होना चाहिये ॥ १–६ ॥

इस तरह पूजन करनेके पश्चात् स्नानमण्डपके भीतर ईशानकोणमें स्थित तथा वेदीसे विभूषित चार कलशोंमें स्नानोपयोगी सब द्रव्योंको लाकर डाले। उन कलशोंको चारों दिशाओंमें विराजमान कर दे। भगवान्‌के अभिषेकके लिये संचित किये गये वे कलश बड़े आदरके साथ रखने योग्य हैं। पूर्व दिशाके कलशमें बड़, गूलर, पीपल, चम्पा, अशोक, श्रीद्रुम (विल्व), पलाश, अर्जुन, पाकड़, कदम्ब, मौलसिरी और आमके पल्लवोंको लाकर डाले। दक्षिणके कलशमें कमल, रोचना, दूर्वा, कुशकी मुट्ठी, जातीपुष्प, कुन्द, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, सरसों, तगर और अक्षत डाले। पश्चिमके कलशमें सोना, चाँदी, समुद्रगामिनी नदीके दोनों तटोंकी मिट्टी, विशेषतः गङ्गाकी मृत्तिका, गोबर, जौ, अगहनी धानका चावल और तिल छोड़े ॥ ७–१२½ ॥

उत्तरके कलशमें विष्णुपर्णी (भुईं आँवला), शालपर्णी (सरिवन), भृङ्गराज (भँगरैया), शतावरी, सहदेवी (सहदेइया), बच, सिंही (कटेरी या अड़ूसा), बला (खरेटी), व्याघ्री (कटेहरी) और लक्ष्मणा—इन ओषधियोंको छोड़े। ईशानकोणवर्ती अन्य कलशमें माङ्गलिक वस्तुएँ छोड़े। अग्निकोणस्थ दूसरे कलशमें बाँबी आदि सात स्थानोंकी मिट्टी छोड़े। नैर्ऋत्यकोणवर्ती अन्य कलशमें गङ्गाजीकी बालू और जल डाले तथा वायव्यकोणवर्ती अन्य कलशमें सूकर, वृषभ और गजराजके दाँत एवं सींगोंद्वारा कोड़ी हुई मिट्टी, कमलकी जड़के पासकी मिट्टी तथा इतर कलशमें कुशके मूल भागकी मृत्तिका डाले। इसी तरह किसी कलशमें तीर्थ और पर्वतोंकी मृत्तिकाओंसे युक्त जल डाले, किसीमें नागकेसरके फूल और केसर छोड़े, किसी कलशमें चन्दन, अगुरु और कपूरसे पूरित जल भरे और उसमें वैदूर्य, विद्रुम, मुक्ता, स्फटिक तथा वज्र (हीरा)—ये पाँच रत्न डाले ॥ १३–१८ ॥

इन सबको एक कलशमें डालकर उसीके ऊपर इष्टदेवताकी स्थापना करे। अन्य कलशमें नदी, नद और तालाबोंके जलसे युक्त जल छोड़े। इक्यासी पदवाले वास्तु-मण्डलमें अन्यान्य कलशोंकी स्थापना करे। वे कलश गन्धोदक आदिसे पूर्ण हों। उन सबको श्रीसूक्तसे अभिमन्त्रित करे। जौ, सरसों, गन्ध, कुशाग्र, अक्षत, तिल, फल और पुष्प—इन सबको अर्घ्यके लिये पात्रविशेषमें संचित करके पूर्व दिशाकी ओर रख दे। कमल, श्यामलता, दूर्वादल, विष्णुक्रान्ता और कुश—इन सबको पाद्य-निवेदनके लिये दक्षिण भागमें स्थापित करे। मधुपर्क पश्चिम दिशामें रक्खे। कङ्कोल, लवङ्ग और सुन्दर जायफल—इन सबको आचमनके उपयोगके लिये उत्तर दिशामें रक्खे। अग्निकोणमें दूर्वा और अक्षतसे युक्त एक पात्र नीराजना (आरती उतारने)के लिये रक्खे। वायव्यकोणमें उद्वर्तनपात्र तथा ईशानकोणमें गन्ध-पिष्टसे युक्त पात्र रक्खे। कलशमें सुरमांसी (जटामांसी), आँवला, सहदेइया तथा हल्दी आदि छोड़े। नीराजनाके लिये अड़सठ दीपोंकी स्थापना करे। शङ्ख तथा धातुनिर्मित चक्र, श्रीवत्स, वज्र एवं कमलपुष्प आदि रंग-विरंग पुष्प सुवर्ण आदिके पात्रमें सज्जित करके रक्खे ॥ १९–२६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कलशाधिवासकी विधिका वर्णन' नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवद्विग्रहको स्नान और शयन करानेकी विधि

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! आचार्य ईशानकोणमें एक होमकुण्ड तैयार करे और उसमें वैष्णव-अग्निकी स्थापना करे। तदनन्तर गायत्री-मन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ देकर सम्पात-विधिसे कलशोंका प्रोक्षण करे। तदनन्तर मूर्तिपालक विद्वानों तथा शिल्पियोंसहित यजमान बाजे-गाजेके साथ कारुशाला (कारीगरकी कर्म-शाला) में जाय। वहाँ प्रतिमावर्ती इष्टदेवताके दाहिने हाथमें कौतुक-सूत्र (कङ्कण आदि) बाँधे। उसे बाँधते समय **'विष्णवे शिपिविष्टाय नमः।'**—इस मन्त्रका पाठ करे। उस समय आचार्यके हाथमें भी ऊनी सूत, सरसों और

रेशमी वस्त्रसे कौतुक बाँध देना चाहिये। मण्डलमें सवस्त्र प्रतिमाकी स्थापना और पूजा करके उसकी स्तुति करते हुए कहे—'विश्वकर्माकी बनायी हुई देवेश्वरि प्रतिमे! तुम्हें नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्को प्रभावित करनेवाली जगदम्ब! तुम्हें मेरा बारंबार प्रणाम है। ईश्वरि! मैं तुममें निरामय नारायणदेवका पूजन करता हूँ। तुम शिल्प-सम्बन्धी दोषोंसे रहित हो; अतः मेरे लिये सदा समृद्धिशालिनी बनी रहो'॥ १–५½ ॥

इस तरह प्रार्थना करके प्रतिमाको स्नान-मण्डपमें ले जाय। शिल्पीको यथेष्ट द्रव्य देकर संतुष्ट करे। गुरुको गोदान दे। 'चित्रं देवाना०'[1] इत्यादि मन्त्रसे प्रतिमाका नेत्रोन्मीलन करे। 'अग्निर्ज्योतिः०'[2] इत्यादि मन्त्रसे दृष्टि-संचार करे। फिर भद्रपीठपर प्रतिमाको स्थापित करे। तत्पश्चात् आचार्य श्वेत पुष्प, घी, सरसों, दूर्वादल तथा कुशाग्र इष्टदेवके सिरपर चढ़ावे॥ ६–८ ॥

इसके बाद 'मधु वाता०'[3] इत्यादि मन्त्रसे गुरु प्रतिमाके नेत्रोंमें अञ्जन करे। उस समय 'हिरण्यगर्भः'[4] इत्यादि तथा 'इमं मे वरुण' (यजु० २१।१) इत्यादि मन्त्रोंका कीर्तन करे। तत्पश्चात् पुनः 'घृतवती'[5] ऋचाका पाठ करते हुए घृतका अभ्यङ्ग लगावे। इसके बाद मसूरके बेसनसे उबटनका काम लेकर 'अतो[6] देवाः०' इत्यादि मन्त्रका कीर्तन करे। फिर 'सप्त[7] ते अग्ने०' इत्यादि मन्त्र बोलकर गुरु गर्म जलसे प्रतिमाका प्रक्षालन करे। तदनन्तर 'द्रुपदादिव०'[8] इत्यादि मन्त्रसे अनुलेपन और 'आपो[9] हि ष्ठा०' इत्यादिसे अभिषेक करे। अभिषेकके पश्चात् नदी एवं तीर्थके जलसे स्नान कराकर 'पावमानी' ऋचा (शु० यजु० १९–४३)का पाठ करते हुए, रत्न-स्पर्शसे युक्त जलद्वारा स्नान करावे। 'समुद्रं[10] गच्छ स्वाहा०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर तीर्थकी मृत्तिका और कलशके जलसे स्नान करावे। 'शं नो[11] देवीः०' इत्यादि तथा गायत्री-मन्त्रसे गरम जलके द्वारा इष्टदेवकी प्रतिमाको नहलावे॥ ९–१३ ॥

'हिरण्यगर्भः०' इत्यादि मन्त्रसे पाँच प्रकारकी मृत्तिकाओं-द्वारा परमेश्वरको स्नान करावे। इसके बाद 'इमं मे गङ्गे यमुने०' इत्यादि मन्त्रसे वालुकामिश्रित जलके द्वारा तथा [12]'तद् विष्णोः०' इत्यादि मन्त्रसे बाँबीकी मिट्टी मिले हुए जलसे पूर्ण घटके द्वारा भगवान्को स्नान करावे। 'या[13] ओषधीः०'

---

१. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष२ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ (यजु० ७। ४२ तथा १३। ४६)

२. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ (यजु० ३। ९)

३. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव२रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँऽअस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ (यजु० १३। २७, २८, २९)

४. (यजु० १३। ४) यह मन्त्र अध्याय ५६ की टिप्पणीमें दिया जा चुका है।

५. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा। द्यावा पृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा॥ (यजु० ३४। ४५)

६. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभिः॥ (ऋ० म० १, सू० २२। १६)

७. सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा-पृणस्वा घृतेन स्वाहा। (यजु० १७। ७९)

८. द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥ (यजु० २०। २०)

९. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ (यजु० ११। ५०, ५१, ५२)

१०. समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देव२ सवितारं गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दा२सि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा। मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा॥ (यजु० ६। २१)

११. शं नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये शं योरभि स्रवन्तु नः। (अथर्ववेद १। ६। १)

१२. तद् विष्णोः परमं पद२ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ (यजु० ६। ५)

१३. या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनैनु बभ्रूणामह२ शतं धामानि सप्त च॥ (यजु० १२। ७५)

इत्यादि मन्त्रसे ओषधिमिश्रित जलके द्वारा, 'यशा यशा०'[14] इत्यादि मन्त्रसे आँवले आदि कसैले पदार्थोंसे मिश्रित जलके द्वारा, 'पयः पृथिव्यां०'[15] इत्यादि मन्त्रसे पञ्चगव्योंद्वारा तथा 'याः फलिनीः०'[16] इत्यादि मन्त्रसे फलमिश्रित जलके द्वारा भगवान्‌को नहलावे । 'विश्वतश्चक्षुः०'[17] इत्यादि मन्त्रसे उत्तरवर्ती कलशद्वारा, 'सोमं[18] राजानं०' इस मन्त्रसे पूर्ववर्ती कलशद्वारा, 'विष्णो रराटमसि०'[19] इत्यादि मन्त्रसे दक्षिणवर्ती कलशद्वारा तथा 'हꣳसः शुचिषद्०'[20] इत्यादि मन्त्रसे पश्चिमवर्ती कलशद्वारा भगवान्‌को उद्वर्तन-स्नान करावे ॥ १४—१७ ॥

'मूर्द्धानं[21] दिवो०' इत्यादि मन्त्रसे आँवले मिले हुए जलके द्वारा, 'मा नस्तोके०'[22] इत्यादि मन्त्रसे जटामांसीमिश्रित जलके द्वारा, 'गन्धद्वारां०'[23] इत्यादि मन्त्रसे गन्धमिश्रित जलके द्वारा तथा 'इदमापः०'[24] इत्यादि मन्त्रसे इक्यासी पदोंवाले वास्तुमण्डलमें रक्खे गये कलशोंद्वारा भगवान्‌को नहलावे । इस प्रकार स्नानके पश्चात् भगवान्‌को सम्बोधित करके कहे—'भगवन् ! समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले सर्वव्यापी वासुदेव ! आइये, आइये, इस यज्ञभागको ग्रहण कीजिये । आपको नमस्कार है ।' इस प्रकार देवेश्वरका आवाहन करके उनके हाथमें बँधा हुआ मङ्गलसूत्र खोल दे । उसे खोलते समय 'मुञ्चामि[25] त्वा०' इस मन्त्रका पाठ करे । इसी मन्त्रसे आचार्यका भी कौतुकसूत्र खोल दे । तदनन्तर 'हिरण्मयेन०'[26] इत्यादि मन्त्रसे पाद्य और 'अतो देवाः०' (ऋक्० १।२२।१६) इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्य दे । फिर 'मधु वाताः०' इत्यादि मन्त्रसे मधुपर्क देकर 'मयि गृह्णामि०'[27] इत्यादि मन्त्रसे आचमन करावे । तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष 'अक्षन्नमीमदन्त०'[28] इत्यादि मन्त्र पढ़कर भगवान्‌के श्रीअङ्गोंपर दूर्वा एवं अक्षत बिखेरे ॥ १८—२२ ॥

'काण्डात्०'[29] इत्यादि मन्त्रसे निर्मञ्छन करे । 'गन्धवती०'[30] इत्यादिसे गन्ध अर्पित करे । 'उन्नयामि०' इस मन्त्रसे पूल-

---

१४. यशा यशा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे । प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ॥ (यजु० २७ । ४२)

१५. पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ (यजु० १८ । ३६)

१६. याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ (यजु० १२ । ८९)

१७. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ (यजु० १७ । १९)

१८. सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा ॥ (यजु० ९ । २६)

१९. विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ (यजु० ५ । २१)

२०. हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ (यजु० १० । २४)

२१. मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ (यजु० ७ । २४)

२२. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ (यजु० १६ । १६)

२३. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ (श्रीसूक्त)

२४. इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥ (यजु० ६ । १७)

२५. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् । ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ (ऋ० मं० १०, सू० १६१ । १)

२६. हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । (यजु० ४० । १७)

२७. मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निꣳ रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय । मामु देवताः सचन्ताम् ॥ (यजु० १३ । १)

२८. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ (यजु० ३ । ५१)

२९. काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ (यजु० १३ । २०)

३०. 'गन्धद्वारां' इत्यादि मन्त्र ही यहाँ गन्धवती नामसे गृहीत होते हैं ।

माल्य और 'इदं विष्णुः०'[31] इत्यादि मन्त्रसे पवित्रक अर्पित करे। 'बृहस्पते०'[32] इत्यादि मन्त्रसे एक जोड़ा वस्त्र चढ़ावे। 'वेदाहमेतम्०'[33] इत्यादिसे उत्तरीय अर्पित करे। 'महाव्रतेन०' इस मन्त्रसे फूल और औषध—इन सबको चढ़ावे। तदनन्तर 'धूरसि०'[34] इस मन्त्रसे धूप दे। 'विभ्राट्'[35] सूक्तसे अञ्जन अर्पित करे। 'युञ्जन्ति०'[36] इत्यादि मन्त्रसे तिलक लगावे तथा 'दीर्घायुत्वाय०' (अथर्व० २।४।१) इस मन्त्रसे फूलमाला चढ़ावे। 'इन्द्र क्षत्रमभि०' (अथर्व० ७।४।२) इत्यादि मन्त्रसे छत्र, 'विराट्'[37] मन्त्रसे दर्पण, 'विकर्ण' मन्त्रसे चँवर तथा 'रथन्तर' साम-मन्त्रसे आभूषण निवेदित करे ॥ २३—२६ ॥

वायुदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा व्यजन, 'मुञ्चामि त्वा' (ऋक्० १०।१६१।१) इस मन्त्रसे फूल तथा वेदादि (प्रणव)-युक्त पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिकी स्तुति करे। ये सारी वस्तुएँ पिण्डिका आदिपर तथा शिव आदि देवताओंपर इसी प्रकार चढ़ावे। भगवान्‌को उठाते समय 'सौपर्ण' सूक्तका पाठ करे। 'प्रभो! उठिये' ऐसा कहकर भगवान्‌को उठावे और मण्डपमें शय्यापर ले जाय। उस समय 'शाकुन' सूक्तका पाठ करे। ब्रह्मरथ एवं पालकी आदिके द्वारा भगवान्‌को शय्यापर ले जाना चाहिये। 'अतो देवाः' (ऋक्० १।२२।१६) इस सूक्तसे तथा 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च' (यजु० ३१।२२) से प्रतिमा एवं पिण्डिकाको शय्यापर पधरावे। तदनन्तर भगवान् विष्णुके लिये निष्कलीकरणकी क्रिया सम्पादित करे ॥ २७—३० ॥

सिंह, वृषभ, हाथी, व्यजन, कलश, वैजयन्ती (पताका), भेरी तथा दीपक—ये आठ मङ्गलसूचक वस्तुएँ हैं। इन सब वस्तुओंको अश्वसूक्तका पाठ करते हुए भगवान्‌को दिखावे। 'त्रिपात्'[38] इत्यादि मन्त्रसे भगवान्‌के चरण-प्रान्तमें उख्वा (पात्रविशेष), उसका ढक्कन, अम्बिका (कड़ाही), दर्विका (करछुल), पात्र, ओखली, मूसल, सिल, झाड़ू, भोजन-पात्र तथा घरके अन्य सामान रक्खे। उनके सिरकी ओर वस्त्र और रत्नसे युक्त एक कलश स्थापित करे, जो खाँड और खाद्य-पदार्थसे भरा हुआ हो। उस घटकी 'निद्रा' संज्ञा होती है। इस प्रकार भगवान्‌के शयनकी विधि बतायी गयी है ॥ ३१—३४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'स्नपनकी विधि आदिका वर्णन' नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ अध्याय

अधिवास-विधिका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! श्रीहरिका सांनिध्यकरण 'अधिवासन' कहलाता है। साधक यह चिन्तन करे कि 'मैं अथवा मेरा आत्मा सर्वज्ञ सर्वव्यापी पुरुषोत्तमरूप है।' इस प्रकार भावना करके आत्माकी 'ॐ' इस नामके द्वारा प्रतिपादित होनेवाले परमात्माके साथ एकता करे। तदनन्तर चैतन्याभिमानिनी जीव-शक्तिको

---

३१. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥ (यजु० ५।१५)

३२. बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥ (यजु० २६।३)

३३. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ (यजु० ३१।१८)

३४. धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्वयं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमः सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥ (यजु० १।८)

३५. विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥ (यजु० ३३।३०)

३६. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥ (यजु० २३।५)

३७. विराड् ज्योतिरधारयत्स्वराड् ज्योतिरधारयत्। प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ। अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ (यजु० १३।२४)

३८. त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ (यजु० ३१।४)

पृथक् करके आत्माके साथ उसकी एकता करे । ऐसा करके स्वात्मरूप सर्वव्यापी परमेश्वरमें उसे जोड़ दे । तत्पश्चात् प्राणवायुद्वारा ('लं' बीजात्मक) पृथ्वीको अग्नि-बीज (रं) के चिन्तनद्वारा प्रकट हुई अग्निमें जला दे, अर्थात् यह भावना करे कि पृथ्वीका अग्निमें लय हो गया । फिर वायुमें अग्निको विलीन करे और आकाशमें वायुका लय कर दे । अधिभूत, अधिदैव तथा अध्यात्म-वैभवके साथ समस्त भूतोंको तन्मात्राओंमें विलीन करके विद्वान् पुरुष आकाशमें उन सबका क्रमशः संहार करे । इसके बाद आकाशका मनमें, मनका अहंकारमें, अहंकारका महत्तत्त्वमें और महत्तत्वका अव्याकृत प्रकृतिमें लय करे ॥ १—५ ॥

अव्याकृत प्रकृति (अथवा माया) को ज्ञानस्वरूप परमात्मामें विलीन करे । उन्हीं परमात्माको 'वासुदेव' कहा गया है । उन शब्दस्वरूप भगवान् वासुदेवने सृष्टिकी इच्छासे उस अव्याकृत मायाका आश्रय ले स्पर्शसंज्ञक संकर्षणको प्रकट किया । संकर्षणने मायाको क्षुब्ध करके तेजोरूप प्रद्युम्नकी सृष्टि की । प्रद्युम्नने रसस्वरूप अनिरुद्धको और अनिरुद्धने गन्धस्वरूप ब्रह्माको जन्म दिया । ब्रह्माने सबसे पहले जलकी सृष्टि की । उस जलमें उन्होंने पाँच भूतोंसे युक्त हिरण्मय अण्डको उत्पन्न किया । उस अण्डमें जीव-शक्तिका संचार हुआ । यह वही जीव-शक्ति है, जिसका आत्मामें पहले उपसंहार बताया गया है । जीवके साथ प्राणका संयोग होनेपर वह 'वृत्तिमान्' कहलाता है । व्याहृति-संज्ञक जीव प्राणोंमें स्थित होकर 'आध्यात्मिक पुरुष' कहा गया है । उससे प्राणयुक्त बुद्धि उत्पन्न हुई, जो आठ वृत्तिवाली बतायी गयी है । उस बुद्धिसे अहंकारका और अहंकारसे मनका प्रादुर्भाव हुआ । मनसे संकल्पादियुक्त पाँच विषय प्रकट हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ॥ ६—१२ ॥

इन सबने ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न पाँच इन्द्रियोंको प्रकट किया, जिनके नाम हैं—त्वक्, श्रोत्र, घ्राण, नेत्र और जिह्वा । इन सबको 'ज्ञानेन्द्रिय' कहा गया है । दो पैर, गुदा, दो हाथ, वाक् और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । अब पञ्चभूतोंके नाम सुनो । आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच भूत हैं । इनके ही द्वारा सबका आधारभूत स्थूल शरीर उत्पन्न होता है । इन तत्त्वोंके वाचक जो उत्तम बीज-मन्त्र हैं, उनका न्यासके लिये यहाँ वर्णन किया जाता है । 'मं' यह बीज जीवस्वरूप (अथवा जीवतत्त्वका वाचक) है । वह सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक है—इस भावनाके साथ उक्त बीजका सम्पूर्ण देहमें व्यापक-न्यास करना चाहिये । 'भं' यह प्राणतत्त्वका प्रतीक है । यह जीवकी उपाधिमें स्थित है, अतः इसका वहीं न्यास करना चाहिये । विद्वान् पुरुष बुद्धितत्त्वके बोधक बकार अथवा 'बं' बीजका हृदयमें न्यास करे । फकार (फं) अहंकारका स्वरूप है, अतः उसका भी हृदयमें ही न्यास करे । संकल्पके कारणभूत मनस्तत्त्वरूप पकार (पं) का भी वहीं न्यास करे ॥ १३—१८ ॥

शब्दतन्मात्रतत्त्वके बोधक नकार (नं) का मस्तकमें और स्पर्शरूप धकार (धं) का मुखप्रदेशमें न्यास करे । रूपतत्त्वके वाचक दकार (दं) का नेत्रप्रान्तमें और रसतन्मात्राके बोधक थकार (थं) का वस्तिदेश (मूत्राशय) में न्यास करे । गन्धतन्मात्रस्वरूप तकार (त) का पिण्डलियोंमें न्यास करे । णकार (णं) का दोनों कानोंमें न्यास करके ढकार (ढं) का त्वचामें न्यास करे । डकार (डं) का दोनों नेत्रोंमें, ठकार (ठं) का रसनामें, टकार (ट) का नासिकामें और ञकार (ञ) का वागिन्द्रियमें न्यास करे । विद्वान् पुरुष पाणितत्त्वरूप झकार (झ) का दोनों हाथोंमें न्यास करके, जकार (जं) का दोनों पैरोंमें, 'छ' का पायुमें और 'च' का उपस्थमें न्यास करे । ङकार (ङं) पृथ्वी-तत्त्वका प्रतीक है । उसका युगल चरणोंमें न्यास करे । घकार (घं) का वस्तिमें और तेजस्तत्त्वरूप 'गं' का हृदयमें न्यास करे । खकार (खं) वायुतत्त्वका प्रतीक है । उसका नासिकामें न्यास करे । ककार (कं) आकाश-तत्त्वरूप है । विद्वान् पुरुष उसका सदा ही मस्तकमें न्यास करे ॥ १९—२५ ॥

हृदय-कमलमें सूर्य-देवता-सम्बन्धी 'यं' बीजका न्यास करके, हृदयसे निकली हुई जो बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं, उनमें सोलह कलाओंसे युक्त सकार (सं) का न्यास करे । उसके मध्यभागमें मन्त्रज्ञ पुरुष बिन्दुस्वरूप वह्निमण्डलका चिन्तन करे । सुरश्रेष्ठ ! उसमें प्रणवसहित हकार (हं) का न्यास करे । १. ॐ आं नमः परमेष्ठ्यात्मने । २. ॐ आं नमः पुरुषात्मने । ३. ॐ वां नमो नित्यात्मने । ४. ॐ लां नमो विश्वात्मने । ५. ॐ वं नमः सर्वात्मने । ये पाँच शक्तियाँ बतायी गयी हैं । 'स्नानकर्म'में प्रथमा शक्तिकी योजना करनी चाहिये । 'आसनकर्म'में द्वितीया, 'शयन'में तृतीया, 'यानकर्म'में चतुर्थी और 'अर्चनाकाल'में

पञ्चमी शक्तिका प्रयोग करना चाहिये—ये पाँच उपनिषद् हैं। इनके मध्यमें मन्त्रमय श्रीहरिका ध्यान करके क्षकार (क्षं) का न्यास करे ॥ २६—३१ ॥

तदनन्तर जिस मूर्तिकी स्थापना की जाती है, उसके मूल-मन्त्रका न्यास करना चाहिये। (भगवान् विष्णुकी स्थापनामें) 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—यह मूल-मन्त्र है। मस्तक, नासिका, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, दो भुजा, दो पिण्डली और दो चरणोंमें क्रमशः उक्त मूल-मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् केशवका मस्तकमें न्यास करे। नारायणका मुखमें, माधवका ग्रीवामें और गोविन्दका दोनों भुजाओंमें न्यास करके विष्णुका हृदयमें न्यास करे। पृष्ठभागमें मधुसूदनका, जठरमें वामनका और कटिमें त्रिविक्रमका न्यास करके जंघा (पिण्डली) में श्रीधरका न्यास करे। दक्षिण भागमें हृषीकेशका, गुल्फमें पद्मनाभका और दोनों चरणोंमें दामोदरका न्यास करनेके पश्चात् हृदयादि षडङ्गन्यास करे ॥ ३२—३६ ॥

सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी ! यह आदिमूर्तिके लिये न्यासका साधारण क्रम बताया गया है। अथवा जिस देवताकी स्थापनाका आरम्भ हो, उसीके मूल-मन्त्रसे मूर्तिके सजीवकरणकी क्रिया होनी चाहिये। जिस मूर्तिका जो नाम हो, उसके आदि अक्षरका बारह स्वरोंसे भेदन करके अङ्गोंकी कल्पना करनी चाहिये। देवेश्वर ! हृदय आदि अङ्गोंका तथा द्वादश अक्षरवाले मूल-मन्त्रका एवं तत्त्वोंका जैसे देवताके विग्रहमें न्यास करे, वैसे ही अपने शरीरमें भी करे। तत्पश्चात् चक्राकार पद्ममण्डलमें भगवान् विष्णुका गन्ध आदिसे पूजन करे। पूर्ववत् शरीर और वस्त्राभूषणोंसहित भगवान्‌के आसनका ध्यान करे। ऊपरी भागमें बारह अरोंसे युक्त सुदर्शनचक्रका चिन्तन करे। वह चक्र तीन नाभि और दो नेमियोंसे युक्त है। साथ ही बारह स्वरोंसे सम्पन्न है। इस प्रकार चक्रका चिन्तन करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष पृष्ठदेशमें प्रकृति आदिका निवेश करे। फिर अरोंके अग्रभागमें बारह सूर्योंका पूजन करे। तदनन्तर वहाँ सोलह कलाओंसे युक्त सोमका ध्यान करे। चक्रकी नाभिमें तीन वसन (वस्त्र या वासस्थान) का चिन्तन करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ आचार्य पद्मके भीतर द्वादशदल पद्मका चिन्तन करे ॥ ३७—४४ ॥

उस पद्ममें पुरुष-शक्तिका ध्यान करके उसकी पूजा करे। फिर प्रतिमामें श्रीहरिका न्यास करके गुरु वहाँ श्रीहरि तथा अन्य देवताओंका पूजन करे। गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंसे अङ्ग और आवरणोंसहित इष्टदेवका भलीभाँति पूजन करना चाहिये। द्वादशाक्षर-मन्त्रके एक-एक अक्षरको बीजरूपमें परिवर्तित करके उनके द्वारा केशव आदि भगवद्विग्रहोंकी क्रमशः पूजा करे। द्वादश अरोंसे युक्त मण्डलमें लोकपाल आदिकी भी क्रमसे अर्चना करे। तदनन्तर, द्विज गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा पुरुषसूक्तसे प्रतिमाकी पूजा करे और श्रीसूक्तसे पिण्डिकाकी। इसके बाद जनन आदिके क्रमसे वैष्णव-अग्निको प्रकट करे। तदनन्तर विष्णुदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुति देकर विद्वान् पुरुष शान्ति-जल तैयार करे और उसे प्रतिमाके मस्तकपर छिड़ककर अग्निका प्रणयन करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि 'अग्निं दूतम्०'[1] इत्यादि मन्त्रसे दक्षिण कुण्डमें अग्नि-प्रणयन करे। पूर्वकुण्डमें 'अग्निमग्निम्०'[2] इत्यादि मन्त्रसे और उत्तर-कुण्डमें 'अग्निमग्निं हवीमभिः०'[3] इत्यादि मन्त्रसे अग्निका प्रणयन करे। अग्निप्रणयन-कालमें 'त्वमग्ने[4] द्युभिः०' इत्यादि मन्त्रका पाठ किया जाता है ॥ ४५—५१ ॥

प्रत्येक कुण्डमें प्रणवके उच्चारणपूर्वक पलाशकी एक हजार आठ समिधाओंका तथा जौ आदिका भी होम करे। व्याहृति-मन्त्रसे घृतमिश्रित तिलोंका और मूलमन्त्रसे घीका हवन करे। तत्पश्चात् मधुरत्रय (घी, शहद और चीनी) से शान्ति-होम करे। द्वादशाक्षर-मन्त्रसे दोनों पैर, नाभि,

१. अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे ॥ देवाँ २ ॥
आसादयादिह ॥ (यजु० २२ । १७)

२. अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियं प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि । उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥

(ऋ० मं० ६ । १५ । ६)

३. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥

(ऋ० मं० १, सू० १२ । २)

४. त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥
(यजु० ११ । २७)

हृदय और मस्तकका स्पर्श करे। घी, दही और दूधकी आहुति देकर मस्तकका स्पर्श करे। तत्पश्चात् मस्तक, नाभि और चरणोंका स्पर्श करके क्रमशः गङ्गा, यमुना, गोदावरी और सरस्वती—इन चार नदियोंकी स्थापना करे। विष्णु*-गायत्रीसे अग्निको प्रज्वलित करे और गायत्री-मन्त्रसे उस अग्निमें चरु पकावे। गायत्रीसे ही होम और बलि दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ५२—५६ ॥

मासाधिपति बारह आदित्योंकी तुष्टिके लिये आचार्यको सुवर्ण और गौकी दक्षिणा दे। दिक्पालोंको बलि देकर रातमें जागरण करे। उस समय वेदपाठ और गीत, कीर्तन आदि करता रहे। इस प्रकार अधिवासन-कर्मका सम्पादन करनेपर मनुष्य सम्पूर्ण फलोंका भागी होता है ॥ ५७—५९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'देवाधिवास-विधिका वर्णन' नामक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

साठवाँ अध्याय

वासुदेव आदि देवताओंके स्थापनकी साधारण विधि

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! पिण्डिकाकी स्थापनाके लिये विद्वान् पुरुष मन्दिरके गर्भगृहको सात भागोंमें विभक्त करे और ब्रह्मभागमें प्रतिमाको स्थापित करे। देव, मनुष्य और पिशाच-भागोंमें कदापि उसकी स्थापना नहीं करनी चाहिये। ब्रह्मन्! ब्रह्मभागका कुछ अंश छोड़कर तथा देवभाग और मनुष्य-भागोंमेंसे कुछ अंश लेकर, उस भूमिमें यत्नपूर्वक पिण्डिका स्थापित करनी चाहिये। नपुंसक शिलामें रत्नन्यास करे। नृसिंह-मन्त्रसे हवन करके उसीसे रत्नन्यास भी करे। व्रीहि, रत्न, लोह आदि धातु और चन्दन आदि पदार्थोंको पूर्वादि दिशाओं तथा मध्यमें बने हुए नौ कुण्डोंमें अपनी रुचिके अनुसार छोड़े। तदनन्तर इन्द्र आदिके मन्त्रोंसे पूर्वादि दिशाओंके गर्तको गुग्गुलसे आवृत करके, रत्नन्यासकी विधि सम्पन्न करनेके पश्चात्, गुरु शलाकासहित कुश-समूहों और 'सहदेव' नामक औषधके द्वारा प्रतिमाको अच्छी तरह मले और झाड़-पोंछ करे। बाहर-भीतरसे संस्कार (सफाई) करके पञ्चगव्यद्वारा उसकी शुद्धि करे। इसके बाद कुशोदक, नदीके जल एवं तीर्थ-जलसे उस प्रतिमाका प्रोक्षण करे ॥ १—७ ॥

होमके लिये बालुद्वारा एक वेदी बनावे, जो सब ओरसे डेढ़ हाथकी लंबी-चौड़ी हो। वह वेदी चौकोर एवं सुन्दर शोभासे सम्पन्न हो। आठ दिशाओंमें यथास्थान कलशोंको भी स्थापित करे। उन पूर्वादि कलशोंको आठ प्रकारके रंगोंसे सुसज्जित करे। तत्पश्चात् अग्नि ले आकर वेदीपर उसकी स्थापना करे और कुशकण्डिकाद्वारा संस्कार करके उस अग्निमें 'त्वमग्ने द्युभिः०' (यजु० ११, २७) इत्यादिसे तथा गायत्रीमन्त्रसे समिधाओंका हवन करे। अष्टाक्षर मन्त्रसे अष्टोत्तरशत घीकी आहुति दे, पूर्णाहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् मूल-मन्त्रसे सौ बार अभिमन्त्रित किये गये शान्तिजलको आम्रपल्लवोंद्वारा लेकर इष्टदेवताके मस्तकपर अभिषेक करे। अभिषेक-कालमें 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च०'[1] इत्यादि ऋचाका पाठ करता रहे। 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०'[2] इस मन्त्रसे प्रतिमाको उठाकर ब्रह्मरथपर रक्खे और 'तद् विष्णोः०'[3] इत्यादि मन्त्रसे उक्त रथद्वारा उसे मन्दिरकी ओर ले जाय। वहाँ श्रीहरिकी उस प्रतिमाको शिविका (पालकी) मे पधराकर नगर आदिमें घुमावे और गीत, वाद्य एवं वेद मन्त्रोंकी ध्वनिके साथ उसे पुनः लाकर मन्दिरके द्वारपर विराजमान करे ॥ ८—१३ ॥

इसके बाद गुरु सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंद्वारा आठ मङ्गल-कलशोंके जलसे श्रीहरिको स्नान करावे तथा गन्ध आदि उपचारोंसे मूल-मन्त्रद्वारा पूजन करनेके पश्चात् 'अतो देवाः०'(ऋक्० १।२२।१६) इत्यादि मन्त्रसे वस्त्र आदि अष्टाङ्ग

---

*. नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

1. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥ (यजु० ३१। २२)

2. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ (यजु० ३४। ५६)

3. तद् विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥ (यजु० ६। ५)

अर्घ्य निवेदन करे। फिर स्थिर लग्नमें पिण्डिकापर 'देवस्य त्वा०' इत्यादि मन्त्रसे इष्टदेवताके उस अर्चा-विग्रहको स्थापित कर दे। स्थापनाके पश्चात् इस प्रकार कहे—"सच्चिदानन्द-स्वरूप त्रिविक्रम! आपने तीन पगोंद्वारा समूची त्रिलोकीको आक्रान्त कर लिया था। आपको नमस्कार है।" इस तरह पिण्डिकापर प्रतिमाको स्थापित करके विद्वान् पुरुष उसे स्थिर करे। प्रतिमा-स्थिरीकरणके समय 'ध्रुवा द्यौः०' इत्यादि तथा 'विश्वतश्चक्षुः०' (यजु० १७।१९) इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करे। पञ्चगव्यसे स्नान कराकर गन्धोदकसे प्रतिमाका प्रक्षालन करे और सकलीकरण करनेके पश्चात् श्रीहरिका साङ्गोपाङ्ग साधारण पूजन करे॥ १४—१७½॥

उस समय इस प्रकार ध्यान करे—'आकाश भगवान् विष्णुका विग्रह है और पृथिवी उसकी पीठिका (सिंहासन) है।' तदनन्तर तैजस परमाणुओंसे भगवान्‌के श्रीविग्रहकी कल्पना करे और कहे—'मैं पचीस तत्त्वोंमें व्यापक जीवका आवाहन करूँगा'॥ १८-१९॥

'वह जीव चैतन्यमय, परमानन्दस्वरूप तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे रहित है; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण तथा अहंकारसे शून्य है। वह ब्रह्मा आदिसे लेकर कीटपर्यन्त समस्त जगत्‌में व्याप्त और सबके हृदयोंमें विराजमान है। परमेश्वर! आप ही जीव-चैतन्य हैं; आप हृदयसे प्रतिमा-बिम्बमें आकर स्थिर होइये। आप इस प्रतिमा-बिम्बको इसके बाहर और भीतर स्थित होकर सजीव कीजिये। अङ्गुष्ठमात्र पुरुष (परमात्मा जीव-रूपसे) सम्पूर्ण देहोपाधियोंमें स्थित हैं। वे ही ज्योतिःस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, एकमात्र अद्वितीय परब्रह्म हैं।' इस प्रकार सजीवीकरण करके प्रणवद्वारा भगवान्‌को जगावे। फिर भगवान्‌के हृदयका स्पर्श करके पुरुषसूक्तका जप करे। इसे 'सांनिध्यकरण' नामक कर्म कहा गया है। इसके लिये भगवान्‌का ध्यान करते हुए निम्नाङ्कित गुह्य-मन्त्रका जप करे—॥ २०—२४॥

'प्रभो! आप देवताओंके स्वामी हैं, संतोष-वैभव रूप हैं। आपको नमस्कार है। ज्ञान और विज्ञान आपके रूप हैं, ब्रह्मतेज आपका अनुगामी है। आपका स्वरूप गुणातीत

---

४. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि॥
(यजु० १।१०)

५. ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम्॥
(ऋक्० १०।१७३।४)

६. श्रीविद्यारण्य मुनिने नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद्‌की टीकामें सकलीकरण नामक न्यासकी विधि यों बतायी है—पहले आत्माको 'ॐ' इस नामके द्वारा प्रतिपादित होनेवाले ब्रह्मके साथ एकता करके, तथा ब्रह्मको आत्माके साथ ओंकारके वाच्यार्थरूपसे एकता करके वह एकमात्र जरारहित, मृत्युरहित, अमृतस्वरूप, निर्भय, चिन्मय तत्त्व 'ॐ' है—इस प्रकार अनुभव करे। तत्पश्चात् उस परमात्मस्वरूप ओंकारमें स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन शरीरोंवाले सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्चका आरोप करके, अर्थात् एक परमात्मा ही सत्य है, उन्हींमें इस स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण-जगत्‌की कल्पना हुई है—ऐसा विवेकद्वारा अनुभव करके यह निश्चय करे कि 'यह जगत् सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा ही है; क्योंकि तन्मय (परमात्ममय) होनेके कारण अवश्य यह तत्स्वरूप (परमात्मस्वरूप) ही है' और इस दृढ़ निश्चयके द्वारा इस जगत्‌को 'ॐ'के वाच्यार्थभूत परमात्मामें विलीन कर डाले। इसके बाद चतुर्विध शरीरकी सृष्टिके लिये निम्नाङ्कित प्रकारसे सकलीकरण करे। 'ॐ' का उच्चारण अनेक प्रकारसे होता है—एक तो केवल मकार-पर्यन्त उच्चारण होता है, दूसरा बिन्दु-पर्यन्त, तीसरा नाद-पर्यन्त और चौथा शक्ति-पर्यन्त होता है। फिर उच्चारण बंद हो जानेपर उसकी 'शान्त' संज्ञा होती है। सकलीकरणकी क्रिया आरम्भ करते समय पहले 'ॐ'का उपर्युक्त रीतिसे शान्त-पर्यन्त उच्चारण करके 'शान्त्यतीतकलात्मने साक्षिणे नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक-न्यास करते हुए 'साक्षी'का चिन्तन करे। फिर शक्तिपर्यन्त प्रणवका उच्चारण करके 'शान्तिकलाशक्तिपरावागात्मने सामान्य-देहाय नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक करते हुए अन्तर्मुख, सत्स्वरूप, महाज्ञानरूप सामान्य देहका चिन्तन करे। फिर प्रणवका नादपर्यन्त उच्चारण करके 'विद्याकलानादपश्यन्तीवागात्मने कारणदेहाय नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक-न्यास करते हुए प्रलय, सुषुप्ति एवं ईक्षणावस्थामें स्थित किंचित् बहिर्मुख सत्स्वरूप कारणदेहका चिन्तन करे। फिर प्रणवका बिन्दुपर्यन्त उच्चारण करके 'प्रतिष्ठाकलाबिन्दु-मध्यमावागात्मने सूक्ष्मदेहाय नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक हुए सूक्ष्मभूत, अन्तःकरण, प्राण तथा इन्द्रियोंके संघातरूप सूक्ष्म शरीर-का चिन्तन करे। फिर प्रणवका मकार-पर्यन्त उच्चारण करके 'निवृत्ति-कलाबीजवैखरीवागात्मने स्थूलशरीराय नमः।' इस मन्त्रसे व्यापक करते हुए पञ्चीकृत भूत एवं उसके कार्यरूप स्थूलशरीरका चिन्तन करे।

है। आप अन्तर्यामी पुरुष एवं परमात्मा हैं; अक्षय पुराण-पुरुष हैं; आपको नमस्कार है। विष्णो! आप यहाँ संनिहित होइये। आपका जो परमतत्त्व है, जो ज्ञानमय शरीर है, वह सब एकत्र हो, इस अर्चाविग्रहमें जाग उठे।' इस प्रकार परमात्मा श्रीहरिका सांनिध्यकरण करके ब्रह्मा आदि परिवारोंकी उनके नामसे स्थापना करे। उनके जो आयुध आदि हैं, उनकी भी मुद्रासहित स्थापना करे। यात्रा-सम्बन्धी उत्सव तथा वार्षिक आदि उत्सवकी भी योजना करके और उन उत्सवोंका दर्शनकर श्रीहरिको अपने संनिहित जानना चाहिये। भगवान्‌को नमस्कार, स्तोत्र आदिके द्वारा उनकी स्तुति तथा उनके अष्टाक्षर आदि मन्त्रका जप करते समय भी भगवान्‌को अपने निकट उपस्थित जानना चाहिये ॥ २५—२९ ॥

तदनन्तर आचार्य मन्दिरसे निकलकर द्वारवर्ती द्वारपाल चण्ड और प्रचण्डका पूजन करे। फिर मण्डपमें आकर गरुडकी स्थापना एवं पूजा करे। प्रत्येक दिशामें दिक्पालों तथा अन्य देवताओंका स्थापन-पूजन करके गुरु विष्वक्सेनकी स्थापना तथा शङ्ख, चक्र आदिकी पूजा करे। सम्पूर्ण पार्षदों और भूतोंको बलि अर्पित करे। आचार्यको दक्षिणारूपसे ग्राम, वस्त्र एवं सुवर्ण आदिका दान दे। यज्ञोपयोगी द्रव्य आदि आचार्यको अर्पित करे। आचार्यसे आधी दक्षिणा ऋत्विजोंको दे। इसके बाद अन्य ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा दे और भोजन करावे। वहाँ आनेवाले किसी भी ब्राह्मणको रोके नहीं, सबका सत्कार करे। तदनन्तर गुरु यजमानको फल दे ॥ ३०—३४ ॥

भगवद्विग्रहकी स्थापना करनेवाला पुरुष अपने साथ सम्पूर्ण कुलको भगवान् विष्णुके समीप ले जाता है। सभी देवताओंके लिये यह साधारण विधि है; किंतु उनके मूल-मन्त्र पृथक्-पृथक् होते हैं। शेष सब कार्य समान हैं ॥ ३५-३६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वासुदेव आदि देवताओंकी स्थापनाके सामान्य-विधानका वर्णन' नामक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

इकसठवाँ अध्याय

अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठा और ध्वजारोपण आदिकी विधिका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं अवभृथस्नानका वर्णन करता हूँ। **'विष्णोर्नु कं वीर्याणि०'**[1] इत्यादि मन्त्रसे हवन करे। इक्यासी पदवाले वास्तुमण्डलमें कलश स्थापित करके उनके जलसे श्रीहरिको स्नान करावे। स्नानके पश्चात् गन्ध, पुष्प आदिसे भगवान्‌की पूजा करे और बलि अर्पित करके गुरुका पूजन करे। अब मैं द्वार-प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। गुरु द्वारके निम्नभागमें सुवर्ण रक्खे और आठ कलशोंके साथ वहाँ दो गूलरकी शाखाओंको स्थापित करे। फिर गन्ध आदि उपचारों और वैदिक आदि मन्त्रोंसे सम्यक् पूजन करके कुण्डोंमें स्थापित अग्निमें समिधा, घी और तिल आदिकी आहुति दे। तत्पश्चात् शय्या आदिका दान देकर नीचे आधारशक्तिकी स्थापना करे ॥ १—४ ॥

दोनों शाखाओंके मूलभागमें चण्ड और प्रचण्ड नामक देवताओंकी स्थापना करे। उदुम्बर-शाखाओंके ऊपरी भागमें देववृन्दपूजित लक्ष्मीदेवीकी स्थापना करके श्रीसूक्तसे उनका यथोचित पूजन करे। तत्पश्चात् ब्रह्माजीका पूजन करके आचार्य आदिको श्रीफल (नारियल) आदिकी दक्षिणा दे। प्रतिष्ठाद्वारा सिद्ध द्वारपर आचार्य श्रीहरिकी स्थापना करे। मन्दिरकी प्रतिष्ठा **'ह्म्प्रतिष्ठा०'** इत्यादि मन्त्रसे की जाती है। उसका वर्णन सुनो। वेदीके पहले गर्भगृहके शिरोभागमें, जहाँ शुकनासाकी समाप्ति होती है, उस स्थानपर सोने अथवा चाँदीके बने हुए श्वेत निर्मल कलशकी स्थापना करे। उसमें आठ प्रकारके रत्न, ओषधि, धातु, बीज और लोह (सुवर्ण) छोड़ दे। उस सुन्दर कलशके कण्ठभागमें वस्त्र लपेटकर उसमें जल भर दे और मण्डलमें उसका अधिवासन करे। उसमें पल्लव डाल दे। तत्पश्चात् नृसिंह-मन्त्रसे अग्निमें घीकी धारा गिराते हुए होम करे। नारायणतत्त्वसे प्राणन्यास करे ॥ ५—१० ॥

---

१. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि।
यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥ (यजु० ५। १८)

सुरेश्वर ! प्रासादके उस कलशका वैराजरूपमें चिन्तन करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण प्रासादका ही पुरुषकी भाँति चिन्तन करे। तदनन्तर नीचे सुवर्ण देकर तत्त्वभूत कलशकी स्थापना करे। गुरु आदिको दक्षिणा दे और ब्राह्मण आदिको भोजन करावे। तत्पश्चात् वेदीके चारों ओर सूत या माला लपेटे। उसके ऊपर कण्ठभागमें सब ओर सूत अथवा बन्दनवार बाँधे और उसके भी ऊपर 'विमलामलसार' नामक पुष्पहार या बन्दनवार मन्दिरके चारों ओर बाँधे। उसके ऊपर 'वृफल' तथा उसके भी ऊपर आदि सुदर्शन-चक्र बनावे। वहीं भगवान् वासुदेवकी ग्रहगुप्त मूर्ति निवेदित करे। अथवा पहले कलश और उसके ऊपर उत्तम सुदर्शनचक्रकी योजना करे। ब्रह्मन्! वेदीके चारों ओर आठ विघ्नेश्वरोंकी स्थापना करनी चाहिये। अथवा चार दिशाओंमें चार ही विघ्नेश्वर स्थापित किये जाने चाहिये। अब गरुडध्वजारोपणकी विधि बताता हूँ, जिसके होनेसे भूत आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ ११-१६ ॥

प्रासाद-बिम्बके द्रव्योंमें जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक मन्दिर-निर्माता पुरुष विष्णुलोकमें निवास करता है। निष्पाप ब्रह्माजी ! जब वायुसे ध्वज फहराता है और कलश, वेदी तथा प्रासादबिम्बके कण्ठको आवेष्टित कर लेता है, तब प्रासादकर्ताको ध्वजारोपणकी अपेक्षा भी कोटिगुना अधिक फल प्राप्त होता है, ऐसा समझना चाहिये। पताकाको प्रकृति जानो और दण्डको पुरुष। साथ ही मुझसे यह भी समझ लो कि प्रासाद (मन्दिर) भगवान् वासुदेवकी मूर्ति है। मन्दिर भगवान्‌को धारण करता है, यही उसमें धरणीतत्त्व है, ऐसा जानो। मन्दिरके भीतर जो शून्य अवकाश है, वही उसमें आकाश-तत्त्व है। उसमें जो तेज या प्रकाश है, वही अग्नितत्त्व है और उसके भीतर जो हवाका स्पर्श होता है, वही उसमें वायुतत्त्व है ॥ १७-२० ॥

पाषाण आदिमें ही जो जल है, वह पार्थिव जल है। उसमें पृथ्वीका गुण गन्ध विद्यमान है। प्रतिध्वनिसे जो शब्द प्रकट होता है, वही वहाँका शब्द है। छूनेमें कठोरता आदिका जो अनुभव होता है, वही वहाँका स्पर्श है। शुक्ल आदि वर्ण रूप है। आह्लादका अनुभव करानेवाला रस ही वहाँ रस है। धूप आदिकी गन्ध ही वहाँकी गन्ध है। भेरी आदिमें जो नाद प्रकट होता है, वही मानो वागिन्द्रिय-का कार्य है। इसलिये वहीं घ्राणेन्द्रियकी स्थिति है। शुकनासामें नासिकाकी स्थिति है। दो भद्रात्मक भुजाएँ कही गयी हैं। शिखरपर जो अण्ड-सा बना रहता है, वही मस्तक कहा गया है और कलशको केश बताया गया है। प्रासादका कण्ठभाग ही उसका कण्ठ जानना चाहिये। वेदीको कंधा कहा गया है। दो नालियाँ गुदा और उपस्थ बतायी गयी हैं। मन्दिरपर जो चूना फेरा गया है, उसीको त्वचा नाम दिया गया है। द्वार उसका मुँह है और प्रतिमाको मन्दिरका जीवात्मा कहा गया है। पिण्डिकाको जीवकी शक्ति समझो और उसकी आकृतिको प्रकृति ॥ २१-२५ ॥

निश्चलता उसका गर्भ है और भगवान् केशव उसके अधिष्ठाता। इस प्रकार ये भगवान् विष्णु ही साक्षात् मन्दिररूपसे खड़े हैं। भगवान् शिव उसकी जंघा हैं, ब्रह्मा स्कन्धभागमें स्थित हैं और ऊर्ध्वभागमें स्वयं विष्णु विराजमान हैं। इस प्रकार स्थित हुए प्रासादकी ध्वजरूपसे जो प्रतिष्ठा की गयी है, उसको मुझसे सुनो। शस्त्रादिचिह्नित ध्वजका आरोपण करके देवताओंने दैत्योंको जीता है। अण्डके ऊपर कलश रखकर उसके ऊपर ध्वजकी स्थापना करे। ध्वजका मान बिम्बके मानका आधा भाग है। ध्वजदण्डकी लंबाईके एक तिहाई भागसे चक्रका निर्माण कराना चाहिये। वह चक्र आठ या बारह अरोंका हो और उसके मध्यभागमें भगवान् नृसिंह अथवा गरुडकी मूर्ति हो। ध्वज-दण्ड टूटा-फटा या छेदवाला न हो। प्रासादकी जो चौड़ाई है, उसीको दण्डकी लंबाईका मान कहा गया है। अथवा शिखरके आधे या एक तिहाई भागसे उसकी लंबाईका अनुमान करना चाहिये। अथवा द्वारकी लंबाईसे दुगुना बड़ा दण्ड बनाना चाहिये। उस ध्वज-दण्डको देवमन्दिरपर ईशान या वायव्यकोणकी ओर स्थापित करना चाहिये ॥ २६-३२ ॥

उसकी पताका रेशमी आदि वस्त्रोंसे विचित्र शोभायुक्त बनावे। अथवा उसे एक रंगकी ही बनावे। यदि उसे घण्टा, चँवर अथवा छोटी-छोटी घंटियोंसे विभूषित करे तो वह पापोंका नाश करनेवाली होती है। दण्डके अग्रभागसे लेकर भूमितक लंबा जो एक वस्त्र है, उसे 'महाध्वज' कहा गया है। वह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। जो उससे एक चौथाई छोटा हो, वह ध्वज पूजित होनेपर

सर्वमनोरथोंका पूरक होता है । ध्वजके आधे मानवाले वस्त्रसे बने हुए झंडेको 'पताका' कहते हैं अथवा पताकाका कोई माप नहीं होता । ध्वजका विस्तार बीस अङ्गुलके बराबर होना चाहिये । चक्र, दण्ड और ध्वज—इन सबका अधिवासनकी विधिसे देवताकी ही भाँति सकलीकरण करके मण्डप-स्नान (मण्डपमें नहलानेकी क्रिया) आदि सब कार्य करे । 'नेत्रोन्मीलन' को छोड़कर पूर्वोक्त सब कर्मोंका अनुष्ठान करे । आचार्यको चाहिये कि वह इन सबको विधिवत् शय्यापर स्थापित करके इनका अधिवासन करे ॥ ३१–३७ ॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष 'सहस्रशीर्ष०' (यजु० अ० ३१) इत्यादि सूक्तका ध्वजाङ्कित चक्रमें न्यास करे तथा सुदर्शन-मन्त्र एवं 'मनस्तत्त्व' का न्यास करे । यह 'मन' रूपसे उस चक्रका ही 'सजीवीकरण' कहा गया है । सुरश्रेष्ठ ! बारह अरोंमें क्रमशः केशव आदि मूर्तियोंका न्यास करना चाहिये । गुरु चक्रकी नाभि, कमल एवं प्रतिनेमियोंमें तत्त्वोंका न्यास करे । कमलमें नृसिंह अथवा विश्वरूपका निवेश करे । दण्डमें जीवसहित सम्पूर्ण सूत्रात्माका न्यास करे । ध्वजमें श्रीहरिका ध्यान करते हुए निष्कल परमात्माका निवेश करे । उनकी बलाबलारूपा व्यापिनी शक्तिका ध्वजके रूपमें ध्यान करे । मण्डपमें उसकी स्थापना और पूजा करके कुण्डोंमें हवन करे । कलशमें सोनेका टुकड़ा और पञ्चरत्न डालकर अस्त्र-मन्त्रसे चक्रकी स्थापना करे । तदनन्तर स्वर्णचक्रको नीचेसे पारेद्वारा सम्प्लावित करके नेत्रपटसे आच्छादित करे । तदनन्तर चक्रका निवेश करे और उसके भीतर श्रीहरिका स्मरण करे ॥ ३८–४४ ॥

'ॐ क्षौं नृसिंहाय नमः ।'—इस मन्त्रसे श्रीहरिकी स्थापना और पूजा करे । तदनन्तर बन्धु-बान्धवोंसहित यजमान ध्वज लेकर दही-भातसे युक्त पात्रमें ध्वजका अग्रभाग डाले । आदिमें (ॐ) और अन्तमें 'फट्' लगाकर 'ॐफट्' इस मन्त्रसे ध्वजका पूजन करे । तत्पश्चात् उस पात्रको सिरपर रखकर नारायणका बारंबार स्मरण करते हुए बाद्योंकी ध्वनि और मङ्गलपाठके साथ परिक्रमा करे । तदनन्तर अष्टाक्षर-मन्त्रसे ध्वजदण्डकी स्थापना करे । विद्वान् पुरुष 'मुञ्चामि त्वा' (ऋक्० १८।१६१।१) इस सूक्तके द्वारा ध्वजको फहरावे । द्विजको चाहिये कि वह आचार्यको पात्र, ध्वज और हाथी आदि दान करे । यह ध्वजारोपणकी साधारण विधि बतायी गयी है ॥ ४५–४९ ॥

जिस देवताका जो चिह्न है, उससे युक्त ध्वजको उसी देवताके मन्त्रसे स्थिरतापूर्वक स्थापित करे । मनुष्य ध्वज-दानके पुण्यसे स्वर्गलोकमें जाता है तथा वह पृथ्वीपर बलवान् राजा होता है ॥ ५० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठा और ध्वजारोपण आदिकी विधिका वर्णन' नामक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

बासठवाँ अध्याय

लक्ष्मी आदि देवियोंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—अब मैं सामूहिक रूपसे देवता आदिकी प्रतिष्ठाका तुमसे वर्णन करता हूँ । पहले लक्ष्मीकी, फिर अन्य देवियोंके समुदायकी स्थापनाका वर्णन करूँगा । पूर्ववर्ती अध्यायोंमें जैसा बताया गया है, उसके अनुसार मण्डप-अभिषेक आदि सारा कार्य करे । तत्पश्चात् भद्रपीठपर लक्ष्मीकी स्थापना करके आठ दिशाओंमें आठ कलश स्थापित करे । देवीकी प्रतिमाका घीसे अभ्यञ्जन करके मूल-मन्त्रद्वारा पञ्चगव्यसे उसको स्नान करावे । फिर 'हिरण्यवर्णां हरिणीं०' इत्यादि मन्त्रसे लक्ष्मीजीके दोनों नेत्रोंका उन्मीलन करे । 'तां म आ वह०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर देवीके लिये मधु, घी और चीनी अर्पित करे । तत्पश्चात् 'अश्वपूर्वां०' इत्यादि मन्त्रसे पूर्ववर्ती कलशके जलद्वारा श्रीदेवीका अभिषेक करे । 'कां सोऽस्मितां०'

१. हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥

२. तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥

३. अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥

४. कां सोऽस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

तां०' इस मन्त्रको पढ़कर दक्षिण कलशसे, 'चन्द्रां प्रभासां०' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके पश्चिम कलशसे तथा 'आदित्यवर्णे[6]०' इत्यादि मन्त्र बोलकर उत्तरवर्ती कलशसे देवीका अभिषेक करे ॥ १—५ ॥

'उपैतु[7] मां०' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके आग्नेय-कोणके कलशसे, 'क्षुत्पिपासामलां[8]—' इत्यादि मन्त्र बोलकर नैर्ऋत्यकोणके कलशसे, 'गन्धद्वारां[9] दुराधर्षां०' इत्यादि मन्त्रको पढ़कर वायव्यकोणके कलशसे तथा 'मनसः[10] काममाकूतिं—' इत्यादि मन्त्र कहकर ईशानकोणवर्ती कलशसे लक्ष्मीदेवीका अभिषेक करे। 'कर्दमेन प्रजा[11] भूता०' इत्यादि मन्त्रसे सुवर्णमय कलशके जलसे देवीके मस्तकका अभिषेक करे। तदनन्तर 'आपः[12] सृजन्तु०' इत्यादि मन्त्रसे इक्यासी कलशोंद्वारा श्रीदेवीकी प्रतिमाको स्नान करावे ॥ ६-७ ॥

तत्पश्चात् (श्री-प्रतिमाको शुद्ध वस्त्रसे पोंछकर सिंहासन-पर विराजमान करे और वस्त्र आदि समर्पित करनेके बाद) 'आर्द्रां[13] पुष्करिणीं०' इस मन्त्रसे गन्ध अर्पित करे। 'आर्द्रां[14] यः करिणीं०' आदिसे पुष्प और माला चढ़ाकर पूजा करे। इसके बाद 'तां म आ[15] वह जातवेदो०' इत्यादि मन्त्रसे और 'आनन्द०'[16] इत्यादि श्लोकसे अखिल उपचार अर्पित करे ॥ ८ ॥

'आवन्ती०' आदि मन्त्रसे श्री-प्रतिमाको शय्यापर शयन करावे। फिर श्रीसूक्तसे संनिधीकरण करे और लक्ष्मी (श्री) बीज (श्रीं) से चित्-शक्तिका विन्यास करके पुनः अर्चना करे। इसके बाद श्रीसूक्तसे मण्डपस्थ कुण्डोंमें कमलों अथवा करवीर-पुष्पोंका हवन करे। होम-संख्या एक हजार या एक सौ होनी चाहिये। गृहोपकरण आदि समस्त पूजन-सामग्री आदितः श्रीसूक्तके मन्त्रोंसे ही समर्पित करे। फिर पूर्ववत् पूर्णरूपसे प्रासाद-संस्कार सम्पन्न करके माता लक्ष्मीके लिये पिण्डिका-निर्माण करे। तदनन्तर उस पिण्डिकापर लक्ष्मीकी प्रतिष्ठा करके श्रीसूक्तसे संनिधीकरण करते हुए, पूर्ववत् उसकी प्रत्येक ऋचाका जप करे ॥ ९—१२ ॥

मूल-मन्त्रसे चित्-शक्तिको जाग्रत् करके पुनः संनिधीकरण करे। तदनन्तर आचार्य और ब्रह्मा तथा अन्य ऋत्विज ब्राह्मणोंको भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, गौ एवं अन्नादिका दान करे। इस प्रकार सभी देवियोंकी स्थापना करके मनुष्य राज्य और स्वर्ग आदिका भागी होता है ॥ १३-१४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'लक्ष्मी आदि देवियोंकी प्रतिष्ठाके सामान्य विधानका वर्णन' नामक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

---

५. चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्। तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥

६. आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः। तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥

७. उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह। प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥

८. क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥

९. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

१०. मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि। पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥

११. कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम। श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥

१२. आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे। नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥

१३. आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥

१४. आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्। सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥

१५. तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥

१६. आनन्दमन्दरपुरन्दरमुक्तमाल्यं मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जुमञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥

तिरसठवाँ अध्याय

विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि तथा पुस्तक-लेखन-विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—इस प्रकार विनतानन्दन गरुड, सुदर्शनचक्र, ब्रह्मा और भगवान् नृसिंहकी प्रतिष्ठा भी उनके अपने-अपने मन्त्रसे श्रीविष्णुकी ही भाँति करनी चाहिये; इसका श्रवण करो ॥ १ ॥

'ॐ सुदर्शन महाचक्र शान्त दुष्टभयंकर, छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि विदारय विदारय परमन्त्रान् ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय भूतांस्त्रासय त्रासय हुं फट् सुदर्शनाय नमः ।'

इस मन्त्रसे चक्रका पूजन करके वीर पुरुष युद्धक्षेत्रमें शत्रुओंको विदीर्ण कर डालता है ॥ २-३ ॥

'ॐ क्षौं नरसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा ।'

यह नरसिंहभगवान्का मन्त्र है । अब मैं तुमको पाताल-नृसिंह-मन्त्रका उपदेश करता हूँ—॥ ४-५ ॥

ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय प्रदीप्तसूर्यकोटिसहस्रसमतेजसे वज्रनखदंष्ट्रायुधाय स्फुटविकटविकीर्णकेसरसटाप्रक्षुभितमहार्णवाम्भोदुन्दुभिनिर्घोषाय सर्वमन्त्रोत्तारणाय एह्येहि भगवन्नरसिंह पुरुष परापर ब्रह्म सत्येन स्फुर स्फुर विजृम्भ विजृम्भ आक्रम आक्रम गर्ज गर्ज मुञ्च मुञ्च सिंहनादं विदारय विदारय विद्रावय विद्रावयाऽऽविशाऽऽविश सर्वमन्त्ररूपाणि मन्त्रजातींश्च हन हन छिन्द्धि छिन्द्धि संक्षिप संक्षिप दर दर दारय दारय स्फुट स्फुट स्फोटय स्फोटय ज्वालामालासंघातमय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्राशनिचक्रेण सर्वपातालानुत्सादयोत्सादय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्रशरपञ्जरेण सर्वपातालान्परिवारय परिवारय सर्वपातालासुरवासिनां हृदयान्याकर्षयाऽऽकर्षय शीघ्रं दह दह पच पच मथ मथ शोषय शोषय निकृन्तय निकृन्तय तावद्यावन्मे वशमागताः पातालेभ्यः (फट् सुरेभ्यः फण्मन्त्ररूपेभ्यः फण्मन्त्रजातिभ्यः फट् संशयान्मां भगवन्नरसिंहरूप विष्णो सर्वापद्भ्यः) सर्वमन्त्ररूपेभ्यो रक्ष रक्ष हुं फण्नमो नमस्ते ॥ ६ ॥

यह श्रीहरिस्वरूपिणी नृसिंह-विद्या है, जो अर्थसिद्धि प्रदान करनेवाली है । त्रैलोक्यमोहन श्रीविष्णुकी त्रैलोक्य-मोहन मन्त्रसमूहसे प्रतिष्ठा करे । उनके द्विभुज विग्रहके वाम हस्तमें गदा और दक्षिण हस्तमें अभयमुद्रा होनी चाहिये । यदि चतुर्भुज रूपकी प्रतिष्ठा की जाय, तो दक्षिणोर्ध्व हस्तमें चक्र और वामोर्ध्वमें पाञ्चजन्य शङ्ख होना चाहिये । उनके साथ श्री एवं पुष्टि, अथवा बलराम, सुभद्राकी भी स्थापना करनी चाहिये । श्रीविष्णु, वामन, वैकुण्ठ, हयग्रीव और अनिरुद्धकी प्रासादमें, घरमें अथवा मण्डपमें स्थापना करनी चाहिये । मत्स्यादि अवतारोंको जल-शय्यापर स्थापित करके शयन करावे । संकर्षण, विश्वरूप, रुद्रमूर्तिलिङ्ग, अर्धनारीश्वर, हरिहर, मातृकागण, भैरव, सूर्य, ग्रह, विनायक तथा इन्द्र आदिके द्वारा सेवनीया गौरी, चित्रजा एवं 'बलाबला' विद्याकी भी उसी प्रकार स्थापना करनी चाहिये ॥ ७—१२ ॥

अब मैं ग्रन्थकी प्रतिष्ठा और उसकी लेखन-विधिका वर्णन करता हूँ । आचार्य स्वस्तिक-मण्डलमें शरयन्त्रके आसनपर स्थित लेख्य, लिखित पुस्तक, विद्या एवं श्रीहरिका यजन करे । फिर यजमान, गुरु, विद्या एवं भगवान् विष्णु और लिपिक (लेखक) पुरुषकी अर्चना करे । तदनन्तर पूर्वाभिमुख होकर पद्मिनीका ध्यान करे और चाँदीकी दावात-में रखी हुई स्याही तथा सोनेकी कलमसे देवनागरी अक्षरोंमें पाँच श्लोक लिखे । फिर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन करावे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा दे । आचार्य, विद्या और श्रीविष्णुका पूजन करके लेखक पुराण आदिका लेखन प्रारम्भ करे । पूर्ववत् मण्डल आदिके द्वारा ईशानकोणमें भद्रपीठपर दर्पणके ऊपर पुस्तक रखकर पहलेकी ही भाँति कलशोंसे सेचन करे । फिर यजमान नेत्रोन्मीलन करके शय्यापर उस पुस्तकका स्थापन करे । तत्पश्चात् पुस्तकपर पुरुषसूक्त तथा वेद आदिका न्यास करे ॥ १३—१८ ॥

तदनन्तर प्राण-प्रतिष्ठा, पूजन एवं चरुहोम करके, पूजनके पश्चात् दक्षिणासे आचार्य आदिका सत्कार करके ब्राह्मण-भोजन करावे । उस ग्रन्थको रथ या हाथीपर रखकर जन-समाजके साथ नगरमें घुमावे । अन्तमें गृह या देवालयमें उसे स्थापित करके उसकी पूजा करे । ग्रन्थको वस्त्रसे आवेष्टित करके पाठके आदि-अन्तमें उसका पूजन करे । पुस्तकवाचक विश्वशान्तिका संकल्प करके एक अध्यायका पाठ करे । फिर गुरु कुम्भजलसे यजमान आदिका अभिषेक

करे। ब्राह्मणको पुस्तक-दान करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। गोदान, भूमि-दान और विद्यादान—ये तीन अतिदान कहे गये हैं। ये क्रमशः दोहन, वपन और पाठमात्र करनेपर नरकसे उद्धार कर देते हैं। मसीलिखित पत्र-संचयका दान विद्यादानका फल देता है और उन पत्रों-की एवं अक्षरोंकी जितनी संख्या होती है, दाता पुरुष उतने ही हजार वर्षोंतक विष्णुलोकमें पूजित होता है। पञ्चरात्र, पुराण और महाभारतका दान करनेवाला मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके परमतत्त्वमें विलीन हो जाता है॥ १९—२६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधिका वर्णन' नामक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६३॥

चौसठवाँ अध्याय

कुआँ, बावड़ी और पोखरे आदिकी प्रतिष्ठाकी विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं कूप, वापी और तड़ागकी प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। भगवान् श्रीहरि ही जलरूपसे देवश्रेष्ठ सोम और वरुण हुए हैं। सम्पूर्ण विश्व अग्नीषोममय है। जलरूप नारायण उसके कारण हैं। मनुष्य वरुणकी स्वर्ण, रौप्य या रत्नमयी प्रतिमाका निर्माण करावे। वरुणदेव द्विभुज, हंसारूढ और नदी एवं नालोंसे युक्त हैं। उनके दक्षिण-हस्तमें अभयमुद्रा और वाम-हस्तमें नागपाश सुशोभित होता है। यज्ञमण्डपके मध्यभागमें कुण्डसे सुशोभित वेदिका होनी चाहिये तथा उसके तोरण (पूर्व-द्वार) पर कमण्डलुसहित वरुण-कलशकी स्थापना करनी चाहिये। इसी तरह भद्रक (दक्षिण-द्वार), अर्द्धचन्द्र (पश्चिम-द्वार) तथा स्वस्तिक (उत्तर-द्वार) पर भी वरुण-कलशोंकी स्थापना आवश्यक है। कुण्डमें अग्निका आधान करके पूर्णाहुति प्रदान करे॥ १—५॥

'ये ते शतं वरुण०' आदि मन्त्रसे स्नानपीठपर वरुणकी स्थापना करे। तत्पश्चात् आचार्य मूल-मन्त्रका उच्चारण करके, वरुण देवताकी प्रतिमाको वहाँ पधराकर, उसमें घृतका अभ्यङ्ग करे। फिर **'शं नो देवी०'** (अथर्व० १। ६। १; शु० यजु० ३६। १२) इत्यादि मन्त्रसे उसका प्रक्षालन करके **'शुद्धवालः० सर्वशुद्धवालो०'** (शु० यजु० २४। ३) आदिसे पवित्र जलद्वारा उसे स्नान करावे। तदनन्तर स्नानपीठकी पूर्वादि दिशाओंमें आठ कलशोंका अधिवासन (स्थापन) करे। इनमेंसे पूर्ववर्ती कलशमें समुद्रके जल, आग्नेयकोणवर्ती कुम्भमें गङ्गाजल, दक्षिणके कलशमें वर्षाके जल, नैर्ऋत्यकोणवाले कुम्भमें झरनेके जल, पश्चिमवाले कलशमें नदीके जल, वायव्यकोणमें नदके जल, उत्तर-कुम्भमें औद्भिज्ज (सोते) के जल एवं ईशानवर्ती कलशमें तीर्थके जलको भरे। उपर्युक्त विविध जल न मिलनेपर सब कलशोंमें नदीके ही जलको डाले। उक्त सभी कलशोंको **'यासां राजा०'** (अथर्व० १। ३३। २) आदि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। विद्वान् पुरोहित वरुण-देवका **'सुमित्रिया०'** (शु० यजु० ३५। १२) आदि मन्त्रसे मार्जन और निर्मञ्छन करके, **'चित्रं देवानां०'** (शु० यजु० १३। ४६) तथा **'तच्चक्षुर्देवहितं०'** (शु० यजु० ३६। २४)—इन मन्त्रोंसे मधुरत्रय (शहद, घी और चीनी) द्वारा वरुणदेवके नेत्रोंका उन्मीलन करे। फिर वरुणकी उस सुवर्णमयी प्रतिमामें ज्योतिका पूजन करे एवं आचार्यको गोदान दे॥ ६—१०½॥

तदनन्तर **'समुद्रज्येष्ठाः०'** (ऋक्० ७। ४९। १) आदि मन्त्रके द्वारा वरुणदेवताका पूर्व-कलशके जलसे अभिषेक करे। **'समुद्रं गच्छ०'** (यजु० ६। २१) इत्यादि मन्त्रके द्वारा अग्निकोणवर्ती कलशके गङ्गाजलसे, **'सोमो धेनुं०'** (शु० यजु० ३४। २१) इत्यादि मन्त्रके द्वारा दक्षिण-कलशके वर्षाजलसे, **'देवीरापो०'** (शु० यजु० ६। २७) इत्यादि मन्त्रके द्वारा नैर्ऋत्यकोणवर्ती कलशके निर्झर-जलसे, **'पञ्च नद्यः०'** (शु० यजु० ३४। ११) आदि मन्त्रके द्वारा पश्चिम-कलशके नदी-जलसे, **'उद्भिद्भ्यः०'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा उत्तरवर्ती कलशके उद्भिज्ज-जलसे और पावमानी ऋचाके द्वारा ईशानकोणवाले कलशके तीर्थ-जलसे वरुणका अभिषेक करे। फिर यजमान मौन रहकर **'आपो हि ष्ठा०'** (शु० यजु० ११। ५०) मन्त्रके द्वारा पञ्चगव्यसे, **'हिरण्यवर्णा०'** (श्रीसूक्त) के द्वारा स्वर्ण-जलसे, **'आपो**

ब्रह्मान्०' (शु० यजु० ४ । २) मन्त्रके द्वारा वर्षाजलसे, व्याहृतियोंका उच्चारण करके कूप-जलसे तथा 'आपो देवी:०' (शु० यजु० १२ । ३५) मन्त्रके द्वारा तड़ाग-जल एवं तोरणवर्ती वरुण-कलशके जलसे वरुणदेवको स्नान करावे। 'वरुणस्योत्तम्भनमसि०' (शु० यजु० ४ । ३६) मन्त्रके द्वारा पर्वतीय जल (अर्थात् झरनेके पानी) से भरे हुए इक्यासी कलशोंद्वारा उसको स्नान करावे। फिर 'त्वं नो अग्ने वरुणस्य०' (शु० यजु० २१ । ३) इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे। व्याहृतियोंका उच्चारण करके मधुपर्क, 'बृहस्पते अति यदर्यो०' (शु० यजु० २६ । ३) मन्त्रसे वस्त्र 'इमं मे वरुण' (शु० यजु २१ । १) इस मन्त्रसे पवित्रक और प्रणवसे उत्तरीय समर्पित करे॥ ११—१६॥

वारुणसूक्तसे वरुणदेवताको पुष्प, चँवर, दर्पण, छत्र और पताका निवेदन करे। मूल-मन्त्रसे 'उत्तिष्ठ' ऐसा कहकर उत्थापन करे। उस रात्रिको अधिवासन करे। 'वरुणं वा०' इस मन्त्रसे संनिधीकरण करके वरुणसूक्तसे उनका पूजन करे। फिर मूल-मन्त्रसे सजीवीकरण करके चन्दन आदिद्वारा पूजन करे। मण्डलमें पूर्ववत् अर्चना कर ले। अग्निकुण्डमें समिधाओंका हवन करे। वैदिक मन्त्रोंसे गङ्गा आदि चारों गौओंका दोहन करे। तदनन्तर सम्पूर्ण दिशाओंमें यवनिर्मित चरुकी स्थापना करके होम करे। चरुको व्याहृति, गायत्री या मूल-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके, सूर्य, प्रजापति, दिव्, अन्तक-निग्रह, पृथ्वी, देहधृति, स्वधृति, रति, रमती, उग्र, भीम, रौद्र, विष्णु, वरुण, धाता, रायस्पोष, महेन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईश, अनन्त, ब्रह्मा, राजा जलेश्वर (वरुण)—इन नामोंका चतुर्थ्यन्तरूप बोलकर, अन्तमें स्वाहा लगाकर बलि समर्पित करे। 'इदं विष्णुः०' (शु० यजु० ५ । १५) और 'तद् विप्रासो०' (शु० यजु० ३४ । ४४)—इन मन्त्रोंसे आहुति दे। 'सोमो धेनुं०' (शु० यजु० ३४ । २१) मन्त्रसे छः आहुतियाँ देकर 'इमं मे वरुणः०' (शु० यजु० २१ । १) मन्त्रसे एक आहुति दे। 'आपो हि ष्ठा०' (शुक्ल यजु० ११ । ५०-५२) आदि तीन ऋचाओंसे तथा 'इमा रुद्र०' इत्यादि मन्त्रसे भी आहुतियाँ दे॥ १७—२५॥

फिर दसों दिशाओंमें बलि समर्पित करे और गन्ध-पुष्प आदिसे पूजन करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष प्रतिमाको उठाकर मण्डलमें स्थापित करे तथा गन्ध-पुष्प आदि एवं स्वर्ण-पुष्प आदिके द्वारा क्रमशः उसका पूजन करे। तदनन्तर श्रेष्ठ आचार्य आठों दिशाओंमें दो बित्ते प्रमाणके जलाशय और आठ बालुकामयी सुरम्य वेदियोंका निर्माण करे। 'वरुणस्य०' (यजु० ४ । ३६) इस मन्त्रसे घृत एवं यवनिर्मित चरुकी पृथक्-पृथक् एक सौ आठ आहुतियाँ देकर शान्ति-जल ले आवे और उस जलसे वरुणदेवके सिरपर अभिषेक करके सजीवीकरण करे। वरुणदेव अपनी धर्मपत्नी गौरीदेवीके साथ विराजमान नदी-नदोंसे घिरे हुए हैं—इस प्रकार उनका ध्यान करे। 'ॐ वरुणाय नमः।' मन्त्रसे पूजन करके सांनिध्यकरण करे। तत्पश्चात् वरुणदेवको उठाकर गजराजके पृष्ठदेश आदि सवारियोंपर मङ्गल-द्रव्योंसहित स्थापित करके नगरमें भ्रमण करावे। इसके बाद उस वरुण-मूर्तिको 'आपो हि ष्ठा०' आदि मन्त्रका उच्चारण करके त्रिमधुयुक्त कलश-जलमें रक्खे और कलशसहित वरुणको जलाशयके मध्यभागमें सुरक्षितरूपमें स्थापित कर दे॥ २६—३१॥

इसके बाद यजमान स्नान करके वरुणका ध्यान करे। फिर ब्रह्माण्ड संज्ञिका सृष्टिको अग्निबीज (र) से दग्ध करके उसकी भस्मराशिको जलसे प्लावित करनेकी भावना करे। 'समस्त लोक जलमय हो गया है'—ऐसी भावना करके उस जलमें जलेश्वर वरुणका ध्यान करे। इस प्रकार जलके मध्यभागमें वरुणदेवताका चिन्तन करके वहाँ यूपकी स्थापना करे। यूप चतुष्कोण, अष्टकोण या गोलाकार हो तो उत्तम माना गया है। उसकी लंबाई दस हाथकी होनी चाहिये। उसमें उपास्यदेवताका परिचायक चिह्न हो। उसका निर्माण किसी यज्ञ-सम्बन्धी वृक्षके काष्ठसे हुआ हो। ऐसा ही यूप कूपके लिये उपयोगी होता है। उसके मूलभागमें हेममय फलका न्यास करे। वापीमें पंद्रह हाथका, पुष्करिणीमें बीस हाथका और पोखरेमें पचीस हाथका यूपकाष्ठ जलके भीतर निवेशित करे। यज्ञमण्डपके प्राङ्गणमें 'यूप ब्रह्म०' आदि मन्त्रसे यूपकी स्थापना करके उसको वस्त्रोंसे आवेष्टित करे तथा यूपके ऊपर पताका लगावे। उसका गन्ध आदिसे पूजन करके जगत्के लिये शान्तिकर्म करे। आचार्यको भूमि, गौ, सुवर्ण तथा जलपात्र आदि दक्षिणामें दे। अन्य ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा दे और समागत जनोंको भोजन कराये।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ये केचित्सलिलार्थिनः।
ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वारिणा॥

'ब्रह्मासे लेकर तृण-पर्यन्त जो भी जलपिपासु हैं, वे इस तडागमें स्थित जलके द्वारा तृप्तिको प्राप्त हों।'— ऐसा कहकर जलका उत्सर्ग करे और जलाशयमें पञ्चगव्य डाले ॥ ३२—४० ॥

तदनन्तर 'आपो हि ष्ठा०' इत्यादि तीन ऋचाओंसे ब्राह्मणोंद्वारा सम्पादित शान्ति-जल तथा पवित्र तीर्थ-जलका निक्षेप करे एवं ब्राह्मणोंको गोवंशका दान करे। सर्व-साधारणके लिये बेरोक-टोक अन्न-वितरणका प्रबन्ध करावे। जो मनुष्य एक लाख अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करता है तथा जो एक बार भी जलाशयकी प्रतिष्ठा करता है, उसका पुण्य उन यज्ञोंकी अपेक्षा हजारों गुना अधिक है। वह स्वर्गलोकको प्राप्त होकर विमानमें प्रमुदित होता है और नरकको कभी नहीं प्राप्त होता है ॥ ४१—४३ ॥

जलाशयसे गौ आदि पशु जल पीते हैं, इससे कर्ता पापमुक्त हो जाता है। मनुष्य जलदानसे सम्पूर्ण दानोंका फल प्राप्त करके स्वर्गलोकको जाता है ॥ ४४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुआँ, बावड़ी तथा पोखरे आदिकी प्रतिष्ठाका वर्णन' नामक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय

सभा-स्थापन और एकशालादि भवनके निर्माण आदिकी विधि, गृहप्रवेशका क्रम तथा गोमातासे अभ्युदयके लिये प्रार्थना

श्रीभगवान् बोले—अब मैं सभा (देवमन्दिर) आदिकी स्थापनाका विषय बताऊँगा तथा इन सबकी प्रवृत्तिके विषयमें भी कुछ कहूँगा। भूमिकी परीक्षा करके वहाँ वास्तुदेवताका पूजन करे। अपनी इच्छाके अनुसार देव-सभा (मन्दिर) का निर्माण करके अपनी ही रुचिके अनुकूल देवताओंकी स्थापना करे। नगरके चौराहेपर अथवा ग्राम आदिमें सभाका निर्माण करावे; सूने स्थानमें नहीं। देव-सभाका निर्माण एवं स्थापना करनेवाला पुरुष निर्मल (पापरहित) होकर, अपने समस्त कुलका उद्धार करके स्वर्गलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। इस विधिसे भगवान् श्रीहरिके सतमहले मन्दिरका निर्माण करना चाहिये। ठीक उसी तरह, जैसे राजाओंके प्रासाद बनाये जाते हैं। अन्य देवताओंके लिये भी यही बात है। पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे जो ध्वज आदि आय होते हैं, उनमेंसे कोण-दिशाओंमें स्थित आयोंको त्याग देना चाहिये। चार, तीन, दो अथवा एकशालाका गृह बनावे। जहाँ व्यय (ऋण) अधिक हो, ऐसे 'पद'[1]पर घर न बनावे; क्योंकि वह व्ययरूपी दोषको उत्पन्न करनेवाला होता है। अधिक 'आय' होनेपर भी पीड़ाकी सम्भावना रहती है; अतः आय-व्ययको समभावसे संतुलित करके रक्खे ॥ १—५½ ॥

घरकी लंबाई और चौड़ाई जितने हाथकी हों, उन्हें परस्पर गुणित करनेसे जो संख्या होती है, उसे 'करराशि' कहा गया है; उसे गर्गाचार्यकी बतायी हुई ज्योतिष-विद्यामें प्रवीण गुरु (पुरोहित) आठगुना करे। फिर सातसे भाग देनेपर शेषके अनुसार 'वार'का निश्चय होता है और आठसे भाग देनेपर जो शेष होता है, वह 'व्यय' माना गया है। अथवा विद्वान् पुरुष करराशिमें सातसे गुणा करे। फिर उस गुणनफलमें आठसे भाग देकर शेषके अनुसार ध्वजादि आयोंकी कल्पना करे।

१. ध्वज, २. धूम्र, ३. सिंह, ४. श्वान, ५. वृषभ, ६. खर (गधा), ७. गज (हाथी) और ८. ध्वाङ्क्ष (काक)—ये क्रमशः आठ आय कहे गये हैं, जो पूर्वादि दिशाओंमें प्रकट होते हैं—इस प्रकार इनकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ६–९ ॥

तीन शालाओंसे युक्त गृहके अनेक भेदोंमेंसे तीन प्रारम्भिक भेद उत्तम माने गये हैं।* उत्तर-पूर्व दिशामें इसका निर्माण वर्जित है। दक्षिण दिशामें अन्यगृहसे युक्त दो शालाओंवाला भवन सदा श्रेष्ठ माना जाता है। दक्षिण दिशामें अनेक या एक शालावाला गृह भी उत्तम है। दक्षिण-पश्चिममें भी एक शालावाला गृह श्रेष्ठ होता है। एक शालावाले गृहके जो प्रथम (ध्रुव और धान्य नामक) दो भेद हैं, वे उत्तम हैं। इस प्रकार गृहके सोलह † भेदोंमेंसे

[1] भूमिकी लंबाई-चौड़ाईको परस्पर गुणित करनेसे जो संख्या आती है, उसे 'पद' कहते हैं।

*-† नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीयपाद, अध्याय ५६के श्लोक

अधिकांश (अर्थात् १०) उत्तम हैं और शेष (छः, अर्थात् पाँचवाँ, नवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, तेरहवाँ और चौदहवाँ भेद) भयावह हैं। चार शाला (या द्वार) वाला गृह सदा उत्तम है; वह सभी दोषोंसे रहित है। देवताके लिये एक मंजिलसे लेकर सात मंजिलतकका मन्दिर बनावे, जो द्वार-वेधादि दोष तथा पुराने सामानसे रहित हो। उसे सदा मानव-समुदायके लिये कथित कर्म एवं प्रतिष्ठा-विधिके अनुसार स्थापित करे ॥ १०–१३½ ॥

गृहप्रवेश करनेवाले गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह आलस्य छोड़कर प्रातःकाल सर्वौषधि-मिश्रित जलसे स्नान करके, पवित्र हो, दैवज्ञ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें मधुर अन्न (मीठे पकवान) भोजन करावे। फिर उन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर गायके पीठपर हाथ रखे हुए, पूर्ण कलश आदिसे सुशोभित तोरणयुक्त गृहमें प्रवेश करे। घरमें जाकर एकाग्रचित्त हो, गौके सम्मुख हाथ जोड़ यह पुष्टिकारक मन्त्र पढ़े—'ॐ श्रीवसिष्ठजीके द्वारा लालित-पालित नन्दे! धन और संतान देकर मेरा आनन्द बढ़ाओ। प्रजाको विजय दिलानेवाली भार्गवनन्दिनि जये! तुम मुझे धन और सम्पत्तिसे आनन्दित करो। अङ्गिराकी पुत्री पूर्णे! तुम मेरे मनोरथको पूर्ण करो—मुझे पूर्णकाम बना दो। काश्यपकुमारी भद्रे! तुम मेरी बुद्धिको कल्याणमयी बना दो। सबको आनन्द प्रदान करनेवाली वसिष्ठनन्दिनी नन्दे! तुम समस्त बीजों और ओषधियोंसे युक्त तथा सम्पूर्ण रत्नौषधियोंसे सम्पन्न होकर इस सुन्दर घरमें सदा आनन्दपूर्वक रहो ॥ १४–१९ ॥

'कश्यप प्रजापतिकी पुत्री देवि भद्रे! तुम सर्वथा सुन्दर हो, महती महत्तासे युक्त हो, सौभाग्यशालिनी एवं उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हो; मेरे घरमें आनन्द-पूर्वक निवास करो। देवि भार्गवि जये! सर्वश्रेष्ठ आचार्य-चरणोंने तुम्हारा पूजन किया है, तुम चन्दन और पुष्पमालासे अलंकृत हो तथा संसारके समस्त ऐश्वर्योंको देनेवाली हो। तुम मेरे घरमें आनन्दपूर्वक विहरो। अङ्गिरामुनिकी पुत्री पूर्णे! तुम अव्यक्त एवं अव्याकृत हो; इष्टके देवि! तुम मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करो। मैं तुम्हारी इस घरमें प्रतिष्ठा चाहता हूँ। देवि! तुम देशके स्वामी (राजा), ग्राम या नगरके स्वामी तथा गृहस्वामीपर भी अनुग्रह करनेवाली हो। मेरे घरमें जन, धन, हाथी, घोड़े तथा गाय-भैंस आदि पशुओंकी वृद्धि करनेवाली बनो' ॥ २०–२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सभा आदिकी स्थापनाके विधानका वर्णन' नामक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

छाछठवाँ अध्याय

देवता-सामान्य-प्रतिष्ठा

श्रीभगवान् कहते हैं—अब मैं देव-समुदायकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। यह भगवान् वासुदेवकी प्रतिष्ठाकी भाँति ही होती है। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, ऋषि तथा अन्य देवगण—ये देवसमुदाय हैं। इनकी स्थापनाके विषयमें जो विशेषता है, वह बतलाता हूँ। जिस देवताका जो नाम है, उसका आदि अक्षर ग्रहण करके उसे मात्राओंद्वारा भेदन करे, अर्थात् उसमें स्वरमात्रा लगावे। फिर दीर्घ स्वरोंसे युक्त उन बीजोंद्वारा अङ्गन्यास करे। उस प्रथम अक्षरको बिन्दु और प्रणवसे संयुक्त करके 'बीज' माने। समस्त देवताओंका मूल-मन्त्रके द्वारा ही पूजन एवं स्थापन करे। इसके सिवा मैं नियम, व्रत, कृच्छ्र, मठ, सेतु, गृह, मासोपवास और द्वादशीव्रत आदिकी स्थापनाके विषयमें भी कहूँगा ॥ १–४½ ॥

पहले शिला, पूर्णकुम्भ और कांस्यपात्र लाकर रखे। साधक ब्रह्मकूर्चको लाकर 'तद् विष्णोः परमं' (शु० यजु० ६। ५) मन्त्रके द्वारा कपिला गौके दुग्धसे यवमय चरु

५८०से ५८२में कहा गया है कि 'घरके छः भेद हैं—एकशाला, द्विशाला, त्रिशाला, चतुःशाला, सप्तशाला और दशशाला। इनमेंसे प्रत्येकके सोलह-सोलह भेद होते हैं। उन सबके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१. ध्रुव, २. धान्य, ३. जय, ४. नन्द, ५. खर, ६. कान्त, ७. मनोरम, ८. सुमुख, ९. दुर्मुख, १०. क्रूर, ११. शत्रुद, १२. स्वर्णद, १३. क्षय, १४. आक्रन्द, १५. विपुल, १६. विजय। पूर्वादि दिशाओंमें इनका निर्माण होता है। इनका जैसा नाम, वैसा ही गुण है।

अर्पित करे। प्रणवके द्वारा उसमें घृत डालकर दर्वी (कलछी) से संघटित करे। इस प्रकार चरुको सिद्ध करके उतार ले। फिर श्रीविष्णुका पूजन करके हवन करे। व्याहृति और गायत्रीसे युक्त **'तद्विप्रासो०'** (शु० यजु० ३४। ४४) आदि मन्त्रसे चरु–होम करे। **'विश्वतश्चक्षुः०'** (शु० यजु० १७। १९) आदि वैदिक मन्त्रोंसे भूमि, अग्नि, सूर्य, प्रजापति, अन्तरिक्ष, द्यौ, ब्रह्मा, पृथ्वी, कुबेर तथा राजा सोमको चतुर्थ्यन्त एवं **'स्वाहा'** संयुक्त करके इनके उद्देश्यसे आहुतियाँ प्रदान करे। इन्द्र आदि देवताओंको इन्द्र आदिसे सम्बन्धित मन्त्रोंद्वारा आहुति दे। इस प्रकार चरुभागोंका हवन करके आदरपूर्वक दिग्बलि समर्पित करे॥ ५–१०॥

फिर एक सौ आठ पलाश-समिधाओंका हवन करके पुरुषसूक्तसे घृत-होम करे। **'इरावती धेनुमती०'** (शु० यजु० ५। १६) मन्त्रसे तिलाष्टकका होम करके ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव—इन देवताओंके पार्षदों, ग्रहों तथा लोकपालोंके लिये पुनः आहुति दे। पर्वत, नदी, समुद्र—इन सबके उद्देश्यसे आहुतियोंका हवन करके, तीन महाव्याहृतियोंका उच्चारण करके, स्रुवाके द्वारा तीन पूर्णाहुति दे। पितामह! **'वौषट्'** संयुक्त वैष्णव मन्त्रसे पञ्चगव्य तथा चरुका प्राशन करके आचार्यको सुवर्णयुक्त तिलपात्र, वस्त्र एवं अलंकृत गौ दक्षिणामें दे। विद्वान् पुरुष **'भगवान् विष्णुः प्रीयताम्।'**—ऐसा कहकर व्रतका विसर्जन करे॥ ११–१५॥

मैं मासोपवास आदि व्रतोंकी दूसरी विधि भी कहता हूँ। पहले देवाधिदेव श्रीहरिको यज्ञसे संतुष्ट करे। तिल, तण्डुल, नीवार, श्यामाक अथवा यवके द्वारा वैष्णव चरु अर्पित करे। उसको घृतसे संयुक्त करके उतारकर मूर्ति-मन्त्रोंसे हवन करे। तदनन्तर मासाधिपति विष्णु आदि देवताओंके उद्देश्यसे पुनः होम करे॥ १६–१८॥

ॐ श्रीविष्णवे स्वाहा। ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा। ॐ विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा। ॐ नरसिंहाय स्वाहा। ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा।

—आदि मन्त्रोंसे घृतप्लुत अश्वत्थवृक्षकी बारह समिधाओंका हवन करे। **'विष्णो रराटमसि०'** (यजु० शु० ५। २१) मन्त्रके द्वारा भी बारह आहुतियाँ दे। फिर **'इदं विष्णु०'** (शु० यजु० ५। १५) **'इरावती०'** (शु० यजु० ५। १६) मन्त्रसे चरुकी बारह आहुतियाँ प्रदान करे। **'तद्विप्रासो०'** (शु० यजु० ३४। ४४) आदि मन्त्रसे घृताहुति समर्पित करे। फिर शेष होम करके तीन पूर्णाहुति दे। **'युञ्जते'** (शु० यजु० ५। १४) आदि अनुवाकका जप करके मन्त्रके आदिमें स्वकर्तृक मन्त्रोच्चारणके पश्चात् पीपलके पत्ते आदिके पात्रमें रखकर चरुका प्राशन करे॥ १९–२२½॥

तदनन्तर मासाधिपतियोंके उद्देश्यसे बारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे। आचार्य उनमें तेरहवाँ होना चाहिये। उनको मधुर जलसे पूर्ण तेरह कलश, उत्तम छत्र, पादुका, श्रेष्ठ वस्त्र, सुवर्ण तथा माला प्रदान करे। व्रतपूर्तिके लिये सभी वस्तुएँ तेरह-तेरह होनी चाहिये। 'गौएँ प्रसन्न हों। वे हर्षित होकर चरें।'—ऐसा कहकर पौसला, उद्यान, मठ तथा सेतु आदिके समीप गोपथ (गोचरभूमि) छोड़कर दस हाथ ऊँचा यूप निवेशित करे। गृहस्थ घरमें होम तथा अन्य कार्य विधिवत् करके, पूर्वोक्त विधिके अनुसार गृहमें प्रवेश करे। इन सभी कार्योंमें जनसाधारणके लिये अनिवारित अन्न-सत्र खुलवा दे। विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे॥ २३–२८॥

जो मनुष्य उद्यानका निर्माण कराता है, वह चिरकाल-तक नन्दनकाननमें निवास करता है। मठ-प्रदानसे स्वर्ग-लोक एवं इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। प्रपादान करनेवाला वरुणलोकमें तथा पुलका निर्माण करनेवाला देवलोकमें निवास करता है। ईंटका सेतु बनवानेवाला भी स्वर्गको प्राप्त होता है। गोपथ-निर्माणसे गोलोककी प्राप्ति होती है। नियमों और व्रतोंका पालन करनेवाला विष्णुके सारूप्यको अधिगत करता है। कृच्छ्रव्रत करनेवाला सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है। गृहदान करके दाता प्रलयकालपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। गृहस्थ-मनुष्योंको शिव आदि देवताओंकी समुदाय-प्रतिष्ठा करनी चाहिये॥ २९–३२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'देवता-सामान्य-प्रतिष्ठा-कथन' नामक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६६॥

सड़सठवाँ अध्याय

जीर्णोद्धार-विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं जीर्णोद्धारकी विधि बतलाता हूँ। आचार्य मूर्तिको विभूषित करके स्नान करावे। अत्यन्त जीर्ण, अङ्गहीन, भग्न तथा शिलामात्रावशिष्ट (विशेष चिह्नसे रहित) प्रतिमाका परित्याग करे। उसके स्थानपर पूर्ववत् देवगृहमें नवीन स्थिर-मूर्तिका न्यास करे। आचार्य वहाँपर [भूतशुद्धि-प्रकरणमें उक्त] संहारविधिसे सम्पूर्ण तत्त्वोंका संहार करे। गुरु नृसिंह-मन्त्रकी सहस्र आहुतियाँ देकर मूर्तिको उखाड़ दे। फिर दारुमयी मूर्तिको अग्निमें जला दे, प्रस्तरनिर्मित विसर्जित प्रतिमाको जलमें फेंक दे, धातुमयी या रत्नमयी मूर्ति हो तो उसे समुद्रकी अगाध जल-राशिमें विसर्जित कर दे। जीर्णाङ्ग प्रतिमाको यानपर आरूढ़ कर, वस्त्र आदिसे आच्छादित करके, गाजे-बाजेके साथ ले जाय और जलमें छोड़ दे। फिर आचार्यको दक्षिणा दे। उसी दिन पूर्व प्रतिमाके प्रमाण तथा द्रव्यके अनुसार उसी प्रमाणकी मूर्ति स्थापित करे। इसी प्रकार कूप, वापी और तड़ाग आदिका जीर्णोद्धार करनेसे भी महान् फलकी प्राप्ति होती है॥ १-६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जीर्णोद्धारविधि-कथन' नामक सड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६७ ॥

अड़सठवाँ अध्याय

उत्सव-विधिका कथन

श्रीभगवान् कहते हैं—अब मैं उत्सवकी विधिका वर्णन करता हूँ। देवस्थापन होनेके पश्चात् उसी वर्षमें एकरात्र, त्रिरात्र या अष्टरात्र उत्सव मनावे; क्योंकि उत्सवके बिना देवप्रतिष्ठा निष्फल होती है। अयन या विषुव-संक्रान्तिके समय शयनोत्सव या देवगृहमें अथवा कर्ताके जिस प्रकार अनुकूल हो, भगवान्की नगरयात्रा करावे। उस समय मङ्गलाङ्कुरोंका रोपण, नृत्य-गीत तथा गाजे-बाजेका प्रबन्ध करे। अङ्कुरोंके रोपणके लिये शराव (परई) या हँड़िया श्रेष्ठ मानी गयी हैं। यव, शालि, तिल, मुद्ग, गोधूम, श्वेत सर्षप, कुलत्थ, माष और निष्पावको प्रक्षालित करके वपन करे। प्रदीपोंके साथ रात्रिमें नगर-भ्रमण करते हुए इन्द्रादि दिक्पालों, कुमुद आदि दिग्गजों तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके उद्देश्यसे पूर्वादि दिशाओंमें बलि-प्रदान करे। जो मनुष्य देवबिम्बका वहन करते हुए देवयात्राका अनुगमन करते हैं, उनको पद-पदपर अश्वमेध यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है॥ १-६½ ॥

आचार्य पहले दिन देवमन्दिरमें आकर देवताको सूचित करे—'भगवन्! देवश्रेष्ठ! आपको कल तीर्थयात्रा करनी है। सर्वज्ञ! आप उसका आरम्भ करनेकी आज्ञा देनेमें सदा समर्थ हैं।' देवताके सम्मुख इस प्रकार निवेदन करके उत्सव-कार्यका आरम्भ करे। चार स्तम्भोंसे युक्त मङ्गलाङ्कुरों-की घटिकासे समन्वित तथा विभूषित वेदिकाके समीप जाय। उसके मध्यभागमें स्वस्तिकपर प्रतिमाका न्यास करे। काम्य अर्थको लिखकर चित्रोंसे स्थापित करके अधिवासन करे॥ ७-१० ॥

फिर विद्वान् पुरुष वैष्णवोंके साथ मूल-मन्त्रसे देवमूर्तिके अङ्गोंमें घृतका लेपन करे तथा सारी रात घृतधारासे अभिषेक करे। देवताको दर्पण दिखलाकर, आरती, गीत, वाद्य आदिके साथ मङ्गलकृत्य करे, व्यजन डुलावे एवं पूजन करे। फिर दीप, गन्ध तथा पुष्पादिसे यजन करे। हरिद्रा, कपूर, केसर और श्वेत-चन्दन-चूर्णको देवमूर्ति तथा भक्तोंके सिरपर छोड़नेसे समस्त तीर्थोंके फलकी प्राप्ति होती है। आचार्य यात्राके लिये नियत देवमूर्तिकी रथपर स्थापना और अर्चना करके छत्र-चँवर तथा शङ्खनाद आदिके साथ राष्ट्रका पालन करनेवाली नदीके तटपर ले जाय॥ ११-१४ ॥

नदीमें नहलानेसे पूर्व वहाँ तटपर वेदीका निर्माण करे। फिर मूर्तिको यानसे उतारकर उसे वेदिकापर विन्यस्त करे। वहाँ चरु निर्मित करके उसकी आहुति देनेके पश्चात् पायसका

होम करे। फिर वरुणदेवतासम्बन्धी मन्त्रोंसे तीर्थोंका आवाहन करे। 'आपो हि ष्ठा०' आदि मन्त्रोंसे उनको अर्घ्य प्रदान करके पूजन करे। देवमूर्तिको लेकर जलमें अघमर्षण करके ब्राह्मणों और महाजनोंके साथ स्नान करे। स्नानके पश्चात् मूर्तिको ले आकर वेदिकापर रक्खे। उस दिन देवताका वहाँ पूजन करके देवप्रासादमें ले जाय। आचार्य अग्निमें स्थित देवका पूजन करे। यह उत्सव भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥ १५-१९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'उत्सव-विधिकथन' नामक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

स्नपनोत्सवके विस्तारका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं स्नपनोत्सवका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। प्रासादके सम्मुख मण्डपके नीचे मण्डलमें कलशोंका न्यास करे। प्रारम्भकालमें तथा सम्पूर्ण कर्मोंको करते समय भगवान् श्रीहरिका ध्यान, पूजन और हवन करे। पूर्णाहुतिके साथ हजार या सौ आहुतियाँ दे। फिर स्नान द्रव्योंको लाकर कलशोंका विन्यास करे। कण्टसूत्रयुक्त कुम्भोंका अधिवासन करके मण्डलमें रक्खे ॥ १—३ ॥

चौकोर मण्डलका निर्माण करके उसे ग्यारह रेखाओं-द्वारा विभाजित कर दे। फिर पार्श्वभागकी एक रेखा मिटा दे। इस तरह उस मण्डलमें चारों दिशाओंमें नौ-नौ कोष्ठकोंकी स्थापना करके उनको पूर्व आदिके क्रमसे शालिचूर्ण आदिसे पूरित करे। फिर विद्वान् मनुष्य कुम्भमुद्राकी रचना करके पूर्वादि दिशाओंमें स्थित नवकमें कलश लाकर रक्खे। पुण्डरीकाक्ष-मन्त्रसे उनमें दर्भ डाले। सर्वरत्नसमन्वित जलपूर्ण कुम्भको मध्यमें विन्यस्त करे। शेष आठ कुम्भोंमें क्रमशः यव, व्रीहि, तिल, नीवार, श्यामाक, कुलत्थ, मुद्ग और श्वेत सर्षप डालकर आठ दिशाओंमें स्थापित करे। पूर्वदिशावर्ती नवकमें घृतपूर्ण कुम्भ रक्खे। इसमें पलाश, अश्वत्थ, वट, बिल्व, उदुम्बर, प्लक्ष, जम्बू, शमी तथा कपित्थ वृक्षकी छालका क्वाथ डाले। आग्नेयकोणवर्ती नवकमें मधुपूर्ण घटका न्यास करे। इस कलशमें गोशृङ्ग, पर्वत, गङ्गाजल, गजशाला, तीर्थ, खेत और खलिहान—इन आठ स्थलोंकी मृत्तिका छोड़े ॥ ४—१० ॥

दक्षिणदिशावर्ती नवकमें तिल-तैलसे परिपूर्ण घट स्थापित करे। उसमें क्रमशः नारंगी, जम्बीरी नीबू, खजूर, मृत्तिका, नारिकेल, सुपारी, अनार और पनस (कटहल) का फल डाल दे। नैर्ऋत्यकोणगत नवकमें क्षीरपूर्ण कलश रक्खे। उसमें कुङ्कुम, नागपुष्प, चम्पक, मालती, मल्लिका, पुनाग, करवीर एवं कमल-कुसुमोंको प्रक्षिप्त करे। पश्चिमीय नवकमें नारिकेल-जलसे पूर्ण कलशमें नदी, समुद्र, सरोवर, कूप, वर्षा, हिम, निर्झर तथा देवनदीका जल छोड़े। वायव्यकोणवर्ती नवकमें कदलीजलपूरित कुम्भ रक्खे। उसमें सहदेवी, कुमारी, सिंही, व्याघ्री, अमृता, विष्णुपर्णी, दूर्वा, वच—इन दिव्य ओषधियोंको प्रक्षिप्त करे। पूर्वादि उत्तरवर्ती नवकमें दधिकलशका विन्यास करे। उसमें क्रमशः पत्र, इलायची, तज, कूट, सुगन्धबाला, चन्दनद्वय, लता, कस्तूरी, कृष्णागुरु तथा सिद्ध द्रव्य डाल दे। ईशानस्थ नवकमें शान्तिजलसे पूर्ण कुम्भ रक्खे। उसमें क्रमशः शुभ्र रजत, लौह, त्रपु, कांस्य, सीसक तथा रत्न डाले। प्रतिमाको घृतका अभ्यङ्ग तथा उद्वर्तन करके मूल-मन्त्रसे स्नान करावे। फिर उसका गन्धादिके द्वारा पूजन करे। अग्निमें होम करके पूर्णाहुति दे। सम्पूर्ण भूतोंको बलि प्रदान करे। ब्राह्मणोंको दक्षिणापूर्वक भोजन करावे। देवता और मुनि तथा बहुत-से भूपाल भी भगवद्विग्रहका अभिषेक करके ईश्वरत्वको प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार एक हजार आठ कलशोंसे स्नपनोत्सवका अनुष्ठान करे। इससे मनुष्य सब कुछ प्राप्त करता है। यज्ञके अवभृथ-स्नानमें भी पूर्णस्नान सम्पन्न हो जाता है। पार्वती तथा लक्ष्मीके विवाह आदिमें भी स्नपनोत्सव किया जाता है ॥ ११—२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'स्नपनोत्सव-विधि-कथन' नामक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

सत्तरवाँ अध्याय

वृक्षोंकी प्रतिष्ठाकी विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब मैं वृक्षप्रतिष्ठाका वर्णन करता हूँ, जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली है। वृक्षोंको सर्वौषधिजलसे लिप्त, सुगन्धित चूर्णसे विभूषित तथा मालाओंसे अलंकृत करके वस्त्रोंसे आवेष्टित करे। सभी वृक्षोंका सुवर्णमयी सूचीसे कर्णवेधन तथा सुवर्णमयी शलाकासे अञ्जन करे। वेदिकापर सात फल रक्खे। प्रत्येक वृक्षका अधिवासन करे तथा कुम्भ समर्पित करे। फिर इन्द्र आदि दिक्पालोंके उद्देश्यसे बलिप्रदान करे। वृक्षके अधिवासनके समय ऋग्वेद, यजुर्वेद या सामवेदके मन्त्रोंसे अथवा वरुण-देवता-सम्बन्धी तथा मत्तभैरव-सम्बन्धी मन्त्रोंसे होम करे। श्रेष्ठ ब्राह्मण वृक्षवेदीपर स्थित कलशोंद्वारा वृक्षों और यजमानको स्नान करावें। यजमान अलंकृत होकर ब्राह्मणोंको गो, भूमि, आभूषण तथा वस्त्रादिकी दक्षिणा दे तथा चार दिनतक क्षीरयुक्त भोजन करावे। इस कर्ममें तिल, घृत तथा पलाश-समिधाओंसे हवन करना चाहिये। आचार्यको दुगुनी दक्षिणा दे। मण्डप आदिका पूर्ववत् निर्माण करे। वृक्ष तथा उद्यानकी प्रतिष्ठासे पापोंका नाश होकर परम सिद्धिकी प्राप्ति होती है। अब सूर्य, शिव, गणपति, शक्ति तथा श्रीहरिके परिवारकी प्रतिष्ठाकी विधि सुनिये, जो भगवान् महेश्वरने कार्तिकेयको बतलायी थी ॥ १—९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पादप-प्रतिष्ठा-विधिवर्णन' नामक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

गणपतिपूजनकी विधि

भगवान् महेश्वरने कहा—कार्तिकेय ! मैं विघ्नोंके विनाशके लिये गणपतिपूजाकी विधि बतलाता हूँ, जो सम्पूर्ण अभीष्ट अर्थोंको सिद्ध करनेवाली है। **'गणंजयाय स्वाहा०'**—हृदय, **'एकदंष्ट्राय हुं फट् ।'**—सिर, **'अचलकर्णिने नमो नमः ।'**—शिखा, **'गजवक्त्राय नमो नमः ।'** कवच, **'महोदराय चण्डाय नमः ।'** नेत्र एवं **'सुदण्डहस्ताय हुं फट् ।'** अस्त्र है।—इन मन्त्रोंद्वारा अङ्गन्यास करे। गण, गुरु, गुरु-पादुका, शक्ति, अनन्त और धर्म—इनका मुख्य कमल-मण्डलके ऊर्ध्व तथा निम्न दलोंमें पूजन करे एवं कमलकर्णिकामें बीजकी अर्चना करे। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजोवती, सत्या एवं विघ्ननाशिनी—इन नौ पीठशक्तियोंकी भी पूजा करे। फिर चन्दनके चूर्णका आसन समर्पित करे। 'यं' शोषकवायु, 'र' अग्नि, 'लं' प्लव (पृथिवी) तथा 'वं' अमृतका बीज माना गया है।

'ॐ लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।'—यह गणेश-गायत्री-मन्त्र है। गणपति, गणाधिप, गणेश, गणनायक, गणक्रीड, वक्रतुण्ड, एक-दंष्ट्र, महोदर, गजवक्त्र, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशन, धूम्र-वर्ण तथा इन्द्र आदि दिक्पाल—इन सबका गणपतिकी पूजामें अङ्गरूपसे पूजन करे ॥ १—८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गणपतिपूजा-विधिकथन' नामक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

बहत्तरवाँ अध्याय

स्नान, संध्या और तर्पणकी विधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं नित्य-नैमित्तिक आदि स्नान, संध्या और प्रतिष्ठासहित पूजाका वर्णन करूँगा। किसी तालाब या पोखरेसे अस्त्र-मन्त्र (फट्) के उच्चारणपूर्वक आठ अङ्गुल गहरी मिट्टी खोदकर निकाले। उसे सम्पूर्णरूपसे ले आकर उसी मन्त्र-द्वारा उसका पूजन करे। इसके बाद शिरोमन्त्र (स्वाहा) से उस मृत्तिकाको जलाशयके तटपर रखकर अस्त्रमन्त्रसे उसका शोधन करे। फिर शिखामन्त्र (वषट्) के उच्चारण-

संध्यादेवी—प्रातःकाल | संध्यादेवी—मध्याह्न | संध्यादेवी—सायंकाल [अग्नि० अ० ७२
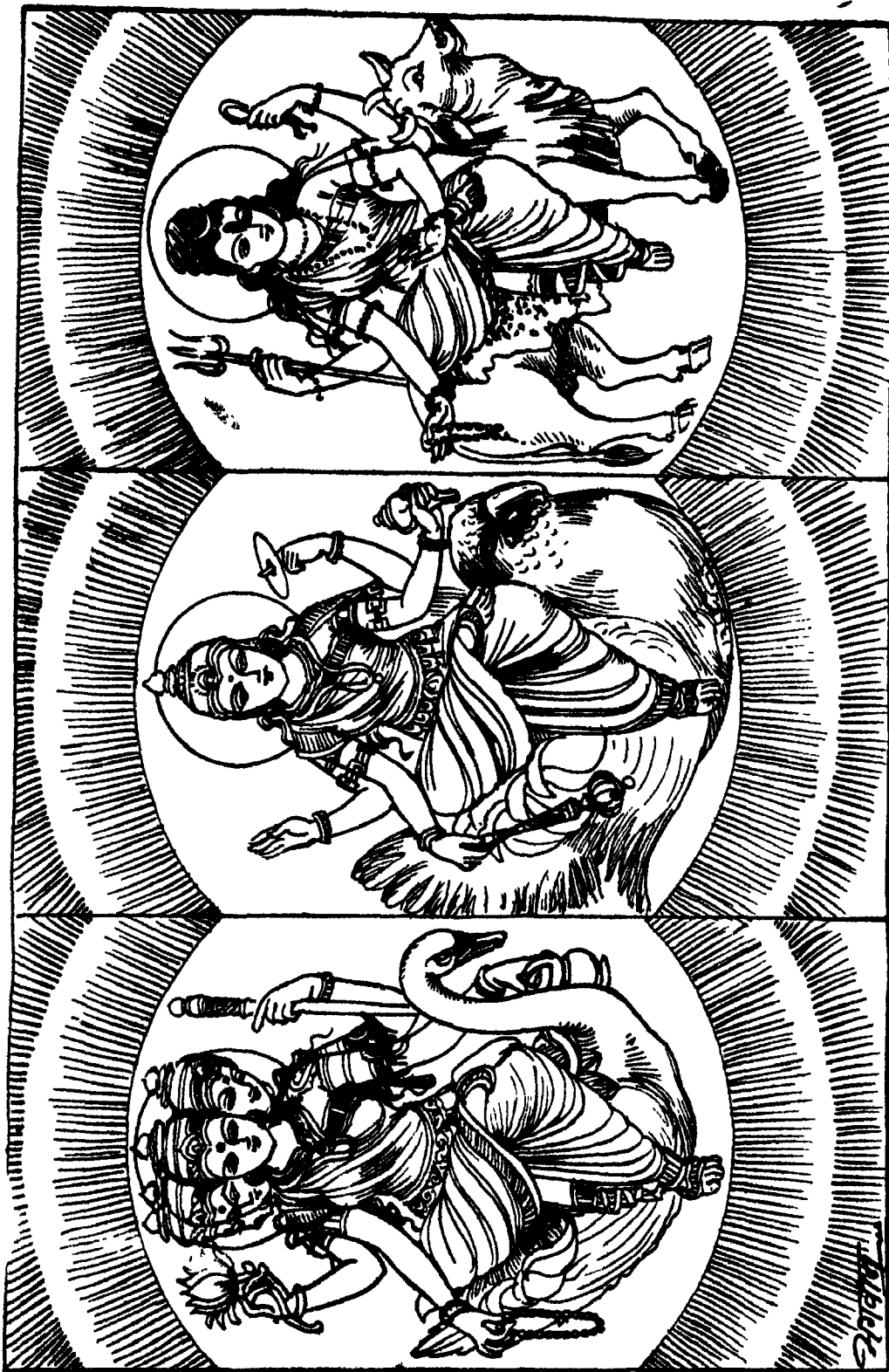
पूर्वक उसमेंसे तृण आदिको निकालकर, कवच-मन्त्र (हुम्)-से उस मृत्तिकाके तीन भाग करे । प्रथम भागकी जलमिश्रित मिट्टीको नाभिसे लेकर पैरतकके अङ्गोंमें लगावे । तत्पश्चात् उसे धोकर, अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित हुई दूसरे भागकी दीप्तिमती मृत्तिकाद्वारा शेष सम्पूर्ण शरीरको अनुलिप्त करके, दोनों हाथोंसे कान-नाक आदि इन्द्रियोंके छिद्रोंको बंद कर, साँस रोक मन-ही-मन कालाग्निके समान तेजोमय अस्त्रका चिन्तन करते हुए पानीमें डुबकी लगाकर स्नान करे । यह मल (शारीरिक मैल) को दूर करनेवाला स्नान कहलाता है । इसे इस प्रकार करके जलके भीतरसे निकल आवे और संध्या करके विधि-स्नान करे ॥ १–५½ ॥

हृदय-मन्त्र (नमः) के उच्चारणपूर्वक अङ्कुश[1]मुद्राद्वारा सरस्वती आदि तीर्थोंमेंसे किसी एक तीर्थका भावनाद्वारा आकर्षण करके, फिर संहार[2]मुद्राद्वारा उसे अपने समीपवर्ती जलाशयमें स्थापित करे । तदनन्तर शेष (तीसरे भागकी) मिट्टी लेकर नाभितक जलके भीतर प्रवेश करे और उत्तराभिमुख हो, बायीं हथेलीपर उसके तीन भाग करे । दक्षिण-भागकी मिट्टीको अङ्गन्यास-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा (अर्थात् **ॐ हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट्** तथा **अस्त्राय फट्**—इन छः मन्त्रोंद्वारा) एक बार अभिमन्त्रित करे । पूर्वभागकी मिट्टीको '**अस्त्राय फट्**'—इस मन्त्रका सात बार जप करके अभिमन्त्रित करे तथा उत्तरभागकी मिट्टीका '**ॐ नमः शिवाय ।**'—इस मन्त्रका दस बार जप करके अभिमन्त्रण करे । इस तरह पूर्वोक्त मृत्तिकाके तीन भागोंका क्रमशः अभिमन्त्रण करना चाहिये । तत्पश्चात् पहले उन मृत्तिकाओंमेंसे थोड़ा-थोड़ा-सा भाग लेकर सम्पूर्ण दिशाओंमें छोड़े । छोड़ते समय '**अस्त्राय हुं फट् ।**' का जप करता रहे । इसके बाद '**ॐ नमः शिवाय ।**'—इस शिव-मन्त्रका तथा '**ॐ सोमाय स्वाहा ।**' इस सोम-मन्त्रका जप करके जलमें अपनी भुजाओंको घुमाकर उसे शिवतीर्थस्वरूप बना दे तथा पूर्वोक्त अङ्गन्यास-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करते हुए उसे मस्तकसे लेकर पैरतकके सारे अङ्गोंमें लगावे ॥ ६—९ ॥

तदनन्तर अङ्गन्यास-सम्बन्धी चार मन्त्रोंका पाठ करते हुए दाहिनेसे आरम्भ करके बायें तकके हृदय, सिर, शिखा और दोनों भुजाओंका स्पर्श करे तथा नाक, कान आदि सारे छिद्रोंको बंद करके सम्मुखीकरण-मुद्राद्वारा भगवान् शिव, विष्णु अथवा गङ्गाजीका स्मरण करते हुए जलमें गोता लगावे । '**ॐ हृदयाय नमः ।**' '**शिरसे स्वाहा ।**' '**शिखायै वषट् ।**' '**कवचाय हुम् ।**' '**नेत्रत्रयाय वौषट् ।**' तथा '**अस्त्राय फट् ।**'—इन षडङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंका उच्चारण करके, जलमें स्थित हो, बायें और दायें हाथ, दोनोंको मिलाकर, कुम्भमुद्राद्वारा अभिषेक करे । फिर रक्षाके लिये पूर्वादि दिशाओंमें जल छोड़े । सुगन्ध और आँवला आदि राजोचित उपचारसे स्नान करे । स्नानके पश्चात् जलसे बाहर निकलकर संहारिणी-मुद्राद्वारा उस तीर्थका उपसंहार करे । इसके बाद विधि-विधानसे शुद्ध, संहितामन्त्रसे अभिमन्त्रित तथा निवृत्ति आदिके द्वारा शोधित भस्मसे स्नान करे ॥ १०—१४½ ॥

'**ॐ अस्त्राय हुं फट् ।**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके, सिरसे पैरतक भस्मद्वारा मलस्नान करके फिर विधिपूर्वक शुद्ध स्नान करे । ईशान, तत्पुरुष, अघोर, गुह्यक या वामदेव तथा सद्योजात-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा क्रमशः मस्तक, मुख, हृदय, गुह्याङ्ग तथा शरीरके अन्य अवयवोंमें उद्वर्तन (अनुलेप) लगाना चाहिये । तीनों संध्याओंके समय, निशीथकालमें, वर्षाके पहले और पीछे, सोकर, खाकर, पानी पीकर तथा अन्य आवश्यक कार्य करके आग्नेय स्नान करना चाहिये । स्त्री, नपुंसक, शूद्र, बिल्ली, शव और चूहेका स्पर्श हो जानेपर भी आग्नेय स्नानका विधान है । चुल्लूभर पवित्र जल पी ले, यही 'आग्नेय-स्नान' है । सूर्यकी किरणोंके दिखायी देते समय यदि आकाशसे जलकी वर्षा हो रही हो तो पूर्वाभिमुख हो, दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर, ईशान-मन्त्रका उच्चारण करते हुए, सात पग चलकर उस वर्षाके जलसे स्नान करे । यह 'माहेन्द्र-स्नान' कहलाता है । गौओंके समूहके मध्यभागमें स्थित हो उनकी खुरोंसे खुदकर ऊपरको उड़ी हुई धूलसे इष्टदेव-सम्बन्धी मूलमन्त्रका जप करते हुए अथवा कवच-मन्त्र (हुम्) का जप करते हुए जो स्नान किया जाता है, उसे 'पावनस्नान' कहते हैं ॥ १५—२०½ ॥

---

१. मध्यमा अँगुलीको सीधी रखकर तर्जनीको बिचले पोरुतक उसके साथ सटाकर कुछ सिकोड़ ले—यही अङ्कुश-मुद्रा है ।

२. अधोमुख वामहस्तपर ऊर्ध्वमुख दाहिना हाथ रखकर अँगुलियोंको परस्पर ग्रथित करके घुमावे—यह संहार-मुद्रा है ।

(मन्त्रमहार्णव)

सद्योजात आदि मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक जो जलसे अभिषेक किया जाता है, उसे 'मन्त्रस्नान' कहते हैं। इसी प्रकार वरुणदेवता और अग्निदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंसे भी यह स्नान-कर्म सम्पन्न किया जाता है। मन-ही-मन मूल-मन्त्रका उच्चारण करके प्राणायामपूर्वक मानसिक स्नान करना चाहिये। इसका सर्वत्र विधान है। विष्णुदेवता आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्योंमें उन-उन देवताओंके मन्त्रोंसे ही स्नान करावे ॥ २१—२३ ॥

कार्तिकेय! अब मैं विभिन्न मन्त्रोंद्वारा संध्या-विधिका सम्यग् वर्णन करूँगा। भलीभाँति देख-भालकर ब्रह्मतीर्थसे तीन बार जलका मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करे। आचमन-कालमें आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन शब्दोंके अन्तमें 'नमः' सहित 'स्वाहा' शब्द जोड़कर मन्त्रपाठ करना चाहिये। यथा '**ॐ आत्मतत्त्वाय नमः स्वाहा।' 'ॐ विद्यातत्त्वाय नमः स्वाहा।' 'ॐ शिवतत्त्वाय नमः स्वाहा।**'—इन मन्त्रोंसे आचमन करनेके पश्चात् मुख, नासिका, नेत्र और कानोंका स्पर्श करे। फिर प्राणायामद्वारा सकलीकरणकी क्रिया सम्पन्न करके स्थिरतापूर्वक बैठ जाय। इसके बाद मन्त्र-साधक पुरुष मन-ही-मन तीन बार शिवसंहिताकी आवृत्ति करे और आचमन एवं अङ्गन्यास करके प्रातः-काल ब्राह्मी संध्याका इस प्रकार ध्यान करे—॥ २४—२६ ॥

संध्यादेवी प्रातःकाल ब्रह्मशक्तिके रूपमें उपस्थित हैं। हंसपर आरूढ हो कमलके आसनपर विराजमान हैं। उनकी अङ्गकान्ति लाल है। वे चार मुख और चार भुजाएँ धारण करती हैं। उनके दाहिने हाथोंमें कमल और स्फटिकाक्षकी माला तथा बायें हाथोंमें दण्ड एवं कमण्डलु शोभा पाते हैं।* मध्याह्नकालमें वैष्णवी शक्तिके रूपमें संध्याका ध्यान करे। वे गरुडकी पीठपर बिछे हुए कमलके आसनपर विराजमान हैं। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। वे अपने बायें हाथोंमें शङ्ख और चक्र धारण करती हैं तथा दायें हाथोंमें गदा एवं अभयकी मुद्रासे सुशोभित हैं।† सायंकालमें संध्यादेवीका रुद्रशक्तिके रूपमें ध्यान करे। वे वृषभकी पीठपर बिछे हुए कमलके आसनपर बैठी हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे मस्तकपर अर्धचन्द्रके मुकुटसे विभूषित हैं। दाहिने हाथोंमें त्रिशूल और रुद्राक्ष धारण करती हैं और बायें हाथोंमें अभय एवं शक्तिसे सुशोभित हैं।‡ ये संध्याएँ कर्मोंकी साक्षिणी हैं। अपने-आपको उनकी प्रभासे अनुगत समझे। इन तीनके अतिरिक्त एक चौथी संध्या है, जो केवल ज्ञानीके लिये है। उसका आधी रातके आरम्भमें बोधात्मक साक्षात्कार होता है ॥ २७—३० ॥

ये तीन संध्याएँ क्रमशः हृदय, बिन्दु और ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित हैं। चौथी संध्याका कोई रूप नहीं है। वह परम-शिवमें विराजमान है; क्योंकि वह शिव सबसे परे हैं, इस-लिये इसे 'परमा सध्या' कहते हैं। तर्जनी अँगुलीके मूल-भागमें पितरोंका, कनिष्ठाके मूलभागमें प्रजापतिका, अङ्गुष्ठके मूलभागमें ब्रह्माका और हाथके अग्रभागमें देवताओंका तीर्थ है। दाहिने हाथकी हथेलीमें अग्निका, बायीं हथेलीमें सोमका तथा अँगुलियोंके सभी पर्वों एवं संधियोंमें ऋषियों-का तीर्थ है। संध्याके ध्यानके पश्चात् शिव-सम्बन्धी मन्त्रों-द्वारा तीर्थ (जलाशय) को शिवस्वरूप बनाकर '**आपो हि ष्ठा**' इत्यादि संहिता-मन्त्रोंद्वारा उसके जलसे मार्जन करे। बायें हाथपर तीर्थके जलको गिराकर उसे रोके रहे और दाहिने हाथसे मन्त्रपाठपूर्वक क्रमशः सिरका सेचन करना 'मार्जन' कहलाता है ॥ ३१—३५ ॥

इसके बाद अघमर्षण करे। दाहिने हाथके दोनेमें रक्खे हुए बोधरूप शिवमय जलको नासिकाके समीप ले जाकर बायीं—इडा नाड़ीद्वारा साँसको खींचकर रोके और भीतरसे काले रंगके पाप-पुरुषको दाहिनी—पिङ्गला नाड़ी-द्वारा बाहर निकालकर उस जलमें स्थापित करे। फिर उस पापयुक्त जलको हथेलीद्वारा वज्रमयी शिलाकी भावना करके उसपर दे मारे। इससे अघमर्षणकर्म सम्पन्न होता है। तदनन्तर कुश, पुष्प, अक्षत और जलसे युक्त अर्घ्याञ्जलि लेकर, उसे '**ॐ नमः शिवाय स्वाहा।**'—इस मन्त्रसे भगवान् शिवको समर्पित करे और यथाशक्ति गायत्रीमन्त्रका जप करे ॥ ३६—३८ ॥

अब मैं तर्पणकी विधिका वर्णन करूँगा। देवताओंके

---

* हंसपद्मासनां रक्तां चतुर्वक्त्रां चतुर्भुजाम्।
अब्जाक्षमालिनीं दक्षे वामेदण्डकमण्डलुम्॥
(अग्नि० ७२ । २७)

† तार्क्ष्यपद्मासनां ध्यायेन्मध्याह्ने वैष्णवीं सिताम्।
शङ्खचक्रधरां वामे दक्षिणे सगदाभयाम्॥
(अग्नि० ७२ । २८)

‡ रौद्रीं ध्यायेद् वृषाब्जस्थां त्रिनेत्रां शशिभूषिताम्।
त्रिशूलाक्षधरां दक्षे वामे साभयशक्तिकाम्॥
(अग्नि० ७२ । २९)

लिये देवतीर्थसे उनके नाममन्त्रके उच्चारणपूर्वक तर्पण करे। '**ॐ हूं शिवाय स्वाहा।**' ऐसा कहकर शिवका तर्पण करे। इसी प्रकार अन्य देवताओंको भी उनके स्वाहायुक्त नाम लेकर जलसे तृप्त करना चाहिये। '**ॐ हां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ हूं शिखायै वषट्। ॐ हैं कवचाय हुम्। ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ हः अस्त्राय फट्।**'—इन वाक्योंको क्रमशः पढ़कर हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एव अस्त्र विषयक न्यास करना चाहिये। आठ देवगणोंको उनके नामके अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर तर्पणार्थ जल अर्पित करना चाहिये। यथा—**ॐ हां आदित्येभ्यो नमः। ॐ हां वसुभ्यो नमः। ॐ हां रुद्रेभ्यो नमः। ॐ हां विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ हां मरुद्भ्यो नमः। ॐ हां भृगुभ्यो नमः। ॐ हां अङ्गिरोभ्यो नमः।** तत्पश्चात् जनेऊको कण्ठमें माला-की भाँति धारण करके ऋषियोंका तर्पण करे ॥ ३९—४१ ॥

'**ॐ हां अत्रये नमः। ॐ हां वसिष्ठाय नमः। ॐ हां पुलस्तये नमः। ॐ हां क्रतवे नमः। ॐ हां भरद्वाजाय नमः। ॐ हां विश्वामित्राय नमः। ॐ हां प्रचेतसे नमः। ॐ हां मरीचये नमः।**'—इन मन्त्रोंको पढ़ते हुए अत्रि आदि ऋषियोंको (ऋषितीर्थसे) एक-एक अञ्जलि जल दे। तत्पश्चात् सनकादि मनुष्योंको (दो-दो अञ्जलि) जल देते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रवाक्य पढ़े—'**ॐ हां सनकाय वषट्। ॐ हां सनन्दनाय वषट्। ॐ हां सनातनाय वषट्। ॐ हां सनत्कुमाराय वषट्। ॐ हां कपिलाय वषट्। ॐ हां पञ्चशिखाय वषट्। ॐ हां ऋभवे वषट्।**'—इन मन्त्रोंद्वारा जुड़े हाथोंकी कनिष्ठिकाओंके मूलभागसे जलाञ्जलि देनी चाहिये ॥ ४२—४४ ॥

'**ॐ हां सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषट्।**'—इस मन्त्रसे वषट्-स्वरूप भूतगणोंका तर्पण करे। तत्पश्चात् यज्ञोपवीतको दाहिने कंधेपर करके दुहरे मुड़े हुए कुशके मूल और अग्र-भागसे तिलसहित जलकी तीन-तीन अञ्जलियाँ दिव्य पितरोंके लिये अर्पित करे। '**ॐ हां कव्यवाहनाय स्वधा। ॐ हां अनलाय स्वधा। ॐ हां सोमाय स्वधा। ॐ हां यमाय स्वधा। ॐ हां अर्यम्णे स्वधा। ॐ हां अग्निष्वात्तेभ्यः स्वधा। ॐ हां बर्हिषद्भ्यः स्वधा। ॐ हां आज्यपेभ्यः स्वधा। ॐ हां सोमपेभ्यः स्वधा।**'—इत्यादि मन्त्रोंका उच्चारण कर विशिष्ट देवताओंकी भाँति दिव्य पितरोंको जलाञ्जलिसे तृप्त करना चाहिये ॥ ४५-४६½ ॥

'**ॐ हां ईशानाय पित्रे स्वधा।**' कहकर पिताको, '**ॐ हां पितामहाय स्वधा।**' कहकर पितामहको तथा **ॐ हां शान्त-प्रपितामहाय स्वधा।**' कहकर प्रपितामहको भी तृप्त करे। इसी प्रकार समस्त प्रेत-पितरोंका तर्पण करे। यथा—'**ॐ हां पितृभ्यः स्वधा। ॐ हां पितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां प्रपितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां वृद्धप्रपितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां मातृभ्यः स्वधा। ॐ हां मातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां प्रमातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वेभ्यः पितृभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वेभ्यः ज्ञातिभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वाचार्येभ्यः स्वधा। ॐ हां दिग्भ्यः स्वधा। ॐ हां दिक्पतिभ्यः स्वधा। ॐ हां सिद्धेभ्यः स्वधा। ॐ हां मातृभ्यः स्वधा। ॐ हां ग्रहेभ्यः स्वधा। ॐ हां रक्षोभ्यः स्वधा।**'—इन वाक्योंको पढ़ते हुए क्रमशः पितरों, पितामहों, वृद्धप्रपितामहों, माताओं, मातामहों, प्रमातामहों, वृद्धप्रमातामहों, सभी पितरों, सभी ज्ञातिजनों, सभी आचार्यों, सभी दिशाओं, दिक्पतियों, सिद्धों, मातृकाओं, ग्रहों और राक्षसोंको जलाञ्जलि दे ॥ ४७—५१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'स्नान आदिकी विधिका वर्णन' नामक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी पूजा-विधिका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं करन्यास और अङ्गन्यासपूर्वक सूर्यदेवताके पूजनकी विधि बताऊँगा। 'मैं तेजोमय सूर्य हूँ'—ऐसा चिन्तन करके अर्घ्य-पूजन करे। लाल रंगके चन्दन या रोलीसे मिश्रित जलको ललाटके निकटतक ले जाकर उसके द्वारा अर्घ्यपात्रको पूर्ण करे। उसका गन्धादिसे पूजन करके सूर्यके अङ्गोंद्वारा रक्षाव-गुण्ठन करे। तत्पश्चात् जलसे पूजा-सामग्रीका प्रोक्षण करके पूर्वाभिमुख हो सूर्यदेवकी पूजा करे। '**ॐ आं हृदयाय नमः।**' इस प्रकार आदिमें स्वर-बीज लगाकर सिर आदि अन्य सब अङ्गोंमें भी न्यास करे। पूजा-गृहके द्वारदेशमें दक्षिणकी ओर 'दण्डी'का और वामभागमें 'पिङ्गल'का पूजन करे। ईशानकोणमें '**गं गणपतये नमः।**' इस मन्त्रसे 'गणेश'की

और अग्निकोणमें गुरुकी पूजा करे। पीठके मध्यभागमें कमलाकार आसनका चिन्तन एवं पूजन करे। पीठके अग्नि आदि चारों कोणोंमें क्रमशः विमल, सार, आराध्य तथा परम सुखकी और मध्यभागमें प्रभूतासनकी पूजा करे। उपर्युक्त प्रभूत आदि चारोंके वर्ण क्रमशः श्वेत, लाल, पीले और नीले हैं तथा उनकी आकृति सिंहके समान है। इन सबकी पूजा करनी चाहिये ॥ १—५ ॥

पीठस्थ कमलके भीतर **'रां दीप्तायै नमः।'** इस मन्त्रद्वारा दीप्ताकी, **'रीं सूक्ष्मायै नमः।'** इस मन्त्रसे सूक्ष्माकी, **'रूं जयायै नमः।'** इससे जयाकी, **'रें भद्रायै नमः।'** इससे भद्राकी, **'रैं विभूतये नमः।'** इससे विभूतिकी, **'रों विमलायै नमः।'** इससे विमलाकी, **'रौं अमोघायै नमः।'** इससे अमोघाकी तथा **'रं विद्युतायै नमः।'** इससे विद्युताकी पूर्व आदि आठों दिशाओंमें पूजा करे और मध्यभागमें **'रः सर्वतोमुख्यै नमः।'** इस मन्त्रसे नवीं पीठशक्ति सर्वतोमुखीकी आराधना करे। तत्पश्चात् **'ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः।'** इस मन्त्रके द्वारा सूर्यदेवके आसन (पीठ)का पूजन करे। तदनन्तर **'खखोल्काय नमः।'** इस षडक्षर मन्त्रके आरम्भमें **'ॐ हं खं'** जोड़कर नौ अक्षरोंसे युक्त (**ॐ हं खं खखोल्काय नमः।'** —इस) मन्त्रद्वारा सूर्यदेवके विग्रहका आवाहन करे। इस प्रकार आवाहन करके भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये ॥ ६-७½ ॥

अञ्जलिमें लिये हुए जलको ललाटके निकटतक ले जाकर रक्त वर्णवाले सूर्यदेवका ध्यान करके उन्हें भावनाद्वारा अपने सामने स्थापित करे। फिर **'ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।'** ऐसा कहकर उक्त जलसे सूर्यदेवको अर्घ्य दे। इसके बाद 'बिम्बमुद्रा' दिखाते हुए आवाहन आदि उपचार अर्पित करे। तदनन्तर सूर्यदेवकी प्रीतिके लिये गन्ध (चन्दन-रोली) आदि समर्पित करे। तत्पश्चात् 'पद्ममुद्रा' और 'बिम्बमुद्रा' दिखाकर अग्नि आदि कोणोंमें हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे। अग्निकोणमें **'ॐ आं हृदयाय नमः।'** इस मन्त्रसे हृदयकी, नैर्ऋत्यकोणमे **'ॐ भूः अर्काय शिरसे स्वाहा।'** इससे सिरकी, वायव्यकोणमें **'ॐ भुवः सुरेशाय शिखायै वषट्।'** इससे शिखाकी, ईशानकोणमें **'ॐ स्वः कवचाय हुम्।'** इससे कवचकी, इष्टदेव और उपासकके बीचमें **'ॐ ह्रां नेत्रत्रयाय वौषट्।'** से नेत्रकी तथा देवताके पश्चिमभागमें **'वः अस्त्राय फट्।'** इस मन्त्रसे अस्त्रकी पूजा करे[3]। इसके बाद पूर्वादि दिशाओंमें मुद्राओंका प्रदर्शन करे ॥ ८—११½ ॥

हृदय, सिर, शिखा और कवच—इनके लिये पूर्वादि दिशाओंमें धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे। नेत्रोंके लिये गोश्रृङ्गकी मुद्रा दिखाये। अस्त्रके लिये त्रासनीमुद्राकी योजना करे। तत्पश्चात् ग्रहोंको नमस्कार और उनका पूजन करे। **'ॐ सों सोमाय नमः।'** इस मन्त्रसे पूर्वमें चन्द्रमाकी, **'ॐ बुं बुधाय नमः।'** इस मन्त्रसे दक्षिणमें बुधकी, **'ॐ बृं बृहस्पतये नमः।'** इस मन्त्रसे पश्चिममें बृहस्पतिकी और **'ॐ भं भार्गवाय नमः।'** इस मन्त्रसे उत्तरमें शुक्रकी पूजा करे। इस तरह पूर्वादि दिशाओंमें चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी पूजा करके, अग्नि आदि कोणोंमें शेष ग्रहोंका पूजन करे। यथा—**'ॐ भौं भौमाय नमः।'** इस मन्त्रसे अग्निकोणमें मङ्गलकी, **'ॐ शं शनैश्चराय नमः।'** इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यकोणमें शनैश्चरकी, **'ॐ रां राहवे नमः।'** इस मन्त्रसे वायव्यकोणमें राहुकी तथा **'ॐ कें केतवे नमः।'** इस मन्त्रसे ईशानकोणमें केतुकी गन्ध आदि उपचारोंसे पूजा करे। खखोल्की (भगवान् सूर्य) के साथ इन सब ग्रहोंका पूजन करना चाहिये ॥ १२—१४ ॥

---

१. पद्माकारौ करौ कृत्वा ह्यनामिश्लिष्टे तु मध्यमे।
अङ्गुष्ठौ धारयेत्तस्मिन् बिम्बमुद्रेति सोच्यते ॥

२. हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संनतप्रोन्नताङ्गुली।
तलान्तर्मिलिताङ्गुष्ठौ मुद्रैषा पद्मसंज्ञिता ॥

३. मन्त्रमहार्णवमें हृदयादि अङ्गोंके पूजनका क्रम इस प्रकार दिया गया है—

अग्निकोणे—ॐ सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः हृदयश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। निर्ऋतिकोणे—ॐ ब्रह्मतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा शिरःश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। वायव्ये—ॐ विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट् शिखाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ऐशान्ये—ॐ रुद्रतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुं कवचश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। पूज्य-पूजकयोर्मध्ये—ॐ अग्नितेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। देवतापश्चिमे—ॐ सर्वतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। यहाँ मूलकी व्याख्यामें भी इसी क्रमसे संगति लगाते हुए अर्थ किया गया है।

मूलमन्त्रका जप करके, अर्घ्यपात्रमें जल लेकर सूर्यको समर्पित करनेके पश्चात् उनकी स्तुति करे। इस तरह स्तुतिके पश्चात् सामने मुँह किये खड़े हुए सूर्यदेवको नमस्कार करके कहे—'प्रभो! मेरे अपराधों और त्रुटियोंको आप क्षमा करें।' इसके बाद '**अस्त्राय फट्।**' इस मन्त्रसे अणुसंहारका समाहरण करके 'शिव! सूर्य! (कल्याणमय सूर्यदेव!)'—ऐसा कहते हुए संहारिणी-शक्ति या मुद्राके द्वारा सूर्यदेवके उपसंहृत तेजको अपने हृदय-कमलमें स्थापित कर दे तथा सूर्यदेवका निर्माल्य उनके पार्षद चण्डको अर्पित कर दे। इस प्रकार जगदीश्वर सूर्यका पूजन करके उनके जप, ध्यान और होम करनेसे साधकका सारा मनोरथ सिद्ध होता है॥ १५—१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सूर्यपूजाकी विधिका वर्णन' नामक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

शिवपूजाकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं शिव-पूजाकी विधि बताऊँगा। आचमन (एवं स्नान आदि) करके प्रणवका जप करते हुए सूर्यदेवको अर्घ्य दे। फिर पूजा-मण्डपके द्वारको 'फट्' इस मन्त्रद्वारा जलसे सींचकर आदिमें 'हां' बीजसहित नन्दी[1] आदि द्वारपालोंका पूजन करे। द्वारपर उदुम्बर वृक्षकी स्थापना या भावना करके उसके ऊपरी भागमें गणपति, सरस्वती और लक्ष्मीजीकी पूजा करे। उस वृक्षकी दाहिनी शाखापर या द्वारके दक्षिण भागमें नन्दी और गङ्गाका पूजन करे तथा वाम शाखापर या द्वारके वाम भागमें महाकाल एवं यमुनाजीकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् अपनी दिव्य दृष्टि डालकर दिव्य विघ्नोंका उत्सारण (निवारण) करे। उनके ऊपर या उनके उद्देश्यसे फूल फेंके और यह भावना करे कि 'आकाशचारी सारे विघ्न दूर हो गये।' साथ ही, दाहिने पैरकी एड़ीसे तीन बार भूमिपर आघात करे और इस क्रिया-द्वारा भूतलवर्ती समस्त विघ्नोंके निवारणकी भावना करे। तत्पश्चात् यज्ञमण्डपकी देहलीको लाँघे। वाम शाखाका आश्रय लेकर भीतर प्रवेश करे। दाहिने पैरसे मण्डपके भीतर प्रविष्ट हो उदुम्बरवृक्षमें अस्त्रका न्यास करे तथा मण्डपके मध्य भागमें पीठकी आधारभूमिमें '**ॐ हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे नमः।**' इस मन्त्रसे वास्तुदेवताकी पूजा करे॥ १—५॥

निरीक्षण आदि शस्त्रोंद्वारा शुद्ध किये हुए गडुओंको हाथमें लेकर, भावनाद्वारा भगवान् शिवसे आज्ञा प्राप्त करके साधक मौन हो गङ्गा आदि नदीके तटपर जाय। वहाँ अपने शरीरको पवित्र करके गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए वस्त्रसे छाने हुए जलके द्वारा जलाशयमें उन गडुओंको भरे, अथवा हृदय-बीज (नमः) का उच्चारण करके जल भरे। तत्पश्चात् पूजाके लिये गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि सब द्रव्योंको अपने पास एकत्र करके भूत-शुद्धि आदि कर्म करे। फिर उत्तराभिमुख हो आराध्यदेवके दाहिने भागमें—शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें मातृकान्यास करके, संहार-मुद्राद्वारा अर्घ्यके लिये जल लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक मस्तकसे लगावे और उसे देवतापर अर्पित करनेके लिये अपने पास रख ले। इसके बाद भोग्य कर्मोंके उपभोगके लिये पाणि-कच्छपिका (कूर्ममुद्रा) का प्रदर्शन करके द्वादश दलोंसे युक्त हृदयकमलमें अपने आत्माका चिन्तन करे॥ ६—१०॥

तदनन्तर शरीरमें शून्यका चिन्तन करते हुए पाँच भूतोंका क्रमशः शोधन करे। पैरोंके दोनों अँगूठोंको पहले बाहर और भीतरसे छिद्रमय (शून्यरूप) देखे। फिर कुण्डलिनी-शक्तिको मूलाधारसे उठाकर हृदयकमलसे संयुक्त करके इस प्रकार चिन्तन करे—'हृदयरन्ध्रमें स्थित अग्नि-तुल्य तेजस्वी 'हूं' बीजमें कुण्डलिनी-शक्ति विराज रही है।'

---

४. 'शारदातिलक' के अनुसार सूर्यका दशाक्षर मूल मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं घृणिः सूर्य आदित्य श्रीं।' इति दशाक्षरो मन्त्रः। किंतु इस ग्रन्थमें 'ॐ हं खं' इन बीजोंके साथ 'खखोल्काय नमः।' इस षडक्षर मन्त्रका उल्लेख है। अतः इसीको यहाँ मूल मन्त्र समझना चाहिये।

१ नारदपुराणके अनुसार नन्दी, भृङ्गी, रिटि, स्कन्द, गणेश, उमा-महेश्वर, नन्दी वृषभ तथा महाकाल—ये शैव द्वारपाल हैं।

उस समय चिन्तन करनेवाला साधक प्राणवायुका अवरोध (कुम्भक) करके उसका रेचक (निःसारण) करनेके पश्चात्, 'हुं फट्'के उच्चारणपूर्वक क्रमशः उत्तरोत्तर चक्रोंका भेदन करता हुआ उस कुण्डलिनीको हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य एवं ब्रह्मरन्ध्रमें ले जाकर स्थापित करे । इन ग्रन्थियोंका भेदन करके कुण्डलिनीके साथ हृदयकमलसे ब्रह्मरन्ध्रमें आये 'हूं' बीजस्वरूप जीवको वहाँ मस्तकमें (मस्तकवर्ती ब्रह्मरन्ध्रमें या सहस्रारचक्रमें) स्थापित कर दे । हृदयस्थित 'हूं' बीजसे सम्पुटित हुए उस जीवमें पूरक प्राणायामद्वारा चैतन्यभाव जाग्रत् किया गया है । शिखाके ऊपर 'हूं'का न्यास करके शुद्ध बिन्दुस्वरूप जीवका चिन्तन करे । फिर कुम्भक-प्राणायाम करके उस एकमात्र चैतन्य-गुणसे युक्त जीवको शिवके साथ संयुक्त कर दे ॥ ११—१५ ॥

इस तरह शिवमें लीन होकर साधक सबीज रेचक प्राणायामद्वारा शरीरगत भूतोंका शोधन करे । अपने शरीरमें पैरसे लेकर बिन्दु-पर्यन्त सभी तत्त्वोंका विलोम-क्रमसे चिन्तन करे । बिन्दुरूप जीवको बिन्द्वन्त लीन करके पृथ्वी और वायुका एक-दूसरेमे लय करे । साथ ही अग्नि एवं जलका भी परस्पर विलय करे । इस प्रकार दो-दो विरोधी भूतोंका परस्पर शोधन (लय) करना चाहिये । आकाशका किसीसे विरोध नहीं है; इस भूत-शुद्धिका विशेष विवरण सुनो—भूमण्डलका स्वरूप चतुष्कोण है । उसका रंग सुवर्णके समान पीला है । वह कठोर होनेके साथ ही वज्रके चिह्नसे तथा 'ह्लां'[2] इस आत्मीय बीज (भूबीज) से युक्त है । उसमें 'निवृत्ति' नामक कला है । (शरीरमें पैरसे लेकर घुटनेतक भूमण्डलकी स्थिति है ।) इसी तरह पैरसे लेकर मस्तक-पर्यन्त क्रमशः पाँचों भूतोंका चिन्तन करना चाहिये । इस प्रकार पाँच गुणोंसे युक्त वायुभूत भूमण्डलका चिन्तन करे ॥ १६—१९ ॥

जलका स्वरूप अर्धचन्द्राकार है । वह द्रवस्वरूप है, चन्द्रमण्डलमय है । उसकी कान्ति या वर्ण उज्ज्वल है । वह दो कमलोंसे चिह्नित है । 'ह्लीं'[3] इस बीजसे युक्त है । 'प्रतिष्ठा' नामक कलाके स्वरूपको प्राप्त है । वह वामदेव तथा तत्पुरुष-मन्त्रोंसे संयुक्त जल-तत्त्व चार गुणोंसे युक्त है । उसे इस प्रकार (घुटनेसे नाभितक जलका) चिन्तन करते हुए उस जल-तत्त्वका वह्निस्वरूपमें लीन करके शोधन करे । अग्निमण्डल त्रिकोणाकार है । उसका वर्ण लाल है । (नाभिसे हृदयतक उसकी स्थिति है ।) वह स्वस्तिकके चिह्नसे युक्त है । उसमें 'हूँ'[4] बीज अङ्कित है । वह विद्याकला-स्वरूप है । उसका अघोर मन्त्र है तथा वह तीन गुणोंसे युक्त एवं जलभूत है—इस प्रकार चिन्तन करते हुए अग्नितत्त्वका शोधन करे । वायुमण्डल षट्कोणाकार है । (शरीरमें हृदयसे लेकर भौंहोंके मध्य भागतक उसकी स्थिति है ।) वह छः बिन्दुओंसे चिह्नित है । उसका रंग काला है । वह 'हैं'[5] बीज एवं सद्योजात-मन्त्रसे युक्त और शान्तिकला-स्वरूप है । उसमें दो गुण हैं तथा वह पृथ्वीभूत है । इस प्रकार चिन्तन करते हुए वायुतत्त्वका शोधन करे ॥ २०—२४ ॥

आकाशका स्वरूप व्योमाकार, नाद-बिन्दुमय, गोलाकार, बिन्दु और शक्तिसे विभूषित तथा शुद्ध स्फटिक मणिके समान निर्मल है । (शरीरमें भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतक उसकी स्थिति है ।) वह 'ह्रौं फट्'[6] इस बीजसे युक्त है । शान्त्यतीतकलामय[7] है । एक गुणसे युक्त तथा परम विशुद्ध है । इस प्रकार चिन्तन करते हुए आकाश तत्त्वका शोधन करे । तदनन्तर अमृतवर्षी मूलमन्त्रसे सबको परिपुष्ट करे । तत्पश्चात् आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त (पृथ्वी) की पूजा करे । फिर पीठ (चौकी) के अग्निकोणवाले पायेमें धर्मकी, नैर्ऋत्य कोणवाले पायेमें ज्ञानकी, वायव्यकोणमें वैराग्यकी और ऐशान्यकोणमें ऐश्वर्यकी पूजा करनी चाहिये । इसके बाद पीठकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यकी पूजा करनी चाहिये । इसके बाद पीठके मध्यभागमें कमलकी पूजा करे । इस प्रकार मन-ही-मन इस पीठवर्ती कमलमय आसनका ध्यान करके उसपर देव-मूर्ति सच्चिदानन्दघन भगवान् शिवका आवाहन करे । उस शिवमूर्तिमें शिवस्वरूप आत्माको देखे और फिर आसन, पादुकाद्वय तथा नौ पीठशक्ति—

२ अन्य तन्त्रोंके अनुसार पृथ्वीका अपना बीज 'लं' है ।

३. जलका बीज 'वं' है । यही ग्रन्थान्तरोंसे नि[illegible] ।

४. अग्निका मुख्य बीज 'रं' है ।

५. वायुका बीज 'यं' है ।

६ [illegible]का [illegible] 'हं' है—यही सर्वसम्मत है ।

७ [illegible]त्यतीतकलाके भीतर इन्धिका, दीपिका, रेचिका और [illegible]—ये चार कलाएँ आती हैं ।

इन बारहोंका ध्यान करे। फिर शक्तिमन्त्रके अन्तमें 'वौषट्' लगाकर उसके उच्चारणपूर्वक पूर्वोक्त आत्ममूर्तिको दिव्य अमृतसे आप्लावित करके उसमें सकलीकरण करे। हृदयसे लेकर हस्त-पर्यन्त अङ्गोंमें तथा कनिष्ठिका आदि अँगुलियोंमें हृदय (नमः) मन्त्रोंका जो न्यास है, इसीको 'सकलीकरण' माना गया है ॥ २५-३० ॥

तत्पश्चात् 'हुं फट्'—इस मन्त्रसे प्राकारकी भावनाद्वारा आत्मरक्षाकी व्यवस्था करके उसके बाहर, नीचे और ऊपर भी भावनात्मक शक्तिजालका विस्तार करे। इसके बाद महामुद्राका प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् पूरक प्राणायामके द्वारा अपने हृदय-कमलमें विराजमान शिवका ध्यान करके भावमय पुष्पोंद्वारा उनके पैरसे लेकर सिरतकके अङ्गोंमें पूजन करे। वे भावमय पुष्प आनन्दामृतमय मकरन्दसे परिपूर्ण होने चाहिये। फिर शिव-मन्त्रोंद्वारा नाभिकुण्डमें स्थित शिवस्वरूप अग्निको तृप्त करे। वहाँ शिवानल ललाटमें बिन्दुरूपसे स्थित है; उसका विग्रह मङ्गलमय है—इस प्रकार चिन्तन करे ॥ ३१-३३ ॥

स्वर्ण, रजत एवं ताम्रपात्रोंमेंसे किसी एक पात्रको अर्घ्य-के लिये लेकर उसे अस्त्रबीज (फट्) के उच्चारणपूर्वक जलसे धोये। फिर बिन्दुरूप शिवसे प्रकट होनेवाले अमृतकी भावनासे युक्त जल एवं अक्षत आदिके द्वारा हृदय-मन्त्र (नमः) के उच्चारणपूर्वक उसे भर दे। फिर हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—इन छः अङ्गोंद्वारा (अथवा इनके बीज-मन्त्रोंद्वारा) उस अर्घ्यपात्रका पूजन करके उसे देवता-सम्बन्धी मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। फिर अस्त्र-मन्त्र (फट्) से उसकी रक्षा करके कवच-बीज (हुम्) के द्वारा उसे अवगुण्ठित कर दे। इस प्रकार अष्टाङ्ग अर्घ्यकी रचना करके, धेनुमुद्राके द्वारा उसका अमृतीकरण करके उस जलको सब ओर सींचे। अपने मस्तकपर भी उस जलकी बूँदोंसे अभिषेक करे। वहाँ रक्खी हुई पूजा-सामग्रीका भी अस्त्र-बीजके उच्चारणपूर्वक उक्त जलसे प्रोक्षण करे। तदनन्तर हृदयबीजसे अभिमन्त्रित करके 'हुम्' बीजसे पिण्डों (अथवा मत्स्यमुद्रा-) द्वारा उसे आवेष्टित या आच्छादित करे ॥ ३४-३७ ॥

इसके बाद अमृता (धेनुमुद्रा) के लिये धेनुमुद्राका प्रदर्शन करके अपने आसनपर पुष्प अर्पित करे (अथवा देवताके निज आसनपर पुष्प चढ़ावे)। तत्पश्चात् पूजक अपने मस्तकमें तिलक लगाकर मूलमन्त्रके द्वारा आराध्यदेवको पुष्प अर्पित करे। स्नान, देवपूजन, होम, भोजन, यज्ञानुष्ठान, योग, साधन तथा आवश्यक जपके समय धीरबुद्धि साधकको सदा मौन रहना चाहिये"। प्रणवका नाद-पर्यन्त उच्चारण करके मन्त्रका शोधन करे। फिर उत्तम संस्कारयुक्त देव-पूजा आरम्भ करे। मूल-गायत्री (अथवा रुद्र-गायत्री) से अर्घ्य-पूजन करके रक्खे और वह सामान्य अर्घ्य देवताको अर्पित करे ॥ ३८-४० ॥

ब्रह्मपञ्चक (पञ्चगव्य और कुशोदकसे बना हुआ ब्रह्मकूर्च) तैयार करके पूजित शिवलिङ्गसे पुष्प-निर्माल्य ले

---

८. अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुली ।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणी बुधैः ॥
(वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत मुद्रानिघण्टु ११-१२)

—दोनों अँगूठोंको परस्पर ग्रथित कर हाथोंकी अन्य सब अँगुलियोंको फैलाये रखना—यह 'महामुद्रा' कही गयी है। इसका परमीकरणमें प्रयोग होता है।

९. बायें हाथके पृष्ठभागपर दाहिने हाथकी हथेली रक्खे और दोनों अँगूठोंको फैलाये रक्खे। यही 'मत्स्यमुद्रा' है।

१०. अमृतीकरणकी विधि यह है—

'वं' इस अमृत-बीजका उच्चारण करके धेनुमुद्राको दिखावे। धेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा ।
संयोज्य तर्जनीं दक्षां वाममध्यमया तथा ॥
दक्षमध्यमया वामां तर्जनीं च नियोजयेत् ।
वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत् ॥
दक्षयानामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत् ।
विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥

'बायें हाथकी अँगुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अँगुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तर्जनीको बायीं मध्यमासे जोड़े। दाहिने हाथकी मध्यमासे बायें हाथकी तर्जनीको मिलावे। फिर बायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकासे बायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। तत्पश्चात् इन सबका मुख नीचेकी ओर करे—यही 'धेनुमुद्रा' कही गयी है।'

११. स्नाने देवार्चने होमे भोजने यागयोगयोः ।
आवश्यके जपे धीरः सदा वाचंयमो भवेत् ॥
(अग्नि० ७४ । १९)

१२. ब्रह्मकूर्चकी विधि इस प्रकार है—पलाश या कमलके पत्तेमें अथवा ताँबे या सुवर्णके पात्रमें पञ्चगव्य संग्रह करना चाहिये।

ईशानकोणकी ओर 'चण्डाय नमः ।' कहकर चण्डको समर्पित करे। तत्पश्चात् उक्त ब्रह्मपञ्चकसे पिण्डिका (पिण्डी या अर्घा) और शिवलिङ्गको नहलाकर 'फट्'का उच्चारण करके उन्हें जलसे नहलाये। फिर 'नमो नमः' के उच्चारण पूर्वक पूर्वोक्त अर्घ्यपात्रके जलसे उस लिङ्गका अभिषेक करे। यह लिङ्ग-शोधनका प्रकार बताया गया है ॥४१-४२॥

आत्मा (शरीर और मन), द्रव्य (पूजनसामग्री), मन्त्र तथा लिङ्गकी शुद्धि हो जानेपर सब देवताओंका पूजन करे। वायव्यकोणमें '**ॐ हां गणपतये नमः**[13] ।' कहकर गणेशजीकी पूजा करे और ईशानकोणमें 'ॐ हां गुरुभ्यो नमः ।' कहकर गुरु, परम गुरु, परात्पर गुरु तथा परमेष्ठी गुरु-गुरुपंक्तिकी पूजा करे ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् कूर्मरूपी शिलापर स्थित अङ्कुर-सदृश आधार-शक्तिका तथा ब्रह्मशिलापर आरूढ़ शिवके आसनभूत अनन्तदेवका '**ॐ हां अनन्तासनाय नमः।**' मन्त्रद्वारा पूजन करे। शिवके सिंहासनके रूपमें जो मञ्च या चौकी है, उसके चार पाये हैं, जो विचित्र सिंहकी-सी आकृतिसे सुशोभित होते हैं। वे सिंह मण्डलाकारमें स्थित रहकर अपने आगेवालेके पृष्ठभागको ही देखते हैं तथा सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगोंके प्रतीक हैं। तत्पश्चात् भगवान् शिवकी आसन-पादुकाकी पूजा करे। तदनन्तर धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी पूजा करे। वे अग्नि आदि चारों कोणोंमें स्थित हैं। उनके वर्ण क्रमशः कपूर, कुङ्कुम, सुवर्ण और काजलके समान हैं। इनका चारों पायोंपर क्रमशः पूजन करे। इसके बाद (**ॐ हां अधश्छदनाय नमोऽधः' ॐ हां ऊर्ध्वच्छदनाय नम ऊर्ध्वे। ॐ हां पद्मासनाय नमः।** —ऐसा कहकर) आसनपर विराजमान अष्टदल कमलके नीचे-ऊपरके दलोंकी, सम्पूर्ण कमलकी तथा '**ॐ हां कर्णिकायै नमः ।**' के द्वारा कर्णिकाके मध्यभागकी पूजा करे। उस कमलके पूर्व आदि आठ दलोंमे तथा मध्यभागमें नौ पीठ-शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। वे शक्तियाँ चँवर लेकर खड़ी हैं। उनके हाथ वरद एवं अभयकी मुद्राओंसे सुशोभित हैं ॥ ४४-४७ ॥

उनके नाम इस प्रकार है—वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, क[14]लविकारिणी, ब[15]लविकारिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा मनोन्मनी—इन सबका क्रमशः पूजन करना चाहिये। वामा आदि आठ शक्तियोंका कमलके पूर्व आदि आठ दलोंमें तथा नवीं मनोन्मनीका कमलके केसर-भागमें क्रमशः पूजन किया जाता है। यथा—'**ॐ हां वामायै नमः ।**' इत्यादि। तदनन्तर पृथ्वी आदि अष्ट मूर्तियों एवं विशुद्ध विद्यादेहका चिन्तन एवं पूजन करे। (यथा—पूर्वमें '**ॐ सूर्यमूर्तये नमः ।**' अग्निकोणमें '**ॐ चन्द्रमूर्तये नमः ।**' दक्षिणमें '**ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः ।**' नैर्ऋत्यकोणमें '**ॐ जलमूर्तये नमः ।**' पश्चिममें '**ॐ वह्निमूर्तये नमः ।**' वायव्यकोणमें '**ॐ वायुमूर्तये नमः ।**' उत्तरमें '**ॐ आकाश-**

गायत्री-मन्त्रसे गोमूत्रका, 'गन्धद्वारां०' (श्रीसूक्त) इस मन्त्रसे गोबरका, 'आप्यायस्व०' (शु० यजु० १२ । ११२) इस मन्त्रसे दूधका, 'दधिक्राव्णो०' (शु० यजु० २३ । ३२) इस मन्त्रसे दहीका, 'तेजोऽसि शुक्रं०' (शु० यजु० २२ । १) इस मन्त्रसे घीका और 'देवस्य त्वा०' (शु० यजु० ६ । ३०) इस मन्त्रसे कुशोदकका संग्रह करे। चतुर्दशीको उपवास करके अमावस्याको उपर्युक्त वस्तुओंका संग्रह करे। गोमूत्र एक पल होना चाहिये, गोबर आधे अँगूठेके बराबर हो, दूधका मान सात पल और दहीका तीन पल है। घी और कुशोदक एक-एक पल बताये गये हैं। इस प्रकार इन सबको एकत्र करके परस्पर मिला दे। तत्पश्चात् सात-सात पत्तोंके तीन कुश लेकर जिनके अग्रभाग कटे न हों, उनसे उस पञ्चगव्यकी अग्निमें आहुति दे। आहुतिसे बचे हुए पञ्चगव्यको प्रणवसे आलोडन और प्रणवसे ही मन्थन करके, प्रणवसे ही हाथमें ले तथा फिर प्रणवका ही उच्चारण करके उसे पी जाय। इस प्रकार तैयार किये हुए पञ्चगव्यको 'ब्रह्मकूर्च' कहते हैं। स्त्री-शूद्रोंको ब्राह्मणके द्वारा पञ्चगव्य बनवाकर प्रणव-उच्चारणके बिना ही पीना चाहिये। सर्व-साधारणके लिये ब्रह्मकूर्च-पानका मन्त्र यह है—

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्।
ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं प्रदीप्ताग्निरिवेन्धनम् ॥
(वृद्धशातातप० १२)

अर्थात् 'देहधारियोंके शरीरमें चमड़े और हड्डीतकमें जो पाप विद्यमान है, वह सब ब्रह्मकूर्च इस प्रकार जला दे, जैसे प्रज्वलित आग इन्धनको जला डालती है।'

१३. प्रचलित 'गं' आदि स्वबीजके स्थानपर 'हां' बीज सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्डक्रमावली'में भी मिलता है।

१४. अन्य तन्त्र-ग्रन्थोंमें 'कलविकरिणी' नाम मिलता है।

१५. अन्यत्र 'बलविकरिणी' नाम मिलता है।

मूर्तये नमः।' और ईशानकोणमें '**ॐ यजमानमूर्तये नमः।**') तत्पश्चात् शुद्ध विद्याकी और तत्त्वव्यापक आसनकी पूजा करनी चाहिये । उस सिंहासनपर कर्पूर-गौर, सर्वव्यापी एवं पाँच मुखोंसे सुशोभित भगवान् महादेवको प्रतिष्ठित करे । उनके दस भुजाएँ हैं । वे अपने मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करते हैं । उनके दाहिने हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि, शूल, खट्वाङ्ग और वरद-मुद्रा हैं तथा अपने बायें हाथोंमें वे डमरु, बिजौरा नीबू, सर्प, अक्षसूत्र और नील कमल धारण करते हैं[1] ॥ ४८—५१ ॥

आसनके मध्यमें विराजमान भगवान् शिवकी वह दिव्य मूर्ति बत्तीस लक्षणोंसे सम्पन्न है, ऐसा चिन्तन करके स्वयं प्रकाश शिवका स्मरण करते हुए '**ॐ हां हां हां शिवमूर्तये नमः।**' कहकर उसे नमस्कार करे । ब्रह्मा आदि कारणोंके त्यागपूर्वक शिवको शिवमें प्रतिष्ठित करे । फिर यह चिन्तन करे कि ललाटके मध्यभागमें विराजमान तथा तारापति चन्द्रमाके समान प्रकाशमान बिन्दुरूप परमशिव हृदयादि छः अङ्गोंसे संयुक्त हो पुष्पाञ्जलिमें उतर आये हैं । ऐसा ध्यान करके उन्हें प्रत्यक्ष पूजनीय मूर्तिमें स्थापित कर दे । इसके बाद '**ॐ हां हौं शिवाय नमः।**'—यह मन्त्र बोलकर मन ही मन आवाहनी-मुद्राद्वारा[2] मूर्तिमें भगवान् शिवका आवाहन करे । फिर स्थापनी मुद्राद्वारा[3] वहाँ उनकी स्थापना और संनिधापिनी-मुद्राद्वारा भगवान् शिवको समीपमें विराजमान करके संनिरोधिनी-मुद्राद्वारा[4] उन्हें उस मूर्तिमें अवरुद्ध करे । तत्पश्चात् '**निष्ठुरायै कालकल्यायै (कालकान्त्यै अथवा कालकान्तायै) फट्।**' का उच्चारण करके खड्ग-मुद्रासे भय दिखाते हुए विघ्नोंको मार भगावे । इसके बाद लिङ्ग-मुद्राका प्रदर्शन करके नमस्कार करे ॥ ५२—५६ ॥

इसके बाद 'नमः' बोलकर अवगुण्ठन करे । आवाहनका अर्थ है सादर सम्मुखीकरण—इष्टदेवको अपने सामने उपस्थित करना । देवताको अर्चा-विग्रहमें बिठाना ही उनकी स्थापना है । 'प्रभो ! मैं आपका हूँ' ऐसा कहकर भगवान्‌से निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना ही 'संनिधान' या 'संनिधापन' कहलाता है । जबतक पूजन-सम्बन्धी कर्मकाण्ड चालू रहे, तबतक भगवानकी समीपताको अक्षुण्ण रखना ही 'निरोध' है और अभक्तोंके समक्ष जो शिवतत्त्वका अप्रकाशन या संगोपन किया जाता है, उसीका नाम 'अवगुण्ठन' है । तदनन्तर सकलीकरण करके '**हृदयाय नमः**', 'शिरसे स्वाहा', 'शिखायै वषट्', 'कवचाय हुम्', 'नेत्राभ्यां वौषट्', 'अस्त्राय फट्' इन छः मन्त्रोंद्वारा हृदयादि अङ्गोंकी अङ्गीके साथ एकता स्थापित करे—यही '**अमृतीकरण**' है । चैतन्यशक्ति भगवान् शंकरका हृदय है, आठ प्रकारका ऐश्वर्य उनका सिर है, वशित्व उनकी शिखा है तथा अभेद्य तेज भगवान् महेश्वरका कवच है । उनका दुःसह प्रताप ही समस्त विघ्नोंका निवारण करनेवाला अस्त्र है । हृदय आदिको पूर्वमें रखकर क्रमशः 'नमः', 'स्वधा', 'स्वाहा' और 'वौषट्' का क्रमशः उच्चारण करके पाद्य आदि निवेदन करे ॥ ५७—६१ ॥

पाद्यको आराध्यदेवके युगल चरणारविन्दोंमें, आचमनको मुखारविन्दमें तथा अर्घ्य, दूर्वा, पुष्प और अक्षतको इष्टदेवके मस्तकपर चढ़ाना चाहिये । इस प्रकार दस संस्कारोंसे परमेश्वर शिवका संस्कार करके गन्ध-पुष्प आदि पञ्च-उपचारोंसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे । पहले जलसे देवविग्रहका अभ्युक्षण (अभिषेक) करके राई-लोन आदिसे उबटन और मार्जन करना चाहिये । तत्पश्चात् अर्घ्यजलकी बूँदों और पुष्प आदिसे अभिषेक करके गडुओंमें रखे हुए

---

[1] न्यसेत् सिंहासने देवं शुक्लं पञ्चमुखं विभुम् ।
दशबाहुं च खण्डेन्दुं दधानं दक्षिणैः करैः ॥
शक्त्यृष्टिशूलखट्वाङ्गवरदं वामकैः करैः ।
डमरुं बीजपूरं च नागाक्षसूत्रकोत्पलम् ॥
(अग्नि० ७४ । ५०-५१)

[2] दोनों हाथोंकी अञ्जलि बनाकर अनामिका अँगुलियोंके मूलपर्वपर अँगूठेको लगा देना—यह आवाहनकी मुद्रा है ।

[3] यह आवाहनी मुद्रा ही अधोमुखी (नीचेकी ओर मुखवाली) कर दी जाय तो 'स्थापिनी (बिठानेवाली) मुद्रा' कहलाती है ।

[4] अँगूठोंको ऊपर उठाकर दोनों हाथोंकी संयुक्त मुट्ठी बाँध लेनेपर 'संनिधापिनी (निकट सम्पर्कमें लानेवाली) मुद्रा' बन जाती है ।

[5] यदि मुट्ठीके भीतर अँगूठेको डाल दिया जाय तो 'संनिरोधिनी (रोक रखनेवाली) मुद्रा' कहलाती है ।

[6] दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधकर अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियोंको परस्पर सटाकर लिङ्गाकार खड़ी कर ले । दोनों मध्यमाओंका अग्रभाग बिना खड़ी किये परस्पर मिला दे । दोनों तर्जनियोंको मध्यमाओंके साथ सटाये रखे और अँगूठोंको तर्जनियोंके मूलभागमें लगा ले । यह सर्वाभीष्ट शिवलिङ्गकी मुद्रा है ।

जलके द्वारा धीरे-धीरे भगवान्‌को नहलावे। दूध, दही, घी, मधु और शक्कर आदिको क्रमशः ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—इन पाँच मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित करके उनके द्वारा बारी-बारीसे स्नान करावे। उनको परस्पर मिलाकर पञ्चामृत बना ले और उससे भगवान्‌को नहलावे। इससे भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है। पूर्वोक्त दूध-दही आदिमें जल और धूप मिलाकर उन सबके द्वारा इष्ट देवता-सम्बन्धी मूल मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भगवान् शिवको स्नान करावे॥ ६२–६६॥

तदनन्तर जौके आटेसे चिकनाई मिटाकर इच्छानुसार शीतल जलमें स्नान करावे। अपनी शक्तिके अनुसार चन्दन, केसर आदिसे युक्त जलद्वारा स्नान कराकर शुद्ध वस्त्रसे इष्टदेवके श्रीविग्रहको अच्छी तरह पोंछे। इसके बाद अर्घ्य निवेदन करे। देवताके ऊपर हाथ न घुमावे। शिवलिङ्गके मस्तकभागको कभी पुष्पसे शून्य न रक्खे। तत्पश्चात् अन्यान्य उपचार समर्पित करे। (स्नानके पश्चात् देवविग्रहको वस्त्र और यज्ञोपवीत धारण कराकर) चन्दन-रोली आदिका अनुलेप करे। फिर शिव-सम्बन्धी मन्त्र बोलकर पुष्प अर्पण करते हुए पूजन करे। धूपके पात्रका अस्त्र-मन्त्र (फट्) से प्रोक्षण करके शिवमन्त्रसे धूपद्वारा पूजन करे। फिर अस्त्र-मन्त्रद्वारा पूजित घण्टा बजाते हुए गुग्गुलका धूप जलावे। फिर '**शिवाय नमः।**' बोलकर अमृतके समान सुस्वादु जलसे भगवान्‌को आचमन करावे। इसके बाद आरती उतारकर पुनः पूर्ववत् आचमन करावे। फिर प्रणाम करके देवताकी आज्ञा ले भोगाङ्गोंकी पूजा करे॥ ६७–७१॥

अग्निकोणमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हृदयका, ईशान-कोणमें सुवर्णके समान कान्तिवाले सिरका, नैर्ऋत्यकोणमें लाल रंगकी शिखाका तथा वायव्यकोणमें काले रंगके कवचका पूजन करे। फिर अग्निवर्ण नेत्र और कृष्ण-पिङ्गल अस्त्रका पूजन करके चतुर्मुख ब्रह्मा और चतुर्भुज विष्णु आदि देवताओंको कमलके दलोंमें स्थित मानकर इन सबकी पूजा करे। पूर्व आदि दिशाओंमें दाढ़ोंके समान विकराल, वज्रतुल्य अस्त्रका भी पूजन करे॥ ७२-७३॥

मूल स्थानमें '**ॐ हां हूं शिवाय नमः।**' बोलकर पूजन करे। '**ॐ हां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा।**' बोलकर हृदय और सिरकी पूजा करे। '**हूं शिखायै वषट्।**' बोलकर शिखाकी, '**हैं कवचाय हुम्।**' कहकर कवचकी तथा '**हः अस्त्राय फट्।**' बोलकर अस्त्रकी पूजा करे। इसके बाद परिवारसहित भगवान् शिवको क्रमशः पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, करोद्वर्तन, ताम्बूल, मुखवास (इलायची आदि) तथा दर्पण अर्पण करे। तदनन्तर देवाधिदेवके मस्तकपर दूर्वा, अक्षत और पवित्रक चढ़ाकर हृदय (नमः) से अभिमन्त्रित मूलमन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। तत्पश्चात् कवचसे आवेष्टित एवं अस्त्रके द्वारा सुरक्षित अक्षत-कुश, पुष्प तथा उद्भव नामक मुद्रासे भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रार्थना करे—॥ ७४-७७½॥

'प्रभो! गुह्यसे भी अति गुह्य वस्तुकी आप रक्षा करनेवाले हैं। आप मेरे किये हुए इस जपको ग्रहण करें, जिससे आपके रहते हुए आपकी कृपासे मुझे सिद्धि प्राप्त हो'[८]॥ ७८½॥

भोगकी इच्छा रखनेवाला उपासक उपर्युक्त श्लोक पढ़कर, मूल मन्त्रके उच्चारणपूर्वक दाहिने हाथसे अर्घ्य-जल ले भगवान्‌के वरकी मुद्रासे युक्त हाथमें अर्घ्य निवेदन करे। फिर इस प्रकार प्रार्थना करे—'देव! शंकर! हम कल्याणस्वरूप आपके चरणोंकी शरणमें आये हैं। अतः सदा हम जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म करते आ रहे हैं, उन सबको आप नष्ट कर दीजिये—निकाल फेंकिये। हूं क्षः। शिव ही दाता हैं, शिव ही भोक्ता हैं, शिव ही यह सम्पूर्ण

---

७. ये पाँच मन्त्र इस प्रकार हैं—

(१) ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोम्॥

(२) ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

(३) ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

(४) ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥

(५) ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

८. गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे येन त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिते॥
(अग्नि० पू० ७४। ७८½)

जगत् हैं, शिवकी सर्वत्र जय हो । जो शिव हैं, वही मैं हूँ'[१] ॥ ७९–८१½ ॥

इन दो श्लोकोंको पढ़कर अपना किया हुआ जप आराध्यदेवको समर्पित कर दे । तत्पश्चात् जपे हुए शिव-मन्त्रका दशांश भी जपे (यह हवनकी पूर्तिके लिये आवश्यक है) । फिर अर्घ्य देकर भगवान्‌की स्तुति करे । अन्तमें अष्टमूर्तिधारी आराध्यदेव शिवकी परिक्रमा करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करे । नमस्कार और शिव-ध्यान करके चित्रमें अथवा अग्नि आदिमें भगवान् शिवके उद्देश्यसे यजन-पूजन करना चाहिये ॥ ८२–८४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिव-पूजाकी विधिका वर्णन' नामक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

शिवपूजाके अङ्गभूत होमकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! पूजनके पश्चात् अपने शरीरको मन्त्र आदिसे आवृत करके हाथमें अर्घ्यपात्र लिये उपासक अग्निशालामें जाय और दिव्यदृष्टिसे यज्ञके समस्त उपकरणोंकी कल्पना (संग्रह) करे । उत्तराभिमुख हो कुण्डको देखे । कुशोंद्वारा उसका प्रोक्षण एवं ताडन (मार्जन) करे । ताडन तो अस्त्र-मन्त्र (फट्) से करे; किंतु उसका अभ्युक्षण कवच-मन्त्र (हुम्) से करना चाहिये । खड्गसे कुण्डका खात उद्धार, पूरण और समता करे । कवच (हुम्) से उसका अभिषेक तथा शरमन्त्र (फट्) से भूमिको कूटनेका कार्य करे । सम्मार्जन, उपलेपन, कलात्मक रूपकी कल्पना, त्रिसूत्री परिधान तथा अर्चन भी सदा कवच-मन्त्रसे ही करना चाहिये । कुण्डके उत्तरमें तीन रेखा करे । एक रेखा ऐसी खींचे, जो पूर्वाभिमुखी हो और ऊपरसे नीचेकी ओर गयी हो । कुश अथवा त्रिशूलसे रेखा करनी चाहिये । अथवा उन सभी रेखाओंमें उलट-फेर भी किया जा सकता है ॥ १–५ ॥

अस्त्र-मन्त्र (फट्) का उच्चारण करके वज्रीकरणकी क्रिया करे । 'नमः'का उच्चारण करके कुशोंद्वारा चतुष्पथका न्यास करे । कवच-मन्त्र (हुम्) बोलकर अक्षपात्रका और हृदय-मन्त्र (नमः)से विष्टरका स्थापन करे । 'वागीश्वर्यै नमः ।' 'ईशाय नमः ।'—ऐसा बोलकर वागीश्वरी देवी तथा ईशका आवाहन एवं पूजन करे । इसके बाद अच्छे स्थानसे शुद्धपात्रमें रक्खी हुई अग्निको ले आवे । उसमेंसे '**क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं०**' (शु० यजु० ३५ । १९) इत्यादि मन्त्रके उच्चारणपूर्वक क्रव्याद-के अंशभूत अग्निकणको निकाल दे । फिर निरीक्षण आदिसे शोधित औदर्य, ऐन्दव तथा भौत—इन त्रिविध अग्नियोंको एकत्र करके '**ॐ हूं वह्निचैतन्याय नमः**।'का उच्चारण करके अग्निबीज (रं) के साथ स्थापित करे ॥६–८½॥

संहिता-मन्त्रसे अभिमन्त्रित, धेनुमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक अमृतीकरणकी क्रियासे संस्कृत, अस्त्र-मन्त्रसे सुरक्षित तथा कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठित एवं पूजित अग्निको कुण्डके ऊपर प्रदक्षिणा-क्रमसे तीन बार घुमाकर, 'यह भगवान् शिवका बीज है'—ऐसा चिन्तन करके ध्यान करे कि 'वागीश्वरदेवने इस बीजको वागीश्वरीके गर्भमें स्थापित किया है ।' इस ध्यानके साथ मन्त्र-साधक दोनों घुटने पृथ्वीपर टेककर नमस्कारपूर्वक उस अग्निको अपने सम्मुख कुण्डमें स्थापित कर दे । तत्पश्चात् जिसके भीतर बीज-स्वरूप अग्निका आधान हो गया है, उस कुण्डके नाभिदेशमें कुशोंद्वारा परिसमूहन करे । परिधान-सम्भार, शुद्धि, आचमन एवं नमस्कारपूर्वक गर्भाग्निका पूजन करके उस गर्भज अग्निकी रक्षाके लिये अस्त्र-मन्त्रसे भावनाद्वारा ही वागीश्वरीदेवीके पाणिपल्लवमें कङ्कण (या रक्षासूत्र) बाँधे ॥ ९–१३½ ॥

सद्योजात-मन्त्रसे गर्भाधानके उद्देश्यसे अग्निका पूजन करके हृदय-मन्त्रसे तीन आहुतियाँ दे । फिर भावनाद्वारा ही तृतीय मासमें होनेवाले पुंसवन-संस्कारकी सिद्धिके लिये

---

१ यत्किंचित्कुर्महे देव सदा सुकृतदुष्कृतम् ॥
तन्मे शिवपदस्थस्य हूं क्षः क्षेपय शंकर । शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ॥
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च । (अग्नि० ७४ । ८०–८२)

वामदेवमन्त्रद्वारा अग्निकी पूजा करके, **'शिरसे स्वाहा ।'** बोलकर तीन आहुतियाँ दे । इसके बाद उस अग्निपर जलबिन्दुओंसे छींटा दे । तदनन्तर छठे मासमें होनेवाले सीमन्तोन्नयन-संस्कारकी भावना करके, अघोर-मन्त्रसे अग्निका पूजन करके **'शिखायै वषट् ।'** का उच्चारण करते हुए तीन आहुतियाँ दे तथा शिखा-मन्त्रसे ही मुख आदि अङ्गोंकी कल्पना करे । मुखका उद्घाटन एवं प्रकटीकरण करे । तत्पश्चात् पूर्ववत् दसवें मासमें होनेवाले जातकर्म एवं नरकर्मकी भावनासे तत्पुरुष-मन्त्रद्वारा दर्भ आदिसे अग्निका पूजन एवं प्रज्वलन करके गर्भमलको दूर करनेवाला स्नान करावे तथा ध्यानद्वारा देवीके हाथमें सुवर्ण-बन्धन करके हृदय-मन्त्रसे पूजन करे । फिर सूतककी तत्काल निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे अभिषेक करे ॥ १४-१९ ॥

कुण्डका बाहरकी ओरसे अस्त्र-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक कुशोंद्वारा ताडन या मार्जन करे । फिर **'हुम्'**का उच्चारण करके उसे जलसे सींचे । तत्पश्चात् कुण्डके बाहर मेखलाओंपर अस्त्र-मन्त्रसे उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें पूर्वाग्र तथा पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें उत्तराग्र कुशाओंको बिछावे । उनपर हृदय-मन्त्रसे परिधि-विष्टर (आठों दिशाओंमें आसन-विशेष) स्थापित करे । इसके बाद सद्योजातादि पाँच मुख-सम्बन्धी मन्त्रोंसे तथा अस्त्र-मन्त्रसे नालच्छेदनके उद्देश्यसे पाँच समिधाओंके मूलभागको घीमें डुबोकर उन पाँचोंकी आहुति दे । तदनन्तर ब्रह्मा, शंकर, विष्णु और अनन्तका दूर्वा और अक्षत आदिसे पूजन करे । पूजनके समय उनके नामके अन्तमें 'नमः' जोड़कर उच्चारण करे । यथा—**'ब्रह्मणे नमः ।' 'शंकराय नमः ।' 'विष्णवे नमः ।' 'अनन्ताय नमः ।'** फिर कुण्डके चारों ओर बिछे हुए पूर्वोक्त आठ विष्टरोंपर पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशानका आवाहन और स्थापन करके यह भावना करे कि उन सबका मुख अग्निदेवकी ओर है । फिर उन सबकी अपनी-अपनी दिशामें पूजा करे । पूजाके समय उनके नाम-मन्त्रके अन्तमें **'नमः'** जोड़कर बोले । यथा—**'इन्द्राय नमः ।'** इत्यादि ॥ २०-२३½ ॥

इसके बाद उन सब देवताओंको भगवान् शिवकी यह आज्ञा सुनावे—'देवताओ ! तुम सब लोग विघ्न-समूहका निवारण करके इस बालक (अग्नि) का पालन करो ।' तदनन्तर ऊर्ध्वमुख स्रुक् और स्रुवको लेकर उन्हें बारी-बारीसे तीन बार अग्निमें तपावे । फिर कुशके मूल, मध्य और अग्रभागसे उनका स्पर्श करावे । कुशसे स्पर्श कराये हुए स्थानोंमें क्रमशः आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन तीनोंका न्यास करे । न्यास-वाक्य इस प्रकार हैं—**'ॐ हां आत्मतत्त्वाय नमः ।' 'ॐ हीं विद्यातत्त्वाय नमः ।' 'ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः ।'** ॥२४-२६½॥

तत्पश्चात् स्रुक्में **'नमः'**के साथ शक्तिका और स्रुवमें शिवका न्यास करे । यथा—**'शक्त्यै नमः ।' 'शिवाय नमः ।'** फिर तीन आवृत्तिमें फैले हुए रक्षासूत्रसे स्रुक् और और स्रुव दोनोंके ग्रीवाभागको आवेष्टित करे । इसके बाद पुष्पादिसे उनका पूजन करके अपने दाहिने भागमें कुशोंके ऊपर उन्हें रख दे । फिर गायका घी लेकर, उसे अच्छी तरह देख-भालकर शुद्ध कर ले और अपने स्वरूपके ब्रह्ममय होनेकी भावना करके, उस घीके पात्रको हाथमें लेकर हृदय-मन्त्रसे कुण्डके ऊपर अग्निकोणमें घुमाकर, पुनः अपने स्वरूपके विष्णुमय होनेकी भावना करे । तत्पश्चात् घृतको ईशानकोणमें रखकर कुशाग्रभागसे घी निकाले और **'शिरसे स्वाहा ।'** एवं **'विष्णवे स्वाहा ।'** बोलकर भगवान् विष्णुके लिये उस घृतबिन्दुकी आहुति दे । अपने स्वरूपके रुद्रमय होनेकी भावना करके, कुण्डके नाभिस्थानमें घृतको रखकर उसका आप्लावन करे ॥ २७-३१½ ॥

(फैलाये हुए अँगूठेसे लेकर तर्जनी तकको लंबाईको 'प्रादेश' कहते हैं ।) प्रादेश बराबर लंबे दो कुशोंको अङ्गुष्ठ तथा अनामिका—इन दो अँगुलियोंसे पकड़कर उनके द्वारा अस्त्र **(फट्)** के उच्चारणपूर्वक अग्निके सम्मुख घीको प्रवाहित करे । इसी प्रकार हृदय-मन्त्र **(नमः)** का उच्चारण करके अपने सम्मुख भी घृतका आप्लावन करे । **'नमः'** के उच्चारणपूर्वक हाथमें लिये हुए कुशके दग्ध हो जानेपर उसे शस्त्र-क्षेप (फट्के उच्चारण) के द्वारा पवित्र करे । एक जलते हुए कुशसे उसकी नीराजना (आरती) करके फिर दूसरे कुशसे उसे जलावे । उस जले हुए कुशको अस्त्र-मन्त्रसे पुनः अग्निमें ही डाल दे । तत्पश्चात् घृतमें एक प्रादेश बराबर कुश छोड़े, जिसमें गाँठ लगायी गयी हो । फिर घीमें दो पक्षों तथा इडा आदि तीन नाड़ियोंकी भावना करे । इडा आदि तीनों भागोंसे

क्रमशः स्रुवद्वारा घी लेकर उसका होम करे। 'स्वा' का उच्चारण करके स्रुवावस्थित घीको अग्निमें डाले और 'हा' का उच्चारण करके हुतशेष घीको उसे डालनेके लिये रखे हुए पात्रविशेषमें छोड़ दे। अर्थात् 'स्वाहा' बोलकर क्रमशः दोनों कार्य (अग्निमें हवन और शेषका पात्रविशेषमें प्रक्षेप) करे ॥ ३२-३६ ॥

प्रथम इडाभागमें घी लेकर '**ॐ हामग्नये स्वाहा।**' इस मन्त्रका उच्चारण करके घीका अग्निमें होम करे और हुतशेषका पात्रविशेषमें प्रक्षेप करे। इसी प्रकार दूसरे पिङ्गलाभागमें घी लेकर '**ॐ हां सोमाय स्वाहा।**' बोलकर घीमें आहुति दे और शेषका पात्रविशेषमें प्रक्षेप करे। फिर 'सुषुम्णा' नामक तृतीय भागमें घी लेकर '**ॐ हामग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।**' बोलकर स्रुवाद्वारा घी अग्निमें डाले और शेषका पात्रविशेषमें प्रक्षेपण करे। तत्पश्चात् बालक अग्निके मुखमें नेत्रत्रयके स्थाननिर्देशमें तीनों नेत्रोंका उद्घाटन करनेके लिये घृतपूर्ण स्रुवद्वारा निम्नाङ्कित मन्त्र बोलकर अग्निमें चौथी आहुति दे—'**ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।**' ॥ ३७-३९ ॥

तत्पश्चात् (पहले अध्यायमें बताये अनुसार) '**ॐ हां हृदयाय नमः।**' इत्यादि छहों अङ्ग सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा घीको अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्राद्वारा जगावे। फिर कवच-मन्त्र (हुम्) से अवगुण्ठित करके शरमन्त्र (फट्) से उसकी रक्षा करे। इसके बाद हृदय मन्त्रसे घृतबिन्दुका उत्क्षेपण करके उसका अभ्युक्षण एवं शोधन करे। साथ ही शिवस्वरूप अग्निके पाँच मुखोंके लिये अभिघार-होम, अनुसंधान-होम तथा मुखोंके एकीकरण-सम्बन्धी होम करे। अभिघार-होमकी विधि यों है—'**ॐ हां सद्योजाताय स्वाहा। ॐ हां वामदेवाय स्वाहा। ॐ हां अघोराय स्वाहा। ॐ हां तत्पुरुषाय स्वाहा। ॐ हां ईशानाय स्वाहा।**'—इन पाँच मन्त्रोंद्वारा सद्योजातादि पाँच मुखोंके लिये अलग-अलग क्रमशः घीकी एक एक आहुति देकर उन मुखोंको अभिघारित-घीसे आप्लावित करे। यही मुखाभिघार सम्बन्धी होम है। तत्पश्चात् दो-दो मुखोंके लिये एक साथ आहुति दे; यही मुखानुसंधान होम है। यह होम निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे सम्पन्न करे—'**ॐ हां सद्योजातवामदेवाभ्यां स्वाहा। ॐ हां वामदेवाघोराभ्यां स्वाहा। ॐ हां अघोरतत्पुरुषाभ्यां स्वाहा। ॐ हां तत्पुरुषेशानाभ्यां स्वाहा।**' ॥ ४०-४४ ॥

तदनन्तर कुण्डमें अग्निकोणमें वायव्यकोणतक तथा नैर्ऋत्यकोणसे ईशानकोणतक घीकी अविच्छिन्न धाराद्वारा आहुति देकर उक्त पाँचों मुखोंकी एकता करे। यथा—'**ॐ हां सद्योजातवामदेवाघोरतत्पुरुषेशानेभ्यः स्वाहा।**' इस मन्त्रसे पाँचों मुखोंके लिये एक ही आहुति देनेसे उन सबका एकीकरण होता है। इस प्रकार इष्टमुखमें सभी मुखोंका अन्तर्भाव होता है, अतः वह एक ही मुख उन सभी मुखोंका आकार धारण करता है—उन सबके साथ उसकी एकता हो जाती है। इसके बाद कुण्डके ईशानकोणमें अग्निकी पूजा करके, अस्त्र-मन्त्रसे तीन आहुतियाँ देकर अग्निका नामकरण करे—"हे अग्निदेव! तुम सब प्रकारसे शिव हो, तुम्हारा नाम 'शिव' है।" इस प्रकार नामकरण करके नमस्कारपूर्वक, पूजित हुए माता-पिता वागीश्वरी एवं वागीश्वर अथवा शक्ति एवं शिवका अग्निमें विसर्जन करके उनके लिये विधिपूर्वक पूर्णाहुति दे। मूल मन्त्रके अन्तमें 'वौषट्' पद जोड़कर (**यथा—ॐ नमः शिवाय वौषट्।** ऐसा कहकर) शिव और शक्तिके लिये विधिपूर्वक पूर्णाहुति देनी चाहिये। तत्पश्चात् हृदयकमलमें अङ्ग और सेनासहित परम तेजस्वी शिवका पूर्ववत् आवाहन करके पूजन करे और उनकी आज्ञा लेकर उन्हें पूर्णतः तृप्त करे ॥ ४५-४९ ॥

यज्ञाग्नि तथा शिवका अपने साथ नाडीसंधान करके अपनी शक्तिके अनुसार मूल मन्त्रसे अङ्गोंसहित दशांश होम करे। घी, दूध और मधुका एक एक 'कर्ष' (सोलह माशा) होम करना चाहिये। दहीकी आहुतिकी मात्रा एक 'प्रसृती' बतायी गयी है। दूधकी आहुतिका मान एक 'पसर' है। सभी भक्ष्य पदार्थों तथा लावाकी आहुतिकी मात्रा एक-एक 'मुट्ठी' है। मूलके तीन टुकड़ोंकी एक आहुति दी जाती है। फलकी आहुति उसके अपने ही प्रमाणके अनुसार दी जाती है, अर्थात् एक आहुतिमें छोटा हो या बड़ा एक फल देना चाहिये। उसे खण्डित नहीं करना चाहिये। अन्नकी आहुतिका मान आधा ग्रास है। जो सूक्ष्म किसमिस आदि वस्तुएँ हैं, उन्हें एक बार पाँचकी संख्यामें लेकर होम करना चाहिये। ईखकी आहुतिका मान एक 'पोर' है। लताओंकी आहुतिका मान दो दो अङ्गुलका टुकड़ा है। पुष्प और पत्रकी आहुति उनके अपने ही मानसे दी जाती है, अर्थात् एक आहुतिमें पूरा एक फूल और पूरा एक पत्र देना चाहिये। समिधाओंकी आहुतिका मान दस अङ्गुल है ॥ ५०-५४ ॥

कपूर, चन्दन, केसर और कस्तूरीसे बने हुए दक्ष-कर्दम (अनुलेप-विशेष) की मात्रा एक कलाय (मटर या केराव) के बराबर है। गुग्गुलकी मात्रा बेरके बीजके बराबर होनी चाहिये। कंदोंके आठवें भागसे एक आहुति दी जाती है। इस प्रकार विचार करके विधिपूर्वक उत्तम होम करे। इस तरह प्रणव तथा बीज-पदोंसे युक्त मन्त्रोंद्वारा होम-कर्म सम्पन्न करना चाहिये ॥ ५५-५६ ॥

तदनन्तर घीसे भरे हुए स्रुक्‌के ऊपर अधोमुख स्रुवको रखकर स्रुक्‌के अग्रभागमें फूल रख दे। फिर बायें और दायें हाथसे उन दोनोंको शङ्खकी मुद्रासे पकड़े। इसके बाद शरीरके ऊपरी भागको उन्नत रखते हुए उठकर खड़ा हो जाय। पैरोंको समभावसे रक्खे। स्रुक् और स्रुव दोनोंके मूलभागको अपनी नाभिमें टिका दे। नेत्रोंको स्रुक्‌के अग्र-भागपर ही स्थिरतापूर्वक जमाये रक्खे। ब्रह्मा आदि कारणोंका त्याग करते हुए भावनाद्वारा सुषुम्णा नाड़ीके मार्गसे निकलकर ऊपर उठे। स्रुक्-स्रुवके मूलभागको नाभिसे ऊपर उठाकर बायें स्तनके पास ले आवे। अपने तन-मनसे आलस्यको दूर रक्खे तथा (**ॐ नमः शिवाय वौषट्** ।—इस प्रकार) मूल-मन्त्रका वौषट् पर्यन्त अस्पष्ट (मन्द स्वरसे) उच्चारण करे और उस घीको जौकी-सी पतली धाराके साथ अग्निमें होम दे ॥ ५७-६०½ ॥

इसके बाद आचमन, चन्दन और ताम्बूल आदि देकर भक्तिभावसे भगवान् शिवके ऐश्वर्यकी वन्दना करते हुए उनके चरणोंमें उत्तम (साष्टाङ्ग) प्रणाम करे। फिर अग्नि-की पूजा करके '**ॐ हः अस्त्राय फट्** ।' के उच्चारणपूर्वक संहारमुद्राके द्वारा शंवरोंका आहरण करके इष्टदेवसे 'भगवन् ! मेरे अपराधको क्षमा करें'—ऐसा कहकर हृदय-मन्त्रसे पूरक प्राणायामके द्वारा उन तेजस्वी परिधियोंको बड़ी श्रद्धाके साथ अपने हृदयकमलमें स्थापित करे ॥ ६१-६३½ ॥

सम्पूर्ण पाक (रसोई)से अग्रभाग निकालकर कुण्डके समीप अग्निकोणमें दो मण्डल बनाकर एकमें अन्तर्बलि दे और दूसरेमें बाह्य-बलि। प्रथम मण्डलके भीतर पूर्व दिशामें '**ॐ हां रुद्रेभ्यः स्वाहा** ।'—इस मन्त्रसे रुद्रोंके लिये बलि (उपहार) अर्पित करे। दक्षिण दिशामें '**ॐ हां मातृभ्यः स्वाहा** ।' कहकर मातृकाओंके लिये, पश्चिम दिशामें '**ॐ हां गणेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु** ।' ऐसा कहकर गणोंके लिये, उत्तर दिशामें '**ॐ हां यक्षेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु** ।' कहकर यक्षोंके लिये, ईशानकोणमें '**ॐ हां ग्रहेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु** ।' ऐसा कहकर ग्रहोंके लिये, अग्निकोणमें '**ॐ हां असुरेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु** ।' ऐसा कहकर असुरोंके लिये, नैर्ऋत्यकोणमें '**ॐ हां रक्षोभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु** ।' ऐसा कहकर राक्षसोंके लिये, वायव्यकोणमें '**ॐ हां नागेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु** ।' ऐसा कहकर नागोंके लिये तथा मण्डलके मध्यभागमें '**ॐ हां नक्षत्रेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु** ।' ऐसा कहकर नक्षत्रोंके लिये बलि अर्पित करे ॥ ६४-६७ ॥

इसी तरह '**ॐ हां राशिभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु** ।' ऐसा कहकर अग्निकोणमें राशियोंके लिये, '**ॐ हां विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु** ।' ऐसा कहकर नैर्ऋत्य-कोणमें विश्वेदेवोंके लिये तथा '**ॐ हां क्षेत्रपालाय स्वाहा तस्मा अयं बलिरस्तु** ।' ऐसा कहकर पश्चिममें क्षेत्रपालको बलि दे ॥ ६८ ॥

तदनन्तर दूसरे बाह्य-मण्डलमें पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, जलेश्वर वरुण, वायु, धनरक्षक कुबेर तथा ईशानके लिये बलि समर्पित करे। फिर ईशानकोणमें '**ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा** ।' कहकर ब्रह्माके लिये तथा नैर्ऋत्यकोणमें '**ॐ विष्णवे नमः स्वाहा** ।' कहकर भगवान् विष्णुके लिये बलि दे। मण्डलसे बाहर काक आदिके लिये भी बलि देनी चाहिये। आन्तर और बाह्य—दोनों बलियोंमें उपयुक्त होनेवाले मन्त्रोंको संहारमुद्राके द्वारा अपने-आपमें समेट ले ॥ ६९-७१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिवपूजाके अङ्गभूत होमकी विधिका निरूपण' नामक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

चण्डकी पूजाका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द ! तदनन्तर शिव-विग्रहके निकट जाकर साधक इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन् ! मेरेद्वारा जो पूजन और होम आदि कार्य सम्पन्न हुआ है, उसे तथा उसके पुण्यफलको आप ग्रहण करें।'

ऐसा कहकर, स्थिरचित्त हो 'उद्भव' नामक मुद्रा दिखाकर अर्घ्यजलसे 'नमः' सहित पूर्वोक्त मूल मन्त्र पढ़ते हुए इष्टदेवको अर्घ्य निवेदन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् पूजन तथा स्तोत्रोंद्वारा स्तवन करके प्रणाम करे तथा पराङ्मुख अर्घ्य देकर कहे—'प्रभो! मेरे अपराधोंको क्षमा करें।' ऐसा कहकर दिव्य नाराचमुद्रा दिखा 'अस्त्राय फट्' का उच्चारण करके समस्त संग्रहका अपने-आपमें उपसंहार करनेके पश्चात् शिवलिङ्गको मूर्ति-सम्बन्धी मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर वेदीपर इष्टदेवताकी पूजा कर लेनेपर मन्त्रका अपने-आपमें उपसंहार करके पूर्वोक्त विधिसे चण्डका पूजन करे ॥ १—५॥

'ॐ चण्डेशानाय नमः।' से चण्डदेवताको नमस्कार करे। फिर मण्डलके मध्यभागमें 'ॐ चण्डमूर्तये नमः।' से चण्डकी पूजा करे। उस मूर्तिमें 'ॐ धूलिचण्डेश्वराय हूं फट् स्वाहा।' बोलकर चण्डेश्वरका आवाहन करे। इसके बाद अङ्ग-पूजा करे। यथा—'ॐ चण्डहृदयाय हूं फट्।' इस मन्त्रसे हृदयकी, 'ॐ चण्डशिरसे हूं फट्।' इस मन्त्रसे सिरकी, 'ॐ चण्डशिखायै हूं फट्।' इस मन्त्रसे शिखाकी, 'ॐ चण्डायुःकवचाय हूं फट्।' से कवचकी तथा 'ॐ चण्डास्त्राय हूं फट्।' से अस्त्रकी पूजा करे। इसके बाद रुद्राग्निसे उत्पन्न हुए चण्ड देवताका इस प्रकार ध्यान करे ॥ ६—७½ ॥

'चण्डदेव अपने दो हाथोंमें शूल और टङ्क धारण करते हैं। उनका रंग साँवला है। उनके तीसरे हाथमें अक्षसूत्र और चौथेमें कमण्डलु है। वे टङ्ककी-सी आकृतिवाले या अर्धचन्द्राकार मण्डलमें स्थित हैं। उनके चार मुख हैं।' इस प्रकार ध्यान करके उनका पूजन करना चाहिये। इसके बाद यथाशक्ति जप करे। हवनकी अङ्गभूत सामग्रीका संचय करके उसके द्वारा जपका दशांश होम करे। भगवान्पर चढ़े हुए या उन्हें अर्पित किये हुए गो, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि तथा मणि-सुवर्ण आदिके आभूषणको छोड़कर शेष सारा निर्माल्य चण्डेश्वरको समर्पित कर दे। उस समय इस प्रकार कहे—'हे चण्डेश्वर! भगवान् शिवकी आज्ञासे यह लेह्य, चोष्य आदि उत्तम अन्न, ताम्बूल, पुष्पमाला एवं अनुलेपन आदि निर्माल्यस्वरूप भोजन तुम्हें समर्पित है। चण्ड! यह सारा पूजन-सम्बन्धी कर्मकाण्ड मैंने तुम्हारी आज्ञासे किया है। इसमें मोहवश जो न्यूनता या अधिकता कर दी गयी हो, वह सदा मेरे लिये पूर्ण हो जाय—न्यूनातिरिक्तताका दोष मिट जाय' ॥ ८—१२ ॥

इस तरह निवेदन करके, उन देवेश्वरका स्मरण करते हुए उन्हें अर्घ्य देकर संहार-मूर्ति-मन्त्रको पढ़कर संहारमुद्रा दिखाकर धीरे-धीरे पूरक प्राणायामपूर्वक मूल-मन्त्रका उच्चारण करके सब मन्त्रोंका अपने-आपमें उपसंहार कर ले। निर्माल्य जहाँसे हटाया गया हो, उस स्थानको गोबर और जलसे लीप दे। फिर अर्घ्य आदिका प्रोक्षण करके देवताका विसर्जन करनेके पश्चात् आचमन करके अन्य आवश्यक कार्य करे ॥ १३—१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चण्डकी पूजाका वर्णन' नामक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

घरकी कपिला गाय, चूल्हा, चक्की, ओखली, मूसल, झाड़ू और खंभे आदिका पूजन एवं प्राणाग्निहोत्रकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब कपिला-पूजनके विषयमें कहूँगा। निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे गोमाताका पूजन करे—'ॐ कपिले नन्दे नमः। ॐ कपिले भद्रिके नमः। ॐ कपिले सुशीले नमः। ॐ कपिले सुरभिप्रभे नमः। ॐ कपिले सुमनसे नमः। ॐ कपिले भुक्तिमुक्ति-प्रदे नमः।' * । इस प्रकार गोमातासे प्रार्थना करे—'देवताओंको अमृत प्रदान करनेवाली, वरदायिनी, जगन्माता सौरभेयि! यह ग्रास ग्रहण करो और मुझे मनोवाञ्छित वस्तु दो। कपिले! ब्रह्मर्षि वसिष्ठ तथा बुद्धिमान् विश्वामित्रने भी तुम्हारी वन्दना की है। मैंने जो दुष्कर्म किया हो, मेरा वह सारा पाप तुम हर लो। गौएँ सदा मेरे आगे रहें, गौएँ मेरे पीछे भी रहें, गौएँ मेरे हृदयमें निवास करें और मैं

* इन मन्त्रोंका भावार्थ इस प्रकार है—आनन्ददायिनी, कल्याणकारिणी, उत्तम स्वभाववाली, सुरभिकी सी मनोहर कान्तिवाली, शुद्ध हृदयवाली तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली कपिले! तुम्हें बार बार नमस्कार है।

सदा गौओंके बीचमें निवास करूँ। गोमातः! मेरे दिये हुए इस ग्रासको ग्रहण करो।'

गोमाताके पास इस प्रकार बारंबार प्रार्थना करनेवाला पुरुष निर्मल (पापरहित) एवं शिवस्वरूप हो जाता है। विद्या पढ़नेवाले मनुष्यको चाहिये कि प्रतिदिन अपने विद्या-ग्रन्थोंका पूजन करके गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे। गृहस्थ पुरुष नित्य मध्याह्नकालमें स्नान करके अष्टपुष्पिका (आठ फूलोंवाली) पूजाकी विधिसे भगवान् शिवका पूजन करे। योगपीठ, उसपर स्थापित शिवकी मूर्ति तथा भगवान् शिवके जानु, पैर, हाथ, उर, सिर, वाक्, दृष्टि और बुद्धि—इन आठ अङ्गोंकी पूजा ही 'अष्टपुष्पिका पूजा' कहलाती है (आठ अङ्ग ही आठ फूल हैं)। मध्याह्नकालमें सुन्दर रीतिसे लिपे पुते हुए रसोई-घरमें पका पकाया भोजन ले आवे। फिर—

'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥ वौषट्॥'
(शु० यजु० ३। ६०)

इस प्रकार अन्तमें 'वौषट्' पदसे युक्त मृत्युञ्जय मन्त्रका सात बार जप करके कुशयुक्त शङ्खमें रखे हुए जलकी बूँदोंसे उस अन्नको सींचे। तत्पश्चात् सारी रसोईमेंसे अग्राशन निकालकर भगवान् शिवको निवेदन करे॥ १—९॥

इसके बाद आधे अन्नको चुल्लिका-होमका कार्य सम्पन्न करनेके लिये रख ले। विधिपूर्वक चूल्हेकी शुद्धि करके उसकी आगमें पूरक प्राणायामपूर्वक एक आहुति दे। फिर नाभिगत अग्नि—जठरानलके उद्देश्यसे एक आहुति देकर रेचक प्राणायामपूर्वक भीतरसे निकलती हुई वायुके साथ अग्निबीज (र) को लेकर क्रमशः 'क' आदि अक्षरोंके उच्चारण स्थान कण्ठ आदिके मार्गसे बाहर करके 'तुम शिवस्वरूप अग्नि हो' ऐसा चिन्तन करते हुए उसे चूल्हेकी आगमें भावनाद्वारा समाविष्ट कर दे। इसके बाद चूल्हेकी पूर्वादि दिशाओंमें—'**ॐ हां अग्नये नमः। ॐ हां सोमाय नमः। ॐ हां सूर्याय नमः। ॐ हां बृहस्पतये नमः। ॐ हां प्रजापतये नमः। ॐ हां सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ हां सर्वविश्वेभ्यो नमः। ॐ हां अग्नये स्विष्टकृते नमः।**'—इन आठ मन्त्रोंद्वारा अग्नि आदि आठ देवताओंकी पूजा करे। फिर इन मन्त्रोंके अन्तमें 'स्वाहा' पद जोड़कर एक-एक आहुति दे और अपराधोंके लिये क्षमा माँगकर उन सबका विसर्जन कर दे॥ १०—१४॥

चूल्हेके दाहिने बगलमें '**धर्माय नमः।**' इस मन्त्रसे धर्मकी तथा बायें बगलमें '**अधर्माय नमः।**' इस मन्त्रसे अधर्मकी पूजा करे। फिर काँजी आदि रखनेके जो पात्र हों, उनमें तथा जलके आश्रयभूत घट आदिमें '**रसपरिवर्तमानाय वरुणाय नमः।**' इस मन्त्रसे वरुणकी पूजा करे। रसोईघरके द्वारपर '**विघ्नराजाय नमः।**' से विघ्नराजकी तथा '**सुभगायै नमः।**' से चक्कीमें सुभगाकी पूजा करे॥ १५-१६॥

ओखलीमें '**ॐ रौद्रिके गिरिके नमः।**' इस मन्त्रसे रौद्रिका तथा गिरिकाकी पूजा करनी चाहिये। मूसलमें '**बलप्रियायायुधाय नमः।**' इस मन्त्रसे बलभद्रजीके आयुधका पूजन करे। झाड़ूमें भी उक्त दो देवियों (रौद्रिका और गिरिका) की, शय्यामें कामदेवकी, तथा मझले खम्भेमें स्कन्दकी पूजा करे। बेटा स्कन्द! तत्पश्चात् व्रतका पालन करनेवाला साधक एवं पुरोहित वासुदेवादिको बलि देकर सोनेके थालमें अथवा पुरइनके पत्ते आदिमें मौनभावसे भोजन करे। भोजनपात्रके रूपमें उपयोग करनेके लिये बरगद, पीपल, मदार, रेड़, साखू और भिलावेके पत्तोंको त्याग देना चाहिये—इन्हें काममें नहीं लाना चाहिये। पहले आचमन करके, 'प्राणयुक्त प्राण' आदि शब्दोंके अन्तमें 'स्वाहा' बोलकर अन्नकी पाँच आहुतियाँ देकर जठरानलको उद्दीप्त करनेके पश्चात् भोजन करना चाहिये। इसका क्रम यों है—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—ये पाँच उपवायु हैं। '**एतेभ्यो नागादिभ्य उपवायुभ्यः स्वाहा।**' इस मन्त्रसे आचमन करके, भात आदि भोजन निवेदन करके, अन्तमें फिर आचमन करे और कहे—'**ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।**' इसके बाद पाँच प्राणोंको एक एक ग्रासकी आहुतियाँ अपने मुखमें दे—(१) **ॐ प्राणाय स्वाहा।** (२) **ॐ अपानाय स्वाहा।** (३) **ॐ व्यानाय स्वाहा।** (४) **ॐ समानाय स्वाहा।** (५) **ॐ उदानाय स्वाहा।*** तत्पश्चात् पूर्ण भोजन करके पुनः चुल्लूभर पानीसे आचमन करे और कहे—'**ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा।**' यह आचमन शरीरके भीतर पहुँचे हुए अन्नको आच्छादित करने या पचानेके लिये है॥ १७—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कपिला-पूजन आदिकी विधिका वर्णन' नामक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७७॥

---

* अग्निपुराणके मूलमें व्यान वायुकी आहुति अन्तमें बतायी गयी है; परंतु गृह्यसूत्रोंमें इसका तीसरा स्थान है। इसलिये वही क्रम अर्थमें रखा गया है।

अठहत्तरवाँ अध्याय

पवित्राधिवासनकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं पवित्रारोहणका वर्णन करूँगा, जो क्रिया, योग तथा पूजा आदिमें न्यूनताकी पूर्ति करनेवाला है। जो पवित्रारोहण कर्म नित्य किया जाता है, उसे 'नित्य' कहा गया है तथा दूसरा, जो विशेष निमित्तको लेकर किया जाता है, उसे 'नैमित्तिक' कहते हैं। आषाढ़ मासकी आदि-चतुर्दशीको तथा श्रावण और भाद्रपद मासोंकी शुक्ल-कृष्ण उभयपक्षीय चतुर्दशी एवं अष्टमी तिथियोंमें पवित्रारोहण या पवित्रारोपण कर्म करना चाहिये। अथवा आषाढ़ मासकी पूर्णिमासे लेकर कार्तिक मासकी पूर्णिमातक प्रतिपदा आदि तिथियोंको विभिन्न देवताओंके लिये पवित्रारोहण करना चाहिये। प्रतिपदाको अग्निके लिये, द्वितीयाको ब्रह्माजीके लिये, तृतीयाको पार्वतीके लिये, चतुर्थीको गणेशके लिये, पञ्चमीको नागराज अनन्तके लिये, षष्ठीको स्कन्दके अर्थात् तुम्हारे लिये, सप्तमीको सूर्यके लिये, अष्टमीको शूलपाणिके अर्थात् मेरे लिये, नवमीको दुर्गाके लिये, दशमीको यमराजके लिये, एकादशीको इन्द्रके लिये, द्वादशीको भगवान् गोविन्दके लिये, त्रयोदशीको कामदेवके लिये, चतुर्दशीको मुझ शिवके लिये तथा पूर्णिमाको अमृतभोजी देवताओंके लिये पवित्रारोपण कर्म करना चाहिये ॥ १—३½ ॥

सत्ययुग आदि तीन युगोंमें क्रमशः सोने, चाँदी और ताँबेके पवित्रक अर्पित किये जाते हैं, किंतु कलियुगमें कपासके सूत, रेशमी सूत अथवा कमल आदिके सूतका पवित्रक अर्पित करनेका विधान है। प्रणव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, नागगण, स्कन्द, श्रीहरि, सर्वेश्वर तथा सम्पूर्ण देवता—ये क्रमशः पवित्रकके नौ तन्तुओंके देवता हैं। उत्तम श्रेणीका पवित्रक एक सौ आठ सूत्रोंसे बनता है। मध्यम श्रेणीका चौवन तथा निम्न श्रेणीका सत्ताईस सूत्रोंसे निर्मित होता है। अथवा इक्यासी, पचास या अड़तीस सूत्रोंसे उसका निर्माण करना चाहिये। जो पवित्रक जितने नवसूत्रीसे बनाया जाय, उसमें बीचमें उतनी ही गाँठें लगानी चाहिये। पवित्रकों-का व्यास-मान या विस्तार बारह अङ्गुल, आठ अङ्गुल अथवा चार अङ्गुलका होना चाहिये। यदि शिवलिङ्गके लिये पवित्रक बनाना हो तो उस लिङ्गके बराबर ही बनाना चाहिये ॥ ४—८ ॥

(इस प्रकार तीन तरहके पवित्रक बताये गये।) इसी तरह एक चौथे प्रकारका भी पवित्रक बनता है, जो सभी देवताओंके उपयोगमें आता है। वह उनकी पिण्डी या मूर्तिके बराबरका बनाया जाना चाहिये। इस तरह बने हुए पवित्रकको 'गङ्गावतारक' कहते हैं। इसे 'सद्योजात' मन्त्रके द्वारा भलीभाँति धोना चाहिये। इसमें 'वामदेव' मन्त्रसे ग्रन्थि लगावे। 'अघोर' मन्त्रसे इसकी शुद्धि करे तथा 'तत्पुरुष' मन्त्रसे रक्तचन्दन एवं रोलीद्वारा इसको रँगे। अथवा कस्तूरी, गोरोचना, कपूर, हल्दी और गेरू आदिसे मिश्रित रंगके द्वारा पवित्रक मात्रको रँगना चाहिये। सामान्यतः पवित्रकमें दस गाँठें लगानी चाहिये अथवा तन्तुओंकी संख्याके अनुसार उसमें गाँठें लगावे। एक गाँठसे दूसरी गाँठमें एक, दो या चार अङ्गुलका अन्तर रक्खे। अन्तर उतना ही रखना चाहिये, जिससे उसकी शोभा बनी रहे। प्रकृति (क्रिया), पौरुषी, वीरा, अपराजिता, जया, विजया, अजिता, सदाशिवा, मनोन्मनी तथा सर्वतोमुखी—ये दस ग्रन्थियोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। अथवा दससे अधिक भी सुन्दर गाँठें लगानी चाहिये। पवित्रकके चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल तथा सूर्यमण्डलसे युक्त होनेकी भावना करके, उसे साक्षात् भगवान् शिवके तुल्य मानकर हृदयमें धारण करे—मन-ही-मन उसके दिव्य स्वरूपका चिन्तन करे। शिवरूपसे भावित अपने स्वरूपको, पुस्तकको तथा गुरुगणको एक-एक पवित्रक अर्पित करे ॥ ९—१४ ॥

इसी प्रकार द्वारपाल, दिक्पाल और कलश आदिपर भी एक-एक पवित्रक चढ़ाना चाहिये। शिवलिङ्गोंके लिये एक हाथसे लेकर नौ हाथतकका पवित्रक होता है। एक हाथवाले पवित्रकमें अट्ठाईस गाँठें होती हैं। फिर क्रमशः दस-दस गाँठें बढ़ती जाती हैं। इस तरह नौ हाथवाले पवित्रकमें एक सौ आठ गाँठें होती हैं। ये ग्रन्थियाँ क्रमशः

१—४. 'सद्योजात' आदि पाँच मूर्तियोंके मन्त्र पचहत्तरवें अध्यायमें दिये गये हैं।

एक या दो-दो अङ्गुलके अन्तरपर रहती हैं । इनका मान भी लिङ्गके विस्तारके अनुरूप हुआ करता है। जिस दिन पवित्रारोपण करना हो, उससे एक दिन पूर्व अर्थात् सप्तमी या त्रयोदशी तिथिको उपासक नित्यकर्म करके पवित्र हो सायंकालमें पुष्प और वस्त्र आदिसे याग-मन्दिर (पूजा-मण्डप) को सजावे । नैमित्तिकी संध्योपासना करके, विशेषरूपसे तर्पण-कर्मका सम्पादन करनेके पश्चात् पूजाके लिये निश्चित किये हुए पवित्र भूभागमें सूर्यदेवका पूजन करे ॥ १५—१८½ ॥

आचार्यको चाहिये कि वह आचमन एवं सकली-करणकी क्रिया करके प्रणवके उच्चारणपूर्वक अर्घ्यपात्र हाथमें लिये अस्त्र-मन्त्र (फट्) बोलकर पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे सम्पूर्ण द्वारोंका प्रोक्षण करके उनका पूजन करे । 'हां शान्तिकलाद्वाराय नमः ।' 'हां विद्याकलाद्वाराय नमः ।' 'हां निवृत्तिकलाद्वाराय नमः ।' 'हां प्रतिष्ठाकलाद्वाराय नमः ।'—इन मन्त्रोंसे पूर्वादि चारों द्वारोंका पूजन करना चाहिये । प्रत्येक द्वारकी दक्षिण और वाम शाखाओंपर दो-दो द्वारपालोंका पूजन करे । पूर्वमें 'नन्दिने नमः ।' 'महाकालाय नमः ।' -इन मन्त्रोंसे नन्दी और महाकालका, दक्षिणमें 'भृङ्गिणे नमः ।' 'गणाय नमः ।' —इन मन्त्रोंसे भृङ्गी और गणपका, पश्चिममें 'वृषभाय नमः ।' 'स्कन्दाय नमः ।' —इन मन्त्रोंसे नन्दिकेश्वर वृषभ तथा स्कन्दका तथा उत्तर द्वारमें 'देव्यै नमः ।' 'चण्डाय नमः ।'—इन मन्त्रोंसे देवी तथा चण्ड नामक द्वारपालका क्रमशः पूजन करे ॥१९—२२॥

इस प्रकार द्वारपाल आदिकी 'नित्य'पूजा करके पश्चिम द्वारसे होकर याग-मन्दिरमें प्रवेश करे । फिर वास्तुदेवता-का पूजन करके भूतशुद्धि करे । तत्पश्चात् विशेषार्घ्य हाथमें लेकर अपनेमें शिवस्वरूपकी भावना करते हुए पूजा-सामग्रीका प्रोक्षण आदि करके यज्ञभूमिका संस्कार करे । फिर कुश, दूर्वा और फूल आदि हाथमें लेकर 'नमः' आदिके उच्चारणपूर्वक उसे अभिमन्त्रित करे । इस प्रकार शिवहस्तका विधान करके उसे अपने सिरपर रक्खे और यह भावना करे कि 'मैं सबका आदि कारण सर्वज्ञ शिव हूँ तथा यज्ञमें मेरी ही प्रधानता है ।' इस प्रकार आचार्य भगवान् शिवका अत्यन्त ध्यान करे और ज्ञानरूपी खड्ग हाथमें लिये नैर्ऋत्य दिशामें जाकर उत्तराभिमुख हो अर्घ्यका जल छोड़े तथा यज्ञ-मण्डपमें चारों ओर पञ्चगव्य छिड़के । चतुष्पथान्त संस्कार और उत्तम संस्कारयुक्त वीक्षण आदिके द्वारा वहाँ सब ओर गौर सर्षप आदि बिखरने योग्य वस्तुओंको बिखेरकर कुशनिर्मित कूर्चके द्वारा उनका उपसंहार करे । फिर उनके द्वारा ईशानकोणमें वर्धनी एवं कलशकी स्थापनाके लिये आसनकी कल्पना करे ॥ २३—२८ ॥

तत्पश्चात् नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुदेवताका तथा द्वारपर लक्ष्मीका पूजन करे । फिर पश्चिमाभिमुख कलशको सप्तधान्यके ऊपर स्थापित करके प्रणवके उच्चारणपूर्वक यह भावना करे कि 'यह शिवस्वरूप कलश नन्दिकेश्वर वृषभके ऊपर आरूढ़ है ।' साथ ही वर्धनी सिंहके ऊपर स्थित है, ऐसी भावना करे । कलशपर साङ्ग भगवान् शिवकी और वर्धनीमें अस्त्रकी पूजा करे । इसके बाद पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्र आदि दिक्पालोंका तथा मण्डपके मध्यभागमें ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदिका पूजन करे । तत्पश्चात् कलशके पृष्ठभागका अनुसरण करनेवाली वर्धनीको भलीभाँति हाथमें लेकर मन्त्रज्ञ गुरु भगवान् शिवकी आज्ञा सुनावे । फिर पूर्वसे लेकर प्रदक्षिणक्रमसे चलते हुए ईशानकोणतक जलकी अविच्छिन्न धारा गिरावे और मूलमन्त्रका उच्चारण करे । शस्त्ररूपिणी वर्धनीको यज्ञमण्डपकी रक्षाके लिये उसके चारों ओर घुमावे । पहले कलशको आरोपित करके उसके वामभागमें शस्त्रके लिये वर्धनीको स्थापित करे ॥२९-३३॥

उत्तम एवं सुस्थिर आसनवाले कलशपर भगवान् शंकरका तथा प्रणवपर स्थित हुई वर्धनीमें उनके आयुधका पूजन करे । तदनन्तर उन दोनोंका लिङ्गमुद्राके द्वारा परस्पर संयोग कराकर भगलिङ्ग-संयोगका सम्पादन करे । कलशपर ज्ञानरूपी खड्ग अर्पित करके मूलमन्त्रका जप करे । उस जपके दशांश होमसे वर्धनीमें रक्षा घोषित करे । फिर वायव्यकोणमें गणेशजीकी पूजा करके पञ्चामृत आदिसे भगवान् शिवको स्नान करावे और पूर्ववत् पूजन करके कुण्डमें शिवस्वरूप अग्निकी पूजा करे । इसके बाद विधिपूर्वक चरु तैयार करके उसे सम्पाताहुतिकी विधिसे शोधित करे । तदनन्तर भगवान् शिव, अग्नि और आत्माके भेदसे तीन अधिकारियोंके लिये चम्मचसे उस चरुके तीन भाग करे तथा अग्निकुण्डमें शिव एवं अग्निका भाग देकर शेष भाग आत्माके लिये सुरक्षित रक्खे ॥ ३४—३८ ॥

तत्पुरुष-मन्त्रके साथ 'हुं' बोलकर उसके उच्चारण-पूर्वक पूर्व दिशामें इष्टदेवके लिये दन्तधावन अर्पित

करे । अघोर-मन्त्रके अन्तमें 'वषट्' जोड़कर उसके उच्चारणपूर्वक उत्तर दिशामें ऑवला अर्पित करे। वामदेव-मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर उसका उच्चारण करते हुए जल निवेदन करे । ईशान-मन्त्रसे ईशानकोणमें सुगन्धित जल समर्पित करे । पञ्चगव्य और पलाश आदिके दोने सब दिशाओंमें रक्खे । ईशानकोणमें पुष्प, अग्निकोणमें गोरोचन, नैर्ऋत्यकोणमें अगुरु तथा वायव्य-कोणमें चतुःसम समर्पित करे। तुरंतके पैदा हुए कुशोंके साथ समस्त होमद्रव्य भी अर्पित करे। दण्ड, अक्षसूत्र, कौपीन तथा भिक्षापात्र भी देवविग्रहको अर्पित करे। काजल, कुङ्कुम, सुगन्धित तेल, केशोंको शुद्ध करनेवाली कंघी, पान, दर्पण तथा गोरोचन भी उत्तर दिशामें अर्पित करे। तत्पश्चात् आसन, खड़ाऊँ, पात्र, योगपट्ट और छत्र—ये वस्तुएँ भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये ईशानकोणमें ईशान-मन्त्रसे ही निवेदन करे॥ ३९-४४½ ॥

पूर्व दिशामें घीसहित चरु तथा दन्त आदि भगवान् तत्पुरुषको अर्पित करे। तदनन्तर अर्घ्यजलसे प्रक्षालित तथा संहिता मन्त्रसे शोधित पवित्रकोंको लेकर अग्निके निकट पहुँचावे। कृष्ण मृगचर्म आदिसे उन्हें ढककर रक्खे। उनके भीतर समस्त कर्मोंके साक्षी और संरक्षक संवत्सरस्वरूप अविनाशी भगवान् शिवका चिन्तन करे। फिर 'मा' और 'हा' का प्रयोग करते हुए मन्त्र-संहिताके पाठपूर्वक इक्कीस बार उन पवित्रकोंका शोधन करे। तत्पश्चात् ग्रह आदिको सूत्रोंसे वेष्टित करे। सूर्यदेवको गन्ध, पुष्प आदि चढ़ावे। फिर पूजित हुए सूर्यदेवको आचमनपूर्वक अर्घ्य दे। न्यास करके नन्दी आदि द्वारपालों-को और वास्तुदेवताको भी गन्धादि समर्पित करे। तदनन्तर यज्ञ-मण्डपके भीतर प्रवेश करके शिव-कलशपर उसके चारों ओर इन्द्रादि लोकपालों और उनके अस्त्रोंकी अपने-अपने नाम-मन्त्रोंसे पूजा करे॥ ४५-५० ॥

इसके बाद वर्धनीमें विघ्नराज, गुरु और आत्माका पूजन करे। इन सबका पूजन करनेके अनन्तर सर्वौषधिसे लिप्त, धूपसे धूपित तथा पुष्प-दूर्वा आदिसे पूजित पवित्रकको दोनों अञ्जलियोंके बीचमें रख ले और भगवान् शिवको सम्बोधित करते हुए कहे—'सबके कारण तथा जड और चेतनके स्वामी परमेश्वर! पूजनकी समस्त विधियोंमें होनेवाली त्रुटिकी पूर्तिके लिये मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ। आपसे अभीष्ट मनोरथकी प्राप्ति करानेवाली सिद्धि चाहता हूँ। आप अपनी आराधना करनेवाले इस उपासकके लिये उस सिद्धिका अनुमोदन कीजिये। शम्भो! आपको सदा और सब प्रकारसे मेरा नमस्कार है। आप मुझपर प्रसन्न होइये। देवेश्वर! आप देवी पार्वती तथा गणेश्वरोंके साथ आमन्त्रित हैं। मन्त्रेश्वरों, लोकपालों तथा सेवकों-सहित आप पधारें। परमेश्वर! मैं आपको सादर निमन्त्रित करता हूँ। आपकी आज्ञासे कल प्रातःकाल पवित्रारोपण तथा तत्सम्बन्धी नियमका पालन करूँगा' ॥ ५१-५५½ ॥

इस प्रकार महादेवजीको आमन्त्रित करके रेचक प्राणायामके द्वारा अमृतीकरणकी क्रिया सम्पादित करते हुए शिवान्त मूलमन्त्रका उच्चारण एवं जप करके उसे भगवान् शिवको समर्पित करे। जप, स्तुति एवं प्रणाम करके भगवान् शङ्करसे अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। तत्पश्चात् चरुके तृतीय अंशका होम करे। उसे शिवस्वरूप अग्निको, दिग्वासियोंको, दिशाओंके अधिपतियोंको, भूतगणोंको, मातृगणोंको, एकादश रुद्रोंको तथा क्षेत्रपाल आदिको उनके नाममन्त्रके साथ 'नमः स्वाहा' बोलकर आहुतिके रूपमें अर्पित करे। इसके बाद इन सबका चतुर्थ्यन्त नाम बोलकर 'अयं बलिः' कहते हुए बलि समर्पित करे। पूर्वादि दिशाओंमें दिग्गजों आदिके साथ दिक्पालोंको, क्षेत्रपालको तथा अग्निको भी बलि समर्पित करनी चाहिये। बलिके पश्चात् आचमन करके विधिच्छिद्र-पूरक होम करे। फिर पूर्णाहुति और व्याहृति-होम करके अग्निदेवको अवरुद्ध करे॥ ५६-६० ॥

तदनन्तर 'ॐ अग्नये स्वाहा।' 'ॐ सोमाय स्वाहा।' 'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।' 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।'—इन चार मन्त्रोंसे चार आहुतियाँ देकर भावी कार्यकी योजना करे। अग्निकुण्डमें पूजित हुए आराध्यदेव भगवान् शिवको पूजामण्डलमें पूजित कलशस्थ शिवमें

१. ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्।

२. एक गन्धद्रव्य, जिसमें दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग कुङ्कुम और तीन भाग कपूर रहता है।

१. विधिके पालन या सम्पादनमें जो त्रुटि रह गयी हो, उसकी पूर्ति करनेवाला।

नाडीसंधानरूप विधिसे संयोजित करे। फिर बाँस आदिके पात्रमें 'फट्' और 'नमः' के उच्चारणपूर्वक अस्त्रन्यास और हृदयन्यास करके उसमें सब पवित्रकोंको रख दे। इसके बाद '**शान्तिकलात्मने नमः।**' '**विद्याकलात्मने नमः।**' '**निवृत्तिकलात्मने नमः।**' '**प्रतिष्ठाकलात्मने नमः।**' '**शान्त्यतीतकलात्मने नमः।**'—इन कलामन्त्रोंद्वारा उन्हें अभिमन्त्रित करे। फिर प्रणवमन्त्र अथवा मूलमन्त्रसे षडङ्गन्यास करके 'नमः', 'हुं' एवं 'फट्' का उच्चारण करके, उनमें क्रमशः हृदय, कवच एव अस्त्रकी योजना करे ॥ ६१—६४ ॥

यह सब करके उन पवित्रकोंको सूत्रोंसे आवेष्टित करे। फिर 'नमः,' 'स्वाहा', 'वषट्,' 'हुं', 'वौषट्' तथा 'फट्' इन अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा उन सबका पूजन करके उनकी रक्षाके लिये भक्तिभावसे नम्र हो, उन्हें जगदीश्वर शिवको समर्पित करे। इसके बाद पुष्प, धूप आदिसे पूजित सिद्धान्त-ग्रन्थपर पवित्रक अर्पित करके गुरुके चरणोंके समीप जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक पवित्रक दे। फिर वहाँसे बाहर आकर आचमन करे और गोबरसे लिपे-पुते मण्डलत्रयमें क्रमशः पञ्चगव्य, चरु एवं दन्तधावनका पूजन करे ॥ ६५—६७ ॥

तदनन्तर भलीभाँति आचमन करके मन्त्रसे आवृत एवं सुरक्षित साधक रात्रिमें संगीतकी व्यवस्था करके जागरण करे। आधी रातके बाद भोग-सामग्रीकी इच्छा रखनेवाला पुरुष मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करता हुआ कुशकी चटाईपर सोये। मोक्षकी इच्छा रखनेवाला पुरुष भी इसी प्रकार जागरण करके उपवासपूर्वक एकाग्रचित्त हो केवल भस्मकी शय्यापर सोने ॥ ६८-६९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पवित्राधिवासनकी विधिका वर्णन' नामक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

उन्यासीवाँ अध्याय

पवित्रारोपणकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! तदनन्तर प्रातःकाल उठकर स्नान करके एकाग्रचित्त हो संध्या-पूजनका नियम पूर्ण करके मन्त्र-साधक यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे और जिनका विसर्जन नहीं किया गया है, ऐसे इष्टदेव भगवान् शिवसे पूर्वोक्त पवित्रकोंको लेकर ईशानकोणमें बने हुए मण्डलके भीतर किसी शुद्धपात्रमें रक्खे। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका विसर्जन करके, उनपर चढ़ी हुई निर्माल्य-सामग्रीको हटाकर, पूर्ववत् शुद्ध भूमिपर दो बार आह्निक कर्म करे। फिर सूर्य, द्वारपाल, दिक्पाल, कलश तथा भगवान् ईशान (शिव) का शिवाग्निमें विशेष विस्तारपूर्वक नैमित्तिकी पूजा करे। फिर मन्त्र-तर्पण और अस्त्र-मन्त्रद्वारा एक सौ आठ बार प्रायश्चित्त-होम करके घीसे मन्त्र बोलकर पूर्णाहुति कर दे ॥ १-५ ॥

इसके बाद सूर्यदेवको पवित्रक देकर आचमन करे। फिर द्वारपाल आदिको, दिक्पालोंको, कलशको और वर्धनी आदिपर भी पवित्रक अर्पण करे। तदनन्तर भगवान् शिवके समीप अपने आसनपर बैठकर आत्मा, गण, गुरु तथा अग्निको पवित्रक अर्पित करे। उस समय भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रार्थना करे—"देव! आप कालस्वरूप हैं। आपने मेरे कार्यके विषयमें जैसी आज्ञा दी थी, उसका ठीक-ठीक पालन न करके मैंने जो विहित कर्मको क्लेशयुक्त (त्रुटियोंसे पूर्ण) कर दिया है, अथवा आवश्यक विधिको छोड़ दिया है या प्रकटको गुप्त कर दिया है, वह मेरा किया हुआ क्लिष्ट और संस्कारशून्य कर्म इस पवित्रारोपणकी विधिसे सर्वथा अक्लिष्ट (परिपूर्ण) हो जाय। शम्भो! आप अपनी ही इच्छासे मेरे इस पवित्रकद्वारा सम्पूर्ण रूपसे प्रसन्न होकर मेरे नियमको पूर्ण कीजिये। '**ॐ पूरय पूरय मखव्रतं नियमेश्वराय स्वाहा।**'—इस मन्त्रका उच्चारण करे ॥ ६—१० ॥

'**ॐ पद्मयोनिपालितात्मतत्त्वेश्वराय प्रकृतिलयाय ॐ नमः शिवाय।**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके पवित्रकद्वारा भगवान् शिवकी पूजा करे। '**विष्णुकारणपालितविद्यातत्त्वेश्वराय ॐ नमः शिवाय।**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके पवित्रक चढ़ावे। '**रुद्रकारणपालितशिवतत्त्वेश्वराय शिवाय ॐ नमः शिवाय।**' इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवको पवित्रक निवेदन करे। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले स्कन्द!

'सर्वकारणपालाय शिवाय रुद्राय ॐ नमः शिवाय ।'- इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवको 'गङ्गावतारक' नामक सूत्र समर्पित करे ॥ ११-१४ ॥

मुमुक्षु पुरुषोंके लिये आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वके क्रमसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक पवित्रक अर्पित करनेका विधान है तथा भोगाभिलाषी पुरुष क्रमशः शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्वके अधिपति शिवको मन्त्रोच्चारण-पूर्वक पवित्रक अर्पित करे, उसके लिये ऐसा ही विधान है। मुमुक्षु पुरुष स्वाहान्त मन्त्रका उच्चारण करे और भोगाभिलाषी पुरुष नमोऽन्त मन्त्रका । 'स्वाहान्त' मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ हां आत्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।' 'ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।' 'ॐ हां शिवतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।' 'ॐ हां सर्वतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।' ('स्वाहा' की जगह 'नमः' पद रख देनेसे ये ही मन्त्र भोगाभिलाषियोंके उपयोगमें आनेवाले हो जाते हैं; परंतु इनका क्रम ऊपर बताये अनुसार ही होना चाहिये ।) गङ्गावतारक अर्पण करनेके पश्चात् हाथ जोड़कर भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'परमेश्वर ! आप ही समस्त प्राणियोंकी गति हैं। आप ही चराचर जगत्की स्थितिके हेतुभूत (अथवा लयके आश्रय) हैं । आप सम्पूर्ण भूतोंके भीतर विचरते हुए उनके साक्षीरूपसे अवस्थित हैं । मन, वाणी और क्रियाद्वारा आपके सिवा दूसरी कोई मेरी गति नहीं है। महेश्वर ! मैंने प्रतिदिन आपके पूजनमें जो मन्त्रहीन, क्रियाहीन, द्रव्यहीन तथा जप, होम और अर्चनसे हीन कर्म किया है, जो आवश्यक कर्म नहीं किया है तथा जो शुद्ध वाक्यसे रहित कर्म किया है, वह सब आप पूर्ण करें । परमेश्वर ! आप परम पवित्र हैं। आपको अर्पित किया हुआ यह पवित्रक समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। आपने सर्वत्र व्याप्त होकर इस समस्त चराचर जगत्को पवित्र कर रक्खा है । देव ! मैंने व्याकुलताके कारण अथवा अङ्गवैकल्य-दोषके कारण जिस व्रतको खण्डित कर दिया है, वह सब आपकी आज्ञारूप सूत्रमें गूँथकर एक अखण्ड हो जाय' ॥ १५-२२½ ॥

तत्पश्चात् जप निवेदन करके, उपासक भक्तिपूर्वक भगवान्‌की स्तुति करे और उन्हें नमस्कार करके, गुरुकी आज्ञाके अनुसार चार मास, तीन मास, तीन दिन अथवा एक दिनके लिये ही नियम ग्रहण करे। भगवान् शिवको प्रणाम करके उनसे त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगकर व्रती पुरुष कुण्डके समीप जाय और अग्निमें विराजमान भगवान् शिवके लिये भी चार पवित्रक अर्पित करके पुष्प, धूप और अक्षत आदिसे उनकी पूजा करे। इसके बाद रुद्र आदिको अन्तर्बलि एवं पवित्रक निवेदन करे ॥ २३-२६ ॥

तत्पश्चात् पूजा-मण्डपमें प्रवेश करके भगवान् शिवका स्तवन करते हुए प्रणामपूर्वक क्षमा-प्रार्थना करे। प्रायश्चित्त-होम करके खीरकी आहुति दे। मन्दस्वरमें मन्त्र बोलकर पूर्णाहुति करके अग्निमें विराजमान शिवका विसर्जन करे । फिर व्याहृति-होम करके, निष्ठुराद्वारा अग्निको निरुद्ध करे और अग्नि आदिको निम्नोक्त मन्त्रोंसे चार आहुति दे। तत्पश्चात् दिक्पालोंको पवित्र एवं बाह्य बलि अर्पित करे। इसके बाद सिद्धान्त-ग्रन्थपर उसके बराबरका पवित्रक अर्पित करे। पूर्वोक्त व्याहृति-होमके मन्त्र इस प्रकार हैं—'ॐ हां भूः स्वाहा ।' 'ॐ हां भुवः स्वाहा ।' 'ॐ हां स्वः स्वाहा ।' 'ॐ हां भूर्भुवः स्वः स्वाहा ।' ॥ २७-३१ ॥

इस प्रकार व्याहृतियोंद्वारा होम करके अग्नि आदिके लिये चार आहुतियाँ देकर दूसरा कार्य करे। उन चार आहुतियोंके मन्त्र इस प्रकार हैं—'ॐ हां अग्नये स्वाहा ।' 'ॐ हां सोमाय स्वाहा ।' 'ॐ हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ।' 'ॐ हां अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।' फिर गुरुकी शिवके समान वस्त्राभूषण आदि विस्तृत सामग्रीसे पूजा करे । जिसके ऊपर गुरुदेव पूर्णरूपसे संतुष्ट होते हैं, उस साधकका सारा वार्षिक कर्मकाण्ड आदि सफल हो जाता है—ऐसा परमेश्वरका कथन है। इस प्रकार गुरुका पूजन करके उन्हें हृदयतक लटकता हुआ पवित्रक धारण करावे और ब्राह्मण आदिको भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उन्हें वस्त्र आदि दे । उस समय यह प्रार्थना करे कि 'देवेश्वर भगवान् सदाशिव इस दानसे मुझ-पर प्रसन्न हों ।' फिर प्रातःकाल भक्तिपूर्वक स्नान आदि करके भगवान् शंकरके श्रीविग्रहसे पवित्रकोंको समेट ले और आठ फूलोंसे उनकी पूजा करके उनका विसर्जन कर दे। फिर पहलेकी तरह विस्तारपूर्वक नित्य-नैमित्तिक पूजन करके पवित्रक चढ़ाकर प्रणाम करनेके पश्चात् अग्निमें शिवका पूजन करे ॥ ३२-३८ ॥

तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे प्रायश्चित्त-होम करके पूर्णाहुति दे। भोग-सामग्रीकी इच्छावाले पुरुषको चाहिये कि वह भगवान् शिवको अपना सारा कर्म समर्पित करे और कहे—

'प्रभो ! आपकी कृपासे मेरा यह कर्म मनोवाञ्छित फलका साधक हो।' मोक्षकी कामना रखनेवाला पुरुष भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'नाथ ! यह कर्म मेरे लिये बन्धनकारक न हो।' इस तरह प्रार्थना करके अग्निमें स्थित शिवको नाडीयोगके द्वारा अन्तरात्मामें स्थित शिवमें संयोजित करे। फिर अणुसमूहका हृदयमें न्यास करके अग्निदेवका विसर्जन कर दे और आचमन करके पूजा-मण्डपके भीतर प्रविष्ट हो, कलशके जलको सब ओर छिड़कते हुए भगवान् शिवसे संयुक्त करके कहे—'प्रभो ! मेरी त्रुटियोंको क्षमा करो।' इसके बाद विसर्जन कर दे ॥ ३९–४२ ॥

तदनन्तर लोकपाल आदिका विसर्जन करके भगवान् शिवकी प्रतिमासे पवित्रक लेकर चण्डेश्वरकी प्रतिमामें उनकी भी पूजा करके उन्हें वह पवित्रक अर्पित करे और शिवनिर्माल्य आदि सारी सामग्री पवित्रकके साथ ही उन्हें समर्पित कर दे। अथवा वेदीपर पूर्ववत् विधिपूर्वक चण्डेश्वरकी पूजा करे और उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—'चण्डनाथ ! मैंने जो कुछ वार्षिक कर्म किया है, वह यदि न्यूनता या अधिकताके दोषसे युक्त है, तो आपकी आज्ञासे वह दोष दूर होकर मेरा कर्म साङ्गोपाङ्ग परिपूर्ण हो जाय।' इस प्रकार प्रार्थना करके देवेश्वर चण्डको नमस्कार करे और स्तुतिके पश्चात् उनका विसर्जन कर दे। निर्माल्यका त्याग करके, शुद्ध हो भगवान् शिवको नहलाकर उनका पूजन करे। घरसे पाँच योजन दूर रहनेपर भी गुरुके समीप पवित्रारोहण-कर्मका सम्पादन करना चाहिये ॥ ४३–४६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पवित्रारोपणकी विधिका वर्णन' नामक उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

अस्सीवाँ अध्याय

दमनकारोपणकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं दमनकारोहणकी विधिका वर्णन करूँगा। इसमें भी सब कार्य पूर्ववत् करने चाहिये। प्राचीन कालमें भगवान् शंकरके कोपसे भैरवकी उत्पत्ति हुई। भैरवने देवताओंका दमन आरम्भ किया। यह देख त्रिपुरारि शिवने रुष्ट होकर भैरवको शाप दिया—'तुम वृक्ष हो जाओ।' फिर भैरवके क्षमा माँगनेपर प्रसन्न हो भगवान् शिव बोले—'जो मनुष्य तुम्हारे पत्रोंद्वारा पूजन करेंगे, अथवा तुम्हारी पूजा करेंगे, उनका मनोवाञ्छित फल पूरा होगा। उनकी इच्छा किसी तरह अपूर्ण नहीं रहेगी।' सप्तमी या त्रयोदशी तिथिको मन्त्रवेत्ता पुरुष संहिता-मन्त्रोंसे दमनक-वृक्षकी पूजा करके उसे भगवान् शंकरके वाक्यका स्मरण दिलाते हुए जगावे—॥ १-३½ ॥

> हरप्रसादसम्भूत त्वमत्र संनिधीभव ।
> शिवकार्यं समुद्दिश्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया ॥

'दमनक ! तुम भगवान् शंकरके कृपाप्रसादसे प्रकट हुए हो। तुम यहाँ संनिहित हो जाओ। भगवान् शिवकी आज्ञासे उन्हींके कार्यके उद्देश्यसे मुझे तुम्हें अपने साथ ले जाना है।' घरपर भी उस वृक्षको आमन्त्रित करे और सायंकालमें अधिवासन-कर्म सम्पन्न करे। विधिपूर्वक सूर्य, शंकर और अग्निदेवकी पूजा करके, इष्टदेवताके पश्चिम भागमें मिट्टीके साथ संयुक्त करके उस वृक्षकी जड़को स्थापित करे। वामदेव-मन्त्र अथवा शिरोमन्त्रसे उस वृक्षकी नाल तथा आँवलेका फल उत्तर दिशामें रक्खे। उसके टूटे हुए पत्रको दक्षिणमें तथा पुष्प और धावनको पूर्वमें स्थापित करे ॥ ४-७ ॥

ईशानकोणमें एक दोनेमें उसके फल और मूलको रखकर भगवान् शिवका पूजन करे। उस वृक्षकी जड़, नाल, पत्र, फूल और फल—इन पाँचों अङ्गोंको अञ्जलिमें लेकर आमन्त्रित करते हुए सिरपर रक्खे और इस प्रकार कहे-'देवेश्वर ! मैं आज आपको निमन्त्रित करता हूँ। कल प्रातःकाल मुझे तपस्याका लाभ लेना है—की हुई उपासनाको सफल बनाना है। यह सब कार्य आपकी आज्ञासे पूर्ण हो।' तत्पश्चात् पात्रमें रक्खे हुए शेष पवित्रकको मूलमन्त्रसे ढककर प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् जगदीश्वर शिवका गन्ध-पुष्प आदिसे पूजन करे ॥ ८–१० ॥

तदनन्तर नित्य-नैमित्तिक कर्म करके दमनकसे पूजन करे। शेष दमनकको अञ्जलिमें लेकर 'ॐ हां आत्म-

तत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।' 'ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।' 'ॐ हां शिवतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।' 'ॐ हां सर्वतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।'—इन चार मन्त्रों-द्वारा दमनक चढ़ाकर शिवका पूजन करना चाहिये । तदनन्तर दमनककी चौथी अञ्जलि लेकर 'ॐ हौं महेश्वराय मखं पूरय पूरय शूलपाणये नमः ।'—इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भगवान् शिवको अर्पित करे ॥ ११-१३ ॥

इस प्रकार शिव और अग्निकी पूजा करके गुरुकी विशेषरूपसे अर्चना करते हुए प्रार्थना करे—'भगवन् ! मैंने दमनकद्वारा पूजनकर्ममें जो न्यूनता या अधिकता कर दी है, वह सब आपकी कृपासे परिपूर्ण हो जाय ।' इस रीतिसे दमनकारोहण-कर्मका सम्पादन करके मनुष्य चैत्रमास-जनित सम्पूर्ण फलको पाता है और अन्तमें स्वर्गलोकको जाता है ॥ १४-१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दमनकारोपणकी विधिका वर्णन' नामक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८० ॥

इक्यासीवाँ अध्याय

समयाचार-दीक्षाकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये दीक्षाकी विधि बताऊँगा, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है तथा जिसके द्वारा मल और माया आदि पाशोंका निवारण किया जाता है । जिससे शिष्यमें ज्ञानकी उत्पत्ति करायी जाती है, उसका नाम 'दीक्षा' है । वह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है । पशु (पाश-बद्ध जीव) शुद्ध विद्याद्वारा अनुग्राह्य कहा गया है । वह तीन प्रकारका होता है—पहला विज्ञानाकल, दूसरा प्रलयाकल तथा तीसरा सकल ॥ १½ ॥

उनमेंसे प्रथम अर्थात् 'विज्ञानाकल' पशु केवल मलरूप पाशसे युक्त होता है*, दूसरा अर्थात् 'प्रलयाकल' पशु मल और कर्म— इन दो पाशोंसे आबद्ध होता है† तथा तीसरा अर्थात् 'सकल' पशु कला आदिसे लेकर भूमिपर्यन्त सारे तत्त्व-समूहोंसे बँधा होता है (अर्थात् वह मल, माया तथा कर्म त्रिविध पाशोंसे बँधा हुआ बताया गया है ।)‡ ॥२-३½॥

---

* जो परमात्माके स्वरूपको पहचानकर जप, ध्यान तथा संन्यासद्वारा अथवा भोगद्वारा कर्मोंका क्षय कर डालता है और कर्मोंका क्षय हो जानेके कारण जिसके लिये शरीर और इन्द्रिय आदिका कोई बन्धन नहीं रहता, उसमें केवल मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाता है, उसे 'विज्ञानाकल' कहते हैं । मल तीन प्रकारके होते हैं—'आणव-मल', 'कार्मज-मल' तथा 'मायेय-मल' । विज्ञानाकलमें केवल आणव-मल रहता है । वह विज्ञान (तत्त्वज्ञान) द्वारा अकल—कलारहित (कलादि भोग-बन्धनोंसे शून्य) हो जाता है, इसलिये उसकी 'विज्ञानाकल' संज्ञा होती है ।

† जिस जीवात्माके देह, इन्द्रिय आदि प्रलयकालमें क्षीण हो जाते हैं, इससे उसमें मायेय मल तो नहीं रहता, परंतु आणव और कार्मज—ये दो मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाते हैं, वह प्रलयकालमें ही अकल (कलारहित) होनेके कारण 'प्रलयाकल' कहलाता है ।

‡ जिस जीवात्मामें आणव, मायेय और कार्मज—तीनों मल (पाश) रहते हैं, वह कला आदि भोग-बन्धनोंसे युक्त होनेके कारण 'सकल' कहा गया है । पाशुपत-दर्शनके अनुसार विज्ञानाकल पशु (जीव)के भी दो भेद हैं—'समाप्त-कलुष' और 'असमाप्त-कलुष' । (१) जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्मकी तह मलपर जमती रहती है । इसी कारण उस मलका परिपाक नहीं होने पाता; किंतु जब कर्मोंका त्याग हो जाता है, तब तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कलुष समाप्त हो जाते हैं, इसीलिये वह 'समाप्त-कलुष' कहलाता है । ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके 'विद्येश्वर'-पदपर पहुँचा देते हैं । उनके नाम ये हैं—

अनन्तश्चैव सूक्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तमः ।
एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्तिकः ॥
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे ।

'(१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एकनेत्र, (५) एकरुद्र, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकण्ठ और (८) शिखण्डी ।'

(२) 'असमाप्त-कलुष' वे हैं, जिनकी कलुष-राशि अभी समाप्त नहीं हुई है । ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर 'मन्त्र' स्वरूप दे देता है । कर्म तथा शरीरसे रहित

इन पाशोंसे मुक्त होनेके लिये जीवको आचार्यसे मन्त्राराधनकी दीक्षा लेनी होती है। वह दीक्षा दो प्रकारकी मानी गयी है—एक 'निराधारा' और दूसरी 'साधारा'। उपर्युक्त तीन पशुओंमेंसे विज्ञानाकल और प्रलयाकल—इन दो पशुओंके लिये निराधारा दीक्षा बतायी गयी है और सकल पशुके लिये साधारा। आचार्यकी अपेक्षा न रखकर शम्भुद्वारा ही तीव्र शक्तिपात करके जो दीक्षा दी जाती है, वह 'निराधारा' कही गयी है। आचार्यके शरीरमें स्थित होकर भगवान् शंकर अपनी मन्दा, तीव्रा आदि भेदवाली शक्तिसे जिस दीक्षाका सम्पादन करते हैं, वह 'साधारा' कहलाती है। यह साधारा दीक्षा सबीजा, निर्बीजा, साधिकारा और अनधिकारा—इन भेदोंके द्वारा

किंतु मलरूपी पाशमें बँधे हुए जीवात्मा ही 'मन्त्र' हैं और इनकी संख्या सात करोड़ है। ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं। 'तत्त्व-प्रकाश' नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त विषयके संग्राहक श्लोक इस प्रकार हैं—

पशवस्त्रिविधाः प्रोक्ता विज्ञानप्रलयाकली सकलः।
मलयुक्तस्तत्राद्यो मलकर्मयुतो द्वितीयः स्यात्॥
मलमायाकर्मयुतः सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्यः।
आद्यः समाप्तकलुषोऽसमाप्तकलुषो द्वितीयः स्यात्॥
आद्या ननु गृह्य शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ।
मन्त्रांश्च करोत्यपरान् ते चोक्ताः कोट्यः सप्त॥

'प्रलयाकल' भी दो प्रकारके होते हैं—'पक्व पाशद्वय' और 'अपक्व पाशद्वय'। (१) जिनके मल तथा कर्मरूपी दोनों पाशोंका परिपाक हो गया है, वे 'पक्वपाशद्वय' होकर मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं। (२) 'अपक्वपाशद्वय' जीव पुर्यष्टकमय देह धारण करके नाना प्रकारके कर्मोंको करते हुए नाना योनियोंमें घूमा करते हैं।

'सकल' जीवोंके भी दो हैं—'पक्वकलुष' भेद और 'अपक्वकलुष'। (१) जैसे-जैसे जीवात्माके मल, कर्म तथा माया—इन पाशोंका परिपाक बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते जाते हैं। तब वे पक्वकलुष जीवात्मा 'मन्त्रेश्वर' कहलाते हैं। सात करोड़ मन्त्ररूपी जीव-विशेषोंके, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, अधिकारी ये ही ११८ मन्त्रेश्वर जीव हैं। (२) अपक्व-कलुष जीव भवकूपमें गिरते हैं।

नारदपुराणमें शैव-महातन्त्रकी मान्यताके अनुसार पाँच प्रकारके पाश बताये गये हैं—(१) मलज, (२) कर्मज, (३) मायेय (मायाजन्य), (४) तिरोधान—शक्तिज और (५) बिन्दुज। आधुनिक शैव दर्शनमें चार प्रकारके पाशोंका उल्लेख है—मल, रोध, कर्म तथा माया। रोध-शक्ति या तिरोधान-शक्ति एक ही वस्तु है। 'बिन्दु' मायास्वरूप है। वह 'शिवतत्त्व' नामसे भी जानने योग्य है। यद्यपि शिवपद-प्राप्तिरूप परम मोक्षकी अपेक्षासे वह भी पाश ही है, तथापि विद्येश्वरादि-पदकी प्राप्तिमें परम हेतु होनेके कारण बिन्दु-शक्तिको 'अपरा-मुक्ति' कहा गया है। अतः उसे आधुनिक शैव दर्शनमें 'पाश' नाम नहीं दिया गया है। इसलिये यहाँ शेष चार पाशों (मल, कर्म, रोध और माया—) के ही स्वरूपका विचार किया जाता है—(१) जो आत्माके स्वाभाविक ज्ञान-तथा क्रिया-शक्तिको ढक ले, वह 'मल' (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मस्वरूपका केवल आच्छादन ही नहीं करता, किंतु जीवात्माको बलपूर्वक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है। (२) प्रत्येक वस्तुमें जो सामर्थ्य है, उसे 'शिवशक्ति' कहते हैं। जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति। यह शक्ति जैसे पदार्थमें रहती है, वैसा ही भला-बुरा स्वरूप धारण कर लेती है; अतः पाशमें रहती हुई वह शक्ति जब आत्माके स्वरूपको ढक लेती है, तब यह 'रोध-शक्ति' या 'तिरोधान-पाश' कहलाती है। इस अवस्थामें जीव शरीरको आत्मा मानकर शरीरके पोषणमें लगा रहता है; आत्माके उद्धारका प्रयत्न नहीं करता। (३) फलकी इच्छासे किये हुए 'धर्माधर्म' रूप कर्मोंको ही 'कर्मपाश' कहते हैं। (४) जिस शक्तिमें प्रलयके समय सब कुछ लीन हो जाता है तथा सृष्टिके समय जिसमेंसे सब कुछ उत्पन्न हो जाता है, वह 'मायापाश' है। अतः इन पाशोंमें बँधा हुआ पशु जब तत्त्वज्ञानद्वारा इनका उच्छेद कर डालता है, तभी वह 'परम शिवतत्त्व' अर्थात् 'पशुपति-पद'को प्राप्त होता है।

दीक्षा ही शिवत्व-प्राप्तिका साधन है। सर्वानुग्राहक परमेश्वर ही आचार्य-शरीरमें स्थित होकर दीक्षाकरणद्वारा जीवको परम शिवतत्त्वकी प्राप्ति कराते हैं; ऐसा ही कहा भी है—

'योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाऽऽचार्यमूर्तिस्थः।'

'अपक्वपाशद्वय प्रलयाकल' जीव तथा 'अपक्वकलुष सकल' जीव जिस पुर्यष्टक देहको धारण करते हैं, वह पञ्चभूत तथा मन, बुद्धि, अहंकार—इन आठ तत्त्वोंसे युक्त होनेके कारण 'पुर्यष्टक' कहलाता है। पुर्यष्टक शरीर छत्तीस तत्त्वोंसे युक्त होता है। कर्मभोगके साधनभूत कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण और पाँच शब्द आदि विषय—ये छत्तीस तत्त्व हैं। अपक्वपाशद्वय जीवोंमें जो अधिक पुण्यात्मा हैं, उन्हें परम दयालु भगवान् महेश्वर भुवनेश्वर या लोकपाल बना देते हैं।

भगवान् वामन-अवतार

भगवान् परशुराम-अवतार [अग्निपुराण अ० ४

जिस तरह चार[1] प्रकारकी हो जाती है, वह बताया जाता है ॥ ४–७½ ॥

समर्थ पुरुषोंको जो समयाचारसे युक्त दीक्षा दी जाती है, उसे 'सबीजा' कहते हैं और असमर्थ पुरुषोंको दी जानेवाली समयाचारशून्य दीक्षा 'निर्बीजा' कही गयी है ॥ ८½ ॥

जिस दीक्षासे साधक और आचार्यको नित्य-नैमित्तिक एवं काम्य कर्मोंमें अधिकार प्राप्त होता है, वह 'साधिकारा दीक्षा' है। 'निर्बीजा दीक्षा'में दीक्षित होनेवाले लोगोंको तथा समयाचारकी दीक्षा लेनेवाले साधारण शिष्य एवं पुत्रक-संज्ञक शिष्यविशेषको नित्यकर्म-मात्रके अधिकारी होनेके कारण जो दीक्षा दी जाती है, वह 'निरधिकारा दीक्षा' कहलाती है। साधारा और निराधारा भेदसे जो दीक्षाके दो भेद बताये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येकके निम्नाङ्कित दो रूप (या भेद) और होते हैं—एक तो 'क्रियावती' कही गयी है, जिसमें कर्मकाण्डकी विधिसे कुण्ड और मण्डलकी स्थापना एवं पूजा की जाती है। दूसरी 'ज्ञानवती दीक्षा' है, जो बाह्य सामग्रीसे नहीं, मानसिक व्यापारमात्रसे साध्य है ॥ ९–१२ ॥

इस प्रकार अधिकारप्राप्त आचार्यद्वारा दीक्षा-कर्मका सम्पादन होता है* । स्कन्द ! गुरुको चाहिये कि वह नित्यकर्मका विधिवत् अनुष्ठान करके शिष्यका दीक्षाकर्म सम्पन्न करे। प्रणवके जपपूर्वक गुरु अपने कर-कमलमें

---

१. शारदातिलकमें दीक्षाके चार भेदोंका विस्तारसे वर्णन है। वे चार भेद हैं—क्रियावती, वर्णमयी, कलावती और वेधमयी। क्रियावती दीक्षामें कर्मकाण्डका पूरा उपयोग होता है। स्नान, संध्या, प्राणायाम, भूतशुद्धि, न्यास, ध्यान, पूजा, शङ्ख-स्थापन आदिसे लेकर शास्त्रोक्त पद्धतिसे हवन-पर्यन्त कर्म किये जाते हैं। षडध्वाके शोधन-क्रमसे पृथक्-पृथक् आहुति देकर, शिवमें विलीन करके पुनः सृष्टि-क्रमसे शिष्यका चैतन्ययोग सम्पादित होता है। गुरु शिष्यसे अपनी एकताका अनुभव करता हुआ आत्म-विद्याका दान करता है। गुरु-मन्त्र प्राप्त करके शिष्य धन्य-धन्य हो जाता है।

'वर्णमयी दीक्षा' न्यासरूपा है। अकारादि वर्ण प्रकृति-पुरुषात्मक हैं। शरीर भी प्रकृति-पुरुषात्मक होनेके कारण वर्णात्मक ही है। इसलिये पहले समस्त शरीरमें वर्णोंका सविधि न्यास किया जाता है। श्रीगुरुदेव अपनी आज्ञा और इच्छाशक्तिसे उन वर्णोंको प्रतिलोम-विधिसे अर्थात् संहार-क्रमसे विलीन कर देते हैं। यह क्रिया सम्पन्न होते ही शिष्यका शरीर दिव्य हो जाता है और गुरुके द्वारा वह परमात्मामें मिला दिया जाता है। ऐसी स्थिति होनेके पश्चात् श्रीगुरुदेव पुनः शिष्यको पृथक् करके दिव्य शरीरकी सृष्टि-क्रमसे रचना करते हैं। शिष्यमें परमानन्दस्वरूप दिव्यभावका विकास होता है और वह कृतकृत्य हो जाता है।

'कलावती दीक्षा'की विधि निम्नलिखित है—मनुष्यके शरीरमें पाँच प्रकारकी शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। पैरके तलवेसे जानु-पर्यन्त 'निवृत्ति-शक्ति' है, जानुसे नाभि-पर्यन्त 'प्रतिष्ठा-शक्ति' है, नाभिसे कण्ठ पर्यन्त 'विद्या शक्ति' है, कण्ठसे ललाट-पर्यन्त 'शान्ति-शक्ति' है, ललाटसे शिखा-पर्यन्त 'शान्त्यतीतकला-शक्ति' है। संहार-क्रमसे पहलीको दूसरीमें, दूसरीको तीसरीमें और अन्तिम कलाको शिवमें संयुक्त करके शिष्य शिवरूप कर दिया जाता है। पुनः सृष्टि-क्रमसे इसका विस्तार किया जाता है और शिष्य दिव्य भावको प्राप्त होता है।

'वेधमयी दीक्षा' षट्चक्र-वेधन ही है। जब गुरु कृपा करके अपनी शक्तिसे शिष्यका षट्चक्रभेद कर देते हैं, तब इसीको 'वेधमयी दीक्षा' कहते हैं। गुरु पहले शिष्यके छः चक्रोंका चिन्तन करते हैं और उन्हें क्रमशः कुण्डलिनी शक्तिमें विलीन करते हैं। छः चक्रोंका विलयन बिन्दुमें करके तथा बिन्दुको कलामें, कलाको नादमें, नादको नादान्तमें, नादान्तको उन्मनीमें, उन्मनीको विष्णुमुखमें और तत्पश्चात् गुरुमुखमें संयुक्त करके अपने साथ ही उस शक्तिको परमेश्वरमें मिला देते हैं। गुरुकी इस कृपासे शिष्यका पाश छिन्न-भिन्न हो जाता है। उसे दिव्य बोधकी प्राप्ति होती है और वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह 'बोधमयी दीक्षा' सम्पन्न होती है।

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' (श्लोक६१९-६२०½)में 'इत्थं लब्धाधिकारेण दीक्षाचार्येण साध्यते ।' इस पंक्तिके बाद दो श्लोक और अधिक उपलब्ध होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

> म व सद्देशसम्भूतः सुमूर्तिः सुशीलवान् ॥
> ज्ञानाचारो गुणोपेतः क्षमी शुद्धाशयो वरः ।
> देशकालगुणाचारो गुरुभक्तिसमन्वितः ॥
> शिवानुध्यानवान् शस्तो विरक्तश्च प्रशस्यते ।

'दीक्षाप्राप्त शिष्य यदि उत्तम देशमें उत्पन्न, सुन्दर शरीरवाला, शास्त्राध्ययन एवं शीलसे सम्पन्न, ज्ञानी, सदाचारी, गुणवान्, क्षमाशील, शुद्ध अन्तःकरणसे युक्त, श्रेष्ठ, देश-कालोचित गुण और आचारसे सुशोभित, गुरुभक्त, शिवध्यानपरायण तथा विरक्त हो तो वह उत्तम माना गया है और उसकी प्रशंसा की जाती है।'

अर्घ्य-जल ले द्वारपालोंका पूजन करे । फिर विघ्नोंका निवारण करनेके अनन्तर, द्वार-देहलीपर अस्त्रन्यास करके अपने आसनपर बैठे । शास्त्रोक्त विधिसे भूतशुद्धि एवं अन्तर्याग करे । तिल, चावल, सरसों, कुश, दूर्वाङ्कुर, जौ, दूध और जल—इन सबको एकत्र करके विशेषार्घ्य बनावे । उसके जलसे समस्त द्रव्यों (पूजन-सामग्रियों) की शुद्धि करे । फिर तिलक सम्बन्धी अपने सम्प्रदायके मन्त्रसे भालदेशमें तिलक लगावे । फिर पूर्ववत् पूजन, मन्त्र-शोधन तथा पञ्चगव्य-प्राशन आदि कार्य करने चाहिये । क्रमशः लावा, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वा, अक्षत, कुश और अन्तमें पुनः शुद्ध लावा—ये सब 'विकिर' (बिखरनेयोग्य द्रव्य) कहे गये हैं । इन सब वस्तुओंको एकत्र करके सात बार अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे । अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे इनका प्रोक्षण करके फिर कवच-मन्त्र (हुम्) से अवगुण्ठन करके यह भावना करे कि ये विघ्नसमूहका निवारण करनेवाले नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र हैं ॥१३—१८½॥

तदनन्तर प्रादेशमात्र लंबे कुशके छत्तीस दलोंसे वेणीरूप बोधमय उत्तम खड्ग बनाकर उसे सात बार जपते हुए शिव-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे । फिर उसे शिवस्वरूप मानकर भावनाद्वारा अपने हृदयमें स्थापित करे । साथ ही जगदाधार भगवान् शिवकी जो झाँकी अपनेको अभीष्ट हो, उसी रूपमें उनका ध्यान-चिन्तन करके निष्कल परमात्मा शिवका अपने भीतर न्यास करे । तत्पश्चात् यह भावना करे कि 'मैं साक्षात् शिव हूँ ।' फिर सिरपर (मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित) श्वेत पगड़ी रखकर अपने शरीरको (गन्ध, पुष्प एवं आभूषणोंसे) अलंकृत करे । तत्पश्चात् गुरु अपने दाहिने हाथपर सुगन्ध-द्रव्य अथवा कुङ्कुमद्वारा मण्डलका निर्माण करे । फिर उसपर विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे । इससे वह 'शिवहस्त' हो जाता है । उस तेजस्वी शिवहस्तको शिव-मन्त्रसे अपने मस्तकपर रखकर यह दृढ़ भावना करे कि 'मैं शिवसे अभिन्न और सबका कर्ता साक्षात् परमात्मा शिव ही हूँ ।' जब गुरु ऐसी भावना कर ले, तब वह यज्ञमण्डपमें कर्मोंका साक्षी, कलशमें यज्ञका रक्षक, अग्निमें होमका अधिष्ठान, शिष्यमें उसके अज्ञानमय पाशका उच्छेद करनेवाला तथा अन्तरात्मामें अनुग्रहीता—इन पाँच आकारोंमें अभिव्यक्त ईश्वररूप हो जाता है । गुरु इस भावको अत्यन्त दृढ़तर कर ले कि 'वह परमेश्वर मैं ही हूँ' ॥ १९—२५ ॥

तदनन्तर ज्ञानरूपी खड्ग हाथमें लिये गुरु यज्ञमण्डपके नैर्ऋत्यकोणवाले भागमें उत्तराभिमुख स्थित हो, अर्घ्य, जल और पञ्चगव्यसे उस मण्डपका प्रोक्षण करे । ईक्षण आदि चतुष्पथान्त संस्कारोंद्वारा उसका संस्कार करे । फिर यज्ञ-मण्डपमें बिखरनेयोग्य पूर्वोक्त वस्तुओंको बिखेरकर कुशकी कूँचीसे उन सबको बटोर ले और उन्हें ईशानकोणमें स्थापित वार्धानी (जलपात्र)में आसनके लिये रख दे । नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुदेवताओंका और पश्चिम द्वारपर लक्ष्मीका पूजन करे । साथ ही यह भावना करे कि 'वे मण्डपरूपिणी लक्ष्मी देवी रत्नोंके भण्डारसे यज्ञमण्डपको परिपूर्ण कर रही हैं ।' इस प्रकार ध्यान एवं आवाहन कर हृदय-मन्त्र 'नमः' के द्वारा अर्थात् 'लक्ष्म्यै नमः ।'—इस मन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये । इसके बाद ईशानकोणमें सप्तधान्यपर स्थापित किये हुए, वस्त्रवेष्टित पञ्चरत्नयुक्त एवं जलसे परिपूर्ण पश्चिमाभिमुख कलशपर भगवान् शंकरका पूजन करे । फिर उस कलशके दक्षिण भागमें सिंहपर विराजमान पश्चिमाभिमुखी शक्ति, खड्गरूपिणी वार्धानीका पूजन करे ॥ २६—३० ॥

तदनन्तर पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र आदि दिक्पालोंका और इनके मध्यमें विष्णुभगवान्‌का पूजन करे । वे सब-के-सब प्रणवमय आसनपर विराजमान हैं तथा अपने अपने वाहनों और आयुधोंसे संयुक्त हैं—ऐसी भावना करके उनके नामोंके अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर उन्हींसे उनकी पूजा करे । यथा—'इन्द्राय नमः ।' 'विष्णवे नमः ।' इत्यादि । पहले पूर्वोक्त वार्धानीको भलीभाँति हाथमें ले, उसे कलशके सामनेकी ओरसे ले जाकर प्रदक्षिणक्रमसे उसके चारों ओर घुमावे और उससे जलकी अविच्छिन्न धारा गिराता रहे । साथ ही मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए लोकपालोंको भगवान् शिवकी निम्नाङ्कित आज्ञा सुनावे—'लोकपालगण ! आपलोग यथाशक्ति सावधानीके साथ इस यज्ञकी रक्षा करें ।' यों आदेश दे, नीचे एक कलश रखकर उसके ऊपर उस वार्धानीको स्थापित कर दे । तत्पश्चात् सुस्थिर आसनवाले कलशपर भगवान् शंकरका साङ्ग पूजन करे । इसके बाद कला आदि षडध्वाका न्यास करके शोधन करे और वार्धानीमें अस्त्रकी पूजा करे ॥ ३१—३४ ॥

पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—'ॐ हः अस्त्रासनाय हुं फट् नमः ।' 'ॐ ॐ अस्त्रमूर्तये हुं फट् नमः ।' 'ॐ हुं फट् पाशुपतास्त्राय नमः ।' 'ॐ ॐ हृदयाय हुं फट् नमः ।' 'ॐ श्री

शिरसे हूं फट् नमः।' 'ॐ वं शिखायै हूं फट् नमः।' 'ॐ शुं कवचाय हूं फट् नमः।' 'ॐ हूं फट् अस्त्राय हूं फट् नमः।' इसके बाद पाशुपतास्त्रके स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करे— 'उनके चार मुख हैं। प्रत्येक मुखमें दाढ़ें हैं। उनके हाथोंमें शक्ति, मुद्गर, खड्ग और त्रिशूल हैं तथा उनकी प्रभा करोड़ों सूर्योंके समान है।' इस प्रकार ध्यान करके लिङ्ग-मुद्राके प्रदर्शनद्वारा भगलिङ्गका समायोग करे। हृदय-मन्त्र (नमः) का उच्चारण करते हुए अङ्गुष्ठसे कलशका स्पर्श करे और मुट्ठीसे खड्गरूपिणी वार्धानीका। भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये पहले मुट्ठीसे वार्धानीका ही स्पर्श करना चाहिये। फिर कलशके मुखभागकी रक्षाके लिये उसपर पूर्वोक्त ज्ञान-खड्ग समर्पित करे। साथ ही मूल-मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करके वह जप भी कलशको निवेदन कर दे। उसके दशमांशका जप करके वार्धानीमें उसका अर्पण करे। तदनन्तर भगवान्‌से रक्षाके लिये प्रार्थना करे—'सम्पूर्ण यज्ञोंको धारण करनेवाले भगवान् जगन्नाथ! बड़े यत्नसे इस यज्ञ-मन्दिरका निर्माण किया गया है। कृपया आप इसकी रक्षा करें' ॥ ३५—४० ॥

इसके बाद वायव्यकोणमें प्रणवमय आसनपर विराजमान चार भुजाधारी गणेशजीका पूजन करे। तत्पश्चात् वेदीपर शिवका पूजन करके अर्घ्य हाथमें लिये साधक यज्ञकुण्डके पास जाय। वहाँ बैठकर मन्त्र-देवताकी तृप्तिके लिये बायें भागमें अर्घ्य, गन्ध और घृत आदिको तथा दाहिने भागमें समिधा, कुश एवं तिल आदिको रखकर कुण्ड, अग्नि, स्रुक् तथा घृत आदिका पूर्ववत् संस्कार करके, हृदयमें ऊर्ध्वमुख अग्निकी प्रधानताका चिन्तन करे तथा अग्निमें भगवान् शिवका पूजन करे। फिर गुरु अपने शरीरमें, शिव-कलशमें, मण्डलमें, अग्नि और शिष्यकी देहमें सृष्टि-न्यासकी रीतिसे न्यासकर्मका सम्पादन करके अध्वाका विधिपूर्वक शोधन करनेके पश्चात् कुण्डकी लंबाई-चौड़ाईके अनुसार ही अग्निदेवके मुखकी लंबाई-चौड़ाईका चिन्तन करके अग्निजिह्वाओंके नाम-मन्त्रके अन्तमें 'नमः' (एवं 'स्वाहा') बोलकर अभीष्ट वस्तुकी आहुतियाँ देते हुए अग्निदेवको तृप्त करे। अग्निकी सात जिह्वाओंके सात बीज हैं। इसके लिये उनका परिचय दिया जाता है ॥ ४१—४५ ॥

रकाररहित अन्तिम दो वर्णोंसे सभी (अर्थात् सात) अक्षर यदि रकार और छठे स्वर (ऊ) पर आरूढ़ हों और उनके भी ऊपर चन्द्रबिन्दुरूप शिखा हो तो वे ही अग्निकी सात जिह्वाओंके क्रमशः सात बीज-मन्त्र हैं। (यथा—य्रूँ ल्रूँ म्रूँ भ्रूँ व्रूँ स्रूँ ह्रूँ) * अग्निकी सात जिह्वाओंके नाम इस प्रकार हैं—हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, अतिरक्ता तथा बहुरूपा। ईशान, पूर्व, अग्नि, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य तथा मध्य दिशामें क्रमशः इनके मुख हैं। (अर्थात् एक त्रिभुजके ऊपर दूसरा त्रिभुज बनानेसे जो छः कोण बनते हैं, वे क्रमशः ईशान, पूर्व, अग्नि, नैर्ऋत्य, पश्चिम तथा वायुकोणमें स्थित होते हैं। अग्निकी हिरण्या आदि छः जिह्वाओंको इन्हीं छः कोणोंमें स्थापित करे तथा अन्तिम जिह्वा 'बहुरूपा'को मध्यमें) † ॥ ४६—४७ ॥

शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंमें खीर आदि मधुर पदार्थोंद्वारा होम करे। परंतु अभिचार कर्ममें सरसोंकी खली, सत्तू, जौकी काँजी, नमक, राई, मट्ठा, कड़वा तेल, काँटे तथा टेढ़ी-मेढ़ी समिधाओंद्वारा क्रोधपूर्वक भाष्याणु (भाष्य-मन्त्र) से हवन करे ।‡ कदम्बकी कलिकाओंद्वारा होम

* ये सात बीज अग्निकी 'हिरण्या' आदि सात जिह्वाओंके नामके आदिमें लगाये जाते हैं और अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर नाम-मन्त्रोंसे ही उनकी पूजा की जाती है। यथा—'ॐ य्रूँ हिरण्यायै नमः।' 'ल्रूँ कनकायै नमः।' 'म्रूँ रक्तायै नमः।' 'भ्रूँ कृष्णायै नमः।' 'व्रूँ सुप्रभायै नमः।' 'स्रूँ अतिरक्तायै नमः।' 'ह्रूँ बहुरूपायै नमः।'

† सोमशम्भुने इन जिह्वाओंके स्वरूप तथा कामनाभेदसे विभिन्न कर्मोंमें इनके उपयोगके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

हिरण्या तप्तहेमाभा कनका वज्रसुप्रभा।
रक्तोद्दिताकर्णप्रख्या कृष्णा नीलमणिप्रभा ॥ ६६४ ॥
सुप्रभा मौक्तिकाभोऽतिरक्ता पद्मरागवत्।
चन्द्रकान्तशरच्चन्द्रप्रभेव बहुरूपिणी ॥ ६६५ ॥
फलं तु कामभेदेन क्रमादासामुदीर्यते।
वश्याकर्षणयोरावा कनका स्तम्भने रिपोः ॥ ६६६ ॥
विद्वेषणेऽग्ने रक्ता कृष्णा मारणकर्मणि।
सुप्रभा शान्तिके पुष्टौ सुरक्तोच्चाटने मता ॥ ६६७ ॥
एकैव बहुरूपा तु सर्वकामफलप्रदा।
('कर्मकाण्ड-क्रमावली')

‡ सोमशम्भुके ग्रन्थमें इसके बाद यह एक श्लोक अधिक है—

विधायाररकवणभाग चन्द्राङ्कुरोद्भवं पुरम्।
कामदा पञ्चशिखाकैर्युक्तात् साधकोत्तमः ॥

करनेसे निश्चय ही यक्षिणी सिद्ध हो जाती है। वशीकरण और आकर्षणकी सिद्धिके लिये बन्धूक (दुपहरिया) और पलाशके फूलोंका हवन करना चाहिये। राज्यलाभके लिये बिल्वफलका और लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये पाटल (पाड़र) एवं चम्पाके फूलोंका होम करे। चक्रवर्ती सम्राट्का पद पानेके लिये कमलोंका तथा सम्पत्तिके लिये भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका होम करे। दूर्वाका हवन किया जाय तो उससे व्याधियोंका नाश होता है। समस्त जीवोंको वशमें करनेके लिये विद्वान् पुरुष प्रियङ्गु तथा कदलीके पुष्पोंका हवन करे। आमके पत्तोंका होम ज्वरका नाशक होता है ॥ ४८—५२ ॥

मृत्युञ्जय देवता या मन्त्रका उपासक मृत्युविजयी होता है। तिलका होम करनेसे अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। रुद्र-शान्ति समस्त दोषोंकी शान्ति करनेवाली होती है। वे अब प्रस्तुत प्रसंगको पुनः प्रारम्भ करते हैं * ॥ ५३ ॥

एक सौ आठ आहुतियोंसे मूलका और उसके दशांश आहुतियोंसे अङ्गोंका तर्पण करे। यह हवन अथवा तर्पण मूलमन्त्रसे ही करना चाहिये। फिर पूर्ववत् पूर्णाहुति दे। शिष्योंका दीक्षामें प्रवेश करानेके लिये प्रत्येक शिष्यके निमित्त मूलमन्त्रका सौ बार जप करना चाहिये। साथ ही दुर्निमित्तोंका निवारण तथा शुभ निमित्तोंकी सिद्धिके लिये मूलमन्त्रसे पूर्ववत् दो सौ आहुतियाँ देनी चाहिये। पहले बताये हुए जो अस्त्र-सम्बन्धी आठ मन्त्र हैं, उनके आदिमें मूल और अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर पाठ करते हुए एक-एक बार तर्पण करे। मूलमन्त्रमें जो बीज हों, उन्हें 'शिखा' (वषट्) से सम्पुटित करके अन्तमें 'हूं फट्' जोड़कर जप करे तो उससे मन्त्रका दीपन होता है। 'ॐ हूं शिवाय स्वाहा।' इत्यादि मन्त्रोंसे तर्पण किया जाता है। इसी प्रकार 'ॐ ॐ शिवाय हूं फट्।' इत्यादि दीपन-मन्त्र हैं ॥ ५४—५७½ ॥

तदनन्तर शिव-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलसे धोयी हुई बटलोईको कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठित करके उसमें रोली-चन्दन आदि लगा दे। फिर उसके गलेमें 'हूं फट्' मन्त्रसे अभिमन्त्रित उत्तम कुश और सूत्र बाँध दे। इससे चरुकी सिद्धि होती है। फिर धर्म आदि चार पायोंसे युक्त चौकी आदिका आसन देकर उसके ऊपर बने हुए अर्धचन्द्राकार मण्डलमें उस बटलोईको रक्खे तथा उसे आराध्यदेवताकी मूर्ति मानकर उसके ऊपर भावात्मक पुष्पोंसे भगवान् शिवका पूजन करे। अथवा उस बटलोईके मुखको वस्त्रसे बाँध दे और ऊपर बाह्यपुष्पोंसे शिवका पूजन करे। इसके बाद पश्चिमाभिमुख रक्खे हुए चूल्हेको देख-भालकर शुद्ध करके उसमें अहंकार-बीजका न्यास करे। तत्पश्चात् उसे कुण्डके दक्षिण भागमें रक्खे और यह भावना करे कि 'इस चूल्हेका शरीर धर्माधर्ममय है।' फिर उसकी शुद्धिके लिये उसके स्पर्शपूर्वक अस्त्र-मन्त्रका जप करे। इसके बाद अस्त्र-मन्त्र

'साधक-शिरोमणिको चाहिये कि वह 'विद्याधर-पद' की प्राप्तिके लिये कपूर, अगुरु और गुग्गुलसे अथवा कमलके केसरोंसे हवन करे।'

* इस प्रसंगमें सोमशम्भुने कुछ अधिक प्रयोग लिखे हैं। उनका कथन है कि—

विषमज्वरनाशाय चूतपत्राणि होमयेत्।
घृतेन सह सार्द्राणि घृताक्तानि ज्वारिणः ॥
ॐ अमुकस्य ज्वरं नाशय जुं सः वौषट्।
जले वरुणमभ्यर्च्य वृष्ट्यर्थं ग्रहसंयुतम् ॥
तिलान् वारुणमन्त्रेण जुहुयाद् शुक्रकेन वा।
मेघानाप्लाविताशेषदिगन्तधरणीतलान् ॥
धारयेत्तिलहोमेन शीघ्रं पाशुपताणुना।
ॐ श्लीं पशु हूं फट् मेघान् स्फुटीकृतान् हूं फट् ॥
सर्वोपद्रवनाशाय रुद्रशान्त्या तिलादिभिः।
विधिना यजनं कुर्यादथ प्रस्तुतमुच्यते ॥
(कर्मकाण्ड-क्रमावली ६७६—६८०)

अर्थात् 'विषमज्वरका नाश करनेके लिये आमके पत्तोंका हवन करे। उन पत्तोंको घीसे आर्द्र करके अथवा घीमें डुबोकर उनकी आहुति दे। पत्तोंकी आहुति घीकी आहुतिके साथ देनी चाहिये। इससे ज्वरग्रस्त पुरुषको लाभ होता है। उस पुरुषका नाम लेकर कहे—'ॐ अमुकपुरुषस्य ज्वरं नाशय जुं सः वौषट्।'

'वृष्टिके लिये निम्नाङ्कित प्रयोग करे। जलमें ग्रहोंसहित वरुणदेवका पूजन करके वारुण अथवा शुक्रक-मन्त्रसे तिलोंकी आहुति दे। तिलके इस होमसे मनुष्य आकाशमें ऐसे मेघोंको स्थापित कर सकता है, जो सम्पूर्ण दिगन्तों तथा पृथ्वीको वर्षाके जलसे आप्लावित करनेमें समर्थ हों। फिर शीघ्र ही पाशुपत-मन्त्रसे उन मेघोंको वर्षाके लिये विदीर्ण करे। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ श्लीं पशु हूं फट् मेघान् स्फुटीकृतान् हूं फट्।'

'समस्त उपद्रवोंके नाशके लिये रुद्रमन्त्रसे शान्ति-अभिषेक करे तथा तिल आदिसे विधिपूर्वक होम-यज्ञ करे। अब प्रस्तुत विषयका प्रतिपादन करते हैं।'

(फट्) के जपसे अभिमन्त्रित गायके घीसे मार्जित हुई उस बटलोईको चूल्हेपर चढ़ावे ॥ ५८—६२½ ॥

उसमें अस्त्र-मन्त्रसे शुद्ध किये हुए गोदुग्धको सौ बार प्रासाद-मन्त्र (हौं) से अभिमन्त्रित करके डाले । फिर उस दूधमें साँवा आदिके चावल छोड़े । उसकी मात्रा इस प्रकार है—एक शिष्यकी दीक्षा-विधिके लिये पाँच पसर चावल डाले और दो-तीन आदि जितने शिष्य बढ़ें, उन सबके लिये क्रमशः एक-एक पसर चावल बढ़ाता जाय। फिर अस्त्र-मन्त्रसे आग जलावे एवं कवच-मन्त्र (हुम्) से बटलोईको ढक दे । साधक पूर्वाभिमुख हो उक्त शिवाग्निमें मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक चरुको पकावे । जब वह अच्छी तरह सीझ जाय, तब वहाँ स्रुवाको घीसे भरकर स्वाहान्त संहिता-मन्त्रोंद्वारा उस चूल्हेमें ही 'तप्ताभिघार' नामक आहुति दे । तदनन्तर मण्डलमें चरु-स्थालीको रखकर अस्त्र-मन्त्रसे उसपर कुश रख दे । इसके बाद प्रणवसे चूल्हेमें उल्लेखन और हृदय-मन्त्रसे लेपन करके पूर्ववत् 'तप्ताभिघार'के स्थानमें 'सीताभिघार' नामक आहुति दे। इस तरह चूल्हा शीतल होता है । सीताभिघार-आहुतिकी विधि यह है कि संहिता मन्त्रोंके अन्तमें 'वौषट्' पद जोड़कर उसके द्वारा कुण्ड-मण्डपके पश्चिम भागमें दर्भ आदिके आसनपर प्रत्येक शिष्यके निमित्तसे एक-एक आहुति दे । फिर स्रुक्-द्वारा सम्पात-होम करनेके पश्चात् संहिता-मन्त्रसे शुद्धि करे । फिर अन्तमें 'वषट्' लगे हुए उसी संहिता-मन्त्रद्वारा एक बार चरु लेकर धेनुमुद्राद्वारा उसका अमृतीकरण करे । इसके बाद वेदीपर उसके द्वारा शान्ति-होम करे ॥ ६३-७०½ ॥

तत्पश्चात् गुरु अपने शिष्योंके लिये, अग्निदेवताके लिये तथा लोकपालोंके लिये घृतसहित भाग नियत करे । ये तीनों भाग समान घीसे युक्त होते हैं । इन सबके नाम-मन्त्रों-के अन्तमें 'नमः' पद लगाकर उनके द्वारा उनका भाग अर्पित करे और उसी मन्त्रसे उन्हें आचमनीय निवेदित करे । तदनन्तर मूलमन्त्रसे एक सौ आठ आहुति देकर विधिवत् पूर्णाहुति होम करे । इसके बाद मण्डलके भीतर कुण्डके पूर्वभागमें अथवा शिव एवं कुण्डके मध्यभागमें हृदय-मन्त्रसे रुद्र-मातृकागण आदिके लिये अन्तर्बलि अर्पित करे । फिर शिवका आश्रय ले, उनकी आज्ञा पाकर एकत्वकी भावना करते हुए इस प्रकार चिन्तन करे—'मैं सर्वज्ञता आदि गुणोंसे युक्त और समस्त अध्वाओंके ऊपर विराजमान शिव हूँ । यह यज्ञस्थान मेरा अंश है । मैं यज्ञका अधिष्ठाता हूँ' यों अहंकार—शिवसे अपने ऐकात्म्य-बोध-पूर्वक गुरु यज्ञमण्डपसे बाहर निकले ॥ ७१—७५½ ॥

फिर अस्त्र-मन्त्र (फट्) द्वारा निर्मित मण्डलमें पूर्वाग्र उत्तम कुश बिछाकर, उसमें प्रणवमय आसनकी भावना करके, उसके ऊपर स्नान किये हुए शिष्यको बिठावे । उस समय शिष्यको श्वेत वस्त्र और श्वेत उत्तरीय धारण किये रहना चाहिये । यदि वह मुक्तिका इच्छुक हो तो उसका मुख उत्तर दिशाकी ओर होना चाहिये और यदि वह भोग-का अभिलाषी हो तो उसे पूर्वाभिमुख बिठाना चाहिये । शिष्यके शरीरका घुटनोंसे ऊपरका ही भाग उस प्रणवासनपर स्थित रहना चाहिये, नीचेका भाग नहीं । इस प्रकार बैठे हुए शिष्यकी ओर गुरु पूर्वाभिमुख होकर बैठे । मोक्षरूपी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये शिष्यके पैरोंसे लेकर शिखातकके अङ्गोंका क्रमशः निरीक्षण करना चाहिये और यदि भोगरूपी प्रयोजनकी सिद्धि अभीष्ट हो तो इसके विपरीत क्रमसे शिष्यके अङ्गोंपर दृष्टिपात करना उचित है, अर्थात् उस दशामें शिखासे लेकर पैरोंतकके अङ्गोंका क्रमशः निरीक्षण करना चाहिये ।* उस समय गुरुकी दृष्टिमें शिष्यके प्रति कृपा-प्रसाद भरा हो और वह दृष्टि शिष्यके समक्ष शिवके ज्योतिर्मय स्वरूपको अनावृतरूपसे अभिव्यक्त कर रही हो । इसके बाद अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलसे शिष्यका प्रोक्षण करके मन्त्राम्बु-स्नानका कार्य सम्पन्न करे (प्रोक्षण-मन्त्रसे ही यह स्नान सम्पन्न हो जाता है) । तदनन्तर विघ्नोंकी शान्ति और पापोंके नाशके लिये भस्म-स्नान करावे । इसकी विधि यों है—अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित भस्म लेकर उसके द्वारा शिष्यको सृष्टि-संहार-योगसे ताडित करे (अर्थात् ऊपरसे नीचे तथा नीचेसे ऊपरतक अनुलोम-विलोम-क्रमसे उसके ऊपर भस्म छिड़के) ॥ ७६—८० ॥

फिर सकलीकरणके लिये पूर्ववत् अस्त्र-जलसे शिष्यका प्रोक्षण करके उसकी नाभिसे ऊपरके भागमें अस्त्र-मन्त्रका उच्चारण करते हुए कुशाग्रसे मार्जन करे और हृदय-मन्त्रका उच्चारण करके पापोंके नाशके लिये पूर्वोक्त कुशोंके मूल भागसे नाभिके नीचेके अङ्गोंका स्पर्श करे । साथ ही समस्त

---

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' श्लोक ७०४ में दृष्टिपातका क्रम इसके विपरीत है । वहाँ 'मुक्तौ भुक्तौ विलोमतः' के स्थानमें 'भुक्त्यै मुक्त्यै विलोमतः' पाठ है ।

पाशोंको दो टूक करनेके लिये पुनः अस्त्र-मन्त्रसे उन्हीं कुशों-द्वारा यथोक्तरूपसे मार्जन एवं स्पर्श करे। तत्पश्चात् शिष्य-के शरीरमें आसनसहित साङ्ग-शिवका न्यास करे। न्यासके पश्चात् शिवकी भावनासे ही पुष्प आदि द्वारा उसका पूजन करे। इसके बाद नेत्र-मन्त्र (वौषट्) अथवा हृदय-मन्त्र (नमः) से शिष्यके दोनों नेत्रोंमें श्वेत, कोरदार एवं अभिमन्त्रित वस्त्रसे पट्टी बाँध दे और प्रदक्षिण-क्रमसे उसको शिवके दक्षिण पार्श्वमें ले जाय। वहाँ षडुत्थ (छहों अध्वाओंसे ऊपर उठा हुआ अथवा उन छहोंसे उत्पन्न) आसन देकर यथोचित रीतिसे शिष्यको उसपर बिठावे ॥ ८१–८४½ ॥

संहार-मुद्राद्वारा शिवमूर्तिसे एकीभूत अपने-आपको उसके हृदय-कमलमें अवरुद्ध करके उसका काय-शोधन करे। तत्पश्चात् न्यास करके उसकी पूजा करे। पूर्वाभिमुख शिष्यके मस्तकपर मूलमन्त्रसे शिवहस्त रखना चाहिये, जो रुद्र एवं ईशका पद प्रदान करनेवाला है। इसके बाद शिव-मन्त्रसे शिष्यके हाथमें शिवकी सेवाकी प्राप्तिके उपायस्वरूप पुष्प दे और उसे शिवपर ही चढ़वावे। तदनन्तर गुरु उसके नेत्रोंमें बँधे हुए वस्त्रको हटाकर उसके लिये शिवदेवगणाङ्कित स्थान, मन्त्र, नाम आदिकी उद्भावना करे, अथवा अपनी इच्छासे ही ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमशः नामकरण करे ॥ ८५–८८½ ॥

शिव-कलश तथा वार्धानीको प्रणाम करवाकर अग्निके समीप अपने दाहिने आसनपर पूर्ववत् उत्तराभिमुख शिष्यको बिठावे और यह भावना करे कि 'शिष्यके शरीरसे सुषुम्णा निकलकर मेरे शरीरमें विलीन हो गयी है।' स्कन्द! इसके बाद मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित दर्भ लेकर उसके अग्रभागको तो शिष्यके दाहिने हाथमें रक्खे और मूलभागको अपनी जंघापर। अथवा अग्रभागको ही अपनी जंघापर रक्खे और मूलभागको शिष्यके दाहिने हाथमें ॥ ८९—९१½ ॥

शिव-मन्त्रद्वारा रेचक प्राणायामकी क्रिया करते हुए शिष्यके हृदयमें प्रवेशकी भावना करके पुनः उसी मन्त्रसे पूरक प्राणायामद्वारा अपने हृदयाकाशमें लौट आनेकी भावना करे। फिर शिवाग्निसे इसी तरह नाडी-संधान करके उसके संनिधानके लिये हृदय-मन्त्रसे तीन आहुतियाँ दे। शिवहस्तकी स्थिरताके लिये मूलमन्त्रसे एक सौ आहुतियोंका हवन करे। इस प्रकार करनेसे शिष्य समय-दीक्षामें संस्कारके योग्य हो जाता है ॥ ९२—९५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'समय-दीक्षाकी योग्यताके आपादक-विधानका वर्णन' नामक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

बयासीवाँ अध्याय

समय-दीक्षाके अन्तर्गत संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन

भगवान् शिव कहते हैं—षडानन! अब मैं संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन करूँगा, सुनो—अग्निमें स्थित महेश्वरके शिवा-शिवमय (अर्धनारीश्वर) रूपका अपने हृदयमें आवाहन करे। शिव और शिवा दोनों एक शरीरमें ही परस्पर सटे हुए हैं—इस प्रकार ध्यानद्वारा देखकर उनका पूजन करके हृदय-मन्त्रसे संतर्पण करे। फिर उनके संनिधानके लिये हृदय-मन्त्रसे ही अग्निमें पाँच आहुतियाँ दे। तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित पुष्पद्वारा शिष्यके हृदयमें ताड़ना दे, अर्थात् उसके वक्षपर उस फूलको फेंके। फिर उसके भीतर प्रकाशमान नक्षत्रकी आकृतिमें चैतन्य (जीव) की भावना करे। तत्पश्चात् हुंकारयुक्त रेचक प्राणायामके योगसे शिष्यके हृदयमें भावनाद्वारा प्रवेश करके संहारिणीमुद्राद्वारा उस जीव-चैतन्यको वहाँसे खींचकर पूरक प्राणायामके योगसे उसे अपने हृदयमें स्थापित करे ॥ १–४ ॥

तदनन्तर 'उद्भव' नामक मुद्राका प्रदर्शन करके हृत्सम्पुटित आत्ममन्त्रका उच्चारण करते हुए रेचक प्राणायामके सहयोगसे उसका वागीश्वरी देवीकी योनिमें भावनाद्वारा आधान करे। उक्त मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—ॐ हां हां हामात्मने नमः। इसके बाद अत्यन्त प्रज्वलित एवं धूमरहित अग्निमें अभीष्ट-सिद्धिके लिये आहुति दे। अप्रज्वलित तथा धूमयुक्त अग्निमें किया गया होम सफल नहीं होता है। यदि अग्निकी लपटें दक्षिणावर्त उठ रही हों, उससे उत्तम गन्ध प्रकट

हो रही हो तथा वह अग्नि सुस्निग्ध प्रतीत होती हो तो उसे श्रेष्ठ बताया गया है। इसके विपरीत जिस अग्निसे चिनगारियाँ छूटती हों तथा जिसकी लपट धरतीको ही चूम रही हो, उसे उत्तम नहीं कहा गया है* ॥ ५-८ ॥

इस प्रकारके चिह्नोंसे शिष्यके पापको जानकर उसका हवन कर दे, अथवा पाप-भक्षण-निमित्तक होमसे उस पापको जला डाले। फिर नूतन रूपसे उसमें द्विजत्वकी प्राप्ति, रुद्रांशकी भावना, आहार और बीजकी शुद्धि, गर्भाधान, गर्भ-स्थिति (पुंसवन), सीमन्तोन्नयन, जातकर्म तथा नामकरणके लिये पृथक्-पृथक् मूलमन्त्रसे एक सौ पाँच-पाँच आहुतियाँ दे तथा चूडाकर्म आदिके लिये इनकी अपेक्षा दशमांश आहुतियाँ प्रदान करे। इस प्रकार जिसका बन्धन शिथिल हो गया है, उस जीवात्माके भीतर जो शक्तिका उत्कर्ष होता है, वही उसके रुद्रपुत्र होनेमें निमित्त बनकर 'गर्भाधान' कहलाता है। स्वतन्त्रता-पूर्वक उसमें जो आत्मगुणोंकी अभिव्यक्ति होती है, उसीको यहाँ 'पुंसवन' माना गया है। माया और आत्मा—दोनों एक-दूसरेसे पृथक् हैं, इस प्रकार जो विवेक-ज्ञान उत्पन्न होता है, उसीका नाम यहाँ 'सीमन्तोन्नयन' है ॥ ९-१३ ॥

शिव आदि शुद्ध सद्वस्तुको स्वीकार करना 'जन्म' माना गया है। मुझमें शिवत्व है अथवा मैं शिव हूँ, इस प्रकार जो बोध होता है, वही शिवत्वके योग्य शिष्यका 'नामकरण' है। संहार-मुद्रासे प्रकाशमान अग्निकणके समान प्रतीत होनेवाले जीवात्माको लेकर अपने हृदय-कमलमें स्थापित करे। तदनन्तर कुम्भक प्राणायामके योग-पूर्वक मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस समय हृदयके भीतर शक्ति और शिवकी समरसताका सम्पादन करे ॥ १४-१६ ॥

ब्रह्मा आदि कारणोंका क्रमशः त्याग करते हुए रेचक-योगसे जीवात्माको शिवके समीप ले जाकर फिर उद्भव-मुद्राके द्वारा उसे वापस ले ले और पूर्वोक्त हृत्सम्पुटित आत्म-मन्त्रद्वारा रेचक प्राणायाम करते हुए विधानवेत्ता गुरु शिष्यके हृदय-कमलकी कर्णिकामें उस जीवात्माको स्थापित कर दे। इसके बाद गुरु शिव और अग्निकी तत्कालोचित पूजा करे और शिष्यसे अपने लिये प्रणाम करवाकर उसे समयाचारका उपदेश दे। वह उपदेश इस प्रकार है—'इष्टदेवता (शिव) की कभी निन्दा न करे; शिव-सम्बन्धी शास्त्रोंकी भी निन्दासे दूर रहे; शिव-निर्माल्य आदिको कभी न लाँघे। जीवन-पर्यन्त शिव, अग्नि तथा गुरुदेवकी पूजा करता रहे। बालक, मूढ़, वृद्ध, स्त्री, भोगार्थी (भूखे) तथा रोगी मनुष्योंको यथाशक्ति धन आदि आवश्यक वस्तुएँ दे।' समर्थ पुरुषके लिये सब कुछ दान करनेका नियम बताया गया है ॥ १७-२१ ॥

इसके अङ्गभूत जटा, भस्म, दण्ड, कौपीन एवं संयम-पोषक अन्य वस्तुओंको ईशान आदि नामोंसे अथवा उनके आदिमें 'नमः' लगाकर उन नाम-मन्त्रोंसे क्रमशः अभिमन्त्रित करके स्वाहान्त संहिता-मन्त्रोंका पाठ करते हुए उन्हें पात्रोंमें रक्खे और पूर्ववत् सम्पाताभिहत (संस्कार-विशेषसे संस्कृत) करके स्थण्डिलेश (वेदीपर स्थापित-पूजित भगवान् शिव) के समक्ष उपस्थित करे।

---

* इस श्लोकके बाद सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में तीन श्लोक अधिक उपलब्ध होते हैं, जिनमें शिष्यके पाप-विशेषको जाननेके लिये अग्निके लक्षण दिये गये हैं। वे श्लोक इस प्रकार हैं—

अन्तेवासिकृतं पापं ज्ञातव्यं वह्निलक्षणैः।
विष्ठागन्धे स भूहर्ता ब्रह्महा गुरुतल्पगः॥
सुरापो गुरुहन्ता च गोघ्नश्च कृतनाशनः।
कुणपेऽग्नौ शवगन्धे च गर्भभर्तृविनाशनः॥
भ्रमति स्त्रीवधे वह्निः कम्पते हेमहर्तरि।
रवे स्फुटति बालघ्ने निस्तेजा गर्भघातके॥

'हवनीय अग्निके लक्षणोंसे शिष्यद्वारा किये गये पाप-विशेषको जानना चाहिये। यदि उस अग्निसे विष्ठाकी-सी दुर्गन्ध प्रकट होती हो तो यह जानना चाहिये कि वह शिष्य भूमिहर्ता, ब्रह्महत्यारा, गुरुपत्नीगामी, शराबी, गुरुघाती, गोवध करनेवाला तथा कृतघ्न रहा है। यदि अग्नि क्षीण हो और उससे मुर्देकी-सी बदबू आ रही हो तो उस शिष्यको गर्भ-हत्यारा और स्वामिघाती समझना चाहिये। यदि शिष्यमें स्त्रीवधजनित पाप हो तो उसके आहुति देते समय आगकी लपट सब ओर चक्कर देती है और यदि वह सुवर्णकी चोरी करनेवाला है तो उससे अग्निदेवमें कम्पन होने लगता है। यदि शिष्यने बाल-हत्याका पाप किया है तो अग्निमें किसी वस्तुके फूटनेकी-सी आवाज होती है। यदि शिष्य गर्भघाती है तो उसके संनिहित होनेसे आग निस्तेज हो जाती है।'

इनकी रक्षाके लिये क्षणभर कलशके नीचे रक्खे। इसके बाद गुरु शिवसे आज्ञा लेकर उक्त सभी वस्तुएँ व्रतधारी शिष्यको अर्पित करे ॥ २२-२४ ॥

इस प्रकार विशेषरूपसे विशिष्ट समय-दीक्षा-सम्पन्न हो जानेपर शिष्य अग्निहोम तथा आगमज्ञानके योग्य हो जाता है* ॥ २५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'समय-दीक्षाके अन्तर्गत संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन' नामक बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

तिरासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत अधिवासनकी विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—षडानन स्कन्द! तदनन्तर निर्वाण-दीक्षामें पाशबन्धन-शक्तिके लिये और ताड़न आदिके लिये मूल-मन्त्र आदिका दीपन करे। उस समय प्रत्येकके लिये एक-एक या तीन-तीन आहुति देकर मन्त्रोंका दीपन-कर्म सम्पन्न करे। आदिमें प्रणव और अन्तमें **'हुं फट्'** लगाकर बीचमें बीज, गर्भ एवं शिखाबन्धस्वरूप तीन **'हुं'** का उच्चारण करे। इससे मूल मन्त्रका दीपन होता है, यथा—**'ॐ हुं हुं हुं हुं फट्।'** इसीसे हृदयका दीपन होता है। यथा—**'ॐ हुं हुं हुं हुं फट् हृदयाय नमः।'** फिर **'ॐ हुं हुं हुं हुं फट् शिरसे स्वाहा।'** आदि कहकर सिर आदि अङ्गोंका दीपन करे। समस्त क्रूर कर्मोंमें इसी तरह मूलादिका दीपन करना उचित है। शान्तिकर्म, पुष्टिकर्म और वशीकरणमें आदिगत प्रणव-मन्त्रके अन्तमें **'वषट्'** जोड़कर उसी मन्त्रद्वारा प्रत्येकका दीपन करे। **'वषट्'** और **'वौषट्'** से युक्त तथा सम्पूर्ण काम्य-कर्मोंके ऊपर स्थित शम्बर-मन्त्रोंद्वारा आप्यायन आदि सभी कर्मोंमें हवन करना चाहिये ॥ १-५ ॥

तत्पश्चात् अपने वामभागमें स्थित और मण्डलमें विराजमान शुद्ध शरीरवाले शिष्यका पूजन करके, एक उत्तम सूत्रमें सुषुम्णा नाड़ीकी भावना करके, मूल मन्त्रसे उसको शिखाबन्धतक ले जाकर, वहाँसे फिर पैरोंके अँगूठेतक ले आवे। तत्पश्चात् संहार क्रमसे उसे पुनः मुमुक्षु शिष्यकी शिखाके समीप ले जाय और वहीं उसे बाँध दे। पुरुषके दाहिने भागमें और नारीके वामभागमें उस सूत्रको नियुक्त करना चाहिये। इसके बाद शिष्यके मस्तकपर शक्तिमन्त्रसे पूजित शक्तिको संहार-मुद्राद्वारा लाकर उक्त सूत्रमें उसी मन्त्रसे जोड़ दे। सुषुम्णा नाड़ीको लेकर मूलमन्त्रसे उसका सूत्रमें न्यास करे और हृदय-मन्त्रसे उसकी पूजा करे। तदनन्तर कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठित करके हृदय-मन्त्रद्वारा तीन आहुतियाँ दे। ये आहुतियाँ नाड़ीके संनिधानके लिये दी जाती हैं। शक्तिके संनिधानके लिये भी इसी तरह आहुति देनेका विधान है ॥ ६-१० ॥

तदनन्तर **'ॐ हां तत्त्वाध्वने नमः।' 'ॐ हां पदाध्वने नमः।' 'ॐ हां वर्णाध्वने नमः।' 'ॐ हां मन्त्राध्वने नमः।' 'ॐ हां कलाध्वने नमः।' 'ॐ हां भुवनाध्वने नमः।'**—इन मन्त्रोंसे पूर्वोक्त सूत्रमें छः प्रकारके अध्वाओंका न्यास करके अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे शिष्यका प्रोक्षण करे। फिर अस्त्र-मन्त्रके जपपूर्वक पुष्प लेकर उसके द्वारा शिष्यके हृदयमें ताड़न करे। इसके बाद हुंकारयुक्त रेचक प्राणायामके योगसे वहाँ शिष्यके शरीरमें प्रवेश करके,

* सोमशम्भुके ग्रन्थमें यहा निम्नाङ्कित पङ्क्तियाँ अधिक हैं—

> नाडीसंधानहोमस्तु मन्त्राणां तर्पणं तथा। पूर्वजातेः समुद्धारो द्विजत्वापादनं तथा॥
> चैतन्यस्यापि संस्कारो रुद्रांशापादनं तथा। दत्त्वा पवित्रकं होमशतं वाथ सहस्रकम्॥
> दीक्षेयं सामग्री प्रोक्ता रुद्रेशपददायिनी। (श्लोक ७४०-७५१)

"नाडीसंधान-होम, मन्त्रतर्पण, शिष्यका पूर्व-जातिसे उद्धार, उसमें नूतनरूपसे द्विजत्वका सम्पादन, चैतन्यसंस्कार, रुद्रांशका आपादन तथा पवित्रक-दानपूर्वक सौ बार या सहस्र बार होम—इन क्रियाओंको 'सामग्री-दीक्षा' कहा गया है। यह रुद्रेश-पद प्रदान करनेवाली है।"

उसके भीतर हंस-बीजमें स्थित जीवचैतन्यको अस्त्र-मन्त्र पढ़कर वहाँसे विलग करे। इसके बाद 'ॐ हः हूं फट्।' इस शक्तिसूत्रसे तथा 'हां हां स्वाहा।' इस मन्त्रसे संहारमुद्राद्वारा उक्त नाड़ीभूत सूत्रमें उस विलग हुए जीवचैतन्यको नियुक्त करे। 'ॐ हां हां हामात्मने नमः।' इस मन्त्रका जप करते हुए जीवात्माके व्यापक होनेकी भावना करे। फिर कवच-मन्त्रसे उसका अवगुण्ठन करे और उसके सांनिध्यके लिये हृदय-मन्त्रसे तीन बार आहुतियाँ दे॥ ११–१८॥

तत्पश्चात् विद्यादेहका न्यास करके उसमें शान्त्यतीत-कलाका अवलोकन करे। उस कलाके अन्तर्गत इतर तत्त्वोंसे युक्त आत्माका चिन्तन करे। 'ॐ हूं शान्त्यतीतकलापाशाय नमः।' इस मन्त्रसे उक्त कलाका अवलोकन करे। दो तत्त्व, एक मन्त्र, एक पद, सोलह वर्ण, आठ भुवन, क, ख आदि बीज और नाड़ी, दो कलाएँ, विषय, गुण और एकमात्र कारणभूत सदाशिव—इन सबका श्वेतवर्णा शान्त्यतीत-कलामें अन्तर्भाव करके 'ॐ हूं शान्त्यतीतकलापाशाय हूं फट्।' इस मन्त्रसे प्रताडन करे। संहारमुद्राद्वारा उक्त कलापाशको लेकर सूत्रके मस्तकपर रक्खे और उसकी पूजा करे। तदनन्तर उसके सांनिध्यके लिये पूर्ववत् तीन आहुतियाँ दे। शान्त्यतीतकलाका अपना बीज है—'हूं'। दो तत्त्व, दो अक्षर, बीज, नाड़ी, क, ख—ये दो अक्षर, दो गुण, दो मन्त्र, कमलमें विराजमान एकमात्र कारणभूत ईश्वर, बारह पद, सात लोक और एक विषय—इन सबका कृष्णवर्णा शान्तिकलाके भीतर चिन्तन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् ताडन करके सूत्रके मुखभागमें इन सबका नियोजन करे। इसके बाद सांनिध्यके लिये अपने बीज-मन्त्रद्वारा तीन आहुतियाँ दे। शान्तिकलाका अपना बीज है—'हूं हूं'॥ १९–२७॥

सात तत्त्व, इक्कीस पद, छः वर्ण, एक शम्बर, पचीस लोक, तीन गुण, एक विषय, रुद्ररूप कारणतत्त्व, बीज, नाड़ी और क, ख—ये दो कलाएँ—इन सबका अत्यन्त रक्त-वर्णवाली विद्याकलामें अन्तर्भाव करके, आवाहन और संयोजनपूर्वक पूर्वोक्त सूत्रके हृदयभागमें स्थापित करके अपने मन्त्रसे पूजन करे और इन सबकी संनिधिके लिये पूर्ववत् तीन आहुतियाँ दे। आहुतिके लिये बीज-मन्त्र इस प्रकार है—'हूं हूं हूं।' चौबीस तत्त्व, पचीस वर्ण, बीज, नाड़ी, क, ख—ये दो कलाएँ, बाईस पद, आठ लोक, आठ कला, चार गुण, तीन मन्त्र, एक विषय तथा कारणरूप श्रीहरिका शुक्लवर्णा प्रतिष्ठा-कलामें अन्तर्भाव करके ताडन आदि करे। फिर इन सबका पूर्वोक्त सूत्रके नाभिभागमें संयोजन करके संनिधिकरणके लिये तीन आहुतियाँ दे। उसके लिये बीज-मन्त्र इस प्रकार है—'हूं हूं हूं हूं'। एक सौ आठ भुवन या लोक, अट्ठाईस पद, बीज, नाड़ी और समीरकी दो-दो संख्या, दो इन्द्रियाँ, एक वर्ण, एक तत्त्व, एक विषय, पाँच गुण, कारणरूप कमलासन ब्रह्मा और चार शम्बर—इन सबका पीतवर्णा निवृत्तिकलामें अन्तर्भाव करके ताडन करे। इन्हें ग्रहण करके सूत्रके चरणभागमें स्थापित करनेके पश्चात् इनकी पूजा करे और इनके सांनिध्यके लिये अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। आहुतिके लिये बीज-मन्त्र यों है—'हूं हूं हूं हूं हूं'॥ २८–३५॥

इस प्रकार सूत्रगत पाँच कलाओंको लेकर शिष्यके शरीरमें उनका संयोजन करे। सबीजा-दीक्षामें समयाचार-पाशसे, देहारम्भक धर्मसे, मन्त्रसिद्धिके फलसे तथा इष्टापूर्तादि धर्मसे भी भिन्न चैतन्यरोधक सूक्ष्म प्रबन्धकका कलाओंके भीतर चिन्तन करे। इसी क्रमसे अपने मन्त्रद्वारा तीन-तीन आहुतियाँ देते हुए तर्पण और दीपन करे। 'ॐ हूं शान्त्यतीतकलापाशाय स्वाहा।' इत्यादि मन्त्रसे तर्पण करे। 'ॐ हूं हूं शान्त्यतीतकलापाशाय हूं हूं फट्।'—इत्यादि मन्त्रसे दीपन करे। पूर्वोक्त सूत्रको व्याप्ति-बोधके लिये पाँच कला-स्थानोंमें सुरक्षापूर्वक रखकर उसपर कुङ्कुम आदिके द्वारा साङ्ग-शिवका पूजन करे। फिर कला-मन्त्रोंके अन्तमें 'हूं फट्'—इन पदोंको जोड़कर उनका उच्चारण करते हुए क्रमशः पाशोंका भेदन करके नमस्कारान्त कला-मन्त्रोंद्वारा ही उनके भीतर प्रवेश करे। साथ ही उन कलाओंका ग्रहण एवं बन्धन भी करे। 'ॐ हूं हूं हूं शान्त्यतीतकलां गृह्णामि बध्नामि च।'—इत्यादि मन्त्रोंद्वारा कलाओंके ग्रहण एवं बन्धन आदिका प्रयोग होता है। पाश आदिका वशीकरण (या भेदन), ग्रहण और बन्धन तथा पुरुषके प्रति सम्पूर्ण व्यापारोंका निषेध—यह बारंबार प्रत्येक कलाके लिये आवश्यक कर्तव्य है॥ ३६–४४॥

तदनन्तर शिष्यको बिठाकर, पूर्वोक्त सूत्रको उसके कंधेसे लेकर उसके हाथमें दे और भूले-भटके पापोंका नाश करनेके लिये सौ बार मूल-मन्त्रसे हवन करे। अस्त्र-सम्बन्धी मन्त्रके सम्पुटमें पुरुषके और प्रणवके सम्पुटमें स्त्रीके सूत्रको रखकर, उसे हृदय-मन्त्रसे सम्पुटित करके

उसी मन्त्रसे उसकी पूजा करे । साङ्ग-शिवसे सूत्रको सम्पात-शोधित करके कलशके नीचे रक्खे और उसकी रक्षाके लिये इष्टदेवसे प्रार्थना करे । शिष्यके हाथमें फूल देकर कलश आदिका पूजन एवं प्रणाम करनेके अनन्तर याग-मन्दिरके मध्यभागसे बाहर जाय । वहाँ तीन मण्डल बनाकर मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले शिष्योंको उत्तराभिमुख बिठावे और भोगकी अभिलाषा रखनेवाले शिष्योंको पूर्वाभिमुख ॥ ४५—४९ ॥

पहले कुशयुक्त हाथसे तीन चुल्लू पञ्चगव्य पिलावे । बीचमें कोई आचमन न करे । तत्पश्चात् दूसरी बार प्रत्येक शिष्यको तीन या आठ ग्रास चरु दे । मुक्तिकामी शिष्यको पलाशके दोनेमें और भोगेच्छुको पीपलके पत्तेसे बने हुए दोनेमें चरु देकर उसे हृदय-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक दाँतोंके स्पर्शके बिना खिलाना चाहिये । चरु देकर गुरु स्वयं हाथ धो शुद्ध होकर, पवित्र जलसे उन शिष्योंको आचमन करावे । इसके बाद हृदय-मन्त्रसे दातुन करके उसे फेंक दे* । उसका मुखभाग शुभ दिशाकी ओर हो तो उसका शुभ फल होता है । न्यूनता आदि दोषको दूर करनेके लिये मूल मन्त्रसे एक सौ आठ बार आहुति दे । स्थण्डिलेश्वर (वेदीपर स्थापित-पूजित शिव) को सम्पूर्ण कर्म समर्पित करे । तदनन्तर इनकी पूजा और विसर्जन करके चण्डेशका पूजन करे ॥ ५०—५४ ॥

तत्पश्चात् निर्माल्यको हटाकर चरुके शेष भागको अग्निमें होम दे । कलश और लोकपालोंका पूजन एवं विसर्जन करके गण और अग्निका भी, यदि वे बाह्य दिशामें रक्षित हों तो, विसर्जन करे । मण्डलसे बाहर लोकपालोंको भी संक्षेपसे बलि अर्पित करके भस्म और शुद्ध जलके द्वारा स्नान करनेके पश्चात् यागमण्डपमें प्रवेश करे । वहाँ गृहस्थ साधकोंको कुशकी शय्यापर अस्त्र-मन्त्रसे रक्षित करके सुलावे । उनका सिरहाना पूर्वकी ओर होना चाहिये । जो साधक या शिष्य विरक्त हों उन्हें हृदय-मन्त्रसे उत्तम भस्ममयी शय्यापर सुलावे । उन सबके मस्तक दक्षिण दिशाकी ओर होने चाहिये । सभी शिष्य अस्त्र-मन्त्रसे रक्षित होकर शिखा-मन्त्रसे अपनी-अपनी शिखा बाँध लें । तदनन्तर गुरु उन्हें स्वप्न-मानवका परिचय देकर सो जानेकी आज्ञा प्रदान करे और स्वयं मण्डलसे बाहर चला जाय ॥ ५५—५९ ॥

इसके बाद '**ॐ हिलि हिलि शूलपाणये नमः स्वाहा ।**' इस मन्त्रसे पञ्चगव्य और चरुका प्राशन करके दन्तधावन के आचमन करे । फिर भगवान् शिवका ध्यान करके पवित्र शय्यापर आकर दीक्षागत क्रियाकाण्डका स्मरण करते हुए गुरु शयन करे† । इस प्रकार दीक्षाधिवासनकी विधि संक्षेपसे बतायी गयी ॥ ६०—६२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत अधिवासनकी विधिका वर्णन' नामक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

---

* 'दन्तकाष्ठं हृदा कृत्वा प्रक्षिपेत् शोभने शुभम् ।' इस पंक्तिके स्थानमें सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में इस प्रकार पाठ उपलब्ध होता है—

दन्तकाष्ठं हृदा दत्त्वा तद्दन्ताग्रविचर्वितम् ॥
धौतमूर्ध्वमुखं भूमौ क्षेपयेत्पातमुन्नयेत् । प्राक्पश्चिमोत्तरे चोर्ध्वं वदने पातमुत्तमम् ॥
सर्वेषामेव शिष्याणामितरास्यमशोभनम् । अशोभननिषेधार्थं शतमस्त्रेण होमयेत् ॥ (७९७—७९९)

अर्थात् 'इसके बाद हृदय-मन्त्रसे दन्तकाष्ठ देकर उसे चबानेको कहे । शिष्यके दन्ताग्रभागसे जब वह अच्छी तरह चर्वित हो जाय (कूँच लिया जाय) तो उसे धोकर उसका मुखभाग ऊपरकी ओर रखते हुए पृथ्वीपर फेंकवा दे । जब वह गिर जाय तो उसके सम्बन्धमें निम्नाङ्कित प्रकारसे शुभाशुभका विचार करे । यदि उस दातुनका मुखभाग पूर्व, पश्चिम, उत्तर अथवा ऊर्ध्व दिशाकी ओर हो तो उसका वह गिरना उत्तम माना गया है । इसके सिवा दूसरी दिशाकी ओर उसका मुख हो तो वह सभी शिष्योंके लिये अशुभ होता है । अशुभका निवारण करनेके लिये अस्त्र-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे ।'

† दीक्षागत क्रियाकाण्डके स्मरणीय स्वरूपका वर्णन सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में इस प्रकार मिलता है—

मन्त्राणां दीपनं प्रोक्तं ततः सूत्रावलम्बनम् । सुषुम्णानाडिसंयोगं शिष्यचैतन्ययोजनम् ॥

चौरासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत निवृत्तिकला-शोधन-विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! तदनन्तर प्रातःकाल उठकर गुरु स्नान आदिसे निवृत्त हो शिष्योंसे उनके द्वारा देखे गये स्वप्नको पूछे। स्वप्नमें दही, ताजा कच्चा मांस और मद्य आदिका दर्शन या उपयोग उत्तम बताया गया है। ऐसा स्वप्न शुभका सूचक होता है। सपनेमें हाथी और घोड़ेपर चढ़ना तथा श्वेत वस्त्र आदिका दर्शन शुभ है। स्वप्नमें तेल लगाना आदि अशुभ माना गया है। उसकी शान्तिके लिये अघोर-मन्त्रसे होम करना चाहिये। प्रातः और मध्याह्न—दो कालोंका नित्य-कर्म करके यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे तथा विधिवत् आचमन करके नैमित्तिक विधिमें भी नित्यके समान ही कर्म करे। तत्पश्चात् अध्व-शुद्धि करके अपने ऊपर शिवहस्त रक्खे। फिर कलशस्थ शिवका पूजन करके क्रमशः इन्द्रादि दिक्पालोंकी भी पूजा करे। मण्डलमें और वेदीपर भी भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण, अग्निपूजन, पूर्णाहुति-पर्यन्त होम एवं मन्त्र-तर्पण[1] करे॥ १-५॥

दुःस्वप्न-दर्शनजनित दोषका निवारण करनेके लिये 'हूं' सम्पुटित अस्त्र-मन्त्र (हूं फट् हूं) के द्वारा एक सौ आठ आहुतियाँ देकर मन्त्र-दीपन करे। वेदी और कलशके मध्यभागमें अन्तर्बलिका अनुष्ठान करके, शिष्योंके प्रवेशके लिये इष्टदेवसे आज्ञा लेकर, गुरु मण्डपसे बाहर जाय। वहाँ समय-दीक्षाकी ही भाँति मण्डलारोपण आदि करे। सम्पात-होम तथा सुषुम्णा नाड़ीरूप कुशाको शिष्यके हाथमें देने आदिसे सम्बद्ध कार्यका सम्पादन करे। फिर निवृत्तिकलाके सांनिध्यके लिये मूलमन्त्रसे तीन आहुतियाँ देकर, कुम्भस्थ शिवकी पूजा करके कलापाशमय सूत्र अर्पित करे। तदनन्तर पूजित शिष्यके ऊपरी शरीरके दक्षिणी भागमें—उसकी शिखामें उस सूत्रको बाँधे और उसे पैरके अँगूठेतक लंबा रक्खे। इस प्रकार उस पाशका निवेश करके उसमें मन-ही-मन निवृत्तिकलाकी व्याप्तिका दर्शन करे। उसमें एक सौ आठ भुवन जानने योग्य हैं॥ ६-११॥

१. कपाल, २. अज, ३. अहिर्बुध्न्य, ४. वज्रदेह, ५. प्रमर्दन, ६. विभूति, ७. अव्यय, ८. शास्ता, ९. पिनाकी, १०. त्रिदशाधिप—ये दस रुद्र पूर्व दिशामें विराजते हैं। ११. अग्निभद्र, १२. हुताश, १३. पिङ्गल, १४. खादक, १५. हर, १६. ज्वलन, १७. दहन, १८. बभ्रु, १९. भस्मान्तक, २०. क्षपान्तक—ये दस रुद्र अग्निकोणमें स्थित हैं। २१. दम्य, २२. मृत्युहर, २३. धाता, २४. विधाता, २५. कर्ता, २६. काल, २७. धर्म, २८. अधर्म, २९. संयोक्ता, ३०. वियोजक—ये दस रुद्र दक्षिण दिशामें शोभा पाते हैं। ३१. नैर्ऋत्य, ३२. मारुत, ३३. हन्ता, ३४. क्रूरदृष्टि, ३५. भयानक, ३६. ऊर्ध्वकेश, ३७. विरूपाक्ष, ३८. धूम्र, ३९. लोहित, ४०. दंष्ट्री—ये दस रुद्र नैर्ऋत्य-कोणमें स्थित हैं। ४१. बल, ४२. अतिबल, ४३. पाशहस्त, ४४. महाबल, ४५. श्वेत, ४६. जयभद्र, ४७. दीर्घबाहु, ४८. जलान्तक, ४९. वडवास्य, ५०. भीम—ये दस रुद्र वरुणदिशामें स्थित बताये गये हैं। ५१. शीघ्र, ५२. लघु, ५३. वायुवेग, ५४. सूक्ष्म, ५५. तीक्ष्ण, ५६. क्षमान्तक, ५७. पञ्चान्तक, ५८. पञ्चशिख, ५९. कपर्दी, ६०. मेघ-वाहन—ये दस रुद्र वायव्यकोणमें स्थित हैं। ६१. जटा-मुकुटधारी, ६२. नानारत्नधर, ६३. निधीश, ६४. रूपवान्, ६५. धन्य, ६६. सौम्यदेह, ६७. प्रसादकृत्, ६८. प्रकाम, ६९. लक्ष्मीवान्, ७०. कामरूप—ये दस रुद्र उत्तर दिशामें स्थित हैं। ७१. विद्याधर, ७२. ज्ञानधर, ७३. सर्वज्ञ,

---

ग्रहणं ताडनं योगं पूजातर्पणदीपनम्। बन्धनं शान्त्यतीतादेः शिवकुम्भसमर्पणम्॥
एवं कर्मक्रमः प्रोक्तः पाशबन्धे शिवेन तु। (८०८-८०९½)

'पहले तो मन्त्रोंका दीपन कहा गया है। फिर सूत्रावलम्बन, उसमें सुषुम्णा नाड़ीका संयोग, शिष्यचैतन्यका संयोजन, ग्रहण, ताडन, योग, पूजा, तर्पण, दीपन, शान्त्यतीत आदि कलाओंका बन्धन तथा शिव-कलश-समर्पण—इस प्रकार भगवान् शिवने पाशबन्ध-विषयक कर्मकाण्डके क्रमका प्रतिपादन किया है।'

१. कहीं-कहीं वह्नितर्पण पाठ भी मिलता है।

७४. वेदपारग, ७५. मातृवृत्त, ७६. पिङ्गाक्ष, ७७. भूतपाल, ७८. बलिप्रिय, ७९. सर्वविद्याविधाता, ८०. सुख-दुःखकर— ये दस रुद्र ईशानकोणमें स्थित हैं। ८१. अनन्त, ८२. पालक, ८३. धीर, ८४. पातालाधिपति, ८५. वृष, ८६. वृषधर, ८७. वीर, ८८. ग्रसन, ८९. सर्वतोमुख, ९०. लोहित—इन दस रुद्रोंकी स्थिति नीचेकी दिशा पाताल-लोकमें समझनी चाहिये। ९१. शम्भु, ९२. विभु, ९३. गणाध्यक्ष, ९४. त्र्यक्ष, ९५. त्रिदशवन्दित, ९६. संवाह, ९७. विवाह, ९८. नभ, ९९. लिप्सु, १००. विचक्षण— ये दस रुद्र ऊर्ध्व दिशामें विराजमान हैं। १०१. हूहुक, १०२. कालाग्निरुद्र, १०३. हाटक, १०४. कूष्माण्ड, १०५. सत्य, १०६. ब्रह्मा, १०७. विष्णु तथा १०८. रुद्र— ये आठ रुद्र ब्रह्माण्ड-कटाहके भीतर स्थित हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि इन्हींके नामपर एक सौ आठ भुवनोंके भी नाम हैं॥ १२–२५॥

(१) सद्यावेश्वर, (२) महातेजः, (३) योगाधिपते, (४) मुञ्च मुञ्च, (५) प्रमथ प्रमथ, (६) शर्व शर्व, (७) भव भव, (८) भवोद्भव, (९) सर्वभूतसुखप्रद, (१०) सर्वसांनिध्यकर, (११) ब्रह्मविष्णुरुद्रपर, (१२) अनर्चितानर्चित, (१३) असंस्तुतासंस्तुत, (१४) पूर्वस्थित पूर्वस्थित, (१५) साक्षिन् साक्षिन्, (१६) तुरु तुरु, (१७) पतंग पतंग, (१८) पिङ्ग पिङ्ग, (१९) ज्ञान ज्ञान, (२०) शब्द शब्द, (२१) सूक्ष्म सूक्ष्म, (२२) शिव, (२३) सर्व, (२४) सर्वद, (२५) ॐ नमो नमः, (२६) ॐ नमः, (२७) शिवाय, (२८) नमो नमः—ये अट्ठाईस पद हैं। स्कन्द! व्यापक आकाश मन है। 'ॐ नमो वौषट्'—ये अभीष्ट मन्त्रवर्ण हैं। अकार और लकार (अं लं) बीज हैं। इडा और पिङ्गला नामवाली दो नाड़ियाँ हैं। प्राण और अपान—दो वायु हैं और घ्राण तथा उपस्थ— ये दो इन्द्रियाँ हैं। गन्धको 'विषय' कहा गया है तथा इसमें गन्ध आदि पाँच गुण हैं। यह पृथ्वीतत्त्वसे सम्बन्धित है। इसका रंग पीला है। इसकी मण्डलाकृति (भूपुर) चौकोर है और चारों ओरसे वज्रसे अङ्कित है। इस पार्थिव मण्डलका विस्तार सौ कोटि योजन माना गया है। चौदह योनियोंको भी इसीके अन्तर्गत जानना चाहिये॥२६–३१॥

प्रथम छः योनियाँ मृग आदिकी हैं और आठ दूसरी देवयोनियाँ हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—मृग पहली योनि है, दूसरी पक्षी, तीसरी पशु, चौथी सर्प आदि, पाँचवीं स्थावर और छठी योनि मनुष्यकी है। आठ देवयोनियोंमें प्रथम पिशाचोंकी योनि है, दूसरी राक्षसोंकी, तीसरी यक्षोंकी, चौथी गन्धर्वोंकी, पाँचवीं इन्द्रकी, छठी सोमकी, सातवीं प्रजापतिकी और आठवीं योनि ब्रह्माकी बतायी गयी है। पार्थिव-तत्त्वपर इन आठोंका अधिकार माना गया है। लय होता है प्रकृतिमें, भोग होता है बुद्धिमें और ब्रह्मा कारण हैं। तदनन्तर जाग्रत् अवस्था-पर्यन्त समस्त भुवन आदिसे गर्भित हुई निवृत्तिकलाका ध्यान करके उसका अपने मन्त्रमें विनियोग करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ हां ह्रां हां निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् स्वाहा।' इसके बाद 'ॐ हां ह्रां ह्रीं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् स्वाहा।'—इस मन्त्रसे अङ्कुशमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक पूरक प्राणायामद्वारा उक्त कलाका आकर्षण करे। फिर 'ॐ हूं ह्रां ह्रां हां हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट्।'—इस मन्त्रसे संहार-मुद्रा एवं कुम्भक प्राणायामद्वारा उसे नाभिके नीचेके स्थानसे लेकर 'ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय नमः।'—इस मन्त्रसे उद्भव-मुद्रा एवं रेचक प्राणायामके द्वारा उसको कुण्डमें किसी आधार या आसनपर स्थापित करे। तत्पश्चात् 'ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय नमः।'—इस मन्त्रसे अर्घ्यदानपूर्वक पूजन करके इसीके अन्तमें 'स्वाहा' लगाकर तर्पण और संनिधानके उद्देश्यसे पृथक्-पृथक् तीन-तीन आहुतियाँ दे। इसके बाद 'ॐ हां ब्रह्मणे नमः।'—इस मन्त्रसे ब्रह्माका आवाहन और पूजन करके उसीके अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर तीन आहुतियोंद्वारा ब्रह्मा-जीको तृप्त करे। तदनन्तर उनसे इस प्रकार विज्ञप्तिपूर्वक प्रार्थना करे—'ब्रह्मन्! मैं इस मुमुक्षुको आपके अधिकारमें दीक्षित कर रहा हूँ। आपको सदा इसके अनुकूल रहना चाहिये'॥ ३२—३८॥

तदनन्तर रक्तवर्णा वागीश्वरीदेवीका मन-ही-मन हृदय-मन्त्रसे आवाहन करे। वे देवी इच्छा, ज्ञान और क्रिया-रूपिणी हैं। छः प्रकारके अध्वाओंकी एकमात्र कारण हैं। फिर पूर्वोक्त प्रकारसे वागीश्वरीदेवीका पूजन और तर्पण करे। साथ ही समस्त योनियोंको विक्षुब्ध करनेवाले और हृदयमें विराजमान वागीश्वरदेवका भी पूजन और तर्पण करना चाहिये। आदिमें अपने बीज और अन्तमें 'हूं फट्'से युक्त जो अस्त्र-मन्त्र है, उसीसे विधानवेत्ता गुरु शिष्यके हृदयका ताड़न करे और भावनाद्वारा उसके भीतर प्रविष्ट हो। तत्पश्चात् हृदयके भीतर अग्निकणके समान प्रकाशमान जो शिष्यका जीवचैतन्य निवृत्तिकलामें स्थित होकर पाशोंसे

आबद्ध है, उसे ज्येष्ठाद्वारा विभक्त करे। उसके विभाजनका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां हूं हः हूं फट्।' 'ॐ हां स्वाहा।' इस मन्त्रसे पूरक प्राणायाम और अङ्कुश-मुद्राद्वारा उस जीवचैतन्यको हृदयमें आकृष्ट करके, आत्म-मन्त्रसे पकड़-कर, उसे अपने आत्मामें योजित करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां हां हामात्मने नमः।' ॥ ३९—४५ ॥

फिर माता-पिताके संयोगका चिन्तन करके रेचक प्राणायामद्वारा ब्रह्मादि कारणोंका क्रमशः त्याग करते हुए उक्त जीवचैतन्यको शिवरूप अधिष्ठानमें ले जाय और गर्भा-धानके लिये उसे लेकर एक ही समय सब योनियोंमें तथा वामा उद्भव-मुद्राके द्वारा वागीश्वरी योनिमें उसे डाल दे। इसके बाद 'ॐ हां हां हामात्मने नमः।' इसी मन्त्रसे पूजन और पाँच बार तर्पण भी करे। इस जीवचैतन्यका सभी योनियोंमें हृदय-मन्त्रसे देह-साधन करे। यहाँ पुंसवन-संस्कार नहीं होता; क्योंकि स्त्री आदिके शरीरकी भी उत्पत्ति सम्भव है। इसी तरह सीमन्तोन्नयन भी नहीं हो सकता; क्योंकि दैववश अन्ध आदिके शरीरसे भी उत्पत्तिकी सम्भावना है ॥ ४६—५० ॥

शिरोमन्त्र (स्वाहा) से एक ही समय समस्त देह-धारियोंके जन्मकी भावना करे। इसी तरह शिव-मन्त्रसे भी भावना करे। कवच-मन्त्रसे भोगकी और अस्त्र-मन्त्रसे विषय और आत्मामें मोहरूप लय नामक अभेदकी भी भावना करे। तदनन्तर शिव-मन्त्रसे स्रोतोंकी शुद्धि और हृदय-मन्त्रसे तत्त्वशोधन करके गर्भाधान आदि संस्कारोंके निमित्त क्रमशः पाँच-पाँच आहुतियाँ दे। मायेय (मायाजनित), मलजनित तथा कर्मजनित आदि[1] पाश-बन्धनोंकी निवृत्तिके लिये हृदय-मन्त्रसे निष्कृति (प्रायश्चित्त अथवा शुद्धि) कर लेनेपर पीछे अग्निमें सौ आहुतियाँ दे। मलशक्तिका तिरोधान (लय) और पाशोंका वियोग सम्पादित करनेके लिये 'स्वाहान्त' अस्त्र-मन्त्रसे पाँच-पाँच आहुतियोंका हवन करे। अन्तःकरणमें स्थित मल आदि पाशका सात बार अस्त्र-मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित कटार-कला-शस्त्रसे छेदन करे। कला-शस्त्रसे छेदनका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां हां हां निवृत्तिकलापाशाय हः हूं फट्' ॥ ५१—५७ ॥

बन्धकताकी निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रसे दोनों हाथोंद्वारा मसलकर गोलाकार करके पाशको घीसे भरे हुए स्रुवमें डाल दे। फिर कलामय अस्त्रसे अथवा केवल अस्त्र-मन्त्रसे उसको जलाकर भस्म कर डाले। तदनन्तर पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये पाँच आहुतियाँ दे। आहुतिका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हः अस्त्राय हूं फट् स्वाहा।' उक्त आहुतिके पश्चात् अस्त्र-मन्त्रसे आठ आहुतियाँ देकर प्रायश्चित्त-कर्म सम्पन्न करे। उसके बाद विधाताका आवाहन करके उनका पूजन और तर्पण करे। फिर 'ॐ हां शब्दस्पर्शौ शुल्कं ब्रह्मन् गृहाण स्वाहा।' इस मन्त्रसे तीन आहुतियाँ देकर शिष्यको अधिकार अर्पित करे। उस समय ब्रह्माजीको भगवान् शिवकी यह आज्ञा सुनावे—'ब्रह्मन्! इस बालकके सम्पूर्ण पाश दग्ध हो गये हैं। अब आपको पुनः इसे बन्धनमें डालनेके लिये यहाँ नहीं रहना चाहिये' ॥ ५८—६३ ॥

—यों कहकर ब्रह्माजीको विदा कर दे और संहार-मुद्रा-द्वारा एवं कुम्भक प्राणायामपूर्वक राहुमुक्त एक देशवाले चन्द्रमण्डलके सदृश आत्माको तत्सम्बन्धी-मन्त्रका उच्चारण करते हुए दक्षिण नाड़ीद्वारा धीरे-धीरे लेकर रेचक प्राणायाम एवं 'उद्भव' नामक मुद्राके सहयोगसे पूर्वोक्त सूत्रमें योजित करे। फिर उसकी पूजा करके गुरु अर्घ्यपात्रमें स्थित अमृतोपम जलबिन्दु ले, शिष्यकी पुष्टि एवं तृप्तिके लिये उसके सिरपर रक्खे। तत्पश्चात् माता-पिताका विसर्जन करके 'वौषडन्त' अस्त्र-मन्त्रके द्वारा विधिकी पूर्तिके लिये पूर्णाहुति होम करे। ऐसा करनेसे निवृत्तिकलाकी शुद्धि होती है। पूर्णाहुतिका पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हूं हां अमुक आत्मनो निवृत्तिकलाशुद्धिरस्तु स्वाहा फट् वौषट्' ॥ ६४—६७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत निवृत्तिकला-शोधन' नामक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८४ ॥

---

१. 'आदि' पदसे यहाँ 'तिरोधान', 'शक्तिज' और 'बिन्दुज' नामक पाश समझने चाहिये।

पचासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत प्रतिष्ठाकलाके शोधनकी विधिका वर्णन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! तदनन्तर शुद्ध और अशुद्ध कलाओंका शान्त और नादान्तसंज्ञक ह्रस्व-दीर्घ-प्रयोगद्वारा संधान करे। संधानका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां ह्रां ह्रीं हां ।**' इसके बाद प्रतिष्ठाकलामें निविष्ट जल, तेज, वायु, आकाश, पाँच तन्मात्रा, दस इन्द्रिय, बुद्धि, तीनों गुण, चौबीसवाँ अहंकार और पुरुष—इन पचीस तत्त्वों तथा 'क' से लेकर 'य' तकके पचीस अक्षरोंका चिन्तन करे। प्रतिष्ठाकलामें छप्पन भुवन हैं और उनमें उन्हींके समान नामवाले उतने ही रुद्र जानने चाहिये। इनकी नामावली इस प्रकार है—॥ १—५ ॥

अमरेश, प्रभास, नैमिष, पुष्कर, आषाढ़ि, डिण्डि, भारभूति तथा लकुलीश—(यह प्रथम अष्टक कहा गया)। हरिश्चन्द्र, श्रीशैल, जल्प, आम्रातकेश्वर, महाकाल, मध्यम, केदार और भैरव—(यह द्वितीय अष्टक बताया गया।) तत्पश्चात् गया, कुरुक्षेत्र, नाल, कनखल, विमल, अट्टहास, महेन्द्र और भीम—(यह तृतीय अष्टक कहा गया)। वस्त्रापद, रुद्रकोटि, अविमुक्त, महालय, गोकर्ण, भद्रकर्ण, स्वर्णाक्ष और स्थाणु—(यह चौथा अष्टक बताया गया)। अजेश, सर्वज्ञ, भास्वर, तदनन्तर सुबाहु, मन्त्ररूपी, विशाल, जटिल तथा रौद्र—(यह पाँचवाँ अष्टक हुआ)। पिङ्गलाक्ष, कालदंष्ट्री, विधुर, घोर, प्राजापत्य, हुताशन, कालरूपी तथा कालकर्ण—(यह छठा अष्टक कहा गया)। भयानक, पतङ्ग, पिङ्गल, हर, धाता, शङ्कुकर्ण, श्रीकण्ठ तथा चन्द्रमौलि (यह सातवाँ अष्टक बताया गया)। ये छप्पन रुद्र छप्पन भुवनोंमें व्याप्त हैं। अब बत्तीस पद बताये जाते हैं ॥ ६—१३ ॥

व्यापिन्, अरूपिन्, प्रथम, तेजः, ज्योतिः, अरूप, पुरुष, अनग्ने, अधूम, अभस्मन्, अनादे, नाना नाना, धूधू धूधू, ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, अनिधन, निधन, निधनोद्भव, शिव, शर्व, परमात्मन्, महेश्वर, महादेव, सद्भाव, ईश्वर, महातेजा, योगाधिपते, मुञ्च, प्रमथ, सर्व, सर्वसर्व—ये बत्तीस पद हैं। दो बीज, तीन मन्त्र—वामदेव, शिर, शिखा, गान्धारी और सुषुम्णा—दो नाड़ियाँ, समान और उदान नामक दो प्राणवायु, रसना और पायु—दो इन्द्रियाँ, रस नामक विषय, रूप, शब्द, स्पर्श तथा रस—ये चार गुण, कमलसे अङ्कित श्वेत अर्धचन्द्राकार मण्डल, सुषुप्ति अवस्था तथा प्रतिष्ठामें कारणभूत भगवान् विष्णु—इस प्रकार भुवन आदि सब तत्त्वोंका प्रतिष्ठाके भीतर चिन्तन करके प्रतिष्ठाकला-सम्बन्धी मन्त्रसे शिष्यके शरीरमें भावनाद्वारा प्रवेश करके उसे उस कलापाशसे मुक्त करे ॥ १४—१८ ॥

'**ॐ हां ह्रीं हां प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट् स्वाहा।**'—इस स्वाहान्त-मन्त्रसे ही पूरक प्राणायाम तथा अङ्कुशमुद्राद्वारा उक्त कलापाशका आकर्षण करे। तत्पश्चात् '**ॐ हूं हां ह्रीं हां हूं प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट्।**'—इस मन्त्रसे संहार-मुद्रा और कुम्भक प्राणायामद्वारा उसे हृदयके नीचे नाड़ीसूत्रसे लेकर '**ॐ हूं ह्रीं हां प्रतिष्ठाकलापाशाय नमः।**'—इस मन्त्रसे उद्भव-मुद्रा तथा रेचक प्राणायामद्वारा कुण्डमें स्थापित करे। तदनन्तर '**ॐ हां हां ह्रीं हां प्रतिष्ठाकलाद्वाराय नमः।**'—इस मन्त्रसे अर्घ्य दे, पूजन करके स्वाहान्त मन्त्र-द्वारा तीन-तीन आहुतियाँ देते हुए संतर्पण और संनिधापन करे। इसके बाद '**ॐ हां विष्णवे नमः।**'—इस मन्त्रसे विष्णुका आवाहन, पूजन और संतर्पण करके निम्नाङ्कित प्रार्थना करे—'विष्णो! आपके अधिकारमें मैं मुमुक्षु शिष्य-को दीक्षा दे रहा हूँ। आप सदा अनुकूल रहें।' इस प्रकार विष्णुभगवान्‌से निवेदन करे। तत्पश्चात् वागीश्वरी देवी और वागीश्वर देवताका पूर्ववत् आवाहन, पूजन और तर्पण करके शिष्यकी छातीमें ताड़न करे। ताड़नका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां हं हः हूं फट्।**' इसी मन्त्रसे शिष्यके हृदयमें प्रवेश करके उसके पाशबद्ध चैतन्यको अस्त्र-मन्त्र एवं ज्येष्ठ अङ्कुशमुद्राद्वारा उस पाशसे पृथक् करे। यथा—'**ॐ हां हं हः फट्।**' उक्त मन्त्रके ही अन्तमें 'नमः स्वाहा' लगाकर उससे सम्पुटित मन्त्रद्वारा जीवचैतन्यको खींचे तथा नमस्कारान्त आत्ममन्त्रसे उसको अपने आत्मामें नियोजित करे। आत्मामें नियोजनका मन्त्र यों है—'**ॐ हां हां हामात्मने नमः।**' ॥ १९—२६ ॥

इसके बाद पूर्ववत् उस जीवचैतन्यके पितासे संयुक्त होनेकी भावना करके वामा उद्भव-मुद्राद्वारा उसे देवीके गर्भमें स्थापित करे। साथ ही इस मन्त्रका उच्चारण करे—'**ॐ हां**

हां हामात्मने नमः ।' देहोत्पत्तिके लिये हृदय-मन्त्रसे पाँच बार और जीवात्माकी स्थितिके लिये शिरोमन्त्रसे पाँच बार आहुति दे । अधिकार-प्राप्तिके लिये शिखा-मन्त्रसे, भोग-सिद्धिके लिये कवच-मन्त्रसे, लयके लिये अस्त्र-मन्त्रसे, स्रोतः-सिद्धिके लिये शिव-मन्त्रसे तथा तत्त्वशुद्धिके लिये हृदय-मन्त्रसे इसी तरह पाँच-पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये । इसके बाद पूर्ववत् गर्भाधान आदि संस्कार करे । पाशकी शिथिलता और निष्कृति (प्रायश्चित्त) के लिये शिरोमन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे । मलशक्तिके तिरोधान (निवारण) के लिये स्वाहान्त अस्त्र-मन्त्रसे पाँच बार हवन करे ॥ २७—३० ॥

इस प्रकार पाश-वियोग होनेपर भी सात बार अस्त्र-मन्त्रके जपपूर्वक कलाबीजसे युक्त अस्त्र-मन्त्ररूपी कटारसे उस कलापाशको काट डाले । वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट् ।' तदनन्तर पाश-शस्त्रसे उस पाशको मसलकर वर्तुलाकार बनाकर पूर्ववत् घृतपूर्ण स्रुवामें रख दे और कला-शस्त्रसे ही उसकी आहुति दे दे । इसके बाद पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रसे पाँच आहुतियाँ दे और प्रायश्चित्त-निवारणके लिये फिर आठ आहुतियोंका हवन करे । आहुतिके लिये अस्त्र-मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हः अस्त्राय हुं फट् ।' ॥ ३१—३५ ॥

इसके बाद हृदय-मन्त्रसे भगवान् हृषीकेशका आवाहन करके पूर्वोक्त विधिसे उनका पूजन और तर्पण करनेके पश्चात् अधिकार-समर्पण करे । इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां विष्णो रसं शुल्कं गृहाण स्वाहा ।' इसके बाद उन्हें भगवान् शिवकी आज्ञा इस प्रकार सुनावे—'हरे ! इस पशुका पाश सम्पूर्णतः दग्ध हो चुका है । अब आपको इसके लिये बन्धनकारक होकर नहीं रहना चाहिये ।' शिवाज्ञा सुनानेके बाद रौद्री नाड़ीद्वारा गोविन्दका विसर्जन करके राहुमुक्त आधे भागवाले चन्द्रमण्डलके समान आत्माको नियोजित करे—संहार-मुद्राद्वारा उसे आत्मस्थ करके उद्भव-मुद्राद्वारा सूत्रमें उसकी संयोजना करे । तत्पश्चात् पूर्ववत् जलबिन्दु-सदृश उस आत्माको शिष्यके सिरपर स्थापित करे । इससे उसका आप्यायन होता है । फिर अग्निके पिता-माताका पुष्प आदिसे पूजन एवं विसर्जन करके विधिकी पूर्तिके लिये विधानपूर्वक पूर्णाहुति प्रदान करे । ऐसा करनेसे प्रतिष्ठा-कलाका भी शोधन सम्पन्न हो जाता है ॥ ३६—४१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत प्रतिष्ठाकलाके शोधनकी विधिका वर्णन' नामक पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

छियासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत विद्याकलाका शोधन

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! पूर्ववर्तिनी कला-प्रतिष्ठाके साथ विद्याकलाका संधान करे तथा पूर्ववत् उसमें तत्त्व-वर्ण आदिका चिन्तन भी करे । उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां हीं हूं हां ।'—यह संधान-मन्त्र है । राग, शुद्ध विद्या, नियति, कला, काल, माया तथा अविद्या—ये सात तत्त्व तथा र, ल, व, श, ष, स—ये छः वर्ण विद्याकलाके अन्तर्गत बताये गये हैं । प्रणव आदि इक्कीस पद भी उसीके अन्तर्गत हैं ।

'ॐ नमः शिवाय सर्वप्रभवे शिवाय ईशानमूर्ध्ने तत्पुरुषवक्त्राय अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजात-मूर्तये ॐ नमो नमः गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे अनिधनाय सर्वयोगाधिकृताय सर्वयोगाधिपाय ज्योतीरूपाय परमेश्वराय अचेतन अचेतन व्योमन् व्योमन् ।'

—ये इक्कीस पद हैं ॥ १–५ ॥

अब रुद्रों और भुवनोंका स्वरूप बताया जाता है—प्रमथ, वामदेव, सर्वदेवोद्भव, भवोद्भव, वज्रदेह, प्रभु, धाता, क्रम, विक्रम, सुप्रभ, बुद्ध, प्रशान्तनामा, ईशान, अक्षर, शिव, सशिव, बभ्रु, अक्षय, शम्भु, अदृष्टरूपनामा, रूपवर्धन, मनोन्मन, महावीर, चित्राङ्ग तथा कल्याण—ये पचीस भुवन एवं रुद्र जानने चाहिये ॥ ६–९ ॥

विद्याकलामें अघोर-मन्त्र है, 'म' और 'र' बीज हैं, पूषा और हस्तिजिह्वा—दो नाड़ियाँ हैं, व्यान और नाद—ये दो प्राणवायु हैं । एकमात्र रूप ही विषय है । पैर और नेत्र दो इन्द्रियाँ हैं । शब्द, स्पर्श तथा रूप—ये तीन गुण कहे गये हैं । सुषुप्ति अवस्था है और रुद्रदेव कारण हैं । भुवन आदि समस्त वस्तुओंको भावनाद्वारा विद्याके

अन्तर्गत देखे। इसके लिये संधान-मन्त्र है—'ॐ हूं हैं हां।' तत्पश्चात् रक्तवर्ण एवं स्वस्तिकके चिह्नसे अङ्कित त्रिकोणाकार मण्डलका चिन्तन करे। शिष्यके वक्षमें ताडन, कलापाशका छेदन, शिष्यके हृदयमें प्रवेश, उसके जीव-चैतन्यका पाश-बन्धनसे वियोजन तथा हृदयप्रदेशसे जीवचैतन्य एवं विद्याकलाका आकर्षण और ग्रहण करे॥ १०–१३॥

जीवचैतन्यका अपने आत्मामें आरोपण करके कला-पाशका संग्रहण एवं कुण्डमें स्थापन भी पूर्वोक्त पद्धतिसे करे। कारणरूप रुद्रदेवताका आवाहन-पूजन आदि करके शिष्यके प्रति बन्धनकारी न होनेके लिये उनसे प्रार्थना करे। पिता-माताका आवाहन आदि करके शिशु (शिष्य) के हृदयमें ताडन करे। पूर्वोक्त विधिके अनुसार पहले अस्त्र-मन्त्रद्वारा हृदयमें प्रवेश करके जीवचैतन्यको कलापाशसे विलग करे। फिर उसका आकर्षण एवं ग्रहण करके अपने आत्मामें संयोजन करे। फिर वामा उद्भव-मुद्राद्वारा वागीश्वरीदेवीके गर्भमें उसके स्थापित होनेकी भावना करे। इसके बाद देह-सम्पादन करे। जन्म, अधिकार, भोग, लय, स्रोतःशुद्धि, तत्त्वशुद्धि, निःशेष मलकर्मादिके निवारण, पाश-बन्धनकी निवृत्ति एवं निष्कृतिके हेतु स्वाहान्त अस्त्र-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे पाश-बन्धनको शिथिल करना, मलशक्तिका तिरोधान करना, कलापाशका छेदन, मर्दन, वर्तुलीकरण, दाह, अङ्कुराभाव-सम्पादन तथा प्रायश्चित्त-कर्म पूर्वोक्त रीतिसे करे। इसके बाद रुद्रदेवका आवाहन, पूजन एवं रूप और गन्धका समर्पण करे। उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां रूपगन्धौ शुल्कं रुद्र गृहाण स्वाहा।'॥ १४–१९॥

शंकरजीकी आज्ञा सुनाकर कारणस्वरूप रुद्रदेवका विसर्जन करे। इसके बाद जीवचैतन्यका आत्मामें स्थापन करके उसे पाशसूत्रमें निवेशित करे। फिर जलबिन्दु-स्वरूप उस चैतन्यका शिष्यके सिरपर न्यास करके माता-पिताका विसर्जन करे। तत्पश्चात् समस्त विधिकी पूर्ति करनेवाली पूर्णाहुतिका विधिवत् हवन करे॥ २०-२१॥

विद्यामें ताडन आदि कार्य पूर्वोक्त विधिसे ही करना चाहिये। अन्तर इतना ही है कि उसमें सर्वत्र अपने बीजका प्रयोग होगा। यह सब विधान पूर्ण करनेसे विद्या-कलाका शोधन होता है॥ २२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत विद्याकलाका शोधन' नामक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८६॥

सतासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत शान्तिकलाका शोधन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! पूर्वोक्त मार्गसे विद्याकलाका शान्तिकलाके साथ विधिपूर्वक संधान करे। उसके लिये मन्त्र है—'ॐ हां हूं हां।' शान्तिकलामें दो तत्त्व लीन हैं। वे दोनों हैं—ईश्वर और सदाशिव। हकार और क्षकार—ये दो वर्ण कहे गये हैं। अब भुवनोंके साथ उन्हींके समान नामवाले रुद्रोंका परिचय दिया जा रहा है। उनकी नामावली इस प्रकार है—प्रभव, समय, क्षुद्र, विमल, शिव, घन, निरञ्जन, अङ्गार, सुशिरा, दीप्तकारण, त्रिदशेश्वर, कालदेव, सूक्ष्म और अम्बुजेश्वर (या भुजेश्वर)—ये चौदह रुद्र शान्तिकलामें प्रतिष्ठित हैं। **व्योमव्यापिने, व्योमरूपाय, सर्वव्यापिने, शिवाय, अनन्ताय, अनाथाय, अनाश्रिताय, ध्रुवाय, शाश्वताय, योगपीठसंस्थिताय, नित्ययोगिने, ध्यानाहराय**—ये बारह पद हैं॥ १–५॥

पुरुष और कवच—ये दो मन्त्र हैं; बिन्दु और अकार—ये दो बीज हैं; अलम्बुषा और यशा—ये दो नाड़ियाँ हैं; कृकर और कूर्म—ये दो प्राणवायु हैं; त्वचा और हाथ—दो इन्द्रियाँ हैं; शान्तिकलाका विषय स्पर्श माना गया है; स्पर्श और शब्द—ये दो गुण हैं और एक ही कारण है—ईश्वर। इसकी तुर्यावस्था है। इस प्रकार भुवन आदि समस्त तत्त्वोंकी शान्तिकलामें स्थितिका चिन्तन करके पूर्ववत् ताडन, छेदन, हृदय-प्रवेश, चैतन्यका वियोजन, आकर्षण और ग्रहण करे। फिर शान्तिके

मुखसूत्रसे चैतन्यका आत्मामें आरोपण करके, कलाका ग्रहण कर उसे कुण्डमें स्थापित कर दे। तदनन्तर ईशसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे ईश ! मैं इस मुमुक्षुको तुम्हारे अधिकारमें दीक्षित कर रहा हूँ। तुम्हें इसके अनुकूल रहना चाहिये' ॥ ६—१० ॥

फिर माता-पिताका आवाहन आदि और शिष्यका ताड़न आदि करके चैतन्यको लेकर विधिवत् आत्मामें योजित करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् माता-पिताके संयोगकी भावना करके उद्भवा नाड़ीद्वारा उस चैतन्यका हृदय-मन्त्रसे सम्पुटित आत्मबीजके उच्चारणपूर्वक देवीके गर्भमें नियोजन करे। देहोत्पत्तिके लिये हृदय-मन्त्रसे, जन्मके हेतु शिरोमन्त्रसे, अधिकार-सिद्धिके लिये शिखा-मन्त्रसे, भोगके निमित्त कवच-मन्त्रसे, लयके लिये शस्त्र-मन्त्रसे, स्रोतःशुद्धिके लिये शिव-मन्त्रसे तथा तत्त्वशोधनके लिये हृदय-मन्त्रसे पाँच-पाँच आहुतियाँ दे। इसी तरह पूर्ववत् गर्भाधान आदि संस्कार भी करे। कवच-मन्त्रसे पाशकी शिथिलता एवं निष्कृतिके लिये सौ आहुतियाँ दे। मलशक्ति-तिरोधानके उद्देश्यसे शस्त्र-मन्त्रद्वारा पाँच आहुतियोंका हवन करे। इसी तरह पाश-वियोगके निमित्त भी पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये। तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रका सात बार जप करके बीज-युक्त अस्त्र-मन्त्ररूपी कटारसे पाशका छेदन करे। उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हौं शान्तिकलापाशाय नमः हः हूं फट्** ।' ॥ ११—१७ ॥

इसके बाद पाशका विमर्दन तथा वर्तुलीकरण पूर्ववत् अस्त्र-मन्त्रसे करके उसे घृतसे भरे हुए स्रुवेमें रख दे और कला-सम्बन्धी अस्त्र-मन्त्रद्वारा उसका हवन करे। फिर पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रसे पाँच आहुतियाँ दे और प्रायश्चित्त-निवारणके लिये आठ आहुतियोंका हवन करे। मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हः अस्त्राय हूं फट्** ।' फिर हृदय-मन्त्रसे ईश्वरका आवाहन करके पूजन-तर्पण करनेके पश्चात् उन्हें विधिपूर्वक शुल्क समर्पण करे। मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ हां ईश्वर बुद्ध्यहंकारौ शुल्कं गृहाण स्वाहा** ।' इसके बाद ईश्वरको शिवकी यह आज्ञा सुनाये-'ईश्वर ! इस पशुके सारे पाश दग्ध हो गये हैं। अब तुम्हें इसके लिये बन्धनकारक होकर नहीं रहना चाहिये' ॥ १८—२३ ॥

—यों कहकर ईश्वर देवका विसर्जन करे और रौद्रीशक्तिमें आत्माको नियोजित करे। जैसे ईशने चन्द्रमाको अपने मस्तकपर आश्रय दे रक्खा है, उसी प्रकार शिष्यके जीवात्माको गुरु अपने आत्मामें नियोजित करे। फिर शुद्धा उद्भव-मुद्राके द्वारा इसकी सूत्रमें संयोजना करे और मूल-मन्त्रसे शिष्यके मस्तकपर अमरबिन्दुस्वरूप उस चैतन्य-सूत्रको रक्खे; तदनन्तर पुष्प आदिसे पूजित अग्निके पिता-माताका विसर्जन करके विधिज्ञ पुरुष समस्त विधिकी पूर्ति करनेवाली पूर्णाहुति प्रदान करे। इसमें भी पूर्ववत् ताड़न आदि करना चाहिये। विशेषतः कला-सम्बन्धी अपने बीजका प्रयोग होना चाहिये। इस प्रकार शान्तिकला-की शुद्धि बतायी गयी ॥ २४—२७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत शान्तिकलाका शोधन' नामक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अठासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाकी अवशिष्ट विधिका वर्णन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! विशुद्ध शान्ति-कलाके साथ शान्त्यतीतकलाका संधान करे। उसमें भी पूर्ववत् तत्त्व और वर्ण आदिका चिन्तन करना चाहिये, जैसा कि नीचे बताया जाता है। संधानकालमें इस मन्त्रका उच्चारण करे—'**ॐ हां हौं हूं हां** ।' शान्त्यतीतकलामें शिव और शक्ति—ये दो तत्त्व हैं। आठ भुवन हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—इन्धक, दीपक, रोचक, मोचक, ऊर्ध्वगामी, व्योमरूप, अनाथ और आठवाँ अनाश्रित। ॐकार पद है, ईशान मन्त्र है, अकारसे लेकर विसर्गतक सोलह अक्षर हैं, नाद और हकार—ये दो बीज हैं, कुहू और शङ्खिनी—दो नाड़ियाँ हैं, देवदत्त और धनञ्जय—दो प्राणवायु हैं, वाक् और श्रोत्र—दो इन्द्रियाँ हैं, शब्द विषय है, गुण भी वही है और अवस्था पाँचवीं तुरीयातीता है ॥ १—६ ॥

सदाशिव देव ही एकमात्र हेतु हैं। इस तत्त्वादि-संचयकी शान्त्यतीतकलामें स्थिति है, ऐसा चिन्तन करके ताड़न आदि कर्म करे। 'फडन्त' मन्त्रसे कला-पाशका ताड़न और बोधन करके नमस्कारान्त-मन्त्रसे शिष्यके अन्तःकरणमें प्रवेश करे। इसके बाद फडन्त-मन्त्रसे जीवचैतन्यको पाशसे वियुक्त करे। 'वषट्' और 'नमः' पदोंसे सम्पुटित, स्वाहान्त-मन्त्रका उच्चारण करके, अङ्कुश-मुद्रा तथा पूरक प्राणायामद्वारा पाशका मस्तकसूत्रसे आकर्षण करके, कुम्भक प्राणायामद्वारा उसे लेकर, रेचक प्राणायाम एवं उद्भव-मुद्राद्वारा हृदय-मन्त्रसे सम्पुटित नमस्कारान्त-मन्त्रसे उसका अग्निकुण्डमें स्थापन करे। इसका पूजन आदि सब कार्य निवृत्तिकलाके समान ही सम्पन्न करे। सदाशिवका आवाहन, पूजन और तर्पण करके उनसे भक्तिपूर्वक इस प्रकार निवेदन करे—"भगवन्! इस 'साद' संज्ञक मुमुक्षुको तुम्हारे अधिकारमें दीक्षित करता हूँ। तुम्हें सदा इसके अनुकूल रहना चाहिये" ॥ ७—१२ ॥

फिर माता-पिताका आवाहन, पूजन एवं तर्पण-संनिधान करके हृदय-सम्पुटित आत्मबीजसे शिष्यके वक्षःस्थलमें ताड़न करे। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां हां हां हः हूं फट्।' इसी मन्त्रसे शिष्यके हृदयमें प्रवेश करके अस्त्र-मन्त्रद्वारा पाशयुक्त चैतन्यका उस पाशसे वियोजन करे। फिर ज्येष्ठा अङ्कुश-मुद्राद्वारा सम्पुटित उसी स्वाहान्त-मन्त्रसे उसका आकर्षण और ग्रहण करके 'नमोऽन्त' मन्त्रसे उसे अपने आत्मामें नियोजित करे। आकर्षण-मन्त्र तो[1] वही 'ॐ हां हां हां हः हूं फट्।' है, परंतु आत्म-नियोजनका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां हां हामात्मने नमः।' पूर्ववत् वामा उद्भव-मुद्राद्वारा माता-पिताके संयोगकी भावना करके इसी मन्त्रसे उस जीवचैतन्यका देवीके गर्भमें स्थापन करे। तदनन्तर पूर्वोक्त विधिसे गर्भाधान आदि सब संस्कार करे। पाशबन्धनकी शिथिलताके लिये प्रायश्चित्तके रूपमें मूलमन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे (अथवा मूलमन्त्रका सौ बार जप करे) ॥ १३—२० ॥

मलशक्तिके तिरोधान और पाशोंके वियोजनके निमित्त अस्त्र-मन्त्रसे पूर्ववत् पाँच-पाँच आहुतियाँ दे। कला-सम्बन्धी बीजसे युक्त आयुध-मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित की हुई कटाररूप अस्त्रसे पाशोंका छेदन करे। उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हः हां शान्त्यतीतकलापाशाय हूं फट्।' तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे पूर्ववत् उन पाशोंको मसलकर, वर्तुलाकार बनाकर, घीसे भरे हुए स्रुवमें रख दे और कला-सम्बन्धी अस्त्र-मन्त्रके द्वारा ही उसका हवन करे। फिर पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रसे पाँच और प्रायश्चित्त-निषेधके लिये आठ आहुतियाँ दे। इसके बाद हृदय-मन्त्रसे सदाशिवका आवाहन एवं पूजन और तर्पण करके पूर्वोक्त विधिसे अधिकार समर्पण करे। उसका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां सदाशिव मनोबिन्दुं शुल्कं गृहाण स्वाहा।' ॥ २१—२७ ॥

तत्पश्चात् उन्हें भी निम्नाङ्कित रूपसे शिवकी आज्ञा सुनावे—"सदाशिव! इस पशुके सारे पाप दग्ध हो गये हैं। अतः अब आपको इसे बन्धनमें डालनेके लिये यहाँ नहीं ठहरना चाहिये।" मूलमन्त्रसे पूर्णाहुति दे और सदाशिवका विसर्जन करे। तत्पश्चात् गुरु शिष्यके शारत्कालिक चन्द्रमाके समान उदित विशुद्ध जीवात्माको रौद्री संहार मुद्राके द्वारा अपने आत्मामें संयोजित करके आत्मस्थ कर ले। शिष्यके शरीरस्थ जीवात्माका उद्भव-मुद्राद्वारा उत्थान या उद्धार करके उसके पोषणके लिये शिष्यके मस्तकपर अर्घ्य-जलकी एक बूँद स्थापित करे। इसके बाद परम भक्तिभावसे क्षमा-प्रार्थना करके माता-पिताका विसर्जन करे। विसर्जनके समय इस प्रकार कहे—"मैंने शिष्यको दीक्षा देनेके लिये जो आप दोनों माता-पिताको खेद पहुँचाया है, उसके लिये मुझे कृपापूर्वक क्षमा-दान देकर आप दोनों अपने स्थानको पधारें" ॥ २८—३२ ॥

वषट्-मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर्तरी (कटार) द्वारा शिवास्त्रसे शिष्यकी चार अङ्गुल बड़ी बोधशक्तिस्वरूपिणी शिखाका छेदन करे। छेदनके मन्त्र इस प्रकार हैं—'ॐ हूं शिखायै हूं फट्।' 'ॐ अस्त्राय हूं फट्।' उसे घृतपूर्ण स्रुक्में रखकर 'हूं फट्' अन्तवाले अस्त्र-मन्त्रसे अग्निमें होम दे। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ॐ हः अस्त्राय हूं फट्।' इसके बाद स्रुक् और स्रुवाको धोकर शिष्यको स्नान करवानेके पश्चात् स्वयं भी आचमन करे और योजनिका अथवा योजना-स्थानके लिये अस्त्र-मन्त्रसे अपने-आपका ताड़न करे। तत्पश्चात् वियोजन, आकर्षण और संग्रहण करके पूर्ववत् द्वादशान्त[2]

१. कहीं-कहीं 'हौं' पाठ है।

२. 'अङ्गुलविस्तृतस्य ललाटस्योर्ध्वप्रदेशो द्वादशान्तपदेनोच्यते।' अर्थात् 'अङ्गुल विस्तारवाले ललाटका ऊर्ध्वदेश 'द्वादशान्त' पदसे कथित होता है।' ('नित्याषोडशिकार्णव' ८। ५५ पर भास्कररायकी सेतुबन्ध-व्याख्या)

(ललाटके ऊपरी भाग) से जीवचैतन्यको ले आकर अपने हृदय-कमलकी कर्णिकामें स्थापित करे ॥ ३३–३८ ॥

स्रुकको घीसे भरकर और उसके ऊपर अधोमुख स्रुव रखकर शङ्खतुल्य मुद्राद्वारा नित्योक्त विधिसे हाथमें ले। तत्पश्चात् नादोच्चारणके अनुसार मस्तक और ग्रीवा फैलाकर दृष्टिको समभावसे रखते हुए स्थिर, शान्त एवं परमभावमें सम्पन्न हो कलश, मण्डल, अग्नि, शिष्य तथा अपने आत्मासे भी छः प्रकारके अध्वाको ग्रहण करके, स्रुक्के अग्रभागमें प्राणमयी नाड़ीके भीतर स्थापित करके, उसी भावसे उसका चिन्तन करे। इस प्रकार चिन्तन करके क्रमशः सात प्रकारके विषुवका ध्यान करे। उन सातोंका परिचय इस प्रकार है–पहला 'प्राणसंयोगस्वरूप' है और दूसरा हृदयादि-क्रमसे उच्चारित मन्त्रसंज्ञक है। तीसरा सुषुम्णामें अनुगत 'नाद या नाड़ी'रूप है। नाड़ी-सम्बद्ध नादका जो शक्तिमें लय होना है, उसको 'प्रशान्त-विषुव' कहते हैं। शक्तिमें लीन हुए नादका पुनः उज्जीवन होकर जो ऊपरको सञ्चार और समनामें लय होता है, उसे 'शक्ति' नामक विषुव कहा गया है। सम्पूर्ण नादका शक्तिकी सीमाको लाँघकर उन्मनीमें लीन होना 'काल-विषुव' कहलाता है। यह छठा है। यह शक्तिसे अतीत होता है। सातवाँ विषुव है–'तत्त्वसंज्ञक'। यही योजना स्थान है ॥३९–४५½॥

पूरक और कुम्भक करके मुँहको थोड़ा खोलकर धीरे-धीरे मूल-मन्त्रका उच्चारण करते हुए भावनाद्वारा शिष्यात्माका लय करे। उसका क्रम यों है–विद्युत्-सदृश छहों अध्वाओंके प्राणस्वरूपमें 'फट्कार'का चिन्तन करे। नाभिसे ऊपर एक बित्तेका स्थान 'फट्कार' है, जो प्राणका स्थान माना गया है। उससे ऊपर हृदयमें चार अङ्गुलकी दूरीपर 'अकार'का चिन्तन करना चाहिये (यह ब्रह्माका बोधक है)। उससे आठ अङ्गुल ऊपर कण्ठमें विष्णुका वाचक 'उकार' है, उससे भी चार अङ्गुल ऊँचे तालुस्थानमें रुद्रवाचक 'मकार'की स्थिति है। इसी प्रकार ललाटके मध्यभागमें ईश्वरवाचक 'बिन्दुका' स्थान है। ललाटसे ऊपर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त नादमय सदाशिव देव विराजमान हैं। उनके साथ ही वहाँ उनकी शक्ति भी विद्यमान है। उपर्युक्त तत्त्वोंका क्रमशः चिन्तन और त्याग करते हुए अन्ततोगत्वा शक्तिको भी त्याग दे। वहाँ दिव्य पिपीलिका-स्पर्शका अनुभव करके ललाटके ऊपरके प्रदेशमें परम तत्त्व, परमानन्दस्वरूप, भावशून्य, मनोऽतीत, नित्य गुणोदयशाली शिवतत्त्वमें शिष्यात्माके विलीन होनेकी भावना करे ॥ ॥ ४६–५२½ ॥

परम शिवमें योजनिकाकी स्थिरताके लिये "ॐ नमः शिवाय वौषट्।"–इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए अग्निकी ज्वालामें घीकी धारा छोड़ता रहे। फिर विधिपूर्वक पूर्णाहुति देकर गुणापादन करे। उसकी विधि इस प्रकार है। निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़कर अग्निमें आहुतियाँ दे

'ॐ हां आत्मन् सर्वज्ञो भव स्वाहा।' 'ॐ हीं आत्मन् नित्यतृप्तो भव स्वाहा।' 'ॐ हूं आत्मन् अनादिबोधो भव स्वाहा।' 'ॐ हैं आत्मन् स्वतन्त्रो भव स्वाहा।' 'ॐ हौं आत्मन् अलुप्तशक्तिर्भव स्वाहा।' 'ॐ हः आत्मन् अनन्तशक्तिर्भव स्वाहा।'

इस प्रकार छः गुणोंसे सम्पन्न आत्माको अविनाशी परमशिवसे लेकर विधिवत् भावनापूर्वक शिष्यके शरीरमें नियोजित करे। तीव्र और मन्द शक्तिपातजनित श्रमकी शान्तिके लिये शिष्यके मस्तकपर न्यासपूर्वक अमृतबिन्दु अर्पित करे ॥ ५३–५७ ॥

ईशान-कलश आदिके रूपमें पूजित शिवस्वरूप कलशोंको नमस्कार करके दक्षिणमण्डलमें शिष्यको अपने दाहिने उत्तराभिमुख बिठावे और देवेश्वर शिवसे प्रार्थना करे–"प्रभो ! मेरी मूर्तिमें स्थित हुए इस जीवको आपने ही अनुगृहीत किया है; अतः नाथ ! देवता, अग्नि तथा गुरुमें इसकी भक्ति बढ़ाइये" ॥ ५८–५९ ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके देवेश्वर शिवको प्रणाम करनेके अनन्तर गुरु स्वयं शिष्यको आदरपूर्वक यह आशीर्वाद दे कि 'तुम्हारा कल्याण हो'। इसके बाद भगवान् शिवको उत्तम भक्तिभावसे आठ फूल चढ़ाकर शिवकलशके जलसे शिष्यको स्नान करावे और यज्ञका विसर्जन करे ॥ ६०-६१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाका वर्णन' नामक अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

नवासीवाँ अध्याय

एकतत्त्व-दीक्षाकी विधि*

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! अब लघु होनेके कारण एकतात्त्विकी-दीक्षाका उपदेश दिया जाता है। यथावसर यथोचित रीतिसे स्वकीय मन्त्रद्वारा सूत्रबन्ध आदि कर्म करे। तत्पश्चात् काल, अग्नि आदिसे लेकर शिव-पर्यन्त समस्त तत्त्वोंका प्रविभावन (चिन्तन) करे। शिवतत्त्वमें अन्य सब तत्त्व धागेमें मनकोंकी भाँति पिरोये हुए हैं। शिव-तत्त्व आदिका आवाहन करके गर्भाधान आदि संस्कारोंका पूर्ववत् सम्पादन करे; किंतु मूलमन्त्रसे सर्वशुल्क समर्पण करे। इसके बाद तत्त्वसमूहोंसे गर्भित पूर्णाहुति प्रदान करे। उस एक ही आहुतिसे शिष्य निर्वाण प्राप्त कर लेता है ॥ १-४ ॥

शिवमें नियोजन तथा स्थिरताका आपादन करनेके लिये दूसरी पूर्णाहुति भी देनी चाहिये। उसे देकर शिवकलशके जलसे शिष्यका अभिषेक करे ॥ ५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'एकतत्त्व-दीक्षाविधिका वर्णन' नामक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

नब्बेवाँ अध्याय

अभिषेक आदिकी विधिका वर्णन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! शिवका पूजन करके गुरु शिष्य आदिका अभिषेक करे। इससे शिष्यको श्रीकी प्राप्ति होती है। ईशान आदि आठ दिशाओंमें आठ और मध्यमें एक—इस प्रकार नौ कलश स्थापित करे। उन आठ कलशोंमें क्रमशः क्षारोद, क्षीरोद, दध्युदक, घृतोद, इक्षुरसोद, सुरोद, स्वादूदक तथा गर्भोद—इन आठ समुद्रोंका आवाहन करे। इसी तरह क्रमानुसार उनमें आठ विद्येश्वरोंका भी स्थापन करे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. शिखण्डी, २. श्रीकण्ठ, ३. त्रिमूर्ति, ४. एकरुद्र, ५. एकनेत्र, ६ शिवोत्तम, ७. सूक्ष्म और ८. अनन्तरुद्र ॥ १-४ ॥

मध्यवर्ती कलशमें शिव, समुद्र तथा शिव-मन्त्रकी स्थापना करे। यागमण्डपकी दिशाके स्वामीके लिये रचित स्नानमण्डपमें दो हाथ लंबी और आठ अङ्गुल ऊँची एक वेदी बनावे। उसपर कमल आदिका आसन बिछा दे और उसके ऊपर आसनस्वरूप अनन्तका न्यास करके शिष्यको पूर्वाभिमुख बिठाकर सकलीकरणपूर्वक पूजन करे। काञ्जी, भात, मिट्टी, भस्म, दूर्वा, गोबरके गोले, सरसों, दही और जल—इन सबके द्वारा उसके शरीरको मलकर क्षारोदक आदिके क्रमसे नमस्कारसहित विद्येश्वरोंके नाम-मन्त्रोंद्वारा पूर्वोक्त कलशोंके जलसे शिष्यको स्नान करावे और शिष्य मन-ही-मन यह धारणा करे कि 'मुझे अमृतसे नहलाया जा रहा है' ॥ ५-८½ ॥

तत्पश्चात् उसे दो श्वेत वस्त्र पहनाकर शिवके दक्षिण भागमें बिठावे और पूर्वोक्त आसनपर पुनः उस शिष्यकी पहलेकी ही भाँति पूजा करे। इसके बाद उसे पगड़ी, मुकुट, योगपट्टिका, कर्तरी (कैंची, चाकू या कटार), खड़िया, अक्षमाला और पुस्तक आदि अर्पित करे। वाहनके लिये शिबिका आदि भी दे। तदनन्तर गुरु उस शिष्यको अधिकार सौंपे। 'आजसे तुम भलीभाँति जानकर, अच्छी तरह जाँच-परखकर किसीको दीक्षा, व्याख्या और प्रतिष्ठा आदिका उपदेश करना'—यह आज्ञा सुनावे। तदनन्तर शिष्यका अभिवादन स्वीकार कर और महेश्वरको प्रणाम करके उनसे विघ्न-समूहका निवारण करनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना करे—'प्रभो शिव ! आप गुरु-स्वरूप हैं; आपने इस शिष्यका अभिषेक करनेके लिये मुझे आदेश दिया था, उसके अनुसार मैंने इसका अभिषेक कर दिया। यह संहितामें पारंगत है' ॥ ९-१३½ ॥

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में इसके पूर्व 'त्रितत्त्वदीक्षा'का विस्तृत वर्णन है।

मन्त्रचक्रकी तृप्तिके लिये पाँच-पाँच आहुतियाँ दे। फिर पूर्णाहुति-होम करे। इसके बाद शिष्यको अपने दाहिने बिठावे। शिष्यके दाहिने हाथकी अङ्गुष्ठ आदि अँगुलियोंको क्रमशः दग्ध दर्भाङ्ग-शम्बरोंसे 'ऊषरत्व'के लिये लाञ्छित करे। उसके हाथमें फूल देकर उससे कलश, अग्नि एवं शिवको प्रणाम करवावे। तदनन्तर उसके लिये कर्तव्यका आदेश दे—'तुम्हें शास्त्रके अनुसार भलीभाँति परीक्षा करके शिष्योंको अनुगृहीत करना चाहिये।' मानव आदिका राजाकी भाँति अभिषेक करनेसे अभीष्टकी प्राप्ति होती है। 'ॐ ह्लीं पशु हुं फट्।'—यह अस्त्रराज पाशुपत-मन्त्र है। इसके द्वारा अस्त्रराजका पूजन और अभिषेक करना चाहिये* ॥ १४–१८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अभिषेक आदिकी विधिका वर्णन' नामक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९० ॥

इक्यानबेवाँ अध्याय

देवार्चनकी महिमा तथा विविध मन्त्र एवं मण्डलका कथन

भगवान् शंकर कहते हैं— स्कन्द! अभिषेक हो जानेपर दीक्षित पुरुष शिव, विष्णु तथा सूर्य आदि देवताओंका पूजन करे। जो शङ्ख, भेरी आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ देवताओंको पञ्चगव्यसे स्नान कराता है, वह अपने कुलका उद्धार करके स्वयं भी देवलोकको जाता है। अग्निनन्दन! कोटि सहस्र वर्षोंमें जो पाप उपार्जित किया गया है, वह सब देवताओंको घीका अभ्यङ्ग लगानेसे भस्म हो जाता है। एक आढक घी आदिसे देवताओंको नहलाकर मनुष्य देवता हो जाता है ॥ १–३ ॥

चन्दनका अनुलेप लगाकर गन्ध आदिसे देवपूजन करे तो उसका भी वही फल है। थोड़ेसे आयासके द्वारा स्तुति पढ़कर यदि सदा देवताओंकी स्तुति की जाय तो वे भूत और भविष्यका ज्ञान, मन्त्रज्ञान, भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ ४½ ॥

यदि कोई मन्त्रके शुभाशुभ फलके विषयमें प्रश्न करे तो प्रश्नकर्ताके संदिग्ध प्रश्नवाक्यके अक्षरोंकी संख्या गिन ले। उस संख्यामें दोसे भाग दे। एक बचे तो शुभ और शून्य या दो बचे तो अशुभ फल जाने। तीनसे भाग देनेपर मूल धातुरूप जीवका परिचय मिलता है, अर्थात् एक शेष रहे तो बातजीव, दो शेष रहे तो पित्त-जीव और तीन शेष रहे तो कफजीव जाने। चारसे भाग देनेपर ब्राह्मणादि वर्ण-बुद्धि होती है। तात्पर्य यह कि एक बाकी बचे तो उस मन्त्रमें ब्राह्मण-बुद्धि, दो बचनेपर क्षत्रिय-बुद्धि, तीन बचनेपर वैश्य-बुद्धि और चार शेष रहनेपर शूद्र-बुद्धि करे। पाँचसे भाग देनेपर शेषके अनुसार भूततत्त्व आदिका बोध होता है, अर्थात् एक आदि शेष रहनेपर पृथिवी आदि तत्त्वका परिचय मिलता है। इसी प्रकार जय-पराजय आदिका ज्ञान प्राप्त करे ॥ ५-६ ॥

यदि मन्त्र-पदके अन्तमें एक त्रिक (तीन बीजाक्षर) हो, अधिक बीजाक्षर हों अथवा दो प, म एवं क हों तो इनमेंसे प्रथम वर्ग अशुभ, बीचवाला मध्यम तथा अन्तिम वर्ग शुभ है। यदि अन्तमें संख्या-समूह हो तो वह जीवन कालके दस वर्षका सूचक है। यदि दसकी संख्या हो तो दस वर्षके पश्चात् उस मन्त्रके साधकपर यमराजका निश्चय ही आक्रमण हो सकता है ॥ ७½ ॥

सूर्य, गणपति, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी तथा श्रीविष्णु भगवान्के मन्त्रोंके अक्षरोंद्वारा जगमें तत्पर कठिनो (अङ्गुष्ठ अँगुली) से स्पर्श किये गये कमलपत्रमें गोमूत्राकार रेखापर एक त्रिकसे आरम्भ कर बारह त्रिक-पर्यन्त लिखे। अर्थात् उक्त मन्त्रोंके तीन-तीन अक्षरोंका समुदाय एकसे लेकर बारह स्थानोंतक पृथक्-पृथक् लिखे। इसी प्रकार चौंसठ कोष्ठोंका एक मण्डल बनाकर उसमें मरुत् (यं), व्योम (हं) और मरुत् (यं)—इन तीन बीजोंका त्रिक पहले कोष्ठसे लेकर आठवें कोष्ठतक लिखे। इन सब स्थानोंपर पासा फेंकनेसे अथवा स्पर्श करनेपर शुभाशुभका परिज्ञान होता है। विषम संख्यावाले स्थानोंपर

* सोमशम्भुने अपने ग्रन्थमें यहाँ साधकाभिषेक तथा अस्त्राभिषेकका भी विधान दिया है। (देखिये 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' श्लोक-सं० १०८७ से ११११ तक)

पाता पड़े या स्पर्श हो तो शुभ और सम संख्यापर पड़े तो अशुभ फल होता है ॥ ८-१० ॥

'यं हं यं'—इन तीन बीजोंके आठ त्रिक हैं। वे ध्वज आदि आठ आयोंके प्रतीक हैं। इन आयोंमें जो सम हैं, वे अशुभ हैं। विषम आय शुभप्रद कहे गये हैं ॥ ११ ॥

'क' आदि अक्षरोंको सोलह स्वरोंसे तथा सोलह स्वरोंको 'क' आदिसे युक्त करके उन सबके साथ 'आं ईं' यह पल्लव लगा दे। पल्लवयुक्त इन सस्वर कादि अक्षरोंको आदिमें रखकर उनके साथ त्रिपुराके नाम-मन्त्रको पृथक्-पृथक् सम्बद्ध करे। उनके आदिमें 'ॐ ह्रीं' जोड़े और अन्तमें 'नमः' पद लगा दे। इस प्रकार पूजनकर्मके उपयोगमें आनेवाले इन मन्त्रोंका प्रस्तार बीस हजार एक-सौ साठकी संख्या तक पहुँच जाता है ॥ १२-१३ ॥

'आं ह्रीं'—इन बीजोंसे युक्त सरस्वती, चण्डी, गौरी तथा दुर्गाके मन्त्र हैं। श्रीदेवीके मन्त्र **'आं श्रीं'** इन बीजोंसे युक्त हैं। सूर्यके मन्त्र **'आं ह्रौं'** इन बीजोंसे, शिवके मन्त्र **'आं ह्रीं'** इन बीजोंसे, गणेशके मन्त्र **'आं गं'** इन बीजोंसे तथा श्रीहरिके मन्त्र **'आं अं'** इन बीजोंसे युक्त हैं। कादि व्यञ्जन अक्षरों तथा अकारादि सोलह स्वरोंको मिलाकर इक्यावन होते हैं। इस प्रकार सस्वर कादि अक्षरोंको आदिमें और सस्वर 'क्ष' से लेकर 'क' तकके अक्षरोंको अन्तमें रखनेसे सम्पूर्ण मन्त्र बनते हैं ॥ १४-१६ ॥

१४४० सम्पूर्ण मण्डल होनेसे सूर्य, शिव, देवी दुर्गा तथा विष्णुमेंसे प्रत्येकके तीन सौ साठ मण्डल होते हैं। अभिषिक्त गुरु इन सब मन्त्रों तथा देवताओंका जप-ध्यान करे तथा शिष्य एवं पुत्रको दीक्षा भी दे ॥ १७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नाना-मन्त्र आदिका कथन' नामक इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

बानबेवाँ अध्याय

प्रतिष्ठाके अङ्गभूत शिलान्यासकी विधिका वर्णन

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं संक्षेपसे और क्रमशः प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। पीठ शक्ति है और लिङ्ग शिव। इन दोनों (पीठ और लिङ्ग अथवा शक्ति और शिव) के योगमें शिव-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा प्रतिष्ठाकी विधि सम्पादित होती है। प्रतिष्ठाके 'प्रतिष्ठा' आदि पाँच भेद* हैं। उनका स्वरूप तुम्हें बता रहा हूँ। जहाँ ब्रह्मशिलाका योग हो, वहाँ विशेषरूपसे की हुई स्थापना 'प्रतिष्ठा' कही गयी है। पीठपर ही यथायोग्य जो अर्चा-विग्रहको पधराया जाता है, उसे 'स्थापन' कहते हैं। प्रतिष्ठा (ब्रह्मशिला) से भिन्नकी स्थापनाको 'स्थिर स्थापन' कहते हैं लिङ्गके आधारपूर्वक जो स्थापना होती है, उसे 'उत्थापन' कहा गया है। जिस प्रतिष्ठामें लिङ्गको आरोपित करके विद्वानोंद्वारा उसका संस्कार किया जाता है, उसकी 'आस्थापन' संज्ञा है। ये शिव-प्रतिष्ठाके पाँच भेद हैं। 'आस्थान' और 'उत्थान' भेदसे विष्णु आदिकी प्रतिष्ठा दो प्रकारकी मानी गयी है। इन सभी प्रतिष्ठाओंमें चैतन्य-स्वरूप परमशिवका नियोजन करे। 'पदाध्वा' आदि भेदसे प्रासादोंमें भी पाँच प्रकारकी प्रतिष्ठा बतायी गयी है†। प्रासादकी इच्छासे पृथ्वीकी परीक्षा करे। जहाँकी मिट्टीका रंग श्वेत हो और घीकी सुगन्ध आती हो, वह भूमि ब्राह्मणके लिये उत्तम बतायी गयी है। इसी तरह क्रमशः क्षत्रियके लिये लाल तथा रक्तकी-सी गन्धवाली मिट्टी, वैश्यके लिये पीली और सुगन्धयुक्त मिट्टीवाली तथा शूद्रके लिये काली एवं सुराकी-सी गन्धवाली मिट्टीसे युक्त भूमि श्रेष्ठ कही गयी है ॥ १-७ ॥

पूर्व, ईशान, उत्तर अथवा सब ओर नीची और मध्यमें ऊँची भूमि प्रशस्त मानी गयी है‡। एक हाथ गहराईतक खोदकर निकाली हुई मिट्टी यदि फिर उस

* प्रतिष्ठा, स्थापन, स्थिर स्थापन, उत्थापन और आस्थापन।

† 'अध्वा' छः कहे गये हैं—तत्त्वाध्वा, पदाध्वा, वर्णाध्वा, मन्त्राध्वा, कलाध्वा और भुवनाध्वा। इनमेंसे प्रथमको छोड़कर शेष पाँचोंके भेदसे यहाँ पाँच प्रकारकी प्रतिष्ठाका निर्देश किया गया है।

‡ 'समराङ्गणसूत्रधार'में भी इससे मिलती-जुलती बात कही गयी है—

"अनूषरा बहुतृणा शस्ता स्निग्धोत्तरप्लवा।
प्रागीशानप्लवा सर्वप्लवा वा दर्पणोदरा॥
(आठवाँ अ०, भूमि-परीक्षा ६-७)

गड्ढेमें डाली जानेपर अधिक हो जाय तो वहाँकी भूमिको उत्तम समझे। अथवा जल आदिसे उसकी परीक्षा करे।* हड्डी और कोयले आदिसे दूषित भूमिका खोदने, वहाँ गौओंको ठहराने अथवा बारंबार जोतने आदिके द्वारा अच्छी तरह शोधन करे। नगर, ग्राम, दुर्ग, गृह और प्रासादका निर्माण करानेके लिये उक्त प्रकारसे भूमि-शोधन आवश्यक है। मण्डपमें द्वारपूजासे लेकर मन्त्रतर्पण-पर्यन्त सम्पूर्ण कर्मका सम्पादन करके विधिपूर्वक घोरास्त्र सहस्र-याग करे। बराबर करके लिपी-पुती भूमिपर दिशाओंका साधन करे। सुवर्ण, अक्षत और दहीके द्वारा प्रदक्षिणक्रमसे रेखाएँ खींचे। मध्यभागसे ईशानकोष्ठमें स्थित भरे हुए कलशमें शिवका पूजन करे। फिर वास्तुकी पूजा करके उस कलशके जलसे कुदाल आदिको सींचे। मण्डपसे बाहर राक्षसों और ग्रहोंका पूजन करके दिशाओंमें विधिपूर्वक बलि दे ॥ ८-१३½ ॥

कलशमें पूजा करके लग्न आनेपर अग्निकोणवर्ती कोष्ठमें पहले जिसका अभिषेक किया गया था, उस मधुलिप्त कुदालसे धरती खुदावे और मिट्टीको नैर्ऋत्यकोणमें फेंके। खोदे गये गड्ढेमें कलशका जल गिरा दे। फिर भूमिका अभिषेक करके कुदाल आदिको नहलाकर उसका पूजन करे। तत्पश्चात् दूसरे कलशको दो वस्त्रोंसे आच्छादित करके ब्राह्मणके कंधेपर रखकर गाजे-बाजे और वेदध्वनिके साथ नगरकी पूर्व सीमाके अन्ततक, जितनी दूर जाना अभीष्ट हो, उतनी दूर ले जाय और वहाँ क्षणभर ठहरकर वहाँसे नगरके चारों ओर प्रदक्षिणक्रमसे चलते हुए ईशान-कोणतक उस कलशको घुमावे। साथ ही सीमान्तचिह्नोंका अभिषेक करता रहे ॥ १४-१८ ॥

इस प्रकार रुद्र-कलशको नगरके चारों ओर घुमाकर भूमिका परिग्रह करे। इस क्रियाको 'अर्घ्यदान' कहा गया है। तदनन्तर शल्यदोषका निवारण करनेके लिये भूमिको इतनी गहराईतक खुदवावे, जिससे कंकड़-पत्थर अथवा पानी दिखायी देने लगे। अथवा यदि शल्य (हड्डी आदि)-का ज्ञान हो जाय तो उसे विधिपूर्वक खुदवाकर निकाल दे। यदि कोई लग्न-कालमें प्रश्न पूछे और उसके मुखसे अ, क, च, ट, त, प, स और ह—इन वर्गोंके अक्षर निकलें तो इनकी दिशाओंमें शल्यकी स्थिति सूचित होती है। अथवा द्विज आदि वहाँ गिरें तो ये सब उस स्थानमें शल्य होनेकी सूचना देते हैं। कर्ताके अपने अङ्ग-विकारसे उसके ही बराबर शल्य होनेका निश्चय करे। पशु आदिके प्रवेशसे, कीर्तनसे तथा पक्षियोंके कलरवोंसे शल्यकी दिशाका ज्ञान प्राप्त करे ॥ १९-२२ ॥

किसी पट्टीपर या भूमिपर अकारादि आठ वर्गोंसे युक्त मातृका-वर्णोंको लिखे। वर्गके अनुसार क्रमशः पूर्वसे लेकर ईशानतककी दिशाओंमें शल्यकी जानकारी प्राप्त करे। 'अ' वर्गमें पूर्व दिशाकी ओर लोहा होनेका अनुमान करे। 'क' वर्गमें अग्निकोणकी ओर कोयला जाने। 'च' वर्गमें दक्षिण दिशाकी ओर भस्म तथा 'ट' वर्गमें नैर्ऋत्यकोणकी ओर अस्थिका होना समझे। 'त' वर्गमें पश्चिम दिशाकी ओर ईंट, 'प' वर्गमें वायव्यकोणकी ओर खोपड़ी, 'य' वर्गमें उत्तर दिशाकी ओर मुर्दे और कीड़े आदि और 'स' वर्गमें ईशानकोणकी ओर लोहेका होना बतावे। इसी प्रकार 'ह' वर्गमें चाँदी होनेका अनुमान करे। 'क्ष' वर्गयुक्त दिग्भागसे उसी दिशामें अन्य अनर्थकारी वस्तुओंके होनेका अनुमान करे। एक-एक हाथ लंबे नौ शिलाखण्डोंका प्रोक्षण करके, उन्हें आठ-आठ अङ्गुल मिट्टीके भीतर गाड़ दे। फिर वहाँ पानी डालकर उनपर मुद्गरसे आघात करे। जब वे प्रस्तर तीन चौथाई भागतक गड्ढेके भीतर धँस जायँ, तब उस खातको भरकर, लीप-पोतकर वहाँकी भूमिको बराबर कर दे। ऐसा करवाकर गुरु सामान्य अर्घ्य हाथमें लिये आगे बताये जानेवाले मण्डल (या मण्डप) की ओर जाय। मण्डपके द्वारपर द्वारपालोंका पूजन (आदर-सत्कार) करके पश्चिम द्वारसे उसके भीतर प्रवेश करे ॥ २३-२८ ॥

वहाँ आत्मशुद्धि आदि कुण्ड-मण्डपका संस्कार करे।

---

* 'समराङ्गणसूत्रधार'के अनुसार जलसे परीक्षा करनेकी विधि इस प्रकार है—गड्ढा खोदकर उसकी मिट्टी निकालकर मिट्टीसे ही पूरित करनेके बजाय पानी भरना चाहिये। पानी भरकर सौ कदम (पदशतं व्रजेत्) चलना चाहिये। पुनः लौट आनेपर यदि पानी जितना था उतना ही रहे तो श्रेष्ठ, कुछ कम (¼) हो जाय तो मध्यम और बहुत कम (½) अथवा और अधिक कम हो जाय तो वर्ज्य—निकृष्ट समझना चाहिये। समराङ्गणकी इस प्रक्रियामें मत्स्यपुराण-प्रक्रियाकी छाप है। परंतु मयमुनिने इस प्रक्रियाके सम्बन्धमें और भी कठोरता दिखायी है। उनके अनुसार गड्ढेमें सायंकाल पानी भरा जाय और दूसरे दिन प्रातः उसकी परीक्षा करनी चाहिये। यदि उसमें प्रातः भी कुछ पानीके दर्शन हो जायँ तो उसे अत्युत्कृष्ट भूमि समझना चाहिये। इसके विपरीत गुणवाली भूमि अनिष्टदायिनी तथा वर्ज्य है।

कलश और वार्धानी आदिका स्थापन करके लोकपालों तथा शिवका अर्चन करे। अग्निका जनन और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। तत्पश्चात् गुरु यजमानके साथ शिलाओंके स्नान-मण्डपमें जाय। वे शिलाएँ प्रासाद-लिङ्गके चार पाये हैं। उनके नाम हैं—क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य; अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य आदि। उनकी ऊँचाई आठ अङ्गुलकी हो तो अच्छी मानी गयी है। वे चौकोर हों और उनकी लंबाई एक हाथकी हो, इस मापसे प्रस्तरकी शिलाएँ बनवानी चाहिये। ईंटोंकी शिलाओंका माप आधा होना चाहिये। प्रस्तरखण्डसे बने हुए प्रासादमें जो शिलाएँ उपयोगमें लायी जायँ अथवा ईंटोंके बने हुए मन्दिरमें जो ईंटें लगें, उनमेंसे नौ शिलाएँ अथवा ईंटें वज्र आदि चिह्नोंसे अङ्कित हों, अथवा पाँच शिलाएँ कमलके चिह्नोंसे अङ्कित हों। इन अङ्कित शिलाओंसे ही मन्दिर-निर्माणका कार्य आरम्भ किया जाय ॥२९—३२½॥

पाँच शिलाओंके नाम इस प्रकार हैं—नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा। इन पाँचोंके निधिकुम्भ इस प्रकार हैं—पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर और समुद्र। नौ शिलाओंके नाम इस प्रकार हैं—नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, अजिता, अपराजिता, विजया, मङ्गला और नवमी शिला धरणी है। इन नवोंके निधिकलश क्रमशः इस प्रकार जानने चाहिये—सुभद्र, विभद्र, सुनन्द, पुष्पदन्त, जय, विजय, कुम्भ, पूर्ण और उत्तर। प्रणवमय आसन देकर अस्त्र-मन्त्रसे ताड़न और उल्लेखन करनेके पश्चात् इन सब शिलाओंको सामान्य रूपसे कवच मन्त्रसे अवगुण्ठित करना चाहिये। अस्त्र-मन्त्रके अन्तमें 'हूं फट्' लगाकर उसका उच्चारण करते हुए मिट्टी, गोबर, गोमूत्र, कषाय तथा गन्धयुक्त जलसे मलस्नान करावे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक पञ्चगव्य और पञ्चामृतसे स्नान कराना चाहिये। इसके बाद गन्धयुक्त जलसे स्नान करानेके अनन्तर अपने नामसे अङ्कित मन्त्रद्वारा फल, रत्न, सुवर्ण तथा गोशृङ्गके जलसे और चन्दनसे शिलाको चर्चित करके उसे वस्त्रोंसे आच्छादित करे ॥ ३३—४०½ ॥

त्वङ्कुत्थ आसन देकर, यागमण्डपकी परिक्रमा करके, उस शिलाको ले जाय और हृदय-मन्त्रद्वारा उसे शय्या अथवा कुशके बिस्तरपर सुला दे। वहाँ पूजन करके, बुद्धिसे लेकर पृथिवी-पर्यन्त तत्त्वसमूहोंका न्यास करनेके पश्चात्, त्रिखण्ड-व्यापक तत्त्वत्रयका उन शिलाओंमें क्रमशः न्यास करे। बुद्धिसे लेकर चित्ततक, चित्तके भीतर मातृकातक और तन्मात्रासे लेकर पृथिवी-पर्यन्त शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा आत्मतत्त्वकी स्थिति है। पुष्पमाला आदिसे चिह्नित स्थानोंपर क्रमशः तीनों तत्त्वोंका अपने मन्त्रसे और तत्त्वेशोंका हृदय-मन्त्रसे पूजन करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः। ॐ हां शिवतत्त्वाधिपाय रुद्राय नमः। ॐ हां विद्यातत्त्वाय नमः। ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपाय विष्णवे नमः। ॐ हां आत्मतत्त्वाय नमः। ॐ हां आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः।**' ॥४१—४६॥

प्रत्येक तत्त्व और प्रत्येक शिलामें पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश—इन आठ मूर्तियोंका न्यास करे। फिर क्रमशः शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, ईश्वर (या ईशान), महादेव तथा भीम—इन मूर्तीश्वरोंका न्यास करे। मूर्तियों तथा मूर्तीश्वरोंके मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ धरामूर्तये नमः। ॐ धराधिपतये शर्वाय नमः।**' इसके बाद अनन्त आदि लोकपालोंका क्रमशः अपने मन्त्रोंसे न्यास करे। इन्द्र आदि लोकपालोंके बीज आगे बताये जानेवाले क्रमसे यों जानने चाहिये—लूं, रं, यूं, व्रूं, श्रं, पूं, सूं, हूं, क्षूं। यह नौ शिलाओंके पक्षमें बताया गया है। जब पाँच पदकी शिलाएँ हों, तब प्रत्येक तत्त्वमयी शिलामें स्पर्शपूर्वक पृथ्वी आदि पाँच मूर्तियोंका न्यास करे। उक्त मूर्तियोंके पाँच मूर्तीश इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव। इन पाँचोंका उक्त पाँचों मूर्तियोंमें पूर्ववत् पूजन करना चाहिये ॥ ४७—५३ ॥

'**ॐ पृथिवीमूर्तये नमः। ॐ पृथिवीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः।**' इत्यादि मन्त्र पूजनके लिये जानने चाहिये। क्रमशः पाँच कलशोंका अपने नाम-मन्त्रोंसे पूजन करके उन्हें स्थापित करे। मध्यशिलाके क्रमसे विधिपूर्वक न्यास करे। विभूति, कुशा और तिलोंसे अस्त्र-मन्त्रद्वारा प्राकारकी कल्पना करे। कुण्डोंमें आधार-शक्तिका न्यास और पूजन करके तत्त्वों, तत्त्वाधिपों, मूर्तियों तथा मूर्तीश्वरोंका घृत आदिसे तर्पण करे। तत्पश्चात् ब्रह्मात्म-शुद्धिके लिये मूलके अङ्गभूत ब्रह्म-मन्त्रोंद्वारा क्रमशः सौ-सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति-पर्यन्त होम करनेके पश्चात् शान्ति-जलसे शिलाओंका प्रोक्षणपूर्वक पूजन करे। कुशाओंद्वारा स्पर्श करके प्रत्येक तत्त्वमें क्रमशः सांनिध्य और संधान करके फिर

शुद्ध-न्यास करे। इस प्रकार जा-जाकर तीन भागोंमें कर्म करे। मन्त्र यों हैं—'ॐ आम् ईम् आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वाभ्यां नमः।' इति ॥ ५४—६० ॥

कुशाके मूल आदिसे क्रमशः तत्त्वेशादि तीनका स्पर्श करे। इसके बाद ह्रस्व-दीर्घके प्रयोगपूर्वक तत्त्वानुसंधान करे। इसके लिये मन्त्र यों है—'ॐ ई ॐ विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः।' तदनन्तर घी और मधुसे भरे हुए पञ्चरत्नयुक्त और पञ्चगव्यसे अग्रभागमें अभिषिक्त पाँच कलशोंका, जिनके देवता पञ्च-लोकपाल हैं, अपने मन्त्रोंसे पूजन करके उनके निकट होम करे। फिर समस्त शिलाओंके अधिदेवताओंका ध्यान करे। 'वे शिलाधिदेवता विद्यास्वरूप हैं, स्नान कर चुके हैं। उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान उद्दीप्त होती है। वे उज्ज्वल वस्त्र धारण करते हैं और समस्त आभूषणोंसे सम्पन्न हैं।' न्यूनतादि दोष दूर करनेके लिये तथा वास्तु-भूमिकी शुद्धिके लिये अस्त्र-मन्त्रद्वारा पूर्णाहुति-पर्यन्त सौ-सौ आहुतियाँ दे ॥ ६१—६५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिष्ठाके अङ्गभूत शिलान्यासकी विधिका वर्णन' नामक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

तिरानबेवाँ अध्याय

वास्तुपूजा-विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! तदनन्तर प्रासादको आमन्त्रित करके वास्तुमण्डलकी रचना करे। समतल चौकोर क्षेत्रमें चौंसठ कोष्ठ बनावे। कोनोंमें दो वंशोंका विन्यास करे। त्रिकोणगामिनी आठ रज्जुएँ अङ्कित करे। वे द्विपद और षट्पद स्थानोंके रूपमें विभक्त होंगी। उनमें वास्तुदेवताका पूजन करे, जिसकी विधि इस प्रकार है—'कुञ्चित केशधारी वास्तुपुरुष उत्तान सो रहा है। उसकी आकृति असुरके समान है।' पूजाकालमें उसके इसी स्वरूपका स्मरण करना चाहिये, परंतु दीवार आदिकी नींव रखते समय उसका ध्यान यों करना चाहिये कि 'वह औंधे-मुँह पड़ा हुआ है। कोहनीसे सटे हुए उसके दो घुटने वायव्य और अग्निकोणमें स्थित हैं। अर्थात् दाहिना घुटना वायव्यकोणमें और बायाँ घुटना अग्निकोणमें स्थित है। उसके जुड़े हुए दोनों चरण पैतृ (नैर्ऋत्य!) दिशामें स्थित हैं तथा उसका सिर ईशानकोणकी ओर है। उसके हाथों-की अञ्जलि वक्षःस्थलपर है' ॥ १—४ ॥

उस वास्तुपुरुषके शरीरपर आरूढ़ हुए देवताओंकी पूजा करनेसे वे शुभकारक होते हैं। आठ देवता कोणाधिपति माने गये हैं, जो आठ कोणार्धोंमें स्थित हैं। क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित मरीचि आदि देवता छः-छः पदोंके स्वामी कहे गये हैं और उनके बीचमें विराजमान ब्रह्मा चार पदोंके स्वामी हैं। शेष देवता एक-एक पदके अधिष्ठाता बताये गये हैं। समस्त नाडी-सम्पात, महामर्म, कमल, फल, त्रिशूल, स्वस्तिक, वज्र, महास्वस्तिक, सम्पुट, त्रिकटि, मणिबन्ध तथा सुविशुद्ध पद—ये बारह मर्म-स्थान हैं। वास्तुकी भित्ति आदिमें इन सबका पूजन करे। ईशान (रुद्र) को घृत और अक्षत चढ़ावे। पर्जन्यको कमल और जल अर्पित करे। जयन्तको कुङ्कुमरञ्जित निर्मल पताका दे। महेन्द्रको रत्नमिश्रित जल, सूर्यको धूम्र वर्णका चँदोवा, सत्यको घृतयुक्त गेहूँ तथा भृशको उड़द-भात चढ़ावे। अन्तरिक्षको विमांस (विशिष्ट फलका गूदा या औषध-विशेष) अथवा सक्तु (सत्तू) निवेदित करे। ये पूर्व दिशाके आठ देवता हैं ॥५—१०½॥

अग्निदेवको मधु, दूध और घीसे भरा हुआ स्रुक् अर्पित करे। पूषाको लाजा और वितथको सुवर्ण मिश्रित जल दे। गृहक्षतको शहद तथा यमराजको पलोदन भेंट करे। गन्धर्वनाथको गन्ध, भृङ्गराजको पक्षिजिह्वा तथा मृगको यवपर्ण (जौके पत्ते) चढ़ावे—ये आठ देवता दक्षिण दिशामें पूजित होते हैं। 'पितृ' देवताको तिल-मिश्रित जल अर्पित करे। 'दौवारिक' नामवाले देवताको वृक्ष-जनित दूध और दन्तधावन धेनुमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक निवेदित करे। 'सुग्रीव'को पूआ चढ़ावे, पुष्पदन्तको कुशा अर्पित करे, वरुणको लाल कमल भेंट करे और असुरको सुरा एवं आसव चढ़ावे। शोषको घीसे ओतप्रोत भात तथा (पाप यक्ष्मा) रोगको घृत-मिश्रित माँड़ या लावा चढ़ावे। ये पश्चिम दिशाके आठ देवता कहे गये हैं ॥ ११—१६ ॥

मारुतको पीले रंगका ध्वज, नागदेवताको नागकेसर, मुख्यको भक्ष्यपदार्थ तथा भल्लाटको छौंक-बघारकर मूँगकी

दाल अर्पित करे। सोमको घृतमिश्रित खीर, चरकको शालूक, अदितिको लोपी तथा दितिको पूरी चढ़ावे। ये उत्तर दिशाके आठ देवता कहे गये। मध्यवर्ती ब्रह्माजीको मोदक चढ़ावे। पूर्व दिशामें छः पदोंके उपभोक्ता मरीचिको भी मोदक अर्पित करे। ब्रह्माजीसे नीचे अग्निकोणवर्ती कोष्ठमें स्थित सविता देवताको लाल फूल चढ़ावे। सवितासे नीचे वह्निकोणवर्ती कोष्ठमें सावित्री देवीको कुशोदक अर्पित करे। ब्रह्माजीसे दक्षिण छः पदोंके अधिष्ठाता विवस्वान्को लाल चन्दन चढ़ावे॥ १७—२०॥

ब्रह्माजीसे नैर्ऋत्य दिशामें नीचेके कोष्ठमें इन्द्रदेवताके लिये हल्दी-भात अर्पित करे। इन्द्रसे नीचे नैर्ऋत्यकोणमें इन्द्रजयके लिये मिष्टान्न निवेदित करे। ब्रह्माजीसे पश्चिम छः पदोंमें विराजमान मित्र देवताको गुड-मिश्रित भात चढ़ावे। वायव्यकोणसे नीचेके पदमें रुद्रदेवताको घृतपक्व अन्न अर्पित करे। रुद्र देवतासे नीचेके कोष्ठमें, रुद्र दासके लिये आर्द्रमांस (औषधविशेष) निवेदित करे। तत्पश्चात् उत्तरवर्ती छः पदोंके अधिष्ठाता पृथ्वीधरके निमित्त उड़द-का बना नैवेद्य चढ़ावे। ईशानकोणके निम्नवर्ती पदमें 'आप'की और उससे भी नीचेके पदमें आपवत्सकी विधिवत् पूजा करके उन्हें क्रमशः दही और खीर अर्पित करे॥२१—२४॥

तत्पश्चात् (चौंसठ पदवाले वास्तुमण्डलमें) मध्य-देशवर्ती चार पदोंमें स्थित ब्रह्माजीको पञ्चगव्य, अक्षत और घृतसहित चरु निवेदित करे। तदनन्तर ईशानसे लेकर वायव्यकोण-पर्यन्त चार कोणोंमें स्थित चरकी आदि चार मातृकाओंका वास्तुके बाह्यभागमें क्रमशः पूजन करे, जैसा कि क्रम बताया जाता है। चरकीको सघृत मांस (फलका गूदा), विदारीको दही और कमल तथा पूतनाको पल, पित्त एवं रुधिर अर्पित करे। पाप-राक्षसीको अस्थि (हड्डी), मांस, पित्त तथा रक्त चढ़ावे। इसके पश्चात् पूर्व दिशामें स्कन्दको उड़द-भात चढ़ावे। दक्षिण दिशामें अर्यमाको खिचड़ी और पूआ चढ़ावे तथा पश्चिम दिशामें जम्भकको रक्त-मांस अर्पित करे। उत्तर दिशामें पिलिपिच्छको रक्तवर्णका अन्न और पुष्प निवेदित करे। अथवा सम्पूर्ण वास्तुमण्डलका कुश, दही, अक्षत तथा जलसे ही पूजन करे॥ २५—३०॥

घर और नगर आदिमें इक्यासी पदोंसे युक्त वास्तुमण्डलका पूजन करना चाहिये। इस वास्तुमण्डलमें त्रिपद और षट्पद रज्जुएँ पूर्ववत् बनानी चाहिये। उसमें ईश आदि देवता 'पदिक' (एक-एक पदके अधिष्ठाता) माने गये हैं। 'आप' आदिकी स्थिति दो-दो कोष्ठोंमें बतायी गयी है। मरीचि आदि देवता छः पदोंमें अधिष्ठित होते हैं और ब्रह्मा नौ पदोंके अधिष्ठाता कहे गये हैं। नगर, ग्राम और खेट आदिमें शतपद-वास्तुका भी विधान है। उसमें दो वंश कोणगत होते हैं। वे सदा दुर्जय और दुर्धर कहे गये हैं॥ ३१—३३॥

देवालयमें जैसा न्यास बताया गया है, वैसा ही शतपद-वास्तुमण्डलमें भी विहित है। उसमें स्कन्द आदि ग्रह 'षट्पद' (छः पदोंके अधिष्ठाता) जानने चाहिये। चरकी आदि पाँच-पाँच पदोंकी अधिष्ठात्री कही गयी हैं। रज्जु और वंश आदिका उल्लेख पूर्ववत् करना चाहिये। देश (या राष्ट्र) की स्थापनाके अवसरपर चौंतीस सौ पदोंका वास्तुमण्डल होना चाहिये। उसमें मध्यवर्ती ब्रह्मा चौंसठ पदोंके अधिष्ठाता होते हैं। मरीचि आदि देवताओं-के अधिकारमें चौवन-चौवन पद होते हैं। 'आप' आदि आठ देवताओंके स्थान छत्तीस-छत्तीस पद बताये गये हैं। वहाँ ईशान आदि नौ नौ पदोंके अधिष्ठाता कहे गये है और स्कन्द आदि सौ-सौ पदोंके। चरकी आदिके पद भी तदनुसार ही हैं। रज्जु, वंश आदिकी कल्पना पूर्ववत् जाननी चाहिये। बीस हजार पदोंके वास्तुमण्डलमें भी वास्तुदेवकी पूजा होती है—यह जानना चाहिये। उसमें देश-वास्तुकी भाँति नौ गुना न्यास करना चाहिये। पचीस पदोंका वास्तुमण्डल चितास्थापनके समय विहित है। उसकी 'वेताल' संज्ञा है। दूसरा नौ पदोंका भी होता है। इसके सिवा एक सोलह पदोंका भी वास्तुमण्डल होता है॥ ३४—३९॥

षट्कोण, त्रिकोण तथा वृत्त आदिके मध्यमें चौकोर वास्तुमण्डलका भी विधान है। ऐसा वास्तु खात (नींव आदिके लिये खोदे गये गड्ढे) के लिये उपयुक्त है। इसीके समान वास्तु ब्रह्म-शिलात्मक पृष्ठन्यासमें, शावाकके निवेशमें और मूर्तिस्थापनमें भी उपयोगी होता है। वास्तुमण्डलवर्ती समस्त देवताओंको खीरसे नैवेद्य अर्पित करे। उक्त-अनुक्त सभी कार्योंके लिये सामान्यतः पाँच हाथकी लंबाई-चौड़ाईमें वास्तुमण्डल बनाना चाहिये। गृह और प्रासादके मानके अनुसार ही निर्मित वास्तुमण्डल सर्वदा श्रेष्ठ कहा गया है॥ ४०—४२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वास्तुपूजाकी विधिका वर्णन' नामक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९३॥

चौरानबेवाँ अध्याय

शिलान्यासकी विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! ईशान आदि कोणोंमें वास्तुमण्डलके बाहर पूर्ववत् चरकी आदिका पूजन करे। प्रत्येक देवताके लिये क्रमशः तीन-तीन आहुतियाँ दे। भूतबलि देकर नियत लग्नमें शिलान्यासका उपक्रम करे। खातके मध्यभागमें आधार-शक्तिका न्यास करे। वहाँ अनन्त (शेषनाग) के मन्त्रसे अभिमन्त्रित उत्तम कलश स्थापित करे। **'ॐ पृथिव्यै नमः।'**—इस मूल-मन्त्रसे इस कलशपर पृथिवीस्वरूपा शिलाका न्यास करे। उसके पूर्वादि दिग्भागोंमें क्रमशः सुभद्र आदि आठ कलशोंकी स्थापना करे। पहले उनके लिये गड्ढे खोदकर उनमें आधार-शक्तिका न्यास करनेके पश्चात् उक्त कलशोंको इन्द्रादि लोकपालोंके मन्त्रोंद्वारा स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर उन कलशोंपर क्रमशः नन्दा आदि शिलाओंको रक्खे ॥ १-४ ॥

तत्त्वमूर्तियोंके अधिदेवता-सम्बन्धी शस्त्रोंसे युक्त वे शिलाएँ होनी चाहिये। जैसे दीवारमें मूर्ति तथा अस्त्र आदि अङ्कित होते हैं, उसी प्रकार उन शिलाओंमें शर्व आदि मूर्ति, देवताओंके अस्त्र-शस्त्र अङ्कित रहें। उक्त शिलाओंपर कोण और दिशाओंके विभागपूर्वक धर्म आदि आठ देवताओंकी स्थापना करे। सुभद्र आदि चार कलशोंपर नन्दा आदि चार शिलाएँ अग्नि आदि चार कोणोंमें स्थापित करनी चाहिये। फिर जय आदि चार कलशोंपर अजिता आदि चार शिलाओंको पूर्व आदि चार दिशाओंमें स्थापना करे। उन सबके ऊपर ब्रह्माजी तथा व्यापक महेश्वरका न्यास करके मन्दिरके मध्यवर्ती 'आकाश' नामक अध्वाका चिन्तन करे। इन सबको बलि अर्पित करके विघ्नदोषके निवारणार्थ अस्त्र-मन्त्रका जप करे। जहाँ पाँच ही शिलाएँ स्थापित करनेकी विधि है, उसके पक्षमें भी कुछ निवेदन किया जाता है ॥ ५-८ ॥

मध्यभागमें सुभद्र-कलशके ऊपर पूर्णा नामक शिलाकी स्थापना करे और अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः पद्म आदि कलशोंपर नन्दा आदि शिलाएँ स्थापित करे। मध्यशिलाके अभावमें चार शिलाएँ भी मातृभावसे सम्मानित करके स्थापित की जा सकती हैं। उक्त पाँचो शिलाओंकी प्रार्थना इस प्रकार करे—

'ॐ सर्वसंदोहस्वरूपे महाविद्ये पूर्णे ! तुम अङ्गिरा-ऋषिकी पुत्री हो। इस प्रतिष्ठाकर्ममें सब कुछ सम्यक्-रूपसे ही पूर्ण करो। नन्दे ! तुम समस्त पुरुषोंको आनन्दित करनेवाली हो। मैं यहाँ तुम्हारी स्थापना करता हूँ। तुम इस प्रासादमें सम्पूर्णतः तृप्त होकर तबतक सुस्थिरभावसे स्थित रहो, जबतक कि आकाशमें चन्द्रमा, सूर्य और तारे प्रकाशित होते रहें। वसिष्ठनन्दिनि नन्दे ! तुम देहधारियोंको आयु, सम्पूर्ण मनोरथ तथा लक्ष्मी प्रदान करो। तुम्हें प्रासादमें सदा स्थित रहकर यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये। ॐ कश्यपनन्दिनि भद्रे ! तुम सदा समस्त लोकोंका कल्याण करो। देवि ! तुम सदा ही हमें आयु, मनोरथ और लक्ष्मी प्रदान करती रहो। ॐ देवि जये ! तुम सदा-सर्वदा हमारे लिये लक्ष्मी तथा आयु प्रदान करनेवाली होओ। भृगुपुत्रि देवि जये ! तुम स्थापित होकर सदा यहीं रहो और इस मन्दिरके अधिष्ठाता मुझ यजमानको नित्य-निरन्तर विजय तथा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली बनो। ॐ रिक्ते ! तुम अतिरिक्त दोषका नाश करनेवाली तथा सिद्धि और मोक्ष प्रदान करनेवाली हो। शुभे ! सम्पूर्ण देश-कालमें तुम्हारा निवास है। ईशरूपिणि ! तुम सदा इस प्रासादमें स्थित रहो' ॥ ९-१६ ॥

तत्पश्चात् आकाशस्वरूप मन्दिरका ध्यान करके उसमें तीन तत्त्वोंका न्यास करे। फिर विधिवत् प्रायश्चित्त-होम करके यज्ञका विसर्जन करे ॥ १७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिलान्यासकी विधिका वर्णन' नामक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

पंचानबेवाँ अध्याय

प्रतिष्ठा-काल-सामग्री आदिकी विधिका कथन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं मन्दिरमें लिङ्ग-स्थापनाकी विधिका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्षको देनेवाली है। यदि मुक्तिके लिये लिङ्ग-प्रतिष्ठा करनी हो तो उसे हर समय किया जा सकता है, परंतु यदि भोग-सिद्धिके उद्देश्यसे लिङ्ग-स्थापना करनेका विचार हो तो देवताओंका दिन (उत्तरायण) होनेपर ही वह कार्य करना

चाहिये। माघसे लेकर पाँच महीनोंमें, चैत्रको छोड़कर, देवस्थापना करनेकी विधि है। जब गुरु और शुक्र उदित हों तो प्रथम तीन करणों (बव, बालव और कौलव) में स्थापना करनी चाहिये। विशेषतः शुक्लपक्षमें तथा कृष्ण-पक्षमें भी पञ्चमी तिथि तकका समय प्रतिष्ठाके लिये शुभ माना गया है। चतुर्थी, नवमी, षष्ठी और चतुर्दशीको छोड़कर शेष तिथियाँ क्रूर-ग्रहके दिनसे रहित होनेपर उत्तम मानी गयी हैं ॥ १-३½ ॥

शतभिषा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी और श्रवण—ये नक्षत्र स्थिर प्रतिष्ठा आरम्भ करनेके लिये महान् अभ्युदयकारक कहे गये हैं। कुम्भ, सिंह, वृश्चिक, तुला, कन्या, वृष—ये लग्न श्रेष्ठ बताये गये हैं*। बृहस्पति (तृतीय, अष्टम और द्वादशको छोड़कर शेष) नौ स्थानोंमें शुभ माने गये हैं। सात स्थानोंमें तो वे सर्वदा ही शुभ हैं। छठे, आठवें, दसवें, सातवें और चौथे भावोंमें बुधकी स्थिति हो तो वे शुभकारक होते हैं। इन्हीं स्थानोंमें छठेको छोड़कर यदि शुक्र हो तो उन्हें शुभ कहा गया है। प्रथम, तृतीय, सप्तम, षष्ठ, दशम (द्वितीय और नवम) स्थानोंमें चन्द्रमा सदैव बलदायक माने गये हैं। सूर्य दसवें, तीसरे और छठे भावोंमें स्थित हों तो शुभफल देनेवाले होते हैं। तीसरे, छठे और दसवेंमें राहुको भी शुभकारक कहा गया है ॥ ४-७ ॥

छठे और तीसरे स्थानमें स्थित होनेपर शनैश्चर, मङ्गल और केतु प्रशस्त कहे गये हैं। शुभग्रह, क्रूरग्रह और पापग्रह—सभी ग्यारहवें स्थानमें स्थित होनेपर श्रेष्ठ बताये गये हैं। अपनी जगहसे सप्तम स्थानपर ही इन समस्त ग्रहोंकी दृष्टि पूर्ण (चारों चरणोंसे युक्त) होती है। पाँचवें और नवें स्थानोंपर इनकी दृष्टि आधी (दो चरणोंसे युक्त) बतायी गया है। तृतीय और दसवें स्थानोंको ये ग्रह एकपादसे देखते हैं तथा चौथे एवं आठवें स्थानोंपर इनकी दृष्टि तीन चरणोंसे युक्त होती है। मीन और मेष राशिका भोग पौने चार नाड़ीतक है। वृष और कुम्भ भी पौने चार नाड़ीका ही उपभोग करते हैं। मकर और मिथुन पाँच नाड़ी, धन, वृश्चिक, सिंह और कर्क पौने छः नाड़ी तथा तुला और कन्या राशियां साढ़े पांच नाड़ीका उपभोग करती हैं ॥ ८-११ ॥

सिंह, वृष और कुम्भ—ये 'स्थिर' लग्न सिद्धिदायक होते हैं। धन, तुला और मेष 'चर' कहे गये हैं। तीसरी-तीसरी सख्याके लग्न (मिथुन, कन्या आदि) 'द्वि-स्वभाव' कहे गये हैं। कर्क, मकर और वृश्चिक—ये प्रव्रज्या (संन्यास) कार्यके नाशक हैं। जो लग्न शुभग्रहोंसे देखा गया हो, वह शुभ है तथा जिस लग्नमें शुभग्रह स्थित हों, वह श्रेष्ठ माना गया है। बृहस्पति, शुक्र और बुधसे युक्त लग्न धन, आयु, राज्य, शौर्य (अथवा सौख्य), बल, पुत्र, यश तथा धर्म आदि वस्तुओंको अधिक मात्रामें प्रदान करता है। कुण्डलीके बारह भावोंमेंसे प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशमको 'केन्द्र' कहते हैं। उन केन्द्र-स्थानोंमें यदि गुरु, शुक्र और बुध हों तो वे सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता होते हैं। लग्न-स्थानसे तीसरे, ग्यारहवें और चौथे स्थानोंमें पापग्रह हों तो वे शुभकारक होते हैं। अतः इनको तथा इनसे भिन्न शुभग्रहों तथा शुभ तिथियोंको विद्वान् पुरुष प्रतिष्ठा-कर्मके लिये योजित करे। मन्दिरके सामने उससे पांच गुनी अथवा मन्दिरके बराबर ही या सीढ़ीसे दस हाथ आगेतक-की भूमि छोड़कर मण्डप निर्माण करे ॥ १२-१७ ॥

वह मण्डप चौकोर और चार दरवाजोंसे युक्त हो। उसकी आधी भूमि लेकर स्नानके लिये मण्डप बनावे। उसमें भी एक या चार दरवाजे हों। यह स्नान-मण्डप ईशान, पूर्व अथवा उत्तर दिशामें होना चाहिये*। [प्रथम तीन लिङ्गोंके लिये तीन मण्डपोंका निर्माण करे। पहले मण्डपकी 'हास्तिक' सञ्ज्ञा है। वह आठ हाथका होता है। शेष दो मण्डप एक-एक हाथ बड़े होंगे, अर्थात् दूसरा मण्डप नौ हाथका और तीसरा दस हाथका होगा। इसी तरह अन्य लिङ्गोंके लिये भी प्रति-मण्डप दो-दो हाथ भूमि बढ़ा दे,

---

* यहाँ सोमशम्भुने अपनी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में पिङ्गला-मतके अनुसार चारों वर्णोंके लिये पृथक्-पृथक् प्रतिष्ठोपयोगी प्रशस्त नक्षत्र बताये हैं—पुष्य, हस्त, उत्तराषाढ़, पूर्वाषाढ़ और रोहिणी—ये नक्षत्र ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ कहे गये हैं। क्षत्रियके लिये पुनर्वसु, चित्रा, धनिष्ठा और श्रवण उत्तम कहे गये हैं। वैश्यके लिये रेवती, आर्द्रा, उत्तरा और अश्विनी शुभ नक्षत्र हैं तथा शूद्रके लिये मघा, स्वाती और पूर्वाफाल्गुनी—ये नक्षत्र श्रेष्ठ हैं।

(श्लोक १३२४-१३२७ तक)

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में यहाँ चार पंक्तियाँ अधिक उपलब्ध होती हैं, जिनका अर्थ कोष्ठक [] में दिया गया है (देखिये श्लोक १३२९ से १३३१ तक)।

जिससे नौ हाथ बड़े नवें लिङ्गके लिये बाईस हाथका मण्डप सम्पन्न हो सके ।] प्रथम मण्डप आठ हाथका, दस हाथका अथवा बारह हाथका होना चाहिये । शेष आठ मण्डपोंको दो-दो हाथ बढ़ाकर रक्खे । (इस प्रकार कुल नौ मण्डप होने चाहिये ।) [पाद आदिसे वृद्धलिङ्गोंकी स्थापनामें पादों (पायों) के अनुसार मण्डप बनावे । बाणलिङ्ग, रत्नजलिङ्ग तथा लौहलिङ्गकी स्थापनाके अवसरपर हास्तिक (आठ हाथवाले) मण्डपके अनुसार सब कुछ बनावे । अथवा जो देवीका प्रासाद हो, उसके अनुसार मण्डप बनावे । समस्त लिङ्गोंके लिये प्रासाद-निर्माणकी विधि शैव-शास्त्रके अनुसार जाननी चाहिये । घन, घोष, विराग, काञ्चन, काम, राम, सुवेश, धर्मर तथा दक्ष—ये नौ लिङ्गोंके लिये नौ मण्डपोंके नाम हैं । चारों कोणोंमें चार खमे हों और दरवाजोंपर दो-दो । यह सब हास्तिक-मण्डपके विषयमें बताया गया है । उससे विस्तृत मण्डपमें जैसे भी उसकी शोभा सम्भव हो, अन्य खभोंका भी उपयोग किया जा सकता है ।]* ॥ १८-१९ ॥

मध्य मण्डलमें चार हाथकी वेदी बनावे । उसके चारों कोनोंमें चार खंभे हों । वेदी और पायोंके बीचका स्थान छोड़कर कुण्डोंका निर्माण करे । इनकी संख्या नौ अथवा पाँच होनी चाहिये । ईशान या पूर्व दिशामें एक ही कुण्ड बनावे । वह गुरुका स्थान है । यदि पचास आहुति देनी हो तो मुट्ठी बँधे हाथसे एक हाथका कुण्ड होना चाहिये । सौ आहुतियाँ देनी हों तो कोहनीसे लेकर कनिष्ठिका तकके मापसे एक अरत्नि या एक हाथका कुण्ड बनावे । एक हजार आहुतियोंका होम करना हो तो एक हाथ लंबा, चौड़ा और गहरा कुण्ड हो । दस हजार आहुतियोंके लिये इससे दूने मापका कुण्ड होना चाहिये । लाख आहुतियोंके लिये चार हाथके और एक करोड़ आहुतियोंके लिये आठ हाथके कुण्डका विधान है । अग्निकोणमें भगाकार, दक्षिण दिशामें अर्धचन्द्राकार, नैर्ऋत्यकोणमें त्रिकोण (पश्चिम दिशामें चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार), वायव्यकोणमें षट्कोण, उत्तर दिशामें कमलाकार, ईशानकोणमें अष्टकोण (तथा पूर्व दिशामें चतुष्कोण) कुण्डका निर्माण करना चाहिये ॥ २०-२३ ॥

कुण्ड सब ओरसे बराबर और ढालू होना चाहिये । ऊपरकी ओर मेखलाएँ बनी होनी चाहिये । बाहरी भागमें क्रमशः चार, तीन और दो अङ्गुल चौड़ी तीन मेखलाएँ होती हैं । अथवा एक ही छः अङ्गुल चौड़ी मेखला रहे । मेखलाएँ कुण्डके आकारके बराबर ही होती हैं । उनके ऊपर मध्यभागमें योनि हो, जिसकी आकृति पीपलके पत्तेकी भाँति रहे । उसकी ऊँचाई एक अङ्गुल और चौड़ाई आठ अङ्गुलकी होनी चाहिये । लंबाई कुण्डार्धके तुल्य हो । योनिका मध्यभाग कुण्डके कण्ठकी भाँति हो, पूर्व, अग्निकोण और दक्षिण दिशाके कुण्डोंकी योनि उत्तराभिमुखी होनी चाहिये, शेष दिशाओंके कुण्डोंकी योनि पूर्वाभिमुखी हो तथा ईशानकोणके कुण्डकी योनि उक्त दोनों प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारकी (उत्तराभिमुखी या पूर्वाभिमुखी) रह सकती है ॥ २४-२७ ॥

कुण्डोंका जो चौबीसवाँ भाग है, वह 'अङ्गुल' कहलाता है । इसके अनुसार विभाजन करके मेखला, कण्ठ और नाभिका निश्चय करना चाहिये । मण्डपमें पूर्वादि दिशाओंकी ओर जो चार दरवाजे लगते हैं, वे क्रमशः पाकड़, गूलर, पीपल और बड़की लकड़ीके होने चाहिये । पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे इनके नाम शान्ति, भूति, बल और आरोग्य हैं । दरवाजोंकी ऊँचाई पाँच, छः अथवा सात हाथकी होनी चाहिये । वे हाथभर गहरे खुदे हुए गड्ढेमें खड़े किये गये हों । उनका विस्तार ऊँचाई या लंबाईकी अपेक्षा आधा होना चाहिये । उनमें आम्र-पल्लव आदिकी बन्दनवारें लगा देनी चाहिये । मण्डपकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः इन्द्रायुधकी भाँति तिरंगी, लाल, काली, धूमिल, चाँदनीकी भाँति श्वेत, तोतेकी पाँखके समान हरे रंगकी, सुनहरे रंगकी तथा स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल पताका फहरानी चाहिये । ईशान और पूर्वके मध्यभागमें ब्रह्माजीके लिये लाल रंगकी तथा नैर्ऋत्य और पश्चिमके मध्यभागमें अनन्त (शेषनाग) के लिये नीले रंगकी पताका फहरानी चाहिये । ध्वजोंकी पताकाएँ पाँच हाथ लंबी और इससे आधी चौड़ी हों । ध्वज-दण्डकी ऊँचाई पाँच हाथकी होनी चाहिये । ध्वजकी मोटाई ऐसी हो कि दोनों हाथोंकी पकड़में आ जाय ॥ २८-३२ ॥

पर्वत-शिखर, राजद्वार, नदीतट, घुड़सार, हथिसार, बिमौट, हाथीके दाँतोंके अग्रभागसे कोड़ी गयी भूमि,

---

* प्रसङ्गको ठीकसे समझनेके लिये 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'से अपेक्षित अंश यहाँ भावार्थरूपमें उद्धृत किया गया है । (देखिये श्लोक-सं० ११११ से १११९)

साँड़के सींगसे खोदी गयी भूमि, कमलसमूहके नीचेके स्थान, सूअरकी खोदी हुई भूमि, गोशाला तथा चौराहा— इन बारह स्थानोंसे बारह प्रकारकी मिट्टी लेनी चाहिये। भगवान् विष्णुकी स्थापनामें ये द्वादश मृत्तिकाएँ तथा भगवान् शिवकी स्थापनामें आठ प्रकारकी मृत्तिकाएँ ग्राह्य हैं। बरगद, गूलर, पीपल, आम और जामुनकी छालसे पैदा हुई पाँच प्रकारकी गोंद संग्रहणीय हैं। आठ प्रकारके ऋतुफल मँगा लेने चाहिये। तीर्थजल, सुगन्धित जल, सर्वौषधि-मिश्रित जल, शस्य-पुष्पमिश्रित जल, स्वर्णमिश्रित, रत्न-मिश्रित तथा गो-शृङ्गके स्पर्शसे युक्त जल, पञ्चगव्य और पञ्चामृत—इन सबको देवस्नानके लिये एकत्र करे। विघ्नकर्ताओंको डरानेके लिये आटेके बने हुए वज्र आदि आयुध-द्रव्योंको भी प्रस्तुत रखना चाहिये। सहस्र छिद्रोंसे युक्त कलश तथा मङ्गलकृत्यके लिये गोरोचना भी रक्खे ॥ ३३–३७ ॥

सौ प्रकारकी ओषधियोंकी जड़, विजया, लक्ष्मणा (श्वेत कण्टकारिका), बला (अथवा अभया—हर्रे), गुरुचि, अतिबला, पाठा, सहदेवा, शतावरी, ऋद्धि, सुवर्चला और वृद्धि—इन सबका पृथक्-पृथक् स्नानके लिये उपयोग बताया गया है। रक्षाके लिये तिल और कुश आदि संग्रहणीय हैं। भस्मस्नानके लिये भस्म जुटा ले। विद्वान् पुरुष स्नानके लिये जौ और गेहूँके आटे, बेलका चूर्ण, विलेपन, कपूर, कलश तथा गड़ुओंका संग्रह कर ले। खाट, दो तूलिका (रूईभरा गद्दा तथा रजाई), तकिया, चादर आदि अन्य आवश्यक वस्त्र—इन सबको अपने वैभवके अनुसार तैयार करावे और विविध चिह्नोंसे सुसज्जित शयन-कक्षमें इनको रक्खे। घी और मधुसे युक्त पात्र, सोनेकी सलाई, पूजोपयोगी जलसे भरा पात्र, शिवकलश और लोकपालोंके लिये कलशका भी संग्रह करे ॥ ३८–४२ ॥

एक कलश निद्राके लिये भी होना चाहिये। कुण्डोंकी संख्याके अनुसार उतने ही शान्ति-कलश रक्खे जाने चाहिये। द्वारपाल आदि, धर्म आदि तथा प्रशान्त आदिके लिये भी कलश जुटा ले। वास्तुदेव, लक्ष्मी और गणेशके लिये भी अन्यान्य पृथक्-पृथक् कलश आवश्यक हैं। इन कलशोंके नीचे आधारभूमिपर धान्य-पुञ्ज रखना चाहिये। सभी कलश वस्त्र और पुष्पमालासे विभूषित किये जाने चाहिये। इनके भीतर सुवर्ण डालकर इनका स्पर्श किया जाय और इन्हें सुगन्धित जलसे भरा जाय। सभी कलशोंके ऊपर पूर्णपात्र और फल रक्खे जायँ। उनके मुखभागमें पञ्च-पल्लव रहें तथा वे कलश उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न हों। कलशोंको वस्त्रोंसे आच्छादित करे। सब ओर बिखेरनेके लिये पीली सरसों और लावाका संग्रह कर ले। पूर्ववत् ज्ञान-खड्गका भी सम्पादन करे। चरु रखनेके लिये बटलोई और उसका ढक्कन मँगा ले। ताँबेकी बनी हुई करछुल तथा पादाम्यङ्गके लिये घृत और मधुका पात्र भी संगृहीत कर ले ॥ ४३–४७ ॥

कुशके तीस दलोंसे बने हुए दो-दो हाथ लंबे-चौड़े चार-चार आसन एकत्र कर ले। इसी तरह पलाशोंके बने हुए चार-चार परिधि भी जुटा ले। तिलपात्र, हविष्यपात्र, अर्घ्यपात्र और पवित्रक एकत्र करे। इनका मान बीस-बीस पल है। घण्टा और धूपदानी भी मँगा ले। स्रुक्, स्रुवा, पिटक (पिटारी एवं टोकरी), पीठ (पीढ़ा या चौकी), व्यजन, सूखी लकड़ी, फूल, पत्र, गुग्गुल, घीके दीपक, धूप, अक्षत, तिगुना सूत, गायका घी, जौ, तिल, कुश, शान्तिकर्मके लिये त्रिविध मधुर पदार्थ (मधु, शक्कर और घी), दश पर्वकी समिधाएँ, बाँह-बराबर या एक हाथका स्रुवा, सूर्य आदि ग्रहोंकी शान्तिके लिये समिधाएँ—आक, पलाश, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुश भी संग्रहणीय हैं। आक आदिमें प्रत्येककी समिधाएँ एक सौ आठ-आठ होनी चाहिये। ये न मिल सकें तो इनकी जगह जौ और तिलोंकी आहुति देनी चाहिये। इनके सिवा घरेलू आवश्यकताकी वस्तुओंका भी संग्रह करे ॥ ४८–५३ ॥

बटलोई, करछुल, ढक्कन आदि जुटा ले। देवता आदिके लिये प्रत्येकको दो-दो वस्त्र देने चाहिये। आचार्यकी पूजाके लिये मुद्रा, मुकुट, वस्त्र, हार, कुण्डल और कङ्कन आदि तैयार करा ले। धन खर्च करनेमें कंजूसी न करे ॥५४½॥

मूर्ति धारण करनेवाले तथा अस्त्र-मन्त्रका जप करनेवाले ब्राह्मणोंको आचार्यकी अपेक्षा एक-एक चौथाई कम दक्षिणा दे। सामान्य ब्राह्मणों, ज्योतिषियों तथा शिल्पियोंको जपकर्ताओंके बराबर ही पूजा देनी चाहिये। हीरा, सूर्यकान्तमणि, नीलमणि, अतिनीलमणि, मुक्ताफल, पुष्पराग, पद्मराग तथा आठवाँ रत्न वैदूर्यमणि—इनका भी संग्रह करे। उशीर (खस), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), रक्त-

चन्दन, अगुरु, श्रीखण्ड, शारिवा (अनन्ता या श्यामालता), कुष्ठ (कुट) और शङ्खिनी (श्वेत पुन्नाग)—इन ओषधियोंका समुदाय संग्रहणीय है ॥ ५५–५७½ ॥

सोना, ताँबा, लोहा, राँगा, चाँदी, काँसी और सीसा—इन सबकी 'लोह' संज्ञा है। इनका भी संग्रह करे। हरिताल, मैनसिल, गेरू, हेममाक्षीक, पारा, वह्निगैरिक, गन्धक और अभ्रक—ये आठ धातुएँ संग्रहणीय हैं। इसी प्रकार आठ प्रकारके व्रीहियों (अनाजों) का भी संग्रह करना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—धान, गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग, जौ, तिन्नी और साँवाँ ॥ ५८–६१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिष्ठा, काल और सामग्री आदिकी विधिका वर्णन' नामक पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

छियानबेवाँ अध्याय

प्रतिष्ठामें अधिवासकी विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! पुरोहितको चाहिये कि वह स्नान करके प्रातःकाल और मध्याह्नकाल, दोनों समयोंका नित्यकर्म सम्पन्न करके मूर्तिरक्षक सहायक ब्राह्मणोंके साथ यज्ञमण्डपको पधारे। (मूर्तिभिर्जापिभिर्विप्रैः—इस पाठान्तरके अनुसार मूर्तियों और जपकर्ता ब्राह्मणोंके साथ यज्ञमण्डपमें जाय, ऐसा अर्थ समझना चाहिये।) फिर वहाँ शान्ति आदि द्वारोंका पूर्ववत् क्रमशः पूजन करे। इन द्वारोंकी दोनों शाखाओंपर प्रदक्षिणक्रमसे द्वारपालोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्व दिशामें द्वारपाल नन्दी और महाकालकी, दक्षिण दिशामें भृङ्गी और विनायककी, पश्चिम दिशामें वृषभ और स्कन्दकी तथा उत्तर दिशामें देवी और चण्डकी पूजा करे। द्वार-शाखाओंके मूलदेशमें पूर्वादि क्रमसे दो-दो कलशोंकी पूजा करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—पूर्व दिशामें प्रशान्त और शिशिर, दक्षिणमें पर्जन्य और अशोक, पश्चिममें भूतसंजीवन और अमृत तथा उत्तरमें धनद और श्रीप्रद—इन दो-दो कलशोंकी क्रमशः पूजाका विधान है। इनके नामके आदिमें 'प्रणव' और अन्तमें 'नमः' जोड़कर चतुर्थ्यन्त रूप रक्खे। यही इनके पूजनका मन्त्र है। यथा—'ॐ प्रशान्तशिशिराभ्यां नमः।' इत्यादि ॥ १–५ ॥

लोक दो, ग्रह दो, वसु दो, द्वारपाल दो, नदियाँ दो, सूर्य तीन, युग एक, वेद एक, लक्ष्मी तथा गणेश—इतने देवता यज्ञमण्डपके प्रत्येक द्वारपर रहते हैं। इनका कार्य है—विघ्नसमूहका निवारण और यज्ञका संरक्षण। पूर्वादि दस दिशाओंमें वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, चक्र और कमलकी क्रमशः पूजा करे तथा प्रत्येक दिशामें दिक्पालकी पताकाका भी पूजन करे। पूजनके मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—ॐ हूं हः वज्राय हूं फट्। ॐ हूं हः शक्तये हूं फट्। * इत्यादि ॥ ६–९ ॥

कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र (अथवा पद्मनेत्र), सुमुख और सुप्रतिष्ठित—ये ध्वजोंके आठ देवता हैं, जो पूर्वादि दिशाओंमें कोटि-कोटि भूतों-सहित पूजनीय हैं। इनके पूजन-सम्बन्धी मन्त्र इस प्रकार हैं—'ॐ कुं[1] कुमुदाय नमः।' इत्यादि। हेतुक (अथवा हेरुक), त्रिपुरघ्न, शक्ति (अथवा वह्नि), यमजिह्व, काल, छठा कराली, सातवाँ एकाङ्घ्रि और आठवाँ भीम—ये क्षेत्रपाल हैं। इनका क्रमशः पूर्वादि आठ दिशाओंमें पूर्ववत् पूजन करे। बलि, पुष्प और धूप देकर इन सबको संतुष्ट करे। तदनन्तर उत्तम एवं पवित्र तृणोंपर, अथवा बाँसके खंभोंपर क्रमशः पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वोंकी स्थापना करके सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंद्वारा उनका पूजन करे। सदाशिव-पदव्यापी मण्डपका, जो भगवान् शंकरका धाम है तथा पताका एवं शक्तिसे संयुक्त है (पाठान्तरके अनुसार पातालशक्ति या पिनाकशक्तिसे संयुक्त है), तत्त्वदृष्टिसे अवलोकन करे ॥ १०–१५ ॥

पूर्ववत् दिव्य अन्तरिक्ष एवं भूलोकवर्ती विघ्नोंका अपसारण करके पश्चिम द्वारमें प्रवेश करे और शेष

* सोमशम्भुरचित 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में मन्त्रका यही स्वरूप उपलब्ध होता है। कुछ प्रतियोंमें 'ॐ हूं फट् नमः। ॐ हूं फट् द्वाःस्थशक्तये हूं फट् नमः।' ऐसा पाठ है।

1. कहीं-कहीं—'कुं' के स्थानमें 'कौं' पाठ है।

दरवाजोंको बंद करा दे (अथवा शेष द्वारोंका दर्शनमात्र कर ले) । प्रदक्षिणक्रमसे मण्डपके भीतर जाकर वेदीके दक्षिण भागमें उत्तराभिमुख होकर बैठे और पूर्ववत् भूतशुद्धि करे । अन्तर्याग, विशेषार्घ्य, मन्त्र-द्रव्यादि-शोधन, स्वात्मपूजन तथा पञ्चगव्य आदि पूर्ववत् करे । फिर वहाँ आधारशक्तिकी प्रतिष्ठापूर्वक कलश-स्थापन करे । विशेषतः शिवका ध्यान करे । तदनन्तर क्रमशः तीनों तत्त्वोंका चिन्तन करे । ललाटमें शिवतत्त्वकी, स्कन्धदेशमें विद्यातत्त्वकी तथा पादान्त-भागमें उत्तम आत्मतत्त्वकी भावना करे । शिवतत्त्वके रुद्र, विद्यातत्त्वके नारायण तथा आत्मतत्त्वके ब्रह्मा देवता हैं । इनका अपने नाम-मन्त्रोंद्वारा पूजन करना चाहिये । इन तत्त्वोंके आदि-बीज क्रमशः इस प्रकार हैं—'ॐ हूं आम्' ॥ १६–२१ ॥

मूर्तियों और मूर्तीश्वरोंकी वहाँ पूर्ववत् स्थापना करे । उनमें व्यापक शिवका साङ्ग पूजन करके मस्तकपर शिव-हस्त रक्खे । भावनाद्वारा ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे प्रविष्ट हुए तेजसे अपने बाहर-भीतरकी अन्धकार राशिको नष्ट करके आत्म-स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करे कि 'वह सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको प्रकाशित कर रहा है ।' मूर्तिपालकोंके साथ अपने-आपको भी हार, वस्त्र और मुकुट आदिसे अलंकृत करके—'मैं शिव हूँ'—ऐसा चिन्तन करते हुए 'बोधासि' (ज्ञानमय खड्ग) को उठावे । चतुष्पदान्त संस्कारोंद्वारा यज्ञमण्डपका संस्कार करे । बिखेरने योग्य वस्तुओंको सब ओर बिखेरकर, कुशकी कूँचीसे उन सबको समेटे । उन्हें आसनके नीचे करके वार्धानीके जलसे पूर्ववत् वास्तु आदिका पूजन करे । शिव-कुम्भास्त्र और वार्धानीके सुस्थिर आसनोंकी भी पूजा करे । अपनी-अपनी दिशामें कलशोंपर विराजमान इन्द्रादि लोकपालोंका क्रमशः उनके वाहनों और आयुध आदिके साथ यथाविधि पूजन करे ॥ २२–२७ ॥

पूर्व दिशामें इन्द्रका चिन्तन करे । वे ऐरावत हाथीपर बैठे हैं । उनकी अङ्ग-कान्ति सुवर्णके समान दमक रही है । मस्तकपर किरीट शोभा दे रहा है । वे सहस्र नेत्र धारण करते हैं । उनके हाथमें वज्र शोभा पाता है । अग्निकोणमें सात ज्वालामयी जिह्वाएँ धारण किये, अक्षमाला और कमण्डलु लिये, लपटोंसे घिरे रक्त वर्णवाले अग्निदेवका ध्यान करे । उनके हाथमें शक्ति शोभा पाती है तथा बकरा उनका वाहन है । दक्षिणमें महिषारूढ दण्डधारी यमराजका चिन्तन करे, जो कालाग्निके समान प्रकाशित हो रहे हैं । नैर्ऋत्य-कोणमें लाल नेत्रवाले नैर्ऋत्यकी भावना करे, जो हाथमें तलवार लिये, शव (मुर्दे) पर आरूढ है । पश्चिममें मकरारूढ, श्वेतवर्ण, नागपाशधारी वरुणका चिन्तन करे । वायव्य-कोणमें मृगारूढ, नीलवर्ण वायुदेवका तथा उत्तरमें भेड़पर सवार कुबेरका ध्यान करे । ईशान-कोणमें त्रिशूलधारी, वृषभारूढ ईशानका, नैर्ऋत्य तथा पश्चिमके मध्यभागमें कच्छपर सवार चक्रधारी भगवान् अनन्तका तथा ईशान और पूर्वके भीतर चार मुख एवं चार भुजा धारण करनेवाले हंसवाहन ब्रह्माका ध्यान करे ॥ २८–३२ ॥

खंभोंके मूल भागमें स्थित कलशोंमें तथा वेदीपर धर्म आदिका पूजन करे । कुछ लोग सम्पूर्ण दिशाओंमें स्थित कलशोंपर अनन्त आदिकी पूजा भी करते हैं । इसके बाद शिवाज्ञा सुनावे और कलशोंको अपने पृष्ठभागतक घुमावे । तत्पश्चात् पहले कलशको और फिर वार्धानीको पूर्ववत् अपने स्थानपर रख दे । स्थिर आसनवाले शिवका कलशमें और शस्त्रके लिये ध्रुवासनका पूर्ववत् पूजन करके उद्भव-मुद्राद्वारा स्पर्श करे । उस समय भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे जगन्नाथ ! आप अपने भक्तजनपर कृपा करके इस अपने ही यज्ञकी रक्षा कीजिये ।'—यों रक्षाके लिये प्रार्थना सुनाकर कलशमें खड्गकी स्थापना करे । दीक्षा और स्थापनाके समय कलशमें, वेदीपर अथवा मण्डलमें भगवान् शिवका पूजन करे । मण्डलमें देवेश्वर शिवका पूजन करनेके पश्चात् कुण्डके समीप जाय ॥ ३३–३७ ॥

कुण्ड-नाभिको आगे करके बैठे हुए मूर्तिधारी पुरुष गुरुकी आज्ञासे अपने-अपने कुण्डका संस्कार करें । जप करनेवाले ब्राह्मण संख्यारहित मन्त्रका जप करें । दूसरे लोग संहिताका पाठ करें । अपनी शाखाके अनुसार वेदोंके पारंगत विद्वान् शान्तिपाठमें लगे रहें । ऋग्वेदी विद्वान् पूर्व दिशामें श्रीसूक्त, पावमानी ऋचा, मैत्रेय ब्राह्मण तथा वृषाकपि-मन्त्र—इन सबका पाठ करें । सामवेदी विद्वान् दक्षिणमें देवव्रत, भारुण्ड, ज्येष्ठसाम, रथन्तरसाम तथा पुरुषगीत—इन सबका गान करें । यजुर्वेदी विद्वान् पश्चिम दिशामें रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, श्लोकाध्याय तथा विशेषतः ब्राह्मणभागका पाठ करें । अथर्ववेदी विद्वान् उत्तर दिशामें नीलरुद्र, सूक्ष्मासूक्ष्म तथा अथर्वशीर्षका तत्परतापूर्वक अध्ययन करें ॥ ३८–४३ ॥

आचार्य (अरणी-मन्थनद्वारा) अग्निका उत्पादन करके उसे प्रत्येक कुण्डमें स्थापित करावें। अग्निके पूर्व आदि भागोंको पूर्व-कुण्ड आदिके क्रमसे लेकर धूप, दीप और चरुके निमित्त अग्निका उद्धार करे। फिर पहले बताये अनुसार भगवान् शंकरका पूजन करके शिवाग्निमें मन्त्र-तर्पण करे। देश, काल आदिकी सम्पन्नता तथा दुर्निमित्तकी शान्तिके लिये होम करके मन्त्रज्ञ आचार्य मङ्गलकारिणी पूर्णाहुति प्रदान करके, पूर्ववत् चरु तैयार करे और उसे प्रत्येक कुण्डमें निवेदित करे। यजमानसे वस्त्राभूषणोंद्वारा विभूषित एवं सम्मानित मूर्तिपालक ब्राह्मण स्नान मण्डपमें जायँ। भद्रपीठपर भगवान् शिवकी प्रतिमाको स्थापित करके ताड़न और अवगुण्ठनकी क्रिया करें। पूर्वकी वेदीपर पूजन करके मिट्टी, काषाय-जल, गोबर और गोमूत्रसे तथा बीच-बीचमें जलसे भगवत्प्रतिमाको स्नान करावे। तत्पश्चात् भस्म तथा गन्धयुक्त जलसे नहलावे। इसके बाद आचार्य 'अस्त्राय फट्।'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा मूर्तिपालकोंके साथ हाथ धोकर कवच-मन्त्रसे अभिमन्त्रित पीताम्बरद्वारा मूर्तिको आच्छादित करके श्वेत फूलोंसे उसकी पूजा करे। तदनन्तर उसे उत्तर-वेदीपर ले जाय ॥ ४४—५०½ ॥

वहाँ आसनयुक्त शय्यापर सुलाकर कुङ्कुममें रँगे हुए सूतसे अङ्गोंका विभाजन करके आचार्य सोनेकी शलाका-द्वारा उस प्रतिमामें दोनों नेत्र अङ्कित करे। यह कार्य शस्त्र-क्रियाद्वारा सम्पन्न होना चाहिये। पहले चिह्न बनानेवाला गुरु नेत्र-चिह्नको अञ्जनसे अङ्कित कर दे; इसके बाद वह शिल्पी, जो मूर्ति-निर्माणका कार्य पहले भी कर चुका हो, उस नेत्रचिह्नको शस्त्रद्वारा खोदे (अर्थात् खुदाई करके नेत्रकी आकृतिको स्पष्टरूपसे अभिव्यक्त करे)। अर्चाके तीन अंशसे कम अथवा एक चौथाई भाग या आधे भागमें सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये शुभ लक्षण (चिह्न) की अवतारणा करनी चाहिये। शिवलिङ्गकी लंबाईके मानमें तीनसे भाग देकर एक भागको त्याग देनेसे जो मान हो, वही लिङ्गके लक्ष्मदेहका सब ओरसे विस्तार होना चाहिये ॥ ५१—५५ ॥

एक हाथके प्रस्तरखण्डमें जो लक्ष्मरेखा बनेगी, उसकी गहराई और चौड़ाई उतनी ही होगी, जितनी जौके नौ भागोंमेंसे एकको छोड़ने और आठको लेनेसे होती है। इसी प्रकार डेढ़ हाथ या दो हाथ आदिके लिङ्गसे लेकर नौ हाथतकके लिङ्गमें क्रमशः ½ भागकी वृद्धि करके लक्ष्म-रेखा बनानी चाहिये। इस तरह नौ हाथवाले लिङ्गमें आठ जौके बराबर मोटी और गहरी लक्ष्मरेखा होनी चाहिये। जो शिवलिङ्ग परस्पर अन्तर रखते हुए उत्तरोत्तर सवाये बड़े हों, वहाँ लक्ष्म-देहका विस्तार एक-एक जौ बढ़ाकर करना चाहिये। गहराई और मोटाईकी वृद्धिके अनुसार रेखा भी एक तिहाई बढ़ जायगी। सभी शिवलिङ्गोंमें लिङ्गका ऊपरी भाग ही उनका सूक्ष्म मस्तक है ॥ ५६—५९ ॥

लक्ष्म अर्थात् चिह्नका जो क्षेत्र है, उसका आठ भाग करके दो भागोंको मस्तकके अन्तर्गत रक्खे। शेष छः भागोंमेंसे नीचेके दो भागोंको छोड़कर मध्यके अवशिष्ट भागोंमें तीन रेखा खींचे और उन्हें पृष्ठदेशमें ले जाकर जोड़ दे। रत्नमय लिङ्गमें लक्षणोद्धारकी आवश्यकता नहीं है। भूमिसे स्वतः प्रकट हुए अथवा नर्मदादि नदियोंसे प्रादुर्भूत हुए शिवलिङ्गमें भी लक्ष्मोद्धार अपेक्षित नहीं है। रत्नमय लिङ्गोंके रत्नोंमें जो निर्मल प्रभा होती है, वही उनके स्वरूपका लक्षण (परिचायक) है। मुखभागमें जो नेत्रोन्मीलन किया जाता है, वह आवश्यक है और उसीके संनिधानके लिये वह लक्ष्म या चिह्न बनाया जाता है। लक्षणोद्धारकी रेखाका घृत और मधुसे मृत्युञ्जय-मन्त्र-द्वारा पूजन करके, शिल्पिदोषकी निवृत्तिके लिये मृत्तिका आदिसे स्नान कराकर, लिङ्गकी अर्चना करे। फिर दान-मान आदिसे शिल्पीको संतुष्ट करके आचार्यको गोदान दे।

तदनन्तर सौभाग्यवती स्त्रियाँ धूप, दीप आदिके द्वारा लिङ्गकी विशेष पूजा करके मङ्गल-गीत गायें और सव्य या अपसव्य भावसे सूत्र अथवा कुशके द्वारा स्पर्शपूर्वक रोचना अर्पित करके न्योछावर दें। इसके बाद यजमान गुड़, नमक और धनिया देकर उन स्त्रियोंको विदा करे ॥ ६०—६६ ॥

तत्पश्चात् गुरु मूर्तिरक्षक ब्राह्मणोंके साथ 'नमः' या प्रणव-मन्त्रके द्वारा मिट्टी, गोबर, गोमूत्र और भस्मसे पृथक्-पृथक् स्नान करावे। एक-एकके बाद बीचमें जलसे स्नान कराता जाय। फिर पञ्चगव्य, पञ्चामृत, रूखापन दूर करनेवाले कषाय द्रव्य, सर्वौषधिमिश्रित जल, श्वेत पुष्प, फल, सुवर्ण, रत्न, सींग एवं जौ मिलाये हुए जल, सहस्रधारा, दिव्यौषधियुक्त जल, तीर्थ-जल, गङ्गाजल, चन्दनमिश्रित जल, क्षीरसागर आदिके जल, कलशोंके जल तथा शिवकलशके जलसे अभिषेक करे। रूखेपनको दूर

करनेवाला विलेपन लगाकर उत्तम गन्ध और चन्दन आदिसे पूजन करनेके पश्चात् ब्रह्ममन्त्रद्वारा पुष्प तथा कवच-मन्त्रसे लाल वस्त्र चढ़ावे । फिर अनेक प्रकारसे आरती उतारकर रक्षा और तिलकपूर्वक गीत-वाद्य आदिसे विविध द्रव्योंसे तथा जय-जयकार और स्तुति आदिसे भगवान्‌को संतुष्ट करके पुरुष-मन्त्रसे उनकी पूजा करे । तदनन्तर हृदय-मन्त्रसे आचमन करके इष्टदेवसे कहे—'प्रभो ! उठिये' ॥ ६७–७३ ॥

फिर इष्टदेवको ब्रह्मरथपर बिठाकर उसीके द्वारा उन्हें क्रम और घुमाते और द्रव्य बिखेरते हुए मण्डपके पश्चिम द्वारपर ले जाय और वहाँ शय्यापर भगवान्‌को पधरावे । आसनके आदि-अन्तमें शक्तिकी भावना करके उस शुभ आसनपर उन्हें विराजमान करे । पश्चिमाभिमुख प्रासादमें पश्चिम दिशाकी ओर पिण्डिका स्थापित करके उसके ऊपर ब्रह्मशिला रक्खे । शिवकोणमें सौ अस्त्र-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित निद्रा-कलश और शिवासनकी कल्पना करके, हृदय-मन्त्रसे अर्घ्य दे, देवताको उठाकर लिङ्गमय आसनपर शिरोमन्त्रद्वारा पूर्वकी ओर मस्तक रखते हुए आरोपित एवं स्थापित करे । इस प्रकार उन परमात्माका साक्षात्कार होनेपर चन्दन और धूप चढ़ाते हुए उनकी पूजा करे तथा कवच-मन्त्रसे वस्त्र अर्पित करे । घरका उपकरण आदि अर्पित कर दे । फिर अपनी शक्तिके अनुसार नमस्कार-पूर्वक नैवेद्य निवेदन करे । अभ्यङ्ग-कर्मके लिये घृत और मधुसे युक्त पात्र इष्टदेवके चरणोंके समीप रक्खे । वहाँ उपस्थित हुए आचार्य शक्तिसे लेकर भूमि-पर्यन्त छत्तीस तत्त्वोंके समूहको उनके अधिपतियोंसहित स्थापित करके फूलकी मालाओंसे उनके तीन भागोंकी कल्पना करे ॥ ७४–८० ॥

वे तीन भाग मायासे लेकर शक्ति-पर्यन्त हैं । उनमें प्रथम भाग चतुष्कोण, द्वितीय भाग अष्टकोण और तृतीय भाग वर्तुलाकार है । प्रथम भागमें आत्मतत्त्व, द्वितीय भागमें विद्यातत्त्व और तृतीय भागमें शिवतत्त्वकी स्थिति है । इन भागोंमें सृष्टिक्रमसे एक-एक अधिपति हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामसे प्रसिद्ध हैं । तदनन्तर मूर्तियों और मूर्तीश्वरोंका पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे न्यास करे । पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश—ये आठ मूर्तिरूप हैं । इनका न्यास करनेके पश्चात् इनके अधिपतियोंका न्यास करना चाहिये । उनके नाम इस प्रकार हैं—शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, ईश्वर, महादेव और भीम । इनके वाचक मन्त्र निम्नलिखित हैं—लं, रं, शं, वं, यं, पं, सं, हं* अथवा त्रिमात्रिक प्रणव तथा 'ह्रां' अथवा हृदय-मन्त्र अथवा कहीं-कहीं मूल-मन्त्र इनके (मूर्तियों और मूर्तिपतियोंके) पूजनके उपयोगमें आते हैं । अथवा पञ्चकुण्डात्मक यागमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच मूर्तियोंका ही न्यास करे ॥ ८१–८६ ॥

फिर क्रमशः इनके पाँच अधिपतियों—ब्रह्मा, शेषनाग, रुद्र, ईश और सदाशिवका मन्त्रश पुरुष सृष्टि-क्रमसे न्यास करे । यदि यजमान मुमुक्षु हो तो वह पञ्च-मूर्तियोंके स्थानमें 'निवृत्ति' आदि पाँच कलाओं तथा उनके 'अजात' आदि अधिपतियोंका न्यास करे । अथवा सर्वत्र व्यापिरूप कारणात्मक त्रितत्त्वका ही न्यास करना चाहिये । शुद्ध अध्वामें विश्वेश्वरोंका और अशुद्धमें लोक-नायकोंका मूर्तिपतियोंके रूपमें दर्शन करना चाहिये । भोगी (सर्प) भी मन्त्रेश्वर हैं । पैंतीस, आठ, पाँच और तीन मूर्तिरूप-तत्त्व क्रमशः कहे गये हैं । ये ही इनके तत्त्व हैं । इन तत्त्वोंके अधिपतियोंके मन्त्रोंका दिग्दर्शन-मात्र कराया जाता है । ॐ ह्रां शक्तितत्त्वाय नमः । इत्यादि । ॐ ह्रां शक्तितत्त्वाधिपाय नमः । इत्यादि । ॐ ह्रां क्ष्मामूर्तये नमः । ॐ ह्रां क्ष्मामूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः । इत्यादि । ॐ ह्रां शिवतत्त्वाय नमः । ॐ ह्रां शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः । इत्यादि । नाभि-मूलसे उच्चरित होकर घण्टानादके समान सब ओर फैलनेवाले, ब्रह्मादि कारणोंके त्यागपूर्वक, द्वादशान्तस्थानको प्राप्त हुए मनसे अभिन्न तथा आनन्द-रसके उद्गमको पा लेनेवाले मन्त्रका और निष्कल, व्यापक शिवका, जो अड़तीस कलाओंसे युक्त, सहस्रों किरणोंसे प्रकाशमान, सर्वशक्तिमय तथा साङ्ग हैं, ध्यान करते हुए उन्हें द्वादशान्तसे लाकर शिवलिङ्गमें स्थापित करे ॥ ८७–९४ ॥

इस प्रकार शिवलिङ्गमें जीवन्यास होना चाहिये, जो सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका साधक है । पिण्डिका आदिमें किस प्रकार न्यास करना चाहिये, यह बताया जाता है । पिण्डिकाको स्नान कराकर उसमें चन्दन आदिका लेप

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में इन मन्त्रोंका क्रम 'व, र, ल, प, व, य, ह, प्रणव' इस प्रकार दिया गया है ।

करे और उसे सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित करके, उसके भगस्वरूप छिद्रमें पञ्चरत्न आदि डालकर, उस पिण्डिकाको लिङ्गसे उत्तर दिशामें स्थापित करे। उसमें भी लिङ्गकी ही भाँति न्यास करके विधिपूर्वक उसकी पूजा करे। उसका स्नान आदि पूजन-कार्य सम्पन्न करके लिङ्गके मूलभागमें शिवका न्यास करे। फिर शक्त्यन्त वृषभका भी स्नान आदि संस्कार करके स्थापन करना चाहिये ॥ ९५-९८ ॥

तत्पश्चात् पहले प्रणवका, फिर 'हां हूं हीं।'—इन तीन बीजोंमेंसे किसी एकका उच्चारण करते हुए क्रिया-शक्तिसहित आधाररूपिणी शिला—पिण्डिकाका पूजन करे। भस्म, कुशा और तिलसे तीन प्राकार (परकोटा) बनावे तथा रक्षाके लिये आयुधोंसहित लोकपालोंको बाहरकी ओर नियोजित एवं पूजित करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं- 'ॐ हीं क्रियाशक्त्यै नमः। ॐ हीं महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा।' निम्नाङ्कित मन्त्रके द्वारा पिण्डिकामें पूजन करे— 'ॐ हीं आधारशक्त्यै नमः। ॐ हां वृषभाय नमः।' ॥ ९९—१०१ ॥

धारिका, दीप्ता, अत्युग्रा, ज्योत्स्ना, बलोत्कटा, धात्री और विधात्री—इनका पिण्डोंमें न्यास करे; अथवा वामा, ज्येष्ठा, क्रिया, ज्ञाना और वेधा (अथवा रोधा या प्रह्वी)—इन पाँच नायिकाओंका न्यास करे। अथवा क्रिया, ज्ञाना तथा इच्छा—इन तीनका ही न्यास करे; पूर्ववत् शान्तिमूर्तियोंमें तमी, मोहा, क्षुधा, निद्रा, मृत्यु, माया, जरा और भया—इनका न्यास करे; अथवा तमा, मोहा, रौद्रा, रति, अपज्वरा—इन पाँचोंका न्यास करे; या क्रिया, ज्ञाना और इच्छा—इन तीन अधिनायिकाओंका आत्मा आदि तीन तीव्र मूर्तिवाले तत्त्वोंमें न्यास करे। यहाँ भी पिण्डिका, ब्रह्मशिला आदिमें पूर्ववत् गौरी आदि शब्दों (मन्त्रों) द्वारा ही सब कार्य विधिवत् सम्पन्न करे ॥ १०२—१०६ ॥

इस प्रकार न्यास-कर्म करके कुण्डके समीप जा, उसके भीतर महेश्वरका, मेखलाओंमें चतुर्भुजका, नाभिमें क्रियाशक्तिका तथा ऊर्ध्वभागमें नादका न्यास करे। तदनन्तर कलश, वेदी, अग्नि और शिवके द्वारा नाडी-संधान-कर्म करे। कमलके तन्तुकी भाँति सूक्ष्मशक्ति ऊर्ध्वगत वायुकी सहायतासे ऊपर उठती और शून्य मार्गसे शिवमें प्रवेश करती है। फिर वह ऊर्ध्वगत शक्ति वहाँसे निकलती और शून्यमार्गसे अपने भीतर प्रवेश करती है। इस प्रकार चिन्तन करे। मूर्तिपालकोंको भी सर्वत्र इसी प्रकार संधान करना चाहिये ॥ १०७—११० ॥

कुण्डमें आधार-शक्तिका पूजन करके, तर्पण करनेके पश्चात्, क्रमशः तत्त्व, तत्त्वेश्वर, मूर्ति और मूर्तीश्वरोंका घृत आदिसे पूजन और तर्पण करे। फिर उन दोनों (तत्त्व, तत्त्वेश्वर एवं मूर्ति, मूर्तीश्वर) को संहिता-मन्त्रोंसे एक सौ, एक सहस्र अथवा आधा सहस्र आहुतियाँ दे। साथ ही पूर्णाहुति भी अर्पण करे। तत्त्व और तत्त्वेश्वरों तथा मूर्ति और मूर्तीश्वरोंका पूर्वोक्त रीतिसे एक दूसरेके संनिधानमें तर्पण करके मूर्तिपालक भी उनके लिये आहुतियाँ दें। इसके बाद द्रव्य और कालके अनुसार वेदों और अङ्गोंद्वारा तर्पण करके, शान्ति-कलशके जलसे प्रोक्षित कुश-मूलद्वारा लिङ्गके मूल-भागका स्पर्श करके, होम-संख्याके बराबर जप करे। हृदय-मन्त्रसे संनिधापन और कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठन करे ॥ १११-११५ ॥

इस प्रकार संशोधन करके, लिङ्गके ऊर्ध्व-भागमें ब्रह्मा और अन्त (मूल) भागमें विष्णुका पूजन आदि करके, शुद्धिके लिये पूर्ववत् सारा कार्य सम्पन्न कर, होम-संख्याके अनुसार जप आदि करे। कुशके मध्यभागसे लिङ्गके मध्यभागका और कुशके अग्रभागसे लिङ्गके अग्रभागका स्पर्श करे। जिस मन्त्रसे जिस प्रकार संधान किया जाता है, वह इस समय बताया जाता है— ॐ हां हं, ॐ ॐ एं, ॐ भूं भूं वायुमूर्तये नमः। ॐ हां वां, ओं ॐ ओं वां, ॐ भूं भूं वां वह्निमूर्तये नमः*। इसी प्रकार यजमान आदि मूर्तियोंके साथ भी अभिसंधान करना चाहिये। पञ्चमूर्त्यात्मक शिवके लिये भी हृदयादि-मन्त्रोंद्वारा इसी तरह संधान-कर्म करनेका विधान है। त्रितत्त्वात्मक स्वरूपमें मूलमन्त्र अथवा अपने बीज-मन्त्रोंद्वारा संधान-कर्म करनेकी विधि है—ऐसा जानना चाहिये। शिला, पिण्डिका एवं वृषभके लिये भी इसी तरह संधान आवश्यक है। प्रत्येक

* आचार्य सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' में ये मन्त्र इस प्रकार उपलब्ध होते हैं—ॐ हां हां वा, ॐ ॐ ॐ वा, ॐ हूं हूं वा, क्ष्मामूर्तये नमः। ॐ हां हां वा, ॐ ॐ ॐ वा, ॐ रूं रूं वा, वह्निमूर्तये नमः।

भागकी शुद्धिके लिये अपने मन्त्रोंद्वारा घृतादि होम करे और उसे पूर्णाहुतिद्वारा पृथक् कर दे ॥ ११९—१२० ॥

न्यूनता आदि दोषसे छुटकारा पानेके लिये शिव-मन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ दे और जो कर्म किया गया है, उसे शिवके कानमें निवेदन करे—'प्रभो! आपकी शक्तिसे ही मेरेद्वारा इस कार्यका सम्पादन हुआ है, ॐ भगवान् रुद्रको नमस्कार है। रुद्रदेव! आपको मेरा नमस्कार है। यह कार्य विधिपूर्ण हो या अपूर्ण, आप अपनी शक्तिसे ही इसे पूर्ण करके ग्रहण करें।' '**ॐ ह्रीं शांकरि पूरय स्वाहा।**'—ऐसा कहकर पिण्डिकामें न्यास करे। तदनन्तर ज्ञानी पुरुष लिङ्गमें क्रिया-शक्तिका और पीठ-विग्रहमें ब्रह्मशिलाके ऊपर आधाररूपिणी शक्तिका न्यास करे ॥ १२१—१२५ ॥

सात, पाँच, तीन अथवा एक राततक उसका निरोध करके या तत्काल ही उसका अधिवासन करे। अधिवासनके बिना कोई भी याग सम्पादित होनेपर भी फलदायक नहीं होता। अतः अधिवासन अवश्य करे। अधिवासन-कालमें प्रतिदिन देवताओंको अपने-अपने मन्त्रोंद्वारा सौ-सौ आहुतियाँ दे तथा शिव-कलश आदिकी पूजा करके दिशाओंमें बलि अर्पित करे ॥ १२६-१२७½ ॥

गुरु आदिके साथ रातमें नियमपूर्वक वास 'अधिवास' कहलाता है। 'अधि'पूर्वक 'वस' धातुसे भावमें 'घञ्' प्रत्यय किया गया है। इससे 'अधिवास' शब्द सिद्ध हुआ है ॥ १२८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिष्ठाके अन्तर्गत संधान एवं अधिवासकी विधिका वर्णन' नामक छियानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

शिव-प्रतिष्ठाकी विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द! प्रातःकाल नित्य-कर्मके अनन्तर द्वार-देवताओंका पूजन करके मण्डपमें प्रवेश करे। पूर्वोक्त विधिसे देहशुद्धि आदिका अनुष्ठान करे। दिक्पालोंका, शिव-कलशका तथा वार्धानी (जलपात्र) का पूजन करके अष्टपुष्पिकाद्वारा शिवलिङ्गकी अर्चना करे और क्रमशः आहुति दे, अग्निदेवको तृप्त करे। तदनन्तर शिवकी आज्ञा ले '**अस्त्राय फट्।**'का उच्चारण करते हुए मन्दिरमें प्रवेश करे तथा '**अस्त्राय हुं फट्।**' बोलकर वहाँके विघ्नोंका अपसारण करे ॥ १—३ ॥

शिलाके ठीक मध्यभागमें शिवलिङ्गकी स्थापना न करे; क्योंकि वैसा करनेपर वेध-दोषकी आशङ्का रहती है। इसलिये मध्यभागको त्यागकर, एक या आधा जौ किंचित् ईशान भागका आश्रय ले आधारशिलामें शिवलिङ्गकी स्थापना करे। मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस (अनन्त) नाम-धारिणी, सर्वाधारस्वरूपिणी, सर्वव्यापिनी शिलाको दृष्टियोग-द्वारा अविचल भावसे स्थापित करे। अथवा निम्नाङ्कित मन्त्रसे शिवकी आसनस्वरूपा उस शिलाकी पूजा करे—'**ॐ नमो व्यापिनि भगवति स्थिरेऽचले ध्रुवे ह्रीं लं ह्रीं स्वाहा।**' पूजनसे पहले यों कहे—'आधारशक्ति-स्वरूपिणी शिले! तुम्हें भगवान् शिवकी आज्ञासे यहाँ नित्य-निरन्तर स्थिरतापूर्वक स्थित रहना चाहिये।'—ऐसा कहकर पूजन करनेके पश्चात् अवरोधिनी-मुद्रासे शिलाको अवरुद्ध (स्थिरतापूर्वक स्थापित) कर दे ॥ ४—८ ॥

हीरे आदि रत्न, उशीर (खस) आदि ओषधियाँ, लौह और सुवर्ण, कांस्य आदि धातु, हरिताल आदि, धान आदिके पौधे तथा पूर्वकथित अन्य वस्तुएँ क्रमशः एकत्र करे और मन-ही-मन भावना करे कि 'ये सब वस्तुएँ कान्ति, आरोग्य, देह, वीर्य और शक्तिस्वरूप हैं।' इस प्रकार एकाग्र-चित्तसे भावना करके लोकपाल और शिवसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा पूर्वादि कुण्डोंमें इन वस्तुओंमेंसे एक-एकको क्रमशः डाले। सोने अथवा ताँबेके बने हुए कछुए या वृषभको द्वारके सम्मुख रखकर नदीके किनारेकी या पर्वतके शिखरकी मिट्टीसे युक्त करे और उसे बीचके कुण्ड आदिमें डाल दे। अथवा सुवर्णनिर्मित मेरुको मधूक, अक्षत और अञ्जनसे युक्त करके उसमें डाले अथवा सोने या चाँदीकी बनी हुई पृथ्वीको सम्पूर्ण बीजों और सुवर्णसे संयुक्त करके उस मध्यम कुण्डमें डाले। अथवा सोने, चाँदी या सब प्रकारके लोहसे निर्मित सुवर्णमय केसरोंसे युक्त कमल या अनन्त (शेषनाग) की मूर्तिको उसमें डाले ॥ ९—१५ ॥

शक्तिसे लेकर मूर्ति-पर्यन्त अथवा शक्तिसे लेकर शक्ति-पर्यन्त तत्त्वका देवाधिदेव महादेवके लिये आसन निर्मित करके उसमें खीर या गुग्गुलका लेप करे। तत्पश्चात् वस्त्रसे गर्तको आच्छादित करके कवच और अस्त्र-मन्त्रद्वारा उसकी रक्षा करे। फिर दिक्पालोंको बलि देकर आचार्य आचमन करे। शिला और गर्तके सङ्ग-दोषकी निवृत्तिके लिये शिव-मन्त्रसे अथवा अस्त्र-मन्त्रसे विधिपूर्वक सौ आहुतियाँ दे। साथ ही पूर्णाहुति भी करे। वास्तु देवताओंको एक-एक आहुति देकर तृप्त करनेके पश्चात् हृदय-मन्त्रसे भगवान्‌को उठाकर मङ्गल-वाद्य और मङ्गल-पाठ आदिके साथ ले आवे॥ १६—१९॥

गुरु भगवान्‌के आगे-आगे चले और चार दिशाओंमें स्थित चार मूर्तिपालोंके साथ यजमान स्वयं भगवान्‌की सवारीके पीछे-पीछे चले। मन्दिर आदिके चारों ओर घुमाकर शिवलिङ्गको भद्र-द्वारके सम्मुख नहलावे और अर्घ्य देकर उसे मन्दिरके भीतर ले जाय। खुले द्वारसे अथवा द्वारके लिये निश्चित स्थानसे शिवलिङ्गको मन्दिरमें ले जाय। इन सबके अभावमें द्वार बंद करनेवाली शिलासे शून्य-मार्गसे अथवा उस शिलाके ऊपरसे होकर मन्दिरमें प्रवेशका विधान है। दरवाजेसे ही महेश्वरको मन्दिरमें ले जाय, परंतु उनका द्वारसे स्पर्श न होने दे। यदि देवालयका समारम्भ हो रहा हो तो किसी कोणसे भी शिवलिङ्गको मन्दिरके भीतर प्रविष्ट कराया जा सकता है। व्यक्त अथवा स्थूल शिवलिङ्गके मन्दिर-प्रवेशके लिये सर्वत्र यही विधि जाननी चाहिये। घरमें प्रवेशका मार्ग द्वार ही है, इसका साधारण लोगोंको भी प्रत्यक्ष अनुभव है। यदि बिना द्वारके घरमें प्रवेश किया जाय तो गोत्रका नाश होता है—ऐसी मान्यता है॥ २०—२४½॥

तदनन्तर पीठपर, द्वारके सामने शिवलिङ्गको स्थापित करके नाना प्रकारके वाद्यों तथा मङ्गलसूचक ध्वनियोंके साथ उसपर दूर्वा और अक्षत चढ़ावे तथा '**समुत्तिष्ठ नमः**'—ऐसा कहकर महापाशुपत-मन्त्रका पाठ करे। इसके बाद आचार्य गर्तमें रक्खे हुए घटको वहाँसे हटाकर मूर्तिपालोंके साथ यन्त्रमें स्थापित करावे और उसमें कुङ्कुम आदिका लेप करके, शक्ति और शक्तिमान्‌की एकताका चिन्तन करते हुए, लयान्त मूलमन्त्रका उच्चारण करके, उस आलम्बन-लक्षित घटका स्पर्शपूर्वक पुनः गर्तमें ही स्थापन करा दे। ब्रह्मभागके एक अंश, दो अंश, आधा अंश अथवा आठवें अंशतक या सम्पूर्ण ब्रह्मभागका ही गर्तमें प्रवेश करावे। फिर नाभि-पर्यन्त दीर्घाओंके साथ शीशेका आवरण देकर, एकाग्रचित्त हो, नीचेके गर्तको बालूसे पाट दे और कहे—'भगवन्! आप सुस्थिर हो जाइये'॥ २५—३०॥

तदनन्तर लिङ्गके स्थिर हो जानेपर सकल (सावयव) रूपवाले परमेश्वरका ध्यान करके, शक्त्यन्त-मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए, शिवलिङ्गके स्पर्शपूर्वक उसमें निष्कली-करण-न्यास करे। जब शिवलिङ्गकी स्थापना हो रही हो, उस समय जिस-जिस दिशाका आश्रय ले, उस-उस दिशाके दिक्पाल-सम्बन्धी मन्त्रका उच्चारण करके पूर्णाहुति-पर्यन्त होम करे और दक्षिणा दे। यदि शिवलिङ्गसे शब्द प्रकट हो अथवा उसका मुख्यभाग हिले या फट-फूट जाय तो मूल-मन्त्रसे या 'बहुरूप' मन्त्रद्वारा सौ आहुतियाँ दे। इसी प्रकार अन्य दोष प्राप्त होनेपर शिवशास्त्रोक्त शान्ति करे। उक्त विधिसे यदि शिवलिङ्गमें न्यासका विधान किया जाय तो कर्ता दोषका भागी नहीं होता। तदनन्तर लक्षणस्पर्शरूप पीठबन्ध करके गौरीमन्त्रसे उसका लय करे। फिर पिण्डीमें सृष्टिन्यास करे॥ ३१—३५॥

लिङ्गके पार्श्वभागमें जो संधि (छिद्र) हो, उसको बालू एवं वज्रलेपसे भर दे। तत्पश्चात् गुरु मूर्तिपालकोंके साथ शान्तिकलशके आधे जलसे शिवलिङ्गको नहलाकर, अन्य कलशों तथा पञ्चामृत आदिसे भी अभिषिक्त करे। फिर चन्दन आदिका लेप लगा, जगदीश्वर शिवकी पूजा करके, उमा-महेश्वर-मन्त्रोंद्वारा लिङ्गमुद्रासे उन दोनोंका स्पर्श करे। इसके बाद छहों अध्वाओंके न्यासपूर्वक त्रितत्त्वन्यास करके, मूर्तिन्यास, दिक्पालन्यास, अङ्गन्यास एवं ब्रह्मन्यासपूर्वक ज्ञानशक्तिका लिङ्गमें तथा क्रियाशक्तिका पीठमें न्यास करनेके पश्चात् स्नान करावे॥ ३६—३९॥

गन्धका लेपन करके धूप दे और व्यापकरूपसे शिवका न्यास करे। हृदय-मन्त्रद्वारा पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य और फल निवेदन करे। यथाशक्ति इन वस्तुओंको निवेदित करनेके पश्चात् महादेवजीको आचमन करावे। फिर विशेषार्घ्य देकर मन्त्र जपे और भगवान्‌के वरदायक हाथमें उस जपको अर्पित करनेके पश्चात् इस प्रकार कहे—'हे नाथ! जबतक चन्द्रमा, सूर्य और तारोंकी स्थिति रहे, तबतक मूर्तीशों तथा मूर्तिपालकोंके साथ आप स्वेच्छापूर्वक ही इस मन्दिरमें सदा स्थित रहें।' ऐसा कहकर प्रणाम

करनेके पश्चात् बाहर जाय और हृदय या प्रणव-मन्त्रसे वृषभ (नन्दिकेश्वर) की स्थापना करके, फिर पूर्ववत् बलि निवेदन करे। तत्पश्चात् न्यूनता आदि दोषके निराकरणके लिये मृत्युञ्जय-मन्त्रसे सौ बार समिधाओंकी आहुति दे एवं शान्तिके लिये खीरसे होम करे ॥ ४०—४४ ॥

इसके बाद यों प्रार्थना करे—'महाविभो ! ज्ञान अथवा अज्ञानपूर्वक कर्ममें जो त्रुटि रह गयी है, उसे आप पूर्ण करें।' यों कहकर यथाशक्ति सुवर्ण, पशु एवं भूमि आदि सम्पत्ति तथा गीत-वाद्य आदि उत्सव, सर्वकारणभूत अम्बिकानाथ शिवको भक्तिपूर्वक समर्पित करे। तदनन्तर चार दिनोंतक लगातार दान एवं महान् उत्सव करे। मन्त्रज्ञ आचार्यको चाहिये कि उत्सवके इन चार दिनोंमेंसे तीन दिनोंतक तीनों समय मूर्तिपालकोंके साथ होम करे और चौथे दिन पूर्णाहुति देकर, बहुरूप-सम्बन्धी मन्त्रसे चरु निवेदित करे। सभी कुण्डोंमें सम्पातात्हुतिसे शोधित चरु अर्पित करना चाहिये। उक्त चार दिनोंतक निर्माल्य न हटावे। चौथे दिनके बाद निर्माल्य हटाकर, स्नान करानेके पश्चात् पूजन करे। सामान्य लिङ्गोंमें साधारण मन्त्रोंद्वारा पूजा करनी चाहिये। लिङ्ग-चैतन्यको छोड़कर स्थाणु-विसर्जन करे। असाधारण लिङ्गोंमें 'क्षमस्व' इत्यादि कहकर विसर्जन करे ॥ ४५—५० ॥

आवाहन, अभिव्यक्ति, विसर्ग, शक्तिरूपता और प्रतिष्ठा—ये पाँच बातें मुख्य हैं। कहीं-कहीं प्रतिष्ठाके अन्तमें स्थिरता आदि गुणोंकी सिद्धिके लिये सात आहुतियाँ देनेका विधान है। भगवान् शिव स्थिर, अप्रमेय, अनादि, बोध-स्वरूप, नित्य, सर्वव्यापी, अविनाशी एवं आत्मतृप्त हैं। महेश्वरकी संनिधि या उपस्थितिके लिये ये गुण कहे गये हैं। आहुतियोंका क्रम इस प्रकार है—'ॐ नमः शिवाय स्थिरो भव नमः स्वाहा।'—इत्यादि। इस प्रकार इस कार्यका सम्पादन करके शिव-कलशकी भाँति दो कलश और तैयार करे। उनमेंसे एक कलशके जलसे भगवान् शिवको स्नान कराकर, दूसरा यजमानके स्नानके लिये रक्खे। (कहीं-कहीं 'कर्मस्थानाय धारयेत्।' ऐसा पाठ है। इसके अनुसार दूसरे कलशका जल कर्मानुष्ठानके लिये स्थापित करे, यह अर्थ समझना चाहिये।) इसके बाद बलि देकर आचमन करनेके पश्चात् शिवकी आज्ञासे बाहर जाय ॥ ५१—५५ ॥

याग-मण्डपके बाहर मन्दिरके ईशानकोणमें चण्डका स्थापन-पूजन करे। फिर मण्डपमें धामके गर्भके बराबर उत्तम पीठपर आसनकी कल्पना करके, पूर्ववत् न्यास, होम आदिका अनुष्ठान करे। फिर ध्यानपूर्वक 'सद्योजात' आदिकी स्थापना करके, वहाँ ब्रह्माङ्गोंद्वारा विधिवत् पूजन करे। ब्रह्माङ्गोंका वर्णन पहले किया जा चुका है। अब जिस प्रकार मन्त्रद्वारा पूजन किया जाता है, उसे सुनो—'ॐ वं सद्योजाताय हूं फट् नमः।' 'ॐ विं वामदेवाय हूं फट् नमः।' 'ॐ वुं अघोराय हूं फट् नमः।' इसी प्रकार 'ॐ वें तत्पुरुषाय हूं फट् नमः' तथा 'ॐ वौं ईशानाय हूं फट् नमः।'—ये मन्त्र हैं।* ॥ ५६—५९ ॥

इस प्रकार जप निवेदन करके, तर्पण करनेके पश्चात्, स्तुतिपूर्वक विज्ञापना देकर चण्डेशसे प्रार्थना करे—'हे चण्डेश ! जबतक श्रीमहादेवजी यहाँ विराजमान हैं, तबतक तुम भी इनके समीप विद्यमान रहो। मैंने अज्ञानवश जो कुछ भी न्यूनाधिक कर्म किया है, वह सब तुम्हारे कृपाप्रसादसे पूर्ण हो जाय। तुम स्वयं उसे पूर्ण करो।' जहाँ बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) हो, जहाँ चल लोहमय (सुवर्णमय) लिङ्ग हो, जहाँ सिद्धलिङ्ग (ज्योतिर्लिङ्गादि) तथा स्वयम्भूलिङ्ग हों, वहाँ और सब प्रकारकी प्रतिमाओंपर चढ़े हुए निर्माल्यमें चण्डेशका अधिकार नहीं होता है। अद्वैतभावना-युक्त यजमानपर तथा स्थण्डिलेश-विधिमें भी चण्डेशका अधिकार नहीं है†। चण्डका पूजन करके स्नापक (अभिषेक करनेवाला गुरु) स्वयं ही पत्नी और पुत्रसहित यजमानको पूर्व-स्थापित कलशके जलसे स्नान कराने। यजमान भी स्नापक गुरुका महेश्वरकी भाँति पूजन करके, धनकी कंजूसी छोड़कर, उन्हें भूमि और सुवर्ण आदिकी दक्षिणा दे ॥ ६०-६४½ ॥

तत्पश्चात् मूर्तिपालकों तथा जपकर्ता ब्राह्मणोंका, ज्योतिषीका और शिल्पीका भी भलीभाँति विधिवत् पूजन

---

* इन मन्त्रोंके विषयमें पाठभेद मिलता है। सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में ये मन्त्र इस प्रकार दिये गये हैं—'ॐ वैं सद्योजाताय हूं फट् नमः।' 'ॐ वैं तत्पुरुषाय हूं फट् नमः।' 'ॐ वौं प्रशमनाय हूं फट् नमः।'

† बाणलिङ्गे चले लोहे सिद्धलिङ्गे स्वयम्भुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्।
अद्वैतभावनायुक्ते स्थण्डिलेशविधावपि ॥
(अग्नि० ९७। ६२-६३)

करके दीनों और अनाथों आदिको भोजन करावे। इसके बाद यजमान गुरुसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे भगवन्! यहाँ सम्मुख करनेके लिये मैंने आपको जो कष्ट दिया है, वह सब आप क्षमा करें; क्योंकि नाथ! आप करुणाके सागर हैं, अतः मेरा सारा अपराध भूल जायँ।' इस प्रकार प्रार्थना करनेवाले यजमानको सद्गुरु अपने हाथसे कुश, पुष्प और अक्षतपुञ्जके साथ प्रतिष्ठाजनित पुण्यकी सत्ता समर्पित करे, जिसका स्वरूप चमकते हुए तारोंके समान दीप्तिमान् है ॥ ६५-६८ ॥

तदनन्तर, पाशुपत-मन्त्रका जप करके, परमेश्वरको प्रणाम करनेके अनन्तर, भूतगणोंको बलि अर्पित करे और इस प्रकार उन सबको समीप लाकर यों निवेदन करे—'आपलोगोंको तबतक यहाँ स्थित रहना चाहिये, जबतक महादेवजी यहाँ विराजमान हैं।' वस्त्र आदिसे युक्त याग-मण्डपको गुरु अपने अधिकारमें ले ले तथा समस्त उपकरणोंसे युक्त स्नापन-मण्डपको शिल्पी ग्रहण करे। अन्य देवता आदिकी आगमोक्त मन्त्रोंद्वारा स्थापना करनी चाहिये। सूर्यके वर्णभेदके अनुसार उन देवता आदिके वर्णभेद समझने चाहिये। वे अपने तैजस-तत्त्वमें व्याप्त हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। साध्य आदि देवता, सरिताएँ, ओषधियाँ, क्षेत्रपाल और किंनर आदि—ये सब पृथ्वीतत्त्वके आश्रित हैं। कहीं कहीं सरस्वती, लक्ष्मी और नदियोंका स्थान जलमें बताया गया है ॥ ६९-७३ ॥

भुवनाधिपतियोंका स्थान वही है, जहाँ उनकी स्थिति है। अहंकार, बुद्धि और प्रकृति—ये तीन तत्त्व ब्रह्माके स्थान हैं। तन्मात्रासे लेकर प्रधान पर्यन्त तीन तत्त्व श्रीहरिके स्थान हैं। नाट्येश, गण, मातृका, यक्षराज, कार्तिकेय तथा गणेशका स्थान अण्डजादि शुद्ध विश्रान्त-तत्त्व है। मायांश देशसे लेकर शक्ति-पर्यन्त तत्त्व शिवा, शिव तथा उग्रतेजवाले सूर्यदेवका स्थान है। व्यक्त प्रतिमाओंके लिये ईश्वर-पर्यन्त पद बताया गया है। स्थापनाकी सामग्रीमें जो कूर्म आदिका वर्णन किया गया है तथा जो रत्न आदि पाँच वस्तुएँ कही गयी हैं, उन सबको देवपीठके गर्तमें डाल दे, परंतु पाँच ब्रह्मशिलाओंको उसमें न डाले ॥ ७४-७७½ ॥

मन्दिरके गर्भका छः भागोंमें विभाजन करके छठे भागको त्याग दे और पाँचवें भागमें देवताकी स्थापना करे। अथवा मन्दिरके गर्भका आठ भाग करके सातवें भागमें प्रतिमाओंकी स्थापना करे तो वह सुखावह होता है। लेप अथवा चित्रमय विग्रहकी स्थापनामें पञ्चभूतोंकी धारणाओं-द्वारा विशुद्धि होती है। वहाँ स्नान आदि कार्य जलसे नहीं, मानसिक किये जाते हैं। वैसे विग्रहोंको शिला एवं रत्न आदिके भवनमें रखना चाहिये। उनमें नेत्रोन्मीलन तथा आसन आदिकी कल्पना अभीष्ट है। इनकी पूजा जलरहित पुष्पोंसे करनी चाहिये, जिससे चित्र दूषित न हो ॥७८-८१॥

अब चल लिङ्गोंके लिये स्थापनाकी विधि बतायी जाती है। गर्भस्थानके पाँच अथवा तीन भाग करके एक भागको छोड़ दे और तीसरे या दूसरे भागमें चल लिङ्गकी स्थापना करे। इसी प्रकार उनके पीठोंके लिये भी करना चाहिये। लिङ्गोंमें तत्त्वभेदसे पूजनकी प्रक्रियामें भेद होता है। स्फटिक आदिके लिङ्गोंमें इष्टमन्त्रसे (अथवा सृष्टि-मन्त्रसे) विधिवत् संस्कार होना चाहिये। इसके सिवा वहाँ ब्रह्मशिला एवं रत्नप्रभृतिका निवेदन अपेक्षित नहीं है ॥ ८२-८४ ॥

पिण्डिकाकी योजना भी मनसे ही कर लेनी चाहिये। स्वयम्भूलिङ्ग और बाणलिङ्ग आदिमें संस्कारका नियम नहीं है।* उन लिङ्गोंको संहिता-मन्त्रोंसे स्नान कराना चाहिये। वैदिक विधिसे ही उनके लिये न्यास और होम करना चाहिये। नदी, समुद्र तथा रोह—इनके स्थापन करानेका विधान पूर्ववत् है ॥ ८५-८६ ॥

इहलोकमें जो मृत्तिका आदिके अथवा आटे आदिके शिवलिङ्गका पूजन किया जाता है, वह तात्कालिक होता है। अर्थात् पूजन-कालमें ही लिङ्ग-निर्माण करके वीक्षणादि विधानसे उसकी शुद्धि करे। तत्पश्चात् विधिवत् पूजन करना चाहिये। पूजनके पश्चात् मन्त्रोंको लेकर अपने-आपमें स्थापित करे और उस लिङ्गको जलमें डाल दे। एक वर्षतक ऐसा करनेसे वह लिङ्ग और उसका पूजन मनोवाञ्छित फल देनेवाला होता है। विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके मन्त्र अलग हैं। उन्हींके द्वारा उनकी स्थापना करनी चाहिये ॥ ८७-८९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिव-प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन' नामक सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९७ ॥

---

* पाठान्तरके अनुसार वहाँ पीठके ही संस्कारका नियम है, लिङ्गका नहीं।

अट्ठानबेवाँ अध्याय

गौरी-प्रतिष्ठा-विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं पूजा-सहित गौरीकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा, सुनो । पूर्ववत् मण्डप आदिकी रचना करके देवीकी स्थापना एवं शय्याधिवासन करे । पूर्वोक्त मन्त्रों और मूर्त्यादिकोंका न्यास करके आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका परमेश्वरमें स्थापन करे । तदनन्तर पराशक्तिका न्यास, होम और जप पूर्ववत् करके क्रियाशक्तिस्वरूपिणी पिण्डीका संधान करे । सर्वव्यापिनी पिण्डीका ध्यान करके वहाँ रत्न आदिका न्यास करे । इस विधिसे पिण्डीकी स्थापना करके उसके ऊपर देवीको स्थापित करे ॥ १—४ ॥

वे देवी परमशक्तिस्वरूपा हैं । उनका अपने ही मन्त्रसे सृष्टि-न्यासपूर्वक स्थापन करे । तदनन्तर, पीठमें क्रियाशक्तिका और देवीके विग्रहमें ज्ञानशक्तिका न्यास करे । इसके बाद सर्वव्यापिनी शक्तिका आवाहन करके देवीकी प्रतिमामें उसका नियोजन करे । फिर 'शिवा' नामवाली अम्बिका देवीका स्पर्शपूर्वक पूजन करे* ॥ ५—६ ॥

पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ आं आधारशक्त्यै नमः । ॐ कूर्माय नमः । ॐ कन्दाय नमः । ॐ ह्रीं नारायणाय नमः । ॐ ऐश्वर्याय नमः । ॐ अधश्छदनाय नमः । ॐ पद्मासनाय नमः ।**' तदनन्तर केसरोंकी पूजा करे । तत्पश्चात् '**ॐ ह्रीं कर्णिकायै नमः । ॐ क्षं पुष्कराक्षेभ्यो नमः ।**'—इन मन्त्रोंद्वारा कर्णिका एवं कमलाक्षोंका पूजन करे । इसके बाद '**ॐ ह्रीं पुष्ट्यै नमः । ॐ ह्रीं ज्ञानायै नमः । ॐ ह्रूं क्रियायै नमः ।**'—इन मन्त्रोंद्वारा पुष्टि, ज्ञाना एवं क्रिया-शक्तिका पूजन करे ॥ ७—१० ॥

'**ॐ नालाय नमः । ॐ रं धर्माय नमः । ॐ रं ज्ञानाय नमः । ॐ वैराग्याय नमः । ॐ अधर्माय नमः । ॐ रं अज्ञानाय नमः । ॐ अवैराग्याय नमः । ॐ अनैश्वर्याय नमः ।**'—इन मन्त्रोंद्वारा नाल आदिकी पूजा करे । '**ॐ हुं वाचे नमः । ॐ हुं रागिण्यै नमः । ॐ हुं ज्वालिन्यै नमः । ॐ ह्रीं शमायै नमः । ॐ हुं ज्येष्ठायै नमः । ॐ ह्रीं रौं क्रौं नवशक्त्यै नमः ।**'—इन मन्त्रोंद्वारा वाक् आदि शक्तियोंकी पूजा करे । '**ॐ गौं गौर्यासनाय नमः । ॐ गौं गौरीमूर्तये नमः ।**' अब गौरीका मूलमन्त्र बताया जाता है '**ॐ ह्रीं सः महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः । ॐ गां हृदयाय नमः, ॐ गीं शिरसे स्वाहा । ॐ गूं शिखायै वषट् । ॐ गैं कवचाय हुम् । ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ गः अस्त्राय फट् । ॐ गौं विज्ञानशक्त्यै नमः ।**'—इन मन्त्रोंसे शिखा आदिकी पूजा करे ॥ ११—१५ ॥

'**ॐ गूं क्रियाशक्त्यै नमः ।**'—इस मन्त्रसे क्रियाशक्तिकी पूजा करे । पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि देवताओंका पूजन करे । इनके मन्त्र पहले बताये गये हैं । '**ॐ सुं सुभगायै नमः ।**'—इससे सुभगाका, '**ॐ ह्रीं ललितायै नमः ।**' से ललिताका पूजन करे । '**ॐ ह्रीं कामिन्यै नमः ।**' '**ॐ हुं काममालिन्यै नमः ।**'—इन मन्त्रोंसे गौरीकी प्रतिष्ठा, पूजा और जप करनेसे उपासक सब कुछ पा लेता है† ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गौरी-प्रतिष्ठा-विधिका वर्णन' नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९८ ॥

---

* पाठान्तरके अनुसार 'अमुकेशी' इत्यादि नामसे उनका स्पर्शपूर्वक पूजन करे । यथा—'रामेश्वर्यै नमः । कृष्णेश्वर्यै नमः ।' इत्यादि ।

† सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली'में इन मन्त्रोंके स्वरूप और बीज कुछ भिन्न रूपमें मिलते हैं । अतः उन्हें अविकल रूपमें यहाँ उद्धृत किया जाता है—ॐ आं आधारशक्तये नमः । ॐ ईं कन्दराय नमः । ॐ ॐ नालाय नमः । ॐ ऋ धर्माय नमः । ॐ ऋं ज्ञानाय नमः । ॐ लं वैराग्याय नमः । ॐ लृं ऐश्वर्याय नमः । ॐ ऋ अधर्माय नमः । ॐ ऋं अज्ञानाय नमः । ॐ लं अवैराग्याय नमः । ॐ लृं अनैश्वर्याय नमः । ॐ अः ऊर्ध्वच्छदनाय नमः । ॐ हां पद्माय नमः । ॐ हं केसरेभ्यो नमः । ॐ हं कर्णिकायै नमः । ॐ ह पुष्करेभ्यो नमः । ॐ हं प्राप्त्यै नमः । ॐ ह्रीं ज्ञानवत्यै नमः । ॐ ह्रूं क्रियायै नमः । ॐ ह्लं वामायै नमः । ॐ ह्लृं वागीश्वर्यै नमः । ॐ ह्रीं ज्वालिन्यै नमः । ॐ ह्रौं ज्येष्ठायै नमः । ॐ ह्रौं रौद्र्यै नमः । इति सर्वशक्तयः । ॐ गां गौर्यासनाय नमः । ॐ गौं गौरीमूर्तये नमः । ॐ ह्रीं सः महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा ।—इति मूलमन्त्रः । गां हृदयाय नमः । गीं शिरसे स्वाहा । गूं शिखायै वषट् । गैं कवचाय हुम् । गौं नेत्रेभ्यो वौषट् । गः अस्त्राय फट् । ॐ सीं ज्ञानशक्त्यै नमः । ॐ सूं क्रियाशक्त्यै नमः । लोकपालमन्त्रास्तु पूर्वोक्ताः । ऐं सहैं सुभगायै नमः । ॐ सहैं ललितायै नमः । ॐ सहं कामिन्यै नमः । ॐ सहौं काममालिन्यै नमः । इत्येता गौरीसमानशक्तयः ।

श्रीराम-अवतार

श्रीराम विवाह

श्रीराम-वनगमन

श्रीराम-राज्याभिषेक

निन्यानबेवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी स्थापनाकी विधि

भगवान् शिव बोले—स्कन्द ! अब मैं सूर्यदेवकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। पूर्ववत् मण्डप-निर्माण और स्नान आदि कार्यका सम्पादन करके, पूर्वोक्त विधिसे विद्या तथा साङ्ग सूर्यदेवका आसन-शय्यामें न्यास करके त्रितत्त्वका, ईश्वरका तथा आकाशादि पाँच भूतोंका न्यास करे ॥ १-२ ॥

पूर्ववत् शुद्धि आदि करके पिण्डीका शोधन करे। फिर सर्वेशपद-पर्यन्त तत्त्व-पञ्चकका न्यास करे। तदनन्तर सर्वतोमुखी शक्तिके साथ विधिवत् स्थापना करके, गुरु सूर्य-सम्बन्धी मन्त्र बोलते हुए, शक्त्यन्त सूर्यका विधिवत् स्थापन करे ॥ ३-४ ॥

श्रीसूर्यदेवका स्वाम्यन्त अथवा पादान्त नाम रक्खे। (यथा विक्रमादित्य-स्वामी अथवा रामादित्यपाद इत्यादि) सूर्यके मन्त्र पहले बताये गये हैं, उन्हींका स्थापनकालमें भी साक्षात्कार (प्रयोग) करना चाहिये ॥ ५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सूर्य-प्रतिष्ठा-विधिका वर्णन' नामक निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९९ ॥

सौवाँ अध्याय

द्वारप्रतिष्ठा-विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं द्वारगत प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन करूँगा। द्वारके अङ्गभूत उपकरणोंका कसैले जल आदिसे संस्कार करके उन्हें शय्यापर रक्खे। द्वारके मूल, मध्य और अग्रभागोंमें आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका न्यास करके सनिरोधिनी-मुद्राद्वारा उनका निरोध करे। फिर तदनुरूप होम और जप करके, द्वारके अधोभागमे अनन्त देवताके मन्त्रसे वास्तु-देवताकी पूजा करे। वहीं रत्नादि-पञ्चक स्थापित करके शान्ति-होम करे। तत्पश्चात् जौ, सरसों, वरहंटा, ऋद्धि (ओषधिविशेष), वृद्धि (ओषधिविशेष), पीली सरसों, महातिल, गोमृत् (गोपीचन्दन), दरद (हिङ्गुल या सिंगरफ), नागेन्द्र (नागकेसर), मोहिनी (त्रिपुरमाली या पोई), लक्ष्मणा (सफेद कटेहरी), अमृता (गुरुचि), गोरोचन या लाल कमल, आरग्वध (अमलतास) तथा दूर्वा—इन ओषधियोंको मन्दिरके नीचे नींवमें डाले तथा इनकी पोटली बनाकर दरवाजेके ऊपरी भागमें उसकी रक्षाके लिये बाँध दे। बाँधते समय प्रणव-मन्त्रका उच्चारण करे ॥ १-५ ॥

दरवाजेको कुछ उत्तर दिशाका आश्रय लेकर स्थापित करना चाहिये। द्वारके अधोभागमें आत्मतत्त्वका, दोनों बाजुओंमें विद्यातत्त्वका, आकाशदेश (खाली जगह) में तथा सम्पूर्ण द्वार-मण्डलमें सर्वव्यापी शिवतत्त्वका न्यास करे। इसके बाद मूल-मन्त्रमें महेशनाथका न्यास करना चाहिये। द्वारका आश्रय लेकर रहनेवाले नन्दी आदि द्वारपालोंके लिये 'नमः' पदसे युक्त उनके नाम-मन्त्रोंद्वारा सौ या पचास आहुतियाँ दे। अथवा शक्ति हो तो इससे दूनी आहुतियाँ दे ॥ ६-८ ॥

न्यूनातिरिक्तता-सम्बन्धी दोषसे छुटकारा पानेके लिये अस्त्र-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। तदनन्तर पहले बताये अनुसार दिशाओंमें बलि देकर दक्षिणा आदि प्रदान करे ॥ ९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वार-प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन' नामक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०० ॥

एक सौ एकवाँ अध्याय

प्रासाद-प्रतिष्ठा

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं प्रासाद (मन्दिर) की स्थापनाका वर्णन करता हूँ। उसमें चैतन्यका सम्बन्ध दिखा रहा हूँ। जहाँ मन्दिरके गुंबजकी समाप्ति होती है, वहाँ पूर्ववेदीके मध्यभागमें आधारशक्तिका चिन्तन करके प्रणव-मन्त्रसे कमलका न्यास करे। उसके ऊपर सुवर्ण आदि धातुओंमेंसे किसी एकका बना हुआ कलश स्थापित

करे। उसमें पञ्चगव्य, मधु और दूध पड़ा हुआ हो। रत्न आदि पाँच वस्तुएँ डाली गयी हों। कलशपर गन्धका लेप हुआ हो। वह वस्त्रसे आवृत हो तथा उसे सुगन्धित पुष्पोंसे सुवासित किया गया हो। उस कलशके मुखमें आम आदि पाँच वृक्षोंके पल्लव डाले गये हों। हृदय-मन्त्रसे हृदय-कमलकी भावना करके उस कलशको वहाँ स्थापित करना चाहिये ॥ १—३½ ॥

तदनन्तर गुरु पूरक प्राणायामके द्वारा श्वासको भीतर लेकर, शरीरके द्वारा सकलीकरण क्रियाका सम्पादन करके, रुद्र-सम्बन्धी मन्त्रसे कुम्भक प्राणायामद्वारा प्राणवायुको भीतर अवरुद्ध करे। फिर भगवान् शंकरकी आज्ञासे सर्वात्मासे अभिन्न आत्मा (जीवचैतन्य) को जगावे। तत्पश्चात्, रेचक प्राणायामद्वारा द्वादशान्त स्थानसे प्रज्वलित अग्निकणके समान जीवचैतन्यको लेकर कलशके भीतर स्थापित करे और उसमें आतिवाहिक शरीरका न्यास करके उसके गुणोंके बोधक काल आदिका एवं ईश्वरसहित पृथ्वी-पर्यन्त तत्त्व-समुदायका भी उसमें निवेश करे ॥ ४-७ ॥

इसके बाद उक्त कलशमें दस नाड़ियों, दस प्राणों, (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि और अहंकार—इन) तेरह इन्द्रियों तथा उनके अधिपतियोंकी भी उस कलशमें स्थापना करके, प्रणव आदि नाम-मन्त्रोंसे उनका पूजन करे। अपने-अपने कार्यके कारकरूपसे जो मायापाशके नियामक हैं, उनका, प्रेरक विद्येश्वरोंका तथा सर्वव्यापी शिवका भी अपने-अपने मन्त्रद्वारा वहाँ न्यास और पूजन करे। समस्त अङ्गोंका भी न्यास करके अवरोधिनी-मुद्राद्वारा उन सबका निरोध करे। अथवा सुवर्ण आदि धातुओंद्वारा निर्मित पुरुषकी आकृति, जो ठीक मानव-शरीरके तुल्य हो, लेकर उसे पूर्ववत् पञ्चगव्य एवं कसैले जल आदिसे संस्कृत (शुद्ध) करे। फिर उसे शय्यापर आसीन करके उमापति रुद्रदेवका ध्यान करते हुए शिव मन्त्रसे उस पुरुष-शरीरमें व्यापक रूपसे उन्हींका न्यास करे ॥ ८-११½ ॥

उनके गर्भाधानके लिये होम, प्रोक्षण, स्पर्श एवं जप करे। गर्भाधान तथा जीवन आदि सारा कार्य क्रमशः विभागपूर्वक करे। इस प्रकार प्रकृति-पर्यन्त न्यासका सारा विधान पूर्ण करके उस पुरुषको पूर्वोक्त कलशमें स्थापित कर दे ॥ १२-१३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रासाद-प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

एक सौ दोवाँ अध्याय

ध्वजारोपण

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! देव-मन्दिरमें शिखर, ध्वजदण्ड एवं ध्वजकी प्रतिष्ठा जिस प्रकार बतायी गयी है, उसका तुमसे वर्णन करता हूँ। शिखरके आधे भागमें शूलका प्रवेश हो अथवा सम्पूर्ण शूलके आधे भागका शिखरमें प्रवेश कराकर प्रतिष्ठा करनी चाहिये। ईंटोंके बने हुए मन्दिरमें लकड़ीका शूल होना चाहिये और प्रस्तर-निर्मित मन्दिरमें प्रस्तरका। विष्णु आदिके मन्दिरमें कलशको चक्रसे संयुक्त करना चाहिये। वह कलश देवमूर्तिकी मापके अनुरूप ही होना चाहिये। कलश यदि त्रिशूलसे युक्त हो तो 'अग्रचूल' या अगचूड नामसे प्रसिद्ध होता है ॥ १-३ ॥

यदि उसके मस्तक-भागमें शिवलिङ्ग हो तो उसे 'ईश शूल' कहते हैं। अथवा शिरोभागमें बिजौरे नीबूकी आकृतिसे युक्त होनेपर भी उसका यही नाम है। शैव-शास्त्रोंमें वैसे शूलका वर्णन मिलता है। जिसकी ऊँचाई जङ्घावेदीके बराबर अथवा जङ्घावेदीके आधे मापकी हो, वह 'चित्र-ध्वज' कहा गया है। अथवा उसका मान दण्डके बराबर या अपनी इच्छाके अनुसार रक्खे। जो पीठको आवेष्टित कर ले, वह 'महाध्वज' कहा गया है। चौदह, नौ अथवा छः हाथोंके मापका दण्ड क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम माना गया है—यह विद्वान् पुरुषोंद्वारा जाननेके योग्य है। ध्वजका दण्ड बाँसका अथवा साखू आदिका हो तो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला होता है ॥ ४–७ ॥

यह ध्वज आरोपण करते समय यदि टूट जाय तो राजा अथवा यजमानके लिये अनिष्टकारक होता है—ऐसा जानना चाहिये। उस दशामें बहुरूप-मन्त्रद्वारा पूर्ववत् शान्ति करे। द्वारपाल आदिका पूजन तथा मन्त्रोंका तर्पण करके ध्वज और उसके दण्डको अस्त्र-मन्त्रसे नहलावे। गुरु इसी

मन्त्रसे ध्वजका प्रोक्षण करके मिट्टी तथा कसैले जल आदिसे मन्दिरको भी स्नान करावे । चूलक (ध्वजके ऊपरी भाग) में गन्धादिका लेप करके उसे वस्त्रसे आच्छादित करे । फिर पूर्ववत् उसे शय्यापर रखकर उसमें लिङ्गकी भाँति न्यास करना चाहिये । परंतु चूलकमें ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका न्यास न करे । वहाँ विशेषार्थ-बोधिका चतुर्थी भी वाञ्छित नहीं है और न उसके लिये कुम्भ या कुण्डकी ही कल्पना आवश्यक है ॥ ८-१२ ॥

दण्डमें आत्मतत्त्वका, विद्यातत्त्वका तथा सद्योजात आदि पाँच मुखोंका न्यास करे । फिर ध्वजमें शिवतत्त्वका न्यास करे । वहाँ निष्कल शिवका न्यास करके हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे । तदनन्तर मन्त्रज्ञ गुरु ध्वज और ध्वजाग्रभागमें सन्निधीकरणके लिये फडन्त संहिता-मन्त्रों-द्वारा प्रत्येक भागमें होम करे । किसी और प्रकारसे भी कहीं जो ध्वज-संस्कार किया गया है, वह भी इस प्रकार अस्त्र याग करके ही करना चाहिये । ये सब बातें मनीषी पुरुषोंने करके दिखायी हैं ॥ १३-१५½ ॥

मन्दिरको नहलाकर, पुष्पहार और वस्त्र आदिसे विभूषित करके, जङ्घावेदीके ऊपरी भागमें त्रितत्त्व आदिका न्यास, होम आदिका विधान एवं शिवका पूर्ववत् पूजन करके, उनके सर्वतत्त्वमय व्यापक स्वरूपका ध्यान करते हुए व्यापक-न्यास करे । भगवान् शिवके चरणारविन्दमें अनन्त एवं कालरुद्रकी भावना करके पीठमें कूष्माण्ड, हाटक, पाताल तथा नरकोंकी भावना करे । तदनन्तर भुवनों, लोकपालों तथा शतरुद्रादिसे घिरे हुए इस ब्रह्माण्ड-का ध्यान करके जङ्घावेदीमें स्थापित करे ॥ १६-१९½ ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशरूप पञ्चाष्टक, सर्वावरणसंज्ञक, बुद्धियोन्यष्टक, योगाष्टक, प्रलय-पर्यन्त रहनेवाला त्रिगुण, पटस्थ पुरुष और वाम सिंह—इन सबका भी जङ्घावेदीमें चिन्तन करे; किंतु मञ्जरी वेदिकामें विद्यादि चार तत्त्वोंकी भावना करे । कण्ठमें माया और रुद्रका, अमलसारमें विद्याओंका तथा कलशमें ईश्वर-बिन्दु और विद्येश्वरका चिन्तन करे । चन्द्रार्धस्वरूप शूलमें जटाजूटकी भावना करे । उसी शूलमें त्रिविध शक्तियोंकी तथा दण्डमें नाभिकी भावना करके ध्वजमें कुण्डलिनी शक्तिका चिन्तन करे । इस प्रकार मन्दिरके अवयवोंमें विभिन्न तत्त्वोंकी भावना करनी चाहिये ॥ २०-२४½ ॥

जगतीसे धाम (प्रासाद या मन्दिर) का तथा पिण्डिका-से लिङ्गका संधान करके शेष सारा विधान यहाँ भी पूर्ववत् करना चाहिये । इसके बाद गुरु बाजोंके मङ्गलमय घोष तथा वेदध्वनिके साथ मूर्तिधरोंसहित शिवरूप मूलवाले ध्वज-दण्डको उठाकर जहाँ मन्त्रोच्चारणपूर्वक शक्तिमय कमलका न्यास हुआ है तथा रत्नादि-पञ्चकका भी न्यास हो गया है, वहाँ आधार-भूमिमें उसे स्थापित कर दे ॥ २५-२६ ॥

जब प्रासाद-शिखरपर ध्वज लग जाय, तब यजमान, अपने मित्रों और बन्धुओं आदिके साथ मन्दिरकी परिक्रमा करके अभीष्ट फलका भागी होता है । गुरुको चाहिये कि वह अस्त्र आदिके साथ पाशुपतका चिरकालतक चिन्तन करते हुए उन सबके शस्त्रयुक्त अधिपतियोंको मन्दिरकी रक्षाके लिये निवेदन करे । न्यूनता आदि दोषकी शान्तिके लिये होम, दान और दिग्बलि करके यजमान गुरुको दक्षिणा दे । ऐसा करके वह दिव्य धाममें जाता है ॥ २७-२९ ॥

प्रतिमा, लिङ्ग और वेदीके जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र युगोंतक मन्दिरका निर्माण एवं प्रतिष्ठा करनेवाला यजमान दिव्यलोकमें उत्तम भोग भोगता है । यही उसका प्राप्तव्य फल है ॥ ३० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ध्वजारोपणादिकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

एक सौ तीनवाँ अध्याय

शिवलिङ्ग आदिके जीर्णोद्धारकी विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! जीर्ण आदि लिङ्गोंके विधिवत् उद्धारका प्रकार बता रहा हूँ । जिसका चिह्न मिट गया हो, जो टूट-फूट गया हो, मैल आदिसे स्थूल हो गया हो, वज्रसे आहत हुआ हो, सम्पुटित (बंद) हो, फट गया हो, जिसका अङ्ग-भङ्ग हो गया हो तथा जो इसी तरहके अन्य विकारोंसे ग्रस्त हो—ऐसे दूषित लिङ्गोंकी पिण्डी

तथा वृषभका तत्काल त्याग कर देना चाहिये ॥ १—२ ॥

जो शिवलिङ्ग किसीके द्वारा चालित हो या स्वयं चलित हो, अत्यन्त नीचा हो गया हो, विषम स्थानमें स्थित हो; जहाँ दिङ्मोह होता हो, जो किसीके द्वारा गिरा दिया गया हो अथवा जो मध्यस्थ होकर भी गिर गया हो—ऐसे लिङ्गकी पुनः ठीकसे स्थापना कर देनी चाहिये। परंतु यदि वह व्रणरहित हो, तभी ऐसा किया जा सकता है। यदि वह नदीके जलप्रवाहद्वारा वहाँसे अन्यत्र हटा दिया जाता हो तो उस स्थानसे अन्यत्र भी शास्त्रीय विधिके अनुसार उसकी स्थापना की जा सकती है। जो शिवलिङ्ग अच्छी तरह स्थित हो, सुदृढ़ हो, उसे विचलित करना या चलाना नहीं चाहिये ॥ ३—५ ॥

जो अस्थिर या अदृढ हो, उस शिवलिङ्गको यदि चालित करे तो उसकी शान्तिके लिये एक सहस्र आहुतियाँ दे तथा सौ आहुतियाँ देकर पुनः उसकी स्थापना करे। जीर्णता आदि दोषोंसे युक्त शिवलिङ्ग भी यदि नित्यपूजा-अर्चा आदिसे युक्त हो तो उसे सुस्थित ही रहने दे; चालित न करे। जीर्णोद्धारके लिये दक्षिण-दिशामें एक मण्डप बनावे। ईशानकोणमें पश्चिम द्वारका एक फाटक लगा दे। द्वारपूजा आदि करके, वेदीपर शिवजीकी पूजा करे। इसके बाद मन्त्रोंका पूजन और तर्पण करके वास्तु-देवताकी पूर्ववत् पूजा करे। तदनन्तर बाहर जा, दिशाओंमें बलि दे, स्वयं आचमन करनेके पश्चात् गुरु ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तत्पश्चात् भगवान् शंकरको इस प्रकार विज्ञप्ति दे—॥६—८॥

'शम्भो! यह लिङ्ग दोषयुक्त हो गया है। इसके उद्धार करनेसे शान्ति होगी—ऐसा आपका वचन है। अतः विधिपूर्वक इसका अनुष्ठान होने जा रहा है। शिव! इसके लिये आप मेरे भीतर स्थित होइये और अधिष्ठाता बनकर इस कार्यका सम्पादन कीजिये।' देवेश्वर शिवको इस प्रकार विज्ञप्ति देकर मधु और घृतमिश्रित खीर एवं दूर्वाद्वारा मूल-मन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ देकर शान्ति-होमका कार्य सम्पन्न करे। तदनन्तर लिङ्गको स्नान कराकर वेदीपर उसकी पूजा करे। पूजनकालमें '**ॐ व्यापकेश्वराय शिवाय नमः।**' इस मन्त्रका उच्चारण करे। अङ्गपूजा और अङ्गन्यासके मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ व्यापकेश्वराय हृदयाय नमः। ॐ व्यापकेश्वराय शिरसे स्वाहा। ॐ व्यापकेश्वराय शिखायै वषट्। ॐ व्यापकेश्वराय कवचाय हुम्। ॐ व्यापकेश्वराय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ व्यापकेश्वराय अस्त्राय फट्।**' ॥ ९—१३ ॥

तत्पश्चात् उस शिवलिङ्गके आश्रित रहनेवाले भूतको अस्त्र-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक सुनावे—'यदि कोई भूत-प्राणी यहाँ इस लिङ्गका आश्रय लेकर रहता है, वह भगवान् शिवकी आज्ञासे इस लिङ्गको त्यागकर, जहाँ इच्छा हो, वहाँ चला जाय। अब यहाँ विद्या तथा विद्येश्वरोंके साथ साक्षात् भगवान् शम्भु निवास करेंगे।' इसके बाद पाशुपत-मन्त्रसे प्रत्येक भागके लिये सहस्र आहुतियाँ देकर शान्ति-जलसे प्रोक्षण करे। फिर कुशोंद्वारा स्पर्श करके उक्त मन्त्रको जपे ॥ १४—१६ ॥

तदनन्तर, विलोम-क्रमसे अर्घ्य देकर लिङ्ग और पिण्डिकामें स्थित तत्त्वों, तत्त्वाधिपतियों और अष्ट मूर्तीश्वरोंका गुरु स्वर्णपाशसे विसर्जन करके वृषभके कंधेपर स्थित रज्जु-द्वारा उसे बाँधकर ले जाय तथा जनसमुदायके साथ शिव-नामका कीर्तन करते हुए, उस वृषभ (नन्दिकेश्वर) को जलमें डाल दे। फिर मन्त्रज्ञ आचार्य पुष्टिके लिये सौ आहुतियाँ दे। दिक्पालोंकी तृप्ति तथा वास्तु-शुद्धिके लिये भी सौ-सौ आहुतियोंका होम करे। तत्पश्चात् महापाशुपत-मन्त्रसे उस मन्दिरमें रक्षाकी व्यवस्था करके, गुरु वहाँ विधिपूर्वक दूसरे लिङ्गकी स्थापना करे। असुरों, मुनियों, देवताओं तथा तत्त्ववेत्ताओंद्वारा स्थापित लिङ्ग जीर्ण या भग्न हो गया हो तो भी विधिके द्वारा भी उसे चालित न करे ॥१७—२१॥

जीर्ण-मन्दिरके उद्धारमें भी यही विधि काममें लानी चाहिये। मन्त्रगणोंका खड्गमें न्यास करके दूसरा मन्दिर तैयार करावे। यदि पहलेकी अपेक्षा मन्दिरको संकुचित या छोटा कर दिया जाय तो कर्ताकी मृत्यु होती है और विस्तार किया जाय तो धनका नाश होता है। अतः प्राचीन मन्दिर-के द्रव्यको लेकर या और कोई श्रेष्ठ द्रव्य लेकर पहलेके मन्दिरके बराबर ही उस स्थानपर नूतन मन्दिरका निर्माण करना चाहिये ॥ २२—२३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जीर्णोद्धारकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०३ ॥

एक सौ चारवाँ अध्याय

प्रासादके लक्षण

भगवान् शंकर कहते हैं—ध्वजामें मयूरका चिह्न धारण करनेवाले स्कन्द ! अब मैं प्रासाद-सामान्यका लक्षण कहता हूँ। चौकोर क्षेत्रके चार भाग करके एक भागमें भित्तियों (दीवारों)का विस्तार हो। बीचके भाग गर्भके रूपमें रहें और एक भागमें पिण्डिका हो। पाँच भागवाले क्षेत्रके भीतरी भागमें तो पिण्डिका हो, एक भागका विस्तार छिद्र (शून्य या खाली जगह) के रूपमें हो तथा एक भागका विस्तार दीवारोंके उपयोगमें लाया जाय। मध्यम गर्भमें दो भाग और ज्येष्ठ गर्भमें भी दो ही भाग रहें। किंतु कनिष्ठ गर्भ तीन भागोंसे सम्पन्न होता है; शेष आठवाँ भाग दीवारोंके उपयोगमें लाया जाय, ऐसा विधान कहीं-कहीं उपलब्ध होता है ॥ १–३½ ॥

छः भागोंद्वारा विभक्त क्षेत्रमें एक भागका विस्तार दीवारके उपयोगमें आता है, एक भागका विस्तार गर्भ है और दो भागोंमे पिण्डिका स्थापित की जाती है। कहीं-कहीं दीवारोंकी ऊँचाई उसकी चौड़ाईकी अपेक्षा दुगुनी, सवा दो गुनी, ढाई गुनी अथवा तीन गुनी भी होनेका विधान मिलता है। कहीं-कहीं प्रासाद (मन्दिर) के चारों ओर दीवारके आधे या पौने विस्तारकी जगत होती है और चौथाई विस्तारकी नेमि। बीचमें एक तृतीयांशकी परिधि होती है। वहाँ रथ बनवावे और उनमें चामुण्ड-भैरव तथा नाट्येशकी स्थापना करे। प्रासादके आधे विस्तारमें चारों ओर बाहरी भागमें देवताओंके लिये आठ या चार परिक्रमाएँ बनवावे। प्रासाद आदिमें इनका निर्माण वैकल्पिक है। चाहे बनवावे, चाहे न बनवावे ॥ ४–८½ ॥

आदित्योंकी स्थापना पूर्व दिशामें और स्कन्द एवं अग्निकी प्रतिष्ठा वायव्य-दिशामें करनी चाहिये। इसी प्रकार यम आदि देवताओंकी भी स्थिति उनकी अपनी-अपनी दिशामें मानी गयी है। शिखरके चार भाग करके नीचेके दो भागोंकी 'शुकनासिका' (गुंबज) संज्ञा है। तीसरे भागमें वेदीकी प्रतिष्ठा है। इससे आगेका जो भाग है, वही 'अमलसार' नामसे प्रसिद्ध 'कण्ठ' है। वैराज, पुष्पक, कैलास, मणिक और त्रिविष्टप—ये पाँच ही प्रासाद मेरुके शिखरपर विराजमान हैं। (अतः प्रासादके ये ही पाँच मुख्य भेद माने गये हैं।) ॥ ९–११½ ॥

इनमे पहला 'वैराज' नामवाला प्रासाद चतुरस्र (चौकोर) होता है। दूसरा (पुष्पक) चतुरस्रायत है। तीसरा (कैलास) वृत्ताकार है। चौथा (मणिक) वृत्तायत है तथा पाँचवाँ (त्रिविष्टप) अष्टकोणाकार है। इनमेंसे प्रत्येकके नौ-नौ भेद होनेके कारण कुल मिलकर पैंतालीस भेद हैं। पहला प्रासाद मेरु, दूसरा मन्दर, तीसरा विमान, चौथा भद्र, पाँचवाँ सर्वतोभद्र, छठा रुचक, सातवाँ नन्दक(अथवा नन्दन), आठवाँ वर्धमान नन्दि अर्थात् नन्दिवर्द्धन और नवाँ श्रीवत्स—ये नौ प्रासाद 'वैराज'के कुलमें प्रकट हुए हैं ॥ १२–१५ ॥

वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विशाल-चमस, ब्रह्म-मन्दिर, भुवन, प्रभव और शिबिकावेश्म—ये नौ प्रासाद 'पुष्पक'से प्रकट हुए हैं। वलय, दुंदुभि, पद्म, महापद्म, वर्धनी, उष्णीष, शङ्ख, कलश तथा खवृक्ष—ये नौ वृत्ताकार प्रासाद 'कैलास' कुलमें उत्पन्न हुए हैं। गज, वृषभ, हंस, गरुत्मान्, ऋक्षनायक, भूषण, भूधर, श्रीजय तथा पृथ्वीधर—ये नौ वृत्तायत प्रासाद 'मणिक' नामक मुख्य प्रासादमे प्रकट हुए हैं। वज्र, चक्र, स्वस्तिक, वज्रस्वस्तिक (अथवा वज्र-हस्तक), चित्र, स्वस्तिक-खड्ग, गदा, श्रीकण्ठ और विजय—ये नौ प्रासाद 'त्रिविष्टप'से प्रकट हुए हैं ॥ १६–२१ ॥

ये नगरोंकी भी संज्ञाएँ हैं। ये ही लाट आदिकी भी संज्ञाएँ हैं। शिखरकी जो ग्रीवा (या कण्ट) है, उसके आधे भागके बराबर ऊँचा चूल (चोटी) हो। उसकी मोटाई कण्ठके तृतीयांशके बराबर हो। वेदीके दस भाग करके पाँच भागोंद्वारा स्कन्धका विस्तार करना चाहिये, तीन भागोंद्वारा कण्ठ और चार भागोंद्वारा उसका अण्ड (या प्रचण्ड) बनाना चाहिये ॥ २२-२३ ॥

पूर्वादि दिशाओंमें ही द्वार रखने चाहिये, कोणोंमे कदापि नहीं। पिण्डिका-विस्तार कोणतक जाना चाहिये, मध्यम भागतक उसकी समाप्ति हो—ऐसा विधान है। कहीं-कहीं द्वारोंकी ऊँचाई गर्भके चौथे या पाँचवें भागसे दूनी रखनी चाहिये। अथवा इस विषयको अन्य प्रकारसे भी बताया जाता है। एक सौ साठ अङ्गुलकी ऊँचाईसे लेकर दस-दस अङ्गुल घटाते हुए जो चार द्वार बनते हैं, वे उत्तम माने गये हैं (जैसे १६०, १५०, १४० और १३० अङ्गुल-

तक ऊँचे द्वार उत्तम कोटिमें गिने जाते हैं)। एक सौ बीस, एक सौ दस और सौ अङ्गुल ऊँचे द्वार मध्यम श्रेणीके अन्तर्गत हैं तथा इससे कम ९०, ८० और ७० अङ्गुल ऊँचे द्वार कनिष्ठ कोटिके बताये गये हैं। द्वारकी जितनी ऊँचाई हो, उससे आधी उसकी चौड़ाई होनी चाहिये। ऊँचाई उक्त मापसे तीन, चार, आठ या दस अङ्गुल भी हो तो शुभ है। ऊँचाईसे एक चौथाई विस्तार होना चाहिये, दरवाजेकी शाखाओं (बाजुओं) काऔर अथवा उन सबकी ही चौड़ाई द्वारकी चौड़ाईसे आधी होनी चाहिये— ऐसा बताया गया है। तीन, पाँच, सात तथा नौ शाखाओं-द्वारा निर्मित द्वार अभीष्ट फलको देनेवाला है ॥ २४–२९ ॥

नीचेकी जो शाला है उसके एक चौथाई भागमें दो द्वारपालोंकी स्थापना करे। शेष शाखाओंको स्त्री-पुरुषोंके जोड़ेकी आकृतियोंसे विभूषित करे। द्वारके ठीक सामने खंभा पड़े तो 'स्तम्भवेध' नामक दोष होता है। इससे गृहस्वामीको दासता प्राप्त होती है। वृक्षसे वेध हो तो ऐश्वर्यका नाश होता है, कूपसे वेध हो तो भयकी प्राप्ति होती है और क्षेत्रसे वेध होनेपर धनकी हानि होती है ॥ ३०-३१ ॥

प्रासाद, गृह एवं शाला आदिके मार्गोंसे द्वारोंके विद्ध होनेपर बन्धन प्राप्त होता है, सभासे वेध प्राप्त होनेपर दरिद्रता होती है तथा वर्णसे वेध हो तो निराकरण (तिरस्कार) प्राप्त होता है। उलूखलसे वेध हो तो दारिद्र्य, शिलासे वेध हो तो शत्रुता और छायासे वेध हो तो निर्धनता प्राप्त होती है। इन सबका छेदन अथवा उत्पाटन हो जानेसे वेध-दोष नहीं लगता है। इनके बीचमें चहारदीवारी उठा दी जाय तो भी वेध-दोष दूर हो जाता है। अथवा सीमासे दुगुनी भूमि छोड़कर ये वस्तुएँ हों तो भी वेध-दोष नहीं होता है ॥ ३२–३४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सामान्य-प्रासादलक्षण-वर्णन' नामक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

नगर, गृह आदिकी वास्तु-प्रतिष्ठा-विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द! नगर, ग्राम तथा दुर्ग आदिमें गृहों और प्रासादोंकी वृद्धि हो, इसकी सिद्धिके लिये इक्यासी पदोंका वास्तुमण्डल बनाकर उसमें वास्तु-देवताकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। (दस रेखा पश्चिमसे पूर्वकी ओर और दस दक्षिणसे उत्तरकी ओर खींचनेपर इक्यासी पद तैयार होते हैं।) पूर्वाभिमुखी दस रेखाएँ दस नाड़ियोंकी प्रतीकभूता हैं। उन नाड़ियोंके नाम इस प्रकार बताये गये हैं—शान्ता, यशोवती, कान्ता, विशाला, प्राणवाहिनी, सती, वसुमती, नन्दा, सुभद्रा और मनोरमा। उत्तराभिमुख प्रवाहित होनेवाली दस नाड़ियाँ और हैं, जो उक्त नौ पदोंको इक्यासी पदोंमें विभाजित करती हैं; उनके नाम ये हैं—हरिणी, सुप्रभा, लक्ष्मी, विभूति, विमला, प्रिया, जया, (विजया,) ज्वाला और विशोका। सूत्रपात करनेसे ये रेखामयी नाड़ियाँ अभिव्यक्त होकर चिन्तनका विषय बनती हैं ॥ १—४ ॥

ईश आदि आठ-आठ देवता 'अष्टक' हैं, जिनका चारों दिशाओंमें पूजन करना चाहिये। [पूर्वादि चार दिशाओंके पृथक्-पृथक् अष्टक हैं।] ईश, घन (पर्जन्य), जय (जयन्त), शक्र (इन्द्र), अर्क (आदित्य या सूर्य), सत्य, भृश और व्योम (आकाश)—इन आठ देवताओंका वास्तुमण्डलमें पूर्व दिशाके पदोंमें पूजन करना चाहिये। हव्यवाह (अग्नि), पूषा, वितथ, सौम (सोमपुत्र गृहक्षत), कृतान्त (यम), गन्धर्व, भृङ्ग (भृङ्गराज) और मृग—इन आठ देवताओं-की दक्षिण दिशाके पदोंमें अर्चना करनी चाहिये। पितर, द्वारपाल (या दौवारिक), सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, दैत्य (असुर), शेष (या शोष) और यक्ष्मा (पापयक्ष्मा)—इन आठोंका सदा पश्चिम दिशाके पदोंमें पूजन करनेकी विधि है। रोग, अहि (नाग), मुख्य, भल्लाट, सोम, शैल (ऋषि), अदिति और दिति—इन आठोंकी उत्तर दिशाके पदोंमें पूजा होनी चाहिये। वास्तुमण्डलके मध्यवर्ती नौ पदोंमें ब्रह्माजी पूजित होते हैं और शेष अड़तालीस पदोंमेंसे आधेमें अर्थात् चौबीस पदोंमें वे देवता पूजनीय हैं, जो अकेले छः पदोंपर अधिकार रखते हैं। [ब्रह्माजीके चारों ओर एक-एक करके चार देवता षट्पद-गामी हैं—जैसे पूर्वमें मरीचि (या अर्यमा), दक्षिणमें विवस्वान्, पश्चिममें मित्र देवता तथा उत्तरमें पृथ्वीधर।] ॥ ५—८ ॥

ब्रह्माजी तथा ईशके मध्यवर्ती कोष्ठकोंमें जो दो पद हैं, उनमें 'आप'की तथा नीचेवाले दो पदोंमें 'आपवत्स'की पूजा करे। इसके बाद छः पदोंमें मरीचिकी अर्चना करे। मरीचि और अग्निके बीचमें जो कोणवर्ती दो पद हैं, उनमें सविताकी स्थिति है और उनसे निम्नभागके दो पदोंमें

सावित्र तेज या सावित्रीकी । उसके नीचे छः पदोंमें विवस्वान् विद्यमान हैं । पितरों और ब्रह्माजीके बीचके दो पदोंमें विष्णु-इन्दु स्थित हैं और नीचेके दो पदोंमें इन्द्र-जय विद्यमान हैं, इनकी पूजा करे । वरुण तथा ब्रह्माके मध्यवर्ती छः पदोंमें मित्र-देवताका यजन करे । रोग तथा ब्रह्माके बीचवाले दो पदोंमें रुद्र-रुद्रदासकी पूजा करे और नीचेके दो पदोंमें यक्ष्मकी । फिर उत्तरके छः पदोंमें धराधर (पृथ्वीधर) का यजन करे । फिर मण्डलके बाहर ईशानादि कोणोंके क्रमसे चरकी, स्कन्द, विदारी-विकट, पूतना, जम्भ, पापा (पापराक्षसी) तथा पिलिपिच्छ (या पिलिपित्स)—इन बालग्रहोंकी पूजा करे ॥ ९–१३ ॥

इक्यासी पदोंसे युक्त वास्तुचक्र

पूर्व

ईशान — इन्द्र — अग्नि

चरकी — स्कन्द — विदारी

उत्तर पिलिपिच्छ (पिलिपित्स) — सोम (कुबेर) — (विकट) दक्षिण — यम

१ ईश	२ (पर्जन्य) धन	३ (जयन्त) जय	४ (इन्द्र) शक्र	५ अर्क (आदित्य या सूर्य)	६ सत्य	७ भृश	८ व्योम (आकाश)	९ हव्यवाह् (अग्नि)
३२ दिति	३३ आप	आप	मरीचि	मरीचि	मरीचि	सविता	३४ सविता	१० पूषा
३१ अदिति	आपवत्स	४४ आपवत्स	मरीचि	३७ मरीचि	मरीचि	सावित्री	३८ सावित्री	११ वितथ
३० गिरि(शैल) या ऋषि	पृथ्वीधर	पृथ्वीधर				विवस्वान्	विवस्वान्	१२ सोम (गृहक्षत)
२९ सोम	पृथ्वीधर	४३ पृथ्वीधर		४५ ब्रह्मा		३९ विवस्वान्	विवस्वान्	१३ कृतान्त (धर्मराज या यम)
२८ भल्लाट	पृथ्वीधर	पृथ्वीधर				विवस्वान्	विवस्वान	१४ गन्धर्व
२७ मुख्य	रुद्र-रुद्रदास	४२ रुद्र-रुद्रदास	मित्र	४१ मित्र	मित्र	४० विष्णु-इन्दु	विष्णु-इन्दु	१५ भृङ्ग या (भृङ्गराज)
२६ अहि (नाग)	३६ यक्ष्म	यक्ष्म	मित्र	मित्र	मित्र	इन्द्र-जय	३५ इन्द्र-जय	१६ मृग
२५ रोग	२४ यक्ष्मा (पापयक्ष्मा)	२३ शोष या शोष	२२ दैत्य (असुर)	२१ वरुण	२० पुष्पदन्त	१९ सुग्रीव	१८ द्वारपाल (दौवारिक)	१७ पितर

पापा (पापराक्षसी) — जम्भ — पूतना

वायु — वरुण — निर्ऋति

यह इक्यासी पदवाले वास्तुचक्रका वर्णन हुआ । एक शतपद-मण्डप भी होता है । उसमें भी पूर्ववत् देवताओंकी पूजाका विधान है । शतपदचक्रके मध्यवर्ती सोलह पदोंमें ब्रह्माजीकी पूजा करनी चाहिये । ब्रह्माजीके

पूर्व आदि चार दिशाओंमें स्थित मरीचि, विवस्वान्, मित्र तथा पृथ्वीधरकी दस-दस पदोंमें पूजाका विधान है। अन्य जो ईशान आदि कोणोंमें स्थित देवता हैं, जैसे दैत्योंकी माता दिति और ईश; अग्नि तथा मृग (पूषा) और पितर तथा पापयक्ष्मा और अनिल (रोग)—ये सब-के-सब डेढ़-डेढ़ पदमें अवस्थित हैं ॥ १४-१६ ॥

स्कन्द ! अब मैं यज्ञ आदिके लिये जो मण्डप होता है, उसका संक्षेपसे तथा क्रमशः वर्णन करूँगा। तीस हाथ लंबा और अट्ठाईस हाथ चौड़ा मण्डप शिवका आश्रय है। लंबाई और चौड़ाई—दोनोंमें ग्यारह-ग्यारह हाथ घटा देनेपर उन्नीस हाथ लंबा और सत्रह हाथ चौड़ा मण्डप शिव-संज्ञक होता है। बाईस हाथ लंबा और उन्नीस हाथ चौड़ा अथवा अठारह हाथ लंबा तथा पंद्रह हाथ चौड़ा मण्डप हो तो वह सावित्र-संज्ञावाला कहा गया है। अन्य गृहोंका विस्तार आंशिक होता है। दीवारकी जो मोटी उपजङ्घा (कुर्सी) होती है, उसकी ऊँचाईसे दीवारकी ऊँचाई तिगुनी होनी चाहिये। दीवारके लिये जो सूतमें मान निश्चित किया गया हो, उसके बराबर ही उसके सामने भूमि (सहन) होनी चाहिये। वह वीथीके भेदसे अनेक भेदवाली होती है ॥ १७-२० ॥

'भद्र' नामक प्रासादमें वीथियोंके समान ही 'द्वारवीथी' होती है; केवल वीथीका अग्रभाग द्वारवीथीमें नहीं होता है। 'श्रीजय' नामक प्रासादमें जो द्वारवीथी होती है, उसमें वीथीका पृष्ठभाग नहीं होता है। वीथीके पार्श्वभागोंको द्वारवीथीमें कम कर दिया जाय, तो उससे उपलक्षित प्रासादकी भी 'भद्र' संज्ञा ही होती है। गर्भके विस्तारकी ही भाँति वीथीका भी विस्तार होता है। कहीं-कहीं उसके आधे या चौथाई भागके बराबर भी होता है। वीथीके आधे मानसे उपवीथी आदिका निर्माण करना चाहिये। वह एक, दो या तीन पुरोंसे युक्त होता है। अब अन्य साधारण गृहोंके विषयमें बताया जाता है; गृहका वैसा स्वरूप हो तो वह सबकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है। वह क्रमशः एक, दो, तीन, चार और आठ शालाओंसे युक्त होता है। एक शालावाले गृहकी शाला दक्षिणभागमें बनती है और उसका दरवाजा उत्तरकी ओर होता है। यदि दो शालाएँ बनानी हों तो पश्चिम और पूर्वमें बनवाये और उनका द्वार आमने-सामने पूर्व-पश्चिमकी ओर रक्खे। चार शालाओंवाला गृह चार द्वारों और अलिन्दोंसे युक्त होनेके कारण सर्वतोमुख होता है। वह गृहस्वामीके लिये कल्याणकारी है। पश्चिम दिशाकी ओर दो शालाएँ हों तो उस द्विशाल-गृहको 'यमसूर्यक' कहा गया है। पूर्व तथा उत्तरकी ओर शालाएँ हों तो उस गृहकी 'दण्ड' संज्ञा है तथा पूर्व-दक्षिणकी ओर दो शालाएँ हों तो वह गृह 'वात'संज्ञक होता है। जिस तीन शालावाले गृहमें पूर्व दिशाकी ओर शाला न हो, उसे 'सुक्षेत्र' कहा गया है, वह बुद्धिदायक होता है* ॥ २१-२६ ॥

---

* मत्स्यपुराणमें एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल और चतुःशाल-गृहका परिचय इस प्रकार दिया है—जिसमें एक दिशामें एक ही शाला (कमरा) हो और अन्य दिशाओंमें कोई कमरा न होकर बरामदा मात्र हो, वह 'एकशाल-गृह' है। इसी तरह दो दिशाओंमें दो कमरे और तीन दिशाओंमें तीन कमरे तथा चारों दिशाओंमें चार कमरे होनेपर उन घरोंको क्रमशः 'द्विशाल', 'त्रिशाल' और 'चतुःशाल' कहते हैं। चतुःशाल-गृहमें चारों ओर कमरे एवं चारों ओर दरवाजे होने हैं और वे द्वार आमने-सामने बने होते हैं। अतः वह सर्वतोमुख-गृह है और उसका नाम 'सर्वतोभद्र' है। यह देवालय तथा नृपालय दोनोंमें शुभ होता है। पश्चिममें द्वार न हो [और अन्य तीन दिशाओंमें हो] तो उस गृहका विशेष नाम है—'नन्द्यावर्त'। यदि दक्षिण दिशामें ही द्वार न हो तो उस भवनका नाम है—'वर्धमान'। पूर्व-द्वारसे रहित होनेपर उसका नाम 'स्वस्तिक' होता है और उत्तर द्वारसे रहित होनेपर 'रुचक'। जब किसी एक दिशामें शाला (कमरा) ही न हो तो वह 'त्रिशाल-गृह' है। इसके भी कई भेद हैं। जिस मकानके भीतर उत्तर दिशामें कोई शाला न हो, वह त्रिशाल-गृह 'धान्यक' कहलाता है। वह मनुष्योंके लिये क्षेमकारक, वृद्धिकारक तथा बहुपुत्र-फलदायक होता है। यदि पूर्व-दिशामें शाला न हो तो उस त्रिशाल-गृहको 'सुक्षेत्र' कहते हैं। यह धन, यश और आयुको देनेवाला तथा शोक और मोहका नाश करनेवाला होता है। यदि दक्षिण-दिशामें शाला न हो तो उसको 'विशाल' कहा गया है। वह मनुष्योंके लिये कुलक्षयकारी होता है तथा उसमें सब प्रकारके रोगोंका भय बना रहता है। यदि पश्चिम-दिशामें कोई शाला न हो तो उस त्रिशाल-गृहको 'पक्षघ्न' कहते हैं। वह मित्र, भाई-बन्धु तथा पुत्रोंका मारक होता है और उसमें सब प्रकारके भय प्राप्त होते रहते हैं।

यदि दक्षिण दिशामें कोई शाला न हो [और अन्य दिशाओंमें हो] तो उस घरकी 'विशाल' संज्ञा है। वह कुलक्षयकारी तथा अत्यन्त भयदायक होता है। जिसमें पश्चिम दिशामें ही शाला न बनी हो, उस विशाल गृहको 'पक्षघ्न' कहते हैं। वह पुत्र-हानिकारक तथा बहुत-से शत्रुओंका उत्पादक होता है। अब मैं पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे 'ध्वज' * आदि आठ गृहोंका वर्णन करता हूँ। [ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृषभ, खर (गधा), हाथी और काक—ये ही आठोंके नाम हैं।] पूर्व-दिशामें स्नान और अनुग्रह (लोगोंसे कृपापूर्वक मिलने) के लिये घर बनावे। अग्निकोणमें उसका रसोईघर होना चाहिये। दक्षिण दिशामें रस-क्रिया तथा शय्या (शयन) के लिये घर बनाना चाहिये। नैर्ऋत्यकोणमें शस्त्रागार रहे। पश्चिम दिशामें धन-रत्न आदिके लिये कोषागार रक्खे। वायव्य-कोणमें सम्यक् अन्नागार स्थापित करे। उत्तर दिशामें धन और पशुओंको रक्खे तथा ईशानकोणमें दीक्षाके लिये उत्तम भवन बनवावे। गृह-स्वामीके हाथसे नापे हुए गृहका जो पिण्ड है, उसकी लंबाई-चौड़ाईके हस्तमानको तिगुना करके उसमें आठसे भाग दे। उस भागका जो शेष हो, तदनुसार यह ध्वज आदि आय स्थित होता है। उसीसे ध्वजादि-काकान्त आयका ज्ञान होता है। दो, तीन, चार, छः, सात और आठ शेष बचे तो उसके अनुसार शुभाशुभ फल हो। यदि मध्य (पाँचवें) और अन्तिम (काक) में गृहकी स्थिति हुई तो वह गृह सर्वनाशकारी होता है। इसलिये आठ भागोंको छोड़कर नवम भागमें बना हुआ गृह शुभकारक होता है। उस नवम भागमें ही मण्डप उत्तम माना गया है। उसकी लंबाई-चौड़ाई बराबर रहे अथवा चौड़ाईसे लबाई दुगुनी रहे ॥ २७—३३ ॥

पूर्वसे पश्चिमकी ओर तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर बाजारमें ही गृहपङ्क्ति देखी जाती है। एक-एक भवनके लिये प्रत्येक दिशामें आठ आठ द्वार हो सकते हैं। इन आठों द्वारोंके क्रमशः फल भी पृथक्-पृथक् कहे जाते हैं। भय, नारीकी चपलता, जय, वृद्धि, प्रताप, धर्म, कलह तथा निर्धनता—ये पूर्ववर्ती आठ द्वारोंके अवश्यम्भावी फल हैं। दाह, दुःख, सुहृन्नाश, धननाश, मृत्यु, धन, शिल्प-ज्ञान तथा पुत्रकी प्राप्ति—ये दक्षिण दिशाके आठ द्वारोंके फल हैं। आयु, संन्यास, सस्य, धन, शान्ति, अर्थनाश, शोषण, भोग एवं संतानकी प्राप्ति—ये पश्चिम द्वारके फल हैं। रोग, मद, आर्ति, मुख्यता, अर्थ, आयु, कृशता और मान—ये क्रमशः उत्तर दिशाके द्वारके फल हैं ॥ ३४—३८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नगरगृह आदिकी वास्तु-प्रतिष्ठा-विधिका वर्णन' नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

अब द्विशाल-घरका फल बताते हैं—दक्षिण-पश्चिम दिशाओंमें ही दो शालाएँ हों [और अन्य दो दिशाओंमें न हों] तो वह द्विशाल-गृह, धन-धान्यफलदायक, मानवोंके क्षेमकी वृद्धि करनेवाला तथा पुत्ररूप फल देनेवाला है। यदि केवल पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें ही दो शालाएँ हों तो उस गृहको 'यमसूर्य' कहते हैं। वह राजा और अग्निका भय देनेवाला है तथा मनुष्योंके कुलका संहार करनेवाला होता है। यदि उत्तर और पूर्वमें ही दो शालाएँ हों तो उस गृहका नाम 'दण्ड' है। जहाँ 'दण्ड' हो, वहाँ अकाल-मृत्युका भय प्राप्त होता है तथा शत्रुओंकी ओरसे भी भयकी प्राप्ति होती है। पूर्व और दक्षिण दिशाओंमें दो शाला होनेसे जो द्विशाल-गृह निर्मित हुआ है, उसकी 'घन' या 'वात' संज्ञा है। वह शस्त्र-भय तथा पराभव देनेवाला होता है। पूर्व-पश्चिममें दो शालाएँ हों तो उसकी 'चुल्ली' संज्ञा है। वह मृत्युकी सूचक है। वह गृह स्त्रियोंके लिये वैधव्यकारक तथा अनेक भयदायक है। उत्तर-दक्षिणमें ही दो शालाएँ हों तो वह भी मनुष्यके लिये भयदायक है। [द्रष्टव्य अध्याय २५४के श्लोक सं० १ से १२ तक]

* अपराजितपृच्छा (विश्वकर्म-शास्त्र ६४वें सूत्र) के अनुसार पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिणक्रमसे रहनेवाले ध्वज आदिका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वानो वृषखरौ गजः। ध्वाङ्क्षश्चेति समुद्दिष्टाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणाः ॥

एक सौ छठा अध्याय

नगर आदिके वास्तुका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—कार्तिकेय ! अब मैं राज्यादिकी अभिवृद्धिके लिये नगर-वास्तुका वर्णन करता हूँ। नगर-निर्माणके लिये एक योजन या आधी योजन भूमि ग्रहण करे। वास्तु-नगरका पूजन करके उसको प्राकारसे संयुक्त करे। ईशादि तीस पदोंमें सूर्यके सम्मुख पूर्वद्वार, गन्धर्वके समीप दक्षिणद्वार, वरुणके निकट पश्चिमद्वार और सोमके समीप उत्तरद्वार बनाना चाहिये। नगरमें चौड़े-चौड़े बाजार बनाने चाहिये। नगरद्वार छः हाथ चौड़ा बनाना चाहिये, जिससे हाथी आदि सुखपूर्वक आ-जा सकें। नगर छिन्नकर्ण, भग्न तथा अर्धचन्द्राकार नहीं होना चाहिये। वज्र-सूचीमुख नगर भी हितकर नहीं है। एक, दो या तीन द्वारोंसे युक्त धनुषाकार वज्रनागाभ नगरका निर्माण शान्तिप्रद है ॥ १-५ ॥

नगरके आग्नेयकोणमें स्वर्णकारोंको बसावे, दक्षिण दिशामें नृत्योपजीविनी वाराङ्गनाओंके भवन हों। नैर्ऋत्यकोणमें नट, कुम्भकार तथा केवट आदिके आवास स्थान होने चाहिये। पश्चिममें रथकार, आयुधकार और खड्ग-निर्माताओंका निवास हो। नगरके वायव्यकोणसे मद्य विक्रेता, कर्मकार तथा भृत्योंका निवेश करे। उत्तर दिशामें ब्राह्मण, यति, सिद्ध और पुण्यात्मा पुरुषोंको बसावे। ईशानकोणमें फलादिका विक्रय करनेवाले एवं वणिग्-जन निवास करें। पूर्व दिशामें सेनाध्यक्ष रहें। आग्नेयकोणमें विविध सैन्य, दक्षिणमें स्त्रियोंको ललित कलाकी शिक्षा देनेवाले आचार्यों तथा नैर्ऋत्यकोणमें धनुर्धर सैनिकोंको रक्खे। पश्चिममें महामात्य, कोषपाल एवं कारीगरोंको, उत्तरमें दण्डाधिकारी, नायक तथा द्विजोंको; पूर्वमें क्षत्रियोंको, दक्षिणमें वैश्योंको, पश्चिममें शूद्रोंको, विभिन्न दिशाओंमें वैद्यों को और अश्वों तथा सेनाको चारों ओर रक्खे ॥ ६-१२ ॥

राजा पूर्वमें गुप्तचरों, दक्षिणमें श्मशान, पश्चिममें गोधन और उत्तरमें कृषकोंका निवेश करे। म्लेच्छोंको दिक्कोणोंमें स्थान दे अथवा ग्रामोंमें स्थापित करे। पूर्वद्वारपर लक्ष्मी एवं कुबेरकी स्थापना करे। जो उन दोनोंका दर्शन करते हैं, उन्हें लक्ष्मी (सम्पत्ति) की प्राप्ति होती है। पश्चिममें निर्मित देवमन्दिर पूर्वाभिमुख, पूर्व दिशामें स्थित पश्चिमाभिमुख तथा दक्षिण दिशाके मन्दिर उत्तराभिमुख होने चाहिये। नगरकी रक्षाके लिये इन्द्र और विष्णु आदि देवताओंके मन्दिर बनवावे। देवशून्य नगर, ग्राम, दुर्ग तथा गृह आदिका पिशाच उपभोग करते हैं और वह रोगसमूहसे परिभूत हो जाता है। उपर्युक्त विधिसे निर्मित नगर आदि सदा जयप्रद और भोग-मोक्ष प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ १३-१७ ॥

वास्तु-भूमिकी पूर्व दिशामें शृङ्गार-कक्ष, अग्निकोणमें पाकगृह (रसोईघर), दक्षिणमें शयनगृह, नैर्ऋत्यकोणमें शस्त्रागार, पश्चिममें भोजनगृह, वायव्यकोणमें धान्य-संग्रह, उत्तर दिशामें धनागार तथा ईशानकोणमें देवगृह बनवाना चाहिये। नगरमें एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल या चतुःशाल गृहका निर्माण होना चाहिये। चतुःशाल गृहके शाला और अलिन्द (प्राङ्गण) के भेदसे दो सौ भेद होते हैं। उनमें भी चतुःशाल-गृहके पचपन, त्रिशाल-गृहके चार तथा द्विशालके पाँच भेद होते हैं ॥ १८-२१ ॥

एकशाल गृहके चार भेद हैं। अब मैं अलिन्दयुक्त गृहके विषयमें बतलाता हूँ, सुनिये। गृह-वास्तु तथा नगर-वास्तुमें अट्ठाईस अलिन्द होते हैं। चार तथा सात अलिन्दोंसे पचपन, छः अलिन्दोंसे बीस तथा आठ अलिन्दोंसे भी बीस भेद होते हैं। इस प्रकार नगर आदिमें आठ अलिन्दोंसे युक्त वास्तु भी होता है ॥ २२-२४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नगर आदिके वास्तुका वर्णन' नामक एक सौ छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

भुवनकोष (पृथ्वी-द्वीप आदि) का तथा स्वायम्भुव सर्गका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं भुवनकोष तथा पृथ्वी एवं द्वीप आदिके लक्षणोंका वर्णन करूँगा। आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन और क्षय—ये प्रियव्रतके पुत्र थे। उनका दसवाँ यथार्थनामा पुत्र ज्योतिष्मान् था। प्रियव्रतके ये पुत्र विश्वमें विख्यात थे। पिताने उनको सात द्वीप प्रदान किये।

आग्नीध्रको जम्बूद्वीप एवं मेधातिथिको प्लक्षद्वीप दिया। वपुष्मान्‌को शाल्मलिद्वीप, ज्योतिष्मान्‌को कुशद्वीप, द्युतिमान्‌को क्रौञ्चद्वीप तथा भव्यको शाकद्वीपमें अभिषिक्त किया। सवनको पुष्करद्वीप प्रदान किया। [शेष तीनको कोई स्वतन्त्र द्वीप नहीं मिला।] आग्नीध्रने अपने पुत्रोंमें लाखों योजन विशाल जम्बूद्वीपको इस प्रकार विभाजित कर दिया। नाभिको हिमवर्ष (आधुनिक भारतवर्ष) प्रदान किया। किम्पुरुषको हेमकूटवर्ष, हरिवर्षको नैषधवर्ष, इलावृतको मध्यभागमें मेरुपर्वतसे युक्त इलावृतवर्ष, रम्यकको नीलाचलके आश्रित रम्यकवर्ष, हिरण्यवान्‌को श्वेतवर्ष एवं कुरुको उत्तरकुरुवर्ष दिया। उन्होंने भद्राश्वको भद्राश्ववर्ष तथा केतुमालको मेरुपर्वतके पश्चिममें स्थित केतुमालवर्षका शासन प्रदान किया। महाराज प्रियव्रत अपने पुत्रोंको उपर्युक्त द्वीपोंमें अभिषिक्त करके वनमें चले गये। वे नरेश शालग्रामक्षेत्रमें तपस्या करके विष्णुलोकको प्राप्त हुए॥१-८॥

मुनिश्रेष्ठ! किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष हैं, उनमें सुखकी बहुलता है और बिना यत्नके स्वभावसे ही समस्त भोग सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। उनमें जरा-मृत्यु आदिका कोई भय नहीं है और न धर्म-अधर्म अथवा उत्तम, मध्यम और अधम आदिका ही भेद है। वहाँ सब समान हैं। वहाँ कभी युग-परिवर्तन भी नहीं होता। हिमवर्षके शासक नाभिके मेरु देवीसे ऋषभदेव पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। ऋषभके पुत्र भरत हुए। ऋषभदेवने भरतपर राज्यलक्ष्मीका भार छोड़कर शालग्रामक्षेत्रमें श्रीहरिकी शरण ग्रहण की। भरतके नामसे 'भारतवर्ष' प्रसिद्ध है। भरतसे सुमति हुए। भरतने सुमतिको राज्यलक्ष्मी देकर शालग्रामक्षेत्रमें श्रीहरिकी शरण ली। उन योगिराजने योगाभ्यासमें तत्पर होकर प्राणोंका परित्याग किया। इनका वह चरित्र तुमसे मैं फिर कहूँगा॥ ९-१२½॥

तदनन्तर सुमतिके वीर्यसे इन्द्रद्युम्नका जन्म हुआ। उससे परमेष्ठी और परमेष्ठीका पुत्र प्रतीहार हुआ। प्रतीहारके प्रतिहर्ता, प्रतिहर्ताके भव, भवके उद्गीथ, उद्गीथके प्रस्तार तथा प्रस्तारके विभु नामक पुत्र हुआ। विभुका पृथु, पृथुका नक्त एव नक्तका पुत्र गय हुआ। गयके नर नामक पुत्र और नरके विराट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। विराट्का पुत्र महावीर्य था। उससे धीमान्‌का जन्म हुआ तथा धीमान्‌का पुत्र महान्त और उसका पुत्र मनस्यु हुआ। मनस्युका पुत्र त्वष्टा, त्वष्टाका विरज और विरजका पुत्र रज हुआ। मुने! रजके पुत्र शतजित्‌के सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें विश्वज्योति मुख्य था। उनसे भारतवर्षकी अभिवृद्धि हुई। कृत-त्रेतादि युगक्रमसे यह स्वायम्भुव-मनुका वंश माना गया है॥ १३-१९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भुवनकोष तथा पृथ्वी एवं द्वीप आदिके लक्षणका वर्णन' नामक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०७॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

भुवनकोश-वर्णनके प्रसंगमें भूमण्डलके द्वीप आदिका परिचय

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! जम्बू, प्लक्ष, महान् शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और सातवाँ पुष्कर—ये सातों द्वीप चारों ओरसे खारे जल, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, दुग्ध और मीठे जलके सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। जम्बूद्वीप उन सब द्वीपोंके मध्यमें स्थित है और उसके भी बीचों-बीचमें मेरुपर्वत सीना ताने खड़ा है। उसका विस्तार चौरासी हजार योजन है और यह पर्वतराज सोलह हजार योजन पृथिवीमें घुसा हुआ है। ऊपरी भागमें इसका विस्तार बत्तीस हजार योजन है। नीचेकी गहराईमें इसका विस्तार सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत इस पृथिवीरूप कमलकी कर्णिकाके समान स्थित है। इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषध तथा उत्तरमें नील, श्वेत और शृङ्गी नामक वर्षपर्वत हैं। उनके बीचके दो पर्वत (निषध और नील) एक-एक लाख योजनतक फैले हुए हैं। दूसरे पर्वत उनसे दस-दस हजार योजन कम हैं। वे सभी दो-दो सहस्र योजन ऊँचे और इतने ही चौड़े हैं॥ १-६॥

द्विजश्रेष्ठ! मेरुपर्वतके दक्षिणकी ओर पहला वर्ष भारतवर्ष है तथा दूसरा किम्पुरुषवर्ष और तीसरा हरिवर्ष माना गया है। उत्तरकी ओर रम्यक, हिरण्मय और उत्तर-

एक सौ दसवाँ अध्याय

गङ्गाजीकी महिमा

अग्निदेव कहते हैं—अब गङ्गाका माहात्म्य बतलाता हूँ। गङ्गाका सदा सेवन करना चाहिये। वह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। जिनके बीचसे गङ्गा बहती है, वे सभी देश श्रेष्ठ तथा पावन हैं। उत्तम गतिकी खोज करनेवाले प्राणियोंके लिये गङ्गा ही सर्वोत्तम गति है। गङ्गाका सेवन करनेपर वह माता और पिता—दोनोंके कुलोंका उद्धार करती है। एक हजार चान्द्रायण-व्रतकी अपेक्षा गङ्गाजीके जलका पीना उत्तम है। एक मास गङ्गाजीका सेवन करनेवाला मनुष्य सब यज्ञोंका फल पाता है ॥ १-३ ॥

गङ्गादेवी सब पापोंको दूर करनेवाली तथा स्वर्गलोक देनेवाली है। गङ्गाके जलमें जबतक हड्डी पड़ी रहती है, तबतक वह जीव स्वर्गमें निवास करता है। अंधे आदि भी गङ्गाजीका सेवन करके देवताओंके समान हो जाते हैं। गङ्गा-तीर्थसे निकली हुई मिट्टी धारण करनेवाला मनुष्य सूर्यके समान पापोंका नाशक होता है। जो मानव गङ्गाका दर्शन, स्पर्श, जलपान अथवा 'गङ्गा' इस नामका कीर्तन करता है, वह अपनी सैकड़ों-हजारों पीढ़ियोंके पुरुषोंको पवित्र कर देता है ॥ ४-६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गङ्गाजीकी महिमा' नामक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११० ॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं प्रयागका माहात्म्य बताता हूँ, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला तथा उत्तम है। प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा बड़े-बड़े मुनिवर निवास करते हैं। नदियाँ, समुद्र, सिद्ध, गन्धर्व तथा अप्सराएँ भी उस तीर्थमें वास करती हैं। प्रयागमें तीन अग्निकुण्ड हैं। उनके बीचमें गङ्गा सब तीर्थोंको साथ लिये बड़े वेगसे बहती हैं। वहाँ त्रिभुवन-विख्यात सूर्य कन्या यमुना भी हैं। गङ्गा और यमुनाका मध्यभाग पृथ्वीका 'जघन' माना गया है और प्रयागको ऋषियोंने जघनके बीचका 'उपस्थ भाग' बताया है ॥ १—४ ॥

प्रतिष्ठान (झूसी) सहित प्रयाग, कम्बल और अश्वतर नाग तथा भोगवती तीर्थ—ये ब्रह्माजीके यज्ञकी वेदी कहे गये हैं। प्रयागमें वेद और यज्ञ मूर्तिमान् होकर रहते हैं। उस तीर्थके स्तवन और नाम-कीर्तनसे तथा वहाँकी मिट्टीका स्पर्श करनेमात्रसे भी मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्रयागमें गङ्गा और यमुनाके संगमपर किये हुए दान, श्राद्ध और जप आदि अक्षय होते हैं ॥ ५—७ ॥

ब्रह्मन्! वेद अथवा लोक—किसीके कहनेसे भी अन्तमें प्रयागतीर्थके भीतर मरनेका विचार नहीं छोड़ना चाहिये। प्रयागमें साठ करोड़, दस हजार तीर्थोंका निवास है; अतः वह सबसे श्रेष्ठ है। वासुकि नागका स्थान, भोगवती तीर्थ और हंसप्रपतन—ये उत्तम तीर्थ हैं। कोटि गोदानसे जो फल मिलता है, वही इनमें तीन दिनोंतक स्नान करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। प्रयागमें माघमासमें मनीषी पुरुष ऐसा कहते हैं कि 'गङ्गा सर्वत्र सुलभ हैं; किंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गा-सागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें उनका मिलना बहुत कठिन है।' प्रयागमें दान देनेसे मनुष्य स्वर्गमें जाता है और इस लोकमें आनेपर राजाओंका भी राजा होता है ॥ ८—१२ ॥

अक्षयवटके मूलके समीप और संगम आदिमें मृत्युको प्राप्त हुआ मनुष्य भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। प्रयागमें परम रमणीय उर्वशी-पुलिन, संध्यावट, कोटितीर्थ, दशाश्वमेध घाट, गङ्गा-यमुनाका उत्तम संगम, रजोहीन मानसतीर्थ तथा वासरक तीर्थ—ये सभी परम उत्तम हैं ॥ १३-१४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रयाग-माहात्म्य-वर्णन' नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १११ ॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय

वाराणसीका माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं—वाराणसी परम उत्तम तीर्थ है। जो वहाँ श्रीहरिका नाम लेते हुए निवास करते हैं, उन सबको वह भोग और मोक्ष प्रदान करता है। महादेवजीने पार्वतीसे उसका माहात्म्य इस प्रकार बतलाया है ॥ १ ॥

महादेवजी बोले—गौरि! इस क्षेत्रको मैंने कभी मुक्त नहीं किया—सदा ही वहाँ निवास किया है, इसलिये यह 'अविमुक्त' कहलाता है। अविमुक्त-क्षेत्रमें किया हुआ जप, तप, होम और दान अक्षय होता है। पत्थरसे दोनों पैर तोड़कर बैठ रहे, परंतु काशी कभी न छोड़े। हरिश्चन्द्र, आम्रातकेश्वर, जप्येश्वर, श्रीपर्वत, महालय, भृगु, चण्डेश्वर और केदारतीर्थ—ये आठ अविमुक्त-क्षेत्रमें परम गोपनीय तीर्थ हैं। मेरा अविमुक्त-क्षेत्र सब गोपनीयोंमें भी परम गोपनीय है। वह दो योजन लंबा और आधा योजन चौड़ा है। 'वरणा' और 'नासी' (असी)—इन दो नदियोंके बीचमें 'वाराणसीपुरी' है। इसमें स्नान, जप, होम, मृत्यु, देवपूजन, श्राद्ध, दान और निवास—जो कुछ होता है, वह सब भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है ॥ २—७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वाराणसी-माहात्म्यवर्णन' नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

नर्मदा-माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं नर्मदा आदिका माहात्म्य बताऊँगा। नर्मदा श्रेष्ठ तीर्थ है। गङ्गाका जल स्पर्श करनेपर मनुष्यको तत्काल पवित्र करता है, किंतु नर्मदाका जल, दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देता है। नर्मदातीर्थ सौ योजन लंबा और दो योजन चौड़ा है। अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर नर्मदा-सम्बन्धी साठ करोड़, साठ हजार तीर्थ हैं। कावेरी-संगमतीर्थ बहुत पवित्र है। अब श्रीपर्वतका वर्णन सुनो—॥ १—३ ॥

एक समय गौरीने श्रीदेवीका रूप धारण करके भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर श्रीहरिने उन्हें वरदान देते हुए कहा—"देवि! तुम्हें अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त होगा और तुम्हारा यह पर्वत 'श्रीपर्वत' के नामसे विख्यात होगा। इसके चारों ओर सौ योजनतकका स्थान अत्यन्त पवित्र होगा।" यहाँ किया हुआ दान, तप, जप तथा श्राद्ध सब अक्षय होता है। यह उत्तम तीर्थ सब कुछ देनेवाला है। यहाँकी मृत्यु शिवलोककी प्राप्ति करानेवाली है। इस पर्वतपर भगवान् शिव सदा पार्वतीदेवीके साथ क्रीड़ा करते हैं तथा हिरण्यकशिपु यहीं तपस्या करके अत्यन्त बलवान् हुआ था। मुनियोंने भी यहाँ तपस्यासे सिद्धि प्राप्त की है ॥ ४—७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नर्मदा-माहात्म्य-वर्णन' नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११३ ॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय

गया-माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं गयाके माहात्म्यका वर्णन करूँगा। गया श्रेष्ठ तीर्थोंमें सर्वोत्तम है। एक समयकी बात है—गय नामक असुरने बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की। उससे देवता संतप्त हो उठे और उन्होंने क्षीरसागर-शायी भगवान् विष्णुके समीप जाकर कहा—'भगवन्! आप गयासुरसे हमारी रक्षा कीजिये।' 'तथास्तु' कहकर श्रीहरि गयासुरके पास गये और उससे बोले—'कोई वर माँगो।' दैत्य बोला—'भगवन्! मैं सब तीर्थोंसे अधिक पवित्र हो जाऊँ।' भगवान्ने कहा—'ऐसा ही होगा।'—यों कहकर भगवान् चले गये। फिर तो सभी मनुष्य उस

दैत्यका दर्शन करके भगवान्‌के समीप जा पहुँचे। पृथ्वी सूनी हो गयी। स्वर्गवासी देवता और ब्रह्मा आदि प्रधान देवता श्रीहरिके निकट जाकर बोले---'देव! श्रीहरे! पृथ्वी और स्वर्ग सूने हो गये हैं दैत्यके दर्शनमात्रसे सब लोग आपके धाममें चले गये हैं।' यह सुनकर श्रीहरिने ब्रह्माजीसे कहा---'तुम सम्पूर्ण देवताओंके साथ गयासुरके पास जाओ और यज्ञभूमि बनानेके लिये उसका शरीर माँगो।' भगवान्‌का यह आदेश सुनकर देवताओंसहित ब्रह्माजी गयासुरके समीप जाकर उससे बोले---'दैत्यप्रवर! मैं तुम्हारे द्वारपर अतिथि होकर आया हूँ और तुम्हारे पावन शरीरको यज्ञके लिये माँग रहा हूँ' ॥ १-६ ॥

'तथास्तु' कहकर गयासुर धरतीपर लेट गया। ब्रह्माजीने उसके मस्तकपर यज्ञ आरम्भ किया। जब पूर्णाहुतिका समय आया, तब गयासुरका शरीर चञ्चल हो उठा। यह देख प्रभु ब्रह्माजीने पुनः भगवान् विष्णुसे कहा---'देव! गयासुर पूर्णाहुतिके समय विचलित हो रहा है।' तब श्रीविष्णुने धर्मको बुलाकर कहा---'तुम इस असुरके शरीरपर देवमयी शिला रख दो और सम्पूर्ण देवता उस शिलापर बैठ जायँ। देवताओंके साथ मेरी गदाधर-मूर्ति भी इसपर विराजमान होगी।' यह सुनकर धर्मने देवमयी विशाल शिला उस दैत्यके शरीरपर रख दी। [शिलाका परिचय इस प्रकार है---] धर्मने उनकी पत्नी धर्मवतीके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम 'धर्मव्रता' था। वह बड़ी तपस्विनी थी। ब्रह्माके पुत्र महर्षि मरीचिने उसके साथ विवाह किया। जैसे भगवान् विष्णु श्रीलक्ष्मीजीके साथ और भगवान् शिव श्रीपार्वतीजीके साथ विहार करते हैं, उसी प्रकार महर्षि मरीचि धर्मव्रताके साथ रमण करने लगे ॥ ७-११ ॥

एक दिनकी बात है। महर्षि जंगलसे कुशा और पुष्प आदि ले आकर बहुत थक गये थे। उन्होंने भोजन करके धर्मव्रतासे कहा---'प्रिये! मेरे पैर दबाओ।' 'बहुत अच्छा' कहकर प्रिया धर्मव्रता थके-माँदे मुनिके चरण दबाने लगी। मुनि सो गये; इतनेमें ही वहाँ ब्रह्माजी आ गये। धर्मव्रताने सोचा---'मैं ब्रह्माजीका पूजन करूँ या अभी मुनिकी चरण-सेवामें ही लगी रहूँ। ब्रह्माजी गुरुके भी गुरु हैं---मेरे पतिके भी पूज्य हैं; अतः इनका पूजन करना ही उचित है।' ऐसा विचारकर वह पूजन-सामग्रियोंसे ब्रह्माजीकी पूजामें लग गयी। नींद टूटनेपर जब मरीचि मुनिने धर्म-व्रताको अपने समीप नहीं देखा, तब आज्ञा-उल्लङ्घनके अपराधसे उसे शाप देते हुए कहा---'तू शिला हो जायगी।' यह सुनकर धर्मव्रता कुपित हो उनसे बोली---'मुने! चरण-सेवा छोड़कर मैंने आपके पूज्य पिताकी पूजा की है, अतः मैं सर्वथा निर्दोष हूँ; ऐसी दशामें भी आपने मुझे शाप दिया है, अतः आपको भी भगवान् शिवसे शापकी प्राप्ति होगी।' यों कहकर धर्मव्रताने शापको पृथक् रख दिया और स्वयं अग्निमें प्रवेश करके वह हजारों वर्षोंतक कठोर तपस्यामें संलग्न रही। इससे प्रसन्न होकर श्रीविष्णु आदि देवताओंने कहा---'वर माँगो।' धर्मव्रता देवताओंसे बोली---'आपलोग मेरे शापको दूर कर दें' ॥ १२-१८ ॥

देवताओंने कहा---शुभे! महर्षि मरीचिका दिया हुआ शाप अन्यथा नहीं होगा। तुम देवताओंके चरण-चिह्नसे अङ्कित परमपवित्र शिला होओगी। गयासुरके शरीरको स्थिर रखनेके लिये तुम्हें शिलाका स्वरूप धारण करना होगा। उस समय तुम देवव्रता, देवशिला, सर्वदेवस्वरूपा, सर्वतीर्थमयी तथा पुण्यशिला कहलाओगी ॥ १९-२० ॥

देवव्रता बोली---देवताओ! यदि आपलोग मुझपर प्रसन्न हों तो शिला होनेके बाद मेरे ऊपर ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र आदि देवता और गौरी लक्ष्मी आदि देवियाँ सदा विराजमान रहें ॥ २१ ॥

अग्निदेव कहते हैं---देवव्रताकी बात सुनकर सब देवता 'तथास्तु' कहकर स्वर्गको चले गये। उस देवमयी शिलाको ही धर्मने गयासुरके शरीरपर रक्खा। परंतु वह शिलाके साथ ही हिलने लगा। यह देख रुद्र आदि देवता भी उस शिलापर जा बैठे। अब वह देवताओंको साथ लिये हिलने-डोलने लगा। तब देवताओंने क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुको प्रसन्न किया। श्रीहरिने उनको अपनी गदाधरमूर्ति प्रदान की और कहा---'देवगण! आपलोग चलिये; इस देवगम्य मूर्तिके द्वारा मैं स्वयं ही वहाँ उपस्थित होऊँगा।' इस प्रकार उस दैत्यके शरीरको स्थिर रखनेके लिये व्यक्ताव्यक्त उभयस्वरूप साक्षात् गदाधारी भगवान् विष्णु वहाँ स्थित हुए। वे आदि-गदाधरके नामसे उस तीर्थमें विराजमान हैं ॥ २२-२५ ॥

पूर्वकालमें 'गद' नामसे प्रसिद्ध एक भयंकर असुर था। उसे श्रीविष्णुने मारा और उसकी हड्डियोंसे विश्वकर्माने

भगवान् ब्रह्मा [अग्नि० अ० ४९

अष्टभुजा विष्णु [अग्नि० अ० ४९

त्रैलोक्यमोहन श्रीहरि [अग्नि० अ० ४९

विश्वरूप विष्णु [अग्नि० अ० ४९

गदाका निर्माण किया। वही 'आदि-गदा' है। उस आदि-गदाके द्वारा भगवान् गदाधरने 'हेति' आदि राक्षसोंका वध किया था, इसलिये वे 'आदि-गदाधर' कहलाये। पूर्वोक्त देवमयी शिलापर आदि-गदाधरके स्थित होनेपर गयासुर स्थिर हो गया; तब ब्रह्माजीने पूर्णाहुति दी। तदनन्तर गयासुरने देवताओंसे कहा—'किसलिये मेरे साथ वञ्चना की गयी है? क्या मैं भगवान् विष्णुके कहनेमात्रसे स्थिर नहीं हो सकता था? देवताओ! यदि आपने मुझे शिला आदिके द्वारा दबा रक्खा है, तो आपको मुझे वरदान देना चाहिये' ॥ २६—३० ॥

देवता बोले—'दैत्यप्रवर! तीर्थ-निर्माणके लिये हमने तुम्हारे शरीरको स्थिर किया है; अतः यह तुम्हारा क्षेत्र भगवान् विष्णु, शिव तथा ब्रह्माजीका निवास-स्थान होगा। सब तीर्थोंसे बढ़कर इसकी प्रसिद्धि होगी तथा पितर आदिके लिये यह क्षेत्र ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला होगा।'—यों कहकर सब देवता वहीं रहने लगे। देवियों और तीर्थ आदिने भी उसे अपना निवास-स्थान बनाया। ब्रह्माजीने यज्ञ पूर्ण करके उस समय ऋत्विजोंको दक्षिणाएँ दीं। पाँच कोसका गया-क्षेत्र और पचपन गाँव अर्पित किये। यही नहीं, उन्होंने सोनेके अनेक पर्वत बनाकर दिये। दूध और मधुकी धारा बहानेवाली नदियाँ समर्पित कीं। दही और घीके सरोवर प्रदान किये। अन्न आदिके बहुत-से पहाड़, कामधेनु गाय, कल्पवृक्ष तथा सोने-चाँदीके घर भी दिये। भगवान् ब्रह्माने ये सब वस्तुएँ देते समय ब्राह्मणोंसे कहा—'विप्रवरो! अब तुम मेरी अपेक्षा अल्प-शक्ति रखनेवाले अन्य व्यक्तियोंसे कभी याचना न करना।' यों कहकर उन्होंने वे सब वस्तुएँ उन्हें अर्पित कर दीं ॥ ३१—३५ ॥

तत्पश्चात् धर्मने यज्ञ किया। उस यज्ञमें लोभवश धन आदिका दान लेकर जब वे ब्राह्मण पुनः गयामें स्थित हुए, तब ब्रह्माजीने उन्हें शाप दिया—'अब तुमलोग विद्या-विहीन और लोभी हो जाओगे। इन नदियोंमें अब दूध आदिका अभाव हो जायगा और ये सुवर्ण-शैल भी पत्थर मात्र रह जायँगे।' तब ब्राह्मणोंने ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन्! आपके शापसे हमारा सब कुछ नष्ट हो गया। अब हमारी जीविकाके लिये कृपा कीजिये।' यह सुनकर वे ब्राह्मणोंसे बोले—'अब इस तीर्थसे ही तुम्हारी जीविका चलेगी। जबतक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे, तबतक इसी वृत्तिसे तुम जीवननिर्वाह करोगे। जो लोग गया-तीर्थमें आयेंगे, वे तुम्हारी पूजा करेंगे। जो हव्य, कव्य, धन और श्राद्ध आदिके द्वारा तुम्हारा सत्कार करेंगे, उनकी सौ पीढ़ियोंके पितर नरकसे स्वर्गमें चले जायँगे और स्वर्गमें ही रहनेवाले पितर परमपदको प्राप्त होंगे' ॥ ३६—४० ॥

महाराज गयने भी उस क्षेत्रमें बहुत अन्न और दक्षिणासे सम्पन्न यज्ञ किया था। उन्हींके नामसे गयापुरीकी प्रसिद्धि हुई। पाण्डवोंने भी गयामें आकर श्रीहरिकी आराधना की थी ॥ ४१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गया-माहात्म्य-वर्णन' नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय

गया-यात्राकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—यदि मनुष्य गया जानेको उद्यत हो तो विधिपूर्वक श्राद्ध करके तीर्थयात्रीका वेष धारणकर अपने गाँवकी परिक्रमा कर ले; फिर प्रतिदिन पैदल यात्रा करता रहे। मन और इन्द्रियोंको वशमें रक्खे। किसीसे कुछ दान न ले। गया जानेके लिये घरसे चलते ही पग-पगपर पितरोंके लिये स्वर्गमें जानेकी सीढ़ी बनने लगती है। यदि पुत्र [पितरोंका श्राद्ध करनेके लिये] गया चला जाय तो उससे होनेवाले पुण्यके सामने ब्रह्मज्ञानकी क्या कीमत है? गौओंको संकटसे छुड़ानेके लिये प्राण देनेपर भी क्या उतना पुण्य होना सम्भव है! फिर तो कुरुक्षेत्रमें निवास करनेकी भी क्या आवश्यकता है? पुत्रको गयामें पहुँचा हुआ देखकर पितरोंके यहाँ उत्सव होने लगता है। वे कहते हैं—'क्या यह पैरोंसे भी जलका स्पर्श करके हमारे तर्पणके लिये नहीं देगा?' ब्रह्मज्ञान, गयामें किया हुआ श्राद्ध, गोशालामें मरण और कुरुक्षेत्रमें निवास—ये मनुष्योंकी मुक्तिके चार साधन हैं।* नरकके भयसे डरे

* ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ॥
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ।
(अग्निपु० ११५ । ५-६)

हुए पितर पुत्रकी अभिलाषा रखते हैं। वे सोचते हैं, जो पुत्र गयामें जायगा, वह हमारा उद्धार कर देगा ॥१—६½॥

मुण्डन और उपवास—यह सब तीर्थोंके लिये साधारण विधि है। गयातीर्थमें काल आदिका कोई नियम नहीं है। वहाँ प्रतिदिन पिण्डदान देना चाहिये। जो वहाँ तीन पक्ष (डेढ़ मास) निवास करता है, वह सात पीढ़ीतकके पितरोंको पवित्र कर देता है। अष्टका तिथियोंमें, आभ्युदयिक कार्योंमें तथा पिता आदिकी क्षयाह-तिथिको भी यहाँ गयामें माताके लिये पृथक् श्राद्ध करनेका विधान है। अन्य तीर्थोंमें स्त्रीका श्राद्ध उसके पतिके साथ ही होता है। गयामें पिता आदिके क्रमसे 'नव देवताक' अथवा 'द्वादशदेवताक' श्राद्ध करना आवश्यक है[2] ॥ ७—९½ ॥

पहले दिन उत्तर-मानस-तीर्थमें स्नान करे। परम पवित्र उत्तर-मानस-तीर्थमें किया हुआ स्नान आयु और आरोग्यकी वृद्धि, सम्पूर्ण पापराशियोंका विनाश तथा मोक्षकी सिद्धि करनेवाला है; अतः वहाँ अवश्य स्नान करे। स्नानके बाद पहले देवता और पितर आदिका तर्पण करके श्राद्धकर्ता पुरुष पितरोंको पिण्डदान दे। तर्पणके समय यह भावना करे कि 'मैं स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा भूमिपर रहनेवाले सम्पूर्ण देवताओंको तृप्त करता हूँ।' स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा भूमिके देवता आदि एवं पिता-माता आदिका तर्पण करे। फिर इस प्रकार कहे—'पिता, पितामह और प्रपितामह, माता, पितामही और प्रपितामही तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्ध-प्रमातामह—इन सबको तथा अन्य पितरोंको भी उनके उद्धारके लिये मैं पिण्ड देता हूँ। सोम, मङ्गल और बुधस्वरूप तथा बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतुरूप भगवान् सूर्यको प्रणाम है।' उत्तर-मानस-तीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष अपने समस्त कुलका उद्धार कर देता है ॥ १०—१६ ॥

सूर्यदेवको नमस्कार करके मनुष्य मौन-भावसे दक्षिण-मानस-तीर्थको जाय और यह भावना करे—'मैं पितरोंकी तृप्तिके लिये दक्षिण-मानस-तीर्थमें स्नान करता हूँ। मैं गयामें इसी उद्देश्यसे आया हूँ कि मेरे सम्पूर्ण पितर स्वर्गलोकको चले जायँ।' तदनन्तर श्राद्ध और पिण्डदान करके भगवान् सूर्यको प्रणाम करते हुए इस प्रकार कहे—'सबका भरण-पोषण करनेवाले भगवान् भानुको नमस्कार है। प्रभो! आप मेरे अभ्युदयके साधक हों। मैं आपका ध्यान करता हूँ। आप मेरे सम्पूर्ण पितरोंको भोग और मोक्ष देनेवाले हों। कव्यवाट्, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् तथा आज्यप नामवाले महाभाग पितृ-देवता यहाँ पदार्पण करें। आपलोगोंके द्वारा सुरक्षित जो मेरे पिता-माता, मातामह आदि पितर हैं, उनको पिण्डदान करनेके उद्देश्यसे मैं इस गयातीर्थमें आया हूँ।' मुण्डपृष्ठके उत्तर भागमें देवताओं और ऋषियोंसे पूजित जो 'कनखल' नामक तीर्थ है, वह तीनों लोकोंमें विख्यात है। सिद्ध पुरुषोंके लिये आनन्ददायक और पापियोंके लिये भयंकर बड़े-बड़े नाग, जिनकी जीभ लपलपाती रहती है, उस तीर्थकी प्रतिदिन रक्षा करते हैं। वहाँ स्नान करके मनुष्य इस भूतलपर सुखपूर्वक क्रीडा करते और अन्तमें स्वर्गलोकको जाते हैं ॥ १७—२४ ॥

तत्पश्चात् महानदीमें स्थित परम उत्तम फल्गु-तीर्थपर जाय। यह नाग, जनार्दन, कूप, वट और उत्तर-मानससे भी उत्कृष्ट है। इसे 'गयाका शिरोभाग' कहा गया है। गयाशिरको ही 'फल्गु-तीर्थ' कहते हैं। यह मुण्डपृष्ठ और नग आदि तीर्थकी अपेक्षा सारसे भी सार वस्तु है। इसे 'आभ्यन्तर-तीर्थ' कहा गया है। जिसमें लक्ष्मी, कामधेनु गौ, जल और पृथ्वी सभी फलदायक होते हैं तथा जिससे दृष्टि रमणीय, मनोहर वस्तुएँ फलित होती हैं, वह

---

१. मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमाके बाद जो चार कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उन्हें 'अष्टका' कहते हैं। उनके चार पृथक्-पृथक् नाम हैं—पौष कृष्ण अष्टमीको 'ऐन्द्री,' माघ कृष्ण अष्टमीको 'वैश्वदेवी,' फाल्गुन कृष्ण अष्टमीको 'प्राजापत्या' और चैत्र कृष्ण अष्टमीको 'पित्र्या' कहते हैं।

उक्त चार अष्टकाओंका क्रमशः इन्द्र, विश्वेदेव, प्रजापति तथा पितृ-देवतासे सम्बन्ध है। अष्टकाके दूसरे दिन जो नवमी आती है, उसे 'अन्वष्टका' कहते हैं। 'अष्टका संस्कार'-कर्म है; अतः एक ही बार किया जाता है, प्रतिवर्ष नहीं। उस दिन मातृपूजा और आभ्युदयिक श्राद्धके पश्चात् गृह्याग्निमें होम किया जाता है।

२. पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह तथा वृद्ध प्रमातामह—ये नौ देवता हैं। इनके लिये किया जानेवाला श्राद्ध 'नवदेवताक' या 'नवदैवत्य' कहलाता है। इसमें मातामही आदिका भाग मातामह आदिके साथ ही सम्मिलित रहता है। जहाँ मातामही और वृद्ध प्रमातामहीको भी पृथक् पिण्ड दिया जाय, वहाँ बारह देवता होनेसे वह 'द्वादश-देवताक' श्राद्ध है।

'फल्गु-तीर्थ' है। फल्गु-तीर्थ किसी हलके-फुलके तीर्थके समान नहीं है। फल्गु-तीर्थमें स्नान करके मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करे तो इससे पुण्यात्मा पुरुषोंको क्या नहीं प्राप्त होता? भूतलपर समुद्र-पर्यन्त जितने भी तीर्थ और सरोवर हैं, वे सब प्रतिदिन एक बार फल्गु-तीर्थमें जाया करते हैं। जो तीर्थराज फल्गुतीर्थमें श्रद्धाके साथ स्नान करता है, उसका वह स्नान पितरोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला तथा अपने लिये भोग और मोक्षकी सिद्धि करनेवाला होता है॥ २५-३०॥

श्राद्धकर्ता पुरुष स्नानके पश्चात् भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम करे। [उस समय इस प्रकार कहे-] 'कलियुगमें सब लोग महेश्वरके उपासक हैं; किंतु इस गया-तीर्थमें भगवान् गदाधर उपास्यदेव है। यहाँ लिङ्गस्वरूप ब्रह्माजीका निवास है, उन्हीं महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान् गदाधर (वासुदेव), बलराम (संकर्षण), प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नृसिंह तथा वराह आदिको मैं प्रणाम करता हूँ।' तदनन्तर श्रीगदाधरका दर्शन करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। दूसरे दिन धर्मारण्य-तीर्थका दर्शन करे। वहाँ मतङ्ग मुनिके श्रेष्ठ आश्रममें मतङ्ग-वापीके जलमें स्नान करके श्राद्धकर्ता पुरुष पिण्डदान करे। वहाँ मतङ्गेश्वर एवं सुसिद्धेश्वरको मस्तक झुकाकर इस प्रकार कहे—'सम्पूर्ण देवता प्रमाणभूत होकर रहें, समस्त लोकपाल साक्षी हों, मैंने इस मतङ्ग-तीर्थमें आकर पितरोंका उद्धार कर दिया।' तत्पश्चात् ब्रह्म-तीर्थ नामक कूपमें स्नान, तर्पण और श्राद्ध आदि करे। उस कूप और यूपके मध्यभागमे किया हुआ श्राद्ध सौ पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला है। वहाँ धर्मात्मा पुरुष महाबोधि-वृक्षको नमस्कार करके स्वर्गलोकका भागी होता है। तीसरे दिन नियम एवं व्रतका पालन करनेवाला पुरुष 'ब्रह्म-सरोवर' नामक तीर्थमें स्नान करे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—'मैं ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित ब्रह्म-सरोवर-तीर्थमें पितरोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेके लिये स्नान करता हूँ।' श्राद्धकर्ता पुरुष तर्पण करके पिण्डदान दे। फिर वृक्षको सींचे। जो वाजपेय-यज्ञका फल पाना चाहता हो, वह ब्रह्माजीद्वारा स्थापित यूपकी प्रदक्षिणा करे॥ ३१-३९॥

उस तीर्थमें एक मुनि रहते थे, वे जलका घड़ा और कुशका अग्रभाग हाथमें लिये आमके पेड़की जड़में पानी देते थे। इससे आम भी सींचे गये और पितरोंकी भी तृप्ति हुई। इस प्रकार एक ही क्रिया दो प्रयोजन सिद्ध करनेवाली हो गयी।* ब्रह्माजीको नमस्कार करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। चौथे दिन फल्गु-तीर्थमें स्नान करके देवता आदिका तर्पण करे। फिर गयाशीर्षमें श्राद्ध और पिण्डदान करे। गयाका क्षेत्र पाँच कोसका है। उसमें एक कोस केवल 'गयाशीर्ष' है। उसमें पिण्डदान करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर सकता है। परम बुद्धिमान् महादेवजीने मुण्डपृष्ठमें अपना पैर रक्खा है। मुण्डपृष्ठमें ही गयासुरका साक्षात् सिर है, अतएव उसे 'गया-शिर' कहते हैं। जहाँ साक्षात् गयाशीर्ष है, वहीं फल्गु-तीर्थका आश्रय है। फल्गु अमृतकी धारा बहाती है। वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे किया हुआ दान अक्षय होता है। दशाश्वमेध-तीर्थमें स्नान तथा ब्रह्माजीका दर्शन करके महादेवजीके चरण (रुद्रपाद) का स्पर्श करनेपर मनुष्य पुनः इस लोकमें जन्म नहीं लेता। गयाशीर्षमें शमीके पत्ते-बराबर पिण्ड देनेसे भी नरकोंमें पड़े हुए पितर स्वर्गको चले जाते हैं और स्वर्गवासी पितरोंको मोक्षकी प्राप्ति होती है। वहाँ खीर, आटा, सत्तू, चरु और चावलसे पिण्डदान करे। तिलमिश्रित गेहूँसे भी रुद्रपादमें पिण्डदान करके मनुष्य अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर सकता है॥ ४०-४८॥

इसी प्रकार 'विष्णुपदी'में भी श्राद्ध और पिण्डदान करनेवाला पुरुष पितृ-ऋणसे छुटकारा पाता है और पिता आदि ऊपरकी सौ पीढ़ियों तथा अपनेको भी तार देता है। 'ब्रह्मपद'में श्राद्ध करनेवाला मानव अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचाता है। *दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य-अग्नि तथा* आहवनीय-अग्निके स्थानमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष यज्ञफलका भागी होता है। आवसथ्याग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, गणेश, अगस्त्य और कार्तिकेयके स्थानमें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य अपने कुलका उद्धार कर देता है। मनुष्य सूर्यके रथको नमस्कार करके कर्णादित्यको मस्तक झुकावे। कनकेश्वरके पदको प्रणाम करके गया-केदार-तीर्थको नमस्कार करे। इससे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पाकर अपने

* एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददाति।
आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा॥
(अग्निपु० ११५। ४०)

पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। विशाल भी गया-शीर्षमें पिण्डदान करनेसे पुत्रवान् हुए।

कहते हैं, विशाला नगरीमें एक 'विशाल' नामसे प्रसिद्ध राजपुत्र थे। उन्होंने ब्राह्मणोंसे पूछा—'मुझे पुत्र आदिकी उत्पत्ति किस प्रकार होगी?' यह सुनकर ब्राह्मणोंने विशालसे कहा—'गयामें पिण्डदान करनेसे तुम्हें सब कुछ प्राप्त होगा।' तब विशालने भी गयाशीर्षमें पितरोंको पिण्डदान किया। उस समय आकाशमें उन्हें तीन पुरुष दिखायी दिये, जो क्रमशः श्वेत, लाल और काले थे। विशालने उनसे पूछा—'आप लोग कौन हैं?' उनमेंसे एक श्वेतवर्णवाले पुरुषने विशालसे कहा—'मैं तुम्हारा पिता हूँ; मेरा वर्ण श्वेत है; मैं अपने शुभकर्मसे इन्द्रलोकमें गया था। बेटा! ये लाल रंगवाले मेरे पिता और काले रंगवाले मेरे पितामह थे। ये नरकमें पड़े थे; तुमने हम सबको मुक्त कर दिया। तुम्हारे पिण्डदानसे हमलोग ब्रह्मलोकमें जा रहे हैं।' यों कहकर वे तीनों चले गये। विशालको पुत्र-पौत्र आदिकी प्राप्ति हुई। उन्होंने राज्य भोगकर मृत्युके पश्चात् भगवान् श्रीहरिको प्राप्त कर लिया॥ ४९—५९॥

एक प्रेतोंका राजा था, जो अन्य प्रेतोंके साथ बहुत पीड़ित रहता था। उसने एक दिन एक वणिक्से अपनी मुक्तिके लिये इस प्रकार कहा—'भाई! हमारे द्वारा एक ही पुण्य हुआ था, जिसका फल यहाँ भोगते हैं। पूर्वकालमें एक बार श्रवण-नक्षत्र और द्वादशी तिथिका योग आनेपर हमने अन्न और जलसहित कुम्भदान किया था; वही प्रतिदिन मध्याह्नके समय हमारी जीवन-रक्षाके लिये उपस्थित होता है। तुम हमसे धन लेकर गया जाओ और हमारे लिये पिण्डदान करो।' वणिक्ने उससे धन लिया और गयामें उसके निमित्त पिण्डदान किया। उसका फल यह हुआ कि वह प्रेतराज अन्य सब प्रेतोंके साथ मुक्त होकर श्रीहरिके धाममें जा पहुँचा। गयाशीर्षमें पिण्डदान करनेसे मनुष्य अपने पितरोंका तथा अपना भी उद्धार कर देता है॥ ६०—६३॥

वहाँ पिण्डदान करते समय इस प्रकार कहना चाहिये—'मेरे पिताके कुलमें तथा माताके वंशमें और गुरु, श्वशुर एवं बन्धुजनोंके वंशमें जो मृत्युको प्राप्त हुए हैं, इनके अतिरिक्त भी जो बन्धु-बान्धव मरे हैं, मेरे कुलमें जिनका श्राद्ध कर्म— पिण्डदान आदि लुप्त हो गया है, जिनके कोई स्त्री-पुत्र नहीं रहा है, जिनके श्राद्ध-कर्म नहीं होने पाये हैं, जो जन्मके अंधे, लँगड़े और विकृत रूपवाले रहे हैं, जिनका अपक्व गर्भके रूपमें निधन हुआ है, इस प्रकार जो मेरे कुलके ज्ञात एवं अज्ञात पितर हों, वे सब मेरे दिये हुए इस पिण्डदानसे सदाके लिये तृप्त हो जायँ। जो कोई मेरे पितर प्रेतरूपसे स्थित हों, वे सब यहाँ पिण्ड देनेसे सदाके लिये तृप्तिको प्राप्त हों।' अपने कुलको तारनेवाली सभी संतानोंका कर्तव्य है कि वे अपने सम्पूर्ण पितरोंके उद्देश्यसे वहाँ पिण्ड दें तथा अक्षय लोककी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अपने लिये भी पिण्ड अवश्य देना चाहिये* ॥६४—६८॥

बुद्धिमान् पुरुष पाँचवें दिन 'गदालोल' नामक तीर्थमें स्नान करे। उस समय इस मन्त्रका पाठ करे—"भगवान् जनार्दन! जिसमें आपकी गदाका प्रक्षालन हुआ था, उस अत्यन्त पावन 'गदालोल' नामक तीर्थमें मैं संसाररूपी रोगकी शान्तिके लिये स्नान करता हूँ"॥ ६९½॥

'अक्षय स्वर्ग प्रदान करनेवाले अक्षयवटको नमस्कार है। जो पिता-पितामह आदिके लिये अक्षय आश्रय है तथा सब पापोंका क्षय करनेवाला है, उस अक्षय वटको नमस्कार है।'—यों प्रार्थना कर वटके नीचे श्राद्ध करके ब्राह्मण-भोजन करावे॥ ७०-७१॥

वहाँ एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटि ब्राह्मणोंको भोजन करानेका पुण्य होता है। फिर यदि बहुत से ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाय, तब तो उसके पुण्यका क्या कहना है? वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय होता है। पितर उसी पुत्रसे अपनेको पुत्रवान् मानते हैं, जो गयामें जाकर उनके लिये अन्नदान करता है। वट तथा वटेश्वरको नमस्कार करके अपने प्रपितामहका पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष अक्षय लोकोंमें जाता है और अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। क्रमसे हो या बिना क्रमसे, गयाकी यात्रा महान् फल देनेवाली होती है॥ ७२—७४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गया-यात्राकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११५॥

---

* पिण्डो देयस्तु सर्वेभ्यः सर्वैर्वै कुलतारकैः। आत्मनस्तु तथा देयो ह्यक्षयं लोकमिच्छता॥ (अग्निपु० ११५। ६८)

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

गयामें श्राद्धकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—गायत्री-मन्त्रसे ही महानदीमें स्नान करके संध्योपासना करे। प्रातःकाल गायत्रीके सम्मुख किया हुआ श्राद्ध और पिण्डदान अक्षय होता है। सूर्योदयके समय तथा मध्याह्नकालमें स्नान करके गीत और वाद्यके द्वारा सावित्री देवीकी उपासना करे। फिर उन्हींके सम्मुख संध्या करके नदीके तटपर पिण्डदान करे। तदनन्तर अगस्त्यपदमें पिण्डदान करे। फिर 'योनिद्वार' (ब्रह्मयोनि) में प्रवेश करके निकले। इससे वह फिर माताकी योनिमें नहीं प्रवेश करता, पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है। तत्पश्चात् काकशिलापर बलि देकर कुमार कार्तिकेयको प्रणाम करे। इसके बाद स्वर्गद्वार, सोमकुण्ड और वायु-तीर्थमें पिण्डदान करे। फिर आकाश-गङ्गा और कपिलाके तटपर पिण्ड दे। वहाँ कपिलेश्वर शिवको प्रणाम करके रुक्मिकुण्डपर पिण्डदान करे॥ १—५॥

कोटि-तीर्थमें भगवान् कोटीश्वरको नमस्कार करके मनुष्य अमोघपद, गदालोल, वानरक एवं गोप्रचार-तीर्थमें पिण्डदान दे। वैतरणीमें गौको नमस्कार एवं दान करके मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। वैतरणीके तटपर श्राद्ध एवं पिण्डदान करे। उसके बाद क्रौञ्चपादमें पिण्ड दे। तृतीया तिथिको विशाला, निश्चिरा, ऋणमोक्ष तथा पापमोक्ष तीर्थमें भी पिण्डदान करे। भस्मकुण्डमें भस्मसे स्नान करनेवाला पुरुष पापसे मुक्त हो जाता है। वहाँ भगवान् जनार्दनको प्रणाम करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'जनार्दन! यह पिण्ड मैंने आपके हाथमें समर्पित किया है। परलोकमें जानेपर यह मुझे अक्षयरूपमें प्राप्त हो।' गयामें साक्षात् भगवान् विष्णु ही पितृदेवके रूपमें विराजमान हैं॥ ६—१०॥

उन भगवान् कमलनयनका दर्शन करके मानव तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। तदनन्तर मार्कण्डेयेश्वरको प्रणाम करके मनुष्य गृध्रेश्वरको नमस्कार करे। महादेवजीके मूल-क्षेत्र धारामें पिण्डदान करना चाहिये। इसी प्रकार गृध्रकूट, गृध्रवट और धौतपादमें भी पिण्डदान करना उचित है। पुष्करिणी, कर्दमाल और रामतीर्थमें पिण्ड दे। फिर प्रभासेश्वरको नमस्कार करके प्रेतशिलापर पिण्डदान दे। उस समय इस प्रकार कहे—'दिव्यलोक, अन्तरिक्षलोक तथा भूमिलोकमें जो मेरे पितर और बान्धव आदि सम्बन्धी प्रेत आदिके रूपमें रहते हों, वे सब लोग इन मेरे दिये हुए पिण्डोंके प्रभावसे मुक्ति-लाभ करें।' प्रेतशिला तीन स्थानोंमें अत्यन्त पावन मानी गयी है—गयाशीर्ष, प्रभासतीर्थ और प्रेतकुण्ड। इनमें पिण्डदान करनेवाला पुरुष अपने कुलका उद्धार कर देता है॥ ११—१५॥

वसिष्ठेश्वरको नमस्कार करके उनके आगे पिण्डदान दे। गयानाभि, सुषुम्ना तथा महाकोष्ठीमें भी पिण्डदान करे। भगवान् गदाधरके सामने मुण्डपृष्ठपर देवीके समीप पिण्डदान करे। पहले क्षेत्रपाल आदि सहित मुण्डपृष्ठको नमस्कार कर लेना चाहिये। उनका पूजन करनेसे भयका नाश होता है, विष और रोग आदिका कुप्रभाव भी दूर हो जाता है। ब्रह्माजीको प्रणाम करनेसे मनुष्य अपने कुलको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। सुभद्रा, बलभद्र तथा भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करके अपने कुलका उद्धार कर देता और अन्तमें स्वर्गलोकका भागी होता है। भगवान् हृषीकेशको नमस्कार करके उनके आगे पिण्डदान देना चाहिये। श्रीमाधवका पूजन करके मनुष्य विमानचारी देवता होता है॥ १६—२०॥

भगवती महालक्ष्मी, गौरी तथा मङ्गलमयी सरस्वतीकी पूजा करके मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार करता, स्वयं भी स्वर्गलोकमें जाता और वहाँ भोग भोगनेके पश्चात् इस लोकमें आकर शास्त्रोंका विचार करनेवाला पण्डित होता है। फिर बारह आदित्योंका, अग्निका, रेवन्तका और इन्द्रका पूजन करके मनुष्य रोग आदिसे छुटकारा पा जाता है और अन्तमें स्वर्गलोकका निवासी होता है। 'श्रीकपर्दि विनायक' तथा कार्तिकेयका पूजन करनेसे मनुष्यको निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धि प्राप्त होती है। सोमनाथ, कालेश्वर, केदार, प्रपितामह, सिद्धेश्वर, रुद्रेश्वर रामेश्वर तथा ब्रह्मकेश्वर—इन आठ गुप्त लिङ्गोंका पूजन करनेसे मनुष्य सब कुछ पा लेता है। यदि लक्ष्मी-प्राप्तिकी कामना हो तो भगवान् नारायण, वाराह, नरसिंहको नमस्कार करे। ब्रह्मा, विष्णु तथा त्रिपुरनाशक महेश्वरको भी प्रणाम करे। वे सब कामनाओंको देनेवाले हैं॥ २१—२५॥

सीता, राम, गरुड तथा वामनका पूजन करनेसे मानव अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त कर लेता है और पितरोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करा देता है। देवताओंसहित भगवान् श्रीआदि-गदाधरका पूजन करनेसे मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर अपने सम्पूर्ण कुलको तार देता है। प्रेतशिला देवरूपा होनेसे परम पवित्र है। गयामें वह शिला देवमयी ही है। गयामें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ तीर्थ न हो। गयामें जिसके नामसे भी पिण्ड दिया जाता है, उसे वह सनातन ब्रह्ममें प्रतिष्ठित कर देता है। फल्गवीश्वर, फल्गुचण्डी तथा अङ्गारकेश्वरको प्रणाम करके श्राद्धकर्ता पुरुष मतङ्ग-मुनिके स्थानमें पिण्डदान दे। फिर भरतके आश्रमपर भी पिण्ड दे। इसी प्रकार हंस-तीर्थ और कोटि-तीर्थमें भी करना चाहिये। जहाँ पाण्डुशिला नद है, वहाँ अग्निधारा तथा मधुस्रवा तीर्थमें पिण्डदान करे। तत्पश्चात् इन्द्रेश्वर, किलकिलेश्वर तथा वृद्धि-विनायकको प्रणाम करे; तदनन्तर धेनुकारण्यमें पिण्डदान करे, धेनुपदमें गौको नमस्कार करे। इससे वह अपने सम्पूर्ण पितरोंका उद्धार कर देता है। फिर सरस्वती-तीर्थमें जाकर पिण्ड दे। सायंकाल संध्योपासना करके सरस्वती देवीको प्रणाम करे। ऐसा करनेवाला पुरुष तीनों कालकी संध्योपासनामें तत्पर वेद-वेदाङ्गोंका पारंगत विद्वान् ब्राह्मण होता है ॥ २६—३३ ॥

गयाकी परिक्रमा करके वहाँके ब्राह्मणोंका पूजन करनेसे गया-तीर्थमें किया हुआ अन्नदान आदि सम्पूर्ण पुण्य अक्षय होता है। भगवान् गदाधरकी स्तुति करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'जो आदिदेवता, गदा धारण करनेवाले, गयाके निवासी तथा पितर आदिको सद्गति देनेवाले हैं, उन योगदाता भगवान् गदाधरको मैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये प्रणाम करता हूँ। वे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे शून्य हैं। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, द्वैतशून्य तथा देवता और दानवोंसे वन्दित हैं। देवताओं और देवियोंके समुदाय सदा उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं; मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। वे कलिके कल्मष (पाप) और कालकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। उनके कण्ठमें वनमाला सुशोभित होती है। सम्पूर्ण लोकपालोंका भी उन्हींके द्वारा पालन होता है। वे सबके कुलोंका उद्धार करनेमें मन लगाते हैं। व्यक्त और अव्यक्त—सबमें अपने स्वरूपको विभक्त करके स्थित होते हुए भी वे वास्तवमें अविभक्तात्मा ही हैं। अपने स्वरूपमें ही उनकी स्थिति है। वे अत्यन्त स्थिर और सारभूत हैं तथा भयंकर पापोंका भी मर्दन करनेवाले हैं। मैं उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। देव! भगवान् गदाधर! मैं पितरोंका श्राद्ध करनेके निमित्त गयामें आया हूँ। आप यहाँ मेरे साक्षी होइये। आज मैं तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया। ब्रह्मा और शंकर आदि देवता मेरे लिये साक्षी बनें। मैंने गयामें आकर अपने पितरोंका उद्धार कर दिया।' श्राद्ध आदिमें गयाके इस माहात्म्यका पाठ करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकका भागी होता है। गयामें पितरोंका श्राद्ध अक्षय होता है। वह अक्षय ब्रह्मलोक देनेवाला है ॥ ३४-४३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गयामें श्राद्धकी विधि' विषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

श्राद्ध-कल्प

अग्निदेव कहते हैं—महर्षि कात्यायनने मुनियोंसे जिस प्रकार श्राद्धका वर्णन किया था, उसे बतलाता हूँ। गया आदि तीर्थोंमें, विशेषतः संक्रान्ति आदिके अवसर-पर श्राद्ध करना चाहिये। अपराह्णकालमें, अपरपक्ष (कृष्ण-पक्ष) में, चतुर्थी तिथिको अथवा उसके बादकी तिथियोंमें श्राद्धोपयोगी सामग्री एकत्रित कर उत्तम नक्षत्रमें श्राद्ध करे। श्राद्धके एक दिन पहले ही ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। संन्यासी, गृहस्थ, साधु अथवा स्नातक तथा श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको, जो निन्दाके पात्र न हों, अपने कर्मोंमें लगे रहते हों और शिष्ट एवं सदाचारी हों—निमन्त्रित करना चाहिये। जिनके शरीरमें सफेद दाग हों, जो कोढ़ आदिके रोगोंसे ग्रस्त हों, ऐसे ब्राह्मणोंको छोड़ दे; उन्हें श्राद्धमें सम्मिलित न करे। निमन्त्रित ब्राह्मण जब स्नान और आचमन करके पवित्र हो जायँ तो उन्हें देवकर्ममें पूर्वा-भिमुख बिठावे। देव-श्राद्ध, पितृ-श्राद्धमें तीन-तीन ब्राह्मण रहें अथवा दोनोंमें एक-एक ही ब्राह्मण हों। इस प्रकार मातामह आदिके श्राद्धमें भी समझना चाहिये। शाक आदिसे भी श्राद्धकर्म करावे ॥ १—५ ॥

श्राद्धके दिन ब्रह्मचारी रहे, क्रोध और उतावली न करे। नम्र, सत्यवादी और सावधान रहे। उस दिन अधिक मार्ग न चले, स्वाध्याय भी न करे, मौन रहे। सम्पूर्ण पंक्तिमूर्धन्य (पंक्तिमें सर्वश्रेष्ठ अथवा पंक्तिपावन) ब्राह्मणोंसे प्रत्येक कर्मके विषयमें पूछे। आसनपर कुश बिछावे। पितृकर्ममें कुशोंको दुहरा मोड़ देना चाहिये। पहले देव-कर्म, फिर पितृ-कर्म करे।* देव-कर्ममें स्थित ब्राह्मणोंसे पूछे—'मैं विश्वेदेवोंका आवाहन करूँगा।' ब्राह्मण आज्ञा दें—'आवाहन करो,' तब **'विश्वेदेवास आगत शृणुता म इमꣳ हवम्, एदं बर्हिर्निषीदत'** (यजु० ७ । ३४)—इस मन्त्रके द्वारा विश्वेदेवोंका आवाहन करके आसनपर जौ छोड़े तथा **'विश्वेदेवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ। ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्॥'** (यजु० ३३ । ५३)—इस मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् पितृकर्ममें नियुक्त ब्राह्मणोंसे पूछे—'मैं पितरोंका आवाहन करूँगा।' ब्राह्मण कहें—'आवाहन करो।' तब **'उशन्तस्त्वा०'**[1] इस मन्त्रका पाठ करते हुए आवाहन करे। फिर (**अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः॥**) (यजु० २। २९)—इस मन्त्रसे तिल बिखेरकर **'आयन्तु नः०'**[2] इत्यादि मन्त्रका जप करे। इसके बाद पवित्रकसहित अर्घ्य-पात्रमें **'शं नो देवी०'**[3] इस मन्त्रसे जल डाले ॥ ६–१० ॥

तदनन्तर **'यवोऽसि'**[4] इस मन्त्रसे जौ देकर पितरोंके निमित्त सर्वत्र तिलका उपयोग करे। [पितरोंके अर्घ्य-पात्रमें भी **'शं नो देवी०'** इस मन्त्रसे जल डालकर] **'तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितॄँल्लोकान् पृणीहि नः स्वधा।'** यह मन्त्र पढ़कर तिल डाले। फिर **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥'** (यजु० ३१ । २२) इस मन्त्रसे अर्घ्यपात्रमें फूल छोड़े। अर्घ्यपात्र सोना, चाँदी, गूलर अथवा पत्तेका होना चाहिये। उसीमें देवताओंके लिये सव्यभावसे और पितरोंके लिये अपसव्यभावसे उक्त वस्तुएँ रखनी चाहिये। एक-एकको एक-एक अर्घ्यपात्र पृथक्-पृथक् देना उचित है। पितरोंके हाथोंमें पहले पवित्री रखकर ही उन्हें अर्घ्य देना चाहिये ॥ ११–१३ ॥

तत्पश्चात् [देवताओंके अर्घ्यपात्रको बायें हाथमें लेकर उसमें रक्खी हुई पवित्रीको दाहिने हाथसे निकालकर देव-भोजन-पात्रपर पूर्वाग्र करके रख दे। उसके ऊपर दूसरा जल देकर अर्घ्यपात्रको ढककर] निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—**'ॐ या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शिवाः शꣳ स्योनाः सुहवा भवन्तु'** ॥ फिर (जौ, कुश और जल हाथमें लेकर संकल्प पढ़े—) **'ॐ अद्यामुकगोत्राणां पितृपितामह-प्रपितामहानाम् अमुकामुकशर्मणाम् अमुकश्राद्धसम्बन्धिनो विश्वेदेवाः एष वो हस्तार्घ्यः स्वाहा।'**—यों कहकर देवताओं-को अर्घ्य देकर पात्रको दक्षिण भागमें सीधे रख दे। इसी प्रकार पिता आदिके लिये भी अर्घ्य दे। उसका संकल्प इस प्रकार है—**'ओमद्य अमुकगोत्र पितः अमुकशर्मन् अमुकश्राद्धे एष हस्तार्घ्यः ते स्वधा।'** इसी तरह पितामह आदिको भी दे। फिर सब अर्घ्यका अवशेष पहले पात्रमें डाल दे अर्थात् प्रपितामहके अर्घ्यमें जो जल आदि हो, उसे पितामहके पात्रमें डाल दे। इसके बाद वह सब पिताके अर्घ्यपात्रमें रख दे। पिताके अर्घ्यपात्रको पितामहके अर्घ्यपात्रके ऊपर रक्खे। फिर उन दोनोंको प्रपितामहके अर्घ्यपात्रके ऊपर रख दे। तत्पश्चात् तीनोंको पिताके आसनके वामभागमें **'पितृभ्यः स्थानमसि।'** ऐसा कहकर उलट दे। तदनन्तर वहाँ देवताओं और पितरोंके लिये गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा वस्त्र आदिका दान किया जाता है ॥ १४–१६ ॥

उसके बाद श्राद्धकर्ता पुरुष पात्रमेंसे घृतयुक्त अन्न निकालकर ब्राह्मणोंसे पूछे—'मैं अग्निमें इस अन्नका हवन करूँगा।' ब्राह्मण आज्ञा दें—'करो'। तब साग्निक पुरुष तो अग्निमें हवन करे और निरग्निक पुरुष पवित्रीयुक्त

---

* श्राद्ध आरम्भ करनेसे पूर्व रक्षा-दीप जला लेना चाहिये।

१. ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे॥ (यजु० १९ । ७०)

२. ॐ आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ (यजु० १९ । ५८)

३. ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्रवन्तु नः॥ (अथर्व० १ । ६ । १)

४. ॐ यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः। (यजु० ५।२६)

पितरके हाथ [अथवा जल] में मन्त्रसे आहुति दे। पहली आहुति 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा।' (यजु० २ । २९) कहकर दे। दूसरी आहुति 'सोमाय पितृमते स्वाहा।' (यजु० २ । २९) इस मन्त्रसे दे। दूसरे विद्वानोंका मत है कि 'यम' एवं 'अङ्गिरा' के उद्देश्यसे आहुति दे[5]। हवनसे शेष बचे हुए अन्नमेंसे क्रमशः देवताओं और पितरोंके पात्रोंमें परोसे और पात्रको हाथसे ढक दे। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—'ॐ पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा॥ कृष्ण हव्यमिदं रक्ष मदीयम्।' (यजु० ५ । १५) ऐसा पढ़कर अन्तमें ब्राह्मणके अँगूठेका स्पर्श करावे। [देवपात्रोंपर 'यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः।' इस मन्त्रसे जौ छींटे] और पितरोंके पात्रोंपर 'अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः।' इस मन्त्रसे तिल छींटकर संकल्पपूर्वक अन्न अर्पण करे। तदनन्तर 'जुषध्वम्।' (आपलोग अन्न ग्रहण करें) ऐसा कहकर गायत्री-मन्त्र आदिका जप करे॥ १७—२१॥

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः॥[6]

'इस मन्त्रका भी जप करे। पितरोंको तृप्त जानकर पात्रमें अन्न बिखेरे। फिर एक-एक बार सबको जल दे। पूर्ववत् सव्यभावसे गायत्री-जप करके 'मधु वाता'* इस ऋचाका जप करे।† इसके बाद ब्राह्मणोंसे पूछे—'आपलोग तृप्त हो गये?' ब्राह्मण कहें—'हाँ, हम तृप्त हो गये।' तदनन्तर शेष अन्नको ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर एकमें मिला दे और पिण्ड बनानेके लिये पात्रसे बाहर निकाले और पितरोंके उच्छिष्ट अन्नके पास ही अवनेजन करके कुशोंपर संकल्पपूर्वक तीन पिण्डदान करे।‡

---

५. यदि दूसरेकी भूमिमें श्राद्ध करने हों तो थोड़ा अन्न और जल कुशापर अपसव्यभावसे रखकर कहे 'इदमन्नमेतद्भूस्वामि-पितृभ्यो नमः।'

६. देवताओं, पितरों, महायोगियों, स्वधा और स्वाहाको मेरा सर्वदा नमस्कार है, नमस्कार है।

* यह मन्त्र तीन ऋचाओंमें है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—
ॐ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ १॥ ॐ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ २॥ ॐ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँऽस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ ३॥ (यजु० १३ । २७—२९) ॐ मधु मधु मधु॥

† इस ऋचाके अतिरिक्त भी 'उदीरतामवर०' (यजु० १९ । ४९) इत्यादि पितृमन्त्रोंका 'ॐ कृणुष्व पाजः०' (यजु० १३ । ९) इत्यादि रक्षोघ्न-मन्त्रोंका, 'सहस्रशीर्षा०' (यजु० ३१) इत्यादि पुरुषसूक्तका तथा 'ॐ आशुः शिशानः०' (यजु० १७ । ३३) इत्यादि मन्त्रोंका एवं शतरुद्रियका पाठ भी किया जाता है।

'नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः॥'

इस श्लोकको भी पढ़ना चाहिये।

‡ इसके पहले कुछ दूरपर दक्षिणाग्र कुश बिछाकर भूमिको सींच दे और तिल-घृतसहित अन्न एवं जल लेकर—
'ॐ अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥'
यह पढ़कर पूर्वोक्त कुशोंपर वह अन्न-जल बिखेर दे। तदनन्तर आचमन करके भगवान्का स्मरण कर तीन बार गायत्री-मन्त्रका जप करे। इसके बाद अपसव्यभावसे बालूकी चौकोर वेदी बनाकर उसके ऊपर कुशके मूलसे प्रादेशमात्र तीन रेखा खींचे; उस समय 'ॐ अपहता०' इत्यादि मन्त्र पढ़े। फिर रेखाके चारों ओर उल्मुकसे अङ्गार-भ्रमण करावे। इसका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्॥' (यजु० २ । ३०) तत्पश्चात् रेखापर तीन कुश बिछाकर सव्यभावसे गायत्री-जप करके फिर अपसव्यभावसे दोनेमें जल, तिल, गन्ध-पुष्प लेकर 'ॐ अद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन् अमुकश्राद्धे पिण्डस्थानेऽत्रावनेनिक्ष्व ते स्वधा' ऐसा कहकर कुशपर जल गिरावे। यह 'अवनेजन' है। पिण्ड देनेके बाद पिण्डके ऊपर उसी पात्रसे जल गिराकर उसी प्रकार संकल्प पढ़कर प्रत्यवनेजन किया जाता है। उसमें 'प्रत्यवनेनिक्ष्व' कहना चाहिये। पिण्डदानका संकल्प इस प्रकार है—ओमद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन् अमुकश्राद्धे एष पिण्डस्ते स्वधा।' इसी प्रकार पितामह आदिको भी देना चाहिये। पिण्डदानके अनन्तर पिण्डके आधारभूत कुशोंमें अपने हाथ पोंछकर कहे—'ॐ लेपभागभुजः पितरस्तृप्यन्तु।' फिर सव्यभावसे तीन बार

दूसरोंका मत है कि ब्राह्मण जब भोजनके पश्चात् हाथ-मुँह धोकर आचमन कर लें, तब पिण्डदान देना चाहिये। आचमनके पश्चात् जल, फूल और अक्षत दे ॥ २२—२५½ ॥

फिर अक्षय्योदक देकर मनुष्य आशीर्वादकी प्रार्थना करे *। 'ॐ अघोराः पितरः सन्तु।' (मेरे पितर सौम्य हों।) ऐसा कहकर जल गिरावे, फिर प्रार्थना करे—'हमारा गोत्र सदा ही बढ़ता रहे, हमारे दाता भी निरन्तर अभ्युदयशील हों, वेदोंकी पठन-पाठन-प्रणाली बढ़े। संतानोंकी भी वृद्धि हो। हमारी श्रद्धामें कमी न आवे; हमारे पास देने योग्य बहुत सामान संचित रहे; हमारे यहाँ अन्न भी अधिक हो। हम अतिथियोंको प्राप्त करते रहें अर्थात् हमारे घरपर अतिथियोंका शुभागमन होता रहे। हमारे पास माँगनेवाले आवें, किंतु हम किसीसे न माँगें।' फिर स्वधा-वाचनके लिये पिण्डोंपर पवित्रकसहित कुश बिछावे और ब्राह्मणोंसे पूछे—'मैं स्वधा-वाचन कराऊँगा।' ब्राह्मण आज्ञा दें—'स्वधा-वाचन कराओ।' तब श्राद्धकर्ता पुरुष इस प्रकार कहे—

'ब्राह्मणो! आपलोग मेरे पिता, पितामह और प्रपितामहके लिये स्वधा-वाचन करें।' ब्राह्मण कहें—'अस्तु स्वधा।' तदनन्तर 'ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्, स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्।' (यजु० २ । ३४)—इस मन्त्रसे कुशोंपर दुग्ध-मिश्रित जलकी दक्षिणाग्रधारा गिरावे,* फिर [सव्य होकर देवार्घ्यपात्रको हिला दे और पितरोंके] अर्घ्यपात्रको उत्तान करके देवश्राद्ध तथा पितृश्राद्धकी प्रतिष्ठाके लिये यथाशक्ति क्रमशः सुवर्ण और रजतकी दक्षिणा दे।† इसके बाद 'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्।'—ऐसा कहकर देवताओंका विसर्जन करे और 'वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं, तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥'

आचमन करके श्रीहरिका स्मरण करे। तदनन्तर अपसव्य-भावसे दक्षिणकी ओर मुँह करके कहे—'अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्।' (यजु० २ । ३१) फिर वामावर्तसे उत्तरकी ओर मुँहकर श्वास रोककर प्रसन्नचित्त हो प्रकाशमान मूर्तिवाले पितरोंका ध्यान करते हुए फिर उसी मार्गसे लौटकर दक्षिणाभिमुख हो जाय और कहे—'अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत।' (यजु० २ । ३१) इसके बाद पहलेके अवनेजन-पात्रमें जो शेष जल हो, उसे पिण्डपर गिराकर प्रत्यवनेजन दें। उसका संकल्प अवनेजनकी ही भाँति है। 'अवनेनिक्ष्व'को 'प्रत्यवनेनिक्ष्व' कहना चाहिये। बहुवचनमें 'प्रत्यवनेनिग्ध्वम्' का उच्चारण करना उचित है।

प्रत्यवनेजनके बाद नीवी-विस्रंसन करके सव्यभावसे आचमन करे। फिर अपसव्य हो बायें हाथसे दाहिने हाथमें सूत्र लेकर 'ॐ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्तसतो वः पितरो देष्म'(यजु० २ । ३२)—इस मन्त्रका पाठ करके 'एतद् वः पितरो वासः' (यजु० २ । ३२)—ऐसा कहते हुए छहों पिण्डोंपर सूत्र रखकर संकल्प करे—'अद्यामुकगोत्र पितः (पितामह प्रपितामह आदि) अमुक-शर्मन् अमुकश्राद्धे पिण्डे एतत्ते वासः स्वधा।' तत्पश्चात् 'ॐ शिवा आपः सन्तु।' कहकर जल, 'ॐ सौमनस्यम् अस्तु।' इस वाक्यका उच्चारण करके फूल, 'ॐ अक्षतं चारिष्टमस्तु।' कहकर अक्षत अन्नपात्रोंपर डाले। फिर मोटक, तिल और जल लेकर 'ॐ अद्यामुकगोत्रस्य पितुः अमुकशर्मणः अमुक-श्राद्धे दत्तान्येतान्यन्नपानादिकानि अक्षय्याणि सन्तु।' इस प्रकार संकल्प पढ़कर छोड़ दे। तत्पश्चात् सव्य हो दक्षिण दिशाकी ओर देखते हुए पिण्डोंके ऊपर पूर्वाग्र जलधारा गिरावे और पढ़े—'ॐ अघोराः पितरः सन्तु।' इसके बाद हाथ जोड़ पूर्वाभिमुख हो मूलमें कहे अनुसार आशीः-प्रार्थना करे।

* इसके बाद स्वयं झुककर सब पिण्डोंको नाकसे सूँघ ले और उठा दे। पिण्डोंके आधारभूत कुशोंको तथा उल्मुक (जिससे अङ्गार-भ्रमण कराया गया था) को अग्निमें डाल दे।

† दक्षिणाका संकल्प इस प्रकार है—त्रिकुशा, जौ और जल हाथमें लेकर—'ॐ अद्यामुकगोत्राणां पितृपितामहप्रपितामहानाम् [मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानां च] अमुकामुकशर्मणाम् अमुकश्राद्धसम्बन्धिनां विश्वेषां देवानां कृतैतदमुकश्राद्धप्रतिष्ठार्थं हिरण्यमग्निदैवत्यं तन्मूल्योपकल्पितं द्रव्यं वा यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणात्वेन दातुमहमुत्सृजे।' तुरंत दिया जाना हो तो 'सम्प्रददे' कहना चाहिये। मोटक, तिल, जल लेकर 'ओमद्यामुक-गोत्रस्य पितुः अमुकशर्मणः कृतैतच्छ्राद्धप्रतिष्ठार्थं रजतं चन्द्रदैवत्यं तन्मूल्योपकल्पितं द्रव्यं यथानाम' इत्यादि कहकर पिता आदिके लिये दक्षिणा दें।

(यजु० २१ । ११)—इस मन्त्रसे पिता आदिका विसर्जन करे ॥ २६–३२ ॥

[तत्पश्चात् सव्यभावसे 'देवताभ्यश्च०' इत्यादि पढ़कर भगवान्‌का स्मरण करे। फिर अपसव्यभावसे रक्षादीपको बुझा दे। उसके बाद सव्यभावसे भगवान्‌से प्रार्थना करे— **'प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद् विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥'** इत्यादि] तदनन्तर **'आ मा वाजस्य०'** (यजु० ९ । १९) इत्यादि मन्त्र पढ़कर ब्राह्मणके पीछे-पीछे जाय और ब्राह्मणकी परिक्रमा करके अपने घरमें जाय। प्रत्येक मासकी अमावस्याको इसी प्रकार पार्वण-श्राद्ध करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अब मैं एकोद्दिष्ट श्राद्धका वर्णन करूँगा। यह श्राद्ध पूर्ववत् ही करे। इसमें इतनी ही विशेषता है कि एक ही पवित्रक, एक ही अर्घ्य और एक ही पिण्ड देना चाहिये। इसमें आवाहन, अग्निकरण और विश्वेदेव-पूजन नहीं होता। जहाँ तृप्ति पूछनी हो, वहाँ **'स्वदितम् ?'** ऐसा प्रश्न करे। ब्राह्मण उत्तर दे—**'सुस्वदितम्।'** **'उपतिष्ठताम्।'**—कहकर अर्पण करे। अक्षय्योदक भी दे। विसर्जनके समय **'अभिरम्यताम्'** का उच्चारण करे। ब्राह्मण कहें—**'अभिरताः स्मः।'** शेष सभी बातें पूर्ववत् करनी चाहिये ॥ ३४–३६ ॥

अब सपिण्डीकरणका वर्णन करूँगा। यह वर्षके अन्तमें और मध्यमें भी होता है। इसमें पितरोंके लिये तीन पात्र होते हैं और प्रेतके लिये एक पात्र अलग होता है। चारों अर्घ्यपात्रोंमें पवित्री, तिल, फूल, चन्दन और जल डालकर भर दिया जाता है। फिर उन्हींसे श्राद्धकर्ता पुरुष अर्घ्य देता है। **'ये समानाः०'** (यजु० १९ । ४५-४६) इत्यादि दो मन्त्रोंसे प्रेतके अर्घ्य-पात्रको क्रमशः तीनों पितरोंके अर्घ्य-पात्रमें मिलाया जाता है। इसी प्रकार पिण्डदान, दान आदि पूर्ववत् करके प्रेतके पिण्डको पितरोंके पिण्डमें मिलाया जाता है। इससे प्रेतको 'पितृ' पदवी प्राप्त होती है ॥ ३७–३९ ॥

अब 'आभ्युदयिक' श्राद्ध बतलाता हूँ। इसकी सब विधि पूर्ववत् है। इसमें पितृसम्बन्धी मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका जप करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमें आभ्युदयिक श्राद्ध और उसकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। इसमें कोमल कुश ही उपचार है। यहाँ तिलके स्थानपर जौका ही उपयोग होता है। ब्राह्मणोंसे पितरोंकी तृप्तिके लिये प्रश्न करते समय **'सम्पन्नम् ?'** का प्रयोग करना चाहिये। ब्राह्मण उत्तर दे **'सुसम्पन्नम्'**। इसमें दही, अक्षत और बेर आदिके ही पिण्ड होते हैं। आवाहनके समय पूछे—"मैं 'नान्दीमुख' नामवाले पितरोंका आवाहन करूँगा।" इसी प्रकार अक्षय्य-तृप्तिके लिये **'प्रीयताम्'** ऐसा कहे। फिर पूछे—"मैं नान्दीमुख पितरोंका तृप्ति-वाचन कराऊँगा।' ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर कहे—**'नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्।** (नान्दीमुख पितर तृप्त एवं प्रसन्न हों)'। [माता, पितामही, प्रपितामही] पिता, पितामह, प्रपितामह और [सपत्नीक] मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह—ये नान्दीमुख पितर हैं ॥ ४०–४४ ॥

आभ्युदयिक श्राद्धमें **'स्वधा'** का प्रयोग न करे और युग्म ब्राह्मणोंको भोजन करावे। अब मैं पितरोंकी तृप्ति बतलाता हूँ। ग्राम्य अन्नसे तथा जंगली कन्द, मूल, फल आदिसे एक मासतक पितरोंकी तृप्ति बनी रहती है और गायके दूध एवं खीरसे एक वर्षतक पितरोंकी तृप्ति रहती है तथा वर्षा ऋतुमें त्रयोदशीको विशेषतः मघा नक्षत्रमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है।* मन्त्रका पाठ करनेवाला,

---

* कुछ लोग श्राद्धमें मांसका भी विधान मानते हैं, परंतु श्राद्धकर्ममें मांस कितना निन्दनीय है, यह श्रीमद्भागवत, सप्तम स्कन्ध, अध्याय १५ के इन श्लोकोंसे स्पष्ट हो जाता है—

> न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित्।
> मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥ ७ ॥
> नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम्।
> न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥ ८ ॥
> द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति।
> एष माकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृब् ध्रुवम् ॥१०॥

"धर्मके मर्मको समझनेवाला पुरुष श्राद्धमें [खानेके लिये] मांस न दे और न स्वयं ही खाय; क्योंकि पितृगणकी तृप्ति जैसी मुनिजनोचित आहारसे होती है, वैसी पशुहिंसासे नहीं होती। सद्धर्मकी इच्छावाले पुरुषोंके लिये 'सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति मन, वाणी और शरीरसे दण्डका त्याग कर देना'—इसके समान और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है। पुरुषको द्रव्ययज्ञसे यजन करते देखकर जीव डरते हैं कि 'यह अपने ही प्राणोंका पोषण करनेवाला निर्दय अज्ञानी मुझे अवश्य मार डालेगा।'" अतएव श्राद्धकर्ममें मांसका उपयोग कभी नहीं करना चाहिये।

अग्निहोत्री, शाखाका अध्ययन करनेवाला, छहों अङ्गोंका विद्वान्, त्रिणाचिकेत[1], त्रिमधु[2], धर्मद्रोणका[3] पाठ करनेवाला, त्रिसुपर्ण[4] तथा बृहत् सामका ज्ञाता—ये ब्राह्मण पंक्तिपावन (पंक्तिको पवित्र करनेवाले) माने गये हैं ॥ ४५—४७ ॥

अब काम्य श्राद्ध-कल्पका वर्णन करूँगा। प्रतिपदाको श्राद्ध करनेसे बहुत धन प्राप्त होता है। द्वितीयाको श्राद्ध करनेसे श्रेष्ठ स्त्री मिलती है। चतुर्थीको किया हुआ श्राद्ध धर्म और कामको देनेवाला है। पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पञ्चमीको श्राद्ध करे। षष्ठीके श्राद्धसे मनुष्य श्रेष्ठ होता है। सप्तमीके श्राद्धसे खेतीमें लाभ होता और अष्टमीके श्राद्धसे अर्थकी प्राप्ति होती है। नवमीको श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे एक खुरवाले घोड़े आदि पशु प्राप्त होते हैं। दशमीके श्राद्धसे गो समुदायकी उपलब्धि होती है। एकादशीके श्राद्धसे परिवार और द्वादशीके श्राद्धसे धन-धान्य बढ़ता है। त्रयोदशीको श्राद्ध करनेसे अपनी जातिमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है। चतुर्दशीको उसीका श्राद्ध किया जाता है, जिसका शस्त्रद्वारा वध हुआ है। अमावास्याको सम्पूर्ण मृत व्यक्तियोंके लिये श्राद्ध करनेका विधान है ॥ ४८—५१ ॥

'जो दशार्णदेशके वनमें सात व्याध थे, वे कालंजर गिरिपर मृग हुए, शरद्वीपमें चक्रवाक हुए तथा मानस सरोवरमें हंस हुए। वे ही अब कुरुक्षेत्रमें वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मण हुए हैं। अब उन्होंने दूरतकका मार्ग तय कर लिया है; तुमलोग उनसे बहुत पीछे रहकर कष्ट पा रहे हो।'* श्राद्ध आदिके अवसरपर इसका पाठ करनेसे श्राद्ध पूर्ण एवं ब्रह्मलोक देनेवाला होता है। यदि पितामह जीवित हो तो पुत्र आदि अपने पिताका तथा पितामहके पिता और उनके भी पिताका श्राद्ध करे। यदि प्रपितामह जीवित हो तो पिता, पितामह एवं वृद्धप्रपितामहका श्राद्ध करे। इसी प्रकार माता आदि तथा मातामह आदिके श्राद्धमें भी करना चाहिये। जो इस श्राद्धकल्पका पाठ करता है, उसे श्राद्ध करनेका फल मिलता है ॥ ५२—५६ ॥

उत्तम तीर्थमें, युगादि और मन्वादि तिथिमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिककी द्वादशी, माघ तथा भाद्रपदकी तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौष शुक्ला एकादशी, आषाढ़की दशमी, माघमासकी सप्तमी, श्रावण कृष्णपक्षकी अष्टमी, आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन तथा ज्येष्ठकी पूर्णिमा—ये तिथियाँ स्वायम्भुव आदि मनुसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं। इनके आदिभागमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है। गया, प्रयाग, गङ्गा, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, श्रीपर्वत, प्रभास, शालग्रामतीर्थ (गण्डकी), काशी, गोदावरी तथा श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र आदि तीर्थोंमें श्राद्ध उत्तम होता है ॥ ५७—६२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्राद्ध-कल्पका वर्णन' नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११७ ॥

एक सौ अठारहवाँ अध्याय

भारतवर्षका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—समुद्रके उत्तर और हिमालयके दक्षिण जो वर्ष है, उसका नाम 'भारत' है। उसका विस्तार नौ हजार योजन है। स्वर्ग तथा अपवर्ग पानेकी इच्छावाले पुरुषोंके लिये यह कर्मभूमि है। महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, हिमालय, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात यहाँके कुल-पर्वत हैं। इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वारुण—ये आठ द्वीप हैं। समुद्रसे घिरा हुआ भारत नवाँ द्वीप है ॥ १—४ ॥

---

१. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि 'त्रिणाचिकेत' नामक तीन अनुवाकोंको पढ़ने या उसका अनुष्ठान करनेवाला। २. 'मधुवाता०' इत्यादि तीन ऋचाओंका अध्ययन और मधुव्रतका आचरण करनेवाला। ३. 'धर्मव्याधा दशार्णेषु' इत्यादि प्रसंगका नाम यहाँ 'धर्मद्रोण' कहा गया है। ४. 'ब्रह्म मेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला।

* सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदत ॥ (अग्नि० ११७ । ५६-५७)

भारत-द्वीप उत्तरसे दक्षिणकी ओर हजारों योजन लंबा है। भारतके उपर्युक्त नौ भाग हैं। भारतकी स्थिति मध्यमें है। इसमें पूर्वकी ओर किरात और [पश्चिममें] यवन रहते हैं। मध्यभागमें ब्राह्मण आदि वर्णोंका निवास है। वेद-स्मृति आदि नदियाँ पारियात्र पर्वतसे निकली हैं। विन्ध्याचलसे नर्मदा आदि प्रकट हुई हैं। सह्य पर्वतसे तापी, पयोष्णी, गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणा आदि नदियोंका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ५-७॥

मलयसे कृतमाला आदि और महेन्द्र पर्वतसे त्रिसामा आदि नदियाँ निकली हैं। शुक्तिमान्से कुमारी आदि और हिमालयसे चन्द्रभागा आदिका प्रादुर्भाव हुआ है। भारतके पश्चिमभागमें कुरु,पाञ्चाल और मध्यदेश आदिकी स्थिति है॥८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भारतवर्षका वर्णन' नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११८॥

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय

जम्बू आदि महाद्वीपों तथा समस्त भूमिके विस्तारका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। वह सब ओरसे एक लाख योजन विस्तृत खारे पानीके समुद्रसे घिरा है। उस क्षारसमुद्रको घेरकर प्लक्ष-द्वीप स्थित है। मेधातिथिके सात पुत्र प्लक्षद्वीपके स्वामी हैं। शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेम तथा ध्रुव—ये सात ही मेधातिथिके पुत्र हैं; उन्हींके नामसे उक्त सात वर्ष हैं। गोमेध, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और शैल-ये उन वर्षोंके सुन्दर मर्यादापर्वत हैं। वहाँके सुन्दर निवासी 'वैभ्राज' नामसे विख्यात हैं। इस द्वीपमें सात प्रधान नदियाँ हैं। प्लक्षसे लेकर शाकद्वीप-तकके लोगोंकी आयु पाँच हजार वर्ष है। वहाँ वर्णाश्रम-धर्मका पालन किया जाता है॥ १-५॥

आर्य, कुरु, विविंश तथा भावी--यही वहाँके ब्राह्मण आदि वर्णोंकी संज्ञाएँ हैं। चन्द्रमा उनके आराध्यदेव हैं। प्लक्षद्वीपका विस्तार दो लाख योजन है। वह उतने ही बड़े इक्षुरसके समुद्रसे घिरा है। उसके बाद शाल्मलद्वीप है, जो प्लक्षद्वीपसे दुगुना बड़ा है। वपुष्मान्के सात पुत्र शाल्मलद्वीपके स्वामी हुए। उनके नाम हैं— श्वेत, हरित, जीमूत, लोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ। इन्हीं नामोंसे वहाँके सात वर्ष हैं। वह प्लक्षद्वीपसे दुगुना है तथा उससे दुगुने परिमाणवाले 'सुरोद' नामक (मदिराके) समुद्रसे घिरा हुआ है। कुमुद, अनल, बलाहक, द्रोण, कङ्क, महिष और ककुद्मान्—ये मर्यादा-पर्वत हैं। सात ही वहाँ प्रधान नदियाँ हैं। कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण—ये वहाँके ब्राह्मण आदि वर्ण हैं। वहाँके लोग वायु-देवताकी पूजा करते हैं। वह मदिराके समुद्रसे घिरा है॥ ६-१०½॥

इसके बाद कुशद्वीप है। ज्योतिष्मान्के पुत्र उस द्वीपके अधीश्वर हैं। उद्भिद, धेनुमान्, द्वैरथ, लम्बन, धैर्य, कपिल और प्रभाकर--ये सात उनके नाम हैं। इन्हींके नामपर वहाँ सात वर्ष हैं। दमी[1] आदि वहाँके ब्राह्मण हैं, जो ब्रह्मरूपधारी भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि और मन्दराचल—ये सात वहाँके वर्षपर्वत हैं। यह कुशद्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा हुआ है और वह घृतसमुद्र क्रौञ्चद्वीपसे परिवेष्टित है। राजा द्युतिमान्के पुत्र क्रौञ्चद्वीपके स्वामी हैं। उन्हींके नामपर वहाँके वर्ष प्रसिद्ध हैं॥ ११-१४॥

कुशल, मनोनुग, उष्ण, प्रधान, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि-—ये सात द्युतिमान्के पुत्र हैं। उस द्वीपके मर्यादापर्वत और नदियाँ भी सात ही हैं। पर्वतोंके नाम इस प्रकार हैं—क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, रत्नशैल[2], देवावृत, पुण्डरीक और दुन्दुभि। ये द्वीप परस्पर उत्तरोत्तर दुगुने विस्तारवाले हैं। उन द्वीपोंमें जो वर्ष पर्वत हैं, वे भी द्वीपोंके समान ही पूर्ववर्ती द्वीपके पर्वतोंसे दुगुने विस्तारवाले हैं। वहाँके ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमशः पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। वे वहाँ श्रीहरिकी आराधना करते हैं। क्रौञ्चद्वीप दधि-मण्डोदक (मट्ठे) के समुद्रसे घिरा हुआ है और वह

१. दमी, शुष्मी, स्नेह और मन्दे—ये क्रमशः वहाँके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी संज्ञाएँ हैं।

२. यहाँ मूलमें छः नाम ही आये हैं, तथापि पुराणान्तरमें आये हुए 'चतुर्थो रत्नशैलश्च'के अनुसार अर्थमें रत्नशैल बढ़ा दिया गया है।

समुद्र शाकद्वीपसे परिवेष्टित है। वहाँके राजा भव्यके जो सात पुत्र हैं, वे ही शाकद्वीपके शासक हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—जलद, कुमार, सुकुमार, मणीवक, कुशोत्तर, मोदाकी और द्रुम। इन्हींके नामसे वहाँके वर्ष प्रसिद्ध हैं॥ १५-१९॥

उदयगिरि, जलधर, रैवत, श्याम, कोद्रक, आम्बिकेय और सुरम्य पर्वत केसरी—ये सात वहाँके मर्यादा-पर्वत हैं तथा सात ही वहाँकी प्रसिद्ध नदियाँ हैं[3]। मग, मगध, मानस्य और मन्दग—ये वहाँके ब्राह्मण आदि वर्ण हैं, जो सूर्यरूपधारी भगवान् नारायणकी आराधना करते हैं। शाकद्वीप क्षीरसागरसे घिरा हुआ है। क्षीरसागर पुष्करद्वीपसे परिवेष्टित है। वहाँके अधिकारी राजा सवनके दो पुत्र हुए, जिनके नाम थे—महावीत और धातकि। उन्हींके नामसे वहाँके दो वर्ष प्रसिद्ध हैं॥ २०-२२॥

वहाँ एक ही मानसोत्तर नामक वर्षपर्वत विद्यमान है, जो उस वर्षके मध्यभागमें वलयाकार स्थित है। उसका विस्तार कई सहस्र योजन है[4]। ऊँचाई भी विस्तारके समान ही है। वहाँके लोग दस हजार वर्षोंतक जीवन धारण करते हैं। वहाँ देवता लोग ब्रह्माजीकी पूजा करते हैं। पुष्करद्वीप स्वादिष्ट जलवाले समुद्रसे घिरा हुआ है। उस समुद्रका विस्तार उस द्वीपके समान ही है। महामुने! समुद्रोंमें जो जल है, वह कभी घटता-बढ़ता नहीं है। शुक्ल और कृष्ण—दोनों पक्षोंमें चन्द्रमाके उदय और अस्तकालमें केवल पाँच सौ दस अङ्गुलतक समुद्रके जलका घटना और बढ़ना देखा जाता है (परंतु इससे जलमें न्यूनता या अधिकता नहीं होती है)॥ २३-२६॥

मीठे जलवाले समुद्रके चारों ओर उससे दुगुने परिमाणवाली भूमि सुवर्णमयी है, किंतु वहाँ कोई भी जीव जन्तु नहीं रहते हैं। उसके बाद लोकालोकपर्वत है, जिसका विस्तार दस हजार योजन है। लोकालोक-पर्वत एक ओरसे अन्धकारद्वारा आवृत है और वह अन्धकार अण्डकटाहसे आवृत है। अण्डकटाहसहित सारी भूमिका विस्तार पचास करोड़ योजन है॥ २७-२८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महाद्वीप आदिका वर्णन' नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११९॥

एक सौ बीसवाँ अध्याय

भुवनकोश-वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! भूमिका विस्तार सत्तर हजार योजन बताया गया है। उसकी ऊँचाई दस हजार योजन है। पृथ्वीके भीतर सात पाताल हैं। एक-एक पाताल दस-दस हजार योजन विस्तृत है। सात पातालोंके नाम इस प्रकार हैं—अतल, वितल, नितल, प्रकाशमान महातल, सुतल, तलातल और सातवाँ रसातल या पाताल। इन पातालोंकी भूमियाँ क्रमशः काली, पीली, लाल, सफेद, कँकरीली, पथरीली और सुवर्णमयी हैं। वे सभी पाताल बड़े रमणीय हैं। उनमें दैत्य और दानव आदि सुखपूर्वक निवास करते हैं। समस्त पातालोंके नीचे शेषनाग विराजमान हैं, जो भगवान् विष्णुके तमोगुण-प्रधान विग्रह हैं। उनमें अनन्त गुण हैं, इसीलिये उन्हें 'अनन्त' भी कहते हैं। वे अपने मस्तकपर इस पृथ्वीको धारण करते हैं॥ १-४॥

पृथ्वीके नीचे अनेक नरक हैं, परंतु जो भगवान् विष्णुका भक्त है, वह उन नरकोंमें नहीं पड़ता है। सूर्यदेवसे प्रकाशित होनेवाली पृथ्वीका जितना विस्तार है, उतना ही नभोलोक (अन्तरिक्ष या भुवर्लोक) का विस्तार माना गया है। वसिष्ठ! पृथ्वीसे एक लाख योजन दूर सूर्यमण्डल है। सूर्यसे लाख योजनकी दूरीपर चन्द्रमा विराजमान हैं। चन्द्रमासे एक लाख योजन ऊपर नक्षत्र-मण्डल प्रकाशित होता है। नक्षत्रमण्डलसे दो लाख योजन ऊँचे बुध विराजमान हैं। बुधसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र हैं। शुक्रसे दो लाख योजनकी दूरीपर मङ्गलका स्थान है। मङ्गलसे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। उनसे लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका स्थान है। सप्तर्षियोंसे लाख योजन

३. पुराणान्तरमें इन नदियोंके नाम इस प्रकार मिलते हैं—सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभस्ति।

४. विष्णुपुराणमें इसकी ऊँचाई और विस्तार—दोनों ही पचास हजार योजन बताये गये हैं। देखिये विष्णुपुराण २। ४। ७६।

ऊपर ध्रुव प्रकाशित होता है। त्रिलोकीकी इतनी ही ऊँचाई है, अर्थात् त्रिलोकी (भूर्भुवः स्वः) के ऊपरी भागकी चरम सीमा ध्रुव ही है ॥ ५-८ ॥

ध्रुवसे कोटि योजन ऊपर 'महर्लोक' है, जहाँ कल्पान्त-जीवी भृगु आदि सिद्धगण निवास करते हैं। महर्लोकसे दो करोड़ ऊपर 'जनलोक'की स्थिति है, जहाँ सनक, सनन्दन आदि सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। जनलोकसे आठ करोड़ योजन ऊपर 'तपोलोक' है, जहाँ वैराज नामवाले देवता निवास करते हैं। तपोलोकसे छानवे करोड़ योजन ऊपर 'सत्यलोक' विराजमान है। सत्यलोकमें पुनः मृत्युके अधीन न होनेवाले पुण्यात्मा देवता एवं ऋषि-मुनि निवास करते हैं। उसीको 'ब्रह्मलोक' भी कहा गया है। जहाँतक पैरोंसे चल-कर जाया जाता है, वह सब 'भूलोक' है। भूलोकसे सूर्यमण्डलके बीचका भाग 'भुवर्लोक' कहा गया है। सूर्यलोकसे ऊपर ध्रुवलोकतकके भागको 'स्वर्गलोक' कहते हैं। उसका विस्तार चौदह लाख योजन है। यही त्रैलोक्य है और यही अण्डकटाहसे घिरा हुआ विस्तृत ब्रह्माण्ड है। यह ब्रह्माण्ड क्रमशः जल, अग्नि, वायु और आकाशरूप आवरणोंद्वारा बाहरसे घिरा हुआ है। इन सबके ऊपर अहंकारका आवरण है। ये जल आदि आवरण उत्तरोत्तर दसगुने बड़े हैं। अहंकाररूप आवरण महत्तत्त्वमय आवरणसे घिरा हुआ है ॥ ९-१३ ॥

महामुने ! ये सारे आवरण एकसे दूसरेके क्रमसे दस-गुने बड़े हैं। महत्तत्त्वको भी आवृत करके प्रधान (प्रकृति) स्थित है। वह अनन्त है; क्योंकि उसका कभी अन्त नहीं होता। इसीलिये उसकी कोई संख्या अथवा माप नहीं है। मुने ! वह सम्पूर्ण जगत्का कारण है। उसे ही 'अपरा प्रकृति' कहते हैं। उसमें ऐसे-ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए हैं। जैसे काठमें अग्नि और तिलमें तेल रहता है, उसी प्रकार प्रधानमें स्वयंप्रकाश चेतनात्मा व्यापक पुरुष विराजमान है ॥ १४-१६½ ॥

महाप्राज्ञ मुने ! ये संश्रयधर्मी (परस्पर संयुक्त हुए) प्रधान और पुरुष सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मभूता विष्णुशक्तिसे आवृत हैं। महामुने ! भगवान् विष्णुकी स्वरूपभूता वह शक्ति ही प्रकृति और पुरुषके संयोग और वियोगमें कारण है। वही सृष्टिके समय उनमें क्षोभका कारण बनती है। जैसे जलके सम्पर्कमें आयी हुई वायु उसकी कणिकाओंमें व्याप्त शीतलताको धारण करती है, उसी प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्ति भी प्रकृति-पुरुषमय जगत्को धारण करती है। विष्णु-शक्तिका आश्रय लेकर ही देवता आदि प्रकट होते हैं। वे भगवान् विष्णु स्वयं ही साक्षात् ब्रह्म हैं, जिनसे इस सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति होती है ॥ १७-२०½ ॥

मुनिश्रेष्ठ ! सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ सहस्र योजन है तथा उस रथका ईषादण्ड (हरसा) इससे दूना बड़ा अर्थात् अठारह हजार योजनका है। उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लंबा है, जिसमें उस रथका पहिया लगा हुआ है। उसमें पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्नरूप तीन नाभियाँ हैं। संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर-ये पाँच प्रकारके वर्ष उसके पाँच अरे हैं। छहों ऋतुएँ उसकी छः नेमियाँ हैं और उत्तर दक्षिण दो अयन उसके शरीर हैं। ऐसे संवत्सरमय रथचक्रमें सम्पूर्ण कालचक्र प्रतिष्ठित है। महामते ! भगवान् सूर्यके रथका दूसरा धुरा साढ़े पैंतालीस हजार योजन लंबा है। दोनों धुरोंके परिमाणके तुल्य ही उसके युगार्द्धोंका परिमाण है ॥ २१-२५ ॥

उस रथके दो धुरोंमेंसे जो छोटा है वह, और उसका युगार्द्ध ध्रुवके आधारपर स्थित हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुने ! गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति—ये सात छन्द ही सूर्यदेवके सात घोड़े कहे गये हैं। सूर्यका दिखायी देना उदय है और उनका दृष्टिसे ओझल हो जाना ही अस्तकाल है, ऐसा जानना चाहिये। वसिष्ठ ! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथ्वीसे लेकर उस प्रदेश-पर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सप्तर्षियोंसे उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित है, आकाशमें वह दिव्य एवं प्रकाशमान स्थान ही विराट्रूपधारी भगवान् विष्णुका तीसरा पद है। पुण्य और पापके क्षीण हो जानेपर दोषरूपी पङ्कसे रहित संयतचित्त महात्माओंका यही परम उत्तम स्थान है। इस विष्णुपदसे ही गङ्गाका प्राकट्य हुआ है, जो स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली हैं ॥ २६-२९½ ॥

आकाशमें जो शिशुमार (सूँस)की आकृतिवाला ताराओं-का समुदाय देखा जाता है, उसे भगवान् विष्णुका स्वरूप

५. आधे जुएको युगार्द्ध कहते हैं।

जानना चाहिये। उस शिशुमारचक्रके पुच्छभागमें ध्रुवकी स्थिति है। यह ध्रुव स्वयं घूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंको घुमाता है। भगवान् सूर्यका वह रथ प्रतिमास भिन्न-भिन्न आदित्य-देवता, श्रेष्ठ ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, ग्रामणी (यक्ष), सर्प तथा राक्षसोंसे अधिष्ठित होता है। भगवान् सूर्य ही सर्दी, गर्मी तथा जल वर्षाके कारण हैं। वे ही ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमय भगवान् विष्णु हैं; वे ही शुभ और अशुभके कारण हैं ॥ ३०-३२½ ॥

चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंसे युक्त है। उस रथके बायें और दायें भागमें कुन्द-कुसुमकी भाँति श्वेत रंगके दस घोड़े जुते हुए हैं। उसी रथके द्वारा वे चन्द्रदेव नक्षत्रलोकमें विचरण करते हैं। तैंतीस हजार तैंतीस सौ तैंतीस (३६३३३) देवता चन्द्रदेवकी अमृतमयी कलाओंका पान करते हैं। अमावास्याके दिन 'अमा' नामक एक रश्मि (कला) में स्थित हुए पितृगण चन्द्रमाकी बची हुई दो कलाओंमेंसे एकमात्र अमृतमयी कलाका पान करते हैं। चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ वायु और अग्निमय द्रव्यका बना हुआ है। उसमें आठ शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए हैं। उसी रथमें बुध आकाशमें विचरण करते हैं ॥ ३३-३६ ॥

शुक्रके रथमें भी आठ घोड़े जुते होते हैं। मङ्गलके रथमें भी उतने ही घोड़े जोते जाते हैं। बृहस्पति और शनैश्चरके रथ भी आठ-आठ घोड़ोंसे युक्त हैं। राहु और केतुके रथोंमें भी आठ-आठ ही घोड़े जोते जाते हैं। विप्रवर! भगवान् विष्णुका शरीरभूत जो जल है, उससे पर्वत और समुद्रादिके सहित कमलके समान आकारवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई। ग्रह, नक्षत्र, तीनों लोक, नदी, पर्वत, समुद्र और वन—ये सब भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं। जो है और जो नहीं है, वह सब भगवान् विष्णु ही हैं। विज्ञानका विस्तार भी भगवान् विष्णु ही हैं। विज्ञानसे अतिरिक्त किसी वस्तुकी सत्ता नहीं है। भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप ही हैं। वे ही परमपद हैं। मनुष्यको वही करना चाहिये, जिससे चित्त-शुद्धिके द्वारा विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करके वह विष्णुस्वरूप हो जाय। सत्य एवं अनन्त ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही 'विष्णु' हैं ॥ ३७-४०½ ॥

जो इस भुवनकोशके प्रसंगका पाठ करेगा, वह सुख-स्वरूप परमात्मपदको प्राप्त कर लेगा। अब ज्योतिष-शास्त्र आदि विद्याओंका वर्णन करूँगा। उसमें विवेचित शुभ और अशुभ—सबके स्वामी भगवान् श्रीहरि ही हैं ॥ ४१-४२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भुवनकोशका वर्णन' नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२० ॥

एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय

ज्योतिःशास्त्रका कथन

[वर-वधूके गुण और विवाहादि संस्कारोंके कालका विचार; शत्रुके वशीकरण एवं स्तम्भन-सम्बन्धी मन्त्र; ग्रहण-दान; सूर्य-संक्रान्ति एवं ग्रहोंकी महादशा]

अग्निदेव कहते हैं—मुने! अब मैं शुभ-अशुभका विवेक प्रदान करनेवाले संक्षिप्त ज्योतिष-शास्त्रका वर्णन करूँगा, जो चार लक्ष श्लोकवाले विशाल ज्योतिषशास्त्रका सारभूत अंश है, जिसे जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो सकता है। यदि कन्याकी राशिसे वरकी राशिसंख्या परस्पर छः-आठ, नौ-पाँच और दो-बारह हो तो विवाह शुभ नहीं होता है। शेष दस-चार, ग्यारह-तीन और सम सप्तक (सात-सात) हो तो विवाह शुभ होता है। यदि कन्या और वरकी राशिके स्वामियोंमें परस्पर मित्रता हो या दोनोंकी राशियोंका एक ही स्वामी हो, अथवा दोनोंकी ताराओं (जन्म-नक्षत्रों) में मैत्री हो तो नौ-पाँच तथा दो-बारहका दोष होनेपर भी विवाह कर लेना चाहिये; किंतु षडष्टक (छः-आठ) के दोषमें तो कदापि विवाह नहीं हो सकता।* गुरु-शुक्रके अस्त रहनेपर विवाह करनेसे वधूके पतिका निधन हो जाता है। गुरु-क्षेत्र (धनु, मीन) में सूर्य हो एवं सूर्यके क्षेत्र (सिंह) में गुरु हो तो विवाहको अच्छा नहीं मानते हैं; क्योंकि वह विवाह कन्याके लिये वैधव्यकारक होता है ॥ १-५ ॥

(संस्कार-मुहूर्त) बृहस्पतिके वक्र रहनेपर तथा अतिचारी होनेपर विवाह तथा उपनयन नहीं करना चाहिये।

* नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीयपाद, अध्याय ५६, श्लोक ५०४ में भी यही बात कही गयी है।

आवश्यक होनेपर अतिचारके समय त्रिपक्ष अर्थात् डेढ़ मास तथा वक्र होनेपर चार मास छोड़कर शेष समयमें विवाह-उपनयनादि शुभ संस्कार करने चाहिये। चैत्र-पौषमें, रिक्ता तिथिमें, भगवान्‌के सोनेपर, मङ्गल तथा रविवारमें, चन्द्रमाके क्षीण रहनेपर भी विवाह शुभ नहीं होता है। संध्याकाल (गोधूलि-समय) शुभ होता है। रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, स्वाती, हस्त, रेवती—इन नक्षत्रोंमें, तुला लग्नको छोड़कर मिथुनादि द्विस्वभाव एवं स्थिर लग्नोंमें विवाह करना शुभ होता है। विवाह, कर्णवेध, उपनयन तथा पुंसवन संस्कारोंमें, अन्न-प्राशन तथा प्रथम चूड़ाकर्ममें विद्धनक्षत्रको[1] त्याग देना चाहिये ॥ ६-९ ॥

श्रवण, मूल, पुष्य—इन नक्षत्रोंमें, रवि, मङ्गल, बृहस्पति—इन वारोंमें तथा कुम्भ, सिंह, मिथुन—इन लग्नोंमे पुंसवन-कर्म करनेका विधान है। हस्त, मूल, मृगशिरा और रेवती नक्षत्रोंमें, बुध और शुक्र वारमें बालकोंका निष्कासन शुभ होता है।

१. विद्धनक्षत्रके परिज्ञानके लिये नारदपुराण, अध्याय ५६के श्लोक ४८३-८४ में पञ्चशलाका-वेधका इस प्रकार वर्णन है—पाँच रेखाएँ पड़ी और पाँच रेखाएँ खड़ी खींचकर, दो-दो रेखाएँ कोणोंमें खींचने (बनाने) से पञ्चशलाका-चक्र बनता है। इस चक्रके ईशानकोणवाली दूसरी रेखामें कृत्तिकाको लिखकर आगे प्रदक्षिणक्रमसे रोहिणी आदि अभिजित्‌सहित सम्पूर्ण नक्षत्रोंका उल्लेख करे। जिस रेखामें ग्रह हो, उसी रेखाकी दूसरी ओरवाला नक्षत्र विद्ध समझा जाता है। इस विषयको भलीभाँति समझनेके लिये निम्नाङ्कित चक्रपर दृष्टिपात करें—
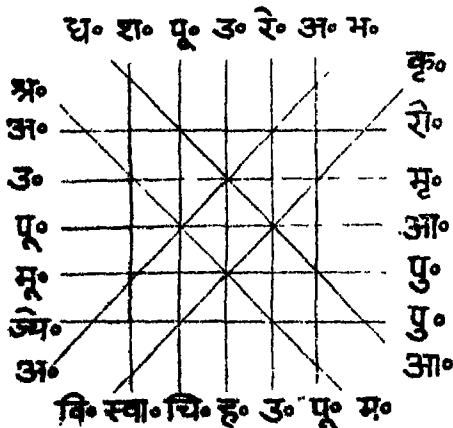
रवि, सोम, बृहस्पति तथा शुक्र—इन दिनोंमें, मूल नक्षत्रमें प्रथम बार ताम्बूल-भक्षण करना चाहिये। शुक्र तथा बृहस्पति वारको, मकर और मीन लग्नमें, हस्तादि पाँच नक्षत्रोंमें, पुष्यमें तथा कृत्तिकादि तीन नक्षत्रोंमें अन्न-प्राशन करना चाहिये। अश्विनी, रेवती, पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा, रोहिणी और श्रवण नक्षत्रोंमें नूतन अन्न और फलका भक्षण शुभ होता है। स्वाती तथा मृगशिरा नक्षत्रमें औषध-सेवन करना शुभ होता है।

(रोग-मुक्त-स्नान) तीनों पूर्वा, मघा, भरणी, स्वाती तथा श्रवण‌से तीन नक्षत्रोंमें, रवि, शनि और मङ्गल—इन वारोमे रोग-विमुक्त व्यक्तिको स्नान करना चाहिये ॥ १०-१४½ ॥

(यन्त्र-प्रयोग) मिट्टीके चौकोर पट्टपर आठ दिशाओंमें आठ 'ह्रीं' कार और बीचमें अपना नाम लिखे। अथवा पार्थिव पट्ट या भोजपत्रपर आठों दिशाओंमें 'ह्रीं' लिखकर मध्यमें अपना नाम गोरोचन तथा कुङ्कुमसे लिखे। ऐसे यन्त्रको वस्त्रमे लपेटकर गलेमें धारण करनेसे शत्रु निश्चय ही वशमें हो जाते हैं। इसी तरह गोरोचन तथा कुङ्कुमसे 'श्रीं' 'ह्रीं' मन्त्रद्वारा सम्पुटित नामको आठ भूर्जपत्र-खण्डपर लिखकर पृथ्वीमें गाड़ दे तो शीघ्र विदेश गया हुआ व्यक्ति वापस आता है और उसी यन्त्रको हल्दीके रससे शिलापट्टपर लिखकर नीचे मुख करके पृथ्वीपर रख दे तो शत्रुका स्तम्भन होता है। 'ॐ' 'हूं' 'सः' मन्त्रसे सम्पुटित नाम गोरोचन तथा कुङ्कुमसे आठ भूर्जपत्रोंपर लिखकर रक्खा जाय तो मृत्युका निवारण होता है। यह यन्त्र एक, पाँच और नौ बार लिखनेसे परस्पर प्रेम होता है। दो, छः या बारह बार लिखनेसे वियुक्त व्यक्तियोंका संयोग होता है और तीन, सात या ग्यारह बार लिखनेसे लाभ होता है और चार, आठ और बारह बार लिखनेसे परस्पर शत्रुता होती है ॥ १५-२० ॥

(भाव और तारा) मेषादि लग्नोंसे तनु, धन, सहज, सुहृत्, सुत, रिपु, जाया, निधन, धर्म, कर्म, आय, व्यय—ये बारह भाव होते हैं। अब नौ ताराओंका बल बतलाता हूँ। जन्म, संपत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, मृत्यु, मैत्र और अतिमैत्र—ये नौ तारे होते हैं। बुध, बृहस्पति, शुक्र, रवि तथा सोम वारको और माघ आदि छः मासोंमें प्रथम क्षौर-कर्म (बालकका मुण्डन) कराना शुभ कहा गया है। बुधवार तथा गुरुवारको एवं पुष्य, श्रवण और चित्रा नक्षत्रमें कर्णवेध-संस्कार शुभ होता है। पाँचवें वर्षमें

प्रतिपदा, षष्ठी, रिक्ता और पूर्णिमा तिथियोंको एवं मङ्गलवारको छोड़कर शेष वारोंमें सरस्वती, विष्णु और लक्ष्मीका पूजन करके अध्ययन (अक्षरारम्भ) करना चाहिये । माघसे लेकर छः मासतक अर्थात् आषाढ़तक उपनयन-संस्कार शुभ होता है । चूडाकरण आदि कर्म श्रावण आदि छः मासोंमें प्रशस्त नहीं माने गये हैं । गुरु तथा शुक्र अस्त हो गये हों और चन्द्रमा क्षीण हों तो यज्ञोपवीत-संस्कार करनेसे बालककी मृत्यु अथवा जडता होती है, ऐसा संकेत कर दे । क्षौरमें कहे हुए नक्षत्रोंमें तथा शुभ ग्रहके दिनोंमें समावर्तन-संस्कार करना शुभ होता है ॥२१–२८॥

(विविध मुहूर्त—) लग्नमें शुभ ग्रहोंकी राशि हो और लग्नमें शुभ ग्रह बैठे हों या उसे देखते हों तथा अश्विनी, मघा, चित्रा, स्वाती, भरणी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हों तो ऐसे समयमें धनुर्वेदका आरम्भ शुभ होता है । भरणी, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी—इन नक्षत्रोंमें जीवनकी इच्छा रखनेवाला पुरुष नवीन वस्त्र धारण न करे । बुध, बृहस्पति तथा शुक्र—इन दिनोंमें वस्त्र धारण करना चाहिये । विवाहादि माङ्गलिक कार्योंमें वस्त्र-धारणके लिये नक्षत्रादिका विचार नहीं करना चाहिये । रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा और हस्तादि पाँच नक्षत्रोंमें चूड़ी, मूँगा तथा रत्नोंका धारण करना शुभ होता है ॥ २९–३२ ॥

(क्रय-विक्रय-मुहूर्त—) भरणी, आश्लेषा, धनिष्ठा, तीनों पूर्वा और कृत्तिका—इन नक्षत्रोंमें खरीदी हुई वस्तु हानिकारक (घाटा देनेवाली) होती है और बेचना लाभदायक होता है । अश्विनी, स्वाती, चित्रा, रेवती, शतभिषा, श्रवण—इन नक्षत्रोंमें खरीदा हुआ सामान लाभदायक होता है और बेचना अशुभ होता है । भरणी, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, स्वाती, कृत्तिका, ज्येष्ठा और विशाखा—इन नक्षत्रोंमें स्वामीकी सेवाका आरम्भ नहीं करना चाहिये । साथ ही इन नक्षत्रोंमें दूसरेको द्रव्य देना, ब्याजपर द्रव्य देना, थाती या धरोहरके रूपमें रखना आदि कार्य भी नहीं करने चाहिये । तीनों उत्तरा, श्रवण और ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें राज्याभिषेक करना चाहिये । चैत्र, ज्येष्ठ, भाद्रपद, आश्विन, पौष और माघ—इन मासोंको छोड़कर शेष मासोंमें गृहारम्भ शुभ होता है । अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती, हस्त और अनुराधा—ये नक्षत्र और मङ्गल तथा रविवारको छोड़कर शेष दिन गृहारम्भ, तड़ाग, वापी एवं प्रासादारम्भके लिये शुभ होते हैं । गुरु सिंह-राशिमें हों तब, गुर्वादित्यमें (अर्थात् जब सिंह राशिके गुरु और धन एवं मीन राशिओंके सूर्य हों,) अधिक मासमें और शुक्रके बाल, वृद्ध तथा अस्त रहनेपर गृह-सम्बन्धी कोई कार्य नहीं करना चाहिये । श्रवणसे पाँच नक्षत्रोंमें तृण तथा काष्ठोंके संग्रह करनेसे अग्निदाह, भय, रोग, राजपीड़ा तथा धन-क्षति होती है । **(गृह-प्रवेश—)** धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें गृहप्रवेश करना चाहिये । **(नौका-निर्माण—)** द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, त्रयोदशी—इन तिथियोंमें नौका बनवाना शुभ होता है । **(नृपदर्शन—)** धनिष्ठा, हस्त, रेवती, अश्विनी—इन नक्षत्रोंमें राजाका दर्शन करना शुभ होता है । **(युद्धयात्रा—)** तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, आर्द्रा, कृत्तिका, मृगशिरा, विशाखा, आश्लेषा और अश्विनी—इन नक्षत्रोंमें की हुई युद्धयात्रा सम्पत्ति-लाभपूर्वक सिद्धिदायिनी होती है । **(गौओंके गोष्ठसे बाहर ले जाने या गोष्ठके भीतर लानेका मुहूर्त—)** अष्टमी, सिनीवाली (अमावास्या) तथा चतुर्दशी तिथियोंमें, तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, हस्त और चित्रा—इन नक्षत्रोंमें बेचनेके लिये गोशालासे पशुको बाहर नहीं ले जाना चाहिये और खरीदे हुए पशुओंका गोशालामें प्रवेश भी नहीं कराना चाहिये । **(कृषि-कर्म-मुहूर्त—)** स्वाती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त तथा श्रवण—इन नक्षत्रोंमें सामान्य कृषि-कर्म करना चाहिये । पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, स्वाती, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, ज्येष्ठा और शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें, रवि, सोम, गुरु तथा शुक्र—इन वारोंमें, वृष, मिथुन, कन्या—इन लग्नोंमें, द्वितीया, पञ्चमी, दशमी, सप्तमी, तृतीया और त्रयोदशी—इन तिथियोंमें (हल-प्रवहणादि) कृषि-कर्म करना चाहिये ।

रेवती, रोहिणी, ज्येष्ठा, कृत्तिका, हस्त, अनुराधा, तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें, शनि एवं मङ्गलवारोंको छोड़कर दूसरे दिनोंमें सभी सम्पत्तियोंकी प्राप्तिके लिये बीज-वपन करना चाहिये।

(धान्य काटने तथा घरमें रखनेका मुहूर्त—) रेवती, हस्त, मूल, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, मघा, मृगशिरा—इन नक्षत्रोंमें तथा मकर लग्नमें धान्य-छेदन-(धान काटनेका) मुहूर्त शुभ होता है और हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती तथा श्रवणादि तीन नक्षत्रोंमें भी धान्य-छेदन शुभ है । स्थिर लग्न तथा बुध, गुरु,

शुक्रवारोंमें, भरणी, पुनर्वसु, मघा, ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें अनाजको डेहरी या बखार आदिमें रक्खे ॥३३-५१॥

(धान्य-वृद्धिके लिये मन्त्र—) **'ॐ धनदाय सर्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा ।'—'ॐ नवे वर्षे इलादेवि ! लोकसंवर्द्धिनि ! कामरूपिणि ! देहि मे धनं स्वाहा ।'**—इन मन्त्रोंको पत्ते या भोजपत्रपर लिखकर धान्यकी राशिमें रख दे तो धान्यकी वृद्धि होती है । तीनों पूर्वा, विशाखा, धनिष्ठा और शतभिषा —इन छः नक्षत्रोंमें बखारसे धान्य निकालना चाहिये । **(देवादि-प्रतिष्ठा-मुहूर्त—)** सूर्यके उत्तरायणमें रहनेपर देवता, बाग, तड़ाग, वापी आदिकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये । **(भगवान्‌के शयन, पार्श्व-परिवर्तन और जागरणका उत्सव—)** मिथुन-राशिमें सूर्यके रहनेपर अमावास्याके बाद जब द्वादशी तिथि होती है, उसीमें सदैव भगवान् चक्रपाणिके शयनका उत्सव करना चाहिये । सिंह तथा तुला-राशिमें सूर्यके रहनेपर अमावास्याके बाद जो दो द्वादशी तिथियाँ होती हैं, उनमें क्रमसे भगवान्‌का पार्श्व-परिवर्तन तथा प्रबोधन (जागरण) होता है । कन्या-राशिका सूर्य होनेपर अमावास्याके बाद जो अष्टमी तिथि होती है, उसमें दुर्गाजी जागती हैं । **(त्रिपुष्करयोग—)** जिन नक्षत्रोंके तीन चरण दूसरी राशिमें प्रविष्ट हों (जैसे कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा और पूर्वभाद्रपदा —इन नक्षत्रोंमें, जब भद्रा द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथियाँ हों एवं रवि, शनि तथा मङ्गलवार हों तो त्रिपुष्कर-योग होता है । **(चन्द्रबल—)** प्रत्येक व्यावहारिक कार्यमें चन्द्र तथा ताराकी शुद्धि देखनी चाहिये । जन्मराशिमें तथा जन्मराशिसे तृतीय, षष्ठ, सप्तम, दशम, एकादश स्थानोंपर स्थित चन्द्रमा शुभ होते हैं । शुक्ल पक्षमें द्वितीय, पञ्चम, नवम चन्द्रमा भी शुभ होता है । **(तारा-शुद्धि—)** मित्र, अतिमित्र, साधक, सम्पत् और क्षेम आदि ताराएँ शुभ हैं । 'जन्म-तारा'से मृत्यु होती है, 'विपत्ति तारा'से धनका विनाश होता है, 'प्रत्यरि' और 'मृत्युतारा'में निधन होता है । (अतः इन ताराओंमें कोई नया काम या यात्रा नहीं करनी चाहिये ।) **(क्षीण और पूर्ण चन्द्र—)** कृष्ण पक्षकी अष्टमीसे शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथितक चन्द्रमा क्षीण रहता है; इसके बाद वह पूर्ण माना जाता है । **(महाज्येष्ठी—)** वृष तथा मिथुन राशिका सूर्य हो, गुरु मृगशिरा अथवा ज्येष्ठा नक्षत्रमें हो और गुरुवारको पूर्णिमा तिथि हो तो वह पूर्णिमा 'महाज्येष्ठी' कही जाती है । ज्येष्ठामें गुरु तथा चन्द्रमा हों, रोहिणीमें सूर्य हो एवं ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा हो तो वह पूर्णिमा 'महाज्येष्ठी' कहलाती है । स्वाती नक्षत्रके आनेसे पूर्व ही यन्त्रपर इन्द्रदेवका पूजन करके उनका ध्वजारोपण करना चाहिये; श्रवण अथवा अश्विनीमें या सप्ताहके अन्तमें उसका विसर्जन करना चाहिये ॥ ५२-६४ ॥

(ग्रहणमें दानका महत्त्व—) सूर्यके राहुद्वारा ग्रस्त होनेपर अर्थात् सूर्यग्रहण लगनेपर सब प्रकारका दान सुवर्ण-दानके समान है, सब ब्राह्मण ब्रह्माके समान होते हैं और सभी जल गङ्गाजलके समान हो जाते हैं । **(संक्रान्तिका कथन—)** सूर्यकी संक्रान्ति रविवारसे लेकर शनिवारतक किसी-न-किसी दिन होती है । इस क्रमसे उस संक्रान्तिके सात भिन्न-भिन्न नाम होते हैं । यथा – घोरा, ध्वाङ्क्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, युता (मिश्रा) तथा राक्षसी । कौलव, शकुनि और किंस्तुघ्न करणोंमें सूर्य यदि संक्रमण करे तो लोग सुखी होते हैं । गर, वन, वणिक्, विष्टि और बालव —इन पाँच करणोंमें यदि सूर्य-संक्रान्ति बदले तो प्रजा राजाके दोषसे सम्पत्तिके साथ पीड़ित होती है । चतुष्पात्, तैतिल और नाग—इन करणोंमें सूर्य यदि संक्रमण करे तो देशमें दुर्भिक्ष होता है, राजाओंमें संग्राम होता है तथा पति-पत्नीके जीवनके लिये भी संशय उपस्थित होता है ॥ ६६-७० ॥

(रोगकी स्थितिका विचार—) जन्म-नक्षत्र या आधान (जन्मसे उन्नीसवें) नक्षत्रमें रोग उत्पन्न हो जाय, तो अधिक क्लेशदायक होता है । कृत्तिका नक्षत्रमें रोग उत्पन्न हो तो नौ दिनतक, रोहिणीमें उत्पन्न हो तो तीन राततक तथा मृगशिरामें हो तो पाँच राततक रहता है । आर्द्रामें रोग हो तो प्राणनाशक होता है । पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्रोंमें रोग हो तो सात राततक बना रहता है । आश्लेषाका रोग नौ राततक रहता है । मघाका रोग अत्यन्त घातक या प्राणनाशक होता है । पूर्वाफाल्गुनीका रोग दो मासतक रहता है । उत्तराफाल्गुनीमें उत्पन्न हुआ रोग तीन दिनों-तक रहता है । हस्त तथा चित्राका रोग पंद्रह दिनोंतक पीड़ा देता है । स्वातीका रोग दो मासतक, विशाखाका बीस दिन, अनुराधाका रोग दस दिन और ज्येष्ठाका पंद्रह दिन रहता है । मूल नक्षत्रमें रोग हो तो वह छूटता ही नहीं । है । पूर्वाषाढ़ाका रोग पाँच दिन रहता है । उत्तराषाढ़ाका रोग बीस दिन, श्रवणका दो मास, धनिष्ठाका पंद्रह दिन

और शतभिषाका रोग दस दिनोंतक रहता है। पूर्वाभाद्रपदाका रोग छूटता ही नहीं। उत्तराभाद्रपदाका रोग सात दिनोंतक रहता है*। रेवतीका रोग दस रात और अश्विनीका रोग एक दिन-रात मात्र रहता है; किंतु भरणीका रोग प्राणनाशक होता है। (**रोग-शान्तिका उपाय**—) पञ्चधान्य, तिल और घृत आदि हवनीय सामग्री-द्वारा गायत्री-मन्त्रसे हवन करनेपर रोग छूट जाता है और शुभ फलकी प्राप्ति होती है तथा ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौका दान करनेसे रोगका शमन हो जाता है ॥७१-७७½॥

(अष्टोत्तरी-क्रमसे) सूर्यकी दशा छः वर्षकी होती है। इसी प्रकार चन्द्रदशा पंद्रह वर्ष, मङ्गलकी आठ वर्ष, बुधकी सत्रह वर्ष, शनिकी दस वर्ष, बृहस्पतिकी उन्नीस वर्ष, राहुकी बारह वर्ष और शुक्रकी इक्कीस वर्ष महादशा चलती है ॥ ७८-७९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ज्योतिषशास्त्रका कथन' नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

एक सौ बाईसवाँ अध्याय

कालगणना—पञ्चाङ्गमान-साधन

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! (अब मैं) वर्षोंके समुदायस्वरूप 'काल' का वर्णन कर रहा हूँ और उस कालको समझनेके लिये मैं गणित बतला रहा हूँ। (ब्रह्म-दिनादिकालसे अथवा सृष्ट्यारम्भकालसे अथवा व्यवस्थित शकारम्भसे) वर्षसमुदाय-संख्याको १२ से गुणा करे। उसमें चैत्रादि गत मास-संख्या मिला दे। उसे दोसे गुणा करके दो स्थानोंमें रक्खे। प्रथम स्थानमें चार मिलाये, दूसरे स्थानमें आठ सौ पैंसठ मिलाये। इस तरह जो अङ्क सम्पन्न हो, वह 'सगुण' कहा गया है। उसे तीन स्थानोंमें रक्खे; उसमें बीचवालेको आठसे गुणा करके फिर चारसे गुणित करे। इस तरह मध्यका संस्कार करके गो-मूत्रिका-क्रमसे रक्खे हुए तीनोंका यथास्थान संयोजन करे। उसमें प्रथम स्थानका नाम 'ऊर्ध्व', बीचका नाम 'मध्य' और तृतीय स्थानका नाम 'अधः' ऐसा रक्खे। अधः-अङ्कमें ३८८ और मध्याङ्कमें ८७ घटाये। तत्पश्चात् उसे ६० से विभाजित करके शेषको (अलग) लिखे। फिर लब्धिको आगेवाले अङ्कमें मिलाकर ६० से विभाजित करे। इस प्रकार तीन स्थानोंमें स्थापित अङ्कोंमेंसे प्रथम स्थानके अङ्कमें ७ से भाग देनेपर शेष बची हुई संख्याके अनुसार रवि आदि वार निकलते हैं। शेष दो स्थानोंका अङ्क तिथिका ध्रुवा होता है। सगुणको दोसे गुणा करे। उसमें तीन घटाये। उसके नीचे सगुणको लिखकर उसमें तीस जोड़े। फिर भी ६, १२, ८—इन पलोंको भी क्रमसे तीनों स्थानोंमें मिला दे। फिर ६० से विभाजित करके प्रथम स्थानमें २८ से भाग देकर शेषको लिखे। उसके नीचे पूर्वानीत तिथि-ध्रुवाको लिखे। सबको मिलानेपर ध्रुवा हो जायगा। फिर भी उसी सगुणको अर्द्ध करे। उसमें तीन घटा दे। दोसे गुणा करे। मध्यको एकादशसे गुणा करे। नीचेमें एक मिलाये। द्वितीय स्थानमें उनचालीससे भाग देकर लब्धिको प्रथम स्थानमें घटाये, उसीका नाम 'मध्य' है। मध्यमें बाईस घटाये। उसमें ६० से भाग देनेपर शेष 'ऋण' है। लब्धिको ऊर्ध्वमें अर्थात् नक्षत्र-ध्रुवामें मिलाना चाहिये। २७ से भाग देनेपर शेष नक्षत्र तथा योगका ध्रुवा हो जाता है ॥ १-७½ ॥

अब तिथि तथा नक्षत्रका मासिक ध्रुवा कह रहे हैं। (२ । ३२ । ००) यह तिथि-ध्रुवा है और (२ । ११ । ००) यह नक्षत्र-ध्रुवा है। इस ध्रुवाको प्रत्येक मासमें जोड़कर, वार-स्थानमें ७ से भाग देकर शेष वारमें तिथिका दण्ड-पल समझना चाहिये। नक्षत्रके लिये २७ से भाग देकर अश्विनीसे शेष संख्यावाले नक्षत्रका दण्डादि जानना चाहिये ॥८-१०॥

[पूर्वोक्त प्रकारसे तिथ्यादिका मान मध्यममानसे निश्चित हुआ। उसे स्पष्ट करनेके लिये संस्कार कहते हैं।] चतुर्दशी आदि तिथियोंमें कही हुई घटियोंको क्रमसे ऋण-धन तथा धन-ऋण करना चाहिये। जैसे चतुर्दशीमें शून्य घटी तथा त्रयोदशी और प्रतिपदामें पाँच घटी क्रमसे ऋण तथा धन करना चाहिये। एवं द्वादशी तथा द्वितीयामें दस घटी ऋण-धन करना चाहिये। तृतीया तथा एकादशीमें

* 'बुध्नार्यमेज्यादितिधातृमे नगाः' (मुहू० चिन्ता०, नक्ष० प्रक० ४६) के अनुसार उत्तराभाद्रपदामें उत्पन्न रोग सात दिन रहता है।

पंद्रह घटी, चतुर्थी और दशमीमें १९ घटी, पञ्चमी और नवमीमें २२ घटी, षष्ठी तथा अष्टमीमें २४ घटी तथा सप्तमीमें २५ घटी धन-ऋण-संस्कार करना चाहिये। यह अंशात्मक फल चतुर्दशी आदि तिथिपिण्डमें करना होता है ॥ ११-१३½ ॥

(अब कलात्मक फल-संस्कारके लिये कहते हैं—) कर्कादि तीन राशियोंमें छः, चार, तीन (६ । ४ । ३) तथा तुलादि तीन राशियोंमें विपरीत तीन, चार, छः (३ । ४ । ६) संस्कार करनेके लिये 'खण्डा' होता है। "खेषवः-५०", "खयुगाः-४०", मैत्रं-१२"—इनको मेषादि तीन राशियोंमें धन करना चाहिये। कर्कादि तीन राशियोंमें विपरीत १२, ४०, ५० का संस्कार करना चाहिये। तुलादि छः राशियोंमें इनका ऋण-संस्कार करना चाहिये। चतुर्गुणित तिथिमें विकलात्मक फल-संस्कार करना चाहिये। 'गत' तथा 'एष्य' खण्डाओंके अन्तरसे कलाको गुणित करे। ६० से भाग दे। लब्धिको प्रथमोच्चारमें ऋण-फल रहनेपर भी धन करे और धन रहनेपर भी धन ही करे। द्वितीयोच्चारित वर्ग रहनेपर विपरीत करना चाहिये। तिथिको द्विगुणित करे। उसका छठा भाग उसमें घटाये। सूर्य-संस्कारके विपरीत तिथि-दण्डको मिलाये। ऋण-फलको घटानेपर स्पष्ट तिथिका दण्डादि मान होता है। यदि ऋण-फल नहीं घटे तो उसमें ६० मिलाकर संस्कार करना चाहिये। यदि फल ही ६० से अधिक हो तो उसमें ६० घटाकर शेषका ही संस्कार करना चाहिये। इससे तिथिके साथ-साथ नक्षत्रका मान होगा। फिर भी चतुर्गुणित तिथिमें तिथिका त्रिभाग मिलाये। उसमें ऋण-फलको भी मिलाये। तष्टित करनेपर योगका मान होता है। तिथिका मान तो स्पष्ट ही है, अथवा सूर्य-चन्द्रमाको योग करके भी 'योग' का मान निश्चित आता है। तिथिकी संख्यामेंसे एक घटाकर उसे द्विगुणित करनेपर फिर एक घटाये तो भी चर आदि करण निकलते हैं। कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके परार्धसे शकुनि, चतुष्पद (चतुष्पद), किंस्तुघ्न और अहि (नाग)—ये चार स्थिर करण होते हैं। इस तरह शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिके पूर्वार्द्धमें किंस्तुघ्न करण होता है* ॥ १४-२४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ज्यौतिष-शास्त्रके अन्तर्गत 'कालगणना' नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

---

* इस अध्यायमें वर्णित गणितको उदाहरण देकर समझाया जाता है—

कल्पना कीजिये कि वर्तमान वर्षगण-संख्या =२१ है और वर्तमान शकमें वैशाख शुक्ल प्रतिपदाको पञ्चाङ्ग-मान-साधन करना है तो चैत्र शुक्लादि गतमास १ हुआ। वर्षगण २१ को १२ से गुणा करके उसमें चैत्र शुक्लादि गतमासकी संख्या १ मिलानेसे २१×१२+१=२५३ हुआ। इसे द्विगुणित करके दो स्थानोंमें रक्खा। प्रथम स्थानमें ४ और दूसरे स्थानमें ८६५ मिलाया। यथा—२५३×२=५०६।

५०६ । ५०६
 ४ । ८६५

५१० । १३७१ इसे (६० से) तष्टित (विभाजित) किया तो ५३२ । ५१ हुआ अर्थात् (१३७१) में ६० से भाग देनेपर लब्धि २२ शेष ५१ आता है। लब्धिको (५१०) में मिलाया तो (५३२ । ५१) हुआ। इसका नाम सगुण या गुणसंज्ञ रक्खा।

फिर इस गुणसंज्ञको तीन स्थानोंमें रक्खा—

५३२ । ५१ ऊर्ध्व संख्या

५३२ । ५१ मध्य संख्या

५३२ । ५१ अधः संख्या

इसमें मध्य (५३२ । ५१) को आठसे गुणा किया तो (४२५६ । ४०८) हुआ, फिर इसे ४ से गुणा किया तो (१७०२४ । १६३२) हुआ। इसे ६० से तष्टित किया अर्थात् (१६३२) में ६० से भाग देकर शेष १२ को अपने

एक सौ तेईसवाँ अध्याय

युद्धजयार्णव-सम्बन्धी विविध योगोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—(अब स्वरके द्वारा विजय- प्रकरणमें विजय आदि शुभ कार्योंकी सिद्धिके लिये साधन कह रहे हैं—) मैं इस पुराणके युद्धजयार्णव- सार वस्तुओंको कहूँगा । जैसे अ, इ, उ, ए, ओ—

स्थानपर रखा, लब्धि २७ को बायें अङ्कमें मिलाया तो (१७०५१ । १२) हुआ । इस तरह मध्यका संस्कार करके उसे मध्यके स्थानमें रखकर न्यास किया—

५३२ । ५१

१७०५१ । १२

५३२ । ५१

ऊर्ध्व मध्य अधः सबोंको यथास्थानीय योग किया

५३२ । १७१०२ । ५४४ । ५१ इस (५१) को छोड़ दिया तो—

ऊर्ध्व मध्य अधः

५३२ । १७१०२ । ५४४ हुआ । यहाँपर तृतीय स्थानीय (अधः अङ्कमें ३८८ और मध्यमें 'सैकरसाष्टक'

८७ ३८८ =८७ घटाया तो—

शेष रहा—

५३२ । १७०१५ । १५६ इसे ६० से तष्टित किया तो—

८१५ । ३७ । ३६ हुआ न्यूनः सप्तकुनः अर्थात् वार-स्थानमें ७ से भाग दिया

शेष = ३

३ । ३७ । ३६ यह तिथिका ध्रुवा-मान हुआ, जिसे तिथि-नाडी कहते हैं ।

फिर गुणसंज्ञ (५३२ । ५१) को २ से गुणा किया तो १०६४ । १०२ हुआ । ६० से तष्टित किया तो १०६५ । ४२ हुआ । प्रथम स्थानमें ३ घटाया तो १०६२ । ४२ हुआ । (पुनर्गुणः) फिर भी इसके साथ गुणसंज्ञ (५३२ । ५१) का न्यास किया और जोड़ा तो—

१०६२ । ४२

५३२ । ५१

१०६२ । ५७४ । ५१ हुआ । यहाँ तृतीय स्थानीय (५१) में ३० मिलाया तो—

३०

१०६२ । ५७४ । ८१ हुआ । इसमें 'रसार्कोष्टयकैर्युतः' के अनुसार (६ । १२ । ८)

६ । १२ । ८ तीनों स्थानोंमें मिलाया

१०६८ । ५८६ । ८९ हुआ । इसे ६० तष्टित किया तो—

१०७७ । ४७ । २९ हुआ । यहाँ प्रथम स्थानमें २८ से भाग देकर शेष १३ को रखा तो

१३ । ४७ । २९ हुआ । इसमें पूर्वानीत तिथि-नाडी (३ । ३७ । ३६) को मिलाया तो

३ । ३७ । ३६

१७ । २५ । ५ यह भी सम्पन्नाङ्क हुआ अर्थात् दूसरा ऊर्ध्वाङ्क हुआ ।

फिर गुणसंज्ञ (५३२ । ५१) को आधा किया तो (२६६ । २५) हुआ । दूसरे स्थानमें ३ घटाया तो (२६६ । २२) हुआ । इसे दोसे गुणा किया तो (५३२ । ४४) हुआ । यहाँ (५३२) को ११ से गुणा किया और ४४में १ मिलाया तो

ये पाँच स्वर होते हैं। इन्हींके क्रमसे नन्दा (भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा) आदि तिथियाँ होती हैं। 'क'से लेकर 'ह' तक वर्ण होते हैं और पूर्वोक्त स्वरोंके क्रमसे सूर्य-मङ्गल, बुध-चन्द्रमा, बृहस्पति-शुक्र, शनि-

(५८५२ । ४५) हुआ। यहाँ (४५) में ३९से भाग देकर शेष ६ को अपने स्थानमें लिखा। लब्धिको प्रथम स्थानमें घटाया तो (५८५१ । ६) हुआ। प्रथम स्थानमें २२ घटाया तो (५८२९ । ६) हुआ। इसे ६० से तष्टित करके लब्धाङ्क (९७ । ९ । ६) हुआ। इसमें दूसरे ऊर्ध्वाङ्क (१७ । २५ । ५) को मिलाया तो (११४ । ३४ । ११) हुआ। प्रथम स्थानमें २७से भाग देनेपर (६ । ३४ । ११) हुआ—यह नक्षत्र तथा योगका ध्रुवा हुआ।

व्यवस्थित शकादिमें तिथिका ध्रुवा (२ । ३२ । ००) यह है और नक्षत्र-ध्रुवा (२ । ११ । ००) यह है, इसको प्रत्येक मासमें अपने-अपने मानमें जोड़ना चाहिये। जैसे कि पूर्वानीत तिथिके वारादि (३ । ३७ । ३६) में तिथिका वारादि ध्रुवा (२ । ३२ । ००) को मिलाया तो वैशाख शुक्ल प्रतिपदाका मान वारादि (६ । ९ । ३६) मध्यम मानसे हुआ एवं पूर्वानीत नक्षत्र-मान (६ । ३४ । ११) में नक्षत्र-ध्रुवा (२ । ११ । ००) को जोड़ा तो (८ । ४५ । ११) हुआ अर्थात् पुष्य नक्षत्रका मान मध्यम दण्डादि (४५ । ११) हुआ।

अब तिथि आदिका स्पष्ट मान जाननेके लिये संस्कार-विधि कह रहे हैं। इसे ११ वें श्लोकसे २० वें श्लोकतककी व्याख्याके अनुसार समझना चाहिये।

ति.	ति.		क्रमसे ऋण-धन	
	१४	=	०	
१३	१	=	५	अर्थात् त्रयोदशीके साधित
१२	२	,, =	१०	घटीमानमें ५ घटी ऋण
११	३	,, =	१५	और प्रतिपदाकी घटीमें ५
१०	४	,, =	१९	घटी अंशात्मक फल धन
९	५	,, =	२२	करना चाहिये।
८	६	,, =	२४	
	७	,, =	२५	

इसी तरह कर्कादि फल-साधनके लिये "कर्कादौ हरेद्राशिमृतुरेत्रयैः क्रमात्" के अनुसार करना चाहिये।

क.	६	+	१२"	कल्पना किया कि मं० सू० = ०० । ११ । २५ । १०"
सिं.	४	+	४०"	यहाँपर मेष राशिका विकलात्मक ५०
क.	३	+	५०"	फल —५० को जोड़ा = ०० । ११ । २६ । ००"
तु.	३	—	५०"	यहाँ ११ सम्बन्धि ५ घटी फल प्रतिपदाकी घटी
वृ.	४	—	४०"	जोड़ दिया तो २ । ४९ । ३६
ध.	६	—	१२"	५ । ००
म.	६	—	१२"	२ । ५४ । ३६ हुआ
कुं.	४	—	४०"	फिर मीन तथा मेषका राशि ध्रुवा (३-३) = ०
मी.	३	—	५०"	इससे (२६ । ००) × ० गुणा किया तो
मे.	३	+	५०"	= ० । ० हुआ इसको तिथि घट्यादिमें
वृ.	४	+	४०"	संस्कार किया २ । ५४ । ३६
मि.	६	+	१२"	०० । ००

= स्पष्ट

२ । ५४ । ३६ तिथि-मान हुआ।

इसमें एष्यखण्डासे गतखण्डा अधिक हो तो फलको ऋण समझना चाहिये। फिर भी तिथि-संस्कारके लिये तृतीय

मङ्गल तथा सूर्य-शनि—ये ग्रह-स्वामी होते हैं *॥ १-२ ॥

चालीसको साठसे गुणा करे । उसमें ग्यारहसे भाग दे । लब्धिको छःसे गुणा करके गुणनफलमें फिर ग्यारहसे ही भाग दें । लब्धिको तीनसे गुणा करके

संस्कार कह रहे हैं (श्लो० १९-२०) । तिथिमानको द्विगुणित करके षष्ठांश उसीमें घटा दे । सूर्यके अंशके फलको विपरीत संस्कार करे, उसमें तिथि-नाडीको मिला दे । इसमें कलादिका ऋण फल-संशोधन करनेपर स्पष्टमान दण्डादिक हो जाता है । ऋणात्मक मानके नहीं घटनेपर उसमें ६० मिलाकर घटाना चाहिये एवं जिसमें संस्कार करना है, वही ६० से अधिक हो तो उसमें ही ६० घटाना चाहिये—इस तरह तृतीय संस्कार होता है ।

उदाहरण—"द्विगुणिता" के स्थानपर "त्रिगुणिता" पाठ रखनेपर पूर्वानीत मध्यम तिथिका मान दण्डादिक (९ । ३६) को ३ से गुणा किया तो (२८ । ४८) हुआ । इसका षष्ठांश (४ । ४८) हुआ । (२८ । ४८) मेंसे षष्ठांश (४ । ४८) को घटाया तो =२४ । ०० हुआ । इसमें तिथि-नाडी (९ । ३६) को मिलाया तो (३३ । ३६) हुआ । इसमें सूर्यके अंशका ५ घ० संस्कार-फल घटाया तो (३३ । ३६)—(५ । ०)=(२८ । ३६) हुआ । ६० से तष्टित किया तो २८ । ३६ घट्यादिक स्पष्ट तिथिका मान हुआ, जो पूर्वानीत मध्य तिथिके घट्यादिक (९ । ३६) के आसन्न हुआ ।

"द्विगुणिता" पाठ रखनेपर ऐसा नहीं होता है, अधिक अन्तर होता है । अब योगका साधन बताते हैं (श्लोक-० २१–२३) ।

स्पष्ट तिथि-मानको (२८ । ३६)×४=११४ । २४ हुआ । इसमें तिथिका तृतीयांश (९ । ३२) मिलाया तो १२३ । ५६ हुआ । २७ से तष्टित किया तो लब्धि ४ से घट्यादिक १५ । ५६ हुआ अर्थात् सौभाग्य योगका मान घट्यादिक १५ । ५६ हुआ ।

योग-साधनका दूसरा प्रकार कहते हैं—(श्लोक २३) सूर्य तथा चन्द्रमाकी योग-कलामें ८०० से भाग देनेपर लब्धि योग-संख्या होगी । शेष एष्य योगका गत घट्यादि मान होगा । उसे ८०० कलामें घटाकर सूर्य-चन्द्र-गति-योगमें ६० घटी तो शेष योगकलामें क्या इस तरह अनुपातसे भी योगका घट्यादि मान होगा ।

अब करणका साधन-प्रकार कहते हैं—

द्विगुणित तिथि-संख्यामें १ घटानेसे सात 'चल'करण होते हैं और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके द्वितीय परार्धमें शकुनि तथा अमावास्याके पूर्वार्ध और परार्धमें चतुष्पद एवं 'नाग' करण होते हैं । शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके पूर्वार्धमें किंस्तुघ्न नामके चार करण 'स्थिर' होते हैं और तिथिके आधेके बराबर करणोंका मान होगा । यहाँपर मूल पाठमें "तिथ्यर्धतो हि" ऐसा लिखा है, किंतु वास्तवमें "तिथ्यर्धतोऽहिः" ऐसा पाठ होना चाहिये; क्योंकि 'हि' को पादपूरक रखनेसे 'नाग' अर्थ नहीं होगा । जिससे नाग नामक करणका ज्ञान नहीं होगा और "अहिः" ऐसा रखनेपर नाग करणका बोध होगा ।

* इस विषयके स्पष्ट बोधके लिये निम्नाङ्कित स्वरचक्र देखिये—

स्वराः	अ	इ	उ	ए	ओ
तिथयः	नन्दा १।६।११	भद्रा २।७।१२	जया ३।८।१३	रिक्ता ४।९।१४	पूर्णा ५।१०।१५
वर्णाः	क छ ड ध भ व	ख ज ढ न म श	ग झ त प य ष	घ ट थ फ र स	च ठ द ब ल ह
स्वामिनः	सूर्य मंगल	बुध चन्द्र	बृह० शुक्र	शनि० मं०	सू० श०
संज्ञा	बाल	कुमार	युवा	वृद्ध	मृत्यु

गुणनफलमें एक मिला दे तो उतनी ही बार नाडीके स्फुरणके आधारपर पल होता है। इसके बाद भी अहर्निश नाडीका स्फुरण होता ही रहता है।

उदाहरण—जैसे ४०×६०=२४००। $\frac{२४००}{११}$=२१९ लब्धि स्वल्पान्तरसे हुई। इसे छःसे गुणा किया तो २१९×६=१३१४ गुणनफल हुआ। इसमे फिर ११ से भाग दिया तो $\frac{१३१४}{११}$=११९ लब्धि, शेष=५, शेष छोड़ दिया। लब्धि ११९ को ३ से गुणा किया तो गुणनफल ३५७ हुआ। इसमें १ मिलाया तो ३५८ हुआ। इसको स्वल्पान्तरसे ३६० मान लिया। अर्थात् करमूलगत नाडीका ३६० बार स्फुरण होनेके आधारपर ही पल होते हैं, जिनका ज्ञानप्रकार आगे कहेंगे। इसी तरह नाडीका स्फुरण अहर्निश होता रहता है और इसी मानसे अकारादि स्वरोंका उदय भी होता रहता है ॥ ३—४½ ॥

(अब व्यावहारिक काल-ज्ञान कहते हैं—(तीन बार स्फुरण होनेपर १ 'उच्छ्वास' होता है अर्थात् १ 'अणु'* होता है, ६ 'उच्छ्वास'का १ 'पल' होता है, ६० पलका एक 'लिप्ता' अर्थात् १ 'दण्ड' होता है, (यद्यपि 'लिप्ता' शब्द कला-वाचक है, जो कि ग्रहोंके राश्यादि विभागमें लिया जाता है, फिर भी यहाँ काल-मानके प्रकरणमें 'लिप्ता' शब्दसे 'दण्ड' ही लिया जायगा; क्योंकि 'कला' तथा 'दण्ड'—ये दोनों भचक्रके षष्ट्यंश-विभागमे ही लिये गये हैं।) ६० दण्डका १ अहोरात्र होता है। उपर्युक्त अ, इ, उ, ए, ओ—स्वरोंकी क्रमसे बाल, कुमार, युवा, वृद्ध, मृत्यु—ये पाँच संज्ञाएँ होती हैं। इनमें किसी एक स्वरके उदयके बाद पुनः उसका उदय पाँचवें खण्डपर होता है। जितने समयसे उदय होता है, उतने ही समयसे अस्त भी होता है। इनके उदयकाल एवं अस्तकालका मान अहोरात्रके अर्थात् ६० दण्डके एकादशांशके समान होता है—जैसे ६० में ११ से भाग देनेपर ५ दण्ड २७ पल लब्धि होगी तो ५ दण्ड २७ पल उक्त स्वरोंका उदयास्तमान होता है। किसी स्वरके उदयके बाद दूसरा स्वर ५ दण्ड २७ पलपर उदय होगा। इसी तरह पाँचोंका उदय तथा अस्तमान जानना चाहिये। इनमेंसे जब मृत्युस्वरका उदय हो, तब युद्ध करनेपर पराजयके साथ ही मृत्यु हो जाती है ॥ ५—७ ॥

(अब शनिचक्रका वर्णन करते हैं—) शनिचक्रमें १५ दिनोंपर क्रमशः ग्रहोंका उदय हुआ करता है। इस पञ्चदश विभागके अनुसार शनिका भाग युद्धमें मृत्युदायक होता है। (विशेष—जब कि शनि एक राशिमे ढाई साल अर्थात् ३० मास रहता है, उसमे दिन-संख्या ९०० हुई। ९०० मे १५ का भाग देनेसे लब्धि ६० होगी। ६० दिनका १ पञ्चदश विभाग हुआ। शनिके राशिमें प्रवेश करनेके बाद शनि आदि ग्रहोंका उदय ६० दिनका होगा; जिसमें उदय-संख्या ४ बार होगी। इस तरह जब शनिका भाग आये, उस समय युद्ध करना निषिद्ध है) ॥ ८ ॥

(अब कूर्मपृष्ठाकार शनि-बिम्बके पृष्ठका क्षेत्रफल कहते हैं—) दस कोटि सहस्र तथा तेरह लाखमें इसीका दशांश मिला दे तो उतने ही योजनके प्रमाणवाले कूर्मरूप शनि बिम्बके पृष्ठका क्षेत्रफल होता है। अर्थात् ११००,१४३०००० ग्यारह अरब चौदह लाख तीस हजार योजन शनि-बिम्ब पृष्ठका क्षेत्रफल है। (विशेष—ग्रन्थान्तरोंमे ग्रहोंके बिम्ब-प्रमाण तथा कर्णप्रमाण योजनमें ही कहे गये हैं। जैसे 'गणिताध्याय'में भास्कराचार्य—सूर्य तथा चन्द्रका बिम्ब-परिमाण कथनके अवसरपर—'**बिम्बं रवेर्द्विद्विशरर्तुसंख्यानीन्दोः खनागाम्बुधियोजनानि।**' आदि। यहाँ भी संख्या योजनके प्रमाणवाली ही लेनी चाहिये।) मघाके प्रथम चरणसे लेकर कृत्तिकाके आदिसे अन्ततक शनिका निवास अपने स्थानपर रहता है, उस समय युद्ध करना ठीक नहीं होता ॥ ९ ॥

(अब राहु-चक्रका वर्णन करते हैं—) राहु-चक्रके लिये सात खड़ी रेखा एवं सात पड़ी रेखा बनानी चाहिये। उसमें वायुकोणसे नैर्ऋत्यको लिये हुए अग्निकोणतक शुक्लपक्षकी प्रतिपदामे लेकर पूर्णिमातककी तिथियोंको लिखना चाहिये एवं अग्निकोणसे ईशानकोणको लिये हुए वायुकोणतक कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर अमावास्यातककी

---

* इस विषयपर भास्कराचार्य अपनी 'गणिताध्याय' नामक पुस्तकके 'कालमानाध्याय'में लिखते हैं—

> गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः
> षड्भिः पलं तैर्घटिका खषड्भिः।
> स्याद्वा घटीषष्टिरहः खरामै-
> र्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम् ॥ १ ॥

"दस गुरु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है, उसे एक 'अणु' कहते हैं और ६ अणुओंका एक 'पल' होता है। ६० पलका १ 'दण्ड', ६० दण्डका १ 'अहोरात्र', ३० दिन-रातका एक 'मास' और १२ मासका एक 'वर्ष' होता है।"

श्रीकृष्ण-अवतार [अग्नि० अ० १२

व्रजलीलामें श्रीकृष्ण [अग्नि० अ० १२

कंस-वध [अग्नि० अ० १२

गीतोपदेश [अग्नि० अ० १४

तिथियोंको लिखना चाहिये । इस तरह तिथिरूप राहुका न्यास होता है । 'ए'कारको दक्षिण दिशामें लिखे और 'ह'-कारको वायुकोणमें लिखे । प्रतिपदादि तिथियोंके सहारे 'क'कारादि अक्षरोंको भी लिखे । नैर्ऋत्यकोणमें 'ळकार' लिखे । इस तरह राहुचक्र तैयार हो जाता है । राहु-मुखमें* यात्रा करनेसे यात्रा-भङ्ग होता है ॥ १०—१२ ॥

राहुचक्र नीचे दिया जा रहा है—

(अब तिथिके अनुसार भद्रा-निवासकी दिशाका वर्णन करते हैं—) पौर्णमासी तिथिको भद्राका नाम 'विष्टि' होता है और वह अग्निकोणमें रहती है । तृतीया तिथिको भद्राका नाम 'कराली' होता है और वह पूर्व दिशामें वास करती है । सप्तमी तिथिको भद्राका नाम 'घोरा' होता है और वह दक्षिण दिशामें निवास करती है । सप्तमी तथा दशमी

---

* देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः ।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात् पृष्ठविदिक् शुभा भवेत् ॥

(मुहूर्तचिन्तामणि, वास्तुप्रकरण, १९)

मुहूर्तचिन्तामणि-ग्रन्थोक्त रामाचार्यके प्रोक्त वचनानुसार राहुका भ्रमण अपने स्थानसे विलोम ही होता है । जैसे लिखित चक्रमें शुक्लपक्षकी एकादशीको राहुका मुख दक्षिण दिशामें कहा गया है और पुच्छ अमावास्या तिथिपर रहेगी; क्योंकि राहुका स्वरूप सर्पाकार है और एकादशीके बाद दशमी, नवमी आदि विलोम तिथियोंपर राहुका मुख भ्रमण करेगा । इसी तरह शुक्लपक्षकी प्रत्येक तिथियोंपर राहुका मुख जाता रहेगा । जहाँपर राहुका मुख रहे, उस तिथिमें उस दिशामें यात्रा करना ठीक नहीं होता है । ककारादि अक्षरोंसे स्वरका भी सम्बन्ध किया गया है । जैसे पूर्वोक्त स्वरचक्रमें किस स्वरका कौन वर्ण है, वह लिखा गया है; अतः जिस तिथिपर जो वर्ण है, वह जिस स्वरसे सम्बन्ध रखता हो, उस स्वरवाले भी उस दिशामें यात्रा न करें ।

तिथियोंको भद्रा क्रमसे ईशानकोण तथा उत्तर दिशामें, चतुर्दशी तिथिको वायव्य कोणमें, चतुर्थी तिथिको पश्चिम दिशामें, शुक्लपक्षकी अष्टमी तथा एकादशीको दक्षिण दिशामें रहती है। इसका प्रत्येक शुभ कार्योंमें सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

(अब पंद्रह मुहूर्तोंका नाम एवं नामानुकूल कार्योंका वर्णन कर रहे हैं—) रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, सावित्र, विरोचन, जयदेव, अभिजित्, रावण, विजय, नन्दी, वरुण, यम, सौम्य, भव—ये पंद्रह मुहूर्त हैं। 'रौद्र' मुहूर्तमें भयानक कार्य करना चाहिये। 'श्वेत' मुहूर्तमें स्नानादिक कार्य करना चाहिये। 'मैत्र' मुहूर्तमें कन्याका विवाह शुभ होता है। 'सारभट' मुहूर्तमें शुभ कार्य करना चाहिये। 'सावित्र' मुहूर्तमें देवोंका स्थापन, 'विरोचन' मुहूर्तमें राजकीय कार्य, 'जयदेव' मुहूर्तमें विजय-सम्बन्धी कार्य तथा 'रावण' मुहूर्तमें संग्रामका कार्य करना चाहिये। 'विजय' मुहूर्तमें कृषि तथा व्यापार, 'नन्दी' मुहूर्तमें षट्कर्म, 'वरुण' मुहूर्तमें तडागादि और 'यम' मुहूर्तमें विनाशवाला कार्य करना चाहिये। 'सौम्य' मुहूर्तमें सौम्य कार्य करना चाहिये। 'भव' मुहूर्तमें दिन-रात शुभ लग्न ही रहता है, अतः उसमें सभी शुभ कार्य किये जा सकते हैं। इस प्रकार ये पंद्रह योग अपने नामानुसार ही शुभ तथा अशुभ होते हैं* ॥ १५-२० ॥

(अब राहुके दिशा-संचारका वर्णन कर रहे हैं—) (दैनिक राहु) राहु पूर्वदिशासे वायुकोणतक, वायुकोणसे दक्षिण दिशातक, दक्षिण दिशासे ईशानकोणतक, ईशानकोणसे पश्चिमतक, पश्चिमसे अग्निकोणतक एवं अग्निकोणसे उत्तर-तक तीन-तीन दिशा करके चार घटियोंमें भ्रमण करता है ॥ २१-२२ ॥

(अब ओषधियोंके लेपादिद्वारा विजयका वर्णन कर रहे हैं—)चण्डी, इन्द्राणी (सिंधुवार), वाराही (वाराहीकंद), मुशली (तालमूली), गिरिकर्णिका (अपराजिता), बला (कुट), अतिबला, (कघी) क्षीरी (सिरखोला), मल्लिका (मोतिया), जाती (चमेली), यूथिका (जूही), श्वेतार्क (सफेद मदार), शतावरी, गुरुच, वागुरी—इन यथाप्राप्त दिव्य ओषधियोंको धारण करना चाहिये। धारण करनेपर ये युद्धमें विजय-दायिनी होती हैं ॥ २३-२४ ॥

'ॐ नमो भैरवाय खड्गपरशुहस्ताय ॐ ह्रूं विघ्नविनाशाय ॐ ह्रूं फट्।'—इस मन्त्रसे शिखा बाँधकर यदि संग्राम करे तो विजय अवश्य होती है। (अब संग्राममें विजयप्रद) तिलक, अञ्जन, धूप, उपलेप, स्नान, पान, तैल, योगचूर्ण—इन पदार्थोंका वर्णन करता हूँ, सुनो—

सुभगा (नीलदूर्वा), मनःशिला (मैनसिल), ताल (हरताल)- इनको लाक्षारसमें मिलाकर, स्त्रीके दूधमें घोट-कर ललाटमें तिलक करनेसे शत्रु वशमें हो जाता है। विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), सर्पाक्षी (महिषकंद), सहदेवी (सहदेइया), रोचना (गोरोचन)—इनको बकरीके दूधमें पीसकर लगाया हुआ तिलक शत्रुओंको वशमें करने-वाला होता है। प्रियंगु (नागकेसर), कुङ्कुम, कुष्ठ, मोहिनी (चमेली), तगर, घृत—इनको मिलाकर लगाया हुआ तिलक वश्यकारक होता है। रोचना (गोरोचन), रक्तचन्दन, निशा (हल्दी), मनःशिला (मैनसिल), ताल (हरताल), प्रियंगु (नागकेसर), सर्षप (सरसों), मोहिनी (चमेली), हरिता (दूर्वा), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), सहदेवी, शिखा (जटामाँसी)—इनको मातुलुङ्ग (बिजौरा नीबू) के रसमें पीसकर ललाटमें किया हुआ तिलक वशमें करनेवाला होता है। इन तिलकोंसे इन्द्रसहित समस्त देवता वशमें हो जाते हैं, फिर क्षुद्र मनुष्यों-की तो बात ही क्या है। मञ्जिष्ठ, रक्तचन्दन, कटुकन्दा (सहिजन), विलासिनी, पुनर्नवा (गदहपूर्णा)—इनको मिलाकर लेप करनेसे सूर्य भी वशमें हो जाते हैं। मलय-

---

* दिनमानके ३० दण्ड होनेपर दिनमानका १५ वाँ भाग २ दण्डका होगा; अतः उक्त पंद्रह मुहूर्तोंका मान मध्यम मानसे २ दण्डका ही प्रतिदिन माना गया है। इसे ही 'शिवद्विघटिका' मुहूर्त कहते हैं। उदयसे सायंकालतक २ दण्डके मानसे प्रत्येक मुहूर्तका मान होता है। इसमें नामानुकूल शुभ या अशुभ कार्य करना चाहिये। इसी तरह 'मुहूर्तचिन्तामणि'में १५ मुहूर्त विवाह-प्रकरण (५२) में कहे गये हैं, जैसे—

> गिरिशभुजगमित्रापित्र्यवस्वम्बुविश्वे-
> ऽभिजिदथ च विधातापीन्द्र इन्द्राग्नी च ॥
> निर्ऋतिरुदकनाथोऽप्यर्यमाथो भगः स्युः
> क्रमश इह मुहूर्ता वासरे बाणचन्द्राः ।

चन्दन, नागपुष्प (चम्पा), मञ्जिष्ठ, तगर, वच, कोध्र, प्रियंगु (नागकेसर), रजनी (हल्दी) जटामाँसी— इनके सम्मिश्रणसे बना हुआ तैल वशमें करनेवाला होता है ॥ २५—३४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णवसम्बन्धी विविध योगोंका वर्णन' नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२३ ॥

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

युद्धजयार्णवीय ज्यौतिषशास्त्रका सार

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं युद्धजयार्णव-प्रकरणमें ज्योतिषशास्त्रकी सारभूत वेला (समय), मन्त्र और औषध आदि वस्तुओंका उसी प्रकार वर्णन करूँगा, जिस तरह शंकरजीने पार्वतीजीसे कहा था ॥ १ ॥

पार्वतीजीने पूछा—भगवन् ! देवताओंने (देवासुर-संग्राममें) दानवोंपर जिस उपायसे विजय पायी थी, उसका तथा युद्धजयार्णवोक्त शुभाशुभ विवेकादि रूप ज्ञानका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

शंकरजी बोले—मूलदेव (परमात्मा) की इच्छासे पंद्रह अक्षरवाली एक शक्ति पैदा हुई । उसीसे चराचर जीवोंकी सृष्टि हुई । उस शक्तिकी आराधना करनेसे मनुष्य सब प्रकारके अर्थोंका ज्ञाता हो जाता है । अब पाँच मन्त्रोंसे बने हुए मन्त्रपीठका वर्णन करूँगा । वे मन्त्र सभी मन्त्रोंके जीवन-मरणमें अर्थात् 'अस्ति' तथा 'नास्ति' रूप सत्तामें स्थित हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद—इन चारों वेदोंके मन्त्रोंको प्रथम मन्त्र कहते हैं । सद्योजातादि मन्त्र द्वितीय मन्त्र हैं एवं ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—ये तृतीय मन्त्रके स्वरूप हैं । ईश (मैं), सात शिखावाले अग्नि तथा इन्द्रादि देवता—ये चौथे मन्त्रके स्वरूप हैं । अ, इ, उ, ए, ओ—ये पाँचों स्वर पञ्चम मन्त्रके स्वरूप हैं । इन्हीं स्वरोंको मूलब्रह्म भी कहते हैं ॥ ३—६ ॥

(अब पञ्च स्वरोंकी उत्पत्ति कह रहे हैं—) जिस तरह लकड़ीमें व्यापक अग्निकी प्रतीति बिना जलाये नहीं होती है, उसी तरह शरीरमें विद्यमान शिव-शक्तिकी प्रतीति ज्ञानके बिना नहीं होती है । महादेवी पार्वती ! पहले ॐकारस्वरसे विभूषित शक्तिकी उत्पत्ति हुई । तत्पश्चात् बिन्दु 'एकार' रूपमें परिणत हुआ । पुनः ओंकारमें शब्द पैदा हुआ, जिससे 'उकार' का उद्गम हुआ । यह 'उकार' हृदयमें शब्द करता हुआ विद्यमान रहता है । 'अर्धचन्द्र' से मोक्ष-मार्गको बतानेवाले 'इकार'का प्रादुर्भाव हुआ । तदनन्तर भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला अव्यक्त 'अकार' उत्पन्न हुआ । वही 'अकार' सर्वशक्तिमान् एवं प्रवृत्ति तथा निवृत्तिका बोधक है ॥ ७—१० ॥

(अब शरीरमें पाँचों स्वरोंका स्थान कह रहे हैं—) 'अ' स्वर शरीरमें प्राण अर्थात् श्वासरूपसे स्थिर होकर विद्यमान रहता है । इसीका नाम 'इडा' है । 'इकार' प्रतिष्ठा नामसे रहकर स्वरूपमें तथा पालक-स्वरूपमें रहता है । इसे ही 'पिङ्गला' कहते हैं । 'ई' स्वरको 'कूरा शक्ति' कहते हैं । 'हर-बीज' (उकार) स्वर शरीरमें अग्निरूपसे रहता है । यही 'समान-बोधिका विद्या' है । इसे 'गान्धारी' कहते हैं । इसमें 'दहनात्मिका' शक्ति है । 'एकार' स्वर शरीरमें जलरूपसे रहता है । इसमें शान्ति-क्रिया है तथा 'ओंकार' स्वर शरीरमें वायुरूपसे रहता है । यह अपान, व्यान, उदान आदि पाँच स्वरूपोंमें होकर स्पर्श करता हुआ गतिशील रहता है । पाँचों स्वरोंका सम्मिलित सूक्ष्म रूप जो 'ओंकार' है, वह 'शान्त्यतीत' नामसे बोधित होकर शब्द-गुणवाले आकाश-रूपमें रहता है । इस तरह पाँचों स्वर (अ, इ, उ, ए, ओ) हुए, जिनके स्वामी क्रमसे मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि ग्रह हुए । ककारादि वर्ण इन स्वरोंके नीचे होते हैं । ये ही संसारके मूल कारण हैं । इन्हींसे चराचर सब पदार्थोंका ज्ञान होता है ॥ ११—१४½ ॥

अब मैं विद्यापीठका स्वरूप बतलाता हूँ, जिसमें 'ओंकार' शिवरूपसे कहा गया है और 'उमा' स्वयं सोम अर्थात् अमृतरूपसे है । इन्हींको वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री शक्ति भी कहते हैं । ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—क्रमशः ये ही तीनों गुण हैं एवं सृष्टिके उत्पादक, पालक तथा संहारक हैं । शरीरके अंदर तीन रत्न नाड़ियाँ हैं, जिनका नाम स्थूल,

सूक्ष्म तथा पर है। इनका श्वेत वर्ण है। इनसे सदैव अमृत टपकता रहता है, जिससे आत्मा सदैव आप्लावित रहता है। इस प्रकार उसका दिन-रात ध्यान करते रहना चाहिये। देवि ! ऐसे साधकका शरीर अजर हो जाता है तथा उसे शिव-सायुज्यकी प्राप्ति हो जाती है। प्रथमतः अङ्गुष्ठ आदिमें, नेत्रोंमें तथा देहमें भी अङ्गन्यास करे, तत्पश्चात् मृत्युंजयकी अर्चना करके यात्रा करनेवाला संग्राम आदिमें विजयी होता है। आकाश शून्य है, निराधार है तथा शब्द-गुणवाला है। वायुमें स्पर्श गुण है। वह तिरछा झुककर स्पर्श करता है। रूपकी अर्थात् अग्निकी ऊर्ध्वगति बतलायी गयी है तथा जलकी अधोगति होती है। सब स्थानोंको छोड़कर गन्ध-गुणवाली पृथ्वी मध्यमें रहकर सबके आधाररूपमें विद्यमान है॥ १५—२०½ ॥

नाभिके मूलमें अर्थात् मेरुदण्डकी जड़में कंदके स्वरूपमें श्रीशिवजी सुशोभित हैं। वहींपर शक्ति-समुदायके साथ सूर्य, चन्द्रमा तथा भगवान् विष्णु रहते हैं और पञ्चतन्मात्राओंके साथ दस प्रकारके प्राण भी रहते हैं। कालाग्निके समान देदीप्यमान वह शिवजीकी मूर्ति सदैव चमकती रहती है। वही चराचर जीवलोकका प्राण है। उस मन्त्रपीठके नष्ट होनेपर वायुस्वरूप जीवका नाश समझना चाहिये*॥२१-२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णव-सम्बन्धी ज्योतिष शास्त्रका सार-कथन' नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२४॥

एक सौ पचीसवाँ अध्याय

युद्धजयार्णव-सम्बन्धी अनेक प्रकारके चक्रोंका वर्णन

शंकरजीने कहा—'ॐ ह्रीं कर्णमोटनि बहुरूपे बहुदंष्ट्रे हुं फट्, ॐ हः, ॐ ग्रस ग्रस, कृन्त कृन्तच्छक च्छक हुं फट् नमः।' इस मन्त्रका नाम 'कर्णमोटी महाविद्या' है। यह सभी वर्णोंमें रक्षा करनेवाली है। इस मन्त्रको केवल पढ़नेसे ही मनुष्य क्रोधाविष्ट हो जाता है तथा उसके नेत्र लाल हो जाते हैं। यह मन्त्र मारण, पातन, मोहन एवं उच्चाटनमें उपयुक्त होता है॥ १-२॥

अब स्वरोदयके साथ पाँच प्रकारके वायुका स्थान तथा उसका प्रयोजन कहता हूँ। नाभिसे लेकर हृदयतक जो वायुका संचार होता रहता है, उसको 'मारुतचक्र' कहते हैं। जप तथा होम-कार्यमें लगा हुआ क्रोधी साधक उससे संग्रामादि कार्योंमें उच्चाटन-कर्म करता है। कानसे लेकर नेत्रतक जो वायु है, उससे प्रभेदन-कार्य करे एवं हृदयसे गुदामार्गतक जो वायु है, उससे ज्वर-दाह तथा शत्रुओंका मारण-कार्य करना चाहिये। इसी वायुका नाम 'वायुचक्र' है। हृदयसे लेकर कण्ठतक जो वायु है, उसका नाम 'रस' है। इसे ही 'रसचक्र' कहते हैं। उससे शान्तिका प्रयोग किया जाता है तथा पौष्टिक रसके समान उसका गुण है। भौंहसे लेकर नासिकाके अग्रभागतक जो वायु है, उसका नाम 'दिव्य' है। इसे ही 'तेजश्चक्र' कहते हैं। गन्ध इसका गुण है तथा इससे स्तम्भन और आकर्षण-कार्य होता है। नासिकाग्रमें मनको स्थिर करके साधक निस्संदेह स्तम्भन तथा कीलन कर्म करता है। उपर्युक्त वायुचक्रमें चण्डघण्टा, कराली, सुमुखी, दुर्मुखी, रेवती, प्रथमा तथा घोरा—इन शक्तियोंका अर्चन करना चाहिये। उच्चाटन करनेवाली शक्तियाँ तेजश्चक्रमें रहती हैं। सौम्या, भीषणी, देवी, जया, विजया, अजिता, अपराजिता, महाकोटी, महारौद्री, शुष्ककाया, प्राणहरा—ये ग्यारह शक्तियाँ रसचक्रमें रहती हैं॥ ३—९½ ॥

विरूपाक्षी, परा, दिव्या, ११ आकाश-मातृकाएँ, संहारी, जातहारी, दंष्ट्राला, शुष्करेवती, पिपीलिका, पुष्टिहरा, महापुष्टि, प्रवर्धना, भद्रकाली, सुभद्रा, भद्रभीमा, सुभद्रिका, स्थिरा, निष्ठुरा, दिव्या, निष्कम्पा, गदिनी और रेवती—ये बत्तीस मातृकाएँ कहे हुए चारों चक्रों (मारुत, वायु, रस, दिव्य) में आठ-आठके क्रमसे स्थित रहती हैं॥ १०—१२½ ॥

सूर्य तथा चन्द्रमा एक ही हैं तथा उनकी शक्तियाँ भी भूतभेदसे एक-एक ही हैं। जैसे भूतलपर नदीके जलकी स्थानभेदसे 'तीर्थ' संज्ञा हो जाती है, शरीरके अस्थिपञ्जरमें रहनेवाला एक ही प्राण कई मण्डलों (चक्रों) से विभक्त

* यह विषय इस अध्यायके पूर्व अध्यायमें 'स्वरचक्र'के अन्तर्गत आ गया है।

हो जाता है। जैसे वाम तथा दक्षिण अङ्गके योगसे वही वायु दस प्रकारका हो जाता है, वैसे ही वही वायु तत्त्वरूपी वस्त्रमें छिपकर विचित्र बिन्दुरूपी मुण्डके द्वारा कपालरूपी ब्रह्माण्डके अमृतका पान करता है ॥ १३-१५ ॥

अब पञ्चवर्गके बलसे जिस प्रकार युद्धमें विजय होती है, उसे सुनो—'अ, आ, क, च, ट, त, प, य, श'—यह प्रथम वर्ग कहा गया है। 'इ, ई, ख, छ, ठ, थ, फ, र, ष'—यह द्वितीय वर्ग है। 'उ, ऊ, ग, ज, ड, द, ब, ल, स'—यह तृतीय वर्ग है। 'ए, ऐ, घ, झ, ढ, ध, भ, व, ह'—यह चौथा वर्ग है। 'ओ, औ, अं, अः, ङ, ञ, ण, न, म'—यह पञ्चम वर्ग है। ये पैंतालीस अक्षर मनुष्यों-के अभ्युदयके लिये हैं। इन वर्गोंके क्रमसे बाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत्यु—ये पाँच नाम हैं ॥ १६—१९½ ॥

[अब तिथि, वार और नक्षत्रोंके योगसे कालज्ञान-का वर्णन करते हैं—] आत्मपीड, शोषक, उदासीन—ये तीन प्रकारके काल होते हैं। मङ्गलवारको प्रतिपदा तिथि तथा कृत्तिका नक्षत्र हों तो वे प्राणीके लिये लाभदायक होते हैं। मङ्गलवारको षष्ठी तिथि तथा मघा नक्षत्र हों तो पीड़ाकारक होते हैं। मङ्गलवारको एकादशी तिथि और आर्द्रा नक्षत्र हों तो वे मृत्युदायक होते हैं। बुधवार, द्वितीया तिथि तथा मघा नक्षत्रका योग एवं बुधवार, सप्तमी तिथि और आर्द्रा नक्षत्रका योग लाभदायक होते हैं। बुधवार और भरणी नक्षत्रका योग हानिकारक होता है। इसी प्रकार बुधवार तथा श्रवण नक्षत्रके योगमें 'काल-योग' होता है। बृहस्पतिवार, तृतीया तिथि और पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्रका योग लाभकारक होता है। बृहस्पतिवार, अष्टमी तिथि, धनिष्ठा तथा आर्द्रा नक्षत्र एवं गुरुवार, त्रयोदशी तिथि, आश्लेषा नक्षत्र—ये योग मृत्युकारक होते हैं। शुक्रवार, चतुर्थी तिथि और पूर्वभाद्रपदा नक्षत्रका योग श्रीवृद्धि करता है। शुक्रवार, नवमी तिथि और पूर्वा-षाढ़ा नक्षत्र—यह योग दुःखप्रद होता है। शुक्रवार, द्वितीया तिथि और भरणी नक्षत्रका योग यमदण्डके समान हानिकर होता है। शनिवार, पञ्चमी तिथि और कृत्तिका नक्षत्रका योग लाभके लिये कहा गया है। शनिवार, दशमी तिथि और आश्लेषा नक्षत्रका योग पीड़ाकारक होता है। शनिवार, पूर्णिमा तिथि और मघा नक्षत्रका योग मृत्यु-कारक कहा गया है ॥ २०—२६ ॥

[अब दिशा-तिथि-दिनके योगसे हानि-लाभ कहते हैं—] पूर्व, उत्तर, अग्नि, नैर्ऋत्य, दक्षिण, वायव्य, पश्चिम, ऐशान्य—ये इनमेंसे एक दूसरेको देखते हैं। प्रतिपदा तथा नवमी आदि तिथियोंमें मेषादि राशियोंके साथ ही रवि आदि वारको भी मिलाये। यह योग कार्य-सिद्धिके लिये होता है। जैसे पूर्व दिशा, प्रतिपदा तिथि, मेष लग्न, रविवार—यह योग पूर्व दिशाके लिये युद्ध आदि कार्योंमें सिद्धिदायक होता है। ऐसे और भी समझने चाहिये। मेषसे चार राशियाँ अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क एवं कुम्भ—ये लग्न पूर्ण विजयके लिये होते हैं। शेष राशियाँ मृत्युके लिये होती हैं। सूर्यादि ग्रह तथा रिक्ता, पूर्णा आदि तिथियोंका इसी तरह क्रमशः न्यास करना चाहिये, जैसा कि पहले दिशाओंके साथ कहा गया है। सूर्यके सम्बन्धसे युद्धमें कोई उत्तम फल नहीं होता। सोमका सम्बन्ध संधिके लिये होता है। मङ्गलके सम्बन्धसे कलह होता है। बुधके सम्बन्धसे संग्राम करनेसे अभीष्ट-साधनकी प्राप्ति होती है। गुरुके सम्बन्धसे विजयलाभ होता है। शुक्रके सम्बन्धसे अभीष्ट सिद्ध होता है एवं शनिके सम्बन्धसे युद्धमें पराजय होती है ॥ २७—३० ॥

[पिङ्गला (पक्षि)-चक्रसे शुभाशुभ कहते हैं—] एक पक्षीका आकार लिखकर उसके मुख, नेत्र, ललाट, सिर, हस्त, कुक्षि, चरण तथा पंखमें सूर्यके नक्षत्रसे तीन-तीन नक्षत्र लिखे। पैरवाले तीन नक्षत्रोंमें रण करनेसे मृत्यु होती है तथा पंखवाले तीन नक्षत्रोंमें धनका नाश होता है। मुखवाले तीन नक्षत्रोंमें पीड़ा होती है और सिरवाले तीन नक्षत्रोंमें कार्यका नाश होता है। कुक्षिवाले तीन नक्षत्रोंमें रण करनेसे उत्तम फल होता है ॥३१—३२½॥

[अब राहु-चक्र कहते हैं—] पूर्वसे नैर्ऋत्यकोणतक, नैर्ऋत्यकोणसे उत्तर दिशातक, उत्तर दिशासे अग्निकोणतक, अग्निकोणसे पश्चिमतक, पश्चिमसे ईशानतक, ईशानसे दक्षिणतक, दक्षिणसे वायव्यकोणतक, वायव्यकोणसे उत्तरतक चार-चार दण्डतक राहुका भ्रमण होता है। राहुको पृष्ठकी ओर रखकर रण करना विजयप्रद होता है तथा राहुके सम्मुख रहनेसे मृत्यु हो जाती है ॥ ३३-३४½ ॥

प्रिये! मैं तुमसे अब तिथि-राहुका वर्णन करता हूँ। पूर्णिमाके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे अग्निकोणसे लेकर ईशानकोणतक अर्थात् कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथितक राहु पूर्व

दिशामें रहता है। उसमें युद्ध करनेसे जय होती है। इसी तरह ईशानसे अग्निकोणतक और नैर्ऋत्यकोणसे वायव्यकोणतक राहुका भ्रमण होता रहता है। मेषादि राशियोंको पूर्वादि दिशामें रखना चाहिये। इस तरह रखनेपर मेष, सिंह, धनु राशियाँ पूर्वमें; वृष, कन्या, मकर—ये दक्षिणमें; मिथुन, तुला, कुम्भ—ये पश्चिममें; कर्क, वृश्चिक, मीन—ये उत्तरमें हो जाती हैं। सूर्यकी राशिसे सूर्यकी दिशा जानकर सम्मुख सूर्यमें रण करना मृत्युकारक होता है ॥ ३५-३७ ॥

[भद्राकी तिथिका निर्णय बताते हैं—] कृष्णपक्षमें तृतीया, सप्तमी, दशमी तथा चतुर्दशीको 'भद्रा' होती है। शुक्लपक्षमें चतुर्थी, एकादशी, अष्टमी और पूर्णिमाको 'भद्रा' होती है। भद्राका निवास अग्निकोणसे वायव्यकोणतक रहता है। अ, क, च, ट, त, प, य, श—ये आठ वर्ग होते हैं, जिनके स्वामी क्रमसे सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु ग्रह होते हैं। इन ग्रहोंके वाहन क्रमसे गृध्र, उलूक, बाज, पिङ्गल, कौशिक (उल्लू), सारस, मयूर, गोरक्ष नामके पक्षी हैं। पहले हवन करके मन्त्रोंको सिद्ध कर लेना चाहिये। उच्चाटनमें मन्त्रोंका प्रयोग पल्लवरूपसे करना चाहिये ॥ ३८-४०½ ॥

वश्य, ज्वर एवं आकर्षणमें पल्लवका प्रयोग सिद्धिकारक होता है। शान्ति तथा मोहन-प्रयोगोंमें 'नमः' कहना ठीक होता है। पुष्टिमें तथा वशीकरणमें 'वौषट्' एवं मारण तथा प्रीतिविनाशके प्रयोगमें 'हुम्' कहना ठीक होता है। विद्वेषण तथा उच्चाटनमें 'फट्' कहना चाहिये। पुत्रादिप्राप्तिके प्रयोगमें तथा दीप्ति आदिमें 'वषट्' कहना चाहिये। इस तरह मन्त्रोंकी छः जातियाँ होती हैं ॥ ४१-४२½ ॥

अब हर तरहसे रक्षा करनेवाली ओषधियोंका वर्णन करूँगा—महाकाली, चण्डी, वाराही (वाराहीकंद), ईश्वरी, सुदर्शना, इन्द्राणी (सिंधुवार)—इनको शरीरमें धारण करनेसे ये धारककी रक्षा करती हैं। बला (कुट), अतिबला (कंघी), भीरु (शतावरी अथवा कंटकारी), मुसली (तालमूली), सहदेवी, जाती (चमेली), मल्लिका (मोतिया), यूथी (जूही), गारुडी, भृङ्गराज (भटकटैया), चक्ररूपा—ये महौषधियाँ धारण करनेसे युद्धमें विजयदायिनी होती हैं। महादेवि! ग्रहण लगनेपर पूर्वोक्त ओषधियोंका उखाड़ना शुभदायक होता है ॥ ४३-४६ ॥

हाथीकी सर्वाङ्गसम्पन्न मिट्टीकी मूर्ति बनाकर, उसके पैरके नीचे शत्रुके स्वरूपको रखकर, स्तम्भन-प्रयोग करना चाहिये। अथवा किसी पर्वतके ऊपर, जहाँपर एक ही वृक्ष हो, उसके नीचे, अथवा जहाँपर बिजली गिरी हो, उस प्रदेशमें, वल्मीककी मिट्टीसे एक स्त्रीकी प्रतिकृति बनाये। फिर '**ॐ नमो महाभैरवाय विकृतदंष्ट्रोग्ररूपाय पिङ्गलाक्षाय त्रिशूलखड्गधराय वौषट्**।' हे देवि! इस मन्त्रसे उस मृत्तिकामयी देवीकी पूजा करके (शत्रुके) शस्त्रसमूहका स्तम्भन करना चाहिये ॥ ४७-४९½ ॥

अब संग्राममें विजय दिलानेवाले अग्निकार्यका वर्णन करूँगा—रातमें श्मशानमें जाकर नंग-धड़ंग, शिखा खोलकर, दक्षिणमुख बैठकर जलती हुई चितामें मनुष्यका मांस, रुधिर, विष, भूसी और हड्डीके टुकड़े मिलाकर नीचे लिखे मन्त्रसे आठ सौ बार शत्रुका नाम लेकर हवन करे— '**ॐ नमो भगवति कौमारि लल लल लालय लालय घण्टादेवि! अमुकं मारय मारय सहसा नमोऽस्तु ते भगवति विद्ये स्वाहा**।' —इस विद्यासे हवन करनेपर शत्रु अंधा हो जाता है ॥ ५०-५३ ॥

[सब प्रकारकी सफलताके लिये हनुमान्‌जीका मन्त्र कहते हैं—] '**ॐ वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिलपिङ्गल करालवदनोर्ध्वकेश महाबल रक्तमुख तडिज्जिह्व महारौद्र दंष्ट्रोत्कट कटकरालिन् महादृढप्रहार लङ्केश्वरसेतुबन्ध शैलप्रवाह गगनचर, एह्येहि भगवन्महाबलपराक्रम भैरवो ज्ञापयति, एह्येहि महारौद्र दीर्घलाङ्गूलेन अमुकं वेष्टय वेष्टय जम्भय जम्भय खन खन वैते हूं फट्**।' देवि! इस मन्त्रको ३८०० बार जप कर लेनेपर श्रीहनुमान्‌जी सब प्रकारके कार्योंको सिद्ध कर देते हैं। कपड़ेपर हनुमान्‌जीकी मूर्ति लिखकर दिखानेसे शत्रुओंका विनाश होता है ॥ ५४-५५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णव-सम्बन्धी विविध चक्रोंका वर्णन' नामक एक सौ पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२५ ॥

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय

नक्षत्र-सम्बन्धी पिण्डका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—देवि ! अब मैं प्राणियोंके शुभाशुभ फलकी जानकारीके लिये नाक्षत्रिक पिण्डका वर्णन करूँगा। [जिस राजा या मनुष्यके लिये शुभाशुभ फलका ज्ञान करना हो, उसकी प्रतिकृतिरूपसे एक मनुष्यका आकार बनाकर] सूर्य जिस नक्षत्रमें हों, उससे तीन नक्षत्र उसके मस्तकमें, एक मुखमें, दो नेत्रोंमें, चार हाथ और पैरमें, पाँच हृदयमें और पाँच जानुमें लिखकर आयु-वृद्धिका विचार करना चाहिये। सिरवाले नक्षत्रोंमें संग्राम (कार्य) करनेसे राज्यकी प्राप्ति होती है। मुखवाले नक्षत्रमें सुख, नेत्रवाले नक्षत्रोंमें सुन्दर सौभाग्य, हृदयवाले नक्षत्रोंमें द्रव्यसंग्रह, हाथवाले नक्षत्रोंमें चोरी और पैरवाले नक्षत्रोंमें मार्गमें ही मृत्यु—इस तरह क्रमशः फल होते हैं॥१–३½॥

[अब 'कुम्भ-चक्र' कह रहे हैं–] आठ कुम्भको पूर्वादि आठ दिशाओंमें स्थापित करना चाहिये। प्रत्येक कुम्भमें तीन-तीन नक्षत्रोंकी स्थापना करनेपर आठ कुम्भोंमें चौबीस नक्षत्रोंका निवेश हो जानेपर चार नक्षत्र शेष रह जायँगे। इन्हें ही 'सूर्य-कुम्भ' कहते हैं। यह सूर्यकुम्भ अशुभ होता है। शेष पूर्वादि दिशाओंवाले कुम्भ-सम्बन्धी नक्षत्र शुभ होते हैं। [इसका उपयोग नाम-नक्षत्रसे दैनिक नक्षत्रतक गिनकर उसी संख्यासे करना चाहिये।] ॥ ४½ ॥

अब मैं संग्राममें जय-पराजयका विवेक प्रदान करनेवाले सर्पाकार राहु-चक्रका वर्णन करता हूँ।

प्रथम अट्ठाईस बिन्दुओंको लिखे, उसमें तीन-तीनका विभाग कर दे, इस तरह आठ विभाग कर देनेपर चौबीस नक्षत्रोंका निवेश हो जायगा। चार शेष रह जायँगे। उसपर रेखा करे। इस तरह करनेपर 'सर्पाकार चक्र' बन जायगा। जिस नक्षत्रमें राहु रहे, उसको सर्पके फणमें लिखे। उसके बाद उसी नक्षत्रसे प्रारम्भ करके क्रमशः सत्ताईस नक्षत्रोंका निवेश करे॥ ५–७॥

[सर्पाकार राहु-चक्रका फल—] मुखवाले सात नक्षत्रोंमें संग्राम करनेसे मरण होता है, स्कन्धवाले सात नक्षत्रोंमें युद्ध करनेसे पराजय होती है, पेटवाले सात नक्षत्रोंमें युद्ध करनेसे सम्मान तथा विजयकी प्राप्ति होती है, कटिवाले नक्षत्रोंमें संग्राम करनेसे शत्रुओंका हरण होता है, पुच्छवाले नक्षत्रोंमें संग्राम करनेसे कीर्ति होती है और राहुसे दृष्ट नक्षत्रमें संग्राम करनेसे मृत्यु होती है। इसके बाद फिर सूर्यसे राहुतक ग्रहोंके बलका वर्णन करूँगा॥ ८–१०॥

[अर्धयामेशका वर्णन करते हैं—] जैसे चार प्रहरका एक दिन होता है तो एक दिनमें आठ अर्धप्रहर होंगे। यदि दिनमान बत्तीस दण्डका हो तो एक अर्ध प्रहरका मान चार दण्डका होगा। दिनमान-प्रमाणमें आठसे भाग देनेपर जो लब्धि होगी, वही एक अर्धप्रहरका मान होता है। रवि आदि सात वारोंमें प्रत्येक अर्धप्रहरका कौन ग्रह स्वामी होगा—इसपर विचार करते हुए केवल रविवारके दिन प्रत्येक अर्धप्रहरके स्वामियोंको बता रहे हैं। जैसे रविवारमें एकसे लेकर आठ अर्धप्रहरोंके स्वामी क्रमशः सूर्य, शुक्र, बुध, सोम, शनि, गुरु, मङ्गल और राहु ग्रह होते हैं। [इनमें जिस विभागका स्वामी शनि होता है, वह समय शुभ कार्योंमें त्याज्य है और उसे ही 'वारवेला' कहते हैं।]

[विशेष–रविवारके अर्धयामेशोंको देखनेसे यह अनुमान होता है कि रविवारके अतिरिक्त जिस दिनका अर्धयामेश

जानना हो तो प्रथम अर्धयामेश तो दिनपति ही होगा और बादके अर्धयामोंके स्वामी छः संख्यावाले ग्रह होंगे। इसी आधारपर रविवारसे लेकर शनिवारतकके अर्धयामोंके स्वामी नीचे चक्रमें दिये जा रहे हैं *—

वार	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०
४ दण्ड	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०
४ दण्ड	शु०	श०	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०
४ दण्ड	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०	चं०	मं०
४ दण्ड	सो०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०
४ दण्ड	श०	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०
४ दण्ड	बृ०	शु०	श०	सू०	चं०	मं०	बु०
४ दण्ड	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०	चं०
४ दण्ड	रा०	रा०	रा०	रा०	रा०	रा०	रा०

शनि, सूर्य तथा राहुको यत्नसे पीठ पीछे करके जो संग्राम करता है, वह सैन्यसमुदायपर विजय प्राप्त करता है तथा जुआ, मार्ग और युद्धमें सफल होता है ॥ ११-१२ ॥

[नक्षत्रोंकी स्थिरादि संज्ञा तथा उसका प्रयोजन कहते हैं—] रोहिणी, तीनों उत्तराएँ, मृगशिरा—इन पाँच नक्षत्रोंकी 'स्थिर' संज्ञा है। अश्विनी, रेवती, स्वाती, धनिष्ठा, शतभिषा—इन पाँचों नक्षत्रोंकी 'क्षिप्र' संज्ञा है। इनमें यात्रार्थीको यात्रा करनी चाहिये। अनुराधा, हस्त, मूल, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु—इनमें प्रत्येक कार्य हो सकता है। ज्येष्ठा, चित्रा, विशाखा, तीनों पूर्वाएँ, कृत्तिका, भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा—इनकी 'दारुण' संज्ञा है। स्थिर कार्योंमें स्थिर संज्ञावाले नक्षत्रोंको लेना चाहिये। यात्रामें 'क्षिप्र' संज्ञक नक्षत्र उत्तम माने गये हैं। 'मृदु' संज्ञक नक्षत्रोंमें सौभाग्यका काम तथा 'उग्र' संज्ञक नक्षत्रोंमें उग्र काम करना चाहिये। 'दारुण' संज्ञक नक्षत्र दारुण (भयानक) कामके लिये उपयुक्त होते हैं ॥१३-१६½ ॥

[अब अधोमुख, तिर्यङ्मुख आदि नक्षत्रोंका नाम तथा प्रयोजन कहता हूँ—] कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा, विशाखा, मघा, मूल, तीनों पूर्वाएँ—ये अधोमुख नक्षत्र हैं। इनमें अधोमुख कर्म करना चाहिये। उदाहरणार्थ कूप, तड़ाग, विद्याकर्म, चिकित्सा, स्थापन, नौका-निर्माण, कूपोंका विधान, गड्ढा खोदना आदि कार्य इन्हीं अधोमुख नक्षत्रोंमें करना चाहिये। रेवती, अश्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, ज्येष्ठा—ये नौ नक्षत्र तिर्यङ्मुख हैं। इनमें राज्याभिषेक, हाथी तथा घोड़ेको पट्टा बाँधना, बाग लगाना, गृह तथा प्रासादका निर्माण, प्राकार बनाना, क्षेत्र, तोरण, ध्वजा, पताका लगाना—इन सभी कार्योंको करना चाहिये। रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मङ्गलवारको दशमी, बुधवारको तृतीया, बृहस्पतिवारको षष्ठी, शुक्रवारको द्वितीया, शनिवारको सप्तमी हो तो 'दग्धयोग' होता है ॥ १७-२३ ॥

[अब त्रिपुष्कर योग बतलाते हैं—] द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी—तीन तिथियाँ तथा रवि, मङ्गल, शनि—तीन वार—ये छः 'त्रिपुष्कर' हैं तथा विशाखा, कृत्तिका, दोनों उत्तराएँ, पुनर्वसु, पूर्वाभाद्रपदा—ये छः नक्षत्र भी 'त्रिपुष्कर' हैं। अर्थात् रवि, शनि, मङ्गलवारोंमें द्वितीया, सप्तमी, द्वादशीमेंसे कोई तिथि हो तथा उपर्युक्त नक्षत्रोंमेंसे कोई नक्षत्र हो तो 'त्रिपुष्कर-योग' होता है। त्रिपुष्कर योगमें लाभ, हानि, विजय, वृद्धि, पुत्रजन्म, वस्तुओंका नष्ट एवं विनष्ट होना—ये सब त्रिगुणित हो जाते हैं ॥ २४-२६ ॥

* प्रत्येक दिनकी अर्धयामेश-संख्या आठ है तथा दिनपति रविसे लेकर शनितक सात ही हैं। अतः आठवें अर्धयामको ग्रन्थान्तरोंमें 'निरीश' माना गया है। जैसे—

रविवारादिशन्यन्त गुलिकादि निरूप्यते ।
अष्टमांशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः ॥

किंतु यहाँ अग्निपुराणमें प्रतिदिन राहुको अष्टमांशका स्वामी मान रहे हैं—यह विशेष बात है ।

[अब नक्षत्रोंकी स्वक्ष, मध्याक्ष, मन्दाक्ष और अन्धाक्ष संज्ञा तथा प्रयोजन कहते हैं—] अश्विनी, भरणी, आश्लेषा, पुष्य, स्वाती, विशाखा, श्रवण, पुनर्वसु—ये दस नेत्रवाले नक्षत्र हैं और दसों दिशाओंको देखते हैं। (इनकी संज्ञा 'स्वक्ष' है।) इनमें गयी हुई वस्तु तथा यात्रामें गया हुआ व्यक्ति विशेष पुण्यके उदय होनेपर ही लौटते हैं। दोनों आषाढ़ नक्षत्र, रेवती, चित्रा, पुनर्वसु—ये पाँच नक्षत्र 'केकर' हैं, अर्थात् 'मध्याक्ष' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु विलम्बसे मिलती है। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, मघा, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा-भाद्रपदा—ये नक्षत्र 'चिपिटाक्ष' अर्थात् 'मन्दाक्ष' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु तथा मार्ग चलनेवाला व्यक्ति कुछ ही विलम्बमें लौट आता है। हस्त, उत्तराभाद्रपदा, आर्द्रा, पूर्वाषाढा—ये नक्षत्र 'अन्धाक्ष' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु शीघ्र मिल जाती है, कोई संग्राम नहीं करना पड़ता ॥ २७-३२ ॥

अब नक्षत्रोंमें स्थित 'गण्डान्त'का निरूपण करता हूँ—रेवतीके अन्तके चार दण्ड और अश्विनीके आदिके चार दण्ड 'गण्डान्त' होते हैं। इन दोनों नक्षत्रोंका एक प्रहर शुभ कार्योंमें प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये। आश्लेषाके अन्तका तथा मघाके आदिके चार दण्ड 'द्वितीय गण्डान्त' कहे गये हैं। भैरवि! अब 'तृतीय गण्डान्त'को सुनो—ज्येष्ठा तथा मूलके बीचका एक प्रहर बहुत ही भयानक होता है। यदि व्यक्ति अपना जीवन चाहता हो तो उसे इस कालमें कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिये। इस समयमें यदि बालक पैदा हो तो उसके माता-पिता जीवित नहीं रहते ॥ ३३-३६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नक्षत्रोंके निर्णयका प्रतिपादन' नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२६ ॥

एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय

विभिन्न बलोंका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—'विष्कुम्भ योग'की तीन घड़ियाँ, 'शूल योग'की पाँच 'गण्ड' तथा 'अतिगण्ड योग'की छः, 'व्याघात' तथा 'वज्र योग'की नौ घड़ियोंको सभी शुभ कार्योंमें त्याग देना चाहिये। 'परिघ', 'व्यतीपात' और 'वैधृति' योगोंमें पूरा दिन त्याज्य बतलाया गया है। इन योगोंमें यात्रा-युद्धादि कार्य नहीं करने चाहिये ॥ १-२ ॥

देवि! अब मैं मेषादि राशि तथा ग्रहोंके द्वारा शुभाशुभका निर्णय बताता हूँ—जन्म-राशिके चन्द्रमा तथा शुक्र वर्जित होनेपर ही शुभदायक होते हैं। जन्म-राशि तथा लग्नसे दूसरे स्थानमें सूर्य, शनि, राहु अथवा मङ्गल हो तो प्राप्त द्रव्यका नाश और अप्राप्तका अलाभ होता है तथा युद्धमें पराजय होती है। चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र—ये दूसरे स्थानमें शुभप्रद होते हैं। सूर्य, शनि, मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, राहु—ये तीसरे घरमें हों तो शुभ फल देते हैं। बुध, शुक्र चौथे भावमें हों तो शुभ तथा शेष ग्रह भयदायक होते हैं। बृहस्पति, शुक्र, बुध, चन्द्रमा—ये पञ्चम भावमें हों तो अभीष्ट लाभकी प्राप्ति कराते हैं। देवि! अपनी राशिसे छठे भावमें सूर्य, चन्द्र, शनि, मङ्गल, बुध—ये ग्रह शुभ फल देते हैं; किंतु छठे भावका शुक्र तथा गुरु शुभ नहीं होता। सप्तम भावके सूर्य, शनि, मङ्गल, राहु हानिकारक होते हैं तथा बुध, गुरु, शुक्र सुखदायक होते हैं। अष्टम भावके बुध और शुक्र—शुभ तथा शेष ग्रह हानिकर होते हैं। नवम भावके बुध, शुक्र शुभ तथा शेष ग्रह अशुभ होते हैं। दशम भावके शुक्र, सूर्य लाभकर होते हैं तथा शनि, मङ्गल, राहु, चन्द्रमा-बुध शुभकारक होते हैं। ग्यारहवें भावमें प्रत्येक ग्रह शुभ फल देता है, परंतु दसवें बृहस्पति त्याज्य है। द्वादश भावमें बुध-शुक्र शुभ तथा शेष ग्रह अशुभ होते हैं। एक दिन-रातमें द्वादश राशियाँ भोग करती हैं। अब मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ ॥ ३-१२ ॥

[राशियोंका भोगकाल एवं चरादि संज्ञा तथा प्रयोजन कह रहे हैं—] मीन, मेष, मिथुन—इनमें प्रत्येकके चार दण्ड; वृष, कर्क, सिंह, कन्या—इनमें प्रत्येकके छः दण्ड; तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ—इनमें प्रत्येकके पाँच दण्ड भोगकाल हैं। सूर्य जिस राशिमें रहते हैं, उसीका उदय होता है और उसी राशिसे अन्य राशियोंका भोगकाल प्रारम्भ होता है। मेषादि राशियोंकी क्रमशः 'चर', 'स्थिर' और 'द्विस्वभाव' संज्ञा होती है। जैसे—मेष, कर्क, तुला, मकर—इन राशियोंकी 'चर' संज्ञा है। इनमें शुभ तथा अशुभ अस्थायी कार्य करने चाहिये। वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ—इन

राशियोंकी 'स्थिर' संज्ञा है। इनमें स्थायी कार्य करना चाहिये। इन लग्नोंमें बाहर गये हुए व्यक्तिसे शीघ्र समागम नहीं होता तथा रोगीको शीघ्र रोगसे मुक्ति नहीं प्राप्त होती। मिथुन, कन्या, धनु, मीन—इन राशियोंकी 'द्विस्वभाव' संज्ञा है। ये द्विस्वभावसंज्ञक राशियाँ प्रत्येक कार्यमें शुभ फल देनेवाली हैं। इनमें यात्रा, व्यापार, संग्राम, विवाह, एवं राजदर्शन होनेपर वृद्धि, जय तथा लाभ होते हैं और युद्धमें विजय होती है। अश्विनी नक्षत्रकी बीस ताराएँ हैं और घोड़ेके समान उसका आकार है। यदि इसमें वर्षा हो तो एक राततक घनघोर वर्षा होती है। यदि भरणीमें वर्षा आरम्भ हो तो पंद्रह दिनतक लगातार वर्षा होती रहती है॥ १३—१९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न बलोंका वर्णन' नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२७ ॥

एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

कोटचक्रका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—अब मैं 'कोटचक्र'का वर्णन करता हूँ—पहले चतुर्भुज लिखे, उसके भीतर दूसरा चतुर्भुज, उसके भीतर तीसरा चतुर्भुज और उसके भीतर चौथा चतुर्भुज लिखे। इस तरह लिख देनेपर 'कोटचक्र' बन जाता है। कोटचक्रके भीतर तीन मेखलाएँ बनती हैं, जिनका नाम क्रमसे 'प्रथम नाड़ी', 'मध्यनाड़ी' और 'अन्तनाड़ी' है। कोटचक्रके ऊपर पूर्वादि दिशाओंको लिखकर मेषादि राशियोंको भी लिख देना चाहिये। [कोटचक्रमें नक्षत्रोंका न्यास कहते हैं—] पूर्व भागमें कृत्तिका, अग्निकोणमें आश्लेषा, दक्षिणमें मघा, नैर्ऋत्यमें विशाखा, पश्चिममें अनुराधा, वायुकोणमें श्रवण, उत्तरमें धनिष्ठा, ईशानमें भरणीको लिखे। इस तरह लिख देनेपर बाह्य नाड़ीमें अर्थात् प्रथम नाड़ीमें आठ नक्षत्र हो जायँगे। इसी तरह पूर्वादि दिशाओंके अनुसार रोहिणी, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाती, ज्येष्ठा, अभिजित्, शतभिषा, अश्विनी—ये आठ नक्षत्र मध्यनाड़ीमें हो जाते हैं। कोटके भीतर जो अन्तनाड़ी है, उसमें भी पूर्वादि दिशाओंके अनुसार पूर्वमें मृगशिरा, अग्निकोणमें पुनर्वसु, दक्षिणमें उत्तराफाल्गुनी, नैर्ऋत्यमें चित्रा, पश्चिममें मूल, वायव्यमें उत्तराषाढ़ा, उत्तरमें पूर्वाभाद्रपदा और ईशानमें रेवतीको लिखे। इस तरह लिख देनेपर अन्तनाड़ीमें भी आठ नक्षत्र हो जाते हैं। आर्द्रा, हस्त, पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराभाद्रपदा—ये चार नक्षत्र कोटचक्रके मध्यमें स्तम्भ होते हैं।* इस तरह चक्रको लिख देनेपर बाहरका स्थान दिशाके स्वामियोंका होता है†। आगन्तुक योद्धा जिस दिशामें जो नक्षत्र है, उसी नक्षत्रमें उसी दिशासे कोटमें यदि प्रवेश करता है तो उसकी विजय होती है। कोटके बीचमें जो नक्षत्र हैं, उन नक्षत्रोंमें जब शुभ ग्रह आये, तब युद्ध करनेसे मध्यवालेकी विजय तथा चढ़ाई करनेवालेकी पराजय होती है। प्रवेश करनेवाले नक्षत्रमें प्रवेश करना तथा निर्गमवाले नक्षत्रमें निकलना चाहिये। शुक्र, मङ्गल और बुध—ये जब नक्षत्रके अन्तमें रहें, तब यदि

---

* आर्द्रा हस्तस्तथाषाढा पूर्वमुत्तरभाद्रकम्।
मध्ये स्तम्भचतुष्कं तु दद्यात् कोटस्य कोटरे ॥
(अग्निपु० १२८ । ९)

ग्रन्थान्तरमें भी ऐसा ही वर्णन है।

'नृपतिजयचर्या' नामक ग्रन्थमें समचतुरस्र कोटचक्रके प्रकरणमें २३वें श्लोकमें स्तम्भ-चतुष्टयका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

पूर्वे रौद्रं यमे हस्तं पूर्वाषाढा च वारुणे।
उत्तरे चोत्तराभद्रा—एतत् स्तम्भचतुष्टयम् ॥

† दिशाओंके स्वामीके लिये रामाचार्य 'मुहूर्त-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थके यात्रा-प्रकरणमें लिखते हैं—

सूर्यः सितो भूमिसुतोऽथ राहुः शनिः शशी ज्ञश्च बृहस्पतिश्च ।
प्राच्यादितो दिक्षु विदिक्षु चापि दिशामधीशाः क्रमतः प्रदिष्टाः ॥
(११ । ४७)

'पूर्वके सूर्य, अग्निकोणके शुक्र, दक्षिणके मङ्गल, नैर्ऋत्यके राहु,

युद्ध आरम्भ किया जाय तो आक्रमणकारीकी पराजय होती है। प्रवेशवाले चार नक्षत्रोंमें यदि युद्ध छेड़ा जाय तो वह दुर्ग वशमें हो जाता है—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ १–११ ॥ [विशेष—प्रथम नाड़ीके आठ नक्षत्र दिशाके नक्षत्र हैं, उन्हींको 'बाह्य' भी कहते हैं। मध्य तथा अन्त नाड़ीवाले नक्षत्रोंको कोटके मध्यका समझना चाहिये।]

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कोटचक्रका वर्णन' नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२८ ॥

पश्चिमके शनि, वायव्यके चन्द्र, उत्तरके बुध, ईशानके बृहस्पति—इस प्रकार क्रमशः दिशाओंके स्वामी कहे गये हैं।

कोटचक्रम्

पूर्व
मे. वृ. मि.

ईशान — आग्नि
भरणी — कृत्तिका — आश्लेषा
अश्विनी — रोहि. — पुष्य
रेवती — मृग. — पुन.
उत्तर म. कुं. मी. — धनिष्ठा — शतभिषा — पू. भा. — उ. भा. — आर्द्रा पू. षा. — हस्त — उ.फा. — पूर्वाफा. — मघा — दक्षिण क. सिं. क.
उ. षा. — मूल — चित्रा
अभि. — ज्येष्ठा — स्वाती
श्रवण — अनुराधा — विशाखा
वायु — नैर्ऋति
तु. वृ. ध.
पश्चिम
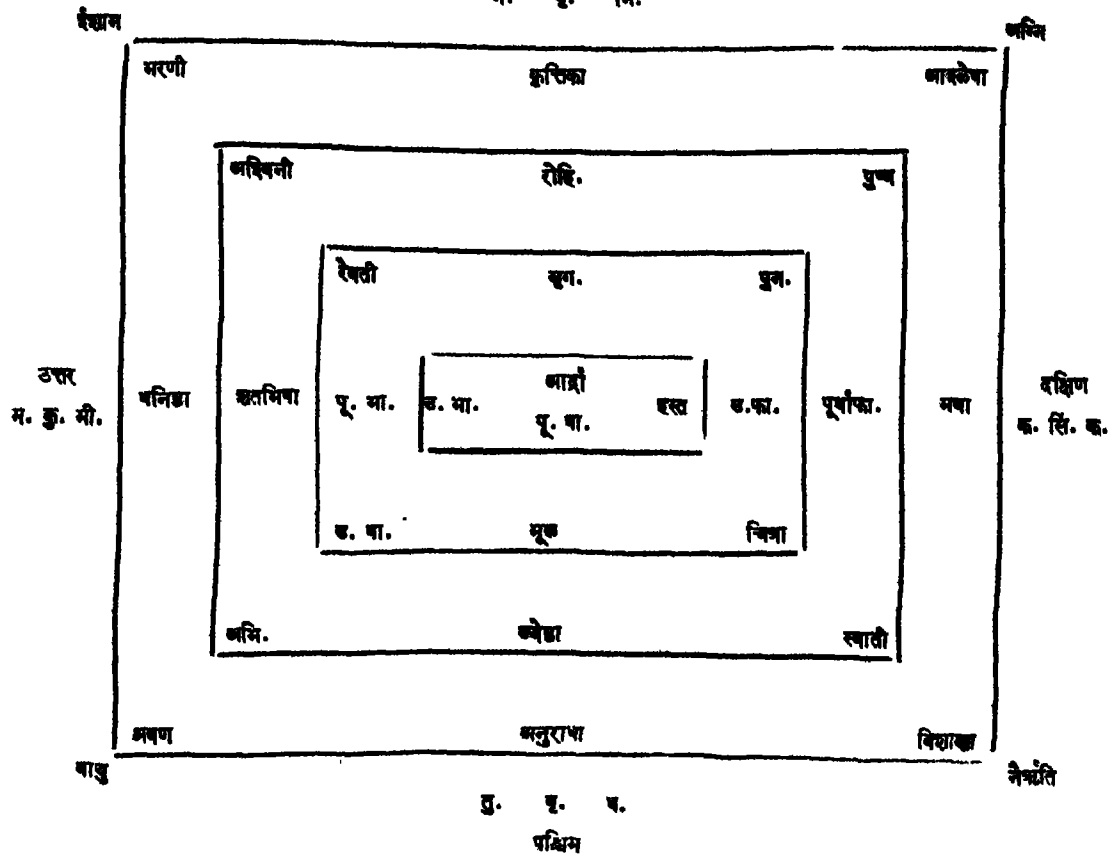
विशेष—भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, विशाखा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा—ये आठ नक्षत्र बाह्य (प्रथम नाड़ी) हैं। अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, पू० फा०, स्वाती, ज्येष्ठा, अभि०, शतभिषा—ये मध्यनाड़ीके आठ नक्षत्र हैं। रेवती, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, मूल, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा—ये आठ नक्षत्र अन्तनाड़ीके हैं। मध्य तथा अन्तनाड़ीके नक्षत्रोंको 'मध्यके नक्षत्र' कहते हैं। दिशाके नक्षत्रको 'प्रवेशर्क्ष' कहते हैं। उसके विरुद्ध दिशाके नक्षत्रको 'निर्गम' कहते हैं। जैसे पूर्व प्रवेश तो पश्चिम निर्गम होगा।

एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय

अर्घकाण्डका प्रतिपादन

शंकरजी कहते हैं—अब मैं वस्तुओंकी मँहगी तथा सस्तीके सम्बन्धमें विचार प्रकट कर रहा हूँ। जब कभी भूतलपर उल्कापात, भूकम्प, निर्घात (वज्रापात), चन्द्र और सूर्यके ग्रहण तथा दिशाओंमें अधिक गरमीका अनुभव हो तो इस बातका प्रत्येक मासमें लक्ष्य करना चाहिये। यदि उपर्युक्त लक्षणोंमेंसे कोई लक्षण चैत्रमें हो तो अलंकार-सामग्रियों (सोना-चाँदी आदि) का संग्रह करना चाहिये। वह छः मासके बाद चौगुने मूल्यपर बिक सकता है। यदि वैशाखमें हो तो वस्त्र, धान्य, सुवर्ण, घृतादि सब पदार्थोंका संग्रह करना चाहिये। वे आठवें मासमें छःगुने मूल्यपर बिकते हैं। यदि ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मासमें मिले तो जौ, गेहूँ और धान्यका संग्रह करना चाहिये। यदि श्रावणमें मिले तो घृत-तैलादि रस-पदार्थोंका संग्रह करना चाहिये। यदि आश्विनमें मिले तो वस्त्र तथा धान्य दोनोंका संग्रह करना चाहिये। यदि कार्तिकमें मिले तो सब प्रकारका अन्न खरीदकर रखना चाहिये। अगहन तथा पौषमें यदि मिले तो कुङ्कुम तथा सुगन्धित पदार्थोंसे लाभ होता है। माघमें यदि उक्त लक्षण मिले तो धान्यसे लाभ होता है। फाल्गुनमें मिले तो सुगन्धित पदार्थोंसे लाभ होता है। लाभकी अवधि छः या आठ मास समझनी चाहिये ॥ १-५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अर्घकाण्डका प्रतिपादन' नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१२९॥

एक सौ तीसवाँ अध्याय

विविध मण्डलोंका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—भद्रे! अब मैं विजयके लिये चार प्रकारके मण्डलका वर्णन करता हूँ। कृत्तिका, मघा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, भरणी, पूर्वाभाद्रपदा—इन नक्षत्रोंका 'आग्नेय मण्डल' होता है, उसका लक्षण बतलाता हूँ। इस मण्डलमें यदि विशेष वायुका प्रकोप हो, सूर्य-चन्द्रका परिवेष लगे, भूकम्प हो, देशकी क्षति हो, चन्द्र-सूर्यका ग्रहण हो, धूमज्वाला देखनेमें आये, दिशाओंमें दाहका अनुभव होता हो, केतु अर्थात् पुच्छल तारा दिखायी पड़ता हो, रक्तवृष्टि हो, अधिक गर्मीका अनुभव हो, पत्थर पड़ें, तो जनतामें नेत्रका रोग, अतिसार (हैजा) और अग्निभय होता है। गायें दूध कम कर देती हैं। वृक्षोंमें फल-पुष्प कम लगते हैं। उपज कम होती है। वर्षा भी स्वल्प होती है। चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) दुःखी रहते हैं। सारे मनुष्य भूखसे व्याकुल रहते हैं। ऐसे उत्पातोंके दीख पड़नेपर सिन्धु-यमुनाकी तलहटी, गुजरात, भोज, बाह्लीक, जालन्धर, काश्मीर और सातवाँ उत्तरापथ—ये देश विनष्ट हो जाते हैं। हस्त, चित्रा, मघा, स्वाती, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, अश्विनी—इन नक्षत्रोंका 'वायव्य मण्डल' कहा जाता है। इसमें यदि पूर्वोक्त उत्पात हों तो विक्षिप्त होकर हाहाकार करती हुई सारी प्रजाएँ नष्टप्राय हो जाती हैं। साथ ही डाहल (त्रिपुर), कामरूप, कलिङ्ग, कोशल, अयोध्या, उज्जैन, कोङ्कण तथा आन्ध्र—ये देश नष्ट हो जाते हैं। आश्लेषा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, रेवती, शतभिषा तथा उत्तराभाद्रपदा—इन नक्षत्रोंको 'वारुण मण्डल' कहते हैं। इसमें यदि पूर्वोक्त उत्पात हों तो गायोंमें दूध-घीकी वृद्धि और वृक्षोंमें पुष्प तथा फल अधिक लगते हैं। प्रजा आरोग्य रहती है। पृथ्वी धान्यसे परिपूर्ण हो जाती है। अन्नोंका भाव सस्ता तथा देशमें सुकालका प्रसार हो जाता है, किंतु राजाओंमें परस्पर घोर संग्राम होता रहता है ॥ १-१४ ॥

ज्येष्ठा, रोहिणी, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, सातवाँ अभिजित्—इन नक्षत्रोंका नाम 'माहेन्द्र मण्डल' है। इसमें यदि पूर्वोक्त उत्पात हों तो प्रजा प्रसन्न रहती है, किसी प्रकारके रोगका भय नहीं रह जाता। राजा लोग आपसमें संधि कर लेते हैं और राजाओंके लिये हितकारक सुभिक्ष होता है ॥ १५-१६½ ॥

'ग्राम' दो प्रकारका होता है—पहलेका नाम

'मुखग्राम' है और दूसरेका नाम 'पुच्छग्राम' है। चन्द्र, राहु तथा सूर्य जब एक राशिमें हो जाते हैं, तब उसे 'मुखग्राम' कहते हैं। राहुसे सातवें स्थानको 'पुच्छग्राम' कहते हैं। सूर्यके नक्षत्रसे पंद्रहवें नक्षत्रमें जब चन्द्रमा आता है, उस समय तिथि-साधनके अनुसार 'सोमग्राम' होता है अर्थात् पूर्णिमा तिथि होती है* ॥ १७—२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विविध मण्डलोंका वर्णन' नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३० ॥

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय

वातचक्र आदिका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिण-क्रमसे अकारादि स्वरोंको लिखे। उसमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पूर्णिमा, त्रयोदशी, चतुर्दशी, केवल शुक्लपक्षकी एक अष्टमी (कृष्णपक्षकी अष्टमी नहीं), सप्तमी, कृष्णपक्षमें प्रतिपदासे लेकर त्रयोदशीतक (अष्टमीको छोड़कर) द्वादश तिथियोंका न्यास करे। इस चैत्र-चक्रमें पूर्वादि दिशाओंमें स्पर्श-वर्णोंको लिखनेसे जय-पराजयका तथा लाभका निर्णय होता है। विषम दिशा, विषम स्वर तथा विषम वर्णमें शुभ होता है और सम दिशा आदिमें अशुभ होता है ॥ १—३ ॥

इस चक्रमें शुक्ल पक्षकी १ । ७ । ८ । १३ । १४ । १५ ये तिथियाँ ली गयी हैं। कृष्ण पक्षमें अष्टमी छोड़कर १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ ये तिथियाँ ली गयी हैं।

[अब युद्धमें जय-पराजयका लक्षण बतलाते हैं—] युद्धारम्भके समय सेनापति पहले जिसका नाम लेकर बुलाता है, उस व्यक्तिके नामका आदि-अक्षर यदि 'दीर्घ' हो तो उसकी घोर संग्राममें भी विजय होती है। यदि नामका आदि-वर्ण 'ह्रस्व' हो तो निश्चय ही मृत्यु होती है। जैसे—एक सैनिकका नाम 'आदित्य' और दूसरेका नाम है—'गुरु'। इन दोनोंमें प्रथमके नामके आदिमें 'आ' दीर्घ स्वर है और दूसरेके नामके आदिमें 'उ' ह्रस्व स्वर है; अतः यदि दीर्घ स्वरवाले व्यक्तिको बुलाया जायगा तो विजय और ह्रस्ववालेको बुलानेपर हार तथा मृत्यु होगी ॥ ४—७ ॥

[अब 'नर-चक्र'के द्वारा घाताङ्गका निर्णय करते हैं—] नक्षत्र-पिण्डके आधारपर नर-चक्रका वर्णन करता हूँ।

* सूर्यके साथ चन्द्रमा जब रहेगा, तब अमावास्या तिथि होगी। सूर्यके नक्षत्रसे पंद्रहवें नक्षत्रमें चन्द्रमा आयेगा तो सूर्यसे सातवीं राशिमें चन्द्रमा रहेगा; क्योंकि सवा दो नक्षत्रकी एक राशि होती है। जब सूर्यसे सातवीं राशिमें चन्द्रमा रहता है, तब पूर्णिमा ही तिथि होती है। उसे ही 'सोमग्राम' कहते हैं।

पहले एक मनुष्यका आकार बनावे । तत्पश्चात् उसमें नक्षत्रोंका न्यास करे । सूर्यके नक्षत्रसे नामके नक्षत्रतक गिनकर संख्या जान ले । पहले तीनको नरके सिरमें, एक मुखमें, दो नेत्रमें, चार हाथमें, दो कानमें, पाँच हृदयमें और छः पैरोंमें लिखे । फिर नाम-नक्षत्रका स्पष्ट रूपसे चक्रके मध्यमें न्यास करे । इस तरह लिखनेपर नरके नेत्र, सिर, दाहिना कान, दाहिना हाथ, दोनों पैर, हृदय, ग्रीवा, बायाँ हाथ और गुह्याङ्गमेंसे जहाँ शनि, मङ्गल, सूर्य तथा राहुके नक्षत्र पड़ते हों, युद्धमें उसी अङ्गमें घात (चोट) होता है]॥ ८–१२ ॥

नर चक्र
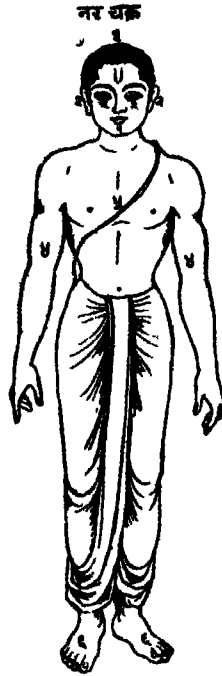
[अब जय-चक्रका निर्णय करते हैं—] पूर्वसे पश्चिम-तक तेरह रेखाएँ बनाकर पुनः उत्तरसे दक्षिणतक छः तिरछी रेखाएँ खींचे । (इस तरह लिखनेपर जयचक्र बन जायगा ।) उसमें अ से ह तक अक्षरोंको लिखे और १० । ९ । ७ । १२ । ४ । ११ । १५ । २४ । १८ । ४ । २७ । २४—इन अङ्कोंका भी न्यास करे । अङ्कोंको ऊपर लिखकर अकारादि अक्षरोंको उसके नीचे लिखे । शत्रुके नामाक्षरके स्वर तथा व्यञ्जन वर्णके सामने जो अङ्क हों, उन सबको जोड़कर पिण्ड बनाये । उसमें सातसे भाग देनेपर एक आदि शेषके अनुसार सूर्यादि ग्रहोंका भाग जाने । १ शेषमें सूर्य, २ में चन्द्र, ३ में भौम, ४ में बुध, ५ में गुरु, ६ में शुक्र, ७ में शनिका भाग होता है—यों समझना चाहिये । जब सूर्य, शनि और मङ्गलका भाग आये तो विजय होती है तथा शुभ ग्रहके भागमें संधि होती है ॥ १३–१५½॥

प्रथम जय-चक्र—

१०	९	७	१२	४	११	१५	२४	१८	४	२७	२४
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ए	ऐ	ओ
औ	अं	अः	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ
ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

उदाहरण—जैसे किसीका नाम देवदत्त है, इस नामके अक्षरों तथा अ स्वरके अनुसार अङ्क-क्रमसे १८+४+२४+१८+१५=७९ उन्यासी योग हुआ। इसमें सातका भाग दिया $\frac{७९}{७}$=११ लब्धि तथा २ शेष हुआ। शेषके अनुसार सूर्यसे गिननेपर चन्द्रका भाग हुआ, अतः संधि होगी। इससे यह निश्चय हुआ कि 'देवदत्त' नामका व्यक्ति संग्राममें कभी पराजित नहीं हो सकता। इसी तरह और नामके अक्षर तथा मात्राके अनुसार जय-पराजयका ज्ञान करना चाहिये।

[अब द्वितीय जय-चक्रका निर्णय करते हैं—] पूर्वसे पश्चिमतक बारह रेखाएँ लिखे और छः रेखाएँ याम्योत्तर करके लिखी जायँ। इस तरह यह 'जय-चक्र' बन जायगा। उसके सर्वप्रथम ऊपरवाले कोष्ठमें १४। २७। २। १२। १५। ६। ४। ३। १७। ८। ८—इन अङ्कोंको लिखे और कोष्ठोंमें 'अकार' आदि स्वरोंसे लेकर 'ह' तकके अक्षरोंका क्रमशः न्यास करे। तत्पश्चात् नामके अक्षरोंद्वारा बने हुए पिण्डमें आठसे भाग दे तो एक आदि शेषके अनुसार वायस, मण्डल, रासभ, वृषभ, कुञ्जर, सिंह, खर, धूम्र—ये आठ शेषोंके नाम होते हैं। इसमें वायससे प्रबल मण्डल और मण्डलसे प्रबल रासभ—यों उत्तरोत्तर बली जानना चाहिये। संग्राममें यायी तथा स्थायीके नामाक्षरके अनुसार मण्डल बनाकर एक-दूसरेसे बली तथा दुर्बलका ज्ञान करना चाहिये॥ १६—२०॥

द्वितीय जय-चक्र—

१४	२७	२	१२	१५	६	४	३	१७	८	८
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए
ऐ	ओ	औ	क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ
ट	ठ	ड	ढ	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

उदाहरण—जैसे यायी रामचन्द्र तथा स्थायी रावण—इन दोनोंमें कौन बली है—यह जानना है। अतः रामचन्द्रके अक्षर तथा स्वरके अनुसार र्=१५, आ = २७, म् = २, अ=१४, च्=३, अ=१४, न्=१७, द्=४, र्=१५, अ=१४—इनका योग १२५ हुआ। इसमें ८ का भाग दिया तो शेष ५ रहा। तथा रावणके अक्षर और स्वरके अनुसार र् = १५, आ = २७, व् = ४, अ = १४, न् = १७, अ = १४—इनका योग हुआ ९१। इसमें ८ से भाग देनेपर ३ शेष हुआ। ३ शेषसे ५ बली है, अतः रामचन्द्र-रावणके संग्राममें रामचन्द्र ही बली हो रहे हैं।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वास्तचक्रोंका वर्णन' नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३१॥

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

सेवा-चक्र आदिका निरूपण

शंकरजी कहते हैं—अब मैं 'सेवा-चक्र'का प्रतिपादन कर रहा हूँ, जिससे सेवकको सेव्यसे लाभ तथा हानिका ज्ञान होता है। पिता, माता तथा भाई एवं स्त्री-पुरुष—इन लोगोंके लिये इसका विचार विशेषरूपसे करना चाहिये। कोई

भी व्यक्ति पूर्वोक्त व्यक्तियोंमेंसे किससे लाभ प्राप्त कर सकेगा—इसका ज्ञान वह उस 'सेवा-चक्र' से कर सकता है ॥ १-२ ॥

[सेवा-चक्रका स्वरूप वर्णन करते हैं—] पूर्वसे पश्चिमको छः रेखाएँ और उत्तरसे दक्षिणको आठ तिरछी रेखाएँ खींचे। इस तरह लिखनेपर पैंतीस कोष्ठका 'सेवा-चक्र' बन जायगा। उसमें ऊपरके कोष्ठोंमें पाँच स्वरोंको लिखकर पुनः स्पर्श-वर्णोंको लिखे। अर्थात् 'क' से लेकर 'ह' तकके वर्णोंका न्यास करे। उसमें तीन वर्णों (ङ, ञ, ण) को छोड़कर लिखे। नीचेवाले कोष्ठोंमें क्रमसे सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, शत्रु तथा मृत्यु—इनको लिखे। इस तरह लिखनेपर सेवा-चक्र सर्वाङ्गसम्पन्न हो जाता है। इस चक्रमें शत्रु तथा मृत्यु नामके कोष्ठमें जो स्वर तथा अक्षर हैं, उनका प्रत्येक कार्यमें त्याग कर देना चाहिये। किंतु सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, शत्रु तथा मृत्यु नामवाले कोष्ठोंमेंसे किसी एक ही कोष्ठमें यदि सेव्य तथा सेवकके नामका आदि-अक्षर पड़े तो वह सर्वथा शुभ है। इसमें द्वितीय कोष्ठ पोषक है, तृतीय कोष्ठ धनदायक है, चौथा कोष्ठ आत्मनाशक है, पाँचवाँ कोष्ठ मृत्यु देनेवाला है। इस चक्रसे मित्र, नौकर एवं बान्धवसे लाभकी प्राप्तिके लिये विचार करना चाहिये। अर्थात् हम किससे मित्रताका व्यवहार करें कि मुझे उससे लाभ हो तथा किसको नौकर रक्खें, जिससे लाभ हो एवं परिवारके किस व्यक्तिसे मुझे लाभ होगा—इसका विचार इस चक्रसे करे। जैसे—अपने नामका आदि-अक्षर तथा विचारणीय व्यक्तिके नामका आदि-अक्षर सेवा-चक्रके किसी एक ही कोष्ठमे पड़ जाय तो वह शुभ है, अर्थात् उस व्यक्तिसे लाभ होगा—यह जाने। यदि पहलेवाले तीन कोष्ठोंमेंसे किसी एकमें अपने नामका आदि-वर्ण पहलेवाले तीन कोष्ठों (सि॰ सा॰ सु॰) मेंसे किसी एकमें पड़े और विचारणीय व्यक्तिके नामका आदि-अक्षर चौथे तथा पाँचवें पड़े तो अशुभ होता है। चौथे तथा पाँचवें कोष्ठोंमें किसी एकमें सेव्यके तथा दूसरेमें सेवकके नामका आदि-वर्ण पड़े तो अशुभ ही होता है ॥ ३—८ई ॥

सेवा-चक्रका स्वरूप—

अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
सिद्ध १	साध्य २	सुसिद्ध ३	शत्रु ४	मृत्यु ५

अब अकारादि वर्गों तथा ताराओंके द्वारा सेव्य-सेवकका विचार कर रहे हैं—अवर्ग (अ इ उ ए ओ) का स्वामी देवता है, कवर्ग (क ख ग घ ङ) का स्वामी दैत्य है, चवर्ग (च छ ज झ ञ) का स्वामी नाग है, टवर्ग (ट ठ ड ढ ण) का स्वामी गन्धर्व है, तवर्ग (त थ द ध न) का स्वामी ऋषि है, पवर्ग (प फ ब भ म) का स्वामी राक्षस है, यवर्ग (य र ल व) का स्वामी पिशाच है, शवर्ग (श ष स ह) का स्वामी मनुष्य है। इनमें देवतासे बली दैत्य है, दैत्यसे बली सर्प है, सर्पसे बली गन्धर्व है, गन्धर्वसे बली ऋषि है, ऋषिसे बली राक्षस है, राक्षससे बली पिशाच है और पिशाचसे बली मनुष्य होता है। इसमें बली दुर्बलका त्याग करे—अर्थात् सेव्य-सेवक—इन दोनोंके नामोंके आदि-अक्षरके द्वारा बली वर्ग तथा दुर्बल वर्गका ज्ञान करके बली वर्गवाले दुर्बल वर्गवालेसे व्यवहार न करें। एक ही वर्गके सेव्य तथा सेवकके नामका आदि-वर्ण रहना उत्तम होता है ॥ ९—१३ ॥

अब मैत्री-विभाग-सम्बन्धी 'ताराचक्र' को सुनो। पहले नामके प्रथम अक्षरके द्वारा नक्षत्र जान ले, फिर नौ ताराओंकी तीन बार आवृत्ति करनेपर सत्ताईस नक्षत्रोंकी ताराओंका ज्ञान हो जायगा। इस तरह अपने नामके नक्षत्रका तारा जान लें। १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मैत्र, ९ अतिमैत्र—ये

नौ ताराएँ हैं। इनमें 'जन्म'तारा अशुभ, 'सम्पत्' तारा अति उत्तम और 'विपत्' तारा निष्फल होती है। 'क्षेम'ताराको प्रत्येक कार्यमें लेना चाहिये। 'प्रत्यरि' तारासे धन-क्षति होती है। 'साधक' तारासे राज्य-लाभ होता है। 'वध' तारासे कार्यका विनाश होता है। 'मैत्र'तारा मैत्रीकारक है और 'अतिमैत्र' तारा हितकारक होती है।

विशेष प्रयोजन—जैसे सेव्य रामचन्द्र, सेवक हनुमान्—इन दोनोंमें भाव कैसा रहेगा, इसे जाननेके लिये हनुमान्के नामके आदि वर्ण (ह) के अनुसार पुनर्वसु नक्षत्र हुआ तथा रामके नामके आदि वर्ण (रा) के अनुसार नक्षत्र चित्रा हुआ। पुनर्वसुसे चित्राकी संख्या आठवीं हुई। इस संख्याके अनुसार 'मैत्र'नामक तारा हुई। अतः इन दोनोंकी मैत्री परस्पर कल्याणकर होगी—यों जानना चाहिये ॥ १३—१८॥

[अब तारा-चक्र कहते हैं—] प्रिये! नामाक्षरोंके स्वरोंकी सख्यामें वर्णोंकी संख्या जोड़ दे। उसमें बीसका भाग दे। शेषसे फलको जाने। अर्थात् स्वल्प शेषवाला व्यक्ति अधिक शेषवाले व्यक्तिसे लाभ उठाता है। जैसे सेव्य राम तथा सेवक हनुमान्। इनमें सेव्य रामके नामका र् = २। आ = २। म् = ५। अ = १। सबका योग १० हुआ। इसमें २० से भाग दिया तो शेष १० सेव्यका हुआ तथा सेवक हनुमान्के नामका ह् = ४। अ = १। न् = ५। उ = ५। म् = ५। आ = २। न् = ५। सबका योग २७ हुआ। इसमें २० का भाग दिया तो शेष ७ सेवकका हुआ। यहाँपर सेवकके शेषसे सेव्यका शेष अधिक हो रहा है, अतः हनुमान्‌जी रामजीसे पूर्ण लाभ उठायेंगे—ऐसा ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

अब नामाक्षरोंमें स्वरोंकी संख्याके अनुसार लाभ-हानिका विचार करते हैं। सेव्य-सेवक दोनोंके बीच जिसके नामाक्षरोंमें अधिक स्वर हों, वह धनी है तथा जिसके नामाक्षरोंमें अल्प स्वर हों, वह ऋणी है। 'धन' स्वर मित्रताके लिये तथा 'ऋण' स्वर दासताके लिये होता है। इस प्रकार लाभ तथा हानिकी जानकारीके लिये 'सेवा-चक्र' कहा गया। मेष-मिथुन राशिवालोंमें प्रीति, मिथुन-सिंह राशिवालोंमें मैत्री तथा तुला-सिंह राशिवालोंमें महामैत्री होती है; किंतु धनु-कुम्भ राशिवालोंमें मैत्री नहीं होती। अतः इन दोनोंको परस्पर सेवा नहीं करनी चाहिये। मीन-वृष, वृष-कर्क, कर्क-कुम्भ, कन्या-वृश्चिक, मकर-वृश्चिक, मीन-मकर राशिवालोंमें मैत्री तथा मिथुन-कुम्भ, तुला-मेष राशिवालोंकी परस्पर महामैत्री होती है। वृष-वृश्चिकमें परस्पर वैर होता है; मिथुन-धनु, कर्क-मकर, मकर-कुम्भ, कन्या-मीन राशिवालोंमें परस्पर प्रीति रहती है। अर्थात् उपर्युक्त दोनों राशिवालोंमें सेव्य-सेवक भाव तथा मैत्री-व्यवहार एवं कन्या-वरका सम्बन्ध सुन्दर तथा शुभप्रद होता है ॥ २०—२६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सेवा-चक्र आदिका वर्णन' नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३२ ॥

एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय

नाना प्रकारके बलोंका विचार

शंकरजी कहते हैं—अब सूर्यादि ग्रहोंकी राशियोंमें पैदा हुए नवजात शिशुका जन्म-फल क्षेत्राधिपके अनुसार वर्णन करूँगा। सूर्यके गृहमें अर्थात् सिंह लग्नमें उत्पन्न बालक समकाय, कभी कृशाङ्ग, कभी स्थूलाङ्ग, गोरवर्ण, पित्त-प्रकृति, लाल नेत्रोंवाला, गुणवान् तथा वीर होता है। चन्द्रके गृहमें अर्थात् कर्क लग्नका जातक भाग्यवान् तथा कोमल शरीरवाला होता है। मङ्गलके गृहमें अर्थात् मेष तथा वृश्चिक लग्नोंका जातक वातरोगी तथा अत्यन्त लोभी होता है। बुधके गृहमें अर्थात् मिथुन तथा कन्या लग्नोंका जातक बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी होता है। गुरुके गृहमें अर्थात् धनु तथा मीन लग्नोंका जातक सुन्दर और अत्यन्त क्रोधी होता है। शुक्रके गृहमें अर्थात् तुला तथा वृष लग्नोंका जातक त्यागी, भोगी एवं सुन्दर शरीरवाला होता है। शनिके गृहमें अर्थात् मकर तथा कुम्भ लग्नोंका जातक बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी होता है। सौम्य लग्नका जातक सौम्य स्वभावका तथा क्रूर लग्नका जातक क्रूर स्वभावका होता है* ॥ १—५ ॥

* यहाँपर मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ—ये राशियाँ

एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय

'त्रैलोक्यविजया-विद्या'

भगवान् महेश्वर कहते हैं—देवि ! अब मैं समस्त यन्त्र-मन्त्रोंको नष्ट करनेवाली 'त्रैलोक्यविजया-विद्या'का वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

ॐ हूं क्षूं ह्रूं, ॐ नमो भगवति दंष्ट्रिणि भीमवक्त्रे महोग्ररूपे हिलि हिलि, रक्तनेत्रे किलि किलि, महानिस्वने कुलु, ॐ विद्युज्जिह्वे कुलु, ॐ निर्मांसे कट कट, गोनसाभरणे चिलि चिलि, शवमालाधारिणि द्रावय, ॐ महारौद्रि सार्द्रचर्मकृताच्छदे विजृम्भ, ॐ नृत्यासिलताधारिणि भृकुटीकृतापाङ्गे विषमनेत्रकृतानने वसामेदोविलिप्तगात्रे कह कह, ॐ हस हस, क्रुध्य क्रुध्य, ॐ नीलजीमूतवर्णेऽभ्रमालाकृताभरणे विस्फुर, ॐ घण्टारवाकीर्णदेहे, ॐ सिंसिंस्थेऽरुणवर्णे, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं रौद्ररूपे ह्रूं ह्रां क्लीं, ॐ ह्रीं ह्रूं ओमाकर्ष, ॐ धून धून, ॐ हे हः खः, वज्रिणि हूं क्षूं क्षां क्रोधरूपिणि प्रज्वल प्रज्वल, ॐ भीमभीषणे भिन्द, ॐ महाकाये छिन्द, ॐ करालिनि किटि किटि, महाभूतमातः सर्वदुष्टनिवारिणि जये, ॐ विजये ॐ त्रैलोक्यविजये हूं फट् स्वाहा ॥

ॐ हूं क्षूं ह्रूं, ॐ बड़ी-बड़ी दाढ़ोंसे जिनकी आकृति अत्यन्त भयंकर है, उन महाउग्ररूपिणी भगवतीको नमस्कार है। वे रणाङ्गणमें स्वच्छापूर्वक क्रीड़ा करें, क्रीड़ा करें। लाल नेत्रोंवाली ! किलकारी कीजिये, किलकारी कीजिये। भीमनादिनि कुलु। ॐ विद्युज्जिह्वे ! कुलु। ॐ मांसहीने ! शत्रुओंको आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये। भुजङ्गमालिनि ! वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होइये, अलंकृत होइये। शवमालाविभूषिते ! शत्रुओंको खदेड़िये। ॐ शत्रुओंके रक्तसे सने हुए चमड़ेके वस्त्र धारण करनेवाली महाभयंकरि ! अपना मुख खोलिये। ॐ ! नृत्य-मुद्रामें तलवार धारण करनेवाली !! टेढ़ी भौंहोंसे युक्त तिरछे नेत्रोंसे देखनेवाली ! विषम नेत्रोंसे विकृत मुखवाली !! आपने अपने अङ्गोंमें मज्जा और मेदा लपेट रक्खा है। ॐ अट्टहास कीजिये, अट्टहास कीजिये। हँसिये, हँसिये। क्रुद्ध होइये, क्रुद्ध होइये। ॐ नील मेघके समान वर्णवाली ! मेघमालाको आभरण रूपमें धारण करनेवाली !! विशेषरूपसे प्रकाशित होइये। ॐ घण्टाकी ध्वनिसे शत्रुओंके शरीरोंकी धज्जियाँ उड़ा देनेवाली ! ॐ सिंसिंस्थिते ! रक्तवर्णे ! ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं रौद्ररूपे ! ह्रूं ह्रीं क्लीं ॐ ह्रीं ह्रूं ॐ शत्रुओंका आकर्षण कीजिये, उनको हिला डालिये, कँपा डालिये। ॐ हे हः खः वज्रहस्ते ! हूं क्षूं क्षां क्रोधरूपिणि ! प्रज्वलित होइये, प्रज्वलित होइये। ॐ महाभयंकरको डरानेवाली ! उनको चीर डालिये। ॐ विशाल शरीरवाली देवि ! उनको काट डालिये। ॐ करालरूपे ! शत्रुओंको डराइये, डराइये। महाभयंकर भूतोंकी जननि ! समस्त दुष्टोंका निवारण करनेवाली जये !! ॐ विजये !!! ॐ त्रैलोक्यविजये हूं फट् स्वाहा ॥ २ ॥

विजयके उद्देश्यसे नीलवर्णा, प्रेताधिरूढ़ा त्रैलोक्यविजया-विद्याकी बीस हाथ ऊँची प्रतिमा बनाकर उसका पूजन करे। पञ्चाङ्गन्यास करके रक्तपुष्पोंका हवन करे। इस त्रैलोक्यविजया-विद्याके पठनसे समरभूमिमें शत्रुकी सेनाएँ पलायन कर जाती हैं ॥ ३ ॥

ॐ नमो बहुरूपाय स्तम्भय स्तम्भय ॐ मोहय, ॐ सर्वशत्रून् द्रावय, ॐ ब्रह्माणमाकर्षय, ॐ विष्णुमाकर्षय, ॐ महेश्वरमाकर्षय, ॐ इन्द्रं टालय, ॐ पर्वतांश्चालय, ॐ सप्तसागराञ्छोषय, ॐ छिन्द छिन्द बहुरूपाय नमः ॥

ॐ अनेकरूपको नमस्कार है। शत्रुका स्तम्भन कीजिये, स्तम्भन कीजिये। ॐ सम्मोहन कीजिये। ॐ सब शत्रुओंको खदेड़ दीजिये। ॐ ब्रह्माका आकर्षण कीजिये। ॐ विष्णुका आकर्षण कीजिये। ॐ महेश्वरका आकर्षण कीजिये। ॐ इन्द्रको भयभीत कीजिये। ॐ पर्वतोंको विचलित कीजिये। ॐ सातों समुद्रोंको सुखा डालिये। ॐ काट डालिये, काट डालिये। अनेकरूपको नमस्कार है ॥ ४ ॥

मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उसमें शत्रुको स्थित हुआ जाने, अर्थात् उसमें शत्रुके स्थित होनेकी भावना करे। उस मूर्तिमें स्थित शत्रुका ही नाम भुजंग है; '**ॐ बहुरूपाय**' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उस शत्रुके नाशके लिये उक्त मन्त्रका जप करे। इससे शत्रुका अन्त हो जाता है ॥ ५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें युद्धजयार्णवके अन्तर्गत 'त्रैलोक्यविजया-विद्याका वर्णन' नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३४ ॥

एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय

संग्रामविजय-विद्या

महेश्वर कहते हैं—देवि ! अब मैं संग्राममें विजय दिलानेवाली विद्या (मन्त्र)का वर्णन करता हूँ, जो पदमालाके रूपमें है ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं चामुण्डे श्मशानवासिनि खट्वाङ्गकपालहस्ते महाप्रेतसमारूढे महाविमानसमाकुले कालरात्रि महागण-परिवृते महामुखे बहुभुजे घण्टाडमरुकिङ्किणि [हस्ते], अट्टाट्टहासे किलि किलि, ॐ हूं फट्, दंष्ट्राघोरान्धकारिणि नादशब्दबहुले गजचर्मप्रावृतशरीरे मांसदिग्धे लेलिहानोग्रजिह्वे महाराक्षसि रौद्रदंष्ट्राकराले भीमाट्टाट्टहासे स्फुरद्विद्युत्प्रभे चल चल, ॐ चकोरनेत्रे चिलि चिलि, ॐ ललज्जिह्वे, ॐ भीं भ्रुकुटीमुखि हुंकारभयत्रासनि कपाल-मालावेष्टितजटामुकुटशशाङ्कधारिणि, अट्टाट्टहासे किलि किलि, ॐ ह्रूं दंष्ट्राघोरान्धकारिणि, सर्वविघ्नविनाशिनि, इदं कर्म साधय साधय, ॐ शीघ्रं कुरु कुरु, ॐ फट्, ओमङ्कुशेन शमय, प्रवेशय, ॐ रङ्ग रङ्ग, कम्पय कम्पय, ॐ चालय, ॐ रुधिरमांसमद्यप्रिये हन हन, ॐ कुट्ट कुट्ट, ॐ छिन्द, ॐ मारय, ओमनुक्रमय, ॐ वज्रशरीरं पातय, ॐ त्रैलोक्यगतं दुष्टमदुष्टं वा गृहीतमगृहीतं वाऽऽवेशय, ॐ नृत्य, ॐ वन्द, ॐ कोटराक्ष्यूर्ध्वकेश्युलूकवदने करङ्किणि, ॐ करङ्कमालाधारिणि दह, ॐ पच पच, ॐ गृह्ण, ॐ मण्डलमध्ये प्रवेशय, ॐ किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णु-सत्येन रुद्रसत्येनर्षिसत्येनावेशय, ॐ किलि किलि, ॐ खिलि खिलि, विलि विलि, ॐ विकृतरूपधारिणि कृष्णभुजंग-वेष्टितशरीरे सर्वग्रहावेशिनि प्रलम्बौष्ठिनि भ्रूभङ्गलग्ननासिके विकटमुखि कपिलजटे ब्राह्मि भञ्ज, ॐ ज्वालामुखि स्वन, ॐ पातय, ॐ रक्ताक्षि घूर्णय, भूमिं पातय, ॐ शिरो गृह्ण, चक्षुर्मीलय, ॐ हस्तपादौ गृह्ण, मुद्रां स्फोटय, ॐ फट्, ॐ विदारय, ॐ त्रिशूलेन च्छेदय, ॐ वज्रेण हन, ॐ दण्डेन ताडय ताडय, ॐ चक्रेण च्छेदय च्छेदय, ॐ शक्त्या भेदय, दंष्ट्रया कीलय, ॐ कर्णिकया पाटय, ओमङ्कुशेन गृह्ण, ॐ शिरोऽक्षिज्वरमेकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं डाकिनि-स्कन्दग्रहान् मुञ्च मुञ्च, ॐ पच, ओमुत्सादय, ॐ भूमिं पातय, ॐ गृह्ण, ॐ ब्रह्माण्येहि, ॐ माहेश्वर्येहि, [ॐ] कौमार्येहि, ॐ वैष्णव्येहि, ॐ वाराह्येहि, ओमैन्द्र्येहि, ॐ चामुण्ड एहि, ॐ रेवत्येहि, ओमाकाशरेवत्येहि, ॐ हिम-वच्चारिण्येहि, ॐ रुरुमर्दिन्यसुरक्षयंकर्याकाशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध, अङ्कुशेन कट कट, समये तिष्ठ, ॐ मण्डलं प्रवेशय, ॐ गृह्ण, मुखं बन्ध, ॐ चक्षुर्बन्ध, हस्तपादौ च बन्ध, दुष्टग्रहान् सर्वान् बन्ध, ॐ दिशो बन्ध, ॐ विदिशो बन्ध, अधस्ताद्बन्ध, ॐ सर्वं बन्ध, ॐ भस्मना पानीयेन वा मृत्तिकया सर्षपैर्वा सर्वानावेशय, ॐ पातय, ॐ चामुण्डे किलि किलि, ॐ विच्चे हुं फट् स्वाहा ॥

ॐ ह्रीं चामुण्डे देवि ! आप श्मशानमें वास करनेवाली हैं। आपके हाथमें खट्वाङ्ग और कपाल शोभा पाते हैं। आप महान् प्रेतपर आरूढ़ हैं। आप बड़े-बड़े विमानोंसे घिरी हुई हैं। आप ही कालरात्रि हैं। बड़े-बड़े पार्षदगण आपको घेरकर खड़े हैं। आपका मुख विशाल है। भुजाएँ बहुत हैं। घण्टा, डमरू और घुँघुरू बजाकर विकट अट्टहास करनेवाली देवि ! क्रीड़ा कीजिये, क्रीड़ा कीजिये। **ॐ हूं फट्।** आप अपनी दाढ़ोंसे घोर अन्धकार प्रकट करनेवाली हैं। आपका गम्भीर घोष और शब्द अधिक मात्रामें अभिव्यक्त होता है। आपका विग्रह हाथीके चमड़ेसे ढका हुआ है। शत्रुओंके मांससे परिपुष्ट हुई देवि ! आपकी भयानक जिह्वा लपलपा रही है। महाराक्षसि ! भयंकर दाढ़ोंके कारण आपकी आकृति बड़ी विकराल दिखायी देती है। आपका अट्टहास बड़ा भयानक है। आपकी कान्ति चमकती हुई बिजलीके समान है। आप संग्राममें विजय दिलानेके लिये चलिये, चलिये। **ॐ चकोर-नेत्रे** (चकोरके समान नेत्रोंवाली) ! चिलि, चिलि। **ॐ ललज्जिह्वे** (लपलपाती हुई जीभवाली) ! **ॐ भीं** टेढ़ी भौंहोंसे युक्त मुखवाली ! आप हुंकारमात्रसे ही भय और त्रास उत्पन्न करनेवाली हैं। आप नरमुण्डोंकी मालासे वेष्टित जटा-मुकुटमें चन्द्रमाको धारण करती हैं। विकट अट्टहासवाली देवि ! किलि, किलि (रणभूमिमें क्रीड़ा करो, क्रीड़ा करो)। **ॐ ह्रूं** दाढ़ोंमें घोर अन्धकार प्रकट करने-वाली और सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश करनेवाली देवि ! आप मेरे इस कार्यको सिद्ध करें, सिद्ध करें। ॐ शीघ्र कीजिये, कीजिये। **ॐ फट्।** ॐ अङ्कुशसे शान्त कीजिये, प्रवेश कराइये। ॐ रक्तसे रँगिये, रँगिये; कँपाइये, कँपाइये। ॐ विचलित कीजिये। **ॐ रुधिर-मांस-मद्यप्रिये !** शत्रुओंका

हनन कीजिये, हनन कीजिये । ॐ विपक्षी योद्धाओंको कूटिये, कूटिये । ॐ काटिये । ॐ मारिये । ॐ उनका पीछा कीजिये । ॐ वज्रतुल्य शरीरवालेको भी मार गिराइये । ॐ त्रिलोकीमें विद्यमान जो शत्रु है, वह दुष्ट हो या अदुष्ट, पकड़ा गया हो या नहीं, आप उसे आविष्ट कीजिये । ॐ नृत्य कीजिये । ॐ वन्द । ॐ कोटराक्षि (खोखलेके समान नेत्रवाली) ! ऊर्ध्वकेशि (ऊपर उठे हुए केशोंवाली) ! उलूकवदने (उल्लूके समान मुँहवाली) ! हड्डियोंकी ठटरी या खोपड़ी धारण करनेवाली ! खोपड़ीकी माला धारण करनेवाली चामुण्डे ! आप शत्रुओंको जलाइये । ॐ पकाइये, पकाइये। ॐ पकड़िये । ॐ मण्डलके भीतर प्रवेश कराइये । ॐ आप क्यों विलम्ब करती है ? ब्रह्माके सत्यसे, विष्णुके सत्यसे, रुद्रके सत्यसे तथा ऋषियोंके सत्यसे आविष्ट कीजिये । ॐ किलि किलि । ॐ खिलि खिलि । विलि विलि । ॐ विकृत रूप धारण करनेवालीदेवि ! आपके शरीरमें काले सर्प लिपटे हुए हैं । आप सम्पूर्ण ग्रहोंको आविष्ट करनेवाली हैं । आपके लंबे-लंबे ओठ लटक रहे हैं । आपकी टेढ़ी भौंहें नासिकासे लगी हैं । आपका मुख विकट है । आपकी जटा कपिलवर्णकी है । आप ब्रह्माकी शक्ति हैं । आप शत्रुओंको भङ्ग कीजिये । ॐ ज्वालामुखि ! गर्जना कीजिये। ॐ शत्रुओंको मार गिराइये । ॐ लाल-लाल आँखोंवाली देवि ! शत्रुओंको चक्कर कटाइये, उन्हें धराशायी कीजिये । ॐ शत्रुओंके सिर उतार लीजिये । उनकी आँखें बंद कर दीजिये । ॐ उनके हाथ-पैर ले लीजिये, अङ्ग मुद्रा फोड़िये । ॐ फट् । ॐ विदीर्ण कीजिये । ॐ त्रिशूलसे छेदिये। ॐ वज्रसे हनन कीजिये । ॐ डंडेसे पीटिये, पीटिये । ॐ चक्रसे छिन्न-भिन्न कीजिये, छिन्न भिन्न कीजिये । ॐ शक्तिसे भेदन कीजिये । दाढ़से कीलन कीजिये । ॐ कतरनीसे चीरिये । ॐ अङ्कुशसे ग्रहण कीजिये । ॐ सिरके रोग और नेत्रकी पीड़ाको, प्रतिदिन होनेवाले ज्वरको, दो दिनपर होनेवाले ज्वरको, तीन दिनपर होनेवाले ज्वरको, चौथे दिन होनेवाले ज्वरको, डाकिनियोंको तथा कुमारग्रहोंको शत्रु-सेनापर छोड़िये, छोड़िये । ॐ उन्हें पकाइये । ॐ शत्रुओंका उन्मूलन कीजिये । ॐ उन्हें भूमिपर गिराइये । ॐ उन्हें पकड़िये । ॐ ब्रह्माणि ! आइये । ॐ माहेश्वरि ! आइये । ॐ कौमारि ! आइये । ॐ वैष्णवि ! आइये । ॐ वाराहि ! आइये । ॐ ऐन्द्रि ! आइये । ॐ चामुण्डे ! आइये । ॐ रेवति ! आइये । ॐ आकाशरेवति ! आइये । ॐ हिमालयपर विचरनेवाली देवि ! आइये । ॐ रुरुमर्दिनि ! असुरक्षयंकरि (असुरविनाशिनि) ! आकाशगामिनि देवि ! विरोधियोंको पाशसे बाँधिये, बाँधिये । अङ्कुशसे आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये । अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर रहिये । ॐ मण्डलमें प्रवेश कराइये । ॐ शत्रुको पकड़िये और उसका मुँह बाँध दीजिये । ॐ नेत्र बाँध दीजिये । हाथ-पैर भी बाँध दीजिये । हमें सतानेवाले समस्त दुष्ट ग्रहोंको बाँध दीजिये । ॐ दिशाओंको बाँधिये । ॐ विदिशाओंको बाँधिये । नीचे बाँधिये । ॐ सब ओरसे बाँधिये । ॐ भस्मसे, जलसे, मिट्टीसे अथवा सरसोंसे सबको आविष्ट कीजिये । ॐ नीचे गिराइये । ॐ चामुण्डे ! किलि किलि । ॐ विच्चे हुं फट् स्वाहा ॥ २ ॥

यह 'जया' नामक पदमाला है, जो समस्त कर्मोंको सिद्ध करनेवाली है । इसके द्वारा होम करनेसे तथा इसका जप एवं पाठ आदि करनेसे सदा ही युद्धमें विजय प्राप्त होती है । अट्ठाईस भुजाओंसे युक्त चामुण्डा देवीका ध्यान करना चाहिये । उनके दो हाथोंमें तलवार और खेटक हैं। दूसरे दो हाथोंमें गदा और दण्ड हैं । अन्य दो हाथ धनुष और बाण धारण करते हैं । अन्य दो हाथ मुष्टि और मुद्गरसे युक्त हैं। दूसरे दो हाथोंमें शङ्ख और खड्ग हैं। अन्य दो हाथोंमें ध्वज और वज्र हैं । दूसरे दो हाथ चक्र और परशु धारण करते हैं । अन्य दो हाथ डमरू और दर्पणसे सम्पन्न हैं। दूसरे दो हाथ शक्ति और कुन्द धारण करते हैं। अन्य दो हाथोंमें हल और मूसल हैं । दूसरे दो हाथ पाश और तोमरसे युक्त हैं । अन्य दो हाथोंमें ढक्का और पणव है । दूसरे दो हाथ अभयकी मुद्रा धारण करते हैं तथा शेष दो हाथोंमें मुष्टिक शोभा पाते हैं । वे महिषासुरको डाँटती और उसका वध करती हैं । इस प्रकार ध्यान करके हवन करनेसे साधक शत्रुओंपर विजय पाता है । घी, शहद और चीनीमिश्रित तिलसे हवन करना चाहिये । इस संग्रामविजय-विद्याका उपदेश जिस-किसीको नहीं देना चाहिये (अधिकारी पुरुषको ही देना चाहिये) ॥ ३-७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणके अन्तर्गत युद्धजयार्णवमें 'संग्रामविजय-विद्याका वर्णन' नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३५ ॥

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय

नक्षत्रोंके त्रिनाडी-चक्र या फणीश्वर-चक्रका वर्णन

महेश्वर कहते हैं—देवि ! अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी त्रिनाडी-चक्रका वर्णन करूँगा, जो यात्रा आदिमें फलदायक होता है। अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें तीन नाडियोंसे भूषित चक्र अङ्कित करे। पहले अश्विनी, आर्द्रा और पुनर्वसु अङ्कित करे; फिर उत्तराफाल्गुनी, हस्त, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा और पूर्वभाद्रपद—इन नक्षत्रोंको लिखे। यह प्रथम नाडी कही गयी है। दूसरी नाडी इस प्रकार है— भरणी, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा तथा उत्तराभाद्रपदा। तीसरी नाडीके नक्षत्र ये हैं— कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, स्वाती, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण तथा रेवती * ॥ १-४ ॥

इन तीन नाडियोंके नक्षत्रोंद्वारा सेवित ग्रहके अनुसार शुभाशुभ फल जानना चाहिये। इस 'त्रिनाडी' नामक चक्रको 'फणीश्वर-चक्र' कहा गया है। इस चक्रगत नक्षत्रपर यदि सूर्य, मङ्गल, शनैश्चर एवं राहु हों तो वह अशुभ होता है। इनके सिवा, अन्य ग्रहोंद्वारा अधिष्ठित होनेपर वह नक्षत्र शुभ होता है। देश, ग्राम, भाई और भार्या आदि अपने नामके आदि अक्षरके अनुसार एक नाडी-चक्रमें पड़ते हों तो वे शुभकारक होते हैं ॥ ५-६ ॥

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा तथा रेवती—ये सत्ताईस नक्षत्र यहाँ जानने योग्य हैं ॥ ७-८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नक्षत्रचक्र-वर्णन' नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३६ ॥

एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय

महामारी-विद्याका वर्णन

महेश्वर कहते हैं—देवि ! अब मैं महामारी-विद्याका वर्णन करूँगा, जो शत्रुओंका मर्दन करनेवाली है ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं महामारि रक्ताक्षि कृष्णवर्णे यमस्याज्ञाकारिणि सर्वभूतसंहारकारिणि अमुकं हन हन, ॐ दह दह, ॐ पच पच, ॐ छिन्द छिन्द, ॐ मारय मारय, ओमुत्सादयोत्सादय, ॐ सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वकामिके हुं फट् स्वाहा ॥

ॐ ह्रीं लाल नेत्रों तथा काले रंगवाली महामारि ! तुम यमराजकी आज्ञाकारिणी हो, समस्त भूतोंका संहार

---

* अग्निपुराणकी ही भाँति नारदपुराण, पूर्व भाग, द्वितीय पाद, अध्याय ५६के ५०९वें श्लोकमें भी त्रिनाडी चक्रका वर्णन है। यथा—

त्रिनाडी—

१	अश्विनी	आर्द्रा	पुनर्वसु	उत्तरा-फाल्गुनी	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शतभिषा	पूर्वा-भाद्रपदा
२	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पूर्वा-फाल्गुनी	चित्रा	अनुराधा	पूर्वाषाढ़ा	धनिष्ठा	उत्तरा-भाद्रपदा
३	कृत्तिका	रोहिणी	आश्लेषा	मघा	स्वाती	विशाखा	उत्तराषाढ़ा	श्रवण	रेवती

करनेवाली हो, मेरे अमुक शत्रुका हनन करो, हनन करो। ॐ उसे जलाओ, जलाओ। ॐ पकाओ, पकाओ। ॐ काटो, काटो। ॐ मारो, मारो। ॐ उखाड़ फेंको, उखाड़ फेंको। ॐ समस्त प्राणियोंको वशमें करनेवाली और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली! हुं फट् स्वाहा ॥ २ ॥

अङ्गन्यास

'ॐ मारि हृदयाय नमः।'—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी मध्यमा, अनामिका और तर्जनी अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे। **'ॐ महामारि शिरसे स्वाहा।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथसे सिरका स्पर्श करे। **'ॐ कालरात्रि शिखायै वौषट्।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथके अँगूठेसे शिखाका स्पर्श करे। **'ॐ कृष्णवर्णे खः कवचाय हुम्।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे बायीं भुजाका और बायें हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे दाहिनी भुजाका स्पर्श करे। **'ॐ तारकाक्षि विद्युज्जिह्वे सर्वसत्त्वभयंकरि रक्ष रक्ष सर्वकार्येषु ह्रं त्रिनेत्राय वषट्।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी अंगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटके मध्यभागका स्पर्श करे। **'ॐ महामारि सर्वभूतदमनि महाकालि अस्त्राय हुं फट्।'**—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथको सिरके ऊपर एवं बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये ॥ ३ ॥

महादेवि! साधकको यह अङ्गन्यास अवश्य करना चाहिये। वह मुर्देपरका वस्त्र लाकर उसे चौकोर फाड़ ले। उसकी लंबाई-चौड़ाई तीन-तीन हाथकी होनी चाहिये। उसी वस्त्रपर अनेक प्रकारके रंगोंसे देवीकी एक आकृति बनावे, जिसका रंग काला हो। वह आकृति तीन मुख और चार भुजाओंसे युक्त होनी चाहिये। देवीकी वह मूर्ति अपने हाथोंमें धनुष, शूल, कतरनी और खट्वाङ्ग (खाटका पाया) धारण किये हुए हो। उस देवीका पहला मुख पूर्व दिशाकी ओर हो और अपनी काली आभासे प्रकाशित हो रहा हो तथा ऐसा जान पड़ता हो कि दृष्टि पड़ते ही वह अपने सामने पड़े हुए मनुष्यको खा जायगी। दूसरा मुख दक्षिण भागमें होना चाहिये। उसकी जीभ लाल हो और वह देखनेमें भयानक जान पड़ता हो। वह विकराल मुख अपनी दाढ़ोंके कारण अत्यन्त उत्कट और भयंकर हो और जीभसे दो गलफर चाट रहा हो। साथ ही ऐसा जान पड़ता हो कि दृष्टि पड़ते ही यह घोड़े आदिको खा जायगा ॥ ४-७½ ॥

देवीका तीसरा मुख पश्चिमाभिमुख हो। उसका रंग सफेद होना चाहिये। वह ऐसा जान पड़ता हो कि सामने पड़नेपर हाथी आदिको भी खा जायगा। गन्ध-पुष्प आदि उपचारों तथा घी-मधु आदि नैवेद्यद्वारा उसका पूजन करे ॥ ८½ ॥

पूर्वोक्त मन्त्रका स्मरण करनेमात्रसे नेत्र और मस्तक आदिका रोग नष्ट हो जाता है। यक्ष और राक्षस भी वशमें हो जाते हैं और शत्रुओंका नाश हो जाता है। यदि मनुष्य क्रोधयुक्त होकर, निम्ब-वृक्षकी समिधाओंको होम करे तो उस होमसे ही वह अपने शत्रुको मार सकता है, इसमें संशय नहीं है। यदि शत्रुकी सेनाकी ओर मुँह करके एक सप्ताहतक इन समिधाओंका हवन किया जाय तो शत्रुकी सेना नाना प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त हो जाती है और उसमें भगदड़ मच जाती है। जिसके नामसे आठ हजार उक्त समिधाओंका होम कर दिया जाय, वह यदि ब्रह्माजीके द्वारा सुरक्षित हो तो भी शीघ्र ही मर जाता है। यदि धतूरेकी एक सहस्र समिधाओंको रक्त और विषसे संयुक्त करके तीन दिनतक उनका होम किया जाय तो शत्रु अपनी सेनाके साथ ही नष्ट हो जाता है ॥ ९-१३½ ॥

राई और नमकसे होम करनेपर तीन दिनमें ही शत्रुकी सेनामें भगदड़ पड़ जायगी—शत्रु भाग खड़ा होगा। यदि उसे गदहेके रक्तसे मिश्रित करके होम किया जाय तो साधक अपने शत्रुका उच्चाटन कर सकता है—वहाँसे भागनेके लिये उसके मनमें उच्चाट पैदा कर सकता है। कौएके रक्तसे संयुक्त करके हवन करनेपर शत्रुको उखाड़ फेंका जा सकता है। साधक उसके वधमें समर्थ हो सकता है तथा साधकके मनमें जो-जो इच्छा होती है, उन सब इच्छाओंको वह पूर्ण कर लेता है। युद्धकालमें साधक हाथीपर आरूढ़ हो, दो कुमारियोंके साथ रहकर, पूर्वोक्त मन्त्रद्वारा शरीरको सुरक्षित कर ले; फिर दूरके शङ्ख आदि बाजोंको पूर्वोक्त महामारी विद्यासे अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर महामायाकी प्रतिमासे युक्त वस्त्रको लेकर समराङ्गणमें ऊँचाईपर फहराये और शत्रुसेनाकी ओर मुँह करके उस महान् पटको उसे

दिखाये। तत्पश्चात् वहाँ कुमारी कन्याओंको भोजन कराये। फिर पिण्डीको घुमाये। उस समय साधक यह चिन्तन करे कि शत्रुकी सेना पाषाणकी भाँति निश्चल हो गयी है॥१४—१९॥

वह यह भी भावना करे कि शत्रुकी सेनामें लड़नेका उत्साह नहीं रह गया है, उसके पाँव उखड़ गये हैं और वह बड़ी घबराहटमें पड़ गयी है। इस प्रकार करनेसे शत्रुकी सेनाका स्तम्भन हो जाता है। (वह चित्रलिखितकी भाँति खड़ी रह जाती है, कुछ कर नहीं पाती।) यह मैंने स्तम्भनका प्रयोग बताया है। इसका जिस-किसी भी व्यक्तिको उपदेश नहीं देना चाहिये। यह तीनों लोकोंपर विजय दिलानेवाली देवी 'माया' कही गयी है और इसकी आकृतिसे अङ्कित वस्त्रको 'मायापट' कहा गया है। इसी तरह दुर्गा, भैरवी, कुब्जिका, रुद्रदेव तथा भगवान् नृसिंहकी आकृतिका भी वस्त्रपर अङ्कन किया जा सकता है। इस तरहकी आकृतियोंसे अङ्कित पट आदिके द्वारा भी यह स्तम्भनका प्रयोग सिद्ध हो सकता है॥२०-२१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महामारी-विद्याका वर्णन' नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१३७॥

एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय

तन्त्रविषयक छः कर्मोंका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—पार्वति! सभी मन्त्रोंके साध्यरूपसे जो छः कर्म कहे गये हैं, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। शान्ति, वश्य, स्तम्भन, द्वेष, उच्चाटन और मारण—ये छः कर्म हैं। इन सभी कर्मोंमें छः सम्प्रदाय अथवा विन्यास होते हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—पल्लव, योग, रोधक, सम्पुट, ग्रन्थन तथा विदर्भ। भोजपत्र आदिपर पहले जिसका उच्चाटन करना हो, उस पुरुषका नाम लिखे। उसके बाद उच्चाटन-सम्बन्धी मन्त्र लिखे। लेखनके इस क्रमको 'पल्लव' नामक विन्यास या सम्प्रदाय समझना चाहिये। यह उच्चकोटिका महान् उच्चाटनकारी प्रयोग है। आदिमें मन्त्र लिखा जाय फिर साध्य व्यक्तिका नाम अङ्कित किया जाय। यह साध्य बीचमें रहे। इसके लिये अन्तमें पुनः मन्त्रका उल्लेख किया जाय। इस क्रमको 'योग' नामक सम्प्रदाय कहा गया है। शत्रुके समस्त कुलका संहार करनेके लिये इसका प्रयोग करना चाहिये॥१—२½॥

पहले मन्त्रका पद लिखे। बीचमें साध्यका नाम लिखे। अन्तमें फिर मन्त्र लिखे। फिर साध्यका नाम लिखे। तत्पश्चात् पुनः मन्त्र लिखे। यह 'रोधक' सम्प्रदाय कहा गया है। स्तम्भन आदि कर्मोंमें इसका प्रयोग करना चाहिये। मन्त्रके ऊपर, नीचे, दायें, बायें और बीचमें भी साध्यका नामोल्लेख करे, इसे 'सम्पुट' समझना चाहिये। वश्याकर्षण-कर्ममें इसका प्रयोग करे। जब मन्त्रका एक अक्षर लिखकर फिर साध्यके नामका एक अक्षर लिखा जाय और इस प्रकार बारी-बारीसे दोनोंके एक-एक अक्षरको लिखते हुए मन्त्र और साध्यके अक्षरोंको परस्पर ग्रथित कर दिया जाय तो यह 'ग्रन्थन' नामक सम्प्रदाय है। इसका प्रयोग आकर्षण या वशीकरण करनेवाला है। पहले मन्त्रका दो अक्षर लिखे, फिर साध्यका एक अक्षर। इस तरह बार-बार लिखकर दोनोंको पूर्ण करे। (यदि मन्त्राक्षरोंके बीचमें ही समाप्ति हो जाय तो दुबारा उनका उल्लेख करे।) इसे 'विदर्भ' नामक सम्प्रदाय समझना चाहिये तथा वशीकरण एवं आकर्षणके लिये इसका प्रयोग करना चाहिये॥३—७॥

आकर्षण आदि जो मन्त्र हैं, उनका अनुष्ठान वसन्त-ऋतुमें करना चाहिये। तापज्वरके निवारण, वशीकरण तथा आकर्षण-कर्ममें 'स्वाहा'का प्रयोग शुभ होता है। शान्ति और वृद्धि-कर्ममें 'नमः' पदका प्रयोग करना चाहिये। पौष्टिक-कर्म, आकर्षण और वशीकरणमें 'वषट्कार'का प्रयोग करे। विद्वेषण, उच्चाटन और मारण आदि अशुभ कर्ममें पृथक् 'फट्' पदकी योजना करनी चाहिये। लाभ आदिमें तथा मन्त्रकी दीक्षा आदिमें 'वषट्कार' ही सिद्धिदायक होता है। मन्त्रकी दीक्षा देनेवाले आचार्यमें यमराजकी भावना करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'प्रभो! आप यम हैं, यमराज हैं, कालरूप हैं तथा धर्मराज हैं। मेरे दिये हुए इस शत्रुको शीघ्र ही मार गिराइये'॥८—११॥

तब शत्रुसूदन आचार्य प्रसन्नचित्तसे इस प्रकार उत्तर दे—'साधक! तुम सफल होओ। मैं यत्नपूर्वक तुम्हारे

शत्रुको मार गिराता हूँ।' श्वेत कमलपर यमराजकी पूजा करके होम करनेसे यह प्रयोग सफल होता है। अपनेमें भैरवकी भावना करके अपने ही भीतर कुलेश्वरी (भैरवी) की भी भावना करे। ऐसा करनेसे साधक रातमें अपने तथा शत्रुके भावी वृत्तान्तको जान लेता है। 'दुर्गरक्षिणि दुर्गे!' (दुर्गकी रक्षा करनेवाली अथवा दुर्गम संकटसे बचानेवाली देवि! आपको नमस्कार है)—इस मन्त्रके द्वारा दुर्गाजीकी पूजा करके साधक शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होता है। 'ह स क्ष म ल व र यु मृ'—इस भैरवी-मन्त्रका जप करनेपर साधक अपने शत्रुका वध कर सकता है ॥१२—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'षट्कर्मका वर्णन' नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३८॥

एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय

साठ संवत्सरोंमें मुख्य-मुख्यके नाम एवं उनके फल-भेदका कथन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—पार्वति! अब मैं साठ संवत्सरों (मेंसे कुछ) के शुभाशुभ फलको कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो। 'प्रभव' संवत्सरमें यज्ञकर्मकी बहुलता होती है। 'विभव'में प्रजा सुखी होती है। 'शुक्ल'में समस्त धान्य प्रचुर मात्रामें उत्पन्न होते हैं। 'प्रमोद'से सभी प्रमुदित होते हैं। 'प्रजापति' नामक संवत्सरमें वृद्धि होती है। 'अङ्गिरा' संवत्सर भोगोंकी वृद्धि करनेवाला है। 'श्रीमुख' संवत्सरमें जनसंख्याकी वृद्धि होती है और 'भाव' संज्ञक संवत्सरमें प्राणियोंमें सद्भावकी वृद्धि होती है। 'युवा' संवत्सरमें मेघ प्रचुर वृष्टि करते हैं। 'धाता' संवत्सरमें समस्त ओषधियाँ बहुलतासे उत्पन्न होती हैं। 'ईश्वर' संवत्सरमें क्षेम और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। 'बहुधान्य'में प्रचुर अन्न उत्पन्न होता है। 'प्रमाथी' वर्ष मध्यम होता है। 'विक्रम'में अन्न-सम्पदाकी अधिकता होती है। 'वृष' संवत्सर सम्पूर्ण प्रजाओंका पोषण करता है। 'चित्रभानु' विचित्रता और 'सुभानु' कल्याण एवं आरोग्यको उपस्थित करता है। 'तारण' संवत्सरमें मेघ शुभकारक होते हैं ॥ १—५ ॥

'पार्थिव'में सस्य-सम्पत्ति, 'अव्यय'में अतिवृष्टि, 'सर्वजित्'में उत्तम वृष्टि और 'सर्वधारी' नामक संवत्सरमें धान्यादिकी अधिकता होती है। 'विरोधी' मेघोंका नाश करता है अर्थात् अनावृष्टिकारक होता है। 'विकृति' भय प्रदान करनेवाला है। 'खर' नामक संवत्सर पुरुषोंमें शौर्यका संचार करता है। 'नन्दन'में प्रजा आनन्दित होती है। 'विजय' संवत्सर शत्रुनाशक और 'जय' रोगोंका मर्दन करनेवाला है। 'मन्मथ'में विश्व ज्वरसे पीड़ित होता है। 'दुष्कर'में प्रजा दुष्कर्ममें प्रवृत्त होती है। 'दुर्मुख' संवत्सरमें मनुष्य कटुभाषी हो जाते हैं। 'हेमलम्ब'से सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है। महादेवि! 'विलम्ब' नामक संवत्सरमें अन्नकी प्रचुरता होती है। 'विकारी' शत्रुओंको कुपित करता है और 'शार्वरी' कहीं कहीं सर्वप्रदा होती है। 'प्लव' संवत्सरमें जलाशयोंमें बाढ़ आती है। 'शोभन' और 'शुभकृत्'में प्रजा संवत्सरके नामानुकूल गुणसे युक्त होती है ॥ ६—१० ॥

'राक्षस' वर्षमें लोक निष्ठुर हो जाता है। 'आनल' संवत्सरमें विविध धान्योंकी उत्पत्ति होती है। 'पिङ्गल'में कहीं-कहीं उत्तम वृष्टि और 'कालयुक्त'में धनहानि होती है। 'सिद्धार्थ'में सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है। 'रौद्र'वर्षमें विश्वमें रौद्रभावोंकी प्रवृत्ति होती है। 'दुर्मति' संवत्सरमें मध्यम वर्षा और 'दुन्दुभि'में मङ्गल एवं धन-धान्यकी उपलब्धि होती है। 'रुधिरोद्गारी' और 'रक्ताक्ष' नामक संवत्सर रक्तपान करनेवाले हैं। 'क्रोधन' वर्ष विजयप्रद है। 'क्षय' संवत्सरमें प्रजाका धन क्षीण होता है। इस प्रकार साठ संवत्सरों (मेंसे कुछ) का वर्णन किया गया है ॥ ११—१३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'साठ संवत्सरों (मेंसे कुछ) के नाम एवं उनके फल-भेदका कथन' नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३९ ॥

एक सौ चालीसवाँ अध्याय

वश्य आदि योगोंका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं वशीकरण आदिके योगोंका वर्णन करूँगा । निम्नाङ्कित ओषधियोंको सोलह कोष्ठवाले चक्रमें अङ्कित करे—भृङ्गराज (भँगरैया), सहदेवी (सहदेइया), मोरकी शिखा, पुत्रजीवक (जीवापोता) नामक वृक्षकी छाल, अधःपुष्पा (गोझिया), रुदन्तिका (रुद्रदन्ती), कुमारी (घीकुँआर), रुद्रजटा (लताविशेष), विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), श्वेतार्क (सफेद मदार), लज्जालुका (लाजवन्ती लता), मोहलता (त्रिपुरमाली), काला धतूरा, गोरक्षकर्कटी (गोरखककड़ी या गुरुम्ही), मेषशृङ्गी (मेढ़ासिंगी) तथा स्नुही (सेंहुड़) ॥ १—३ ॥

ओषधियोंके ये भाग प्रदक्षिण-क्रमसे ऋत्विज् १६, वह्नि ३, नाग ८, पक्ष २, मुनि ७, मनु १४, शिव ११, वसुदेवता ८, दिशा १०, शर ५, वेद ४, ग्रह ९, ऋतु ६, सूर्य १२, चन्द्रमा १ तथा तिथि १५—इन सांकेतिक नामों और संख्याओंसे गृहीत होते हैं । प्रथम चार ओषधियोंका अर्थात् भँगरैया, सहदेइया, मोरकी शिखा और पुत्रजीवककी छाल—इनका चूर्ण बनाकर इनसे धूपका काम लेना चाहिये । अथवा इन्हें पानीके साथ पीसकर उत्तम उबटन तैयार कर के और उसे अपने अङ्गोंमें लगावे ॥ ४-५ ॥

तीसरे चतुष्क (चौक) अर्थात् अपराजिता, श्वेतार्क, लाजवन्ती लता और मोहलता—इन चार ओषधियोंसे अञ्जन तैयार करके उसे नेत्रमें लगावे तथा चौथे चतुष्क अर्थात् काला धतूरा, गोरखककड़ी, मेढ़ासिंगी और सेंहुड़—इन चार ओषधियोंसे मिश्रित जलके द्वारा स्नान करना चाहिये । भृङ्गराजवाले चतुष्कके बादका जो द्वितीय चतुष्क अर्थात् अधःपुष्पा, रुद्रदन्ती, कुमारी तथा रुद्रजटा नामक ओषधियाँ हैं, उन्हें पीसकर अनुलेप या उबटन लगानेका विधान है* ॥ ६ ॥

अधःपुष्पाको दाहिने पार्श्वमें धारण करना चाहिये तथा लाजवन्ती आदिको वाम पार्श्वमें । मयूरशिखाको पैरमें तथा घृतकुमारीको मस्तकपर धारण करना चाहिये । रुद्रजटा, गोरखककड़ी और मेढ़ाशृङ्गी—इनके द्वारा सभी कार्योंमें धूपका काम लिया जाता है । इन्हें पीसकर उबटन बनाकर जो अपने शरीरमें लगाता है, वह देवताओंद्वारा भी सम्मानित होता है । भृङ्गराज आदि चार ओषधियाँ, जो धूपके उपयोगमें आती हैं, ग्रहादिजनित बाधा दूर करनेके लिये उनका उद्वर्तनके कार्यमें भी उपयोग बताया गया है ।

* ओषधियोंके चतुष्क, नाम, विशेष संकेत और उपयोग निम्नाङ्कित चक्रसे जानने चाहिये—

अनुक्रम	ओषधियोंकी नामावली				उपयोगी
प्रथम चतुष्क विशेष संकेत	१ भृङ्गराज ऋत्विज् १६	२ सहदेवी वह्नि ३ गुण	३ मयूरशिखा नाग ८	४ पुत्रजीवक पक्ष २ नेत्र	धूप-उद्वर्तन
द्वितीय चतुष्क विशेष संकेत	५ अधःपुष्पा मुनि ७ लोक	६ रुदन्तिका मनु १४ इन्द्र	७ कुमारी शिव ११	८ रुद्रजटा वसु ८	अनुलेप
तृतीय चतुष्क विशेष संकेत	९ विष्णुक्रान्ता दिशा १०	१० श्वेतार्क शर ५	११ लज्जालुका वेद ४ युग	१२ मोहलता ग्रह ९	अञ्जन
चौथा चतुष्क विशेष संकेत	१३ कृष्ण धतूर ऋतु ६	१४ गोरक्षकर्कटी सूर्य १२	१५ मेषशृङ्गी चन्द्रमा १	१६ स्नुही तिथि १५	स्नान

युगादिसे सूचित लज्जालुका आदि ओषधियाँ अञ्जनके लिये बतायी गयी हैं । बाण आदिसे सूचित श्वेतार्क आदि ओषधियाँ स्नान-कर्ममें उपयुक्त होती हैं । घृतकुमारी आदि ओषधियाँ भक्षण करनेयोग्य कही गयी हैं और पुत्रजीवक आदिसे संयुक्त जलका पान बताया गया है । ऋत्विक् (भँगरैया), वेद (लाजवन्ती), ऋतु (काला धतूरा) तथा नेत्र (पुत्रजीवक)—इन ओषधियोंसे तैयार किये हुए चन्दनका तिलक सब लोगोंको मोहित करने वाला होता है ॥ ७—१० ॥

सूर्य (गोरखककड़ी), त्रिदश (काला धतूरा), पक्ष (पुत्रजीवक) और पर्वत (अधःपुष्पा)—इन ओषधियोंका अपने शरीरमें लेप करनेसे स्त्री वशमें होती है । चन्द्रमा (मेढ़ासिंगी), इन्द्र (रुद्रदन्तिका), नाग (मोर-शिखा), रुद्र (घीकुआँर)—इन ओषधियोंका योनिमें लेप करनेसे स्त्रियाँ वशमें होती हैं । तिथि (सेंहुड़), दिक् (अपराजिता), युग (लाजवन्ती) और बाण (श्वेतार्क)—इन ओषधियोंके द्वारा बनायी हुई गुटिका (गोली) लोगोंको वशमें करनेवाली होती है । किसीको वशमें करना हो तो उसके लिये भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थमें इसकी एक गोली मिला देनी चाहिये ॥ ११-१२ ॥

ऋत्विक् (भँगरैया), ग्रह (मोहलता), नेत्र (पुत्रजीवक) तथा पर्वत (अधःपुष्पा)—इन ओषधियोंको मुखमें धारण किया जाय तो इनके प्रभावसे शत्रुओंके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रोंका स्तम्भन हो जाता है—वे घातक आघात नहीं कर पाते । पर्वत (अधःपुष्पा), इन्द्र (रुद्रदन्ती), वेद (लाजवन्ती) तथा रन्ध्र (मोहलता)—इन ओषधियोंका अपने शरीरमें लेप करके मनुष्य पानीके भीतर निवास कर सकता है । बाण (श्वेतार्क), नेत्र (पुत्रजीवक), मनु (रुद्रदन्ती) तथा रुद्र (घीकुआँरि)—इन ओषधियोंसे बनायी हुई वटी भूख, प्यास आदिका निवारण करनेवाली होती है । तीन (सहदेइया), सोलह (भँगरैया), दिशा (अपराजिता) तथा बाण (श्वेतार्क)—इन ओषधियोंका लेप करनेसे दुर्भगा स्त्री सुभगा बन जाती है । त्रिदश (काला धतूरा), अक्षि (पुत्रजीवक) तथा दिशा (विष्णुकान्ता) और नेत्र (सहदेइया)—इन दवाओंका अपने शरीरमें लेप करके मनुष्य सर्पोंके साथ क्रीडा कर सकता है । इसी प्रकार त्रिदश (काला धतूरा), अक्षि (पुत्रजीवक), शिव (घृतकुमारी) और सर्प (मयूर-शिखा) से उपलक्षित दवाओंका लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव कर सकती है ॥ १३—१५ ॥

सात (अधःपुष्पा), दिशा (अपराजिता), मुनि (अधःपुष्पा) तथा रन्ध्र (मोहलता)—इन दवाओंका वस्त्रमें लेपन करनेसे मनुष्यको जूएमें विजय प्राप्त होती है । काला धतूरा, नेत्र (पुत्रजीवक), अब्धि (अधःपुष्पा) तथा मनु (रुद्रदन्तिका) से उपलक्षित ओषधियोंका लिङ्गमें लेप करके रति करनेपर जो गर्भाधान होता है, उससे पुत्रकी उत्पत्ति होती है । ग्रह (मोहलता), अब्धि (अधः-पुष्पा), सूर्य (गोरक्षकर्कटी) और त्रिदश (काला धतूरा)—इन ओषधियोंद्वारा बनायी गयी वटी सबको वशमें करनेवाली होती है । इस प्रकार ऋत्विक् आदि सोलह पदोंमें स्थित ओषधियोंके प्रभावका वर्णन किया गया ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वश्य आदि योगोंका वर्णन' नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४० ॥

एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय

छत्तीस कोष्ठोंमें निर्दिष्ट ओषधियोंके वैज्ञानिक प्रभावका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं छत्तीस पदों (कोष्ठकों) में स्थापित की हुई ओषधियोंका फल बताता हूँ । इन ओषधियोंके सेवनसे मनुष्योंका अमरीकरण होता है । ये औषध ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्रके द्वारा उपयोगमें लाये गये हैं ॥ १ ॥

हरीतकी (हर्रे), अक्षधात्री (आँवला), मरीच (गोलमिर्च), पिप्पली, शिफा (जटामांसी), वह्नि (भिलावा), शुण्ठी (सोंठ), पिप्पली, गुडूची (गिलोय), वच, निम्ब, वासक (अडूसा), शतमूली (शतावरी), सैन्धव (सेंधानमक), सिन्धुवार, कण्टकारि (कटेरी),

गोक्षुर (गोखरू), बिल्व (बेल), पुनर्नवा (गदहपूर्णा), बला (बरियारा), रेंड़, मुण्डी, रुचक (बिजौरा नीबू), भृङ्ग (दालचीनी), क्षार (खारा नमक या यवक्षार), पर्पट (पित्तपापड़ा), धन्याक (धनिया), जीरक (जीरा), शतपुष्पी (सौंफ), यवानी (अजवाइन), विडङ्ग (वायविडंग), खदिर (खैर), कृतमाल (अमलतास), हल्दी, वचा, सिद्धार्थ (सफेद सरसों)—ये छत्तीस पदोंमें स्थापित औषध हैं ॥ २-५ ॥

क्रमशः एक-दो आदि संख्यावाले ये महान् औषध समस्त रोगोंको दूर करनेवाले तथा अमर बनानेवाले हैं; इतना ही नहीं, पूर्वोक्त सभी कोष्ठोंके औषध शरीरमें झुर्रियाँ नहीं पड़ने देते और बालोंका पकना रोक देते हैं। इनका चूर्ण या इनके रससे भावित वटी, अवलेह, कषाय (काढ़ा), लड्डू या गुड़ खण्ड यदि घी या मधुके साथ खाया जाय, अथवा इनके रससे भावित घी या तेलका जिस किसी तरहसे भी उपयोग किया जाय, वह सर्वथा मृतसंजीवन (मुर्देको भी जिलानेवाला) होता है। आधे कर्ष या एक कर्षभर अथवा आधे पल या एक पलके तोलमें इसका उपयोग करनेवाला पुरुष यथेष्ट आहार-विहारमें तत्पर होकर तीन सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। मृतसंजीवनी-कल्पमें इससे बढ़कर दूसरा योग नहीं है ॥ ६-१० ॥

(नौ-नौ औषधोंके समुदायको एक 'नवक' कहते हैं। इस तरह उक्त छत्तीस औषधोंमें चार नवक होते हैं।) प्रथम नवकके योगसे बनी हुई ओषधिका सेवन करनेसे मनुष्य सब रोगोंसे छुटकारा पा जाता है; इसी तरह दूसरे, तीसरे और चौथे नवकके योगका सेवन करनेसे भी मनुष्य रोगमुक्त होता है। इसी प्रकार पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठें षट्कके[1] सेवनमात्रसे भी मनुष्य नीरोग हो जाता है। उक्त छत्तीस ओषधियोंमें नौ चतुष्क[2] होते हैं। उनमेंसे किसी एक चतुष्कके सेवनसे भी मनुष्यके सारे रोग दूर हो जाते हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम कोष्ठकी ओषधियोंके सेवनसे वात-दोषसे छुटकारा मिलता है। तीसरी, बारहवीं, छब्बीसवीं और सत्ताईसवीं ओषधियोंके सेवनसे पित्त-दोष दूर होता है तथा पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं और पंद्रहवीं ओषधियोंके सेवनसे कफ-दोषकी निवृत्ति होती है। चौंतीसवें, पैंतीसवें और छत्तीसवें कोष्ठकी औषधोंको धारण करनेसे वशीकरणकी सिद्धि होती है तथा ग्रहबाधा, भूतबाधा आदिसे लेकर निग्रहपर्यन्त सारे संकटोंसे छुटकारा मिल जाता है ॥ ११-१४½ ॥

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, एकादश संख्यावाली ओषधियाँ तथा बत्तीसवीं, पंद्रहवीं एवं बारहवीं संख्यावाली ओषधियोंको धारण करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति (वशीकरणकी सिद्धि एवं भूतादि बाधाकी निवृत्ति) होती है। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। छत्तीस कोष्ठोंमें निर्दिष्ट की गयी इन ओषधियोंका ज्ञान जैसे-तैसे हर व्यक्तिको नहीं देना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'छत्तीस कोष्ठोंके भीतर स्थापित ओषधियोंके विज्ञानका वर्णन' नामक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४१ ॥

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय

चोर और जातकका निर्णय, शनि-दृष्टि, दिन-राहु, फणि-राहु, तिथि-राहु तथा विष्टि-राहुके फल और अपराजिता-मन्त्र एवं ओषधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं मन्त्र-चक्र तथा औषध-चक्रोंका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाले हैं। जिन-जिन व्यक्तियोंके ऊपर चोरी करनेका संदेह हो, उनके लिये किसी वस्तु (वृक्ष, फूल या देवता आदि) का नाम बोले। उस वस्तुके नामके अक्षरोंकी संख्याको दुगुनी करके एक स्थानपर रक्खे तथा उस नामकी मात्राओंकी संख्यामें चारसे गुणा करके गुणनफलको दूसरे स्थानपर रक्खे। पहली संख्यासे दूसरी संख्यामें

१-२. छः ओषधियोंके समुदायको 'षट्क' और चार ओषधियोंके समुदायको 'चतुष्क' कहते हैं।

भाग दे। यदि कुछ शेष बचे तो वह व्यक्ति चोर है। यदि भाजकसे भाज्य पूरा-पूरा कट जाय तो यह समझना चाहिये कि वह व्यक्ति चोर नहीं है ॥ १½ ॥

अब यह बता रहा हूँ कि गर्भमें जो बालक है, वह पुत्र है या कन्या, इसका निश्चय किस प्रकार किया जाय? प्रश्न करनेवाले व्यक्तिके प्रश्न-वाक्यमें जो-जो अक्षर उच्चारित होते हैं, वे सब मिलकर यदि विषम संख्यावाले हैं तो गर्भमें पुत्रकी उत्पत्ति सूचित करते हैं। (इसके विपरीत सम संख्या होनेपर उस गर्भसे कन्याकी उत्पत्ति होनेकी सूचना मिलती है।) प्रश्न करनेवालेसे किसी वस्तुका नाम लेनेके लिये कहना चाहिये। वह जिस वस्तुके नामका उल्लेख करे, वह नाम यदि स्त्रीलिंग है तो उसके अक्षरोंके सम होनेपर पूछे गये गर्भसे उत्पन्न होनेवाला बालक बायीं आँखका काना होता है। यदि वह नाम पुँल्लिंग है और उसके अक्षर विषम हैं तो पैदा होनेवाला बालक दाहिनी आँखका काना होता है। इसके विपरीत होनेपर उक्त दोष नहीं होते हैं। स्त्री और पुरुषके नामोंकी मात्राओं तथा उनके अक्षरोंकी संख्यामें पृथक्-पृथक् चारसे गुणा करके गुणनफलको अलग-अलग रक्खे। पहली संख्या 'मात्रा-पिण्ड' है और दूसरी संख्या 'वर्ण-पिण्ड'। वर्ण-पिण्डमें तीनसे भाग दे। यदि सम शेष हो तो कन्याकी उत्पत्ति होती है, विषम शेष हो तो पुत्रकी उत्पत्ति होती है। यदि शून्य शेष हो तो पतिसे पहले स्त्रीकी मृत्यु होती है और यदि प्रथम 'मात्रा-पिण्ड' में तीनसे भाग देनेपर शून्य शेष रहे तो स्त्रीसे पहले पुरुषकी मृत्यु होती है। समस्त भागमें सूक्ष्म अक्षरवाले द्रव्योंद्वारा प्रश्नको ग्रहण करके विचार करनेसे अभीष्ट फलका ज्ञान होता है ॥ २-५ ॥

अब मैं शनि-चक्रका वर्णन करूँगा। जहाँ शनिकी दृष्टि हो, उस लग्नका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। जिस राशिमें शनि स्थित होते हैं, उससे सातवीं राशिपर उनकी पूर्ण दृष्टि रहती है, चौथी और दसवींपर आधी दृष्टि रहती है तथा पहली, दूसरी, आठवीं और बारहवीं राशिपर चौथाई दृष्टि रहती है। शुभकर्ममें इन सबका त्याग करना चाहिये। जिस दिनका जो ग्रह अधिपति हो, उस दिनका प्रथम पहर उसी ग्रहका होता है और शेष ग्रह उस दिनके आधे-आधे पहरके अधिकारी होते हैं। दिनमें जो समय शनिके भागमें पड़ता है, उसे युद्धमें त्याग दे ॥ ६-७½ ॥

अब मैं तुम्हें दिनमें राहुकी स्थितिका विषय बता रहा हूँ। राहु रविवारको पूर्वमें, शनिवारको वायव्यकोणमें, गुरुवारको दक्षिणमें, शुक्रवारको अग्निकोणमें, मङ्गलवारको भी अग्निकोणमें तथा बुधवारको सदा उत्तर दिशामें स्थित रहते हैं। फणि-राहु ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य एवं वायव्य-कोणमें एक-एक पहर रहते हैं और युद्धमें अपने सामने खड़े हुए शत्रुको आवेष्टित करके मार डालते हैं ॥ ८-९½ ॥

अब मैं तिथि-राहुका वर्णन करूँगा। पूर्णिमाको अग्नि-कोणमें राहुकी स्थिति होती है और अमावास्याको वायव्य-कोणमें। सम्मुख राहु शत्रुका नाश करनेवाले हैं। पश्चिमसे पूर्वकी ओर तीन खड़ी रेखाएँ खींचे और फिर इन मूल-भूत रेखाओंका भेदन करते हुए दक्षिणसे उत्तरकी ओर तीन पड़ी रेखाएँ खींचे। इस तरह प्रत्येक दिशामें तीन-तीन रेखाग्र होंगे। सूर्य जिस राशिपर स्थित हों, उसे सामनेवाली दिशामें लिखकर क्रमशः बारहों राशियोंको प्रदक्षिण-क्रमसे उन रेखाग्रोंपर लिखे। तत्पश्चात् 'क' से लेकर 'ज' तकके अक्षरोंको सामनेकी दिशामें लिखे। 'झ' से लेकर 'द' तकके अक्षर दक्षिण दिशामें स्थित रहें, 'ध' से लेकर 'म' तकके अक्षर पूर्व दिशामें लिखे जायँ और 'य' से लेकर 'ह' तकके अक्षर उत्तर दिशामें अङ्कित हों। ये राहुके गुण या चिह्न बताये गये हैं। शुक्लपक्षमें इनका त्याग करे तथा तिथि-राहुकी सम्मुख दृष्टिका भी त्याग करे। राहुकी दृष्टि सामने हो तो हानि होती है; अन्यथा विजय प्राप्त होती है ॥ १०-१३ ॥

अब 'विष्टि-राहु' का वर्णन करता हूँ। निम्नाङ्कित रूपसे आठ रेखाएँ खींचे—ईशानकोणसे दक्षिण दिशातक, दक्षिण दिशासे वायव्यकोणतक, वायव्यकोणसे पूर्व दिशातक, वहाँसे नैर्ऋत्य कोणतक, नैर्ऋत्यकोणसे उत्तर दिशातक, उत्तर दिशासे अग्निकोणतक, अग्निकोणसे पश्चिम दिशातक तथा पश्चिम दिशासे ईशानकोणतक। इन रेखाओंपर विष्टि (भद्रा) के साथ महाबली राहु विचरण करते हैं। कृष्णपक्षकी तृतीयादि तिथियोंमें विष्टि-राहुकी स्थिति ईशानकोणमें होती है और सप्तमी आदि तिथियोंमें दक्षिण दिशामें। (इसी प्रकार शुक्लपक्षकी अष्टमी आदिमें उनकी स्थिति नैर्ऋत्यकोणमें होती है और चतुर्थी आदिमें

उत्तर दिशामें)। इस तरह कृष्ण एवं शुक्लपक्षमें वायुके आश्रित रहनेवाले सम्मुख राहु शत्रुओंका नाश करते हैं।* विष्टि-राहुचक्रकी पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र आदि आठ दिक्पालों, महाभैरव आदि आठ महाभैरवों,[1] ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियों तथा सूर्य आदि आठ ग्रहोंको स्थापित करे। पूर्व आदि प्रत्येक दिशामें ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियोंके आठ अष्टकोंकी भी स्थापना करे।[2] दक्षिण आदि दिशाओंमें घातयोगिनीका उल्लेख करे। वायु जिस दिशामें

* विष्टि-राहुचक्र इस प्रकार समझना चाहिये—
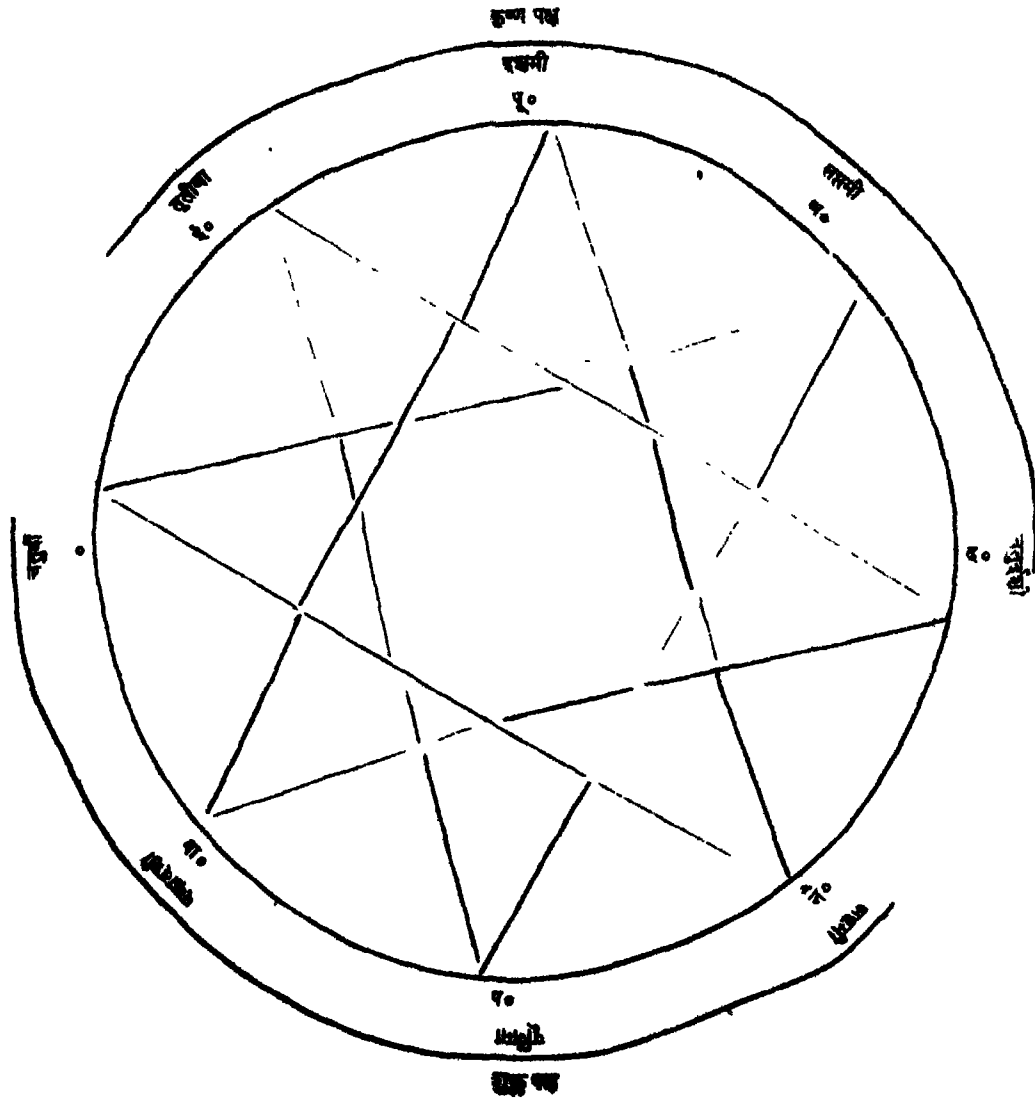
१. 'मन्त्र-महोदधि' १। ५४ में आठ भैरवोंके नाम इस प्रकार आये हैं—असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव (या काल-भैरव), क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालिभैरव, भीषणभैरव तथा संहारभैरव।

२. अध्याय १४३के छठे श्लोकमें ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियोंके नाम इस प्रकार आये हैं—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा तथा चण्डिका। अध्याय १४४के ३१वें श्लोकमें 'चण्डिका'की जगह 'महालक्ष्मी'का उल्लेख हुआ है।

रहती है, उसी दिशामें इन सबके साथ रहकर राहु शत्रुओंका संहार करता है ॥ १४-१७½ ॥

अब मैं अङ्गोंको सुदृढ़ करनेका उपाय बता रहा हूँ। पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ी हुई तथा निम्नाङ्कित अपराजिता-मन्त्रका जप करके कण्ठ अथवा भुजा आदिमें धारण की हुई शरपुंखिका ('सरफोंका' नामक ओषधि) विपक्षीके बाणोंका लक्ष्य बननेसे बचाती है। इसी प्रकार पुष्यमें उखाड़ी 'अपराजिता' एवं 'पाठा' नामक ओषधिको भी यदि मन्त्रपाठपूर्वक कण्ठ और भुजाओंमें धारण किया जाय तो उन दोनोंके प्रभावसे मनुष्य तलवारके वारको बचा सकता है ॥ १८-१९ ॥

(अपराजिता-मन्त्र इस प्रकार है—) **ॐ नमो भगवति वज्रशृङ्खले हन हन, ॐ भक्ष भक्ष, ॐ खाद, ॐ अरे रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माङ्गि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे वज्रप्राकारनिचिते पूर्वां दिशं बन्ध बन्ध, ॐ दक्षिणां दिशं बन्ध बन्ध, ॐ पश्चिमां दिशं बन्ध बन्ध, ॐ उत्तरां दिशं बन्ध बन्ध, नागान् बन्ध बन्ध, नागपत्नीर्बन्ध बन्ध, ॐ असुरान् बन्ध बन्ध, ॐ यक्ष-राक्षसपिशाचान् बन्ध बन्ध, ॐ प्रेतभूतगन्धर्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्ष रक्ष, ॐ ऊर्ध्वं रक्ष रक्ष, ॐ अधो रक्ष रक्ष, ॐ क्षुरिकं बन्ध बन्ध, ॐ ज्वल महाबले। घटि घटि, ॐ मोटि मोटि, सटावलिवज्राग्नि वज्रप्राकारे हुं फट्, ह्रीं ह्रूं श्रीं फट् ह्रीं हः फूं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीं अशेषेभ्यो रक्ष रक्ष ॥ २० ॥**

ग्रहपीड़ा, ज्वर आदिकी पीड़ा तथा भूतबाधा आदिके निवारण—इन सभी कर्मोंमें इस मन्त्रका उपयोग करना चाहिये ॥ २१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्त्रौषधि आदिका वर्णन' नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४२ ॥

एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय

कुब्जिका-सम्बन्धी न्यास एवं पूजनकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं कुब्जिकाकी क्रमिक पूजाका वर्णन करूँगा, जो समस्त मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली है। 'कुब्जिका' वह शक्ति है, जिसकी सहायतासे राज्यपर स्थित हुए देवताओंने अस्त्र-शस्त्रादिसे असुरोंपर विजय पायी है ॥ १ ॥

मायाबीज 'ह्रीं' तथा हृदयादि छः मन्त्रोंका क्रमशः गुह्याङ्ग एवं हाथमें न्यास करे। 'काली-काली'—यह हृदय-मन्त्र है। 'दुष्ट चाण्डालिका'—यह शिरोमन्त्र है। 'ह्रीं स्फें ह स ख क छ ड ओंकारो भैरवः।'—यह शिखा-सम्बन्धी मन्त्र है। 'भेलखी दूती'—यह कवच-सम्बन्धी मन्त्र है। 'रक्तचण्डिका'—यह नेत्र-सम्बन्धी मन्त्र है तथा 'गुह्यकुब्जिका'—यह अस्त्र-सम्बन्धी मन्त्र है। अङ्गों और हाथोंमें इनका न्यास करके मण्डलमें यथास्थान इनका पूजन करना चाहिये* ॥ २-३½ ॥

मण्डलके अग्निकोणमें कूर्च बीज (हुं), ईशानकोणमें शिरोमन्त्र (स्वाहा), नैर्ऋत्यकोणमें शिखामन्त्र (वषट्), वायव्यकोणमें कवचमन्त्र (हुम्), मध्यभागमें नेत्रमन्त्र (वौषट्) तथा मण्डलकी सम्पूर्ण दिशाओंमें अस्त्र मन्त्र (फट्) का उल्लेख एवं पूजन करे। बत्तीस अक्षरोंसे युक्त बत्तीस दलवाले कमलकी कर्णिकामें 'ओं ह स ख म क न व ब च ट स च' तथा आत्मबीज-मन्त्र (आम्) का न्यास एवं पूजन करे। कमलके सब ओर पूर्व दिशासे

* अङ्गन्यास-सम्बन्धी वाक्यकी योजना इस प्रकार है। ॐ ह्रीं काली काली हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं दुष्टचाण्डालिकायै शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रीं स्फें ह स ख क छ ड ॐकाराय भैरवाय शिखायै वषट्। ॐ ह्रीं भेलख्यै दूत्यै कवचाय हुम्। ॐ ह्रीं रक्तचण्डिकायै नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ गुह्यकुब्जिकायै अस्त्राय फट्। इन छः वाक्योंद्वारा क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं सम्पूर्ण दिशाओंमें न्यास किया जाता है। इन्हीं वाक्योंमें 'हृदयाय नमः' के स्थानमें 'अङ्गुष्ठाभ्यां नमः', 'शिरसे'के स्थानमें 'तर्जनीभ्यां नमः', 'शिखायै'के स्थानमें 'मध्यमाभ्यां नमः', 'कवचाय'की जगह 'अनामिकाभ्यां नमः' 'नेत्रत्रयाय'के स्थानमें 'कनिष्ठिकाभ्यां नमः' तथा 'अस्त्राय'के स्थानमें 'करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' कर दिया जाय तो ये करन्यास-सम्बन्धी वाक्य हो जायँगे तथा इनका क्रमशः हाथके दोनों अङ्गुष्ठों, तर्जनियों, मध्यमाओं, अनामिकाओं, कनिष्ठिकाओं तथा करतल-कर-पृष्ठ-भागोंमें न्यास किया जायगा।

आरम्भ करके क्रमशः ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और चण्डिका (महालक्ष्मी) का न्यास एवं पूजन करना चाहिये ॥ ४-६ ॥

तत्पश्चात् ईशान, पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य और पश्चिममें क्रमशः र, ब, ल, क, स और ह—इनका न्यास और पूजन करे। फिर इन्हीं दिशाओंमें क्रमशः कुसुममाला एवं पाँच पर्वतोंका स्थापन एवं पूजन करे। पर्वतोंके नाम हैं—जालन्धर, पूर्णगिरि और कामरूप आदि। तत्पश्चात् वायव्य, ईशान, अग्नि और नैर्ऋत्यकोणमें तथा मध्यभागमें वज्रकुब्जिकाका पूजन करे। इसके बाद वायव्य, ईशान, नैर्ऋत्य, अग्नि तथा उत्तर शिखरपर क्रमशः अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, प्रसिद्ध विमल, संयोग विमल तथा समय विमल—इन पाँच विमलोंकी पूजा करे। इन्हीं शृङ्गोंपर कुब्जिकाकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः खिङ्खिनी, षष्ठी, सोपन्ना, सुस्थिरा तथा रत्नसुन्दरीका पूजन करना चाहिये। ईशान कोणवर्ती शिखरपर आठ आदिनाथोंकी आराधना करे ॥७-११॥

अग्निकोणवर्ती शिखरपर मित्रकी, पश्चिमवर्ती शिखरपर औडीश वर्णकी तथा वायव्यकोणवर्ती शिखरपर षष्ठि नामक वर्णकी पूजा करनी चाहिये। पश्चिमदिशावर्ती शिखरपर गगनरत्न और कवचरत्नकी अर्चना की जानी चाहिये। वायव्य, ईशान और अग्निकोणमें 'श्रुं' बीजसहित 'पद्मनामा' संज्ञक मत्स्यकी पूजा करनी चाहिये। दक्षिण दिशा और अग्निकोणमें 'पद्मरत्न' की अर्चना करे। ज्येष्ठा, रौद्री तथा अन्तिका—ये तीन संध्याओंकी अधिष्ठात्री देवियाँ भी उसी दिशामें पूजने योग्य हैं। इनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली पाँच महामुद्राएँ हैं, उन सबकी प्रणवके उच्चारणपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इनका पूजन बत्तीस अथवा अट्ठाईसके भेदसे दो प्रकारका बताया गया है ॥ १२-१४ ॥

चौकोर मण्डलमें दाहिनी ओर गणपतिका तथा बायीं ओर बटुकका पूजन करे। 'ॐ ऐं गूं क्रमगणपतये नमः।' इस मन्त्रसे क्रमगणपतिकी तथा 'ॐ बटुकाय नमः।' इस मन्त्रसे बटुककी पूजा करे। वायव्य आदि कोणोंमें चार गुरुओंका तथा अठारह षट्कोणोंमें सोलह नाथोंका पूजन करे। फिर मण्डलके चारों ओर ब्रह्मा आदि आठ देवताओंकी तथा मध्यभागमें नवमी कुब्जिका एवं कुलटा देवीकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार सदा इसी क्रमसे पूजा करे ॥ १५-१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुब्जिकाकी क्रम-पूजाका वर्णन' नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४३ ॥

एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय

कुब्जिकाकी पूजा-विधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं धर्म, अर्थ, काम तथा विजय प्रदान करनेवाली श्रीमती कुब्जिकादेवीके मन्त्रका वर्णन करूँगा। परिवारसहित मूलमन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये ॥ १ ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं खैं ह्रैं हसक्षमलवरयं भगवति अम्बिके ह्रां ह्रीं क्ष्रीं क्ष्रौं क्ष्रूं क्रीं कुब्जिके ह्राम् ॐ ङञणनमेऽघोरमुखि छ्रां छ्रां छ्रीं किलि किलि क्ष्रौं विच्चे क्ष्रौं श्रीं क्रोम्, ॐ ह्रोम्, ऐं वज्रकुब्जिनि स्त्रीं त्रैलोक्यकर्षिणि ह्रीं कामाङ्गद्राविणि ह्रीं स्त्रीं महाक्षोभकारिणि ऐं ह्रीं क्ष्रीं ऐं ह्रीं श्रीं फें क्ष्रौं नमो भगवति क्ष्रौं कुब्जिके ह्रीं ह्रौं ह्रैं ङञणनमे अघोरमुखि छ्रां छां विच्चे, ॐ किलि किलि।—यह कुब्जिका-मन्त्र है ॥ २ ॥

करन्यास और अङ्गन्यास करके संध्या-वन्दन करे। वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री—ये क्रमशः तीन संध्याएँ कही गयी हैं ॥ ३ ॥

कौली गायत्री

कुलवागीशि विद्महे, महाकौलीति धीमहि। तन्नः कौली प्रचोदयात्। 'कुलवागीश्वरि! हम आपको जानें। महाकौलीके रूपमें आपका चिन्तन करें। कौली देवी हमें शुभ कर्मोंके लिये प्रेरित करे' ॥ ४ ॥

इसके पाँच मन्त्र हैं, जिनके आदिमें 'प्रणव' और अन्तमें 'नमः' पदका प्रयोग होता है। बीचमें पाँच नाथोंके नाम हैं; अन्तमें 'श्रीपादुकां पूजयामि'—इस पदको

जोड़ना चाहिये। मध्यमें देवताका चतुर्थ्यन्त नाम जोड़ देना चाहिये। इस प्रकार ये पाँचों मन्त्र लगभग अठारह-अठारह अक्षरोंके होते हैं। इन सबके नामोंको षष्ठी विभक्तिके साथ संयुक्त करना चाहिये। इस तरह वाक्य-योजना करके इनके स्वरूप समझने चाहिये। मैं उन पाँचों नाथोंका वर्णन करता हूँ—कौलीशनाथ, श्रीकण्ठनाथ, कौलनाथ, गगनानन्दनाथ तथा तूर्णनाथ। इनकी पूजाका मन्त्र-वाक्य इस प्रकार होना चाहिये—ॐ कौलीशनाथाय नमस्तस्मै पादुकां पूजयामि। इनके साथ क्रमशः ये पाँच देवियाँ भी पूजनीय हैं—१—सुकला देवी, जो जन्मसे ही कुब्जा होनेके कारण 'कुब्जिका' कही गयी हैं; २—चट्टुला देवी, ३—मैत्रीशी देवी, जो विकराल रूपवाली हैं, ४—अतल देवी और ५—श्रीचन्द्रा देवी हैं। इन सबके नामके अन्तमें 'देवी' पद है। इनके पूजनका मन्त्र-वाक्य इस प्रकार होगा—

'ॐ सुकलादेव्यै नमस्तस्यै भगात्मपुरुणदेवमोहिनीं पादुकां पूजयामि।' दूसरी (चट्टुला) देवीकी पादुकाका यह विशेषण देना चाहिये—'अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्यां पादुकां पूजयामि।' इसी तरह तीसरी देवीकी पादुकाका विशेषण 'महाज्ञानाढ्यां', चौथीकी पादुकाका विशेषण 'कमलाढ्यां' तथा पाँचवींकी पादुकाका विशेषण 'परमविद्याढ्यां' देना चाहिये ॥ ५—९ ॥

इस प्रकार विद्या, देवी और गुरु (उपर्युक्त पाँच नाथ)—इन तीनकी शुद्धि 'त्रिशुद्धि' कहलाती है। मैं तुमसे इसका वर्णन करता हूँ। गगनानन्द, चट्टुली, आत्मानन्द, पद्मानन्द, मणि, कला, कमल, माणिक्य कण्ठ, गगन, कुमुद, श्रीपद्म, भैरवानन्द, कमलदेव, शिव, भव तथा कृष्ण—ये सोलह नूतन सिद्ध हैं ॥ १०—११½ ॥

चन्द्रपूर, गुल्म, शुभकाम, अतिमुक्तक, वीरकण्ठ, प्रयोग, कुशल, देवभोगक (अथवा भोगदायक), विश्वदेव, खड्गदेव, रुद्र, धाता, असि, मुद्रास्फोट, वंशपूर तथा भोज—ये सोलह सिद्ध हैं। इन सिद्धोंका शरीर भी छः प्रकारके न्यासोंसे नियन्त्रित होनेके कारण इनके आत्माके समान आत्मिका ही (सच्चिदानन्दमय) हो गया है। मण्डलमें फूल बिखेरकर मण्डलोंकी पूजा करे। अनन्त, महान्, शिवपादुका, महाव्याप्ति, शून्य, पञ्चतत्त्वात्मक-मण्डल, श्रीकण्ठनाथ-पादुका, शंकर एवं अनन्तकी भी पूजा करे ॥ १२—१६ ॥

सदाशिव, पिङ्गल, भृग्वानन्द, नाथ-समुदाय, लाङ्गूलानन्द और संवर्त—इन सबका मण्डल-स्थानमें पूजन करे। नैर्ऋत्यकोणमें श्रीमहाकाल, पिनाकी, महेन्द्र, खड्ग, नाग, बाण, अघासि (पापका छेदन करनेके लिये खड्गरूप), शब्द, वश, आज्ञारूप और नन्दरूप—इनको बलि अर्पित करके क्रमशः इनका पूजन करे। इसके बाद वटुकको अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप, गन्ध एवं बलि तथा क्षेत्रपालको गन्ध, पुष्प और बलि अर्पित करे। इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं वं वं हूं सौं वटुकाय अरु अरु अर्घ्यं पुष्पं धूपं दीपं गन्धं बलिं पूजां गृह्ण गृह्ण नमस्तुभ्यम्। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं क्षेत्रपालाय वतरावतर महाकपिलजटाभार भास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख एह्येहि गन्ध-पुष्पबलिपूजां गृह्ण गृह्ण खः खः ॐ कः ॐ ळः ॐ महाडामराधिपतये स्वाहा। बलिके अन्तमें दायें-बायें तथा सामने त्रिकूटका पूजन करे; इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं ह्रूं ह्रां श्रीं त्रिकूटाय नमः। फिर बायें निशानाथकी, दाहिने तमोऽरिनाथ (या सूर्यनाथ) की तथा सामने कालानलकी पादुकाओंका यजन-पूजन करे। तदनन्तर उड्डियान, जालन्धर, पूर्णगिरि तथा कामरूपका पूजन करना चाहिये। फिर गगनानन्ददेव, वर्गसहित स्वर्गानन्ददेव, परमानन्ददेव, सत्यानन्ददेवकी पादुका तथा नागानन्ददेवकी पूजा करे। इस प्रकार 'वर्ग' नामक पञ्चरत्नका तुमसे वर्णन किया गया है ॥ १७—२३½ ॥

उत्तर और ईशानकोणमें इन छःकी पूजा करे—सुरनाथकी पादुकाकी, श्रीमान् समयकोटीश्वरकी, विद्याकोटीश्वरकी, कोटीश्वरकी, बिन्दुकोटीश्वरकी तथा सिद्धकोटीश्वरकी। अग्निकोणमें चार सिद्ध-समुदायकी तथा अमरीशेश्वर, चक्रीशेश्वर, कुरङ्गेश्वर, वृत्रेश्वर और चन्द्रनाथ या चन्द्रेश्वरकी पूजा करे। इन सबकी गन्ध आदि पञ्चोपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। दक्षिण दिशामें अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, योगीश विमल, सिद्ध विमल और समय विमल—इन पाँच विमलोंका पूजन करे ॥ २४—२७½ ॥

नैर्ऋत्य कोणमें चार वेदोंका, कंदर्पनाथका, पूर्वोक्त सम्पूर्ण शक्तियोंका तथा कुब्जिकाकी श्रीपादुकाका पूजन

१. मन्त्रमहोदधि १२। १७ के अनुसार चार 'सिद्धौघ' गुरु हैं। यथा—योगीश, समय, सहज और परापर। पूजाका मन्त्र—'योगीशानन्दनाथाय नमः, समयानन्दनाथाय नमः' इत्यादि।

करे। इनमें कुब्जिकाकी पूजा 'ॐ ह्रां ह्रीं कुब्जिकायै नमः।'—इस नवाक्षर मन्त्रसे अथवा केवल पाँच प्रणवरूप मन्त्रसे करे। पूर्व दिशासे लेकर ईशानकोण-पर्यन्त ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, अनन्त, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान—इन दस दिक्पालोंकी पूजा करे। सहस्रनेत्रधारी इन्द्र, अनवद्य विष्णु तथा शिवकी पूजा सदा ही करनी चाहिये। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी-इनकी पूजा पूर्व दिशासे लेकर ईशानकोण-पर्यन्त आठ दिशाओंमें क्रमशः करे॥ २८—३१॥

तदनन्तर वायव्यकोणसे छः उग्र दिशाओंमें क्रमशः डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा याकिनी—इनकी पूजा करे। तत्पश्चात् ध्यानपूर्वक कुब्जिकादेवीका पूजन करना चाहिये। बत्तीस व्यञ्जन अक्षर ही उनका शरीर है। उनके पूजनमें पाँच प्रणव अथवा 'ह्रीं' का बीजरूपसे उच्चारण करना चाहिये। (यथा—ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ कुब्जिकायै नमः। अथवा ॐ ह्रीं कुब्जिकायै नमः।)॥ ३२-३३॥

देवीकी अङ्गकान्ति नील कमल-दलके समान श्याम है, उनके छः मुख हैं और उनकी मुखकान्ति भी छः प्रकारकी है। वे चैतन्य-शक्तिस्वरूपा हैं। अष्टादशाक्षर मन्त्रद्वारा उनका प्रतिपादन होता है। उनके बारह भुजाएँ हैं। वे सुखपूर्वक सिंहासनपर विराजमान हैं। प्रेतपद्मके ऊपर बैठी हैं। वे सहस्रों कोटि कुलोंसे सम्पन्न हैं। 'कर्कोटक' नामक नाग उनकी मेखला (करधनी) है। उनके मस्तकपर 'तक्षक' नाग विराजमान है। 'वासुकि' नाग उनके गलेका हार है। उनके दोनों कानोंमें स्थित 'कुलिक' और 'कूर्म' नामक नाग कुण्डल-मण्डल बने हुए हैं। दोनों भौंहोंमें 'पद्म' और 'महापद्म' नामक नागोंकी स्थिति है। बायें हाथोंमें नाग, कपाल, अक्षसूत्र, खट्वाङ्ग, शङ्ख और पुस्तक हैं। दाहिने हाथोंमें त्रिशूल, दर्पण,' खड्ग, रत्नमयी माला, अङ्कुश तथा धनुष हैं। देवीके दो मुख ऊपरकी ओर हैं, जिनमें एक तो पूरा सफेद है और दूसरा आधा सफेद है। उनका पूर्ववर्ती मुख पाण्डुवर्णका है, दक्षिणवर्ती मुख क्रोधयुक्त जान पड़ता है, पश्चिमवाला मुख काला है और उत्तरवर्ती मुख हिम, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान श्वेत है। ब्रह्मा उनके चरणतलमें स्थित हैं, भगवान् विष्णु जघनस्थलमें विराजमान हैं, रुद्र हृदयमें, ईश्वर कण्ठमें, सदाशिव ललाटमें तथा शिव उनके ऊपरी भागमें स्थित हैं। कुब्जिकादेवी झूमती हुई-सी दिखायी देती हैं। पूजा आदि कर्मोंमें कुब्जिकाका ऐसा ही ध्यान करना चाहिये॥ ३४—४०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुब्जिकाकी पूजाका वर्णन' नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४४॥

एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

मालिनी आदि नाना प्रकारके मन्त्र और उनके षोढा-न्यास

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं छः प्रकारके न्यासपूर्वक नाना प्रकारके मन्त्रोंका वर्णन करूँगा। ये छहों प्रकारके न्यास 'शाम्भव,' 'शाक्त' तथा 'यामल' के भेदसे तीन-तीन प्रकारके होते हैं। 'शाम्भव न्यास' में षट्-षोडश ग्रन्थिरूप शब्दराशि प्रथम है, तीन विद्याएँ और उनका ग्रहण द्वितीय न्यास है, त्रितत्त्वात्मक न्यास तीसरा है, वनमालान्यास चौथा है, यह बारह श्लोकोंका है। रत्नपञ्चकका न्यास पाँचवाँ है और नवाक्षरमन्त्रका न्यास छठा कहा गया है॥ १—३॥

शाक्तपक्षमें 'मालिनी'का न्यास प्रथम, 'त्रिविद्या'का न्यास द्वितीय, 'अघोराष्टक'का न्यास तृतीय, 'द्वादशाङ्गन्यास' चतुर्थ, 'षडङ्गन्यास' पञ्चम तथा 'अस्त्रचण्डिका' नामक शक्तिका न्यास छठा है। ह्रीं (श्रीं), ह्रीं, ह्रूं, श्रीं, फ्रूं, फट्—इन छः बीजमन्त्रोंका जो छः प्रकारका न्यास है, यही तीसरा अर्थात् 'यामल न्यास' है। इन छहोंमेंसे चौथा 'श्रीं' बीजका न्यास है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है॥ ४-५॥

'न' से लेकर 'फ' तक जो न्यास बताया जाता है, वह सब मालिनीका ही न्यास है। 'न' से आरम्भ होनेवाली अथवा नाद करनेवाली शक्तिका न्यास शिखामें करना चाहिये। 'ग्र' ग्रसनी शक्ति तथा 'श' शिरोमाला-निवृत्ति

शक्तिका स्थान सिरमें है; अतः वहीं उनका न्यास करे। 'ट' शान्तिका प्रतीक है, इसका न्यास भी सिरमें ही होगा। 'च' चामुण्डाका प्रतीक है, इसका न्यास नेत्रत्रयमें करना चाहिये। 'ढ' प्रियदृष्टिस्वरूप है, इसका न्यास नेत्रद्वयमें होना चाहिये। गुह्यशक्तिका प्रतीक है—'नी', इसका न्यास नासिकाद्वयमें करे। 'न' नारायणीरूप है, इसका स्थान दोनों कानोंमें है। 'त' मोहिनीरूप है, इसका स्थान केवल दाहिने कानमें है। 'ज' प्रज्ञाका प्रतीक है, इसकी स्थिति बायें कानमें बतायी गयी है। वज्रिणी देवीका स्थान मुखमें है। 'क' कराली शक्तिका प्रतीक है, इसकी स्थिति दाहिनी दंष्ट्रा (दाढ़) में है। 'ख' कपालिनीरूप है, 'ख' बायें कंधेपर स्थापित होनेके योग्य है। 'ग' शिवाका प्रतीक है, इसका स्थान ऊपरी दाढ़ोंमें है। 'घ' घोरा शक्तिका सूचक है, इसकी स्थिति बायीं दाढ़में मानी गयी है। 'उ' शिखा शक्तिका सूचक है, इसका स्थान दाँतोंमें है। 'ई' मायाका प्रतीक है, जिसका स्थान जिह्वाके अन्तर्गत माना गया है। 'अ' नागेश्वरीरूप है, इसका न्यास वाक्-इन्द्रियमें होना चाहिये। 'व' शिखिवाहिनीका बोधक है, इसका स्थान कण्ठमें है ॥ ६—१० ॥

'भ' के साथ भीषणी शक्तिका न्यास दाहिने कंधेमें करे। 'म' के साथ वायुवेगाका न्यास बायें कंधेमें करे। 'ड' अक्षर और नामा शक्तिका दाहिनी भुजामें तथा 'ढ' अक्षर एवं विनायका देवीका बायीं भुजामें न्यास करे। 'प' एवं पूर्णिमाका न्यास दोनों हाथोंमें करे। प्रणवसहित ओंकारा शक्तिका दाहिने हाथकी अँगुलियोंमें तथा 'अं' सहित दर्शनीका बायें हाथकी अङ्गुलियोंमें न्यास करे। 'अः' एवं संजीवनी-शक्तिका हाथमें न्यास करे। 'ट' अक्षरसहित कपालिनी शक्तिका स्थान कपाल है। 'त' सहित दीपनीकी स्थिति शूलदण्डमें है। जयन्तीकी स्थिति त्रिशूलमें है। 'य' सहित साधनी देवीका स्थान ऋद्धि (वृद्धि) है ॥ ११—१३ ॥

'श' अक्षरके साथ परमाख्या देवीकी स्थिति जीवमें है। 'ह' अक्षरसहित अम्बिका देवीका न्यास प्राणमें करना चाहिये। 'छ' अक्षरके साथ शरीरा देवीका स्थान दाहिने स्तनमें है। 'न' सहित पूतनाकी स्थिति बायें स्तनमें बतायी गयी है। 'अ' सहित आमोटीका स्तन-दुग्धमें, 'थ' सहित लम्बोदरीका उदरमें, 'क्ष' सहित संहारिकाका नाभिमें तथा 'म' सहित महाकालीका नितम्बमें न्यास करे। 'स' अक्षर-सहित कुसुममालाका गुह्यदेशमें, 'ष' सहित शुक्रदेविकाका शुक्रमें, 'त' सहित तारा देवीका दोनों ऊरुओंमें तथा 'ह' सहित ज्ञानाशक्तिका दाहिने घुटनेमें न्यास करे। 'औ' सहित क्रियाशक्तिका बायें घुटनेमें, 'ओ' सहित गायत्री देवीका दाहिनी जङ्घा (पिण्डली) में, 'ॐ' सहित सावित्रीका बायीं जङ्घामें तथा 'द' सहित दोहिनीका दाहिने पैरमें न्यास करे। 'फ' सहित 'फेत्कारी' का बायें पैरमें न्यास करना चाहिये ॥ १४—१७ ॥

मालिनी-मन्त्र नौ अक्षरोंसे युक्त होता है। 'अ' सहित श्रीकण्ठका शिखामें, 'आ' सहित अनन्तका मुखमें, 'इ' सहित सूक्ष्मका दाहिने नेत्रमें, 'ई' सहित त्रिमूर्तिका बायें नेत्रमें, 'उ' सहित अमरीशका दाहिने कानमें तथा 'ऊ' सहित अर्घीशकका बायें कानमें न्यास करे। 'ऋ' सहित भावभूतिका दाहिने नासाग्रमें, 'ॠ' सहित तिथीशका वामनासाग्रमें, 'ऌ' सहित स्थाणुका दाहिने गालमें तथा 'ॡ' सहित हरका बायें गालमें न्यास करे। 'ए' अक्षरसहित कटीशका नीचेकी दन्तपङ्क्तिमें, 'ऐ' सहित भूतीशका ऊपरकी दन्तपङ्क्तिमें, 'ओ' सहित सद्योजातका नीचेके ओष्ठमें तथा 'औ' सहित अनुग्रहीश (या अनुग्रहेश) का ऊपरके ओष्ठमें न्यास करे। 'अं' सहित क्रूरका गलेकी घाटीमें, 'अः' सहित महासेनका जिह्वामें, 'क' सहित क्रोधीशका दाहिने कंधेमें तथा 'ख' सहित चण्डीशका बाहुओंमें न्यास करे। 'ग' सहित पञ्चान्तकका कूर्परमें, 'घ' सहित शिखीका दाहिने कङ्कणमें, 'ङ' सहित एकपादका दायीं अङ्गुलियोंमें तथा 'च' सहित कूर्मकका बायें कंधेमें न्यास करे ॥ १८—२३ ॥

'छ' सहित एकनेत्रका बाहुमें, 'ज' सहित चतुर्मुखका कूर्पर या कोहनीमें, 'झ' सहित राजसका वामकङ्कणमें तथा 'ञ' सहित सर्वकामदका बायीं अङ्गुलियोंमें न्यास करे। 'ट' सहित सोमेश्वरका नितम्बमें, 'ठ' सहित लाङ्गलीका दक्षिण ऊरु (दाहिनी जाँघ) में, 'ड' सहित दारुकका दाहिने घुटनेमें तथा 'ढ' सहित अर्द्धजलेश्वरका पिण्डलीमें न्यास करे। 'ण' सहित उमाकान्तका दाहिने पैरकी अङ्गुलियोंमें, 'त' सहित आषाढ़ीका नितम्बमें, 'थ' सहित दण्डीका वाम ऊरु (बायीं जाँघ) में तथा 'द' सहित भिदका बायें घुटनेमें न्यास करे। 'ध' सहित मीनका बायीं पिण्डलीमें, 'न' सहित मेषका बायें पैरकी अङ्गुलियोंमें, 'प' सहित लोहितका दाहिनी कुक्षिमें तथा 'फ' सहित शिखीका बायीं कुक्षिमें न्यास करे। 'ब' सहित गलण्डका पृष्ठवंशमें, 'भ' सहित द्विरण्डका

नाभिमें, 'म' सहित महाकालका हृदयमें तथा 'य' सहित बाणीशका त्वचामें न्यास बताया गया है ॥ २४—२८ ॥

'र' सहित भुजङ्गेशका रक्तमें, 'ल' सहित पिनाकीका मांसमें, 'व' सहित खड्गीशका अपने आत्मा (शरीर) में तथा 'श' सहित बकका हड्डीमें न्यास करे। 'ष' सहित श्वेतका मज्जामें, 'स' सहित भृगुका शुक्र एवं धातुमें, 'ह' सहित नकुलीशका प्राणमें तथा 'क्ष' सहित संवर्तका पञ्च-कोशोंमें न्यास करना चाहिये। 'ह्रौं' बीजसे बहुशक्तियोंका पूजन करके उपासक सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मालिनी-मन्त्र आदिके न्यासका वर्णन' नामक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४५ ॥

एक सौ छियालीसवाँ अध्याय

त्रिखण्डी-मन्त्रका वर्णन, पीठस्थानपर पूजनीय शक्तियों तथा आठ अष्टक देवियोंका कथन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली त्रिखण्डीका वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

'ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः। नमश्चामुण्डे नमश्चाकाशमातॄणां सर्वकामार्थसाधनीनामजरामरीणां सर्वत्राप्रतिहतगतीनां स्वरूपपरिवर्तिनीनां सर्वसत्त्ववशीकरणोत्सादनोन्मूलनसमस्तकर्मप्रवृत्तानां सर्वमातृगुह्यं हृदयं परमसिद्धं परकर्मच्छेदनं परमसिद्धिकरं मातॄणां वचनं शुभम्।' इस ब्रह्मखण्डपदमें रुद्रमन्त्र-सम्बन्धी एक सौ इक्कीस अक्षर हैं ॥ २—३ ॥

[अब विष्णु-खण्डपद बताया जाता है—] ॐ नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे माहेश्वरि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे कौमारि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे वैष्णवि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे वाराहि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे इन्द्राणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे चण्डि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे ईशानि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। यह यथोचित अक्षरवाले पदोंका दूसरा मन्त्रखण्ड है, जो 'विष्णुखण्डपद' कहा गया है ॥ ४—५ ॥

[अब महेश्वरखण्डपद बताया जाता है—] ॐ नमश्चामुण्डे ऊर्ध्वकेशि ज्वलितशिखरे विद्युज्जिह्वे तारकाक्षि पिङ्गलभ्रुवे विकृतदंष्ट्रे क्रुद्धे, ॐ मांसशोणितसुरासवप्रिये हस हस ॐ नृत्य नृत्य ॐ विजृम्भय विजृम्भय ॐ मायात्रैलोक्यरूपसहस्रपरिवर्तिनीनाम् बन्ध बन्ध, ॐ कुह कुह चिरि चिरि हिरि हिरि भिरि भिरि त्रासनि त्रासनि भ्रामणि भ्रामणि, ॐ द्रावणि द्रावणि क्षोभणि क्षोभणि मारणि मारणि संजीवनि संजीवनि हेरि हेरि गेरि गेरि घेरि घेरि, ॐ सुरि सुरि ॐ नमो मातृगणाय नमो नमो विच्चे ॥ ६ ॥

यह माहेश्वरखण्ड एकतीस पदोंका है। इसमें एक सौ एकहत्तर अक्षर हैं। इन तीनों खण्डोंको 'त्रिखण्डी' कहते हैं। इस त्रिखण्डी-मन्त्रके आदि और अन्तमें 'हूं घों' तथा पाँच प्रणव जोड़कर उसका जप एवं पूजन करना चाहिये। 'हूं घों श्रीकुब्जिकायै नमः।'—इस मन्त्रको त्रिखण्डीके पदोंकी संधियोंमें जोड़ना चाहिये। अकुलादि त्रिमध्यग, कुलादि त्रिमध्यग, मध्यमादि त्रिमध्यग तथा पाद-त्रिमध्यग—ये चार प्रकारके मन्त्र-पिण्ड हैं। साढ़े तीन मात्राओंसे युक्त प्रणवको आदिमें लगाकर इनका जप अथवा इनके द्वारा यजन करना चाहिये। तदनन्तर भैरवके शिखा-मन्त्रका जप एवं पूजन करे—'ॐ क्षौं शिखाभैरवाय नमः' ॥ ७—९½ ॥

'स्खां स्खीं स्खें'—ये तीन सबीज त्र्यक्षर हैं। 'ह्रां ह्रीं ह्रें'—ये निर्बीज त्र्यक्षर हैं। विलोम-क्रमसे 'क्ष' से लेकर 'क' तकके बत्तीस अक्षरोंकी वर्णमाला 'अकुला' कही गयी है। अनुलोम-क्रमसे गणना होनेपर वह 'सकुला' कही जाती है। शशिनी, भानुनी, पावनी, शिव, गन्धारी, 'ण' पिण्डाक्षी, चपला, गजजिह्विका, 'म' मृषा, भयसारा, मध्यमा, 'फ' अजरा, 'य' कुमारी, 'न' कालरात्री, 'द' संकटा, 'ध' कालिका, 'फ' शिवा, 'ण' भवघोरा, 'ट' बीभत्सा, 'त' विद्युता, 'ठ' विश्वम्भरा और शंसिनी अथवा 'ड' विश्वम्भरा, 'आ' शंसिनी, 'द' ज्वालामालिनी, कराली,

दुर्जया, रङ्गी, वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री, 'ख' काली, 'क' कुलकन्यी, अनुलोमा, 'इ' पिण्डिनी, 'आ' वेदिनी, 'ई' रूपी, 'ऐ' शान्तिमूर्ति एवं कलाकुला, 'ॠ' खड्गिनी, 'उ' बलिता, 'लृ' कुला, 'ॡ' सुभगा, वेदनादिनी और कराली, 'अं' मध्यमा तथा 'अः' अपेतरया—इन शक्तियोंका योगपीठपर क्रमशः पूजन करना चाहिये ॥ १०-१७ ॥

'स्ख्रां स्ख्रीं स्ख्रौं महाभैरवाय नमः ।'—यह महाभैरवके पूजनका मन्त्र है । (ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियोंके साथ पृथक् आठ-आठ शक्तियाँ और हैं, जिन्हें 'अष्टक' कहा गया है । उनका क्रमशः वर्णन किया जाता है ।) अक्षोद्या, ऋक्षकर्णी, राक्षसी, क्षपणा, क्षया, पिङ्गाक्षी, अक्षया और क्षेमा—ये ब्रह्माणीके अष्टक-दलमें स्थित होती हैं । इला, लीलावती, नीला, लङ्का, लङ्केश्वरी, लालसा, विमला और माला—ये माहेश्वरी-अष्टकमें स्थित हैं । हुताशना, विशालाक्षी, हुंकारी, वडवामुखी, हाहारवा, क्रूरा, क्रोधा तथा खरानना बाला—ये आठ कौमारीके शरीरसे प्रकट हुई हैं । इनका पूजन करनेपर ये सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली होती हैं । सर्वज्ञा, तरला, तारा, ऋग्वेदा, हयानना, सारासारा, स्वयंग्राहा तथा शाश्वती—ये आठ शक्तियाँ वैष्णवीके कुलमें प्रकट हुई हैं ॥ १८-२२½ ॥

तालुजिह्वा, रक्ताक्षी, विद्युज्जिह्वा, करङ्किणी, मेघनादा, प्रचण्डोग्रा, कालकर्णी तथा कलिप्रिया—ये वाराहीके कुलमें उत्पन्न हुई हैं । विजयकी इच्छावाले पुरुषको इनकी पूजा करनी चाहिये । चम्पा, चम्पावती, प्रचम्पा, ज्वलिताननां, पिशाची, पिचुवक्त्रा तथा लोलुपा—ये इन्द्राणी शक्तिके कुलमें उत्पन्न हुई हैं । पावनी, याचनी, वामनी, दमनी, विन्दुवेला, बृहत्कुक्षी, विद्युता तथा विश्वरूपिणी—ये चामुण्डाके कुलमें प्रकट हुई हैं और मण्डलमें पूजित होनेपर विजय दायिनी होती हैं ॥ २३-२६½ ॥

यमजिह्वा, जयन्ती, दुर्जया, यमान्तिका, बिडाली, रेवती, जया और विजया—ये महालक्ष्मीके कुलमें उत्पन्न हुई हैं । इस प्रकार आठ अष्टकोंका वर्णन किया गया ॥ २७-२८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आठ अष्टक देवियोंका वर्णन' नामक एक सौ छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४६ ॥

एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

गुह्यकुब्जिका, नवा त्वरिता तथा दूतियोंके मन्त्र एवं न्यास-पूजन आदिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! (अब मैं गुह्यकुब्जिका, नवा त्वरिता, दूती तथा त्वरिताके गुह्याङ्ग एवं तत्त्वोंका वर्णन करूँगा—) **'ॐ गुह्यकुब्जिके हुं फट् मम सर्वोपद्रवान् यन्त्रमन्त्रतन्त्रचूर्णप्रयोगादिकं येन कृतं कारितं कुरुते करिष्यति कारयिष्यति तान् सर्वान् हन हन दंष्ट्राकरालिनि ह्रैं ह्रीं हुं गुह्यकुब्जिकायै स्वाहा ह्रौं, ॐ खें वों गुह्यकुब्जिकायै नमः ।'** (इस मन्त्रसे गुह्यकुब्जिकाका पूजन एवं जप करना चाहिये ।) **'ह्रीं सर्वजनक्षोभणी जनानुकर्षिणी ॐ खें क्ष्यां क्ष्यौं सर्वजनवशंकरी जनमोहनी, ॐ क्ष्यौं सर्वजनस्तम्भनी, ऐं खं खां क्षोभणी, ऐं त्रितत्त्वं बीजं श्रेष्ठं कुले पञ्चाक्षरी, फं श्रीं क्लीं ह्रीं क्षें वच्छे क्षे क्षे हूं फट्, ह्रीं नमः । ॐ ह्रां वच्छे क्षे क्षें क्षों ह्रीं फट् ॥ १-४ ॥**

यह 'नवा त्वरिता' बतायी गयी है । इसे बारंबार जपना (जपना) चाहिये । इसकी पूजा की जाय तो यह विजयदायिनी होती है । **'ह्रीं सिंहाय नमः ।'** इस मन्त्रसे आसनकी पूजा करके देवीको सिंहासन समर्पित करे । **'ह्रीं क्षें हृदयाय नमः ।'** बोलकर हृदयका स्पर्श करे । **'वच्छे शिरसे स्वाहा ।'** बोलकर सिरका स्पर्श करे—इस प्रकार यह 'त्वरितामन्त्र'का शिरोन्यास बताया गया है । **'क्षें ह्रीं शिखायै वषट् ।'** ऐसा कहकर शिखाका स्पर्श करे । **'क्षें कवचाय हुम् ।'** कहकर दोनों भुजाओंका स्पर्श करे । **'हूं नेत्रत्रयाय वौषट् ।'** कहकर दोनों नेत्रोंका तथा ललाटके मध्यभागका स्पर्श करे । **'ह्रीं अस्त्राय फट् ।'** कहकर ताली बजाये । ह्रींकारी, खेचरी, चण्डा, छेदनी, क्षोभणी, क्रिया, क्षेमकारी, हुंकारी तथा फट्कारी—ये नौ शक्तियाँ हैं ॥ ५-७½ ॥

अब दूतियोंका वर्णन करता हूँ । इन सबका पूर्व आदि दिशाओंमें पूजन करना चाहिये—**'ह्रीं नले बहुतुण्डे च खगे ह्रीं खेचरे ज्वालिनि ज्वल ख से छ च्छे शवविभीषणे चच्छे चण्डे छेदनि करालि ख खे छे खे करहाली ह्रीं क्षे वक्षे कपिले ह क्षे हूं कूं तेजोवति रौद्रि मातः ह्रीं के वे फे फे वक्त्रे बरी**

खे शुरि शुरि घोरे हुं फट् महावेतालि मध्ये ।' (यह दूती मन्त्र है ॥ ८-९ ॥

अब पुनः त्वरिताके गुह्याङ्गों तथा तत्त्वोंका वर्णन करता हूँ । 'ह्रौं ह्रूँ हः हृदयाय नमः ।' इसका हृदयमें न्यास करे । 'ह्रीं हः शिरसे स्वाहा ।' ऐसा कहकर सिरमें न्यास करे । 'फां ज्वल ज्वल शिखायै वषट् ।' कहकर शिखामें, 'हूके हं हुं कवचाय हुम् ।' कहकर दोनों भुजाओंमें, 'क्षौं क्षूं क्षीं नेत्रत्रयाय वौषट् ।' बोलकर नेत्रोंमें तथा ललाटके मध्यभागमें न्यास करे । 'क्षौं अस्त्राय फट् ।' कहकर दोनों हाथोंसे ताली बजाये अथवा 'हुं खे च्छे क्षे ह्रीं क्षें हुं अस्त्राय फट् ।' कहकर ताली बजानी चाहिये ॥ १०-१२ ॥

मध्यभागमें 'हुं स्वाहा ।' लिखे तथा पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः 'खे सदाशिवे, च ईशः, छे मनोन्मनी, मक्षे तार्क्ष्यः, ह्रीं माधवः क्षें ब्रह्मा, हुम् आदित्यः, दारुणं फट्'का उल्लेख एवं पूजन करे । ये आठ दिशाओंमें पूजनीय देवता बताये गये हैं ॥ १३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्वरिता-पूजा आदिकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४७ ॥

एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

संग्राम-विजयदायक सूर्य-पूजनका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! (अब मैं संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके पूजनकी विधि बताता हूँ ।) 'ॐ डे ख ख्यां सूर्याय संग्रामविजयाय नमः ।' यह मन्त्र है । ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः—ये संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके छः अङ्ग हैं, अर्थात् इनके द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिये । यथा—'ह्रां हृदयाय नमः । ह्रीं शिरसे स्वाहा । ह्रूं शिखायै वषट् । ह्रैं कवचाय हुम् । ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ह्रः अस्त्राय फट्' ॥ १-२ ॥

'ॐ हं खं खखोल्काय स्वाहा ।' —यह पूजाके लिये मन्त्र है । 'स्फूं हूं हुं म्रूं ॐ ह्रौं क्षेम्'—ये छः अङ्गन्यासके बीज-मन्त्र हैं । पीठस्थानमें प्रभूत, विमल, सार, आराध्य एवं परम सुखका पूजन करे । पीठके पायों तथा बीचकी चार दिशाओंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य—इन आठोंकी पूजा करे । तदनन्तर अनन्तासन, सिंहासन एव पद्मासनकी पूजा करे । इसके बाद कमलकी कर्णिका एवं केसरोंकी, वहीं सूर्यमण्डल, सोममण्डल तथा अग्निमण्डलकी पूजा करे । फिर दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा नवीं सर्वतोमुखी— इन नौ शक्तियोंका पूजन करे ॥ ३-६ ॥

तत्पश्चात् सत्त्व, रज और तमका, प्रकृति और पुरुषका, आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका पूजन करे । ये सभी अनुस्वारयुक्त आदि अक्षरसे युक्त होकर अन्तमें 'नमः' के साथ चतुर्थ्यन्त होनेपर पूजाके मन्त्र हो जाते हैं । यथा—'सं सत्त्वाय नमः । अं अन्तरात्मने नमः ।' इत्यादि । इसी तरह उषा, प्रभा, सन्ध्या, साया, माया, बला, बिन्दु, विष्णु तथा आठ द्वारपालोंकी पूजा करे । इसके बाद गन्ध आदिसे सूर्य, चण्ड और प्रचण्डका पूजन करे । इस प्रकार पूजा तथा जप, होम आदि करनेसे युद्ध आदिमें विजय प्राप्त होती है ॥ ७-९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'संग्राम-विजयदायक सूर्यदेवकी पूजाका वर्णन' नामक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४८ ॥

एक सौ उनचासवाँ अध्याय

होमके प्रकार-भेद एवं विविध फलोंका कथन

भगवान् महेश्वरने कहा—देवि ! होमसे युद्धमें विजय, राज्यप्राप्ति और विघ्नोंका विनाश होता है । पहले 'कृच्छ्रव्रत' करके देहशुद्धि करे । तदनन्तर सौ प्राणायाम करके शरीरका शोधन करे । फिर जलके भीतर गायत्री-जप करके सोलह बार प्राणायाम करे । पूर्वाह्णकालमें अग्निमें आहुति समर्पित करे । भिक्षाद्वारा प्राप्त यवनिर्मित भोज्यपदार्थ,

फल, मूल, दुग्ध, सत्तू और घृतका आहार यज्ञकालमें विहित है ॥ १-३ ॥

पार्वति ! लक्ष-होमकी समाप्ति-पर्यन्त एक समय भोजन करे। लक्ष-होमकी पूर्णाहुतिके पश्चात् गौ, वस्त्र एवं सुवर्णकी दक्षिणा दे। सभी प्रकारके उत्पातोंके प्रकट होनेपर पाँच या दस ऋत्विजोंसे पूर्वोक्त यज्ञ करावे। इस लोकमें ऐसा कोई उत्पात नहीं है, जो इससे शान्त न हो जाय। इससे बढ़कर परम मङ्गलकारक कोई वस्तु नहीं है। जो नरेश पूर्वोक्त विधिसे ऋत्विजोंद्वारा कोटि-होम कराता है, युद्धमें उसके सम्मुख शत्रु कभी नहीं ठहर सकते हैं। उसके राज्यमें अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषकोपद्रव, टिड्डीदल, शुकोपद्रव एवं भूत राक्षस तथा युद्धमें समस्त शत्रु शान्त हो जाते हैं। कोटि-होममें बीस, सौ अथवा सहस्र ब्राह्मणोंका वरण करे। इससे यजमान इच्छानुकूल धन-वैभवकी प्राप्ति करता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य इस कोटिहोमात्मक यज्ञका अनुष्ठान करता है, वह जिस पदार्थकी इच्छा करता है, उसको प्राप्त करता है। वह सशरीर स्वर्गलोकको जाता है ॥ ४-९½ ॥

गायत्री-मन्त्र, ग्रह-सम्बन्धी मन्त्र, कूष्माण्ड-मन्त्र, जातवेदा—अग्नि-सम्बन्धी अथवा ऐन्द्र, वारुण, वायव्य, याम्य, आग्नेय, वैष्णव, शाक्त, शैव एवं सूर्यदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंसे होम-पूजन आदिका विधान है। अयुत-होमसे अल्प सिद्धि होती है। लक्ष-होम सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है। कोटि-होम समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाला और सम्पूर्ण पदार्थोंको प्रदान करनेवाला है। यव, धान्य, तिल, दुग्ध, घृत, कुश, प्रसातिका (छोटे दानेका चावल), कमल, खस, बेल और आम्रपत्र होमके योग्य माने गये हैं। कोटि-होममें आठ हाथ और लक्ष होममें चार हाथ गहरा कुण्ड बनावे। अयुत-होम, लक्ष-होम और कोटि होममें घृतका हवन करना चाहिये ॥ १० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णवके अन्तर्गत अयुत-लक्ष-कोटिहोम' नामक एक सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४९ ॥

एक सौ पचासवाँ अध्याय

मन्वन्तरोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं मन्वन्तरोंका वर्णन करूँगा। सबसे प्रथम स्वायम्भुव मनु हुए हैं। उनके आग्नीध्र आदि पुत्र थे। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें यम नामक देवता और्व आदि सप्तर्षि तथा शतक्रतु इन्द्र थे। दूसरे मन्वन्तरका नाम था—स्वारोचिष; उसमें पारावत और तुषित नामधारी देवता थे। स्वारोचिष मनुके चैत्र और किम्पुरुष आदि पुत्र थे। उस समय विपश्चित् नामक इन्द्र तथा ऊर्जस्वन्त आदि द्विज (सप्तर्षि) थे। तीसरे मनुका नाम उत्तम हुआ; उनके पुत्र अज आदि थे। उनके समयमें सुशान्ति नामक इन्द्र, सुधामा आदि देवता तथा वसिष्ठके पुत्र सप्तर्षि थे। चौथे मनु तामस नामसे विख्यात हुए; उस समय स्वरूप आदि देवता, शिखरी इन्द्र, ज्योतिर्होम आदि ब्राह्मण (सप्तर्षि) थे तथा उनके ख्याति आदि नौ पुत्र हुए ॥ १-५ ॥

रैवत नामक पाँचवें मन्वन्तरमें वितथ इन्द्र, अमिताभ देवता, हिरण्यरोमा आदि मुनि तथा बलबन्ध आदि पुत्र थे। छठे चाक्षुष मन्वन्तरमें मनोजव नामक इन्द्र और स्वाति आदि देवता थे। सुमेधा आदि महर्षि और पुरु आदि मनु-पुत्र थे। तत्पश्चात् सातवें मन्वन्तरमें सूर्यपुत्र श्राद्धदेव मनु हुए। इनके समयमें आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देवता; पुरन्दर नामक इन्द्र; वसिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र तथा भरद्वाज सप्तर्षि हैं। यह वर्तमान मन्वन्तरका वर्णन है। वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु आदि पुत्र थे। इन सभी मन्वन्तरोंमें भगवान् श्रीहरिके अंशावतार हुए हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् 'मानस' के नामसे प्रकट हुए थे। तदनन्तर शेष छः मन्वन्तरोंमें क्रमशः अजित, सत्य, हरि, देववर, वैकुण्ठ और वामन रूपमें श्रीहरिका प्रादुर्भाव हुआ। छायाके गर्भसे उत्पन्न सूर्यनन्दन सावर्णि आठवें मनु होंगे ॥ ६-११ ॥

वे अपने पूर्वज (ज्येष्ठ भ्राता) श्राद्धदेवके समान वर्ण-वाले हैं, इसलिये 'सावर्णि' नामसे विख्यात होंगे। उनके समयमें सुतपा आदि देवता, परम तेजस्वी अश्वत्थामा आदि

भगवान बुद्ध

भगवान कल्कि

सप्तर्षि, अद्भुत इन्द्र और विरज आदि मनुपुत्र होंगे। नवें मनुका नाम दक्षसावर्णि होगा। उस समय पार आदि देवता होंगे। उन देवताओंके इन्द्रकी 'अद्भुत' संज्ञा होगी। उनके समयमें सवन आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण सप्तर्षि होंगे और 'धृतकेतु' आदि मनुपुत्र। तत्पश्चात् दसवें मनु ब्रह्मसावर्णिके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उस समय सुख आदि देवगण, शान्ति इन्द्र, हविष्य आदि मुनि तथा सुक्षेत्र आदि मनुपुत्र होंगे ॥ १२–१५ ॥

तदनन्तर धर्मसावर्णि नामक ग्यारहवें मनुका अधिकार होगा। उस समय विहङ्ग आदि देवता, गण इन्द्र, निश्चर आदि मुनि तथा सर्वत्रग आदि मनुपुत्र होंगे। इसके बाद बारहवें मनु रुद्रसावर्णिके नामसे विख्यात होंगे। उनके समयमें ऋतधामा नामक इन्द्र और हरित आदि देवता होंगे। तपस्य आदि सप्तर्षि और देववान् आदि मनुपुत्र होंगे। तेरहवें मनुका नाम होगा रौच्य। उस समय सूत्रामणि आदि देवता तथा दिवस्पति इन्द्र होंगे, जो दानव-दैत्य आदिका मर्दन करनेवाले होंगे। रौच्य मन्वन्तरमें निर्मोह आदि सप्तर्षि तथा चित्रसेन आदि मनु-पुत्र होंगे। चौदहवें मनु भौत्यके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उनके समयमें शुचि इन्द्र, चाक्षुष आदि देवता तथा अग्निबाहु आदि सप्तर्षि होंगे। चौदहवें मनुके पुत्र ऊरु आदिके नामसे विख्यात होंगे ॥ १६–२०½ ॥

सप्तर्षि द्विजगण भूमण्डलपर वेदोंका प्रचार करते हैं, देवगण यज्ञ-भागके भोक्ता होते हैं तथा मनु-पुत्र इस पृथ्वीका पालन करते हैं। ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। मनु, देवता तथा इन्द्र आदि भी उतनी ही बार होते हैं। प्रत्येक द्वापरके अन्तमें व्यासरूपधारी श्रीहरि वेदका विभाग करते हैं। आदि वेद एक ही था, जिसमें चार चरण और एक लाख ऋचाएँ थीं। पहले एक ही यजुर्वेद था, उसे मुनिवर व्यासजीने चार भागोंमें विभक्त कर दिया। उन्होंने अध्वर्युका काम यजुर्भागसे, होताका कार्य ऋग्वेदकी ऋचाओंसे, उद्गाताका कर्म साम-मन्त्रोंसे तथा ब्रह्माका कार्य अथर्ववेदके मन्त्रोंसे होना निश्चित किया। व्यासके प्रथम शिष्य पैल थे, जो ऋग्वेदके पारंगत पण्डित हुए ॥ २१–२५ ॥

इन्द्रने प्रमति और बाष्कलको संहिता प्रदान की। बाष्कलने भी बौध्य आदिको चार भागोंमें विभक्त अपनी संहिता दी। व्यासजीके शिष्य परम बुद्धिमान् वैशम्पायनने यजुर्वेदरूप वृक्षकी सत्ताईस शाखाएँ निर्माण कीं। काण्व और वाजसनेय आदि शाखाओंको याज्ञवल्क्य आदिने सम्पादित किया है। व्यास-शिष्य जैमिनिने सामवेदरूपी वृक्षकी शाखाएँ बनायीं। फिर सुमन्तु और सुकर्माने एक-एक संहिता रची। सुकर्माने अपने गुरुसे एक हजार संहिताओंको ग्रहण किया। व्यास-शिष्य सुमन्तुने अथर्ववेदकी भी एक शाखा बनायी तथा उन्होंने पैप्पल आदि अपने सहस्रों शिष्योंको उसका अध्ययन कराया। भगवान् व्यासदेवजीकी कृपासे सूतने पुराण-संहिताका विस्तार किया ॥ २६–३१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्वन्तरोंका वर्णन' नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५० ॥

एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय

वर्ण और आश्रमके सामान्य-धर्म, वर्णों तथा विलोमज जातियोंके विशेष धर्म

अग्निदेव कहते हैं—मनु आदि राजर्षि जिन धर्मोंका अनुष्ठान करके भोग और मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं, उनका वरुण देवताने पुष्करको उपदेश किया था और पुष्करने श्रीपरशुरामजीसे उनका वर्णन किया था ॥ १ ॥

पुष्करने कहा—परशुरामजी! मैं वर्ण, आश्रम तथा इनसे भिन्न धर्मोंका आपसे वर्णन करूँगा। वे धर्म सब कामनाओंको देनेवाले हैं। मनु आदि धर्मात्माओंने भी उनका उपदेश किया है तथा वे भगवान् वासुदेव आदिको संतोष प्रदान करनेवाले हैं। भृगुश्रेष्ठ! अहिंसा, सत्य-भाषण, दया, सम्पूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह, तीर्थोंका अनुसरण, दान, ब्रह्मचर्य, मत्सरताका अभाव, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी सेवा, सब धर्मोंका श्रवण, पितरोंका पूजन, मनुष्योंके स्वामी श्रीभगवान्‌में सदा भक्ति रखना, उत्तम शास्त्रोंका अवलोकन करना, क्रूरताका अभाव, सहनशीलता तथा आस्तिकता (ईश्वर और परलोकपर विश्वास रखना)—ये वर्ण और आश्रम दोनोंके लिये 'सामान्य धर्म' बताये गये हैं। जो इसके विपरीत है, वही 'अधर्म' है। यज्ञ करना और कराना, दान देना, वेद पढ़ानेका कार्य करना, उत्तम प्रतिग्रह

लेना तथा स्वाध्याय करना—ये ब्राह्मणके कर्म हैं। दान देना, वेदोंका अध्ययन करना और विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान करना—ये क्षत्रिय और वैश्यके सामान्य कर्म हैं। प्रजाका पालन करना और दुष्टोंको दण्ड देना—ये क्षत्रियके विशेष धर्म हैं। खेती, गोरक्षा और व्यापार—ये वैश्यके विशेष कर्म बताये गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन द्विजोंकी सेवा तथा सब प्रकारकी शिल्प-रचना—ये शूद्रके कर्म हैं ॥ २-९ ॥

मौञ्जी-बन्धन (यज्ञोपवीत-संस्कार) होनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-बालकका द्वितीय जन्म होता है; इसलिये वे 'द्विज' कहलाते हैं। यदि अनुलोम-क्रमसे वर्णोंकी उत्पत्ति हो तो माताके समान बालककी जाति मानी गयी है ॥ १० ॥

विलोम-क्रमसे अर्थात् शूद्रके वीर्यसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मणीका पुत्र 'चाण्डाल' कहलाता है, क्षत्रियके वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला ब्राह्मणीका पुत्र 'सूत' कहा गया है और वैश्यके वीर्यसे उत्पन्न होनेपर उसकी 'वैदेहक' संज्ञा होती है। क्षत्रिय जातिकी स्त्रीके पेटसे शूद्रके द्वारा उत्पन्न हुआ विलोमज पुत्र 'पुक्कस' कहलाता है। वैश्य और शूद्रके वीर्यसे उत्पन्न होनेपर क्षत्रियाके पुत्रकी क्रमशः 'मागध' और 'अयोगव' संज्ञा होती है। वैश्य जातिकी स्त्रीके गर्भसे शूद्र एवं विलोमज जातियोंद्वारा उत्पन्न विलोमज संतानोंके हजारों भेद हैं। इन सबका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध समान जातिवालोंके साथ ही होना चाहिये; अपनेसे ऊँची और नीची जातिके लोगोंके साथ नहीं ॥ ११-१३ ॥

वधके योग्य प्राणियोंका वध करना—यह चाण्डालका कर्म बताया गया है। स्त्रियोंके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंके निर्माण-से जीविका चलाना तथा स्त्रियोंकी रक्षा करना—यह 'वैदेहक' का कार्य है। सूतोंका कार्य है—घोड़ोंका सारथिपना, 'पुक्कस' व्याध-वृत्तिसे रहते हैं तथा 'मागध'का कार्य है—स्तुति करना, प्रशंसाके गीत गाना। 'अयोगव'का कर्म है—रङ्गभूमिमें उतरना और शिल्पके द्वारा जीविका चलाना। 'चण्डाल'को गाँवके बाहर रहना और मुर्देसे उतारे हुए वस्त्रको धारण करना चाहिये। चाण्डालको दूसरे वर्णके लोगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणों तथा गौओंकी रक्षाके लिये प्राण त्यागना अथवा स्त्रियों एवं बालकोंकी रक्षाके लिये देह-त्याग करना वर्ण-बाह्य चाण्डाल आदि जातियोंकी सिद्धिका (उनकी आध्यात्मिक उन्नति) का कारण माना गया है। वर्णसंकर व्यक्तियोंकी जाति उनके पिता-माता तथा जातिसिद्ध कर्मोंसे जाननी चाहिये ॥ १४-१८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वर्णान्तर-धर्मोंका वर्णन' नामक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५१ ॥

एक सौ बावनवाँ अध्याय

गृहस्थकी जीविका

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! ब्राह्मण अपने शास्त्रोक्त कर्मसे ही जीविका चलावे; क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके धर्मसे जीवन-निर्वाह न करे। आपत्तिकालमें क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्ति ग्रहण कर ले; किंतु शूद्र-वृत्तिसे कभी गुजारा न करे। द्विज खेती, व्यापार, गोपालन तथा कुसीद (सूद लेना)—इन वृत्तियोंका अनुष्ठान करे; परंतु वह गोरस, गुड़, नमक, लाक्षा और मांस न बेचे। किसान लोग धरतीको कोड़ने-जोतनेके द्वारा जो कीड़े और चींटी आदिकी हत्या कर डालते हैं और खोहनीके द्वारा जो पौधोंको नष्ट कर डालते हैं, उससे यज्ञ और देवपूजा करके मुक्त होते हैं ॥ १-३ ॥

आठ बैलोंका हल धर्मानुकूल माना गया है। जीविका चलानेवालोंका हल छः बैलोंका, निर्दयी हत्यारोंका हल चार बैलोंका तथा धर्मका नाश करनेवाले मनुष्योंका हल दो बैलोंका माना गया है। ब्राह्मण ऋत[1] और अमृतसे[2] अथवा मृत[3] और प्रमृतसे[4] या सत्यानृत[5] वृत्तिसे जीविका चलावे। श्वान-वृत्तिसे[6] कभी जीवन-निर्वाह न करे ॥ ४-५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गृहस्थ-जीविकाका वर्णन' नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५२ ॥

१. खेत कट जानेपर बाल बीनना अथवा अनाजके एक-एक दानेको चुन-चुनकर लाना और उसीसे जीविका चलाना 'ऋत' कहलाता है। २. बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, वह 'अमृत' है। ३. माँगी हुई भीखको 'मृत' कहते हैं। ४. खेतीका नाम 'प्रमृत' है। ५. व्यापारको 'सत्यानृत' कहते हैं। ६. नौकरीका नाम 'श्वान-वृत्ति' है।

एक सौ तिरपनवाँ अध्याय

संस्कारोंका वर्णन और ब्रह्मचारीके धर्म

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी ! अब मैं आश्रमी पुरुषोंके धर्मका वर्णन करूँगा; सुनो । यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है । स्त्रियोंके ऋतुधर्मकी सोलह रात्रियाँ होती हैं, उनमें पहलेकी तीन रातें निन्दित हैं । शेष रातोंमें जो युग्म अर्थात् चौथी, छठी, आठवीं और दसवीं आदि रात्रियाँ हैं, उनमें ही पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष स्त्री-समागम करे । यह 'गर्भाधान-संस्कार' कहलाता है । 'गर्भ' रह गया—इस बातका स्पष्टरूपसे ज्ञान हो जानेपर गर्भस्थ शिशुके हिलने-डुलनेसे पहले ही 'पुंसवन-संस्कार' होता है । तत्पश्चात् छठे या आठवें मासमें 'सीमन्तोन्नयन' किया जाता है । उस दिन पुँल्लिङ्ग नामवाले नक्षत्रका होना शुभ है । बालकका जन्म होनेपर नाल काटनेके पहले ही विद्वान् पुरुषोंको उसका 'जातकर्म-संस्कार' करना चाहिये । सूतक निवृत्त होनेपर 'नामकरण-संस्कार'का विधान है । ब्राह्मणके नामके अन्तमें 'शर्मा' और क्षत्रियके नामके अन्तमें 'वर्मा' होना चाहिये । वैश्य और शूद्रके नामोंके अन्तमे क्रमशः 'गुप्त' और 'दास' पदका होना उत्तम माना गया है । उक्त संस्कारके समय पत्नी स्वामीकी गोदमें पुत्रको दे और कहे—'यह आपका पुत्र है' ॥ १–५ ॥

फिर कुलाचारके अनुरूप 'चूडाकरण' करे । ब्राह्मण-बालकका 'उपनयन-संस्कार' गर्भ अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें होना चाहिये । गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय-बालकका तथा गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्य-बालकका उपनयन करना चाहिये । ब्राह्मण-बालकका उपनयन सोलहवें, क्षत्रिय-बालकका बाईसवें और वैश्य-बालकका चौबीसवें वर्षसे आगे नहीं जाना चाहिये । तीनों वर्णोंके लिये क्रमशः मूँज, प्रत्यञ्चा तथा वल्कलकी मेखला बतायी गयी है । इसी प्रकार तीनों वर्णोंके ब्रह्मचारियोंके लिये क्रमशः मृग, व्याघ्र तथा बकरेके चर्म और पलाश, पीपल तथा बेलके दण्ड धारण करने योग्य बताये गये हैं । ब्राह्मणका दण्ड उसके केशतक, क्षत्रियका ललाटतक और वैश्यका मुखतक लंबा होना चाहिये । इस प्रकार क्रमशः दण्डोंकी लंबाई बतायी गयी है । ये दण्ड टेढ़े-मेढ़े न हों । इनके छिलके मौजूद हों तथा ये आगमें जलाये न गये हों ॥ ६–९ ॥

उक्त तीनों वर्णोंके लिये वस्त्र और यज्ञोपवीत क्रमशः कपास (रुई), रेशम तथा ऊनके होने चाहिये । ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा माँगते समय वाक्यके आदिमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे । [जैसे माताके पास जाकर कहे—'भवति भिक्षां मे देहि मातः ।' पूज्य माताजी ! मुझे भिक्षा दें ।] इसी प्रकार क्षत्रिय ब्रह्मचारी वाक्यके मध्यमें तथा वैश्य ब्रह्मचारी वाक्यके अन्तमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे । [यथा—क्षत्रिय—भिक्षां भवति मे देहि । वैश्य—भिक्षां मे देहि भवति ।] पहले वहीं भिक्षा माँगे, जहाँ भिक्षा अवश्य प्राप्त होनेकी सम्भावना हो । स्त्रियोंके अन्य सभी संस्कार बिना मन्त्रके होने चाहिये; केवल विवाह-संस्कार ही मन्त्रोच्चारणपूर्वक होता है । गुरुको चाहिये कि वह शिष्यका उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार करके पहले शौचाचार, सदाचार, अग्निहोत्र तथा संध्योपासनाकी शिक्षा दे ॥ १०–१२ ॥

जो पूर्वकी ओर मुँह करके भोजन करता है, वह आयुष्य भोगता है, दक्षिणकी ओर मुँह करके खानेवाला यशका, पश्चिमाभिमुख होकर भोजन करनेवाला लक्ष्मी (धन) का तथा उत्तरकी ओर मुँह करके अन्न ग्रहण करनेवाला पुरुष सत्यका उपभोग करता है । ब्रह्मचारी प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र करे । अपवित्र वस्तुका होम निषिद्ध है । होमके समय हाथकी अङ्गुलियोंको परस्पर सटाये रहे । मधु, मांस, मनुष्योंके साथ विवाद, गाना और नाचना आदि छोड़ दे । हिंसा, परायी निन्दा तथा विशेषतः अश्लील-चर्चा (गाली-गलौज आदि) का त्याग करे । दण्ड आदि धारण किये रहे । यदि वह टूट जाय तो जलमें उसका विसर्जन कर दे और नवीन दण्ड धारण करे । वेदोंका अध्ययन पूरा करके गुरुको दक्षिणा देनेके पश्चात् व्रतान्त-स्नान करे; अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर जीवनभर गुरुकुलमें ही निवास करता रहे ॥ १३–१६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ब्रह्मचर्याश्रम-वर्णन' नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५३ ॥

एक सौ चौवनवाँ अध्याय

विवाहविषयक बातें

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी ! ब्राह्मण अपनी कामनाके अनुसार चारों वर्णोंकी कन्याओंसे विवाह कर सकता है, क्षत्रिय तीनसे, वैश्य दोसे तथा शूद्र एक ही स्त्रीसे विवाहका अधिकारी है। जो अपने समान वर्णकी न हो, ऐसी स्त्रीके साथ किसी भी धार्मिक कृत्यका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। अपने समान वर्णकी कन्याओंसे विवाह करते समय पतिको उनका हाथ पकड़ना चाहिये। यदि क्षत्रिय-कन्याका विवाह ब्राह्मणसे होता हो तो वह ब्राह्मणके हाथमें हाथ न देकर उसके द्वारा पकड़े हुए बाणका अग्रभाग अपने हाथसे पकड़े। इसी प्रकार वैश्य-कन्या यदि ब्राह्मण अथवा क्षत्रियसे ब्याही जाती हो तो वह वरके हाथमें रखा हुआ चाबुक पकड़े और शूद्र-कन्या वस्त्रका छोर ग्रहण करे। एक ही बार कन्याका दान देना चाहिये। जो उसका अपहरण करता है, वह चोरके समान दण्ड पानेका अधिकारी है ॥ १—३ ॥

जो संतान बेचनेमें आसक्त हो जाता है, उसका पापसे कभी उद्धार नहीं होता। कन्यादान, शचीयोग (शचीकी पूजा), विवाह और चतुर्थीकर्म—इन चार कर्मोंका नाम 'विवाह' है। [मनोनीत] पतिके लापता होने, मरने तथा संन्यासी, नपुंसक और पतित होनेपर—इन पाँच प्रकारकी आपत्तियोंके समय [वाग्दत्ता] स्त्रियोंके लिये दूसरा पति करनेका विधान है। पतिके मरनेपर देवरको कन्या देनी चाहिये। वह न हो तो किसी दूसरेको इच्छानुसार देनी चाहिये। वर अथवा कन्याका वरण करनेके लिये तीनों पूर्वा, कृत्तिका, स्वाती, तीनों उत्तरा और रोहिणी—ये नक्षत्र सदा शुभ माने गये हैं ॥ ४—७ ॥

परशुराम ! अपने समान गोत्र तथा समान प्रवरमें उत्पन्न हुई कन्याका वरण न करे। पितासे ऊपरकी सात पीढ़ियोंके साथ तथा मातासे पाँच पीढ़ियोंके बादकी ही परम्परामें उसका जन्म होना चाहिये। उत्तम कुल तथा अच्छे स्वभावके सदाचारी वरको घरपर बुलाकर उसे कन्याका दान देना 'ब्राह्मविवाह' कहलाता है। उससे उत्पन्न हुआ बालक उक्त कन्यादानजनित पुण्यके प्रभावसे अपने पूर्वजोंका सदाके लिये उद्धार कर देता है। वरसे एक गाय और एक बैल लेकर जो कन्यादान किया जाता है, उसे 'आर्ष-विवाह' कहते हैं। जब किसीके माँगनेपर उसे कन्या दी जाती है तो वह 'प्राजापत्य-विवाह' कहलाता है; इससे धर्मकी सिद्धि होती है। कीमत लेकर कन्या देना 'आसुर-विवाह' है; यह नीच श्रेणीका कृत्य है। वर और कन्या जब स्वेच्छापूर्वक एक-दूसरेको स्वीकार करते हैं तो उसे 'गान्धर्व-विवाह' कहते हैं। युद्धके द्वारा कन्याके हर लेनेसे 'राक्षस-विवाह' कहलाता है तथा कन्याको धोखा देकर उड़ा लेना 'पैशाच-विवाह' माना गया है ॥ ८—११ ॥

विवाहके दिन कुम्हारकी मिट्टीसे शचीकी प्रतिमा बनाये और जलाशयके तटपर उसकी गाजे-बाजेके साथ पूजा कराकर कन्याको घर ले जाना चाहिये। आषाढ़से कार्तिक-तक, जब भगवान् विष्णु शयन करते हों, विवाह नहीं करना चाहिये। पौष और चैत्रमासमें भी विवाह निषिद्ध है। मङ्गलके दिन तथा रिक्ता एवं भद्रा तिथियोंमें भी विवाह मना है। जब बृहस्पति और शुक्र अस्त हों, चन्द्रमापर ग्रहण लगनेवाला हो, लग्न-स्थानमें सूर्य, शनैश्चर तथा मङ्गल हों और व्यतीपात दोष आ पड़ा हो तो उस समय भी विवाह नहीं करना चाहिये। मृगशिरा, मघा, स्वाती, हस्त, रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, अनुराधा तथा रेवती—ये विवाहके नक्षत्र हैं ॥ १२—१५ ॥

पुरुषवाची लग्न तथा उसका नवमांश शुभ होता है। लग्नसे तीसरे, छठे, दसवें, ग्यारहवें तथा आठवें स्थानमें सूर्य, शनैश्चर और बुध हों तो शुभ है। आठवें स्थानमें मङ्गलका होना अशुभ है। शेष ग्रह सातवें, बारहवें तथा आठवें घरमें हों तो शुभकारक होते हैं। इनमें भी छठे स्थानका शुक्र उत्तम नहीं होता। चतुर्थी-कर्म भी वैवाहिक नक्षत्रमें ही करना चाहिये। उसमें लग्न तथा चौथे आदि स्थानोंमें ग्रह न रहें तो उत्तम है। पर्वका दिन छोड़कर अन्य समयमें ही स्त्री-समागम करे। इससे सती (या शची) देवीके आशीर्वादसे सदा प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ १६—१९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विवाहभेद-कथन' नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५४ ॥

एक सौ पचपनवाँ अध्याय

आचारका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी ! प्रतिदिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर श्रीविष्णु आदि देवताओंका स्मरण करे। दिनमें उत्तरकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये, रातमें दक्षिणाभिमुख होकर करना उचित है और दोनों संध्याओंमें दिनकी ही भाँति उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मार्ग आदिपर, जलमें तथा गलीमें भी कभी मलादिका त्याग न करे। सदा तिनकोंसे पृथ्वीको ढककर उसके ऊपर मल-त्याग करे। मिट्टीसे हाथ-पैर आदिकी भलीभाँति शुद्धि करके, कुल्ला करनेके पश्चात्, दन्तधावन करे। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलकर्षण तथा क्रिया-स्नान—ये छः प्रकारके स्नान बताये गये हैं। जो स्नान नहीं करता, उसके सब कर्म निष्फल होते हैं; इसलिये प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करना चाहिये ॥ १–४ ॥

कुएँसे निकाले हुए जलकी अपेक्षा भूमिपर स्थित जल पवित्र होता है। उससे पवित्र झरनेका जल, उससे भी पवित्र सरोवरका जल तथा उससे भी पवित्र नदीका जल बताया जाता है। तीर्थका जल उससे भी पवित्र होता है और गङ्गाका जल तो सबसे पवित्र माना गया है। पहले जलाशयमें गोता लगाकर शरीरका मैल धो डाले। फिर आचमन करके जलसे मार्जन करे। **'हिरण्यवर्णाः०'** आदि तीन ऋचाएँ, **'शं नो देवीरभिष्टये०'** (यजु० ३६। १२) यह मन्त्र, **'आपो हि ष्ठा०'** (यजु० ३६। १४–१६) आदि तीन ऋचाएँ तथा **'इदमापः०'** (यजु० ६। १७) यह मन्त्र—इन सबसे मार्जन किया जाता है। तत्पश्चात् जलाशयमें डुबकी लगाकर जलके भीतर ही जप करे। उसमें अघमर्षण सूक्त अथवा **'द्रुपदादिव०'** (यजु० २०। २०) मन्त्र, या **'युञ्जते मनः०'** (यजु०, ५। १४) आदि सूक्त अथवा **'सहस्रशीर्षा०'** (यजु० अ० ३१) आदि पुरुष-सूक्तका जप करना चाहिये। विशेषतः गायत्रीका जप करना उचित है। अघमर्षणसूक्तमें भाववृत्त देवता और अघमर्षण ऋषि हैं। उसका छन्द अनुष्टुप् है। उसके द्वारा भाववृत्त (भक्ति-पूर्वक वरण किये हुए) श्रीहरिका स्मरण होता है। तदनन्तर वस्त्र बदलकर भीगी धोती निचोड़नेके पहले ही देवता और पितरोंका तर्पण करे ॥ ५–११ ॥

फिर पुरुषसूक्त (यजु०, अ० ३१) के द्वारा जलाञ्जलि दे। उसके बाद अग्निहोत्र करे। तत्पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर योग-क्षेमकी सिद्धिके लिये परमेश्वरकी शरण जाय। आसन, शय्या, सवारी, स्त्री, संतान और कमण्डलु—ये वस्तुएँ अपनी ही हों, तभी अपने लिये शुद्ध मानी गयी हैं; दूसरोंकी उपर्युक्त वस्तुएँ अपने लिये शुद्ध नहीं होतीं। राह चलते समय यदि सामनेसे कोई ऐसा पुरुष आ जाय, जो भारसे लदा हुआ कष्ट पा रहा हो, तो स्वयं हटकर उसे जानेके लिये मार्ग दे देना चाहिये। इसी प्रकार गर्भिणी स्त्री तथा गुरुजनोंको भी मार्ग देना चाहिये ॥ १२–१४ ॥

उदय और अस्तके समय सूर्यकी ओर न देखे। जलमें भी उनके प्रतिबिम्बकी ओर दृष्टिपात न करे। नंगी स्त्री, कुआँ, हत्याके स्थान और पापियोंको न देखे। कपास (रुई), हड्डी, भस्म तथा घृणित वस्तुओंको न लाँघे। दूसरेके अन्तःपुर और खजानाघरमें प्रवेश न करे। दूसरेके दूतका काम न करे। टूटी-फूटी नाव, वृक्ष और पर्वतपर न चढ़े। अर्थ, गृह और शास्त्रोंके विषयमें कौतूहल रखे। ढेला फोड़ने, तिनके तोड़ने और नख चबानेवाला मनुष्य नष्ट हो जाता है। मुख आदि अङ्गोंको न बजावे। रातको दीपक लिये बिना कहीं न जाय। दरवाजेके सिवा और किसी मार्गसे घरमें प्रवेश न करे। मुँहका रंग न बिगाड़े। किसीकी बातचीतमें बाधा न डाले तथा अपने वस्त्रको दूसरेके वस्त्रसे न बदले। 'कल्याण हो, कल्याण हो'—यही बात मुँहसे निकाले; कभी किसीके अनिष्ट होनेकी बात न कहे। पलाशके आसनको व्यवहारमें न लावे। देवता आदिकी छायामें हटकर चले ॥ १५–२० ॥

दो पूज्य पुरुषोंके बीचसे होकर न निकले। जूठे मुँह रहकर तारा आदिकी ओर दृष्टि न डाले। एक नदीमें जाकर दूसरी नदीका नाम न ले। दोनों हाथोंसे शरीर न खुजलावे। किसी नदीपर पहुँचनेके बाद देवता और पितरोंका तर्पण किये बिना उसे पार न करे। जलमें मल आदि न फेंके। नंगा होकर न नहाये। योगक्षेमके लिये परमात्माकी शरणमें जाय। मालाको अपने हाथसे न हटाये। गदहे आदिकी धूलसे बचे। नीच पुरुषोंको कष्टमें देखकर

कभी उनका उपहास न करे। उनके साथ अनुपयुक्त स्थानपर निवास न करे। वैद्य, राजा और नदीसे हीन देशमें न रहे। जहाँके स्वामी म्लेच्छ, स्त्री तथा बहुत-से मनुष्य हों, उस देशमें भी न निवास करे। रजस्वला आदि तथा पतितोंके साथ बात न करे। सदा भगवान् विष्णुका स्मरण करे। मुँहके ढके बिना न जोरसे हँसे, न जँभाई ले और न छींके ही ॥ २१-२५ ॥

विद्वान् पुरुष स्वामीके तथा अपने अपमानकी बातको गुप्त रक्खे। इन्द्रियोंके सर्वथा अनुकूल न चले—उन्हें अपने वशमें किये रहे। मल-मूत्रके वेगको न रोके। परशुरामजी! छोटे-से भी रोग या शत्रुकी उपेक्षा न करे। सड़क लाँघकर आनेके बाद सदा आचमन करे। जल और अग्निको धारण न करे। कल्याणमय पूज्य पुरुषके प्रति कभी हुंकार न करे। पैरको पैरसे न दबावे। प्रत्यक्ष या परोक्षमें किसीकी निन्दा न करे। वेद, शास्त्र, राजा, ऋषि और देवताकी निन्दा करना छोड़ दे। स्त्रियोंके प्रति ईर्ष्या न रखे तथा उनका कभी विश्वास भी न करे। धर्मका श्रवण तथा देवताओंसे प्रेम करे। प्रतिदिन धर्म आदिका अनुष्ठान करे। जन्म-नक्षत्रके दिन चन्द्रमा, ब्राह्मण तथा देवता आदिकी पूजा करे। षष्ठी, अष्टमी और चतुर्दशीको तेल या उबटन न लगावे। घरसे दूर जाकर मल-मूत्रका त्याग करे। उत्तम पुरुषोंके साथ कभी वैर-विरोध न करे॥ २६-३१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आचारका वर्णन' नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५५ ॥

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय

द्रव्य-शुद्धि

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! अब द्रव्योंकी शुद्धि बतलाऊँगा। मिट्टीका बर्तन पुनः पकानेसे शुद्ध होता है। किंतु मल-मूत्र आदिसे स्पर्श हो जानेपर वह पुनः पकानेसे भी शुद्ध नहीं होता। सोनेका पात्र यदि अपवित्र वस्तुओंसे छू जाय तो जलसे धोनेपर पवित्र होता है। ताँबेका बर्तन खटाई और जलसे शुद्ध होता है। काँसे और लोहेका बर्तन राखसे मलनेपर पवित्र होता है। मोती आदिकी शुद्धि केवल जलसे धोनेपर ही हो जाती है। जलसे उत्पन्न शङ्ख आदिके बने बर्तनोंकी, सब प्रकारके पत्थरके बने हुए पात्रकी तथा साग, रस्सी, फल एवं मूलकी और बाँस आदिके दलोंसे बनी हुई वस्तुओंकी शुद्धि भी इसी प्रकार जलसे धोनेमात्रसे हो जाती है। यज्ञकर्ममें यज्ञपात्रोंकी शुद्धि केवल दाहिने हाथसे कुशद्वारा मार्जन करनेपर ही हो जाती है। घी या तेलसे चिकने हुए पात्रोंकी शुद्धि गरम जलसे होती है। घरकी शुद्धि झाड़ने बुहारने और लीपनेसे होती है। शोधन और प्रोक्षण करने (सींचने) से वस्त्र शुद्ध होता है। रेहकी मिट्टी और जलसे उसका शोधन होता है। यदि बहुत-से वस्त्रोंकी ढेरी ही किसी अस्पृश्य वस्तुसे छू जाय तो उसपर जल छिड़क देनेमात्रसे उसकी शुद्धि मानी गयी है। काठके बने हुए पात्रोंकी शुद्धि काटकर छील देनेसे होती है॥ १-५॥

शय्या आदि संहत वस्तुओंके उच्छिष्ट आदिसे दूषित होनेपर प्रोक्षण (सींचने) मात्रसे उनकी शुद्धि होती है। घी-तेल आदिकी शुद्धि दो कुश-पत्रोंसे उत्पवन करने (उछालने) मात्रसे हो जाती है। शय्या, आसन, सवारी, सूप, छकड़ा, पुआल और लकड़ीकी शुद्धि भी सींचनेसे ही जाननी चाहिये। सींग और दाँतकी बनी हुई वस्तुओंकी शुद्धि पीली सरसों पीसकर लगानेसे होती है। नारियल और तूँबी आदि फलनिर्मित पात्रोंकी शुद्धि गोपुच्छके बालोंद्वारा रगड़नेसे होती है। शङ्ख आदि हड्डीके पात्रोंकी शुद्धि सींगके समान ही पीली सरसोंके लेपसे होती है। गोंद, गुड़, नमक, कुसुम्भके फूल, ऊन और कपासकी शुद्धि धूपमें सुखानेसे होती है। नदीका जल सदा शुद्ध रहता है। बाजारमें बेचनेके लिये फैलायी हुई वस्तु भी शुद्ध मानी गयी है॥ ६-९॥

गौके मुँहको छोड़कर अन्य सभी अङ्ग शुद्ध हैं। घोड़े और बकरेके मुँह शुद्ध माने गये हैं। स्त्रियोंका मुख सदा शुद्ध है। दूध दुहनेके समय बछड़ोंका, पेड़से फल गिराते समय पक्षियोंका और शिकार खेलते समय कुत्तोंका मुँह भी शुद्ध माना गया है। भोजन करने, थूकने, सोने, पानी पीने, नहाने, सड़कपर घूमने और वस्त्र पहननेके बाद अवश्य आचमन करना चाहिये। बिलाव घूमने-फिरनेसे ही शुद्ध होता है। रजस्वला स्त्री चौथे दिन शुद्ध होती है। ऋतु-

माता स्त्री पाँचवें दिन देवता और पितरोंके पूजनकार्यमें सम्मिलित होने योग्य होती है। शौचके बाद पाँच बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें, फिर सात बार दोनों हाथोंमें, एक बार लिङ्गमें तथा पुनः दो-तीन बार हाथोंमें मिट्टी लगाकर धोना चाहिये। यह गृहस्थोंके लिये शौचका विधान है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासियोंके लिये गृहस्थकी अपेक्षा चौगुने शौचका विधान किया गया है ॥ १०—१४ ॥

टसरके कपड़ोंकी शुद्धि बेलके फलके गूदेसे होती है। अर्थात् उसे पानीमें घोलकर उसमें वस्त्रको डुबो दे और फिर साफ पानीसे धो दे। तीसी एवं सन आदिके सूतसे बने हुए कपड़ोंकी शुद्धिके लिये अर्थात् उनमें लगे हुए तेल आदिके दागको छुड़ानेके लिये पीली सरसोंके चूर्ण या उबटनसे मिश्रित जलके द्वारा धोना चाहिये। मृगचर्म या मृगके रोमोंसे बने हुए आसन आदिकी शुद्धि उसपर जलका छींटा देने मात्रसे बतायी गयी है। फूलों और फलोंकी भी उनपर जल छिड़कने मात्रसे पूर्णतः शुद्धि हो जाती है ॥ १५-१६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्रव्य-शुद्धिका वर्णन' नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५६ ॥

एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय

मरणाशौच तथा पिण्डदान एवं दाह-संस्कारकालिक कर्तव्यका कथन

पुष्कर कहते हैं—अब मैं 'प्रेतशुद्धि' तथा 'सूतिका-शुद्धि'का वर्णन करूँगा। सपिण्डोंमें अर्थात् मूल पुरुषकी सातवीं पीढ़ीतककी संतानोंमें मरणाशौच दस दिनतक रहता है। जननाशौच भी इतने ही दिनतक रहता है। परशुरामजी! यह ब्राह्मणोंके लिये अशौचकी बात बतलायी गयी। क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। यहाँ उस शूद्रके लिये कहा गया है, जो अनुलोमज हो अर्थात् जिसका जन्म उच्च जातीय अथवा सजातीय पितासे हुआ हो। स्वामीको अपने घरमें जितने दिनका अशौच लगता है, सेवकको भी उतने ही दिनोंका लगता है। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका भी जननाशौच दस दिनका ही होता है ॥ १—३ ॥

परशुरामजी! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इसी क्रमसे शुद्ध होते हैं। [किसी-किसीके मतमें] वैश्य तथा शूद्रके जननाशौचकी निवृत्ति पंद्रह दिनोंमें होती है। यदि बालक दाँत निकलनेके पहले ही मर जाय तो उसके जनना-शौचकी सद्यःशुद्धि मानी गयी है। दाँत निकलनेके बाद चूडाकरणसे पहलेतककी मृत्युमें एक रातका अशौच होता है, यज्ञोपवीतके पहलेतक तीन रातका तथा उसके बाद दस रातका अशौच बताया गया है। तीन वर्षसे कमका शूद्र-बालक यदि मृत्युको प्राप्त हो तो पाँच दिनोंके बाद उसके अशौचकी निवृत्ति होती है। तीन वर्षके बाद मृत्यु होनेपर बारह दिन बाद शुद्धि होती है तथा छः वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् उसके मरणका अशौच एक मासके बाद निवृत्त होता है। कन्याओंमें जिनका मुण्डन नहीं हुआ है, उनके मरणाशौचकी शुद्धि एक रातमें होनेवाली मानी गयी है और जिनका मुण्डन हो चुका है, उनकी मृत्यु होनेपर उनके बन्धु-बान्धव तीन दिन बाद शुद्ध होते हैं ॥ ४—८ ॥

जिन कन्याओंका विवाह हो चुका है, उनकी मृत्युका अशौच पितृकुलको नहीं प्राप्त होता। जो स्त्रियाँ पिताके घर-में संतानको जन्म देती हैं, उनके उस जननाशौचकी शुद्धि एक रातमें होती है। किंतु स्वयं सूतिका दस रातमें ही शुद्ध होती है, इसके पहले नहीं। यदि विवाहित कन्या पिताके घरमें मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उसके बन्धु-बान्धव निश्चय ही तीन रातमें शुद्ध हो जाते हैं। समान अशौचको पहले निवृत्त करना चाहिये और असमान अशौचको बादमें। ऐसा ही धर्मराजका वचन है। परदेशमें रहनेवाला पुरुष यदि अपने कुलमें किसीके जन्म या मरण होनेका समाचार सुने तो दस रातमें जितना समय शेष हो, उतने ही समयतक उसे अशौच लगता है। यदि दस दिन व्यतीत होनेपर उसे उक्त समाचार-का ज्ञान हो, तो वह तीन राततक अशौचयुक्त रहता है तथा यदि एक वर्ष व्यतीत होनेके बाद उपर्युक्त बातोंकी जानकारी हो तो केवल स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है। नाना और आचार्यके मरनेपर भी तीन राततक अशौच रहता है ॥ ९—१४ ॥

परशुरामजी! यदि स्त्रीका गर्भ गिर जाय तो जितने

मासका गर्भ गिरा हो, उतनी रातें बीतनेपर उस स्त्रीकी शुद्धि होती है। सपिण्ड ब्राह्मण-कुलमें मरणाशौच होनेपर उस कुलके सभी लोग सामान्यरूपसे दस दिनमें शुद्ध हो जाते हैं। क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पंद्रह दिनमें और शूद्र एक मासमें शुद्ध होते हैं। [प्रेत या पितरोंके श्राद्धमें उन्हें आसन देनेसे लेकर अर्घ्यदानतकके कर्म करके उनके पूजनके पश्चात् जब परिवेषण होता है, तब सपात्रक कर्ममें वहाँ ब्राह्मण-भोजन कराया जाता है। ये ब्राह्मण पितरोंके प्रतिनिधि होते हैं। अपात्रक कर्ममें ब्राह्मणोंका प्रत्यक्ष भोजन नहीं होता तो भी पितर सूक्ष्मरूपसे उस अन्नको ग्रहण करते हैं। उनके भोजनके बाद वह स्थान उच्छिष्ट समझा जाता है;] उस उच्छिष्टके निकट ही वेदी बनाकर, उसका संस्कार करके, उसके ऊपर कुश बिछाकर उन कुशोंपर ही पिण्ड निवेदन करे। उस समय एकाग्रचित्त हो, प्रेत अथवा पितरके नाम-गोत्रका उच्चारण करके ही उनके लिये पिण्ड अर्पित करे ॥ १५—१७ ॥

जब ब्राह्मण लोग भोजन कर लें और धनसे उनका सत्कार या पूजन कर दिया जाय, तब नाम-गोत्रके उच्चारण-पूर्वक उनके लिये अक्षत-जल छोड़े जायँ। तदनन्तर चार अङ्गुल चौड़ा, उतना ही गहरा तथा एक बित्तेका लंबा एक गड्ढा खोदा जाय। परशुराम! वहाँ तीन 'विकर्षु' (सूखे कंडोंके रखनेके स्थान) बनाये जायँ और उनके समीप तीन जगह अग्नि प्रज्वलित की जाय। उनमें क्रमशः **'सोमाय स्वाहा', 'वह्नये स्वाहा'** तथा **'यमाय स्वाहा'** मन्त्र बोलकर सोम, अग्नि तथा यमके लिये संक्षेपसे चार-चार या तीन-तीन आहुतियाँ दे। सभी वेदियोंपर सम्यग् विधिसे आहुति देनी चाहिये। फिर वहाँ पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् पिण्ड-दान करे ॥ १८—२१ ॥

अन्न, दही, मधु तथा उड़दसे पिण्डकी पूर्ति करनी चाहिये। यदि वर्षके भीतर अधिक मास हो जाय तो उसके लिये एक पिण्ड अधिक देना चाहिये। अथवा बारहों मासके सारे मासिक श्राद्ध द्वादशाहके दिन ही पूरे कर दिये जायँ। यदि वर्षके भीतर अधिक मासकी सम्भावना हो तो द्वादशाह श्राद्धके दिन ही उस अधिमासके निमित्त एक पिण्ड अधिक दे दिया जाय। संवत्सर पूर्ण हो जानेपर श्राद्धको सामान्य श्राद्धकी ही भाँति सम्पादित करे ॥ २२—२४ ॥

सपिण्डीकरण श्राद्धमें प्रेतको अलग पिण्ड देकर बादमें उसीकी तीन पीढ़ियोंके पितरोंको तीन पिण्ड प्रदान करने चाहिये। इस तरह इन चारों पिण्डोंको बड़ी एकाग्रताके साथ अर्पित करना चाहिये। भृगुनन्दन! पिण्डोंका पूजन और दान करके **'पृथिवी ते पात्रम्०', 'ये समानाः०'** इत्यादि मन्त्रोंके पाठपूर्वक यथोचित कार्य सम्पादन करते हुए प्रेत-पिण्डके तीन टुकड़ोंको क्रमशः पिता, पितामह और और प्रपितामहके पिण्डोंमें जोड़ दे। इससे पहले इसी तरह प्रेतके अर्घ्यपात्रका पिता आदिके अर्घ्यपात्रोंमें मेलन करना चाहिये। पिण्डमेलन और पात्रमेलनका यह कर्म पृथक्-पृथक् करना उचित है। शूद्रका यह श्राद्धकर्म मन्त्ररहित करनेका विधान है। स्त्रियोंका सपिण्डीकरण श्राद्ध भी उस समय इसी प्रकार (पूर्वोक्त रीतिसे) करना चाहिये ॥ २५—२८ ॥

पितरोंका श्राद्ध प्रतिवर्ष करना चाहिये; किंतु प्रेतके लिये सान्नोदक कुम्भदान एक वर्षतक करे। वर्षाकालमें गङ्गाजीकी सिकताधाराकी सम्भव है गणना हो जाय, किंतु अतीत पितरोंकी गणना कदापि सम्भव नहीं है। काल निरन्तर गतिशील है, उसमें कभी स्थिरता नहीं आती; इसलिये कर्म अवश्य करे। प्रेत पुरुष देवत्वको प्राप्त हुआ हो या यातनास्थान (नरक) में पड़ा हो, वह किये गये श्राद्धको वहाँ अवश्य पाता है। इसलिये मनुष्य प्रेतके लिये अथवा अपने लिये शोक न करते हुए ही उपकार (श्राद्धादि कर्म) करे ॥ २९—३१ ॥

जो लोग पर्वतसे कूदकर, आगमें जलकर, गलेमें फाँसी लगाकर या पानीमें डूबकर मरते हैं, ऐसे आत्मघाती और पतित मनुष्योंके मरनेका अशौच नहीं लगता है। जो बिजली गिरनेसे या युद्धमें अस्त्रोंके आघातसे मरते हैं, उनके लिये भी यही बात है। यति (संन्यासी), व्रती, ब्रह्मचारी, राजा, कारीगर और यज्ञदीक्षित पुरुष तथा जो राजाकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं; ऐसे लोगोंको भी अशौच नहीं प्राप्त होता है। ये यदि प्रेतकी शवयात्रामें गये हों तो भी स्नानमात्र कर लें। इतनेसे ही उनकी शुद्धि हो जाती है। मैथुन करनेपर और जलते हुए शवका धुआँ लग जानेपर तत्काल स्नानका विधान है। मरे हुए ब्राह्मणके शवको शूद्रद्वारा किसी तरह भी न उठवाया जाय। इसी तरह शूद्रके शवको भी ब्राह्मणद्वारा कदापि न उठवाये; क्योंकि वैसा करनेपर दोनोंको ही दोष लगता है। अनाथ ब्राह्मणके शवको ढोकर अन्त्येष्टिकर्मके लिये ले जानेपर मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है ॥ ३२—३५ ॥

अनाथ प्रेतका दाह करनेके लिये काष्ठ या लकड़ी देनेवाला मानव संग्राममें विजय पाता है। अपने प्रेत-बन्धुको चितापर स्थापित एवं दग्ध कर उस चिताकी अपसव्य परिक्रमा करके समस्त भाई-बन्धु सवस्त्र स्नान करें और प्रेतके निमित्त तीन-तीन बार जलाञ्जलि दें। घरके दरवाजेपर जाकर पत्थरपर पैर रखकर (हाथ-पैर धो लें), अग्निमें अक्षत छोड़ें तथा नीमकी पत्ती चबाकर घरके भीतर प्रवेश करें। वहाँ उस दिन सबसे अलग पृथ्वीपर चटाई आदि बिछाकर सोवें। जिस घरका शव जलाया गया हो, उस घरके लोग उस दिन खरीदकर मँगाया हुआ या स्वतः प्राप्त हुआ आहार ग्रहण करें। दस दिनोंतक प्रतिदिन एक-एकके हिसाबसे पिण्डदान करे। दसवें दिन एक पिण्ड देकर बाल बनवाकर मनुष्य शुद्ध होता है। दसवें दिन विद्वान् पुरुष सरसों और तिलका अनुलेप लगाकर जलाशयमें गोता लगाये और स्नानके पश्चात् दूसरा नूतन वस्त्र धारण करे। जिस बालकके दाँत न निकले हों, उसके मरनेपर या गर्भस्राव होनेपर उसके लिये न तो दाह-संस्कार करे और न जलाञ्जलि दे। शवदाहके पश्चात् चौथे दिन अस्थिसंचय करे। अस्थिसंचयके पश्चात् अङ्गस्पर्शका विधान है ॥ ३६-४२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मरणाशौचका वर्णन' नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५७ ॥

एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

गर्भस्राव आदि सम्बन्धी अशौच

पुष्कर कहते हैं—अब मैं मनु आदि महर्षियोंके मतके अनुसार गर्भस्राव-जनित अशौचका वर्णन करूँगा। चौथे मासके स्राव तथा पाँचवें, छठे मासके गर्भपाततक यह नियम है कि जितने महीनेपर गर्भस्खलन हो, उतनी ही रात्रियोंके द्वारा अथवा तीन रात्रियोंके द्वारा स्त्रियोंकी शुद्धि होती है *। सातवें माससे दस दिनका अशौच होता है। [प्रथमसे तीसरे मासतकके गर्भस्रावमें ब्राह्मणके लिये तीन राततक अशुद्धि रहती है। †] क्षत्रियके लिये चार रात्रि, वैश्यके लिये पाँच दिन तथा शूद्रके लिये आठ दिनतक अशौचका समय है। सातवें माससे अधिक होनेपर सबके लिये बारह दिनोंकी अशुद्धि होती है। यह अशौच केवल स्त्रियोंके लिये कहा गया है। तात्पर्य यह कि माता ही इतने दिनोंतक अशुद्ध रहती है। पिताकी शुद्धि तो स्नान-मात्रसे हो जाती है ‡ ॥ १-३ ॥

* मनुस्मृतिमें लिखा है—'रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति।'—(५। ६६) इसकी टीकामें कुल्लूकभट्टने कहा है—'तृतीयमास-प्रभृति गर्भस्रावे गर्भमासतुल्याहोरात्रैश्चातुर्वर्ण्यस्त्री विशुद्ध्यति।'—अर्थात् तीसरे महीनेसे लेकर गर्भस्राव होनेपर जितने महीनेका गर्भ हो, उतने दिन-रातमें चारों वर्णोंकी स्त्रियाँ शुद्ध होती हैं।' कुल्लूकभट्टने यह नियम छः महीनेतकके लिये बताया है और इसकी पुष्टिमें आदिपुराणका निम्नाङ्कित श्लोक उद्धृत किया है—'षण्मासाभ्यन्तरं यावद् गर्भस्रावो भवेद् यदि। तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते॥' मिताक्षराकारने स्मृतिवचनका उल्लेख करते हुए यह कहा है कि 'चौथे मासतक जो गर्भस्खलन होता है, वह 'स्राव' है और पाँचवें, छठे मासमें जो स्राव होता है, उसे 'पात' कहते हैं; इसके ऊपर 'प्रसव' कहलाता है। यथा—'आ चतुर्थाद् भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः। अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात्।' 'गर्भस्रावे मासतुल्या निशाः' इत्यादि वचन-द्वारा याज्ञवल्क्यजीने भी उपर्युक्त मतको ही व्यक्त किया है। त्रिरात्रका नियम तीन मासतक ही लागू होता है।

† 'अत ऊर्ध्वं तु जात्युक्तमाशौचं नात्र विद्यते।' (आदि-पुराण) छठे मासके बादसे अर्थात् सातवें माससे स्त्रियोंको पूर्ण-जननाशौच (दस या बारह दिनका) लगता है। तीन मासके अंदर जो स्राव होता है, उसको 'अचिरस्राव' कहा गया है; उसमें मरीचिका मत इस प्रकार है—'गर्भस्रुत्यां यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः। राजन्ये तु चतूरात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च। अष्टाहेन तु शूद्रस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता।' इन श्लोकोंका भाव मूलके अनुवादमें आ गया है।

‡ मरीचिके मतमें माताको मास-संख्याके अनुसार और पिता आदिको तीन दिनका अशौच होता है। यह अशौच केवल गर्भपातको लक्ष्य करके कहा गया है। जन्मसम्बन्धी सूतक तो पूरा ही लगता है। इसमें 'जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्।' यह 'हारीत-स्मृति'का वचन प्रमाण है।

जो सपिण्ड पुरुष हैं, उन्हें छः मासतक सद्यः-शौच (तत्काल-शुद्धि) रहता है। उनके लिये स्नान भी आवश्यक नहीं है। किंतु सातवें और आठवें मासके गर्भपातमें सपिण्ड पुरुषोंको भी त्रिरात्र अशौच लगता है। जितने समयमें दाँत निकलते हैं, उतने मासतक यदि बालक-की मृत्यु हो जाय तो सपिण्ड पुरुषोंको तत्काल शुद्धि प्राप्त होती है। चूडाकरणके पहले मृत्यु होनेपर उन्हें एक रातका अशौच लगता है। यज्ञोपवीतके पूर्व बालकका देहावसान होनेपर सपिण्डोंको तीन राततक अशौच प्राप्त होता है। इसके बाद मृत्यु होनेपर सपिण्ड पुरुषोंको दस रातका अशौच लगता है। दाँत निकलनेके पूर्व बालककी मृत्यु होनेपर माता-पिताको तीन रातका अशौच प्राप्त होता है। जिसका चूडाकरण न हुआ हो, उस बालककी मृत्यु होनेपर भी माता-पिताको उतने ही दिनोंका अशौच प्राप्त होता है। तीन वर्षसे कमकी आयुमें ब्राह्मण-बालककी मृत्यु हो (और चूडाकरण न हुआ हो) तो सपिण्डोंकी शुद्धि एक रातमें होती है * ॥ ४-६ ॥

क्षत्रिय-बालकके मरनेपर उसके सपिण्डोंकी शुद्धि दो दिनपर, वैश्य-बालकके मरनेसे उसके सपिण्डोंको तीन दिनपर और शूद्र-बालककी मृत्यु हो तो उसके सपिण्डोंकी पाँच दिनपर शुद्धि होती है। शूद्र बालक यदि विवाहके पहले मृत्युको प्राप्त हो तो उसे बारह दिनका अशौच लगता है। जिस अवस्थामें ब्राह्मणको तीन रातका अशौच देखा जाता है, उसीमें शूद्रके लिये बारह दिनका अशौच लगता है; क्षत्रियके लिये छः दिन और वैश्यके लिये नौ दिनोंका अशौच लगता है। दो वर्षके बालकका अग्निद्वारा दाह-संस्कार नहीं होता। उसकी मृत्यु होनेपर उसे धरतीमें गाड़ देना चाहिये। उसके लिये बान्धवोंको उदक-क्रिया (जलाञ्जलि-दान) नहीं करनी चाहिये। अथवा जिसका नामकरण हो गया हो या जिसके दाँत निकल आये हों, उसका दाह-संस्कार तथा उसके निमित्त जलाञ्जलि-दान करना चाहिये। † उपनयनके पश्चात् बालककी मृत्यु हो तो दस दिनका अशौच लगता है। जो प्रतिदिन अग्निहोत्र तथा तीनों वेदोंका स्वाध्याय करता है, ऐसा ब्राह्मण एक दिनमें ही शुद्ध हो जाता है ‡। जो उससे हीन और हीनतर है, अर्थात् जो दो अथवा एक वेदका स्वाध्याय करनेवाला है, उसके लिये तीन एवं चार दिनमें शुद्ध होने-का विधान है। जो अग्निहोत्रकर्मसे रहित है, वह पाँच दिनमें शुद्ध होता है। जो केवल 'ब्राह्मण' नामधारी है (वेदाध्ययन या अग्निहोत्र नहीं करता), वह दस दिनमें शुद्ध होता है ॥ ७-११ ॥

गुणवान् ब्राह्मण सात दिनपर शुद्ध होता है, गुणवान् क्षत्रिय नौ दिनमें, गुणवान् वैश्य दस दिनमें और गुणवान् शूद्र बीस दिनमें शुद्ध होता है। साधारण ब्राह्मण दस दिनमें, साधारण क्षत्रिय बारह दिनमें, साधारण वैश्य पंद्रह दिनमें और साधारण शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। गुणोंकी अधिकता होनेपर, यदि दस दिनका अशौच प्राप्त हो तो वह तीन ही दिनतक रहता है, तीन दिनोंतकका अशौच प्राप्त हो तो वह एक ही दिन रहता है तथा एक दिनका अशौच प्राप्त हो तो उसमें तत्काल ही शुद्धिका विधान है। इसी प्रकार सर्वत्र ऊहा कर लेनी चाहिये। दास, छात्र, भृत्य और शिष्य—ये यदि अपने स्वामी अथवा गुरुके साथ रहते हों तो गुरु अथवा स्वामीकी मृत्यु होनेपर इन सबको स्वामी एवं गुरुके कुटुम्बी जनोंके समान ही पृथक्-पृथक् अशौच लगता है। जिसका अग्निसे संयोग न हो अर्थात् जो अग्निहोत्र न करता हो, उसे सपिण्ड पुरुषोंकी मृत्यु होनेके बाद ही तुरंत अशौच लगता है; परंतु जिसके द्वारा नित्य अग्निहोत्रका अनुष्ठान होता हो, उस पुरुषको किसी कुटुम्बी या जाति-बन्धुकी मृत्यु होनेपर जब उसका दाह-संस्कार सम्पन्न हो जाता है, उसके बाद अशौच प्राप्त होता है ॥ १२-१६ ॥

---

* नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता। इति मनुः (५।६७)

† यहाँ दो वर्षकी आयुवाले बालकके दाहसंस्कार तथा उसके निमित्त जलाञ्जलि-दानका निषेध भी मिलता है और विधान भी। अतः यह समझना चाहिये कि किया जाय तो उससे मृत जीवका उपकार होता है और न किया जाय तो भी बान्धवोंको कोई दोष नहीं लगता। (मनु० ५। ७० की 'मन्वर्थ-मुक्तावली' टीका देखें।)

‡ मनुकी प्राचीन पोथियोंमें इसी आशयका श्लोक था, जिसका उल्लेख प्रायश्चित्ताध्यायके आशौच-प्रकरणमें १८-२९ श्लोकोंकी मिताक्षरामें किया गया है। यह विधान केवल स्वाध्याय और अग्निहोत्रकी सिद्धिके लिये है। संध्यावन्दन और अन्न-भोजन आदिके योग्य शुद्धि तो दस दिनके बाद ही होती है। जैसा कि यम आदिका वचन है—'उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते।' इत्यादि।

सभी वर्णके लोगोंको अशौचका एक तिहाई समय बीत जानेपर शारीरिक स्पर्शका अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस नियमके अनुसार ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमशः तीन, चार, पाँच तथा दस दिनके अनन्तर स्पर्श करनेके योग्य हो जाते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंका अस्थिसंचय क्रमशः चार, पाँच, सात तथा नौ दिनोंपर करना चाहिये ॥ १७-१८ ॥

जिस कन्याका वाग्दान नहीं किया गया है (और चूडाकरण हो गया है), उसकी यदि वाग्दानसे पूर्व मृत्यु हो जाय तो बन्धु-बान्धवोंको एक दिनका अशौच लगता है। जिसका वाग्दान तो हो गया है, किंतु विवाह-संस्कार नहीं हुआ है, उस कन्याके मरनेपर तीन दिनका अशौच लगता है। यदि ब्याही हुई बहिन या पुत्री आदिकी मृत्यु हो तो दो दिन एक रातका अशौच लगता है। कुमारी कन्याओंका वही गोत्र है, जो पिताका है। जिनका विवाह हो गया है, उन कन्याओंका गोत्र वह है, जो उनके पतिका है। विवाह हो जानेपर कन्याकी मृत्यु हो तो उसके लिये जलाञ्जलि-दानका कर्तव्य पितापर भी लागू होता है; पति-पर तो है ही। तात्पर्य यह कि विवाह होनेपर पिता और पति—दोनों कुलोंमें जलदानकी क्रिया प्राप्त होती है। यदि दस दिनोंके बाद और चूडाकरणके पहले कन्याकी मृत्यु हो तो माता-पिताको तीन दिनका अशौच लगता है और सपिण्ड पुरुषोंकी तत्काल ही शुद्धि होती है। चूडाकरणके बाद वाग्दानके पहलेतक उसकी मृत्यु होनेपर बन्धु-बान्धवोंको एक दिनका अशौच लगता है। वाग्दानके बाद विवाहके पहलेतक उन्हें तीन दिनका अशौच प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस कन्याके भतीजोंको दो दिन एक रातका अशौच लगता है; किंतु अन्य सपिण्ड पुरुषोंकी तत्काल शुद्धि हो जाती है। ब्राह्मण सजातीय पुरुषोंके यहाँ जन्म-मरणमें सम्मिलित हो तो दस दिनमें शुद्ध होता है और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके यहाँ जन्म-मृत्युमें सम्मिलित होनेपर क्रमशः छः, तीन तथा एक दिनमें शुद्ध होता है ॥ १९-२३ ॥

यह जो अशौच-सम्बन्धी नियम निश्चित किया गया है, वह सपिण्ड पुरुषोंसे ही सम्बन्ध रखता है, ऐसा जानना चाहिये। अब जो औरस नहीं हैं, ऐसे पुत्र आदिके विषयमें बताऊँगा। औरस-भिन्न क्षेत्रज, दत्तक आदि पुत्रोंके मरनेपर तथा जिसने अपनेको छोड़कर दूसरे पुरुषसे सम्बन्ध जोड़ लिया हो अथवा जो दूसरे पतिको छोड़कर आयी हो और अपनी भार्या बनकर रहती रही हो, ऐसी स्त्रीके मरनेपर तीन रातमें अशौचकी निवृत्ति होती है। स्वधर्मका त्याग करनेके कारण जिनका जन्म व्यर्थ हो गया हो, जो वर्णसंकर संतान हो अर्थात् नीचवर्णके पुरुष और उच्चवर्णकी स्त्रीसे जिसका जन्म हुआ हो, जो संन्यासी बनकर इधर-उधर घूमते-फिरते रहे हों और जो अशास्त्रीय विधिसे विष-बन्धन आदिके द्वारा प्राण-त्याग कर चुके हों, ऐसे लोगोंके निमित्त बान्धवोंको जलाञ्जलि-दान नहीं करना चाहिये; उनके लिये उदक-क्रिया निवृत्त हो जाती है। एक ही माताद्वारा दो पिताओंसे उत्पन्न जो दो भाई हों, उनके जन्ममें सपिण्ड पुरुषोंको एक दिनका अशौच लगता है और मरनेपर दो दिनका। यहाँतक सपिण्डोंका अशौच बताया गया। अब 'समानोदक'का बता रहा हूँ ॥२४-२७॥

दाँत निकलनेसे पहले बालककी मृत्यु हो जाय, कोई सपिण्ड पुरुष देशान्तरमें रहकर मरा हो और उसका समाचार सुना जाय तथा किसी असपिण्ड पुरुषकी मृत्यु हो जाय—तो इन सब अवस्थाओंमें (नियत अशौचका काल बिताकर) वस्त्रसहित जलमें डुबकी लगानेपर तत्काल ही शुद्धि हो जाती है। मृत्यु तथा जन्मके अवसरपर सपिण्ड पुरुष दस दिनोंमें शुद्ध होते हैं, एक कुलके असपिण्ड पुरुष तीन रातमें शुद्ध होते हैं और एक गोत्रवाले पुरुष स्नान करनेमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। सातवीं पीढ़ीमें सपिण्ड-भावकी निवृत्ति हो जाती है और चौदहवीं पीढ़ीतक समानोदक सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है। किसीके मतमें जन्म और नामका स्मरण न रहनेपर अर्थात् हमारे कुलमें अमुक पुरुष हुए थे, इस प्रकार जन्म और नाम दोनोंका ज्ञान न रहनेपर—समानोदक-भाव निवृत्त हो जाता है। इसके बाद केवल गोत्रका सम्बन्ध रह जाता है। जो दशाह बीतनेके पहले परदेशमें रहनेवाले किसी जाति-बन्धुकी मृत्युका समाचार सुन लेता है, उसे दशाहमें जितने दिन शेष रहते हैं, उतने ही दिनका अशौच लगता है। दशाह बीत जानेपर उक्त समाचार सुने तो तीन रातका अशौच प्राप्त होता है ॥ २८-३२ ॥

वर्ष बीत जानेपर उक्त समाचार ज्ञात हो तो जलका स्पर्श करके ही मनुष्य शुद्ध हो जाता है। मामा, शिष्य, ऋत्विक् तथा बान्धवजनोंके मरनेपर एक दिन, एक रात और एक दिनका अशौच लगता है। मित्र, दामाद, पुत्रीके पुत्र, भानजे, साले और सालेके पुत्रके मरनेपर स्नानमात्र करनेका विधान है। नानी, आचार्य तथा नानाकी मृत्यु

होनेपर तीन दिनका अशौच लगता है। दुर्भिक्ष (अकाल) पड़नेपर, समूचे राष्ट्रके ऊपर संकट आनेपर, आपत्ति-विपत्ति पड़नेपर तत्काल शुद्धि कही गयी है। यज्ञकर्ता, व्रतपरायण, ब्रह्मचारी, दाता तथा ब्रह्मवेत्ताकी तत्काल ही शुद्धि होती है। दान, यज्ञ, विवाह, युद्ध तथा देशव्यापी विप्लवके समय भी सद्यःशुद्धि ही बतायी गयी है। महामारी आदि उपद्रवमें मरे हुएका अशौच भी तत्काल ही निवृत्त हो जाता है। राजा, गौ तथा ब्राह्मणद्वारा मारे गये मनुष्योंकी और आत्मघाती पुरुषोंकी मृत्यु होनेपर भी तत्काल ही शुद्धि कही गयी है ॥ ३३–३७ ॥

जो असाध्य रोगसे युक्त एवं स्वाध्यायमें भी असमर्थ है, उसके लिये भी तत्काल शुद्धिका ही विधान है। जिन महापापियोंके लिये अग्नि और जलमें प्रवेश कर जाना प्रायश्चित्त बताया गया है (उनका वह मरण आत्मघात नहीं है)। जो स्त्री अथवा पुरुष अपमान, क्रोध, स्नेह, तिरस्कार या भयके कारण गलेमें बन्धन (फाँसी) लगाकर किसी तरह प्राण त्याग देते हैं, उन्हें 'आत्मघाती' कहते हैं। वह आत्मघाती मनुष्य एक लाख वर्षतक अपवित्र नरकमें निवास करता है। जो अत्यन्त वृद्ध है, जिसे शौचाशौचका भी ज्ञान नहीं रह गया है, वह यदि प्राण त्याग करता है तो उसका अशौच तीन दिनतक ही रहता है। उसमें (प्रथम दिन दाह), दूसरे दिन अस्थिसंचय, तीसरे दिन जलदान तथा चौथे दिन श्राद्ध करना चाहिये। जो बिजली अथवा अग्निसे मरते हैं, उनके अशौचमें सपिण्ड पुरुषोंकी तीन दिनमें शुद्धि होती है। जो स्त्रियाँ पाखण्डका आश्रय लेनेवाली तथा पतिघातिनी हैं, उनकी मृत्युपर अशौच नहीं लगता और न उन्हें जलाञ्जलि पानेका ही अधिकार होता है। पिता-माता आदिकी मृत्यु होनेका समाचार एक वर्ष बीत जानेपर भी प्राप्त हो तो सवस्त्र स्नान करके उपवास करे और विधिपूर्वक प्रेतकार्य (जलदान आदि) सम्पन्न करे ॥ ३८–४३ ॥

जो कोई पुरुष जिस किसी तरह भी असपिण्ड शवको उठाकर ले जाय, वह वस्त्रसहित स्नान करके अग्निका स्पर्श करे और घी खा ले, इससे उसकी शुद्धि हो जाती है। यदि उस कुटुम्बका वह अन्न खाता है तो दस दिनमें ही उसकी शुद्धि होती है। यदि मृतकके घरवालोंका अन्न न खाकर उनके घरमें निवास भी न करे तो उसकी एक ही दिनमें शुद्धि हो जायगी। जो द्विज अनाथ ब्राह्मणके शवको ढोते हैं, उन्हें पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है और स्नान करनेमात्रसे उनकी शुद्धि हो जाती है। शूद्रके शवका अनुगमन करनेवाला ब्राह्मण तीन दिनपर शुद्ध होता है। मृतक व्यक्तिके बन्धु-बान्धवोंके साथ बैठकर शोक-प्रकाश या विलाप करनेवाला द्विज उस एक दिन और एक रातमें स्वेच्छासे दान और श्राद्ध आदिका त्याग करे। यदि अपने घरपर किसी शूद्रा स्त्रीके बालक पैदा हो या शूद्रका मरण हो जाय तो तीन दिनपर घरके बर्तन-भाँड़े निकाल फेंके और सारी भूमि लीप दे, तब शुद्धि होती है। सजातीय व्यक्तियोंके रहते हुए ब्राह्मण-शवको शूद्रके द्वारा न उठवाये। मुर्देको नहलाकर नूतन वस्त्रसे ढक दे और फूलोंसे उसका पूजन करके श्मशानकी ओर ले जाय। मुर्देको नंगे शरीर न जलाये। कफनका कुछ हिस्सा फाड़कर श्मशानवासीको दे देना चाहिये ॥ ४४–५० ॥

उस समय सगोत्र पुरुष शवको उठाकर चितापर चढ़ावे। जो अग्निहोत्री हो, उसे विधिपूर्वक तीन अग्नियों (आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणाग्नि) द्वारा दग्ध करना चाहिये। जिसने अग्निकी स्थापना नहीं की हो, परंतु उपनयन-संस्कारसे युक्त हो, उसका एक अग्नि (आहवनीय) द्वारा दाह करना चाहिये तथा अन्य साधारण मनुष्योंका दाह लौकिक अग्निसे करना चाहिये।* 'अस्मात् त्वमभिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।' इस मन्त्रको पढ़कर पुत्र अपने पिताके शवके मुखमें अग्नि प्रदान करे। फिर प्रेतके नाम और गोत्रका उच्चारण करके बान्धव-जन एक-एक बार जल-दान करें। इसी प्रकार नाना तथा आचार्यके मरनेपर भी उनके उद्देश्यसे जलाञ्जलिदान करना अनिवार्य है। परंतु मित्र, ब्याही हुई बेटी-बहन आदि, भानजे, श्वशुर तथा ऋत्विजके लिये भी जल-दान करना अपनी इच्छापर निर्भर है। पुत्र अपने पिताके लिये दस दिनोंतक प्रतिदिन 'अपो नः शोशुचद् अघम्' इत्यादि पढ़कर

---

* देवल-स्मृतिमें लिखा है कि 'चाण्डालकी अग्नि, अपवित्र अग्नि, सूतिका-गृहकी अग्नि, पतितके घरकी अग्नि तथा चिताकी अग्नि—इन्हें शिष्ट पुरुषको नहीं ग्रहण करना चाहिये।' अतः लौकिक अग्नि लेते समय उपर्युक्त अग्नियोंको त्याग देना चाहिये। 'चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिचित्। पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचिता॥'

जलाञ्जलि दे। ब्राह्मणको दस पिण्ड, क्षत्रियको बारह पिण्ड, वैश्यको पंद्रह पिण्ड और शूद्रको तीस पिण्ड देनेका विधान है। पुत्र हो या पुत्री अथवा और कोई, वह पुत्रकी भाँति मृत व्यक्तिको पिण्ड दे ॥ ५१–५६ ॥

शवका दाह-संस्कार करके जब घर लौटे तो मनको वशमें रखकर द्वारपर खड़ा हो दाँतसे नीमकी पत्तियाँ चबाये। फिर आचमन करके अग्नि, जल, गोबर और पीली सरसोंका स्पर्श करे। तत्पश्चात् पहले पत्थरपर पैर रखकर धीरे-धीरे घरमें प्रवेश करे। उस दिनसे बन्धु-बान्धवोंको क्षार नमक नहीं खाना चाहिये, मांस त्याग देना चाहिये। सबको भूमिपर शयन करना चाहिये। वे स्नान करके खरीदनेसे प्राप्त हुए अन्नको खाकर रहें। जो प्रारम्भमें दाह-संस्कार करे, उसे दस दिनोंतक सब कार्य करना चाहिये। अन्य अधिकारी पुरुषोंके अभावमें ब्रह्मचारी ही पिण्डदान और जलाञ्जलि-दान करे। जैसे सपिण्डोंके लिये यह मरणाशौचकी प्राप्ति बतायी गयी है, उसी प्रकार जन्मके समय भी पूर्ण शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको अशौचकी प्राप्ति होती है। मरणाशौच तो सभी सपिण्ड पुरुषोंको समानरूपसे प्राप्त होता है; किंतु जननाशौचकी अस्पृश्यता विशेषतः माता-पिताको ही लगती है। इनमें भी माताको ही जन्मका विशेष अशौच लगता है, वही स्पर्शके अधिकारसे वञ्चित होती है। पिता तो स्नान करनेमात्रसे शुद्ध (स्पर्श करने योग्य) हो जाता है ॥ ५७–६१ ॥

पुत्रका जन्म होनेके दिन निश्चय ही श्राद्ध करना चाहिये। वह दिन श्राद्ध-दान तथा गो, सुवर्ण आदि और वस्त्रका दान करनेके लिये उपयुक्त माना गया है। मरणका अशौच मरणके साथ और सूतकका सूतकके साथ निवृत्त होता है। दोनोंमें जो पहला अशौच है, उसीके साथ दूसरेकी भी शुद्धि होती है। जन्माशौचमें मरणाशौच हो अथवा मरणाशौचमें जन्माशौच हो जाय तो मरणाशौचके अधिकारमें जन्माशौचको भी निवृत्त मानकर अपनी शुद्धिका कार्य करना चाहिये। जन्माशौचके साथ मरणाशौचकी निवृत्ति नहीं होती। यदि एक समान दो अशौच हों (अर्थात् जन्म-सूतकमें जन्म-सूतक और मरणाशौचमें मरणाशौच पड़ जाय) तो प्रथम अशौचके साथ दूसरेको भी समाप्त कर देना चाहिये और यदि असमान अशौच हो (अर्थात् जन्माशौचमें मरणाशौच और मरणाशौचमें जन्माशौच हो) तो द्वितीय अशौचके साथ प्रथमको निवृत्त करना चाहिये— ऐसा धर्मराजका कथन है। मरणाशौचके भीतर दूसरा मरणाशौच आनेपर वह पहले अशौचके साथ निवृत्त हो जाता है। गुरु अशौचसे लघु अशौच बाधित होता है; लघुसे गुरु अशौचका बाध नहीं होता। मृतक अथवा सूतकमें यदि अन्तिम रात्रिके मध्यभागमें दूसरा अशौच आ पड़े तो उस शेष समयमें ही उसकी भी निवृत्ति हो जानेके कारण सभी सपिण्ड पुरुष शुद्ध हो जाते हैं। यदि रात्रिके अन्तिम भागमें दूसरा अशौच आवे तो दो दिन अधिक बीतनेपर अशौचकी निवृत्ति होती है तथा यदि अन्तिम रात्रि बिताकर अन्तिम दिनके प्रातःकाल अशौचान्तर प्राप्त हो तो तीन दिन और अधिक बीतनेपर सपिण्डोंकी शुद्धि होती है। दोनों ही प्रकारके अशौचोंमें दस दिनोंतक उस कुलका अन्न नहीं खाया जाता है। अशौचमें दान आदिका भी अधिकार नहीं रहता। अशौचमें किसीके यहाँ भोजन करनेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये। अनजानमें भोजन करनेपर पातक नहीं लगता, जान-बूझकर खानेवालेको एक दिनका अशौच प्राप्त होता है ॥ ६२–६९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जनन-मरणके अशौचका वर्णन' नामक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५८ ॥

एक सौ उनसठवाँ अध्याय

असंस्कृत आदिकी शुद्धि

पुष्कर कहते हैं—मृतकका दाह-संस्कार हुआ हो या नहीं, यदि श्रीहरिका स्मरण किया जाय तो उससे उसको स्वर्ग और मोक्ष—दोनोंकी प्राप्ति हो सकती है*। मृतककी हड्डियोंको गङ्गाजीके जलमें डालनेसे उस प्रेत (मृत

* 'संस्कृतस्यासंस्कृतस्य स्वर्गो मोक्षो हरिस्मृतेः ।' (अग्नि० १५९ । १)

मरनेवाला मनुष्य मरनेके समय यदि भगवन्नामका उच्चारण या भगवत्स्मरण कर ले, तब तो उसे भगवत्प्राप्ति अवश्य होती है; परंतु यदि उसके उद्देश्यसे भगवत्स्मरण किया जाय तो उससे भी उसको स्वर्ग और मोक्ष सुलभ हो सकते हैं।

व्यक्ति) का अभ्युदय होता है। मनुष्यकी हड्डी जबतक गङ्गाजीके जलमें स्थित रहती है, तबतक उसका स्वर्गलोकमें निवास होता है।* आत्मत्यागी तथा पतित मनुष्योंके लिये यद्यपि पिण्डोदक-क्रियाका विधान नहीं है तथापि गङ्गाजीके जलमें उनकी हड्डियोंका डालना भी उनके लिये हितकारक ही है। उनके उद्देश्यसे दिया हुआ अन्न और जल आकाशमें लीन हो जाता है। पतित प्रेतके प्रति महान् अनुग्रह करके उसके लिये 'नारायण-बलि' करनी चाहिये। इससे वह उस अनुग्रहका फल भोगता है। कमलके सदृश नेत्रवाले भगवान् नारायण अविनाशी हैं, अतः उन्हें जो कुछ अर्पण किया जाता है, उसका नाश नहीं होता। भगवान् जनार्दन जीवका पतनसे त्राण (उद्धार) करते हैं, इसलिये वे ही दानके सर्वोत्तम पात्र हैं ॥ १-५ ॥

निश्चय ही नीचे गिरनेवाले जीवोंको भी भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले एकमात्र श्रीहरि ही हैं। 'सम्पूर्ण जगत्‌के लोग एक-न-एक दिन मरनेवाले हैं'—यह विचारकर सदा अपने सच्चे सहायक धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। पतिव्रता पत्नीको छोड़कर दूसरा कोई बन्धु-बान्धव मरकर भी मरे हुए मनुष्यके साथ नहीं जा सकता; क्योंकि यमलोकका मार्ग सबके लिये अलग-अलग है। जीव कहीं भी क्यों न जाय, एकमात्र धर्म ही उसके साथ जाता है। जो काम कल करना है, उसे आज ही कर ले; जिसे दोपहर बाद करना है, उसे पहले ही पहरमें कर ले; क्योंकि मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि इसका कार्य पूरा हो गया है या नहीं ? मनुष्य खेत-बारी, बाजार हाट तथा घर-द्वारमें फँसा होता है, उसका मन अन्यत्र लगा होता है; इसी दशामें जैसे असावधान भेड़को सहसा भेड़िया आकर उठा ले जाय, वैसे ही मृत्यु उसे लेकर चल देती है। कालके लिये न तो कोई प्रिय है, न द्वेषका पात्र† ॥६-१०॥

आयुष्य तथा प्रारब्धकर्म क्षीण होनेपर वह हठात् जीवको हर ले जाता है। जिसका काल नहीं आया है, वह सैकड़ों बाणोंसे घायल होनेपर भी नहीं मरता तथा जिसका काल आ पहुँचा है, वह कुशके अग्रभागसे ही छू जाय तो भी जीवित नहीं रहता। जो मृत्युसे ग्रस्त है, उसे औषध और मन्त्र आदि नहीं बचा सकते। जैसे बछड़ा गौओंके झुंडमें भी अपनी माँके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म जन्मान्तरमें भी कर्ताको अवश्य ही प्राप्त होता है। इस जगत्‌का आदि और अन्त अव्यक्त है, केवल मध्यकी अवस्था ही व्यक्त होती है। जैसे जीवके इस शरीरमें कुमार तथा यौवन आदि अवस्थाएँ क्रमशः आती रहती हैं, उसी प्रकार मृत्युके पश्चात् उसे दूसरे शरीरकी भी प्राप्ति होती है। जैसे मनुष्य (पुराने वस्त्रको त्यागकर) दूसरे नूतन वस्त्रको धारण करता है, उसी प्रकार जीव एक शरीरको छोड़कर दूसरेको ग्रहण करता है। देहधारी जीवात्मा सदा अवध्य है, वह कभी मरता नहीं; अतः मृत्युके लिये शोक त्याग देना चाहिये ॥ ११-१४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'असंस्कृत आदिकी शुद्धिका वर्णन' नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५९ ॥

एक सौ साठवाँ अध्याय

वानप्रस्थ-आश्रम

पुष्कर कहते हैं—अब मैं वानप्रस्थ और संन्यासियोंके धर्मका जैसा वर्णन करता हूँ, सुनो। सिरपर जटा रखना, प्रतिदिन अग्निहोत्र करना, धरतीपर सोना और मृगचर्म धारण करना, वनमें रहना, फल, मूल, नीवार

---

* गङ्गातोये नरस्यास्थि यावत्तावद् दिवि स्थितिः । (अग्नि० १५९ । २)

† पततां भुक्तिमुक्त्यादिप्रद एको हरिर्ध्रुवम् । दृष्ट्वा लोकान् म्रियमाणान् सहाय धर्ममाचरेत् ॥
मृतोऽपि बान्धवः शक्तो नानुगन्तुं नरं मृतम् । जायावर्जं हि सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते ॥
धर्म एको व्रजत्येनं यत्रक्वचनगामिनम् । श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽऽपराह्णिकम् ॥
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम् । क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम् ॥
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति । न कालस्य प्रियः कश्चिद् द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥
(अग्नि० १५९ । ६-१०)

(तिन्नी) आदिसे जीवन-निर्वाह करना, कभी किसीसे कुछ भी दान न लेना, तीनों समय स्नान करना, ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर रहना तथा देवता और अतिथियोंकी पूजा करना—यह सब वानप्रस्थीका धर्म है। गृहस्थ पुरुषको उचित है कि अपनी संतानकी संतान देखकर वनका आश्रय ले और आयुका तृतीय भाग वनवासमें ही बितावे। उस आश्रममें वह अकेला रहे या पत्नीके साथ भी रह सकता है। [परंतु दोनों ब्रह्मचर्यका पालन करें।] गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निसेवन करे। वर्षाकालमें खुले आकाशके नीचे रहे। हेमन्त-ऋतुमें रात भर भीगे कपड़े ओढ़कर रहे। (अथवा जलमें रहे।) शक्ति रहते हुए वानप्रस्थीको इसी प्रकार उग्र तपस्या करनी चाहिये। वानप्रस्थसे फिर गृहस्थ-आश्रममें न लौटे। विपरीत या कुटिल गतिका आश्रय न लेकर सामनेकी दिशाकी ओर जाय अर्थात् पीछे न लौटकर आगे बढ़ता रहे* ॥ १-५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वानप्रस्थाश्रमका वर्णन' नामक एक सौ साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६० ॥

एक सौ इकसठवाँ अध्याय

संन्यासीके धर्म

पुष्कर कहते हैं—अब मैं ज्ञान और मोक्ष आदिका साक्षात्कार करानेवाले संन्यास-धर्मका वर्णन करूँगा। आयुके चौथे भागमें पहुँचकर, सब प्रकारके सङ्गसे दूर हो संन्यासी हो जाय। जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन घर छोड़कर चल दे—संन्यास ले ले। प्राजापत्य इष्टि (यज्ञ) करके सर्वस्वकी दक्षिणा दे दे तथा आहवनीयादि अग्नियोंको अपने-आपमें आरोपित करके ब्राह्मण घरसे निकल जाय। संन्यासी सदा अकेला ही विचरे। भोजनके लिये ही गाँवमें जाय। शरीरके प्रति उपेक्षाभाव रक्खे। अन्न आदिका संग्रह न करे। मननशील रहे। ज्ञान-सम्पन्न होवे। कपाल (मिट्टी आदिका खप्पर) ही भोजनपात्र हो, वृक्षकी जड़ ही निवास-स्थान हो, लँगोटीके लिये मैला-कुचैला वस्त्र हो, साथमें कोई सहायक न हो तथा सबके प्रति समताका भाव हो—यह जीवन्मुक्त पुरुषका लक्षण है। न तो मरनेकी इच्छा करे, न जीनेकी—जीवन और मृत्युमेंसे किसीका अभिनन्दन न करे ॥ १—५ ॥

जैसे सेवक अपने स्वामीकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार वह प्रारब्धवश प्राप्त होनेवाले काल (अन्त-समय) की प्रतीक्षा करता रहे। मार्गपर दृष्टिपात करके पाँव रखे अर्थात् रास्तेमें कोई कीड़ा-मकोड़ा, हड्डी, केश आदि तो नहीं है, यह भलीभाँति देखकर पैर रखे। पानीको कपड़ेसे छानकर पीये। सत्यसे पवित्र की हुई वाणी बोले। मनसे दोष-गुणका विचार करके कोई कार्य करे। लौकी, काठ, मिट्टी तथा बाँस—ये ही संन्यासीके पात्र हैं। जब गृहस्थके घरसे धूआँ निकलना बंद हो गया हो, मुसल रख दिया गया हो, आग बुझ गयी हो, घरके सब लोग भोजन कर चुके हों और जूँठे शराव (मिट्टीके प्याले) फेंक दिये गये हों, ऐसे समयमें संन्यासी प्रतिदिन भिक्षाके लिये जाय। भिक्षा पाँच प्रकारकी मानी गयी है—मधुकरी (अनेक घरोंसे थोड़ा-थोड़ा अन्न माँग लाना), असंक्लृप्त (जिसके विषयमें पहलेसे कोई संकल्प या निश्चय न हो, ऐसी भिक्षा), प्राक्प्रणीत (पहलेसे तैयार रक्खी हुई भिक्षा), अयाचित (बिना माँगे जो अन्न प्राप्त हो जाय, वह) और तत्काल उपलब्ध (भोजनके समय स्वतःप्राप्त)। अथवा करपात्री होकर रहे—अर्थात् हाथहीमें लेकर भोजन करे और हाथमें ही पानी पीये। दूसरे किसी पात्रका उपयोग न करे। पात्रसे अपने हाथरूपी पात्रमें भिक्षा लेकर उसका उपयोग करे। मनुष्योंकी कर्मदोषसे प्राप्त होनेवाली यमयातना और नरकपात आदि गतिका चिन्तन करे ॥ ६—१० ॥

जिस किसी भी आश्रममें स्थित रहकर मनुष्यको शुद्ध भावसे आश्रमोचित धर्मका पालन करना चाहिये। सब भूतोंमें समान भाव रखे। केवल आश्रम-चिह्न धारण कर लेना ही धर्मका हेतु नहीं है (उस आश्रमके लिये विहित कर्तव्यका पालन करनेसे ही धर्मका अनुष्ठान होता है)। निर्मलीका फल यद्यपि पानीमें पड़नेपर उसे स्वच्छ बनानेवाला है, तथापि केवल उसका नाम लेनेमात्रसे जल स्वच्छ नहीं हो जाता।

* तात्पर्य यह कि पीछे गृहस्थकी ओर न लौटकर आगे संन्यासकी दिशामें बढ़ता चले।

इसी प्रकार आश्रमके लिङ्ग धारणमात्रसे लाभ नहीं होता, विहित धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। अज्ञानवश संसार-बन्धनमें बँधा हुआ द्विज लँगड़ा, लूला, अंधा और बहरा क्यों न हो, यदि कुटिलतारहित संन्यासी हो जाय तो वह सत् और असत्—सबसे मुक्त हो जाता है। संन्यासी दिन या रातमें बिना जाने जिन जीवोंकी हिंसा करता है, उनके वधरूप पापसे शुद्ध होनेके लिये वह स्नान करके छः बार प्राणायाम करे। यह शरीररूपी गृह हड्डीरूपी खंभोंसे युक्त है, नाडीरूप रस्सियोंसे बँधा हुआ है, मांस तथा रक्तसे लिपा हुआ और चमड़ेसे छाया गया है। यह मल और मूत्रसे भरा हुआ होनेके कारण अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण है। इसमें बुढ़ापा तथा शोक व्याप्त हैं। यह अनेक रोगोंका घर और भूख-प्याससे आतुर रहनेवाला है। इसमें रजोगुणका प्रभाव अधिक है। यह अनित्य—विनाशशील एवं पृथिवी आदि पाँच भूतोंका निवास-स्थान है; विद्वान् पुरुष इसे त्याग दे—अर्थात् ऐसा प्रयत्न करे, जिससे फिर देहके बन्धनमें न आना पड़े ॥ ११—१६ ॥

धृति, क्षमा, दम (मनोनिग्रह), चोरी न करना, बाहर-भीतरसे पवित्र रहना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, लज्जा[1], विद्या, सत्य तथा अक्रोध (क्रोध न करना)—ये धर्मके दस लक्षण हैं। संन्यासी चार प्रकारके होते हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें जो-जो पिछला है, वह पहलेकी अपेक्षा उत्तम है। योगयुक्त संन्यासी पुरुष एकदण्डी हो या त्रिदण्डी, वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरीका अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह न रखना)—ये पाँच 'यम' हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरकी आराधना—ये पाँच 'नियम' हैं। योगयुक्त संन्यासीके लिये इन सबका पालन आवश्यक है। पद्मासन आदि आसनोंसे उसको बैठना चाहिये ॥ १७—२० ॥

प्राणायाम दो प्रकारका है—एक 'सगर्भ' और दूसरा 'अगर्भ'। मन्त्रजप और ध्यानसे युक्त प्राणायाम 'सगर्भ' कहलाता है और इसके विपरीत जप-ध्यानरहित प्राणायामको 'अगर्भ' कहते हैं। पूरक, कुम्भक तथा रेचकके भेदसे प्राणायाम तीन प्रकारका होता है। वायुको भीतर भरनेसे 'पूरक' प्राणायाम होता है, उसे स्थिरतापूर्वक रोकनेसे 'कुम्भक' होता है और फिर उस वायुको बाहर निकालनेसे 'रेचक' प्राणायाम कहा गया है। मात्राभेदसे भी वह तीन प्रकारका है—बारह मात्राका, चौबीस मात्राका तथा छत्तीस मात्राका। इसमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। ताल या ह्रस्व अक्षरको 'मात्रा' कहते हैं। प्राणायाममें 'प्रणव' आदि मन्त्रका धीरे-धीरे जप करे। इन्द्रियोंके संयमको 'प्रत्याहार' कहा गया है। जप करनेवाले साधकोंद्वारा जो ईश्वरका चिन्तन किया जाता है, उसे 'ध्यान' कहते हैं; मनको धारण करनेका नाम 'धारणा' है; ब्रह्ममें स्थितिको 'समाधि' कहते हैं ॥ २१—२४ ॥

'यह आत्मा परब्रह्म है; ब्रह्म—सत्य, ज्ञान और अनन्त है; *ब्रह्म विज्ञानमय तथा आनन्दस्वरूप है; वह ब्रह्म तू है;* वह ब्रह्म मैं हूँ; परब्रह्म परमात्मा प्रकाशस्वरूप है; वही आत्मा है, वासुदेव है, नित्यमुक्त है; वही 'ओ३म्' शब्दवाच्य सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित तथा जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति आदिसे मुक्त जो तुरीय तत्त्व है, वही ब्रह्म है; वह नित्य शुद्ध बुद्ध-मुक्तस्वरूप है; सत्य, आनन्दमय तथा अद्वैतरूप है; सर्वत्र व्यापक, अविनाशी ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म ही श्रीहरि है और वह मैं हूँ; आदित्यमण्डलमें जो वह ज्योतिर्मय पुरुष है, वह अखण्ड प्रणववाच्य परमेश्वर मैं हूँ'—इस प्रकारका सहज बोध ही ब्रह्ममें स्थितिका सूचक है ॥ २५—२८½ ॥

जो सब प्रकारके आरम्भका त्यागी है—अर्थात् जो फलासक्ति एवं अहंकारपूर्वक किसी कर्मका आरम्भ नहीं करता—कर्तृत्वाभिमानसे शून्य होता है, दुःख-सुखमें समान रहता है, सबके प्रति क्षमाभाव रखनेवाला एवं सहनशील होता है, वह भावशुद्ध ज्ञानी मनुष्य ब्रह्माण्डका भेदन करके साक्षात् ब्रह्म हो जाता है। यतिको चाहिये कि वह आषाढ़की पूर्णिमाको चातुर्मास्यव्रत प्रारम्भ करे। फिर कार्तिक शुक्ला नवमी आदि तिथियोंसे विचरण करे। ऋतुओंकी संधिके दिन मुण्डन करावे। संन्यासियोंके लिये ध्यान तथा प्राणायाम ही प्रायश्चित्त है ॥ २९—३१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'यतिधर्मका वर्णन' नामक एक सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६१ ॥

---

१. मनुस्मृतिमें 'ह्रीः'के स्थानमें 'धीः' पाठ है। 'धी'का अर्थ है—शास्त्र आदिके तत्त्वका ज्ञान।

एक सौ बासठवाँ अध्याय

धर्मशास्त्रका उपदेश

पुष्कर कहते हैं—मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य, हारीत, अत्रि, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शङ्ख और लिखित—इन सबने धर्मका जैसा उपदेश किया है, वैसा ही मैं भी संक्षेपसे कहूँगा, सुनो। यह धर्म भोग और मोक्ष देनेवाला है। वैदिक कर्म दो प्रकारका है—एक 'प्रवृत्त' और दूसरा 'निवृत्त'। कामनायुक्त कर्मको 'प्रवृत्तकर्म' कहते हैं। ज्ञानपूर्वक निष्कामभावसे जो कर्म किया जाता है, उसका नाम 'निवृत्तकर्म' है। वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा—ये परम उत्तम कर्म निःश्रेयस (मोक्षरूप कल्याण) के साधक हैं। इन सबमे भी आत्मज्ञान सबसे उत्तम बताया गया है ॥ १-५ ॥

वह सम्पूर्ण विद्याओंमें श्रेष्ठ है। उससे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। सम्पूर्ण भूतोंमें आत्माको और आत्मामें सम्पूर्ण भूतोंको समानभावसे देखते हुए जो आत्माका ही यजन (आराधन) करता है, वह स्वाराज्य—अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है। आत्मज्ञान तथा शम (मनोनिग्रह) के लिये सदा यत्नशील रहना चाहिये। यह सामर्थ्य या अधिकार द्विजमात्रको—विशेषतः ब्राह्मणको प्राप्त है। जो वेद-शास्त्रके अर्थका तत्त्वज्ञ होकर जिस-किसी भी आश्रममें निवास करता है, वह इसी लोकमें रहते हुए ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। (यदि नया अन्न तैयार हो गया हो तो) श्रावण मासकी पूर्णिमाको अथवा श्रवणनक्षत्रसे युक्त दिनको अथवा हस्तनक्षत्रसे युक्त श्रावण शुक्ला पञ्चमीको अपनी शाखाके अनुकूल प्रचलित गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार वेदोंका नियमपूर्वक अध्ययन प्रारम्भ करे। यदि श्रावणमासमें नयी फसल तैयार न हो तो जब वह तैयार हो जाय तभी भाद्रपद-मासमें श्रवणनक्षत्रयुक्त दिनको वेदोंका उपाकर्म करे। (और उस समयसे लेकर लगातार साढ़े चार मासतक वेदोंका अध्ययन चालू रक्खे*।) फिर पौषमासमें रोहिणी-नक्षत्रके दिन अथवा अष्टका तिथिको नगर या गाँवके बाहर जलके समीप अपने गृह्योक्त विधानसे वेदाध्ययनका उत्सर्ग (त्याग) करे। [यदि भाद्रपदमासमें वेदाध्ययन प्रारम्भ किया गया हो तो माघ शुक्ला प्रतिपदाको उत्सर्जन करना चाहिये—ऐसा मनुका (४।९७) कथन है।] ॥ ६-१०½ ॥

शिष्य, ऋत्विज, गुरु और बन्धुजन—इनकी मृत्यु होनेपर तीन दिनतक अध्ययन बंद रखना चाहिये। उपाकर्म (वेदाध्ययनका प्रारम्भ) और उत्सर्जन (अध्ययनकी समाप्ति) जिस दिन हो, उससे तीन दिनतक अध्ययन बंद रखना चाहिये। अपनी शाखाका अध्ययन करनेवाले विद्वान्‌की मृत्यु होनेपर भी तीन दिनोंतक अनध्याय रखना उचित है। संध्याकालमें, मेघकी गर्जना होनेपर, आकाशमें उत्पात-सूचक शब्द होनेपर, भूकम्प और उल्कापात होनेपर, मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदकी समाप्ति होनेपर तथा आरण्यकका अध्ययन करनेपर एक दिन और एक रात अध्ययन बंद रखना चाहिये। पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी तथा चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहणके दिन भी एक दिन-रातका अनध्याय रखना उचित है। दो ऋतुओंकी संधिमें आयी हुई प्रतिपदा तिथिको तथा श्राद्ध-भोजन एवं श्राद्धका प्रतिग्रह स्वीकार करनेपर भी एक दिन-रात अध्ययन बंद रक्खे। यदि स्वाध्याय करनेवालोंके बीचमें कोई पशु, मेढक, नेवला, कुत्ता, सर्प, बिलाव और चूहा आ जाय तो एक दिन-रातका अनध्याय होता है ॥ ११-१४ ॥

जब इन्द्रध्वजकी पताका उतारी जाय, उस दिन तथा जब इन्द्रध्वज फहराया जाय, उस दिन भी पूरे दिन-रातका अनध्याय होना चाहिये। कुत्ता, सियार, गदहा, उल्लू, सामगान, बाँस तथा आर्त प्राणीका शब्द सुनायी देनेपर, अपवित्र वस्तु, मुर्दा, शूद्र, अन्त्यज, श्मशान और पतित मनुष्य—इनका सांनिध्य होनेपर, अशुभ ताराओंमें, बारंबार बिजली चमकने तथा बारंबार मेघ-गर्जना होनेपर तात्कालिक अनध्याय होता है। भोजन करके तथा गीले हाथ अध्ययन न करे। जलके भीतर, आधी रातके समय, अधिक आँधी चलनेपर भी अध्ययन बंद कर देना चाहिये। धूलकी वर्षा होनेपर, दिशाओंमें दाह होनेपर, दोनों संध्याओंके

* मनुजीका कथन है—'युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्।' (मनु० ४।९५)

समय कुहासा पड़नेपर, चोर या राजा आदिका भय प्राप्त होनेपर तत्काल स्वाध्याय बंद कर देना चाहिये। दौड़ते समय अध्ययन न करे। किसी प्राणीपर प्राणबाधा उपस्थित होनेपर और अपने घर किसी श्रेष्ठ पुरुषके पधारनेपर भी अनध्याय रखना उचित है। गदहा, ऊँट, रथ आदि सवारी, हाथी, घोड़ा, नौका तथा वृक्ष आदिपर चढ़नेके समय और ऊसर या मरुभूमिमें स्थित होकर भी अध्ययन बंद रखना चाहिये। इन सैंतीस प्रकारके अनध्यायोंको तात्कालिक (केवल उसी समयके लिये आवश्यक) माना गया है॥ १५—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धर्मशास्त्रका वर्णन' नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६२॥

एक सौ तिरसठवाँ अध्याय

श्राद्धकल्पका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुराम! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले श्राद्धकल्पका वर्णन करता हूँ, सावधान होकर श्रवण कीजिये। श्राद्धकर्ता पुरुष मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर, पवित्र हो, श्राद्धसे एक दिन पहले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उन ब्राह्मणोंको भी उसी समयसे मन, वाणी, शरीर तथा क्रियाद्वारा पूर्ण संयमशील रहना चाहिये। श्राद्धके दिन अपराह्णकालमें आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागत-पूर्वक पूजन करे। स्वयं हाथमें कुशकी पवित्री धारण किये रहे। जब ब्राह्मणलोग आचमन कर लें, तब उन्हें आसनपर बिठाये। देवकार्यमें अपनी शक्तिके अनुसार युग्म (दो, चार, छः आदि संख्यावाले) और श्राद्धमें अयुग्म (एक, तीन, पाँच आदि संख्यावाले) ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। सब ओरसे घिरे हुए गोबर आदिसे लिपे-पुते पवित्र स्थानमें, जहाँ दक्षिण दिशाकी ओर भूमि कुछ नीची हो, श्राद्ध करना चाहिये। वैश्वदेव-श्राद्धमें दो ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बिठाये और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख। अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही सम्मिलित करे। मातामहोंके श्राद्धमें भी ऐसा ही करना चाहिये। अर्थात् दो वैश्वदेव-श्राद्धमें और तीन मातामहादि-श्राद्धमें अथवा उभय पक्षमें एक-ही-एक ब्राह्मण रखे। वैश्वदेव-श्राद्धके लिये ब्राह्मणका हाथ धुलानेके निमित्त उसके हाथमें जल दे और आसनके लिये कुश दे। फिर ब्राह्मणसे पूछे—'मैं विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहता हूँ।' तब ब्राह्मण आज्ञा दें—'आवाहन करो।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर **'विश्वेदेवास आगत०'** (यजु० ७। ३४) इत्यादि ऋचा पढ़कर विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तब ब्राह्मणके समीपकी भूमिपर जौ बिखेरे। फिर पवित्रीयुक्त अर्घ्यपात्रमें **'शं नो देवी०'** (यजु० ३६। १२)—इस मन्त्रसे जल छोड़े। **'यवोऽसि०'**—इत्यादिसे जौ डाले। फिर बिना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प भी छोड़ दे। तत्पश्चात् **'या दिव्या आपः०'**—इस मन्त्रसे अर्घ्यको अभि-मन्त्रित करके ब्राह्मणके हाथमें संकल्पपूर्वक अर्घ्य दे और कहे—**'अमुकश्राद्धे विश्वेदेवाः इदं वो हस्तार्घ्यं नमः।'**—यों कहकर वह अर्घ्यजल कुशयुक्त ब्राह्मणके हाथमें या कुशापर गिरा दे। तत्पश्चात् हाथ धोनेके लिये जल देकर क्रमशः गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा आच्छादन-वस्त्र अर्पण करे। पुनः हस्त-शुद्धिके लिये जल दे। [विश्वेदेवोंको जो कुछ भी देना हो, वह सव्यभावसे उत्तराभिमुख होकर दे और पितरोंको प्रत्येक वस्तु अपसव्यभावसे दक्षिणाभिमुख होकर देनी चाहिये।]॥ १—५½॥

वैश्वदेव-काण्डके अनन्तर यज्ञोपवीत अपसव्य करके पिता आदि तीनों पितरोंके लिये तीन द्विगुणभुग्न कुशोंको उनके आसनके लिये अप्रदक्षिण-क्रमसे दे। फिर पूर्ववत् ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर **'उशन्तस्त्वा०'** (यजु० १९। ७०) इत्यादि मन्त्रसे पितरोंका आवाहन करके, **'आयन्तु नः०'** (यजु० १९। ५८) इत्यादिका जप करे। **'अपहता असुरा रक्षाᳬसि वेदिषदः०'**—(यजु० २। २९)'—यह मन्त्र पढ़कर सब ओर तिल बिखेरे। वैश्वदेवश्राद्धमें जो कार्य जौसे किया जाता है, वही पितृ-श्राद्धमें तिलसे करना चाहिये। अर्घ्य आदि पूर्ववत् करे। संस्रव (ब्राह्मणके हाथसे चूये हुए जल) पितृपात्रमें ग्रहण करके, भूमि-पर दक्षिणाग्र कुश रखकर, उसके ऊपर उस पात्रको अधोमुख करके ढुलका दे और कहे—**'पितृभ्यः स्थानमसि।'** फिर उसके ऊपर अर्घ्यपात्र और पवित्र आदि रखकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि पितरोंको निवेदित करे। इसके बाद **'अग्नौकरण'** कर्म करे। घीसे तर किया हुआ अन्न लेकर

ब्राह्मणोंसे पूछे—'अग्नौ करिष्ये।' (मैं अग्निमें इसकी आहुति दूँगा।) तब ब्राह्मण इसके लिये आज्ञा दें। इस प्रकार आज्ञा लेकर पितृ-यज्ञकी भाँति उस अन्नकी दो आहुति दे। [उस समय ये दो मन्त्र क्रमशः पढ़े—'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा नमः। सोमाय पितृमते स्वाहा नमः।' (यजु० २। २९)] फिर होमशेष अन्नको एकाग्रचित्त होकर यथाप्राप्त पात्रोंमें—विशेषतः चाँदीके पात्रोंमें परोसे। इस प्रकार अन्न परोसकर, 'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर पात्रको अभिमन्त्रित करे। फिर 'इदं विष्णुः०' (यजु० ५। १५) इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके अन्नमें ब्राह्मणके अँगूठेका स्पर्श कराये। तदनन्तर तीनों व्याहृतियोंसहित गायत्री मन्त्र तथा 'मधु वाता०' (यजु० १३। २७—२९)—इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करे और ब्राह्मणोंसे कहे—'आप सुखपूर्वक अन्न ग्रहण करें।' फिर वे ब्राह्मण भी मौन होकर प्रसन्नतापूर्वक भोजन करें। [उस समय यजमान क्रोध और उतावलीको त्याग दे और] जबतक ब्राह्मणलोग पूर्णतया तृप्त न हो जायँ, तबतक पूछ-पूछकर प्रिय अन्न और हविष्य उन्हें परोसता रहे। उस समय पूर्वोक्त मन्त्रोंका तथा 'पावमानी' आदि ऋचाओंका जप या पाठ करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे—'क्या आप पूर्ण तृप्त हो गये?' ब्राह्मण कहें—'हाँ, हम तृप्त हो गये।' यजमान फिर पूछे—'शेष अन्नका क्या किया जाय?' ब्राह्मण कहें—'इष्टजनोंके साथ भोजन करो।' उनकी इस आज्ञाको 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकार करे। फिर हाथमें लिये हुए अन्नको ब्राह्मणोंके आगे उनकी जूठनके पास ही दक्षिणाग्र-कुश भूमिपर रखकर उन कुशोंपर तिल-जल छोड़कर रख दे। उस समय 'अग्निदग्धाश्च ये०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर ब्राह्मणोंके हाथमें कुल्ला करनेके लिये एक-एक बार जल दे। फिर पिण्डके लिये तैयार किया हुआ सारा अन्न लेकर, दक्षिणाभिमुख हो, पितृयज्ञ कल्पके अनुसार तिलसहित पिण्डदान करे। इसी प्रकार मातामह आदिके लिये पिण्ड दे। फिर ब्राह्मणोंके आचमनार्थ जल दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और उनके हाथमें जल देकर उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—"आपलोग 'अक्षय्यमस्तु' कहें।" तब ब्राह्मण 'अक्षय्यम् अस्तु' बोलें। इसके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर कहे 'अब मैं स्वधा-वाचन कराऊँगा।' ब्राह्मण कहें—'स्वधा-वाचन कराओ।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर 'पितरों और मातामहादिके लिये आप यह स्वधा-वाचन करें'—ऐसा कहे। तब ब्राह्मण बोलें—'अस्तु स्वधा।' इसके अनन्तर पृथ्वीपर जल सींचे और 'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्।'—यों कहे। ब्राह्मण भी इस वाक्यको दुहरायें—'प्रीयन्तां विश्वेदेवाः'। तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे श्राद्धकर्ता निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्त्विति॥

'मेरे दाता बढ़ें। वेद और संतति बढ़े। हमारी श्रद्धा कम न हो और हमारे पास दानके लिये बहुत धन हो।'

—यह कहकर ब्राह्मणोंसे नम्रतापूर्वक प्रियवचन बोले और उन्हें प्रणाम करके विसर्जन करे—'वाजे वाजे०' (यजु० ९। १८) इत्यादि ऋचाओंको पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक पितरोंका विसर्जन करे। पहले पितरोंका, फिर विश्वेदेवोंका विसर्जन करना चाहिये। पहले जिस अर्घ्यपात्रमें संस्रवका जल डाला गया था, उस पितृ-पात्रको उतान करके ब्राह्मणोंको बिदा करना चाहिये। ग्रामकी सीमातक ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे जाकर, उनके कहनेपर उनकी परिक्रमा करके लौटे और पितृसेवित श्राद्धान्नको इष्टजनोंके साथ भोजन करे। उस रात्रिमें यजमान और ब्राह्मण—दोनोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये॥ ६—२२॥

इसी प्रकार पुत्रजन्म और विवाहादि वृद्धिके अवसरोंपर प्रदक्षिणावृत्तिसे नान्दीमुख-पितरोंका यजन करे। दही और बेर मिले हुए अन्नका पिण्ड दे और तिलसे किये जानेवाले सब कार्य जौसे करे। एकोद्दिष्टश्राद्ध बिना वैश्वदेवके होता है। उसमें एक ही अर्घ्यपात्र तथा एक ही पवित्रक दिया जाता है। इसमें आवाहन और अग्नौकरणकी क्रिया नहीं होती। सब कार्य जनेऊको अपसव्य रखकर किये जाते हैं। 'अक्षय्यमस्तु' के स्थानमें 'उपतिष्ठताम्' का प्रयोग करे। 'वाजे वाजे०' इस मन्त्रसे ब्राह्मणका विसर्जन करते समय 'अभिरम्यताम्।' कहे और ब्राह्मणलोग 'अभिरताः स्मः।'—ऐसा उत्तर दें। सपिण्डीकरण-श्राद्धमें पूर्वोक्त विधिसे अर्घ्यसिद्धिके लिये गन्ध, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र तैयार करे। (इनमेंसे तीन तो पितरोंके पात्र हैं और एक प्रेतका पात्र होता है।) इनमें प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रोंमें डाले। उस समय 'ये समाना०' इत्यादि दो मन्त्रोंका उच्चारण करे। शेष क्रिया पूर्ववत् करे। यह सपिण्डीकरण

और एकोद्दिष्टश्राद्ध माताके लिये भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरण-श्राद्ध वर्ष पूर्ण होनेसे पहले हो जाता है, उसके लिये एक वर्षतक ब्राह्मणको सान्नोदक कुम्भदान देते रहना चाहिये। एक वर्षतक प्रतिमास मृत्यु-तिथिको एकोद्दिष्ट करना चाहिये। फिर प्रत्येक वर्षमें एक बार क्षयाह-तिथिको एकोद्दिष्ट करना उचित है। प्रथम एकोद्दिष्ट तो मरनेके बाद ग्यारहवें दिन किया जाता है। सभी श्राद्धोंमें पिण्डोंको गाय, बकरे अथवा लेनेकी इच्छावाले ब्राह्मणको दे देना चाहिये। अथवा उन्हें अग्निमें या अगाध जलमें डाल देना चाहिये। जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करके वहाँसे उठ न जायँ, तबतक उच्छिष्ट स्थानपर झाड़ू न लगाये। श्राद्धमें हविष्यान्नके दानसे एक मासतक और खीर देनेसे एक वर्षतक पितरोंकी तृप्ति बनी रहती है। भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीको, विशेषतः मघा नक्षत्रका योग होनेपर जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय होता है। एक चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदासे अमावास्यातककी चौदह तिथियोंमें श्राद्धदान करनेवाला पुरुष क्रमशः इन चौदह फलोंको पाता है—रूपशीलयुक्त कन्या, बुद्धिमान् तथा रूपवान् दामाद, पशु, श्रेष्ठ पुत्र, द्यूत-विजय, खेतीमें लाभ, व्यापारमें लाभ, दो खुर और एक खुरवाले पशु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न पुत्र, सुवर्ण, रजत, कुप्यक (त्रपु-सीसा आदि), जातियोंमें श्रेष्ठता और सम्पूर्ण मनोरथ। जो लोग शस्त्रद्वारा मारे गये हों, उन्हींके लिये उस चतुर्दशी तिथिको श्राद्ध प्रदान किया जाता है। स्वर्ग, संतान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्र, श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रधानता, शुभ, प्रवृत्त-चक्रता (अप्रतिहत शासन), वाणिज्य आदि, नीरोगता, यश, शोकहीनता, परम गति, धन, विद्या, चिकित्सामें सफलता, कुप्य (त्रपु-सीसा आदि), गौ, बकरी, भेड़, अश्व तथा आयु—इन सत्ताईस प्रकारके काम्य पदार्थोंको क्रमशः वही पाता है, जो कृत्तिकासे लेकर भरणीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है तथा आस्तिक, श्रद्धालु एवं मद-मात्सर्य आदि दोषोंसे रहित होता है। वसु, रुद्र और आदित्य—ये तीन प्रकारके पितर श्राद्धके देवता हैं। ये श्राद्धसे संतुष्ट किये जानेपर मनुष्योंके पितरोंको तृप्त करते हैं। जब पितर तृप्त होते हैं, तब वे मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य प्रदान करते हैं॥ २३—४२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्राद्धकल्पका वर्णन' नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६३॥

एक सौ चौसठवाँ अध्याय

नवग्रह-सम्बन्धी हवनका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! लक्ष्मी, शान्ति, पुष्टि, वृद्धि तथा आयुकी इच्छा रखनेवाले वीर्यवान् पुरुषको ग्रहोंकी भी पूजा करनी चाहिये। सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु—इन नवग्रहोंकी क्रमशः स्थापना करनी चाहिये। सूर्यकी प्रतिमा ताँबेसे, चन्द्रमाकी रजत (या स्फटिकसे), मङ्गलकी लाल चन्दनसे, बुधकी सुवर्णसे, गुरुकी सुवर्णसे, शुक्रकी रजतसे, शनिकी लोहेसे तथा राहु-केतुकी सीसेसे बनाये; इससे शुभकी प्राप्ति होती है। अथवा वस्त्रपर उन-उनके रंगके अनुसार वर्णकसे उनका चित्र अङ्कित कर लेना चाहिये। अथवा मण्डल बनाकर उनमें गन्ध (चन्दन-कुङ्कुम आदि) से ग्रहोंकी आकृति बना ले। ग्रहोंके रंगके अनुसार ही उन्हें फूल और वस्त्र भी देने चाहिये। सबके लिये गन्ध, बलि, धूप और गुग्गुल देना चाहिये। प्रत्येक ग्रहके लिये (अग्निस्थापनपूर्वक) समन्त्रक चरुका होम करना चाहिये। **'आकृष्णेन रजसा०'** (यजु० ३३। ४३) इत्यादि सूर्य देवताके, **'इमं देवाः०'** (यजु० ९। ४०; १०। १८) इत्यादि चन्द्रमाके, **'अग्निमूर्धा दिवः ककुत्०'** (यजु० १३। १४) इत्यादि मङ्गलके, **'उद्बुध्यस्व०'** (यजु० १५। ५४; १८। ६१) इत्यादि बुधके, **'बृहस्पते अति यदर्यः०'** (यजु० २६। ३) इत्यादि बृहस्पतिके, **'अन्नात्परिस्रुतो०'** (यजु० १९। ७५) इत्यादि शुक्रके, **'शं नो देवीः०'** (यजु० ३६। १२) इत्यादि शनैश्चरके, **'काण्डात् काण्डात्०'** (यजु० १३। २०) इत्यादि राहुके और **'केतुं कृण्वन्नकेतवे०'** (यजु० २९। ३७) इत्यादि केतुके मन्त्र हैं। आक, पलास, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंकी समिधाएँ हैं। सूर्य आदि ग्रहोंमेंसे प्रत्येकके लिये एक सौ आठ या अट्ठाईस बार

मधु, घी, दही अथवा खीरकी आहुति देनी चाहिये। गुड़ मिलाया हुआ भात, खीर, हविष्य (मुनि-अन्न), दूध मिलाया हुआ साठीके चावलका भात, दही-भात, घी-भात, तिलचूर्णमिश्रित भात, माष (उड़द) मिलाया हुआ भात और खिचड़ी—इनका ग्रहके क्रमानुसार विद्वान् पुरुष ब्राह्मणके लिये भोजन दे। अपनी शक्तिके अनुसार यथाप्राप्त वस्तुओंसे ब्राह्मणका विधिपूर्वक सत्कार करके उनके लिये क्रमशः धेनु, शङ्ख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, काली गौ, लोहा और बकरा—ये वस्तुएँ दक्षिणामें दे। ये ग्रहोंकी दक्षिणाएँ बतायी गयी हैं। जिस-जिस पुरुषके लिये जो ग्रह अष्टम आदि दुष्ट स्थानोंमें स्थित हों, वह पुरुष उस ग्रहकी उस समय विशेष यत्नपूर्वक पूजा करे। ब्रह्माजीने इन ग्रहोंको वर दिया है कि जो तुम्हारी पूजा करें, उनकी तुम भी पूजा (मनोरथपूर्तिपूर्वक सम्मान) करना। राजाओंके धन और जातिका उत्कर्ष तथा जगत्की जन्म-मृत्यु भी ग्रहोंके ही अधीन है; अतः ग्रह सभीके लिये पूजनीय हैं॥ १—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवग्रह-सम्बन्धी हवनका वर्णन' नामक एक सौ चौंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१६४॥

एक सौ पैंसठवाँ अध्याय

विभिन्न धर्मोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! हृदयमें जो सर्वसमर्थ परमात्मा दीपकके समान प्रकाशित होते हैं, मन, बुद्धि और स्मृतिसे अन्य समस्त विषयोंका अभाव करके उनका ध्यान करना चाहिये। उनका ध्यान करनेवाले ब्राह्मणको ही श्राद्धके निमित्त दही, घी और दूध आदि गव्य पदार्थ प्रदान करे। प्रियङ्गु, मसूर, बैगन और कोदोका भोजन न करावे। जब पर्व-संधिके समय राहु सूर्यको ग्रसता है, उस समय 'हस्तिच्छाया-योग' होता है, जिसमें किये हुए श्राद्ध और दान आदि शुभकर्म अक्षय होते हैं। जब चन्द्रमा मघा, हंस अथवा हस्त नक्षत्रपर स्थित हो, उसे 'वैवस्वती तिथि' कहते हैं। यह भी 'हस्तिच्छाया-योग' है। बलिवैश्वदेवमें अग्निमें होम करनेसे बचा हुआ अन्न बलिवैश्वदेवके मण्डलमें न डाले। अग्निके अभावमें वह अन्न ब्राह्मणके दाहिने हाथमें रक्खे। ब्राह्मण वेदोक्त कर्मसे तथा स्त्री व्यभिचारी पुरुषसे कभी दूषित नहीं होती। बलात्कारसे उपभोग की हुई और शत्रुके हाथमें पड़कर दूषित हुई स्त्रीका (ऋतुकाल-पर्यन्त) परित्याग करे। नारी ऋतु-दर्शन होनेपर शुद्ध हो जाती है। जो सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त एक आत्माके व्यतिरेकसे विश्वमें अभेदका दर्शन करता है, वही योगी, ब्रह्मके साथ एकीभावको प्राप्त, आत्मामें रमण करनेवाला और निष्पाप है। कुछ लोग इन्द्रियोंके विषयोंसे संयोगको ही 'योग' कहते हैं। उन मूर्खोंने तो अधर्मको ही धर्म मानकर ग्रहण कर रक्खा है। दूसरे लोग मन और आत्माके संयोगको ही 'योग' मानते हैं। मनको संसारके सब विषयोंसे हटाकर, क्षेत्रज्ञ परमात्मामें एकाकार करके योगी संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यह उत्तम 'योग' है। पाँच इन्द्रियरूपी कुटुम्बोंसे 'ग्राम' होता है। छठा मन उसका 'मुखिया' है। वह देवता, असुर और मनुष्योंसे नहीं जीता जा सकता। पाँचों इन्द्रियाँ बहिर्मुख हैं। उन्हें आभ्यन्तरमुखी बनाकर इन्द्रियोंको मनमें और मनको आत्मामें निरुद्ध करे। फिर समस्त भावनाओंसे शून्य क्षेत्रज्ञ आत्माको परब्रह्म परमात्मामें लगावे। यही ज्ञान और ध्यान है। इसके विषयमें और जो कुछ भी कहा गया है, वह तो ग्रन्थका विस्तारमात्र है॥ १—१३॥

'जो सब लोगोंके अनुभवमें नहीं है, वह है'—यों कहनेपर विरुद्ध (असंगत)-सा प्रतीत होता है और कहनेपर वह अन्य मनुष्योंके हृदयमें नहीं बैठता। जिस प्रकार कुमारी स्त्री-सुखको स्वयं अनुभव करनेपर ही जान सकती है, उसी प्रकार वह ब्रह्म स्वतः अनुभव करनेयोग्य है। योगरहित पुरुष उसे उसी प्रकार नहीं जानता, जैसे जन्मान्ध मनुष्य घड़ेको। ब्राह्मणको संन्यास-ग्रहण करते देख सूर्य यह सोचकर अपने स्थानसे विचलित हो जाता है कि 'यह मेरे मण्डलका भेदन करके परब्रह्मको प्राप्त होगा।' उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ और तप—ये फलप्रद होते हैं, परंतु ये ब्राह्मणके द्वारा सम्पादित होनेपर सम्पन्न होते हैं और विहित फलकी प्राप्ति कराते हैं। 'प्रणव' परब्रह्म परमात्मा है, 'प्राणायाम' ही परम तप है और 'सावित्री'से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। वह परम पावन माना गया है। पहले क्रमशः

सोम, गन्धर्व और अग्नि—ये तीन देवता समस्त स्त्रियोंका उपभोग करते हैं। फिर मनुष्य उनका उपभोग करते हैं। इससे स्त्रियाँ किसीसे दूषित नहीं होती हैं। यदि असवर्ण पुरुष नारीकी योनिमें गर्भाधान करता है, तो जबतक नारी गर्भका प्रसव नहीं करती, तबतक अशुद्ध मानी जाती है। गर्भका प्रसव होनेके बाद रजोदर्शन होनेपर नारी शुद्ध हो जाती है। श्रीहरिके ध्यानके समान पापियोंकी शुद्धि करनेवाला कोई प्रायश्चित्त नहीं है। चण्डालके यहाँ भोजन करके भी ध्यान करनेसे शुद्धि हो जाती है। जो ब्राह्मण ऐसी भावना करता है कि "आत्मा 'ध्याता' है, मन 'ध्यान' है, विष्णु 'ध्येय' हैं, श्रीहरि उससे प्राप्त होनेवाले 'फल' हैं और अक्षयत्वकी प्राप्तिके लिये उसका 'विसर्जन' है", वह श्राद्धमें पङ्क्तिपावनोंको भी पवित्र करनेवाला है। जो द्विज नैष्ठिक धर्ममें आरूढ़ होकर उससे च्युत हो जाता है, उस आत्मघातीके लिये मैं ऐसा कोई प्रायश्चित्त नहीं देखता, जिससे कि वह शुद्ध हो सके। जो अपनी पत्नी और पुत्रोंका (असहायावस्थामें) परित्याग करके संन्यास ग्रहण करते हैं, वे दूसरे जन्ममें 'विदुर'-संज्ञक चण्डाल होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तदनन्तर वह क्रमशः सौ वर्षतक गीध, बारह वर्षतक कुत्ता, बीस वर्षतक जलपक्षी और दस वर्षतक शूकरयोनिका भोग करता है। फिर वह पुष्प और फलोंसे रहित कँटीला वृक्ष होता है और दावाग्निसे दग्ध होकर अपना अनुगमन करनेवालोंके साथ ठूँठ होता है और इस अवस्थामें एक हजार वर्षतक चेतनारहित होकर पड़ा रहता है। एक हजार वर्ष बीतनेके बाद वह ब्रह्मराक्षस होता है। तदनन्तर योगरूपी नौकाका आश्रय लेनेसे अथवा कुलके उत्सादनद्वारा उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये योगका ही सेवन करे; क्योंकि पापोंसे छुटकारा दिलानेके लिये दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है ॥ १४—२८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न धर्मोंका वर्णन' नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६५ ॥

एक सौ छाछठवाँ अध्याय

वर्णाश्रम-धर्म आदिका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—अब मैं श्रौत और स्मार्त-धर्मका वर्णन करता हूँ। वह पाँच प्रकारका माना गया है। वर्णमात्रका आश्रय लेकर जो अधिकार प्रवृत्त होता है, उसे 'वर्ण-धर्म' जानना चाहिये। जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंके लिये उपनयन-संस्कार आवश्यक है। यह 'वर्ण-धर्म' कहलाता है। आश्रमका अवलम्बन लेकर जिस पदार्थका संविधान होता है, वह 'आश्रम-धर्म' कहा गया है। जैसे भिक्ष पिण्डादिकका विधान होता है। जो विधि दोनोंके निमित्तसे प्रवर्तित होती है, उसको 'नैमित्तिक' मानना चाहिये। जैसे प्रायश्चित्तका विधान होना है ॥ १—३½ ॥

राजन्! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—इनसे सम्बन्धित धर्म *'आश्रम-धर्म' माना गया है*। दूसरे प्रकारसे भी धर्मके पाँच भेद होते हैं। षाड्गुण्य (संधि-विग्रह आदि) के अभिधानमें जिसकी प्रवृत्ति होती है, वह 'दृष्टार्थ' बतलाया गया है। उसके तीन भेद होते हैं। मन्त्र-जप-प्रभृति 'अदृष्टार्थ' है, ऐसा मनु आदि कहते हैं। इसके सिवा 'उभयार्थक व्यवहार', 'दण्डधारण' और 'तुल्यार्थ-विकल्प'—ये भी यज्ञमूलक धर्मके अङ्ग कहे गये हैं। वेदमें धर्मका जिस प्रकार प्रतिपादन किया गया है, स्मृतिमें भी वैसे ही है। कार्यके लिये स्मृति वेदोक्त धर्मका अनुवाद करती है—ऐसा मनु आदिका मत है। इसलिये स्मृतियोंमें उक्त धर्म वेदोक्त धर्मका गुणार्थ, परिसंख्या, विशेषतः अनुवाद, विशेष दृष्टार्थ अथवा फलार्थ है, यह राजर्षि मनुका सिद्धान्त है ॥ ४—८½ ॥

निम्नलिखित अड़तालीस संस्कारोंसे सम्पन्न मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है—(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) अन्नप्राशन, (७) चूडाकर्म, (८) उपनयन-संस्कार, (९—१२) चार वेदव्रत (वेदाध्ययन), (१३) स्नान (समावर्तन), (१४) सहधर्मिणी-संयोग (विवाह), (१५—१९) पञ्चयज्ञ—देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ, (२०—२६) सात पाकयज्ञ-संस्था, (२७—३४) अष्टका—अष्टकासहित तीन पार्वण श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री और आश्वयुजी, (३५—४१) सात हविर्यज्ञ-संस्था—अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्ण-

मास, चातुर्मास्य, आग्रहायणेष्टि, निरूढपशुबन्ध एवं सौत्रामणि, (४२-४८) सात सोम-संस्था—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम। आठ आत्मगुण हैं—दया, क्षमा, अनसूया, अनायास, माङ्गल्य, अकार्पण्य, अस्पृहा तथा शौच। जो इन गुणोंसे युक्त होता है, वह परमधाम (स्वर्ग) को प्राप्त करता है ॥ ९-१७½ ॥

मार्गगमन, मैथुन, मल-मूत्रोत्सर्ग, दन्तधावन, स्नान और भोजन—इन छः कार्योंको करते समय मौन धारण करना चाहिये। दान की हुई वस्तुका पुनः दान, पृथक्पाक, घृतके साथ जल पीना, दूधके साथ जल पीना, रात्रिमें जल पीना, दाँतसे नख आदि काटना एवं बहुत गरम जल पीना—इन सात बातोंका परित्याग कर देना चाहिये। स्नानके पश्चात् पुष्पचयन न करे; क्योंकि वे पुष्प देवताके चढ़ानेयोग्य नहीं माने गये हैं। यदि कोई अन्यगोत्रीय असम्बन्धी पुरुष किसी मृतकका अग्नि-संस्कार करता है तो उसे दस दिनतक पिण्ड तथा उदक-दानका कार्य भी पूर्ण करना चाहिये। जल, तृण, भस्म, द्वार एवं मार्ग—इनको बीचमें रखकर जानेसे पङ्क्तिदोष नहीं माना जाता। भोजनके पूर्व अनामिका और अङ्गुष्ठके संयोगसे पञ्चप्राणोंको आहुतियाँ देनी चाहिये ॥ १८-२२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वर्णाश्रमधर्म आदिका वर्णन' नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६६ ॥

एक सौ सड़सठवाँ अध्याय

ग्रहोंके अयुत-लक्ष-कोटि हवनोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं शान्ति, समृद्धि एव विजय आदिकी प्राप्तिके निमित्त ग्रहयज्ञका पुनः वर्णन करता हूँ। ग्रहयज्ञ 'अयुतहोमात्मक', 'लक्षहोमात्मक' और 'कोटिहोमात्मक'के भेदसे तीन प्रकारका होता है। अग्निकुण्डसे ईशानकोणमें निर्मित वेदिकापर मण्डल (अष्टदल-पद्म) बनाकर उसमें ग्रहोंका आवाहन करे। उत्तर दिशामें गुरु, ईशानकोणमें बुध, पूर्वदलमें शुक्र, आग्नेयमें चन्द्रमा, दक्षिणमें भौम, मध्यभागमें सूर्य, पश्चिममें शनि, नैर्ऋत्यमें राहु और वायव्यमें केतुको अङ्कित करे। शिव, पार्वती, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल और चित्रगुप्त—ये 'अधिदेवता' कहे गये हैं। अग्नि, वरुण, भूमि, विष्णु, इन्द्र, शचीदेवी, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये क्रमशः 'प्रत्यधिदेवता' हैं।* गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश तथा अश्विनीकुमार—ये 'कर्म-साद्गुण्य-देवता' हैं। इन सबका वैदिक बीज-मन्त्रोंसे यजन करे। आक, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा तथा कुशा—ये क्रमशः नवग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनको मधु, घृत एवं दधिसे संयुक्त करके शतसंख्यामें आठ बार होम करना चाहिये। एक, आठ और चार कुम्भ पूर्ण करके पूर्णाहुति एवं वसुधारा दे। फिर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। यजमानका चार कलशोंके जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक अभिषेक करे। (अभिषेकके समय यों कहना चाहिये—) 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर आदि देवता तुम्हारा अभिषेक करें। वासुदेव, जगन्नाथ, भगवान् संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तुम्हें विजय प्रदान करें। देवराज इन्द्र, भगवान् अग्नि, यमराज, निर्ऋति, वरुण, पवन, धनाध्यक्ष कुबेर, शिव, ब्रह्मा, शेषनाग एवं समस्त दिक्पाल सदा तुम्हारी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, तुष्टि और कान्ति—ये लोक-जननी धर्मकी पत्नियाँ तुम्हारा अभिषेक करें। आदित्य, चन्द्रमा, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, सूर्यपुत्र शनि, राहु तथा केतु—ये ग्रह परितृप्त होकर तुम्हारा अभिषेक करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मनु, गौएँ, देवमाताएँ, देवाङ्गनाएँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंके समूह, अस्त्र-शस्त्र, राजा, वाहन, ओषधियाँ, रत्न, कालविभाग, नदी नद, समुद्र, पर्वत, तीर्थ और मेघ—ये सब सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धिके लिये तुम्हारा अभिषेक करें' ॥ १-१७½ ॥

तदनन्तर यजमान अलंकृत होकर सुवर्ण, गौ, अन्न और भूमि आदिका निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे दान करे—"कपिले!

* विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें शिव आदिको 'प्रत्यधिदेवता' और अग्नि आदिको 'अधिदेवता' माना गया है। उक्त पुराणमें अग्निके स्थानपर अरुण 'अधिदेवता' माने गये हैं।

रोहिणि ! तुम समस्त देवताओंकी पूजनीया, तीर्थमयी तथा देवमयी हो; अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।[1] शङ्ख ! तुम पुण्यमय पदार्थोंमें पुण्यस्वरूप हो, मङ्गलोंके भी मङ्गल हो, तुम सदा विष्णुके द्वारा धारण किये जाते हो, अतएव मुझे शान्ति दो[2]। धर्म ! आप वृषरूपसे स्थित होकर जगत्को आनन्द प्रदान करते हैं। आप अष्टमूर्ति शिवके अधिष्ठान हैं, अतः मुझे शान्ति दीजिये[3] ॥ १८–२१ ॥

'सुवर्ण ! हिरण्यगर्भके गर्भमें तुम्हारी स्थिति है। तुम अग्निदेवके वीर्यसे उत्पन्न तथा अनन्त पुण्यफल वितरण करनेवाले हो, अतः मुझे शान्तिप्रदान करो।[4] पीताम्बर-युगल भगवान् वासुदेवको अत्यन्त प्रिय है; अतः इसके प्रदानसे भगवान् श्रीहरि मुझे शान्ति दें[5]। अश्व ! तुम स्वरूपसे विष्णु हो; क्योंकि तुम अमृतके साथ उत्पन्न हुए हो। तुम सूर्य-चन्द्रका सदा संवहन करते हो; अतः मुझे शान्ति दो[6]। पृथिवी ! तुम समग्ररूपमें धेनुरूपिणी हो। तुम केशवके समान समस्त पापोंका सदा अपहरण करती हो। इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो[7]। लौह ! हल और आयुध आदि कार्य सर्वदा तुम्हारे अधीन हैं, अतः मुझे शान्ति दो[8] ॥२२–२६॥

'छाग ! तुम यज्ञोंके अङ्गरूप होकर स्थित हो। तुम अग्निदेवके नित्य वाहन हो; अतएव मुझे शान्तिसे संयुक्त करो[9]। चौदहों भुवन गौओंके अङ्गोंमें अधिष्ठित हैं। इसलिये मेरा इहलोक और परलोकमें भी मङ्गल हो[10]। जैसे केशव और शिवकी शय्या अशून्य है, उसी प्रकार शय्यादानके प्रभावसे जन्म-जन्ममें मेरी शय्या भी अशून्य रहे[11]। जैसे सभी रत्नोंमें समस्त देवता प्रतिष्ठित हैं, उसी प्रकार वे देवता रत्नदानके उपलक्ष्यमें मुझे शान्ति प्रदान करें[12]। अन्य दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं हैं, इसलिये भूमिदानके प्रभावसे मेरे पाप शान्त हो जायँ'[13] ॥ २७–३१ ॥

दक्षिणायुक्त अयुतहोमात्मक ग्रहयज्ञ युद्धमें विजय प्राप्त करानेवाला है। विवाह, उत्सव, यज्ञ, प्रतिष्ठादि कर्ममें इसका प्रयोग होता है। लक्षहोमात्मक और कोटिहोमात्मक—ये दोनों ग्रहयज्ञ सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाले हैं। अयुतहोमात्मक यज्ञके लिये गृहदेशमें यज्ञमण्डपका निर्माण करके उसमें हाथभर गहरा मेखलायोनियुक्त कुण्ड बनावे और चार ऋत्विजोंका वरण करे अथवा स्वयं अकेला सम्पूर्ण कार्य करे। लक्षहोमात्मक यज्ञमें पूर्वकी अपेक्षा सभी दसगुना होता है। इसमे चार हाथ या दो हाथ प्रमाणका कुण्ड बनावे। इसमें तार्क्ष्यका पूजन विशेष होता है। (तार्क्ष्य-पूजनका मन्त्र यह है—) 'तार्क्ष्य ! सामध्वनि तुम्हारा शरीर है। तुम श्रीहरिके वाहन हो। विष-रोगको सदा दूर करनेवाले हो। अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो' ॥ ३२–३५½ ॥

तदनन्तर कलशोंको पूर्ववत् अभिमन्त्रित करके लक्षहोम-का अनुष्ठान करे। फिर 'वसुधारा' देकर शय्या एवं आभूषण आदिका दान करे। लक्षहोममे दस या आठ ऋत्विज होने चाहिये। दक्षिणायुक्त लक्षहोमसे साधक पुत्र, अन्न, राज्य, विजय, भोग एवं मोक्ष आदि प्राप्त करता है। कोटिहोमात्मक ग्रहयज्ञ पूर्वोक्त फलोंके अतिरिक्त शत्रुओंका

---

१. कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणि।
तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ १९ ॥

२. पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २० ॥

३. धर्म त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः।
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २१ ॥

४. हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २२ ॥

५. पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम्।
प्रदानात्तस्य वै विष्णुरतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २३ ॥

६. विष्णुस्त्वं अश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः।
चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २४ ॥

७. यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा।
सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २५ ॥

८. यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा।
लाङ्गलाद्यायुधादीनि अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २६ ॥

९. यस्मात्त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः।
योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २७ ॥

१०. गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश।
यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च ॥ २८ ॥

११. यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि ॥ २९ ॥

१२. यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः।
तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥ ३० ॥

१३. यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद् भवत्विह ॥ ३१ ॥

विनाश करनेवाला है। इसके लिये चार हाथ या आठ हाथ गहरा कुण्ड बनाये और बारह ऋत्विजोंका वरण करे। पटपर पचीस या सोलह तथा द्वारपर चार कलशोंकी स्थापना करे। कोटिहोम करनेवाला सम्पूर्ण कामनाओंसे संयुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है। ग्रह-मन्त्र, वैष्णव-मन्त्र, गायत्री-मन्त्र, आग्नेय-मन्त्र, शैव-मन्त्र एवं प्रसिद्ध वैदिक-मन्त्रोंसे हवन करे। तिल, यव, घृत और धान्यका हवन करनेवाला अश्वमेधयज्ञके फलको प्राप्त करता है। विद्वेषण आदि अभिचार-कर्मोंमें त्रिकोण कुण्ड विहित है। इनमें रक्तवस्त्रधारी और उन्मुक्तकेश मन्त्रसाधकको शत्रुके विनाशका चिन्तन करते हुए, बायें हाथसे श्येन पक्षीकी कच्च अस्थियोंसे युक्त समिधाओंका हवन करना चाहिये।* (हवनका मन्त्र इस प्रकार है—)

'दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो द्वेष्टि हुं फट्।'

फिर छुरेसे शत्रुकी प्रतिमाको काट डाले और पिष्टमय शत्रुका अग्निमें हवन करे। इस प्रकार जो अत्याचारी शत्रुके विनाशके लिये यज्ञ करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है॥ ३६-४४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ग्रहोंके अयुत-लक्ष कोटि हवनोंका वर्णन' नामक एक सौ सड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६७॥

एक सौ अड़सठवाँ अध्याय

महापातकोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—जो मनुष्य पापोंका प्रायश्चित्त न करें, राजा उन्हें दण्ड दे। मनुष्यको अपने पापोंका इच्छासे अथवा अनिच्छासे भी प्रायश्चित्त करना चाहिये। उन्मत्त, क्रोधी और दुःखसे आतुर मनुष्यका अन्न कभी भोजन नहीं करना चाहिये। जिस अन्नका महापातकीने स्पर्श कर लिया हो, जो रजस्वला स्त्रीद्वारा छूआ गया हो, उस अन्नका भी परित्याग कर देना चाहिये। ज्यौतिषी, गणिका, अधिक मुनाफा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय, गायक, अभिशप्त, नपुंसक, घरमें उपपतिको रखनेवाली स्त्री, धोबी, नृशंस, भाट, जुआरी, तपका आडम्बर करनेवाले, चोर, जल्लाद, कुण्डगोलक, स्त्रियोंद्वारा पराजित, वेदोंका विक्रय करनेवाले, नट, जुलाहे, कृतघ्न, लोहार, निषाद, रँगरेज, ढोंगी संन्यासी, कुलटा स्त्री, तेली, आरूढ-पतित और शत्रुके अन्नका सदैव परित्याग करे। इसी प्रकार ब्राह्मणके बिना बुलाये ब्राह्मणका अन्न भोजन न करे। शूद्रको तो निमन्त्रित होनेपर भी ब्राह्मणके अन्नका भोजन नहीं करना चाहिये। इनमेंसे बिना जाने किसीका अन्न खानेपर तीन दिनतक उपवास करे। जान-बूझकर खा लेनेपर 'कृच्छ्रव्रत' करे। वीर्य, मल, मूत्र तथा श्वपाक चाण्डालका अन्न खाकर 'चान्द्रायणव्रत' करे। मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे प्रदत्त, गायका सूँघा हुआ, शूद्र अथवा कुत्तेके द्वारा उच्छिष्ट किया हुआ तथा पतितका अन्न भक्षण करके 'तप्तकृच्छ्र' करे। किसीके यहाँ सूतक होनेपर जो उसका अन्न खाता है, वह भी अशुद्ध हो जाता है। इसलिये अशौचयुक्त मनुष्यका अन्न भक्षण करनेपर 'कृच्छ्रव्रत' करे। जिस कुएँमें पाँच नखोंवाला पशु मरा पड़ा हो, जो एक बार अपवित्र वस्तुसे युक्त हो चुका हो, उसका जल पीनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको तीन दिनतक उपवास रखना चाहिये। शूद्रको सभी प्रायश्चित्त एक चौथाई, वैश्यको दो चौथाई और क्षत्रियको तीन चौथाई करने चाहिये। ग्रामसूकर, गर्दभ, उष्ट्र, शृगाल, वानर और काक—इनके मल-मूत्रका भक्षण करनेपर ब्राह्मण 'चान्द्रायण-व्रत' करे। सूखा मांस, मृतक व्यक्तिके उद्देश्यसे दिया हुआ अन्न, करक तथा कच्चा मांस खानेवाले जीव, शूकर, उष्ट्र, शृगाल, वानर, काक, गौ, मनुष्य, अश्व, गर्दभ, छत्ता शाक, मुर्गे और हाथीका मांस खानेपर 'तप्तकृच्छ्र'से शुद्धि होती है। ब्रह्मचारी अमाश्राद्धमें भोजन, मधुपान अथवा लहसुन और गाजरका भक्षण करनेपर 'प्राजापत्यकृच्छ्र' से पवित्र होता है। अपने लिये पकाया हुआ मांस, पेलुगव्य (अण्डकोषका मांस), पेयूष (ब्यायी हुई गौ आदि पशुओंका सात दिनके अंदरका दूध), श्लेष्मातक (बहुवार), मिट्टी एवं दूषित खिचड़ी, लप्सी, खीर, पूआ और पूरी, यज्ञ-सम्बन्धी संस्कार-रहित मांस, देवताके निमित्त रखा हुआ अन्न और हवि—इनका भक्षण करनेपर 'चान्द्रायण-व्रत' करनेसे

* यह 'विद्वेषण' तामस अभिचार कर्म है। इसे तामस लोग ही किया करते हैं।

शुद्धि होती है। गाय, भैंस और बकरीके दूधके सिवा अन्य पशुओंके दूधका परित्याग करना चाहिये। इनके भी ब्यानेके दस दिनके अंदरका दूध काममें नहीं लेना चाहिये। अग्निहोत्रकी प्रज्वलित अग्निमें हवन करनेवाला ब्राह्मण यदि स्वेच्छापूर्वक जौ और गेहूँसे तैयार की हुई वस्तुओं, दूधके विकारों, बागषाडूगवचक आदि तथा तैल-घी आदि चिकने पदार्थोंसे संस्कृत बासी अन्नको खा ले तो उसे एक मासतक 'चान्द्रायणव्रत' करना चाहिये; क्योंकि वह दोष वीरहत्याके समान माना जाता है ॥ १-२३ ॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुतल्पगमन—ये 'महापातक' कहे गये हैं। इन पापोंके करनेवाले मनुष्योंका संसर्ग भी 'महापातक' माना गया है। झूठको बढ़ावा देना, राजाके समीप किसीकी चुगली करना, गुरुपर झूठा दोषारोपण—ये 'ब्रह्महत्या'के समान हैं। अध्ययन किये हुए वेदका विस्मरण, वेदनिन्दा, झूठी गवाही, सुहृद्‌का वध, निन्दित अन्न एवं घृतका भक्षण—ये छः पाप सुरापानके समान माने गये हैं। धरोहरका अपहरण, मनुष्य, घोड़े, चाँदी, भूमि और हीरे आदि रत्नोंकी चोरी सुवर्णकी चोरीके समान मानी गयी है। सगोत्रा स्त्री, कुमारी कन्या, चाण्डाली, मित्रपत्नी और पुत्रवधू—इनमें वीर्यपात करना 'गुरुपत्नी-गमन'के समान माना गया है। गोवध, अयोग्य व्यक्तिसे यज्ञ कराना, परस्त्रीगमन, अपनेको बेचना तथा गुरु, माता, पिता, पुत्र, स्वाध्याय एवं अग्निका परित्याग, परिवेत्ता अथवा परिवित्ति होना—इन दोनोंमेंसे किसीको कन्यादान करना और इनका यज्ञ कराना, कन्याको दूषित करना, ब्याजसे जीविका-निर्वाह, व्रतभङ्ग, सरोवर, उद्यान, स्त्री एवं पुत्रको बेचना, समयपर यज्ञोपवीत ग्रहण न करना, बान्धवोंका त्याग, वेतन लेकर अध्यापन-कार्य करना, वेतनभोगी गुरुसे पढ़ना, न बेचनेयोग्य वस्तुको बेचना, सुवर्ण आदिकी खानका काम करना, विशाल यन्त्र चलाना, लता, गुल्म आदि ओषधियोंका नाश, स्त्रियोंके द्वारा जीविका उपार्जित करना, नित्य-नैमित्तिक कर्मका उल्लङ्घन, लकड़ीके लिये हरे-भरे वृक्षको काटना, अनेक स्त्रियोंका संग्रह, स्त्री-निन्दकोंका संसर्ग, केवल अपने स्वार्थके लिये सम्पूर्ण कर्मोंका आरम्भ करना, निन्दित अन्नका भोजन, अग्निहोत्रका परित्याग, देवता, ऋषि और पितरोंका ऋण न चुकाना, असत् शास्त्रोंको पढ़ना, दुःशीलपरायण होना, व्यसनमें आसक्ति, धान्य, धातु और पशुओंकी चोरी, मद्यपान करनेवाली नारीसे समागम, स्त्री, शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रियका वध करना, एवं नास्तिकता—ये सब 'उपपातक' हैं। ब्राह्मणको प्रहार करके रोगी बनाना, लहसुन और मद्य आदिको सूँघना, भिक्षासे निर्वाह करना, गुदामैथुन—ये सब 'जातिभ्रंशकर पातक' बतलाये गये हैं। गर्दभ, घोड़ा, ऊँट, मृग, हाथी, भेड़, बकरा, मछली, सर्प और नेवला—इनमेंसे किसीका वध 'संकरीकरण' कहलाता है। निन्दित मनुष्योंसे धनग्रहण, वाणिज्यवृत्ति, शूद्रकी सेवा एवं असत्य-भाषण—ये 'अपात्रीकरण पातक' माने जाते हैं। कृमि और कीटोंका वध, मद्ययुक्त भोजन, फल, काष्ठ और पुष्पकी चोरी तथा धैर्यका परित्याग—ये 'मलिनीकरण पातक' कहलाते हैं ॥ २४-४० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महापातक आदिका वर्णन' नामक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६८ ॥

एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्महत्या आदि विविध पापोंके प्रायश्चित्त

पुष्कर कहते हैं—अब मैं आपको इन सब पापोंके प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। ब्रह्महत्या करनेवाला अपनी शुद्धिके लिये भिक्षाका अन्न भोजन करते हुए एवं मृतकके सिरकी ध्वजा धारण करके, वनमें कुटी बनाकर, बारह वर्षतक निवास करे। अथवा नीचे मुख करके धधकती हुई आगमें तीन बार गिरे। अथवा अश्वमेधयज्ञ या स्वर्गपर विजय प्राप्त करानेवाले गोमेध यज्ञका अनुष्ठान करे। अथवा किसी एक वेदका पाठ करता हुआ सौ योजनतक जाय या अपना सर्वस्व वेदवेत्ता ब्राह्मणको दान कर दे। महापातकी मनुष्य इन व्रतोंसे अपना पाप नष्ट कर डालते हैं ॥ १-८ ॥

गोवध करनेवाला एवं उपपातकी एक मासतक यवपान करके रहे। वह सिरका मुण्डन कराकर उस गौका चर्म ओढ़े हुए, गोशालामें निवास करे। दिनके चतुर्थ प्रहरमें

लवणहीन अन्नका नियमित भोजन करे। फिर दो महीनोंतक इन्द्रियोंको वशमें करके नित्य गोमूत्रसे स्नान करे। दिनमें गौओंके पीछे-पीछे चले और खड़े होकर उनके खुरोंसे उड़ती हुई धूलिका पान करे। व्रतका पूर्णरूपसे अनुष्ठान करके एक बैलके साथ दस गौओंका दान करे। यदि इतना न दे सके तो वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको अपना सर्वस्व-दान कर दे। यदि रोकनेसे गौ मर जाय तो एक चौथाई प्रायश्चित्त, बाँधनेके कारण मर जाय तो आधा प्रायश्चित्त, जोतनेके कारण मर जाय तो तीन पाद प्रायश्चित्त और मारनेपर मर जाय तो पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये। वन, दुर्गम स्थान, ऊबड़-खाबड़ भूमि और भयप्रद स्थानमें गौकी मृत्यु हो जाय तो चौथाई प्रायश्चित्तका विधान है। आभूषणके लिये गलेमें घण्टा बाँधनेसे गौकी मृत्यु हो तो आधा प्रायश्चित्त करे। दमन करने, बाँधने, रोकने, गाड़ीमें जोतने, खूँटे, रस्सी अथवा फंदेमें बाँधनेपर यदि गौकी मृत्यु हो जाय तो तीन चरण प्रायश्चित्त करे। यदि गौका सींग अथवा हड्डी टूट जाय या पूँछ कट जाय तो जबतक गौ स्वस्थ न हो जाय, तबतक जौकी लप्सी खाकर रहे और गोमती विद्याका जप करे, गौकी स्तुति एवं गोमतीका स्मरण करे। यदि बहुतसे मनुष्योंके द्वारा एक गौ मारी जाय तो वे सब लोग अलग-अलग गोहत्याका एक-एक पाद प्रायश्चित्त करें। उपकार करते हुए यदि गौ मर जाय तो पाप नहीं लगता है ॥ ५—१४ ॥

उपपातक करनेवालोंको भी इसी व्रतका आचरण करना चाहिये। 'अवकीर्णी'[1] को अपनी शुद्धिके लिये चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये। अथवा अवकीर्णी रातके समय चौराहेपर जाकर पाकयज्ञके विधानसे निर्ऋतिके उद्देश्यसे काले गदहेका पूजन करे। तदनन्तर वह बुद्धिमान् ब्रह्मचारी अग्नि-संचयन करके अन्तमें 'समासिञ्चन्तु मरुतः' —इस ऋचासे चन्द्रमा, इन्द्र, बृहस्पति और अग्निके उद्देश्यसे घृतकी आहुति दे। अथवा गर्दभका चर्म धारण करके एक वर्षतक पृथ्वीपर विचरण करे ॥ १५—१७½ ॥

अज्ञानसे भ्रूण-हत्या करनेपर ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे। मोहवश सुरापान करनेवाला द्विज अग्निके समान जलती हुई सुराका पान करे। अथवा तपाकर अग्निके समान रंगवाले गोमूत्र या जलका पान करे। सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण राजाके पास जाकर अपने चौर्यकर्मके विषयमें बतलाता हुआ कहे- -'आप मुझे दण्ड दीजिये।' तब राजा मूसल लेकर अपने-आप आये हुए उस ब्राह्मणको एक बार मारे। इस प्रकार वध होनेसे अथवा तपस्या करनेसे सुवर्णकी चोरी करनेवाले ब्राह्मणकी शुद्धि होती है। गुरु-पत्नी-गमन करनेवाला स्वयं अपने लिङ्ग और अण्डकोषको काटकर उसे अञ्जलिमें ले, मरनेतक नैर्ऋत्यकोणकी ओर चलता जाय। अथवा इन्द्रियोंको संयममें रखकर तीन मासतक 'चान्द्रायण' व्रत करे। जान-बूझकर कोई-सा भी जाति-भ्रंशकर पातक करके 'सांतपनकृच्छ्र' और अज्ञानवश हो जानेपर 'प्राजापत्यकृच्छ्र' करे। संकरीकरण अथवा अपात्रीकरण पातक करनेपर एक मासतक चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। मलिनीकरण पातक होनेपर तीन दिनतक तप्तयावकका पान करे। क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त विहित है। वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश, सदाचारी शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त करे। बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, मेढक, कुत्ता, गोह, उल्लूक, काक अथवा चारोंमेंसे किसी वर्णकी स्त्रीकी हत्या होनेपर शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। स्त्रीकी अज्ञानवश हत्या करके भी शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। सर्पादिका वध होनेपर 'नक्तव्रत' और अस्थिहीन जीवोंकी हत्या होनेपर 'प्राणायाम' करे ॥ १८–२८ ॥

दूसरेके घरसे अल्पमूल्यवाली वस्तुकी चोरी करके 'सांतपनकृच्छ्र' करे। व्रतके पूर्ण होनेपर शुद्धि होती है। भक्ष्य और भोज्य वस्तु, यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल और फलोंकी चोरीमें पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि होती है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखे अनाज, गुड़, वस्त्र, चर्म और मांसकी चोरी करनेपर तीन दिनतक भोजनका परित्याग करे। मणि, मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा अथवा पत्थरकी चोरी करनेवाला बारह दिनतक अन्नका कणमात्र खाकर रहे। कपास, रेशम, ऊन तथा दो खुरवाले बैल आदि, एक खुरवाले घोड़े आदि पशु, पक्षी, सुगन्धित

---

[1] कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः।
अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः॥
(मनु० ११। १२१)

'ब्रह्मचारि-व्रतमें स्थित द्विजका इच्छापूर्वक किसी स्त्रीमें वीर्यपात करना धर्मको जाननेवाले ब्रह्मवादियोंद्वारा व्रतका अतिक्रमण बताया गया है। ऐसा करनेवाले ब्रह्मचारीको ही 'अवकीर्णी' कहते हैं।

द्रव्य, औषध अथवा रस्सी चुरानेवाला तीन दिनतक दूध पीकर रहे ॥ २९—३३ ॥

मित्रपत्नी, पुत्रवधू, कुमारी और चाण्डालीमें वीर्यपात करके गुरुपत्नी-गमनका प्रायश्चित्त करे । फुफेरी बहन, मौसेरी बहन और सगी ममेरी बहनसे गमन करनेवाला चान्द्रायण-व्रत करे । मनुष्येतर योनिमें, रजस्वला स्त्रीमें, योनिके सिवा अन्य स्थानमें अथवा जलमें वीर्यपात करनेवाला मनुष्य 'कृच्छ्रसांतपन-व्रत' करे । पुरुष अथवा स्त्रीके साथ बैलगाड़ीपर, जलमें या दिनके समय मैथुन करके ब्राह्मण वस्त्रोंसहित स्नान करे । चाण्डाल और अन्त्यज जातिकी स्त्रियोंसे अज्ञानवश समागम करके, उनका अन्न खाकर या उनका प्रतिग्रह स्वीकार करके ब्राह्मण पतित हो जाता है । जान-बूझकर ऐसा करनेसे वह उन्हींके समान हो जाता है । व्यभिचारिणी स्त्रीका पति उसे एक घरमें बंद करके रक्खे और परस्त्रीगामी पुरुषके लिये जो प्रायश्चित्त विहित है, वह उससे करावे । यदि वह स्त्री अपने समान जातिवाले पुरुषके द्वारा पुनः दूषित हो तो उसकी शुद्धि 'कृच्छ्र' और 'चान्द्रायण-व्रत' में बतलायी गयी है । जो ब्राह्मण एक रात वृषलीका सेवन करता है, वह तीन वर्षतक नित्य भिक्षान्नका भोजन और गायत्री-जप करनेपर शुद्ध होता है ॥ ३४—४१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रायश्चित्तोंका वर्णन' नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६९ ॥

एक सौ सत्तरवाँ अध्याय

विभिन्न प्रायश्चित्तोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—अब मैं महापातकियोंका संसर्ग करनेवाले मनुष्योंके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ । पतितके साथ एक सवारीमें चलने, एक आसनपर बैठने, एक साथ भोजन करनेसे मनुष्य एक वर्षके बाद पतित होता है, परंतु उनको यज्ञ कराने, पढ़ाने एवं उनसे यौन-सम्बन्ध स्थापित करनेवाला तो तत्काल ही पतित हो जाता है । जो मनुष्य जिस पतितका संसर्ग करता है, वह उसके संसर्ग-जनित दोषकी शुद्धिके लिये, उस पतितके लिये विहित प्रायश्चित्त करे । पतितके सपिण्ड और बान्धवोंको एक साथ निन्दित दिनमें, संध्याके समय, जाति-भाई, ऋत्विक् और गुरुजनोंके निकट, पतित पुरुषकी जीवितावस्थामें ही उसकी उदक-क्रिया करनी चाहिये । तदनन्तर जलसे भरे हुए घड़ेको दासीद्वारा लातसे फेंकवा दे और पतितके सपिण्ड एवं बान्धव एक दिन-रात अशौच मानें । उसके बाद वे पतितके साथ सम्भाषण न करें और धनमें उसे ज्येष्ठांश भी न दें । पतितका छोटा भाई गुणोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण ज्येष्ठांशका अधिकारी होता है । यदि पतित बादमें प्रायश्चित्त कर ले, तो उसके सपिण्ड और बान्धव उसके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करके जलसे भरे हुए नवीन कुम्भको जलमें फेंकें । पतित स्त्रियोंके सम्बन्धमें भी यही कार्य करे; परंतु उसको अन्न, वस्त्र और घरके समीप रहनेका स्थान देना चाहिये ॥ १—७½ ॥

जिन ब्राह्मणोंको समयपर विधिके अनुसार गायत्रीका उपदेश प्राप्त नहीं हुआ है, उनसे तीन प्राजापत्य कराकर उनका विधिवत् उपनयन-संस्कार करावे । निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेसे जिन ब्राह्मणोंका परित्याग कर दिया गया हो, उनके लिये भी इसी प्रायश्चित्तका उपदेश करे । ब्राह्मण संयतचित्त होकर तीन सहस्र गायत्रीका जप करके गोशालामें एक मासतक दूध पीकर निन्दित प्रतिग्रहके पापसे छूट जाता है । संस्कारहीन मनुष्योंका यज्ञ कराकर, गुरुजनोंके सिवा दूसरोंका अन्त्येष्टिकर्म, अभिचारकर्म अथवा अहीन यज्ञ कराकर ब्राह्मण तीन प्राजापत्य-व्रत करनेपर शुद्ध होता है । जो द्विज शरणागतका परित्याग करता है और अनधिकारीको वेदका उपदेश करता है, वह एक वर्षतक नियमित आहार करके उस पापसे मुक्त होता है ॥ ८—१२ ॥

कुत्ता, सियार, गर्दभ, बिल्ली, नेवला, मनुष्य, घोड़ा, ऊँट और सूअरके द्वारा काटे जानेपर प्राणायाम करनेसे शुद्धि होती है । स्नातकके व्रतका लोप और नित्यकर्मका उल्लङ्घन होनेपर निराहार रहना चाहिये । यदि ब्राह्मणके लिये 'हुं' कार और अपनेसे श्रेष्ठके लिये 'तूं' का प्रयोग हो जाय, तो स्नान करके दिनके शेष भागमें उपवास रक्खे और अभिवादन करके उन्हें प्रसन्न करे । ब्राह्मणपर प्रहार करनेके लिये डंडा उठानेपर 'प्राजापत्य-व्रत' करे । यदि

डंडेसे प्रहार कर दिया हो तो 'अतिकृच्छ्र' और यदि प्रहारसे ब्राह्मणके खून निकल आया हो तो 'कृच्छ्र' एवं 'अतिकृच्छ्र-व्रत' करे। जिसके घरमें अनजानमें चाण्डाल आकर टिक गया हो तो भलीभाँति जाननेपर यथासमय उसका प्रायश्चित्त करे। 'चान्द्रायण' अथवा 'पराकव्रत' करनेसे द्विजोंकी शुद्धि होती है। शूद्रोंकी शुद्धि 'प्राजापत्य-व्रत'से हो जाती है, शेष कर्म उन्हें द्विजोंकी भाँति करने चाहिये। घरमें जो गुड़, कुसुम्भ, लवण एवं धान्य आदि पदार्थ हों, उन्हें द्वारपर एकत्रित करके अग्निदेवको समर्पित करे। मिट्टीके पात्रोंका त्याग कर देना चाहिये। शेष द्रव्योंकी शास्त्रीय विधिके अनुसार द्रव्यशुद्धि विहित है॥ १३-१९३॥

चाण्डालके स्पर्शसे दूषित एक कूएँका जल पीनेवाले जो ब्राह्मण हैं, वे उपवास अथवा पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध हो जाते हैं। जो द्विज इच्छानुसार चाण्डालका स्पर्श करके भोजन कर लेता है, उसे 'चान्द्रायण' अथवा 'तप्तकृच्छ्र' करना चाहिये। चाण्डाल आदि घृणित जातियोंके स्पर्शसे जिनके पात्र अपवित्र हो गये हैं, वे द्विज (उन पात्रोंमें भोजन एवं पान करके) 'षड्रात्रव्रत' करनेसे शुद्ध होते हैं। अन्त्यजका उच्छिष्ट खाकर द्विज 'चान्द्रायणव्रत' करे और शूद्र 'त्रिरात्र-व्रत' करे। जो द्विज चाण्डालोंके कूएँ या पात्रका जल बिना जाने पी लेता है, वह 'सातपनकृच्छ्र' करे एवं शूद्र ऐसा करनेपर एक दिन उपवास करे। जो द्विज चाण्डालका स्पर्श करके जल पी लेता है, उसे 'त्रिरात्र-व्रत' करना चाहिये और ऐसा करनेवाले शूद्रको एक दिनका उपवास करना चाहिये॥ २०-२५३॥

ब्राह्मण यदि उच्छिष्ट, कुत्ता अथवा शूद्रका स्पर्श कर दे, तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। वैश्य अथवा क्षत्रियका स्पर्श होनेपर स्नान और 'नक्तव्रत' करे। मार्गमें चलता हुआ ब्राह्मण यदि वन अथवा जलरहित प्रदेशमें पक्वान्न हाथमें लिये मल-मूत्रका त्याग कर देता है, तो उस द्रव्यको अलग न रखकर अपने अङ्कमें रखे हुए ही आचमन आदिसे पवित्र होकर अन्नका प्रोक्षण करके उसे सूर्य एवं अग्निको प्रदर्शित करे॥ २६-२९॥

जो प्रवासी मनुष्य म्लेच्छों, चोरोंके निवासभूत देश अथवा वनमें भोजन कर लेते हैं, अब मैं वर्णक्रमसे उनकी भक्ष्याभक्ष्यविषयक शुद्धिका उपाय बतलाता हूँ। ऐसा करनेवाले ब्राह्मणको अपने गाँवमें आकर 'पूर्णकृच्छ्र', क्षत्रियको तीन चरण और वैश्यको आधा व्रत करके पुनः अपना संस्कार कराना चाहिये। एक चौथाई व्रत करके दान देनेसे शूद्रकी भी शुद्धि होती है॥ ३०-३२॥

यदि किसी स्त्रीका समान वर्णवाली रजस्वला स्त्रीसे स्पर्श हो जाय तो वह उसी दिन स्नान करके शुद्ध हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। अपनेसे निकृष्ट जातिवाली रजस्वलाका स्पर्श करके रजस्वला स्त्रीको तबतक भोजन नहीं करना चाहिये, जबतक कि वह शुद्ध नहीं हो जाती। उसकी शुद्धि चौथे दिनके शुद्ध स्नानसे ही होती है। यदि कोई द्विज मूत्रत्याग करके मार्गमें चलता हुआ भूलकर जल पी ले, तो वह एक दिन-रात उपवास रखकर पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध होता है। जो मूत्र त्याग करनेके पश्चात् आचमनादि शौच न करके मोहवश भोजन कर लेता है, वह तीन दिनतक यवपान करनेसे शुद्ध होता है॥ ३३-३६॥

जो ब्राह्मण संन्यास आदिकी दीक्षा लेकर गृहस्थाश्रमका परित्याग कर चुके हों और पुनः संन्यासाश्रमसे गृहस्थाश्रममें लौटना चाहते हों, अब मैं उनकी शुद्धिके विषयमें कहता हूँ। उनसे तीन 'प्राजापत्य' अथवा 'चान्द्रायण-व्रत' कराने चाहिये। फिर उनके जातकर्म आदि संस्कार पुनः कराने चाहिये॥ ३७ ३८॥

जिसके मुखसे जूते या किसी अपवित्र वस्तुका स्पर्श हो जाय, उसकी मिट्टी और गोबरके लेपन तथा पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि होती है। नीलकी खेती, विक्रय और नीले वस्त्र आदिका धारण—ये ब्राह्मणका पतन करनेवाले हैं। इन दोषोंसे युक्त ब्राह्मणकी तीन 'प्राजापत्य-व्रत' करनेसे शुद्धि होती है। यदि रजस्वला स्त्रीको अन्त्यज या चाण्डाल छू जाय तो 'त्रिरात्र-व्रत' करनेसे चौथे दिन उसकी शुद्धि होती है। चाण्डाल, श्वपाक, मज्जा, सूतिका स्त्री, शव और शवका स्पर्श करनेवाले मनुष्यको छूनेपर तत्काल स्नान करनेसे शुद्धि होती है। मनुष्यकी अस्थिका स्पर्श होनेपर तैल लगाकर स्नान करनेसे ब्राह्मण विशुद्ध हो जाता है। गलीके कीचड़के छींटे लग जानेपर नाभिके नीचेका भाग मिट्टी और जलसे धोकर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। वमन अथवा विरेचनके बाद स्नान करके घृतका प्राशन करनेसे शुद्धि होती है। स्नानके बाद क्षौरकर्म

करनेवाला और ग्रहणके समय भोजन करनेवाला 'प्राजापत्य व्रत' करनेसे शुद्ध होता है। पङ्क्तिदूषक मनुष्योंके साथ पङ्क्तिमें बैठकर भोजन करनेवाला, कुत्ते अथवा कीटसे दंशित मनुष्य पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि प्राप्त करता है। आत्महत्याकी चेष्टा करनेवाले मनुष्यकी 'प्राजापत्यव्रत', जप एवं होमसे शुद्धि होती है। होमादिके अनुष्ठान एवं पश्चात्तापसे सभी प्रकारके पापियोंकी शुद्धि होती है॥ ३९-४६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रायश्चित्तोंका वर्णन' नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७०॥

एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय

गुप्त पापोंके प्रायश्चित्तका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—अब मैं गुप्त पापोंके प्रायश्चित्तोंका वर्णन करता हूँ, जो परम शुद्धिप्रद हैं। एक मासतक पुरुषसूक्तका जप पापोंका नाश करनेवाला है। अघमर्षण मन्त्रका तीन बार जप करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। वेदमन्त्र, वायुसूक्त और यमसूक्तके जप एवं गायत्रीका जप करनेसे मनुष्य अपने सब पापोंको नष्ट कर डालता है। समस्त कृच्छ्रोंमें मुण्डन, स्नान, हवन और श्रीहरिका पूजन विहित है। 'कृच्छ्रव्रत' करनेवाला दिनमें खड़ा रहे और रातमें बैठा रहे, इसे 'वीरासन' कहा गया है। इससे मनुष्य निष्पाप हो जाता है। एक महीनेतक प्रतिदिन आठ ग्रास भोजन करे, इसे 'यतिचान्द्रायण' कहते हैं। एक मासतक नित्य प्रातःकाल चार ग्रास और सायकाल चार ग्रास भोजन करनेसे 'शिशुचान्द्रायण' होता है। एक मासमें किसी भी प्रकार दो सौ चालीस पिण्ड भोजन करे, यह 'सुरचान्द्रायण' की विधि है। तीन दिन गरम जल, तीन दिन गरम दूध, तीन दिन गरम घी और तीन दिन वायु पीकर रहे, इसे 'तप्तकृच्छ्र' कहा गया है। और इसी क्रमसे तीन दिन ठंढा जल, तीन दिन ठंढा दूध, तीन दिन ठंढा घी और तीन दिन वायु पीनेपर 'शीतकृच्छ्र' होता है। इक्कीस दिनतक केवल दूध पीकर रहनेसे 'कृच्छ्रातिकृच्छ्र' होता है। एक दिन गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुश-जलका भक्षण करके रहे तथा एक दिन उपवास करे, इसे 'कृच्छ्रसांतपन-व्रत' माना गया है। 'सांतपनकृच्छ्र'की वस्तुओंको एक-एक दिनके क्रमसे लेनेपर 'महासांतपन' व्रत माना जाता है। इन्हीं वस्तुओंको तीन-तीन दिनके क्रमसे ग्रहण करनेपर 'अतिसांतपन' माना जाता है। बारह दिन निराहार रहनेसे 'पराककृच्छ्र' होता है। तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिन बिना माँगे मिली हुई वस्तुका भोजन करे और अन्तमें तीन दिन उपवास रक्खे, इसे 'प्राजापत्य-व्रत' कहा गया है। इसीके एक चरणका अनुष्ठान 'कृच्छ्रपाद' कहलाता है। एक मासतक फल खाकर रहनेसे 'फलकृच्छ्र' और बेल खाकर रहनेसे 'श्रीकृच्छ्र' होता है। इसी प्रकार पद्माक्ष (कमलगट्टा) खाकर रहनेसे 'पद्माक्षकृच्छ्र', आँवले खाकर रहनेसे 'आमलककृच्छ्र' और पुष्प खाकर रहनेसे 'पुष्पकृच्छ्र' होता है। पूर्वोक्त क्रमसे केवल पत्ते खाकर रहनेसे 'पत्रकृच्छ्र', जल पीकर रहनेसे 'जलकृच्छ्र', केवल मूलका भोजन करनेसे 'मूलकृच्छ्र' और दधि, दुग्ध अथवा तक्रपर निर्भर रहनेसे क्रमशः 'दधिकृच्छ्र', 'दुग्धकृच्छ्र' और 'तक्रकृच्छ्र' होते हैं। एक मासतक अञ्जलिभर अन्नके भोजनसे 'वायव्यकृच्छ्र' होता है। बारह दिन केवल तिलका भोजन करके रहनेसे 'आग्नेयकृच्छ्र' माना जाता है, जो दुःखोंका विनाश करनेवाला है। एक पक्षतक एक पसर लाज (खील) का भोजन करे। चतुर्दशी एवं पञ्चदशी (अमावास्या एवं पूर्णिमा) को उपवास रक्खे। फिर पञ्चगव्य-पान करके हविष्यान्नका भोजन करे। यह 'ब्रह्मकूर्च-व्रत' होता है। इस व्रतको एक मासमें दो बार करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य धन, पुष्टि, स्वर्ग एवं पापनाशकी कामनासे देवताओंका आराधन और कृच्छ्रव्रत करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ १-१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गुप्त पापोंके प्रायश्चित्तका वर्णन' नामक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७१॥

एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय

समस्त पापनाशक स्तोत्र

पुष्कर कहते हैं—जब मनुष्योंका चित्त परस्त्रीगमन, परस्वापहरण एवं जीवहिंसा आदि पापोंमें प्रवृत्त होता है, तो स्तुति करनेसे उसका प्रायश्चित्त होता है। (उस समय निम्नलिखित प्रकारसे भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करे—) "सर्वव्यापी विष्णुको सदा नमस्कार है। श्रीहरि विष्णुको नमस्कार है। मैं अपने चित्तमें स्थित सर्वव्यापी, अहंकारशून्य श्रीहरिको नमस्कार करता हूँ। मैं अपने मानसमें विराजमान अव्यक्त, अनन्त और अपराजित परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। सबके पूजनीय, जन्म और मरणसे रहित, प्रभावशाली श्रीविष्णुको नमस्कार है। विष्णु मेरे चित्तमें निवास करते हैं, विष्णु मेरी बुद्धिमें विराजमान हैं, विष्णु मेरे अहंकारमें प्रतिष्ठित हैं और विष्णु मुझमें भी स्थित हैं। वे श्रीविष्णु ही चराचर प्राणियोंके कर्मोंके रूपमें स्थित हैं, उनके चिन्तनसे मेरे पापका विनाश हो। जो ध्यान करनेपर पापोंका हरण करते हैं और भावना करनेसे स्वप्नमें दर्शन देते हैं, इन्द्रके अनुज, शरणागतजनोंका दुःख दूर करनेवाले उन पापापहारी श्रीविष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं इस निराधार जगत्‌में अज्ञानान्धकारमें डूबते हुएको हाथका सहारा देनेवाले परात्परस्वरूप श्रीविष्णुके सम्मुख प्रणत होता हूँ। सर्वेश्वरेश्वर प्रभो! कमलनयन परमात्मन्! हृषीकेश! आपको नमस्कार है। इन्द्रियोंके स्वामी श्रीविष्णो! आपको नमस्कार है। नृसिंह! अनन्तस्वरूप गोविन्द! समस्त भूत-प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले केशव! मेरे द्वारा जो दुर्वचन कहा गया हो अथवा पापपूर्ण चिन्तन किया गया हो, मेरे उस पापका प्रशमन कीजिये; आपको नमस्कार है। केशव! अपने मनके वशमें होकर मैंने जो न करनेयोग्य अत्यन्त उग्र पापपूर्ण चिन्तन किया है, उसे शान्त कीजिये। परमार्थ-परायण ब्राह्मणप्रिय गोविन्द! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले जगन्नाथ! जगत्‌का भरण-पोषण करनेवाले देवेश्वर! मेरे पापका विनाश कीजिये। मैंने मध्याह्न, अपराह्न, सायंकाल एवं रात्रिके समय, जानते हुए अथवा अनजाने, शरीर, मन एवं वाणीके द्वारा जो पाप किया हो, 'पुण्डरीकाक्ष', 'हृषीकेश', 'माधव'—आपके इन तीन नामोंके उच्चारणसे मेरे वे सब पाप क्षीण हो जायँ। कमलनयन लक्ष्मीपते! इन्द्रियोंके स्वामी माधव! आज आप मेरे शरीर एवं वाणीद्वारा किये हुए पापोंका हनन कीजिये। आज मैंने खाते, सोते, खड़े, चलते अथवा जागते हुए मन, वाणी और शरीरसे जो भी नीच योनि एवं नरककी प्राप्ति करानेवाला सूक्ष्म अथवा स्थूल पाप किया हो, भगवान् वासुदेवके नामोच्चारणसे वे सब विनष्ट हो जायँ। जो परब्रह्म, परमधाम और परम पवित्र हैं, उन श्रीविष्णुके संकीर्तनसे मेरे पाप लुप्त हो जायँ। जिसको प्राप्त होकर ज्ञानीजन पुनः लौटकर नहीं आते, जो गन्ध, स्पर्श आदि तन्मात्राओंसे रहित है, श्रीविष्णुका वह परमपद मेरे पापोंका शमन करे"* ॥ १—१८ ॥

* विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः ।
नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतिं हरिम् ॥
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् ।
विष्णुमीड्यमशेषेण अनादिनिधनं विभुम् ॥
विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् ।
यच्चाहंकारगो विष्णुर्यद्विष्णुर्मयि संस्थितः ॥
करोति कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च ।
तत् पापं नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिन्तिते ॥
ध्यातो हरति यत् पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात् ।
तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्तिहरं हरिम् ॥
जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यधः ।
हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात्परम् ॥
सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज ।
हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥
नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव ।
दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाघं नमोऽस्तु ते ॥
यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना ।
अकार्यं महदत्युग्रं तच्छमं नय केशव ॥
ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण ।
जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत ॥
यथापराह्णे सायाह्ने मध्याह्ने च तथा निशि ।
कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।
नामत्रयोच्चारणतः पापं यातु मम क्षयम् ॥

जो मनुष्य पापोंका विनाश करनेवाले इस स्तोत्रका पठन अथवा श्रवण करता है, वह शरीर, मन और वाणी-जनित समस्त पापोंसे छूट जाता है एवं समस्त पापग्रहोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। इसलिये किसी भी पापके हो जानेपर इस स्तोत्रका जप करे। यह स्तोत्र पापसमूहोंके प्रायश्चित्तके समान है। कृच्छ्र आदि व्रत करनेवालेके लिये भी यह श्रेष्ठ है। स्तोत्र-जप और व्रतरूप प्रायश्चित्तसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये इनका अनुष्ठान करना चाहिये *॥ १९—२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'समस्तपापनाशक स्तोत्रका वर्णन' नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७२ ॥

एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय

अनेकविध प्रायश्चित्तोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं ब्रह्माके द्वारा वर्णित पापोंका नाश करनेवाले प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। जिससे प्राणोंका शरीरसे वियोग हो जाय, उस कार्यको 'हनन' कहते हैं। जो राग, द्वेष अथवा प्रमादवश दूसरेके द्वारा या स्वयं ब्राह्मणका वध करता है, वह 'ब्रह्मघाती' होता है। यदि एक कार्यमें तत्पर बहुत-से शस्त्रधारी मनुष्योंमें कोई एक ब्राह्मणका वध करता है, तो वे सब-के-सब 'घातक' माने जाते हैं। ब्राह्मण किसीके द्वारा निन्दित होनेपर, मारा जानेपर या बन्धनसे पीड़ित होनेपर जिसके उद्देश्यसे प्राणोंका परित्याग कर देता है, उसे 'ब्रह्महत्यारा' माना गया है। औषधोपचार आदि उपकार करनेपर किसीकी मृत्यु हो जाय तो उसे पाप नहीं होता। पुत्र, शिष्य अथवा पत्नीको दण्ड देनेपर उनकी मृत्यु हो जाय, उस दशामें भी दोष नहीं होता। जिन पापोंसे मुक्त होनेका उपाय नहीं बतलाया गया है, देश, काल, अवस्था, शक्ति और पापका विचार करके यत्नपूर्वक प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनी चाहिये। गौ अथवा ब्राह्मणके लिये तत्काल अपने प्राणोंका परित्याग कर दे, अथवा अग्निमें अपने शरीरकी आहुति दे डाले तो मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्महत्यारा मृतकके सिरका कपाल और ध्वज लेकर भिक्षान्नका भोजन करता हुआ 'मैंने ब्राह्मणका वध किया है'—इस प्रकार अपने पापकर्मको प्रकाशित करे। वह बारह वर्षतक नियमित भोजन करके शुद्ध होता है। अथवा शुद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाला ब्रह्मघाती मनुष्य छः वर्षोंमें ही पवित्र हो जाता है। अज्ञानवश पापकर्म करनेवालेकी अपेक्षा जान-बूझकर पाप करनेवालेके लिये दुगुना प्रायश्चित्त विहित है। ब्राह्मणके वधमें प्रवृत्त होनेपर तीन वर्षतक प्रायश्चित्त करे। ब्रह्मघाती क्षत्रियको दुगुना तथा वैश्य एवं शूद्रको छःगुना प्रायश्चित्त करना चाहिये। अन्य पापोंका ब्राह्मणको सम्पूर्ण, क्षत्रियको तीन चरण,

---

शरीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव। पापं प्रशमयाद्य त्वं वाक्कृतं मम माधव ॥
यद् भुञ्जन् यत् स्वपंस्तिष्ठन् गच्छन् जाग्रद् यदास्थितः। कृतवान् पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा ॥
यत् स्वल्पमपि यत् स्थूलं कुयोनिनरकावहम्। तद् यातु प्रशमं सर्वं वासुदेवानुकीर्तनात् ॥
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत्। तस्मिन् प्रकीर्तिते विष्णौ यत् पापं तत् प्रणश्यतु ॥
यत् प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शादिवर्जितम्। सूरयस्तत् पदं विष्णोस्तत् सर्वं शमयत्वघम् ॥

(अग्निपुराण १७२ । २—१८)

* पापप्रणाशनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि। शारीरैर्मानसैर्वाग्जैः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥
सर्वपापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम्। तस्मात् पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनम् ॥
प्रायश्चित्तमघौघानां स्तोत्रं व्रतकृते वरम्। प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्व्रतैर्नश्यति पातकम् ॥

(अग्निपुराण १७२ । १९—२१)

श्रीलक्ष्मीजी [अग्नि० अ० ५०

श्रीसरस्वतीजी [अग्नि० अ० ५०

श्रीगङ्गाजी [अग्नि० अ० ५०

श्रीयमुनाजी [अग्नि० अ० ५०

वैश्यको आधा और शूद्र, वृद्ध, स्त्री, बालक एवं रोगीको एक चरण प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ १—११ ॥

क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका एकपाद, वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश और सदाचारपरायण शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त माना गया है। सदाचारिणी स्त्रीकी हत्या करके शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। गोहत्यारा संयतचित्त होकर एक मासतक गोशालामें शयन करे, गौओंका अनुगमन करे और पञ्चगव्य पीकर रहे। फिर गोदान करनेसे वह शुद्ध हो जाता है। 'कृच्छ्र' अथवा 'अतिकृच्छ्र' कोई भी व्रत हो, क्षत्रियोंको उसके तीन चरणोंका अनुष्ठान करना चाहिये। अत्यन्त बूढ़ी, अत्यन्त कृश, बहुत छोटी उम्रवाली अथवा रोगिणी स्त्रीकी हत्या करके द्विज पूर्वोक्त विधिके अनुसार ब्रह्महत्याका आधा प्रायश्चित्त करे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और यथाशक्ति तिल एवं सुवर्णका दान करे। मुक्के या थप्पड़के प्रहारसे, सींग तोड़नेसे और लाठी आदिसे मारनेपर यदि गौ मर जाय तो उसे 'गोवध' कहा जाता है। मारने, बाँधने, गाड़ी आदिमें जोतने, रोकने अथवा रस्सीका फंदा लगानेसे गौकी मृत्यु हो जाय तो तीन चरण प्रायश्चित्त करे। काठसे गोवध करनेवाला 'सांतपनव्रत', ढेलेसे मारनेवाला 'प्राजापत्य', पत्थरसे हत्या करनेवाला 'तप्तकृच्छ्र' और शस्त्रसे वध करनेवाला 'अतिकृच्छ्र' करे। बिल्ली, गोह, नेवला, मेढक, कुत्ता अथवा पक्षीकी हत्या करके तीन दिन दूध पीकर रहे; अथवा 'प्राजापत्य' या 'चान्द्रायण' व्रत करे॥ १२—१९½॥

गुप्त पाप होनेपर गुप्त और प्रकट पाप होनेपर प्रकट प्रायश्चित्त करे। समस्त पापोंके विनाशके लिये सौ प्राणायाम करे। कटहल, द्राक्षा, महुआ, खजूर, ताड़, ईख और मुनक्केका रस तथा टंकमाध्वीक, मैरेय और नारियलका रस—ये मादक होते हुए भी मद्य नहीं हैं। पैटी ही मुख्य सुरा मानी गयी है। ये सब मदिराएँ द्विजोंके लिये निषिद्ध हैं। सुरापान करनेवाला खौलता हुआ जल पीकर शुद्ध होता है। अथवा सुरापानके पापसे मुक्त होनेके लिये एक वर्षतक जटा एवं ध्वजा धारण किये हुए वनमें निवास करे। नित्य रात्रिके समय एक बार चावलके कण या तिलकी खलीका भोजन करे। अज्ञानवश मल-मूत्र अथवा मदिरासे छूये हुए पदार्थका भक्षण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्णोंके लोग पुनः संस्कारके योग्य हो जाते हैं। सुरापात्रमें रक्खा हुआ जल पीकर सात दिन व्रत करे। चाण्डालका जल पीकर छः दिन उपवास रक्खे तथा चाण्डालोंके कूएँ अथवा पात्रका पानी पीकर 'सांतपन-व्रत' करे। अन्त्यजका जल पीकर द्विज तीन रात उपवास रखकर पञ्चगव्यका पान करे। नवीन जल या जलके साथ मत्स्य, कण्टक, शम्बूक, शङ्ख, सीप और कौड़ी पीनेपर पञ्चगव्यका आचमन करनेसे शुद्धि होती है। शवयुक्त कूपका जल पीनेपर मनुष्य 'त्रिरात्रव्रत' करनेसे शुद्ध होता है। चाण्डालका अन्न खाकर 'चान्द्रायण-व्रत' करे। आपत्कालमें शूद्रके घर भोजन करनेपर पश्चात्तापसे शुद्धि हो जाती है। शूद्रके पात्रमें भोजन करनेवाला ब्राह्मण उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। कन्दुपक्व (भूजा), स्नेहपक्व (घी-तेलमें पके पदार्थ), घी-तैल, दही, सत्तू, गुड़, दूध और रस आदि—ये वस्तुएँ शूद्रके घरसे ली जानेपर भी निन्दित नहीं हैं। बिना स्नान किये भोजन करनेवाला एक दिन उपवास रखकर दिनभर जप करनेसे पवित्र होता है। मूत्र त्याग करके अशौचावस्थामें भोजन करनेपर 'त्रिरात्रव्रतसे' शुद्धि होती है। केश एवं कीटसे युक्त, जान-बूझकर पैरसे छूआ हुआ, भ्रूणघातीका देखा हुआ, रजस्वला स्त्रीका छूआ हुआ, कौए आदि पक्षियोंका जूठा किया हुआ, कुत्तेका स्पर्श किया हुआ अथवा गौका सूँघा हुआ अन्न खाकर तीन दिन उपवास करे। वीर्य, मल या मूत्रका भक्षण करनेपर 'प्राजापत्य-व्रत' करे। नवश्राद्धमें 'चान्द्रायण', मासिक श्राद्धमें 'पराकव्रत', त्रिपाक्षिक श्राद्धमें 'अतिकृच्छ्र', षाण्मासिक श्राद्धमें 'प्राजापत्य' और वार्षिक श्राद्धमें 'एकपाद प्राजापत्य-व्रत' करे। पहले और दूसरे दोनों दिन वार्षिक श्राद्ध हो तो दूसरे वार्षिक श्राद्धमें एक दिनका उपवास करे। निषिद्ध वस्तुका भक्षण करनेपर उपवास करके प्रायश्चित्त करे। भूतृण (छत्राक), लहसुन और शिग्रुरुक् (श्वेत मरिच) खा लेनेपर 'एकपाद प्राजापत्य' करे। अभोज्यान्न, शूद्रका अन्न, स्त्री एवं शूद्रका उच्छिष्ट या अभक्ष्य मांसका भक्षण करके सात दिन केवल दूध पीकर रहे। जो ब्रह्मचारी, संन्यासी अथवा व्रतस्थ द्विज मधु, मांस या जननाशौच एवं मरणाशौचका अन्न भोजन कर लेता है, वह 'प्राजापत्य-कृच्छ्र' करे ॥ २०—३९ ॥

अन्यायपूर्वक दूसरेका धन हड़प लेनेको 'चोरी' कहते हैं। सुवर्णकी चोरी करनेवाला राजाके द्वारा मूसलसे मारे जानेपर शुद्ध होता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला, सुरापान करनेवाला, ब्रह्मघाती और गुरुपत्नीगामी बारह वर्षतक

भूमिपर शयन और जटा धारण करे । वह एक समय केवल पत्ते और फल-मूलका भोजन करनेसे शुद्ध होता है । चोरी अथवा सुरापान करके एक वर्षतक 'प्राजापत्य-व्रत' करे । मणि, मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा और पत्थरकी चोरी करनेवाला बारह दिन चावलके कण खाकर रहे । मनुष्य, स्त्री, क्षेत्र, गृह, बावली, कूप और तालाबका अपहरण करनेपर 'चान्द्रायण-व्रत'से शुद्धि मानी गयी है । भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ, सवारी, शय्या, आसन, पुष्प, मूल अथवा फलकी चोरी करनेवाला पञ्चगव्य पीकर शुद्ध होता है । तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड़, वस्त्र, चर्म या मांस चुरानेवाला तीन दिन निराहार रहे । सौतेली माँ, बहन, गुरुपुत्री, गुरुपत्नी और अपनी पुत्रीसे समागम करनेवाला 'गुरुपत्नीगामी' माना गया है । गुरुपत्नीगमन करनेपर अपने पापकी घोषणा करके जलते हुए लोहकी शय्यापर तप्त-लौहमयी स्त्रीका आलिङ्गन करके प्राणत्याग करनेसे शुद्ध होता है । अथवा गुरुपत्नीगामी तीन मासतक 'चान्द्रायण-व्रत' करे । पतित स्त्रियोंके लिये भी इसी प्रायश्चित्तका विधान करे । पुरुषको परस्त्रीगमन करनेपर जो प्रायश्चित्त बतलाया गया है, वही उनसे करावे । कुमारी कन्या, चाण्डाली, पुत्री और अपने सपिण्ड तथा पुत्रकी पत्नीमें वीर्यसेचन करनेवालेको प्राणत्याग कर देना चाहिये । द्विज एक रात शूद्राका सेवन करके जो पाप संचित करता है, वह तीन वर्षतक नित्य गायत्री-जप एवं भिक्षान्नका भोजन करनेसे नष्ट होता है । चाची, भाभी, चाण्डाली, पुक्कसी, पुत्रवधू, बहन, सखी, मौसी, बुआ, निक्षिता (धरोहरके रूपमें रक्खी हुई), शरणागता, मामी, सगोत्रा बहिन, दूसरेको चाहनेवाली स्त्री, शिष्यपत्नी अथवा गुरुपत्नीमें गमन करके 'चान्द्रायण-व्रत' करे ॥ ४०—५४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अनेकविध प्रायश्चित्तोंका वर्णन' नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७३ ॥

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

प्रायश्चित्तोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—देव-मन्दिरके पूजन आदिका लोप करनेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये । पूजाका लोप करनेपर एक सौ आठ बार जप करे और दुगुनी पूजाकी व्यवस्था करके पञ्चोपनिषद्-मन्त्रोंसे हवन कर ब्राह्मण-भोजन करावे । सूतिका स्त्री, अन्त्यज अथवा रजस्वलाके द्वारा देवमूर्तिका स्पर्श होनेपर सौ बार गायत्री-जप करे । दुगुना स्नान करके पञ्चोपनिषद्-मन्त्रोंसे पूजन एवं ब्राह्मण-भोजन कराये । होमका नियम भङ्ग होनेपर होम, स्नान और पूजन करे । होम-द्रव्यको चूहे आदि खा लें या वह कीटयुक्त हो जाय, तो उतना अंश छोड़कर तथा शेष द्रव्यका जलसे प्रोक्षण करके देवताओंका पूजन करे । भले ही अङ्कुरमात्र अर्पण करे, परंतु छिन्न-भिन्न द्रव्यका बहिष्कार कर दे । अस्पृश्य मनुष्योंका स्पर्श हो जानेपर पूजा-द्रव्यको दूसरे पात्रमें रख दे । पूजाके समय मन्त्र अथवा द्रव्यकी त्रुटि होनेपर दैव एवं मानुष विघ्नोंका विनाश करनेवाले गणपतिके बीज-मन्त्रका जप करके पुनः पूजन करे । देव-मन्दिरका कलश नष्ट हो जानेपर सौ बार मन्त्र-जप करे । देवमूर्तिके हाथसे गिरने एवं नष्ट हो जानेपर उपवासपूर्वक अग्निमें सौ आहुतियाँ देनेसे शुभ होता है । जिस पुरुषके मनमें पाप करनेपर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये श्रीहरिका स्मरण ही परम प्रायश्चित्त है । चान्द्रायण, पराक एवं प्राजापत्य-व्रत पापसमूहोंका विनाश करनेवाले हैं । सूर्य, शिव, शक्ति और विष्णुके मन्त्रका जप भी पापोंका प्रशमन करता है । गायत्री, प्रणव, पापप्रणाशनस्तोत्र एवं मन्त्रका जप पापोंका अन्त करनेवाला है । सूर्य, शिव, शक्ति और विष्णुके 'क'से प्रारम्भ होनेवाले, 'रा' बीजसे संयुक्त, रादि आदि और रान्त मन्त्र करोड़गुना फल देनेवाले हैं । इनके सिवा 'ॐ ह्रीं'से प्रारम्भ होनेवाले चतुर्थ्यन्त एवं अन्तमें 'नमः' संयुक्त मन्त्र सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाले हैं । नृसिंह भगवान्‌के द्वादशाक्षर एवं अष्टाक्षर मन्त्रका जप पापसमूहोंका विनाश करता है । अग्निपुराणका पठन एवं श्रवण करनेसे भी मनुष्य समस्त पापसमूहोंसे छूट जाता है । इस पुराणमें अग्निदेवका माहात्म्य भी वर्णित है । परमात्मा श्रीविष्णु ही मुखस्वरूप अग्निदेव हैं, जिनका

सम्पूर्ण वेदोंमें गान किया गया है। भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले उन परमेश्वरका प्रवृत्ति और निवृत्ति-मार्गसे भी पूजन किया जाता है। अग्निरूपमें स्थित श्रीविष्णुके उद्देश्यसे हवन, जप, ध्यान, पूजन, स्तवन एवं नमस्कार शरीर-सम्बन्धी सभी पापोंका विध्वंस करनेवाला है। दस प्रकारके स्वर्णदान, बारह प्रकारके धान्यदान, तुलापुरुष आदि सोलह महादान एवं सर्वश्रेष्ठ अन्नदान—ये सब महापापोंका अपहरण करनेवाले हैं। तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग, मन्वन्तरारम्भ आदिके समय सूर्य, शिव, शक्ति तथा विष्णुके उद्देश्यसे किये जानेवाले व्रत आदि पापोंका प्रशमन करते हैं। गङ्गा, गया, प्रयाग, अयोध्या, उज्जैन, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, नैमिषारण्य, पुरुषोत्तमक्षेत्र, शालग्राम, प्रभासक्षेत्र आदि तीर्थ पापसमूहोंको विनष्ट करते हैं। 'मैं परम प्रकाशस्वरूप ब्रह्म हूँ।'—इस प्रकारकी धारणा भी पापोंका विनाश करनेवाली है। ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भगवान्‌के अवतार, समस्त देवताओंकी प्रतिमा-प्रतिष्ठा एवं पूजन, ज्यौतिष, पुराण, स्मृतियाँ, तप, व्रत, अर्थशास्त्र, सृष्टिके आदितत्त्व, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिक्षा, छन्दःशास्त्र, व्याकरण, निरुक्त, कोष, कल्प, न्याय, मीमांसा-शास्त्र एवं अन्य सब कुछ भी भगवान् श्रीविष्णुकी विभूतियाँ हैं। वे श्रीहरि एक होते हुए भी सगुण-निर्गुण दो रूपोंमें विभक्त एवं सम्पूर्ण संसारमें संनिहित हैं। जो ऐसा जानता है, श्रीहरि-स्वरूप उन महापुरुषका दर्शन करनेसे दूसरोंके पाप विनष्ट हो जाते हैं। भगवान् श्रीहरि ही अष्टादश विद्यारूप, सूक्ष्म, स्थूल, सच्चित्स्वरूप, अविनाशी परब्रह्म एवं निष्पाप विष्णु हैं॥ १—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रायश्चित्त-वर्णन' नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७४॥

एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

व्रतके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी! अब मैं तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष तथा सूर्य-संक्रान्तिके अवसरपर होनेवाले स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी व्रत आदिका क्रमशः वर्णन करूँगा, ध्यान देकर सुनिये—॥ १॥

शास्त्रोक्त नियमको ही 'व्रत' कहते हैं, वही 'तप' माना गया है। 'दम' (इन्द्रियसंयम) और 'शम' (मनोनिग्रह) आदि विशेष नियम भी व्रतके ही अङ्ग हैं। व्रत करनेवाले पुरुषको शारीरिक संताप सहन करना पड़ता है, इसलिये व्रतको 'तप' नाम दिया गया है। इसी प्रकार व्रतमें इन्द्रियसमुदायका नियमन (संयम) करना होता है, इसलिये उसे 'नियम' भी कहते हैं। जो ब्राह्मण या द्विज (क्षत्रिय-वैश्य) अग्निहोत्री नहीं हैं, उनके लिये व्रत, उपवास, नियम तथा नाना प्रकारके दानोंसे कल्याणकी प्राप्ति बतायी गयी है॥ २-४॥

उक्त व्रत-उपवास आदिके पालनसे प्रसन्न होकर देवता एवं भगवान् भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं। पापोंसे उपावृत (निवृत्त) होकर सब प्रकारके भोगोंका त्याग करते हुए जो सद्गुणोंके साथ वास करता है, उसीको 'उपवास' समझना चाहिये। उपवास करनेवाले पुरुषको काँसेके बर्तन, मांस, मसूर, चना, कोदो, साग, मधु, पराये अन्न तथा स्त्री-सम्भोगका त्याग करना चाहिये। उपवास-कालमें फूल, अलंकार, सुन्दर वस्त्र, धूप, सुगन्ध, अङ्गराग, दाँत धोनेके लिये मञ्जन तथा दाँतौन—इन सब वस्तुओंका सेवन अच्छा नहीं माना गया है। प्रातःकाल जलसे मुँह धो, कुल्ला करके, पञ्चगव्य लेकर व्रत प्रारम्भ कर देना चाहिये॥ ५-९॥

अनेक बार जल पीने, पान खाने, दिनमें सोने तथा मैथुन करनेसे उपवास (व्रत) दूषित हो जाता है। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरीका अभाव—ये दस नियम सामान्यतः सम्पूर्ण व्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं। व्रतमें पवित्र ऋचाओंको जपे और अपनी शक्तिके अनुसार हवन करे। व्रती पुरुष प्रतिदिन स्नान तथा परिमित भोजन करे। गुरु, देवता तथा ब्राह्मणोंका पूजन किया करे। क्षार, शहद, नमक, शराब और मांसको त्याग दे। तिल-मूँग आदिके अतिरिक्त धान्य भी त्याज्य हैं। धान्य (अन्न) में उड़द, कोदो, चीना, देवधान्य, शमीधान्य, गुड़, शितधान्य, पय तथा मूली—ये क्षारगण माने गये हैं। व्रतमें इनका त्याग

कर देना चाहिये। धान, साठीका चावल, मूँग, मटर, तिल, जौ, साँवाँ, तिन्नीका चावल और गेहूँ आदि अन्न व्रतमें उपयोगी हैं। कुम्हड़ा, लौकी, बैंगन, पालक तथा पूतिकाको त्याग दे। चरु, भिक्षामें प्राप्त अन्न, सत्तूके दाने, साग, दही, घी, दूध, साँवाँ, अगहनीका चावल, तिन्नीका चावल, जौका हलुवा तथा मूल तण्डुल—ये 'हविष्य' माने गये हैं। इन्हें व्रतमें, नक्तव्रतमें तथा अग्निहोत्रमें भी उपयोगी बताया गया है। अथवा मांस, मदिरा आदि अपवित्र वस्तुओंको छोड़कर सभी उत्तम वस्तुएँ व्रतमें हितकर हैं॥ १०—१७॥

'प्राजापत्यव्रत'का अनुष्ठान करनेवाला द्विज तीन दिन केवल प्रातःकाल और तीन दिन केवल सध्याकालमें भोजन करे। फिर तीन दिन केवल बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीका दिनमें एक समय भोजन करे; उसके बाद तीन दिनोंतक उपवास करके रहे। (इस प्रकार यह बारह दिनोंका व्रत है।) इसी प्रकार 'अतिकृच्छ्र-व्रत'का अनुष्ठान करनेवाला द्विज पूर्ववत् तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायकाल और तीन दिनोंतक बिना माँग प्राप्त हुए अन्नका एक-एक ग्रास भोजन करे तथा अन्तिम दिनोंमें उपवास करे। गायका मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी तथा कुशका जल—इन सबको मिलाकर प्रथम दिन पीये। फिर दूसरे दिन उपवास करे—यह 'सांतपनकृच्छ्र' नामक व्रत है। उपर्युक्त द्रव्योंका पृथक्-पृथक् एक एक दिनके क्रमसे छः दिनोंतक सेवन करके सातवें दिन उपवास करे—इस प्रकार यह एक सप्ताहका व्रत 'महासांतपन-कृच्छ्र' कहलाता है, जो पापोंका नाश करनेवाला है। लगातार बारह दिनोंके उपवाससे सम्पन्न होनेवाले व्रतको 'पराक' कहते हैं। यह सब पापोंका नाश करनेवाला है। इससे तिगुने अर्थात् छत्तीस दिनोंतक उपवास करनेपर यही व्रत 'महापराक' कहलाता है। पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास घटाता रहे; अमावास्याको उपवास करे तथा प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन आरम्भ करके नित्य एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे, इसे 'चान्द्रायण' कहते हैं। इसके विपरीतक्रमसे भी यह व्रत किया जाता है। (जैसे शुक्ल प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन करे; फिर एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करे। तत्पश्चात् कृष्ण प्रतिपदासे एक-एक ग्रास घटाकर अमावास्याको उपवास करे)॥ १८—२३॥

कपिला गायका मूत्र एक पल, गोबर अँगूठेके आधे हिस्सेके बराबर, दूध सात पल, दही दो पल, घी एक पल तथा कुशका जल एक पल एकमें मिला दे। इनका मिश्रण करते समय गायत्री-मन्त्रसे गोमूत्र डाले। '**गन्धद्वारां दुराधर्षां०**' (श्रीसूक्त) इस मन्त्रसे गोबर मिलाये। '**आप्यायस्व०**' (यजु० १२। ११२) इस मन्त्रसे दूध डाल दे। '**दधि क्राव्णो०**' (यजु० २३। ३२) इस मन्त्रसे दही मिलाये। '**तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि०**' (यजु० २२। १) इस मन्त्रसे घी डाले तथा '**देवस्य०**' (यजु० २०। ३) इस मन्त्रसे कुशोदक मिलाये। इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है, उसका नाम 'ब्रह्मकूर्च' है। ब्रह्मकूर्च तैयार होनेपर दिनभर भूखा रहकर सायकालमें अघमर्षण-मन्त्र अथवा प्रणवके साथ '**आपो हि ष्ठा०**' (यजु० ११। ५०) इत्यादि ऋचाओंका जप करके उसे पी डाले। ऐसा करनेवाला सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। दिनभर उपवास करके केवल सायंकालमें भोजन करनेवाला, दिनके आठ भागोंमेंसे केवल छठे भागमें आहार ग्रहण करनेवाला संन्यासी, मांस-त्यागी, अश्वमेधयज्ञ करनेवाला तथा सत्यवादी पुरुष स्वर्गको जाते हैं। अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, देवव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकरण, मेखलाबन्ध (यज्ञोपवीत), विवाह आदि माङ्गलिक कार्य तथा अभिषेक—ये सब कार्य मलमासमें नहीं करने चाहिये॥ २४—३०॥

अमावास्यासे अमावास्यातकका समय 'चान्द्रमास' कहलाता है। तीस दिनोंका 'सावन मास' माना गया है। संक्रान्तिसे संक्रान्तिकालतक 'सौरमास' कहलाता है तथा क्रमशः सम्पूर्ण नक्षत्रोंके परिवर्तनसे 'नाक्षत्रमास' होता है। विवाह आदिमें 'सौरमास', यज्ञ आदिमें 'सावन मास' और वार्षिक श्राद्ध तथा पितृकार्यमें 'चान्द्रमास' उत्तम माना गया है। आषाढ़की पूर्णिमाके बाद जो पाँचवाँ पक्ष आता है, उसमें पितरोंका श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। उस समय सूर्य कन्याराशिपर गये हैं या नहीं, इसका विचार श्राद्धके लिये अनावश्यक है॥ ३१—३३॥

मासिक तथा वार्षिक व्रतमें जब कोई तिथि दो दिनकी हो जाय तो उसमें दूसरे दिनवाली तिथि उत्तम जाननी चाहिये और पहलीको मलिन। 'नक्षत्रव्रत'में उसी नक्षत्रको उपवास करना चाहिये, जिसमें सूर्य अस्त होते हों। 'दिवस-व्रत'में दिनव्यापिनी तथा 'नक्तव्रत'में रात्रिव्यापिनी तिथियाँ पुण्य एवं शुभ मानी गयी हैं। द्वितीयाके साथ तृतीयाका,

चतुर्थी-पञ्चमीका, षष्ठीके साथ सप्तमीका, अष्टमी-नवमीका, एकादशीके साथ द्वादशीका, चतुर्दशीके साथ पूर्णिमाका तथा अमावास्याके साथ प्रतिपदाका वेध उत्तम है। इसी प्रकार षष्ठी-सप्तमी आदिमें भी समझना चाहिये। इन तिथियोंका मेल महान् फल देनेवाला है। इसके विपरीत, अर्थात् प्रतिपदासे द्वितीयाका, तृतीयासे चतुर्थी आदिका जो युग्म-भाव है, वह बड़ा भयानक होता है, वह पहलेके किये हुए समस्त पुण्यको नष्ट कर देता है ॥ ३४-३७ ॥

राजा, मन्त्री तथा व्रतधारी पुरुषोंके लिये विवाहमें, उपद्रव आदिमें, दुर्गम स्थानोंमें, संकटके समय तथा युद्धके अवसरपर तत्काल शुद्धि बतायी गयी है। जिसने दीर्घकालमें समाप्त होनेवाले व्रतको आरम्भ किया है, वह स्त्री यदि बीचमे रजस्वला हो जाय तो वह रज उसके व्रतमें बाधक नहीं होता। गर्भवती स्त्री, प्रसव-गृहमें पड़ी हुई स्त्री अथवा रजस्वला कन्या जब अशुद्ध होकर व्रत करनेयोग्य न रह जाय तो सदा दूसरेसे उस शुभ कार्यका सम्पादन कराये। यदि क्रोधसे, प्रमादसे अथवा लोभसे व्रत-भङ्ग हो जाय तो तीन दिनोंतक भोजन न करे अथवा मूँड़ मुड़ा ले। यदि व्रत करनेमें असमर्थता हो तो पत्नी या पुत्रसे उस व्रतको कराये। आरम्भ किये हुए व्रतका पालन जननाशौच तथा मरणाशौचमें भी करना चाहिये। केवल पूजनका कार्य बंद कर देना चाहिये। यदि व्रती पुरुष उपवासके कारण मूर्च्छित हो जाय तो गुरु दूध पिलाकर या और किसी उत्तम उपायसे उसे होशमें लाये। जल, फल, मूल, दूध, हविष्य (घी), ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका वचन तथा औषध---ये आठ व्रतके नाशक नहीं हैं* ॥ ३८-४३ ॥

(व्रती मनुष्य व्रतके स्वामी देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—) 'व्रतपते ! मैं कीर्ति, संतान, विद्या आदि, सौभाग्य, आरोग्य, अभिवृद्धि, निर्मलता तथा भोग एवं मोक्षके लिये इस व्रतका अनुष्ठान करता हूँ। यह श्रेष्ठ व्रत मैंने आपके समक्ष ग्रहण किया है। जगत्पते ! आपके प्रसादसे इसमें निर्विघ्न सिद्धि प्राप्त हो। संतोंके पालक ! इस श्रेष्ठ व्रतको ग्रहण करनेके पश्चात् यदि इसकी पूर्ति हुए बिना ही मेरी मृत्यु हो जाय तो भी आपके प्रसन्न होनेसे वह अवश्य ही पूर्ण हो जाय। केशव ! आप व्रतस्वरूप हैं, संसारकी उत्पत्तिके स्थान एवं जगत्‌को कल्याण प्रदान करनेवाले हैं; मैं सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस मण्डलमें आपका आवाहन करता हूँ। आप मेरे समीप उपस्थित हों। मनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पञ्चगव्य, पञ्चामृत तथा उत्तम जलके द्वारा मैं भक्तिपूर्वक आपको स्नान कराता हूँ। आप मेरे पापोंके नाशक हों। अर्घ्यपते ! गन्ध, पुष्प और जलसे युक्त उत्तम अर्घ्य एवं पाद्य ग्रहण कीजिये, आचमन कीजिये तथा मुझे सदा अर्घ (सम्मान) पानेके योग्य बनाइये। वस्त्रपते ! व्रतोंके स्वामी ! यह पवित्र वस्त्र ग्रहण कीजिये और मुझे सदा सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों आदिसे आच्छादित किये रहिये। गन्धस्वरूप परमात्मन् ! यह परम निर्मल उत्तम सुगन्धसे युक्त चन्दन लीजिये तथा मुझे पापकी दुर्गन्धसे रहित और पुण्यकी सुगन्धसे युक्त कीजिये। भगवन् ! यह पुष्प लीजिये और मुझे सदा फल-फूल आदिसे परिपूर्ण बनाइये। यह फूलकी निर्मल सुगन्ध आयु तथा आरोग्यकी वृद्धि करनेवाली हो। संतोंके स्वामी ! गुग्गुल और घी मिलाये हुए इस दशाङ्ग धूपको ग्रहण कीजिये। धूपद्वारा पूजित परमेश्वर ! आप मुझे उत्तम धूपकी सुगन्धसे सम्पन्न कीजिये। दीपस्वरूप देव ! सबको प्रकाशित करनेवाले इस प्रकाशपूर्ण दीपको, जिसकी शिखा ऊपरकी ओर उठ रही है, ग्रहण कीजिये और मुझे भी प्रकाशयुक्त एवं ऊर्ध्वगति (उन्नतिशील एवं ऊपरके लोकोंमें जानेवाला) बनाइये। अन्न आदि उत्तम वस्तुओंके अधीश्वर ! इस अन्न आदि नैवेद्यको ग्रहण कीजिये और मुझे ऐसा बनाइये, जिससे मैं अन्न आदि वैभवसे सम्पन्न, अन्नदाता एवं सर्वस्वदान करनेवाला हो सकूँ। प्रभो ! व्रतके द्वारा आराध्य देव ! मैंने मन्त्र, विधि तथा भक्तिके बिना ही जो आपका पूजन किया है, वह आपकी कृपासे परिपूर्ण—सफल हो जाय। आप मुझे धर्म, धन, सौभाग्य, गुण, संतति, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करें। व्रतपते ! प्रभो ! आप इस समय मेरे द्वारा की हुई इस पूजाको स्वीकार करके पुनः यहाँ पधारने और वरदान देनेके लिये अपने स्थानको जायँ' ॥ ४४-५८ ॥

सब प्रकारके व्रतोंमें व्रतधारी पुरुषको उचित है कि वह स्नान करके व्रत-सम्बन्धी देवताकी स्वर्णमयी प्रतिमाका यथाशक्ति पूजन करे तथा रातको भूमिपर सोये। व्रतके

---

* अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥
(अग्नि० १७५ । ४३)

अन्तमें जप, होम और दान सामान्य कर्तव्य है । साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार चौबीस, बारह, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मणकी एवं गुरुजनोंकी पूजा करके उन्हें भोजन करावे और यथाशक्ति सबको पृथक्-पृथक् गौ, सुवर्ण आदि; खड़ाऊँ, जूता, जलपात्र, अन्नपात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, दो वस्त्र और कलश आदि वस्तुएँ दक्षिणामे दे । इस प्रकार यहाँ 'व्रत'की परिभाषा बतायी गयी है ॥ ५९–६२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'व्रत-परिभाषाका वर्णन' नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७५ ॥

एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

प्रतिपदा तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं आपसे प्रतिपद् आदि तिथियोंके व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाले हैं । कार्तिक, आश्विन और चैत्र मासमें कृष्णपक्षकी प्रतिपद् ब्रह्माजीकी तिथि है । पूर्णिमाको उपवास करके प्रतिपद्को ब्रह्माजीका पूजन करे । पूजा '**ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।**'—इस मन्त्रसे अथवा गायत्री-मन्त्रसे करनी चाहिये । यह व्रत एक वर्षतक करे । ब्रह्माजीके सुवर्णमय विग्रहका पूजन करे, जिसके दाहिने हाथोंमें स्फटिकाक्षकी माला और स्रुवा हों तथा बायें हाथोंमें स्रुक् एवं कमण्डलु हों । साथ ही लंबी दाढ़ी और सिरपर जटा भी हो । यथाशक्ति दूध चढ़ावे और मनमें यह उद्देश्य रक्खे कि 'ब्रह्माजी मुझपर प्रसन्न हों ।' यों करनेवाला मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गमें उत्तम भोग भोगता है और पृथ्वीपर धनवान् ब्राह्मणके रूपमें जन्म लेता है ॥ १–४ ॥

अब 'धन्यव्रत'का वर्णन करता हूँ । इसका अनुष्ठान करनेसे अधन्य भी धन्य हो जाता है । पहले मार्गशीर्ष-मासकी प्रतिपद्को उपवास करके रातमें '**अग्नये नमः ।**'—इस मन्त्रसे होम और अग्निकी पूजा करे । इसी प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासकी प्रतिपद्को अग्निकी आराधना करनेसे मनुष्य सब सुखोंका भागी होता है ।

प्रत्येक प्रतिपदाको एकभुक्त (दिनमें एक समय भोजन करके) रहे । सालभरमें व्रतकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मण कपिला गौ दान करे । ऐसा करनेवाला मनुष्य 'वैश्वानर'-पदको प्राप्त होता है । यह 'शिखिव्रत' कहलाता है ॥ ५–७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिपद्-व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७६ ॥

एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

द्वितीया तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं द्वितीयाके व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष आदि देनेवाले हैं । प्रत्येक मासकी द्वितीयाको फूल खाकर रहे और दोनों अश्विनीकुमार नामक देवताओंकी पूजा करे । एक वर्षतक इस व्रतके अनुष्ठानसे सुन्दर स्वरूप एवं सौभाग्यकी प्राप्ति होती है और अन्तमें व्रती पुरुष स्वर्गलोकका भागी होता है । कार्तिकमें शुक्लपक्षकी द्वितीयाको यमकी पूजा करे । फिर एक वर्षतक प्रत्येक शुक्ल-द्वितीयाको उपवासपूर्वक व्रत रक्खे । ऐसा करनेवाला पुरुष स्वर्गमें जाता है, नरकमें नहीं पड़ता ॥ १—२½ ॥

अब 'अशून्य-शयन' नामक व्रत बतलाता हूँ, जो स्त्रियोंको अवैधव्य (सदा सुहाग) और पुरुषोंको पत्नी-सुख आदि देनेवाला है । श्रावण मासके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये । [इस व्रतमें भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना की जाती है —] 'वक्षःस्थलमे श्रीवत्स-चिह्न धारण करनेवाले श्रीकान्त ! आप लक्ष्मीजीके धाम और स्वामी हैं; अविनाशी एवं सनातन परमेश्वर हैं । आपकी कृपासे धर्म, अर्थ और काम प्रदान करनेवाला मेरा गार्हस्थ्य-आश्रम नष्ट न हो । मेरे घरके अग्निहोत्रकी आग कभी न बुझे, गृहदेवता कभी अदृश्य न हों । मेरे पितर

नाशसे बचे रहें और मुझसे दाम्पत्य-भेद न हो। जैसे आप कभी लक्ष्मीजीसे विलग नहीं होते, उसी प्रकार मेरा भी पत्नीके साथका सम्बन्ध कभी टूटने या छूटने न पावे। वरदानी प्रभो! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मीजीसे सूनी नहीं होती, मधुसूदन! उसी प्रकार मेरी शय्या भी पत्नीसे सूनी न हो।' इस प्रकार व्रत आरम्भ करके एक वर्षतक प्रतिमासकी द्वितीयाको श्रीलक्ष्मी और विष्णुका विधिवत् पूजन करे। शय्या और फलका दान भी करे। साथ ही प्रत्येक मासमें उसी तिथिको चन्द्रमाके लिये मन्त्रोच्चारण-पूर्वक अर्घ्य दे। [अर्घ्यका मन्त्र—] 'भगवान् चन्द्रदेव! आप गगन-प्राङ्गणके दीपक हैं। क्षीरसागरके मन्थनसे आपका आविर्भाव हुआ है। आप अपनी प्रभासे सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको प्रकाशित करते हैं। भगवती लक्ष्मीके छोटे भाई! आपको नमस्कार है।'* तत्पश्चात् 'ॐ श्रं श्रीधराय नमः।'—इस मन्त्रसे सोमस्वरूप श्रीहरिका पूजन करे। 'घं टं हं सं श्रियै नमः।'—इस मन्त्रसे लक्ष्मीजीकी तथा 'दशरूपमहात्मने नमः।'—इस मन्त्रसे श्रीविष्णुकी पूजा करे। रातमें घीसे हवन करके ब्राह्मणको शय्या दान करे। उसके साथ दीप, अन्नसे भरे हुए पात्र, छाता, जूता, आसन, जलसे भरा कलश, श्रीहरिकी प्रतिमा तथा पात्र भी ब्राह्मणको दे। जो इस प्रकार उक्त व्रतका पालन करता है, वह भोग और मोक्षका भागी होता है ॥३—१२½॥

अब 'कान्तिव्रत' का वर्णन करता हूँ। इसका प्रारम्भ कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको करना चाहिये। दिनमें उपवास और रातमें भोजन करे। इसमें बलराम तथा भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे। एक वर्षतक ऐसा करनेसे व्रती पुरुष कान्ति, आयु और आरोग्य आदि प्राप्त करता है ॥ १३-१४ ॥

अब मैं 'विष्णुव्रत' का वर्णन करूँगा, जो मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है। पौष मासके शुक्लपक्षकी द्वितीयासे आरम्भ करके लगातार चार दिनोंतक इस व्रतका अनुष्ठान किया जाता है। पहले दिन सरसों-मिश्रित जलसे स्नानका विधान है। दूसरे दिन काले तिल मिलाये हुए जलसे स्नान बताया गया है। तीसरे दिन वचा या वच नामक ओषधिसे युक्त जलके द्वारा तथा चौथे दिन सर्वौषधि-मिश्रित जलके द्वारा स्नान करना चाहिये। मुरा (कपूर-कचरी), वचा (वच), कुष्ठ (कूठ), शैलेय (शिलाजीत या भूरिछरीला), दो प्रकारकी हल्दी (गाँठ हल्दी और दारुहल्दी), कचूर, चम्पा और मोथा—यह 'सर्वौषधि-समुदाय' कहा गया है। पहले दिन 'श्रीकृष्णाय नमः।', दूसरे दिन 'अच्युताय नमः।', तीसरे दिन 'अनन्ताय नमः।' और चौथे दिन 'हृषीकेशाय नमः।' इस नाम-मन्त्रसे क्रमशः भगवान्‌के चरण, नाभि, नेत्र एवं मस्तकपर पुष्प समर्पित करते हुए पूजन करना चाहिये। प्रतिदिन प्रदोषकालमें चन्द्रमाको अर्घ्य देना चाहिये। पहले दिनके अर्घ्यमें 'शशिने नमः।', दूसरे दिनके अर्घ्यमें 'चन्द्राय नमः।', तीसरे दिन 'शशाङ्काय नमः।' और चौथे दिन 'इन्दवे नमः।' का उच्चारण करना चाहिये। रातमें जबतक चन्द्रमा दिखायी देते हों, तभीतक मनुष्यको भोजन कर लेना चाहिये। व्रती पुरुष छः मास या एक सालतक इस व्रतका पालन करके सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलको प्राप्त कर लेता है। पूर्वकालमें राजाओंने, स्त्रियोंने और देवता आदिने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया था ॥ १५—२० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वितीया-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७७ ॥

एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

तृतीया तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख तृतीया तिथिको किये जानेवाले व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। ललितातृतीयाको किये जानेवाले मूलगौरी-सम्बन्धी (सौभाग्यशयन) व्रतको सुनिये ॥ १ ॥

चैत्रके शुक्लपक्षकी तृतीयाको ही पार्वतीका भगवान् शिवके साथ विवाह हुआ था। इसलिये इस दिन तिलमिश्रित जलसे स्नान करके पार्वतीसहित भगवान् शंकरकी स्वर्णाभूषण और फल आदिसे पूजा करनी चाहिये ॥ २ ॥

* गगनाङ्गणसंदीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव ॥ भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते। (अग्नि० १७७। ९-१०)

'**नमोऽस्तु पाटलायै**' (पाटला देवीको नमस्कार)—यह कहकर पार्वतीदेवी और भगवान् शंकरके चरणोंका पूजन करे। '**शिवाय नमः**' (भगवान् शिवको नमस्कार)—यह कहकर शिवकी और '**जयायै नमः**' (जयाको नमस्कार)—यों कहकर गौरी देवीकी अर्चना करे। '**त्रिपुरघ्नाय रुद्राय नमः**' (त्रिपुरविनाशक रुद्रदेवको नमस्कार) तथा '**भवान्यै नमः**' (भवानीको नमस्कार)—यह कहकर क्रमशः शिव-पार्वतीकी दोनों जङ्घाओंका और '**रुद्रायेश्वराय नमः**' (सबके ईश्वर रुद्रदेवको नमस्कार है) एवं '**विजयायै नमः**' (विजयाको नमस्कार)—यह कहकर क्रमशः शंकर और पार्वतीके घुटनोंका पूजन करे। '**ईशायै नमः**' (सर्वेश्वरीको नमस्कार)—यह कहकर देवीके और '**शंकराय नमः**'—ऐसा कहकर शंकरके कटिभागकी पूजा करे। '**कोटव्यै नमः**' (कोटवीदेवीको नमस्कार) और '**शूलपाणये नमः**' (त्रिशूलधारीको नमस्कार)—यों कहकर क्रमशः गौरी-शंकरके कुक्षिदेशका पूजन करे। '**मङ्गलायै नमः**' (मङ्गलादेवीको नमस्कार) कहकर भवानीके और '**तुभ्यं नमः**' (आपको नमस्कार)—यह कहकर शंकरके उदरका पूजन करे। '**सर्वात्मने नमः**' (सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मभूत शिवको नमस्कार)—यों कहकर रुद्रके और '**ईशान्यै नमः**' (ईशानीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके स्तनयुगलका पूजन करे। '**देवात्मने नमः**' (देवताओंके आत्मभूत शंकरको नमस्कार)—कहकर शिवके और उसी प्रकार '**ह्लादिन्यै नमः**' (सबको आह्लाद प्रदान करनेवाली गौरीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके कण्ठप्रदेशकी अर्चना करे। '**महादेवाय नमः**' (महादेवको नमस्कार) और '**अनन्तायै नमः**' (अनन्ताको नमस्कार) कहकर क्रमशः शिव-पार्वतीके दोनों हाथोंका पूजन करे। '**त्रिलोचनाय नमः**' (त्रिलोचनको नमस्कार) और '**कालानलप्रियायै नमः**' (कालाग्निस्वरूप शिवकी प्रियतमाको नमस्कार) कहकर भुजाओंका तथा '**महेशाय नमः**' (महेश्वरको नमस्कार) एवं '**सौभाग्यायै नमः**' (सौभाग्यवतीको नमस्कार) कहकर शिव-पार्वतीके आभूषणोंकी पूजा करे। तदनन्तर '**अशोकमधुवासिन्यै नमः**' (अशोक-पुष्पके मधुसे सुवासित पार्वतीको नमस्कार) और '**ईश्वराय नमः**' (ईश्वरको नमस्कार) कहकर दोनोंके ओष्ठभागका तथा '**चतुर्मुखप्रियायै नमः**' (चतुर्मुख ब्रह्माकी प्रिय पुत्रवधूको नमस्कार) और '**हराय स्थाणवे नमः**' (पापहारी स्थाणुस्वरूप शिवको नमस्कार) कहकर क्रमशः गौरी-शंकरके मुखका पूजन करे। '**अर्धनारीशाय नमः**' (अर्धनारीश्वरको नमस्कार) कहकर शिवकी और '**अमिताङ्गायै नमः**' (अपरिमित अङ्गोंवाली देवीको नमस्कार) कहकर पार्वतीकी नासिकाका पूजन करे। '**उग्राय नमः**' (उग्रस्वरूप शिवको नमस्कार) कहकर लोकेश्वर शिवका और '**ललितायै नमः**' (ललिताको नमस्कार) कहकर पार्वतीकी भौंहोंका पूजन करे। '**शर्वाय नमः**' (शर्वको नमस्कार) कहकर त्रिपुरारि शिवके और '**वासन्त्यै नमः**' (वासन्तीदेवीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके तालुप्रदेशका पूजन करे। '**श्रीकण्ठनाथायै नमः**' (श्रीकण्ठ शिवकी पत्नी उमाको नमस्कार) और '**शितिकण्ठाय नमः**' (नीलकण्ठको नमस्कार) कहकर गौरी-शंकरके केशपाशका पूजन करे। '**भीमोग्राय नमः**' (भयंकर एवं उग्रस्वरूप धारण करनेवाले शिवको नमस्कार) कहकर शंकरके और '**सुरूपिण्यै नमः**' (सुन्दर रूपवतीको नमस्कार) कहकर भगवती उमाके शिरोभागकी अर्चना करे। '**सर्वात्मने नमः**' (सर्वात्मा शिवको नमस्कार) कहकर पूजाका उपसंहार करे ॥ ३—११½ ॥

शिवकी पूजाके लिये ये पुष्प क्रमशः चैत्रादि मासोंमें ग्रहण करनेयोग्य बताये गये हैं—मल्लिका, अशोक, कमल, कुन्द, तगर, मालती, कदम्ब, कनेर, नीले रंगका सदाबहार, अम्लान (ऑवोली) कुङ्कुम और सेंधुवार ॥ १२—१३ ॥

उमा-महेश्वरका पूजन करके उनके सम्मुख अष्ट सौभाग्य-द्रव्य रख दे। घृतमिश्रित निष्पाव (एक द्विदल), कुसुम्भ (केसर), दुग्ध, जीवक (एक ओषधिविशेष), दूर्वा, ईख, नमक और कुस्तुम्बुरु (धनियाँ)—ये अष्ट सौभाग्य-द्रव्य हैं। चैत्रमासमें पहाड़ोंके शिखरोंका (गङ्गा आदिका) जल पान करके रुद्रदेव और पार्वतीदेवीके आगे शयन करे।* प्रातःकाल स्नान करके गौरी-शंकरका पूजन कर ब्राह्मण-दम्पतिकी अर्चना करे और वह अष्ट सौभाग्य-द्रव्य

---

* उमामहेश्वरौ पूज्य सौभाग्याष्टकमग्रतः ।
स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीवकम् ॥
तृणराजेक्षुलवणं कुस्तुम्बुरमथाष्टकम् ।
चैत्रे शृङ्गोदकं प्राश्य देवदेव्यग्रतः स्वपेत् ॥
(अग्नि० १७८ । १४-१५)

'ललिता प्रीयतां मम ।' (ललिता मुझपर प्रसन्न हों)— ऐसा कहकर ब्राह्मणको दे ॥ १४–१६ ॥

व्रत करनेवालेको चैत्रादि मासोंमें व्रतके दिन क्रमशः यह आहार करना चाहिये—चैत्रमें शृङ्गजल (झरनेका जल), वैशाखमें गोबर, ज्येष्ठमें मन्दार (आक) का पुष्प, आषाढ़में बिल्वपत्र, श्रावणमें कुशजल, भाद्रपदमें दही, आश्विनमें दुग्ध, कार्तिकमें घृतमिश्रित दधि, मार्गशीर्षमें गोमूत्र, पौषमें घृत, माघमें काले तिल और फाल्गुनमें पञ्चगव्य । ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला और सती—चैत्रादि मासोंमें सौभाग्याष्टकके दानके समय उपर्युक्त नामोंका 'प्रीयतां मम'से संयुक्त करके उच्चारण करे । व्रतके पूर्ण होनेपर किसी एक फलका सदाके लिये त्याग कर दे तथा गुरुदेवको तकियोंसे युक्त शय्या, उमा-महेश्वरकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमा एवं गौसहित वृषभका दान करे । गुरु और ब्राह्मण-दम्पतिका वस्त्र आदिसे सत्कार करके साधक भोग और मोक्ष - दोनोंको प्राप्त कर लेता है । इस 'सौभाग्यशयन' नामक व्रतके अनुष्ठानसे मनुष्य सौभाग्य, आरोग्य, रूप और दीर्घायु प्राप्त करता है ॥ १७–२१ ॥

यह व्रत भाद्रपद, वैशाख और मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी तृतीयाको भी किया जा सकता है । इसमें 'ललितायै नमः' (ललिताको नमस्कार)—इस प्रकार कहकर पार्वतीका पूजन करे । तदनन्तर व्रतकी समाप्तिके समय प्रत्येक पक्षमें ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करनी चाहिये । उनकी चौबीस वस्त्र आदिसे अर्चना करके मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है । 'सौभाग्यशयन'की यह दूसरी विधि बतायी गयी । अब मैं 'सौभाग्यव्रत'के विषयमें कहता हूँ । फाल्गुन आदि मासोंमें शुक्लपक्षकी तृतीयाको व्रत करनेवाला नमकका परित्याग करे । व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करके 'भवानी प्रीयताम् ।' (भवानी प्रसन्न हों) कहकर शय्या और सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त गृहका दान करे । यह 'सौभाग्य-तृतीया'-व्रत कहा गया, जो पार्वती आदिके लोकोंको प्रदान करनेवाला है । इसी प्रकार माघ, भाद्रपद और वैशाखकी तृतीयाको व्रत करना चाहिये ॥ २२–२६ ॥

चैत्रमें 'दमनक-तृतीया'का व्रत करके पार्वतीकी 'दमनक' नामक पुष्पोंसे पूजन करनी चाहिये । मार्गशीर्षमें 'आत्म-तृतीया'का व्रत किया जाता है । इसमें पार्वतीका पूजन करके ब्राह्मणको इच्छानुसार भोजन करावे । मार्गशीर्षकी तृतीयासे आरम्भ करके, क्रमशः पौष आदि मासोंमें उपर्युक्त व्रतका अनुष्ठान करके निम्नलिखित नामोंको 'प्रीयताम्'से संयुक्त करके, कहे—गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, वैष्णवी, लक्ष्मी, प्रकृति, शिवा और नारायणी । इस प्रकार व्रत करनेवाला सौभाग्य और स्वर्गको प्राप्त करता है ॥ २७-२८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तृतीयाके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७८ ॥

एक सौ उनासीवाँ अध्याय

चतुर्थी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं आपके सम्मुख भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले चतुर्थी-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ । माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको उपवास करके गणेशका पूजन करे । तदनन्तर पञ्चमीको तिलका भोजन करे । ऐसा करनेसे मनुष्य बहुत वर्षोंतक विघ्नरहित होकर सुखी रहता है । 'गं स्वाहा ।'—यह मूलमन्त्र है । 'गां नमः ।' आदिसे हृदयादिका न्यास करे* ॥ १-२ ॥

'आगच्छोल्काय' कहकर गणेशका आवाहन और 'गच्छोल्काय' कहकर विसर्जन करे । इस प्रकार आदिमें गकारयुक्त और अन्तमें 'उल्का'शब्दयुक्त मन्त्रसे उनके आवाहनादि कार्य करे । गन्धादि उपचारों एवं लड्डुओं आदि द्वारा गणपतिका पूजन करे ॥ ३ ॥ (तदनन्तर निम्नलिखित गणेश-गायत्रीका जप करे—)

ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको व्रत करनेवाला शिवलोकको प्राप्त करता है । 'अङ्गारक-चतुर्थी' (मङ्गलवारसे

* निम्नलिखित विधिसे हृदयादि षडङ्गोंका न्यास करे—

'गां हृदयाय नमः । गीं शिरसे स्वाहा । गूं शिखायै वषट् । गैं नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ गौं कवचाय हुम् । गः अस्त्राय फट् ।'

शुक्ल चतुर्थी) को गणेशका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनकी चतुर्थीको रात्रिमें ही भोजन करे। यह 'अविघ्ना चतुर्थी'के नामसे प्रसिद्ध है। चैत्र मासकी चतुर्थीको 'दमनक' नामक पुष्पोंसे गणेशका पूजन करके मनुष्य सुख-भोग प्राप्त करता है ॥ ४—६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चतुर्थीके व्रतोंका कथन' नामक एक सौ उनासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७९ ॥

एक सौ अस्सीवाँ अध्याय

पञ्चमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं आरोग्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले पञ्चमी-व्रतका वर्णन करता हूँ। श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिकके शुक्लपक्षकी पञ्चमीको वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय नामक नागोंका पूजन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

ये सभी नाग अभय, आयु, विद्या, यश और लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पञ्चमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८० ॥

एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय

षष्ठी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं षष्ठी-सम्बन्धी व्रतोंको कहता हूँ। कार्तिकके कृष्णपक्षकी षष्ठीको फलमात्रका भोजन करके कार्तिकेयके लिये अर्घ्यदान करना चाहिये। इससे मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त करता है। इसे 'स्कन्दषष्ठी-व्रत' कहते हैं। भाद्रपदके कृष्णपक्षकी षष्ठी तिथिमें 'अक्षयषष्ठी व्रत' करना चाहिये। इसे मार्गशीर्षमें भी करना चाहिये। इस अक्षयषष्ठीके दिन किसी भी एक वर्ष निराहार रहनेसे मानव भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ १-२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'षष्ठीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८१ ॥

एक सौ बयासीवाँ अध्याय

सप्तमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं सप्तमी तिथिके व्रत कहूँगा। यह सबको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। माघ मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको (अष्टदल अथवा द्वादशदल) कमलका निर्माण करके उसमें भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। इससे मनुष्य शोकरहित हो जाता है ॥ १ ॥

भाद्रपद मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको भगवान् आदित्यका पूजन करनेसे समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। पौषमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको निराहार रहकर सूर्यदेवका पूजन करनेसे सारे पापोंका विनाश होता है ॥ २ ॥

माघके कृष्णपक्षमें 'सर्वाप्ति-सप्तमी'का व्रत करना चाहिये। इससे सभी अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। फाल्गुनके कृष्णपक्षमें 'नन्द-सप्तमी'का व्रत करना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षमें 'अपराजिता सप्तमी'को भगवान् सूर्यका पूजन और व्रत करना चाहिये। एक वर्षतक मार्गशीर्षके शुक्लपक्षका 'पुत्रीया सप्तमी' व्रत स्त्रियोंको पुत्र प्रदान करनेवाला है ॥ ३-४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सप्तमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८२ ॥

एक सौ तिरासीवाँ अध्याय

अष्टमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं अष्टमीको किये जानेवाले व्रतोंका वर्णन करूँगा । उनमें पहला रोहिणीनक्षत्रयुक्त अष्टमीका व्रत है । भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी रोहिणी नक्षत्रसे युक्त अष्टमी तिथिको ही अर्धरात्रिके समय भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ था, इसलिये इसी अष्टमीको उनकी जयन्ती मनायी जाती है । इस तिथिको उपवास करनेसे मनुष्य सात जन्मोंके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १-२ ॥

अतएव भाद्रपदके कृष्णपक्षकी रोहिणीनक्षत्रयुक्त अष्टमीको उपवास रखकर भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना चाहिये । यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥ ३ ॥

(पूजनकी विधि इस प्रकार है—)

आवाहन-मन्त्र और नमस्कार—

आवाहयाम्यहं कृष्णं बलभद्रं च देवकीम् ।
वसुदेवं यशोदां गाः पूजयामि नमोऽस्तु ते ॥
योगाय योगपतये योगेशाय नमो नमः ।
योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ॥

'मैं श्रीकृष्ण, बलभद्र, देवकी, वसुदेव, यशोदादेवी और गौओंका आवाहन एवं पूजन करता हूँ; आप सबको नमस्कार है । योगस्वरूप, योगपति एवं योगेश्वर श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है । योगके आदिकारण, उत्पत्तिस्थान श्रीगोविन्दके लिये बारंबार नमस्कार है' ॥ ४-५ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णको स्नान कराये और इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्यदान करे—

यज्ञेश्वराय यज्ञाय यज्ञानां पतये नमः ॥
यज्ञादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ।

'यज्ञेश्वर, यज्ञस्वरूप, यज्ञोंके अधिपति एवं यज्ञके आदि कारण श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है ।'

पुष्प-धूप

गृहाण देव पुष्पाणि सुगन्धीनि प्रियाणि मे ॥
सर्वकामप्रदो देव भव मे देववन्दित ।
धूपधूपित धूपं त्वं धूपितैस्त्वं गृहाण मे ॥
सुगन्धिधूपगन्धाढ्यं कुरु मां सर्वदा हरे ।

'देव ! आपके प्रिय ये सुगन्धयुक्त पुष्प ग्रहण कीजिये । देवताओंद्वारा पूजित भगवन् ! मेरी सारी कामनाएँ सिद्ध कीजिये । आप धूपसे सदा धूपित हैं, मेरेद्वारा अर्पित धूप-दानसे आप धूपकी सुगन्ध ग्रहण कीजिये । श्रीहरे ! मुझे सदा सुगन्धित पुष्पों, धूप एवं गन्धसे सम्पन्न कीजिये ।'

दीप-दान

दीपदीप्त महादीपं दीपदीप्तिद सर्वदा ॥
मया दत्तं गृहाण त्वं कुरु चोर्ध्वगतिं च माम् ।
विश्वाय विश्वपतये विश्वेशाय नमो नमः ॥
विश्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय निवेदितम् ।

'प्रभो ! आप सर्वदा दीपके समान देदीप्यमान एवं दीपको दीप्ति प्रदान करनेवाले हैं । मेरे द्वारा दिया गया यह महादीप ग्रहण कीजिये और मुझे भी (दीपके समान) ऊर्ध्वगतिसे युक्त कीजिये । विश्वरूप, विश्वपति, विश्वेश्वर श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है, नमस्कार है । विश्वके आदि-कारण श्रीगोविन्दको मैं यह दीप निवेदन करता हूँ ।'

शयन-मन्त्र

धर्माय धर्मपतये धर्मेशाय नमो नमः ॥
धर्मादिसम्भवायैव गोविन्द शयनं कुरु ।
सर्वाय सर्वपतये सर्वेशाय नमो नमः ॥
सर्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ।

'धर्मस्वरूप, धर्मके अधिपति, धर्मेश्वर एवं धर्मके आदिस्थान श्रीवासुदेवको नमस्कार है । गोविन्द ! अब आप शयन कीजिये । सर्वरूप, सबके अधिपति, सर्वेश्वर, सबके आदिकारण श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है ।'

(तदनन्तर रोहिणीसहित चन्द्रमाको निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर अर्घ्यदान दे—)

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ॥
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम ।

'क्षीरसमुद्रसे प्रकट एवं अत्रिके नेत्रसे उद्भूत तेजःस्वरूप शशाङ्क ! रोहिणीके साथ मेरा अर्घ्य स्वीकार कीजिये ।'

फिर भगवद्विग्रहको वेदिकापर स्थापित करे और चन्द्रमा-

सहित रोहिणीका पूजन करे। तदनन्तर अर्धरात्रिके समय वसुदेव, देवकी, नन्द-यशोदा और बलरामका गुड़ और घृतमिश्रित दुग्ध-धारासे अभिषेक करे ॥ ६—१५ ॥

तत्पश्चात् व्रत करनेवाला मनुष्य ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणामें उन्हें वस्त्र और सुवर्ण आदि दे। जन्माष्टमीका व्रत करनेवाला पुत्रयुक्त होकर विष्णुलोकका भागी होता है। जो मनुष्य पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे प्रतिवर्ष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह 'पुम्' नामक नरकके भयसे मुक्त हो जाता है। (सकाम व्रत करनेवाला भगवान् गोविन्दसे प्रार्थना करे—) 'प्रभो! मुझे पुत्र, धन, आयु, आरोग्य और संतति दीजिये। गोविन्द! मुझे धर्म, काम, सौभाग्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कीजिये' ॥ १६—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अष्टमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८३ ॥

एक सौ चौरासीवाँ अध्याय

अष्टमी-सम्बन्धी विविध व्रत

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको व्रत करे और उस दिन ब्रह्मा आदि देवताओं तथा मातृगणोंका जप-पूजन करे। कृष्णपक्षकी अष्टमीको एक वर्ष श्रीकृष्णकी पूजा करके मनुष्य संतानरूप अर्थकी प्राप्ति कर लेता है ॥ १ ॥

अब मैं 'कालाष्टमी'का वर्णन करता हूँ। यह व्रत मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको करना चाहिये। रात्रि होनेपर व्रत करनेवाला स्नानादिसे पवित्र हो, भगवान् 'शंकर'का पूजन करके गोमूत्रसे व्रतका पारण करे। रात्रिको भूमिपर शयन करे। पौष मासमें 'शम्भु'का पूजन करके घृतका आहार तथा माघमें 'महेश्वर'की अर्चना करके दुग्धका पान करे। फाल्गुनमें 'महादेव'की पूजा करके अच्छी प्रकार उपवास करनेके बाद तिलका भोजन करे। चैत्रमें 'स्थाणु'का पूजन करके जौका भोजन करे। वैशाखमें 'शिव'की पूजा करे और कुशजलसे पारण करे। ज्येष्ठमें 'पशुपति'का पूजन करके शृङ्गजल (झरनेके जल) का पान करे। आषाढ़में 'उग्र'की अर्चना करके गोमयका भक्षण और श्रावणमें 'शर्व'का पूजन करके मन्दारके पुष्पका भक्षण करे। भाद्रपदमें रात्रिके समय 'त्र्यम्बक'का पूजन करके बिल्वपत्रका भक्षण करे। आश्विनमें 'ईश'की अर्चना करके चावल और कार्तिकमें 'रुद्र'का पूजन करके दधिका भोजन करे। वर्षकी समाप्ति होनेपर होम करे और सर्वतो (लिङ्गतो)-भद्रका निर्माण करके उसमें भगवान् शंकरका पूजन करे। तदनन्तर आचार्यको गौ, वस्त्र और सुवर्णका दान करे। अन्य ब्राह्मणोंको भी उन्हीं वस्तुओंका दान करे। ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके भोजन कराकर मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ २—७½ ॥

प्रत्येक मासके दोनों पक्षोंकी अष्टमी तिथियोंको रात्रिमें भोजन करे और वर्षके पूर्ण होनेपर गोदान करे। इससे मनुष्य इन्द्रपदको प्राप्त कर लेता है। यह 'स्वर्गति-व्रत' कहा जाता है। कृष्ण अथवा शुक्ल - किसी भी पक्षमें अष्टमीको बुधवारका योग हो, उस दिन व्रत रक्खे और एक समय भोजन करे। जो मनुष्य अष्टमीका व्रत करते हैं, उनके घरमें कभी सम्पत्तिका अभाव नहीं होता। दो अँगुलियाँ छोड़कर आठ मुट्ठी चावल ले और उसका भात बनाकर कुशयुक्त आम्रपत्रके दोनेमें रक्खे। कुलाम्बिकासहित बुधका पूजन करना चाहिये और 'बुधाष्टमी-व्रत'की कथा सुनकर भोजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणको ककड़ी और चावलसहित यथाशक्ति दक्षिणा दे ॥ ८—१२ ॥

('बुधाष्टमी व्रत'की कथा निम्नलिखित है—) धीर नामक एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नीका नाम था रम्भा और पुत्रका नाम कौशिक था। उसके एक पुत्री भी थी, जिसका नाम विजया था। उस ब्राह्मणके धनद नामका एक बैल था। कौशिक उस बैलको ग्वालोंके साथ चरानेको ले गया। कौशिक गङ्गामें स्नानादि कर्म करने लगा, उस समय चोर बैलको चुरा ले गये। कौशिक जब नदीसे नहाकर निकला, तब बैलको वहाँ न पाकर अपनी बहिन विजयाके साथ उसकी खोजमें चल पड़ा। उसने एक सरोवरमें देवलोकको स्त्रियोंका समूह देखा और उनसे भोजन माँगा। इसपर उन स्त्रियोंने कहा—'आप आज हमारे अतिथि हुए हैं, इसलिये व्रत करके भोजन कीजिये।' तदनन्तर कौशिकने 'बुधाष्टमी'का व्रत करके भोजन किया। उधर

धीर वनरक्षकके पास पहुँचा और अपना बैल लेकर विजयाके साथ लौट आया। धीर ब्राह्मणने यथासमय विजयाका विवाह कर दिया और स्वयं मृत्युके पश्चात् यमलोकको प्राप्त हुआ। परंतु कौशिक व्रतके प्रभावसे अयोध्याका राजा हुआ। विजया अपने माता-पिताको नरककी यातना भोगते देख यमराजके शरणापन्न हुई। कौशिक जब मृगयाके उद्देश्यसे वनमें आया, तब उसने पूछा—'मेरे माता-पिता नरकसे मुक्त कैसे हो सकते हैं?' उस समय यमराजने वहाँ प्रकट होकर कहा—'बुधाष्टमीके दो व्रतोंके फलसे।' तब कौशिकने अपने माता-पिताके उद्देश्यसे दो बुधाष्टमी-व्रतोंका फल दिया। इससे उसके माता-पिता स्वर्गमें चले गये। तदनन्तर विजयाने भी हर्षित होकर भोग-मोक्षादिकी सिद्धिके लिये इस व्रतका अनुष्ठान किया॥ १३—२०½॥

वसिष्ठ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको जब पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, उस समय जो मनुष्य अशोक-पुष्पकी आठ कलिकाओंका रस-पान करते हैं, वे कभी शोकको प्राप्त नहीं होते। (कलिकाओंका रसपान निम्नलिखित मन्त्रसे करना चाहिये—)

त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव।
पिबामि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुरु॥

'चैत्र मासमें विकसित होनेवाले अशोक! तुम भगवान् शंकरके प्रिय हो। मैं शोकसे संतप्त होकर तुम्हारी कलिकाओंका पान करता हूँ। अपनी ही तरह मुझे भी सदाके लिये शोकरहित कर दो।' चैत्रादि मासोंकी अष्टमीको मातृगणकी पूजा करनेवाला मनुष्य शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है॥ २१—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अष्टमीके विविध व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८४॥

एक सौ पचासीवाँ अध्याय

नवमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष आदिकी सिद्धि प्रदान करनेवाले नवमी-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। आश्विनके शुक्लपक्षमें 'गौरी-नवमी'का व्रत करके देवीका पूजन करना चाहिये। इस नवमीको 'पिष्टका-नवमी' होती है। उसका व्रत करनेवाले मनुष्यको देवीका पूजन करके पिष्टान्नका भोजन करना चाहिये। आश्विनके शुक्लपक्षकी जिस नवमीको अष्टमी और मूलनक्षत्रका योग हो एवं सूर्य कन्या-राशिपर स्थित हों, उसे 'महानवमी' कहा गया है। वह सदा पापोंका विनाश करनेवाली है। इस दिन नवदुर्गाओंको नौ स्थानोंमें अथवा एक स्थानमें स्थित करके उनका पूजन करना चाहिये। मध्यमें अष्टादशभुजा महालक्ष्मी एवं दोनों पार्श्व भागोंमें शेष दुर्गाओंका पूजन करना चाहिये। अञ्जन और डमरूके साथ निम्नलिखित क्रमसे नवदुर्गाओंकी स्थापना करनी चाहिये—रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा और अतिचण्डिका। इन सबके मध्यभागमें अष्टादशभुजा उग्रचण्डा महिषमर्दिनी दुर्गाका पूजन करना चाहिये। 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा।'—यह दशाक्षर-मन्त्र है—॥ १—६॥

जो मनुष्य इस विधिसे पूर्वोक्त दशाक्षर-मन्त्रका जप करता है, वह किसीसे भी बाधा नहीं प्राप्त करता। भगवती दुर्गा अपने वाम करोंमें कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी-मुद्रा, धनुष, ध्वजा, डमरू और पाश एवं दक्षिण करोंमें शक्ति, मुद्गर, त्रिशूल, वज्र, खड्ग, भाला, अङ्कुश, चक्र तथा शलाका लिये हुए हैं। उनके इन आयुधोंकी भी अर्चना करे॥ ७—१०॥

फिर 'कालि कालि' आदि मन्त्रका जप करके खड्गसे पशुका वध करे। (पशुबलिका मन्त्र इस प्रकार है—) 'कालि कालि वज्रेश्वरि लोहदण्डायै नमः।' बलि-पशुका रुधिर और मांस, 'पूतनायै नमः।' कहकर नैर्ऋत्यकोणमें, 'पापराक्षस्यै नमः।' कहकर वायव्यकोणमें, 'चरक्यै नमः।' कहकर ईशानकोणमें एवं 'विदारिकायै नमः।' कहकर अग्निकोणमें उनके उद्देश्यसे समर्पित करे। राजा उसके सम्मुख स्नान करे और स्कन्द एवं विशाखके निमित्त पिष्टनिर्मित शत्रुकी बलि दे। रात्रिमें ब्राह्मी आदि शक्तियोंका पूजन करे—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥

'जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा,

शिवा, क्षमा, धात्री, स्वाहा और स्वधा—इन नामोंसे प्रसिद्ध जगदम्बिके ! तुम्हें मेरा नमस्कार हो ।' आदि मन्त्रोंसे देवीकी स्तुति करे और देवीको पञ्चामृतसे स्नान कराके उनकी विविध उपचारोंसे पूजा करे । देवीके उद्देश्यसे किया हुआ ध्वजदान, रथयात्रा एवं बलिदान-कर्म अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति करानेवाला है ॥ ११-१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८५ ॥

एक सौ छियासीवाँ अध्याय

दशमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं दशमी-सम्बन्धी व्रतके विषयमें कहता हूँ, जो धर्म-कामादिकी सिद्धि करनेवाला है । दशमीको एक समय भोजन करे और व्रतके समाप्त होनेपर दस गौओं और स्वर्णमयी प्रतिमाओंका दान करे । ऐसा करनेसे मनुष्य ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका अधिपति होता है ॥ १ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दशमीके व्रतका वर्णन' नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८६ ॥

एक सौ सतासीवाँ अध्याय

एकादशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले एकादशी-व्रतका वर्णन करूँगा । व्रत करनेवाला दशमीको मांस और मैथुनका परित्याग कर दे एवं भजन भी नियमित करे । दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन न करे ॥ १½ ॥

द्वादशी-विद्धा एकादशीमें स्वयं श्रीहरि स्थित होते हैं, इसलिये द्वादशी-विद्धा एकादशीके व्रतका त्रयोदशीको पारण करनेसे मनुष्य सौ यज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त करता है । जिस दिनके पूर्वभागमें एकादशी कलामात्र अवशिष्ट हो और शेषभागमें द्वादशी व्याप्त हो, उस दिन एकादशीका व्रत करके त्रयोदशीमें पारण करनेसे सौ यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है । दशमी-विद्धा एकादशीको कभी उपवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह नरककी प्राप्ति करानेवाली है । एकादशीको निराहार रहकर, दूसरे दिन यह कहकर भोजन करे—'पुण्डरीकाक्ष ! मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ । अच्युत ! अब मैं भोजन करूँगा ।' शुक्लपक्षकी एकादशीको जब पुष्यनक्षत्रका योग हो, उस दिन उपवास करना चाहिये । वह अक्षयफल प्रदान करनेवाली है और 'पापनाशिनी' कही जाती है । श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशी-विद्धा एकादशी 'विजया' नामसे प्रसिद्ध है और भक्तोंको विजय देनेवाली है । फाल्गुन मासमें पुष्यनक्षत्रसे युक्त एकादशीको भी सत्पुरुषोंने 'विजया' कहा है । वह गुणोंमें कई करोड़गुना अधिक मानी जाती है । एकादशीको सबका उपकार करनेवाली विष्णुपूजा अवश्य करनी चाहिये । इससे मनुष्य इस लोकमें धन और पुत्रोंसे युक्त हो (मृत्युके पश्चात्) विष्णुलोकमें पूजित होता है ॥ २-९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'एकादशीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८७ ॥

एक सौ अठासीवाँ अध्याय

द्वादशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं भोग एवं मोक्षप्रद द्वादशी-सम्बन्धी व्रत कहता हूँ । द्वादशी तिथिको मनुष्य रात्रिको एक समय भोजन करे और किसीसे कुछ नहीं माँगे । उपवास करके भी भिक्षा-ग्रहण करनेवाले मनुष्यका द्वादशीव्रत सफल नहीं हो सकता । चैत्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको 'मदनद्वादशी'का व्रत करनेवाला भोग और

मोक्षकी इच्छासे कामदेवरूपी श्रीहरिका अर्चन करे। माघके शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'भीमद्वादशी'का व्रत करना चाहिये और 'नमो नारायणाय।' मन्त्रसे श्रीविष्णुका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'गोविन्दद्वादशी'का व्रत होता है। आश्विनमें 'विशोकद्वादशी'का व्रत करनेवालेको श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रीकृष्णका पूजन करके जो मनुष्य लवणका दान करता है, वह सम्पूर्ण रसोंके दानका फल प्राप्त करता है। भाद्रपदमें 'गोवत्सद्वादशी'का व्रत करनेवाला गोवत्सका पूजन करे। माघ मासके व्यतीत हो जानेपर फाल्गुनके कृष्णपक्षकी द्वादशी, जो श्रवणनक्षत्रसे संयुक्त हो, उसे 'तिलद्वादशी' कहा गया है। इस दिन तिलोंसे ही स्नान और होम करना चाहिये तथा तिलके लड्डुओंका भोग लगाना चाहिये। मन्दिरमें तिलके तेलसे युक्त दीपक समर्पित करना चाहिये तथा पितरोंको तिलाञ्जलि देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको तिलदान करे। होम और उपवाससे ही 'तिलद्वादशी'का फल प्राप्त होता है। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।' मन्त्रसे श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये। उपर्युक्त विधिसे छः बार 'तिलद्वादशी'-का व्रत करनेवाला कुलसहित स्वर्गको प्राप्त करता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'मनोरथद्वादशी'का व्रत करनेवाला श्रीहरिका पूजन करे। इसी दिन 'नामद्वादशी'का व्रत करनेवाला 'केशव' आदि नामोंसे श्रीहरिका एक वर्षतक पूजन करे। वह मनुष्य मृत्युके पश्चात् स्वर्गमें ही जाता है। वह कभी नरकगामी नहीं हो सकता। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'सुमतिद्वादशी'का व्रत करके विष्णुका पूजन करे। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें 'अनन्तद्वादशी'का व्रत करे। माघके शुक्लपक्षमें आश्लेषा अथवा मूलनक्षत्रसे युक्त 'तिलद्वादशी' करनेवाला मनुष्य 'कृष्णाय नमः।' मन्त्रसे श्रीकृष्णका पूजन करे और तिलोंका होम करे। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'सुगतिद्वादशी'का व्रत करनेवाला 'जय कृष्ण नमस्तुभ्यम्' मन्त्रसे एक वर्षतक श्रीकृष्णकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त कर लेता है। पौषके शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'सम्प्राप्ति-द्वादशी'का व्रत करे॥ १—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वादशीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८८॥

एक सौ नवासीवाँ अध्याय

श्रवण-द्वादशी-व्रतका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें किये जानेवाले 'श्रवणद्वादशी' व्रतके विषयमें कहता हूँ। यह श्रवण नक्षत्रसे संयुक्त होनेपर श्रेष्ठ मानी जाती है एवं उपवास करनेपर महान् फल प्रदान करनेवाली है। श्रवण-द्वादशीके दिन नदियोंके संगमपर स्नान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है तथा बुधवार और श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशी दान आदि कर्मोंमें महान् फलदायिनी होती है॥ १-२॥

त्रयोदशीके निषिद्ध होनेपर भी इस व्रतका पारण त्रयोदशीको करना चाहिये—

संकल्प-मन्त्र

द्वादश्यां च निराहारो वामनं पूजयाम्यहम्॥
उदकुम्भे स्वर्णमयं त्रयोदश्यां तु पारणम्।

'मैं द्वादशीको निराहार रहकर जलपूर्ण कलशपर स्थित स्वर्णनिर्मित वामन-मूर्तिका पूजन करता हूँ एवं मैं व्रतका पारण त्रयोदशीको करूँगा।'

आवाहन-मन्त्र

आवाहयाम्यहं विष्णुं वामनं शङ्खचक्रिणम्॥
सितवस्त्रयुगच्छन्ने घटे सच्छत्रपादुके।

'मैं दो श्वेतवस्त्रोंसे आच्छादित एवं छत्र-पादुकाओंसे युक्त कलशपर शङ्ख-चक्रधारी वामनावतार विष्णुका आवाहन करता हूँ।'

स्नानार्पण-मन्त्र

स्नापयामि जलैः शुद्धैर्विष्णुं पञ्चामृतादिभिः॥
छत्रदण्डधरं विष्णुं वामनाय नमो नमः।

'मैं छत्र एवं दण्डसे विभूषित सर्वव्यापी श्रीविष्णुको पञ्चामृत आदि एवं विशुद्ध जलका स्नान समर्पित करता हूँ। भगवान् वामनको नमस्कार है।'

अर्घ्यदान-मन्त्र

अर्घ्यं ददामि देवेश अर्घ्याद्यैः सदार्चितः॥
भुक्तिमुक्तिप्रजाकीर्तिसर्वैश्वर्ययुतं कुरु।

देवेश्वर ! आप अर्घ्यके अधिकारी पुरुषों तथा दूसरे लोगोंद्वारा भी सदैव पूजित हैं। मैं आपको अर्घ्यदान करता हूँ। मुझे भोग, मोक्ष, संतान, यश और सभी प्रकारके ऐश्वर्योंसे युक्त कीजिये।'

फिर 'वामनाय नमः' इस मन्त्रसे गन्धद्रव्य समर्पित करे और इसी मन्त्रद्वारा श्रीहरिके उद्देश्यसे एक सौ आठ आहुतियाँ दे ॥ ३–७ ॥

'ॐ नमो वासुदेवाय।' मन्त्रसे श्रीहरिके शिरोभागकी अर्चना करे। 'श्रीधराय नमः।' से मुखका, 'कृष्णाय नमः।' से कण्ठदेशका, 'श्रीपतये नमः।' कहकर वक्षःस्थलका, 'सर्वास्त्रधारिणे नमः।' कहकर दोनों भुजाओंका, 'व्यापकाय नमः।' से नाभि और 'वामनाय नमः।' बोलकर कटिप्रदेशका पूजन करे। 'त्रैलोक्यजननाय नमः।' मन्त्रसे भगवान् वामनके उपस्थकी, 'सर्वाधिपतये नमः।' से दोनों जङ्घाओं-की एवं 'सर्वात्मने नमः।' कहकर श्रीविष्णुके चरणोंकी पूजा करे ॥ ८–१० ॥

तदनन्तर वामन भगवान्‌को घृतसिद्ध नैवेद्य और दही-भातसे परिपूर्ण कुम्भ समर्पित करे। रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल संगममें स्नान करे। फिर गन्ध-पुष्पादिसे भगवान्‌का पूजन करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञित ॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।
प्रीयतां देवदेवेश मम नित्यं जनार्दन ॥

'बुध एवं श्रवणसंज्ञक गोविन्द ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरे पापसमूहका विनाश करके समस्त सौख्य प्रदान कीजिये। देवदेवेश्वर जनार्दन ! आप मेरी इस पुष्पाञ्जलिसे नित्य प्रसन्न हों' ॥ ११–१३ ॥

(तत्पश्चात् सम्पूर्ण पूजन-द्रव्य इस मन्त्रसे किसी विद्वान् ब्राह्मणको दे—)

वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम्।
वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो मे ददाति च ॥
द्रव्यस्थो वामनो नित्यं वामनाय नमो नमः।

'भगवान् वामनने मुझे दानकी बुद्धि प्रदान की है। वे ही दाता हैं। देय-द्रव्यमें भी स्वयं वामन स्थित हैं। वामन भगवान् ही इसे ग्रहण कर रहे हैं और वामन ही मुझे प्रदान करते हैं। भगवान् वामन नित्य सभी द्रव्योंमें स्थित हैं। उन श्रीवामनावतार विष्णुको नमस्कार है, नमस्कार है।'

इस प्रकार ब्राह्मणको दक्षिणासहित पूजन-द्रव्य देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करे ॥ १४-१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्रवणद्वादशी-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८९ ॥

एक सौ नब्बेवाँ अध्याय

अखण्डद्वादशी-व्रतका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं 'अखण्डद्वादशी' व्रतके विषयमें कहता हूँ, जो समस्त व्रतोंकी सम्पूर्णताका सम्पादन करनेवाली है। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी द्वादशीको उपवास करके भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। व्रत करनेवाला मनुष्य पञ्चगव्य-मिश्रित जलसे स्नान करे और उसीका पारण करे। इस द्वादशीको ब्राह्मणको जौ और धानसे भरा हुआ पात्र दान दे। भगवान् श्रीविष्णुके सम्मुख इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन् ! सात जन्मोंमें मेरे द्वारा जो व्रत खण्डित हुआ हो, आपकी कृपासे वह मेरे लिये अखण्ड फलदायक हो जाय। पुरुषोत्तम ! जैसे आप इस अखण्ड चराचर विश्वके रूपमें स्थित हैं, उसी प्रकार मेरे किये हुए समस्त व्रत अखण्ड हो जायँ।' इस प्रकार (मार्गशीर्षसे आरम्भ करके फाल्गुनतक) प्रत्येक मासमें करना चाहिये। इस व्रतको चार महीनेतक करनेका विधान है। चैत्रसे आषाढ़पर्यन्त यह व्रत करनेवाला सत्तूसे भरा हुआ पात्र दान करे। श्रावणसे प्रारम्भ करके इस व्रतको कार्तिकमें समाप्त करना चाहिये। उपर्युक्त विधिसे 'अखण्डद्वादशी' का व्रत करनेपर सात जन्मोंके खण्डित व्रतोंको यह सफल बना देता है। इसके करनेसे मनुष्य दीर्घ आयु, आरोग्य, सौभाग्य, राज्य और विविध भोग आदि प्राप्त करता है ॥ १–६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अखण्डद्वादशी-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९० ॥

एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय

त्रयोदशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं त्रयोदशी तिथिके व्रत कहता हूँ, जो सब कुछ देनेवाले हैं। पहले मैं 'अनङ्ग-त्रयोदशी' के विषयमें बतलाता हूँ। पूर्वकालमें अनङ्ग (कामदेव) ने इसका व्रत किया था। मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशीको कामदेवस्वरूप 'हर' की पूजा करे। रात्रिमें मधुका भोजन करे तथा तिल और अक्षत-मिश्रित घृतका होम करे। पौषमें 'योगेश्वर' का पूजन एवं होम करके चन्दनका प्राशन करे। माघमें 'महेश्वर'की अर्चना करके मौक्तिक (राजा नामक पौधेके) जलका आहार करे। इससे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। व्रत करनेवाला फाल्गुनमें 'वीरभद्र' का पूजन करके कङ्कोलका प्राशन करे। चैत्रमें 'सुरूप' नामक शिवकी अर्चना करके कर्पूरका आहार करनेवाला मनुष्य सौभाग्ययुक्त होता है। वैशाखमें 'महारूप' की पूजा करके जायफलका भोजन करे। व्रत करनेवाला मनुष्य ज्येष्ठ मासमें 'प्रद्युम्न' का पूजन करे और लौंग चबाकर रहे। आषाढ़में 'उमापति' की अर्चना करके तिलमिश्रित जलका पान करे। श्रावणमें 'शूलपाणि' का पूजन करके सुगन्धित जलका पान करे। भाद्रपदमें अगुरुका प्राशन करे और 'सद्योजात' का पूजन करे। आश्विनमें 'त्रिदशाधिप शंकर' के पूजनपूर्वक स्वर्णजलका पान करे। व्रती पुरुष कार्तिकमें 'विश्वेश्वर' की अर्चनाके अनन्तर लवणका भक्षण करे। इस प्रकार वर्षके समाप्त होनेपर स्वर्णनिर्मित शिवलिङ्गको आमके पत्तों और वस्त्रसे ढककर ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक दान दे। साथ ही गौ, शय्या, छत्र, कलश, पादुका तथा रसपूर्ण पात्र भी दे॥ १-९॥

चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको सिन्दूर और काजलसे अशोकवृक्षको अङ्कित करके उसके नीचे रति और प्रीति (कामकी पत्नियों) से युक्त कामदेवका स्मरण करे। इस प्रकार कामनायुक्त साधक एक वर्षतक कामदेवका पूजन करे। यह 'कामत्रयोदशी व्रत' कहलाता है॥ १०-११॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्रयोदशीके व्रतका वर्णन' नामक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९१॥

एक सौ बानबेवाँ अध्याय

चतुर्दशी-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं चतुर्दशी तिथिको किये जानेवाले व्रतका वर्णन करूँगा। वह व्रत भोग और मोक्ष देनेवाला है। कार्तिककी चतुर्दशीको निराहार रहकर भगवान् शिवका पूजन करे और वहींसे आरम्भ करके प्रत्येक मासकी शिव-चतुर्दशीको व्रत और शिवपूजनका क्रम चलाते हुए एक वर्षतक इस नियमको निभावे। ऐसा करनेवाला पुरुष भोग, धन और दीर्घायुसे सम्पन्न होता है॥ १½॥

मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें अष्टमी, तृतीया, द्वादशी अथवा चतुर्दशीको मौन धारण करके फलाहारपर रहे और देवताका पूजन करे तथा कुछ फलोंका सदाके लिये त्याग करके उन्हींका दान करे। इस प्रकार 'फलचतुर्दशी' का व्रत करनेवाला पुरुष शुक्ल और कृष्ण—दोनों पक्षोंकी चतुर्दशी एवं अष्टमीको उपवासपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इस विधिसे दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीका व्रत करनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है। कृष्णपक्षकी अष्टमी तथा चतुर्दशीको नक्तव्रत (केवल रातमें भोजन) करनेसे साधक इहलोकमें अभीष्ट भोग तथा परलोकमें शुभ गति पाता है। कार्तिककी कृष्णा चतुर्दशीको स्नान करके ध्वजके आकारवाले बाँसके डंडोंपर देवराज इन्द्रकी आराधना करनेसे मनुष्य सुखी होता है॥ २—६॥

तदनन्तर प्रत्येक मासकी शुक्ल चतुर्दशीको श्रीहरिके कुशमय विग्रहका निर्माण करके उसे जलसे भरे पात्रके ऊपर पधरावे और उसका पूजन करे। उस दिन अगहनी धानके एक सेर चावलके आटेका पूआ बनवा ले। उसमेंसे आधा ब्राह्मणको दे दे और आधा अपने उपयोगमें लावे॥ ७-८॥

नदियोंके तटपर इस व्रत और पूजनका आयोजन करके वहीं श्रीहरिके 'अनन्तव्रत'की कथाका भी श्रवण या कीर्तन करना चाहिये। उस समय चतुर्दश ग्रन्थियोंसे युक्त अनन्त-सूत्रका निर्माण करके अनन्तकी भावनासे ही उसका पूजन

करे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसे अपने हाथ या कण्ठमें बाँध ले। मन्त्र इस प्रकार है—

> अनन्तसंसारमहासमुद्रे
> मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ॥
> अनन्तरूपे विनियोजयस्व
> ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते ।

'हे वासुदेव ! संसाररूपी अपार पारावारमें डूबे हुए हम-जैसे प्राणियोंका आप उद्धार करें। आपके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है। आप हमें अपने उसी 'अनन्त' स्वरूपमें मिला लें। आप अनन्तरूप परमेश्वरको बारंबार नमस्कार है।'' इस प्रकार अनन्तव्रतका अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य परमानन्दका भागी होता है ॥ ९-१० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अनेक प्रकारके चतुर्दशी-व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१९२॥

एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय

शिवरात्रि-व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले 'शिवरात्रि-व्रत' का वर्णन करता हूँ; एकाग्रचित्तसे उसका श्रवण करो। फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको मनुष्य कामनासहित उपवास करे। व्रत करनेवाला रात्रिको जागरण करे और यह कहे—"मैं चतुर्दशीको भोजनका परित्याग करके शिवरात्रिका व्रत करता हूँ। मैं व्रतयुक्त होकर रात्रि-जागरणके द्वारा शिवका पूजन करता हूँ। मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले शंकरका आवाहन करता हूँ। शिव ! आप नरक-समुद्रसे पार करानेवाली नौकाके समान हैं; आपको नमस्कार है। आप प्रजा और राज्यादि प्रदान करनेवाले, मङ्गलमय एवं शान्तस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप सौभाग्य, आरोग्य, विद्या, धन और स्वर्ग-मार्गकी प्राप्ति करानेवाले हैं। मुझे धर्म दीजिये, धन दीजिये और कामभोगादि प्रदान कीजिये। मुझे गुण, कीर्ति और सुखसे सम्पन्न कीजिये तथा स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कीजिये।' इस शिवरात्रि-व्रतके प्रभावसे पापात्मा सुन्दरसेन व्याधने भी पुण्य प्राप्त किया ॥ १—६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिवरात्रि-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९३ ॥

एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय

अशोकपूर्णिमा आदि व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं 'अशोकपूर्णिमा'के विषयमें कहता हूँ। फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको भगवान् वराह और भूदेवीका पूजन करे। एक वर्ष ऐसा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। कार्तिककी पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करके रात्रिव्रतका अनुष्ठान करे। इससे मनुष्य शिवलोकको प्राप्त होता है। यह उत्तम व्रत 'वृषोत्सर्गव्रत'के नामसे प्रसिद्ध है। आश्विनके पितृपक्षकी अमावास्याको पितरोंके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय होता है। मनुष्य किसी वर्ष इस अमावास्याको उपवासपूर्वक पितरोंका पूजन करके पापरहित होकर स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। माघ मासकी अमावास्याको (सावित्रीसहित) ब्रह्माका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। अब मैं 'वटसावित्री'-सम्बन्धी अमावास्याके विषयमें कहता हूँ, जो पुण्यमयी एवं भोग और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली है। व्रत करनेवाली नारी (त्रयोदशीसे अमावास्यातक) 'त्रिरात्रव्रत' करे और ज्येष्ठकी अमावास्याको वटवृक्षके मूलभागमें महासती सावित्रीका सप्तधान्यसे पूजन करे। जब रात्रि कुछ शेष हो, उसी समय वटके कण्ठसूत्र लपेटकर कुङ्कुमादिसे उसका पूजन करे। प्रभातकालमें वटके समीप नृत्य करे और गीत गाये। 'नमः सावित्र्यै सत्यवते ।' (सत्यवान्-सावित्रीको नमस्कार है)—ऐसा कहकर सत्यवान्-सावित्रीको नमस्कार करे और उनको समर्पित किया हुआ नैवेद्य ब्राह्मणको दे। फिर अपने घर आकर ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भी भोजन करे। 'सावित्रीदेवी प्रीयताम् ।' (सावित्रीदेवी प्रसन्न हों)—ऐसा कहकर व्रतका विसर्जन करे। इससे नारी सौभाग्य आदिको प्राप्त करती है ॥ १—८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तिथि-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९४ ॥

एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय

वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ । जब रविवारको हस्त अथवा पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, तब पवित्र सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये । इस प्रकार रविवारको श्राद्ध करनेवाला सात जन्मोंमें रोगसे पीड़ित नहीं होता । संक्रान्तिके दिन यदि रविवार हो, तो उसे पवित्र 'आदित्य-हृदय' माना गया है । उस दिन अथवा हस्तनक्षत्रयुक्त रविवारको एक वर्षतक नक्तव्रत करके मनुष्य सब कुछ पा लेता है । चित्रानक्षत्रयुक्त सोमवारके सात व्रत करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है । स्वातीनक्षत्रसे युक्त मङ्गलवारका व्रत आरम्भ करे । इस प्रकार मङ्गलवारके सात नक्तव्रत करके मनुष्य दुःख-बाधाओंसे छुटकारा पाता है । बुध-सम्बन्धी व्रतमें विशाखा नक्षत्रयुक्त बुधवारको ग्रहण करे । उससे आरम्भ करके बुधवारके सात नक्तव्रत करनेवाला बुधग्रहजनित पीड़ासे मुक्त हो जाता है । अनुराधानक्षत्रयुक्त गुरुवारसे आरम्भ करके सात नक्तव्रत करनेवाला बृहस्पति-ग्रहकी पीड़ासे, ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त शुक्रवारको व्रत ग्रहण करके सात नक्तव्रत करनेवाला शुक्रग्रहकी पीड़ासे और मूलनक्षत्रयुक्त शनिवारसे आरम्भ करके सात नक्तव्रत करनेवाला शनिग्रह-की पीड़ासे निवृत्त हो जाता है ॥ १—५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९५ ॥

एक सौ छियानबेवाँ अध्याय

नक्षत्र-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ । नक्षत्र-विशेषमें पूजन करनेपर श्रीहरि अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति करते हैं । सर्वप्रथम नक्षत्र-पुरुष श्रीहरिका चैत्र मासमें पूजन करे । मूल नक्षत्रमें श्रीहरिके चरण-कमलोंकी और रोहिणी नक्षत्रमें उनकी जङ्घाओंकी अर्चना करे । अश्विनी नक्षत्रके प्राप्त होनेपर जानुयुग्मका, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ामें इनकी दोनों ऊरुओंका, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीमें उपस्थका, कृत्तिका नक्षत्रमें कटिप्रदेशका, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तरा-भाद्रपदामें पार्श्वभागका, रेवती नक्षत्रमें कुक्षिदेशका, अनुराधामें स्तनयुगलका, धनिष्ठामें पृष्ठभागका, विशाखामें दोनों भुजाओंका एवं पुनर्वसु नक्षत्रमें अँगुलियोंका पूजन करे । आश्लेषामें नखोंका पूजन करके ज्येष्ठामें कण्ठका यजन करे । श्रवण नक्षत्रमें सर्वव्यापी श्रीहरिके कर्णद्वयका और पुष्य नक्षत्रमें वदन-मण्डलका पूजन करे । स्वाती नक्षत्रमें उनके दाँतोंके अग्रभागकी, शतभिषा नक्षत्रमें मुखकी अर्चना करे । मघा नक्षत्रमें नासिकाकी, मृगशिरा नक्षत्रमें नेत्रोंकी, चित्रा नक्षत्रमें ललाटकी एवं आर्द्रा नक्षत्रमें केशसमूहकी पूजा करे । वर्षके समाप्त होनेपर गुड़से परिपूर्ण कलशपर श्रीहरिकी स्वर्णमयी मूर्तिकी पूजा करके ब्राह्मणको दक्षिणा-सहित शय्या, गौ और धनादिका दान दे ॥ १—७ ॥

सबके पूजनीय नक्षत्रपुरुष श्रीविष्णु शिवसे अभिन्न हैं, इसलिये शाम्भवायनीय (शिव-सम्बन्धी) व्रत करनेवालेको कृत्तिका-नक्षत्र-सम्बन्धी कार्तिक मासमें और मृगशिरा-नक्षत्र-सम्बन्धी मार्गशीर्ष मासमें केशव आदि नामों एवं 'अच्युताय नमः ।' आदि मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये—

संकल्प-मन्त्र

कार्तिके कृत्तिकाभेऽह्नि मासनक्षत्रगं हरिम् ।
शाम्भवायनीयव्रतकं करिष्ये भुक्तिमुक्तिदम् ॥

'मैं कार्तिक मासकी कृत्तिकानक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा तिथिको मास एवं नक्षत्रमें स्थित श्रीहरिका पूजन करूँगा तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले शाम्भवायनीय व्रतका अनुष्ठान करूँगा ।'

आवाहन-मन्त्र

केशवादिमहामूर्तिमच्युतं सर्वदायकम् ।
आवाहयाम्यहं देवमायुरारोग्यवृद्धिदम् ॥

'जो केशव आदि महामूर्तियोंके रूपमें स्थित हैं और आयु एवं आरोग्यकी वृद्धि करनेवाले हैं, मैं उन सर्वप्रद भगवान् अच्युतका आवाहन करता हूँ।'

व्रतकर्ता कार्तिकसे माघतक चार मासोंमें सदा अन्न-दान करे। फाल्गुनसे ज्येष्ठतक खिचड़ीका और आषाढ़से आश्विन-तक खीरका दान करे। भगवान् श्रीहरि एवं ब्राह्मणोंको रात्रिके समय नैवेद्य समर्पित करे। पञ्चगव्यके जलसे स्नान एवं उसका आचमन करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। मूर्तिके विसर्जनके पूर्व भगवान्‌को समर्पित किये हुए समस्त पदार्थोंको 'नैवेद्य' कहा जाता है, परंतु जगदीश्वर श्रीहरिके विसर्जनके अनन्तर वह तत्काल ही 'निर्माल्य' हो जाता है। (तदनन्तर भगवान्‌से निम्नलिखित प्रार्थना करे—) 'अच्युत! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरे पापोंका विनाश हो और पुण्योंकी वृद्धि हो। मेरे ऐश्वर्य और धनादि सदा अक्षय हों एवं मेरी संतान परम्परा कभी उच्छिन्न न हो। परात्परस्वरूप! अप्रमेय परमेश्वर! जिस प्रकार आप परसे भी परे एवं ब्रह्मभावमें स्थित होकर अपनी मर्यादासे कभी च्युत नहीं होते हैं, उसी प्रकार आप मेरे मनोवाञ्छित कार्यको सिद्ध कीजिये। पापापहारी भगवन्! मेरेद्वारा किये गये पापोंका अपहरण कीजिये। अच्युत! अनन्त! गोविन्द! अप्रमेयस्वरूप पुरुषोत्तम! मुझपर प्रसन्न होइये और मेरे मनोभिलषित पदार्थको अक्षय कीजिये।' इस प्रकार सात वर्षोंतक श्रीहरिका पूजन करके मनुष्य भोग और मोक्षको सिद्ध कर लेता है॥ ८–१७½॥

अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी व्रतोंके प्रकरणमें अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति करानेवाले 'अनन्तव्रत'का वर्णन करूँगा। मार्गशीर्ष मासमें जब मृगशिरा नक्षत्र प्राप्त हो, तब गोमूत्रका प्राशन करके श्रीहरिका यजन करे। वे भगवान् अनन्त समस्त कामनाओंका अनन्त फल प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं, वे पुनर्जन्ममें भी व्रतकर्ताको अनन्त पुण्यफलसे संयुक्त करते हैं। यह महाव्रत अनन्त पुण्यका संचय करनेवाला है। यह अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति कराके उसे अक्षय बनाता है। भगवान् अनन्तके चरणकमल आदिका पूजन करके रात्रिके समय तैलरहित भोजन करे। भगवान् अनन्तके उद्देश्यसे मार्गशीर्षसे फाल्गुनतक घृतका, चैत्रसे आषाढ़तक अगहनीके चावलका और श्रावणसे कार्तिकतक दुग्धका हवन करे। इस 'अनन्त' व्रतके प्रभावसे ही युवनाश्वको मान्धाता पुत्ररूपमें प्राप्त हुए थे॥ १८–२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नक्षत्र-व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ छियानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९६॥

एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय

दिन-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं दिवस-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। सबसे पहले 'धेनुव्रत'के विषयमें बतलाता हूँ। जो मनुष्य विपुल स्वर्णराशिके साथ उभयमुखी गौका दान करता है और एक दिनतक पयोव्रतका आचरण करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। स्वर्णमय कल्पवृक्षका दान देकर तीन दिनतक 'पयोव्रत' करनेवाला ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। इसे 'कल्पवृक्ष-व्रत' कहा गया है। बीस पलसे अधिक स्वर्णकी पृथ्वीका निर्माण कराके दान दे और एक दिन पयोव्रतका अनुष्ठान करे। केवल दिनमें व्रत रखनेसे मनुष्य रुद्रलोकको प्राप्त होता है। जो प्रत्येक पक्षकी तीन रात्रियोंमें 'एकभुक्त-व्रत' रखता है, वह दिनमें निराहार रहकर 'त्रिरात्रव्रत' करनेवाला मनुष्य विपुल धन प्राप्त करता है। प्रत्येक मासमें तीन एकभुक्त नक्तव्रत करनेवाला गणपतिके सायुज्यको प्राप्त होता है। जो भगवान् जनार्दनके उद्देश्यसे 'त्रिरात्रव्रत' का अनुष्ठान करता है, वह अपने सौ कुलोंके साथ भगवान् श्रीहरिके वैकुण्ठ-धामको जाता है। व्रतानुरागी मनुष्य मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी नवमीसे विधिपूर्वक त्रिरात्रव्रत प्रारम्भ करे। 'नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रका सहस्र अथवा सौ बार जप करे। अष्टमीको एकभुक्त (दिनमें एक बार भोजन करना) व्रत और नवमी, दशमी, एकादशीको उपवास करे। द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। यह व्रत कार्तिकमें करना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर ब्राह्मणोंको भोजन कराके, उन्हें वस्त्र, शय्या, आसन, छत्र, यज्ञोपवीत और पात्र दान करे। देते समय ब्राह्मणोंसे यह प्रार्थना करे—'इस दुष्कर व्रतके अनुष्ठानमें मेरे द्वारा जो त्रुटि हुई हो, आप

लोगोंकी आशासे वह परिपूर्ण हो जाय।' यह 'त्रिरात्रव्रत' करनेवाला इस लोकमें भोगोंका उपभोग करके मृत्युके पश्चात् भगवान् श्रीविष्णुके सांनिध्यको प्राप्त करता है ॥ १—११ ॥

अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले कार्तिक-व्रतके विषयमें कहता हूँ। दशमीको पञ्चगव्यका प्राशन करके एकादशीको उपवास करे। इस व्रतके पालनमें कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रीविष्णुका पूजन करनेवाला मनुष्य विमानचारी देवता होता है। चैत्रमें त्रिरात्रव्रत करके केवल रात्रिके समय भोजन करनेवाला एवं व्रतकी समाप्तिमें पाँच बकरियोंका दान देनेवाला सुखी होता है। कार्तिकके शुक्लपक्षकी षष्ठीसे आरम्भ करके तीन दिनतक केवल दुग्ध पीकर रहे। फिर तीन दिनतक उपवास करे। इसे 'माहेन्द्रकृच्छ्र' कहा जाता है। कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको आरम्भ करके 'पञ्चरात्र-व्रत' करे। प्रथम दिन दुग्धपान करे, दूसरे दिन दधिका आहार करे, फिर तीन दिनतक उपवास करे। यह अर्थप्रद 'भास्करकृच्छ्र' कहलाता है। शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे आरम्भ करके छः दिनतक क्रमशः यवकी लपसी, शाक, दधि, दुग्ध, घृत और जल—इन वस्तुओंका आहार करे। इसे 'सांतपनकृच्छ्र' कहा गया है ॥ १२–१६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दिवस-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९७ ॥

एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय

मास-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं मास-व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। आषाढ़से प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मास्यमें अभ्यङ्ग (मालिश और उबटन) का त्याग करे। इससे मनुष्य उत्तम बुद्धि प्राप्त करता है। वैशाखमें पुष्परेणुतकका परित्याग करके गोदान करनेवाला राज्य प्राप्त करता है। एक मास उपवास रखकर गोदान करनेवाला इस भीमव्रतके प्रभावसे श्रीहरिस्वरूप हो जाता है। आषाढ़से प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मास्यमें नियमपूर्वक प्रातःस्नान करनेवाला विष्णुलोकको जाता है। माघ अथवा चैत्र मासकी तृतीयाको गुड़-धेनुका दान दे, इसे 'गुड़व्रत' कहा गया है। इस महान् व्रतका अनुष्ठान करनेवाला शिवस्वरूप हो जाता है। मार्गशीर्ष आदि मासोंमें 'नक्तव्रत' (रात्रिमें एक बार भोजन) करनेवाला विष्णुलोकका अधिकारी होता है। 'एकभुक्त व्रत'का पालन करनेवाला उसी प्रकार पृथक् रूपसे द्वादशीव्रतका भी पालन करे। 'फलव्रत' करनेवाला चातुर्मास्यमें फलोंका त्याग करके उनका दान करे ॥ १—५ ॥

श्रावणसे प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मास्यमें व्रतोंके अनुष्ठानसे व्रतकर्ता सब कुछ प्राप्त कर लेता है। चातुर्मास्य-व्रतोंका इस प्रकार विधान करे—आषाढ़के शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास रक्खे। प्रायः आषाढ़में प्राप्त होनेवाली कर्क-संक्रान्तिमें श्रीहरिका पूजन करे और कहे—'भगवन्! मैंने आपके सम्मुख यह व्रत ग्रहण किया है। केशव! आपकी प्रसन्नतासे इसकी निर्विघ्न सिद्धि हो। देवाधिदेव जनार्दन! यदि इस व्रतके ग्रहणके अनन्तर इसकी अपूर्णतामें ही मेरी मृत्यु हो जाय, तो आपके कृपा-प्रसादसे यह व्रत सम्पूर्ण हो।' व्रत करनेवाला द्विज मांस आदि निषिद्ध वस्तुओं और तेलका त्याग करके श्रीहरिका यजन करे। एक दिनके अन्तरसे उपवास रखकर त्रिरात्रव्रत करनेवाला विष्णुलोकको प्राप्त होता है। 'चान्द्रायण व्रत' करनेवाला विष्णुलोकका और 'मौन व्रत' करनेवाला मोक्षका अधिकारी होता है। 'प्राजापत्य व्रत' करनेवाला स्वर्गलोकको जाता है। सत्तू और यवका भक्षण करके, दुग्ध आदिका आहार करके, अथवा पञ्चगव्य एवं जल पीकर कृच्छ्रव्रतोंका अनुष्ठान करनेवाला स्वर्गको प्राप्त होता है। शाक, मूल और फलके आहारपूर्वक कृच्छ्रव्रत करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठको जाता है। मांस और रसका परित्याग करके जौका भोजन करनेवाला श्रीहरिके सांनिध्यको प्राप्त करता है ॥ ६–१२½ ॥

अब मैं 'कौमुदव्रत'का वर्णन करूँगा। आश्विनके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास रक्खे। द्वादशीको श्रीविष्णुके अङ्गोंमें चन्दनादिका अनुलेपन करके कमल और उत्पल आदि पुष्पोंसे उनका पूजन करे। तदनन्तर तिल-तैलसे परिपूर्ण दीपक और घृतसिद्ध पक्वान्नका नैवेद्य समर्पित करे। श्रीविष्णुको मालतीपुष्पोंकी माला भी निवेदन करे। 'ॐ नमो वासुदेवाय'—इस मन्त्रसे व्रतका विसर्जन करे। इस प्रकार 'कौमुदव्रत' का अनुष्ठान करनेवाला धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको हस्तगत कर लेता है। मासोपवास-व्रत करनेवाला श्रीविष्णुका पूजन करके सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ १३-१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मास-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९८॥

एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय

ऋतु, वर्ष, मास, संक्रान्ति आदि विभिन्न व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख ऋतु-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जो भोग और मोक्षको सुलभ करनेवाले हैं। जो वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें इन्धनका दान करता है एवं व्रतान्तमें घृत-धेनुका दान करता है, वह 'अग्निव्रत'का पालन करनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होता है। जो एक मासतक संध्याके समय मौन रहकर मासान्तमें ब्राह्मणको घृतकुम्भ, तिल, घण्टा और वस्त्र देता है, वह 'सारस्वतव्रत' करनेवाला मनुष्य सुखका उपभोग करता है। एक वर्षतक पञ्चामृतसे स्नान करके गोदान करनेवाला राजा होता है॥ १-३॥

चैत्रकी एकादशीको नक्तभुक्तव्रत करके चैत्रके समाप्त होनेपर विष्णुभक्त ब्राह्मणको स्वर्णमयी विष्णु-प्रतिमाका दान करे। इस विष्णुसम्बन्धी उत्तम व्रतका पालन करनेवाला विष्णुपदको प्राप्त करता है। (एक वर्षतक) खीरका भोजन करके गोयुग्मका दान करनेवाला इस 'देवव्रत'के पालनके प्रभावसे श्रीसम्पन्न होता है। जो (एक वर्षतक) पितृदेवोंको समर्पित करके भोजन करता है, वह राज्य प्राप्त करता है। ये वर्ष-सम्बन्धी व्रत कहे गये। अब मैं संक्रान्ति-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। मनुष्य संक्रान्तिकी रात्रिको जागरण करनेसे स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। जब संक्रान्ति अमावास्या तिथिमें हो तो शिव और सूर्यका पूजन करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। उत्तरायण-सम्बन्धिनी मकर-संक्रान्तिमें प्रातःकाल स्नान करके भगवान् श्रीकेशवकी अर्चना करनी चाहिये। उद्यापनमें बत्तीस पल स्वर्णका दान देकर वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। विषुव आदि योगोंमें भगवान् श्रीहरिको घृतमिश्रित दुग्ध आदिसे स्नान कराके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ ४—८॥

स्त्रियोंके लिये 'उमाव्रत' लक्ष्मी प्रदान करनेवाला है। उन्हें तृतीया और अष्टमी तिथिको गौरीशंकरकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार शिव पार्वतीकी अर्चना करके नारी अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करती है और उसे कभी पतिका वियोग नहीं होता। 'मूलव्रत' एवं 'उमेशव्रत' करनेवाली तथा सूर्यमें भक्ति रखनेवाली स्त्री दूसरे जन्ममें अवश्य पुरुषत्व प्राप्त करती है॥ ९—११॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९९॥

दो सौवाँ अध्याय

दीपदान-व्रतकी महिमा एवं विदर्भराजकुमारी ललिताका उपाख्यान

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले 'दीपदान-व्रत'का वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य देवमन्दिर अथवा ब्राह्मणके गृहमें एक वर्षतक दीपदान करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। चातुर्मास्यमें दीपदान करनेवाला विष्णुलोकको और कार्तिकमें दीपदान करनेवाला स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। दीपदानसे बढ़कर न कोई व्रत है, न था और न होगा ही। दीपदानसे आयु और नेत्रज्योतिकी प्राप्ति होती है। दीपदानसे धन और पुत्रादिकी भी प्राप्ति होती है। दीपदान करनेवाला सौभाग्ययुक्त होकर स्वर्गलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है। विदर्भराजकुमारी ललिता दीपदानके पुण्यसे ही राजा चारुधर्माकी पत्नी हुई और उसकी सौ रानियोंमें प्रमुख हुई। उस साध्वीने एक बार विष्णुमन्दिरमें सहस्र दीपोंका दान किया। इसपर उसकी सपत्नियोंने उससे दीपदानका माहात्म्य पूछा। उनके पूछनेपर उसने इस प्रकार कहा—॥ १—५ ॥

ललिता बोली—पहलेकी बात है, सौवीरराजके यहाँ मैत्रेय नामक पुरोहित थे। उन्होंने देविका नदीके तटपर भगवान् श्रीविष्णुका मन्दिर बनवाया। कार्तिक मासमें उन्होंने दीपदान किया। बिलावके डरसे भागती हुई एक चुहियाने अकस्मात् अपने मुखके अग्रभागसे उस दीपककी बत्तीको बढ़ा दिया। बत्तीके बढ़नेसे वह बुझता हुआ दीपक प्रज्वलित हो उठा। मृत्युके पश्चात् वही चुहिया राजकुमारी हुई और राजा चारुधर्माकी सौ रानियोंमें पटरानी हुई। इस प्रकार मेरेद्वारा बिना सोचे-समझे जो विष्णुमन्दिरके दीपककी वर्तिका बढ़ा दी गयी, उसी पुण्यका मैं फल भोग रही हूँ। इसीसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण भी है। इसलिये मैं सदा दीपदान किया करती हूँ। एकादशीको दीपदान करनेवाला स्वर्गलोकमें विमानपर आरूढ़ होकर प्रमुदित होता है। मन्दिरका दीपक हरण करनेवाला गूँगा अथवा मूर्ख हो जाता है। वह निश्चय ही 'अन्धतामिस्र' नामक नरकमें गिरता है, जिसे पार करना दुष्कर है। वहाँ रुदन करते हुए मनुष्योंसे यमदूत कहता है—"अरे! अब यहाँ विलाप क्यों करते हो? यहाँ विलाप करनेसे क्या लाभ है? पहले तुमलोगोंने प्रमादवश सहस्रों जन्मोंके बाद प्राप्त होनेवाले मनुष्य-जन्मकी उपेक्षा की थी। वहाँ तो अत्यन्त मोहयुक्त चित्तसे तुमने भोगोंके पीछे दौड़ लगायी। पहले तो विषयोंका आस्वादन करके खूब हँसे थे, अब यहाँ क्यों रो रहे हो? तुमने पहले ही यह क्यों नहीं सोचा कि किये हुए कुकर्मोंका फल भोगना पड़ता है। पहले जो पर-नारीका कुचमर्दन तुम्हें प्रीतिकर प्रतीत होता था, वही अब तुम्हारे दुःखका कारण हुआ है। मुहूर्तभरका विषयोंका आस्वादन अनेक करोड़ वर्षोंतक दुःख देनेवाला होता है। तुमने परस्त्रीका अपहरण करके जो कुकर्म किया, वह मैंने बतलाया। अब 'हा! मातः' कहकर विलाप क्यों करते हो? भगवान् श्रीहरिके नामका जिह्वासे उच्चारण करनेमें कौन-सा बड़ा भार है? बत्ती और तेल अल्प मूल्यकी वस्तुएँ हैं और अग्नि तो वैसे ही सदा सुलभ है। इसपर भी तुमने दीपदान न करके विष्णु-मन्दिरके दीपकका हरण किया, वही तुम्हारे लिये दुःखदायी हो रहा है। विलाप करनेसे क्या लाभ? अब तो जो यातना मिल रही है, उसे सहन करो" ॥ ६—१८ ॥

अग्निदेव कहते हैं—ललिताकी सौतें उसके द्वारा कहे हुए इस उपाख्यानको सुनकर दीपदानके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्त हो गयीं। इसलिये दीपदान सभी व्रतोंसे विशेष फलदायक है ॥ १९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दीपदानकी महिमाका वर्णन' नामक दो सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०० ॥

अग्निपुराणके २०० अध्यायोंका अनुवाद इस प्रथम खण्डमें दिया गया है। भगवत्कृपासे 'कल्याण'के प्रकाशनका सुयोग बना रहा तो शेष १८३ अध्यायोंका अनुवाद अगले वर्षके विशेषाङ्कमें दिया जा सकता है।

इस खण्डमें पृष्ठ-संख्या १ से ३२० तक आयी है। अगले अंशमें इसके आगेके पृष्ठोंकी संख्या इसी क्रमसे रहेगी।

दिव्य रस और भावमय युगल-स्वरूप

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीगर्ग-संहिता

गोलोकखण्डसे विज्ञानखण्डतक नौ खण्डकी अध्यायक्रमसे विषय-सूची

गिरिराजखण्ड

माधुर्यखण्ड

श्रीमथुराखण्ड

द्वारकाखण्ड

विश्वजित्‌खण्ड

श्रीबलभद्रखण्ड

श्रीविज्ञानखण्ड

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

रेखा-चित्र—

श्रीगोविन्दस्तोत्रम्

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ १ ॥

मैं उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द (श्रीकृष्ण) की शरण लेता हूँ, जिनकी लाखों कल्पवृक्षोंसे आवृत एवं चिन्तामणि-समूहसे निर्मित भवनोंमें लाखों लक्ष्मी-स्वरूपा युवतियोंके द्वारा निरन्तर सेवा होती रहती है और जो स्वयं वन-वनमें घूम-घूमकर गौओंकी सेवा करते हैं ।

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं
बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दराङ्गम् ।
कंदर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ २ ॥

जो वंशीमें स्वर फूँक रहे हैं, कमलकी पँखुड़ियोंके समान बड़े-बड़े जिनके नेत्र हैं, जो मोरपंखका मुकुट धारण किये रहते हैं, मेघके समान श्यामसुन्दर जिनके श्रीअङ्ग हैं, जिनकी विशेष शोभा करोड़ों कामदेवोंके द्वारा भी स्पृहणीय है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ ।

आलोलचन्द्रकलसद्वनमाल्यवंशी-
रत्नाङ्गदं प्रणयकेलिकलाविलासम् ।
श्यामं त्रिभङ्गललितं नियतप्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ३ ॥

जो हवामें अठखेलियाँ करते हुए मोरपंख, सुन्दर वनमाला, वंशी एवं रत्नमय बाजूबंदसे सुशोभित हैं, जो प्रणय केलि कला-विलासमें दक्ष हैं, जिनका त्रिभङ्गललित श्यामसुन्दर विग्रह है और जिनका प्रकाश कभी फीका नहीं होता—सदा स्थिर रहता है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय लेता हूँ ।

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति ।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ४ ॥

जिनका सच्चिदानन्दमय प्रकाशयुक्त श्रीविग्रह है तथा सम्पूर्ण इन्द्रिय वृत्तियोंसे युक्त जिनके श्रीअङ्ग दीर्घ कालतक विभिन्न लोकोंपर दृष्टि रखते हैं, उनकी रक्षा करते हैं तथा उनका ध्यान रखते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ।

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप-
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च ।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ५ ॥

जो द्वैतसे रहित हैं, अपने स्वरूपसे कभी च्युत नहीं होते, जो सबके आदि हैं, परंतु जिनका कहीं आदि नहीं है और जो अनन्त रूपोंमें प्रकाशित हैं, जो पुराण (सनातन) पुरुष होते हुए भी नित्य नवयुवक हैं, जिनका स्वरूप वेदोंमें भी प्राप्त नहीं होता (निषेधमुखसे ही वेद जिनका वर्णन करते हैं), किंतु अपनी भक्ति प्राप्त हो जानेपर जो दुर्लभ नहीं रह जाते—अपने भक्तोंके लिये जो सुलभ हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसम्प्रगम्यो
वायोरथापि मनसो मुनिपुंगवानाम् ।
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वे
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ६ ॥

(भगवत्प्राप्तिके) जिस मार्गको बड़े बड़े मुनि प्राणायाम तथा चित्तनिरोधके द्वारा अरबों वर्षोंमें प्राप्त करते हैं, वही मार्ग जिनके अचिन्त्य माहात्म्ययुक्त चरणोंके अग्रभागकी सीमामें स्थित रहता है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ ।

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं
यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः ।
अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ७ ॥

जो यद्यपि सर्वथा एक हैं, उनके सिवा दूसरा कोई नहीं है, फिर भी जो (अपनी महिमासे) करोड़ों ब्रह्माण्डोंको रचनेकी शक्ति रखते हैं—यही नहीं, ब्रह्माण्डोंके समूह जिनके भीतर रहते हैं; साथ ही जो ब्रह्माण्डोंके भीतर रहनेवाले परमाणुसमूहके भी भीतर स्थित रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ ।

यद्भावभावितधियो मनुजास्तथैव
सम्प्राप्य रूपमहिमासनयानभूषाः ।
सूक्तैर्यमेव निगमप्रथितैः स्तुवन्ति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ८ ॥

जिनकी भक्तिसे भावित बुद्धिवाले मनुष्य उनके रूप, महिमा, आसन, यान (वाहन) अथवा भूषणोंकी झाँकी प्राप्त करके वेदप्रसिद्ध सूक्तों (मन्त्रों) द्वारा स्तुति करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ ।

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभावितभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ९ ॥

जो सर्वात्मा होकर भी आनन्दचिन्मयरसप्रतिभावित

अपनी ही स्वरूपभूता उन प्रसिद्ध कलाओं (गोप, गोपी एवं गौओं) के साथ गोलोकमें ही निवास करते हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेऽपि विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१०॥

संतजन प्रेमरूपी अञ्जनसे सुशोभित भक्तिरूपी नेत्रोंसे सदा-सर्वदा जिनका अपने हृदयमें ही दर्शन करते रहते हैं, जिनका श्यामसुन्दर विग्रह है तथा जिनके स्वरूप एवं गुणोंका यथार्थरूपसे चिन्तन भी नहीं हो सकता, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किंतु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥११॥

जिन्होंने श्रीरामादि विग्रहोंमें नियत संख्याकी कलारूपसे स्थित रहकर भिन्न भिन्न भुवनोंमें अवतार ग्रहण किया, परंतु जो परात्पर पुरुष भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें स्वयं प्रकट हुए, उन आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१२॥

जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें पृथ्वी आदि समस्त विभूतियोंके रूपमें भिन्न-भिन्न दिखायी देता है, वह निष्कल (अखण्ड), अनन्त एवं अशेष ब्रह्म जिन सर्वसमर्थ प्रभुकी प्रभा है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ।

माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते
त्रैगुण्यतद्विषयवेदवितायमाना ।
सत्त्वावलम्बिपरसत्त्वविशुद्धसत्त्वं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१३॥

सत्त्व, रज एवं तमके रूपमें उन्हीं तीनों गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले वेदोंके द्वारा विस्तारित जिनकी माया सैकड़ों ब्रह्माण्डोंका सृजन करती है, उन सत्त्वगुणका आश्रय लेनेवाले, सत्त्वसे परे एवं विशुद्धसत्त्वरूप आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

आनन्दचिन्मयरसात्मतया मनस्सु
यः प्राणिनां प्रतिफलन् स्मरतामुपेत्य।
लीलायितेन भुवनानि जयत्यजस्रं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१४॥

जो स्मरण करनेवाले प्राणियोंके मनोंमें अपने आनन्द-चिन्मयरसात्मक-स्वरूपसे प्रतिबिम्बित होते हैं तथा अपने लीलाचरित्रके द्वारा निरन्तर समस्त भुवनोंको वशीभूत करते रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु च।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१५॥

जिन्होंने गोलोक' नामक अपने धाममें तथा उसके नीचे स्थित देवीलोक, कैलास तथा वैकुण्ठ नामक विभिन्न धामोंमें विभिन्न ऐश्वर्योंकी सृष्टि की, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ।

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१६॥

सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयकारिणी शक्तिरूपा भगवती दुर्गा, जिनकी छायाकी भाँति समस्त लोकोंका धारण-पोषण करती हैं और जिनकी इच्छाके अनुसार चेष्टा करती है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

क्षीरं यथा दधिविकारविशेषयोगात्
संजायते नहि ततः पृथगस्ति हेतोः।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१७॥

जावन आदि विशेष प्रकारके विकारोंके संयोगसे दूध जैसे दहीके रूपमें परिवर्तित हो जाता है, किंतु अपने कारण (दूध) से फिर भी विजातीय नहीं बन जाता, उसी प्रकार जो (संहाररूप) प्रयोजनको लेकर भगवान् शंकरके स्वरूपको प्राप्त हो जाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा।
यस्तादृगेव च विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१८॥

जैसे एक दीपककी लौ दूसरी बत्तीका संयोग पाकर दूसरा दीपक बन जाती है, जिसमें अपने कारण (पहले दीपक) के गुण प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार जो अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही विष्णुरूपमें दिखायी देने

लगाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

यः कारणार्णवजले भजति स्म योग-
निद्रामनन्तजगदण्डसरोमकूपः ।
आधारशक्तिमवलम्ब्य परां स्वमूर्तिं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१९॥

आधारशक्तिरूपा अपनी (नारायणरूप) श्रेष्ठ मूर्तिको धारण करके जो कारणार्णवके जलमें योगनिद्राके वशीभूत होकर स्थित रहते हैं और उस समय उनके एक-एक रोमकूपमें अनन्त ब्रह्माण्ड समाये रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ।

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः ।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२०॥

जिनके रोमकूपोंसे प्रकट हुए विभिन्न ब्रह्माण्डोंके स्वामी (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) जिनके एक श्वास जितने कालतक ही जीवन धारण करते हैं तथा सर्वविदित महान् विष्णु जिनकी एक विशिष्ट कलामात्र हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

भास्वान् यथाश्मसकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र ।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२१॥

जैसे सूर्य सूर्यकान्त नामक सम्पूर्ण मणियोंमें अपने तेजका किंचित् अंश प्रकट करते हैं, उसी प्रकार एक ब्रह्माण्डका शासन करनेवाले ब्रह्मा भी अपने अंदर जिनके तेजका किंचित् अंश प्रकट करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

यत्पादपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ-
द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः ।
विघ्नान् निहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२२॥

प्रणाम करते समय जिनके चरणयुगलको अपने मस्तकके दोनों भागोंपर रखकर सर्वसिद्ध भगवान् गणपति इन तीनों लोकोंके विघ्नोंका विनाश करनेमें समर्थ होते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

अग्निर्मही गगनमम्बु मरुद्दिशश्च
कालस्तथाऽऽत्ममनसीति जगत्त्रयाणि ।
यस्माद् भवन्ति विभवन्ति विशन्ति यं च
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२३॥

अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु एवं चारों दिशाएँ; काल, बुद्धि, मन, पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्गरूप तीनों लोक जिनसे उत्पन्न होते हैं, समृद्ध (पुष्ट) होते हैं तथा जिनमें पुनः लीन हो जाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ।

यच्चक्षुरेव सविता सकलग्रहाणां
राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः ।
यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२४॥

जिनके नेत्ररूप सूर्य, जो समस्त ग्रहोंके अधिपति, सम्पूर्ण देवताओंके प्रतीक एवं सम्पूर्ण तेजःस्वरूप तथा कालचक्रके प्रवर्तक होते हुए भी जिनकी आज्ञासे लोकोंमें चक्कर लगाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दको मैं भजता हूँ।

धर्मोऽथ पापनिचयः श्रुतयस्तपांसि
ब्रह्मादिकीटपतगावधयश्च जीवाः ।
यद्दत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२५॥

धर्म एवं पाप समूह, वेदकी ऋचाएँ, नाना प्रकारके तप तथा ब्रह्मासे लेकर कीट-पतङ्गतक सम्पूर्ण जीव जिनकी दी हुई शक्तिके द्वारा ही अपना-अपना प्रभाव प्रकट करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-
बद्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।
कर्माणि निर्दहति किंतु च भक्तिभाजां
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२६॥

जो एक बीरबहूटीको एवं देवराज इन्द्रको भी अपने-अपने कर्म-बन्धनके अनुरूप फल प्रदान करते हैं, किंतु जो अपने भक्तोंके कर्मोंको निःशेषरूपसे जला डालते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

यं क्रोधकामसहजप्रणयादिभीति-
वात्सल्यमोहगुरुगौरवसेव्यभावैः ।
संचिन्त्य तस्य सदृशीं तनुमापुरेते
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२७॥

क्रोध, काम, सहज स्नेह आदि, भय, वात्सल्य, मोह (सर्वविस्मृति), गुरु-गौरव (बड़ोंके प्रति होनेवाली गौरव-बुद्धिके सदृश महान् सम्मान) तथा सेव्य-बुद्धिसे (अपनेको दास मानकर) जिनका चिन्तन करके लोग उन्हींके समान रूपको प्राप्त हो गये, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

॥ ॐ श्रीराधामाधवाय नमः ॥

श्रीगर्ग-संहिता

[दशखण्डात्मिका]

श्रीमन्महर्षिगर्गाचार्यप्रणीता

मूल संस्कृतका पूर्ण हिंदी-अनुवाद

अनुवादक—

पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री पाण्डेय 'राम'

पं० श्रीगदाधरजी शर्मा एवं पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल

श्रीगर्ग-संहिताका संक्षिप्त परिचय

श्रीगर्ग-संहिता यदुकुलके महान् आचार्य महामुनि श्रीगर्गकी रचना है। यह सारी संहिता अत्यन्त मधुर श्रीकृष्णलीलासे परिपूर्ण है। श्रीराधाकी दिव्य माधुर्यभावमिश्रित लीलाओंका इसमें विशद वर्णन है। श्रीमद्भागवतमें जो कुछ सूत्ररूपमें कहा गया है, गर्ग-संहितामें वही विशद वृत्तिरूपमें वर्णित है। एक प्रकारसे यह श्रीमद्भागवतोक्त श्रीकृष्णलीलाका महाभाष्य है। श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्णताके सम्बन्धमें महर्षि व्यासने 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—इतना ही कहा है, महामुनि गर्गाचार्यने—

यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि।
तं वदन्ति परे साक्षात् परिपूर्णतमं स्वयम्॥

—कहकर श्रीकृष्णमें समस्त भागवत तेजोंके प्रवेशका वर्णन करके श्रीकृष्णकी परिपूर्णतमताका वर्णन किया है।

श्रीकृष्णकी मधुरलीलाकी रचना हुई है दिव्य 'रस'के द्वारा; उस रसका रासमें प्रकाश हुआ है। श्रीमद्भागवतमें उस रासके केवल एक बारका वर्णन पाँच अध्यायोंमें किया गया है; किंतु इस गर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डमें, अश्वमेधखण्डके प्रभासमिलनके समय और उसी अश्वमेधखण्डके दिग्विजयके अनन्तर लौटते समय—यों तीन बार कई अध्यायोंमें उसका बड़ा सुन्दर वर्णन है। परम प्रेमस्वरूपा, श्रीकृष्णसे नित्य अभिन्नस्वरूपा शक्ति श्रीराधाजीके दिव्य आकर्षणसे श्रीमथुरानाथ एवं श्रीद्वारकाधीश श्रीकृष्णने बार-बार गोकुलमें पधारकर नित्य रासेश्वरी, नित्य निकुञ्जेश्वरीके साथ महारासकी दिव्य लीला की है—इसका विशद वर्णन है। इसके माधुर्यखण्डमें विभिन्न गोपियोंके पूर्वजन्मोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। और भी बहुत-सी नयी-नयी कथाएँ हैं।

यह संहिता भक्त-भावुकोंके लिये परम समादरकी वस्तु है; क्योंकि इसमें श्रीमद्भागवतके गूढ तत्त्वोंका स्पष्ट रूपमें उल्लेख है। आशा है 'कल्याण'के पाठक इससे विशेष लाभ उठायेंगे।

श्रीहरिः

ॐ दामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते

श्रीगर्ग-संहिता

(गोलोकखण्ड)

पहला अध्याय

शौनक-गर्ग-संवाद; राजा बहुलाश्वके पूछनेपर नारदजीके द्वारा अवतार-भेदका निरूपण

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

शरद्विकचपङ्कजश्रियमतीवविद्वेषकं
मिलिन्दमुनिसेवितं कुलिशकंजचिह्नावृतम्।
स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्ततापत्रयं
चलद्द्युतिपदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः॥

वदनकमलनिर्यद् यस्य पीयूषमाद्यं
पिबति जनवरोऽयं पातु सोऽयं गिरं मे।
बदरवनविहारः सत्यवत्याः कुमारः
प्रणतदुरितहारः शार्ङ्गधन्वावतारः॥

'भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती तथा महर्षि व्यासको नमस्कार करनेके पश्चात् जय (श्रीहरिकी विजय-गाथासे पूर्ण इतिहास-पुराण) का उच्चारण करना चाहिये। मैं भगवान् श्रीराधाकान्तके उन युगल-चरणकमलोंको अपने हृदयमें धारण करता हूँ, जो शरदृतुके प्रफुल्लित कमलोंकी शोभाको अत्यन्त नीचा दिखानेवाले हैं, मुनिरूपी भ्रमरोंके द्वारा जिनका निरन्तर सेवन होता रहता है, जो वज्र और कमल आदिके चिह्नोंसे विभूषित हैं, जिनमें सोनेके नूपुर चमक रहे हैं और जिन्होंने भक्तोंके त्रिविध तापका सदा ही नाश किया तथा जिनसे दिव्य ज्योति छिटक रही है। जिनके मुख-कमलसे निकली हुई आदि-कथारूपी सुधाका बड़भागी मनुष्य सदा पान करता रहता है, वे बदरीवनमें विहार करनेवाले, प्रणतजनोंका ताप हरनेमें समर्थ, भगवान् विष्णुके अवतार सत्यवतीकुमार श्रीव्यासजी मेरी वाणीकी रक्षा करें—उसे दोषमुक्त करें' ॥ १–३ ॥

एक समयकी बात है, ज्ञानिशिरोमणि परमतेजस्वी मुनिवर गर्गजी, जो योगशास्त्रके सूर्य हैं, शौनकजीसे मिलनेके लिये नैमिषारण्यमें आये। उन्हें आया देख मुनियोंसहित शौनकजी सहसा उठकर खड़े हो गये और उन्होंने पाद्य आदि उपचारोंसे विधिवत् उनकी पूजा की ॥ ४-५ ॥

शौनकजीने कहा—साधुपुरुषोंका सब ओर विचरण धन्य है; क्योंकि वह गृहस्थ-जनोंको शान्ति प्रदान करनेका हेतु कहा गया है। मनुष्योंके भीतरी अन्धकारका नाश महात्मा ही करते हैं, न कि सूर्य। भगवन्! मेरे मनमें यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि भगवान्‌के अवतार कितने प्रकारके हैं। आप कृपया इसका निवारण कीजिये ॥ ६-७ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—ब्रह्मन्! भगवान्‌के गुणानुवादसे सम्बन्ध रखनेवाला आपका यह प्रश्न बहुत ही उत्तम है। यह कहने, सुनने और पूछनेवाले—तीनोंके कल्याणका विस्तार करनेवाला है। इसी प्रसङ्गमें एक प्राचीन इतिहासका कथन किया जाता है, जिसके श्रवणमात्रसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। पहलेकी बात है, मिथिलापुरीमें बहुलाश्व नामसे विख्यात एक प्रतापी राजा राज्य करते थे। वे भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त, शान्तचित्त एवं अहंकारसे रहित थे। एक दिन मुनिवर नारदजी आकाशमार्गसे उतरकर उनके यहाँ पधारे। उन्हें उपस्थित देखकर राजाने आसनपर बिठाया और भलीभाँति उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार पूछा ॥ ८—११ ॥

श्रीजनकजी बोले—महामते! जो भगवान् अनादि, प्रकृतिसे परे और सबके अन्तर्यामी ही नहीं, आत्मा हैं, वे शरीर कैसे

धारण करते हैं ? (जो सर्वत्र व्यापक है, वह शरीरसे परिच्छिन्न कैसे हो सकता है ?) यह मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ १२ ॥

नारदजीने कहा—गौ, साधु, देवता, ब्राह्मण और वेदोंकी रक्षाके लिये साक्षात् भगवान् श्रीहरि अपनी लीलासे शरीर धारण करते हैं। [अपनी अचिन्त्य लीलाशक्तिसे ही वे देहधारी होकर भी व्यापक बने रहते हैं। उनका वह शरीर प्राकृत नहीं, चिन्मय है।] जैसे नट अपनी मायासे मोहित नहीं होता और दूसरे लोग मोहमें पड़ जाते हैं, वैसे ही अन्य प्राणी भगवान्‌की माया देखकर मोहित हो जाते हैं, किंतु परमात्मा मोहसे परे रहते हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥ १३-१४ ॥

श्रीजनकजीने पूछा—मुनिवर ! संतोंकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुके कितने प्रकारके अवतार होते हैं ? यह मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ १५ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन् ! व्यास आदि मुनियोंने अंशांश, अंश, आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम—ये छः प्रकारके अवतार बताये हैं। इनमेंसे छठा—परिपूर्णतम अवतार साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। मरीचि आदि 'अंशांशावतार', ब्रह्मा आदि 'अंशावतार', कपिल एवं कूर्म प्रभृति 'कलावतार' और परशुराम आदि 'आवेशावतार' कहे गये हैं। नृसिंह, राम, श्वेतद्वीपाधिपति हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ और नर-नारायण—ये 'पूर्णावतार' हैं एवं साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही 'परिपूर्णतम' अवतार हैं। असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति वे प्रभु गोलोकधाममें विराजते हैं। जो भगवान्‌के दिये सृष्टि आदि कार्यमात्रके अधिकारका पालन करते हैं, वे ब्रह्मा आदि 'सत्' (सत्स्वरूप भगवान्) के अंश हैं। जो उन अंशोंके कार्यभारमें हाथ बटाते हैं, वे 'अंशांशावतार' के नामसे विख्यात हैं। परम बुद्धिमान् नरेश ! भगवान् विष्णु स्वयं जिनके अन्तःकरणमें आविष्ट हो, अभीष्ट कार्यका सम्पादन करके फिर अलग हो जाते हैं, राजन् ! ऐसे नानाविध अवतारोंको 'आवेशावतार' समझो। जो प्रत्येक युगमें प्रकट हो, युगधर्मको जानकर, उसकी स्थापना करके, पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं, भगवान्‌के उन अवतारोंको 'कलावतार' कहा गया है। जहाँ चार व्यूह प्रकट हों—जैसे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न एवं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, तथा जहाँ नौ रसोंकी अभिव्यक्ति देखी जाती हो एवं जहाँ बल-पराक्रमकी भी पराकाष्ठा दृष्टिगोचर होती हो, भगवान्‌के उस अवतारको 'पूर्णावतार' कहा गया है। जिसके अपने तेजमें अन्य सम्पूर्ण तेज विलीन हो जाते हैं, भगवान्‌के उस अवतारको श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष साक्षात् 'परिपूर्णतम' बताते हैं। जिस अवतारमें पूर्णका पूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होता है और मनुष्य जिसे पृथक्-पृथक् भावके अनुसार अपने परम प्रिय रूपमें देखते हैं, वही यह साक्षात् 'परिपूर्णतम' अवतार है। [इन सभी लक्षणोंसे सम्पन्न] स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि श्रीकृष्णने एक कार्यके उद्देश्यसे अवतार लेकर अन्यान्य करोड़ों कार्योंका सम्पादन किया है। जो पूर्ण, पुराण पुरुषोत्तमोत्तम एवं परात्पर पुरुष परमेश्वर हैं, उन साक्षात् सदानन्दमय, कृपानिधि, गुणोंके आकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं शरण लेता हूँ।* यह सुनकर

---

* श्रीनारद उवाच ,

अंशांशोंऽशस्तथाऽऽवेशः कला पूर्णः प्रकथ्यते ।
व्यासाद्यैश्च स्मृतः षष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥
अंशांशस्तु मरीच्यादिरंशा ब्रह्मादयस्तथा ।
कलाः कपिलकूर्माद्या आवेशा भार्गवादयः ॥
पूर्णो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपाधिपो हरिः ।
वैकुण्ठोऽपि तथा यज्ञो नरनारायणः स्मृतः ॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम् ।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते ॥
कार्याधिकारं कुर्वन्तः सदंशास्ते प्रकीर्तिताः ।
तत्कार्यभारं कुर्वन्तस्तेंऽशांशा विदिताः प्रभोः ॥
येषामन्तर्गतो विष्णुः कार्यं कृत्वा विनिर्गतः ।
नानावेशावतारांश्च विद्धि राजन् महामते ॥
धर्मं विज्ञाय कृत्वा यः पुनरन्तरधीयत ।
युगे युगे वर्तमानः सोऽवतारः कला हरेः ॥
चतुर्व्यूहो भवेद्यत्र दृश्यन्ते च रसा नव ।
अतः परं च वीर्याणि स तु पूर्णः प्रकथ्यते ॥
यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि ।
तं वदन्ति परे साक्षात् परिपूर्णतमं स्वयम् ॥
पूर्णस्य लक्षणं यत्र यं पश्यन्ति पृथक् पृथक् ।
भावेनापि जनाः सोऽयं परिपूर्णतमः स्वयम् ॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि ।
एककार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह ॥

राजा हर्षमें भर गये । उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया । वे प्रेमसे विह्वल हो गये और अश्रुपूर्ण नेत्रोंको पोंछकर नारदजीसे यों बोले ॥ १६–२८ ॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—महर्षे ! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वव्यापी चिन्मय गोलोकधामसे उतरकर जो भारतवर्षके अन्तर्गत द्वारकापुरीमें विराज रहे हैं—इसका क्या कारण है ? ब्रह्मन् ! उन भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर बृहत् (विशाल या ब्रह्मस्वरूप) गोलोकधामका वर्णन कीजिये । महामुने ! साथ ही उनके अपरिमेय कार्योंको भी कहनेकी कृपा कीजिये । मनुष्य जब तीर्थयात्रा तथा सौ जन्मोंतक उत्तम तपस्या करके उसके फलस्वरूप सत्सङ्गका सुअवसर पाता है, तब वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको शीघ्र प्राप्त कर लेता है । कब मैं भक्तिरससे आर्द्रचित्त हो मनसे भगवान् श्रीकृष्णके दासका भी दासानुदास होऊँगा ? जो सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं, वे परब्रह्म परमात्मा आदिदेव भगवान् श्रीकृष्ण मेरे नेत्रोंके समक्ष कैसे होंगे ?* ॥ २९–३२ ॥

श्रीनारदजी बोले—नृपश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अभीष्ट जन हो और उन श्रीहरिके परम प्रिय भक्त हो । तुम्हें दर्शन देनेके लिये ही वे भक्तवत्सल भगवान् यहाँ अवश्य पधारेंगे । ब्रह्मण्यदेव भगवान् जनार्दन द्वारकामें रहते हुए भी तुम्हें और ब्राह्मण श्रुतदेवको याद करते रहते हैं । अहो ! इस लोकमें संतोंका कैसा सौभाग्य है ! ॥ ३३-३४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णमाहात्म्यका वर्णन' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

ब्रह्मादि देवोंद्वारा गोलोकधामका दर्शन

श्रीनारदजी कहते हैं—जो जीभ पाकर भी कीर्तनीय भगवान् श्रीकृष्णका कीर्तन नहीं करता, वह दुर्बुद्धि मनुष्य मोक्षकी सीढ़ी पाकर भी उसपर चढ़नेकी चेष्टा नहीं करता । राजन् ! अब इस वाराहकल्पमें धराधामपर जो भगवान् श्रीकृष्णका पदार्पण हुआ है और यहाँ उनकी जो-जो लीलाएँ हुई हैं, वह सब मैं तुमसे कहता हूँ; सुनो । बहुत पहलेकी बात है—दानव, दैत्य, आसुर-स्वभावके मनुष्य और दुष्ट राजाओंके भारी भारसे अत्यन्त पीड़ित हो, पृथ्वी गौका रूप धारण करके, अनाथकी भाँति रोती-बिलखती हुई अपनी आन्तरिक व्यथा निवेदन करनेके लिये ब्रह्माजीकी शरणमें गयी । उस समय उसका शरीर काँप रहा था । वहाँ उसकी कष्टकथा सुनकर ब्रह्माजीने उसे धीरज बँधाया और तत्काल समस्त देवताओं तथा शिवजीको साथ लेकर वे भगवान् नारायणके वैकुण्ठधाममें गये । वहाँ जाकर ब्रह्माजीने चतुर्भुज भगवान् विष्णुको प्रणाम करके अपना सारा अभिप्राय निवेदन किया । तब लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु उन उद्विग्न देवताओं तथा ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले ॥ १–६ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—ब्रह्मन् ! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही अगणित ब्रह्माण्डोंके स्वामी, परमेश्वर, अखण्डस्वरूप तथा देवातीत हैं । उनकी लीलाएँ अनन्त एवं अनिर्वचनीय हैं । उनकी कृपाके बिना यह कार्य कदापि सिद्ध नहीं

पूर्णः पुराणः पुरुषोत्तमोत्तमः परात्परो यः पुरुषः परेश्वरः ।
स्वयं सदाऽऽनन्दमयं कृपाकरं गुणाकरं तं शरणं व्रजाम्यहम् ॥
(गर्ग०, गोलोक० १ । १६–२७)

* श्रीकृष्णदासस्य च दासदासः कदा भवेयं मनसाऽऽर्द्रचित्तः । यो दुर्लभो देववरैः परात्मा स मे कथं गोचर आदिदेवः ॥
(गर्ग०, गोलोक० १ । ३२)

† जिह्वां लब्ध्वापि यः कृष्णं कीर्तनीयं न कीर्तयेत् । लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः ॥
(गर्ग०, गोलोक० २ । १)

होगा, अतः तुम उन्हींके अविनाशी एवं परम उज्ज्वल धाममें शीघ्र जाओ* ॥ ७ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—प्रभो ! आपके अतिरिक्त कोई दूसरा भी परिपूर्णतम तत्त्व है, यह मैं नहीं जानता । यदि कोई दूसरा भी आपसे उत्कृष्ट परमेश्वर है, तो उसके लोकका मुझे दर्शन कराइये ॥ ८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इस प्रकार कहने पर परिपूर्णतम भगवान् विष्णुने सम्पूर्ण देवताओंसहित ब्रह्माजीको ब्रह्माण्ड-शिखरपर विराजमान गोलोकधामका मार्ग दिखलाया । वामनजीके पैरके बायें अँगूठेसे ब्रह्माण्डके शिरोभागका भेदन हो जानेपर जो छिद्र हुआ, वह 'ब्रह्मद्रव' (नित्य अक्षय नीर) से परिपूर्ण था । सब देवता उसी मार्गसे वहाँके लिये नियत जलयानद्वारा बाहर निकले । वहाँ ब्रह्माण्डके ऊपर पहुँचकर उन सबने नीचेकी ओर उस ब्रह्माण्डको कलिङ्गबिम्ब (तूँबे) की भाँति देखा । इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से ब्रह्माण्ड उसी जलमे इन्द्रायण-फलके सदृश इधर-उधर लहरोंमें लुढ़क रहे थे । यह देखकर सब देवताओंको विस्मय हुआ । वे चकित हो गये । वहाँसे करोड़ों योजन ऊपर आठ नगर मिले, जिनके चारों ओर दिव्य चहारदीवारी शोभा बढ़ा रही थी और झुंड-के-झुंड रत्नादिमय वृक्षोंसे उन पुरियोंकी मनोरमता बढ़ गयी थी । वहीं ऊपर देवताओंने विरजानदीका सुन्दर तट देखा, जिससे विरजाकी तरंगें टकरा रही थीं । वह तटप्रदेश उज्ज्वल रेशमी वस्त्रके समान शुभ्र दिखायी देता था । दिव्य मणिमय सोपानोंसे वह अत्यन्त उद्भासित हो रहा था । तटकी शोभा देखते और आगे बढ़ते हुए वे देवता उस उत्तम नगरमें पहुँचे, जो अनन्तकोटि सूर्योंकी ज्योतिका महान् पुञ्ज जान पड़ता था । उसे देखकर देवताओंकी आँखें चौंधिया गयीं । वे उस तेजसे पराभूत हो जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये । तब भगवान् विष्णुकी आज्ञाके अनुसार उस तेजको प्रणाम करके ब्रह्माजी उसका ध्यान करने लगे । उसी ज्योतिके भीतर उन्होंने एक परम शान्तिमय साकार धाम देखा । उसमें परम अद्भुत, कमलनालके समान धवल-वर्ण हजार मुखवाले शेषनागका दर्शन करके सभी देवताओंने उन्हें प्रणाम किया । राजन् ! उन शेषनागकी गोदमें महान् आलोकमय लोक-वन्दित गोलोकधामका दर्शन हुआ, जहाँ धामाभिमानी देवताओंके ईश्वर तथा गणनाशीलोंमें प्रधान कालका भी कोई वश नहीं चलता । वहाँ माया भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकती । मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, सोलह विकार तथा महत्तत्त्व भी वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते हैं; फिर तीनों गुणोंके विषयमें तो कहना ही क्या है ! वहाँ कामदेवके समान मनोहर रूप-लावण्यशालिनी, श्यामसुन्दर-विग्रहा श्रीकृष्णपार्षदा द्वारपालका कार्य करती थीं । देवताओं-को द्वारके भीतर जानेके लिये उद्यत देख उन्होंने मना किया ॥ ९–२० ॥

तब देवता बोले—हम सभी ब्रह्मा, विष्णु, शंकर नामके लोकपाल और इन्द्र आदि देवता हैं । भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनार्थ यहाँ आये है ॥ २१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—देवताओंकी बात सुनकर उन सखियोंने, जो श्रीकृष्णकी द्वारपालिकाएँ थीं, अन्तःपुरमें जाकर देवताओंकी बात कह सुनायी । तब एक सखी, जो शतचन्द्रानना नामसे विख्यात थी, जिसके वस्त्र पीले थे और जो हाथमें बेंतकी छड़ी लिये थी, बाहर आयी और उनसे उनका अभीष्ट प्रयोजन पूछा ॥ २२–२३ ॥

शतचन्द्रानना बोली—यहाँ पधारे हुए आप सब देवता किस ब्रह्माण्डके निवासी हैं, यह शीघ्र बताइये । तब मैं भगवान् श्रीकृष्णको सूचित करनेके लिये उनके पास जाऊँगी ॥ २४ ॥

देवताओंने कहा—अहो ! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है, क्या अन्यान्य ब्रह्माण्ड भी हैं ? हमने तो उन्हें कभी नहीं देखा । शुभे ! हम तो यही जानते हैं कि एक ही ब्रह्माण्ड है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं ॥ २५ ॥

शतचन्द्रानना बोली—ब्रह्मदेव ! यहाँ तो विरजा नदीमें करोड़ों ब्रह्माण्ड इधर-उधर लुढ़क रहे हैं । उनमें भी आप-जैसे ही पृथक्-पृथक् देवता वास करते हैं । अरे ! क्या आपलोग अपना नाम-गाँवतक नहीं जानते ? जान पड़ता है—कभी यहाँ आये नहीं हैं; अपनी थोड़ी-सी

---

* श्रीभगवानुवाच

कृष्णं स्वयं त्रिगणिताण्डपतिं परेशं
साक्षादखण्डमतिदेवमतीवलीलम् ।
कार्यं कदापि न भविष्यति यं विना हि
गच्छाशु तस्य विशदं पदमव्ययं त्वम् ॥
(गर्ग०, गोलोक० २ । ७)

जानकारीमें ही हर्षसे फूल उठे हैं। जान पड़ता है, कभी घरसे बाहर निकले ही नहीं। जैसे गूलरके फलोंमें रहनेवाले कीड़े जिस फलमें रहते हैं, उसके सिवा दूसरेको नहीं जानते, उसी प्रकार आप-जैसे साधारण जन जिसमें उत्पन्न होते हैं, एकमात्र उसीको 'ब्रह्माण्ड' समझते हैं ॥ २६–२८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उपहासके पात्र बने हुए सब देवता चुपचाप खड़े रहे, कुछ बोल न सके। उन्हें चकित-से देखकर भगवान् विष्णुने कहा ॥ २९ ॥

श्रीविष्णु बोले—जिस ब्रह्माण्डमें भगवान् पृश्निगर्भका सनातन अवतार हुआ है तथा त्रिविक्रम (विराट्-रूपधारी वामन) के नखसे जिस ब्रह्माण्डमें विवर बन गया है, वहीं हम निवास करते हैं ॥ ३० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर शतचन्द्राननाने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और स्वयं भीतर चली गयी। फिर शीघ्र ही आयी और सबको अन्तःपुरमें पधारनेकी आज्ञा देकर वापस चली गयी। तदनन्तर सम्पूर्ण देवताओंने परमसुन्दर धाम गोलोकका दर्शन किया। वहाँ 'गोवर्धन' नामक गिरिराज शोभा पा रहे थे। गिरिराजका वह प्रदेश उस समय वसन्तका उत्सव मनानेवाली गोपियों और गौओंके समूहसे घिरा था, कल्पवृक्षों तथा कल्पलताओंके समुदायसे सुशोभित था और रास-मण्डल उसे मण्डित (अलंकृत) कर रहा था। वहाँ श्यामवर्णवाली उत्तम यमुना नदी स्वच्छन्द गतिसे बह रही है। तटपर बने हुए करोड़ों प्रासाद उसकी शोभा बढ़ाते हैं तथा उस नदीमें उतरनेके लिये वैदूर्यमणिकी सुन्दर सीढ़ियाँ बनी हैं। वहाँ दिव्य वृक्षों और लताओंसे भरा हुआ 'वृन्दावन' अत्यन्त शोभा पा रहा है; भाँति-भाँतिके विचित्र पक्षियों, भ्रमरों तथा वंशीवटके कारण वहाँकी सुषमा और बढ़ रही है। वहाँ सहस्रदल कमलोंके सुगन्धित परागको चारों ओर पुनः-पुनः बिखेरती हुई शीतल वायु मन्द गतिसे बह रही है। वृन्दावनके मध्यभागमें बत्तीस वनोंसे युक्त एक 'निज निकुञ्ज' है। चहारदीवारियाँ और खाइयाँ उसे सुशोभित कर रही हैं। उसके आँगनका भाग लाल वर्णवाले अक्षयवटोंसे अलंकृत है। पद्मरागादि सात प्रकारकी मणियोंसे बनी दीवारें तथा आँगनके फर्श बड़ी शोभा पाते हैं। करोड़ों चन्द्रमाओंके मण्डलकी छबि धारण करनेवाले चँदोवे उसे अलंकृत कर रहे हैं तथा उनमें चमकीले गोले लटक रहे हैं। फहराती हुई दिव्य पताकाएँ एवं खिले हुए फूल मन्दिरों एवं मार्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ भ्रमरोंके गुञ्जारव संगीतकी सृष्टि करते हैं तथा मत्त मयूरों और कोकिलोंके कलरव सदा श्रवणगोचर होते हैं। वहाँ बालसूर्यके सदृश कान्तिमान् अरुण-पीत कुण्डल धारण करनेवाली ललनाएँ शत-शत चन्द्रमाओंके समान गौरवर्णसे उद्भासित होती हैं। स्वच्छन्द गतिसे चलनेवाली वे सुन्दरियाँ मणिरत्नमय भित्तियोंमें अपना मनोहर मुख देखती हुई वहाँके रत्नजटित आँगनोंमें भागती फिरती हैं। उनके गलेमें हार और बाँहोंमें केयूर शोभा देते हैं। नूपुरों तथा करधनीकी मधुर झनकार वहाँ गूँजती रहती है। वे गोपाङ्गनाएँ मस्तकपर चूडामणि धारण किये रहती हैं। वहाँ द्वार-द्वारपर कोटि-कोटि मनोहर गौओंके दर्शन होते हैं। वे गौएँ दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं और श्वेत पर्वतके समान प्रतीत होती हैं। सब-की-सब दूध देनेवाली तथा नयी अवस्थाकी हैं। सुशीला, सुरूपा तथा सद्गुणवती हैं। सभी सवत्सा और पीली पूँछकी हैं। ऐसी भव्य रूपवाली गौएँ वहाँ सब ओर विचर रही हैं। उनके घंटों तथा मञ्जीरोंसे मधुर ध्वनि होती रहती है। किङ्किणीजालोंसे विभूषित उन गौओंके सींगोंमें सोना मढ़ा गया है। वे सुवर्ण-तुल्य हार एवं मालाएँ धारण करती हैं। उनके अङ्गोंसे प्रभा छिटकती रहती है। सभी गौएँ भिन्न-भिन्न रंगवाली हैं—कोई उजली, कोई काली, कोई पीली, कोई लाल, कोई हरी, कोई ताँबेके रंगकी और कोई चितकबरे रंगकी हैं। किन्हीं-किन्हींका वर्ण धुँए-जैसा है। बहुत-सी कोयलके समान रंगवाली हैं। दूध देनेमें समुद्रकी तुलना करनेवाली उन गायोंके शरीरपर तरुणियोंके कर-चिह्न शोभित हैं, अर्थात् युवतियोंके हाथोंके रंगीन छापे दिये गये हैं। हिरनके समान छलाँग भरनेवाले बछड़ोंसे उनकी अधिक शोभा बढ़ गयी है। गायोंके झुंडमें विशाल शरीरवाले साँड़ भी इधर-उधर घूम रहे हैं। उनकी लंबी गर्दन और बड़े-बड़े सींग हैं। उन साँड़ोंको साक्षात् धर्मधुरंधर कहा जाता है। गौओंकी रक्षा करनेवाले चरवाहे भी अनेक हैं। उनमेंसे कुछ तो हाथमें बेंतकी छड़ी लिये हुए हैं और दूसरोंके हाथोंमें सुन्दर बाँसुरी शोभा पाती है। उन सबके शरीरका रंग श्यामल है। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाएँ ऐसे मधुर स्वरोंमें गाते हैं कि उसे सुनकर कामदेव भी मोहित हो जाता है ॥ ३१–४८ ॥

इस 'दिव्य निज निकुञ्ज'को सम्पूर्ण देवताओंने प्रणाम किया और भीतर चले गये। वहाँ उन्हें हजार दलवाला एक बहुत बड़ा कमल दिखायी पड़ा। वह ऐसा सुशोभित था, मानो प्रकाशका पुञ्ज हो। उसके ऊपर एक सोलह दलका कमल है तथा उसके ऊपर भी एक आठ दलवाला कमल है। उसके ऊपर चमचमाता हुआ एक ऊँचा सिंहासन है। तीन सीढ़ियोंसे सम्पन्न वह परम दिव्य सिंहासन कौस्तुभ-मणियोंसे जटित होकर अनुपम शोभा पाता है। उसीपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्रीराधिकाजीके साथ विराजमान हैं। ऐसी झाँकी उन समस्त देवताओंको मिली। वे युगलरूप भगवान् मोहिनी आदि आठ दिव्य सखियोंसे समन्वित तथा श्रीदामा प्रभृति आठ गोपालोंके द्वारा सेवित हैं। उनके ऊपर हंसके समान सफेद रंगवाले पंखे झले जा रहे हैं और हीरोंसे बनी मूँठवाले चँवर डुलाये जा रहे हैं। भगवान्‌की सेवामें करोड़ों ऐसे छत्र प्रस्तुत हैं, जो कोटि चन्द्रमाओंकी प्रभासे तुलित हो सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके वामभागमें विराजित श्रीराधिकाजीसे उनकी बायीं भुजा सुशोभित है। भगवान्‌ने स्वेच्छापूर्वक अपने दाहिने पैरको टेढ़ा कर रक्खा है। वे हाथमें बाँसुरी धारण किये हुए हैं। उन्होंने मनोहर मुसकानसे भरे मुखमण्डल और भ्रुकुटिविलाससे अनेक कामदेवोंको मोहित कर रक्खा है। उन श्रीहरिकी मेघके समान श्यामल कान्ति है। कमल-दलकी भाँति बड़ी विशाल उनकी आँखें हैं। घुटनोंतक लंबी बड़ी भुजाओंवाले वे प्रभु अत्यन्त पीले वस्त्र पहने हुए हैं। भगवान् गलेमें सुन्दर वनमाला धारण किये हुए हैं, जिसपर वृन्दावनमें विचरण करनेवाले मतवाले भ्रमरोंकी गुंजार हो रही है। पैरोंमें घुँघरू और हाथोंमें कङ्कणकी छटा छिटका रहे हैं। अति सुन्दर मुसकान मनको मोहित कर रही है। श्रीवत्सका चिह्न, बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए किरीट, कुण्डल, बाजूबंद और हार यथास्थान भगवान्‌की शोभा बढ़ा रहे हैं।* भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे दिव्य दर्शन प्राप्तकर सम्पूर्ण देवता आनन्दके समुद्रमें गोता खाने लगे। अत्यन्त हर्षके कारण उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। तब सम्पूर्ण देवताओंने हाथ जोड़कर विनीतभावसे उन परम पुरुष श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम किया ॥ ४९—५७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगोलोकधामका वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें श्रीविष्णु आदिका प्रवेश; देवताओंद्वारा भगवान्‌की स्तुति; भगवान्‌का अवतार लेनेका निश्चय; श्रीराधाकी चिन्ता और भगवान्‌का उन्हें सान्त्वना-प्रदान

श्रीजनकजीने पूछा—मुने! परात्पर महात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन प्राप्तकर सम्पूर्ण देवताओंने आगे क्या किया, मुझे यह बतानेकी कृपा करें ॥ १ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस समय सबके

---

* ज्योतिषां मण्डलं पद्मं सहस्रदलशोभितम् ॥
तदूर्ध्वं षोडशदलं ततोऽष्टदलपङ्कजम् । तस्योपरि स्फुरद्दीर्घं सोपानत्रयमण्डितम् ॥
सिंहासनं परं दिव्यं कौस्तुभैः खचितं शुभम् । ददृशुर्देवतास्तत्र श्रीकृष्णं राधया युतम् ॥
दिव्यैरष्टसखीसंघैर्मोहिन्यादिभिरन्वितम् । श्रीदामाद्यैः सेव्यमानमष्टगोपालसेवितम् ॥
हंसाभैर्व्यजनान्दोलच्चामरैर्वज्रमुष्टिभिः । कोटिचन्द्रप्रतीकाशैः सेवितं छत्रकोटिभिः ॥
श्रीराधिकालंकृतवामबाहुं स्वच्छन्दवक्रीकृतदक्षिणाङ्घ्रिम् ।
वंशीधरं सुन्दरमन्दहासं भ्रूमण्डलामोहितकामराशिम् ॥
घनप्रभं पद्मदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं बहुपीतवाससम् ।
वृन्दावनोन्मत्तमिलिन्दशब्दैर्विराजितं श्रीवनमालया हरिम् ॥
काञ्चीकलाकङ्कणनूपुरद्युतिं लसन्मनोहारिमहोज्ज्वलस्मितम् ।
श्रीवत्सरत्नोत्तमकुन्तलप्रियं किरीटहाराङ्गदकुण्डलत्विषम् ॥
(गर्ग०, गोलोक० ४९—५६)

गोलोकधाममें श्रीराधाकृष्णकी दिव्य झाँकी

[गोलोकखण्ड. अ० ८

देखते-देखते अष्ट भुजाधारी वैकुण्ठाधिपति भगवान् श्रीहरि उठे और साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें लीन हो गये। उसी समय कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी, प्रचण्ड-पराक्रमी पूर्णस्वरूप भगवान् नृसिंहजी पधारे और भगवान् श्रीकृष्णके तेजमें वे भी समा गये। इसके बाद सहस्र भुजाओंसे सुशोभित, श्वेतद्वीपके स्वामी विराट् पुरुष, जिनके शुभ्र रथमें सफेद रंगके लाख घोड़े जुते हुए थे, उस रथपर आरूढ़ होकर वहाँ आये। उनके साथ श्रीलक्ष्मीजी भी थीं। वे अनेक प्रकारके अपने आयुधोंसे सम्पन्न थे। पार्षदगण चारों ओरसे उनकी सेवामें उपस्थित थे। वे भगवान् भी उसी समय श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें सहसा प्रविष्ट हो गये। फिर वे पूर्णस्वरूप कमललोचन भगवान् श्रीराम स्वयं वहाँ पधारे। उनके हाथमें धनुष और बाण थे तथा साथमें श्रीसीताजी और भरत आदि तीनों भाई भी थे। उनका दिव्य रथ दस करोड़ सूर्योंके समान प्रकाशमान था। उसपर निरन्तर चँवर डुलाये जा रहे थे। असंख्य वानरयूथपति उनकी रक्षाके कार्यमें संलग्न थे। उस रथके एक लाख चक्कोंसे मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि निकल रही थी। उसपर लाख ध्वजाएँ फहरा रही थीं। उस रथमें लाख घोड़े जुते हुए थे। वह रथ सुवर्णमय था। उसीपर बैठकर भगवान् श्रीराम वहाँ पधारे थे। वे भी श्रीकृष्णचन्द्रके दिव्य विग्रहमें लीन हो गये। फिर उसी समय साक्षात् यज्ञनारायण श्रीहरि वहाँ पधारे, जो प्रलयकालकी जाज्वल्यमान अग्निशिखाके समान उद्भासित हो रहे थे। देवेश्वर यज्ञ अपनी धर्मपत्नी दक्षिणाके साथ ज्योतिर्मय रथपर बैठे दिखायी देते थे। वे भी उस समय श्यामविग्रह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लीन हो गये। तत्पश्चात् साक्षात् भगवान् नर-नारायण वहाँ पधारे। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्याम थी। उनके चार भुजाएँ थीं, नेत्र विशाल थे और वे मुनिके वेषमें थे। उनके सिरका जटा-जूट कौंधती हुई करोड़ों बिजलियोंके समान दीप्तिमान् था। उनका दीप्ति-मण्डल सब ओर उद्भासित हो रहा था। दिव्य मुनीन्द्र-मण्डलोंसे मण्डित वे भगवान् नारायण अपने अखण्डित ब्रह्मचर्यसे शोभा पाते थे। राजन्! सभी देवता आश्चर्ययुक्त मनसे उनकी ओर देख रहे थे; किंतु वे भी श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णमें तत्काल लीन हो गये। इस प्रकारके विलक्षण दिव्य दर्शन प्राप्तकर सम्पूर्ण देवताओंको महान् आश्चर्य हुआ। उन सबको यह भलीभाँति ज्ञात हो गया कि परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं परिपूर्णतम भगवान् हैं। तब वे उन परमप्रभुकी स्तुति करने लगे॥ २-१४॥

देवता बोले—जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष, परसे भी पर, यज्ञोंके स्वामी, कारणके भी परम कारण, परिपूर्णतम परमात्मा और साक्षात् गोलोकधामके अधिवासी हैं, इन परम पुरुष श्रीराधावरको हम सादर नमस्कार करते हैं। योगेश्वर लोग कहते हैं कि आप परम तेजःपुञ्ज हैं; शुद्ध अन्तःकरणवाले भक्तजन ऐसा मानते हैं कि आप लीला-विग्रह धारण करनेवाले अवतारी पुरुष हैं; परंतु हमलोगोंने आज आपके जिस स्वरूपको जाना है, वह अद्वैत—सबसे अभिन्न एक अद्वितीय है; अतः आप महत्तम तत्त्वों एवं महात्माओंके भी अधिपति हैं; आप परब्रह्म परमेश्वरको हमारा नमस्कार है। कितने विद्वानोंने व्यञ्जना, लक्षणा और स्फोटद्वारा आपको जानना चाहा; किंतु फिर भी वे आपको पहचान न सके; क्योंकि आप निर्दिष्ट भावसे रहित हैं। अतः मायासे निर्लेप आप निर्गुण ब्रह्मकी हम शरण ग्रहण करते हैं। किन्हींने आपको 'ब्रह्म' माना है, कुछ दूसरे लोग आपके लिये 'काल' शब्दका व्यवहार करते हैं। कितनोंकी ऐसी धारणा है कि आप शुद्ध 'प्रशान्त' स्वरूप हैं तथा कतिपय मीमांसक लोगोंने तो यह मान रक्खा है कि पृथ्वीपर आप 'कर्म'रूपसे विराजमान हैं। कुछ प्राचीनोंने 'योग' नामसे तथा कुछने 'कर्ता'के रूपमें आपको स्वीकार किया है। इस प्रकार सबकी परस्पर विभिन्न ही उक्तियाँ हैं। अतएव कोई भी आपको वस्तुतः नहीं जान सका। (कोई भी यह नहीं कह सकता कि आप यही हैं, 'ऐसे ही' हैं।) अतः आप (अनिर्देश्य, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय) भगवान्की हमने शरण ग्रहण की है। भगवन्! आपके चरणोंकी सेवा अनेक कल्याणोंको देनेवाली है। उसे छोड़कर जो तीर्थ, यज्ञ और तपका आचरण करते हैं, अथवा ज्ञानके द्वारा जो प्रसिद्ध हो गये हैं; उन्हें बहुत-से विघ्नोंका सामना करना पड़ता है; वे सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। भगवन्! अब हम आपसे क्या निवेदन करें, आपसे तो कोई भी बात छिपी नहीं है; क्योंकि आप चराचरमात्रके भीतर विद्यमान हैं। जो शुद्ध अन्तःकरणवाले एवं देहबन्धनसे मुक्त हैं, वे (हम विष्णु आदि) देवता भी आपको नमस्कार ही करते हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तम भगवान्को हमारा प्रणाम है। जो श्रीराधिकाजीके हृदयको सुशोभित करनेवाले चन्द्रहार

हैं, गोपियोंके नेत्र और जीवनके मूल आधार हैं तथा ध्वजाकी भाँति गोलोकधामको अलंकृत कर रहे हैं, वे आदिदेव भगवान् आप संकटमें पड़े हुए हम देवताओंकी रक्षा करें, रक्षा करें। भगवन्! आप वृन्दावनके स्वामी हैं, गिरिराजपति भी कहलाते हैं। आप व्रजके अधिनायक हैं, गोपालके रूपमें अवतार धारण करके अनेक प्रकारकी नित्य विहार-लीलाएँ करते हैं। श्रीराधिकाजीके प्राणवल्लभ एवं श्रुतिधरोंके भी आप स्वामी हैं। आप ही गोवर्धनधारी हैं, अब आप धर्मके भारको धारण करनेवाली इस पृथ्वीका उद्धार करनेकी कृपा करें* ॥ १५–२२॥

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करनेपर गोकुलेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रणाम करते हुए देवताओं-को सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—॥ २३॥

श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा—ब्रह्मा, शंकर एवं (अन्य) देवताओ! तुम सब मेरी बात सुनो। मेरे आदेशानुसार तुमलोग अपने अंशोंसे देवियोंके साथ यदुकुलमें जन्म धारण करो। मैं भी अवतार लूँगा और मेरे द्वारा पृथ्वीका भार दूर होगा। मेरा वह अवतार यदुकुलमें होगा और मैं तुम्हारे सब कार्य सिद्ध करूँगा। वेद मेरी वाणी, ब्राह्मण मुख और गौ शरीर है। सभी देवता मेरे अङ्ग हैं। साधुपुरुष तो हृदयमें वास करनेवाले मेरे प्राण ही हैं। अतः प्रत्येक युगमें जब दम्भपूर्ण दुष्टोंद्वारा इन्हें पीड़ा होती है और धर्म, यज्ञ तथा दयापर भी आघात पहुँचता है, तब मैं स्वयं अपने आपको भूतलपर प्रकट करता हूँ ॥ २४–२७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—जिस समय जगत्पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी क्षण 'अब प्राणनाथसे मेरा वियोग हो जायगा' यह समझकर श्रीराधिकाजी व्याकुल हो गयीं और दावानलसे दग्ध लताकी भाँति मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। उनके शरीरमें अश्रु, कम्प, रोमाञ्च आदि सात्त्विक भावोंका उदय हो गया ॥ २८॥

श्रीराधिकाजीने कहा—आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भूमण्डलपर अवश्य पधारें; परंतु मेरी एक प्रतिज्ञा है, उसे भी सुन लें—प्राणनाथ! आपके चले जानेपर एक क्षण भी मैं यहाँ जीवन धारण नहीं कर सकूँगी। यदि आप मेरी इस प्रतिज्ञापर ध्यान नहीं दे रहे हैं तो मैं दुबारा भी कह रही हूँ। अब मेरे प्राण अधरतक पहुँचनेको अत्यन्त विह्वल हैं। ये इस शरीरसे वैसे ही उड़ जायँगे, जैसे कपूरके धूलिकण ॥ २९-३०॥

---

* श्रीदेवा ऊचुः—

कृष्णाय पूर्णपुरुषाय परात्पराय
यज्ञेश्वराय परकारणकारणाय।
राधावराय परिपूर्णतमाय साक्षाद्
गोलोकधामधिषणाय नमः परस्मै॥
योगेश्वराः किल वदन्ति महः परं त्वां
तत्रैव सात्वतजनाः कृतविग्रहं च।
अस्माभिरद्य विदितं यददोऽद्वयं ते
तस्मै नमोऽस्तु महतां पतये परस्मै॥
व्याख्येन वा न न हि लक्षणया कदापि
स्फोटेन यच्च कवयो न विशन्ति मुख्याः।
निर्देश्यभावरहितं प्रकृतेः परं च
त्वां ब्रह्म निर्गुणमलं शरणं व्रजामः॥
त्वां ब्रह्म केचिदवयन्ति परे च कालं
केचित् प्रशान्तमपरे भुवि कर्मरूपम्।
पूर्वे च योगमपरे किल कर्तृभाव-
मन्योक्तिभिर्न विदितं शरणं गताः स्मः॥
श्रेयस्करीं भगवतस्तव पादसेवां
हित्वाथ तीर्थयजनादि तपश्चरन्ति।
ज्ञानेन ये च विदिता बहुविघ्नसंघैः
संताडिताः किल भवन्ति न ते कृतार्थाः॥
विज्ञाप्यमद्य किमु देव अशेषसाक्षी
यः सर्वभूतहृदयेषु विराजमानः।
देवैर्नमद्भिरमलाशयमुक्तदेहै-
स्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय॥
यो राधिकाहृदयसुन्दरचन्द्रहारः
श्रीगोपिकानयनजीवनमूलहारः।
गोलोकधामधिषणध्वज आदिदेवः
स त्वं विपत्सु विबुधान् परिपाहि पाहि॥
वृन्दावनेश गिरिराजपते व्रजेश
गोपालवेषकृत नित्यविहारलील।
राधापते श्रुतिधराधिपते धरां त्वं
गोवर्धनोद्धरण उद्धर धर्मधाराम्॥
(गर्ग०, गोलोक० ३। १५—२२)

श्रीभगवान् बोले—राधिके ! तुम विषाद मत करो । मैं तुम्हारे साथ चलूँगा और पृथ्वीका भार दूर करूँगा । मेरे द्वारा तुम्हारी बात अवश्य पूर्ण होगी ॥ ३१ ॥

श्रीराधिकाजीने कहा—(परंतु) प्रभो ! जहाँ वृन्दावन नहीं है, यमुना नदी नहीं है और गोवर्धन पर्वत भी नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिलता ॥ ३२ ॥

नारदजी कहते हैं—(श्रीराधिकाजीके इस प्रकार कहनेपर) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने धामसे चौरासी कोस भूमि, गोवर्धन पर्वत एवं यमुना नदीको भूतलपर भेजा । उस समय सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माजीने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार प्रणाम करके कहा ॥३३-३४॥

श्रीब्रह्माजीने पूछा—भगवन् ! मेरे लिये कौन स्थान होगा ? आप कहाँ पधारेंगे ? तथा ये सम्पूर्ण देवता किन गृहोंमें रहेंगे और किन-किन नामोंसे इनकी प्रसिद्धि होगी ? ॥ ३५ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—मैं स्वयं वसुदेव और देवकीके यहाँ प्रकट होऊँगा । मेरे कलास्वरूप ये 'शेष' रोहिणीके गर्भसे जन्म लेंगे—इसमें संशय नहीं है । साक्षात् 'लक्ष्मी' राजा भीष्मकके घर पुत्रीरूपसे उत्पन्न होंगी । इनका नाम 'रुक्मिणी' होगा और 'पार्वती' 'जाम्बवती'के नामसे प्रकट होंगी । यज्ञपुरुषकी पत्नी 'दक्षिणा देवी' वहाँ 'लक्ष्मणा' नाम धारण करेंगी । यहाँ जो 'विरजा' नामकी नदी है, वही 'कालिन्दी' नामसे विख्यात होगी । भगवती 'लज्जा' का नाम 'भद्रा' होगा । समस्त पापोंका प्रशमन करनेवाली 'गङ्गा' 'मित्रविन्दा' नाम धारण करेगी । जो इस समय 'कामदेव' हैं, वे ही रुक्मिणीके गर्भसे 'प्रद्युम्न' रूपमें उत्पन्न होंगे । प्रद्युम्नके घर तुम्हारा अवतार होगा । उस समय तुम्हें 'अनिरुद्ध' कहा जायगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । ये 'वसु' जो 'द्रोण'के नामसे प्रसिद्ध हैं, व्रजमें 'नन्द' होंगे और स्वयं इनकी प्राणप्रिया 'धरा देवी' 'यशोदा' नाम धारण करेंगी । 'सुचन्द्र' 'वृषभानु' बनेंगे तथा इनकी सहधर्मिणी 'कलावती' धराधामपर 'कीर्ति'के नामसे प्रसिद्ध होंगी । फिर उन्हींके यहाँ इन श्रीराधिकाजीका प्राकट्य होगा । मैं व्रजमण्डलमें गोपियोंके साथ सदा रासविहार करूँगा ॥ ३६-४१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'भूतलपर अवतीर्ण होनेके उद्योगका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

नन्द आदिके लक्षण; गोपीयूथका परिचय; श्रुति आदिके गोपीभावकी प्राप्तिमें कारणभूत पूर्वप्राप्त वरदानोंका विवरण

भगवान्ने कहा—ब्रह्मन् ! 'सुबल' और 'श्रीदामा' नामके मेरे सखा नन्द तथा उपनन्दके घरपर जन्म धारण करेंगे । इसी प्रकार और भी मेरे सखा हैं, जिनके नाम 'स्तोककृष्ण', 'अर्जुन' एवं 'अंशु' आदि हैं, वे सभी नौ नन्दोंके यहाँ प्रकट होंगे । व्रजमण्डलमें जो छः वृषभानु हैं, उनके गृहमें विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरूथप नामके मेरे सखा अवतीर्ण होंगे ॥ १-२ ॥

श्रीब्रह्माजीने पूछा—देवेश्वर ! किसे 'नन्द' कहा जाता है और किसे 'उपनन्द' तथा 'वृषभानु'के क्या लक्षण हैं ? ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—जो गोशालाओंमें सदा गौओंका पालन करते रहते हैं एवं गो-सेवा ही जिनकी जीविका है, उन्हें मैंने 'गोपाल' संज्ञा दी है । अब तुम उनके लक्षण सुनो । गोपालोंके साथ नौ लाख गायोंके स्वामीको 'नन्द' कहा जाता है । पाँच लाख गौओंका स्वामी 'उपनन्द' पदको प्राप्त करता है । 'वृषभानु' नाम उसका पड़ता है, जिसके अधिकारमें दस लाख गौएँ रहती हैं । ऐसे ही जिसके यहाँ एक करोड़ गौओंकी रक्षा होती है, वह 'नन्दराज' कहलाता है । पचास लाख गौओंके अध्यक्षकी 'वृषभानुवर' संज्ञा है । 'सुचन्द्र' और 'द्रोण'—ये दो ही व्रजमें इस प्रकारके सम्पूर्ण लक्षणोंसे सम्पन्न गोपराज बनेंगे और

मेरे दिव्य व्रजमें सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाली शतचन्द्रानना गोप-सुन्दरियोंके सौ यूथ होंगे॥ ४–८ ॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—भगवन् ! आप दीनजनोंके बन्धु और जगत्के कारण (प्रकृति) के भी कारण हैं। प्रभो ! अब आप मेरे समक्ष यूथके सम्पूर्ण लक्षणोंका वर्णन कीजिये ॥ ९॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्माजी ! मुनियोंने दस कोटिको एक 'अर्बुद' कहा है। जहाँ दस अर्बुद होते हैं, उसे 'यूथ' कहा जाता है। यहाँकी गोपियोंमें कुछ गोलोकवासिनी हैं, कुछ द्वारपालिका हैं, कुछ शृङ्गार-साधनोंकी व्यवस्था करनेवाली हैं और कुछ शय्या सँवारनेमें संलग्न रहती हैं। कई तो पार्षदकोटिमें आती और कुछ गोपियाँ श्रीवृन्दावनकी देख-रेख किया करती हैं। कुछ गोपियोंका गोवर्धन गिरिपर निवास है। कई गोपियाँ कुञ्जवनको सजाती-सँवारती हैं तथा बहुतेरी गोपियाँ मेरे निकुञ्जमें रहती हैं। इन सबको मेरे व्रजमें पधारना होगा। ऐसे ही यमुना-गङ्गाके भी यूथ हैं। इसी प्रकार रमा, मधुमाधवी, विरजा, ललिता, विशाखा एवं मायाके यूथ होंगे। ब्रह्माजी ! इसी प्रकार मेरे व्रजमें आठ, सोलह और बत्तीस सखियोंके भी यूथ होंगे। पूर्वके अनेक युगोंमें जो श्रुतियाँ, मुनियोंकी पत्नियाँ, अयोध्याकी महिलाएँ, यज्ञमें स्थापित की हुई सीता, जनकपुर एवं कोसलदेशकी निवासिनी सुन्दरियाँ तथा पुलिन्द-कन्याएँ थीं तथा जिनको मैं पूर्ववर्ती युग-युगमें वर दे चुका हूँ, ये सब मेरे पुण्यमय व्रजमें गोपीरूपमें पधारेंगी और उनके भी यूथ होंगे ॥ १०—१७ ॥

श्रीब्रह्माजीने पूछा—पुरुषोत्तम ! इन स्त्रियोंने कौन-सा पुण्य-कार्य किया है तथा इन्हें कौन-कौन-से वर मिल चुके हैं, जिनके फलस्वरूप ये व्रजमें निवास करेंगी ! कारण, आपका वह स्थान तो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है ॥ १८ ॥

श्रीभगवान् बोले—पूर्वकालमें श्रुतियोंने श्वेतद्वीपमें जाकर वहाँ मेरे स्वरूपभूत भूमा (विराट् पुरुष या परब्रह्म)-का मधुर वाणीमें स्तवन किया। तब सहस्रपाद विराट् पुरुष प्रसन्न हो गये और बोले ॥ १९ ॥

श्रीहरिने कहा—श्रुतियो ! तुम्हें जो भी पानेकी इच्छा हो, वह वर माँग लो। जिनके ऊपर मैं स्वयं प्रसन्न हो गया, उनके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है ? ॥२०॥

श्रुतियाँ बोलीं—भगवन् ! आप मन-वाणीसे नहीं जाने जा सकते; अतः हम आपको जाननेमें असमर्थ हैं। पुराणवेत्ता ज्ञानीपुरुष यहाँ जिसे केवल 'आनन्दमात्र' बताते हैं, अपने उसी रूपका हमें दर्शन कराइये। प्रभो ! यदि आप हमें वर देना चाहते हों तो यही दीजिये ॥२१॥

श्रुतियोंकी ऐसी बात सुनकर भगवान्ने उन्हें अपने दिव्य गोलोकधामका दर्शन कराया, जो प्रकृतिसे परे है। वह लोक ज्ञानानन्दस्वरूप, अविनाशी तथा निर्विकार है। वहाँ 'वृन्दावन' नामक वन है, जो कामपूरक कल्पवृक्षोंसे सुशोभित है। मनोहर निकुञ्जोंसे सम्पन्न वह वृन्दावन सभी ऋतुओंमें सुखदायी है। वहाँ सुन्दर झरनों और गुफाओंसे सुशोभित 'गोवर्धन' नामक गिरि है। रत्न एवं धातुओंसे भरा हुआ वह श्रीमान् पर्वत सुन्दर पक्षियोंसे आवृत है। वहाँ स्वच्छ जलवाली श्रेष्ठ नदी 'यमुना' भी लहराती है। उसके दोनों तट रत्नोंसे बँधे हैं। हंस और कमल आदिसे वह सदा व्याप्त रहती है। वहाँ विविध रास-रङ्गसे उन्मत्त गोपियोंका समुदाय शोभा पाता है। उसी गोपी-समुदायके मध्यभागमें किशोर वयसे सुशोभित भगवान् श्रीकृष्ण विराजते हैं। उन श्रुतियोंको इस प्रकार अपना लोक दिखाकर भगवान् बोले—'कहो, तुम्हारे लिये अब क्या करूँ ? तुमने मेरा यह लोक तो देख ही लिया, इससे उत्तम दूसरा कोई वर नहीं है' ॥२२–२७॥

श्रुतियोंने कहा—प्रभो ! आपके करोड़ों कामदेवोंके समान मनोहर श्रीविग्रहको देखकर हममें कामिनी-भाव आ गया है और हमें आपसे मिलनेकी उत्कट इच्छा हो रही है ! हम विरह-ताप संतप्त हैं—इसमें संदेह नहीं है। अतः आपके लोकमें रहनेवाली गोपियाँ आपका सङ्ग पानेके लिये जैसे आपकी सेवा करती हैं, हमारी भी वैसी ही अभिलाषा है ॥ २८-२९ ॥

श्रीहरि बोले—श्रुतियो ! तुमलोगोंका यह मनोरथ दुर्लभ एवं दुर्घट है; फिर भी मैं इसका भलीभाँति अनुमोदन कर चुका हूँ, अतः वह सत्य होकर रहेगा। आगे होनेवाली सृष्टिमें जब ब्रह्मा जगत्की रचनामें संलग्न होंगे, उस समय सारस्वत-कल्प बीतनेपर तुम सभी श्रुतियाँ व्रजमें गोपियाँ होओगी। भूमण्डलपर भारतवर्षमें मेरे माथुरमण्डलके अन्तर्गत वृन्दावनमें रासमण्डलके भीतर मैं तुम्हारा प्रियतम बनूँगा। तुम्हारा मेरे प्रति सुदृढ़

प्रेम होगा, जो सब प्रेमोंसे बढ़कर है। तब तुम सब श्रुतियाँ मुझे पाकर सफल-मनोरथ होओगी ॥ ३०–३३ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्माजी! पूर्व कल्पमें मैंने वर दे दिया है, उसीके प्रभावसे वे श्रुतियाँ व्रजमें गोपियाँ होंगी। अब अन्य गोपियोंके लक्षण सुनो ॥ ३४ ॥

त्रेतायुगमें देवताओंकी रक्षा और राक्षसोंका संहार करनेके लिये मेरे स्वरूपभूत महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी अवतीर्ण हुए थे। कमललोचन श्रीरामने सीताके स्वयंवरमें जाकर धनुष तोड़ा और उन जनकनन्दिनी श्रीसीताजीके साथ विवाह किया। ब्रह्माजी! उस अवसरपर जनकपुरकी स्त्रियाँ श्रीरामको देखकर प्रेमविह्वल हो गयीं। उन्होंने एकान्तमें उन महाभागसे अपना अभिप्राय प्रकट किया—'राघव! आप हमारे परम प्रियतम बन जायँ।' तब श्रीरामने कहा—'सुन्दरियो! तुम शोक मत करो। द्वापरके अन्तमें मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। तुमलोग परम श्रद्धा और भक्तिके साथ तीर्थ, दान, तप, शौच एवं सदाचारका भलीभाँति पालन करती रहो। तुम्हें व्रजमें गोपी होनेका सुअवसर प्राप्त होगा।' इस प्रकार वर देकर धनुर्धारी करुणानिधि श्रीरामने अयोध्याके लिये प्रस्थान कर दिया। उस समय मार्गमें अपने प्रतापसे उन्होंने भृगुकुलनन्दन परशुरामजीको परास्त कर दिया था। कोसल-जनपदकी स्त्रियोंने भी राजपथसे जाते हुए उन कमनीय-कान्ति रामको देखा। उनकी सुन्दरता कामदेवको मोहित कर रही थी। उन स्त्रियोंने श्रीरामको मन-ही-मन पतिके रूपमें वरण कर लिया। उस समय सर्वज्ञ श्रीरामने उन समस्त स्त्रियोंको मन-ही-मन वर दिया—'तुम सभी व्रजमें गोपियाँ होओगी और उस समय मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा' ॥ ३५—४२ ॥

फिर सीता और सैनिकोंके साथ रघुनाथजी अयोध्या पधारे। यह सुनकर अयोध्यामें रहनेवाली स्त्रियाँ उन्हें देखनेके लिये आयीं। श्रीरामको देखकर उनका मन मुग्ध हो गया। वे प्रेमसे विह्वल हो मूर्च्छित-सी हो गयीं। फिर वे श्रीरामके व्रतमें परायण होकर सरयूके तटपर तपस्या करने लगीं। तब उनके सामने आकाशवाणी हुई—'द्वापरके अन्तमें यमुनाके किनारे वृन्दावनमें तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे, इसमें संदेह नहीं है' ॥ ४३—४५ ॥

जिस समय श्रीरामने पिताकी आज्ञासे दण्डकवनकी यात्रा की, सीता तथा लक्ष्मण भी उनके साथ थे और वे हाथमें धनुष लेकर इधर-उधर विचर रहे थे। वहीं बहुत-से मुनि थे। उनकी गोपाल-वेषधारी भगवान्‌के स्वरूपमें निष्ठा थी। रासलीलाके निमित्त वे भगवान्‌का ध्यान करते थे। उस समय श्रीरामकी युवा अवस्था थी—वे हाथमें धनुष-बाण धारण किये हुए थे। जटाओंके मुकुटसे उनकी विचित्र शोभा थी। अपने आश्रमपर पधारे हुए श्रीराममें उन मुनियोंका ध्यान लग गया। (वे ऋषिलोग गोपाल-वेषधारी भगवान्‌के उपासक थे) अतः दूसरे ही स्वरूपमें आये हुए श्रीरामको देखकर सबके मनमें अत्यन्त आश्चर्य हो गया। उनकी समाधि टूट गयी और देखा तो करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर श्रीराम दृष्टिगोचर हुए। तब वे बोल उठे—'अहो! आज हमारे गोपालजी वंशी एवं बेंतके बिना ही पधारे हैं।'—इस प्रकार मन-ही-मन विचारकर सबने श्रीरामको प्रणाम किया और उनकी उत्तम स्तुति करने लगे ॥४६–५०॥

तब श्रीरामने कहा—'मुनियो! वर माँगो।' यह सुनकर सभीने एक स्वरसे कहा—'जिस भाँति सीता आपके प्रेमको प्राप्त हैं, वैसे ही हम भी चाहते हैं' ॥ ५१ ॥

श्रीराम बोले—यदि तुम्हारी ऐसी प्रार्थना हो कि जैसे भाई लक्ष्मण हैं, वैसे ही हम भी आपके भाई बन जायँ, तब तो आज ही मेरेद्वारा तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है; किंतु तुमने तो 'सीता'के समान होनेका वर माँगा है। अतः यह वर महान् कठिन और दुर्लभ है; क्योंकि इस समय मैंने एकपत्नी-व्रत धारण कर रक्खा है। मैं मर्यादाकी रक्षामें तत्पर रहकर 'मर्यादापुरुषोत्तम' भी कहलाता हूँ। अतएव तुम्हें मेरे वरका आदर करके द्वापरके अन्तमें जन्म धारण करना होगा और वहाँ मैं तुम्हारे इस उत्तम मनोरथको पूर्ण करूँगा ॥ ५२—५४ ॥

इस प्रकार वर देकर श्रीराम स्वयं पञ्चवटी पधारे। वहाँ पर्णकुटीमें रहकर वनवासकी अवधि पूरी करने लगे। उस समय भीलोंकी स्त्रियोंने उन्हें देखा। उनमें मिलनेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न होनेके कारण वे प्रेमसे विह्वल हो गयीं। यहाँतक कि श्रीरामके चरणोंकी धूल मस्तकपर रखकर अपने प्राण छोड़नेकी तैयारी करने लगीं। उस समय श्रीराम ब्रह्मचारीके वेषमें वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'स्त्रियो! तुम व्यर्थ ही प्राण त्यागना चाहती हो; ऐसा मत करो। द्वापरके शेष होनेपर वृन्दावनमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' इस प्रकारका आदेश देकर श्रीरामका वह ब्रह्मचारी रूप वहीं अन्तर्हित हो गया ॥ ५५—५८ ॥

तत्पश्चात् श्रीरामने सुग्रीव आदि प्रधान वानरोंकी सहायतासे लङ्कामें जाकर रावण-प्रभृति राक्षसोंको परास्त किया । फिर सीताको पाकर पुष्पक विमानद्वारा अयोध्या चले गये । राजाधिराज श्रीरामने लोकापवादके कारण सीताको वनमें छोड़ दिया । अहो ! भूमण्डलपर दुर्जनोंका होना बहुत ही दुःखदायी है । जब-जब कमललोचन श्रीराम यज्ञ करते थे, तब-तब विधिपूर्वक सुवर्णमयी सीताकी प्रतिमा बनायी जाती थी । इसलिये श्रीराम-भवनमें यज्ञ-सीताओंका एक समूह ही एकत्र हो गया । वे सभी दिव्य चैतन्यघनस्वरूपा होकर श्रीरामके पास गयीं । उस समय श्रीरामने उनसे कहा—'प्रियाओ ! मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता ।' वे सभी प्रेमपरायणा सीता-मूर्तियाँ दशरथनन्दन श्रीरामसे कहने लगीं—'ऐसा क्यों ? हम तो आपकी सेवा करनेवाली हैं । हमारा नाम भी मिथिलेशकुमारी सीता है और हम उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली सतियाँ भी हैं; फिर हमें आप ग्रहण क्यों नहीं करते ? यज्ञ करते समय हम आपकी अर्धाङ्गिनी बनकर निरन्तर कार्योंका संचालन करती रही हैं । आप धर्मात्मा और वेदके मार्गका अवलम्बन करनेवाले हैं, यह अधर्मपूर्ण बात आपके श्रीमुखसे कैसे निकल रही है ? यदि आप स्त्रीका हाथ पकड़कर उसे त्यागते हैं तो आपको पापका भागी होना पड़ेगा' ॥ ५९—६५ ॥

श्रीराम बोले—सतियो ! तुमने मुझसे जो बात कही है, वह बहुत ही उचित और सत्य है । परंतु मैंने 'एकपत्नी-व्रत' धारण कर रखा है ! सभी लोग मुझे 'राजर्षि' कहते हैं । अतः नियमको छोड़ भी नहीं सकता । एकमात्र सीता ही मेरी सहधर्मिणी है । इसलिये तुम सभी द्वापरके अन्तमें श्रेष्ठ वृन्दावनमें पधारना, वहीं तुम्हारी मनःकामना पूर्ण करूँगा ॥ ६६-६७ ॥

भगवान् श्रीहरिने कहा—*ब्रह्मन् ! वे यज्ञ-सीता ही व्रजमें गोपियाँ होंगी । अन्य गोपियोंका भी लक्षण सुनो ॥ ६८ ॥*

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत भगवद्-ब्रह्म-संवादमें 'अवतारके उद्योगविषयक प्रश्नका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न स्थानों तथा विभिन्न वर्गोंकी स्त्रियोंके गोपी होनेके कारण एवं अवतार-व्यवस्थाका वर्णन

भगवान् श्रीहरि कहते हैं—वैकुण्ठमें विराजनेवाली रमादेवीकी सहचरियाँ, श्वेतद्वीपकी सखियाँ, भगवान् अजित (विष्णु) के चरणोंके आश्रित ऊर्ध्ववैकुण्ठमें निवास करनेवाली देवियाँ तथा श्रीलोकाचलपर्वतपर रहनेवाली, समुद्रसे प्रकटित श्रीलक्ष्मीकी सखियाँ—ये सभी भगवान् कमलापतिके वरदानसे व्रजमें गोपियाँ होंगी । पूर्वकृत विविध पुण्योंके प्रभावसे कोई दिव्य, कोई अदिव्य और कोई सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंसे युक्त देवियाँ व्रजमण्डलमें गोपियाँ होंगी ॥ १—३½ ॥

रुचिके यहाँ पुत्ररूपसे अवतीर्ण, त्रिलोकपति रुचिरविग्रह भगवान् यज्ञको देखकर देवाङ्गनाएँ प्रेम-रसमें निमग्न हो गयीं । तदनन्तर वे देवकजीके उपदेशसे हिमालय पर्वतपर जाकर परम भक्तिभावसे तपस्या करने लगीं । ब्रह्मन् ! वे सब मेरे व्रजमें जाकर गोपियाँ होंगी ॥ ४-५ ॥

भगवान् धन्वन्तरि जब इस भूतलपर अन्तर्धान हुए, उस समय सम्पूर्ण ओषधियाँ अत्यन्त दुःखमें डूब गयीं और भारतवर्षमें अपनेको निष्फल मानने लगीं । फिर सबने सुन्दर स्त्रीका वेष धारण करके तपस्या आरम्भ की । चार युग व्यतीत होनेपर भगवान् श्रीहरि उनपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—'तुम सब वर माँगो ।' यह सुनकर स्त्रियोंने उस महान् वनमें जब आँखें खोलीं, तब उन श्रीहरिका दर्शन करके वे सब-की-सब मोहित हो गयीं और बोलीं—'आप हमारे पतितुल्य आराध्यदेव होनेकी कृपा करें' ॥ ६—८ ॥

भगवान् श्रीहरि बोले—ओषधिस्वरूपा स्त्रियो ! द्वापरके अन्तमें तुम सभी लतारूपसे वृन्दावनमें रहोगी और वहाँ रासमें मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा ॥ ९ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन् ! भक्तिभावसे परिपूर्ण वे बड़भागिनी वराङ्गनाएँ वृन्दावनमें 'लता-गोपी' होंगी । इसी प्रकार जालंधर नगरकी स्त्रियाँ वृन्दापति भगवान्

श्रीहरिका दर्शन करके मन-ही-मन संकल्प करने लगीं—'ये साक्षात् श्रीहरि हम सबके स्वामी हों।' उस समय उनके लिये आकाशवाणी हुई—'तुम सब शीघ्र ही रमापतिकी आराधना करो; फिर वृन्दाकी ही भाँति तुम भी वृन्दावनमें भगवान्‌की प्रिया गोपी होओगी।' मत्स्यावतारके समय मत्स्यविग्रह श्रीहरिको देखकर समुद्रकी कन्याएँ मुग्ध हो गयी थीं। श्रीमत्स्यभगवान्‌के वरदानसे वे भी व्रजमें गोपियाँ होंगी ॥ १०–१४ ॥

मेरे अंशभूत राजा पृथु बड़े प्रतापी थे। उन महाराजने सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीसे सारी अभीष्ट वस्तुओंका दोहन किया था। उस समय बर्हिष्मती नगरीमें रहनेवाली बहुत-सी स्त्रियाँ उन्हें देखकर मुग्ध हो गयीं और प्रेमसे विह्वल हो अत्रिजीके पास जाकर बोलीं—'महामुने! समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ महाराजा पृथु बड़े ही पराक्रमी हैं। ये किस प्रकारसे हमारे पति होंगे? यह बतानेकी कृपा कीजिये' ॥ १५-१६ ॥

अत्रिजीने कहा—तुम सब शीघ्र ही आज इस गौको दुहो। यह सम्पूर्ण पदार्थोंको धारण करनेवाली धारणामयी धरणी देवी है। तुम्हारे सारे मनोरथोंको—चाहे वे समुद्रके समान अगाध, अपार एवं दुर्गम ही क्यों न हों,—अवश्य पूर्ण कर देंगी ॥ १७ ॥

ब्रह्मन्! तब उन स्त्रियोंने मनको दोहन-पात्र बनाकर अपने मनोरथोंका दोहन किया। इसी कारणसे वे सब-की-सब वृन्दावनमें गोपियाँ होंगी। बहुत-सी श्रेष्ठ अप्सराएँ, जिनका रूप अत्यन्त मनोहर था और जो कामदेवकी सेनाएँ थीं, भगवान् नारायण ऋषिको मोहित करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर गयीं। परंतु उन्हें देखकर वे भी अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उनके मनमें भगवान्‌को पति बनानेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी। तब सिद्धतपस्वी नारायण मुनिने कहा—'तुम व्रजमें गोपियाँ होओगी और वहीं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा' ॥ १८–२० ॥

ब्रह्मन्! सुतल देशकी स्त्रियाँ भगवान् वामनको देखकर उन्हें पानेके लिये उत्कट इच्छा प्रकट करने लगीं। फिर तो उन्होंने तपस्या आरम्भ कर दी। अतः वे भी वृन्दावनमें गोपियाँ होंगी। जिन नागराज-कन्याओंने शेषावतार भगवान्‌को देखकर उन्हें पति बनानेकी इच्छासे उनकी सेवा-समाराधना की है, वे सब बलदेवजीके साथ रास-विहार करनेके लिये व्रजमें उत्पन्न होंगी ॥ २१-२२ ॥

कश्यपजी वसुदेव होंगे। परम पूजनीया अदिति देवकीके रूपमें अवतार लेंगी। प्राण नामक वसु शूरसेन और 'ध्रुव' नामक वसु देवक होंगे। 'वसु' नामके जो वसु हैं, उनका उद्धवके रूपमें प्राकट्य होगा। दयापरायण दक्ष प्रजापति अक्रूरके रूपमें अवतार लेंगे। कुबेर हृदीक नामसे और जलके स्वामी वरुण कृतवर्मा नामसे प्रसिद्ध होंगे। पुरातन राजा प्राचीनबर्हि गद एवं मरुत देवता उग्रसेन बनेंगे। उन उग्रसेनको मैं विधानतः राजा बनाऊँगा और उनकी भलीभाँति रक्षा करूँगा। भक्त राजा अम्बरीष युयुधान और भक्तप्रवर प्रह्लाद सात्यकिके नामसे प्रकट होंगे। क्षीरसागर शंतनु होगा। वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण साक्षात् भीष्मपितामहके रूपमें उत्पन्न होंगे। दिवोदास शलके रूपमें एवं भग नामके सूर्य धृतराष्ट्रके रूपमें अवतीर्ण होंगे। पूषा नामसे विख्यात देवता पाण्डु होंगे। सत्पुरुषोंमें आदर पानेवाले धर्मराज ही राजा युधिष्ठिरके रूपमे अवतार लेंगे। वायु देवता महान् पराक्रमी भीमसेनके तथा स्वायम्भुव मनु अर्जुनके वेषमें प्रकट होंगे। शतरूपाजी सुभद्रा होंगी और सूर्यनारायण कर्णके रूपसे अवतार लेंगे। अश्विनीकुमार नकुल एवं सहदेव होंगे। धाता महान् बलशाली बाह्लीक नामसे विख्यात होंगे। अग्निदेवता महान् प्रतापी द्रोणाचार्यके रूपमें अवतार लेंगे। कलिका अंश दुर्योधन होगा। चन्द्रमा अभिमन्युके रूपमें अवतार लेंगे। पृथ्वीपर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा साक्षात् भगवान् शंकरका रूप होगा। इस प्रकार तुम सब देवता मेरी आज्ञाके अनुसार अपने अंशों और स्त्रियोंके साथ यदुवंशी, कुरुवंशी तथा अन्यान्य वंशोंके राजाओंके कुलमें प्रकट होओ। पूर्व समयमें मेरे जितने अवतार हो चुके हैं, उनकी रानियाँ रमाका अंश रही हैं। वे भी मेरी रानियोंमें सोलह हजारकी संख्यामें प्रकट होंगी ॥ २३–३२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! कमलासन ब्रह्मासे यों कहकर भगवान् श्रीहरिने दिव्यरूपधारिणी भगवती योगमायासे कहा ॥ ३३ ॥

भगवान् श्रीहरि बोले—महामते! तुम देवकीके सातवें गर्भको खींचकर उसे वसुदेवकी *पत्नी रोहिणीके गर्भमें* स्थापित कर दो। वे देवी कंसके डरसे व्रजमें नन्दके घर रहती हैं। साथ ही तुम भी ऐसे अलौकिक कार्य करके नन्दरानीके गर्भसे प्रकट हो जाना ॥ ३४-३५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—परम श्रेष्ठ राजन्! भगवान्

श्रीकृष्णके वचन सुनकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माजीने परात्पर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और अपने वचनों-द्वारा पृथ्वीदेवीको धीरज दे, वे अपने धामको चले गये। मिथिलेश्वर जनक! तुम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा समझो। कंस आदि दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ही ये इस धराधामपर पधारे हैं। शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतनी जिह्वाएँ हो जायँ, तब भी भगवान् श्रीकृष्णके असंख्य महान् गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। महाराज! जिस प्रकार पक्षीगण अपनी शक्तिके अनुसार ही आकाशमें उड़ते हैं, वैसे ही ज्ञानीजन भी अपनी मति एवं शक्तिके अनुसार ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी दिव्य लीलाओंका गायन करते हैं ॥३६—३९॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अवतार-व्यवस्थाका वर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

कालनेमिके अंशसे उत्पन्न कंसके महान् बल-पराक्रम और दिग्विजयका वर्णन

राजा बहुलाश्वने कहा—देवर्षिशिरोमणे! यह महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न कंस पहले किस दैत्यके नामसे विख्यात था? आप इसके पूर्वजन्मों और कर्मोंका विवरण मुझे सुनाइये ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! पूर्वकालमें समुद्र-मन्थनके अवसरपर महान् असुर कालनेमिने भगवान् विष्णुके साथ युद्ध किया। उस युद्धमें भगवानने उसे बलपूर्वक मार डाला। उस समय शुक्राचार्यजीने अपनी संजीवनी-विद्याके बलसे उसे पुनः जीवित कर दिया। तब वह पुनः भगवान् विष्णुसे युद्ध करनेके लिये मन-ही-मन उद्योग करने लगा। उस समय वह दानव मन्दराचल पर्वतके समीप तपस्या करने लगा। प्रतिदिन दूबका रस पीकर उसने देवेश्वर ब्रह्माकी आराधना की। देवताओंके कालमानसे सौ वर्ष बीत जानेपर ब्रह्माजी उसके पास गये। उस समय कालनेमिके शरीरमें केवल हड्डियाँ रह गयी थीं और उसपर दीमकें चढ़ गयी थीं। ब्रह्माजीने उससे कहा—'वर माँगो' ॥ २—५ ॥

कालनेमिने कहा—इस ब्रह्माण्डमें जो-जो महाबली देवता स्थित हैं, उन सबके मूल भगवान् विष्णु हैं। उन सम्पूर्ण देवताओंके हाथसे भी मेरी मृत्यु न हो ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीने कहा—दैत्य! तुमने जो यह उत्कृष्ट वर माँगा है, वह तो अत्यन्त दुर्लभ है; तथापि किसी दूसरे समय तुम्हें यह प्राप्त हो सकता है। मेरी वाणी कभी झूठी नहीं हो सकती ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन! फिर वही कालनेमि नामक असुर पृथ्वीपर उग्रसेनकी स्त्री (पद्मावती) के गर्भसे उत्पन्न हुआ। कुमारावस्थामें ही वह बड़े-बड़े पहलवानोंके साथ कुश्ती लड़ा करता था। (एक समयकी बात है—) मगधराज जरासंध दिग्विजयके लिये निकला। यमुना नदीके निकट इधर-उधर उसकी छावनी पड़ गयी। उसके पास 'कुवलयापीड' नामका एक हाथी था, जिसमे हजार हाथियोंके समान शक्ति थी। उसके गण्डस्थलसे मद चू रहा था। एक दिन उसने बहुत-सी साँकलोंको तोड़ डाला और शिविरसे बाहरकी ओर दौड़ चला। शिविरों, गृहों और पर्वतीय तटोंको तोड़ता-फोड़ता हुआ वह उस रङ्गभूमि (अखाड़े) में जा धमका, जहाँ कंस भी कुश्ती लड़ रहा था। उसके आनेपर सभी शूरवीर भाग चले। उसे आया देख कंसने उस हाथीकी सूँड़ पकड़ी और पृथ्वीपर गिरा दिया। इसके बाद कंसने कुवलयापीडको पुनः दोनों हाथोंसे पकड़कर घुमाया और जरासंधकी सेनामें, जो वहाँसे बहुत दूर थी, फेंक दिया। मगधनरेश जरासंध कंसके इस अद्भुत बलको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने 'अस्ति' तथा 'प्राप्ति' नामकी अपनी दो परम-सुन्दरी कन्याओंका विवाह उसके साथ कर दिया। उस जरापुत्रने एक अरब घोड़े, एक लाख हाथी, तीन लाख रथ और दस हजार दासियाँ कंसको दहेजमें दीं ॥८—१५॥

कंस द्वन्द्वयुद्धका प्रेमी था। अपने बाहुबलके मदसे अकेला ही द्वन्द्वयुद्धके लिये उन्मत्त रहता था। वह प्रचण्ड-पराक्रमी वीर माहिष्मतीपुरीमें गया। माहिष्मतीनरेशके पाँच पुत्र प्रख्यात मल्ल थे और मल्लयुद्धमें विजय पानेका हौसला रखते थे। उनके नाम थे—चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और

तोशल। कंसने सामनीतिका आश्रय ले प्रेमपूर्वक उनसे कहा—'तुमलोग मेरे साथ मल्लयुद्ध करो। यदि तुम्हारी विजय हो जायगी तो मैं तुम्हारा सेवक होकर रहूँगा; और कदाचित् मेरी विजय हो गयी तो तुम सबको भी मैं अपना सेवक बना लूँगा।' वहाँ जितने भी नागरिक महान् पुरुष थे, उन सबके सामने कंसने इस प्रकारकी प्रतिज्ञा की और विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले उन वीरोंके साथ मल्लयुद्ध आरम्भ कर दिया। ज्यों ही चाणूर आया, यादवेश्वर कंसने उच्चस्वरसे गर्जना करते हुए उसे पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा। उसी क्षण मुष्टिक भी वहाँ आ गया। वह रोषसे मुक्का ताने हुए था। कंसने उसे भी एक ही मुक्केसे धराशायी कर दिया। अब कूट आया, कंसने उसके दोनों पैर पकड़ लिये और जमीनपर दे मारा। फिर ताल ठोंकता हुआ शल भी दौड़कर आ पहुँचा। कंसने उसे एक ही हाथसे पकड़ा और जमीनपर पटककर घसीटने लगा। इसके बाद कंसने तोशलके दोनों हाथ बलपूर्वक पकड़ लिये और जमीनपर पटक दिया। फिर तत्काल उठाकर दस योजनकी दूरीपर फेंक दिया। इस प्रकार यादवेश्वर कंस उन सभी वीरोंको अपना सेवक बनाकर, मेरे (नारदजीके) कहनेसे उन योद्धाओंके साथ उसी क्षण श्रेष्ठ पर्वत प्रवर्षणगिरिपर जा पहुँचा। वहाँ वह वानर द्विविदको अपना अभिप्राय बताकर उसके साथ बीस दिनोंतक अविराम युद्ध करता रहा। द्विविदने पर्वतकी चट्टान उठाकर उसे कंसके मस्तकपर फेंका, किंतु कंसने उस शिलाखण्डको पकड़कर उसीके ऊपर चला दिया। तब द्विविद कंसपर मुक्केसे प्रहार करके आकाशमें उड़ गया। कंसने भी उसका पीछा करके उसे पकड़ लिया और लाकर जमीनपर पटक दिया। कंसके प्रहारसे द्विविदको मूर्च्छा आ गयी। उसकी सारी उत्साह-शक्ति जाती रही। हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं। फिर तो वह भी कंसका सेवक बन गया॥ १६—२९॥

तदनन्तर कंस द्विविदके साथ वहाँसे ऋष्यमूक-वनमें गया। वहाँ 'केशी' नामसे विख्यात एक महादैत्य रहता था, जिसकी घोड़ेके समान आकृति थी। वह बादलके समान गर्जता था। उसे मुक्कोंकी मारसे अपने वशमें करके कंस उसपर सवार हो गया। इस प्रकार वह महान् पराक्रमी कंस महेन्द्रगिरिपर जा पहुँचा। दानवराज कंसने उस पर्वतको सौ बार उखाड़कर ऊपरको उठा लिया। फिर वहाँ रहनेवाले मुनिवर परशुरामजीके, जिनके नेत्र क्रोधसे लाल थे और जो प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी थे, चरणोंमें मस्तक झुकाया और बार-बार उनकी प्रदक्षिणा की। फिर उनके दोनों चरणोंमें वह लेट गया। तब अत्यन्त उग्र दृष्टिवाले परशुरामजीकी क्रोधाग्नि शान्त हो गयी। वे बोले—'रे कीट! रे बँदरियाके बच्चे! तू मच्छरके समान तुच्छ है। तू बलके घमंडमें चूर रहनेवाला दुष्ट क्षत्रिय है। मैं आज ही तुझे मौतके मुखमें भेजता हूँ। देख, मेरे पास यह महान् धनुष है। इसकी गुरुता लाख भार (लगभग तीन लाख मन) के बराबर है। त्रिपुरासुरसे युद्धके समय भगवान् विष्णुने यह धनुष भगवान् शंकरको दिया था। फिर क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये यह शंकरजीके हाथसे मुझे प्राप्त हुआ। यदि तू इसे चढ़ा सका, तब तो कुशल है; यदि नहीं चढ़ा सका तो तेरे सारे बलका विनाश कर दूँगा।' परशुरामजीकी बात सुनकर कंसने उस धनुषको, जो सात ताड़के बराबर लंबा था, उठा लिया और परशुरामजीके देखते-देखते उसे लीलापूर्वक चढ़ा दिया। फिर कानतक खींच-खींचकर उसे सौ बार फैलाया। उसकी प्रत्यञ्चाके खींचनेसे बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान टंकार शब्द होने लगा। उसकी भीषण ध्वनिसे सातों लोकों और पातालोंके साथ पूरा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये और तारागण टूट-टूटकर जमीनपर गिरने लगे। फिर कंसने धनुषको नीचे रख दिया और परशुरामजीको बारंबार प्रणाम करके कहा—'भगवन्! मैं क्षत्रिय नहीं हूँ। मैं आपका सेवक दैत्य हूँ। आपके दासोंका दास हूँ। पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये।' कंसकी ऐसी प्रार्थना सुनकर परशुरामजी प्रसन्न हो गये। फिर वह धनुष उन्होंने कंसको ही दे दिया॥ ३०—४२॥

परशुरामजीने कहा—यह धनुष भगवान् विष्णुका है। इसे जो तोड़ देगा, वही यहाँ साक्षात् परिपूर्णतम पुरुष है। उसीके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी॥ ४३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर बलके मदसे उन्मत्त रहनेवाला कंस मुनिवर परशुरामजीको प्रणाम करके भूतलपर विचरने लगा। किन्हीं राजाओंने उसके साथ युद्ध नहीं किया—सबने उसे कर देना स्वीकार कर लिया। अब कंस समुद्रके तटपर गया। वहाँ 'अघासुर' नामक एक दानव रहता था, जो सर्पके आकारका था। वह फुफकारता और लपलपाती जीभसे चाटता-सा दिखायी देता था। वह आकर कंसको डँसने लगा। यह देख

पराक्रमी दैत्यराजने निर्भयतापूर्वक उसे पकड़ा और धरतीपर पटक दिया। फिर उसे अपने गलेकी माला बना लिया। उन दिनों पूर्वदिशावर्ती बंगदेशमें 'अरिष्ट' नामक दैत्य रहता था, जिसकी आकृति बैलके समान थी। उस दैत्यके साथ कंस इस प्रकार जा भिड़ा, जैसे एक हाथीके साथ दूसरा हाथी लड़ता है। वह दानव अपनी सींगोंसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उठाता और कंसके मस्तकपर पटक देता था। कंस भी उसी पर्वतको हाथमें लेकर अरिष्टासुरपर दे मारता था। उस युद्धमें दैत्यराज कंसने मुक्केसे अरिष्टासुरपर प्रहार किया, जिससे वह दानव मूर्च्छित हो गया। इस प्रकार उस अरिष्टासुरको पराजित करके उसके साथ ही कंस उत्तर दिशाकी ओर चल दिया। प्राग्ज्योतिषपुरके स्वामी महाबली भूमिपुत्र 'नरक'के पास जाकर युद्धार्थी कंसने उससे कहा—'दैत्येश्वर ! तुम मुझे युद्ध करनेका अवसर दो। यदि संग्राममें तुम्हारी जीत हो गयी तो मैं तुम्हारा सेवक बन जाऊँगा। साथ ही मुझे विजय प्राप्त होनेपर तुम सबको मेरा भृत्य बनना पड़ेगा' ॥ ४४—५१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! प्राग्ज्योतिषपुरमें सर्वप्रथम महापराक्रमी प्रलम्बासुर कंसके साथ इस प्रकार युद्ध करने लगा, जैसे किसी पर्वतपर एक उद्भट सिंहके साथ दूसरा उद्भट सिंह लड़ता हो। कंसने उस मल्लयुद्धमें प्रलम्बासुरको पकड़ा और पृथ्वीपर दे मारा। फिर उसे उठाकर प्राग्ज्योतिषपुरके स्वामी भौमासुरके पास फेंक दिया। तदनन्तर 'धेनुक' नामसे विख्यात दानवने आकर कंसको रोषपूर्वक पकड़ लिया। उसने दारुण बलका प्रयोग करके कंसको दूरतक पीछे हटा दिया। तब कंसने भी धेनुकासुरको बहुत दूर पीछे ढकेल दिया और सुदृढ घूँसोंसे मारकर उसके शरीरको चूर-चूर कर दिया। तदनन्तर भौमासुरकी आज्ञासे 'तृणावर्त' कंसको पकड़कर लाख योजन ऊपर आकाशमें ले गया और वहीं युद्ध करने लगा। कंसने अपनी अनन्तशक्ति लगाकर बलपूर्वक उस दैत्यको आकाशसे खींचकर पृथ्वीपर पटक दिया। उस समय तृणावर्तके मुँहसे खूनकी धार बह चली। इसके बाद महाबली 'बकासुर' आकर अपनी चोंचसे कंसको निगल जानेकी चेष्टा करने लगा। कंसने वज्रके समान कठोर मुक्केसे प्रहार करके उसे भी धराशायी कर दिया। बलवान् बकासुर फिर उठ गया। उसके पंख सफेद थे। वह मेघके समान गम्भीर गर्जना करता था। क्रोधपूर्वक उड़कर तीखी चोंचवाले उस बकासुरने कंसको निगल लिया। कंसका शरीर वज्रकी भाँति कठोर था। निगले जानेपर उसने उस दानवके गलेकी नलीको रूँध दिया। फिर महान् बली बकासुरने कण्ठ छिद जानेके कारण कंसको मुँहसे बाहर उगल दिया। तदनन्तर कंसने उस दैत्यको पकड़कर जमीनपर पटका और दोनों हाथोंसे घुमाता हुआ उसे वह युद्धभूमिमें घसीटने लगा। बकासुरकी एक बहन थी। उसका नाम था—'पूतना'। वह भी युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गयी। उसे उपस्थित देखकर कंसने हँसते हुए कहा—'पूतने ! मेरी बात सुन लो। तुम स्त्री हो, मैं तुम्हारे साथ कभी भी लड़ नहीं सकता। अब यह बकासुर मेरा भाई और तुम बहन होकर रहो।' तदनन्तर महान् पराक्रमी कंसको देखकर भौमासुरने भी पराजय स्वीकार कर ली। फिर देवताओंसे युद्ध करनेके समय सहायता प्रदान करनेके लिये वह कंसके साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव करने लगा ॥ ५२—६४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कंसके बलका वर्णन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

कंसकी दिग्विजय—शम्बर, व्योमासुर, बाणासुर, वत्सासुर, कालयवन तथा देवताओंकी पराजय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर कंस पहलेके जीते हुए प्रलम्ब आदि अन्य दैत्योंके साथ शम्बरासुरके नगरमें गया। वहाँ उसने अपना युद्ध-विषयक अभिप्राय कह सुनाया। शम्बरासुरने अत्यन्त पराक्रमी होनेपर भी कंसके साथ युद्ध नहीं किया। कंसने उन सभी अत्यन्त बलशाली असुरोंके साथ मैत्री स्थापित कर ली। त्रिकूट पर्वतके शिखरपर व्योमनामक एक बलवान् असुर सो रहा था। कंसने वहाँ पहुँचकर उसके ऊपर लात चलायी। उसके प्रहारसे व्योमासुरकी निद्रा टूट गयी और उसने उठकर सुदृढ बँधे हुए

जोरदार मुक्कोंसे कंसपर आघात किया। उस समय उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। कंस और व्योमासुरमें भयंकर युद्ध छिड़ गया। वे दोनों एक-दूसरेको मुक्कोंसे मारने लगे। कंसके मुक्कोंकी मारसे व्योमासुर अपनी शक्ति और उत्साह खो बैठा। उसको चक्कर आने लगा। यह देख कंसने उसको अपना सेवक बना लिया। उसी समय मैं (नारद) वहाँ आ पहुँचा। कंसने मुझे प्रणाम किया और पूछा—'हे देव! मेरी युद्धविषयक आकाङ्क्षा अभी पूरी नहीं हुई है। मुझे शीघ्र बताइये, अब मैं कहाँ, किसके पास जाऊँ?' तब मैंने उससे कहा—'तुम महाबली दैत्य बाणासुरके पास जाओ।' मुझे तो युद्ध देखनेका चाव रहता ही है। मेरी इस प्रकारकी प्रेरणासे प्रेरित हो बाहुबलके मदसे उन्मत्त रहनेवाला कंस शोणितपुर गया॥ १—७॥

कंसकी युद्धविषयक प्रतिज्ञाको सुनकर महाबली बाणासुर अत्यन्त कुपित हो उठा। उसने मेघके समान गम्भीर गर्जना करके पृथ्वीपर बड़े जोरसे लात मारी। उसका वह पैर घुटनेतक धरतीमें धँस गया और पातालके निकटतक जा पहुँचा। ऐसा करके बाणने कंससे कहा—'पहले मेरे इस पैरको तो उठाओ!' उसकी यह बात सुनकर मदोन्मत्त कंसने दोनों हाथोंसे उसके पैरको उखाड़कर ऊपर कर दिया। उसका पराक्रम बड़ा प्रचण्ड था। जैसे हाथी गड़े हुए कठोर दण्ड या खंभेको अनायास ही उखाड़ लेता है, उसी प्रकार कंसने बाणासुरके पैरको खींचकर ऊपर कर दिया। उसके पैरके उखड़ते ही पृथ्वीतलके लोक और सातों पाताल हिल उठे, अनेक पर्वत धराशायी हो गये और सुदृढ़ दिग्गज भी अपने स्थानसे विचलित हो उठे। अब बाणासुरको युद्धके लिये उद्यत हुआ देख भगवान् शंकर स्वयं वहाँ आ गये और सबको समझा-बुझाकर युद्धसे रोक दिया। फिर उन्होंने बलिनन्दन बाणसे कहा—'दैत्यराज! भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर भूतलपर दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है, जो युद्धमें इसे जीत सकेगा। परशुरामजीने इसे ऐसा ही वर दिया है और अपना वैष्णव धनुष भी अर्पित कर दिया है'॥ ८—१३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर साक्षात् महेश्वर शिवने कंस और बाणासुरमें तत्काल बड़ी शान्तिके साथ मनोरम सौहार्द स्थापित कर दिया। तदनन्तर पश्चिम दिशामें महासुर वत्सका नाम सुनकर कंस वहाँ गया। उस दैत्यराजने बछड़ेका रूप धारण करके कंसके साथ युद्ध छेड़ दिया। कंसने उस बछड़ेकी पूँछ पकड़ ली और उसे पृथ्वीपर दे मारा। इसके बाद उसके निवासभूत पर्वतको अपने अधिकारमें करके कंसने म्लेच्छ-देशोंपर धावा किया। मेरे मुखसे महाबली दैत्य कंसके आक्रमणका समाचार सुनकर कालयवन उसका सामना करनेके लिये निकला। उसकी दाढ़ी-मूँछका रंग लाल था और उसने हाथमें गदा ले रखी थी। कंसने भी लाख भार लोहेकी बनी हुई अपनी गदा लेकर यवनराजपर चलायी और सिंहके समान गर्जना की। उस समय कंस और कालयवनमें बड़ा भयानक गदा-युद्ध हुआ। दोनोंकी गदाओंसे आगकी चिनगारियाँ बरस रही थीं। वे दोनों गदाएँ परस्पर टकराकर चूर-चूर हो गयीं। तब कंसने कालयवनको पकड़कर उसे धरतीपर दे मारा और पुनः उठाकर उसे पटक दिया। इस तरह उसने उस यवनको मृतक-तुल्य बना दिया। यह देख कालयवनकी सेना कंसपर बाणोंकी वर्षा करने लगी। तब बलवान् दैत्यराज कंसने गदाकी मारसे उस सेनाका कचूमर निकाल दिया। बहुत-से हाथियों, घोड़ों, उत्तम रथों और वीरोंको धराशायी करके गदा-युद्ध करनेवाला वीर कंस समराङ्गणमें मेघके समान गर्जना करने लगा॥ १४—२२॥

फिर तो सारे म्लेच्छ सैनिक रणभूमि छोड़कर भाग निकले। कंस बड़ा नीतिज्ञ था; उसने भयभीत होकर भागते हुए म्लेच्छोंपर आघात नहीं किया। कंसके पैर ऊँचे थे, दोनों घुटने बड़े थे, जाँघें खंभोंके समान जान पड़ती थीं। उसका कटिप्रदेश पतला, वक्षःस्थल किवाड़ोंके समान चौड़ा और कंधे मोटे थे। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट, कद ऊँचा और भुजाएँ विशाल थीं। नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान प्रतीत होते थे। सिरके बाल बड़े-बड़े थे, देहकी कान्ति अरुण थी। उसके अङ्गोंपर काले रंगका वस्त्र सुशोभित था। मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार और वक्षपर कमलोंकी माला शोभा दे रही थी। वह प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ता था। खड्ग, तूणीर, कवच और मुद्गर आदिसे सम्पन्न धनुर्धर एवं मदमत्त वीर कंस देवताओंको जीतनेके लिये अमरावती पुरीपर जा चढ़ा। चाणूर, मुष्टिक, अरिष्ट, शल, तोशल, केशी, प्रलम्ब, बक

द्विविद, तृणावर्त, अघासुर, कूट, भौम, बाण, शम्बर, व्योम, धेनुक और वत्स नामक असुरोंके साथ कंसने अमरावती पुरीपर चारों ओरसे घेरा डाल दिया ॥ २३–२८ ॥

कंस आदि असुरोंको आया देख, त्रिभुवन सम्राट् देवराज इन्द्र समस्त देवताओंको साथ ले रोषपूर्वक युद्धके लिये निकले। उन दोनों दलोंमें भयंकर एवं रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध होने लगा। दिव्य शस्त्रोंके समूह तथा चमकीले तीखे बाण छूटने लगे। इस प्रकार शस्त्रोंकी बौछारसे वहाँ अन्धकार-सा छा गया। उस समय रथपर बैठे हुए सुरेश्वर इन्द्रने कंसपर विद्युत्के समान कान्तिमान् सौ धारोंवाला वज्र छोड़ा। किंतु उस महान् असुरने इन्द्रके वज्रपर मुद्गरसे प्रहार किया। इससे वज्रकी धारें टूट गयीं और वह युद्ध-भूमिमें गिर पड़ा। तब वज्रधारीने वज्र छोड़कर बड़े रोषके साथ तलवार हाथमें ली और भयंकर सिंहनाद करके तत्काल कंसके मस्तकपर प्रहार किया। परंतु जैसे हाथीको फूलकी मालासे मारा जाय और उसको कुछ पता न लगे, उसी प्रकार खड्गसे आहत होनेपर भी कंसके सिरपर खरोंचतक नहीं आयी। उस दैत्यराजने अष्टधातुमयी मजबूत गदा, जो लाख भार लोहेके बराबर भारी थी, लेकर इन्द्रपर चलायी। उस गदाको अपने ऊपर आती देख नमुचिसूदन वीर देवेन्द्रने तत्काल हाथसे पकड़ लिया और उसे उस दैत्यपर ही दे मारा। इन्द्रके रथका संचालन मातलि कर रहे थे और देवेन्द्र शत्रुदलका दलन करते हुए युद्धभूमिमें विचर रहे थे। कंसने परिघ लेकर असुरद्रोही इन्द्रके कंधेपर प्रहार किया। उस प्रहारसे देवराज क्षणभर-के लिये मूर्च्छित हो गये ॥ २९–३७ ॥

उस समय समस्त मरुद्गणोंने गीधके पंखवाले चमकीले बाणसमूहोंसे कंसको उसी तरह ढक दिया, जैसे वर्षाकालके सूर्यको मेघमालाएँ आच्छादित कर देती हैं। यह देख एक हजार भुजाओंसे युक्त बलवान् वीर बाणासुरने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए अपने बाण-समूहोंसे उन मरुद्गणोंको घायल करना आरम्भ किया। बाणासुरपर भी वसु, रुद्र, आदित्य तथा अन्यान्य देवता एवं ऋषि चारों ओरसे टूट पड़े और नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा उसपर प्रहार करने लगे। इतनेमें ही प्रलम्ब आदि असुरोंके साथ गर्जना करता हुआ भौमासुर आ पहुँचा। उसके उस भयानक सिंहनादसे देवतालोग मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। उस समय देवराज इन्द्र शीघ्र ही उठ गये और लाल आँखें किये ऐरावत हाथीपर आरूढ हो उस मदमत्त गजराजको कंसकी ओर उसे कुचल डालनेके लिये प्रेरित करने लगे। अङ्कुशकी मारसे कुपित हुआ वह गजराज शत्रुओंको अपने पैरोंसे मार-मारकर युद्धभूमिमें गिराने लगा। उसके गलेमें घंटे बँधे हुए थे, वह किङ्किणीजाल तथा रत्नमय कम्बलसे मण्डित था। गोरोचन, सिन्दूर और कस्तूरीसे उसके मुखमण्डलपर पत्ररचना की गयी थी। कंसने निकट आनेपर उस महान् गजराजके ऊपर सुदृढ मुक्केसे प्रहार किया। साथ ही उसने समराङ्गणमें देवराज इन्द्रपर भी दूसरे मुक्केका प्रहार किया। उसके मुक्केकी मार खाकर इन्द्र ऐरावतसे दूर जा गिरे। ऐरावत भी धरतीपर घुटने टेककर व्याकुल हो गया। फिर तुरंत ही उठकर गजराजने दैत्यराज कंसपर दाँतोंसे आघात किया और उसे सूँड़पर उठाकर कई योजन दूर फेंक दिया। कंसका शरीर वज्रके समान सुदृढ था। वह उतनी दूरसे गिरनेपर भी घायल नहीं हुआ। उसके मनमें किंचित् व्याकुलता हुई; किंतु रोषसे ओठ फड़फड़ाता अत्यन्त रोषमें भरकर वह पुनः युद्धभूमिमें आ पहुँचा ॥३८–४९॥

कंसने नागराज ऐरावतको पकड़कर समराङ्गणमें धराशायी कर दिया और उसकी सूँड़ मरोड़कर उसके दाँतोंको चूर-चूर कर दिया। अब तो ऐरावत हाथी उस समराङ्गणसे तत्काल भाग चला। वह बड़े-बड़े वीरोंको गिराता हुआ देवताओंकी राजधानी अमरावती पुरीमें जा घुसा। तदनन्तर दैत्यराज कंसने वैष्णव धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर बाण-समूहों तथा धनुषकी टंकारोंसे देवताओंको खदेड़ना आरम्भ किया। कंसकी मार पड़नेसे देवताओंके होश उड़ गये और वे चारों दिशाओंमें भाग निकले। कुछ देवताओंने रणभूमिमें अपनी शिखाएँ खोल दीं और 'हम डरे हुए हैं (हमें न मारो)'—इस प्रकार कहने लगे। कुछ लोग हाथ जोड़कर अत्यन्त दीनकी भाँति खड़े हो गये और अस्त्र-शस्त्र नीचे डालकर उन्होंने अपने अधोवस्त्रकी लाँग भी खोल डाली। कुछ लोग अत्यन्त व्याकुल हो युद्धस्थलमें राजा कंसके सम्मुख खड़े होनेतक-का साहस न कर सके। इस प्रकार देवताओंको भगा हुआ देख वहाँके छत्रयुक्त सिंहासनको साथ लेकर नरेश्वर कंस समस्त दैत्योंके साथ अपनी राजधानी मथुराको लौट आया ॥ ५०–५५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कंसकी दिग्विजय' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

सुचन्द्र और कलावतीके पूर्व-पुण्यका वर्णन, उन दोनोंका वृषभानु तथा कीर्तिके रूपमें अवतरण

श्रीगर्गजी कहते हैं—शौनक ! राजा बहुलाश्वका हृदय भक्तिभावसे परिपूर्ण था । हरिभक्तिमें उनकी अविचल निष्ठा थी । उन्होंने इस प्रसङ्गको सुनकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ एवं महाविलक्षण स्वभाववाले देवर्षि नारदजीको प्रणाम किया और पुनः पूछा ॥ १ ॥

राजा बहुलाश्वने कहा—भगवन् ! आपने अपने आनन्दप्रद, नित्य वृद्धिशील, निर्मल यशसे मेरे कुलको पूर्वापर अत्यन्त विशद (उज्ज्वल) बना दिया; क्योंकि श्रीकृष्णभक्तोंके क्षणभरके सङ्गसे साधारण जन भी सत्पुरुष—महात्मा बन जाता है । इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ । देवर्षे ! श्रीराधाके साथ भूतलपर अवतीर्ण हुए साक्षात् परिपूर्णतम भगवान्‌ने व्रजमें कौन-सी लीलाएँ कीं—यह मुझे कृपापूर्वक बताइये । देवर्षे ! ऋषीश्वर ! इस कथामृतद्वारा आप त्रिताप-दुःखसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ २-३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! वह कुल धन्य है, जिसे परात्पर श्रीकृष्णभक्त राजा निमिने समस्त सद्गुणोंसे परिपूर्ण बना दिया है और जिसमें तुम-जैसे योगयुक्त एवं भव-बन्धनसे मुक्त पुरुषने जन्म लिया है । तुम्हारे इस कुलके लिये कुछ भी विचित्र नहीं है । अब तुम उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी परम मङ्गलमयी पवित्र लीलाका श्रवण करो । वे भगवान् केवल कंसका संहार करनेके लिये ही नहीं, अपितु भूतलके संतजनोंकी रक्षाके लिये अवतीर्ण हुए थे । उन्होंने अपनी तेजोमयी पराशक्ति श्रीराधाका वृषभानुकी पत्नी कीर्ति-रानीके गर्भमें प्रवेश कराया । वे श्रीराधा कलिन्दजा-कूलवर्ती निकुञ्जप्रदेशके एक सुन्दर मन्दिरमें अवतीर्ण हुईं । उस समय भाद्रपदका महीना था । शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथि एवं सोमका दिन था । मध्याह्नका समय था और आकाशमें बादल छाये हुए थे । देवगण नन्दनवनके भव्य प्रसून लेकर भवनपर बरसा रहे थे । उस समय श्रीराधिकाजीके अवतार धारण करनेसे नदियोंका जल स्वच्छ हो गया । सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न—निर्मल हो उठीं । कमलोंकी सुगन्धसे व्याप्त शीतल वायु मन्दगतिसे प्रवाहित हो रही थी । शरत्पूर्णिमाके शत-शत चन्द्रमाओंसे भी अधिक अभिराम कन्याको देखकर गोपी कीर्तिदा आनन्दमें निमग्न हो गयीं । उन्होंने मङ्गलकृत्य कराकर पुत्रीके कल्याणकी कामनासे आनन्ददायिनी दो लाख उत्तम गौएँ ब्राह्मणोंको दान कीं । जिनका दर्शन बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, तत्त्वज्ञ मनुष्य सैकड़ों जन्मोंतक तप करनेपर भी जिनकी झाँकी नहीं पाते, वे ही श्रीराधिकाजी जब वृषभानुके यहाँ साकाररूपसे प्रकट हुईं और गोप-ललनाएँ जब उनका लालन-पालन करने लगीं, तब सर्वसाधारण लोग उनका दर्शन करने लगे । सुवर्णजटित एवं सुन्दर रत्नोंसे खचित, चन्दननिर्मित तथा रत्नकिरण-मण्डित पालनेमें सखीजनोंद्वारा नित्य झुलायी जाती हुई श्रीराधा प्रतिदिन शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी भाँति बढ़ने लगीं । श्रीराधा क्या हैं—रासकी रङ्गस्थलीको प्रकाशित करनेवाली चन्द्रिका, वृषभानु-मन्दिरकी दीपावली, गोलोक-चूडामणि श्रीकृष्णके कण्ठकी हारावली । मैं उन्हीं पराशक्तिका ध्यान करता हुआ भूतलपर विचरता रहता हूँ ॥ ४-१२ ॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—मुने ! वृषभानुजीका सौभाग्य अद्भुत है, अवर्णनीय है; क्योंकि उनके यहाँ श्रीराधिकाजी स्वयं पुत्रीरूपसे अवतीर्ण हुईं । कलावती और सुचन्द्रने पूर्व-जन्ममें कौन-सा पुण्यकर्म किया था, जिसके फलस्वरूप इन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ ? ॥ १३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! राजराजेश्वर महाभाग सुचन्द्र राजा नृगके पुत्र थे । परम सुन्दर सुचन्द्र चक्रवर्ती नरेश थे । उन्हें साक्षात् भगवान्‌का अंश माना जाता है । पूर्वकालमें (अर्यमा-प्रभृति) पितरोंके यहाँ तीन मानसी कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं । वे सभी परम सुन्दरी थीं । उनके नाम थे—कलावती, रत्नमाला और मेनका । पितरोंने स्वेच्छासे ही कलावतीका हाथ श्रीहरिके अंशभूत बुद्धिमान् सुचन्द्रके हाथमें दे दिया । रत्नमालाको विदेहराजके हाथमें और मेनकाको हिमालयके हाथमें अर्पित कर दिया । साथ ही विधिपूर्वक दहेजकी वस्तुएँ भी दीं । महामते ! रत्नमालासे सीताजी और मेनकाके गर्भसे पार्वतीजी प्रकट हुईं । इन दोनों देवियोंकी कथाएँ पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं । तदनन्तर कलावतीको साथ लेकर महाभाग सुचन्द्र गोमतीके तटपर 'नैमिष' नामक वनमें गये । उन्होंने ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये तपस्या आरम्भ

की। वह तप देवताओंके कालमानसे बारह वर्षोंतक चलता रहा। तदनन्तर ब्रह्माजी वहाँ पधारे और बोले—'वर माँगो।' राजाके शरीरपर दीमकें चढ़ गयी थीं। ब्रह्मवाणी सुनकर वे दिव्य रूप धारण करके बाँबीसे बाहर निकले। उन्होंने सर्वप्रथम ब्रह्माजीको प्रणाम किया और कहा—'मुझे दिव्य परात्पर मोक्ष प्राप्त हो।' राजाकी बात सुनकर साध्वी रानी कलावतीका मन दुखी हो गया। अतः उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—'पितामह! पति ही नारियोंके लिये सर्वोत्कृष्ट देवता माना गया है। यदि ये मेरे पतिदेवता मुक्ति प्राप्त कर रहे हैं तो मेरी क्या गति होगी? इनके बिना मैं जीवित नहीं रहूँगी। यदि आप इन्हें मोक्ष देंगे तो मैं पतिसाहचर्यमें विक्षेप पड़नेके कारण विह्वल हो आपको शाप दे दूँगी' ॥१४–२२॥

ब्रह्माजीने कहा—देवि! मैं तुम्हारे शापके भयसे अवश्य डरता हूँ; किंतु मेरा दिया हुआ वर कभी विफल नहीं हो सकता। इसलिये तुम अपने प्राणपतिके साथ स्वर्गमें जाओ। वहाँ स्वर्गसुख भोगकर कालान्तरमें फिर पृथ्वीपर जन्म लोगी। द्वापरके अन्तमें भारतवर्षमें, गङ्गा और यमुनाके बीच, तुम्हारा जन्म होगा। तुम दोनोंसे जब परिपूर्णतम भगवान्‌की प्रिया साक्षात् श्रीराधिकाजी पुत्री-रूपमें प्रकट होंगी, तब तुम दोनों साथ ही मुक्त हो जाओगे ॥ २३-२४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्माजीके दिव्य एवं अमोघ वरसे कलावती और सुचन्द्र—दोनोंकी भूतलपर उत्पत्ति हुई। वे ही 'कीर्ति' तथा 'श्रीवृषभानु' हुए हैं। कलावती कान्यकुब्ज देश (कन्नौज) में राजा भलन्दनके यज्ञकुण्डसे प्रकट हुई। उस दिव्य कन्याको अपने पूर्वजन्मकी सारी बातें स्मरण थीं। सुरभानुके घर सुचन्द्रका जन्म हुआ। उस समय वे 'श्रीवृषभानु' नामसे विख्यात हुए। उन्हें भी पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही। वे गोपोंमें श्रेष्ठ होनेके साथ ही दूसरे कामदेवके समान परम सुन्दर थे। परम बुद्धिमान् नन्दराजजीने इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध जोड़ा था। उन दोनोंको पूर्वजन्मकी स्मृति थी ही, अतः वे एक-दूसरेको चाहते भी थे और दोनोंकी इच्छासे ही यह सम्बन्ध हुआ। जो मनुष्य वृषभानु और कलावतीके इस उपाख्यानको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है ॥२५–३०॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीराधिकाके पूर्वजन्मका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

गर्गजीकी आज्ञासे देवकका वसुदेवजीके साथ देवकीका विवाह करना; विदाईके समय आकाशवाणी सुनकर कंसका देवकीको मारनेके लिये उद्यत होना और वसुदेवजीकी शर्तपर उसे जीवित छोड़ना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक समयकी बात है, श्रेष्ठ मथुरापुरीके परम सुन्दर राजभवनमें गर्गजी पधारे। वे ज्यौतिष-शास्त्रके बड़े प्रामाणिक विद्वान् थे। सम्पूर्ण श्रेष्ठ यादवोंने शूरसेनकी इच्छासे उन्हें अपने पुरोहितके पदपर प्रतिष्ठित किया था। मथुराके उस राजभवनमें सोनेके किवाड़ लगे थे, उन किवाड़ोंमें हीरे भी जड़े गये थे। राजद्वारपर बड़े-बड़े गजराज झूमते थे। उनके मस्तकपर झुंड-के-झुंड भौंरे आते और उन हाथियोंके बड़े-बड़े कानोंसे आहत होकर गुञ्जा-रव करते हुए उड़ जाते थे। इस प्रकार वह राजद्वार उन भ्रमरोंके नादसे कोलाहलपूर्ण हो रहा था। गजराजोंके गण्डस्थलसे निर्झरकी भाँति झरते हुए मदकी धारासे वह स्थान समावृत था। अनेक मण्डप समूह उस राजमन्दिरकी शोभा बढ़ाते थे। बड़े-बड़े उद्भट वीर कवच, धनुष, ढाल और तलवार धारण किये राजभवनकी सुरक्षामें तत्पर थे। रथ, हाथी, घोड़े और पैदल—इस चतुरङ्गिणी सेना तथा माण्डलिकोंकी मण्डली-द्वारा भी वह राजमन्दिर सुरक्षित था ॥ १-३ ॥

मुनिवर गर्गने उस राजभवनमें प्रवेश करके इन्द्रके सदृश उत्तम और ऊँचे सिंहासनपर विराजमान राजा उग्रसेनको देखा। अक्रूर, देवक तथा कंस उनकी सेवामें

खड़े थे और राजा छत्र-चँदोवेसे सुशोभित थे तथा उनपर चँवर डुलाये जा रहे थे। मुनिको उपस्थित देख राजा उग्रसेन सहसा सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। उन्होंने अन्यान्य यादवोंके साथ उन्हें प्रणाम किया और सुभद्रपीठपर बिठाकर उनकी सम्यक् प्रकारसे पूजा की। फिर स्तुति और परिक्रमा करके वे उनके सामने विनीतभावसे खड़े हो गये। गर्ग मुनिने राजाको आशीर्वाद देकर समस्त राजपरिवारका कुशल-मङ्गल पूछा। फिर उन महामना महर्षिने नीतिवेत्ता यदुश्रेष्ठ देवकसे कहा ॥ ४-६ ॥

श्रीगर्गजी बोले—राजन्! मैंने बहुत दिनोंतक इधर-उधर ढूँढ़ा और सोचा-विचारा है। मेरी दृष्टिमें वसुदेवजीको छोड़कर भूमण्डलके नरेशोंमें दूसरा कोई देवकीके योग्य वर नहीं है। इसलिये नरदेव! वसुदेवको ही वर बनाकर उन्हें अपनी पुत्री देवकीको सौंप दो और विधिपूर्वक दोनोंका विवाह कर दो ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! गर्गजीके उक्त आदेशको ही शिरोधार्य करके समस्त धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीदेवकने सगाईके निश्चयके लिये पानका बीड़ा भेज दिया और गर्गजीकी इच्छासे मङ्गलाचारका सम्पादन करके विवाहमें वसुदेव-वरको अपनी पुत्री अर्पित कर दी। विवाह हो जानेपर विदाईके समय वसुदेवजी घोड़ोंसे सुशोभित अत्यन्त सुन्दर रथपर सुवर्णनिर्मित एवं रत्नमय आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न नववधू देवकराज-कन्या देवकीके साथ आरूढ़ हुए ॥ ८-९ ॥

वसुदेवके प्रति कंसका बहुत ही स्नेह और कृपाभाव था। वह अपनी बहिनका अत्यन्त प्रिय करनेके लिये चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आकर गमनोद्यत घोड़ोंकी बागडोर अपने हाथमें ले स्वयं रथ हाँकने लगा। उस समय देवकने अपनी पुत्रीके लिये उत्तम दहेजके रूपमें एक हजार दासियाँ, दस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, एक लाख रथ और दो लाख गौएँ प्रदान कीं। उस विदाकालमें भेरी, उत्तम मृदङ्ग, गोमुख, धन्धुरि, वीणा, ढोल और वेणु आदि बाजोंका और साथ जानेवाले यादवोंका महान् कोलाहल हुआ। उस समय मङ्गलगीत गाये जा रहे थे और मङ्गलपाठ भी हो रहा था। उसी समय आकाशवाणीने कंसको सम्बोधित करके कहा—'अरे मूर्ख कंस! घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लेकर जिसे रथपर बैठाये लिये जा रहा है, इसीकी आठवीं संतान अनायास ही तेरा वध कर डालेगी—तू इस बातको नहीं जानता।' कंस सदा दुष्टोंका ही साथ करता था। स्वभावसे भी वह अत्यन्त खल (दुष्ट) था। क्षमा तो उसे छू नहीं गयी थी। वह निर्दय होनेके कारण बड़े भयंकर कर्म कर डालता था। उसने तीखी धारवाली तलवार हाथमें उठा ली, बहिनके केश पकड़ लिये और उसे मारनेका निश्चय कर लिया। उस समय बाजेवालोंने बाजे बंद कर दिये। जो आगे थे, वे चकित होकर पीछे देखने लगे। सबके मुँहपर मुर्दनी छा गयी। ऐसी स्थितिमें यदुकुलोंमें श्रेष्ठ श्रीवसुदेवजीने कंससे कहा ॥ १०-१५ ॥

श्रीवसुदेवजी बोले—भोजेन्द्र! आप इस वंशकी कीर्तिका विस्तार करनेवाले हैं। भौमासुर, जरासंध, बकासुर, वत्सासुर और बाणासुर—सभी योद्धा आपसे लड़नेके लिये युद्धभूमिमें आये; किंतु उन्होंने आपकी प्रशंसा ही की। वे ही आप तलवारसे बहिनका वध करनेको कैसे उद्यत हो गये? बकासुरकी बहिन पूतना आपके पास आकर लड़नेकी इच्छा करने लगी; किंतु आपने राजनीतिके अनुरूप बर्ताव करनेके कारण स्त्री समझकर उसके साथ युद्ध नहीं किया। उस समय शान्ति-स्थापनके लिये आपने पूतनाको बहिनके तुल्य बनाकर छोड़ दिया। फिर यह तो आपकी साक्षात् बहिन है। किस विचारसे आप इस अनुचित कृत्यमें लग गये? मथुरानरेश! यह कन्या यहाँ विवाहके शुभ अवसरपर आयी है। आपकी छोटी बहिन है। बालिका है। पुत्रीके समान दयनीय—दयापात्र है। यह सदा आपको सद्भावना प्रदान करती आयी है। अतः इसका वध करना आपके लिये कदापि उचित नहीं है। आपकी चित्तवृत्ति तो दीन-दुखियोंके दुःख दूर करनेमें ही लगी रहती है ॥१६-१८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वसुदेवजीके समझानेपर भी अत्यन्त खल और कुसङ्गी कंसने उनकी बात नहीं मानी। तब वसुदेवजी, यह भगवान्का विधान है, अथवा कालकी ऐसी ही गति है—यह समझकर भगवत्-शरणापन्न हो, पुनः कंससे बोले ॥ १९ ॥

श्रीवसुदेवजीने कहा—राजन्! इस देवकीसे तो आपको कभी भय है नहीं। आकाशवाणीने जो कुछ कहा है, उसके विषयमें मेरा विचार सुनिये। मैं इसके गर्भसे उत्पन्न सभी पुत्र आपको दे दूँगा; क्योंकि उन्हींसे आपको भय है। अतः व्यथित न होइये ॥ २० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश! कंसने वसुदेवजी-

के निश्चयपूर्वक कहे गये वचनपर विश्वास कर लिया। अतः उनकी प्रशंसा करके वह उसी क्षण घरको चला गया। इधर वसुदेवजी भी भयभीत हो देवकीके साथ अपने भवनको पधारे ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वसुदेवके विवाहका वर्णन' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

कंसके अत्याचार; बलभद्रजीका अवतार तथा व्यासदेवद्वारा उनका स्तवन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! कंसने सोचा, वसुदेवजी भयभीत होकर कहीं भाग न जायँ—ऐसा विचार मनमें आते ही उसने बहुत-से सैनिक भेज दिये। कंसकी आज्ञासे दस हजार शस्त्रधारी सैनिकोंने पहुँचकर वसुदेवजीका घर घेर लिया। वसुदेवजीने यथासमय देवकीके गर्भसे आठ पुत्र उत्पन्न किये, वे क्रमशः एक वर्षके बाद होते गये। फिर उन्होंने एक कन्याको भी जन्म दिया, जो भगवान्‌की सनातनी माया थी। सर्वप्रथम जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम कीर्तिमान् था। वसुदेवजी उसे गोदमें उठाकर कंसके पास ले गये। वे दूसरेके प्रयोजनको भी अच्छी तरहसे समझते थे, इसलिये वह बालक उन्होंने कंसको दे दिया। वसुदेवजीको अपने सत्यवचनके पालनमें तत्पर देख कंसको दया आ गयी। साधुपुरुष दुःख सह लेते हैं, परंतु अपनी कही हुई बात मिथ्या नहीं होने देते। सचाई देखकर किसके मनमें क्षमाका भाव उदित नहीं होता? ॥ १–४ ॥

कंसने कहा—वसुदेवजी! यह बालक आपके साथ ही घर लौट जाय, इससे मुझे कोई भय नहीं है। परंतु आप दोनोंका जो आठवाँ गर्भ होगा, उसका वध मैं अवश्य करूँगा—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! कंसके यों कहनेपर वसुदेवजी अपने पुत्रके साथ घर लौट आये, परंतु उस दुरात्माके वचनको उन्होंने तनिक भी सत्य नहीं माना। उस समय आकाशसे उतरकर मैं वहाँ गया। उग्रसेन-कुमार कंसने मुझे मस्तक झुकाकर मेरा स्वागत-सत्कार किया, और मुझसे देवताओंका अभिप्राय पूछा। उस समय मैंने उसे जो उत्तर दिया, वह मुझसे सुनो। मैंने कहा—'नन्द आदि गोप वसुके अवतार हैं और वृषभानु आदि देवताओंके। नरेश्वर कंस! इस व्रजभूमिमें जो गोपियाँ हैं, उनके रूपमें वेदोंकी ऋचाएँ आदि यहाँ निवास करती हैं। मथुरामें वसुदेव आदि जो वृष्णिवंशी हैं, वे सब-के-सब मूलतः देवता ही हैं। देवकी आदि सम्पूर्ण स्त्रियाँ भी निश्चय ही देवाङ्गनाएँ हैं। सात बार गिन लेनेपर सभी अङ्क आठ ही हो जाते हैं। तुम्हारे घातककी संख्यामें गिना जाय तो यह प्रथम बालक भी आठवाँ हो सकता है; क्योंकि देवताओंकी 'वामतो गति' है ॥ ६–१० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! उससे यों कहकर जब मैं चला आया, तब देवताओंद्वारा किये गये दैत्यवधके लिये उद्योगपर कंसको बड़ा क्रोध हुआ। उसने उसी क्षण यादवोंको मार डालनेका विचार किया। उसने वसुदेव और देवकीको मजबूत बेड़ियोंसे बाँधकर कैद कर लिया और देवकीके उस प्रथमगर्भजनित शिशुको शिलापृष्ठपर रखकर पीस डाला। उसे अपने पूर्वजन्मकी घटनाओंका स्मरण था, अतः भगवान् विष्णुके भयसे तथा अपने दुष्ट स्वभावके कारण भी उसने इस भूतलपर प्रकट हुए देवकीके प्रत्येक बालकको जन्म लेते ही मार डाला। ऐसा करनेमें उसे तनिक भी हिचक नहीं हुई। यह सब देखकर यदुकुलनरेश राजा उग्रसेन उस समय कुपित हो उठे। उन्होंने वसुदेवजीकी सहायता की और कंसको अत्याचार करनेसे रोका। कंसके दुष्ट अभिप्रायको प्रत्यक्ष देख महान् यादव वीर उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। वे उग्रसेनके पीछे रहकर, खड्गहस्त हो उनकी रक्षा करने लगे। उग्रसेनके अनुगामियोंको युद्धके लिये उद्यत देख कंस-के निजी वीर सैनिक भी उनका सामना करनेके लिये खड़े हुए। राजसभाके मण्डपमें ही उन दोनों दलोंका परस्पर युद्ध होने लगा। राजद्वारपर भी उन दोनों दलोंके वीरोंमें परस्पर युद्ध छिड़ गया। वे सब लोग खुलकर एक दूसरेपर खड्गका प्रहार करने लगे। इस संघर्षमें दस हजार मनुष्य खेत रहे। तदनन्तर कंसने गदा हाथमें लेकर

व्यासजीके द्वारा बलदेव-स्तुति
(गोलोक० अ० १०)
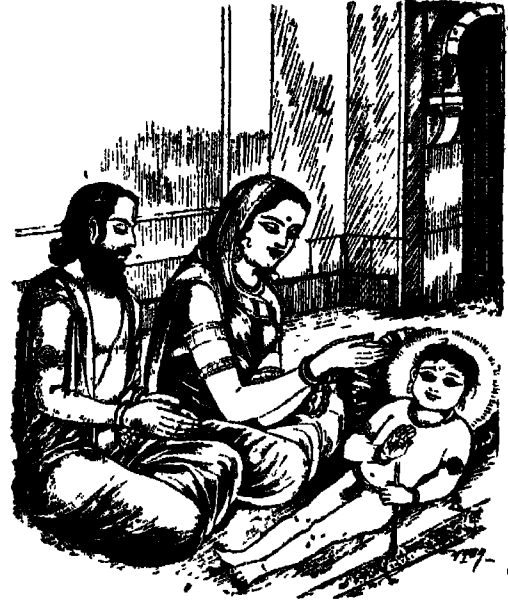
श्रीकृष्णका प्राकट्य
(गोलोक० अ० ११)

अष्टभुजा देवी (गोलोक० अ० ११)

वसुदेव-देवकीकी कारामुक्ति (गोलोक० अ० ११)

पिताकी सेनाको कुचलना आरम्भ किया। उसकी गदासे छू जानेसे ही कितने ही लोगोंके मस्तक फट गये, कितनोंके पाँव कट गये, नख विदीर्ण हो गये, बाँहें कट गयीं और उनकी आशापर पानी फिर गया। कोई औंधे मुँह और कोई उतान होकर अस्त्र-शस्त्र लिये क्षणभरमें धराशायी हो गये। बहुत-से वीर खून उगलते हुए मूर्च्छित हो कालके गालमें चले गये। वहाँ इतना रक्त प्रवाहित हुआ कि सारा सभामण्डप रँग गया ॥ ११-२० ॥

राजराजेश्वर! इस प्रकार दुष्ट एवं मदमत्त कंसने कुपित हो, उद्भट शत्रुओंको धराशायी करके अपने पिताको कैद कर लिया। उन्हें राजसिंहासनसे उतारकर उस दुष्टने पाशमें बाँधा और उनके मित्रोंके साथ उन्हें भी कारागारमें बंद कर दिया। मधु और शूरसेनकी सारी सम्पत्तियोंपर अधिकार करके कंस स्वयं सिंहासनपर जा बैठा और राज्यशासन करने लगा। समस्त पीड़ित यादव सम्बन्धोंके घर जानेके बहाने तुरंत चारों दिशाओंमें विभिन्न देशोंके भीतर जाकर रहने लगे और उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। देवकीका सातवाँ गर्भ उनके लिये हर्ष और शोक दोनोंकी वृद्धि करनेवाला हुआ, उसमें साक्षात् अनन्तदेव अवतीर्ण हुए थे। योगमायाने देवकीके उस गर्भको खींचकर व्रजमें रोहिणीकी कुक्षिके भीतर पहुँचा दिया। ऐसा हो जानेपर मथुराके लोग खेद प्रकट करते हुए कहने लगे—'अहो! बेचारी देवकीका गर्भ कहाँ चला गया? कैसे गिर गया?' व्रजमें उस गर्भको गये पाँच ही दिन बीते थे कि भाद्रपद शुक्ला षष्ठीको, स्वाती नक्षत्रमें, बुधके दिन वसुदेवपत्नी रोहिणीके गर्भसे अनन्तदेवका प्राकट्य हुआ। उच्चस्थानमें स्थित पाँच ग्रहोंसे घिरे हुए तुला लग्नमें, दोपहरके समय बालकका जन्म हुआ। उस जन्मवेलामें जब देवता फूल बरसा रहे थे और बादल वारिबिन्दु बिखेर रहे थे, प्रकट हुए अनन्तदेवने अपनी अङ्गकान्तिसे नन्दभवनको उद्भासित कर दिया। नन्दरायजीने भी उस शिशुका जातकर्म-संस्कार करके ब्राह्मणोंको दस लाख गौएँ दान कीं। गोपोंको बुलाकर उत्तम गान विद्यामें निपुण गायकोंके संगीतके साथ महान् मङ्गलमय उत्सवका आयोजन किया। देवल, देवरात, वसिष्ठ, बृहस्पति और मुझ नारदके साथ आकर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास भी वहाँ बैठे और नन्दजीके दिये हुए पाद्य आदि उपहारोंसे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २१-३० ॥

नन्दरायजीने पूछा—महर्षियो! यह सुन्दर बालक कौन है, जिसके समान दूसरा कोई देखनेमें नहीं आता? महामुने! इसका जन्म पाँच ही दिनोंमें कैसे हुआ? यह मुझे बताइये ॥ ३१ ॥

श्रीव्यासजी बोले—नन्द! तुम्हारा अद्भुत सौभाग्य है, इस शिशुके रूपमें साक्षात् सनातन देवता शेषनाग पधारे हैं। पहले तो मथुरापुरीमें वसुदेवसे देवकीके गर्भमें इनका आविर्भाव हुआ। फिर भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे इनका देवकीके उदरसे कल्याणमयी रोहिणीके गर्भमें आगमन हुआ है। नन्दराय! ये योगियोंके लिये भी दुर्लभ हैं, किंतु तुम्हें इनका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है। मैं महामुनि वेदव्यास इनके दर्शनके लिये ही यहाँ आया हूँ, अतः तुम शिशुरूपधारी इन परात्पर देवताका हम सबको दर्शन कराओ ॥ ३२-३४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर नन्दने विस्मित होकर शिशुरूपधारी शेषका उन्हें दर्शन कराया। पालनेमें विराजमान शेषजीका दर्शन करके सत्यवतीनन्दनने उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की—॥ ३५ ॥

श्रीव्यासजी बोले—भगवन्! आप देवताओंके भी अधिदेवता और कामपाल (सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाले) हैं, आपको नमस्कार है। आप साक्षात् अनन्तदेव शेषनाग हैं, बलराम हैं; आपको मेरा प्रणाम है। आप धरणीधर, पूर्णस्वरूप, स्वयंप्रकाश, हाथमें हल धारण करनेवाले, सहस्र मस्तकोंसे सुशोभित तथा संकर्षणदेव हैं, आपको नमस्कार है। रेवतीरमण! आप ही बलदेव तथा श्रीकृष्णके अग्रज हैं। हलायुध एवं प्रलम्बासुरके नाशक हैं। पुरुषोत्तम! आप मेरी रक्षा कीजिये। आप बल, बलभद्र तथा तालके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आप नीलवस्त्रधारी, गौरवर्ण तथा रोहिणीके सुपुत्र हैं; आपको मेरा प्रणाम है। आप ही धेनुक, मुष्टिक, कुम्भाण्ड, रुक्मी, कूपकर्ण, कूट तथा बल्वलके शत्रु हैं। कालिन्दीकी धाराको मोड़नेवाले और हस्तिनापुरको गङ्गाकी ओर आकर्षित करनेवाले आप ही हैं। आप द्विविदके विनाशक, यादवोंके स्वामी तथा व्रजमण्डलके मण्डन (भूषण) हैं। आप कंसके भाइयोंका वध करनेवाले तथा तीर्थयात्रा करनेवाले प्रभु हैं। दुर्योधनके गुरु भी साक्षात् आप ही हैं। प्रभो! जगत्‌की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले परात्पर देवता साक्षात् अनन्त! आपकी जय हो,

जय हो । आपका सुयश समस्त दिगन्तमें व्याप्त है । आप सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और फणीन्द्रोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं । मुसलधारी, हलधर तथा बलवान् हैं; आपको नमस्कार है । जो इस जगत्में सदा ही इस स्तवनका पाठ करेगा, वह श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होगा । संसारमें उसे शत्रुओंका संहार करनेवाला सम्पूर्ण बल प्राप्त होगा । उसकी सदा जय होगी और वह प्रचुर धनका स्वामी होगा* ॥ ३६-४४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! पराशरनन्दन विशाल-बुद्धि बादरायण मुनि सत्यवतीकुमार श्रीकृष्ण-द्वैपायन वेदव्यास उन मुनियोंके साथ बलरामजीको सौ बार प्रणाम और परिक्रमा करके सरस्वती नदीके तटपर चले गये ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'बलभद्रजीके जन्मका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान्का वसुदेव-देवकीमें आवेश; देवताओंद्वारा उनका स्तवन; आविर्भावकाल; अवतार-विग्रहकी झाँकी; वसुदेव-देवकीकृत भगवत्-स्तवन; भगवान्द्वारा उनके पूर्वजन्मके वृत्तान्तवर्णनपूर्वक अपनेको नन्दभवनमें पहुँचानेका आदेश; कंसद्वारा नन्दकन्या योगमायासे कृष्णके प्राकट्यकी बात जानकर पश्चात्तापपूर्वक वसुदेव-देवकीको बन्धनमुक्त करना, क्षमा माँगना और दैत्योंको बाल-वधका आदेश देना

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! तदनन्तर परात्पर एवं परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण पहले वसुदेवजी-के मनमें आविष्ट हुए । भगवान्का आवेश होते ही महामना वसुदेव सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके समान महान् तेजसे उद्भासित हो उठे, मानो उनके रूपमें दूसरे यज्ञनारायण ही प्रकट हो गये हों । फिर सबको अभय देनेवाले श्रीकृष्ण देवी देवकीके गर्भमें आविष्ट हुए । इससे उस कारागृहमें देवकी उसी तरह दिव्य दीप्तिसे दमक उठीं, जैसे धनमालामें चपला चमक उठती है । देवकीके उस तेजस्वी रूपको देखकर कंस मन-ही-मन भयसे व्याकुल होकर बोला—'यह मेरा प्राणहन्ता आ गया; क्योंकि इसके पहले यह ऐसी तेजस्विनी नहीं थी । इस शिशुको जन्म लेते ही मैं अवश्य मार डालूँगा ।' यों कहकर वह भयसे विह्वल हो उस बालकके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा । भयके कारण अपने पूर्वशत्रु भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए वह सर्वत्र उन्हींको देखने लगा । अहो !

* श्रीव्यास उवाच —

देवाधिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः ॥
धराधराय पूर्णाय स्वधाम्ने सीरपाणये । सहस्रशिरसे नित्यं नमः संकर्षणाय ते ॥
रेवतीरमण त्वं वै बलदेवोऽच्युताग्रजः । हलायुधः प्रलम्बघ्न पाहि मां पुरुषोत्तम ॥
बलाय बलभद्राय तालाङ्काय नमो नमः । नीलाम्बराय गौराय रौहिणेयाय ते नमः ॥
धेनुकारिर्मुष्टिकारिः कुम्भाण्डारिस्त्वमेव हि । रुक्म्यरिः कूपकर्णारिः कूटारिर्बल्वलान्तकः ॥
कालिन्दीभेदनोऽसि त्वं हस्तिनापुरकर्षकः । द्विविदारिर्यादवेन्द्रो व्रजमण्डलमण्डनः ॥
कंसभ्रातृप्रहन्तासि तीर्थयात्राकरः प्रभुः । दुर्योधनगुरुः साक्षात् पाहि पाहि प्रभो जगत् ॥

जय जयाच्युत देव परात्पर स्वयमनन्त दिगन्तगतश्रुत ।
सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रवराय ते मुसलिने बलिने हलिने नमः ॥
इह पठेत्सततं स्तवनं तु यः स तु हरेः परमं पदमाव्रजेत् ।
जगति सर्वबलं त्वरिमर्दनं भवति तस्य जयः स्वधनं धनम् ॥

(गर्ग०, गोलोक० १० । ३६-४४)

दृढ़तापूर्वक वैर बँध जानेसे भगवान् कृष्णका भी प्रत्यक्षकी भाँति दर्शन होने लगता है। इसलिये असुर श्रीकृष्णकी प्राप्तिके उद्देश्यसे ही उनके साथ वैर करते हैं। जब भगवान् गर्भमें आविष्ट हुए, तब ब्रह्मादि देवता तथा अस्मदादि (नारद-प्रभृति) मुनीश्वर वसुदेवके गृहके ऊपर आकाशमें स्थित हो, भगवान्‌को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ १-७ ॥

देवता बोले—जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंमें प्रतीत होनेवाले विश्वके जो एकमात्र हेतु होते हुए भी अहेतु हैं, जिनके गुणोंका आश्रय लेकर ही ये प्राणिसमुदाय सब ओर विचरते हैं तथा जैसे अग्निसे निकलकर सब ओर फैले हुए विस्फुलिङ्ग (चिनगारियाँ) पुनः उसमें प्रवेश नहीं करते, उसी प्रकार महत्तत्त्व, इन्द्रियवर्ग तथा उनके अधिष्ठाता देव-समुदाय जिनसे प्रकट हो पुनः उनमें प्रवेश नहीं पाते, उन परमात्मा आप भगवान् श्रीकृष्णको हमारा सादर नमस्कार है। बलवानोंमें भी सबसे अधिक बलिष्ठ यह काल भी जिनपर शासन करनेमें समर्थ नहीं है, माया भी जिनपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती तथा नित्य-शब्द (वेद) जिनको अपना विषय नहीं बना पाता, उन परम अमृत, प्रशान्त, शुद्ध, परात्पर पूर्ण ब्रह्मस्वरूप आप भगवान्‌की हम शरणमें आये हैं। जिन परमेश्वरके अंशावतार, अंशांशावतार, कलावतार, आवेशावतार तथा पूर्णावतारसहित विभिन्न अवतारोंद्वारा इस विश्वके सृष्टि-पालन आदि कार्य सम्पादित होते हैं, उन्हीं पूर्णसे भी परे परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको हम प्रणाम करते हैं। प्रभो! अतीत, वर्तमान और अनागत (भविष्य) मन्वन्तरों, युगों तथा कल्पोंमें आप अपने अंश और कलाद्वारा अवतार-विग्रह धारण करते हैं। किंतु आज ही वह सौभाग्यपूर्ण अवसर आया है, जब कि आप अपने परिपूर्णतम धाम (तेजःपुञ्ज) का यहाँ विस्तार कर रहे हैं! अब इस परिपूर्णतम अवतारद्वारा भूतलपर धर्मकी स्थापना करके आप लोकमें मङ्गल (कल्याण) का प्रसार करेंगे। आनन्दकंद! देवकीनन्दन! आपकी जो चरणरज विशुद्ध अन्तःकरणवाले योगियोंके लिये भी दुर्लभ और अगम्य है, वही उन बड़भागी भक्तोंके लिये परम सुलभ है, जो अपने निर्मल हृदयमें भक्तियोग धारण करके, सदा प्रीतिरसमें निमग्न हो, द्रवित-चित्त रहते हैं। शिशुरूपमें मन्द-मन्द विचरनेवाले आपके चरणारविन्दोंके मकरन्द एवं परागको हम सानुराग सिरपर धारण करें, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है। आप पहलेसे ही परम कमनीय कलेवरधारी हैं और यहाँ इस अवतारमें भी उसी कमनीय रूपसे आप सुशोभित होंगे। आपका रूप कोटिशत कामदेवोंको भी मोहित करनेवाला और परम अद्भुत है। आप गोलोकधाममें धारित दिव्य दीप्ति-राशिको यहाँ भी धारण करेंगे। सर्वोत्कृष्ट धर्मधनके धारयिता आप श्रीराधावल्लभको हम प्रणाम करते हैं* ॥ ८-१३ ॥

उस समय मुनियोंसहित ब्रह्मा आदि सब देवता श्रीहरिको नमस्कार करके उनकी महिमाका गान तथा स्वभावकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये। मिथिला-सम्राट् बहुलाश्व! तदनन्तर जब श्रीहरिके प्राकट्यका समय आया, आकाश स्वच्छ हो गया।

* यज्जागरादिषु भवेषु परं ह्यहेतु-
हेतुः स्विदस्य विचरन्ति गुणाश्रयेण।
नैतद् विशन्ति महदिन्द्रियदेवसंघा-
स्तस्मै नमोऽग्निमिव विसृतविस्फुलिङ्गाः॥
नैवेशितुं प्रभुरयं बलिनां बलीयान्
माया न शब्द उत नो विषयी करोति।
तद्ब्रह्म पूर्णममृतं परमं प्रशान्तं
शुद्धं परात्परतरं शरणं गताः स्मः॥
अंशांशकांशकलयावतार वृन्दै-
रावेशपूर्णसहितैश्च परस्य यस्य।
सर्गादयः किल भवन्ति तमेव कृष्णं
पूर्णात्परं तु परिपूर्णतमं नताः स्मः॥
मन्वन्तरेषु च युगेषु गतागतेषु
कल्पेषु चांशकलया स्ववपुर्बिभर्षि।
अद्यैव धाम परिपूर्णतमं तनोषि
धर्मं विधाय भुवि मङ्गलमातनोषि॥
यद्दुर्लभं विशदयोगिभिरप्यगम्यं
गम्यं द्रवद्भिरमलाशयभक्तियोगैः।
आनन्दकंद चरतस्तव मन्दयान-
पादारविन्दमकरन्दरजो दधामः॥
पूर्वं तथात्र कमनीयवपुष्मयं त्वां
कंदर्पकोटिशतमोहनमद्भुतं च।
गोलोकधामधिषणद्युतिमादधानं
राधापतिं धरमधुर्यधनं दधानम्॥
(गर्ग०, गोलोक० ११। ८-१३)

दसों दिशाएँ निर्मल हो गयीं। तारे अत्यन्त उद्दीप्त हो उठे। भूमण्डलमें प्रसन्नता छा गयी। नदी, नद, सरोवर और समुद्रके जल स्वच्छ हो गये। सब ओर सहस्रदल तथा शतदल कमल खिल उठे। वायुके स्पर्शसे उनके सुगन्धयुक्त पराग सब दिशाओंमें फैलने लगे। उन कमलोंपर भ्रमर गुंजार करने लगे। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगी। जनपद और ग्राम सुख-सुविधासे सम्पन्न हो गये। बड़े-बड़े नगर तो मङ्गलके धाम बन गये। देवता, ब्राह्मण, पर्वत, वृक्ष और गौएँ—सभी सुख-सामग्रीसे परिपूर्ण हो गये। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। साथ ही जय-जयकारकी ध्वनि सब ओर व्याप्त हो गयी। महाराज! जहाँ-तहाँ सब जगह सबका परम मङ्गल हो गया। गायन-कलामें निपुण विद्याधर, गन्धर्व, सिद्ध, किंनर तथा चारण गीत गाने लगे। देवता-लोग स्तोत्र पढ़कर उन परम पुरुषका स्तवन करने लगे। देवलोकमें गन्धर्व तथा विद्याधरियाँ आनन्दमग्न होकर नाचने लगीं। मुख्य-मुख्य देवता पारिजात, मन्दार तथा मालतीके मनोरम फूल बरसाने लगे और मेघ गर्जना करते हुए जलकी वृष्टि करने लगे। भाद्रपद मास, कृष्णपक्ष, रोहिणी-नक्षत्र, हर्षणयोग तथा वृष लग्नमें अष्टमी तिथिको आधी रातके समय चन्द्रोदय-कालमें, जब कि जगत्में अन्धकार छा रहा था, वसुदेव-मन्दिरमें देवकीके गर्भसे साक्षात् श्रीहरि प्रकट हुए—ठीक उसी तरह, जैसे अरणि-काष्ठसे अग्निका आविर्भाव होता है ॥ १४—२४ ॥

कण्ठमें प्रकाशमान स्वच्छ एवं विचित्र मुक्ताहार, वक्षपर शोभा-प्रभा-समन्वित सुन्दर कौस्तुभ-मणि तथा रत्नोंकी माला, चरणोंमें नूपुर तथा बाहोंमें बाजूबंद धारण किये भगवान् मण्डलाकार प्रभापुञ्जसे उद्भासित हो रहे थे। मस्तकपर किरीट तथा कानोंमें कुण्डल-युगल बालरविके सदृश उद्दीप्त हो रहे थे। कलाइयोंमें प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिमान् अद्भुत कङ्कण हिल रहे थे। कटिकी करधनीमें जो डोर या जंजीर लगी थी, उसकी प्रभा विद्युत्के समान सब ओर व्याप्त हो रही थी। कण्ठदेशमें कमलोंकी माला शोभा पाती थी, जिसके ऊपर मधु-लोलुप मधुकर मँडरा रहे थे। उनके श्रीअङ्गोंपर जो दिव्य पीतवस्त्र था, वह नूतन (तपाये हुए) जाम्बूनद (सुवर्ण) की शोभाको तिरस्कृत कर रहा था। श्यामसुन्दर विग्रहपर सुशोभित वह पीताम्बर विद्युद्विलाससे विलसित नीलमेघके सौभाग्यपूर्ण सौन्दर्यको छीने लेता था। मुखके ऊपर शिरोदेशमें काले-काले घुँघराले केश शोभा पाते थे। मुखचन्द्रकी चञ्चल रश्मियाँ वहाँका सम्पूर्ण अन्धकार दूर किये देती थीं। वह परम सुन्दर शुभद आनन प्रफुल्ल इन्दीवर-सदृश युगल नेत्रोंसे सुशोभित था। उसपर विचित्र रीतिसे मनोहर पत्ररचना की गयी थी, जिससे मण्डित अभिराम मुख सदैव करोड़ों कामदेवोंको मोहे लेता था। वे परिपूर्णतम परात्पर भगवान् मधुर ध्वनिसे वेणु बजानेमें तत्पर थे* ॥ २५—२८ ॥

ऐसे पुत्रका अवलोकन करके यदुकुलतिलक वसुदेवजीके नेत्र भगवान्के जन्मोत्सवजनित आनन्दसे खिल उठे। फिर उन्होंने शीघ्र ही ब्राह्मणोंको एक लाख गो-दान करनेका मन-ही-मन संकल्प किया। सूतिकागारमें प्रभुका आविर्भाव प्रत्यक्ष हो गया, इससे वसुदेवजीका सारा भय जाता रहा। वे अत्यन्त विस्मित हो, हाथ जोड़कर आदि-अन्तरहित श्रीहरिको प्रणाम करके, स्तोत्रोंद्वारा उनका स्तवन करने लगे ॥ २९-३० ॥

श्रीवसुदेवजी बोले— भगवन्! जो एकमात्र—अद्वितीय हैं, वे ही परब्रह्म परमात्मा आप प्रकृतिके सत्त्वादि गुणोंके कारण अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं। आप ही संहारक, आप ही उत्पादक तथा आप ही इस जगत्के पालक हैं। हे आदिदेव! हे त्रिभुवनपते परमात्मन्! जैसे स्फटिकमणि औपाधिक रंगोंसे लिप्त नहीं होती, उसी प्रकार आप देहके वर्णोंसे निर्लिप्त ही रहते हैं। ऐसे आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है ॥ ३१ ॥

जैसे ईंधनमें आग छिपी रहती है, उसी तरह आप अव्यक्तरूपसे इस सम्पूर्ण जगत्में विद्यमान हैं; तथा जैसे आकाश सबके भीतर और बाहर भी रहता है, उसी प्रकार आप सबके भीतर और बाहर भी स्थित हैं। आप ही पृथ्वीकी भाँति इस समस्त जगत्के आधार हैं, सबके

---

* स्फुरदच्छविचित्रहारिणं विलसत्कौस्तुभरत्नहारिणम्।
परिशिञ्जितनूपुराङ्गदं धृतबालार्ककिरीटकुण्डलम् ॥
चलदद्भुतवह्निकङ्कणं चलद्गुञ्जद्गुणमेखलान्वितम्।
मधुमृद्ध्वनिपद्ममालिनं नवजाम्बूनददिव्यवाससम् ॥
सतडिद्घनदिव्यसौभगं चलनीलालकवृन्दभृन्मुखम्।
चलदंशुतमोहरं परं शुभदं सुन्दरमम्बुजेक्षणम् ॥
कृतपत्रविचित्रमण्डनं सततं कोटिमनोजमोहनम्।
परिपूर्णतमं परात्परं कलवेणुध्वनिवाद्यतत्परम् ॥
(गर्ग०, गोलोक० ११ । २५—२८)

साक्षी हैं तथा वायुकी भाँति सर्वत्र जानेकी शक्ति रखते हैं। आप गौ, देवता, ब्राह्मण, अपने भक्तजन तथा बछड़ोंके पालक हैं और उद्भट भूभारका हरण करनेके लिये ही मेरे घरमें अवतीर्ण हुए हैं। इस भूतलपर समस्त पुरुषोत्तमोंसे भी उत्तम आप ही हैं। भुवनपते! पापी कंससे मुझे बचाइये* ॥ ३२-३३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलापते! सर्वदेवता-स्वरूपिणी देवकीको भी यह ज्ञात हो गया कि मेरे घरमें परिपूर्णतम भगवान् साक्षात् श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ है। अतः वे भी उन्हें नमस्कार करके बोलीं ॥ ३४ ॥

देवकीने कहा—हे सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण! हे अगणित ब्रह्माण्डोंके स्वामी! हे परमेश्वर! हे गोलोकधाम-मन्दिरकी ध्वजा! हे आदिदेव! हे पूर्णरूप ईश्वर! हे परिपूर्णतम परमेश! हे प्रभो! आप पापी कंसके भयसे मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये† ॥ ३५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पिता-माताकी ओरसे किया गया वह स्तवन सुनकर पापनाशन साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुस्कराते हुए देवकी तथा वसुदेवजीसे बोले—॥ ३६ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—पूर्वसृष्टिमें ये माता पतिव्रता पृश्नि थीं और आप प्रजापति सुतपा। आप दोनोंने संतानके लिये ब्रह्माजीकी आज्ञासे अन्न और जलका त्याग करके बड़ी भारी तपस्या की थी। एक मन्वन्तरका समय बीत जानेपर भी प्रजाकी कामनासे आपकी तपस्या चलती रही, तब मैं आप दोनोंपर प्रसन्न होकर बोला—'आपलोग कोई उत्तम वर माँग लें।' मेरी बात सुनकर आप तत्काल बोले—'प्रभो! हम दोनोंको आपके समान पुत्र प्राप्त हो।' उस समय 'तथास्तु' कहकर जब मैं चला आया, तब आप दोनों दम्पति अपने पुण्यकर्मके फलस्वरूप प्रजापति हुए। संसारमें मेरे समान तो कोई पुत्र है नहीं—यह विचारकर मैं स्वयं परमेश्वर ही आपका पुत्र हुआ। उस समय भूतलपर मैं 'पृश्निगर्भ' नामसे विख्यात हुआ। फिर दूसरे जन्ममें जब आप कश्यप और अदिति हुए, तब मैं आपका पुत्र वामन आकारवाला उपेन्द्र हुआ। उसी प्रकार इस वर्तमान जन्ममें भी मैं परात्पर परमेश्वर आप दोनोंका पुत्र हुआ हूँ। पिताजी! अब आप मुझे नन्दभवनमें पहुँचा दें। इससे आप दोनोंको कंससे कोई भय नहीं होगा। नन्दरायकी पुत्रीको यहाँ ले आकर आप सुखी होइयेगा ॥ ३७-४१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर भगवान् वहाँ मौन हो, उन दोनोंके देखते-देखते वर्तमान स्वरूपको अदृश्य करके, बालरूप हो पृथ्वीपर पड़ गये—जैसे किसी नटने क्षणभरमें वेष-परिवर्तन कर लिया हो। शिशुको पालनेमें सुलाकर ज्यों ही वसुदेवजी के जानेको उद्यत हुए, त्यों-ही महावनमें नन्दपत्नीके गर्भसे योगमायाने स्वतः जन्मग्रहण किया। उसीके प्रभावसे सब लोग सो गये। पहरेदार भी नींद लेने लगे। सारे दरवाजे मानो किसीने खोल दिये। साँकल और अर्गलाएँ टूट-फूट गयीं। श्रीकृष्णको माथेपर लिये जब वसुदेवजी गृहसे बाहर निकले, उस समय उनके भीतरका अज्ञान और बाहरका अँधेरा स्वतः दूर हो गया—ठीक उसी तरह, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकारका तत्काल नाश हो जाता है। आकाशमें बादल घिर आये और वे जलकी वृष्टि करने लगे। तब सहस्र मुखवाले स्वयंप्रकाश शेषनाग

---

* श्रीवसुदेव उवाच—

एको यः प्रकृतिगुणैरनेकधाग्नि
 र्त्ता त्वं जनक उतास्य पालकस्त्वम्।
निर्लिप्तः स्फटिक इवाद्य देहवर्ण-
 स्तस्मै श्रीभुवनपते नमामि तुभ्यम्॥
एधस्सु त्वनल इवात्र वर्तमानो
 योऽन्तःस्थो बहिरपि चाम्बरं यथा हि।
आधारो धरणिरिवास्य सर्वसाक्षी
 तस्मै ते नम इव सर्वगो नभस्वान्॥
भूभारोद्भटहरणार्थमेव जातो
 गोदेवद्विजनिजवत्सपालकोऽसि।
गेहे मे भुवि पुरुषोत्तमोत्तमस्त्वं
 कंसान्मां भुवनपते प्रपाहि पापात्॥
(गर्ग०, गोलोक० ११। ३१—३३)

† हे कृष्ण हेऽविगणिताण्डपते परेश
 गोलोकधामधिषणध्वज आदिदेव।
पूर्णेश पूर्ण परिपूर्णतम प्रभो मां
 त्वं पाहि पाहि परमेश्वर कंसपापात्॥
(गर्ग०, गोलोक० ११। ३५)

अपने फनोंसे छत्रच्छाया करके गिरती हुई जलकी धाराओंका निवारण करते हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे। उस समय यमुनामें जलके वेगसे बहनेके कारण ऊँची लहरें उठतीं और भँवरें पड़ रही थीं। वे सिंह और सर्पादि जन्तुओंको भी बहाये लिये जाती थीं; किंतु सरिताओंमें श्रेष्ठ उन कलिन्दनन्दिनी यमुनाने वसुदेवजीको तत्काल मार्ग दे दिया। नन्दरायजीका सारा व्रज गाढ़ी नींदमें सो रहा था। वहाँ पहुँचकर वसुदेवजीने अपने परम शिशुको यशोदाजीकी शय्यापर शीघ्र सुलाकर उस दिव्य कन्याको देखा। यशोदाजीकी उस कन्याको गोदमें लेकर वसुदेवजी पुनः अपने घर लौट आये। वे यमुनाजीको पार करके पूर्ववत् अपने घरमें स्थित हो गये॥ ४२—४९॥

उधर गोपी यशोदाको इतना ही ज्ञात हुआ कि उसे कोई पुत्र या पुत्री हुई है। वे प्रसव-वेदनाके श्रमसे अत्यन्त थकी होनेके कारण अपनी शय्यापर आनन्दकी नींद लेती हुई सो गयी थीं। इधर बालकके रोनेकी आवाज सुनकर पहरेदार राजभवनमें उपस्थित हुए और जाकर वीर कंसको बालकके जन्मनेकी सूचना दी। यह समाचार कानमें पड़ते ही कंस भयसे कातर हो तुरंत सूतीगृहमें जा पहुँचा। उस समय सती-साध्वी बहिन देवकी दीनकी तरह रोती हुई भाईसे बोलीं॥ ५०—५२॥

देवकीने कहा—भैया! आप दीन-दुखियोंके प्रति स्नेह और दया करनेवाले हैं। मैं आपकी बहिन हूँ, तथापि कारागारमें डाल दी गयी हूँ। मेरे सभी पुत्र मार डाले गये हैं। मैं वह अभागिनी मा हूँ, जिसके बेटोंका वध कर दिया गया है। एकमात्र यह बेटी बची है, इसे मुझे भीखमें दे दीजिये। यह स्त्री है, इसका वध करना आप-जैसे वीरके योग्य नहीं है। कल्याणकारी भाई! इस कल्याणी कन्याको तो मेरी गोदमें दे ही दीजिये। यही आपके योग्य कार्य होगा॥ ५३-५४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! देवकीके मुँहपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। उसने मोहके कारण बेटीको आँचलमें छिपाकर बहुत विनती की—बह बहुत रोयी-गिड़गिड़ायी; तो भी उस दुष्टने बहिनको डाँट-डपटकर उसकी गोदसे वह कन्या छीन ली। वह यदुकुलका कलङ्क एवं महानीच था। सदा कुसङ्गमें रहनेके कारण उसका जीवन पापमय हो गया था। उस दुरात्माने अपनी बहिनकी बच्चीके दोनों पैर पकड़कर उसे शिलापर दे मारा। वह कन्या साक्षात् योगमायाका अवतार देवी अनंशा थी। कंसके हाथसे छूटते ही वह उछलकर आकाशमें चली गयी। सहस्र अश्वोंसे जुते हुए दिव्य 'शतपत्र' रथपर जा बैठी। वहाँ चँवर डुलाये जा रहे थे। उस शुभ्र रथपर बैठकर वह दिव्य रूप धारण किये दृष्टिगोचर हुई। उसके आठ भुजाएँ थीं और सबमें आयुध शोभा पा रहे थे। वह मायादेवी अपने पार्षदोंसे परिसेवित थी। उसका तेज सौ सूर्योंके समान दिखायी देता था। उसने मेघगर्जना-तुल्य गम्भीर वाणीमें कहा॥ ५५—५८॥

श्रीयोगमाया बोलीं—कंस! तुझे मारनेवाले परिपूर्णतम परमात्मा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तो कहीं और जगह अवतीर्ण हो गये। इस दीन देवकीको तू व्यर्थ दुःख दे रहा है॥ ५९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उससे यों कहकर भगवती योगमाया विन्ध्यपर्वतपर चली गयीं। वहाँ वे अनेक नामोंसे प्रसिद्ध हुईं। योगमायाकी उत्तम बात सुनकर कंसको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने देवकी और वसुदेवको तत्काल बन्धनमुक्त कर दिया॥ ६०-६१॥

कंसने कहा—बहिन और बहनोई वसुदेवजी! मैं पापात्मा हूँ मेरे कर्म पापमय हैं। मैं इस यदुवंशमें महानीच और दुष्ट हूँ। मैं ही इस भूतलपर आप दोनोंके पुत्रोंका हत्यारा हूँ। आप दोनों मेरे द्वारा किये गये इस अपराधको क्षमा कर दें। मेरी बात सुनें। मैं समझता हूँ, यह सब कालने किया-कराया है। जैसे वायु मेघमालाको जहाँ चाहे उड़ा ले जाती है, उसी तरह कालने मुझे भी स्वेच्छानुसार चलाया है। मैंने देव-वाक्यपर विश्वास कर लिया, किंतु देवता भी असत्यवादी ही निकले। इस योगमायाने बताया है कि 'तेरा शत्रु भूतलपर अवतीर्ण हो गया है'। किंतु वह कहाँ उत्पन्न हुआ है, यह मैं नहीं जानता॥ ६२—६४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर कंस बहिन और बहनोईके चरणोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। उसके मुँहपर अश्रुधारा बह चली। उसने उन दोनोंके प्रति सौहार्द (अत्यन्त स्नेह) दिखाते हुए उनकी बड़ी सेवा की। अहो! परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके दया-दान-दक्ष कटाक्षोंसे भूतलपर क्या नहीं

हो सकता ? तदनन्तर प्रातःकाल दुरात्मा कंसने प्रलम्ब आदि बड़े-बड़े असुरोंको बुलाया और योगमायाने जो कुछ कहा था, वह सब उनसे कह सुनाया ॥ ६५-६७ ॥

कंसने कहा—मित्रो ! जैसा कि योगमायाने बताया है, मेरा विनाश करनेवाला शत्रु पृथ्वीपर कहीं उत्पन्न हो चुका है। अतः तुमलोग जो दस दिनके भीतर उत्पन्न हुए हैं और जिनको जन्म लिये दससे अधिक दिन निकल गये हैं, उन समस्त बालकोंको मार डालो ॥ ६८ ॥

दैत्योंने कहा—महाराज ! जब आप द्वन्द्व-युद्धमें उतरे थे, उस समय रणभूमिमें आपके चढ़ाये हुए धनुषकी टंकार सुनकर सब देवता भाग खड़े हुए थे; फिर उन्हींसे आप भय क्यों मान रहे हैं ? गौ, ब्राह्मण, साधु, वेद, देवता तथा धर्म और यज्ञ आदि जो दूसरे-दूसरे तत्त्व हैं, वे ही भगवान् विष्णुके शरीर माने गये हैं; इन सबके विनाशमें दैत्योंका बल ही समर्थ माना गया है। यदि महाविष्णु, जो आपका शत्रु है, इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है तो उसके वधका यही उपाय है कि गौ-ब्राह्मण आदिकी विशेषरूपसे हिंसाका अभियान चलाया जाय ॥ ६९-७१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! कंसने दैत्योंको यह करनेकी आज्ञा दे दी। इस प्रकार उसका आदेश पाकर वे महान् उद्भट दुष्ट दैत्य आकाशमें उड़ चले और गौ, ब्राह्मण आदिको पीड़ा देने तथा नवजात बालकोंकी हत्या करने लगे। समुद्रपर्यन्त समस्त भूमण्डलमें वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दैत्य सर्पों और चूहोंकी तरह घर-घरमें घुसने और विचरने लगे। उद्भट दैत्य तो स्वभावसे ही कुमार्गगामी होते हैं, उसपर भी उन्हें कंसकी ओरसे प्रेरणा प्राप्त हो गयी थी। एक तो बंदर, फिर वह शराब पी ले और उसपर भी उसे बिच्छू डंक मार दे तो उसकी चपलताके लिये क्या कहना ? यही दशा उन दैत्योंकी थी, वे भूतग्रस्त-से हो गये थे। विदेहकुलनन्दन, मैथिलनरेश, विष्णुभक्त, धर्मात्माओंमें मुख्य, परम तपस्वी, प्रतापी, अङ्गराज, बहुलाश्व जनक ! भूमण्डलपर साधु-संतोंकी यह अवहेलना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका सम्पूर्णतया नाश कर देती है ॥ ७२-७५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्ण-जन्म-वृत्तान्तका वर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवकी धूम; गोप-गोपियोंका उपायन लेकर आना; नन्द और यशोदा-रोहिणीद्वारा सबका यथावत् सत्कार; ब्रह्मादि देवताओंका भी श्रीकृष्णदर्शनके लिये आगमन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर गोष्ठमें विद्यमान नन्दजीने अपने घरमें पुत्रोत्सव होनेका समाचार सुनकर प्रातःकाल ब्राह्मणोंको बुलवाया और स्वस्तिवाचन-पूर्वक मङ्गल-कार्य कराया। विधिपूर्वक जातकर्म-संस्कार सम्पन्न करके महामनस्वी नन्दराजने ब्राह्मणोंको आनन्दपूर्वक दक्षिणा देनेके साथ ही एक लाख गौएँ दान कीं। एक कोस लंबी भूमिमें सप्तधान्योंके पर्वत खड़े किये गये। उनके शिखर रत्नों और सुवर्णोंसे सज्जित किये गये। उनके साथ सरस एवं स्निग्ध पदार्थ भी थे। वे सब पर्वत नन्दजीने विनीतभावसे ब्राह्मणोंको दिये। मृदङ्ग, वीणा, शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे बारंबार बजाये जाने लगे। नन्दद्वारपर गायक मङ्गल-गीत गाने लगे। वाराङ्गनाएँ नृत्य करने लगीं। पताकाओं, सोनेके कलशों, चँदोवों, सुन्दर बंदनवारों तथा अनेक रंगके चित्रोंसे नन्द-मन्दिर उद्भासित होने लगा। सड़कें, गलियाँ, द्वार-देहलियाँ, दीवारें, आँगन और वेदियाँ (चबूतरे)—इनपर सुगन्धित जलका छिड़काव करके सब ओरसे वस्त्रों और झंडियोंद्वारा सजावट कर दी गयी थी, जिससे ये सब चित्रमण्डप या चित्रशालाके समान शोभा पा रहे थे। गौओंके सींगोंमें सोना मढ़ दिया गया था। उनके गलेमें सुवर्णकी माला पहना दी गयी थी। उनके गलेमें घंटी और पैरोंमें मञ्जीरकी झंकार होती थी। उनकी पीठपर कुङ्कुम लाल रंगकी झूलें ओढ़ायी गयी थीं। इस प्रकार समस्त गौओंका शृङ्गार किया गया था। उनकी पूँछें पीले रंगमें रँग दी गयी थीं। उनके साथ बछड़े भी थे, उनके अङ्गोंपर

तरुणी स्त्रियोंके हाथोंकी छाप लगी थी। हल्दी, कुङ्कुम तथा विचित्र धातुओंसे वे चित्रित की गयी थीं। मोरपंख और पुष्पोंसे अलंकृत तथा सुगन्धित जलसे अभिषिक्त धर्मधुरंधर मनोहर वृषभ श्रीनन्दरायजीके द्वारपर इधर-उधर सुशोभित थे। गौओंके सफेद बछड़े सोनेकी मालाओं और मोतियोंके हारोंसे विभूषित हो, इधर-उधर उछलते-कूदते फिर रहे थे। उनके पैरोंमें भी मञ्जीर बँधे थे ॥ १-१० ॥

नन्दरायजीके यहाँ पुत्रोत्सवका समाचार सुनकर वृषभानुवर रानी कलावती (कीर्तिदा) के साथ हाथीपर चढ़कर नन्दमन्दिरमें आये। व्रजमें जो नौ नन्द, नौ उपनन्द तथा छः वृषभानु थे, वे सब भी नाना प्रकारकी भेंट-सामग्री-के साथ वहाँ आये। वे सिरपर पगड़ी तथा उसके ऊपर माला धारण किये, पीले रंगके जामे पहने, केशोंमें मोरपंख और गुञ्जा बाँधे तथा वनमालासे विभूषित थे। हाथोंमें वंशी और बेंतकी छड़ी लिये, सुन्दर पत्ररचनाके साथ तिलक लगाये, कमरमें मोरपंख बाँधे गोपालगण भी वहाँ आ गये। वे नाचते-गाते और वस्त्र हिलाते थे। मूँछवाले तरुण और बिना मूँछके बालक भी भाँति भाँतिकी भेंट लेकर वहाँ आये। बूढ़े लोग हाथमें डंडा लिये अपने साथ माखन, दूध, दही और घीकी भेंट लेकर नन्दभवनमें उपस्थित हुए। वे आपसमें व्रजराजके यहाँ पुत्रोत्सवका संवाद सुनाते हुए प्रेमसे विह्वल हो, नेत्रोंमें आनन्दके आँसू बहाते थे। पुत्रोत्सव होनेपर श्रीनन्दरायजीका आनन्द चरम सीमाको पहुँच गया था, उनके नेत्र हर्षके आँसुओंसे भरे हुए थे। उन्होंने अपने द्वारपर आये हुए समस्त गोपोंका तिलक आदिके द्वारा विधिवत् सत्कार किया ॥ ११-१८ ॥

गोप बोले—हे व्रजेश्वर ! हे नन्दराज ! आपके यहाँ जो पुत्रोत्सव हुआ है, यह संतानहीनताके कलङ्कको मिटाने-वाला है। इससे बढ़कर परम मङ्गलकी बात और क्या हो सकती है ? दैवने बहुत दिनोंके बाद आज आपको यह दिन दिखाया है, हमलोग श्रीनन्दनन्दनका दर्शन करके आज कृतार्थ हो जायँगे। जब आप दूरसे आकर पुत्रको गोदमें लेकर मोदपूर्वक लाड़ लड़ाते हुए 'हे मोहन !' कहकर पुकारेंगे, उस समय हमें बड़ा सुख मिलेगा ॥ १९-२१ ॥

श्रीनन्दने कहा—बन्धुओ ! आपलोगोंके आशीर्वाद और पुण्यसे आज यह आनन्ददायक शुभ दिवस प्राप्त हुआ है, मैं तो व्रजवासी गोप-गोपियोंका आज्ञापालक सेवक हूँ ॥ २२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीनन्दरायजीके यहाँ पुत्र होनेका अद्भुत समाचार सुनकर गोपियोंके हर्षकी सीमा न रही। उनके हृदय, उनके तन-मन परमानन्दसे परिपूर्ण हो गये। वे घरके सारे काम-काज तत्काल छोड़कर भेंट-सामग्री लिये तुरंत व्रजराजके भवनमें जा पहुँचीं। नरेन्द्र ! अपने घरसे नन्दमन्दिरतक इधर-उधर बड़ी उतावलीके साथ आती-जाती सब गोपियाँ रास्तेकी भूमिपर मोती लुटाती चलती थीं। शीघ्रतापूर्वक आने जानेसे उनके वस्त्र, आभूषण तथा केशोंके बन्धन भी ढीले पड़ गये थे; उस दशामें उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। झनकारते हुए नूपुर, नये बाजूबंद, सुनहरे लहँगे, मञ्जीर, हार, मणिमय कुण्डल, करधनी, कण्ठसूत्र, हाथोंके कङ्गन तथा भालदेशमें लगी हुई बेंदियोंकी नयी-नयी छटाओंसे उनकी छवि देखते ही बनती थी। नरेश्वर ! वे सब की सब राई-नोन, हल्दीके विशेष चूर्ण, गेहूँके आटे, पीली सरसों तथा जौ आदि हाथोंमें लेकर बड़े लाड़से लालाके मुखपर उतारती हुई उसे आशीर्वाद देती थीं। यह सब करके उन्होंने यशोदाजीसे कहा—॥ २३-२६ ॥

गोपियाँ बोलीं—यशोदाजी ! बहुत उत्तम, बहुत अच्छा हुआ। अहोभाग्य ! आज परम सौभाग्यका दिन है। आप धन्य हैं और आपकी कोख धन्य है, जिसने ऐसे बालकको जन्म दिया। दीर्घकालके बाद दैवने आज आपकी इच्छा पूरी की है। कैसे कमल-जैसे नेत्र हैं इस श्यामसुन्दर बालकके ! कितनी मनोहर मुसकान है इसके होठोंपर। बड़ी सँभालके साथ इसका लालन-पालन कीजिये ॥ २७-२८ ॥

श्रीयशोदाने कहा—बहिन ! आप सबकी दया और आशीर्वादसे ही मेरे घरमें यह सुख आया है, यह आनन्दोत्सव प्राप्त हुआ है। मेरे ऊपर आपकी सदा ही बड़ी दया रही है। इसके बाद आप सबको भी दैवकृपासे ऐसा ही परम सुख प्राप्त हो यह मेरी मङ्गल-कामना है। बहिन रोहिणी ! तुम बड़ी बुद्धिमती हो। सब कार्य बड़े अच्छे ढंगसे करती हो। अपने घर आयी हुई ये व्रजवासिनी गोपियाँ बड़े उत्तम कुलकी हैं। तुम इनका पूजन—स्वागत-सत्कार करो। अपनी इच्छाके अनुसार इन सबकी मनोवाञ्छा पूर्ण करो ॥ २९-३० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! रोहिणीजी भी राजाकी बेटी थीं। उनके हाथ तो स्वभावसे ही दानशील

थे, उसपर भी यशोदाजीने दान करनेकी प्रेरणा दे दी। फिर क्या था ? उन्होंने अत्यन्त उदारचित्त होकर दान देना आरम्भ किया। उनकी अङ्गकान्ति गौर-वर्णकी थी। शरीरपर दिव्य वस्त्र शोभा पाते थे और वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थीं। रोहिणीजी साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति व्रजाङ्गनाओंका सत्कार करती हुई सब ओर विचरने लगीं। साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णके व्रजमें पधारनेपर सब ओर मानव-वाद्य बजने लगे। बड़े जोर-जोरसे जै-जैकारकी ध्वनि होने लगी। उस समय गोप दही, दूध और घीसे तथा गोपाङ्गनाएँ ताजे माखनके लौंदोंसे एक-दूसरेको हर्षोल्लाससे भिगोने और उच्चस्वरसे गीत गाने लगीं। नन्दभवनके बाहर और भीतर सब ओर दहीकी कीच मच गयी। उसमें बूढ़े और मोटे शरीरवाले लोग फिसलकर गिर पड़ते थे और दूसरे लोग खूब ताली पीट-पीटकर हँसते थे। महाराज ! वहाँ जो पौराणिक सूत, वंशोंके प्रशंसक मागध और निर्मल बुद्धिवाले तथा अवसरके अनुरूप बातें कहनेवाले बंदीजन पधारे थे, उन सबको नन्दरायजीने प्रत्येकके लिये अलग-अलग एक-एक हजार गौएँ प्रदान कीं। वस्त्र, आभूषण, रत्न, घोड़े और हाथी आदि सब कुछ दिये। समस्त बंदियों तथा मागधजनोंको धनी गोप व्रजेश्वर नन्दरायने बहुत धन दिया। धनराशिकी वर्षा कर दी। व्रजकी गली-गलीमें घर-घरमें निधि, सिद्धि, बुद्धि, भुक्ति और मुक्ति—ये लोटती-सी दिखायी देती थीं। उन्हें पानेकी इच्छा वहाँ किसीके भी मनमें नहीं होती थी ॥ ३१—३९ ॥

उस समय सनत्कुमार, कपिल, शुक और व्यास आदिको तथा हंस, दत्तात्रेय, पुलस्त्य और मुझ (नारद)को साथ ले ब्रह्माजी वहाँ गये। ब्रह्माजीका वर्ण तप्त सुवर्णके समान था। उनके मस्तकोंपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल जगमगा रहे थे। वे वेदकर्ता चतुर्मुख ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको देदीप्यमान करते हुए वहाँ आये थे। उनके पीछे भूतोंसे घिरे हुए वृषभारूढ महेश्वर पधारे। फिर रथपर चढ़े हुए साक्षात् सूर्य, ऐरावत हाथीपर सवार देवराज इन्द्र, खञ्जरीटपर चढ़े हुए वायुदेव, महिषवाहन यम, पुष्पकारूढ़ कुबेर, मृगवाहन चन्द्रमा, बकरेपर बैठे हुए अग्निदेव, मगरपर आरूढ़ वरुण, मयूरवाहन कार्तिकेय, हंसवाहिनी सरस्वती, गरुडारूढ़ लक्ष्मी, सिंहवाहिनी दुर्गा तथा गोरूपधारिणी पृथ्वी, जो विमानपर बैठी थीं, ये सब वहाँ आये। दिव्यकान्तिवाली मुख्य-मुख्य सोलह मातृकाएँ पालकीपर बैठकर आयी थीं। खड्ग, चक्र तथा यष्टि धारण करनेवाली षष्ठीदेवी शिबिकापर सवार हो वहाँ पहुँची थीं। मङ्गल देवता वानरपर और बुध देवता भास नामक पक्षीपर चढ़कर वहाँ पधारे थे। काले मृगपर बैठे बृहस्पति, गवयपर चढ़े शुक्राचार्य, मगरपर आरूढ़ शनिदेव और ऊँटपर आरूढ़ सिंहिकाकुमार राहु—ये सभी ग्रह, जो करोड़ों बालसूर्योंके समान तेजस्वी थे, नन्दमन्दिरमें पधारे। वहाँ बड़ा कोलाहल मच रहा था। वह नन्दभवन झुंड-के-झुंड गोपों और गोपियोंसे भरा हुआ था। देवतालोग वहाँ पहुँचकर क्षणभर रुके और फिर चले गये। बालरूपधारी परिपूर्णतम परमात्मा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णको देखकर, उन्हें मस्तक नवाकर, देवताओंने उस समय उनका उत्तम स्तवन किया। ब्रह्मा आदि सब देवता ऋषियोंसहित वहाँ श्रीकृष्णका दर्शन करके प्रेमविह्वल और हर्षविभोर होकर अपने-अपने धामको चले गये ॥ ४०—५१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णदर्शनार्थं ब्रह्मादि देवताओंका आगमन' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

पूतनाका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! नन्दजी राजा कंसका कर चुकाने, वसुदेवजीकी कुशल पूछने और उन्हें अपने यहाँके पुत्रोत्सवका समाचार देनेके लिये मथुरा चले गये। उसी समय कंसकी भेजी हुई बालघातिनी दुष्टा राक्षसी पूतना नगरों, गाँवों और गोष्ठोंमें विचरती हुई गोप और गोपियोंसे भरे हुए गोकुलमें आ पहुँची। उसकी नाकसे साँसके साथ 'घर्घर' शब्द होता था। गोकुलके निकट आनेपर उसने मायासे दिव्य रूप धारण कर लिया। वह

सोलह वर्षकी अवस्थावाली तरुणी बन गयी। उसका सौन्दर्य इतना दिव्य था कि वह अपनी अङ्गकान्तिसे शची, सरस्वती, लक्ष्मी, रम्भा तथा रतिको भी तिरस्कृत कर रही थी। चलते समय उसके उन्नत कुच दिव्य आभासे झलकते और हिलते थे। उसे देखकर रोहिणी तथा यशोदा भी हतप्रतिभ हो गयीं। उसने आते ही बालगोपालको गोदमें ले लिया और बारंबार लाड़ लड़ाती हुई उस महाघोर दानवीने शिशुके मुखमें हलाहल विषसे लिप्त अपना स्तन दे दिया। यह देख तीक्ष्ण रोषसे आवृत हो श्रीहरिने उसका सारा दूध उसके प्राणोंसहित पी लिया। उसके स्तनोंमें जब असह्य पीड़ा हुई, तब 'छोड़ो-छोड़ो' कहते हुए वह उठकर भागी। बच्चेको लिये-दिये घरसे बाहर निकल गयी। बाहर जानेपर उसकी माया नष्ट हो गयी और वह अपने असली रूपमें दिखायी देने लगी। उसके नेत्र बाहर निकल आये। सारा शरीर सफेद पड़ गया और वह रोती-चिल्लाती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसकी चिल्लाहटसे सातों लोक और सातों पातालसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। द्वीपोंसहित सारी पृथ्वी डोलने लगी। वह एक अद्भुत-सी घटना हुई। नृपेश्वर! पूतनाका विशाल शरीर छः कोस लंबा और वज्रके समान सुदृढ़ था। उसके गिरनेसे उसकी पीठके नीचे आये हुए बड़े-बड़े वृक्ष पिसकर चकनाचूर हो गये। उस समय गोपगण उस दानवीके भयंकर और विशाल शरीरको देखकर परस्पर कहने लगे—'इसकी गोदमें गया हुआ बालक कदाचित् जीवित नहीं होगा।' परंतु वह अद्भुत बालक उसकी छातीपर बैठा हुआ आनन्दसे खेलता और मुसकराता था। वह पूतनाका दूध पीकर जम्हाई ले रहा था। उसे उस अवस्थामें देखकर यशोदा तथा रोहिणीके साथ जाकर स्त्रियोंने उठा लिया और छातीसे लगाकर वे सब-की-सब बड़े विस्मयमें पड़ गयीं। बच्चेको ले जाकर गोपियोंने सब ओरसे विधिपूर्वक उसकी रक्षा की। यमुनाजीकी पवित्र मिट्टी लगाकर उसके ऊपर यमुना-जलका छींटा दिया, फिर उसके ऊपर गायकी पूँछ घुमायी। गोमूत्र और गोरजमिश्रित जलसे उसको नहलाया और निम्नाङ्कित रूपसे कवचका पाठ किया—॥ १—१४ ॥

श्रीगोपियाँ बोलीं—मेरे लाल! श्रीकृष्ण तेरे सिरकी रक्षा करें और भगवान् वैकुण्ठ कण्ठकी। श्वेतद्वीपके स्वामी दोनों कानोंकी, यज्ञरूपधारी श्रीहरि नासिकाकी, भगवान् नृसिंह दोनों नेत्रोंकी, दशरथनन्दन श्रीराम जिह्वाकी और नर-नारायण ऋषि तेरे अधरोंकी रक्षा करें। साक्षात् श्रीहरिके कलावतार सनक-सनन्दन आदि चारों महर्षि तेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें। भगवान् श्वेतवाराह तेरे भालदेशकी तथा नारद दोनों भ्रूलताओंकी रक्षा करें। भगवान् कपिल तेरी ठोढ़ीको और दत्तात्रेय तेरे वक्षःस्थलको सुरक्षित रक्खें। भगवान् ऋषभ तेरे दोनों कंधोंकी और मत्स्यभगवान् तेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करें। पृथुल-पराक्रमी राजा पृथु सदा तेरे बाहुदण्डोंको सुरक्षित रक्खें। भगवान् कच्छप उदरकी और धन्वन्तरि तेरी नाभिकी रक्षा करें। मोहिनी-रूपधारी भगवान् तेरे गुह्यदेशको और वामन तेरी कटिको हानिसे बचायें। परशुरामजी तेरे पृष्ठभागकी और बादरायण व्यासजी तेरी दोनों जाँघोंकी रक्षा करें। बलभद्र दोनों घुटनोंकी और बुद्धदेव तेरी पिंडलियोंकी रक्षा करें। धर्मपालक भगवान् कल्कि गुल्फोंसहित तेरे दोनों पैरोंको सकुशल रक्खें। यह सबकी रक्षा करनेवाला परम दिव्य 'श्रीकृष्ण-कवच' है। इसका उपदेश भगवान् विष्णुने अपने नाभि-कमलमें विद्यमान ब्रह्माजीको दिया था। ब्रह्माजीने शम्भुको, शम्भुने दुर्वासाको और दुर्वासाने नन्द-मन्दिरमें आकर श्रीयशोदाजीको इसका उपदेश दिया था। इस कवचके द्वारा गोपियोंसहित श्रीयशोदाने नन्दनन्दनकी रक्षा करके उन्हें अपना स्तन पिलाया और ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दिया* ॥ १५—२४ ॥

---

* श्रीगोप्य ऊचुः—

श्रीकृष्णस्ते शिरः पातु वैकुण्ठः कण्ठमेव हि ।
श्वेतद्वीपपतिः कर्णौ नासिकां यज्ञरूपधृक् ॥
नृसिंहो नेत्रयुग्मं च जिह्वां दशरथात्मजः ।
अधराववतां ते तु नरनारायणावृषी ॥
कपोलौ पान्तु ते साक्षात् सनकाद्याः कला हरेः ।
भालं ते श्वेतवाराहो नारदो भ्रूलतेऽवतु ॥
चिबुकं कपिलः पातु दत्तात्रेय उरोऽवतु ।
स्कन्धौ द्वावृषभः पातु करौ मत्स्यः प्रपातु ते ॥
दोर्दण्डं सततं रक्षेत् पृथुः पृथुलविक्रमः ।
उदरं कमठः पातु नाभिं धन्वन्तरिश्च ते ॥
मोहिनी गुह्यदेशं च कटिं ते वामनोऽवतु ।
पृष्ठं परशुरामश्च तवोरू बादरायणः ॥
बलो जानुद्वयं पातु जङ्घे बुद्धः प्रपातु ते ।
पादौ पातु सगुल्फौ च कल्किर्धर्मपतिः प्रभुः ॥
सर्वरक्षाकरं दिव्यं श्रीकृष्णकवचं परम् ।
इदं भगवता दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥

उसी समय नन्द आदि गोप मथुरापुरीसे गोकुलमें लौट आये। पूतनाके भयानक शरीरको देखकर वे सब-के-सब भयसे व्याकुल हो गये। गोपोंने कुठारोंसे उसके शरीरको काट-काटकर यमुनाजीके किनारे कई चिताएँ बनायीं और उसका दाह-संस्कार किया। पूतनाका शरीर परम पवित्र हो गया था। जलानेपर उससे जो धुआँ निकला, उसमें इलायची-लवङ्ग, चन्दन, तगर और अगरकी सुगन्ध भरी हुई थी। अहो! जिन पतितपावनने पूतनाको मोक्ष-गति प्रदान की, उन श्रीकृष्णको छोड़कर हम यहाँ किसकी शरणमें जायँ ! ॥ २५—२८ ॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे ! यह बालघातिनी राक्षसी पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी ? इसके स्तनमें विष लगा हुआ था तथा इसके भीतरका भाव भी दूषित ही था; तथापि इसे उत्तम मोक्षकी प्राप्ति कैसे हुई ? ॥ २९ ॥

नारदजी बोले—पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें भगवान् वामनके परम उत्तम रूपको देखकर बलि-कन्या रत्नमालाने उनके प्रति पुत्रोचित स्नेह किया था। उसने मन-ही-मन यह संकल्प किया था कि 'यदि मेरे भी ऐसा ही बालक उत्पन्न हो और उस पवित्र मुसकानवाले शिशुको मैं अपना स्तन पिला सकूँ तो उससे मेरा चित्त प्रसन्न हो जायगा।' बलि भगवान्के परम भक्त हैं, अतः उनकी पुत्रीको वामनभगवान्ने यह वर दिया कि 'तेरे मनमें जो मनोरथ है, वह पूर्ण हो।' वही रत्नमाला द्वापरके अन्तमें पूतना नामसे विख्यात राक्षसी हुई। भगवान् श्रीकृष्णके स्पर्शसे उसका उत्तम मनोरथ सफल हो गया। मिथिला-नरेश! जो मनुष्य प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णके इस पूतनोद्धार-सम्बन्धी प्रसङ्गको सुनता है, उसको भगवान्की प्रेमपूर्ण भक्ति प्राप्त हो जाती है; फिर उसे धर्म, अर्थ और काम-रूप त्रिवर्गकी उपलब्धि हो जाय, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ ३०—३४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'पूतना-मोक्ष' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

शकटभञ्जन; उत्कच और तृणावर्तका उद्धार; दोनोंके पूर्वजन्मोंका वर्णन

गर्गजीने कहा—शौनक ! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्णके सर्वोत्कृष्ट दिव्य चरित्रका वर्णन किया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह कृतार्थ है, उसे परम पुरुषार्थ प्राप्त हो गया—इसमें संशय नहीं है ॥ १ ॥

श्रीशौनकजी बोले—मुने ! भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गल-मय चरित्र अमृत-रससे तैयार की हुई परम मधुर खाँड़ है। इसे साक्षात् आपके मुखसे सुनकर हम कृतार्थ हो गये। तपोधन ! संतोंमें श्रेष्ठ राजा बहुलाश्व भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त थे। उनके मनमें सदा शान्ति बनी रहती थी। इसके बाद उन्होंने मुनिवर नारदजीसे कौन सी बात पूछी, यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ २-३ ॥

श्रीगर्गजीने कहा—शौनक ! तदनन्तर मिथिलाके महाराज बहुलाश्व हर्षसे उत्फुल्ल और प्रेमसे विह्वल हो गये। फिर उन धर्मात्मा नरेशने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए नारदजीसे कहा ॥ ४ ॥

राजा बहुलाश्व बोले—मुने ! आपने भूरि-भूरि पुण्य-कर्म किये हैं। आपके सम्पर्कसे मैं धन्य और कृतार्थ हो गया; क्योंकि भगवान्के भक्तोंका सङ्ग दुर्लभ और दुस्साध्य है। मुने ! अद्भुत भक्तवत्सल साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें आगे चलकर कौन सी विचित्र लीला की, यह मुझे बताइये ॥ ५-६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तुम श्रीकृष्ण-सम्मत धर्मके पालक हो, तुमने यह बहुत उत्तम प्रश्न किया है। निश्चय ही संत पुरुषोंका सङ्ग सबके कल्याणका विस्तार करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

एक दिन, जब भगवान् श्रीकृष्णके जन्मका नक्षत्र प्राप्त हुआ था, नन्दरानी श्रीयशोदाजीने गोप और गोपियोंको

ब्रह्मणा शम्भवे दत्तं शम्भुर्दुर्वाससे ददौ। दुर्वासाः श्रीयशोमत्यै प्रादाच्छ्रीनन्दमन्दिरे ॥
अनेन रक्षां कृत्वास्य गोपीभिः श्रीयशोमती। पाययित्वा स्तनं दानं विप्रेभ्यः प्रददौ महत् ॥
(गर्ग०, गोलोक० १३। २३—२४)

अपने यहाँ बुलाकर ब्राह्मणोंके बताये अनुसार मङ्गल-विधान सम्पन्न किया। उस समय श्याम-सलोने बालक श्रीकृष्णको लाल रंगका वस्त्र पहनाया गया। अङ्गोंको सुवर्णमय भूषणोंसे भूषित किया गया। उन्हें गोदमें लेकर मैयाने उनके विकसित कमल-सदृश कमनीय नेत्रोंमें काजल लगाया और गलेमें बघनखायुक्त चन्द्रहार धारण कराया तथा देवताओंको नमस्कार करके ब्राह्मणोंके लिये उत्तम धनका दान दिया। तदनन्तर गोपी यशोदाजीने शीघ्र ही अपने लालाको पालनेपर लिटा दिया और मङ्गल-दिवसपर गोपियोंमेंसे प्रत्येकका अलग-अलग स्वागत किया। उस मङ्गल-भवनमें उस दिन बहुत-से गोपोंका आना-जाना लगा रहा, अतः उन्हींके सत्कारमें व्यस्त रहनेके कारण वे अपने रोते हुए बालकका रुदन-शब्द सुन न सकीं। उसी क्षण पापात्मा कंसका भेजा हुआ एक राक्षस आया। उसका नाम 'उत्कच' था। वह वायुमय शरीर धारण किये रहता था। वह आकर छकड़ेपर (जिसपर बड़े-बड़े वजनदार दही-दूधके मटके रक्खे जाते थे) बैठ गया और बालकके मस्तकपर उस शकटको उलटकर गिरानेके प्रयासमें लगा। इतनेमें ही श्रीकृष्णने रोते-रोते ही उस शकटपर पैरसे प्रहार कर दिया। फिर तो वह बड़ा छकड़ा टूक-टूक हो गया और दैत्य मरकर नीचे आ गिरा। ऐसी स्थितिमें वह वायुमय शरीर छोड़कर निर्मल दिव्य देहसे सम्पन्न हो गया और भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके सौ घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य विमानपर बैठकर भगवान्के निजी परमधाम गोलोकको चला गया। उस समय व्रजवासी नन्द आदि गोप तथा गोपियाँ सब-के-सब एक साथ वहाँ आ गये और बालकोंसे पूछने लगे—'व्रजकुमारो! यह शकट अपने-आप ही गिर पड़ा या किसीने इसे गिराया है? कैसे इसकी यह दशा हुई है, तुम जानते हो तो बताओ' ॥ ८—१३ ॥

बालकोंने कहा—पालनेपर सोया हुआ यह बालक दूध पीनेके लिये रोते-रोते ही पैर फेंक रहा था। वही पैर छकड़ेसे टकराया, इसीसे यह छकड़ा उलट गया। व्रज-बालकोंकी इस बातपर गोप और गोपियोंको विश्वास नहीं हुआ। वे सभी आश्चर्यमग्न होकर सोचने लगे—'कहाँ तो तीन महीनेका यह छोटा-सा बालक और कहाँ इतने विशाल बोझवाला यह छकड़ा! यशोदाको यह शङ्का हो गयी कि बच्चेको कोई बालग्रह लग गया है। अतः उन्होंने बालकको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंद्वारा विधिपूर्वक ग्रहयज्ञ करवाया। उसमें उन्होंने ब्राह्मणोंको धन आदिसे पूर्णतया तृप्त कर दिया ॥ १४—१६ ॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—महामुने! इस 'उत्कच' नामके राक्षसने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यकर्म किया था, जिसके फलस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके चरणका स्पर्श पाकर वह तत्काल मोक्षका भागी हो गया? ॥ १७ ॥

श्रीनारदजीने कहा—मिथिलेश्वर! यह उत्कच पूर्व-जन्ममें हिरण्याक्षका पुत्र था। एक दिन वह लोमशजीके आश्रमपर गया और वहाँ उसने आश्रमके वृक्षोंको चूर्ण कर दिया। स्थूलदेहसे युक्त महाबली उत्कचको खड़ा देख ब्राह्मण ऋषिने रोषयुक्त होकर उसे शाप दे दिया—'दुर्मते! तू देह-रहित हो जा।' उसी कर्मके परिपाकसे उसका वह शरीर सर्प-शरीरसे केंचुलकी भाँति छूटकर गिर पड़ा। यह देख वह महान् दानव मुनिके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला ॥ १८—२० ॥

उत्कचने कहा—मुने! आप कृपाके सागर हैं। मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये। भगवन्! मैंने आपके प्रभावको नहीं जाना। आप मेरी देह मुझे दे दीजिये ॥ २१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वे मुनि लोमश प्रसन्न हो गये। जिन्होंने विधाताकी सौ नीतियाँ देखी हैं, अर्थात् जिनके सामने सौ ब्रह्मा बीत चुके हैं, ऐसे संतोंका रोष भी वरदायक होता है। फिर उनका वरदान मोक्षप्रद हो, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ २२ ॥

लोमशजी बोले—चाक्षुष-मन्वन्तरतक तो तेरा शरीर वायुमय रहेगा। इसके बीत जानेपर वैवस्वत-मन्वन्तर आयेगा। उसी समयमें (अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें) भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श होनेसे तेरी मुक्ति होगी ॥ २३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उक्त वरद शापके कारण लोमशजीके प्रतापसे दानव उत्कच भी भगवान्के परम धामका अधिकारी हो गया। जो वर और शाप देनेमें पूर्ण स्वतन्त्र हैं, उन श्रेष्ठ संतोंके लिये मेरा नमस्कार है ॥ २४ ॥

राजन्! एक दिन नन्दरानी यशोदाजीकी गोदमें बालक श्रीकृष्ण खेल रहे थे और नन्दरानी उन्हें लाड़ लड़ा रही थीं। थोड़ी ही देरमें बालक पर्वतके समान भारी प्रतीत होने

पूतना-उद्धार (गोलोक० अ० १३)

रत्नमालाको वामनका वरदान (गोलोक० अ० १३)

उत्कचको लोमशका शाप (गोलोक० अ० १४)

सहस्राक्षको दुर्वासाका शाप (गोलोक० अ० १४)

लगा। वे उसे गोदमें उठाये रखनेमें असमर्थ हो गयीं और मन-ही-मन सोचने लगीं—'अहो! इस बालकमें पहाड़-सा भारीपन कहाँसे आ गया?' फिर उन्होंने बालगोपालको भूमिपर रख दिया, किंतु यह रहस्य किसीको बतलाया नहीं। उसी समय कंसका भेजा हुआ महाबली दैत्य 'तृणावर्त' वहाँ आकर आँगनमें खेलते हुए सुन्दर बालक श्रीकृष्णको बवंडररूपसे उठा ले गया। तब गोकुलमें ऐसी धूल उठी, जिसके कारण अँधेरा छा गया और भयंकर शब्द होने लगा। दो घड़ीतक सबकी आँखोंमें धूल भरी रही। उस समय यशोदाजी नन्द-मन्दिरके आँगनमें अपने लालाको न देखकर घबरा गयीं। रोती हुई महलके शिखरोंकी ओर देखने लगीं। वे बड़े भयंकर दीखते थे। जब कहीं भी अपना लाला नहीं दिखायी दिया, तब वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और होशमें आनेपर उच्चस्वरसे इस प्रकार करुण-विलाप करने लगीं, मानो बछड़ेके मर जानेपर गौ क्रन्दन कर रही हो। प्रेम और स्नेहसे व्याकुल हुई गोपियाँ भी रो रही थीं। उन सबके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे इधर-उधर देखती हुई नन्दनन्दनकी खोजमें लग गयीं। उधर तृणावर्त आकाशमें दस योजन ऊपर जा पहुँचा। बालक श्रीकृष्ण उसके कंधेपर थे। उनका शरीर उसे सुमेरु पर्वतकी भाँति भारी प्रतीत होने लगा। उसे अत्यन्त पीड़ा होने लगी। तब वह दानव श्रीकृष्णको वहाँ नीचे पटकनेकी चेष्टामें लग गया। यह जानकर परिपूर्णतम भगवान्ने स्वयं उसका गला पकड़ लिया। निशाचरके 'छोड़ दे, छोड़ दे!' कहनेपर अद्भुत बालक श्रीकृष्णने बड़े जोरसे उसका गला दबाया, इससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसकी देहसे ज्योति निकली और घनश्याममें उसी प्रकार विलीन हो गयी, जैसे बादलमें बिजली। तब आकाशसे दैत्यका शरीर बालकके साथ ही एकशिलापर गिर पड़ा। गिरते ही उसकी बोटी-बोटी छितरा गयी। गिरनेके धमाकेसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं, भूमण्डल काँपने लगा। उस समय रोती हुई सब गोपियोंने राक्षसकी पीठपर चुपचाप बैठे बालक श्रीकृष्णको एक साथ ही देखा और दौड़कर उन्हें उठा लिया। फिर माता यशोदाको देकर वे कहने लगीं—॥ २५–३७ ॥

गोपियाँ बोलीं—यशोदे! तुममें बालकके लालन-पालनकी रत्तीभर भी योग्यता नहीं है। कहनेसे तो तुम बुरा मान जाती हो; किंतु सच बात यह है कि कहीं, कभी तुममें दया देखी ही नहीं गयी। भला कहो तो, इस प्रकार अन्धकार आ जानेपर कोई भी अपने बच्चेको गोदसे अलग करता है? तू ऐसी निर्दय है कि ऐसे महान् भयके अवसरपर भी बालकको जमीनपर रख दिया!॥ ३८-३९ ॥

यशोदाजीने कहा—बहिनो! समझमें नहीं आता कि उस समय मेरा लाला क्यों गिरिराजके समान भारी लगने लगा था; इसीलिये उस महाभयंकर बवंडरमें भी मैंने इसे गोदीसे उतारकर भूमिपर रख दिया ॥ ४० ॥

गोपियाँ कहने लगीं—यशोदाजी! रहने दो, झूठ न बोलो। कल्याणी! तुम्हारे दिलमें जरा भी दया-मया नहीं है। यह दुधमुँहा बच्चा तो फूल और रूईके समान हल्का है ॥ ४१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—बालक श्रीकृष्णके घर आ जानेपर नन्द आदि गोप और गोपियाँ—सभीको बड़ा हर्ष हुआ। वे सब लोगोंके साथ उनकी कुशल-वार्ता कहने लगे। यशोदाजी बालक श्रीकृष्णको उठा ले गयीं और बार-बार स्तन्य पिलाकर, मस्तक सूँघकर और आँचलसे छातीमें छिपाकर स्नेह-मोहके वशीभूत हो, रोहिणीसे कहने लगीं॥ ४२-४३ ॥

श्रीयशोदाजी बोलीं—बहिन! मुझे देवने यह एक ही पुत्र दिया है, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं; इस एक पुत्रपर भी क्षणभरमें अनेक प्रकारके अरिष्ट आते रहते हैं। आज यह मौतके मुँहसे बचा है। इससे अधिक उत्पात और क्या होगा? अतः अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा अब और कहाँ रहनेकी व्यवस्था करूँ? धन, शरीर, मकान, अटारी और विविध प्रकारके रत्न—इन सबसे बढ़कर मेरे लिये यह एक ही बात है कि मेरा यह बालक कुशलसे रहे। यदि मेरा यह बच्चा अरिष्टोंपर विजयी हो जाय तो मैं भगवान् श्रीहरिकी पूजा, दान एवं यज्ञ करूँगी; तड़ाग-वापी आदिका निर्माण करूँगी और सैकड़ों मन्दिर बनवा दूँगी। प्रिय रोहिणी! जैसे अंधेके लिये लाठी ही सहारा है, उसी प्रकार मेरा सारा सुख इस बालकमें ही है। अतः बहिन! अब मैं अपने लालाको उस स्थानपर ले जाऊँगी, जहाँ कोई भय न हो ॥ ४४–४८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उसी समय नन्द-मन्दिरमें बहुत-से विद्वान् ब्राह्मण पधारे और उत्तम आसन-

पर बैठे। नन्द और यशोदाजीने उन सबका विधिवत् पूजन किया ॥ ४९ ॥

महाभाग ब्राह्मण बोले—व्रजपति नन्दजी तथा व्रजेश्वरी यशोदे ! तुम चिन्ता मत करो। हम इस बालककी कवच आदिसे रक्षा करेंगे, जिससे यह दीर्घजीवी हो जाय ॥ ५० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने कुशाग्रों, नूतन पल्लवों, पवित्र कलशों, शुद्ध जल तथा ऋक्, यजु एवं सामवेदके स्तोत्रों और उत्तम स्वस्ति-वाचन आदिके द्वारा विधि-विधानसे यज्ञ करवाकर अग्निकी पूजा करायी। तब उन्होंने बालक श्रीकृष्णकी विधिवत् रक्षा की (रक्षार्थ निम्नाङ्कित कवच पढ़ा) ॥ ५१-५२ ॥

ब्राह्मणोंने कहा—भगवान् दामोदर तुम्हारे चरणोंकी रक्षा करें। विष्टरश्रवा घुटनोंकी, श्रीविष्णु जाँघोंकी और स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी नाभिकी रक्षा करें। भगवान् राधावल्लभ तुम्हारे कटिभागकी तथा पीताम्बरधारी तुम्हारे उदरकी रक्षा करें। भगवान् पद्मनाभ हृदयदेशकी, गोवर्धनधारी बाँहोंकी, मथुराधीश्वर मुखकी एवं द्वारकानाथ सिरकी रक्षा करें। असुरोंका संहार करनेवाले भगवान् पीठकी रक्षा करें और साक्षात् भगवान् गोविन्द सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें। तीन श्लोकवाले इस स्तोत्रका जो मनुष्य निरन्तर पाठ करेगा, उसे परम सुखकी प्राप्ति होगी और उसे कहीं भी भयका सामना नहीं करना पड़ेगा* ॥ ५३—५६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—तदनन्तर नन्दजीने उन ब्राह्मणोंको एक लाख गायें, दस लाख स्वर्णमुद्राएँ, एक हजार नूतन रत्न और एक लाख बढ़िया वस्त्र दिये। उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चले जानेपर नन्दजीने गोपोंको बुला-बुलाकर भोजन कराया और मनोहर वस्त्राभूषणोंसे उन सबका सत्कार किया ॥ ५७-५८ ॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—मुने ! यह तृणावर्त पहले जन्ममें कौन-सा पुण्यकर्मा मनुष्य था, जो साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो गया ? ॥ ५९ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन् ! पाण्डुदेशमें 'सहस्राक्ष' नामसे विख्यात एक राजा थे। उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी। भगवान् विष्णुमें उनकी अपार श्रद्धा थी। वे धर्ममें रुचि रखते थे। यज्ञ और दानमें उनकी बड़ी लगन थी। एक दिन वे रेवा (नर्मदा) नदीके दिव्य तटपर गये। लताएँ और बेंत उस तटकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ सहस्रों स्त्रियोंके साथ आनन्दका अनुभव करते हुए वे विचरने लगे। उसी समय स्वयं दुर्वासा मुनिने वहाँ पदार्पण किया। राजाने उनकी वन्दना नहीं की, तब मुनिने शाप दे दिया—'दुर्बुद्धे ! तू राक्षस हो जा।' फिर तो राजा सहस्राक्ष दुर्वासाजीके चरणोंमें पड़ गये। तब मुनिने उन्हें वर दिया—'राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहका स्पर्श होनेसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी' ॥ ६०—६३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! वे ही राजा सहस्राक्ष दुर्वासाजीके शापसे भूमण्डलपर 'तृणावर्त' नामक दैत्य हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य श्रीविग्रहका स्पर्श होनेसे उनको सर्वोत्तम मोक्ष (गोलोकधाम) प्राप्त हो गया ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शकटासुर और तृणावर्तका मोक्ष' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

---

* ब्राह्मणा ऊचुः—

दामोदरः पातु पादौ जानुनी विष्टरश्रवाः। ऊरू पातु हरिर्नाभिं परिपूर्णतमः स्वयम् ॥
कटिं राधापतिः पातु पीतवासास्तवोदरम्। हृदयं पद्मनाभश्च भुजौ गोवर्धनोद्धरः ॥
मुखं च मथुरानाथो द्वारकेशः शिरोऽवतु। पृष्ठं पात्वसुरध्वंसी सर्वतो भगवान् स्वयम् ॥
श्लोकत्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेन्मानवः सदा। महासौख्यं भवेत्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥
(गर्ग०, गोलोक० १४। ५३—५६)

पंद्रहवाँ अध्याय

यशोदाद्वारा श्रीकृष्णके मुखमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन; नन्द और यशोदाके पूर्वपुण्यका परिचय; गर्गाचार्यका नन्द-भवनमें जाकर बलराम और श्रीकृष्णके नामकरण-संस्कार करना तथा वृषभानुके यहाँ जाकर उन्हें श्रीराधा-कृष्णके नित्य-सम्बन्ध एवं माहात्म्यका ज्ञान कराना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन साँवले-सलोने बालक श्रीकृष्ण सोनेके रत्नजटित पालनेपर सोये हुए थे। उनके मुखपर लोगोंके मनको मोहनेवाले मन्दहास्यकी छटा छा रही थी। दृष्टिजनित पीड़ाके निवारणके लिये नन्दनन्दनके ललाटपर काजलका डिठौना शोभा पा रहा था। कमलके समान सुन्दर नेत्रोंमें काजल लगा था। अपने उस सुन्दर लालाको मैया यशोदाने गोदमें ले लिया। वे बालमुकुन्द पैरका अँगूठा चूस रहे थे। उनका स्वभाव चपल था। नील, नूतन, कोमल एवं घुँघराले केशबन्धोंसे उनकी अङ्गच्छटा अद्भुत जान पड़ती थी। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न, बघनखा तथा चमकीला अर्धचन्द्र-(नामक आभूषण) शोभा दे रहे थे। अपार दयामयी गोपी श्रीयशोदा अपने उस लालाको लाड़ लड़ाती हुई बड़े आनन्दका अनुभव कर रही थी। राजन्! बालक श्रीकृष्ण दूध पी चुके थे। उन्हें जँभाई आ रही थी। माताकी दृष्टि उधर पड़ी तो उनके मुखमें पृथिव्यादि पाँच तत्त्वोंसहित सम्पूर्ण विराट् (ब्रह्माण्ड) तथा इन्द्र-प्रभृति श्रेष्ठ देवता दृष्टिगोचर हुए। तब श्रीयशोदाके मनमें त्रास छा गया। अतः उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं ॥१–३॥

महाराज! परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी ही मायासे सम्पूर्ण संसार सत्तावान् बना है। उसी मायाके प्रभावसे यशोदाजीकी स्मृति टिक न सकी। फिर अपने बालक श्रीकृष्णपर उनका वात्सल्यपूर्ण दयाभाव उत्पन्न हो गया। अहो! श्रीनन्दरानीके तपका वर्णन कहाँतक करूँ! ॥ ४ ॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—मुनिवर! नन्दजीने यशोदाके साथ कौन-सा महान् तप किया था, जिसके प्रभावसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके यहाँ पुत्ररूपमें प्रकट हुए ॥ ५ ॥

श्रीनारदजीने कहा—आठ वसुओंमें प्रधान जो 'द्रोण' नामक वसु हैं, उनकी स्त्रीका नाम 'धरा' है। इन्हें संतान नहीं थी। वे भगवान् श्रीविष्णुके परम भक्त थे। देवताओंके राज्यका भी पालन करते थे। राजन्! एक समय पुत्रकी अभिलाषा होनेपर ब्रह्माजीके आदेशसे वे अपनी सहधर्मिणी धराके साथ तप करनेके लिये मन्दराचल पर्वतपर गये। वहाँ दोनों दम्पति कंद, मूल एवं फल खाकर अथवा सूखे पत्ते चबाकर तपस्या करते थे। बादमें जलके आधार-पर उनका जीवन चलने लगा। तदनन्तर उन्होंने जल पीना भी बंद कर दिया। इस प्रकार जनशून्य देशमें उनकी तपस्या चलने लगी। उन्हें तप करते जब दस करोड़ वर्ष बीत गये, तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर आये और बोले—'वर माँगो' ॥ ६–९ ॥

उस समय उनके ऊपर दीमकें चढ़ गयी थीं। अतः उन्हें हटाकर द्रोण अपनी पत्नीके साथ बाहर निकले। उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और विधिवत् उनकी पूजा की। उनका मन आनन्दसे उल्लसित हो उठा। वे उन प्रभुसे बोले—॥ १० ॥

श्रीद्रोणने कहा—ब्रह्मन्! विधे! परिपूर्णतम जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण मेरे पुत्र हो जायँ और उनमें हम दोनोंकी प्रेमलक्षणा भक्ति सदा बनी रहे, जिसके प्रभावसे मनुष्य दुर्लङ्घ्य भवसागरको सहज ही पार कर जाता है। हम दोनों तपस्वीजनोंको दूसरा कोई वर अभिलषित नहीं है ॥ ११-१२ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—तुमलोगोंने मुझसे जो वर माँगा है, वह कठिनाईसे पूर्ण होनेवाला और अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी दूसरे जन्ममें तुमलोगोंकी अभिलाषा पूरी होगी ॥ १३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वे 'द्रोण' ही इस पृथ्वीपर 'नन्द' हुए और 'धरा' ही 'यशोदा' नामसे विख्यात हुईं। ब्रह्माजीकी वाणी सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण पिता वसुदेवजीकी पुरी मथुरासे व्रजमें पधारे थे। भगवान् श्रीकृष्णका शुभ चरित्र सुधा-निर्मित खाँड़से भी अधिक मीठा है। गन्धमादन पर्वतके शिखरपर भगवान् नर-नारायणके श्रीमुखसे मैंने इसे सुना है। उनकी कृपासे

मैं कृतार्थ हो गया। वही कथा मैंने तुमसे कही है; अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १४-१६ ॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—महामुने ! शिशुरूपधारी उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीहरिने बलरामजीके साथ कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं, यह मुझे बताइये ॥ १७ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! एक दिन वसुदेवजीके भेजे हुए महामुनि गर्गाचार्य अपने शिष्योंके साथ नन्दभवनमें पधारे। नन्दजीने पाद्य आदि उत्तम उपचारों-द्वारा मुनिश्रेष्ठ गर्गकी विधिवत् पूजा की और प्रदक्षिणा करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ १८-१९ ॥

नन्दजी बोले—आज हमारे पितर, देवता और अग्नि—सभी संतुष्ट हो गये। आपके चरणोंकी धूलि पड़नेसे हमारा घर परम पवित्र हो गया। महामुने ! आप मेरे बालकका नामकरण कीजिये। विप्रवर प्रभो ! अनेक पुण्यों और तीर्थोंका सेवन करनेपर भी आपका शुभागमन सुलभ नहीं होता ॥ २०-२१ ॥

श्रीगर्गजीने कहा—नन्दरायजी ! मैं तुम्हारे पुत्रका नामकरण करूँगा, इसमें संशय नहीं है; किंतु कुछ पूर्वकाल-की बात बताऊँगा, अतः एकान्त स्थानमें चलो ॥ २२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर गर्गजी नन्द-यशोदा तथा दोनों बालक—श्रीकृष्ण एवं बलरामको साथ लेकर गोशालामें, जहाँ दूसरा कोई नहीं था, चले गये। वहाँ उन्होंने उन बालकोंका नामकरण-संस्कार किया। सर्वप्रथम उन्होंने गणेश आदि देवताओंका पूजन किया, फिर यत्नपूर्वक ग्रहोंका शोधन (विचार) करके हर्षसे पुलकित हुए महामुनि गर्गाचार्य नन्दसे बोले ॥ २३-२४ ॥

गर्गजीने कहा—ये जो रोहिणीके पुत्र हैं, इनका नाम बताता हूँ—सुनो। इनमें योगीजन रमण करते हैं अथवा ये सबमें रमते हैं या अपने गुणोंद्वारा भक्तजनोंके मनको रमाया करते हैं, इन कारणोंसे उत्कृष्ट ज्ञानीजन इन्हें 'राम' नामसे जानते हैं। योगमायाद्वारा गर्भका संकर्षण होनेसे इनका प्रादुर्भाव हुआ है, अतः ये 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध होंगे। अशेष जगत्का संहार होनेपर भी ये शेष रह जाते हैं, अतः इन्हें लोग 'शेष' नामसे जानते हैं। सबसे अधिक बलवान् होनेसे ये 'बल' नामसे भी विख्यात होंगे* ॥ २५-२६½ ॥

नन्द ! अब अपने पुत्रके नाम सावधानीके साथ सुनो—ये सभी नाम तत्काल प्राणिमात्रको पावन करनेवाले तथा चराचर समस्त जगत्के लिये परम कल्याणकारी हैं। 'क' का अर्थ है—कमलाकान्त; 'ऋ'कारका अर्थ है—राम; 'ष' अक्षर षड्विध ऐश्वर्यके स्वामी श्वेतद्वीपनिवासी भगवान् विष्णुका वाचक है। 'ण' नरसिंहका प्रतीक है और 'अकार' अक्षर अग्निभुक् (अग्निरूपसे हविष्यके भोक्ता अथवा अग्निदेवके रक्षक) का वाचक है तथा दोनों विसर्गरूप बिंदु (:) नर-नारायणके बोधक हैं। ये छहों पूर्ण तत्त्व जिस महामन्त्ररूप परिपूर्णतम शब्दमें लीन हैं, वह इसी व्युत्पत्तिके कारण 'कृष्ण' कहा गया है। अतः इस बालकका एक नाम 'कृष्ण' है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन युगोंमें इन्होंने शुक्ल, रक्त, पीत तथा कृष्ण कान्ति ग्रहण की है। द्वापरके अन्त और कलिके आदिमें यह बालक 'कृष्ण' अङ्गकान्तिको प्राप्त हुआ है, इस कारणसे भी यह नन्दनन्दन 'कृष्ण' नामसे विख्यात होगा† ॥ २७—३२ ॥

इनका एक नाम 'वासुदेव' भी है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'वसु' नाम है इन्द्रियोंका। इनका देवता है—चित्त। उस चित्तमें स्थित रहकर जो चेष्टाशील हैं, उन अन्तर्यामी भगवान्को 'वासुदेव' कहते हैं। वृषभानुकी पुत्री राधा जो कीर्तिके भवनमें प्रकट हुई हैं, उनके ये साक्षात् प्राणनाथ बनेंगे; अतः इनका एक नाम 'राधापति' भी है। जो साक्षात् परिपूर्णतम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हैं,

---

* रमन्ते योगिनो यस्मिन् सर्वत्र रमतीति वा ॥
गुणैश्च रमयन् भक्तांस्तेन रामं विदुः परे ।
गर्भसंकर्षणादस्य संकर्षण इति स्मृतः ॥
सर्वावशेषाद् यं शेषं बलाधिक्याद् बलं विदुः ।
(गर्ग०, गोलोक० १५ । २५-२६½)

† सद्यःप्राणिपवित्राणि जगतां मङ्गलानि च ।
ककारः कमलाकान्त ऋकारो राम इत्यपि ॥
षकारः षड्गुणपतिः श्वेतद्वीपनिवासकृत् ।
णकारो नरसिंहोऽयमकारो ह्यक्षरोऽग्निभुक् ॥
विसर्गौ च तथा ह्येतौ नरनारायणावृषी ।
सम्प्रलीनाश्च षट् पूर्णा यस्मिञ्छब्दे महामतौ ॥
परिपूर्णतमे साक्षात् तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीतो वर्णोऽस्यानुयुगं धृतः ॥
द्वापरान्ते कलेरादौ बालोऽयं कृष्णतां गतः ।
तस्मात् कृष्ण इति ख्यातो नाम्नायं नन्दनन्दनः ॥
(गर्ग०, गोलोक० १५ । २८—३२)

वर्षा-तूफानमें नन्दकी गोदमें श्रीकृष्ण
(गोलोक० अ० १६)

नन्दके द्वारा राधा-स्तुति (गोलोक० अ० १६)

ब्रह्माके द्वारा श्रीराधा-कृष्ण-स्तुति
(गोलोक० अ० १६)

राधाके द्वारा यशोदाको श्रीकृष्णार्पण
(गोलोक० अ० १६)

असंख्य ब्रह्माण्ड जिनके अधीन हैं और जो गोलोकधाममें विराजते हैं, वे ही परम प्रभु तुम्हारे यहाँ बालकरूपसे प्रकट हुए हैं। पृथ्वीका भार उतारना, कंस आदि दुष्टोंका संहार करना और भक्तोंकी रक्षा करना—ये ही इनके अवतारके उद्देश्य हैं ॥ ३३—३६ ॥

भरतवंशोद्भव नन्द ! इनके नामोंका अन्त नहीं है। वे सब नाम वेदोंमें गूढ़रूपसे कहे गये हैं। इनकी लीलाओंके कारण भी उन-उन कर्मोंके अनुसार इनके नाम विख्यात होंगे। इनके अद्भुत कर्मोंको लेकर आश्चर्य नहीं करना चाहिये। तुम्हारा अहोभाग्य है; क्योंकि जो साक्षात् परिपूर्णतम परात्पर श्रीपुरुषोत्तम प्रभु हैं, वे तुम्हारे घर पुत्रके रूपमें शोभा पा रहे हैं ॥ ३७-३८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर श्रीगर्गजी जब चले गये, तब प्रमुदित हुए महामति नन्दरायने यशोदासहित अपनेको पूर्णकाम एवं कृतकृत्य माना ॥ ३९ ॥

तदनन्तर ज्ञानिशिरोमणि ज्ञानदाता मुनिश्रेष्ठ श्रीगर्गजी यमुनातटपर सुशोभित वृषभानुजीकी पुरीमें पधारे। छत्र धारण करनेसे वे दूसरे इन्द्रकी तथा दण्ड धारण करनेसे साक्षात् धर्मराजकी भाँति सुशोभित होते थे। साक्षात् दूसरे सूर्यकी भाँति वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। पुस्तक तथा मेखलासे युक्त विप्रवर गर्ग दूसरे ब्रह्माकी भाँति प्रतीत होते थे। शुक्ल वस्त्रोंसे सुशोभित होनेके कारण वे भगवान् विष्णुकी-सी शोभा पाते थे। उन मुनिश्रेष्ठको देखकर वृषभानुजीने तुरंत उठकर अत्यन्त आदरके साथ सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर वे उनके सामने खड़े हो गये। पूजनोपचारके ज्ञाता वृषभानुने मुनिको एक मङ्गलमय आसनपर बिठाकर पाद्य आदिके द्वारा उन ज्ञानिशिरोमणि गर्गका विधिवत् पूजन किया। फिर उनकी परिक्रमा करके महान् 'वृषभानुवर' इस प्रकार बोले ॥ ४०—४५ ॥

श्रीवृषभानुने कहा—संत पुरुषोंका विचरण शान्तिमय है; क्योंकि वह गृहस्थजनोंको परम शान्ति प्रदान करनेवाला है। मनुष्योंके भीतरी अन्धकारका नाश महात्माजन ही करते हैं, सूर्यदेव नहीं। भगवन् ! आपका दर्शन पाकर हम सभी गोप पवित्र हो गये। भूमण्डलपर आप-जैसे साधु-महात्मा पुरुष तीर्थोंको भी पावन बनानेवाले होते हैं। मुने ! मेरे यहाँ एक कन्या हुई है, जो मङ्गलकी धाम है और जिसका 'राधिका' नाम है। आप भलीभाँति विचारकर यह बतानेकी कृपा कीजिये कि इसका शुभ विवाह किसके साथ किया जाय। सूर्यकी भाँति आप तीनों लोकोंमें विचरण करते हैं। आप दिव्यदर्शन हैं, जो इसके अनुरूप सुयोग्य वर होगा, उसीके हाथमें इस कल्याणमयी कन्याको दूँगा ॥ ४६—४९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर मुनिवर गर्गजी वृषभानुजीका हाथ पकड़े यमुनाके तटपर गये। वहाँ एक निर्जन और अत्यन्त सुन्दर स्थान था, जहाँ कालिन्दी-जलकी कल्लोलमालाओंकी कल-कल ध्वनि सदा गूँजती रहती थी। वहीं गोपेश्वर वृषभानुको बैठाकर धर्मज्ञ मुनीन्द्र गर्ग इस प्रकार कहने लगे ॥ ५०-५१ ॥

श्रीगर्गजी बोले—वृषभानुजी ! एक गुप्त बात है, यह तुम्हें किसीसे नहीं कहनी चाहिये। जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकधामके स्वामी, परात्पर तथा साक्षात् परिपूर्णतम हैं; जिनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है; स्वयं वे ही भगवान् श्रीकृष्ण नन्दके घरमें प्रकट हुए हैं ॥५२—५३॥

श्रीवृषभानुने कहा—महामुने ! नन्दजीका भी भाग्य अद्भुत है, धन्य एवं अवर्णनीय है। अब आप भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका सम्पूर्ण कारण मुझे बताइये ॥ ५४ ॥

श्रीगर्गजी बोले—पृथ्वीका भार उतारने और कंस आदि दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। उन्हीं परम प्रभु श्रीकृष्णकी पटरानी, जो प्रिया श्रीराधिकाजी गोलोकधाममें विराजती हैं, वे ही तुम्हारे घर पुत्रीरूपसे प्रकट हुई हैं। तुम उन पराशक्ति राधिकाको नहीं जानते ॥५५-५६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उस समय गोप वृषभानुके मनमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी और वे अत्यन्त विस्मित हो गये। उन्होंने कलावती (कीर्ति) को बुलाकर उनके साथ विचार किया। पुनः श्रीराधा-कृष्णके प्रभावको जानकर गोपवर वृषभानु आनन्दके आँसू बहाते हुए पुनः महामुनि गर्गसे कहने लगे ॥ ५७-५८ ॥

श्रीवृषभानुने कहा—द्विजवर ! उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णको मैं अपनी यह कमलनयनी कन्या समर्पण करूँगा। आपने ही मुझे यह सन्मार्ग दिखलाया है; अतः आपके द्वारा ही इसका शुभ विवाह-संस्कार सम्पन्न होना चाहिये ॥५९॥

श्रीगर्गजीने कहा—राजन्! श्रीराधा और श्रीकृष्णका पाणिग्रहण-संस्कार मैं नहीं कराऊँगा। यमुनाके तटपर भाण्डीर-वनमें इनका विवाह होगा। वृन्दावनके निकट जनशून्य सुरम्य स्थानमें स्वयं श्रीब्रह्माजी पधारकर इन दोनोंका विवाह करायेंगे। गोपवर! तुम इन श्रीराधिकाको भगवान् श्रीकृष्णकी वल्लभा समझो। संसारमें राजाओंके शिरोमणि तुम हो और लोकोंका शिरोमणि गोलोकधाम है। तुम सम्पूर्ण गोप गोलोकधामसे ही इस भूमण्डलपर आये हो। वैसे ही समस्त गोपियाँ भी श्रीराधिकाजीकी आज्ञा मानकर गोलोकसे आयी हैं। बड़े-बड़े यज्ञ करनेपर देवताओंको भी अनेक जन्मोंतक जिनकी झाँकी सुलभ नहीं होती, उनके लिये भी जिनका दर्शन दुर्घट है, वे साक्षात् श्रीराधिकाजी तुम्हारे मन्दिरके आँगनमें गुप्तरूपसे विराज रही हैं और बहुसंख्यक गोप और गोपियाँ उनका साक्षात् दर्शन करती हैं ॥ ६०-६४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधिकाजी और भगवान् श्रीकृष्णका यह प्रशंसनीय प्रभाव सुनकर श्रीवृषभानु और कीर्ति—दोनों अत्यन्त विस्मित तथा आनन्दसे आह्लादित हो उठे और गर्गजीसे कहने लगे ॥ ६५ ॥

दम्पति बोले—ब्रह्मन्! 'राधा' शब्दकी तात्त्विक व्याख्या बताइये। महामुने! इस भूतलपर मनके संदेहको दूर करनेवाला आपके समान दूसरा कोई नहीं है ॥ ६६ ॥

श्रीगर्गजीने कहा—एक समयकी बात है, मैं गन्धमादन पर्वतपर गया। साथमें शिष्यवर्ग भी थे। वहीं भगवान् नारायणके श्रीमुखसे मैंने सामवेदका यह सारांश सुना है। 'रकार' से रमा का, 'आकार'से गोपिकाओंका, 'धकार'से धराका तथा 'आकार'से विरजा नदीका ग्रहण होता है। परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णका सर्वोत्कृष्ट तेज चार रूपोंमें विभक्त हुआ। लीला, भू, श्री और विरजा ये चार पत्नियाँ ही उनका चतुर्विध तेज हैं। ये सब-की-सब कुञ्जभवनमें जाकर श्रीराधिकाजीके श्रीविग्रहमें लीन हो गयीं। इसीलिये विज्ञजन श्रीराधाको 'परिपूर्णतमा' कहते हैं। गोप! जो मनुष्य बारंबार 'राधाकृष्ण' के इस नामका उच्चारण करते हैं, उन्हें चारों पदार्थ तो क्या, साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण भी सुलभ हो जाते हैं *॥ ६७—७१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस समय भार्यासहित श्रीवृषभानुके आश्चर्यकी सीमा न रही। श्रीराधा-कृष्णके दिव्य प्रभावको जानकर वे आनन्दके मूर्तिमान् विग्रह बन गये। इस प्रकार श्रीवृषभानुने ज्ञानिशिरोमणि श्रीगर्गजीकी पूजा की। तब वे सर्वज्ञ एवं त्रिकालदर्शी मुनीन्द्र गर्ग स्वयं अपने स्थानको सिधारे ॥ ७२-७३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नन्द-पत्नीका विश्वरूपदर्शन तथा श्रीकृष्ण-बलरामका नामकरण-संस्कार' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

भाण्डीर-वनमें नन्दजीके द्वारा श्रीराधाजीकी स्तुति; श्रीराधा और श्रीकृष्णका ब्रह्माजीके द्वारा विवाह; ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन तथा नव-दम्पतिकी मधुर लीलाएँ

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन नन्दजी अपने नन्दनको अङ्कमें लेकर लाड़ लड़ाते और गौएँ चराते हुए खिरकके पाससे बहुत दूर निकल गये। धीरे-धीरे भाण्डीर-वनमें जा पहुँचे, जो कालिन्दी-नीरका स्पर्श करके बहनेवाले तीरवर्ती शीतल समीरके झोंकेसे कम्पित हो रहा था। थोड़ी ही देरमें श्रीकृष्णकी इच्छासे वायुका वेग अत्यन्त प्रखर हो उठा। आकाश मेघोंकी घटासे आच्छादित हो गया। तमाल और कदम्ब वृक्षोंके पल्लव टूट-

* रमया तु रकारः स्यादाकारस्त्वादिगोपिका। धकारो धरया हि स्यादाकारो विरजा नदी॥
श्रीकृष्णस्य परस्यापि चतुर्धा तेजसोऽभवत्। लीला भूः श्रीश्च विरजा चतस्रः पत्न्य एव हि॥
सम्प्रलीनाश्च ताः सर्वा राधायां कुञ्जमन्दिरे। परिपूर्णतमां राधां तस्मादाहुर्मनीषिणः॥
राधाकृष्णेति हे गोप ये जपन्ति पुनः पुनः। चतुष्पदार्थं किं तेषां साक्षात् कृष्णोऽपि लभ्यते॥
(गर्ग०, गोलोक० १५। ६८—७१)

टूटकर गिरने, उड़ने और अत्यन्त भयका उत्पादन करने लगे। उस समय महान् अन्धकार छा गया। नन्दनन्दन रोने लगे। वे पिताकी गोदमें बहुत भयभीत दिखायी देने लगे। नन्दको भी भय हो गया। वे शिशुको गोदमें लिये परमेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये ॥ १—३ ॥

उसी क्षण करोड़ों सूर्योंके समूहकी-सी दिव्य दीप्ति उदित हुई, जो सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त थी; वह क्रमशः निकट आती सी जान पड़ी। उस दीप्तिराशिके भीतर नौ नन्दोंके राजाने वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको देखा। वे करोड़ों चन्द्र मण्डलोंकी कान्ति धारण किये हुए थीं। उनके श्रीअङ्गोंपर आदिवर्ण नील रंगके सुन्दर वस्त्र शोभा पा रहे थे। चरण-प्रान्तमें मञ्जीरोंकी धीर-ध्वनिसे युक्त नूपुरोंका अत्यन्त मधुर शब्द हो रहा था। उस शब्दमें काञ्चीकलाप और कङ्कणोंकी झनकार भी मिली थी। रत्नमय हार, मुद्रिका और बाजूबंदोंकी प्रभासे वे और भी उद्भासित हो रही थीं। नाकमें मोतीकी बुलाक और नकबेसरकी अपूर्व शोभा हो रही थी। कण्ठमें कंठा, सीमन्तपर चूड़ामणि और कानोंमें कुण्डल झलमला रहे थे। श्रीराधाके दिव्य तेजसे अभिभूत हो नन्दने तत्काल उनके सामने मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर कहा—'राधे! ये साक्षात् पुरुषोत्तम हैं और तुम इनकी मुख्य प्राणवल्लभा हो, यह गुप्त रहस्य मैं गर्गजीके मुखसे सुनकर जानता हूँ। राधे! अपने प्राणनाथको मेरे अङ्कसे ले लो। ये बादलोंकी गर्जनासे डर गये हैं। इन्होंने लीलावश यहाँ प्रकृतिके गुणोंको स्वीकार किया है। इसीलिये इनके विषयमें इस प्रकार भयभीत होनेकी बात कही गयी है। देवि! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम इस भूतलपर मेरी यथेष्ट रक्षा करो। तुमने कृपा करके ही मुझे दर्शन दिया है वास्तवमें तो तुम सब लोगोंके लिये दुर्लभ हो'* ॥४—८½॥

श्रीराधाने कहा—नन्दजी! तुम ठीक कहते हो। मेरा दर्शन दुर्लभ ही है। आज तुम्हारे भक्ति-भावसे प्रसन्न होकर ही मैंने तुम्हें दर्शन दिया है ॥ ९ ॥

श्रीनन्द बोले—देवि! यदि वास्तवमें तुम मुझपर प्रसन्न हो तो तुम दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणारविन्दोंमें मेरी सुदृढ़ भक्ति बनी रहे। साथ ही तुम्हारी भक्तिसे भरपूर साधु संतोंका सङ्ग मुझे सदा मिलता रहे। प्रत्येक युगमें उन संत-महात्माओंके चरणोंमें मेरा प्रेम बना रहे ॥ १० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब 'तथास्तु' कहकर श्रीराधाने नन्दजीकी गोदसे अपने प्राणनाथको दोनों हाथोंमें ले लिया। फिर जब नन्दरायजी उन्हें प्रणाम करके वहाँसे चले गये, तब श्रीराधिकाजी भाण्डीर-वनमें गयीं। पहले गोलोकधामसे जो 'पृथ्वी देवी' इस भूतलपर उतरी थीं, वे उस समय अपना दिव्य रूप धारण करके प्रकट हुईं। उक्त धाममें जिस तरह पद्मराग मणिसे जटित सुवर्णमयी भूमि शोभा पाती है, उसी तरह इस भूतलपर भी व्रज-मण्डलमें उस दिव्य भूमिका तत्क्षण अपने सम्पूर्ण रूपसे आविर्भाव हो गया। वृन्दावन कामपूरक दिव्य वृक्षोंके साथ अपना दिव्य रूप धारण करके शोभा पाने लगा। कलिन्द-नन्दिनी यमुना भी तटपर सुवर्णनिर्मित प्रासादों तथा सुन्दर रत्नमय सोपानोंसे सम्पन्न हो गयीं। गोवर्धन पर्वत रत्नमयी शिलाओंसे परिपूर्ण हो गया। उसके स्वर्णमय शिखर सब ओरसे उद्भासित होने लगे। राजन्! मतवाले भ्रमरों तथा झरनोंसे सुशोभित कन्दराओंद्वारा वह पर्वतराज अत्यन्त ऊँचे अङ्गवाले गजराजकी भाँति सुशोभित हो रहा था। उस समय वृन्दावनके निकुञ्जने भी अपना दिव्य रूप प्रकट किया। उसमें सभाभवन, प्राङ्गण तथा दिव्य मण्डप शोभा पाने लगे। वसन्त ऋतुकी सारी मधुरिमा वहाँ अभिव्यक्त हो गयी। मधुपों, मयूरों, कपोतों तथा कोकिलोंके कलरव सुनायी देने लगे। निकुञ्जवर्ती दिव्य मण्डपोंके शिखर सुवर्ण-रत्नादिसे खचित कलशोंसे अलंकृत थे। सब ओर फहराती हुई पताकाएँ उनकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँ एक सुन्दर सरोवर प्रकट हुआ, जहाँ सुवर्णमय सुन्दर सरोज खिले हुए थे और उन सरोजोंपर बैठी हुई मधुपावलियाँ उनके मधुर मकरन्दका पान कर रही थीं ॥ ११—१६ ॥

---

* तदैव कोट्यर्कसमूहदीप्तिरागच्छती या चलती दिशासु ।
बभूव तस्यां वृषभानुपुत्रीं ददर्श राधां नवनन्दराजः ॥
कोटीन्दुबिम्बद्युतिमादधानां नीलाम्बरं सुन्दरमादिवर्णम् ।
मञ्जीरधीरध्वनिनूपुराणामाबिभ्रतीं शब्दमतीवमञ्जुम् ॥
काञ्चीकलाकङ्कणशब्दमिश्रां हाराङ्गुलीयाङ्गदविस्फुरन्तीम् ।
श्रीनासिकामौक्तिकहंसिकीभिः श्रीकण्ठचूडामणिकुण्डलाढ्याम् ॥
तत्तेजसा धर्षित आशु नन्दो नत्वाथ तामाह कृताञ्जलिः सन् ।
अयं तु साक्षात्पुरुषोत्तमस्त्वं प्रियासि मुख्यासि सदैव राधे ॥
गुप्तं त्विदं गर्गमुखेन वेद्मि गृहाण राधे निजनाथमङ्कात् ।
एवं गृहं प्रापय मेघभीतं वदामि चेत्थं प्रकृतेर्गुणाढ्यम् ॥
नमामि तुभ्यं भुवि रक्ष मां त्वं यथेप्सितं सर्वजनैर्दुरापा ।
(गर्ग०, गोलोक० १६ । ४—८½)

दिव्यधामकी शोभाका अवतरण होते ही साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तम घनश्याम भगवान् श्रीकृष्ण किशोरावस्थाके अनुरूप दिव्य देह धारण करके श्रीराधाके सम्मुख खड़े हो गये। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। कौस्तुभमणिसे विभूषित हो, हाथमें वंशी धारण किये वे नन्दनन्दन राशि-राशि मन्मथों (कामदेवों) को मोहित करने लगे। उन्होंने हँसते हुए प्रियतमाका हाथ अपने हाथमें थाम लिया और उनके साथ विवाह मण्डपमें प्रविष्ट हुए। उस मण्डपमें विवाहकी सब सामग्री संग्रह करके रक्खी गयी थी। मेखला, कुशा, सप्तमृत्तिका और जलसे भरे कलश आदि उस मण्डपकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहीं एक श्रेष्ठ सिंहासन प्रकट हुआ, जिसपर वे दोनों प्रिया-प्रियतम एक-दूसरेसे सटकर विराजित हो गये और अपनी दिव्य शोभाका प्रसार करने लगे। वे दोनों एक-दूसरेसे मीठी-मीठी बातें करते हुए मेघ और विद्युत्‌की भाँति अपनी प्रभासे उद्दीप्त हो रहे थे। उसी समय देवताओंमें श्रेष्ठ विधाता—भगवान् ब्रह्मा आकाशसे उतरकर परमात्मा श्रीकृष्णके सम्मुख आये और उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम करके, हाथ जोड़, कमनीय वाणीद्वारा चारों मुखोंसे मनोहर स्तुति करने लगे ॥ १७—२० ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—प्रभो! आप सबके आदिकारण हैं, किंतु आपका कोई आदि-अन्त नहीं है। आप समस्त पुरुषोत्तमोंमें उत्तम हैं। अपने भक्तोंपर सदा वात्सल्यभाव रखनेवाले और 'श्रीकृष्ण' नामसे विख्यात हैं। अगणित ब्रह्माण्डोंके पालक-पति हैं। ऐसे आप परात्पर प्रभु राधा-प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं शरण लेता हूँ। आप गोलोकधामके अधिनाथ हैं, आपकी लीलाओंका कहीं अन्त नहीं है। आपके साथ ये लीलावती श्रीराधा अपने लोक (नित्यधाम) में ललित लीलाएँ किया करती हैं। जब आप ही 'वैकुण्ठनाथ' के रूपमें विराजमान होते हैं, तब ये वृषभानुनन्दिनी ही 'लक्ष्मी' रूपसे आपके साथ सुशोभित होती हैं। जब आप 'श्रीरामचन्द्र' के रूपमें भूतलपर अवतीर्ण होते है, तब ये जनकनन्दिनी 'सीता' के रूपमें आपका सेवन करती हैं। आप 'श्रीविष्णु' हैं और ये कमलवन-वासिनी 'कमला' हैं; जब आप 'यज्ञपुरुष' का अवतार धारण करते हैं, तब ये श्रीजी आपके साथ 'दक्षिणा' रूपमें निवास करती हैं। आप पतिशिरोमणि हैं तो ये पत्नियोंमें प्रधान हैं। आप 'नृसिंह' हैं तो ये आपके हृदयमें 'रमा' रूपसे निवास करती हैं। आप ही 'नर-नारायण' रूपसे रहकर तपस्या करते हैं, उस समय आपके साथ ये 'परम शान्ति' के रूपमें विराजमान होती हैं। आप जहाँ जिस रूपमें रहते हैं, वहाँ तदनुरूप देह धारण करके ये छायाकी भाँति आपके साथ रहती हैं। आप 'ब्रह्म' हैं और ये 'तटस्था प्रकृति'। आप जब 'काल' रूपसे स्थित होते हैं, तब इन्हें 'प्रधान' (प्रकृति) के रूपमें जाना जाता है। जब आप जगत्‌के अङ्कुर 'महान्' (महत्तत्त्व) रूपमें स्थित होते हैं, तब ये श्रीराधा 'सगुणा माया' रूपसे स्थित होती हैं। जब आप मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारों अन्तःकरणोंके साथ 'अन्तरात्मा' रूपसे स्थित होते हैं, तब ये श्रीराधा 'लक्षणावृत्ति' के रूपमें विराजमान होती हैं। जब आप 'विराट्' रूप धारण करते हैं, तब ये अखिल भूमण्डलमें 'धारणा' कहलाती हैं। पुरुषोत्तमोत्तम! आपका ही श्याम और गौर—द्विविध तेज सर्वत्र विदित है। आप गोलोकधामके अधिपति परात्पर परमेश्वर हैं। मैं आपकी शरण लेता हूँ। जो इस युगलरूपकी उत्तम स्तुतिका सदा पाठ करता है, वह समस्त धामोंमें श्रेष्ठ गोलोकधाममें जाता है और इस लोकमें भी उसे स्वभावतः सौन्दर्य, समृद्धि और सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। यद्यपि आप दोनों नित्य-दम्पति हैं और परस्पर प्रीतिसे परिपूर्ण रहते हैं, परात्पर होते हुए भी एक दूसरेके अनुरूप रूप धारण करके लीला-विलास करते हैं; तथापि मैं लोकव्यवहारकी सिद्धि या लोकसंग्रहके लिये आप दोनोंकी वैवाहिक विधि सम्पन्न कराऊँगा* ॥ २१—२९ ॥

---

* अनादिमाद्यं पुरुषोत्तमोत्तमं श्रीकृष्णचन्द्रं निजभक्तवत्सलम्।
स्वयं त्वसंख्याण्डपतिं परात्परं राधापतिं त्वां शरणं व्रजाम्यहम्॥
गोलोकनाथस्त्वमतीवलीलो लीलावतीयं निजलोकलीला।
वैकुण्ठनाथोऽसि यदा त्वमेव लक्ष्मीस्तदेयं वृषभानुजा हि॥
त्वं रामचन्द्रो जनकात्मजेयं भूमौ हरिस्त्वं कमलालयेयम्।
यज्ञावतारोऽसि यदा तदेयं श्रीदक्षिणा स्त्री प्रतिपत्निमुख्या॥
त्वं नारसिंहोऽसि रमा हृदीयं नारायणस्त्वं च नरेण युक्तः।
तदा त्वियं शान्तिरतीव साक्षाच्छायेव याता च तवानुरूपा॥
त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तटस्था कालो यदेमां च विदुः प्रधानम्।
महान् यदा त्वं जगदङ्कुरोऽसि राधा तदेयं सगुणा च माया॥
यदान्तरात्मा विदितश्चतुर्भिस्तदा त्वियं लक्षणरूपवृत्तिः।
यदा विराड्देहधरस्त्वमेव तदाखिलं वा भुवि धारणेयम्॥
श्यामं च गौरं विदितं द्विधा महस्तवैव साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तम।
गोलोकधामाधिपतिं परेशं परात्परं त्वां शरणं व्रजाम्यहम्॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने उठकर कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित की और अग्निदेवके सम्मुख बैठे हुए उन दोनों प्रिया-प्रियतमके वैदिक विधानसे पाणिग्रहण-संस्कारकी विधि पूरी की। यह सब करके ब्रह्माजी-ने खड़े होकर श्रीहरि और राधिकाजीसे अग्निदेवकी सात परिक्रमाएँ करवायीं। तदनन्तर उन दोनोंको प्रणाम करके वेदवेत्ता विधाताने उन दोनोंसे सात मन्त्र पढ़वाये। उसके बाद श्रीकृष्णके वक्षः स्थलपर श्रीराधिकाका हाथ रखवाकर और श्रीकृष्णका हाथ श्रीराधिकाके पृष्ठदेशमें स्थापित करके विधाताने उनसे मन्त्रोंका उच्चस्वरसे पाठ करवाया। उन्होंने राधाके हाथोंसे श्रीकृष्णके कण्ठमें एक केसरयुक्त माला पहनायी, जिसपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। इसी तरह श्रीकृष्णके हाथोंसे भी वृषभानुनन्दिनीके गलेमें माला पहनवाकर वेदज्ञ ब्रह्माजीने उन दोनोंसे अग्निदेवको प्रणाम करवाया और सुन्दर सिंहासनपर उन अभिनव दम्पतिको बैठाया। वे दोनों हाथ जोड़े मौन रहे। पितामहने उन दोनोंसे पाँच मन्त्र पढ़वाये और जैसे पिता अपनी पुत्रीका सुयोग्य वरके हाथमें दान करता है, उसी प्रकार उन्होंने श्रीराधाको श्रीकृष्णके हाथमें सौंप दिया ॥ ३०—३४ ॥

राजन्! उस समय देवताओंने फूल बरसाये और विद्याधरियोंके साथ देवाङ्गनाओंने नृत्य किया। गन्धर्वों, विद्याधरों, चारणों और किंनरोंने मधुर स्वरसे श्रीकृष्णके लिये सुमङ्गल-गान किया। मृदङ्ग, वीणा, मुरचंग, वेणु, शङ्ख, नगारे, दुन्दुभि तथा करताल आदि बाजे बजने लगे तथा आकाशमें खड़े हुए श्रेष्ठ देवताओंने मङ्गल-शब्दका उच्चस्वरसे उच्चारण करते हुए बारंबार जय-जयकार किया। उस अवसरपर श्रीहरिने विधातासे कहा—'ब्रह्मन्! आप अपनी इच्छाके अनुसार दक्षिणा बताइये।' तब ब्रह्माजीने श्रीहरिसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! मुझे अपने युगल-चरणोंकी भक्ति ही दक्षिणाके रूपमें प्रदान कीजिये।' श्रीहरिने 'तथास्तु' कहकर उन्हें अभीष्ट वरदान दे दिया। तब ब्रह्माजीने श्रीराधिकाके मङ्गलमय युगल-चरणारविन्दोंको दोनों हाथों और मस्तकसे बारंबार प्रणाम करके अपने धाम-को प्रस्थान किया। उस समय प्रणाम करके जाते हुए ब्रह्माजीके मनमें अत्यन्त हर्षोल्लास छा रहा था ॥ ३५—३८ ॥

तदनन्तर निकुञ्जभवनमें प्रियतमाद्वारा अर्पित दिव्य मनोरम चतुर्विध[1] अन्न परमात्मा श्रीहरिने हँसते-हँसते ग्रहण किया और श्रीराधाने भी श्रीकृष्णके हाथोंसे चतुर्विध अन्न ग्रहण करके उनकी दी हुई पान-सुपारी भी खायी। इसके बाद श्रीहरि अपने हाथसे प्रियाका हाथ पकड़कर कुञ्जकी ओर चले। वे दोनों मधुर आलाप करते तथा वृन्दावन, यमुना तथा वनकी लताओंको देखते हुए आगे बढ़ने लगे। सुन्दर लता-कुञ्जों और निकुञ्जोंमें हँसते और छिपते हुए श्रीकृष्णको शाखाकी ओटमें देखकर पीछेसे आती हुई श्रीराधाने उनके पीताम्बरका छोर पकड़ लिया। फिर श्रीराधा भी माधवके कमलोपम हाथोंसे छूटकर भागीं और युगल-चरणोंके नूपुरोंकी झनकार प्रकट करती हुई यमुना-निकुञ्जमें छिप गयीं। जब श्रीहरिसे एक हाथकी दूरीपर रह गयीं, तब पुनः उठकर भाग चलीं। जैसे तमाल सुनहरी लताओं और मेघ चपलासे सुशोभित होता है तथा जैसे नीलमका महान् पर्वत स्वर्णाङ्कित कसौटीसे शोभा पाता है, उसी प्रकार रमणी श्रीराधासे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे। रास-रङ्गस्थलीके निर्जन प्रदेशमें पहुँचकर श्रीहरिने श्रीराधाके साथ रासका रस लेते हुए लीला-रमण किया। भ्रमरों और मयूरोंके कल-कूजनसे मुखरित लताओंवाले वृन्दावनमें वे दूसरे कामदेवकी भाँति विचर रहे थे। परमात्मा श्रीकृष्ण हरिने, जहाँ मतवाले भ्रमर गुञ्जारव करते थे, बहुत-से झरने तथा सरोवर जिनकी शोभा बढ़ाते थे और जिनमें दीप्तिमती लता-वल्लरियाँ प्रकाश फैलाती थीं, गोवर्धनकी उन कन्दराओंमें श्रीराधाके साथ नृत्य किया ॥ ३९—४५ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने यमुनामें प्रवेश करके वृषभानु-नन्दिनीके साथ विहार किया। वे यमुनाजलमें खिले हुए शतदल कमलको राधाके हाथसे छीनकर भाग चले। तब श्रीराधाने भी हँसते-हँसते उनका पीछा किया और उनका पीताम्बर, वंशी तथा बेंतकी छड़ी अपने अधिकारमें कर

सदा पठेद् यो युगलस्तवं परं गोलोकधाम प्रवरं प्रयाति सः।
इहैव सौन्दर्यसमृद्धिसिद्धयो भवन्ति तस्यापि निसर्गतः पुनः॥
यदा युवां प्रीतियुतौ च दम्पती परात्परौ तावनुरूपरूपितौ।
तथापि लोकव्यवहारसंग्रहाद् विधिं विवाहस्य तु कारयाम्यहम्॥
(गर्ग०, गोलोक० १६। २१—२९)

[1] भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य—ये ही चार प्रकारके अन्न हैं।

लीं। श्रीहरि कहने लगे—'मेरी बाँसुरी दे दो।' तब राधाने उत्तर दिया—'मेरा कमल लौटा दो।' तब देवेश्वर श्रीकृष्णने उन्हें कमल दे दिया। फिर राधाने भी पीताम्बर, वंशी और बेंत श्रीहरिके हाथमें लौटा दिये। इसके बाद फिर यमुनाके किनारे उनकी मनोहर लीलाएँ होने लगीं॥ ४६–४८॥

तदनन्तर भाण्डीर-वनमें जाकर व्रजगोप-रत्न श्रीनन्द-नन्दनने अपने हाथोंसे प्रियाका मनोहर शृङ्गार किया—उनके मुखपर पत्र रचना की, दोनों पैरोंमें महावर लगाया, नेत्रोंमें काजलकी पतली रेखा खींच दी तथा उत्तमोत्तम रत्नों और फूलोंसे भी उनका शृङ्गार किया। इसके बाद जब श्रीराधा भी श्रीहरिको शृङ्गार धारण करानेके लिये उद्यत हुईं, उसी समय श्रीकृष्ण अपने किशोररूपको त्यागकर छोटे-से बालक बन गये। नन्दने जिस शिशुको जिस रूपमें राधाके हाथोंमें दिया था, उसी रूपमें वे धरतीपर लोटने और भयसे रोने लगे। श्रीहरिको इस रूपमें देखकर श्रीराधिका भी तत्काल विलाप करने लगीं और बोलीं—'हरे! मुरारे! माया क्यों फैलाते हो?' इस प्रकार विषादग्रस्त होकर रोती हुई श्रीराधासे सहसा आकाशवाणीने कहा—'राधे! इस समय सोच न करो। तुम्हारा मनोरथ कुछ कालके पश्चात् पूर्ण होगा'॥ ४९–५२॥

यह सुनकर श्रीराधा शिशुरूपधारी श्रीकृष्णको लेकर तुरंत व्रजराजकी धर्मपत्नी यशोदाजीके घर गयीं और उनके हाथमें बालकको देकर बोलीं—'आपके पतिदेवने मार्गमें इस बालकको मुझे दे दिया था।' उस समय नन्द-गृहिणीने श्रीराधासे कहा—'वृषभानुनन्दिनि राधे! तुम धन्य हो; क्योंकि तुमने इस समय, जब कि आकाश मेघोंकी घटासे आच्छन्न है, वनके भीतर भयभीत हुए मेरे नन्हे-से लालाकी पूर्णतया रक्षा की है।' यों कहकर नन्दरानीने श्रीराधाका भलीभाँति सत्कार किया और उनके सद्गुणोंकी प्रशंसा की। इससे वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे यशोदाजीकी आज्ञा ले धीरे-धीरे अपने घर चली गयीं॥ ५३–५५॥

राजन्! इस प्रकार श्रीराधाके विवाहकी परम मङ्गल-मयी गुप्त कथाका यहाँ वर्णन किया गया। जो लोग इसे सुनते-पढ़ते अथवा सुनाते हैं, उन्हें कभी पापोंका स्पर्श नहीं प्राप्त होता॥ ५६॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीराधिकाके विवाहका वर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी बाल-लीलामें दधि-चोरीका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों गौर-श्याम मनोहर बालक विविध लीलाओंसे नन्दभवनको अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक बनाने लगे। मिथिलेश्वर! वे दोनों हाथों और घुटनोंके बलसे चलते हुए और मीठी—तोतली बोली बोलते हुए थोड़े ही समयमें व्रजमें इधर-उधर डोलने लगे। माता यशोदा और रोहिणीके द्वारा लालित-पालित वे दोनों शिशु, कभी माताओंकी गोदसे निकल जाते और कभी पुनः उनके अङ्कमें आ बैठते थे। मायासे बालरूप धारण करके त्रिभुवनको मोहित करनेवाले वे दोनों भाई, राम और श्याम, इधर-उधर मञ्जीर-और करधनीकी झंकार फैलाते फिरते थे। माता यशोदा व्रज-बालकोंके साथ आँगनमें खेलते-लोटते तथा धूल लग जानेसे धूसर अङ्गवाले अपने लालाको गोदमें लेकर बड़े आदरसे झाड़ती-पोंछती थीं॥ १–५॥

श्रीकृष्ण दोनों हाथों और घुटनोंके बल चलते हुए पुनः आँगनमें चले जाते और वहाँसे फिर माताकी गोदमें आ जाते थे। इस तरह वे व्रजमें सिंह-शावककी भाँति क्रीडा कर रहे थे। माता यशोदा उन्हें सोनेके तार जड़े पीताम्बर और पीली झगुली पहनाती तथा मस्तकपर दीप्तिमान् रत्नमय मुकुट धारण कराती और इस प्रकार अत्यन्त शोभाशाली भव्यरूपमें उन्हें देखकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करती थीं। अत्यन्त सुन्दर बालोचित क्रीडामें तत्पर बालमुकुन्दका दर्शन करके गोपियाँ बड़ा सुख पाती थीं। वे सुखस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ अपना घर छोड़कर

नन्दराजके गोष्ठमें आ जातीं और वहाँ आकर वे सब-की-सब अपने घरोंकी सुध-बुध भूल जाती थीं। राजन्! नन्दरायजीके गृह-द्वारपर कृत्रिम सिंहकी मूर्ति देखकर भयभीतकी तरह जब श्रीकृष्ण पीछे लौट पड़ते, तब यशोदाजी अपने लालाको गोदमें उठाकर घरके भीतर चली जाती थीं। उस समय गोपियाँ व्रजमें दयासे द्रवित हृदय हो यशोदाजीसे इस प्रकार कहती थीं ॥ ६-९ ॥

श्रीगोपाङ्गनाएँ कहने लगीं—शुभे! तुम्हारा लाला खेलनेके लिये बड़ी चपलता दिखाता है। इसकी बालकेलि अत्यन्त मनोहर है। ऐसा न हो कि इसे किसीकी नजर लग जाय। अतः तुम इस काकपक्षधारी दुधमुँहे बालकको आँगनसे बाहर मत निकलने दिया करो। देखो न, इसके ऊपरके दो दाँत ही पहले निकले हैं, जो मामाके लिये दोषकारक हैं। यशोदाजी! तुम्हारे इस बालकके भी कोई मामा नहीं है, इसलिये विघ्ननिवारणके हेतु तुम्हें दान करना चाहिये। गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, महात्मा तथा वेदोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ १०-१२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तबसे यशोदा और रोहिणीजी पुत्रोंकी कल्याण-कामनासे प्रतिदिन वस्त्र, रत्न तथा नूतन अन्नका दान करने लगीं। कुछ दिनों बाद सिंह-शावककी भाँति दीखनेवाले राम और कृष्ण—दोनों बालक कुछ बड़े होकर गोष्ठोंमें अपने पैरोंके बलसे चलने लगे। श्रीदामा और सुबल आदि व्रज-बालक सखाओंके साथ यमुनाजीके शुभ्र बालुकामय तटपर कौतूहलपूर्वक लोटते हुए राम और श्याम नील-सघन तमालोंसे घिरे और कदम्ब-कुञ्जकी शोभासे विलसित कालिन्दी-तटवर्ती उपवनमें विचरने लगे ॥ १३-१६ ॥

श्रीहरि अपनी बाललीलासे गोप-गोपियोंको आनन्द प्रदान करते हुए सखाओंके साथ घरोंमें जा-जाकर माखन और घृतकी चोरी करने लगे। एक दिन उपनन्दपत्नी गोपी प्रभावती श्रीनन्द-मन्दिरमें आकर यशोदाजीसे बोलीं ॥ १७-१८ ॥

प्रभावतीने कहा—यशोमति! हमारे और तुम्हारे घरोंमें जो माखन, घी, दूध, दही और तक्र है, उसमें ऐसा कोई बिलगाव नहीं है कि यह हमारा है और वह तुम्हारा। मेरे यहाँ तो तुम्हारे कृपाप्रसादसे ही सब कुछ हुआ है। मैं यह नहीं कहना चाहती कि तुम्हारे इस लालाने कहीं चोरी सीखी है। माखन तो यह स्वयं ही चुराता फिरता है, परंतु तुम इसे ऐसा न करनेके लिये कभी शिक्षा नहीं देती। एक दिन जब मैंने शिक्षा दी तो तुम्हारा यह ढीठ बालक मुझे गाली देकर मेरे आँगनसे भाग निकला। यशोदाजी! व्रजराजका बेटा होकर यह चोरी करे, यह उचित नहीं है; किंतु मैंने तुम्हारे गौरवका खयाल करके इसे कभी कुछ नहीं कहा है ॥ १९-२२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! प्रभावतीकी बात सुनकर नन्द-गेहिनी यशोदाने बालकको डाँट बतायी और बड़े प्रेमसे सान्त्वनापूर्वक प्रभावतीसे कहा ॥ २३ ॥

श्रीयशोदा बोलीं—बहिन! मेरे घरमें करोड़ों गौएँ हैं, इस घरकी धरती सदा गोरससे भीगी रहती है। पता नहीं, यह बालक क्यों तुम्हारे घरमें दही चुराता है। यहाँ तो कभी ये सब चीजें चावसे खाता ही नहीं। प्रभावती! इसने जितना भी दही या माखन चुराया हो, वह सब तुम मुझसे ले लो। तुम्हारे पुत्र और मेरे लालामें किंचिन्मात्र भी कोई भेद नहीं है। यदि तुम इसे माखन चुराकर खाते और मुखमें माखन लपेटे हुए पकड़कर मेरे पास ले आओगी तो मैं इसे अवश्य ताड़ना दूँगी, डाँटूँगी और घरमें बाँध रक्खूँगी ॥ २४-२६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यशोदाजीकी यह बात सुनकर गोपी प्रभावती प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट आयी। एक दिन श्रीकृष्ण समवयस्क बालकोंके साथ फिर दही चुरानेके लिये उसके घरमें गये। घरकी दीवारके पास सटकर एक हाथसे दूसरे बालकका हाथ पकड़े धीरे-धीरे घरमें घुसे। छींकेपर रक्खा हुआ गोरस हाथसे पकड़में नहीं आ सकता, यह देख श्रीहरिने स्वयं एक ओखलीके ऊपर पीढ़ा रक्खा। उसपर कुछ ग्वाल-बालोंको खड़ा किया और उनके सहारे आप ऊपर चढ़ गये। तो भी छींकेपर रक्खा हुआ गोरस अभी और ऊँचे कदके मनुष्यसे ही प्राप्त किया जा सकता था, इसलिये वे उसे न पा सके। तब श्रीदामा और सुबलके साथ उन्होंने मटकेपर डंडेसे प्रहार किया। दहीका बर्तन फूट गया और सारा गव्य पृथ्वीपर बह चला। तब बलरामसहित माधवने ग्वाल-बालों और बंदरोंके साथ वह मनोहर दही जी भरकर खाया। भाण्डके फूटनेकी आवाज सुनकर गोपी प्रभावती वहाँ आ पहुँची। अन्य सब बालक तो वहाँसे भाग निकले; किंतु श्रीकृष्ण-

का हाथ उसने पकड़ लिया। श्रीकृष्ण भयभीत-से होकर मिथ्या आँसू बहाने लगे। प्रभावती उन्हें लेकर नन्द-भवनकी ओर चली। सामने नन्दरायजी खड़े थे। उन्हें देखकर प्रभावतीने मुखपर घूँघट डाल लिया। श्रीहरि सोचने लगे—'इस तरह जानेपर माता मुझे अवश्य दण्ड देगी।' अतः उन स्वच्छन्दगति परमेश्वरने प्रभावतीके ही पुत्रका रूप धारण कर लिया। रोषसे भरी हुई प्रभावती यशोदाजीके पास शीघ्र जाकर बोली—'इसने मेरा दहीका बर्तन फोड़ दिया और सारा दही लूट लिया' ॥ २७—३५ ॥

यशोदाजीने देखा, यह तो इसीका पुत्र है; तब वे हँसती हुई उस गोपीसे बोलीं—'पहले अपने मुखसे घूँघट तो हटाओ, फिर बालकके दोष बताना। यदि इस तरह झूठे ही दोष लगाना है तो मेरे नगरसे बाहर चली जाओ। क्या तुम्हारे पुत्रकी की हुई चोरी मेरे बेटेके माथे मढ़ दी जायगी ?' तब लोगोंके बीच लजाती हुई प्रभावतीने अपने मुँहसे घूँघटको हटाकर देखा तो उसे अपना ही बालक दिखायी दिया। उसे देखकर वह मन-ही-मन चकित होकर बोली—'अरे निगोड़े! तू कहाँसे आ गया! मेरे हाथमें तो व्रजका सार-सर्वस्व था।' इस तरह बड़बड़ाती हुई वह अपने बेटेको लेकर नन्दभवनसे बाहर चली गयी। यशोदा, रोहिणी, नन्द, बलराम तथा अन्यान्य गोप और गोपाङ्गनाएँ हँसने लगीं और बोलीं—'अहो! व्रजमें तो बड़ा भारी अन्याय दिखायी देने लगा है!' उधर भगवान् बाहरकी गलीमें पहुँचकर फिर नन्द-नन्दन बन गये और सम्पूर्ण शरीरसे धृष्टताका परिचय देते हुए, चञ्चल नेत्र मटकाकर, जोर-जोरसे हँसते हुए उस गोपीसे बोले ॥ ३६—४१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—अरी गोपी! यदि फिर कभी तू मुझे पकड़ेगी तो अबकी बार मैं तेरे पतिका रूप धारण कर लूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ४२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर वह गोपी आश्चर्यसे चकित हो अपने घर चली गयी। उस दिनसे सब घरोंकी गोपियाँ लाजके मारे श्रीहरिका हाथ नहीं पकड़ती थीं ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें श्रीकृष्णके बालचरित्रगत 'दधि-चोरीका वर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

नन्द, उपनन्द और वृषभानुओंका परिचय तथा श्रीकृष्णकी मृद्भक्षण-लीला

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! गोपाङ्गनाओंके घरोंमें विचरते और माखन-चोरीकी लीला करते हुए नवकंज-लोचन मनोहर श्याम-रूपधारी श्रीकृष्ण बालचन्द्रकी भाँति बढ़ते और लोगोंके चित्त चुराते हुए-से व्रजमें अद्भुत शोभाका विस्तार करने लगे। नौ नन्द नामके गोप अत्यन्त चञ्चल श्रीनन्दनन्दनको पकड़कर अपने घर ले जाते और वहाँ बिठाकर उनकी रूपमाधुरीका आस्वादन करते हुए मोहित हो जाते थे। वे उन्हें अच्छी-अच्छी गेंदें देकर खेलाते, उनका लालन-पालन करते, उनकी लीलाएँ गाते और बड़े हुए आनन्दमें निमग्न हो सारे जगत्‌को भूल जाते थे ॥ १-२ ॥

राजाने पूछा—देवर्षे! आप मुझसे नौ उपनन्दोंके नाम बताइये। वे सब बड़े सौभाग्यशाली थे। उनके पूर्वजन्मका परिचय दीजिये। वे पहले कौन थे, जो इस भूतलपर अवतीर्ण हुए? उपनन्दोंके साथ ही छः वृषभानुओंके भी मङ्गलमय कर्मोंका वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—गय, विमल, श्रीश, श्रीधर, मङ्गलायन, मङ्गल, रङ्गवल्लीश, रङ्गोजि तथा देवनायक—ये 'नौ नन्द' कहे गये हैं, जो व्रजके गोकुलमें उत्पन्न हुए थे। वीतिहोत्र, अग्निभुक्, साम्ब, श्रीवर, गोपति, श्रुत, व्रजेश, पावन तथा शान्त—ये 'उपनन्द' कहे गये हैं। नीतिवित्, मार्गद, शुक्र, पतंग, दिव्यवाहन और गोपेष्ट—ये छः 'वृषभानु' हैं, जिन्होंने व्रजमें जन्म धारण किया था। जो गोलोक-धाममें श्रीकृष्णचन्द्रके निकुञ्जद्वारपर रहकर हाथमें बेंत लिये पहरा देते थे, वे श्याम अङ्गवाले गोप व्रजमें 'नौ नन्द' के नामसे विख्यात हुए। निकुञ्जमें जो करोड़ों गायें हैं, उनके पालनमें तत्पर, मोरपंख और मुरली धारण करनेवाले गोप यहाँ 'उपनन्द' कहे गये हैं।

निकुञ्ज-दुर्गकी रक्षाके लिये जो दण्ड और पाश धारण किये उसके छहों द्वारोंपर रहा करते हैं, वे ही छः गोप यहाँ 'छः वृषभानु' कहलाये । श्रीकृष्णकी इच्छासे ही वे सब लोग गोलोकसे भूतलपर उतरे हैं । उनके प्रभावका वर्णन करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं, फिर मैं उनके महान् अभ्युदयशाली सौभाग्यका कैसे वर्णन कर सकूँगा, जिनकी गोदमें बैठकर बाल-क्रीडापरायण श्रीहरि सदा सुशोभित होते थे ॥ ४–१२ ॥

एक दिनकी बात है, यमुनाके तटपर श्रीकृष्णने मिट्टीका आस्वादन किया। यह देख बालकोंने यशोदाजीके पास आकर कहा—'अरी मैया ! तुम्हारा लाला तो मिट्टी खाता है ।' बलभद्रजीने भी उनकी हाँ-मे-हाँ मिला दी। तब नन्दरानीने अपने पुत्रका हाथ पकड़ लिया । बालकके नेत्र भयभीत-से हो उठे। मैयाने उससे कहा ॥ १३-१४ ॥

यशोदाजीने पूछा—ओ महामूढ़ ! तूने क्यों मिट्टी खायी ? तेरे ये साथी भी बता रहे हैं और साक्षात् बड़े भैया ये बलराम भी यही बात कहते हैं कि 'माँ ! मना करनेपर भी यह मिट्टी खाना नहीं छोड़ता । इसे मिट्टी बड़ी प्यारी लगती है' ॥ १५ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—मैया ! व्रजके ये सारे बालक झूठ बोल रहे हैं। मैंने कहीं भी मिट्टी नहीं खायी । यदि तुम्हें मेरी बातपर विश्वास न हो तो मेरा मुँह देख लो ॥१६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तब गोपी यशोदाने बालकका सुन्दर मुख खोलकर देखा । यशोदाको उसके भीतर तीनों गुणोंद्वारा रचित और सब ओर फैला हुआ ब्रह्माण्ड दिखायी दिया। सातों द्वीप, सात समुद्र, भारत आदि वर्ष, सुदृढ़ पर्वत, ब्रह्मलोक-पर्यन्त तीनों लोक तथा समस्त व्रजमण्डलसहित अपने शरीरको भी यशोदाने अपने पुत्रके मुखमे देखा। यह देखते ही उन्होंने आँखें बंद कर लीं और श्रीयमुनाजीके तटपर बैठकर सोचने लगीं—'यह मेरा बालक साक्षात् श्रीनारायण है।' इस तरह वे ज्ञाननिष्ठ हो गयीं । तब श्रीकृष्ण उन्हें अपनी मायासे मोहित-सी करते हुए हँसने लगे । यशोदाजीकी स्मरण-शक्ति विलुप्त हो गयी । उन्होंने श्रीकृष्णका जो वैभव देखा था, वह सब वे तत्काल भूल गयीं ॥ १७–२० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'ब्रह्माण्डदर्शन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

दामोदर कृष्णका उलूखल-बन्धन तथा उनके द्वारा यमलार्जुन-वृक्षोंका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! एक समय गोपाङ्गनाएँ घर-घरमें गोपालकी लीलाएँ गाती हुई गोकुलमें सब ओर दधि-मन्थन कर रही थीं । श्रीनन्द-मन्दिरमें सुन्दरी यशोदाजी भी प्रातःकाल उठकर दहीके भाण्डमें रई डालकर उसे मथने लगीं। मथानीकी आवाज सुनकर बालक श्रीनन्दनन्दन भी नवनीत-के लिये कौतूहलवश मञ्जीरकी मधुरध्वनि प्रकट करते हुए नाचने लगे । माताके पास बालक्रीडापरायण श्रीकृष्ण बार-बार चक्कर लगाते और नाचते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे और बजती हुई करधनीके घुघुरुओंकी मधुर झंकार बारंबार फैला रहे थे। वे मातासे मीठे वचन बोलकर ताजा निकाला हुआ माखन माँग रहे थे । जब वह उन्हें नहीं मिला, तब वे कुपित हो उठे और एक पत्थरका टुकड़ा लेकर उसके द्वारा दही मथनेका पात्र फोड़ दिया। ऐसा करके वे भाग चले। यशोदाजी भी अपने पुत्रको पकड़ने-के लिये पीछे-पीछे दौड़ीं। वे उनसे एक ही हाथ आगे थे, किंतु वे उन्हें पकड़ नहीं पाती थीं। जो योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ हैं, वे माताकी पकड़में कैसे आ सकते थे ॥१–६॥

नृपेश्वर ! तथापि श्रीहरिने भक्तोंके प्रति अपनी भक्तवश्यता दिखायी, इसलिये वे जान-बूझकर माताके हाथ आ गये। अपने बालक पुत्रको पकड़कर यशोदाने रोषपूर्वक ऊखलमें बाँधना आरम्भ किया। वे जो-जो बड़ी-से-बड़ी रस्सी उठातीं, वही-वही उनके पुत्रके लिये कुछ छोटी पड़ जाती थी। जो प्रकृतिके तीनों गुणोंसे न बँध सके, वे प्रकृतिसे परे विद्यमान परमात्मा यहाँके गुणसे (रस्सीसे) कैसे बँध सकते थे ? जब यशोदा बाँधते-बाँधते

थक गयीं और हतोत्साह होकर बैठ रहीं तथा बाँधनेकी इच्छा भी छोड़ बैठीं, तब ये स्वच्छन्दगति भगवान् श्रीकृष्ण स्ववश होते हुए भी कृपा करके माताके बन्धनमें आ गये। भगवान्‌की ऐसी कृपा कर्मत्यागी ज्ञानियोंको भी नहीं मिल सकी; फिर जो कर्ममें आसक्त हैं, उनको तो मिल ही कैसे सकती है। यह भक्तिका ही प्रताप है कि वे माताके बन्धनमें आ गये। नरेश्वर ! इसीलिये भगवान् ज्ञानके साधक आराधकोंको मुक्ति तो दे देते हैं, किंतु भक्ति नहीं देते। उसी समय बहुत-सी गोपियाँ भी शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं। उन्होंने देखा कि दही मथनेका भाण्ड फूटा हुआ है और भयभीत नन्द-शिशु बहुत-सी रस्सियोंद्वारा ओखलीमें बँधे खड़े हैं। यह देखकर उन्हें बड़ी दया आयी और वे यशोदाजीसे बोलीं ॥ ७—११ ॥

गोपियोंने कहा—नन्दरानी ! तुम्हारा यह नन्हा-सा बालक सदा ही हमारे घरोंमें आकर बर्तन-भाँड़े फोड़ा करता है, तथापि हम करुणावश इसे कभी कुछ नहीं कहतीं। व्रजेश्वरि यशोदे ! तुम्हारे दिलमें जरा भी दर्द नहीं है, तुम निर्दय हो गयी हो। एक बर्तनके फूट जानेके कारण तुमने इस बच्चेको छड़ीसे डराया-धमकाया है और बाँध भी दिया है ! ॥ १२-१३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! उन गोपियोंके यों कहनेपर यशोदाजी कुछ नहीं बोलीं। वे घरके काम-धंधोंमें लग गयीं। इसी बीच मौका पाकर श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ वह ओखली खींचते हुए श्रीयमुनाजीके किनारे चले गये। यमुनाजीके तटपर दो पुराने विशाल वृक्ष थे, जो एक दूसरेसे जुड़े हुए खड़े थे। वे दोनों ही अर्जुन-वृक्ष थे। दामोदर भगवान् कृष्ण हँसते हुए उन दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गये। ओखली वहाँ टेढ़ी हो गयी थी, तथापि श्रीकृष्णने सहसा उसे खींचा। खींचनेसे दबाव पाकर वे दोनों वृक्ष जड़सहित उखड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े। वृक्षोंके गिरनेसे जो धमाकेकी आवाज हुई, वह वज्रपातके समान भयंकर थी। उन वृक्षोंसे दो देवता निकले—ठीक उसी तरह जैसे काष्ठसे अग्नि प्रकट हुई हो। उन दोनों देवताओंने दामोदरकी परिक्रमा करके अपने मुकुटसे उनके पैर छूये और दोनों हाथ जोड़े। वे उन श्रीहरिके समक्ष नत-मस्तक खड़े हो इस प्रकार बोले ॥ १४—१८ ॥

दोनों देवता कहने लगे—अच्युत ! आपके दर्शनसे हम दोनोंको इसी क्षण ब्रह्मदण्डसे मुक्ति मिली है। हरे ! अब हम दोनोंसे आपके निज भक्तोंकी अवहेलना न हो। आप करुणाकी निधि हैं। जगत्‌का मङ्गल करना आपका स्वभाव है। आप 'दामोदर', 'कृष्ण' और 'गोविन्द'को हमारा बारंबार नमस्कार है* ॥ १९-२० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार श्रीहरिको नमस्कार करके वे दोनों देवकुमार उत्तर दिशाकी ओर चल दिये। उसी समय भयसे कातर हुए नन्द आदि समस्त गोप वहाँ आ पहुँचे। वे पूछने लगे—'व्रजबालको ! बिना आँधी-पानीके ये दोनों वृक्ष कैसे गिर पड़े ? शीघ्र बताओ।' तब उन समस्त व्रजवासी बालकोंने कहा ॥ २१-२२ ॥

बालकोंने कहा—इस कन्हैयाने ही दोनों वृक्षोंको गिराया है। उन वृक्षोंसे दो पुरुष निकलकर यहाँ खड़े थे, जो इसे नमस्कार करके अभी-अभी उत्तर दिशाकी ओर गये हैं। उनके अङ्गोंसे दीप्तिमती प्रभा निकल रही थी ॥ २३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! ग्वाल-बालोंकी यह बात सुनकर उन बड़े-बूढ़े गोपोंने उसपर विश्वास नहीं किया। नन्दजीने ओखलीमें रस्सीसे बँधे हुए अपने बालकको खोल दिया और लाड़-प्यार करते हुए गोदमें उठाकर उस शिशुको सूँघने लगे। नरेश्वर ! नन्दजीने अपनी पत्नीको बहुत उलाहना दिया और ब्राह्मणोंको सौ गायें दानके रूपमें दीं ॥ २४-२५ ॥

बहुलाश्वने कहा—देवर्षिप्रवर ! वे दोनों दिव्य पुरुष कौन थे, यह बताइये। किस दोषके कारण उन्हें यमलार्जुन-वृक्ष होना पड़ा था ? ॥ २६ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! वे दोनों कुबेरके श्रेष्ठ पुत्र थे, जिनका नाम था—'नलकूबर' और 'मणि-ग्रीव'। एक दिन वे नन्दनवनमें गये और वहाँ मन्दाकिनीके तटपर ठहरे। वहाँ अप्सराएँ उनके गुण गाती रहीं और वे दोनों वारुणी मदिरासे मतवाले होकर वहाँ नंग-धड़ंग विचरते रहे। एक तो उनकी युवावस्था थी और दूसरे वे द्रव्यके दर्प (धनके मद) से दर्पित (उन्मत्त) थे। उसी अवसरपर किसी कालमें 'देवल' नामधारी मुनीन्द्र, जो

* करुणानिधये तुभ्यं जगन्मङ्गलशीलिने।
दामोदराय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
(गर्ग०, गोलोक० १९ । २०)

वेदोंके पारंगत विद्वान् थे, उधर आ निकले। उन दोनों कुबेर-पुत्रोंको नग्न देखकर ऋषिने उनसे कहा—'तुम दोनोंके स्वभावमें दुष्टता भरी है। तुम दोनों अपनी सुध-बुध खो बैठे हो' ॥ २७—२९ ॥

इतना कहकर देवलजी फिर बोले—तुम दोनों वृक्षके समान जड, धृष्ट तथा निर्लज्ज हो। तुम्हें अपने द्रव्यका बड़ा घमंड है; अतः तुम दोनों इस भूतलपर सौ (दिव्य) वर्षोंतकके लिये वृक्ष हो जाओ। जब द्वापरके अन्तमें भारतवर्षके भीतर मथुरा-जनपदके व्रजमण्डलमें कलिन्द-नन्दिनी यमुनाके तटपर महावनके समीप तुम दोनों साक्षात् परिपूर्णतम दामोदर हरि गोलोकनाथ श्रीकृष्णका दर्शन करोगे, तब तुम्हें अपने पूर्वस्वरूपकी प्राप्ति हो जायगी ॥ ३०—३२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! इस प्रकार देवलके शापसे वृक्षभावको प्राप्त हुए नलकूबर और मणिग्रीवका श्रीकृष्णने उद्धार किया ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उलूखल-बन्धन और यमलार्जुन-मोचन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

दुर्वासाद्वारा भगवान्‌की मायाका एवं गोलोकमें श्रीकृष्णका दर्शन तथा श्रीनन्दनन्दनस्तोत्र

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन मुनि-श्रेष्ठ दुर्वासा परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके लिये व्रजमण्डलमें आये। उन्होंने कालिन्दीके निकट पवित्र वालुकामय पुलिनके रमणीय स्थलमें महावनके समीप श्रीकृष्णको निकटसे देखा। वे शोभाशाली मदनगोपाल बालकोंके साथ वहाँ लोटते, परस्पर मल्ल-युद्ध करते तथा भाँति-भाँतिकी बालोचित लीलाएँ करते थे। इन सब कारणोंसे वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। उनके सारे अङ्ग धूलसे धूसरित थे। मस्तकपर काले घुँघराले केश शोभा पाते थे। दिगम्बर-वेषमें बालकोंके साथ दौड़ते हुए श्रीहरिको देखकर दुर्वासाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ १—४ ॥

श्रीमुनि (मन-ही-मन) कहने लगे—क्या यह वही षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न ईश्वर है? फिर यह बालकोंके साथ धरतीपर क्यों लोट रहा है? मेरी समझमें यह केवल नन्दका पुत्र है, परात्पर श्रीकृष्ण नहीं है ॥ ५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! जब महामुनि दुर्वासा इस प्रकार मोहमें पड़ गये, तब खेलते हुए श्रीकृष्ण स्वयं उनके पास उनकी गोदमें आ गये। फिर उनकी गोदसे हट गये। श्रीकृष्णकी दृष्टि बाल-सिंहके समान थी। वे हँसते और मधुर वचन बोलते हुए पुनः मुनिके सम्मुख आ गये। हँसते हुए श्रीकृष्णके श्वाससे खिंचकर मुनि उनके मुँहमें समा गये। वहाँ जाकर उन्होंने एक विशाल लोक देखा, जिसमें अरण्य और निर्जन प्रदेश भी दृष्टिगोचर हो रहे थे। उन अरण्यों (जंगलों) में भ्रमण करते हुए मुनि बोल उठे—'मैं कहाँसे यहाँ आ गया?' इतनेमें ही उन महामुनिको एक अजगर निगल गया। उसके पेटमें पहुँचनेपर मुनिने वहाँ सातों लोकों और पातालोंसहित समूचे ब्रह्माण्डका दर्शन किया। उसके द्वीपोंमें भ्रमण करते हुए दुर्वासा मुनि एक श्वेत पर्वतपर ठहर गये। उस पर्वतपर शतकोटि वर्षोंतक भगवान्‌का भजन करते हुए वे तप करते रहे। इतनेमें ही सम्पूर्ण विश्वके लिये भयंकर नैमित्तिक प्रलयका समय आ पहुँचा। समुद्र सब ओरसे धरातलको डुबाते हुए मुनिके पास आ गये। दुर्वासा मुनि उन समुद्रोंमें बहने लगे। उन्हें जलका कहीं अन्त नहीं मिलता था। इसी अवस्थामें एक सहस्र युग व्यतीत हो गये। तदनन्तर मुनि एकार्णवके जलमें डूब गये। उनकी स्मृति-शक्ति नष्ट हो गयी। फिर वे पानीके भीतर विचरने लगे। वहाँ उन्हें एक दूसरे ही ब्रह्माण्डका दर्शन हुआ। उस ब्रह्माण्डके छिद्रमें प्रवेश करनेपर वे दिव्य सृष्टिमें जा पहुँचे। वहाँसे उस ब्रह्माण्डके शिरोभागमें विद्यमान लोकोंमें ब्रह्माकी आयु-पर्यन्त विचरते रहे। इसी

प्रकार वहाँ एक छिद्र देखकर श्रीहरिका स्मरण करते हुए वे उसके भीतर घुस गये । घुसते ही उस ब्रह्माण्डके बाहर आ निकले । फिर तत्काल उन्हें महती जलराशि दिखायी दी । उस जलराशिमें उन्हें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी राशियाँ बहती दिखायी दीं । तब मुनिने जलको ध्यानसे देखा तो उन्हें वहाँ विरजा नदीका दर्शन हुआ । उस नदीके पार पहुँचकर मुनिने साक्षात् गोलोकमें प्रवेश किया । वहाँ उन्हें क्रमशः वृन्दावन, गोवर्धन और सुन्दर यमुना-पुलिनका दर्शन करके बड़ी प्रसन्नता हुई । फिर वे मुनि जब निकुञ्जके भीतर घुसे, तब उन्होंने अनन्त कोटि मार्तण्डोके समान ज्योतिर्मण्डलके अंदर दिव्य लक्षदल कमलपर विराजमान साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम राधावल्लभ भगवान् श्रीकृष्णको देखा, जो असंख्य गोप-गोपियोंसे घिरे तथा कोटि-कोटि गौओंसे सम्पन्न थे । असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति उन भगवान् श्रीहरिके साथ ही उनके गोलोकका भी मुनिको दर्शन हुआ ॥ ६–२० ॥

उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे । हँसते समय उनके श्वाससे खिंचकर दुर्वासा मुनि उनके मुँहके भीतर पहुँच गये । उस मुखसे पुनः बाहर निकलनेपर उन्होंने उन्हीं बालरूपधारी श्रीनन्दनन्दनको देखा, जो कालिन्दीके निकटवर्ती पुण्य वालुकामय रमणस्थलीमें बालकोंके साथ विचर रहे थे । महावनमें श्रीकृष्णका उस रूपमें दर्शन करके दुर्वासा मुनि यह समझ गये कि ये श्रीकृष्ण साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं । फिर तो उन्होंने श्रीनन्द-नन्दनको बार-बार नमस्कार करके हाथ जोड़कर कहा ॥ २१–२३ ॥

श्रीमुनि बोले—जिनके नेत्र नूतन विकसित शतदल कमलके समान विशाल हैं, अधर बिम्बाफलकी अरुणिमाको तिरस्कृत करनेवाले हैं तथा श्रीअङ्ग सजल जलधरकी श्याम-मनोहर कान्तिको छीने लेते हैं, जिनके मुखपर मन्द मुसकान-की दिव्य छटा छा रही है तथा जो सुन्दर मधुर मन्दगतिसे चल रहे हैं, उन बाल्यावस्थासे विलसित मनोज्ञ श्रीनन्द-नन्दनको मैं मनसे प्रणाम करता हूँ । जिनके चरणोंमें मञ्जीर और नूपुर झंकृत हो रहे हैं और कटिमें खनखनाती हुई नूतन रत्ननिर्मित काञ्ची (करधनी) शोभा दे रही है; जो बघनखासे युक्त यन्त्रसमुदाय तथा सुन्दर कण्ठहारसे सुशोभित हैं, जिनके भालदेशमें दृष्टिजनित पीड़ा हर लेनेवाली कज्जलकी बेंदी शोभा दे रही है तथा जो कलिन्द-नन्दिनीके तटपर बालोचित क्रीड़ामें संलग्न हैं, उन श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ । जिनके पूर्णचन्द्रोपम सुन्दर मुखपर नूतन नीलघनकी श्याम विभाको तिरस्कृत करनेवाले घुँघराले काले केश चमक रहे हैं तथा जिनका मस्तकरूपी कुमुद कुछ झुका हुआ है, उन आप नन्दनन्दन श्रीकृष्ण तथा आपके अग्रज श्रीबलरामको मेरा बारंबार नमस्कार है । जो प्रातःकाल उठकर इस 'श्रीनन्दनन्दनस्तोत्र'का पाठ करता है, उसके नेत्रोंके समक्ष श्रीनन्दनन्दन सानन्द प्रकट होते हैं* ॥ २४–२७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार श्रीकृष्णको प्रणाम करके मुनिशिरोमणि दुर्वासा उन्हींका ध्यान और जप करते हुए उत्तरमें बदरिकाश्रमकी ओर चले गये ॥ २८ ॥

श्रीगर्गजी कहते हैं—शौनक ! इस प्रकार देवर्षिप्रवर महात्मा नारदने बुद्धिमान् राजा बहुलाश्वको भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र सुनाया था । ब्रह्मन् ! वह सब मैंने तुमसे कह सुनाया । भगवान्‌का सुयश कलिकलुषका विनाश करनेवाला, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थोंको

---

* श्रीमुनिरुवाच—

बालं नवीनशतपत्रविशालनेत्रं
बिम्बाधरं सजलमेघरुचिं मनोज्ञम् ।
मन्दस्मितं मधुरसुन्दरमन्दयानं
श्रीनन्दनन्दनमहं मनसा नमामि ॥
मञ्जीरनूपुररणन्नवरत्नकाञ्ची-
श्रीहारकेसरिनखप्रतियन्त्रसंघम् ।
दृष्ट्यार्तिहारिमषिबिन्दुविराजमानं
वन्दे कलिन्दतनुजातटबालकेलिम् ॥
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखोपरि कुञ्चिताग्राः
केशा नवीनघननीलनिभाः स्फुरन्तः ।
राजन्त आनतशिरः कुमुदस्य यस्य
नन्दात्मजाय सबलाय नमो नमस्ते ॥
श्रीनन्दनन्दनस्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
तन्नेत्रगोचरं याति सानन्दं नन्दनन्दनः ॥
(गर्ग०, गोलोक० २० । २४–२७)

देनेवाला तथा दिव्य (लोकातीत) है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ?॥ २९-३०॥

शौनक बोले—तपोधन ! इसके बाद मिथिलानरेश बहुलाश्वने शान्तस्वरूप, ज्ञानदाता महामुनि नारदसे क्या पूछा, वही प्रसङ्ग मुझसे कहिये ॥ ३१ ॥

श्रीगर्गजीने कहा—शौनक ! ज्ञानदाता नारदजीको नमस्कार करके मानदाता मैथिलनरेशने पुनः उनसे श्रीकृष्णचरित्रके विषयमें, जो मङ्गलका धाम है, प्रश्न किया ॥ ३२ ॥

श्रीबहुलाश्वने पूछा—प्रभो ! परमानन्दविग्रह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने इसके बाद और कौन-कौन-सी विचित्र लीलाएँ कीं, यह मुझे बताइये। पूर्वके अवतारों-द्वारा भी मङ्गलमय चरित्र सम्पादित हुए हैं। इस श्रीकृष्णावतारके द्वारा इसके बाद और कौन-कौन-से पवित्र चरित्र किये गये, यह सब बताइये ॥ ३३-३४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! तुम्हें अनेक साधुवाद हैं; क्योंकि तुमने श्रीहरिके मङ्गलमय चरित्रके विषयमें प्रश्न किया है। वृन्दावनमें जो उनकी यशोवर्धक लीलाएँ हुई हैं, उनका मैं वर्णन करूँगा। यह गोलोकखण्ड अत्यन्त गोपनीय और परम अद्भुत है। गोलोकके रासमण्डलमें साक्षात् श्रीकृष्णने इसका वर्णन किया था। इसे श्रीकृष्णने निकुञ्जमें राधिकाको सुनाया और श्रीराधाने मुझे इसका ज्ञान प्रदान किया है। फिर मैंने तुमको वह सब सुना दिया। यह गोलोकखण्डका वृत्तान्त सम्पूर्ण पदार्थोंको देनेवाला उत्कृष्ट साधन है। यदि ब्राह्मण इसका पाठ करता है तो वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका ज्ञाता होता है, क्षत्रिय इसे सुने तो वह प्रचण्ड पराक्रमी चक्रवर्ती सम्राट् होता है, वैश्य सुने तो वह निधिपति हो जाय और शूद्र सुने तो वह संसारके बन्धनसे छुटकारा पा जाय। जो इस जगत्‌में फलकी कामनासे रहित होकर इसका पाठ करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। जो सम्यक् भक्तिभावसे युक्त हो नित्य इसका पाठ करता है, वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गोलोकधाममें, जो प्रकृतिसे परे है, पहुँच जाता है* ॥ ३५-४० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गोलोकखण्डके अन्तर्गत नारदबहुलाश्व-संवादमें 'दुर्वासाके द्वारा भगवान्‌की मायाका दर्शन तथा श्रीनन्दनन्दनस्तोत्रका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

गोलोकखण्ड सम्पूर्ण।

---

* इदं गोलोकखण्डं च गुह्यं परमदुद्भुतम्। श्रीकृष्णेन प्रकथितं गोलोके रासमण्डले ॥
निकुञ्जे राधिकायै च राधा मह्यं ददाविदम्। मया तुभ्यं श्रावितं च दत्तं सर्वार्थदं परम् ॥
इदं पठति विप्रस्तु सर्वशास्त्रार्थगो भवेत्। श्रुत्वेदं चक्रवर्ती स्यात् क्षत्रियश्चण्डविक्रमः ॥
वैश्यो निधिपतिर्भूयाच्छूद्रो मुच्येत बन्धनात्। निष्फलो योऽपि जगति जीवन्मुक्तः स जायते ॥
यो नित्यं पठते सम्यग् भक्तिभावसमन्वितः। स गच्छेत् कृष्णचन्द्रस्य गोलोकं प्रकृतेः परम् ॥
(गर्ग०, गोलोक० २० । ३६-४०)

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीवृन्दावनखण्ड

प्रथम अध्याय

सन्नन्दका गोपोंको महावनसे वृन्दावनमें चलनेकी सम्मति देना और व्रजमण्डलके सर्वाधिक माहात्म्यका वर्णन करना

मङ्गलाचरण

कृष्णातीरे कोकिलाकेलिकीरे
गुञ्जापुञ्जे देवपुष्पादिकुञ्जे।
कम्बुग्रीवौ क्षिप्तबाहू चलन्तौ
राधाकृष्णौ मङ्गलं मे भवेताम् ॥ १ ॥

श्रीयमुनाजीके तटपर, जहाँ कोकिलाएँ तथा क्रीडाशुक विचरते हैं, गुञ्जापुञ्जसे विलसित देवपुष्प (पारिजात) आदिके कुञ्जमें, शङ्ख-सदृश सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित तथा एक दूसरेके गलेमें बाँह डालकर चलनेवाले प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्ण मेरे लिये मङ्गलमय हों ॥ १ ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥

मैं अज्ञानरूपी रतौंधीसे अंधा हो रहा था; जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जनकी शलाकासे मेरी आँखें खोल दी हैं, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ २ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक समयकी बात है—व्रजमें विविध उपद्रव होते देख नन्दराजने अपने सहायक नन्दों, उपनन्दों, वृषभानुओं, वृषभानुवरों तथा अन्य बड़े-बूढ़े गोपोंको बुलाकर सभामें उनसे कहा ॥ ३ ॥

नन्द बोले—गोपगण! महावनमें तो बहुत-से उत्पात हो रहे हैं। बताइये, हमलोगोंको इस समय क्या करना चाहिये? ॥ ४ ॥

नारदजी कहते हैं—यह सुनकर उन सबमें विशेष मन्त्रकुशल वृद्ध गोप सनन्दने बलराम और श्रीकृष्णको गोदमें लेकर नन्दराजसे कहा ॥ ५ ॥

सन्नन्द बोले—मेरे विचारसे तो हमें अपने समस्त परिकरोंके साथ यहाँसे उठ चलना चाहिये और किसी दूसरे ऐसे स्थानमें जाकर डेरा डालना चाहिये, जहाँ उत्पातकी सम्भावना न हो। तुम्हारा बालक श्रीकृष्ण हम सबको प्राणोंके समान प्रिय है, व्रजवासियोंका जीवन है, व्रजका धन और गोपकुलका दीपक है और अपनी बाललीलासे सबके मनको मोह लेनेवाला है। हाय! कितने खेदकी बात है कि इस बालकपर पूतना, शकट और तृणावर्तका आक्रमण हुआ, फिर इसके ऊपर वृक्ष गिर पड़े; इन सब संकटोंसे यह किसी प्रकार बचा है, इससे बढ़कर उत्पात और क्या हो सकता है। इसलिये हमलोग अपने बालकोंके साथ वृन्दावनमें चलें और जब उत्पात शान्त हो जायँ, तब फिर यहाँ आयें ॥ ६—९ ॥

नन्दने पूछा—बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सन्नन्दजी! इस व्रजसे वृन्दावन कितनी दूर है? वह वन कितने कोसोंमें फैला हुआ है, उसका लक्षण क्या है और वहाँ कौन-सा सुख सुलभ है? यह सब बताइये ॥ १० ॥

सन्नन्द बोले—बर्हिषत्से ईशानकोण, यदुपुरसे दक्षिण और शोणपुरसे पश्चिमकी भूमिको 'माथुर-मण्डल' कहते हैं। मथुरामण्डलके भीतर साढ़े बीस योजन विस्तृत भूभागको मनीषी पुरुषोंने 'दिव्य माथुर-मण्डल' या 'व्रज' बताया है। एक बार मैं मथुरापुरीमें वसुदेवजीके घर ठहरा हुआ था; वहीं श्रीगर्गाचार्यजीके मुखसे मैंने सुना था कि तीर्थराज प्रयागने भी इस दिव्य मथुरा-मण्डलकी पूजा की है। यों तो मथुरा-मण्डलमें बहुत-से वन हैं किंतु उन सबसे श्रेष्ठ 'वृन्दावन' नामक वन है, जो परिपूर्णतम भगवान्‌के भी मनको हरण करनेवाला लीला-क्रीडा-स्थल है। वैकुण्ठसे बढ़कर दूसरा कोई लोक न तो हुआ है और न आगे होगा। केवल एक 'वृन्दावन' ही ऐसा है, जो वैकुण्ठकी अपेक्षा भी परात्पर (परम उत्कृष्ट) है। जहाँ 'गोवर्धन' नामसे प्रसिद्ध गिरिराज विराजमान है, जहाँ कालिन्दीके तटपर मङ्गलधाम पुलिन है, जहाँ बृहत्सानु (बरसाना) पर्वत है तथा जहाँ नन्दीश्वर

गोपियोंके द्वारा क्षीरसागरमें लक्ष्मीरूपिणी राधाके साथ शेषशायी अष्टभुज श्रीकृष्णके दर्शन [वृन्दावनखण्ड, अ० २२

गिरि शोभा पाता है, जो चौबीस कोसके विस्तारमें स्थित तथा विशाल काननोंसे आवृत है; जो पशुओंके लिये हितकर, गोप-गोपी और गौओंके लिये सेवन करनेयोग्य तथा लता-कुञ्जोंसे आवृत है, उस मनोहर वनको 'वृन्दावन'के नामसे स्मरण किया जाता है ॥ ११-१८ ॥

नन्दजीने पूछा—सन्नन्दजी ! तीर्थराज प्रयागने कब इस व्रजकी पूजा की है, मैं यह जानना चाहता हूँ । इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल—बड़ी उत्कण्ठा है ॥ १९ ॥

सन्नन्द बोले—नन्दराज ! पूर्वकालमें नैमित्तिक प्रलयके अवसरपर एक महान् दैत्य प्रकट हुआ, जो शङ्खासुरके नामसे प्रसिद्ध था । वह वेदद्रोही दैत्यराज समस्त देवताओंको जीतकर ब्रह्मलोकमें गया और वहाँ सोते हुए ब्रह्माके पाससे वेदोंकी पोथी चुराकर समुद्रमें जा घुसा । वेदोंके जाते ही देवताओंका सारा बल चला गया । तब पूर्ण भगवान् यज्ञेश्वर श्रीहरिने मत्स्यरूप धारण करके नैमित्तिक प्रलयके सागरमें उस शङ्खासुरके साथ युद्ध किया । महाबली दैत्य शङ्खने श्रीहरिके ऊपर शूल चलाया । किंतु साक्षात् श्रीहरिने अपने चक्रसे उस शूलके सैकड़ों टुकड़े कर दिये । तब शङ्खने अपने सिरसे भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें प्रहार किया । किंतु उसके उस प्रहारसे परात्पर श्रीहरि विचलित नहीं हुए । उस समय मत्स्यरूपधारी श्रीहरिने हाथमें गदा लेकर महाबली शङ्खरूपधारी उस दैत्यकी पीठपर आघात किया । गदाके प्रहारसे वह इतना पीड़ित हुआ कि उसका चित्त कुछ व्याकुल हो गया; किंतु पुनः उठकर उसने सर्वेश्वर श्रीहरिको मुक्केसे मारा । तब कमलनयन साक्षात् भगवान् विष्णुने कुपित हो अपने चक्रसे उसके सुदृढ़ मस्तकको सींगसहित काट डाला । व्रजेश्वर ! इस प्रकार शङ्खको जीतकर देवताओंके साथ सर्वव्यापी श्रीहरिने प्रयागमें आकर वे चारों वेद ब्रह्माजीको दे दिये । फिर सम्पूर्ण देवताओंके साथ उन्होंने विधिवत् यज्ञका अनुष्ठान किया और प्रयागतीर्थके अधिष्ठाता देवताको बुलाकर उसे 'तीर्थराज' पदपर अभिषिक्त कर दिया । साक्षात् अक्षयवटको तीर्थराजके लिये लीलाछत्र-सा बना दिया । मुनिकन्या गङ्गा तथा सूर्यसुता यमुना अपनी तरङ्गरूपी चामरोंसे उनकी सेवा करने लगीं । उसी समय जम्बूद्वीपके सारे तीर्थ भेंट लेकर बुद्धिमान् तीर्थराजके पास आये और उनकी पूजा और वन्दना करके वे तीर्थ अपने-अपने स्थानको चले गये । नन्द ! जब देवताओंके साथ श्रीहरि भी चले गये, तब वहाँ कलहप्रिय मुनीन्द्र नारदजी आ पहुँचे और सिंहासनपर देदीप्यमान तीर्थराजसे बोले ॥ २०—३३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—महातपस्वी तीर्थराज ! निश्चय ही तुम समस्त तीर्थोंद्वारा विशेषरूपसे पूजित हुए हो, तुम्हें सभी मुख्य-मुख्य तीर्थोंने यहाँ आकर भेंट समर्पित की है; परंतु व्रजके वृन्दावनादि तीर्थ यहाँ तुम्हारे सामने नहीं आये । तुम तीर्थोंके राजाधिराज हो, व्रजके प्रमादी तीर्थोंने यहाँ न आकर तुम्हारा तिरस्कार किया है ॥ ३४-३५ ॥

सन्नन्द कहते हैं—यों कहकर साक्षात् देवर्षि-शिरोमणि नारदजी वहाँसे चले गये । तब तीर्थराजके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और वे उसी क्षण श्रीहरिके लोकमें गये । श्रीहरिको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके सम्पूर्ण तीर्थोंसे घिरे हुए तीर्थराज हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़े हुए और उन श्रीनाथसे बोले ॥ ३६-३७ ॥

तीर्थराजने कहा—देवदेव ! मैं आपकी सेवामें इसलिये आया हूँ कि आपने तो मुझे 'तीर्थराज' बनाया और समस्त तीर्थोंने मुझे भेंट दी, किंतु मथुरामण्डलके तीर्थ मेरे पास नहीं आये; उन प्रमादी व्रजतीर्थोंने मेरा तिरस्कार किया है । अतः यह बात आपसे कहनेके लिये मैं आपके मन्दिरमें आया हूँ ॥ ३८-३९ ॥

श्रीभगवान् बोले—मैंने तुम्हें धरतीके सब तीर्थोंका राजा—'तीर्थराज' अवश्य बनाया है; किंतु अपने घरका भी राजा तुम्हें ही बना दिया हो, ऐसी बात तो नहीं हुई है ! फिर तुम मेरे गृहपर भी अधिकार जमानेकी इच्छा लेकर प्रमत्त पुरुषके समान बात कैसे कर रहे हो ? तीर्थराज ! तुम अपने घर जाओ और मेरा यह शुभ वचन सुन लो । मथुरा-मण्डल मेरा साक्षात् परात्पर धाम है, त्रिलोकीसे परे है । उस दिव्यधामका प्रलयकालमें भी संहार नहीं होता ॥ ४०—४२ ॥

सन्नन्द कहते हैं—यह सुनकर तीर्थराज बड़े विस्मित हुए । उनका सारा अभिमान गल गया । फिर वहाँसे आकर उन्होंने मथुराके व्रजमण्डलका पूजन और उसकी परिक्रमा करके अपने स्थानको पदार्पण किया । पृथ्वीका मानभङ्ग करनेके लिये यह व्रजमण्डल पहले दिखाया गया था । मैंने ये सारी बातें तुम्हारे सामने कहीं, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥ ४३-४४ ॥

नन्दजीने पूछा—गोपेश्वर ! किसने पहले पृथ्वीका मान-भङ्ग करनेके लिये इस व्रजमण्डलको दिखलाया था, यह मुझे बताइये ॥ ४५ ॥

सन्नन्दने कहा—इसी वाराहकल्पमें पहले श्रीहरिने वराहरूप धारण करके अपनी दाढ़पर उठाकर रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया था। उस समय उन प्रभुकी बड़ी शोभा हुई थी। जलमें जाते हुए उन वराहरूपधारी भगवान् रमानाथ जनार्दनसे उनकी दंष्ट्राके अग्रभागपर शोभित हुई पृथ्वी बोली ॥ ४६-४७ ॥

पृथ्वीने पूछा—प्रभो ! सारा विश्व पानीसे भरा दिखायी देता है। अतः बताइये, आप किस स्थलपर मेरी स्थापना करेंगे ? ॥ ४८ ॥

भगवान् वराह बोले—जब वृक्ष दिखायी देने लगें और जलमें उद्वेगका भाव प्रकट हो, तब उसी स्थानपर तुम्हारी स्थापना होगी। तुम वृक्षोंको देखती चलो ॥ ४९ ॥

पृथ्वीने कहा—भगवन् ! स्थावर वस्तुओंकी रचना तो मेरे ही ऊपर हुई है। क्या कोई दूसरी भी धरणी है ? धारणामयी धरणी तो केवल मैं ही हूँ ॥ ५० ॥

सन्नन्दजी कहते हैं—यों कहती हुई पृथ्वीने अपने सामने जलमें मनोहर वृक्ष देखे। उन्हें देखकर पृथ्वीका अभिमान दूर हो गया और वह भगवान्‌से बोली—'देव ! किस स्थलपर ये पल्लवसहित वृक्ष विद्यमान हैं ? यह दृश्य मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य पैदा कर रहा है। यज्ञपते ! प्रभो ! इसका रहस्य बताइये' ॥ ५१-५२ ॥

भगवान् वराह बोले—नितम्बिनि ! यह सामने दिव्य 'माथुर-मण्डल' दिखायी देता है, जो गोलोककी धरतीसे जुड़ा हुआ है। प्रलयकालमें भी इसका संहार नहीं होता ॥५३॥

सन्नन्द बोले—यह सुनकर पृथ्वीको बड़ा विस्मय हुआ। वह अभिमानशून्य हो गयी। अतः महाबाहु नन्द ! यह व्रजमण्डल समस्त लोकोंसे अधिक महत्त्वशाली है। व्रजका यह माहात्म्य सुनकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। तुम 'माथुर-व्रजमण्डल' को तीर्थराज प्रयागसे भी उत्कृष्ट समझो ॥ ५४-५५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत नन्द-सन्नन्द-संवादमें 'वृन्दावनमें आगमनके उद्योगका वर्णन' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्ति तथा उसका व्रजमण्डलमें आगमन

नन्दजीने पूछा—महाप्राज्ञ सन्नन्दजी ! आप सर्वज्ञ और बहुश्रुत हैं, मैंने आपके मुखसे व्रजमण्डलके माहात्म्यका वर्णन सुना। अब 'गोवर्धन' नामसे प्रसिद्ध जो पर्वत है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई—यह मुझे बताइये। इस गिरिश्रेष्ठ गोवर्धनको लोग 'गिरिराज' क्यों कहते हैं ? यह साक्षात् यमुना नदी किस लोकसे यहाँ आयी है ? उसका माहात्म्य भी मुझसे कहिये; क्योंकि आप ज्ञानियोंके शिरोमणि हैं ॥ १-३ ॥

सन्नन्दजी बोले—एक समयकी बात है, हस्तिनापुरमें महाराज पाण्डुने धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीभीष्मजीसे ऐसा ही प्रश्न किया था। उनके उस प्रश्नको और भीष्मजीद्वारा दिये गये उत्तरको अन्य बहुत-से लोग भी सुन रहे थे। (उस समय भीष्मजीने जो उत्तर दिया, वही मैं यहाँ सुना रहा हूँ—) साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण, जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके नाथ और सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, जब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये स्वयं इस भूतलपर पधारने लगे, तब उन जनार्दन देवने अपनी प्राणवल्लभा राधासे कहा—'प्रिये ! तुम मेरे वियोगसे भयभीत रहती हो, अतः भीरु ! तुम भी भूतलपर चलो' ॥ ४-६ ॥

श्रीराधाजी बोलीं—प्राणनाथ ! जहाँ वृन्दावन नहीं है, जहाँ यह यमुना नदी नहीं है तथा जहाँ गोवर्धन पर्वत नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिल सकता ॥७॥

सन्नन्दजी कहते हैं—नन्दराज ! श्रीराधाकी यह बात सुनकर स्वयं श्रीहरिने अपने धामसे चौरासी कोस विस्तृत भूमि, गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीको भूतलपर भेजा। उस समय चौरासी कोस विस्तारवाली गोलोककी सर्वलोकवन्दिता भूमि चौबीस वनोंके साथ यहाँ आयी। गोवर्धन पर्वतने भारतवर्षसे पश्चिम दिशामें शाल्मलीद्वीपके भीतर

द्रोणाचलकी पत्नीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया । उस अवसरपर देवताओंने गोवर्धनके ऊपर फूल बरसाये । हिमालय और सुमेरु आदि समस्त पर्वतोंने वहाँ आकर प्रणाम और परिक्रमा करके गोवर्धनका विधिवत् पूजन किया । पूजनके पश्चात् उन महान् पर्वतोंने उसकी स्तुति प्रारम्भ की ॥ ८-१२ ॥

पर्वत बोले—तुम साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गोलोकधाममें, जहाँ दिव्य गौओंका समुदाय निवास करता है तथा गोपाल एवं गोपसुन्दरियाँ शोभा पाती हैं, सुशोभित होते हो । तुम्हीं 'गोवर्धन' नामसे वृन्दावनमें विराजते हो, इस समय तुम्हीं हम समस्त पर्वतोंमें 'गिरिराज' हो । तुम वृन्दावनकी गोदमें समोद निवास करनेवाले, गोलोकके मुकुटमणि हो तथा पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके हाथोंमें किसी विशिष्ट अवसरपर छत्रके समान शोभा पाते हो । तुम गोवर्धनको हमारा सादर नमस्कार है ॥१३-१५॥

सन्नन्दजी कहते हैं—नन्दराज ! जब इस प्रकार स्तुति करके सब पर्वत अपने-अपने स्थानपर चले गये, तभीसे यह गिरिश्रेष्ठ गोवर्धन साक्षात् 'गिरिराज' कहलाने लगा है । एक समय मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी तीर्थयात्राके लिये भूतलपर भ्रमण करने लगे । उन महामुनिने द्रोणाचलके पुत्र श्यामवर्णवाले श्रेष्ठ पर्वत गोवर्धनको देखा, जिसके ऊपर माधवी लताके सुमन सुशोभित हो रहे थे । वहाँके वृक्ष फलोंके भारसे लदे हुए थे । निर्झरोंके झर-झर शब्द वहाँ गूँज रहे थे । उस पर्वतपर बड़ी शान्ति विराज रही थी । अपनी कन्दराओंके कारण वह मङ्गलका धाम जान पड़ता था । सैकड़ों शिखरोंसे सुशोभित वह रत्नमय मनोहर शैल तपस्या करनेके लिये उपयुक्त स्थान था । विविध रंगकी चित्र-विचित्र धातुएँ उस पर्वतके अवयवोंमें विचित्र शोभाका आधान करती थीं । उसकी भूमि ढालू (चढ़ाव-उतारसे युक्त) थी और वहाँ नाना प्रकारके पक्षी सब ओर व्याप्त थे । मृग और बंदर आदि पशु चारों ओर फैले हुए थे । मयूरोंकी केकाध्वनिसे मण्डित गोवर्धन पर्वत मुमुक्षुओंके लिये मोक्षप्रद प्रतीत होता था ॥ १६-२० ॥

मुनिवर पुलस्त्यके मनमें उस पर्वतको प्राप्त करनेकी इच्छा हुई । इसके लिये वे द्रोणाचलके समीप गये । द्रोणगिरिने उनका पूजन—स्वागत-सत्कार किया । इसके बाद पुलस्त्यजी उस पर्वतसे बोले ॥ २१ ॥

पुलस्त्यने कहा—द्रोण ! तुम पर्वतोंके स्वामी हो । समस्त देवता तुम्हारा समादर करते हैं । तुम दिव्य ओषधियोंसे सम्पन्न और मनुष्योंको सदा जीवन देनेवाले हो । मैं काशीका निवासी मुनि हूँ और तुम्हारे निकट याचक होकर आया हूँ । तुम अपने पुत्र गोवर्धनको मुझे दे दो । यहाँ अन्य वस्तुओंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है । भगवान् विश्वेश्वरकी महानगरी 'काशी' नामसे प्रसिद्ध है, जहाँ मरणको प्राप्त हुआ पापी पुरुष भी तत्काल परम मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जहाँ गङ्गा नदी प्राप्त होती हैं और जहाँ साक्षात् विश्वनाथ भी विराजमान हैं । मैं वहीं तुम्हारे पुत्रको स्थापित करूँगा, जहाँ दूसरा कोई पर्वत नहीं है । लता-बेलों और वृक्षोंसे व्याप्त जो तुम्हारा पुत्र गोवर्धन है, उसके ऊपर रहकर मैं तपस्या करूँगा—ऐसी अभिलाषा मेरे मनमें जाग्रत् हुई है ॥ २२—२६ ॥

सन्नन्दजी कहते हैं—पुलस्त्यजीकी यह बात सुनकर पुत्र-स्नेहसे विह्वल हुए द्रोणाचलके नेत्रोंमें आँसू भर आये । उसने पुलस्त्य मुनिसे कहा ॥ २७ ॥

द्रोणाचल बोला—महामुने ! मैं पुत्र-स्नेहसे आकुल हूँ । यह पुत्र मुझे अत्यन्त प्रिय है, तथापि आपके शापके भयसे भीत होकर मैं इसे आपके हाथोंमें देता हूँ । (फिर वह पुत्रसे बोला—) बेटा ! तुम मुनिके साथ कल्याणमय कर्मक्षेत्र भारतवर्षमें जाओ । वहाँ मनुष्य सत्कर्मोंद्वारा धर्म, अर्थ और काम—त्रिवर्ग सुख प्राप्त करते हैं तथा (निष्काम कर्म एवं ज्ञानयोगद्वारा) क्षणभरमें मोक्ष भी पा लेते हैं ॥ २८-२९ ॥

गोवर्धनने कहा—मुने ! मेरा शरीर आठ योजन लंबा, दो योजन ऊँचा और पाँच योजन चौड़ा है । ऐसी दशामें आप किस प्रकार मुझे ले चलेंगे ॥ ३० ॥

पुलस्त्यजी बोले—बेटा ! तुम मेरे हाथपर बैठकर सुखपूर्वक चले चलो । जबतक काशी नहीं आ जाती, तबतक मैं तुम्हें हाथपर ही ढोये चलूँगा ॥ ३१ ॥

गोवर्धनने कहा—मुने ! मेरी एक प्रतिज्ञा है । आप जहाँ-कहीं भी भूमिपर मुझे एक बार रख देंगे, वहाँकी भूमिसे मैं पुनः उत्थान नहीं करूँगा ॥ ३२ ॥

पुलस्त्यजी बोले—मैं इस शाल्मलीद्वीपसे लेकर भारतवर्षके कोसलदेशतक तुम्हें कहीं भी रास्तेमें नहीं रक्खूँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ ३३ ॥

सनन्दजी कहते हैं—नन्दराज! तदनन्तर वह महान् पर्वत पिताको प्रणाम करके मुनिकी हथेलीपर आरूढ़ हुआ। उस समय उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उसे दाहिने हाथपर रखकर पुलस्त्य मुनि लोगोंको अपना तेज दिखाते हुए धीरे-धीरे चले और व्रज-मण्डलमें आ पहुँचे। गोवर्धन-पर्वतको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। व्रजमें आनेपर उसने मार्गमें मन-ही-मन सोचा—'यहाँ व्रजमें असंख्य-ब्रह्माण्डनायक साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण अवतार लेंगे और ग्वालबालोंके साथ बाललीला तथा कैशोरलीला करेंगे। इतना ही नहीं, वे श्रीहरि यहाँ दानलीला और मानलीला भी करेंगे। अतः मुझे यहाँसे अन्यत्र नहीं जाना चाहिये। यह व्रजभूमि और यह यमुना नदी गोलोकसे यहाँ आयी है। श्रीराधाके साथ भगवान् श्रीकृष्णका भी यहाँ शुभागमन होगा। उनका उत्तम दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा।' मन-ही-मन ऐसा विचार करके गोवर्धनने मुनिकी हथेलीपर अपने शरीरका भार बहुत अधिक बढ़ा लिया। उस समय मुनि अत्यन्त थक गये। उन्हें पहलेकी कही हुई बातकी याद नहीं रही। उन्होंने पर्वतको हाथसे उतारकर व्रजमण्डलमें रख दिया। भारसे पीड़ित तो वे थे ही, लघुशङ्कासे निवृत्त होनेके लिये चले गये। शौच-क्रिया करके जलमें स्नान करनेके पश्चात् मुनिवर पुलस्त्यने उत्तम पर्वत गोवर्धनसे कहा—'अब उठो।' अधिक भारसे सम्पन्न होनेके कारण जब वह दोनों हाथोंसे नहीं उठा, तब महामुनि पुलस्त्यने उसे अपने तेज और बलसे उठा लेनेका उपक्रम किया। मुनिने स्नेहसे भीगी वाणीद्वारा द्रोणनन्दन गिरिराजको ग्रहण करनेका सम्पूर्ण शक्तिसे प्रयास किया, किंतु वह एक अंगुल भी टस-से-मस न हुआ॥ ३४-४४॥

तब पुलस्त्यजी बोले—गिरिश्रेष्ठ! चलो, चलो! भार अधिक न बढ़ाओ, न बढ़ाओ! मैं जान गया, तुम रूठे हुए हो! शीघ्र बताओ, तुम्हारा क्या अभिप्राय है?॥ ४५॥

गोवर्धन बोला—मुने! इसमें मेरा दोष नहीं है। आपने ही मुझे यहाँ स्थापित किया है। अब मैं यहाँसे नहीं उठूँगा। अपनी यह प्रतिज्ञा मैंने पहले ही प्रकट कर दी थी॥ ४६॥

सनन्दजी कहते हैं—यह उत्तर सुनकर मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यकी सारी इन्द्रियाँ क्रोधसे चञ्चल हो उठीं। उनके ओष्ठ फड़कने लगे। अपना सारा उद्यम व्यर्थ हो जानेके कारण उन्होंने द्रोणपुत्रको शाप दे दिया॥ ४७॥

पुलस्त्यजी बोले—पर्वत! तू बड़ा ढीठ है। तूने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया। इसलिये तू प्रतिदिन तिल-तिल-भर क्षीण होता चला जा॥ ४८॥

सनन्दजी कहते हैं—नन्द! यों कहकर पुलस्त्य मुनि काशी चले गये। उसी दिनसे यह गोवर्धन पर्वत प्रतिदिन तिल-तिल करके क्षीण होता चला जा रहा है। जबतक भागीरथी गङ्गा और गोवर्धन पर्वत इस भूतलपर विद्यमान हैं, तबतक कलिका प्रभाव कदापि नहीं बढ़ेगा। गोवर्धनका यह प्रकट चरित्र परम पवित्र और मनुष्योंके बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाला है। यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हारे सामने कहा है, जो भूमण्डलमें रुचिर और अद्भुत है। यह उत्तम मोक्ष प्रदान करनेवाला है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है॥ ४९-५१॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'गिरिराजकी उत्पत्तिका वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

श्रीयमुनाजीका गोलोकसे अवतरण और पुनः गोलोकधाममें प्रवेश

सनन्दजी कहते हैं—नन्दराज! गोलोकमें श्रीहरिने जब यमुनाजीको भूतलपर जानेकी आज्ञा दी और सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुना जब श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके जानेको उद्यत हुई, उसी समय विरजा तथा ब्रह्मद्रवसे उत्पन्न साक्षात् गङ्गा—ये दोनों नदियाँ आकर यमुनाजीमें लीन हो गयीं। इसीलिये परिपूर्णतमा कृष्णा (यमुना) को परिपूर्णतम श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें लोग जानते हैं। तदनन्तर सरिताओंमें श्रेष्ठ कालिन्दी अपने महान् वेगसे विरजाके वेगका भेदन करके निकुञ्ज-द्वारसे निकलीं और असंख्य ब्रह्माण्ड-समूहोंका स्पर्श करती हुई ब्रह्मद्रवमें गयीं। फिर उसकी दीर्घ जलराशिका अपने महान् वेगसे भेदन करती हुई वे महानदी श्रीवामनके बायें चरणके अँगूठेके नखसे विदीर्ण हुए ब्रह्माण्डके

शिरोभागमें विद्यमान ब्रह्मद्रवयुक्त विवरमें श्रीगङ्गाके साथ ही प्रविष्ट हुईं और वहाँसे वे सरिद्वरा यमुना ध्रुवमण्डलमें स्थित भगवान् अजित विष्णुके धाम वैकुण्ठलोकमें होती हुई ब्रह्मलोकको लाँघकर जब ब्रह्ममण्डलसे नीचे गिरीं, तब देवताओंके सैकड़ों लोकोंमें एक-से-दूसरेके क्रमसे विचरती हुई आगे बढ़ीं। तदनन्तर वे सुमेरुगिरिके शिखरपर बड़े वेगसे गिरीं और अनेक शैल-शृङ्गोंको लाँघकर बड़ी-बड़ी चट्टानोंके तटोंका भेदन करती हुई जब मेरुपर्वतसे दक्षिण दिशाकी ओर जानेको उद्यत हुईं, तब यमुनाजी गङ्गासे अलग हो गयीं। महानदी गङ्गा तो हिमवान् पर्वतपर चली गयीं, किंतु कृष्णा (श्यामसलिला यमुना) कलिन्द-शिखरपर जा पहुँचीं। वहाँ जाकर उस पर्वतसे प्रकट होनेके कारण उनका नाम 'कालिन्दी' हो गया। कलिन्दगिरिके शिखरोंसे टूटकर जो बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी थीं, उनके सुदृढ़ तटोंको तोड़ती-फोड़ती और भूखण्डपर लोटती हुई वेगवती कृष्णा कालिन्दी अनेक देशोंको पवित्र करती हुई खाण्डववनमें (इन्द्रप्रस्थ या दिल्लीके पास) जा पहुँचीं। यमुनाजी साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति बनाना चाहती थीं, इसलिये वे परम दिव्य देह धारण करके खाण्डववनमें तपस्या करने लगीं। यमुनाके पिता भगवान् सूर्यने जलके भीतर ही एक दिव्य गेहका निर्माण कर दिया था, जिसमें आज भी वे रहा करती हैं। खाण्डव-वनसे वेगपूर्वक चलकर कालिन्दी व्रजमण्डलमें श्रीवृन्दावन और मथुराके निकट आ पहुँचीं। महावनके पास सिकता-मय रमणस्थलमें भी प्रवाहित हुईं। श्रीगोकुलमें आनेपर परम सुन्दरी यमुनाने (विशाखा सखीके नामसे) अपने नेतृत्वमें गोपकिशोरियोंका एक यूथ बनाया और श्रीकृष्णचन्द्र-के रासमें सम्मिलित होनेके लिये उन्होंने वहीं अपना निवासस्थान निश्चित कर लिया। तदनन्तर वे जब व्रजसे आगे जाने लगीं, तब व्रजभूमिके वियोगसे विह्वल हो, प्रेमानन्दके आँसू बहाती हुई पश्चिम दिशाकी ओर प्रवाहित हुईं ॥ १-१८ ॥

तदनन्तर व्रजमण्डलकी भूमिको अपने वारि-वेगसे तीन बार प्रणाम करके यमुना अनेक देशोंको पवित्र करती हुई उत्तम तीर्थ प्रयागमें जा पहुँचीं। वहाँ गङ्गाजीके साथ उनका संगम हुआ और वे उन्हें साथ लेकर क्षीरसागरकी ओर गयीं। उस समय देवताओंने उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा की और दिग्विजयसूचक जयघोष किया। नदीशिरोमणि कलिन्दनन्दिनी कृष्णवर्णा श्रीयमुनाने समुद्रतक पहुँचकर गद्गदवाणीमें श्रीगङ्गासे कहा ॥ १९-२१ ॥

यमुनाने कहा—समस्त ब्रह्माण्डको पवित्र करनेवाली गङ्गे ! तुम धन्य हो। साक्षात् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है, अतः तुम समस्त लोकोंके लिये एकमात्र वन्दनीया हो। शुभे ! अब मैं यहाँसे ऊपर उठकर श्रीहरिके लोकमें जा रही हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी मेरे साथ चलो ! तुम्हारे समान दिव्य तीर्थ न तो हुआ है और न आगे होगा ही। गङ्गा (आप) सर्वतीर्थमयी हैं, अतः सुमङ्गले गङ्गे ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। यदि मैंने कभी कोई अनुचित बात कही हो तो उसके लिये मुझे क्षमा कर देना ॥ २२-२४ ॥

गङ्गा बोलीं—कृष्णे ! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको पावन बनाने-वाली तो तुम हो, अतः तुम्हीं धन्य हो। श्रीकृष्णके वामाङ्गसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम परमानन्द-स्वरूपिणी हो। साक्षात् परिपूर्णतमा हो। समस्त लोकोंके द्वारा एकमात्र वन्दनीया हो। परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्ण-की भी पटरानी हो। अतः कृष्णे ! तुम सब प्रकारसे उत्कृष्ट हो। तुम कृष्णाको मैं प्रणाम करती हूँ। तुम समस्त तीर्थों और देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो। गोलोकमें भी तुम्हारा दर्शन दुष्कर है। मैं तो भगवान् श्रीकृष्णकी ही आज्ञासे मङ्गलमय पाताललोकमें जाऊँगी। यद्यपि तुम्हारे वियोगके भयसे मैं बहुत व्याकुल हूँ, तो भी इस समय तुम्हारे साथ चलनेमें असमर्थ हूँ। व्रजके रासमण्डलमें मैं भी तुम्हारे यूथमें सम्मिलित होकर रहूँगी। हरिप्रिये ! मैंने भी यदि कोई अप्रिय बात कह दी हो तो उसके लिये मुझे क्षमा कर देना ॥ २५-२९ ॥

सनन्दजी कहते हैं—इस प्रकार एक दूसरेको प्रणाम करके दोनों नदियाँ तुरंत अपने-अपने गन्तव्य पथपर चली गयीं। सुरधुनी गङ्गाजी अनेक लोकोंको पवित्र करती हुई पातालमें चली गयीं और वहाँ भोगवती-वनमें जाकर 'भोगवती गङ्गा'के नामसे प्रसिद्ध हुईं। उन्हींका जल भगवान् शंकर और शेषनाग अपने मस्तकपर धारण करते हैं ॥ ३०-३१ ॥

इधर कृष्णा अपने वेगसे सप्तसागर-मण्डलका भेदन करके सातों द्वीपोंके भूभागपर लोटती हुई और भी प्रखर वेगसे आगे बढ़ीं। सुवर्णमयी भूमिपर पहुँचकर लोकालोक

पर्वतपर गयीं । उसके शिखरों तथा गण्डशैलों (टूटी चट्टानों) के तटका भेदन करके कालिन्दी फुहारेकी-सी जल-धाराके साथ उछलकर लोकालोक पर्वतके शिखरपर जा पहुँचीं। फिर वहाँसे ऊर्ध्वगमन करती हुई स्वर्गवासियोंके स्वर्गलोक तक जा पहुँचीं । फिर ब्रह्मलोकतकके समस्त लोकोंको लाँघकर श्रीहरिके पदचिह्नसे लाञ्छित श्रीब्रह्मद्रवसे युक्त ब्रह्माण्डविवरसे होती हुई आगे बढ़ गयीं । उस समय समस्त देवता प्रणाम करते हुए उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर रहे थे । इस तरह सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुना पुनः श्रीकृष्णके गोलोकधाममें आरूढ़ हो गयीं । कलिन्दगिरि-नन्दिनी यमुनाके इस मङ्गलमय नूतन चरित्रका भूतलपर यदि श्रवण या पठन किया जाय तो वह उत्तम मङ्गलका विस्तार करता है । यदि कोई भी मनुष्य इस चरित्रको मनमें धारण करे और प्रतिदिन पढ़े तो वह भगवान्की निकुञ्जलीलाके द्वारा वरण किये गये उनके परमपद—गोलोक-धाममें पहुँच जाता है ॥ ३२—३७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत नन्द-सन्नन्द-संवादमें 'कालिन्दीके आगमनका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

श्रीबलराम और श्रीकृष्णके द्वारा बछड़ोंका चराया जाना तथा वत्सासुरका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! सन्नन्दकी बात सुनकर महामना नन्दराज समस्त गोपगणोंके साथ बड़े प्रसन्न हुए और वृन्दावनमें जानेको तैयार हो गये । यशोदा, रोहिणी तथा समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ घोड़ों, रथों, वीर पुरुषों तथा विप्रमण्डलीसे मण्डित हो, परम बुद्धिमान् नन्दराज दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्णसहित रथपर आरूढ़ हो वृन्दावनकी ओर चल दिये । उनके साथ गौओंका समुदाय भी था । बूढ़े, बालक और सेवकोंसहित अनेक छकड़े चल रहे थे । यात्राके समय शङ्ख बजे और नगारोंकी ध्वनियाँ हुईं । बहुत-से गायक नन्दराजका यशोगान कर रहे थे ॥ १—४ ॥

गोप वृषभानुवर अपनी पत्नीके साथ हाथीपर बैठकर, पुत्री राधाको अङ्कमें लिये, गायकोंसे यशोगान सुनते हुए, मृदङ्ग, ताल, वीणा और वेणुओंकी मधुर ध्वनिके साथ वृन्दावनको गये । उनके साथ भी बहुत-से गोप और गौओंका समुदाय था । नन्द, उपनन्द और छहों वृषभानु भी अपने समस्त परिकरोंके साथ वृन्दावनमें गये । समस्त गोपोंने अपने सेवकोंसहित वृन्दावनमें प्रवेश करके अलग-अलग गोष्ठ बनाये और इधर-उधर निवास आरम्भ किया । वृषभानुने अपने लिये वृषभानुपुर (बरसाना) नामक नगरका निर्माण कराया, जो चार योजन विस्तृत दुर्गके आकारमें था । उसके चारों ओर खाइयाँ बनी थीं । उस दुर्गके सात दरवाजे थे । दुर्गके भीतर विशाल सभामण्डप था । अनेक सरोवर उस दुर्गकी शोभा बढ़ा रहे थे । बीच-बीचमें मनोहर राजमार्गका निर्माण कराया गया था । एक सहस्र कुञ्ज उस पुरकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ५—१० ॥

श्रीकृष्ण नन्दनगर (नन्दगाँव) तथा वृषभानुपुर (बरसाने) में बालकोंके साथ क्रीड़ा करते हुए घूमते और गोपाङ्गनाओंकी प्रीति बढ़ाते थे । राजन् ! कुछ दिनों बाद सम्पूर्ण गोपोंके समादर-भाजन मनोहर रूपवाले बलराम और श्रीकृष्ण वृन्दावनमें बछड़े चराने लगे । वे दोनों भाई ग्वाल-बालोंके साथ गाँवकी सीमातक जाकर बछड़े चराते थे । कालिन्दीके निकट उसके पावन पुलिनपर सुशोभित निकुञ्जों और कुञ्जोंमें बलराम और श्रीकृष्ण इधर-उधर लुका-छिपीके खेल खेलते और कहीं-कहीं रेंगते हुए चलकर वनमें सानन्द विचरते थे । उन दोनोंके कटिप्रदेशमें करधनीकी लड़ियाँ शोभा देती थीं । खेलते समय उनके पैरोंके मञ्जीर और नूपुर मधुर झंकार फैलाते थे । बलरामके अङ्गोंपर नीलाम्बर शोभा पाता था और श्रीकृष्णके अङ्गोंपर पीतपट । वे दोनों भाई हार और भुजबंदोंसे भूषित थे । कभी बालकोंके साथ क्षेपणों (ढेलवासों) द्वारा ढेले फेंकते और कभी बाँसुरी बजाते थे । कुछ ग्वाल-बाल अपने मुखसे करधनीके घुँघुरुओंकी-सी ध्वनि करते हुए दौड़ते और उनके साथ वे दोनों बन्धु—राम और श्याम भी पक्षियोंकी छायाका अनुसरण करते भागते हुए सुशोभित होते थे । सिरपर मयूरपिच्छ लगाकर फूलों और पल्लवोंके शृङ्गार धारण करते थे ॥ ११—१७ ॥

नरेश्वर ! एक दिन उनके बछड़ोंके झुंडमें कंसका भेजा हुआ वत्सासुर आकर मिल गया। श्रीकृष्णको यह बात विदित हो गयी और वे उसके पास गये। वह दैत्य गोप-बालकोंके बीचमें सब ओर पूँछ उठाकर बार-बार दौड़ता हुआ दिखायी देता था। उसने अचानक आकर अपने पिछले पैरोंसे श्रीकृष्णके कंधोंपर प्रहार किया। अन्य गोप-बालक तो भाग चले, किंतु श्रीकृष्णने उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे घुमाकर धरतीपर पटक दिया। इसके बाद श्रीहरिने फिर उसे हाथोंसे उठाकर कपित्थ-वृक्षपर दे मारा। फिर तो वह दैत्य तत्काल मर गया। उसके धक्केसे महान् कपित्थ वृक्षने स्वयं गिरकर दूसरे-दूसरे वृक्षोंको भी धराशायी कर दिया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई। समस्त ग्वाल-बाल आश्चर्यसे चकित हो कन्हैयाको वहाँ साधुवाद देने लगे। देवतालोग आकाशमें खड़े हो जय-जयकार करते हुए फूल बरसाने लगे। उस दैत्यकी विशाल ज्योति श्रीकृष्णमें लीन हो गयी ॥ १८-२३ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने ! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। बताइये तो, इस वत्सासुरके रूपमें पहलेका कौन-सा पुण्यात्मा पुरुष प्रकट हो गया था, जो परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णमें विलीन हुआ ? ॥ २४ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन् ! मुरके एक पुत्र था, जो महादैत्य 'प्रमील'के नामसे विख्यात था। उसने देवताओंको भी युद्धमें जीत लिया था। एक दिन वह वसिष्ठ मुनिके आश्रमपर गया। वहाँ उसने मुनिकी होमधेनु नन्दिनीको देखा। उसे पानेकी इच्छासे वह ब्राह्मणका रूप धारण करके मुनिके पास गया और उस मनोहर गौके लिये याचना करने लगा। महर्षि दिव्यदर्शी थे; अतः सब कुछ जानकर भी चुप रह गये, कुछ बोले नहीं। तब गौने स्वयं कहा ॥ २५-२६ ॥

श्रीनन्दिनी बोली—दुर्मते ! तू मुरका पुत्र दैत्य है, तो भी मुनियोंकी गौका अपहरण करनेके लिये ब्राह्मण बनकर आया है; अतः गायका बछड़ा हो जा ॥ २७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! नन्दिनीके इतना कहते ही वह मुरपुत्र महान् गोवत्स बन गया। तब उसने मुनिवर वसिष्ठ तथा उस गौकी परिक्रमा एवं प्रणाम करके कहा—'मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' ॥ २८ ॥

गौ बोली—महादैत्य ! द्वापरके अन्तमें जब तू श्रीकृष्णके बछड़ोंमें घुस जायगा, उस समय तेरी मुक्ति होगी ॥ २९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—उसी शाप और वरदानके कारण परिपूर्णतम पतितपावन साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णमें दैत्य वत्सासुर विलीन हुआ। इसमें विस्मयकी कोई बात नहीं है ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'वत्सासुरका मोक्ष' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

बकासुरका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—एक दिन बलराम तथा ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चराते हुए श्रीहरिने यमुनाके निकट आये हुए बकासुरको देखा। वह श्वेत पर्वतके समान ऊँचा दिखायी देता था। बड़ी-बड़ी टाँगें और मेघ-गर्जनके समान ध्वनि ! उसे देखते ही ग्वाल-बाल डरके मारे भागने लगे। उसकी चोंच वज्रके समान तीखी थी। उसने आते ही श्रीहरिको अपना ग्रास बना लिया। यह देख सब ग्वाल-बाल रोने लगे। रोते-रोते वे निष्प्राण-से हो गये। उस समय हाहाकार करते हुए सब देवता वहाँ आ पहुँचे। इन्द्रने तत्काल वज्र चलाकर उस महान् बकपर प्रहार किया। वज्रकी चोटसे बकासुर धरतीपर गिर पड़ा, किंतु मरा नहीं। वह फिर उठकर खड़ा हो गया। तब ब्रह्माजीने भी कुपित होकर उसे ब्रह्मदण्डसे मारा। उस आघातसे गिरकर वह असुर दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़ा रहा। फिर अपने शरीरको कँपाता हुआ जँभाई लेकर वह बड़े वेगसे उठ खड़ा हुआ। उसकी मृत्यु नहीं हुई। वह बलवान् दैत्य मेघके समान गर्जना करने लगा। इसी समय त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने उस महान् असुरपर त्रिशूलसे प्रहार किया। उस प्रहारसे दैत्यकी एक पाँख कट गयी, तो भी वह महाभयंकर असुर मर न सका। तदनन्तर वायुदेवने बकासुरपर वायव्यास्त्र चलाया; उससे वह कुछ ऊपरकी ओर उठ गया, परंतु पुनः अपने स्थानपर आकर खड़ा हो

गया। इसके बाद यमने सामने आकर उसपर यमदण्डसे प्रहार किया, परंतु प्रचण्ड-पराक्रमी बकासुरकी उस दण्डसे भी मृत्यु नहीं हुई। यमराजका वह दण्ड भी टूट गया, किंतु बकासुरको कोई क्षति नहीं पहुँची। इतनेमें ही प्रचण्ड किरणोंवाले चण्डपराक्रमी सूर्यदेव उसके सामने आये। उन्होंने धनुष हाथमें लेकर बकासुरको सौ बाण मारे। वे तीखे बाण उसकी पाँखमें धँस गये, फिर भी वह मर न सका। तब कुबेरने तीखी तलवारसे उसके ऊपर चोट की। इससे उसकी दूसरी पाँख भी कट गयी, किंतु वह दैत्य-पुंगव मृत्युको नहीं प्राप्त हुआ। तदनन्तर सोमदेवताने उस महाबकपर नीहारास्त्रका प्रयोग किया। उसके प्रहारसे शीतपीड़ित हो बकासुर मूर्च्छित तो हो गया, किंतु मरा नहीं; फिर उठकर खड़ा हो गया। अब अग्निदेवताने उस महाबकपर आग्नेयास्त्रसे प्रहार किया; इससे उसके रोएँ जल गये, परंतु उस महादुष्ट दैत्यकी मृत्यु नहीं हुई। तत्पश्चात् जलके स्वामी वरुणने उसको पाशसे बाँधकर धरतीपर घसीटा। घसीटनेसे वह महापापी असुर क्षत विक्षत हो गया, किंतु मरा नहीं ॥ १–१५ ॥

तदनन्तर वेगशालिनी भद्रकालीने आकर उसपर गदासे प्रहार किया। गदाके प्रहारसे मूर्च्छित हो बकासुर अत्यन्त वेदनाके कारण सुध-बुध खो बैठा। उसके मस्तकपर चोट पहुँची थी, तथापि वह अपने शरीरको कँपाता और फड़फड़ाता हुआ फिर उठकर खड़ा हो गया और वह महादुष्ट दैत्य धीरतापूर्वक समराङ्गणमें स्थित हो मेघोंकी भाँति गर्जना करने लगा। उस समय शक्तिधारी स्कन्दने बड़ी उतावलीके साथ उसके ऊपर अपनी शक्ति चलायी। उसके प्रहारसे उस पक्षिप्रवर असुरकी एक टाँग टूट गयी, किंतु वह मर न सका। तदनन्तर विद्युत्‌की गड़गड़ाहटके समान गर्जना करते हुए उस दैत्यने सहसा क्रोधपूर्वक धावा किया और अपनी तीखी चोंचसे मार-मारकर सब देवताओंको खदेड़ दिया। आकाशमें आगे-आगे देवता भाग रहे थे और पीछेसे बकासुर उन्हें खदेड़ रहा था। इसके बाद वह दैत्य पुनः वहीं लौट आया और समस्त दिङ्मण्डलको अपने सिंहनादसे निनादित करने लगा ॥ १६–२० ॥

उस समय समस्त देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा द्विजोंने श्रीनन्दनन्दनको शीघ्र ही सफल आशीर्वाद प्रदान किया। उसी समय श्रीकृष्णने बकासुरके शरीरके भीतर अपने ज्योतिर्मय दिव्य देहको बढ़ाकर विस्तृत कर लिया। फिर तो उस महाबकका कण्ठ फटने लगा और उसने सहसा श्रीकृष्णको उगल दिया। फिर तीखी चोंचसे श्रीकृष्णको पकड़नेके लिये जब वह पास आया, तब श्रीकृष्णने झपटकर उसकी पूँछ पकड़ ली और उसे पृथ्वीपर दे मारा; किंतु वह पुनः उठकर चोंच फैलाये उनके सामने खड़ा हो गया। तब श्रीकृष्णने दोनों हाथोंसे उसकी दोनों चोंचें पकड़ लीं और जैसे हाथी किसी वृक्षकी शाखाको चीर डाले, उसी तरह उसे विदीर्ण कर दिया ॥ २१–२४ ॥

उस समय मृत्युको प्राप्त हुए दैत्यकी देहसे एक ज्योति निकली और श्रीकृष्णमें समा गयी। फिर तो देवता जय-जयकार करते हुए दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। तब समस्त ग्वाल-बाल आश्चर्यचकित हो, सब ओरसे आकर श्रीकृष्णसे लिपट गये और बोले—'सखे! आज तो तुम मौतके मुखसे कुशल-पूर्वक निकल आये' ॥ २५-२६ ॥

इस प्रकार बकासुरको मारनेके पश्चात् बछड़ोंको आगे करके श्रीकृष्ण बलराम और ग्वाल-बालोंके साथ गीत गाते हुए सहर्ष राजभवनमें लौट आये। परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णके इस पराक्रमपूर्ण चरित्रका घर लौटे हुए ग्वाल-बालोंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया। उसे सुनकर समस्त गोप अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २७-२८ ॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! यह बकासुर पूर्वकालमें कौन था और किस कारणसे उसको बगुलेका शरीर प्राप्त हुआ था? वह पूर्णब्रह्म सर्वेश्वर श्रीकृष्णमें लीन हुआ, यह कितने सौभाग्यकी बात है! ॥ २९ ॥

श्रीनारदजीने कहा—नरेश्वर! 'हयग्रीव' नामक दैत्यके एक पुत्र था, जो 'उत्कल' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने समराङ्गणमें देवताओंको परास्त करके देवराज इन्द्रके छत्रको छीन लिया था। उस महाबली दैत्यने और भी बहुत-से मनुष्यों तथा नरेशोंकी राज्य-सम्पत्तिका अपहरण करके सौ वर्षोंतक सर्ववैभवसम्पन्न राज्यका उपभोग किया। एक दिन इधर-उधर विचरता हुआ दैत्य उत्कल गङ्गासागर-संगमपर सिद्ध मुनि जाजलिकी पर्णशालाके समीप गया। और पानीमें बंसी डालकर बारंबार मछलियोंको पकड़ने लगा। यद्यपि मुनिने मना किया, तथापि उस दुर्बुद्धिने उनकी बात नहीं मानी। मुनिश्रेष्ठ जाजलि सिद्ध महात्मा थे, उन्होंने उत्कलको शाप देते हुए कहा—'दुर्मते! तू बगुले-

की भाँति मछली पकड़ता और खाता है, इसलिये बगुला ही हो जा।' फिर क्या था? उत्कल उसी क्षण बगुलेके रूपमें परिणत हो गया। तेजोभ्रष्ट हो जानेके कारण उसका सारा गर्व गल गया। उसने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया और उनके दोनों चरणोंमें पड़कर कहा ॥३०–३५॥

उत्कल बोला—मुने! मैं आपके प्रचण्ड तपोबलको नहीं जानता था। जाजलिजी! मेरी रक्षा कीजिये। आप-जैसे साधु-महात्माओंका सङ्ग तो उत्तम मोक्षका द्वार माना गया है। जो शत्रु और मित्रमें, मान और अपमानमें, सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेमें तथा सुख और दुःखमें भी समभाव रखते हैं, वे आप-जैसे महात्मा ही सच्चे साधु हैं। मुने! इस भूतलपर महात्माओंके दर्शनसे मनुष्योंका कौन-कौन मनोरथ नहीं पूरा हुआ? ब्रह्मपद, इन्द्रपद, सम्राट्का पद तथा योगसिद्धि—सब कुछ संतोंकी कृपासे सुलभ हो सकते हैं। मुनिश्रेष्ठ जाजले! आप-जैसे महात्माओंसे लोगोंको धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति हुई तो क्या हुई? साधुपुरुषोंकी कृपासे तो साक्षात् पूर्ण-ब्रह्म परमात्मा भी मिल जाता है ॥ ३६–३९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! उस समय उत्कलकी विनययुक्त बात सुनकर वे जाजलि मुनि प्रसन्न हो गये। इन्होंने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की थी। उन्होंने उत्कलसे कहा ॥ ४० ॥

जाजलि बोले—वैवस्वत मन्वन्तर प्राप्त होनेपर जब अट्ठाईसवें द्वापरका अन्तिम समय बीतता होगा, उस समय भारतवर्षके माथुर-जनपदमें स्थित व्रजमण्डलके भीतर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावनमें गोवत्स चराते हुए विचरेंगे। उन्हीं दिनों तुम भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो जाओगे, इसमें संशय नहीं है। हिरण्याक्ष आदि दैत्य भगवान्के प्रति वैरभाव रखनेपर भी उनके परम-पदको प्राप्त हो गये हैं ॥ ४१–४३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार बकासुरके रूपमें परिणत हुआ उत्कल दैत्य जाजलिके वरदानसे भगवान् श्रीकृष्णमें लयको प्राप्त हुआ। संतोंके सङ्गसे क्या नहीं सुलभ हो सकता? ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'बकासुरका मोक्ष' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

अघासुरका उद्धार और उसके पूर्वजन्मका परिचय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चराते हुए श्रीहरि कालिन्दीके निकट किसी रमणीय स्थानपर बालोचित खेल खेलने लगे। उसी समय अघासुर नामक महान् दैत्य एक कोस लंबा शरीर धारण करके भीषण मुखको फैलाये वहाँ मार्गमें स्थित हो गया। दूरसे ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई पर्वत खड़ा हो। वृन्दावनमें उसे देखकर सब ग्वाल-बाल ताली बजाते हुए बछड़ोंके साथ उसके मुँहमें घुस गये। उन सबकी रक्षाके लिये बलरामसहित श्रीकृष्ण भी अघासुरके मुखमें प्रविष्ट हो गये। उस सर्परूपधारी असुरने जब बछड़ों और ग्वाल-बालोंको निगल लिया, तब देवताओंमें हाहाकार मच गया; किंतु दैत्योंके मनमें हर्ष ही हुआ। उस समय श्रीकृष्णने अघासुरके उदरमें अपने विराट् स्वरूपको बढ़ाना आरम्भ किया। इससे अवरुद्ध हुए अघासुरके प्राण उसका मस्तक फोड़कर बाहर निकल गये। मिथिलेश्वर! फिर बालकों और बछड़ोंके साथ श्रीकृष्ण अघासुरके मुखसे बाहर निकले। जो बछड़े और बालक मर गये थे, उन्हें माधवने अपनी कृपादृष्टिसे देखकर जीवित कर दिया। अघासुरकी जीवन-ज्योति श्यामघनमें विद्युत्‌की भाँति श्रीघनश्याममें विलीन हो गयी। राजन्! उसी समय देवताओंने पुष्पवर्षा की। देवर्षि नारदके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर मिथिलेश्वर बहुलाश्वने कहा ॥ १–८ ॥

राजा बोले—देवर्षे! यह दैत्य पूर्वकालमें कौन था, जो इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हुआ? अहो! कितने आश्चर्यकी बात है कि वह दैत्य वैर बाँधनेके कारण शीघ्र ही श्रीहरिको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! शङ्खासुरके एक पुत्र था, जो 'अघ' नामसे विख्यात था। महाबली अघ युवावस्थामें अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण साक्षात् दूसरे कामदेव-सा

जान पड़ता था। एक दिन मलयाचलपर जाते हुए अष्टावक्र मुनिको देखकर अघासुर जोर-जोरसे हँसने लगा और बोला—'यह कैसा कुरूप है!' उस महादुष्टको शाप देते हुए मुनिने कहा—'दुर्मते! तू सर्प हो जा; क्योंकि भूमण्डलपर सर्पोंकी ही जाति कुरूप एवं कुटिल गतिसे चलनेवाली होती है।' ज्यों ही उसने यह सुना, उस दैत्यका सारा अभिमान गल गया और वह दीनभावसे मुनिके चरणोंमें गिर पड़ा। उसे इस अवस्थामें देखकर मुनि प्रसन्न हो गये और पुनः उसे वर देते हुए बोले—॥ १०–१३॥

अष्टावक्रने कहा—करोड़ों कंदर्पोंसे भी अधिक लावण्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण जब तुम्हारे उदरमें प्रवेश करेंगे, तब इस सर्परूपसे तुम्हें छुटकारा मिल जायगा॥ १४॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'अघासुरका मोक्ष' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, गोवत्सों एवं गोप-बालकोंका हरण

नारदजी कहते हैं—राजेन्द्र! अब भगवान् श्रीकृष्णकी अन्य लीला सुनिये। यह लीला उनके बाल्यकालकी है, तथापि उनके पौगण्डावस्थाकी प्राप्तिके बाद प्रकाशित हुई। श्रीकृष्ण गोवत्स एवं गोप-बालकोंकी मृत्युके समान (भयंकर) अघासुरके मुखसे रक्षा करनेके उपरान्त उनका आनन्द बढ़ानेकी इच्छासे यमुना तटपर जाकर बोले—'प्रिय सखाओ! अहा, यह कोमल वालुकामय तट बहुत ही सुन्दर है। शरद् ऋतुमें खिले हुए कमलोंके परागसे पूर्ण है। शीतल, मन्द एवं सुगन्धित—त्रिविध वायुसे सौरभित है। यह तटभूमि भौंरोंकी गुञ्जारसे युक्त एवं कुञ्ज और वृक्ष-लताओंसे सुशोभित है। गोप-बालको! दिनका एक पहर बीत गया है। भोजनका समय भी हो गया है। अतएव इस स्थानपर बैठकर भोजन कर लो। कोमल वालुकावाली यह भूमि भोजन करनेके उपयुक्त दीख रही है। बछड़े भी यहाँ जल पीकर हरी-हरी घास चरते रहेंगे।' गोप-बालकोंने श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर कहा—'ऐसा ही हो' और वे सब-के-सब भोजन करनेके लिये यमुनातटपर बैठ गये। इसके उपरान्त जिनके पास भोजन-सामग्री नहीं थी, उन बालकोंने श्रीकृष्णके कानमें दीन-वाणीसे कहा—'हमलोगोंके पास भोजनके लिये कुछ नहीं है, हमलोग क्या करें? नन्दगाँव यहाँसे बहुत दूर है, अतः हमलोग बछड़ोंको लेकर चले जाते हैं।' यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'प्रिय सखाओ! शोक मत करो। मैं सबको यत्नपूर्वक (आग्रहके साथ) भोजन कराऊँगा। इसलिये तुम सब मेरी बातपर भरोसा करके निश्चिन्त हो जाओ।' श्रीकृष्णकी यह उक्ति सुनकर वे लोग उनके निकट ही बैठ गये। अन्य बालक (अपने अपने) छीकोंको खोलकर श्रीकृष्णके साथ भोजन करने लगे॥ १–११॥

श्रीकृष्णने गोप बालकोंके साथ, जिनकी उनके सामने भीड़ लगी हुई थी, एक राजसभाका आयोजन किया। समस्त गोप-बालक उनको घेरकर बैठ गये। वे लोग अनेक रंगोंके वस्त्र पहने हुए थे और श्रीकृष्ण पीला वस्त्र धारण करके उनके बीचमें बैठ गये। विदेह! उस समय गोप-बालकोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णकी शोभा देवताओंसे घिरे हुए देवराज इन्द्रके समान अथवा पँखुड़ियोंसे घिरी हुई स्वर्णिम कमलकी कर्णिका (केसरयुक्त भीतरी भाग) के समान हो रही थी। कोई बालक कुसुमों, कोई अङ्कुरों, कोई पल्लवों, कोई पत्तों, कोई फलों, कोई अपने हाथों, कोई पत्थरों और कोई छीकोंको ही पात्र बनाकर भोजन करने लगे। उनमेंसे एक बालकने शीघ्रतासे कौर उठाकर श्रीकृष्णके मुखमें दे दिया। श्रीकृष्णने भी उस ग्रासका भोग लगाकर सबकी ओर देखते हुए कहा—'भैया! अन्य बालकोंको अपनी-अपनी स्वादिष्ट सामग्री चखाओ। मैं स्वादके बारेमें नहीं जानता।' बालकोंने 'ऐसा ही हो' कहकर अन्यान्य बालकोंको भोजनके ग्रास ले जाकर दिये। वे भी उन ग्रासोंको खाकर एक-दूसरेकी हँसी करते हुए उसी प्रकार बोल उठे। सुबलने पुनः हरिके मुखमें ग्रास दिया, परंतु श्रीकृष्ण उस कौरमेंसे थोड़ा-सा खाकर हँसने लगे। इस प्रकार जिस-जिसने कौर खाया, वे सभी जोरसे हँसने लगे। बालक बोले—'नन्दनन्दन! सुनो! जिसके नाना मूढ़ (मूर्ख) हैं, उसको भोजनका ज्ञान नहीं रहता। इसलिये तुमको स्वाद प्राप्त नहीं हुआ'॥ १२–१९॥

इसके उपरान्त श्रीदामाने माधवको और अन्य बालकोंको भोजनके ग्रास दिये। व्रज-बालकोंने उसको उत्तम बताकर उसकी बहुत प्रशंसा की। इसके बाद वरूथप नामके एक बालकने पुनः श्रीकृष्णको एवं अन्य बालकोंको आग्रहपूर्वक कौर दिये। श्रीकृष्ण आदि वे सभी लोग थोड़ा-थोड़ा खाकर हँसने लगे। बालकोंने कहा—'यह भी सुबलके ग्रास-जैसा ही है। हम सभी उसे खाकर उद्विग्न हुए हैं।' इस प्रकार सभीने अपने-अपने ग्रास चखाये और सभी परस्पर हँसने-हँसाने और खेलने लगे। कटिवस्त्रमें वेणु, बगलमें लकुटी एवं सींगा, बायें हाथमें भोजनका कौर, अँगुलियोंके बीचमें फल, माथेपर मुकुट, कंधेपर पीला दुपट्टा, गलेमें वनमाला, कमरमें करधनी, पैरोंमें नूपुर और हृदयपर श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि धारण किये हुए श्रीकृष्ण गोप-बालकोंके बीचमें बैठकर अपनी विनोदभरी बातोंमे बालकोंको हँसाने लगे। इस प्रकार यज्ञभोक्ता श्रीहरि भोजन करने लगे, जिसको देवता एवं मनुष्य आश्चर्यचकित होकर देखते रहे। इस प्रकार श्रीकृष्णके द्वारा रक्षित बालकोंका जिस समय भोजन हो रहा था, उसी समय बछड़े घासकी लालचमें पड़कर दूरके एक गहन वनमें घुस गये। गोप-बालक भयसे व्याकुल हो गये। यह देखकर श्रीकृष्ण बोले—'तुमलोग मत जाओ। मैं बछड़ोंको यहाँ ले आऊँगा।' यों कहकर श्रीकृष्ण उठे और भोजनका कौर हाथमें लिये ही गुफाओं एवं कुञ्जोंमें तथा गहन वनमें बछड़ोंको ढूँढ़ने लगे ॥ २०–३० ॥

जिस समय व्रजवासी बालकोंके साथ श्रीकृष्ण यमुना-तटपर रुचिपूर्वक भोजन कर रहे थे, उसी समय पद्मयोनि ब्रह्माजी अघासुरकी मुक्ति देखकर उसी स्थानपर पहुँच गये। इस दृश्यको देखकर ब्रह्माजी मन-ही-मन कहने लगे—'ये तो देवाधिदेव श्रीहरि नहीं हैं, अपितु कोई गोपकुमार हैं। यदि ये श्रीहरि होते तो गोप-बालकोंके साथ इतने अपवित्र अन्नका भोजन कैसे करते ?' राजन् ! ब्रह्माजी परमात्माकी मायासे मोहित होकर इस प्रकार बोल गये। उन्होंने उनकी (भगवान्‌की) मनोज्ञ महिमाको जाननेका निश्चय किया। ब्रह्माजी स्वयं आकाशमें अवस्थित थे। इसके उपरान्त अघासुर-उद्धारकी लीलाके दर्शनसे चकित होकर समस्त गायों-बछड़ों तथा गोप बालकोंका हरण करके वे अन्तर्धान हो गये ॥ ३१–३४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, गोवत्सों और गोप-बालकोंका हरण' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णके सर्वव्यापी विश्वात्मा स्वरूपका दर्शन

नारदजी कहते हैं—श्रीकृष्ण गोवत्सोंको न पाकर यमुना-किनारे आये, परंतु वहाँ गोप-बालक भी नहीं दिखायी दिये। बछड़ों और वत्सपालों—दोनोंको ढूँढ़ते समय उनके मनमें आया कि 'यह तो ब्रह्माजीका कार्य है।' तदनन्तर अखिलविश्वविधायक श्रीकृष्णने गायों और गोपियोंको आनन्द देनेके लिये लीलासे ही अपने-आपको दो भागोंमें विभक्त कर लिया। वे स्वयं एक भागमें रहे तथा दूसरे भागसे समस्त बछड़े और गोप-बालकोंकी सृष्टि की। उन लोगोंके जैसे शरीर, हाथ, पैर आदि थे; जैसी लाठी, सींगा आदि थे; जैसे स्वभाव और गुण थे, जैसे आभूषण और वस्त्रादि थे; भगवान् श्रीहरिने अपने श्रीविग्रहसे ठीक वैसी ही सृष्टि उत्पन्न करके यह प्रत्यक्ष दिखला दिया कि यह अखिल विश्व विष्णुमय है। श्रीकृष्णने खेलमें ही आत्मस्वरूप गोप-बालकोंके द्वारा आत्मस्वरूप गो-वत्सोंको चराया और सूर्यास्त होनेपर उनके साथ नन्दालयमें पधारे। वे बछड़ोंको उनके अपने-अपने गोष्ठोंमें अलग-अलग ले गये और स्वयं उन-उन गोप-बालकोंके वेषमें अन्यान्य दिनोंकी भाँति उनके घरोंमें प्रवेश किया। गोपियाँ वंशीध्वनि सुनकर आदरके साथ शीघ्रतासे उठीं और अपने बालकोंको प्यारसे दूध पिलाने लगीं। गायें भी अपने अपने बछड़ोंको निकट आया देखकर रँभाती हुई उनको चाटने और दूध पिलाने लगीं। अहा ! गोपियाँ और गायें श्रीहरिकी माता बन गयीं। गोप-बालक एवं गोवत्स स्नेहाधिक्यके कारण पहलेकी अपेक्षा चौगुने अधिक बढ़ने लगे। गोपियाँ अपने बालकोंकी उबटन-

स्नानादिके द्वारा स्नेहमयी सेवा करके तब श्रीकृष्णके दर्शनके लिये आयीं ॥ १—१० ॥

इसके बाद अनेक बालकोंका विवाह हो गया। अब श्रीकृष्णस्वरूप अपने पति उन बालकोंके साथ करोड़ों गोपवधुएँ प्रीति करने लगीं। इस प्रकार वत्स पालनके बहाने अपनी आत्माकी अपनी ही आत्माद्वारा रक्षा करते हुए श्रीहरिको एक वर्ष बीत गया। एक दिन बलरामजी गोचारण करते हुए वनमें पहुँचे। उस समयतक ब्रह्माजीद्वारा वत्सों एवं वत्सपालोंका हरण हुए एक वर्ष पूर्ण होनेमें केवल पाँच छः रात्रियाँ शेष रही थीं। उस वनमें स्थित पहाड़की चोटीपर गायें चर रही थीं। दूरसे बछड़ोंको घास चरते देखकर वे उनके निकट आ गयीं और उनको चाटने तथा अपना अमृत-तुल्य दूध पिलाने लगीं। राजन्! गोपोंने देखा कि गायें बछड़ोंको दूध पिलाकर स्नेहके कारण गोवर्धनकी तलहटीमें ही रुक गयी हैं, तब वे अत्यन्त क्रोधमें भरकर पहाड़से नीचे उतरे और अपने बालकोंको दण्ड देनेके लिये शीघ्रतासे वहाँ पहुँचे। परंतु निकट पहुँचते ही (स्नेहके वशीभूत होकर) गोपोंने अपने बालकोंको गोदमें उठा लिया। युवक अथवा वृद्ध—सभीके नेत्रोंमें स्नेहके आँसू आ गये और वे अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ मिलकर वहाँ बैठ गये ॥ ११—१८ ॥

संकर्षण बलरामने इस प्रकार जब गोपोंको प्रेमपरायण देखा, तब उनके मनमें अनेक प्रकारके संदेह उठने लगे। उन्होंने मन-ही-मन कहा—'अहा! प्रायः एक वर्षसे व्रजमें क्या हो गया है, वह मेरी समझमें नहीं आ रहा है। दिन-प्रतिदिन सबके हृदयोंका स्नेह अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। क्या यह देवताओं, गन्धर्वों या राक्षसोंकी माया है? अब मैं समझता हूँ कि यह मुझे मोहित करनेवाली कृष्णकी मायासे भिन्न और कुछ नहीं है। इस प्रकार विचार करके बलरामजीने अपने नेत्र बंद कर लिये और दिव्यचक्षुसे भूत, भविष्य तथा वर्तमानको देखा। बलरामजीने समस्त गोवत्स एवं पहाड़की तलहटीमें खेलनेवाले गोप-बालकोंको वंशी-वेत्र-विभूषित, मयूरपिच्छधारी, श्यामवर्ण, मणिसमूहों एवं गुञ्जाफलोंकी मालासे शोभित, कमल एवं कुमुदिनीकी मालाएँ दिव्य पगड़ी एवं मुकुट धारण किये हुए, कुण्डलों एवं अलकावलीसे सुशोभित, शरत्कालीन कमलसदृश नेत्रोंसे निहारकर आनन्द देनेवाले, करोड़ों कामदेवोंकी शोभासे सम्पन्न, नासिकास्थित मुक्ताभरणसे अलंकृत, शिखा-भूषणसे युक्त, दोनों हाथोंमें आभूषण धारण किये हुए, पीला वस्त्र धारण किये हुए, मेखला, कड़े और नूपुरसे शोभित, करोड़ों बाल-रवियोंकी प्रभासे युक्त और मनोहर देखा। बलरामजीने गोवर्धनसे उत्तरकी ओर एवं यमुनाजीसे दक्षिणकी ओर स्थित वृन्दावनमें सब कुछ कृष्णमय देखा। वे इस कार्यको ब्रह्माजी और श्रीकृष्णका किया हुआ जानकर पुनः गोवत्सों एवं वत्सपालोंका दर्शन करते हुए श्रीकृष्णसे बोले—'ब्रह्मा, अनन्त, धर्म, इन्द्र और शंकर भक्तियुक्त होकर सदा तुम्हारी सेवा किया करते हैं। तुम आत्माराम, पूर्णकाम, परमेश्वर हो। तुम शून्यमें करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करनेमें समर्थ हो'* ॥ १९—३० ॥

नारदजीने कहा—जिस समय बलरामजी यों कह रहे थे, उसी समय ब्रह्माजी वहाँ आये और उन्होंने गोवत्सों एवं गोप-बालकोंके साथ बलरामजी एवं श्रीकृष्णके दर्शन किये। 'ओहो! मैं जिस स्थानपर गोवत्स तथा गोप-बालकोंको रख आया था, वहाँसे श्रीकृष्ण उनको ले आये हैं।'—यों कहते हुए ब्रह्माजी उस स्थानपर गये और वहाँपर उन सबको पहलेकी तरह ही पाया। ब्रह्माजी उनको निद्रित देखकर पुनः व्रजमें आये और गोप-बालकोंके साथ श्रीहरिके दर्शन करके विस्मित हो गये। वे मन-ही-मन कहने लगे—'ओहो, कैसी विचित्रता है! ये लोग कहाँसे यहाँ आये और पहलेकी ही भाँति श्रीकृष्णके साथ खेल रहे हैं! यह सब खेल करनेमें मुझे एक त्रुटि (क्षण)-जितना काल लगा, परंतु इतनेमें इस भूलोकमें एक वर्ष पूरा हो गया। तथापि सभी प्रसन्न हैं, कहीं किसीको इस घटनाका पता भी नहीं चला।' इस प्रकारसे ब्रह्माजी मोहातीत विश्वमोहनको मोहित करने गये, परंतु अपनी मायाके अन्धकारमें वे स्वयं अपने शरीरको भी नहीं देख सके। गोप-बालकोंके हरणसे जगत्पतिकी तो कुछ हानि हुई नहीं, अपितु श्रीकृष्णरूप सूर्यके सम्मुख ब्रह्माजी ही जुगनू-से दीखने लगे। ब्रह्माके इस प्रकार मोहित एवं जडीभूत हो जानेपर श्रीकृष्णने कृपापूर्वक अपनी मायाको हटाकर उनको अपने स्वरूपका दर्शन कराया। भक्तिके द्वारा ब्रह्माजीको ज्ञाननेत्र प्राप्त हुए। उन्होंने एक बार गोवत्स

---

* ब्रह्मानन्तो धर्म इन्द्रः शिवश्च
सेवन्ते त्वां भक्तियुक्ताः सदैवे।
आत्मारामः पूर्णकामः परेशः
स्रष्टुं शक्तः कोटिशोऽण्डानि यः खे ॥
(गर्ग०, वृन्दावन० ८ । १०)

एवं गोप-बालक—सबको श्रीकृष्णरूप देखा। राजन्! ब्रह्माजीने शरीरके भीतर और बाहर अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को विष्णुमय देखा ॥ ३१—४० ॥

इस प्रकार दर्शन करके ब्रह्माजी तो जड़ताको प्राप्त होकर निश्चेष्ट हो गये। ब्रह्माजीको वृन्दादेवी द्वारा अधिष्ठित वृन्दावनमें जहाँ तहाँ दीखनेवाली भगवान्की महिमा देखनेमें असमर्थ जानकर श्रीहरिने मायाका पर्दा हटा लिया। तब ब्रह्माजी नेत्र पाकर, निद्रासे जगे हुएकी भाँति उठकर, अत्यन्त कष्टसे नेत्र खोलकर अपनेसहित वृन्दावनको देखनेमें समर्थ हुए। वहाँपर वे उसी समय एकाग्र होकर दसों दिशाओंमें देखने लगे और वसन्तकालीन सुन्दर लताओंसे युक्त रमणीय श्रीवृन्दावनका उन्होंने दर्शन किया। वहाँ बाघके बच्चोंके साथ मृग-शावक खेल रहे थे। बाज और कबूतरमें, नेवला और साँपमें वहाँ जन्मजात वैरभाव नहीं था। ब्रह्माजीने देखा कि एकमात्र श्रीकृष्ण ही हाथमें भोजनका कौर लिये हुए प्यारे गोवत्सोंको वृन्दावनमें ढूँढ़ रहे हैं। गोलोकपति साक्षात् श्रीहरिको गोपाल-वेषमें अपनेको छिपाये हुए देखकर तथा ये साक्षात् श्रीहरि हैं—यह पहचानकर ब्रह्माजी अपनी करतूतको स्मरण करके भयभीत हो गये। राजन्! उन चारों ओर प्रज्वलित दीखनेवाले श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्माजी अपने वाहनसे उतरे और लज्जाके कारण उन्होंने सिर नीचा कर लिया। वे भगवान्को प्रणाम करते हुए और 'प्रसन्न हों'—यह कहते हुए धीरे-धीरे उनके निकट पहुँचे। यों भगवान्को अपनी आँखोंसे झरते हुए हर्षके आँसुओंका अर्घ्य देकर दण्डकी भाँति वे भूमिपर गिर पड़े। भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको उठाकर आश्वस्त किया और उनका इस प्रकार स्पर्श किया, जैसे कोई प्यारा अपने प्यारेका स्पर्श करे। तत्पश्चात् वे सुधा-सिक्त दृष्टिसे उसी सुन्दर भूमिपर दूर खड़े देवताओंकी ओर देखने लगे। तब वे सभी उच्चस्वरसे जय-जयकार करते हुए उनका स्तवन करने लगे। साथ-साथ प्रणाम भी करने लगे। श्रीकृष्णकी दयादृष्टि पाकर सभी आनन्दित हुए और उनके प्रति आदरसे भर गये। ब्रह्माजीने भगवान्को उस स्थानपर देखकर भक्तियुक्त मनसे हाथ जोड़कर प्रणाम किया और रोमाञ्चित होकर दण्डकी भाँति वे भूमिपर गिर पड़े। पुनः वे गद्गद वाणीसे भगवान्का स्तवन करने लगे ॥ ४१—५२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णके सर्वव्यापी विश्वात्मा स्वरूपका दर्शन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

ब्रह्मोवाच

कृष्णाय मेघवपुषे चपलाम्बराय
पीयूषमिष्टवचनाय परात्पराय।
वंशीधराय शिखिचन्द्रकयान्विताय
देवाय भ्रातृसहिताय नमोऽस्तु तस्मै ॥

ब्रह्माजी बोले—"मेघकी-सी कान्तिसे युक्त विद्युत्-वर्णका वस्त्र धारण करनेवाले, अमृत-तुल्य मीठी वाणी बोलनेवाले, परात्पर, वंशीधारी, मयूरपिच्छको धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको उनके भ्राता बलरामसहित नमस्कार है। श्रीकृष्ण (आप) साक्षात् स्वयं पुरुषोत्तम, पूर्ण परमेश्वर, प्रकृतिसे अतीत श्रीहरि हैं। हम देवता जिनके अंश और कलावतार हैं, जिनकी शक्तिसे हमलोग क्रमशः विश्वकी सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं, उन्हीं आपने साक्षात् कृष्णचन्द्रके रूपमें अवतीर्ण होकर धराधामपर नन्दका पुत्र होना स्वीकार किया है। आप प्रधान-प्रधान गोप-बालकोंके साथ गोपवेषसे वृन्दावनमें गोचारण करते हुए विराज रहे हैं। करोड़ों कामदेवके समान रमणीय, तेजोमय, कौस्तुभधारी, श्यामवर्ण, पीतवस्त्रधारी, वंशीधर, व्रजेश, राधिकापति, निकुञ्ज-बिहारी परमसुन्दर श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मेघसे निर्लिप्त आकाशके समान प्राणियोंकी देहमें क्षेत्रज्ञ रूपसे स्थित हैं, जो अधियज्ञ एवं चैत्यस्वरूप हैं, जो मायारहित हैं और जो निर्मल भक्ति तथा प्रबल वैराग्य आदि भावोंसे प्राप्त होते हैं, उन आदिदेव हरिकी मैं वन्दना करता हूँ। सर्वज्ञ! जिस समय मनमें प्रबल रजोगुणका उदय होता है, उसी समय मन संकल्प-विकल्प करने लगता है। संकल्प-विकल्पके वशीभूत मनमें ही अभिमानकी उत्पत्ति होती है

और वही अभिमान धीरे-धीरे बुद्धिको विकृत कर देता है। क्षणस्थायी बिजलीके समान, बदलते हुए ऋतुगुणोंके समान, जलपर खींची गयी रेखाके समान, पिशाचके द्वारा उत्पन्न किये हुए अंगारोंके समान और कपटी यात्रीकी प्रीतिके समान जगत्के सुख मिथ्या हैं। विषय-सुख दुःखोंसे घिरे हुए हैं एवं अलातचक्रवत् (जलते हुए अंगारको वेगसे चक्राकार घुमानेपर जो क्षणस्थायी वृत्त बनता है, उसके समान) हैं। जैसे वृक्ष न चलते हुए भी, जलके चलनेके कारण चलते हुए-से दीखते हैं, नेत्रोंको वेगसे घुमानेपर अचल पृथ्वी भी चलती हुई-सी दीखती है, कृष्ण! उसी प्रकार प्रकृतिसे उत्पन्न गुणोंके वशमें होकर भ्रान्त जीव उस प्रकृतिजन्य सुखको सत्य मान लेता है। सुख एवं दुःख मनसे उत्पन्न होते हैं, निद्रावस्थामें वे लुप्त हो जाते हैं और जागनेपर पुनः उनका अनुभव होने लगता है। जिनको इस प्रकारका विवेक प्राप्त है, उनके लिये यह जगत् निरन्तर स्वप्नावस्थाके भ्रमके समान ही है। ज्ञानी पुरुष ममता एवं अभिमानका त्याग करके सदा वैराग्यसे प्रीति करनेवाले तथा शान्त होते हैं। जैसे एक दियेसे सैकड़ों दिये उत्पन्न होते हैं, वैसे ही एक परमात्मासे सब कुछ उत्पन्न हुआ है—ऐसी तात्त्विक दृष्टि उनकी रहती है ॥ १–१० ॥

"भक्त निर्धूम अग्निशिखाकी भाँति गुणमुक्त एवं आत्मनिष्ठ होकर हृदयमें ब्रह्माके भी स्वामी भगवान् वासुदेवका भजन करते हैं। जिस प्रकार हम एक ही चन्द्रबिम्बको अनेकों घड़ोंके जलमें देखते हैं, उसी प्रकार आत्माके एकत्वका दर्शन करके श्रेष्ठ परमहंस भी कृतार्थ होते हैं। निरन्तर स्तवन करते रहनेपर भी वेद जिनके माहात्म्यके षोडशांशका भी कभी भान नहीं प्राप्त कर सके, तब त्रिलोकीमें उन श्रीहरिके गुणोंका वर्णन, भला, दूसरा कौन कर सकता है? मैं चार मुखोंसे, देवाधिदेव महादेवजी पाँच मुखोंसे तथा हजार मुखवाले शेषजी अपने सहस्र मुखोंसे जिनकी स्तुति-सेवा करते हैं; वैकुण्ठनिवासी विष्णु, क्षीरोदशायी साक्षात् हरि और धर्मसुत नारायण ऋषि उन गोलोकपति आपकी सेवा किया करते हैं। अहा! मुरारे! आपकी महिमा धन्य है। भूतलपर उस महिमाको न मुनिगण जानते हैं न मनुष्य ही। सुर-असुर तथा चौदहों मनु भी उसे जाननेमें असमर्थ हैं। ये सब स्वप्नमें भी आपके चरणकमलोंके दर्शन पानेमें असमर्थ हैं। गुणोंके सागर, मुक्तिदाता, परात्पर, रमापति, गुणेश, भजेश्वर श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ। ताम्बूल-रागरञ्जित सुन्दर मुखसे सुशोभित, मधुरभाषी, पके हुए बिम्बफलके समान लाल-लाल अधरोंवाले, स्मितहास्ययुक्त, कुन्दकलीके समान शुभ्र दन्तपंक्तिसे जगमगाते हुए, नील अलकोंसे आवृत कपोलोंवाले, मनोहर-कान्ति तथा झूलते हुए स्वर्ण-कुण्डलोंसे मण्डित श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। आपका परम सुन्दर रूप मन्मथके मनको भी हरनेवाला है। मेरे नेत्रोंमें सर्वदा मकरकुण्डलधारी श्यामकलेवर श्रीकृष्णके उस रूपका प्रकाश होता रहे। जिनकी लीला वैकुण्ठ-लीलाकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है और जिनके परम श्रेष्ठ मनोहर रूपको देवगण भी नमस्कार करते हैं, उन गोपलीलाकारी गोलोकनाथको मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ। वसन्तकालीन सुन्दर कण्ठवाले कोकिलादि पक्षियोंसे युक्त, सुगन्धित, नवीन पल्लवयुक्त वृक्षोंसे अलंकृत, सुधाके समान शीतल, धीर (मन्द) पवनकी क्रीडासे सुशोभित वृन्दावनमें विचरण करनेवाले श्रीकृष्णकी जय हो! वे सदा भक्तोंकी रक्षा करें ॥ ११–२० ॥

"आपके विशाल नेत्र तथा उनकी तिरछी चितवन कमलपुष्पोंका मान और झूलते हुए मोतियोंका अभिमान दूर करनेवाली है, भूतलके समस्त रसिकोंको रसका दान करती है तथा कामदेवके बाणोंके समान पैनी एवं प्रीति-दानमें निपुण है। जिनकी नखमणियाँ शरत्कालीन चन्द्रमाके समान सुखकर, सुरक्त, हृदयग्राहिणी, गाढ़ अन्धकारका नाश करनेवाली और जगत्के समस्त प्राणियोंके पापोंका ध्वंस करनेवाली हैं तथा स्वर्गमें देवमण्डली जिनका श्रीविष्णु एवं हरिकी नखावलीके रूपमें स्तवन करती है, मैं उनकी आराधना करता हूँ। आपके पादपद्मोंकी सर्वदा बजनेवाली, श्रीहरिके सैकड़ों किरणोंसे युक्त (सुदर्शन) चक्रके समान आकारवाली पैंजनियाँ ऐसी हैं, जिनसे गोल घेरेकी भाँति किरणें इस प्रकार निकलती हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशयुक्त रथचक्रकी परिधि हो, अथवा जो आपके पादपद्मोंकी परिधिके समान सुशोभित हैं। आपकी कमरमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त दिव्य पीताम्बर जगमगा रहा है। मैं अक्लिष्टकर्मा भगवान् श्रीकृष्ण (आप) के उस मनोहर रूपकी आराधना करता हूँ। जिनके कान्तिमान् कसौटी-सदृश एवं भृगुपद-अङ्कित विशाल वक्षःस्थलपर लक्ष्मी विलास करती हैं, जिनके गलेमें स्वर्णमणि एवं मोतियोंकी लड़ियोंसे युक्त तथा तारोंके समान झिलमिल प्रकाश करनेवाले तथा भ्रमरोंकी

ध्वनिसे युक्त हीरोंके हार हैं, जो सिन्दूरवर्णकी सुन्दर अँगुलियोंसे वंशी बजा रहे हैं, जिनकी अँगुलियोंमें सोनेकी अँगूठियाँ सुशोभित हैं, जिनके दोनों हाथ द्विजोंको दान देनेवाले, चन्द्रमाके समान नखोंसे युक्त एवं कामदेवके वनके कदम्बवृक्षोंके पुष्पोंकी सुगन्धसे सुवासित हैं, जिनकी मन्दगति राजहंसकी भाँति सुन्दर है, जिनके कंधे गलेतक ऊँचे उठे हुए हैं, उन श्रीहरिकी मेघमालाका मान हरण करनेवाली मनोहर काकुल्का मैं स्मरण करता हूँ। जो स्वच्छ दर्पणकी भाँति निर्मल, सुखद, नवयौवनकी कान्तिसे युक्त, मनुष्योंके रक्षक तथा मणि-कुण्डलों एवं सुन्दर घुँघराले बालोंसे सुशोभित हैं, श्रीहरिके सूर्य तथा चन्द्रमाकी भाँति प्रभासे युक्त उन दोनों कपोलोंका मैं स्मरण करता हूँ। जो सुवर्ण तथा मुक्ता एवं वैदूर्यमणिसे जटित लाल वस्त्रका बना हुआ है, जो कामदेवके मुखपर क्रीड़ा करनेवाले सम्पूर्ण सौन्दर्यसे विलसित है—जो अरुण-कान्ति तथा चन्द्र एवं करोड़ों सूर्योंके समान प्रभा-सम्पन्न है और मयूरपिच्छसे अलंकृत है, श्रीकृष्णके उस मुकुटको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके द्वारदेशपर स्वामिकार्तिकेय, गणेश, इन्द्र, चन्द्र एवं सूर्यकी भी गति नहीं है; जिनकी आज्ञाके बिना कोई निकुञ्जमें प्रवेश नहीं कर सकता, उन जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं आराधना करता हूँ।"॥२१—३०॥

ब्रह्माजी इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन करके पुनः हाथ जोड़कर कहने लगे—'जगत्के स्वामी ! मैं आपके नाभि-कमलसे उत्पन्न हूँ; अतएव जिस प्रकार माता अपने पुत्रके अपराधोंको क्षमा कर देती है, उसी प्रकार आप भी मेरे अपराधोंको क्षमा कर दें। व्रजपते ! कहाँ तो मैं एक लोकका अधिपति और कहाँ आप करोड़ों ब्रह्माण्डोंके नायक ! अतएव व्रजेश, मधुसूदन ! देव ! आप मेरी रक्षा करें। जिनकी मायासे देवता, दैत्य एवं मनुष्य—सभी मोहित हैं, मैं मूर्ख उनको अपनी मायासे मोहित करने चला था ! गोविन्द ! आप नारायण हैं, मैं नारायण नहीं हूँ। हरि ! आप कल्पके आदिमें ब्रह्माण्डकी रचना करके नारायणरूपसे शेषशायी हो गये। आपके जिस ब्रह्मरूप तेजमें योगी प्राणत्याग करके जाते हैं, बालघातिनी पूतना भी अपने कुलसहित आपके उसी तेजमें समा गयी। माधव ! मेरे ही अपराधसे आपने गोवत्स एवं गोप-बालकोंका रूप धारण करके वनोंमें विचरण किया। अतएव भो ! आप मुझको क्षमा करें। गोविन्द ! पिता जैसे पुत्रका अपराध नहीं देखता, वैसे ही आप भी मेरे अपराधकी उपेक्षा करके मेरे ऊपर प्रसन्न हों। जो लोग आपके भक्त न होकर ज्ञानमें रति करते हैं, उनको क्लेश ही हाथ लगता है, जैसे भूसेके लिये परिश्रमपूर्वक खेत जोतनेवालोंको भूसामात्र प्राप्त होता है। आपके भक्तिभावमें ही नित्य रत रहनेवाले अनेकों योगी, मुनि एवं व्रजवासी आपको प्राप्त हो चुके हैं। दर्शन और श्रवण—दो प्रकारसे उनकी आपमें रति होती है, किंतु अहो ! श्रीहरिकी मायाके कारण उनके प्रति मेरी रति नहीं हुई'॥ ३१—४१॥

ब्रह्माजीने यों कहकर नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए उनके (श्रीकृष्णके) पादपद्मोंमें प्रणाम किया एवं सारे अपराधोंको क्षमा करानेके लिये भक्तिभावसे श्रीकृष्णसे वे फिर निवेदन करने लगे—"मैं गोपकुलमें जन्म लेकर आपके पादपद्मोंकी आराधना करता हुआ सुगति प्राप्त कर सकूँ, इसका व्यतिरेक न हो। भगवान् शंकर आदि हम (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) देवगणने भारतवासी इन गोपोंकी देहमें स्थित होकर एक बार भी श्रीकृष्णका दर्शन कर लिया, अतः हम धन्य हो गये। श्रीकृष्ण ! आपके माता-पिता एवं गोप-गोपियोंका तो कितना अनिर्वचनीय सौभाग्य है, जो व्रजमें आपके पूर्णरूपका दर्शन कर रहे हैं। सम्पूर्ण विश्वका उपकार करनेवाले, मुक्ताहार धारण करनेवाले, विश्वके रचयिता, सर्वाधार, लीलाके धाम, रवितनया यमुनामें विहार करनेवाले, क्रीडापरायण, श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार ग्रहण करनेवाले प्रभु मेरी रक्षा करें। वृष्णिकुलरूप सरोवरके कमलस्वरूप नन्दनन्दन, राधापति, देव-देव, मदनमोहन, व्रजपति, गोकुलपति, गोविन्द मुझ मायासे मोहितकी रक्षा करें। जो व्यक्ति श्रीकृष्णकी प्रदक्षिणा करता है, उसको जगत्के सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्राका फल प्राप्त होता है। वह आपके सुखदायक परात्पर 'गोलोक' नामक लोकको जाता है।" ॥ ४२—४८॥

नारदजी कहते लगे—लोकपति लोक-पितामह ब्रह्माने इस प्रकार सुन्दर वृन्दावनके अधिपति गोविन्दका स्तवन करके प्रणाम करते हुए उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की और कुछ देरके लिये अदृश्य होकर गोवत्स तथा गोप-बालकोंको वरदान देकर लौट जानेके लिये अनुमतिकी प्रार्थना की॥४९-५०॥

तदनन्तर श्रीहरिने नेत्रोंके संकेतसे उनको जानेका आदेश दिया। लोकपितामह ब्रह्मा भी पुनः प्रणाम करके

अपने लोकको चले गये। राजन्! इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण वनसे शीघ्रतापूर्वक गोवत्स एवं गोप-बालकोंको ले आये और यमुनातटपर जिस स्थानपर गोपमण्डली विराजित थी, उन लोगोंको लेकर उसी स्थानपर पहुँचे। गोवत्सोंके साथ लौटे हुए श्रीकृष्णको देखकर उनकी मायासे विमोहित गोपोंने उतने समयको आधे क्षण-जैसा समझा। वे लोग गोवत्सोंके साथ आये हुए श्रीकृष्णसे कहने लगे—'आप शीघ्रतासे आकर भोजन करें। प्रभो! आपके चले जानेके कारण किसीने भी भोजन नहीं किया।' इसके उपरान्त श्रीकृष्णने हँसकर बालकोंके साथ भोजन किया और बालकोंको अजगर-का चमड़ा दिखाया। तदनन्तर बलरामजीके साथ गोपोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण वत्सवृन्दको आगे करके धीरे-धीरे व्रजको लौट आये। सफेद, चितकबरे, लाल, पीले, धूम्र एवं हरे आदि अनेक रंग और स्वभाववाले गोवत्सोंको आगे करके धीरे-धीरे सुखद वनसे गोष्ठमें लौटते हुए गोपमण्डलीके बीच स्थित नन्दनन्दनकी मैं वन्दना करता हूँ। राजन्! श्रीकृष्णके विरहमें जिनको क्षणभरका समय युगके समान लगता था, उन्हींके दर्शनसे उन गोपियोंको आनन्द प्राप्त हुआ। बालकोंने अपने-अपने घर जाकर गोष्ठोंमें अलग-अलग बछड़ोंको बाँधकर अघासुर-वध एवं श्रीहरि-द्वारा हुई आत्मरक्षाके वृत्तान्तका वर्णन किया ॥ ५१—५९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'ब्रह्माजीद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति' नामक नवम अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

यशोदाजीकी चिन्ता; नन्दद्वारा आश्वासन तथा ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान देना; श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णका गोचारण

नारदजी कहते हैं—अष्टावक्रके शापसे सर्प होकर अघासुर उन्हींके वरदान-बलसे उस परम मोक्षको प्राप्त हुआ, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। वत्सासुर, बकासुर और फिर अघासुरके मुखसे श्रीकृष्ण किसी तरह बच गये हैं और कुछ ही दिनोंमें उनके ऊपर ये सारे संकट आये हैं—यह सुनकर यशोदाजी भयसे व्याकुल हो उठीं। उन्होंने कलावती, रोहिणी, बड़े-बूढ़े गोप, वृषभानुवर, व्रजेश्वर नन्दराज, नौ नन्द, नौ उपनन्द तथा प्रजाजनोंके स्वामी छः वृषभानुओंको बुलाकर उन सबके सामने यह बात कही ॥ १—४ ॥

यशोदा बोलीं—आप सब लोग बतायें—मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कैसे मेरा कल्याण हो? मेरे पुत्रपर तो यहाँ क्षण-क्षणमें बहुत-से अरिष्ट आ रहे हैं। पहले महावन छोड़कर हमलोग वृन्दावनमें आये और अब इसे भी छोड़कर दूसरे किस निर्भय देशमें मैं चली जाऊँ, यह बतानेकी कृपा करें। मेरा यह बालक स्वभावसे ही चपल है। खेलते-खेलते दूरतक चला जाता है। व्रजके दूसरे बालक भी बड़े चञ्चल हैं। वे सब मेरी बात मानते ही नहीं। तीखी चोंचवाला बलवान् बकासुर पहले मेरे बालकको निगल गया था। उससे छूटा तो इस बेचारेको अघासुरने समस्त ग्वाल-बालोंके साथ अपना ग्रास बना लिया। भगवान्‌की कृपासे किसी तरह उससे भी इसकी रक्षा हुई। इन सबसे पहले वत्सासुर इसकी घातमें लगा था, किंतु वह भी दैवके हाथों मारा गया। अब मैं बछड़े चरानेके लिये अपने बच्चेको घरसे बाहर नहीं जाने दूँगी ॥ ५—९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस तरह कहती तथा निरन्तर रोती हुई यशोदाकी ओर देखकर नन्दजी कुछ कहनेको उद्यत हुए। पहले तो धर्म और अर्थके ज्ञाता तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ नन्दने गर्गजीके वचनोंकी याद दिलाकर उन्हें धीरज बँधाया, फिर इस प्रकार कहा ॥ १० ॥

नन्दराज बोले—यशोदे! क्या तुम गर्गकी कही हुई सारी बातें भूल गयीं? ब्राह्मणोंकी कही हुई बात सदा सत्य होती है, वह कभी असत्य नहीं होती। इसलिये समस्त अरिष्टोंका निवारण करनेके लिये तुम्हें दान करते रहना चाहिये। दानसे बढ़कर कल्याणकारी कृत्य न तो पहले हुआ है और न आगे होगा ही ॥ ११-१२ ॥

नारदजी कहते हैं—नरेश्वर! तब यशोदाने बलराम और श्रीकृष्णके मङ्गलके लिये ब्राह्मणोंको बहुमूल्य नवरत्न और अपने अलंकार दिये। नन्दजीने उस समय

दस हजार बैल, एक लाख मनोहर गायें तथा दो लाख भार अन्न दान दिये ॥ १३-१४ ॥

श्रीनारदजी पुनः कहते हैं—राजन् ! अब गोपोंकी इच्छासे बलराम और श्रीकृष्ण गोपालक हो गये । अपने गोपाल मित्रोंके साथ गाय चराते हुए वे दोनों भाई वनमें विचरण करने लगे । उस समय श्रीकृष्ण और बलरामका सुन्दर मुह निहारती हुई गौएँ उनके आगे-पीछे और अगल-बगलमें विचरती रहती थीं । उनके गलेमें क्षुद्रघण्टिकाओंकी माला पहिनायी गयी थी । सोनेकी मालाएँ भी उनके कण्ठकी शोभा बढ़ाती थीं । उनके पैरोंमें घुँघुरू बँधे थे । उनकी पूँछोंके स्वच्छ बालोंमें लगे हुए मोरपंख और मोतियोंके गुच्छे शोभा दे रहे थे । वे घंटों और नूपुरोंके मधुर झंकारको फैलाती हुई इधर-उधर चरती थीं । चमकते हुए नूतन रत्नोंकी मालाओंके समूहसे उन समस्त गौओंकी बड़ी शोभा होती थी । राजन् ! उन गौओंके दोनों सींगोंके बीचमें सिरपर मणिमय अलंकार धारण कराये गये थे, जिनसे उनकी मनोहरता बढ़ गयी थी । सुवर्ण-रश्मियोंकी प्रभासे उनके सींग तथा पार्श्व-प्रवेष्टन (पीठपरकी झूल) चमकते रहते थे । कुछ गौओंके भालमें किंचित् रक्तवर्णके तिलक लगे थे । उनकी पूँछें पीले रंगसे रँगी गयी थीं और पैरोंके खुर अरुणरागसे रञ्जित थे । बहुत-सी गौएँ कैलास पर्वतके समान श्वेतवर्णवाली, सुशीला, सुरूपा तथा अत्यन्त उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थीं । मिथिलेश्वर ! बछड़ेवाली गौएँ अपने स्तनोंके भारसे धीरे-धीरे चलती थीं । कितनोंके थन घड़ोंके बराबर थे । बहुत-सी गौएँ लालरंगकी थीं । वे सब-की-सब भव्यमूर्ति दिखायी देती थीं । कोई पीली, कोई चितकबरी, कोई श्यामा, कोई हरी, कोई ताँबेके समान रंगवाली, कोई धूमिलवर्णकी और कोई मेघोंकी घटा-जैसी नीली थीं । उन सबके नेत्र घनश्याम श्रीकृष्णकी ओर लगे रहते थे । किन्हीं गौओं और बैलोंके सींग छोटे, किन्हींके बड़े तथा किन्हींके ऊँचे थे । कितनोंके सींग हिरनोंके-से थे और कितनोंके टेढ़े-मेढ़े । वे सब गौएँ कपिला तथा मङ्गलकी धाम थीं । वन-वनमें कोमल कमनीय घास खोज-खोजकर चरती हुई कोटि-कोटि गौएँ श्रीकृष्णके उभय पार्श्वोंमें विचरती थीं ॥ १५—२४ ॥

यमुनाका पुण्य-पुलिन तथा उसके निकट श्याम तमालोंसे सुशोभित वृन्दावन नीप, कदम्ब, नीम, अशोक, प्रवाल, कटहल, कदली, कचनार, आम, मनोहर जामुन, बेल, पीपल और कैथ आदि वृक्षों तथा माधवी लताओंसे मण्डित था । वसन्त ऋतुके शुभागमनसे मनोहर वृन्दावनकी दिव्य शोभा हो रही थी । वह देवताओंके नन्दन-वन-सा आनन्दप्रद और सर्वतोभद्र-वन-सा सब ओरसे मङ्गलकारी जान पड़ता था । उसने (कुबेरके) चैत्ररथ वनकी शोभाको तिरस्कृत कर दिया था । वहाँ झरनों और कंदराओंसे संयुक्त रत्नधातुमय श्रीमान् गोवर्धन पर्वत शोभा पाता था । वहाँका वन पारिजात या मन्दारके वृक्षोंसे व्याप्त था । वह चन्दन, बेर, कदली, देवदार, बरगद, पलास, पाकर, अशोक, अरिष्ट (रीठा), अर्जुन, कदम्ब, पारिजात, पाटल तथा चम्पाके वृक्षोंसे सुशोभित था । श्याम वर्णवाले इन्द्रयव-नामक वृक्षोंसे घिरा हुआ वह वन करञ्ज-जालसे विलसित कुञ्जोंसे सम्पन्न था । वहाँ मधुर कण्ठवाले नर-कोकिल और मयूर कलरव कर रहे थे । उस वनमें गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण एक वनसे दूसरे वनमें विचरा करते थे । नरेश्वर ! वृन्दावन और मधुवनमें, तालवनके आस-पास कुमुद्वनमें, बहुलावन, कामवन, बृहत्सानु और नन्दीश्वर नामक पर्वतोंके पार्श्ववर्ती प्रदेशोंमें, कोकिलोंकी काकलीसे कूजित सुन्दर कोकिलावनमें, लताजाल-मण्डित सौम्य तथा रमणीय कुश-वनमें, परम पावन भद्रवन, भाण्डीर उपवन, लोहार्गल तीर्थ तथा यमुनाके प्रत्येक तट और तटवर्ती विपिनोंमें पीताम्बर धारण किये, बद्धपरिकर, नटवेषधारी मनोहर श्रीकृष्ण बेंत लिये, वंशी बजाते और गोपाङ्गनाओंकी प्रीति बढ़ाते हुए बड़ी शोभा पाते थे । उनके सिरपर शिखिपिच्छका सुन्दर मुकुट तथा गलेमें वैजयन्तीमाला सुशोभित थी ॥ २५—३६ ॥

संध्याके समय गोवृन्दको आगे किये अनेकानेक रागोंमें बाँसुरी बजाते साक्षात् श्रीहरि कृष्ण नन्दव्रजमें आये । आकाशको गोरजसे व्याप्त देख श्रीवंशीवटके मार्गसे आती हुई वंशी-ध्वनिसे आकुल हुई गोपियाँ श्यामसुन्दरके दर्शनके लिये घरोंसे बाहर निकल आयीं । अपनी मानसिक पीड़ा दूर करने और उत्तम सुखको पानेके लिये वे गोपसुन्दरियाँ श्रीकृष्णदर्शनके हेतु घरसे बाहर आ गयी थीं । उनमें श्रीकृष्णको भुला देनेकी शक्ति नहीं थी । श्रीनन्दनन्दन सिंहकी भाँति पीछे घूमकर देखते थे । वे गजकिशोरकी भाँति लीलापूर्वक मन्दगतिसे चलते थे । उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पाते थे । गो-समुदायसे व्याप्त संकीर्ण गलियोंमें मन्द-मन्द गतिसे आते हुए श्यामसुन्दरको उस समय

गोपवधूटियाँ अच्छी तरहसे देख नहीं पाती थीं । मिथिलेश्वर ! गोधूलिसे धूसरित उत्तम नील केशकलाप धारण किये, सुवर्णनिर्मित बाजूबंदसे विभूषित, मुकुटमण्डित तथा कानतक खींचकर वक्र भावसे दृष्टिबाणका प्रहार करनेवाले, गोरज-समलंकृत, कुन्दमालासे अलंकृत, कानोंमें खोंसे हुए पुष्पोंकी आभासे उद्दीप्त, पीताम्बरधारी, वेणुवादनशील तथा भूतलका भूरि-भार हरण करनेवाले प्रभु श्रीकृष्ण आप सबकी रक्षा करें ॥ ३७–४२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीवृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'यशोदाजीकी चिन्ता, नन्दद्वारा आश्वासन तथा दान, श्रीकृष्णकी गोचारण-लीलाका वर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

धेनुकासुरका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! एक दिन श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ मनोहर गौएँ चराते हुए नूतन तालवनके पास चले गये । उस समय समस्त गोपाल उनके साथ थे । वहाँ धेनुकासुर रहा करता था । उसके भयसे गोपगण वनके भीतर नहीं गये । श्रीकृष्ण भी नहीं गये । अकेले बलरामजीने उसमें प्रवेश किया । अपने नीले वस्त्रको कमरमें बाँधकर महाबली बलदेव परिपक्व फल लेनेके लिये उस वनमें विचरने लगे । बलरामजी साक्षात् अनन्तदेवके अवतार हैं । उनका पराक्रम भी अनन्त है । अतः दोनो हाथोंसे ताड़के वृक्षोंको हिलाते और फल-समूहोंको गिराते हुए वहाँ निर्भय गर्जना करने लगे । गिरते हुए फलोंकी आवाज सुनकर वह गर्दभाकार असुर रोषसे आग-बबूला हो गया । वह दोपहरमें सोया करता था, किंतु आज विघ्न पड़ जानेसे वह दुष्ट क्रोधसे भयंकर हो उठा । धेनुकासुर कंसका सखा होनेके साथ ही बड़ा बलवान् था । वह बलदेवजीके सम्मुख युद्ध करनेके लिये आया और उसने अपने पिछले पैरोंसे उनकी छातीमें तुरंत आघात किया । आघात करके वह बारंबार दौड़ लगाता हुआ गधेकी भाँति रेंकने लगा । तब बलरामजीने धेनुकके दोनों पिछले पैर पकड़कर शीघ्र ही उसे ताड़के वृक्षपर दे मारा । यह कार्य उन्होंने एक ही हाथसे खेल-खेलमें कर डाला । इससे वह तालवृक्ष स्वयं तो टूट ही गया, गिरते-गिरते उसने अपने पार्श्ववर्ती दूसरे बहुत से ताड़ोंको भी धराशायी कर दिया । राजेन्द्र ! वह एक अद्भुत-सी बात हुई । दैत्यराज धेनुकने पुनः उठकर रोषपूर्वक बलरामजीको पकड़ लिया और जैसे एक हाथी अपना सामना करनेवाले दूसरे हाथीको दूरतक ठेल ले जाता है, उसी प्रकार उन्हें धक्का देकर एक योजन पीछे हटा दिया । तब बलरामजीने तत्काल धेनुकको पकड़कर घुमाना आरम्भ किया और घुमाकर उसे धरतीकी पीठपर दे मारा । तब उसे मूर्च्छा आ गयी और उसका मस्तक फट गया । तो भी वह क्षणभरमें उठकर खड़ा हो गया । उसके शरीरमें भयानक क्रोध टपक रहा था । इसके बाद उस दैत्यने अपने मस्तकमें चार सींग प्रकट करके, भयानक रूप धारणकर उन तीखे और भयंकर सींगोंसे गोपोंको खदेड़ना आरम्भ किया । गोपोंको आगे-आगे भागते देख वह मदमत्त असुर तुरंत ही उनके पीछे दौड़ा ॥ १—१२½ ॥

उस समय श्रीदामाने उसपर डंडेसे प्रहार किया, सुबलने उसको मुक्केसे मारा, स्तोककृष्णने उस महाबली दैत्यपर पाशसे प्रहार किया, अर्जुनने क्षेपणसे और अंशुने उस गर्दभाकार दैत्यपर लातसे आघात किया । इसके बाद विशालर्षभने आकर शीघ्रतापूर्वक अपने पैरसे और बलसे भी उस दैत्यको दबाया । तेजस्वीने अर्द्धचन्द्र (गर्दनियाँ) देकर उसे पीछे हटाया और देवप्रस्थने उस असुरके कई तमाचे जड़ दिये । वरूथपने उस विशालकाय गधेको गेंदसे मारा । तदनन्तर श्रीकृष्णने भी धेनुकासुरको दोनों हाथोंसे उठाकर घुमाया और तुरंत ही गोवर्धन पर्वतके ऊपर फेंक दिया । श्रीकृष्णके उस प्रहारसे धेनुक दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़ा रहा । फिर उठकर अपने शरीरको कँपाता हुआ मुँह फाड़कर आगे बढ़ा और दोनों सींगोंसे श्रीहरिको उठाकर वह दैत्य दौड़कर आकाशमें चला गया । आकाशमें एक लाख योजन ऊँचे जाकर उनके साथ युद्ध करने लगा । भगवान् श्रीकृष्णने धेनुकासुरको पकड़कर नीचे भूमिकी ओर फेंका । इससे उसकी हड्डियाँ चूर चूर हो गयीं और वह मूर्च्छित हो गया । तथापि पुनः उठकर अत्यन्त भयंकर सिंहनाद करते हुए उसने दोनों सींगोंसे गोवर्धन पर्वतको

उखाड़ लिया और श्रीकृष्णके ऊपर चलाया। श्रीकृष्णने पर्वतको हाथसे पकड़कर पुनः उसीके मस्तकपर दे मारा। तदनन्तर उस बलवान् दैत्यने फिर पर्वतको हाथमें ले लिया और श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। किंतु श्रीकृष्णने गोवर्धनको ले जाकर उसके पूर्व स्थानपर रख दिया। तदनन्तर फिर धावा करके महादैत्य धेनुकने दोनों सींगोंसे पृथ्वीको विदीर्ण कर दिया और पिछले पैरोंसे पुनः बलरामपर प्रहार करके बड़े जोरसे गर्जना की। उसकी उस गर्जनासे समस्त ब्रह्माण्ड गूँज उठा और भूमण्डल काँपने लगा। तब महाबली बलदेवने दोनों हाथोंसे उसको पकड़ लिया और उसे पृथ्वीपर दे मारा। इससे उसका मस्तक फूट गया और होश-हवास जाता रहा। इसके बाद श्रीकृष्णके बड़े भाईने पुनः उस दैत्यपर मुक्केसे प्रहार किया। उस प्रहारसे धेनुकासुरकी तत्काल मृत्यु हो गयी। उसी समय देवताओंने वहाँ नन्दनवनके फूल बरसाये ॥ १३—२६ ॥

देहसे पृथक् होकर धेनुक श्यामसुन्दर-विग्रह धारणकर पुष्पमाला, पीताम्बर तथा वनमालासे समलंकृत देवता हो गया। लाख-लाख पार्षद उसकी सेवामें जुट आये। सहस्रों ध्वज उसके रथकी शोभा बढ़ाने लगे। सहस्रों पहियोंकी घर्घरध्वनिसे युक्त उस रथमें दस हजार घोड़े जुते थे। लाखों चँवरोंकी वहाँ शोभा हो रही थी। वह रथ अरुण-वर्णका था और अत्यधिक रत्नोंसे जटित था। उसका विस्तार एक दिव्य योजनका था। वह मनके समान तीव्रगतिसे चलनेवाला विमान या रथ बड़ा ही मनोहर था। राजन्! उसमें घुँघुरुओंकी जाली लगी थी। घंटे और मञ्जीर बजते थे। दिव्यरूपधारी दैत्य धेनुक बलरामसहित श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके, उक्त दिव्य रथपर आरूढ़ हो, दिङ्मण्डलको देदीप्यमान करता हुआ, प्रकृतिसे परे विद्यमान गोलोकधाममें चला गया। इस प्रकार धेनुकका वध करके बलरामसहित श्रीकृष्ण अपना यशोगान करते हुए ग्वाल-बालोंके साथ व्रजको लौटे। उनके साथ गौओंका समुदाय भी था ॥२७—३२॥

राजाने पूछा—मुने! धेनुकासुर पूर्वजन्ममें कौन था? उसे मुक्ति कैसे प्राप्त हुई? तथा उसे गधेका शरीर क्यों मिला? यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये ॥ ३३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—विरोचनकुमार बलिका एक बलवान् पुत्र था, जिसका नाम था—साहसिक। वह दस हजार स्त्रियोंके साथ गन्धमादन पर्वतपर विहार कर रहा था। वहाँ वनमें नाना प्रकारके वाद्यों तथा रमणियोंके नूपुरोंका महान् शब्द होने लगा, जिससे उस पर्वतकी कन्दरामें रहकर श्रीकृष्णका चिन्तन करनेवाले दुर्वासा मुनिका ध्यान भङ्ग हो गया। वे खड़ाऊँ पहनकर बाहर निकले। उस समय मुनिवर दुर्वासाका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। दाढ़ी-मूँछ बहुत बढ़ गयी थीं। वे लाठीके सहारे चलते थे। क्रोधकी तो वे मूर्तिमान् राशि ही थे और अग्निके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। दुर्वासा उन ऋषियोंमेंसे हैं, जिनके शापके भयसे यह सारा विश्व काँपता रहता है। वे बोले ॥३४—३७॥

दुर्वासाने कहा—दुर्बुद्धि असुर! तू गदहेके समान भोगासक्त है, इसलिये गदहा हो जा। आजसे चार लाख वर्ष बीतनेपर भारतमें दिव्य माथुर-मण्डलके अन्तर्गत पवित्र तालवनमें बलदेवजीके हाथसे तेरी मुक्ति होगी ॥ ३८-३९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! उस शापके कारण ही भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके हाथसे उसका वध करवाया; क्योंकि उन्होंने प्रह्लादजीको यह वर दे रखा है कि तुम्हारे वंशका कोई दैत्य मेरे हाथसे नहीं मारा जायगा ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'धेनुकासुरका उद्धार' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णद्वारा कालियदमन तथा दावानल-पान

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! एक दिन बलरामजीको साथमें लिये बिना ही श्रीहरि स्वयं ग्वाल-बालोंके साथ गाय चराने चले आये। यमुनाके तटपर आकर उन्होंने उस विषाक्त जलको पी लिया, जिसे नागराज कालियने अपने विषसे दूषित कर दिया था। उस जलको पीकर बहुत-सी गायें और गोपगण प्राणहीन होकर पानीके निकट ही गिर पड़े। यह देख सर्वपापहारी साक्षात् भगवान् श्रीहरिका चित्त दयासे द्रवित हो उठा। उन्होंने अपनी पीयूषपूर्ण दृष्टिसे देखकर उन सबको जीवित कर दिया। इसके बाद पीताम्बरको कमरमें कसकर बाँध लिया। फिर वे माधव तटवर्ती कदम्ब वृक्षपर चढ़ गये और उसकी ऊँची डालसे उस विष-दूषित जलमें कूद पड़े। भगवान् श्रीकृष्णके कूदनेसे

वह दूषित जल चक्कर काटकर ऊपरको उछला। यमुनाके उस भागमें कालियनाग रहता था। भँवर उठनेसे उस सर्पका भवन इस तरह चक्कर काटने लगा, जैसे जलमें पानीके भौंरे घूमते हैं। नरेश्वर! उस समय सौ फणोंसे युक्त फणिराज कालिय क्रुद्ध हो उठा और माधवको दाँतोंसे डँसते हुए उसने अपने शरीरसे उन्हें आच्छादित कर लिया। तब श्रीकृष्ण अपने शरीरको बड़ा करके उसके बन्धनसे छूट गये और उस सर्पराजकी पूँछ पकड़कर उसे इधर-उधर घुमाने लगे। घुमाते-घुमाते उन्होंने उसे पानीमें गिराकर पुनः दोनों हाथोंसे उठा लिया और तुरंत उसे सौ धनुष दूर फेंक दिया। उस भयानक नागराजने पुनः उठकर जीभ लपलपाते हुए रोषपूर्वक माधव श्रीहरिका बायाँ हाथ पकड़ लिया। तब श्रीहरिने उस महादुष्टको दाहिने हाथसे पकड़कर उस जलमें उसी प्रकार दबा दिया, जैसे गरुड किसी नागको रगड़ दे। फिर अपने सौ मुखोंको बहुत अधिक फैलाकर वह सर्प उनके पास आ गया। तब उसकी पूँछ पकड़कर श्रीकृष्ण उसे सौ धनुष दूर खींच ले गये। श्रीकृष्णके हाथसे सहसा निकलकर उसने पुनः उन्हें डँस लिया। यह देख अपनेमें त्रिभुवनका बल धारण करनेवाले श्रीहरिने उस सर्पको एक मुक्का मारा। श्रीकृष्णके मुक्केकी चोट खाकर वह सर्प मूर्च्छित हो अपनी सुध-बुध खो बैठा। तदनन्तर अपने सौ मुखोंको आनत करके वह श्रीकृष्णके सामने स्थित हुआ। उसके सौ फन सौ मणियोंके प्रकाशसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। श्रीकृष्ण उन फनोंपर चढ़ गये और मनोहर नट-वेष धारण करके नटकी भाँति नृत्य करने लगे। साथ ही वे सातों स्वरोंसे किसी रागका अलाप करते हुए तालके साथ संगीत प्रस्तुत करने लगे। उस समय नटराजकी भाँति सुन्दर ताण्डव करनेवाले श्रीकृष्णके ऊपर देवतालोग फूल बरसाने लगे और प्रसन्नतापूर्वक वीणा, ढोल, नगारे तथा बाँसुरी बजाने लगे। तालके साथ पदविन्यास करनेसे श्रीकृष्णने लंबी साँस खींचते हुए महाकाय कालियके बहुत-से उज्ज्वल फनोंको भग्न कर दिया। उसी समय भयसे विह्वल हुई नागपत्नियाँ आ पहुँचीं और भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार करके गद्‌गद वाणीद्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगीं ॥ १—१७ ॥

नागपत्नियाँ बोलीं—भगवन्! आप परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं। आप गोलोकनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको हमारा बारंबार नमस्कार है। व्रजके अधीश्वर आप श्रीराधावल्लभको नमस्कार है। नन्दके लाला एवं यशोदानन्दनको नमस्कार है। परमदेव! आप इस नागकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इसे शरण देनेवाला नहीं है। आप स्वयं साक्षात् परात्पर श्रीहरि हैं और लीलासे ही स्वच्छन्दतापूर्वक नाना प्रकारके श्रीविग्रहोंका विस्तार करते हैं* ॥ १८—२० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—अबतक कालियनागका गर्व चूर्ण हो गया था। नागपत्नियोंद्वारा किये गये इस स्तवनके पश्चात् वह श्रीकृष्णसे बोला—'भगवन्! पूर्णकाम परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये!' 'पाहि-पाहि' कहता हुआ कालियनाग भगवान् श्रीहरिके सम्मुख आकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। तब उन जनार्दनदेवने उससे कहा ॥ २१-२२ ॥

श्रीभगवान् बोले—तुम अपनी पत्नियों और सुहृदोंके साथ रमणकद्वीपमें चले जाओ। तुम्हारे मस्तकपर मेरे चरणोंके चिह्न बन गये हैं, इसलिये अब गरुड तुम्हें अपना आहार नहीं बनायेगा ॥ २३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! तब उस सर्पने श्रीकृष्णकी पूजा और परिक्रमा करके, उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर, स्त्री-पुत्रोंके साथ रमणकद्वीपको प्रस्थान किया। इधर 'नन्दनन्दनको कालियनागने अपना ग्रास बना लिया है'—यह समाचार सुनकर नन्द आदि समस्त गोपगण वहाँ आ गये थे। श्रीकृष्णको जलसे निकलते देख उन सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने बेटेको छातीसे लगाकर नन्दजी परमानन्दमें निमग्न हो गये। यशोदाने अपने खोये हुए पुत्रको पाकर उसके कल्याणकी कामनासे ब्राह्मणोंको धनका दान किया। उस समय उनके स्तनोंसे स्नेहाधिक्यके कारण दूध

* नागपत्न्य ऊचुः—

नमः श्रीकृष्णचन्द्राय गोलोकपतये नमः।
असंख्याण्डाधिपतये परिपूर्णतमाय ते ॥
श्रीराधापतये तुभ्यं व्रजाधीशाय ते नमः।
नमः श्रीनन्दपुत्राय यशोदानन्दनाय ते ॥
पाहि पाहि परदेव पन्नगं
त्वत्परं न शरणं जगत्त्रये।
त्वं परात्परतरो हरिः स्वयं
लीलया किल तनोषि विग्रहम् ॥
(गर्ग-संहिता, वृन्दावन० १२। १८—२०)

कर रहा था। राजन्! उस दिन रातमें अधिक श्रमके कारण गोपाङ्गनाओं और ग्वाल-बालोंके साथ समस्त गोप यमुनाके निकट उसी स्थानपर सो गये। निशीथकालमें बाँसोंकी रगड़से प्रलयाग्निके समान दावानल प्रकट हो गया, जो सब ओरसे मानो गोपोंको दग्ध करनेके लिये उधर फैलता आ रहा था। उस समय मित्रकोटिके गोप बलरामसहित श्रीकृष्णकी शरणमें गये और भयसे कातर हो दोनों हाथ जोड़कर बोले ॥ २४—३० ॥

गोपोंने कहा—शरणागतवत्सल महाबाहु कृष्ण! कृष्ण! प्रभो! वनके भीतर दावाग्निके कष्टमें पड़े हुए स्वजनोंको बचाओ! बचाओ!! ॥ ३१ ॥

नारदजी कहते हैं—तब योगेश्वरेश्वर देव माधव उनसे बोले—'डरो मत। अपनी-अपनी आँखें मूँद लो।' यों कहकर वे सारा दावानल स्वयं ही पी गये। फिर—प्रातःकाल विस्मित हुए गोपगणों तथा गौओंके साथ नन्दनन्दन शोभाशाली व्रजमण्डलमें आये ॥ ३२-३३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'कालियदमन तथा दावानल-पान' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

मुनिवर वेदशिरा और अश्वशिराका परस्परके शापसे क्रमशः कालियनाग और काकभुशुण्ड होना तथा शेषनागका भूमण्डलको धारण करना

विदेहराज बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! संसारमें जिनकी धूलि अनेक जन्मोंमें योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, भगवान्‌के साक्षात् वे ही चरणारविन्द कालियके मस्तकोंपर सुशोभित हुए। नागोंमें श्रेष्ठ यह कालिय पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्य-कर्म कर चुका था, जिससे इसको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ—यह मैं जानना चाहता हूँ। देवर्षिशिरोमणे! यह बात मुझे बताइये ॥ १-२ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! पूर्वकालकी बात है। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वेदशिरा नामक मुनि, जिनकी उत्पत्ति भृगुवंशमें हुई थी, विन्ध्य पर्वतपर तपस्या करते थे। उन्हींके आश्रमपर तपस्या करनेके लिये अश्वशिरा मुनि आये। उन्हें देखकर वेदशिरा मुनिके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे रोषपूर्वक बोले ॥ ३-४ ॥

वेदशिराने कहा—ब्रह्मन्! मेरे आश्रममें तुम तपस्या न करो; क्योंकि वह सुखद नहीं होगी। तपोधन! क्या और कहीं तुम्हारे तपके योग्य भूमि नहीं है? ॥ ५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! वेदशिराकी यह बात सुनकर अश्वशिरा मुनिके भी नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे मुनिपुंगवसे बोले ॥ ६ ॥

अश्वशिराने कहा—मुनिश्रेष्ठ! यह भूमि तो महाविष्णुकी है; न तुम्हारी है न मेरी। यहाँ कितने मुनियोंने उत्तम तपका अनुष्ठान नहीं किया है? तुम व्यर्थ ही सर्पकी तरह फुफकारते हुए क्रोध प्रकट करते हो, इसलिये सदाके लिये सर्प हो जाओ और तुम्हें गरुड़से भय प्राप्त हो ॥ ७-८ ॥

वेदशिरा बोले—दुर्मते! तुम्हारा भाव बड़ा ही दूषित है। तुम छोटे-से द्रोह या अपराधपर भी महान् दण्ड देनेके लिये उद्यत रहते हो और अपना काम बनानेके लिये कौएकी तरह इस पृथ्वीपर डोलते-फिरते हो; अतः तुम भी कौआ हो जाओ ॥ ९ ॥

नारदजी कहते हैं—इसी समय भगवान् विष्णु परस्पर शाप देते हुए दोनों ऋषियोंके बीच प्रकट हो गये। वे दोनों अपने-अपने शापसे बहुत दुखी थे। भगवान्‌ने अपनी वाणीद्वारा उन दोनोंको सान्त्वना दी ॥ १० ॥

श्रीभगवान् बोले—मुनियो! जैसे शरीरमें दोनों भुजाएँ समान हैं, उसी प्रकार तुम दोनों समानरूपसे मेरे भक्त हो। मुनीश्वरो! मैं अपनी बात तो झूठी कर सकता हूँ, परंतु भक्तकी बातको मिथ्या करना नहीं चाहता—यह मेरी प्रतिज्ञा है। वेदशिरा! सर्पकी अवस्थामें तुम्हारे मस्तकपर मेरे दोनों चरण अङ्कित होंगे। उस समयसे तुम्हें गरुड़से कदापि भय नहीं होगा। अश्वशिरा! अब तुम मेरी बात सुनो। सोच न करो, सोच न करो। काकरूपमें रहनेपर भी तुम्हें निश्चय ही उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। योगसिद्धियोंसे युक्त उच्चकोटिका त्रिकालदर्शी ज्ञान सुलभ होगा ॥ ११—१४ ॥

नारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! यों कहकर भगवान् विष्णु जब चले गये, तब अश्वशिरा मुनि साक्षात् योगीन्द्र काकभुशुण्ड हो गये और नीलपर्वतपर रहने लगे। वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थको प्रकाशित करनेवाले महातेजस्वी रामभक्त हो गये। उन्होंने ही महात्मा गरुडको रामायणकी कथा सुनायी थी ॥ १५-१६ ॥

मिथिलानरेश ! चाक्षुष मन्वन्तरके प्रारम्भमें प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षने महर्षि कश्यपको अपनी परम मनोहर ग्यारह कन्याएँ पत्नीरूपमें प्रदान कीं। उन कन्याओंमें जो श्रेष्ठ कद्रू थी, वही इस समय वसुदेव-प्रिया रोहिणी होकर प्रकट हुई हैं, जिनके पुत्र बलदेवजी हैं। उस कद्रूने करोड़ों महासर्पोंको जन्म दिया। वे सभी सर्प अत्यन्त उद्भट, विषरूपी बलसे सम्पन्न, उग्र तथा पाँच सौ फनोंसे युक्त थे। वे महान् मणिरत्न धारण किये रहते थे। उनमेंसे कोई-कोई सौ मुखोंवाले एवं दुस्सह विषधर थे। उन्हींमें वेदशिरा 'कालिय' नामसे प्रसिद्ध महानाग हुए। उन सबमें प्रथम राजा फणिराज शेष हुए, जो अनन्त एवं परात्पर परमेश्वर हैं। वे ही आजकल 'बलदेव'के नामसे प्रसिद्ध हैं। वे ही राम, अनन्त और अच्युताग्रज आदि नाम धारण करते हैं ॥ १७—२१ ॥

एक दिनकी बात है। प्रकृतिसे परे साक्षात् भगवान् श्रीहरिने प्रसन्नचित्त होकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें शेषसे कहा ॥ २२ ॥

श्रीभगवान् बोले—इस भूमण्डलको अपने ऊपर धारण करनेकी शक्ति दूसरे किसीमें नहीं है, इसलिये इस भूगोलको तुम्हीं अपने मस्तकपर धारण करो। तुम्हारा पराक्रम अनन्त है, इसीलिये तुम्हें 'अनन्त' कहा गया है। जन-कल्याणके हेतु तुम्हें यह कार्य अवश्य करना चाहिये ॥ २३-२४ ॥

शेषने कहा—प्रभो ! पृथ्वीका भार उठानेके लिये आप कोई अवधि निश्चित कर दीजिये। जितने दिनकी अवधि होगी, उतने समयतक मैं आपकी आज्ञासे भूमिका भार अपने सिरपर धारण करूँगा ॥ २५ ॥

श्रीभगवान् बोले—नागराज ! तुम अपने सहस्र मुखोंसे प्रतिदिन पृथक्-पृथक् मेरे गुणोंसे स्फुरित होनेवाले नूतन नामोंका सब ओर उच्चारण किया करो। जब मेरे दिव्य नाम समाप्त हो जायँ, तब तुम अपने सिरसे पृथ्वीका भार उतारकर सुखी हो जाना ॥ २६-२७ ॥

शेषने कहा—प्रभो ! पृथ्वीका आधार तो मैं हो जाऊँगा, किंतु मेरा आधार कौन होगा ? बिना किसी आधारके मैं जलके ऊपर कैसे स्थित रहूँगा ? ॥ २८ ॥

श्रीभगवान् बोले—मेरे मित्र ! इसकी चिन्ता मत करो। मैं 'कच्छप' बनकर महान् भारसे युक्त तुम्हारे विशाल शरीरको धारण करूँगा ॥ २९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! तब शेषने उठकर भगवान् श्रीगरुडध्वजको नमस्कार किया। फिर वे पातालसे लाख योजन नीचे चले गये। वहाँ अपने हाथसे इस अत्यन्त गुरुतर भूमण्डलको पकड़कर प्रचण्डपराक्रमी शेषने अपने एक ही फनपर धारण कर लिया। परात्पर अनन्तदेव संकर्षणके पाताल चले जानेपर ब्रह्माजीकी प्रेरणासे अन्यान्य नागराज भी उनके पीछे-पीछे चले गये। कोई अतलमें, कोई वितलमें, कोई सुतल और महातलमें तथा कितने ही तलातल एवं रसातलमें जाकर रहने लगे। ब्रह्माजीने उन सर्पोंके लिये पृथ्वीपर 'रमणकद्वीप' प्रदान किया था। कालिय आदि नाग उसीमें सुखपूर्वक निवास करने लगे। राजन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे कालियका कथानक कह सुनाया, जो सारभूत तथा भोग और मोक्ष देनेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३०—३५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'शेषके उपाख्यानका वर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

कालियका गरुडके भयसे बचनेके लिये यमुना-जलमें निवासका रहस्य

राजा बहुलाश्वने पूछा—ब्रह्मन् ! रमणकद्वीपमें रहनेवाले अन्य सर्पोंको छोड़कर केवल कालियनागको ही गरुडसे भय क्यों हुआ ? यह सारी बात आप मुझे बताइये ॥ १ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! रमणकद्वीपमें नागोंका विनाश करनेवाले गरुड प्रतिदिन जाकर बहुत-से नागोंका संहार करते थे। अतः एक दिन भयसे व्याकुल हुए वहाँके सर्पोंने उस द्वीपमें पहुँचे हुए क्षुब्ध गरुडसे इस प्रकार कहा ॥ २ ॥

नाग बोले—हे गरुत्मन् ! तुम्हें नमस्कार है। तुम साक्षात् भगवान् विष्णुके वाहन हो। जब इस प्रकार हम सर्पोंको खाते रहोगे तो हमारा जीवन कैसे सुरक्षित रहेगा। इसलिये प्रत्येक मासमें एक बार पृथक्-पृथक् एक-एक घरसे एक सर्पकी बलि ले लिया करो। उसके साथ वनस्पति तथा अमृतके समान मधुर अन्नकी सेवा भी प्रस्तुत की जायगी। यह सब विधानके अनुसार तुम शीघ्र स्वीकार करो ॥ ३-४ ॥

गरुडजी बोले—आपलोग एक-एक घरसे एक-एक नागकी बलि प्रतिदिन दिया करें; अन्यथा सर्पके बिना दूसरी वस्तुओंकी बलिसे मैं कैसे पेट भर सकूँगा ? वह तो मेरे लिये पानके बीड़ेके तुल्य होगी ॥ ५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उनके यों कहनेपर सब सर्पोंने आत्मरक्षाके लिये एक-एक करके उन महात्मा गरुडके लिये नित्य दिव्य बलि देना आरम्भ किया ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! जब कालियके घरसे बलि मिलनेका अवसर आया, तब उसने गरुडको दी जानेवाली बलिकी सारी वस्तुएँ बलपूर्वक स्वयं ही भक्षण कर लीं। उस समय प्रचण्ड पराक्रमी गरुड बड़े रोषमें भरकर आये। आते-ही उन्होंने कालियनागके ऊपर अपने पंजेसे प्रहार किया। गरुडके उस पाद-प्रहारसे कालिय मूर्च्छित हो गया। फिर उठकर लंबी साँस लेते और जिह्वाओंसे मुँह चाटते हुए नागोंमें श्रेष्ठ बलवान् कालियने अपने सौ फण फैलाकर विषैले दाँतोंसे गरुडको वेगपूर्वक डँस लिया। तब दिव्य वाहन गरुडने उसे चोंचमें पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा और पाँखोंसे बारंबार पीटना आरम्भ किया। गरुडकी चोंचसे निकलकर सर्पने उनके दोनों पंजोंको आवेष्टित कर लिया और बारंबार फुंकार करते हुए उनकी पाँखोंको खींचना आरम्भ किया। उस समय उनकी पाँखसे दो पक्षी उत्पन्न हुए—नीलकण्ठ और मयूर। मिथिलेश्वर ! आश्विन शुक्ला दशमीको उन पक्षियोंका दर्शन पवित्र एवं सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंका देनेवाला माना गया है। रोषसे भरे हुए गरुडने पुनः कालियको चोंचसे पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया और सहसा वे उसके शरीरको घसीटने लगे। तब भयसे विह्वल हुआ कालिय गरुडकी चोंचसे छूटकर भागा। प्रचण्ड पराक्रमी पक्षिराज गरुड भी सहसा उसका पीछा करने लगे। सात द्वीपों, सात खण्डों और सात समुद्रोंतक वह जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ उसने गरुडको पीछा करते देखा। वह नाग भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और महर्लोकमें क्रमशः जा पहुँचा और वहाँसे भागता हुआ जनलोकमें पहुँच गया। जहाँ जाता, वहीं गरुड भी पहुँच जाते। इसलिये वह पुनः नीचे-नीचेके लोकोंमें क्रमशः गया; किंतु श्रीकृष्ण (भगवान् विष्णु) के भयसे किसीने उसकी रक्षा नहीं की। जब उसे कहीं भी चैन नहीं मिली, तब भयसे व्याकुल कालिय देवाधिदेव शेषके चरणोंके निकट गया और भगवान् शेषको प्रणाम करके परिक्रमापूर्वक हाथ जोड़ विशाल पृष्ठवाला कालिय दीन, भयातुर और कम्पित होकर बोला ॥ ७—२० ॥

कालियने कहा—भूमिभर्ता भुवनेश्वर ! भूमन् ! भूमि-भारहारी प्रभो ! आपकी लीलाएँ अपार हैं, आप सर्वसमर्थ पूर्ण परात्पर पुराणपुरुष हैं; मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ २१ ॥

नारदजी कहते हैं—कालियको दीन और भयातुर देख फणीश्वरदेव अनार्दनने मधुर वाणीसे उसको प्रसन्न करते हुए कहा ॥ २२ ॥

शेष बोले—महामते कालिय ! मेरी उत्तम बात सुनो। इसमें संदेह नहीं कि संसारमें कहीं भी तुम्हारी रक्षा नहीं होगी। (रक्षाका एक ही उपाय है; उसे बताता हूँ, सुनो—) पूर्वकालमें सौभरि नामसे प्रसिद्ध एक सिद्ध मुनि थे। उन्होंने

वृन्दावनमें यमुनाके जलमें रहकर दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। उस जलमें मीनराजका विहार देखकर उनके मनमें भी घर बसानेकी इच्छा हुई। तब उन महाबुद्धि महर्षिने राजा मांधाताकी सौ पुत्रियोंके साथ विवाह किया। श्रीहरिने उन्हें परम ऐश्वर्यशालिनी वैष्णवी सम्पत्ति प्रदान की, जिसे देखकर राजा मांधाता आश्चर्यचकित हो गये और उनका धनविषयक सारा अभिमान जाता रहा। यमुनाके जलमें जब सौभरि मुनिकी दीर्घकालिक तपस्या चल रही थी, उन्हीं दिनों उनके देखते-देखते गरुडने मीनराजको मार डाला। मीन-परिवारको अत्यन्त दुखी देखकर दूसरोंका दुःख दूर करनेवाले दीनवत्सल मुनिश्रेष्ठ सौभरिने कुपित हो गरुडको शाप दे दिया ॥ २३—२८ ॥

सौभरि बोले—पक्षिराज ! आजके दिनसे लेकर भविष्यमें यदि तुम इस कुण्डके भीतर बलपूर्वक मछलियोंको खाओगे तो मेरे शापसे उसी क्षण तुरंत तुम्हारे प्राणोंका अन्त हो जायगा ॥ २९ ॥

शेषजी कहते हैं—उस दिनसे मुनिके शापसे भयभीत हुए गरुड वहाँ कभी नहीं आते। इसलिये कालिय ! तुम मेरे कहनेसे शीघ्र ही श्रीहरिके विपिन—वृन्दावनमें चले जाओ। वहाँ यमुनामें निर्भय होकर अपना निवास नियत कर लो। वहाँ कभी तुम्हें गरुडसे भय नहीं होगा ॥ ३०-३१ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! शेषनागके यों कहनेपर भयभीत कालिय अपने स्त्री-बालकोंके साथ कालिन्दीमें निवास करने लगा। फिर श्रीकृष्णने ही उसे यमुनाजलसे निकालकर बाहर भेजा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'कालियके उपाख्यानका वर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

श्रीराधाका गवाक्षमार्गसे श्रीकृष्णके रूपका दर्शन करके प्रेम-विह्वल होना; ललिताका श्रीकृष्णसे राधाकी दशाका वर्णन करना और उनकी आज्ञाके अनुसार लौटकर श्रीराधाको श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थ सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देना

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यह मैंने तुमसे कालिय-मर्दनरूप पवित्र श्रीकृष्ण-चरित्र कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १ ॥

बहुलाश्व बोले—देवर्षे ! जैसे देवता अमृत पीकर तथा भ्रमर कमल-कर्णिकाका रस लेकर तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी कथा सुनकर कोई भी भक्त तृप्त नहीं होता (वह उसे अधिकाधिक सुनना चाहता है)। जब शिशुरूपधारी परमात्मा श्रीकृष्ण रास करनेके लिये भाण्डीर-वनमें गये और उनका यह लघुरूप देखकर श्रीराधा मन-ही-मन खेद करने लगीं, तब देववाणीने कहा—'कल्याणि ! सोच न करो। मनोहर वृन्दावनमें महात्मा श्रीकृष्णके द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' देववाणीद्वारा इस प्रकार कहा गया वह मनोरथका महासागर किस तरह पूर्ण हुआ और उस मनोहर वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्ण किस रूपमें प्रकट हुए ? उस वृन्दा-विपिनमें साक्षात् परिपूर्णतम भगवान्‌ने श्रीराधाके साथ मनोहर रासक्रीड़ा किस प्रकार की ? ॥ २—६ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं उस मङ्गलमय भगवच्चरित्रका, उस मनोहर लीलाख्यानका, जो देवताओंको भी पूर्णतया ज्ञात नहीं है, वर्णन करता हूँ। एक दिनकी बात है, श्रीराधाकी दो प्रधान सखियाँ, शुभस्वरूपा ललिता और विशाखा, वृषभानुके घर पहुँचकर एकान्तमें श्रीराधासे मिलीं ॥ ७-८ ॥

सखियाँ बोलीं—राधे ! तुम जिनका चिन्तन करती हो और स्वतः जिनके गुण गाती रहती हो, वे भी प्रतिदिन ग्वाल-बालोंके साथ वृषभानुपुरमें आते हैं। राधे ! तुम्हें रातके पिछले पहरमें, जब वे गो-चारणके लिये निकलते हैं, उनका दर्शन करना चाहिये। वे बड़े सुन्दर हैं ॥ ९-१० ॥

राधा बोलीं—पहले उनका मनोहर चित्र बनाकर तुम शीघ्र मुझे दिखाओ, उसके बाद मैं उनका दर्शन करूँगी—इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥

नारदजी कहते हैं—तब दोनों सखियोंने नन्द-नन्दनका सुन्दर चित्र बनाया, जिसमें नूतन यौवनका माधुर्य

भरा था। वह चित्र उन्होंने तुरंत श्रीराधाके हाथमें दिया। वह चित्र देखकर श्रीराधा हर्षसे खिल उठीं और उनके हृदयमें श्रीकृष्णदर्शनकी लालसा जाग उठी। हाथमें रखे हुए चित्रको निहारती हुई वे आनन्दमग्न होकर सो गयीं। भवनमें सोती हुई श्रीराधाने स्वप्नमें देखा—'यमुनाके किनारे भाण्डीरवनके एक देशमें नीलमेघकी-सी कान्तिवाले पीतपटधारी श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण मेरे निकट ही नृत्य कर रहे हैं।' विदेहराज! उसी समय श्रीराधाकी नींद टूट गयी और वे शय्यासे उठकर, परमात्मा श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल हो, उन्हींके कमनीय रूपका चिन्तन करती हुई त्रिलोकीको तृणवत् मानने लगीं। इतनेमें ही व्रजेश श्रीनन्द-नन्दन अपने भवनसे चलकर वृषभानुनगरकी साँकरी गलीमें आ गये। सखीने तत्काल खिड़कीके पास आकर श्रीराधाको उनका दर्शन कराया। उन्हें देखते ही सुन्दरी श्रीराधा मूर्च्छित हो गयीं। लीलासे मानव-शरीर धारण करनेवाले माधव श्रीकृष्ण भी सुन्दर रूप और वैदग्ध्यसे युक्त गुणनिधि श्रीवृषभानुनन्दिनीका दर्शन करके मन-ही-मन उनके साथ विहारकी अत्यधिक कामना करते हुए अपने भवनको लौटे। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको इस प्रकार श्रीकृष्ण-वियोगसे विह्वल तथा अतिशय कामज्वरसे संतप्तचित्त देखकर सखियोंमें श्रेष्ठ ललिताने उनसे इस प्रकार कहा॥ १२—१८॥

ललिताने पूछा—राधे! तुम क्यों इतनी विह्वल, मूर्च्छित (बेसुध) और अत्यन्त व्यथित हो? सुन्दरी! यदि श्रीहरिको प्राप्त करना चाहती हो तो उनके प्रति अपना स्नेह दृढ़ करो। वे इस समय त्रिलोकीके भी सम्पूर्ण सुखपर अधिकार किये बैठे हैं। शुभे! वे ही दुःखाग्निकी ज्वालाको बुझा सकते हैं। उनकी उपेक्षा पैरोंसे ठुकरायी हुई कुम्हारके आँवेकी अग्निके समान दाहक होगी॥ १९-२०॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! ललिताकी यह ललित बात सुनकर व्रजेश्वरी श्रीराधाने आँखें खोलीं और अपनी उस प्रिय सखीसे वे गद्‌गद वाणीमें यों बोलीं॥ २१॥

राधाने कहा—सखी! यदि मुझे व्रजभूषण श्यामसुन्दरके चरणारविन्द नहीं प्राप्त हुए तो मैं कदापि अपने शरीरको नहीं धारण करूँगी—यह मेरा निश्चय है॥ २२॥

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! श्रीराधाकी यह बात सुनकर ललिता भयसे विह्वल हो, यमुनाके मनोहर तटपर श्रीकृष्णके पास गयी। वे माधवीलताके जालसे आच्छन्न और भ्रमरोंकी गुंजारोंसे व्याप्त एकान्त प्रदेशमें कदम्बकी जड़के पास अकेले बैठे थे। वहाँ ललिताने श्रीहरिसे कहा॥ २३-२४॥

ललिता बोली—श्यामसुन्दर! जिस दिनसे श्रीराधाने तुम्हारे अद्‌भुत मोहनरूपको देखा है, उसी दिनसे वह सम्भ्रम-रूप सात्त्विकभावके अधीन हो गयी है। काठकी पुतलीकी भाँति किसीसे कुछ बोलती नहीं। अलंकार उसे अग्निकी ज्वाला-की भाँति दाहक प्रतीत होते हैं। सुन्दर वस्त्र भाड़की तपी हुई बालूके समान जान पड़ते हैं। उसके लिये हर प्रकारकी सुगन्ध कड़वी तथा परिचारिकाओंसे भरा हुआ भवन भी निर्जन वन हो गया है। हे प्यारे! तुम यह जान लो कि तुम्हारे विरहमें मेरी सखीको फूल बाण-सा तथा चन्द्र-बिम्ब विषकंद-सा प्रतीत होता है। अतः श्रीराधाको तुम शीघ्र दर्शन दो। तुम्हारा दर्शन ही उसके दुःखोंको दूर कर सकता है। तुम सबके साक्षी हो। भूतलपर कौन-सी ऐसी बात है, जो तुम्हें विदित न हो। तुम्हीं इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हो। यद्यपि परमेश्वर होनेके कारण तुम सब लोगोंके प्रति समानभाव रखते हो, तथापि अपने भक्तोंका भजन करते हो (उनके प्रति अधिक प्रेम-भाव रखते हो)॥ २५—२८॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! ललिताकी यह ललित बात सुनकर व्रजके साक्षात् देवता भगवान् श्रीकृष्ण मेघगर्जनके समान गम्भीर वाणीमें बोले॥ २९॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—भामिनि! मनका सारा भाव स्वतः एकमात्र मुझ परात्पर पुरुषोत्तमकी ओर नहीं प्रवाहित होता; अतः सबको अपनी ओरसे मेरे प्रति प्रेम ही करना चाहिये। इस भूतलपर प्रेमके समान दूसरा कोई साधन नहीं है (मैं प्रेमसे ही सुलभ होता हूँ)। भाण्डीरवनमें श्रीराधाके हृदयमें जैसे मनोरथका उदय हुआ था, वह उसी रूपमें पूर्ण होगा। सत्पुरुष अहैतुक प्रेमका आश्रय लेते हैं। संत, महात्मा उस निर्हेतुक प्रेमको निश्चय ही निर्गुण (तीनों गुणोंसे अतीत) मानते हैं। जो मुझ केशवमें और श्रीराधिकामें थोड़ा-सा भी भेद नहीं देखते, बल्कि दूध और उसकी शुक्लताके समान हम दोनोंको सर्वथा अभिन्न मानते हैं, उन्हींके अन्तःकरणमें अहैतुकी भक्तिके लक्षण प्रकट होते हैं तथा वे ही मेरे ब्रह्मपद (गोलोकधाम) में प्रवेश पाते हैं। रम्भोरु! इस भूतलपर जो कुबुद्धि मानव

मुझ केशव हरिमें तथा श्रीराधिकामें भेदभाव रखते हैं, वे जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक निश्चय ही कालसूत्र नामक नरकमें पड़कर दुःख भोगते हैं* ॥३०-३३॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णकी यह सारी बात सुनकर ललिता सखी उन्हें प्रणाम करके श्रीराधाके पास गयी और एकान्तमें बोली । बोलते समय उसके मुखपर मधुर हासकी छटा छा रही थी ॥ ३४ ॥

ललिताने कहा—सखी ! जैसे तुम श्रीकृष्णको चाहती हो, उसी तरह वे मधुसूदन श्रीकृष्ण भी तुम्हारी अभिलाषा रखते हैं । तुम दोनोंका तेज भेद-भावसे रहित, एक है । लोग अज्ञानवश ही उसे दो मानते हैं । तथापि सती-साध्वी देवि ! तुम श्रीकृष्णके लिये निष्काम कर्म करो, जिससे पराभक्तिके द्वारा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो† ॥ ३५-३६ ॥

नारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! ललिता सखीकी यह बात सुनकर रासेश्वरी श्रीराधाने सम्पूर्ण धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ चन्द्रानना सखीसे कहा ॥ ३७ ॥

श्रीराधा बोलीं—सखी ! तुम श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये किसी देवताकी ऐसी पूजा बताओ, जो परम सौभाग्य-वर्द्धक, महान् पुण्यजनक तथा मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाली हो । भद्रे ! महामते ! तुमने गर्गाचार्यजीके मुखसे शास्त्र-चर्चा सुनी है । इसलिये तुम मुझे कोई व्रत या पूजन बताओ ॥ ३८-३९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीराधाकृष्णके प्रेमोद्योगका वर्णन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

तुलसीका माहात्म्य, श्रीराधाद्वारा तुलसीसेवन-व्रतका अनुष्ठान तथा दिव्य तुलसीदेवीका प्रत्यक्ष प्रकट हो श्रीराधाको वरदान देना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीराधाकी बात सुनकर समस्त सखियोंमें श्रेष्ठ चन्द्राननाने अपने हृदयमें एक क्षणतक कुछ विचार किया फिर इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १ ॥

चन्द्रानना बोली—राधे ! परमसौभाग्यदायक, महान् पुण्यजनक तथा श्रीकृष्णकी भी प्राप्तिके लिये वरदायक व्रत है—तुलसीकी सेवा । मेरी रायमें तुलसी-सेवनका ही नियम तुम्हें लेना चाहिये; क्योंकि तुलसीका यदि स्पर्श अथवा ध्यान, नाम-कीर्तन, स्तवन, आरोपण, सेचन और तुलसीदलसे ही नित्य पूजन किया जाय तो वह महान् पुण्यप्रद होता है । शुभे ! जो प्रतिदिन तुलसीकी नौ प्रकारसे भक्ति करते हैं, वे कोटि सहस्र युगोंतक अपने उस सुकृतका उत्तम फल भोगते हैं । मनुष्योंकी लगायी हुई तुलसी जबतक शाखा, प्रशाखा, बीज, पुष्प और सुन्दर दलोंके साथ पृथ्वीपर बढ़ती रहती है, तबतक उनके वंशमें जो-जो जन्म लेते हैं, वे सब उन आरोपण करनेवाले मनुष्योंके साथ दो हजार कल्पोंतक

---

* श्रीभगवानुवाच—

सर्वं हि भावं मनसः परात्परं न लोकतो भामिनि जायते नरः । प्रेमैव कर्तव्यमतो मयि त्वनः प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किंचित् ॥
यथा हि भाण्डीरवने मनोरथो बभूव तस्या हि तथा भविष्यति । अहैतुकं प्रेम च सद्भिराश्रितं तच्चापि सन्तः किल निर्गुणं विदुः ॥
ये राधिकायां मयि केशवे मनाग्भेदं न पश्यन्ति हि दुग्धशौक्ल्यवत् । त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति तदद्भुहैतुकस्फूर्जितभक्तिलक्षणाः ॥
ये राधिकायां मयि केशवे हरौ कुर्वन्ति भेदं कुधियो जना भुवि । ते कालसूत्रे प्रपतन्ति दुःखिता रम्भोरु यावत्किल चन्द्रभास्करौ ॥
(गर्ग०, वृन्दावन० १५ । ३०—३३)

† ललितोवाच—

त्वमिच्छसि यथा कृष्णं तथा त्वां मधुसूदनः । युवयोर्भेदरहितं तेजस्त्वेकं द्विधा जनैः ॥
तथापि देवि कृष्णाय कर्म निष्कारणं कुरु । येन ते वाञ्छितं भूयाद् भक्त्या परमया सति ॥
(गर्ग०, वृन्दावन० १५ । ३५—३६)

श्रीहरिके धाममें निवास करते हैं। राधिके! सम्पूर्ण पत्रों और पुष्पोंको भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ानेसे जो फल मिलता है, वह सदा एकमात्र तुलसीदलके अर्पणसे प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य तुलसीदलोंसे श्रीहरिकी पूजा करता है, वह जलमें पद्मपत्रकी भाँति पापसे कभी लिप्त नहीं होता। सौ भार सुवर्ण तथा चार सौ भार रजतके दानका जो फल है, वही तुलसीवनके पालनसे मनुष्यको प्राप्त हो जाता है। राधे! जिसके घरमें तुलसीका वन या बगीचा होता है, उसका वह घर तीर्थरूप है। वहाँ यमराजके दूत कभी नहीं जाते। जो श्रेष्ठ मानव सर्वपापहारी, पुण्यजनक तथा मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले तुलसीवनका रोपण करते हैं, वे कभी सूर्यपुत्र यमको नहीं देखते। रोपण, पालन, सेचन, दर्शन और स्पर्श करनेसे तुलसी मनुष्योंके मन, वाणी और शरीरद्वारा संचित समस्त पापोंको दग्ध कर देती है। पुष्कर आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदियाँ तथा वासुदेव आदि देवता तुलसीदलमें सदा निवास करते हैं। जो तुलसीकी मञ्जरी सिरपर रखकर प्राण-त्याग करता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त क्यों न हो, यमराज उसकी ओर देख भी नहीं सकते। जो मनुष्य तुलसी-काष्ठका घिसा हुआ चन्दन लगाता है, उसके शरीरको यहाँ क्रियमाण पाप भी नहीं छूता। शुभे! जहाँ-जहाँ तुलसीवनकी छाया हो, वहाँ-वहाँ पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ दिया हुआ श्राद्ध-सम्बन्धी दान अक्षय होता है। सखी! आदिदेव चतुर्भुज ब्रह्माजी भी शार्ङ्गधन्वा श्रीहरिके माहात्म्यकी भाँति तुलसीके माहात्म्यको भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं। अतः गोपनन्दिनि! तुम भी प्रतिदिन तुलसीका सेवन करो, जिससे श्रीकृष्ण सदा ही तुम्हारे वशमें रहें * ॥ २--१८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं--नरेश्वर! इस प्रकार चन्द्रानना-की कही हुई बात सुनकर रासेश्वरी श्रीराधाने साक्षात् श्रीहरि-को संतुष्ट करनेवाले तुलसी-सेवनका व्रत आरम्भ किया। केतकीवनमें सौ हाथ गोलाकार भूमिपर बहुत ऊँचा और अत्यन्त मनोहर श्रीतुलसीका मन्दिर बनवाया, जिसकी दीवार सोनेसे जड़ी थी और किनारे-किनारे पद्मरागमणि लगी थी। वह सुन्दर मन्दिर पन्ने, हीरे और मोतियोंके परकोटेसे अत्यन्त सुशोभित था तथा उसके चारों ओर परिक्रमा-के लिये गली बनायी गयी थी, जिसकी भूमि चिन्तामणिसे मण्डित थी। बहुत ऊँचा तोरण (मुख्यद्वार या गोपुर) उस मन्दिरकी शोभा बढ़ाता था। वहाँ सुवर्णमय ध्वजदण्डसे युक्त पताका फहरा रही थी। चारों ओर ताने हुए सुनहले वितानों (चँदोवों) के कारण वह तुलसी-मन्दिर वैजयन्ती पताकासे युक्त इन्द्रभवन-सा देदीप्यमान था। ऐसे तुलसी-मन्दिरके

---

* यदा स्पृष्टाथवा ध्याता कीर्तिता नामभिः स्तुता ।
रोपिता सिञ्चिता नित्यं पूजिता तुलसीदलैः ॥
नवधा तुलसीभक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।
युगकोटिसहस्राणि ते यान्ति सुकृतं शुभे ॥
यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैः शुभैः ।
रोपिता तुलसी मर्त्यैर्वर्धते वसुधातले ॥
तेषां वंशेषु ये जाता गतास्ते वै सुरालये ।
आकल्पयुगसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे ॥
यत्फलं सर्वपत्रेषु सर्वपुष्पेषु राधिके ।
तुलसीदलेन चैकेन सर्वदा प्राप्यते तु तत् ॥
तुलसीप्रभवैः पत्रैर्यो नरः पूजयेद्धरिम् ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥
सुवर्णभारशतकं रजतं यच्चतुर्गुणम् ।
तत्फलं समवाप्नोति तुलसीवनपालनात् ॥
तुलसीकाननं राधे गृहे यस्यावतिष्ठति ।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि न यान्ति यमकिंकराः ॥
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् ।
रोपयन्ति नराः श्रेष्ठास्ते न पश्यन्ति भास्करिम् ॥
रोपणात् पालनात् सेकाद् दर्शनात् स्पर्शनान्नृणाम् ।
तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसंचितम् ॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
वासुदेवादयो देवा वसन्ति तुलसीदले ॥
तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान् विमुञ्चति ।
यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥
तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः ।
तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥
तुलसीविपिनच्छाया यत्र यत्र भवेच्छुभे ।
तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥
तुलस्याः सखि माहात्म्यमादिदेवश्चतुर्मुखः ।
न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥
तुलसीसेवनं नित्यं कुरु त्वं गोपकन्यके ।
श्रीकृष्णो वश्यतां याति येन वा सर्वदैव हि ॥
(गर्ग०, वृन्दावन० १६ । ३--१८)

मध्यभागमें हरे पल्लवोंसे सुशोभित तुलसीकी स्थापना करके श्रीराधाने अभिजित् मुहूर्तमें उनकी सेवा प्रारम्भ की । श्रीगर्गजीको बुलाकर उनकी बतायी हुई विधिसे सती श्रीराधाने बड़े भक्तिभावसे श्रीकृष्णको संतुष्ट करनेके लिये आश्विन शुक्ला पूर्णिमासे लेकर चैत्र पूर्णिमातक तुलसी-सेवन-व्रतका अनुष्ठान किया ॥ १९—२५ ॥

व्रत आरम्भ करके उन्होंने प्रतिमास पृथक्-पृथक् रससे तुलसीको सींचा । कार्तिकमें दूधसे, मार्गशीर्षमें ईखके रससे, पौषमें द्राक्षारससे, माघमें बारहमासी आमके रससे, फाल्गुन मासमें अनेक वस्तुओंसे मिश्रित मिश्रीके रससे और चैत्र मासमें पञ्चामृतसे उसका सेचन किया । नरेश्वर ! इस प्रकार व्रत पूरा करके वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाने गर्गजीकी बतायी हुई विधिसे वैशाख कृष्णा प्रतिपदाके दिन उद्यापनका उत्सव किया । उन्होंने दो लाख ब्राह्मणोंको छप्पन भोगोंसे तृप्त करके वस्त्र और आभूषणोंके साथ दक्षिणा दी । विदेहराज ! मोटे-मोटे दिव्य मोतियोंका एक लाख भार और सुवर्णका एक कोटि भार श्रीगर्गाचार्यजीको दिया । उस समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, अप्सराओंका नृत्य होने लगा और देवतालोग उस तुलसी-मन्दिरके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २६—३० ॥

उसी समय सुवर्णमय सिंहासनपर विराजमान हरिप्रिया तुलसीदेवी प्रकट हुईं । उनके चार भुजाएँ थीं । कमलदलके समान विशाल नेत्र थे । सोलह वर्षकी-सी अवस्था एवं श्याम कान्ति थी । मस्तकपर हेममय किरीट प्रकाशित था और कानोंमें काञ्चनमय कुण्डल झलमला रहे थे । पीताम्बरसे आच्छादित केशोंकी बँधी हुई नागिन-जैसी वेणीमें वैजयन्ती माला धारण किये, गरुडसे उतरकर तुलसीदेवीने रङ्गवल्ली-जैसी श्रीराधाको अपनी भुजाओंसे अङ्कमें भर लिया और उनके मुखचन्द्रका चुम्बन किया* ॥ ३१-३२ ॥

तुलसी बोलीं—कलावती-कुमारी राधे ! मैं तुम्हारे भक्ति-भावसे वशीभूत हो निरन्तर प्रसन्न हूँ । भामिनि ! तुमने केवल लोकसंग्रहकी भावनासे इस सर्वतोमुखी व्रतका अनुष्ठान किया है (वास्तवमें तो तुम पूर्णकाम हो) । यहाँ इन्द्रिय, मन, बुद्धि और चित्तद्वारा जो-जो मनोरथ तुमने किया है, वह सब तुम्हारे सम्मुख सफल हो । पति सदा तुम्हारे अनुकूल हो और इसी प्रकार कीर्तनीय परम सौभाग्य बना रहे ॥ ३३-३४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहती हुई हरि-प्रिया तुलसीको प्रणाम करके वृषभानुनन्दिनी राधाने उनसे कहा—'देवि ! गोविन्दके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे ।' मैथिलराजशिरोमणे ! तब हरिप्रिया तुलसी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं । तबसे वृषभानुनन्दिनी राधा अपने नगरमें प्रसन्न-चित्त रहने लगीं । राजन् ! इस पृथ्वीपर जो मनुष्य भक्तिपरायण हो श्रीराधिका-के इस विचित्र उपाख्यानको सुनता है, वह मन-ही-मन त्रिवर्ग-सुखका अनुभव करके अन्तमें भगवान्को पाकर कृतकृत्य हो जाता है ॥ ३५—३७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'तुलसीपूजन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका गोपदेवीके रूपसे वृषभानु-भवनमें जाकर श्रीराधासे मिलना

राजा बहुलाश्व बोले—मुने ! श्रीराधाकृष्णके चरित्र-को सुनते-सुनते मेरा मन अघाता नहीं—ठीक उसी तरह जैसे शरद्ऋतुके प्रफुल्ल कमलका रसपान करते समय भ्रमरोंको तृप्ति नहीं होती । ब्रह्मन् ! तपोधन ! श्रीकृष्णपत्नी रासेश्वरीद्वारा तुलसी-सेवनका व्रत पूर्ण कर लिये जानेके बाद जो वृत्तान्त घटित हुआ, वह मुझे सुनाइये ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! श्रीराधिकाकी तुलसी-सेवा-के निमित्त की गयी तपस्याको जानकर, उनकी प्रीतिकी परीक्षा लेनेके लिये, एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण वृषभानुपुरमें गये । उस

* तदाऽऽविरासीत्तुलसी हरिप्रिया सुवर्णपीठोपरिशोभितासना । चतुर्भुजा पद्मपलाशवीक्षणा श्यामा स्फुरद्धेमकिरीटकुण्डला ॥
पीताम्बराच्छादितसर्पवेणी स्रजं दधाना नववैजयन्तीम् । खगात्समुत्तीर्य च रङ्गवल्लीं चुचुम्ब राधां परिरभ्य बाहुभिः ॥
(गर्ग०, वृन्दावन० १६ । ३१-३२)

समय उन्होंने अद्भुत गोपाङ्गनाका रूप धारण कर लिया था। चलते समय उनके पैरोंसे नूपुरोंकी मधुर झनकार हो रही थी। कटिकी करधनीमें लगी हुई क्षुद्रघण्टिकाओंकी भी मधुर खनखनाहट सुनायी पड़ती थी। अङ्गुलियोंमें मुद्रिकाओंकी अपूर्व शोभा थी। कलाइयोंमें रत्नजटित कंगन, बाँहोंमें भुजबंद तथा कण्ठ एवं वक्षःस्थलमें मोतियोंके हार शोभा दे रहे थे। बालरविके समान दीप्तिमान् शीशफूलसे सुशोभित केश-पाशोंकी वेणी-रचनामें अपूर्व कुशलताका परिचय मिलता था। नासिकामें मोतीकी बुलाक हिल रही थी। शरीरकी दिव्य आभा स्निग्ध अलकोंके समान ही श्याम थी। ऐसा रूप धारण करके श्रीहरिने वृषभानुके मन्दिरको देखा। खाई और परकोटोंसे युक्त वह वृषभानु-भवन चार दरवाजोंसे सुशोभित था तथा प्रत्येक द्वारपर काजल वर्णके समान काले गजराज झूमते थे, जिससे उस राजभवनकी मनोहरता बढ़ गयी थी। उस मण्डपका प्राङ्गण वायु तथा मनके समान वेगशाली एवं हार और चँवरोंसे सुसज्जित विचित्र वर्णवाले अश्वोंसे शोभा पा रहा था॥ ३—८॥

नरेश्वर! सवत्सा गौओंके समुदाय तथा धर्मधुरंधर वृषभवृन्दसे भी उस भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी। बहुत-से गोपाल वहाँ वंशी और बेंत धारण किये गीत गा रहे थे। मायामयी युवतीका वेष धारण किये श्यामसुन्दर उस प्राङ्गणसे अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुए, जहाँ कोटि सूर्योंके समान कान्तिमान् कपाटों और खंभोंकी पंक्तियाँ प्रकाश फैला रही थीं। वहाँके रत्न-मण्डित आँगनोंमें बहुत-सी रत्नस्वरूपा ललनाएँ सुशोभित हो रही थीं। वीणा, ताल और मृदङ्ग आदि बाजे बजाती हुई वे मनोहारिणी गोप-सुन्दरियाँ फूलोंकी छड़ी लिये श्रीराधिकाके गुण गा रही थीं। उस अन्तःपुरमें दिव्य एवं विशाल उपवनकी छटा छा रही थी। उसके भीतर अनार, कुन्द, मन्दार, नींबू तथा अन्य ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लहलहा रहे थे। केतकी, मालती और माधवी लताएँ उस उपवनको सुशोभित करती थीं। वहीं श्रीराधाका निकुञ्ज था, जिसमें कल्पवृक्षके पुष्पोंकी सुगन्ध भरी थी। नृपेश्वर! उस उपवनमें मधु पीकर मतवाले हुए भौंरे टूटे पड़ते थे। वहाँ शीतल मन्द-सुगन्ध वायु चल रही थी, जो सहस्रदल कमलोंके परागको बारंबार बिखेरा करती थी। उस उद्यानमें निकुञ्ज-शिखरोंपर बैठे हुए नर-कोकिल, मादा-कोकिल, मोर, सारस और शुक पक्षी मीठी आवाजमें कूज रहे थे। वहाँ फूलोंकी सहस्रों शय्याएँ सजित थीं और पानीकी हजारों नहरें बह रही थीं। वहाँके मेघ-मन्दिरमें सैकड़ों फुहारे छूट रहे थे। बालसूर्यके समान कान्तिमान् कुण्डल तथा विचित्र वर्णवाले वस्त्र धारण किये करोड़ों सुन्दरमुखी सखियाँ वहाँ श्रीराधाके सेवा-कार्यमें अपनी कुशलताका परिचय देती थीं। उनके बीचमें श्रीराधिका रानी उस राजमन्दिरमें टहल रही थीं। वह राजमन्दिर केसरिया रंगके सूक्ष्म वस्त्रोंसे सजाया गया था। वहाँकी भूमिपर पर्वतीय पुष्प, जलज पुष्प तथा स्थलपर होनेवाले बहुत-से पुष्प और कोमल पल्लव इतनी अधिक संख्यामें बिछाये गये थे कि वहाँ पाँव रखनेपर गुल्फ (घुट्ठी) तकका भाग ढक जाता था। मालतीके मकरन्दोंकी बूँदें वहाँ झरती रहती थीं। ऐसे आँगनमें करोड़ों चन्द्रोंके समान कान्तिमती, कोमलाङ्गी एवं कृशाङ्गी श्रीराधा धीरे-धीरे अपने कोमल चरणारविन्दोंका संचालन करती हुई घूम रही थीं। मणि-मन्दिरके आँगनमें आयी हुई उस नवीना गोपसुन्दरीको वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाने देखा। उसके तेजसे वहाँकी समस्त ललनाएँ हतप्रभ हो गयीं, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे ताराओंकी कान्ति फीकी पड़ जाती है। उसके उत्तम एवं महान् गौरवका अनुभव करके श्रीराधाने अभ्युत्थान दिया (अगवानी की) और दोनों बाँहोंसे उसका गाढ़ आलिङ्गन करके उसे दिव्य सिंहासनपर बिठाया। फिर लोकरीतिके अनुसार जल आदि उपचार अर्पित करके उसका सुन्दर पूजन (आदर-सत्कार) आरम्भ किया॥ ९—२३॥

श्रीराधा बोलीं—सुन्दरी सखी! तुम्हारा स्वागत है। मुझे शीघ्र ही अपना नाम बताओ। तुम स्वतः आज यहाँ आ गयीं, यह मेरे लिये ही महान् सौभाग्यकी बात है। इस भूतलपर तुम्हारे समान दिव्य रूपका कहीं दर्शन नहीं होता। सुभ्रु! जहाँ तुम-जैसी सुन्दरी निवास करती हैं, वह नगर निश्चय ही धन्य है। देवि! अपने आगमनका कारण विस्तारपूर्वक बताओ। मेरे योग्य जो कार्य हो, वह तुम्हें अवश्य कहना चाहिये। तुम अपनी बाँकी चितवन, सुन्दर दीप्ति, मधुर वाणी, मनोहर मुसकान, चाल-ढाल और आकृतिसे इस समय मुझे श्रीपतिके सदृश दिखायी देती हो। शुभे! तुम प्रतिदिन मुझसे मिलनेके लिये आया करो। यदि न आ सको तो मुझे ही अपने निवासस्थानका संकेत प्रदान करो। जिस विधिसे हमारा तुम्हारे साथ मिलना सम्भव हो, वह

विधि तुम्हें सदा उपयोगमें लानी चाहिये। हे सखी! तुम्हारा यह शरीर मुझे बहुत प्यारा लगता है; क्योंकि मेरे प्रियतम श्रीव्रजराजनन्दनकी आकृति तुम्हारी ही जैसी है, जिन्होंने मेरे मनको हर लिया है। अतः तुम मेरे पास रहो। जैसे भौजाई अपनी ननदको प्यार करती है, उसी प्रकार मैं तुम्हारा आदर करूँगी॥ २४—२९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर मायासे युवतीका वेष धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने कमलनयनी राधासे इस प्रकार कहा॥ ३०॥

श्रीभगवान् बोले—रम्भोरु! नन्दनगर गोकुलमें नन्दभवनसे उत्तर दिशामें मेरा निवास है। मेरा नाम 'गोपदेवी' है। मैंने ललिताके मुखसे तुम्हारी रूप-माधुरी और गुण-माधुरीका वर्णन सुना है; अतः हे चञ्चल लोचनोंवाली सुन्दरी! मैं तुम्हें देखनेके लिये यहाँ तुम्हारे घरमें चली आयी हूँ। कमललोचने! जहाँ ललित लवङ्गलताकी सुस्पष्ट सुगन्ध छा रही है, जहाँके गुञ्जा-निकुञ्जमें मधुपोंकी मधुर ध्वनिसे युक्त कंजपुष्प खिल रहे हैं, वह श्रुतिपथमें आया हुआ तुम्हारा नित्य-नूतन दिव्य नगर आज अपनी आँखों देख लिया। इसके समान सुन्दर तो देवराज इन्द्रकी पुरी अमरावती भी नहीं होगी॥ ३१—३३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! इस प्रकार दोनों प्रिया-प्रियतमका मिलन हुआ। वे परस्पर प्रीतिका परिचय देते हुए वहाँ उपवनमें शोभा पाने लगे। पुष्पमय कन्दुक (गेंद) के खेल खेलते हुए वे दोनों हँसते और गीत गाते थे। वनके वृक्षोंको देखते हुए वे इधर-उधर विचरने लगे। राजन्! कला-कौशलसे सम्पन्न कमललोचना राधाको सम्बोधित करके गोपदेवीने मधुर वाणीसे कहा॥ ३४—३६॥

गोपदेवी बोली—व्रजेश्वरि! नन्दनगर यहाँसे दूर है और अब संध्या हो गयी है, अतः जाती हूँ। कल प्रातःकाल तुम्हारे पास आऊँगी, इसमें संशय नहीं है॥ ३७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! गोपदेवीकी यह बात सुनकर व्रजेश्वरी श्रीराधाके नयनोंसे तत्काल आँसुओंकी धारा बह चली। वे रोमाञ्च तथा हर्षोद्गमके भावसे आवृत हो कटे हुए कदलीवृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं। यह देख वहाँ सखियाँ सशङ्क हो गयीं और तुरंत व्यजन लेकर, पास खड़ी हो, हवा करने लगीं। उनके वस्त्रोंपर चन्दन-पुष्पोंके इत्र छिड़के गये। उस समय गोपदेवीने श्रीराधासे कहा॥ ३८-३९॥

गोपदेवी बोली—राधिके! मैं प्रातःकाल अवश्य आऊँगी तुम चिन्ता न करो। यदि ऐसा न हो तो मुझे गाय, गोरस और अपने भाईकी सौगन्ध है॥ ४०॥

नारदजी कहते हैं—नृपेश्वर! यों कहकर मायासे युवतीका वेष धारण करनेवाले श्रीहरि राधाको धीरज बँधाकर श्रीनन्दगोकुल (नन्दगाँव) में चले गये॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीराधा-कृष्ण-संगम' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा गोपदेवीरूपसे श्रीराधाके प्रेमकी परीक्षा तथा श्रीराधाको श्रीकृष्णका दर्शन

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! तदनन्तर रात व्यतीत होनेपर मायासे नारीका रूप धारण करनेवाले श्रीहरि श्रीराधाका दुःख शान्त करनेके लिये वृषभानु-भवनमें गये। उन्हें आया देखकर श्रीराधा उठकर बड़े हर्षके साथ भीतर लिवा ले गयीं और आसन देकर विधि-विधानके साथ उनका पूजन किया॥ १-२॥

श्रीराधा बोलीं—सखी! तुम्हारे बिना मैं रातभर बहुत दुखी रही और तुम्हारे आ जानेसे मुझे इतनी प्रसन्नता हुई है, मानो कोई खोयी हुई वस्तु मिल गयी हो। जैसे कुपथ्य-सेवनसे पहले तो सुख मालूम होता है, किंतु पीछे दुःख भोगना पड़ता है, इसी तरह सत्सङ्गसे भी पहले सुख होता है और पीछे वियोगका दुःख उठाना पड़ता है॥ ३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधाकी यह बात सुनकर गोपदेवी अनमनी हो गयीं। वे श्रीराधासे कुछ भी नहीं बोलीं। किसी दुःखिनीकी भाँति चुपचाप बैठी रहीं। गोपदेवीको खिन्न जानकर श्रीराधिकाने सखियोंके साथ विचार करके, स्नेहतत्पर हो, इस प्रकार कहा॥ ४-५॥

श्रीराधा बोलीं—गोपदेवि! तुम अनमनी क्यों हो

गयीं ? कल्याणि ! मुझे इसका कारण बताओ । माता, पति, ननद अथवा सासने कुपित होकर तुम्हें फटकारा तो नहीं है ? मनोहरे ! किसी सौतके दोषसे या अपने पतिके वियोगसे अथवा अन्यत्र चित्त लग जानेसे तो तुम्हारा मन खिन्न नहीं हुआ है ? क्या कारण है ? महाभागे ! रास्ता चलनेकी थकावटसे या शरीरमें कोई रोग हो जानेसे तो तुम्हें खेद नहीं हुआ है ? अपने दुःखका कारण शीघ्र बताओ । रम्भोरु ! किसी कृष्णभक्त या ब्राह्मणको छोड़कर दूसरे जिस-किसीने भी तुमसे कोई कुत्सित बात कह दी हो तो मैं उसकी चिकित्सा करूँगी (उसे दण्ड दूँगी) । यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हाथी, घोड़े आदि वाहन, नाना प्रकारके रत्न, वस्त्र, धन और विचित्र भवन मुझसे ग्रहण करो । धन देकर शरीरकी रक्षा करे, शरीरका भी उत्सर्ग करके लाजकी रक्षा करे तथा मित्रके कार्यकी सिद्धिके लिये तन, धन और लज्जाको भी अर्पित कर दे । धन देकर निरन्तर प्राणोंकी रक्षा करे । जो बिना किसी कारण या कामनाके निश्छलभावसे मित्रताका निर्वाह करता है, वही मनुष्य परम धन्य है । जो मैत्री स्थापित करके कपट करता है, उस स्वार्थ-साधनमें पटु लम्पट नटको धिक्कार है । राजेन्द्र ! उनका यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर गोपदेवीके रूपमें आये हुए भगवान् उन कीर्तिनन्दिनी श्रीराधासे हँसते हुए बोले ॥ ६–१३ ॥

गोपदेवीने कहा—राधे ! वरसानुगिरिकी घाटियोंमें जो मनोहर साँकरी गली है, उसीसे होकर मैं स्वयं दही बेचने जा रही थी । इतनेमें नन्दजीके नवतरुण कुमार श्यामसुन्दरने मुझे मार्गमें रोक लिया । उनके हाथमें वंशी और बेंतकी छड़ी थी । उन रसिकशेखरने लाजको तिलाञ्जलि दे, तुरंत मेरा हाथ पकड़ लिया और जोर-जोरसे हँसते हुए, उस एकान्त वनमें वे इस प्रकार कहने लगे—'सुन्दरी ! मैं कर लेनेवाला हूँ । अतः तू मुझे करके रूपमें दहीका दान दे ।' मैंने कहा—'चलो, हटो । अपने-आप कर लेनेवाले बने हुए तुम-जैसे गोरस-लम्पटको मैं कदापि दान नहीं दूँगी ।' मेरे इतना कहते ही उन्होंने सिरपरसे दहीका मटका उतार लिया और उसे फोड़ डाला । मटका फोड़कर थोड़ी-सी दही पीकर मेरी चादर उतार ली और नन्दीश्वर गिरिकी ईशानकोणवाली दिशाकी ओर वे चल दिये । इससे मैं बहुत अनमनी हो रही हूँ । जातका ग्वाला, काला-कलूटा रंग, न धनवान् न वीर, न सुशील और न सुरूप ? सुशीले ! ऐसे पुरुषके प्रति तुमने प्रेम किया, यह ठीक नहीं । मैं कहती हूँ, तुम आजसे शीघ्र ही उस निर्मोही कृष्णको मनसे निकाल दो (उसे सर्वथा त्याग दो) । इस प्रकार वैरभावसे युक्त कठोर वचन सुनकर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको बड़ा विस्मय हुआ । वे वाक्य और पदोंके प्रयोगके सम्बन्धमें सरस्वतीके चरणोंका स्मरण करती हुई उनसे बोलीं ॥ १४–१९ ॥

श्रीराधाने कहा—सखी ! जिनकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मा और शिव आदि देवता अपनी उत्कृष्ट योगरीतिसे पञ्चाग्निसेवनपूर्वक तप करते हैं; दत्तात्रेय, शुक, कपिल, आसुरि और अङ्गिरा आदि भी जिनके चरणारविन्दोंके मकरन्द और परागका सादर स्पर्श करते हैं; उन्हीं अजन्मा, परिपूर्ण देवता, लीलावतारधारी, सर्वजनदुःखहारी, भूतल-भूरि-भार-हरणकारी तथा सत्पुरुषोंके कल्याणके लिये यहाँ प्रकट हुए आदिपुरुष श्रीकृष्णकी निन्दा कैसे करती हो ? तुम तो बड़ी ढीठ जान पड़ती हो । ग्वाले सदा गौओंका पालन करते हैं, गोरजकी गङ्गामें नहाते हैं, उसका स्पर्श करते हैं तथा गौओंके उत्तम नामोंका जप करते हैं । इतना ही नहीं, उन्हें दिन-रात गौओंके सुन्दर मुखका दर्शन होता है । मेरी समझमें तो इस भूतलपर गोप-जातिसे बढ़कर दूसरी कोई जाति ही नहीं है । तुम उसे काला-कलूटा बताती हो; किंतु उन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी श्याम-विभासे विलसित सुन्दर कलाका दर्शन करके उन्हींमें मन लग जानेके कारण भगवान् नीलकण्ठ औरोंके सुन्दर मुखको छोड़कर जटाजूट, हालाहल विष, भस्म, कपाल और सर्प धारण किये उस काले-कलूटेके लिये ही पागलोंकी भाँति व्रजमें दौड़ते फिरते हैं । स्वर्गलोक, सिद्ध, मुनि, यक्ष और मरुद्गणोंके पालक तथा समस्त नरों, किंनरों और नागोंके स्वामी भी निरन्तर भक्ति-भावसे जिनके चरणारविन्दोंमें प्रणिपात करके उत्कृष्ट लक्ष्मी एवं ऐश्वर्यको पाकर निश्चय ही उन्हें बलि (कर) समर्पित किया करते हैं, उनको तुम निर्धन कहती हो ? वत्सासुर, अघासुर, कालियनाग, बकासुर, यमलार्जुन वृक्ष, तृणावर्त, शकटासुर और पूतना आदिका वध (सम्भवतः तुम्हारी दृष्टिमें उनकी वीरताका परिचायक नहीं है ! मेरा भी ऐसा ही मत है ।) उन मुरारिके लिये क्या यश देनेवाला हो सकता है, जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-समूहोंके एकमात्र स्रष्टा और संहारक हैं ? उन पुरुषोत्तमके लिये भक्तसे बढ़कर कोई प्रिय हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता । शंकर, ब्रह्मा, लक्ष्मी तथा रोहिणीनन्दन बलरामजी भी उनके लिये भक्तोंसे अधिक प्रिय नहीं हैं । वे भक्तिसे बद्धचित्त होकर भक्तोंके पीछे-पीछे

चलते हैं। अतः श्रीकृष्ण केवल सुशील ही नहीं, समस्त लोकोंके सुजन-समुदायके चूडामणि हैं। वे भक्तोंके पीछे चलते हुए अपने रोम-रोममें स्थित लोकोंको पवित्र करते रहते हैं। वे परमात्मा अपने भक्तजनोंके प्रति सदा ही अभिरुचि सूचित करते रहते हैं। अतः अत्यन्त भजन करनेवालोंको भगवान् मुकुन्द मुक्ति तो अनायास दे देते हैं, किंतु उत्तम भक्तियोग कदापि नहीं देते; क्योंकि उन्हें भक्तिके बन्धनमें बँधे रहना पड़ता है॥ २०—२७॥

गोपदेवी बोली—श्रीराधे! तुम्हारी बुद्धि बृहस्पतिका भी उपहास करती है और वाणी अपने प्रवचन-कौशलसे वेदवाणीका अनुकरण करती है। किंतु देवि! तुम्हारे बुलानेसे यदि परमेश्वर श्रीकृष्ण सचमुच यहाँ आ जायँ और तुम्हारी बातका उत्तर दें, तब मैं मान लूँगी कि तुम्हारा कथन सच है॥ २८॥

श्रीराधा बोलीं—शुभ्रु! यदि परमेश्वर श्रीकृष्ण मेरे बुलानेसे यहाँ आ जायँ, तब मैं तुम्हारे प्रति क्या करूँ, यह तुम्हीं बताओ। परंतु अपनी ओरसे इतना ही कह सकती हूँ कि यदि मेरे स्मरण करनेसे वनमालीका शुभागमन नहीं हुआ तो मैं अपना सारा धन और यह भवन तुम्हें दे दूँगी॥ २९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीराधा उठकर श्रीनन्दनन्दनको नमस्कार करके आसनपर बैठ गयीं और उनका ध्यान करने लगीं। उस समय उनके नेत्र ध्यान-रत होनेके कारण निश्चल हो गये थे। श्रीहरिने देखा—'प्रियतमा श्रीराधा मेरे दर्शनके लिये उत्कण्ठित हैं। इनके अङ्ग-अङ्गमें स्वेद (पसीना) हो आया है और मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली है।' यह देख अपना पुरुषरूप धारण करके भक्तवत्सल श्रीकृष्ण सखियोंके देखते-देखते सहसा वहाँ प्रकट हो गये और प्रसन्नचित्त हो घनगर्जनके समान गम्भीर वाणीमें श्रीराधासे बोले॥ ३०—३२॥

श्रीकृष्णने कहा—रम्भोरु! चन्द्रवदने! व्रजसुन्दरी-शिरोमणे! नूतनयौवनशालिनि! मानशीले! प्रिये राधे! तुमने अपनी मधुरवाणीसे मुझे बुलाया है, इसलिये मैं तुरंत यहाँ आ गया हूँ। अब आँख खोलकर मुझे देखो। ललने! 'प्रियतम कृष्ण! आओ'—यह वाक्य यहाँसे प्रकट हुआ और मैंने सुना। फिर उसी क्षण अपने गोकुल और गोपवृन्दको छोड़कर, वंशीवट और यमुनाके तटसे वेगपूर्वक दौड़ता हुआ तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यहाँ आ पहुँचा हूँ। मेरे आते ही कोई सखीरूपधारिणी यक्षी, आसुरी, देवाङ्गना अथवा किंनरी, जो कोई भी मायाविनी तुम्हें छलनेके लिये आयी थी, यहाँसे चल दी। अतः तुम्हें ऐसी नागिनपर विश्वास ही नहीं करना चाहिये॥ ३३—३५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीराधा श्रीहरिको देखकर उनके चरणकमलोंमें प्रणत हो परमानन्दमें निमग्न हो गयीं। उनका मनोरथ तत्काल पूर्ण हो गया। श्रीकृष्णचन्द्र-के ऐसे अद्भुत चरित्रोंका जो भक्तिभावसे श्रवण करता है, वह मनुष्य कृतार्थ हो जाता है॥ ३६-३७॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'श्रीराधाको श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

रासक्रीडाका वर्णन

राजा बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! श्रीराधाको दर्शन दे, उसके प्रेमकी परीक्षा करके, भगवान् श्रीकृष्णने अपनी लीलाशक्तिके द्वारा आगे चलकर कौन-सी लीला प्रकट की?॥ १॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! माधव (वैशाख) मासमें माधवी लताओंसे व्याप्त वृन्दावनमें रासेश्वर माधवने स्वयं रासका आरम्भ किया। वैशाख मासकी कृष्णपक्षीया पञ्चमीको जब सुन्दर चन्द्रोदय हुआ, उस समय मनोहर श्यामसुन्दरने यमुनाके तटवर्ती उपवनमें रासेश्वरी श्रीराधाके साथ रास-विहार किया। मिथिलेश्वर! इसके पूर्व गोलोकसे जिस भूमिका पृथ्वीपर अवतरण हो चुका था, वह सबकी-सब तत्काल सुवर्ण तथा पद्मरागमणिसे मण्डित हो गयी। वृन्दावन भी दिव्यरूप धारण करके, कामपूरक कल्पवृक्षों तथा माधवी लताओंसे समलंकृत हो, अपनी शोभासे नन्दनवनको भी तिरस्कृत करने लगा। राजन्! रत्नोंके सोपानों और सुवर्ण-निर्मित तोलिकाओं (गुमटियों)से मण्डित तथा हंसों और कमल

सखी-वेशमें श्रीकृष्ण (वृन्दावन० अ० १७)

सखी-वेश कृष्णके साथ राधाका वन-विचरण (वृन्दावन० अ० १७)

सखी-वेश कृष्णके साथ राधाका वार्तालाप (वृन्दावन० अ० १८)

श्रीकृष्णका प्रकट मिलन (वृन्दावन० अ० १८)

आदिके पुष्पोंसे व्याप्त यमुना नदीकी अपूर्व शोभा हो रही थी। गिरिराज गोवर्धन गजराजके समान शोभा पाता था। जैसे गजराजके गण्डस्थलसे मदकी धाराएँ झरती हैं और उसपर भ्रमरोंकी भीड़ लगी रहती है, उसी प्रकार गिरिराजकी घाटियोंसे जलके निर्झर प्रवाहित होते थे और सुन्दरी दरियों (कन्दराओं) तथा भ्रमरियोंसे वह पर्वत व्याप्त था। वहाँ भिन्न धातुओंकी जगह नाना प्रकारके रत्न उद्भासित होते थे। उसके रत्नमय शिखरोंकी दिव्य दीप्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थी। वह पक्षियोंके कलरवसे मुखरित तथा लता-पुष्पोंसे मनोहर जान पड़ता था। गिरिराजके चारों ओर समस्त निकुञ्ज दिव्यरूप धारण करके सुशोभित होने लगे। सभा-मण्डपोंसे मण्डित वीथियाँ, प्राङ्गण और खंभोंकी पङ्क्तियाँ उनकी शोभा बढ़ाने लगीं। नरेश्वर! फहराती हुई दिव्य पताकाएँ, सुवर्णमय कलश तथा पुष्पमय मन्दिरोंमें विद्यमान श्वेतारुण पुष्पदल उन निकुञ्जोंको विभूषित कर रहे थे। उन सबमें वसन्त ऋतुकी माधुरी भरी थी। वहाँ कोकिल और सारस अपने मीठे बोल सुना रहे थे। जहाँ-तहाँ सब ओर कबूतर और मोर आदि पक्षी कलरव करते थे। श्रीराधा-कृष्णकी पुण्यमयी गाथाका गान करते हुए टूट पड़नेवाले मधुमत्त भ्रमरोंसे सभी कुञ्ज विशेष शोभा पाते थे। यमुना-पुलिनपर सहस्रदल कमलोंके पुष्प-परागको बारंबार बिखेरता हुआ शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर प्रवाहित हो रहा था॥ २—१३॥

इसी समय बहुत-सी गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुईं। कोई गोलोकनिवासिनी थीं, कोई शय्या सजानेमें सहयोग करनेवाली थीं। कोई शृङ्गार धारण करानेकी कलामें कुशल थीं, तो कोई द्वारपालिका थीं। कुछ गोपियाँ 'पार्षद' नामधारिणी थीं, कुछ छत्र-चँवर धारण करनेवाली सखियाँ थीं और कुछ श्रीवृन्दावनकी रक्षामें नियुक्त थीं। कुछ गोवर्धनवासिनी, कुछ कुञ्ज-विधायिनी और कुछ निकुञ्जनिवासिनी थीं। कोई नृत्यमें निपुण और कोई वाद्य-वादनमें प्रवीण थीं। नरेश्वर! उन सबके मुख अपने सौन्दर्य-माधुर्यसे चन्द्रमाको भी लज्जित करते थे। वे सब-की-सब किशोरावस्थावाली तरुणियाँ थीं। इन सबके बारह यूथ श्रीकृष्णके समीप आये। इसी प्रकार साक्षात् यमुना भी अपना यूथ लिये आयीं। उनके अङ्गोंपर नीलवस्त्र शोभा पा रहे थे। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित तथा श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्था अथवा श्याम कान्तिसे युक्त) थीं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलको तिरस्कृत कर रहे थे। उन्हींकी तरह जह्नुनन्दिनी गङ्गा भी यूथ बाँधकर वहाँ आ पहुँचीं। उनकी अङ्ग-कान्ति श्वेतगौर थी। वे श्वेत वस्त्र तथा मोतीके आभूषणोंसे विभूषित थीं। वैसे ही साक्षात् रमा भी अपना यूथ लिये आयीं। उनके श्रीअङ्गोंपर अरुण वस्त्र सुशोभित थे। चन्द्रमाकी-सी अङ्ग-कान्ति, अधरोंपर मन्द-मन्द हासकी छटा तथा विभिन्न अङ्गोंमें पद्मरागमणिके बने हुए अलंकार शोभा दे रहे थे॥१४—२०॥

इसी तरह कृष्णपत्नीके नामसे अपना परिचय देनेवाली मधुमाधवी (वसन्त-लक्ष्मी) भी वहाँ आयीं। उनके साथ भी सखियोंका समूह था। वे सब-की-सब प्रफुल्ल कमलकी-सी अङ्ग-कान्तिवाली, पुष्पहारसे अलंकृत तथा सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित थीं। इसी रीतिसे साक्षात् विरजा भी सखियोंका यूथ लिये वहाँ आयीं। उनके अङ्गोंपर हरे रंगके वस्त्र शोभा दे रहे थे। वे गौरवर्णा तथा रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत थीं। ललिता, विशाखा और लक्ष्मीके भी यूथ वहाँ आये। इसी प्रकार अष्टसखियोंके, षोडश सखियोंके तथा बत्तीस सखियोंके सम्पूर्ण यूथ भी वहाँ आ पहुँचे। राजन्! भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण उन युवतीजनोंके साथ रासमण्डलकी रङ्गभूमिमें बड़ी शोभा पाने लगे॥२१—२४॥

जैसे आकाशमें चन्द्रमा ताराओंके साथ सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार श्रीवृन्दावनमें उन सुन्दरियोंके साथ श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा हो रही थी। उनकी कमरमें पीताम्बर कसा हुआ था। वे नटवेषमें सबका मन मोहे लेते थे। उनके हाथमें बेंतकी छड़ी थी। वे वंशी बजाकर उन गोप-सुन्दरियोंकी प्रीति बढ़ा रहे थे। माथेपर मोरपंखका मुकुट, वक्षःस्थलपर पुष्पहार एवं वनमाला तथा कानोंमें कुण्डल— ये ही उनके अलंकार थे। रतिके साथ रतिनाथकी जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार रासमण्डलमें श्रीराधाके साथ राधावल्लभकी हो रही थी। इस प्रकार सुन्दरियोंके अलापसे संयुक्त होकर साक्षात् श्रीहरि अपनी प्रिया राधाके साथ यमुनाके पुण्य-पुलिनपर आये। उन्होंने अपनी प्राणवल्लभाका हाथ अपने करकमलमें ले रक्खा था। यमुनाके मनोहर तीरपर उन सुन्दरियोंके साथ श्यामसुन्दर थोड़ी देर बैठे रहे*। फिर

---

* वृन्दावने यथाऽऽकाशे चन्द्रस्तारागणैर्यथा।
पीतवासः परिकरो नटवेषो मनोहरः॥
वेत्रभृद्वादयन् वंशीं गोपीनां प्रीतिमावहन्।
मयूरपक्षभृन्मौलिः स्रग्वी कुण्डलमण्डितः॥

मधुर-मधुर बातें करते हुए अपने प्रिय वृन्दाविपिनकी शोभा निहारने लगे ॥ २५—२९ ॥

वे श्रीराधाके साथ चलते और हास-विनोद करते हुए कुञ्जवनमें विचरने लगे । एक कुञ्जमें प्रियाका हाथ छोड़कर वे तुरंत कहीं छिप गये । किंतु एक शाखाकी ओटमें उन्हें खड़ा देख श्रीराधाने माधवको अविलम्ब जा पकड़ा । फिर श्रीराधा उनके हाथसे छूटकर पग-पगपर नूपुरोंका झंकार प्रकट करती हुई भागीं और माधवके देखते-देखते कुञ्जोंमें छिपने लगीं । माधव हरि ज्यों-ही दौड़कर उनके स्थानपर पहुँचे, त्यों ही राधा वहाँसे अन्यत्र चली गयीं । वृक्षोंके पास हाथभरकी दूरीपर इधर-उधर वे भागने लगीं । उस समय श्रीराधाके साथ श्यामसुन्दर हरिकी उसी तरह शोभा हो रही थी, जैसे सुवर्णलतासे श्याम तमालकी, चपलासे घनमण्डलकी तथा सोनेकी खानमें नीलाचलकी होती है । वृन्दावनमें रासकी रङ्गस्थलीमें रतिके साथ कामदेवकी भाँति विश्वमोहिनी श्रीराधाके साथ मदनमोहन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे । जितनी व्रजसुन्दरियाँ वहाँ विद्यमान थीं, उतने ही रूप धारण करके रङ्गभूमिमें नटके समान नटवर श्रीकृष्ण रासरङ्गमें नृत्य करने लगे । उनके साथ सम्पूर्ण मनोहर गोपसुन्दरियाँ भी गाने और नृत्य करने लगीं । अनेक कृष्णचन्द्रोंके साथ वे गोपसुन्दरियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो बहुसंख्यक इन्द्रोंके साथ देवाङ्गनाएँ नृत्य कर रही हों । तदनन्तर मधुसूदन श्रीकृष्ण समस्त गोपसुन्दरियोंके साथ यमुनाजलमें विहार करने लगे—ठीक उसी तरह जैसे यक्ष-सुन्दरियोंके साथ यक्षराज कुबेर विहार करते हैं । उन सुन्दरियोंके केशपाश तथा कबरी (बँधी हुई चोटी) से खिसककर गिरे हुए सुन्दर चित्र-विचित्र पुष्पोंसे यमुनाजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, जैसे किसी नीलपटपर विभिन्न रंगके फूल छाप दिये गये हों । मृदङ्ग और खड़तालोंकी मधुर ध्वनिके साथ वे व्रजाङ्गनाएँ मधुसूदनका यश गाती थीं । उनका मनोरथ पूर्ण हो गया । श्रीहरिने उनकी सारी व्यथा हर ली थी । उनके पुष्पहार चञ्चल हो रहे थे और वे परमानन्दमें निमग्न हो गयी थीं । जिनके सुन्दर हाथोंसे ताडित हो उछलते हुए वारि-बिन्दु, जो फुहारोंसे छूटते हुए असंख्य अनुपम जलकणोंकी छवि धारण कर रहे थे, उन व्रज-सुन्दरियोंके साथ वृन्दावनाधीश्वर श्रीकृष्ण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो बहुत-सी हथिनियोंके साथ यूथपति गजराज सुशोभित हो रहा हो । आकाशमें खड़ी हुई विद्याधरियाँ, देवाङ्गनाएँ तथा गन्धर्वपत्नियाँ उस रास-रङ्गको देखती हुई वहाँ देवताओंके साथ पुष्पवर्षा कर रही थीं । वे सब-की-सब मोहको प्राप्त हो गयी थीं । उनके वस्त्रोंके नीवी-बन्ध ढीले पड़कर खिसक रहे थे ॥ ३०—४१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रासलीला' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

श्रीराधा और श्रीकृष्णके परस्पर शृङ्गार-धारण, रास, जलविहार एवं वनविहारका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर मनोहर श्यामसुन्दर श्रीहरि जलक्रीड़ा समाप्त करके समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ गोवर्धन पर्वतको गये । उस पर्वतकी कन्दरामें रत्नमयी भूमिपर रासेश्वरी श्रीराधाके साथ साक्षात् श्रीहरिने रासनृत्य किया । वहाँ पुष्पोंसे सुसज्जित रम्य सिंहासन-पर दोनों प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव विराजमान हुए, मानो किसी पर्वतपर विद्युत्-सुन्दरी और श्याम-घन एक साथ सुशोभित हो रहे हों । वहाँ सब सखियोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ स्वामिनी श्रीराधाका शृङ्गार किया । चन्दन, केसर, कस्तूरी आदिसे तथा महावर, इत्र, अरगजा और काजल तथा सुगन्धित पुष्प-रसोंसे कीर्तिकुमारी श्रीराधाकी विधिपूर्वक अर्चना करके साक्षात् श्रीयमुनाने उन्हें नूपुर धारण कराया । जह्नुनन्दिनी गङ्गाने मञ्जीर नामक दिव्य भूषण अर्पित किया । श्रीरमाने कटिप्रदेशमें किङ्किणी-जाल पहिनाया । श्रीमधु-माधवीने कण्ठमें हार अर्पित किया । विरजाने कोटि चन्द्रमाओंके समान उज्ज्वल एवं सुन्दर चन्द्रहार धारण

राधया शुशुभे रासे यथा रत्या रतीश्वरः । एवं गायन् हरिः साक्षात् सुन्दरीगणसंवृतः ॥
यमुनापुलिनं पुण्यमायायौ राधया युतः । गृहीत्वा हस्तपद्मेन पद्माभं स्वप्रियाकरम् ॥
निषसाद हरिः कृष्णातीरे नीरमनोहरे । (गर्ग०, वृन्दावन० १९ । २५—२८)

कराया। ललिताने मणिमण्डित कञ्चुकी पहनायी। विशाखाने कण्ठभूषण धारण कराया। चन्द्राननाने रत्नमयी मुद्रिकाएँ अर्पित कीं। एकादशीकी अधिष्ठात्री देवीने श्रीराधाको रत्न-जटित दो कंगन भेंट किये। शतचन्द्रानना सखीने रत्नमय भुजकङ्कण (बाजूबंद, विजायठ, जोसन और ब्रविया आदि) दिये। साक्षात् मधुमतीने दो अङ्गद भेंट किये, जिनमें जड़े हुए रत्न उद्दीप्त हो रहे थे। बन्दीने दो ताटङ्क (तरकियाँ) और सुखदायिनीने दो कुण्डल दिये। सखियोंमें प्रधान आनन्दीने श्रीराधाको भालतोरण भेंट किया। पद्माने चन्द्र-कलाके समान चमकनेवाली माथेकी बेंदी (टिकुली) दी। सती पद्मावतीने नासिकामें मोतीकी बुलाक पहना दी, जो थोड़ी थोड़ी हिलती रहती थी। राजन् ! सुन्दरी चन्द्रकान्ता सखीने श्रीराधाको प्रातःकालिक सूर्यकी कान्तिसे युक्त मनोहर शीशफूल अर्पित किया। सुन्दरीने चूडामणि तथा प्रहर्षिणीने रत्नमयी वेणी प्रदान की। वृन्दावनाधीश्वरी वृन्दादेवीने श्रीराधाको करोड़ों बिजलियोंके समान विद्योतमान चन्द्र-सूर्य-नामक दो आभूषण भेंट किये। इस प्रकार शृङ्गार धारण करके श्रीराधाका रूप दिव्य ज्योतिसे उद्भासित हो उठा ॥ १—१४॥

राजन् ! उनके साथ गिरिराजपर श्रीहरि दक्षिणाके साथ यज्ञनारायणकी भाँति सुशोभित हुए। मिथिलेश्वर ! जहाँ रासमें श्रीराधाने शृङ्गार धारण किया, गोवर्धन पर्वतपर वह स्थान 'शृङ्गार-मण्डल'के नामसे विख्यात हो गया। तदनन्तर श्रीकृष्ण अपनी प्रिया गोपसुन्दरियोंके साथ चन्द्रसरोवरपर गये। उसके जलमें उन्होंने हथिनियोंके साथ गजराजकी भाँति विहार किया। वहाँ साक्षात् चन्द्रमाने आकर स्वामिनी श्रीराधा और श्यामसुन्दर श्रीहरिको दो सुन्दर चन्द्रकान्तमणियाँ तथा दो सहस्रदल कमल भेंट किये। तत्पश्चात् साक्षात् श्रीहरि कृष्ण वृन्दावनकी शोभा निहारते हुए लता-वल्लरियोंसे व्याप्त बहुलावनमें गये। वहाँ सम्पूर्ण सखीजनोंको पसीनेसे भीगा देख वंशीधरने 'मेघमल्लार' नामक राग गाया। फिर तो वहाँ उसी समय बादल घिर आये और जलकी फुहारें बरसाने लगे ॥ १५—२० ॥

विदेहराज ! उसी समय अपनी सुगन्धसे सबका मन मोह लेनेवाली शीतल वायु चलने लगी। उससे समस्त गोपाङ्गनाओंको बड़ा सुख मिला। वे वहाँ एकत्र सम्मिलित हो उच्चस्वरसे श्रीमुरारिका यश गाने लगीं। वहाँसे राधावल्लभ श्रीकृष्ण तालवनको गये। उस वनमें व्रजवधूटियोंसे घिरे हुए श्रीहरिने मण्डलाकार रासनृत्य आरम्भ किया। उस नृत्यमें समस्त गोपसुन्दरियाँ पसीना-पसीना हो गयीं और प्याससे व्याकुल हो उठीं। उन सबने हाथ जोड़कर रासमण्डलमें रासेश्वरसे कहा ॥ २१—२३½ ॥

गोपियाँ बोलीं—देव ! गङ्गाजी तो यहाँसे बहुत दूर हैं और हमलोगोंको बड़े जोरसे प्यास लगने लगी है। हरे ! हम यह भी चाहती हैं कि आप यहीं दिव्य मनोहर रास करें। हम आपके साथ यहीं जलविहार और जलपान करेंगी। आप इस जगत्के सृष्टि, पालन तथा संहारके भी नायक हैं ॥ २४—२५½ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह सुनकर श्रीकृष्णने बेंतकी छड़ीसे भूमिपर ताड़न किया। इससे वहाँ तत्काल पानीका स्रोत निकल आया, जिसे 'वेत्रगङ्गा' कहते हैं। उसके जलका स्पर्श करनेमात्रसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। मिथिलेश्वर ! उस वेत्रगङ्गामें स्नान करके कोई भी मनुष्य गोलोकधाममें जानेका अधिकारी हो जाता है। मदनमोहनदेव भगवान् श्रीकृष्ण हरि वहाँ श्रीराधा तथा गोपाङ्गनाओंके साथ जल-विहार करके कुमुदवनमें गये, जो लता-बेलोंके जालसे मनोहर जान पड़ता था। वहाँ भ्रमरोंकी ध्वनि सब ओर गूँज रही थी। उस वनमें भी सखियोंके साथ श्रीहरिने रास किया। वहीं श्रीराधाने व्रजाङ्गनाओंके सामने नाना प्रकारके दिव्य पुष्पोंद्वारा श्रीकृष्णका शृङ्गार किया। चम्पाके फूलोंसे कटि-प्रदेशको अलंकृत किया। सुनहरी जूहीके पुष्पोंद्वारा निर्मित बाजूबंद धारण कराया। सहस्रदल कमलकी कर्णिकाओंको कुण्डलका रूप देकर उससे कानोंकी शोभा बढ़ायी गयी। मोहिनी, मालिनी, कुन्द और केतकीके फूलोंसे निर्मित हार श्रीकृष्णने धारण किया। कदम्बके फूलोंसे शोभायमान किरीट और कड़े धारण करके श्रीहरिके श्रीअङ्ग और भी उद्भासित हो उठे थे। मन्दार-पुष्पोंका उत्तरीय (दुपट्टा) और कमलके फूलोंकी छड़ी धारण किये प्रभु श्यामसुन्दर बड़ी शोभा पाते थे। तुलसी-मञ्जरीसे युक्त वनमाला उन्हें विभूषित कर रही थी। राजन् ! अपनी प्रियतमाके द्वारा इस प्रकार शृङ्गार धारण कराये जानेपर श्रीकृष्ण उस कुमुदवनमें हर्षोत्फुल्ल मूर्तिमान् वसन्तकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ २६—३४½ ॥

मृदङ्ग, वीणा, वंशी, मुरचंग, झाँझ और करताल आदि बाजोंके साथ गोपियाँ ताली बजाती हुई मनोहर गीत गाने लगीं। भैरव, मेघमल्लार, दीपक, मालकोश, श्रीराग और हिन्दोल राग—इन सबको पृथक्-पृथक् गाकर आठ ताल,

तीन ग्राम और सात स्वरोंसे तथा हाव-भावसमन्वित नाना प्रकारके रमणीय नृत्योंसे कटाक्ष-विक्षेपपूर्वक व्रजगोपिकाएँ श्रीराधा और श्यामसुन्दरको रिझाने लगीं। वहाँसे मधुर गीत गाते हुए माधव उन सुन्दरियोंके साथ मधुवनमें गये। वहाँ पहुँचकर स्वयं रासेश्वर श्रीकृष्णने रासेश्वरी श्रीराधाके साथ रासक्रीड़ा की। वैशाख मासके चन्द्रमाकी चाँदनीमें प्रकाशमान सौगन्धिक कह्लार-कुसुमोंसे झरते हुए परागोंसे पूर्ण तथा मालतीकी सुगन्धसे वासित वायु चल रही थी और चारों ओर माधवी लताओंके फूल खिल रहे थे। इन सबसे सुशोभित निर्जन वनमें गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्ण उसी प्रकार रम रहे थे, जैसे नन्दनवनमें देवराज इन्द्र विहार करते हैं॥ ३५—४१॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रासक्रीड़ा' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्णका वन-विहार, रास-क्रीड़ा; मानवती गोपियोंको छोड़कर श्रीराधाके साथ एकान्त-विहार तथा मानिनी श्रीराधाको भी छोड़कर उनका अन्तर्धान होना

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! इस प्रकार रमणीय कुमुदवनमें मालती-पुष्पोंके सुन्दर वनमें; आम, नारंगी तथा नींबुओंके सघन उपवनमें; अनार, दाख और बादामोंके विपिनमें; कदम्ब, श्रीफल (बेल) और कुटजोंके काननमें; बरगद, कटहल और पीपलोंके सुन्दर वनमें; तुलसी, कोविदार, केतकी, कदली, करील-कुञ्ज, बकुल (मौलिश्री) तथा मन्दारोंके मनोहर विपिनमें विचरते हुए श्यामसुन्दर व्रज-वधूटियोंके साथ कामवनमें जा पहुँचे॥ १—४॥

वहाँ एक पर्वतपर श्रीकृष्णने मधुर स्वरमें बाँसुरी बजायी। उसकी मोहक तान सुनकर व्रजसुन्दरियाँ मूर्च्छित और विह्वल हो गयीं। राजन्! आकाशमें देवताओंके साथ विमानोंपर बैठी हुई देवाङ्गनाएँ भी मोहित हो गयीं। कामदेवके बाणोंसे उनके अङ्ग-अङ्ग बिंध गये तथा उनके नीवीबन्ध ढीले होकर खिसकने लगे। स्थावरोंसहित चारों प्रकारके जीव-समुदाय मोहको प्राप्त हो गये, नदियों और नदोंका पानी स्थिर हो गया तथा पर्वत भी पिघलने लगे। कामवनकी पहाड़ी श्यामसुन्दरके चरणचिह्नोंसे युक्त हो गयी, जिसे 'चरण पहाड़ी' कहते हैं। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ ५—८॥

तदनन्तर राधावल्लभ श्रीकृष्णने नन्दीश्वर तथा बृहत्सानुगिरियोंके तट-प्रान्तमें रास-विलास किया। मिथिलेश्वर! वहाँ गोपियोंको अपने सौभाग्यपर बड़ा अभिमान हो गया, तब श्रीहरि उन सबको वहीं छोड़ श्रीराधाके साथ अदृश्य हो गये। मिथिलानरेश! उस निर्जन वनमें श्रीकृष्णके बिना समस्त गोपाङ्गनाएँ विरहकी आगमें जलने लगीं। उनके नेत्र आँसुओंसे भर गये और वे चकित हिरनियोंकी भाँति इधर-उधर भटकने लगीं। जैसे वनमें हाथीके बिना हथिनियाँ और कुररके बिना कुररियाँ व्यथित होकर करुण-क्रन्दन करती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णको न देखकर व्यथित तथा विरहसे अत्यन्त व्याकुल हो व्रजाङ्गनाएँ फूट-फूटकर रोने लगीं। राजन्! नरेश्वर! वे सब की-सब एक साथ मिलकर तथा पृथक् पृथक् दल बनाकर वन वनमें जातीं और उन्मत्तकी तरह वृक्षों तथा लतासमूहोंसे पूछतीं 'तरुओ तथा वल्लरियो! शीघ्र बताओ, हमारे प्यारे नन्दनन्दन कहाँ जा छिपे हैं?' अपनी वाणीसे 'श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण!' कहकर पुकारती थीं। उनका चित्त श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंमें ही लगा हुआ था। अतः वे सब अङ्गनाएँ श्रीकृष्णस्वरूपा हो गयीं—ठीक उसी तरह जैसे भृङ्गके द्वारा बंद किया हुआ कीड़ा उसीके चिन्तनसे भृङ्गरूप हो जाता है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। श्रीकृष्णकी चरणपादुकासे चिह्नित स्थानपर पहुँचकर गोपियाँ श्रीपादुकाब्ज-की शरणमें गयीं। तदनन्तर भगवान्‌की ही कृपासे उनके चरणचिह्नके अर्चन और दर्शनसे गोपियोंको भगवच्चरणचिह्नोंसे अलंकृत भूमिका विशेषरूपसे दर्शन होने लगा॥ ९—१६॥

बहुलाश्वने पूछा—प्रभो! राधावल्लभ श्यामसुन्दर अन्य गोपियोंको छोड़कर श्रीराधिकाके साथ कहाँ चले गये? फिर गोपियोंको उनका दर्शन कैसे हुआ?॥ १७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधिकाके साथ संकेतवटके नीचे चले गये और वहाँ प्रियतमा श्रीराधाके केशपाशोंकी वेणीमें पुष्परचना करने लगे। श्रीकृष्णके नीले केशोंमें श्रीराधिकाने वक्रता स्थापित की अर्थात् अपने केशरचना-कौशलसे उनके केशोंको घुँघराला किया और उनके पूर्णचन्द्रोपम मुखमण्डलमें उन्होंने विचित्र पत्रावलीकी रचना की। इस प्रकार परस्पर शृङ्गार करके श्रीकृष्ण प्रियाके साथ भद्रवन, महान् खदिरवन, बिल्ववन और कोकिलावनमें गये। उधर श्रीकृष्णको खोजती हुई गोपियोंने उनके चरणचिह्न देखे। जौ, चक्र, ध्वजा, छत्र, स्वस्तिक, अङ्कुश, बिन्दु, अष्टकोण, वज्र, कमल, नीलशङ्ख, घट, मत्स्य, त्रिकोण, बाण, ऊर्ध्वरेखा, धनुष, गोखुर और अर्धचन्द्रके चिह्नोंसे सुशोभित महात्मा श्रीकृष्णके पदचिह्नोंका अनुसरण करती हुई गोपाङ्गनाएँ उन चिह्नोंकी धूलि ले-लेकर अपने मस्तकपर रखतीं और आगे बढ़ती जाती थीं। फिर उन्होंने श्रीकृष्णके चरणचिह्नोंके साथ-साथ दूसरे पदचिह्न भी देखे। वे ध्वजा, पद्म, छत्र, जौ, ऊर्ध्वरेखा, चक्र, अर्धचन्द्र, अङ्कुश और बिन्दुओंसे शोभित थे। विदेहराज! लवङ्गलता, गदा, पाठीन (मत्स्य), शङ्ख, गिरिराज, शक्ति, सिंहासन, रथ और दो बिन्दुओंके चिह्नोंसे विचित्र शोभाशाली उन चरणचिह्नोंको देखकर गोपियाँ परस्पर कहने लगीं—'निश्चय ही नन्दनन्दन श्रीराधिकाको साथ लेकर गये हैं।' श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके चिह्न निहारती हुई गोपियाँ कोकिलावनमें जा पहुँचीं॥ १८–२७½ ॥

उन गोपाङ्गनाओंका कोलाहल सुनकर माधवने श्रीराधासे कहा—'कोटि चन्द्रमाओंको अपने सौन्दर्यसे तिरस्कृत करनेवाली प्रिये श्रीराधे! सब ओरसे गोपिकाएँ आ पहुँचीं। अब वे तुम्हें अपने साथ ले जायँगी। अतः यहाँसे जल्दी निकल चलो।' उस समय रूप, यौवन, कौशल्य (चातुरी) और शीलके गर्वसे गरबीली मानवती राधा रमापतिसे बोलीं॥ २८–३०॥

श्रीराधाने कहा—प्यारे! मैं कभी राजभवनसे बाहर नहीं निकली थी, किंतु आज अधिक चलना पड़ा है; अतः अब एक पग भी चलनेमें समर्थ नहीं हूँ। देखते नहीं, मैं सुकुमारी राजकुमारी पसीना-पसीना हो गयी हूँ? फिर मुझे कैसे ले चलोगे?॥ ३१॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यह वचन सुनकर राधिकावल्लभ श्रीकृष्ण श्रीराधाके ऊपर अपने दिव्य पीताम्बरसे हवा करने लगे। फिर उनका हाथ थामकर बोले—'श्रीराधे! अब तुम अपनी मौजसे धीरे-धीरे चलो।' उस समय श्रीकृष्णके बारंबार कहनेपर भी श्रीराधाने अपना पैर आगे नहीं बढ़ाया। वे श्रीहरिकी ओर पीठ करके चुपचाप खड़ी रहीं। तब संतोंके प्रिय श्रीकृष्णने मानिनी प्रिया राधासे कहा॥ ३२–३४॥

श्रीभगवान् बोले—मानिनि! यहाँ अन्य गोपियाँ भी मुझसे मिलनेकी हार्दिक कामना रखती हैं, तथापि उन्हें छोड़कर मैं मनसे तुम्हारी आराधना करता हूँ; तुम्हें जो प्रिय हो, वही करता हूँ। राधे! मेरे कंधेपर चढ़कर तुम सुखपूर्वक शीघ्र यहाँसे चलो॥ ३५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! उनके यों कहनेपर प्रियाने जब उनके कंधेपर चढ़ना चाहा, तभी स्वच्छन्द गतिवाले ईश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण वहाँसे अन्तर्धान हो गये। राजेन्द्र! फिर तो कीर्तिकुमारी राधाका मान उतर गया। वे उस महान् कोकिलावनमें भगवद्-विरहसे व्याकुल हो उच्चस्वरसे रोदन करने लगीं॥ ३६-३७॥

मिथिलेश्वर! उसी समय गोपियोंके यूथ वहाँ आ पहुँचे। श्रीराधाका अत्यन्त दुःखजनक रोदन सुनकर उन्हें बड़ी दया और लज्जा आयी। कोई अपनी स्वामिनीको पुष्प मकरन्दों (इत्र आदि) से नहलाने लगीं; कुछ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरसे मिश्रित जलके छींटे देने लगीं; कुछ व्यजन और चँवर डुलाकर अङ्गोंमें हवा देने लगीं तथा अनुनय-विनयमें कुशल नाना वचनोंद्वारा परादेवी श्रीराधाको धीरज बँधाने लगीं। मैथिलेन्द्र! श्रीराधाके मुखसे मानी श्रीकृष्णके द्वारा दिये गये सम्मानकी बात सुनकर मानवती गोपाङ्गनाओंको बड़ा विस्मय हुआ॥ ३८–४१॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रासक्रीडा' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

गोपाङ्गनाओंद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन; भगवान्‌का उनके बीचमें प्रकट होना; उनके पूछनेपर हंसमुनिके उद्धारकी कथा सुनाना तथा गोपियोंको क्षीरसागर-श्वेतद्वीपके नारायण-स्वरूपोंका दर्शन कराना

नारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीकृष्णके शुभागमनके लिये समस्त व्रजाङ्गनाएँ मिलकर सुरम्य ताल-स्वरके साथ उन श्रीहरिके रमणीय गुणोंका गान करने लगीं॥ १॥

गोपियाँ बोलीं—लोकसुन्दर! जनभूषण! विश्वदीप! मदनमोहन! तथा जगत्‌की पापराशि एवं पीड़ा हर लेनेवाले! आनन्दकंद यदुनन्दन! नन्दनन्द! तुम्हारे चरणारविन्दोंका मकरन्द भी परम स्वच्छन्द है, तुम्हें बारंबार नमस्कार है। गौओं, ब्राह्मणों और साधु-संतोंके विजयध्वजरूप! देववन्द्य तथा कंसादि दैत्योंके वधके लिये अवतार धारण करनेवाले! श्रीनन्दराज-कुल कमल-दिवाकर! देवाधिदेवोंके भी आदिकारण! मुक्त-जनदर्पण! तुम्हारी जय हो। गोपवंशरूपी सागरमें परम उज्ज्वल मोतीके समान रूप धारण करनेवाले! गोपाल कुलरूपी गिरिराजके नीलरत्न! परमात्मन्! गोपालमण्डल-रूपी सरोवरके प्रफुल्ल कमल! तथा गोपवृन्दरूपी चन्दन वनके प्रधान कलहंस! तुम्हारी जय हो। प्यारे श्यामसुन्दर! तुम श्रीराधिकाके मुखारविन्दका मकरन्द पान करनेवाले मधुप हो; श्रीराधाके मुखचन्द्रकी सुधामयी चन्द्रिकाके आस्वादक चकोर हो; श्रीराधाके वक्षःस्थलपर विद्योत-मान चन्द्रहार हो तथा श्रीराधिकारूपिणी माधवीलताके लिये कुसुमाकर (ऋतुराज वसन्त) हो। जो रास-रङ्ग-स्थलीमें अपने वैभव (लीलाशक्ति) से भूरि-भूरि लीलाएँ प्रकट करते हैं, जो गोपाङ्गनाओंके नेत्रों और जीवनके मूलाधार एवं हारस्वरूप हैं तथा श्रीराधाके मान करने-पर जिन्होंने स्वयं मान कर लिया है, वे श्यामसुन्दर श्रीहरि हमारे नेत्रोंके समक्ष प्रकट हों। जिन्होंने गोपिकाओंके समस्त यूथोंको, श्रीवृन्दावनकी भूमिको तथा गिरिराज गोवर्धनको अपनी चरण-धूलिसे अलंकृत किया है; जो सम्पूर्ण जगत्‌के उद्भव तथा पालनके लिये भूतलपर प्रकट हुए हैं; जिनकी कान्ति अत्यन्त श्याम है और भुजाएँ नागराजके शरीरकी भाँति सुशोभित होती हैं, उन नन्दनन्दन माधवकी हम आराधना करती हैं। प्राणनाथ! तुम्हारे बिना वियोग-व्यथासे पीड़ित हुई हम सब गोपियोंको चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंके समान दाहक प्रतीत होता है। यह सम्पूर्ण वनान्त-भाग जो पहले प्रसन्नताका केन्द्र था, अब इसमें आनेपर ऐसा जान पड़ता है, मानो हमलोग असिपत्रवनमें प्रविष्ट हो गयी हैं और अत्यन्त मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली वायु हमें बाण-सी लगती है। हरे! राजा सौदासकी रानी मदयन्तीको अपने पतिके विरहसे जो दुःख हुआ था, उससे हजारगुना दुःख नलकी महारानी दमयन्तीको पति-वियोगके कारण प्राप्त हुआ था। उनसे भी कोटि-गुना अधिक दुःख पतिविरहिणी जनकनन्दिनी सीताको हुआ था और उनसे भी अनन्तगुना अधिक दुःख आज हम सबको हो रहा है * ॥ २—९॥

---

* गोप्य ऊचुः—

लोकाभिराम जनभूषण विश्वदीप कंदर्पमोहन जगद्वृजिनार्तिहारिन्।
आनन्दकंद यदुनन्दन नन्दसूनो स्वच्छन्दपद्ममकरन्द नमो नमस्ते॥
गोविप्रसाधुविजयध्वज देववन्द्य कंसादिदैत्यवधहेतुकृतावतार।
श्रीनन्दराजकुलपद्मदिनेश देव देवादिमुक्तजनदर्पण ते जयोऽस्तु॥
गोपालसिन्धुपरमौक्तिकरूपधारिन् गोपालवंशगिरिनीलमणे परात्मन्।
गोपालमण्डलसरोवरकञ्जमूर्ते गोपालचन्दनवने कलहंसमुख्य॥
श्रीराधिकावदनपङ्कजषट्पदस्त्वं श्रीराधिकावदनचन्द्रचकोररूपः।
श्रीराधिकाहृदयसुन्दरचन्द्रहारः श्रीराधिकामधुलताकुसुमाकरोऽसि॥
यो रासरङ्गनिजवैभवभूरिलीलो यो गोपिकानयनजीवनमूलहारः।
मानं चकार रहसा किल मानवत्यां सोऽयं हरिर्भवतु नो नयनाग्रगामी॥
यो गोपिकासकलयूथमलंचकार वृन्दावनं च निजपादरजोभिरद्रिम्।
यः सर्वलोकविभवाय बभूव भूमौ तं भूरिनीलमुरगेन्द्रभुजं भजामः॥
चन्द्रं प्रतप्तकिरणज्वलनं प्रसन्नं सर्वं वनान्तमसिपत्रवनप्रवेशम्।
वाणं प्रभञ्जनमतीवसुमन्दयानं मन्यामहे किल भवन्तमृते व्यथार्ताः॥
सौदासराजमहिषीविरहादतीव जातं सहस्रगुणितं नलपट्टराज्ञ्याः।
तस्मात्तु कोटिगुणितं जनकात्मजायास्तस्मादनन्तमतिदुःखमकं हरे नः॥

(गर्ग०, वृन्दावन० २२। २—९)

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार रोती हुई गोपाङ्गनाओंके बीचमें कमलनयन श्रीकृष्ण सहसा प्रकट हो गये, मानो अपना अभीष्ट मनोरथ स्वयं आकर मिल गया हो। उनके मस्तकपर किरीट, भुजाओंमें केयूर और अङ्गद तथा कानोंमें कुण्डल नामक भूषण अपनी दीप्ति फैला रहे थे। स्निग्ध, निर्मल, सुगन्धपूर्ण, नीले, घुँघराले केश-कलाप मनको मोहे लेते थे। उन्हें आया हुआ देख समस्त व्रजाङ्गनाएँ एक साथ उठकर खड़ी हो गयीं, जैसे शब्दादि सूक्ष्म भूतोंके समूहको देखकर ज्ञानेन्द्रियाँ सहसा सचेष्ट हो जाती हैं। राजन्! उन गोपसुन्दरियोंके मध्यभागमें राधाके साथ श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते हुए इस प्रकार नृत्य करने लगे, मानो रतिके साथ मूर्तिमान् काम नाच रहा हो। जितनी संख्यामें समस्त गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके श्रीहरि उनके साथ व्रजमें रास-विहार करने लगे—ठीक उसी तरह, जैसे जाग्रत् आदि अवस्थाओंके साथ मन क्रीड़ा कर रहा हो। उस समय उस वनप्रदेशमें दुःख-रहित हुई व्रजाङ्गनाएँ वहाँ खड़े हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्णसे हाथ जोड़ गद्गद वाणीमें बोलीं ॥१०–१५॥

गोपियोंने पूछा—श्यामसुन्दर! जो सारे जगत्‌को तिनकेकी भाँति त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दोंमें अपना तन, मन और प्राण अर्पित कर चुकी हैं, उन्हीं इन गोपियोंके इस महान् समुदायको छोड़कर तुम कहाँ चले गये थे? ॥ १६ ॥

श्रीभगवान् बोले—गोपाङ्गनाओ! पुष्करद्वीपके दधिमण्डोद समुद्रके भीतर रहकर 'हंस' नामक महामुनि तपस्या कर रहे थे। वे मेरे ध्यानमें रत रहकर बिना किसी हेतु या कामनाके भजन करते थे। उन तपस्वी महामुनिको तपस्या करते हुए दो मन्वन्तरका समय इसी तरह बीत गया। उन्हें आज ही आधे योजन लंबा शरीर धारण करनेवाला एक मत्स्य निगल गया था। फिर उसे भी मत्स्यरूपधारी महान् असुर पौण्ड्र निगल गया। इस प्रकार कष्टमें पड़े हुए मुनिवर हंसके उद्धारके लिये मैं शीघ्र वहाँ गया और चक्रसे उन दोनों मत्स्योंका वध करके मुनिको संकटसे छुड़ाकर श्वेतद्वीपमें चला गया। व्रजाङ्गनाओ! वहाँ क्षीरसागरके भीतर शेषशय्यापर मैं सो गया था। फिर अपनी प्रियतमा तुम सब गोपियोंको दुखी जान नींद त्यागकर सहसा यहाँ आ पहुँचा; क्योंकि मैं सदा भक्तोंके वशमें रहता हूँ। जो जितेन्द्रिय, समदर्शी तथा किसी भी वस्तुकी इच्छा न रखनेवाले महान् संत हैं, वे निरपेक्षताको ही मेरा परम सुख जानते हैं; जैसे ज्ञानेन्द्रियाँ आदि रस आदि सूक्ष्म भूतोंको ही सुख समझते हैं* ॥ १७–२३ ॥

गोपियोंने कहा—माधव! यदि हमपर प्रसन्न हों तो क्षीरसागरमें शेषशय्यापर तुमने जो रूप धारण किया था, उसका हमें भी दर्शन कराओ ॥ २४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—तब 'तथास्तु' कहकर भगवान् गोपी-समुदायके देखते-देखते आठ भुजाधारी नारायण हो गये और श्रीराधा लक्ष्मीरूपा हो गयीं। वहीं चञ्चल तरङ्गमालाओंसे मण्डित क्षीरसागर प्रकट हो गया। दिव्य रत्नमय मञ्जुलरूप प्रासाद दृष्टिगोचर होने लगे। वहीं कमलनालके सदृश श्वेत शेषनाग कुण्डली बाँधे स्थित दिखायी दिये, जो बालसूर्यके समान तेजस्वी सहस्र फनोंके छत्रसे सुशोभित थे। उस शेषशय्यापर माधव सुखसे सो गये तथा लक्ष्मीरूपधारिणी श्रीराधा उनके चरण दबानेकी सेवा करने लगीं। करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी उस सुन्दर रूपको देखकर गोपियोंने प्रणाम किया और वे सभी परम आश्चर्यमें निमग्न हो गयीं। मैथिल! जहाँ श्रीकृष्णने गोपियोंको इस रूपमें दर्शन दिया था, वह परम पुण्यमय पापनाशक क्षेत्र बन गया ॥ २५–३० ॥

तदनन्तर माधव गोपाङ्गनाओंके साथ यमुना-तटपर आकर कालिन्दीके वेगपूर्ण प्रवाहमें संतरण-कला-केलि करने लगे। श्रीराधाके हाथसे उनका लक्षदल कमल और चादर लेकर माधव पानीमें दौड़ते तथा हँसते हुए दूर निकल गये। तब श्रीराधा भी उनके चमकीले पीताम्बर, वंशी और बेंत लेकर हँसती हुई यमुनाजलमें चली गयीं। अब महात्मा श्रीकृष्ण उन्हें माँगते हुए बोले—'राधे! मेरी बाँसुरी दे दो।' श्रीराधा कहने लगीं—'माधव! मेरा कमल और वस्त्र लौटा दो।' श्रीकृष्णने श्रीराधाको कमल और वस्त्र दे दिये। तब श्रीराधाने भी महात्मा श्रीकृष्णको वंशी, पीताम्बर

* जानन्ति सन्तः समदर्शिनो ये दान्ता महान्तः किल नैरपेक्ष्याः।
ते नैरपेक्ष्यं परमं सुखं मे ज्ञानेन्द्रियादीनि यथा रसादीन्॥
(गर्ग०, वृन्दावन० २२। २३)

और बेंत लौटा दिये । तदनन्तर श्रीकृष्ण आजानुलम्बिनी (घुटनेतक लटकती हुई) वैजयन्ती माला धारण किये, मधुर गीत गाते हुए भाण्डीरवनमें गये । वहाँ चतुर-चूडामणि श्यामसुन्दरने प्रियाका शृङ्गार किया । भाल तथा कपोलोंपर पत्ररचना की, पैरोंमें महावर लगाया, फूलोंकी माला धारण करायी, वेणीको भी फूलोंसे सजाया, ललाटमें कुङ्कुमकी बेंदी तथा नेत्रोंमें काजल लगाया । इसी प्रकार कीर्तिनन्दिनी श्रीराधाने भी उस शृङ्गार-स्थलमें चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसर आदिसे श्रीहरिके मुखपर मनोहर पत्र-रचना की ॥ ३१–३८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत 'रासक्रीडा' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

कंस और शङ्खचूडमें युद्ध तथा मैत्रीका वृत्तान्त; श्रीकृष्णद्वारा शङ्खचूडका वध

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण व्रजाङ्गनाओंके साथ लोहजङ्घ-वनमें गये, जो वसन्तकी माधवी तथा अन्यान्य लता-वल्लरियोंसे व्याप्त था । उस वनके सुगन्ध बिखेरनेवाले सुन्दर फूलोंके हारोंसे श्रीहरिने वहाँ समस्त गोपियोंकी वेणियाँ अलंकृत कीं । भ्रमरोंकी गुंजारसे निनादित और सुगन्धित वायुसे वासित यमुनातट-पर अपनी प्रेयसियोंके साथ श्यामसुन्दर विचरने लगे । विचरते-विचरते रासेश्वर श्रीकृष्ण उस महापुण्यवनमें जा पहुँचे, जो करील, पीलू तथा श्याम तमाल और ताल आदि सघन वृक्षोंसे व्याप्त था । वहाँ रासेश्वरी श्रीराधा और गोपाङ्गनाओंके साथ उनके मुखसे अपना यशोगान सुनते हुए श्रीहरिने रास आरम्भ किया । उस समय वे यश गाती हुई अप्सराओंसे घिरे हुए देवराज इन्द्रके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १–५ ॥

राजन् ! वहाँ एक विचित्र घटना घटित हुई, उसे तुम मेरे मुखसे सुनो । शङ्खचूड नामसे प्रसिद्ध एक बलवान् यक्ष था, जो कुबेरका सेवक था । इस भूतलपर उसके समान गदायुद्ध विशारद योद्धा दूसरा कोई नहीं था । एक दिन मेरे मुँहसे उग्रसेनकुमार कंसके उत्कट बलकी बात सुनकर वह प्रचण्ड पराक्रमी यक्षराज लाख भार लोहेकी बनी हुई भारी गदा लेकर अपने निवासस्थानसे मथुरामें आया । उस मदोन्मत्त वीरने राजसभामें पहुँचकर वहाँ सिंहासनपर बैठे हुए कंसको प्रणाम किया और कहा—'राजन् ! सुना है कि तुम त्रिभुवनविजयी वीर हो; इसलिये मुझे अपने साथ गदायुद्धका अवसर दो । यदि तुम विजयी हुए तो मैं तुम्हारा दास हो जाऊँगा और यदि मैं विजयी हुआ तो तत्काल तुम्हें अपना दास बना लूँगा ।' विदेहराज ! तब 'तथास्तु' कहकर, एक विशाल गदा हाथमें ले, कंस रङ्गभूमिमें शङ्खचूडके साथ युद्ध करने लगा । उन दोनोंमें घोर गदायुद्ध प्रारम्भ हो गया । दोनोंके परस्पर आघात प्रत्याघातसे होनेवाला चट चट शब्द प्रलयकालके मेघोंकी गर्जना और बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ता था । उस रङ्गभूमिमें दो मल्लों, नाट्यमण्डलीके दो नटों, विशाल अङ्गवाले दो गजराजों तथा दो उद्भट सिंहोंके समान कंस और शङ्खचूड परस्पर जूझ रहे थे । राजन् ! एक दूसरेको जीत लेनेकी इच्छासे जूझते हुए उन दोनों वीरोंकी गदाएँ आगकी चिनगारियाँ बरसाती हुई परस्पर टकराकर चूर चूर हो गयीं । कंसने अत्यन्त कोपसे भरे हुए यक्षको मुक्केसे मारा; तब शङ्खचूडने भी कंसपर मुक्केसे प्रहार किया । इस तरह मुक्का मुक्की करते हुए उन दोनोंको सत्ताईस दिन बीत गये । दोनोंमेंसे किसीका बल क्षीण नहीं हुआ । दोनों ही एक दूसरेके पराक्रमसे चकित थे । तदनन्तर दैत्यराज महाबली कंसने शङ्खचूडको सहसा पकड़कर बलपूर्वक आकाशमें फेंक दिया । वह सौ योजन ऊपर चला गया । शङ्खचूड आकाशसे जब वेगपूर्वक नीचे गिरा तो उसके मनमें किंचित् व्याकुलता आ गयी, तथापि उसने भी कंसको पकड़कर आकाशमें दस हजार योजन ऊँचे फेंक दिया । कंस भी आकाशसे गिरनेपर मन ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा । फिर उसने यक्षको पकड़कर सहसा पृथ्वीपर दे मारा । फिर शङ्खचूडने भी कंसको पकड़कर भूमिपर पटक दिया । इस प्रकार घोर युद्ध चलते रहनेके कारण भूमण्डल काँपने लगा । इसी बीचमें सर्वज्ञ मुनिवर साक्षात् गर्गाचार्य वहाँ आ गये । दोनोंने रङ्गभूमिमें उन्हें देखकर प्रणाम किया । तब गर्गने ओजस्विनी वाणीमें कंससे कहा ॥ ६–२१ ॥

श्रीगर्गजी बोले—राजेन्द्र ! युद्ध न करो । इस युद्धसे कोई फल मिलनेवाला नहीं है । यह महाबली शङ्खचूड तुम्हारे समान ही वीर है । तुम्हारे मुक्केकी मार खाकर गजराज ऐरावतने धरतीपर घुटने टेक दिये थे और उसे अत्यन्त मूर्च्छा आ गयी थी । और भी बहुत-से दैत्य तुम्हारे मुक्केकी मार खाकर मृत्युके ग्रास बन गये हैं, परंतु शङ्खचूड धराशायी नहीं हो सका । इसमें संदेह नहीं कि यह तुम्हारे लिये अजेय है । इसका कारण सुनो । वे परिपूर्णतम परमात्मा जैसे तुम्हारा वध करनेवाले हैं, उसी तरह भगवान् शिवके वरसे बलशाली हुए इस शङ्खचूडको भी मारेंगे । अतः यदुनन्दन ! तुम्हें शङ्खचूडपर प्रेम करना चाहिये । यक्षराज ! तुम्हें भी अवश्य ही कंसपर प्रेमभाव रखना चाहिये ॥ २२—२६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! गर्गाचार्यजीके यों कहनेपर शङ्खचूड तथा कंस—दोनों परस्पर मिले और एक दूसरेसे अत्यन्त प्रेम करने लगे । तदनन्तर कंससे बिदा ले शङ्खचूड अपने घरको जाने लगा । रात्रिके समय मार्गमें उसे रासमण्डल मिला । वहाँ ताल-स्वरसे युक्त मनोहर गान उसके कानमें पड़ा । फिर उसने रासमें श्रीरासेश्वरीके साथ रासेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया । उनकी बायीं भुजा श्रीराधाके कंधेपर सुशोभित थी । वे स्वेच्छानुसार अपने दाहिने पैरको टेढ़ा किये खड़े थे । हाथमें वंशी लिये मुखसे सुन्दर मन्द हासकी छटा छिटका रहे थे । उनके भ्रूमण्डलपर राशि-राशि कामदेव मोहित थे । व्रजसुन्दरियोंके यूथपति व्रजेश्वर श्रीकृष्ण कोटि-कोटि छत्र चँवरोंसे सुसेवित थे । उन्हें अत्यन्त कोमल शिशु जानकर शङ्खचूडने गोपियोंको हर ले जानेका विचार किया ॥ २७—३१ ॥

बहुलाश्वने पूछा—विप्रवर ! आप भूत और भविष्य—सब जानते हैं; अतः बताइये, रासमण्डलमें शङ्खचूडके आनेपर क्या हुआ ? ॥ ३२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! शङ्खचूडका मुँह था बाघके समान और शरीरका रंग था एकदम काला-कलूटा । वह दस ताड़के बराबर ऊँचा था और जीभ लपलपाकर जबड़े चाटता हुआ बड़ा भयंकर जान पड़ता था । उसे देखकर गोपाङ्गनाएँ भयसे थर्रा उठीं और चारों ओर भागने लगीं । इससे महान् कोलाहल होने लगा । इस प्रकार शङ्खचूडके आते ही रासमण्डलमें हाहाकार मच गया । वह कामपीड़ित दुष्ट यक्षराज शतचन्द्रानना नामवाली गोपसुन्दरीको पकड़कर बिना किसी भय और आशङ्काके उत्तर दिशाकी ओर दौड़ चला । शतचन्द्रानना भयसे व्याकुल हो 'कृष्ण ! कृष्ण !!' पुकारती हुई रोने लगी । यह देख श्रीकृष्ण अत्यन्त कुपित हो, शालका वृक्ष हाथमें लिये, उसके पीछे दौड़े । कालके समान दुर्जय श्रीकृष्णको पीछा करते देख यक्ष उस गोपीको छोड़कर भयसे विह्वल हो प्राण बचानेकी इच्छासे भागा । महादुष्ट शङ्खचूड भागकर जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ श्रीकृष्ण भी शालवृक्ष हाथमें लिये अत्यन्त रोषपूर्वक गये ॥ ३३—३८ ॥

राजन् ! हिमालयकी घाटीमें पहुँचकर उस यक्षराजने भी एक शाल उखाड़ लिया और उनके सामने विशेषतः युद्धकी इच्छासे वह खड़ा हो गया । भगवान्‌ने अपने बाहुबलसे शङ्खचूडपर उस शालवृक्षको दे मारा । उसके आघातसे शङ्खचूड आँधीके उखाड़े हुए पेड़की भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा । शङ्खचूडने फिर उठकर भगवान् श्रीकृष्णको मुक्केसे मारा । मारकर वह दुष्ट यक्ष सम्पूर्ण दिशाओंको निनादित करता हुआ सहसा गरजने लगा । तब श्रीहरिने उसे दोनों हाथोंमें पकड़ लिया और भुजाओंके बलसे घुमाकर उसी तरह पृथ्वीपर पटक दिया जैसे वायु उखाड़े हुए कमलको फेंक देती है । शङ्खचूडने भी श्रीकृष्णको पकड़कर धरतीपर दे मारा । जब इस प्रकार युद्ध चलने लगा, तब सारा भूमण्डल काँप उठा । तब माधव श्रीकृष्णने मुक्केकी मारसे उसके सिरको धड़से अलग कर दिया और उसकी चूडामणि ले ली—ठीक उसी तरह जैसे कोई पुण्यात्मा पुरुष कहींसे निधि प्राप्त कर लेता है । नरेश्वर ! शङ्खचूडके शरीरसे एक विशाल ज्योति निकली और दिङ्मण्डलको विद्योतित करती हुई व्रजमें श्रीकृष्णसखा श्रीदामाके भीतर विलीन हो गयी । इस प्रकार शङ्खचूडका वध करके भगवान् मधुसूदन, हाथमें मणि लिये, फिर शीघ्र ही रासमण्डलमें आ गये । दीनवत्सल श्रीहरिने वह मणि शतचन्द्राननाको दे दी और पुनः समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ रास आरम्भ किया ॥ ३९—४७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत रास-क्रीडाके प्रसङ्गमें 'शङ्खचूडका वध' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

रास-विहार तथा आसुरि मुनिका उपाख्यान

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर गोपीगणोंके साथ यमुनातटका दृश्य देखते हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण रास-विहारके लिये मनोहर वृन्दावनमें आये। श्रीहरिके वरदानसे वृन्दावनकी ओषधियाँ विलीन हो गयीं और वे सब-की-सब व्रजाङ्गना होकर, एक यूथके रूपमें संघटित हो, रासगोष्ठीमें सम्मिलित हो गयीं। मिथिलेश्वर! लतारूपिणी गोपियोंका समूह विचित्र कान्तिसे सुशोभित था। उन सबके साथ वृन्दावनेश्वर श्रीहरि वृन्दावनमें विहार करने लगे। कदम्ब-वृक्षोंसे आच्छादित कालिन्दीके सुरम्य तटपर सब ओर शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलकर उस स्थानको सुगन्ध-पूर्ण कर रही थी। वंशीवट उस सुन्दर पुलिनकी रमणीयताको बढ़ा रहा था। रासके श्रमसे थके हुए श्रीकृष्ण वहीं श्रीराधाके साथ आकर बैठे। उस समय गोपाङ्गनाओंके साथ-साथ आकाशस्थित देवता भी वीणा, ताल, मृदङ्ग, मुरचंग आदि भाँति-भाँतिके वाद्य बजा रहे थे तथा जय-जयकार करते हुए दिव्य फूल बरसा रहे थे। गोप-सुन्दरियाँ श्रीहरिको आनन्द प्रदान करती हुई उनके उत्तम यश गाने लगीं। कुछ गोपियाँ मेघमल्लार नामक राग गातीं तो अन्य गोपियाँ दीपक राग सुनाती थीं। राजन्! कुछ गोपियोंने क्रमशः मालकोश, भैरव, श्रीराग तथा हिन्दोल रागका सात स्वरोंके साथ गान किया। नरेश्वर! उनमेंसे कुछ गोपियाँ तो अत्यन्त भोली-भाली थीं और कुछ मुग्धाएँ थीं। कितनी ही प्रेमपरायणा गोपसुन्दरियाँ प्रौढा नायिकाकी श्रेणीमें आती थीं। उन सबके मन श्रीकृष्णमें लगे थे। कितनी ही गोपाङ्गनाएँ जारभावसे गोविन्दकी सेवा करती थीं। कोई श्रीकृष्णके साथ गेंद खेलने लगीं, कुछ श्रीहरिके साथ रहकर परस्पर पुलोंमें क्रीड़ा करने लगीं। कितनी ही गोपाङ्गनाएँ पैरोंमें नूपुर धारण करके परस्पर नृत्य-क्रीडा करती हुई नूपुरोंकी झंकारके साथ-साथ श्रीकृष्णके अधरामृतका पान कर लेती थीं। कितनी ही गोपियाँ योगियोंके लिये भी दुर्लभ श्रीकृष्णको दोनों भुजाओंसे पकड़कर हँसती हुई अत्यन्त निकट आ जातीं और उनका गाढ़ आलिङ्गन करती थीं ॥ १—१३ ॥

इस प्रकार परम मनोहर वृन्दावनाधीश्वर यदुराज भगवान् श्रीहरि केसरका तिलक धारण किये, गोपियोंके साथ वृन्दावनमें विहार करने लगे। कुछ गोपाङ्गनाएँ वंशीधरकी बाँसुरीके साथ वीणा बजाती थीं और कितनी ही मृदङ्ग बजाती हुई भगवान्‌के गुण गाती थीं। कुछ श्रीहरिके सामने खड़ी हो मधुर स्वरसे खड़ताल बजातीं और बहुत-सी सुन्दरियाँ माधवी लताके नीचे चंग बजाती हुई श्रीकृष्णके साथ सुस्थिरभावसे गीत गाती थीं। वे भूतलपर सांसारिक सुखको सर्वथा भुलाकर वहाँ रम रही थीं। कुछ गोपियाँ लतामण्डपोंमें श्रीकृष्णके हाथको अपने हाथमें लेकर इधर-उधर घूमती हुई वृन्दावनकी शोभा निहारती थीं। किन्हीं गोपियोंके हार लता-जालमें उलझ जाते, तब गोविन्द उनके वक्षःस्थलका स्पर्श करते हुए उन हारोंको लता-जालोंसे पृथक् कर देते थे। गोप-सुन्दरियोंकी नासिकामें जो नकबेसरें थीं, उनमें मोतीकी लड़ियाँ पिरोयी गयी थीं। उनको तथा उनकी अलकावलियोंको श्यामसुन्दर स्वयं सँभालते और धीरे-धीरे सुलझाकर सुशोभन बनाते रहते थे। माधवके चबाये हुए सुगन्धयुक्त ताम्बूलमेंसे आधा लेकर तत्काल गोपसुन्दरियाँ भी चबाने लगती थीं। अहो! उनका कैसा महान् तप था! कितनी ही गोपियाँ हँसती हुई श्यामसुन्दरके कपोलोंपर अपनी दो अँगुलियोंसे धीरे-धीरे छूतीं और कोई हँसती हुई बलपूर्वक हल्का-सा आघात कर बैठती थीं। कदम्ब-वृक्षोंके नीचे पृथक्-पृथक् सभी गोपाङ्गनाओंके साथ उनका क्रीडा-विनोद चल रहा था ॥ १४-२१ ॥

मिथिलेश्वर! कुछ गोपाङ्गनाएँ पुरुष-वेष धारणकर, मुकुट और कुण्डलोंसे मण्डित हो, स्वयं नायक बन जातीं और श्रीकृष्णके सामने उन्हींकी तरह नृत्य करने लगती थीं। जिनकी मुख-कान्ति शत-शत चन्द्रमाओंको तिरस्कृत करती थी, ऐसी गोपसुन्दरियाँ श्रीराधाका वेष धारण करके श्रीराधा तथा उनके प्राणवल्लभको आनन्दित करती हुई उनके यश गाती थीं। कुछ व्रजाङ्गनाएँ स्तम्भ, स्वेद आदि सात्त्विक भावोंसे युक्त, प्रेम-विह्वल एवं परमानन्दमें निमग्न हो, योगिजनोंकी भाँति समाधिस्थ होकर भूमिपर बैठ जाती थीं। कोई लताओंमें, वृक्षोंमें, भूतलमें, विभिन्न दिशाओंमें तथा अपने आपमें भी भगवान् श्रीपतिका दर्शन करती हुई मौनभाव धारण कर लेती थीं। इस प्रकार रास-मण्डलमें

महादेव और आसुरीका वार्तालाप
(वृन्दावन० अ० २४)

द्वारपालिकाओंके द्वारा महादेव तथा आसुरीका रोका जाना (वृन्दावन० अ० २५)

महादेव और आसुरीको गोपीदेहकी प्राप्ति
(वृन्दावन० अ० २५)

सखीरूप महादेव-आसुरीका राधा-कृष्ण-दर्शन
(वृन्दावन० अ० २५)

सर्वेश्वर, भक्तवत्सल गोविन्दकी शरण ले, वे सब गोपसुन्दरियाँ पूर्णमनोरथ हो गयीं । महामते राजन् ! वहाँ गोपियोंको भगवान्‌का जो कृपाप्रसाद प्राप्त हुआ, वह ज्ञानियोंको भी नहीं मिलता, फिर कर्मियोंको तो मिल ही कैसे सकता है ! ॥ २२–२७½ ॥

महामते ! इस प्रकार राधावल्लभ प्रभु श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रके रासमे जो एक विचित्र घटना हुई, उसे सुनो । श्रीकृष्णके प्रिय भक्त एवं महातपस्वी एक मुनि थे, जिनका नाम 'आसुरि' था । वे नारदगिरिपर श्रीहरिके ध्यानमें तत्पर हो तपस्या करते थे । हृदय-कमलमें ज्योतिर्मण्डलके भीतर राधासहित मनोहर-मूर्ति श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका वे चिन्तन किया करते थे । एक समय रातमे जब मुनि ध्यान करने लगे, तब श्रीकृष्ण उनके ध्यानमें नहीं आये । उन्होंने बारंबार ध्यान लगाया, किंतु सफलता नहीं मिली । इससे वे महामुनि खिन्न हो गये । फिर वे मुनि ध्यानसे उठकर श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे बदरीखण्डमण्डित नारायणाश्रमको गये; किंतु वहाँ उन मुनीश्वरको नर-नारायणके दर्शन नहीं हुए । तब अत्यन्त विस्मित हो, वे ब्राह्मण देवता लोकालोक पर्वतपर गये; किंतु वहाँ सहस्र सिरवाले अनन्तदेवका भी उन्हें दर्शन नहीं हुआ । तब उन्होंने वहाँके पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ गये हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया—'हम नहीं जानते ।' उनके इस प्रकार उत्तर देनेपर उस समय मुनिके मनमें बड़ा खेद हुआ । फिर वे क्षीरसागरसे सुशोभित श्वेतद्वीपमें गये; किंतु वहाँ भी शेषशय्यापर श्रीहरिका दर्शन उन्हें नहीं हुआ । तब मुनिका चित्त और भी खिन्न हो गया । उनका मुख प्रेमसे पुलकित दिखायी देता था । उन्होंने पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ चले गये ?' पुनः वही उत्तर मिला—'हमलोग नहीं जानते ।' उनके यों कहनेपर मुनि भारी चिन्तामें पड़ गये और सोचने लगे—'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कैसे श्रीहरिका दर्शन हो ?' ॥ २८–३८ ॥

यों कहते हुए मनके समान गतिशाली आसुरि मुनि वैकुण्ठधाममें गये; किंतु वहाँ भी लक्ष्मीके साथ निवास करनेवाले भगवान् नारायणका दर्शन उन्हें नहीं हुआ । नरेश्वर ! वहाँके भक्तोंमें भी आसुरि मुनिने भगवान्‌को नहीं देखा । तब वे योगीन्द्र मुनीश्वर गोलोकमें गये; परंतु वहाँके वृन्दावनीय निकुञ्जमें भी परात्पर श्रीकृष्णका दर्शन उन्हें नहीं हुआ । तब मुनिका चित्त खिन्न हो गया और वे श्रीकृष्ण-विरहमे अत्यन्त व्याकुल हो गये । वहाँ उन्होंने पार्षदोंसे पूछा—'भगवान् यहाँसे कहाँ गये हैं ?' तब वहाँ रहनेवाले पार्षद गोपोंने उनसे कहा—'वामनावतारके ब्रह्माण्डमें, जहाँ कभी पृश्निगर्भ अवतार हुआ था, वहाँ साक्षात् भगवान् पधारे हैं ।' उनके यों कहनेपर महामुनि आसुरि वहाँसे उस ब्रह्माण्डमे आये । श्रीहरिका दर्शन न होनेसे तीव्र गतिसे चलते हुए मुनि कैलास पर्वतपर गये । वहाँ महादेवजी श्रीकृष्णके ध्यानमें तत्पर होकर बैठे थे । उन्हें नमस्कार करके रात्रिमे खिन्न-चित्त हुए महामुनिने पूछा ॥ ३९–४४½ ॥

आसुरि बोले—भगवन् ! मैंने सारा ब्रह्माण्ड इधर-उधर छान डाला, भगवद्दर्शनकी इच्छासे वैकुण्ठसे लेकर गोलोकतकका चक्कर लगा आया, किंतु कहीं भी देवाधिदेवका दर्शन मुझे नहीं हुआ । सर्वज्ञशिरोमणे ! बताइये, इस समय भगवान् कहाँ हैं ? ॥ ४५-४६½ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—आसुरे ! तुम धन्य हो । ब्रह्मन् ! तुम श्रीकृष्णके निष्काम भक्त हो । महामुने ! मैं जानता हूँ, तुमने श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे महान् क्लेश उठाया है । क्षीरसागरमें रहनेवाले हंस मुनि बड़े कष्टमें पड़ गये थे । उन्हें उस क्लेशसे मुक्त करनेके लिये जो बड़ी उतावलीके साथ वहाँ गये थे, वे ही भगवान् रसिकशेखर साक्षात् श्रीकृष्ण अभी-अभी वृन्दावनमें आकर सखियोंके साथ रास-क्रीडा कर रहे हैं । मुने ! आज उन देवेश्वरने अपनी मायासे छः महीने-बराबर बड़ी रात बनायी है । मैं उसी रासोत्सवका दर्शन करनेके लिये वहाँ जाऊँगा । तुम भी शीघ्र ही चलो, जिससे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जाय ॥ ४७–५० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें रासक्रीडा-प्रसङ्गमें 'आसुरि मुनिका उपाख्यान' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पचीसवाँ अध्याय

शिव और आसुरिका गोपीरूपसे रासमण्डलमें श्रीकृष्णका दर्शन और स्तवन करना तथा उनके वरदानसे वृन्दावनमें नित्य-निवास पाना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! भगवान् शिव आसुरिके साथ सम्पूर्ण हृदयसे ऐसा निश्चय करके वहाँसे चले। वे दोनों श्रीकृष्णदर्शनके लिये व्रजमण्डलमें गये। वहाँकी भूमि दिव्य वृक्षों, लताओं, कुञ्जों और गुमटियोंसे सुशोभित थी। उस दिव्य भूमिका दर्शन करते हुए दोनों ही यमुना-तटपर गये। उस समय अत्यन्त बलशालिनी गोलोकवासिनी गोपसुन्दरियाँ हाथमें बेंतकी छड़ी लिये, वहाँ पहरा दे रही थीं। उन द्वारपालिकाओंने मार्गमें स्थित होकर उन्हें बलपूर्वक रासमण्डलमें जानेसे रोका। वे दोनों बोले—'हम श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे यहाँ आये हैं।' नृपश्रेष्ठ! तब राह रोककर खड़ी द्वारपालिकाओंने उन दोनोंसे कहा॥ १—४॥

द्वारपालिकाएँ बोलीं—विप्रवरो! हम कोटि-कोटि गोपाङ्गनाएँ वृन्दावनको चारों ओरसे घेरकर निरन्तर रास-मण्डलकी रक्षा कर रही हैं। इस कार्यमें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने ही हमें नियुक्त किया है। इस एकान्त रासमण्डल-में एकमात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं। उस पुरुषरहित एकान्त स्थानमें गोपीयूथके सिवा दूसरा कोई कभी नहीं जा सकता। मुनियो! यदि तुम दोनों उनके दर्शनके अभिलाषी हो तो इस मानसरोवरमें स्नान करो। वहाँ तुम्हें शीघ्र ही गोपी स्वरूपकी प्राप्ति हो जायगी, तब तुम रासमण्डलके भीतर जा सकते हो॥ ५—७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—द्वारपालिकाओंके यों कहनेपर वे मुनि और शिव मानसरोवरमें स्नान करके, गोपीभावको प्राप्त हो, सहसा रासमण्डलमें गये॥ ८॥

सुवर्णजटित पद्मरागमयी भूमि उस रासमण्डलकी मनोहरता बढ़ा रही थी। वह सुन्दर प्रदेश माधवीलता-समूहोंसे व्याप्त और कदम्बवृक्षोंसे आच्छादित था। वसन्त ऋतु तथा चन्द्रमाकी चाँदनीने उसको प्रदीप्त कर रखा था। सब प्रकारकी कौशलपूर्ण सजावट वहाँ दृष्टि-गोचर होती थी। यमुनाजीकी रत्नमयी सीढ़ियों तथा तोलिकाओं-से रासमण्डलकी अपूर्व शोभा हो रही थी। मोर, हंस, चातक और कोकिल वहाँ अपनी मीठी बोली सुना रहे थे। वह उत्कृष्ट प्रदेश यमुनाजीके जलस्पर्शसे शीतल-मन्द वायुके बहनेसे हिलते हुए तरुपल्लवोंद्वारा बड़ी शोभा पा रहा था। सभामण्डपों और वीथियोंसे, प्राङ्गणों और खंभोंकी पंक्तियोंसे, फहराती हुई दिव्य पताकाओंसे और सुवर्णमय कलशोंसे सुशोभित तथा श्वेतारुण पुष्पसमूहोंसे सज्जित तथा पुष्पमन्दिर और मार्गोंसे एवं भ्रमरोंकी गुंजारों और वाद्योंकी मधुर ध्वनियोंसे व्याप्त रासमण्डलकी शोभा देखते ही बनती थी। सहस्रदल कमलोंकी सुगन्धसे पूरित शीतल, मन्द एवं परम पुण्यमय समीर सब ओरसे उस स्थानको सुवासित कर रहा था। रासमण्डलके निकुञ्जमें कोटि-कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाशित होनेवाली पद्मिनीनायिका हंसगामिनी श्रीराधासे सुशोभित श्रीकृष्ण विराजमान थे। रासमण्डलके भीतर निरन्तर स्त्रीरत्नोंसे घिरे हुए श्यामसुन्दर-विग्रह श्रीकृष्णका लावण्य करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करने-वाला था। हाथमें वंशी और बेंत लिये तथा श्रीअङ्गपर पीताम्बर धारण किये वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न, कौस्तुभमणि तथा वनमाला शोभा दे रही थी। झंकारते हुए नूपुर, पायजेब, करधनी और बाजूबंदसे वे विभूषित थे। हार, कङ्कण तथा बाल-रविके समान कान्तिमान् दो कुण्डलोंसे वे मण्डित थे। करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्ति उनके आगे फीकी जान पड़ती थी। मस्तकपर मोरमुकुट धारण किये वे नन्दनन्दन मनोरथ-दान दक्ष कटाक्षोंद्वारा युवतियोंका मन हर लेते थे॥९—१९॥

राजन्! आसुरि और शिव—दोनोंने दूरसे ही जब श्रीकृष्णको देखा तो हाथ जोड़ लिये। नृपश्रेष्ठ! समस्त गोपसुन्दरियोंके देखते-देखते श्रीकृष्ण-चरणारविन्दमें मस्तक झुकाकर, आनन्दविह्वल हुए उन दोनोंने कहा॥ २०½॥

दोनों बोले—कृष्ण! महायोगी कृष्ण! देवाधिदेव जगदीश्वर! पुण्डरीकाक्ष! गोविन्द! गरुडध्वज! आपको नमस्कार है। जनार्दन! जगन्नाथ! पद्मनाभ! त्रिविक्रम! दामोदर! हृषीकेश! वासुदेव! आपको नमस्कार है। देव! आप परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं। इन दिनों भूतलका भारी भार हरने और सत्पुरुषोंका कल्याण

करनेके लिये अपने समस्त लोकोंको पूर्णतया शून्य करके यहाँ नन्दभवनमें प्रकट हुए हैं। वास्तवमें तो आप परात्पर परमात्मा ही हैं। अंशांश, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण—समस्त अवतारसमूहोंसे संयुक्त हो, आप परिपूर्णतम परमेश्वर सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करते हैं तथा वृन्दावनमें सरस रासमण्डलको भी अलंकृत करते हैं। गोलोकनाथ! गिरिराजपते! परमेश्वर! वृन्दावनाधीश्वर! नित्यविहार-लीलाका विस्तार करनेवाले राधावल्लभ! व्रजसुन्दरियोंके मुखसे अपना यशोगान सुननेवाले गोविन्द! गोकुलपते! सर्वथा आपकी जय हो। शोभाशालिनी निकुञ्जलताओंके विकासके लिये आप ऋतुराज वसन्त हैं। श्रीराधिकाके वक्ष और कण्ठको विभूषित करनेवाले रत्नहार हैं। श्रीरासमण्डलके पालक, व्रजमण्डलके अधीश्वर तथा ब्रह्माण्ड-मण्डलकी भूमिके संरक्षक हैं* ॥ २१—२६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब श्रीराधासहित भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो मन्द-मन्द मुसकराते हुए मेघगर्जनकी-सी गम्भीर वाणीमें मुनिसे बोले ॥ २७ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—तुम दोनोंने साठ हजार वर्षोंतक निरपेक्षभावसे तप किया है, इसीसे तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है। जो अकिंचन, शान्त तथा सर्वत्र शत्रुभावनासे रहित है, वही मेरा सखा है। अतः तुम दोनो अपने मनके अनुसार अभीष्ट वर माँगो ॥ २८-२९ ॥

शिव और आसुरि बोले—भूमन्! आपको नमस्कार है। आप दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणकमलोंकी संनिधिमें सदा ही वृन्दावनके भीतर हमारा निवास हो। आपके चरणसे भिन्न और कोई वर हमें नहीं रुचता है; अतः आप दोनों—श्रीहरि एवं श्रीराधिकाको हमारा सादर नमस्कार है ॥ ३० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब भगवान्ने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तभीसे शिव और आसुरि मुनि मनोहर वृन्दावनमें वंशीवटके समीप रासमण्डलसे मण्डित कालिन्दीके निकटवर्ती पुलिनपर निकुञ्जके पास ही नित्य निवास करने लगे ॥ ३१-३२ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णने, जहाँ कमलपुष्पोंके सौरभयुक्त पराग उड़ रहे थे और भ्रमर मँडरा रहे थे, उस पद्माकर वनमें गोपाङ्गनाओंके साथ रासक्रीड़ा प्रारम्भ की। मिथिलेश्वर! उस समय श्रीकृष्णने छः महीनेकी रात बनायी। परंतु उस रासलीलामें सम्मिलित हुई गोपियोंके लिये वह सुख और आमोदसे पूर्ण रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी। राजन्! उन सबके मनोरथ पूर्ण हो गये। अरुणोदयकी वेलामें वे सभी व्रजसुन्दरियाँ झुंड-की-झुंड एक साथ होकर अपने घरको लौटीं। श्रीनन्दनन्दन साक्षात् नन्दमन्दिरमे चले गये और श्रीवृषभानुनन्दिनी तुरंत ही वृषभानुपुरमें जा पहुँचीं ॥ ३३—३६ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका यह मनोहर रासोपाख्यान सुनाया गया, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद, मनोरथपूरक तथा मङ्गलका धाम है। साधारण लोगोंको यह धर्म, अर्थ और काम प्रदान करता है तथा मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाला है। राजन्! यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हारे सामने कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३७-३८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'रासक्रीडाका वर्णन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

---

* कृष्ण कृष्ण महायोगिन् देवदेव जगत्पते। पुण्डरीकाक्ष गोविन्द गरुडध्वज ते नमः ॥
जनार्दन जगन्नाथ पद्मनाभ त्रिविक्रम। दामोदर हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥
अद्यैव देव परिपूर्णतमस्तु साक्षाद् भूभूरिभारहरणाय सतां शुभाय। प्राप्तोऽसि नन्दभवने परतःपरस्त्वं कृत्वा हि सर्वनिजलोकमशेषशून्यम् ॥
अंशांशकांशककलाभिरुताभिरामं वेशप्रपूर्णनिचयाभिरतीवयुक्तः। विश्वं बिभर्षि रसरासमलंकरोषि वृन्दावनं च परिपूर्णतमः स्वयं त्वम् ॥
गोलोकनाथ गिरिराजपते परेश वृन्दावनेश कृतनित्यविहारलील। राधापते व्रजवधूजनगीतकीर्ते गोविन्द गोकुलपते किल ते जयोऽस्तु ॥
श्रीमन्निकुञ्जलतिकाकुसुमाकरस्त्वं श्रीराधिकाहृदयकण्ठविभूषणस्त्वम्। श्रीरासमण्डलपतिर्व्रजमण्डलेशो ब्रह्माण्डमण्डलमहीपरिपालकोऽसि ॥
(गर्ग०, वृन्दावन० २५। २१—२६)

छब्बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका विरजाके साथ विहार; श्रीराधाके भयसे विरजाका नदीरूप होना, उसके सात पुत्रोंका उसी शापसे सात समुद्र होना तथा राधाके शापसे श्रीदामाका अंशतः शङ्खचूड होना

बहुलाश्वने पूछा—महामते देवर्षे ! आप परावर वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। अतः यह बताइये कि अघासुर आदि दैत्योंकी ज्योति तो भगवान् श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हुई थी, परंतु शङ्खचूडका तेज श्रीदामामें लीन हुआ; इसका क्या कारण है ? अहो ! श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है ॥ १-२ ॥

नारदजी बोले—महामने नरेश ! यह पूर्वकालमें घटित गोलोकका वृत्तान्त है, जिसे मैंने भगवान् नारायणके मुखसे सुना था। यह सर्वपापहारी पुण्य प्रसङ्ग तुम मुझसे सुनो। श्रीहरिके तीन पत्नियाँ हुईं—श्रीराधा, विजया (विरजा) और भूदेवी। इन तीनोंमें महात्मा श्रीकृष्णको श्रीराधा ही अधिक प्रिय हैं। राजन् ! एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त कुञ्जमें कोटि चन्द्रमाओंकी सी कान्तिवाली तथा श्रीराधिका सदृश सुन्दरी विरजाके साथ विहार कर रहे थे। सखीके मुखसे यह सुनकर कि श्रीकृष्ण मेरी सौतके साथ हैं, श्रीराधा मन-ही-मन अत्यन्त खिन्न हो उठीं। सपत्नीके सौख्यसे उनको दुःख हुआ, तब भगवत्प्रिया श्रीराधा सौ योजन विस्तृत, सौ योजन ऊँचे और करोड़ों अश्वनियोंसे जुते सूर्यतुल्य-कान्तिमान् रथपर—जो करोड़ों पताकाओं और सुवर्ण-कलशोंसे मण्डित था तथा जिसमें विचित्र रंगके रत्नों, सुवर्ण और मोतियोंकी लड़ियाँ लटक रही थीं—आरूढ़ हो, दस अरब वेत्रधारिणी सखियोंके साथ तत्काल श्रीहरिको देखनेके लिये गयीं। उस निकुञ्जके द्वारपर श्रीहरिके द्वारा नियुक्त महाबली श्रीदामा पहरा दे रहा था। उसे देखकर श्रीराधाने बहुत फटकारा और सखीजनोंद्वारा बेंतसे पिटवाकर सहसा कुञ्जद्वारके भीतर जानेको उद्यत हुईं। सखियोंका कोलाहल सुनकर श्रीहरि वहाँसे अन्तर्धान हो गये ॥ ३–११ ॥

श्रीराधाके भयसे विरजा सहसा नदीके रूपमें परिणत हो, कोटियोजन विस्तृत गोलोकमें उसके चारों ओर प्रवाहित होने लगी। जैसे समुद्र इस भूतलको घेरे हुए है, उसी प्रकार विरजा नदी सहसा गोलोकको अपने घेरेमें लेकर बहने लगी। रत्नमय पुष्पोंसे विचित्र अङ्गोंवाली वह नदी विविध प्रकारके फूलोंकी छापसे अङ्कित उष्णीष वस्त्रकी भाँति शोभा पाने लगी।—'श्रीहरि चले गये और विरजा नदीरूपमें परिणत हो गयी'—यह देख श्रीराधिका अपने कुञ्जको लौट गयीं। नृपेश्वर ! तदनन्तर नदीरूपमें परिणत हुई विरजाको श्रीकृष्णने शीघ्र ही अपने वरके प्रभावसे मूर्तिमती एवं विमल वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दिव्य नारी बना दिया। इसके बाद वे विरजा तटवर्ती वनमें वृन्दावनके निकुञ्जमें विरजाके साथ स्वच्छन्द रास करने लगे। श्रीकृष्णके तेजसे विरजाके गर्भसे सात पुत्र हुए। वे सातों शिशु अपनी बालक्रीड़ासे निकुञ्जकी शोभा बढ़ाने लगे। एक दिन उन बालकोंमें झगड़ा हुआ। उनमें जो बड़े थे, उन सबने मिलकर छोटेको मारा। छोटा भयभीत होकर भागा और माताकी गोदमें चला गया। सती विरजा पुत्रको आश्वासन दे उसे दुलारने लगीं। उस समय साक्षात् भगवान् वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तब श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल हो, रोषसे अपने पुत्रको शाप देते हुए विरजाने कहा—'दुर्बुद्धे ! तू श्रीकृष्णसे वियोग करानेवाला है, अतः जल हो जा; तेरा जल मनुष्य कभी न पायें।' फिर उसने बड़ोंको शाप देते हुए कहा—'तुम सब-के-सब झगड़ालू हो; अतः पृथ्वीपर जाओ और वहाँ जल होकर रहो। तुम सबकी पृथक्-पृथक् गति होगी। एक-दूसरेसे कभी मिल न सकोगे। सदा ही प्रलयकालमें तुम्हारा नैमित्तिक मिलन होगा' ॥ १२–२२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार माताके शापसे वे सब पृथ्वीपर आ गये और राजा प्रियव्रतके रथके पहियोंसे बनी हुई परिखाओंमें समाविष्ट हो गये। खारा जल, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, क्षीर तथा शुद्ध जलके वे सात सागर हो गये। राजन् ! वे सातों समुद्र अक्षोभ्य तथा दुर्लङ्घ्य हैं। उनके भीतर प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है। वे बहुत ही गहरे तथा लाख योजनसे लेकर क्रमशः द्विगुण विस्तारवाले होकर पृथक्-पृथक् द्वीपोंमें स्थित हैं। पुत्रोंके चले जानेपर विरजा उनके स्नेहसे अत्यन्त व्याकुल हो

उठी। तब अपनी उस विरहिणी प्रियाके पास आकर श्रीकृष्णने वर दिया—'भीरु! तुम्हारा कभी मुझसे वियोग नहीं होगा। तुम अपने तेजसे सदैव पुत्रोंकी रक्षा करती रहोगी।' विदेहराज! तदनन्तर श्रीराधाको विरह-दुःखसे व्यथित जान श्यामसुन्दर श्रीहरि स्वयं श्रीदामाके साथ उनके निकुञ्जमें आये। निकुञ्जके द्वारपर सखाके साथ आये हुए प्राणवल्लभकी ओर देखकर राधा मानवती हो उनसे इस प्रकार बोलीं॥ २३—२९॥

श्रीराधाने कहा—हरे! वहीं चले जाओ, जहाँ तुम्हारा नया नेह जुड़ा है। विरजा तो नदी हो गयी, अब तुम्हें उसके साथ नद हो जाना चाहिये। जाओ, उसीके कुञ्जमें रहो। मुझसे तुम्हारा क्या मतलब है?॥ ३०॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर भगवान् विरजाके निकुञ्जमें चले गये। तब श्रीकृष्णके मित्र श्रीदामाने राधासे रोषपूर्वक कहा॥ ३१½॥

श्रीदामा बोला—राधे! श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् हैं। वे स्वयं असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति और गोलोकके स्वामीके रूपमें विराजमान हैं। परात्पर श्रीकृष्ण तुम-जैसी करोड़ों शक्तियोंको बना सकते हैं। उनकी तुम निन्दा करती हो? ऐसा मान न करो, न करो॥ ३२—३३½॥

राधा बोली—ओ मूर्ख! तू बापकी स्तुति करके मुझ माताकी निन्दा करता है! अतः दुर्बुद्धे! राक्षस हो जा और गोलोकसे बाहर चला जा॥ ३४½॥

श्रीदामा बोला—शुभे! श्रीकृष्ण सदा तुम्हारे अनुकूल रहते हैं, इसीलिये तुम्हें इतना मान हो गया है। अतः परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णसे भूतलपर तुम्हारा सौ वर्षोंके लिये वियोग हो जायगा, इसमें संशय नहीं है॥ ३५-३६॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार परस्पर शाप देकर अपनी ही करनीसे भयभीत हो, जब राधा और श्रीदामा अत्यन्त चिन्तामें डूब गये, तब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ प्रकट हुए॥ ३७॥

श्रीभगवान्ने कहा—राधे! मैं अपने निगमस्वरूप वचनको तो छोड़ सकता हूँ, किंतु भक्तोंकी बात अन्यथा करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ।* कल्याणि राधिके! शोक मत करो, मेरी बात सुनो। वियोगकालमें भी प्रतिमास एक बार तुम्हें मेरा दर्शन हुआ करेगा। वाराहकल्पमें भूतलका भार उतारने और भक्तजनोंको दर्शन देनेके लिये मैं तुम्हारे साथ पृथ्वीपर चलूँगा। श्रीदामन्! तुम भी मेरी बात सुनो। तुम अपने एक अंशसे असुर हो जाओ। वैवस्वत मन्वन्तरमें रासमण्डलमें आकर जब तुम मेरी अवहेलना करोगे, तब मेरे हाथसे तुम्हारा वध होगा, इसमें संशय नहीं है। तत्पश्चात् फिर मेरे वरदानसे तुम अपना पूर्व शरीर प्राप्त कर लोगे॥ ३८—४२॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार शापवश महातपस्वी श्रीदामाने पूर्वकालमें यक्षलोकमें सुधनके घर जन्म लिया। वह शङ्खचूड नामसे विख्यात हो यक्षराज कुबेरका सेवक हो गया। यही कारण है कि शङ्खचूडकी ज्योति श्रीदामामें लीन हुई॥ ४३-४४॥

भगवान् श्रीकृष्ण स्वात्माराम हैं, एकमात्र अद्वितीय परमात्मा हैं। वे अपने ही धाममें लीलापूर्वक सारा कार्य करते हैं। जो सर्वेश्वर, सर्वरूप एवं महान् आत्मा हैं, उनके लिये यह सब कार्य अद्भुत नहीं है; मैं उन श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ॥ ४५॥

विदेहराज! यह मनोहर वृन्दावनखण्ड मैंने तुम्हारे सामने कहा है। जो नरश्रेष्ठ इस चरित्रका श्रवण करता है, वह पुण्यतम परमपदको प्राप्त होता है॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें वृन्दावनखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शङ्खचूडोपाख्यान' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

श्रीवृन्दावनखण्ड सम्पूर्ण

---

* वचनं वै स्वनिगमं दूरीकर्तुं क्षमोऽस्म्यहम्। भक्तानां वचनं राधे दूरीकर्तुं न च क्षमः॥
(गर्ग०, वृन्दावन० २६। ३८)

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

गिरिराजखण्ड

पहला अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा गोवर्धनपूजनका प्रस्ताव और उसकी विधिका वर्णन

राजा बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे ! जैसे बालक खेल-ही-खेलमें गोबर-छत्तेको उखाड़कर हाथमें ले लेता है, उसी प्रकार भगवान्ने एक ही हाथसे महान् पर्वत गोवर्धनको लीलापूर्वक उठाकर छत्रकी भाँति धारण कर लिया था—ऐसी बात सुनी जाती है। सो यह प्रसङ्ग कैसे आया ? मुनिसत्तम ! इन परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके उसी दिव्य अद्भुत चरित्रका आप वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! जैसे खेती करनेवाले किसान राजाको वार्षिक कर देते हैं, उसी प्रकार समस्त गोप प्रतिवर्ष शरद्-ऋतुमें देवराज इन्द्रके लिये बलि (पूजा और भोग) अर्पित करते थे। एक समय श्रीहरिने महेन्द्रयागके लिये सामग्रीका संचय होता देख गोपसभामें नन्दजीसे प्रश्न किया। उनके उस प्रश्नको अन्यान्य गोप भी सुन रहे थे ॥ ३-४ ॥

श्रीभगवान् बोले—यह जो इन्द्रकी पूजा की जाती है, इसका क्या फल है ? विद्वान् लोग इसका कोई लौकिक फल बताते हैं या पारलौकिक ? ॥ ५ ॥

श्रीनन्दने कहा—श्यामसुन्दर ! देवराज इन्द्रका यह पूजन भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला परम उत्तम साधन है। भूतलपर इसके बिना मनुष्य कहीं और कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले—पिताजी ! इन्द्र आदि देवता अपने पूर्वकृत पुण्यकर्मोंके प्रभावसे ही सब ओर स्वर्गका सुख भोगते हैं। भोगद्वारा शुभकर्मका क्षय हो जानेपर उन्हें भी मर्त्यलोकमें आना पड़ता है। अतः उनकी सेवाको आप मोक्षका साधन मत मानिये। जिससे परमेष्ठी ब्रह्माको भी भय प्राप्त होता है, फिर उनके द्वारा पृथ्वीपर उत्पन्न किये गये प्राणियोंकी तो बात ही क्या है, उस कालको ही श्रेष्ठ विद्वान् सबसे उत्कृष्ट, अनन्त तथा सब प्रकारसे बलिष्ठ मानते हैं। इसलिये उस कालका ही आश्रय लेकर मनुष्यको सत्कर्मोंद्वारा सुरेश्वर यज्ञपति परमात्मा श्रीहरिका भजन करना चाहिये। अपने सम्पूर्ण सत्कर्मोंके फलका मनसे परित्याग करके जो श्रीहरिका भजन करता है, वही परममोक्षको प्राप्त होता है; दूसरे किसी प्रकारसे उसको मोक्ष नहीं मिलता। गौ, ब्राह्मण, साधु, अग्नि, देवता, वेद तथा धर्म—ये भगवान् यज्ञेश्वरकी विभूतियाँ हैं। इनको आधार बनाकर जो श्रीहरिका भजन करते हैं, वे सदा इस लोक और परलोकमें सुख पाते हैं। भगवान्के वक्षःस्थलसे प्रकट हुआ वह गिरीन्द्रोंका सम्राट् गोवर्धन नामक पर्वत महर्षि पुलस्त्यके प्रभावसे इस व्रजमण्डलमें आया है। उसके दर्शनसे मनुष्यका इस जगत्में पुनर्जन्म नहीं होता। गौओं, ब्राह्मणों तथा देवताओंका पूजन करके आज ही यह उत्तम भेंट-सामग्री महान् गिरिराजको अर्पित की जाय। यह यज्ञ नहीं, यज्ञोंका राजा है। यही मुझे प्रिय है। यदि आप यह काम नहीं करना चाहते तो जाइये; जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये ॥ ७-१२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उन गोपोंमें सन्नन्दनामक एक बड़े बूढ़े गोप थे, जो बड़े नीतिवेत्ता थे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर नन्दजीके सुनते हुए श्रीकृष्णसे कहा ॥ १३ ॥

सन्नन्द बोले—नन्दनन्दन ! तात ! तुम तो साक्षात् ज्ञानकी निधि हो। गिरिराजकी पूजा किस विधिसे करनी होगी, यह ठीक-ठीक बताओ ॥ १४ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—जहाँ गिरिराजकी पूजा करनी हो, वहाँ उनके नीचेकी धरतीको गोबरसे लीप-पोतकर वहीं सब सामग्री रखनी चाहिये। इन्द्रियोंको वशमें रखकर बड़े भक्ति-भावसे 'सहस्रशीर्षा०' मन्त्र पढ़ते हुए, ब्राह्मणोंके साथ रहकर गङ्गाजल या यमुनाजलसे गिरिराजको स्नान कराना चाहिये। फिर श्वेत गोदुग्धकी धारासे तथा पञ्चामृतसे स्नान कराकर, पुनः यमुना-जलसे नहलाये। उसके बाद गन्ध, पुष्प, वस्त्र, आसन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, माला, आभूषण-समूह तथा उत्तम दीपमाला समर्पित करके गिरिराजकी परिक्रमा करे। इसके बाद साष्टाङ्ग प्रणाम करके, दोनों हाथ जोड़कर, इस प्रकार कहे—'जो श्रीवृन्दावनके अङ्कमें अवस्थित तथा गोलोकके मुकुट हैं, पूर्णब्रह्म परमात्माके

छत्ररूप उन गिरिराज गोवर्धनको हमारा बारंबार नमस्कार है।' तदनन्तर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। उसके बाद घंटा, झाँझ और मृदङ्ग आदि मधुर ध्वनि करनेवाले बाजे बजाते हुए गिरिराजकी आरती करे। तदनन्तर 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्०' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उनके ऊपर लावाकी वर्षा करे और श्रद्धापूर्वक गिरिराजके समीप अन्नकूट स्थापित करे। फिर चौसठ कटोरोंको पाँच पङ्क्तियोंमें रक्खे और उनमें तुलसीदल-मिश्रित गङ्गा-यमुनाका जल भर दे। फिर एकाग्रचित्त हो गिरिराजकी सेवामें छप्पन भोग अर्पित करे। तत्पश्चात् अग्निमें होम करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा गौओं और देवताओंपर भी गन्ध-पुष्प चढ़ाये। अन्तमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सुगन्धित मिष्टान्न भोजन कराकर, अन्य लोगोंको—यहाँतक कि चण्डाल भी छूटने न पाये—उत्तम भोजन दे। इसके बाद गोपियों और गोपोंके समुदाय गौओंके सामने नृत्य करें, मङ्गल-गीत गायें और जय-जयकार करते हुए गोवर्धन-पूजनोत्सव सम्पन्न करें ॥ १५—२६ ॥

जहाँ गोवर्धन नहीं हैं, वहाँ गोवर्धन-पूजाकी क्या विधि है, यह सुनो। गोबरसे गोवर्धनका बहुत ऊँचा आकार बनाये। फिर उन्हें पुष्प-समूहों, लता-जालों और सींकोंसे सुशोभित करके, उसे ही गोवर्धन-गिरि मानकर सदा भूतल-पर मनुष्योंको उसकी पूजा करनी चाहिये। यदि कोई गोवर्धनकी शिला ले जाकर पूजन करना चाहे तो जितना बड़ा प्रस्तर ले जाय, उतना ही सुवर्ण उस पर्वतपर छोड़ दे। जो बिना सुवर्ण दिये वहाँकी शिला ले जायगा, वह महा-रौरव नरकमें पड़ेगा। शालग्राम भगवान्‌की सदा सेवा करनी चाहिये। शालग्रामके पूजकको पातक उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे पद्मपत्रपर जलका लेप नहीं होता। जो श्रेष्ठ द्विज गिरिराज-शिलाकी सेवा करता है, वह सातों द्वीपोंसे युक्त भूमण्डलके तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पाता है। जो प्रतिवर्ष गिरिराजकी महापूजा करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुख भोगकर परलोकमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥२७—३२॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगिरिराजकी पूजा-विधि-वर्णन' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

गोपोंद्वारा गिरिराज-पूजनका महोत्सव

श्रीनारदजी कहते हैं—साक्षात् श्रीनन्दनन्दनकी यह बात सुनकर श्रीनन्द और सन्नन्द आदि व्रजेश्वरगण बड़े विस्मित हुए। फिर उन्होंने पहलेका निश्चय त्यागकर श्रीगिरिराज-पूजनका आयोजन किया। मिथिलेश्वर! नन्दराज अपने दोनों पुत्र—बलराम और श्रीकृष्णको तथा भेंट-पूजाकी सामग्रीको लेकर यशोदाजीके साथ गिरिराज-पूजनके लिये उत्कण्ठित हो प्रसन्नतापूर्वक गये। उनके साथ गर्गजी भी थे। वे अपनी पत्नीके साथ बहुत ऊँचे चित्र विचित्र वर्णोंसे रँगे हुए तथा सोनेकी साँकल धारण करनेवाले हाथीपर आरूढ़ हो, गौओंके साथ गोवर्धन पर्वतके समीप गये, मानो इन्द्राणीके साथ इन्द्र ऐरावतपर आरूढ़ हो शरद् ऋतुके श्वेत बादलोंके साथ उपस्थित हुए हों। नन्द, उपनन्द और वृषभानुगण अपने पुत्रों, पोतों और पत्नियोंके साथ यज्ञका सारा सम्भार लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे। सहस्रों बालरविकी दीप्तिसे प्रकाशित शिबिकामें आरूढ़ हो दिव्य वस्त्रों तथा रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित श्रीराधा सखी-समुदायके साथ वहाँ आकर उसी प्रकार सुशोभित हुई, जैसे शची चकोरी और भ्रमरियोंके साथ शोभा पाती हों ॥ १—५ ॥

राजन्! श्रीराधाके दोनों बगलमें आयी हुई विविध अलंकारोंसे अलंकृत तथा करोड़ों सखियोंसे आवृत दो सर्व-श्रेष्ठ चन्द्रमुखी सखियाँ—ललिता और विशाखा—चारु चँवर डुलाती हुई शोभा पाती थीं। नरेश्वर! इसी प्रकार रमा, विरजा, माधवी, माया, यमुना और गङ्गा आदि बत्तीस सखियाँ, आठ सखियाँ, सोलह सखियाँ और उन सबके यूथमें सम्मिलित असंख्य सखियाँ वहाँ आयीं। मिथिलानिवासिनी, कोसल-प्रदेशवासिनी तथा अयोध्यापुरनिवासिनी, श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, यज्ञसीतास्वरूपा तथा वनवासिनी गोपियोंका समुदाय भी वहाँ उपस्थित हुआ। रमा आदि वैकुण्ठवासिनी देवियाँ, वैकुण्ठसे भी ऊपरके लोकोंमें रहनेवाली दिव्याङ्गनाएँ, परम उज्ज्वल श्वेतद्वीपकी निवासिनी बालाएँ और ध्रुवादि लोकों तथा लोकाचलमें रहनेवाला देवीरूपा गोपाङ्गनाओंका दल भी वहाँ आ गया। जो समुद्रसे उत्पन्न लक्ष्मीकी सखियाँ थीं, दिव्य गुणत्रयमयी अङ्गनाएँ थीं, अदिव्य

विमानचारियोंकी वनिताएँ थीं; जो ओषधिस्वरूपा थीं, जो जालंधरके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ थीं, जो समुद्र-कन्याएँ थीं तथा जो बर्हिष्मतीनगरी तथा सुतल आदि लोकोंमें निवास करनेवाली थीं, उन समस्त दिव्याङ्गनाओंका समुदाय गिरिराज गोवर्धनके पास आकर विराजमान हुआ। इसी प्रकार अप्सराओं, समस्त नागकन्याओं तथा व्रजवासिनियोंके यूथ भी वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो, हाथोंमें पूजन-सामग्री और प्रदीप लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे। बालक, युवक और वृद्ध गोप भी पीताम्बर, पगड़ी तथा मोरपंखसे मण्डित तथा सुन्दर हार, गुञ्जा और वनमालाओंसे विभूषित हो, नूतन यष्टि तथा वेणु लिये, वहाँ आकर शोभा पाने लगे। गिरिराज हिमालयके मुखसे उस उत्सवका समाचार सुनकर गङ्गाधर शिव मस्तकपर जटा-जूट बाँधे, हाथमें कपाल लिये, अङ्गोंमें चिताकी भस्म लगाये, सर्पोंकी माला तथा कंगनोंसे विभूषित हो, भाँग, धतूर और विष पीकर मत्त हुए, गिरिराज-नन्दिनी उमाके साथ आदिवाहन नन्दीश्वरपर आरूढ हो, प्रमथगणोंसे घिरे हुए, गिरिराज-मण्डलमें आये। मुख्य-मुख्य राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, सिद्धेश्वर, हंस आदि योगेश्वर तथा सहस्रों ब्राह्मण-वृन्द गिरिराजका दर्शन करनेके लिये आस पास एकत्र हो गये ॥ ६—१५ ॥

गोवर्धन पर्वतकी एक-एक शिला रत्नमयी हो गयी। उसके सुवर्णमय शृङ्ग चारों ओर अपनी दीप्ति फैलाने लगे। राजन्! वह पर्वत मतवाले भ्रमरों तथा निर्झर-शोभित कन्दराओंसे उन्नतकाय गजराजकी शोभा धारण करने लगा। उसी समय मेरु और हिमालय आदि गिरीन्द्र दिव्य रूप धारण करके, भेंट और माङ्गलिक वस्तुएँ हाथमें लिये मूर्तिमान् गोवर्धनको प्रणाम करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णकी बतायी हुई विधिके अनुसार द्विजोंद्वारा गोवर्धन-पूजन सम्पन्न करके, ब्राह्मणों, अग्नियों तथा गोधनकी सम्यक् पूजा करनेके पश्चात्, व्रजेश्वर नन्दने गिरिराजकी सेवामें बहुत सा धन तथा बहुमूल्य भेंट-सामग्री प्रस्तुत की। नन्द, उपनन्द, वृषभानु, गोपीवृन्द तथा गोपगण नाचने, गाने और बाजे बजाने लगे। उन सबके साथ हर्षसे भरे हुए श्रीकृष्णने गिरिराजकी परिक्रमा की। आकाशसे देवता फूल बरसाने लगे और भूतलवासी जनसमुदाय लाजा (लावा, या खील) छींटने लगा। उस यज्ञमें गिरीन्द्रोंका सम्राट् गोवर्धन लोगोंसे घिरकर किसी महाराजके समान सुशोभित होने लगा। साक्षात् श्रीकृष्ण भी व्रजस्थित शैल गोवर्धनके बीचसे एक दूसरा विशाल रूप धारण करके निकले और 'मैं गिरिराज गोवर्धन हूँ'—यों कहते हुए वहाँका सारा अन्नकूट भोग लगाने लगे। गोपालों और गोपियोंके समुदायमें जो मुख्य-मुख्य लोग थे, उन्होंने गिरिका यह प्रभाव अपनी आँखों देखा तथा गिरिराजको वहाँ वर देनेके लिये उद्यत देख सब-के-सब आश्चर्यचकित हो उठे। सबके मनमें अपूर्व उल्लास छा गया ॥ १६—२२ ॥

उस समय गोपोंने कहा—प्रभो! आज हमने जान लिया कि आप साक्षात् गिरिराज देवता हैं। स्वयं नन्द-नन्दनने हमें आपके दर्शनका अवसर दिया है। आपकी कृपासे हमारा गोधन और बन्धुवर्ग प्रतिदिन इस भूतलपर वृद्धिको प्राप्त हो। 'ऐसा ही होगा'—यों कहकर किरीट और केयूर आदि आभूषणोंसे मनोहर अङ्गवाले दिव्यरूपधारी गिरिराजराज गोवर्धन क्षणभरमें वहा उनके निकट ही अन्तर्धान हो गये। तब नन्द, उपनन्द, वृषभानु, बलराम, वृषभानुराज सुचन्द्र, श्रीनन्दराज, श्रीहरि एवं समस्त गोप-गोपीगण अपने गोधनोंके साथ वहाँसे चले। ब्राह्मण, योगेश्वर-समुदाय, सिद्धसंघ, शिव आदि देवता तथा अन्य सब लोग गिरिराजको प्रणाम और उनका पूजन करके प्रसन्नता-पूर्वक अनिच्छासे अपने-अपने घरको गये। राजन्! श्रीकृष्ण-चन्द्रके इस उत्तम चरित्रका तथा गिरिराजराजके उस विचित्र महोत्सवका मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया। यह पावन प्रसङ्ग बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला है ॥ २३—२७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें गिरिराजखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गिरिराज-महोत्सवका वर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

श्रीकृष्णका गोवर्धन पर्वतको उठाकर इन्द्रके द्वारा क्रोधपूर्वक करायी गयी घोर जलवृष्टिसे रक्षा करना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर मेरे मुखसे अपने यज्ञका लोप तथा गोवर्धन-पूजनोत्सवके सम्पन्न होनेका समाचार सुनकर देवराज इन्द्रने बड़ा क्रोध किया। उन्होंने उस सांवर्तक नामक मेघगणको, जिसका बन्धन केवल
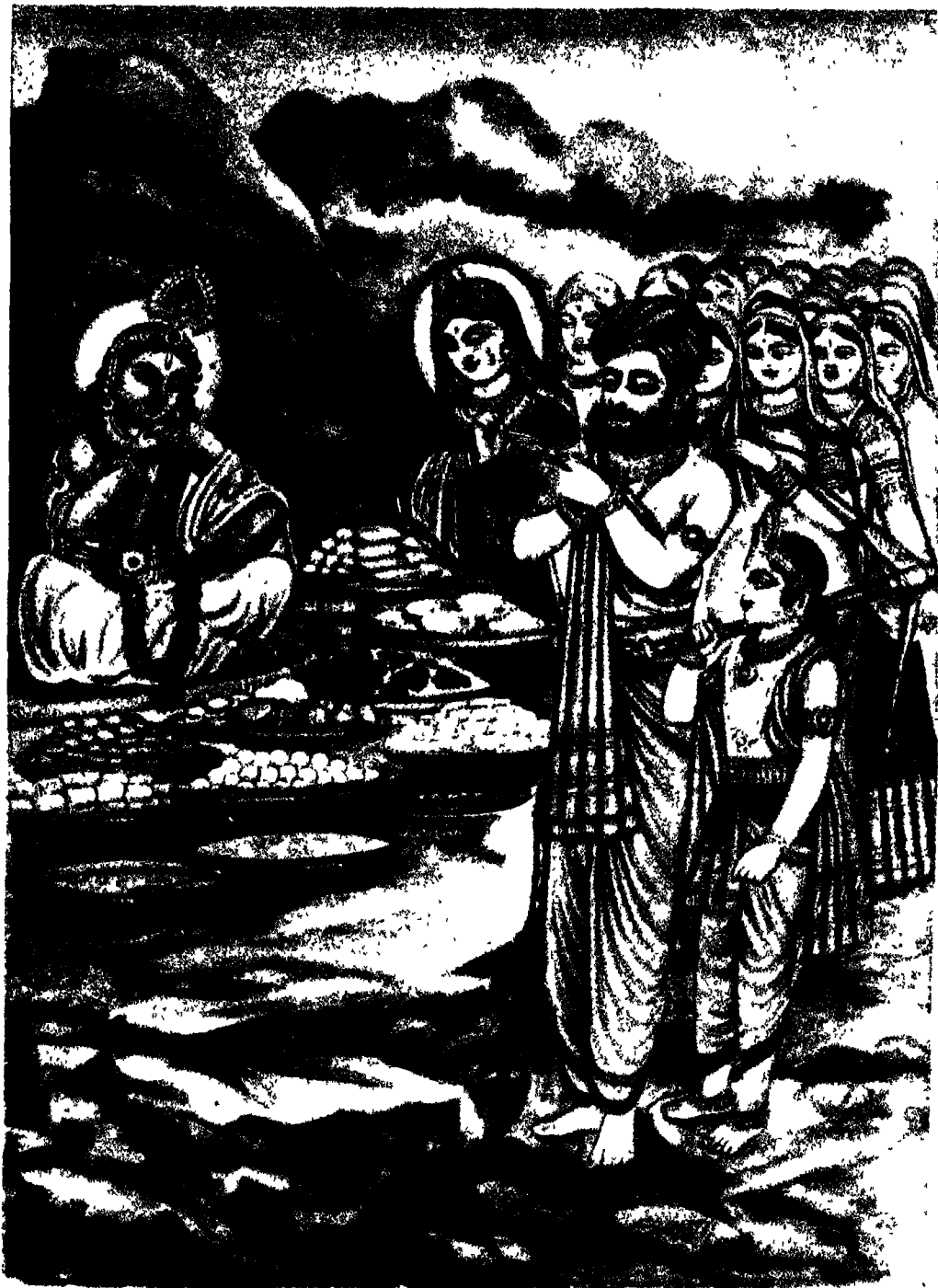
गिरिराजरूपसे श्रीकृष्णके द्वारा अन्नकूट-भोजन [गिरिराज० अ० २

प्रलयकालमें खोला जाता है, बुलाकर तत्काल व्रजका विनाश कर डालनेके लिये भेजा। आज्ञा पाते ही विचित्र वर्णवाले मेघगण रोषपूर्वक गर्जना करते हुए चले। उनमें कोई काले, कोई पीले और कोई हरे रंगके थे। किन्हींकी कान्ति इन्द्रगोप (बीरबहूटी) नामक कीड़ोंकी तरह लाल थी। कोई कपूरके समान सफेद थे और कोई नील कमलके समान नीली प्रभासे युक्त थे। इस तरह नाना रंगोंके मेघ मदोन्मत्त हो हाथीके समान मोटी वारिधाराओंकी वर्षा करने लगे। कुछ चञ्चल मेघ हाथीकी सूँड़के समान मोटी धाराएँ गिराने लगे। पर्वतशिखरके समान करोड़ों प्रस्तरखण्ड वहाँ बड़े वेगसे गिरने लगे। साथ ही प्रचण्ड आँधी चलने लगी, जो वृक्षों और घरोंको उखाड़ फेंकती थी। मैथिलेन्द्र! प्रलयंकर मेघों तथा वज्रपातोंका महाभयंकर शब्द व्रजभूमिपर व्याप्त हो गया। उस भयंकर नादसे सातों लोकों और पातालोंसहित ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये और आकाशसे भूतलपर तारे टूट-टूटकर गिरने लगे। अब तो प्रधान-प्रधान गोप भयभीत हो, प्राण बचानेकी इच्छासे अपने-अपने शिशुओं और कुटुम्बको आगे करके नन्दमन्दिरमें आये। बलरामसहित परमेश्वर श्रीनन्दनन्दनकी शरणमें जाकर समस्त भयभीत व्रजवासी उन्हें प्रणाम करके कहने लगे ॥ १–१० ॥

गोप बोले—महाबाहु राम! राम!! और व्रजेश्वर कृष्ण! कृष्ण!! इन्द्रके दिये हुए इस महान् कष्टसे आप अपने जनोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। तुम्हारे कहनेसे हमलोगोंने इन्द्रयाग छोड़कर गोवर्धन पूजाका उत्सव मनाया, इससे आज इन्द्रका कोप बहुत बढ़ गया है। अब शीघ्र बताओ, हमें क्या करना चाहिये? ॥ ११-१२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! गोपी और ग्वालोंसे युक्त गोकुलको व्याकुल देख तथा बछड़ोंसहित गो-समुदायको भी पीड़ित निहार, भगवान् बिना किसी घबराहटके बोले ॥ १३ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—आपलोग डरें नहीं। समस्त परिकरोंके साथ गिरिराजके तटपर चलें। जिन्होंने तुम्हारी पूजा ग्रहण की है, वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर श्रीहरि स्वजनोंके साथ गोवर्धनके पास गये और उस पर्वतको उखाड़कर एक ही हाथसे खेल खेलमें ही धारण कर लिया। जैसे बालक बिना श्रमके ही गोबर-छत्ता उठा लेता है; अथवा जैसे हाथी अपनी सूँड़से कमलको अनायास उखाड़ लेता है; उसी प्रकार कृपालु करुणामय प्रभु श्रीव्रजराजनन्दन गोवर्धन पर्वतको धारण करके सुशोभित हुए ॥ १५-१६ ॥

फिर वे गोपोंसे बोले—'मैया! बाबा! व्रजवल्लभेश्वरगण! आप सब लोग सारी सामग्री, सम्पूर्ण धन तथा गौओंके साथ गिरिराजके गर्तमें समा जाइये। यही एक ऐसा स्थान है, जहाँ इन्द्रका कोई भय नहीं है' ॥ १७ ॥

श्रीहरिका यह वचन सुनकर गोधन, कुटुम्ब तथा अन्य समस्त उपकरणोंके साथ वे गोवर्धन पर्वतके गड्ढेमें समा गये। नरेश्वर! श्रीकृष्णका अनुमोदन पाकर बलरामजीसहित समस्त सखा ग्वाल-बालोंने पर्वतको रोकनेके लिये अपनी-अपनी लाठियोंको भी लगा दिया। पर्वतके नीचे जलप्रवाहको आता देख भगवान्ने मन ही मन सुदर्शनचक्र तथा शेषका स्मरण करके उसके निवारणके लिये आज्ञा प्रदान की। मिथिलेश्वर! उस पर्वतके ऊपर स्थित हो, कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी सुदर्शनचक्र गिरती हुई जलकी धाराओंको उसी प्रकार पीने लगा, जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको पी लिया था। उस पर्वतके नीचे शेषनागने चारों ओरसे गोलाकार स्थित हो, उधर आते हुए जलप्रवाहको उसी तरह रोक दिया, जैसे तटभूमि समुद्रको रोके रहती है। गोवर्धनधारी श्रीहरि एक सप्ताहतक सुस्थिरभावसे खड़े रहे और समस्त गोप चकोरोंकी भाँति श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर निहारते हुए बैठे रहे। तदनन्तर मतवाले ऐरावत हाथीपर चढ़कर, अपनी सेना साथ ले, रोषसे भरे हुए देवराज इन्द्र व्रजमण्डलमें आये। उन्होंने दूरसे ही नन्दव्रजको नष्ट कर डालनेकी इच्छासे अपना वज्र चलानेकी चेष्टा की। किंतु माधवने वज्रसहित उनकी भुजाको स्तम्भित कर दिया। फिर तो इन्द्र भयभीत हो गये और जैसे सिंहकी चोट खाकर हाथी भागे, उसी प्रकार वे सांवर्तकगणों तथा देवताओंके साथ सहसा भाग चले। नरेश्वर! उसी समय सूर्योदय हो गया। बादल इधर-उधर छँट गये। हवाका वेग रुक गया और नदियोंमें बहुत थोड़ा पानी रह गया। पृथ्वीपर पङ्कका नाम भी नहीं था। आकाश निर्मल हो गया। चौपाये और पक्षी सब ओर सुखी हो गये। तब भगवान्की आज्ञा पाकर समस्त गोप पर्वतके गर्तसे अपना-अपना गोधन लेकर धीरे-धीरे बाहर निकले ॥ १८–२९ ॥

उसके बाद गोवर्धनधारीने अपने सखाओंसे कहा—'तुमलोग भी निकलो।' तब वे बोले—'नहीं, हमलोग अपने बलसे पर्वतको रोके हुए हैं; तुम्हीं निकल जाओ।' उन सबको इस तरहकी बातें करते देख महामना गोवर्धन-धारी श्रीहरिने पर्वतका आधा भार उनपर डाल दिया। बेचारे निर्बल गोप-बालक उस भारसे दबकर गिर पड़े। तब उन सबको उठाकर श्रीकृष्णने उनके देखते-देखते पर्वतको पहलेकी ही भाँति लीलापूर्वक रख दिया। नरेश्वर! उस समय प्रमुख गोपियों और प्रधान-प्रधान गोपोंने नन्दनन्दन-का गन्ध और अक्षत आदिसे पूजन करके उन्हें दही दूधका भोग अर्पित किया और उनको परमात्मा जानकर सबने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। राजन्! नन्द, यशोदा, रोहिणी, बलराम तथा सन्नन्द आदि वृद्ध गोपोंने श्रीकृष्णको हृदयसे लगाकर धनका दान किया और दयासे द्रवित हो, उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान किये। तदनन्तर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके, समस्त व्रजवासी सफलमनोरथ हो नन्दनन्दनके समीप गाने, बजाने और नाचने लगे तथा उन श्रीहरिको आगे करके अपने घरको लौटे। उसी समय हर्षसे भरे हुए देवता वहाँ नन्दनवनके सुन्दर-सुन्दर फूलोंकी वर्षा करने लगे तथा आकाशमें खड़े हुए प्रधान-प्रधान गन्धर्व और सिद्धोंके समुदाय गोवर्धनधारीके यश गाने लगे ॥ ३०—३७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गोवर्धनोद्धारण' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

इन्द्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति तथा सुरभि और ऐरावतद्वारा उनका अभिषेक

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर गर्व गल जानेके कारण देवराज इन्द्र देवताओंके साथ उस पर्वतपर आये और एकान्तमें श्रीकृष्णको प्रणाम करके उनसे बोले ॥ १ ॥

इन्द्रने कहा—आप देवताओंके भी देवता, सर्वसमर्थ, पूर्ण परमेश्वर, पुराण पुरुष, पुरुषोत्तमोत्तम, प्रकृतिसे परे तथा परात्पर श्रीहरि हैं। स्वर्गके स्वामी जगत्पते! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। धर्म, गौ तथा वेदकी रक्षा करनेके लिये दस अवतार धारण करनेवाले भगवान् आप ही हैं। इस समय भी आप परिपूर्णतम देवता कंसादि दैत्यराजोंके विनाशके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं। आपकी मायासे जिसकी चित्तवृत्ति मोहित है, जो मदसे उन्मत्त और अवहेलनाका पात्र है, वही मैं आपका अपराधी इन्द्र हूँ। द्युपते! जैसे पिता पुत्रके अपराधको क्षमा कर देता है, उसी प्रकार आप मुझ अपराधीको क्षमा करें। देवेश्वर! जगन्निवास! मुझपर प्रसन्न होइये। गोवर्धनको उठानेवाले आप गोविन्दको नमस्कार है। गोकुलनिवासी गोपालको नमस्कार है। गोपालोंके पति, गोपीजनोंके भर्ता और गिरिराजके उद्धर्ताको नमस्कार है। करुणाकी निधि तथा जगत्के विधाता, विश्व-मङ्गलकारी तथा जगत्के निवासस्थान आप परमात्माको प्रणाम है। जो विश्वविमोहन तथा करोड़ों कामदेवोंके भी मनको मथ देनेवाले हैं, उन वृषभानुनन्दिनीके स्वामी नन्दराजकुलदीपक परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। असंख्य ब्रह्माण्डोंके पति, गोलोकधामके अधिपति एवं बलरामके साथ रहनेवाले आप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णको बारंबार नमस्कार है, नमस्कार है ॥ २—५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इन्द्रद्वारा किये गये इस स्तोत्रका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करेगा, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ सुलभ होंगी और उसे किसी संकटसे भय नहीं होगा।* इस प्रकार भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करके देवराज

* त्वं देवदेवः परमेश्वरः प्रभुः पूर्णः पुराणः पुरुषोत्तमोत्तमः ।
परात्परस्त्वं प्रकृतेः परो हरिर्मां पाहि पाहि द्युपते जगत्पते ॥
दशावतारो भगवांस्त्वमेव रिरक्षया धर्मगवां श्रुतेश्च ।
अद्यैव जातः परिपूर्णदेवः कंसादिदैत्येन्द्रविनाशनाय ॥
त्वन्मायया मोहितचित्तवृत्तिं मदोद्धतं हेलनभाजनं माम् ।
पितेव पुत्रं द्युपते क्षमस्व प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥
ॐ नमो गोवर्धनोद्धरणाय गोविन्दाय गोकुलनिवासाय गोपालाय गोपालपतये गोपीजनभर्त्रे गिरिजोद्धर्त्रे करुणानिधये जगद्विधये जगन्मङ्गलाय जगन्निवासाय जगन्मोहनाय कोटिमन्मथमन्मथाय वृषभानुसुतावराय श्रीनन्दराजकुलप्रदीपाय श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय

इन्द्रने हाथ जोड़कर समस्त देवताओंके साथ उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई सुरभि गौने उस सुरम्य गोवर्धन पर्वतपर आकर अपनी दुग्धधारासे गोपेश्वर श्रीकृष्णको स्नान कराया। फिर मत्त गजराज ऐरावतने गङ्गाजलसे भरी हुई चार सूँड़ोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक किया। राजन्! फिर हर्षोल्लाससे भरे हुए सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व और किंनर ऋषियोंको साथ ले वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक पुष्पवर्षा करते हुए श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ६—१० ॥

राजन्! श्रीकृष्णका अभिषेक सम्पन्न हो जानेपर वह महान् पर्वत गोवर्धन हर्ष एवं आनन्दमें द्रवीभूत होकर सब ओर बहने लगा। तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उसके ऊपर अपना हस्त-कमल रक्खा। नरेश्वर! उस पर्वतपर भगवान्‌के हाथका वह चिह्न आज भी दृष्टिगोचर होता है। वह परम पवित्र तीर्थ हो गया, जो मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाला है। वहीं चरणचिह्न भी है। मैथिल! उसे भी परम तीर्थ समझो। जहाँ हस्तचिह्न है, वहीं उतना ही बड़ा चरणचिह्न भी हुआ। मैथिल! उसी स्थानपर सुरभि देवीके चरणचिह्न भी बन गये। मिथिलेश्वर! श्रीकृष्णके स्नानके निमित्त जो आकाशगङ्गाका जल गिरा, उससे वहीं 'मानसी गङ्गा' प्रकट हो गयीं, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली हैं। नरेश्वर! सुरभिकी दुग्ध-धाराओंसे गोविन्दने जो स्नान किया, उससे उस पर्वतपर 'गोविन्दकुण्ड' प्रकट हो गया, जो बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला परमपावन तीर्थ है। कभी-कभी उस तीर्थके जलमें दूधका-सा स्वाद प्रकट होता है। उसमें स्नान, करके मनुष्य साक्षात् गोविन्दके धामको प्राप्त होता है। इस प्रकार वहाँ श्रीहरिकी परिक्रमा करके, उन्हें प्रणामपूर्वक बलि (पूजोपहार) समर्पित करनेके पश्चात्, इन्द्र आदि देवता जय-जयकारपूर्वक पुष्प बरसाते हुए बड़े सुखसे स्वर्गलोकको लौट गये। राजेन्द्र! जो श्रीकृष्णाभिषेककी इस कथाको सुनता है, वह दस अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथ-स्नानसे अधिक पुण्य फलको पाता है। फिर वह परम-विधाता परमेश्वर श्रीकृष्णके परमपदको प्राप्त होता है ॥ ११—१९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका अभिषेक' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

गोपोंका श्रीकृष्णके विषयमें संदेहमूलक विवाद तथा श्रीनन्दराज एवं वृषभानुवरके द्वारा समाधान

श्रीनारदजी कहते हैं—एक समय समस्त गोपों और गोपियोंने नन्दनन्दनके उस अद्भुत चरित्रको देखकर यशोदासहित नन्दके पास जाकर कहा ॥ १ ॥

गोप बोले—हे यशोमय गोपराज! तुम्हारे वंशमें पहले कभी कोई भी ऐसा बालक नहीं उत्पन्न हुआ था, जो पर्वत उठा ले। तुम स्वयं तो एक शिलाखण्ड भी सात दिनतक नहीं उठाये रह सकते। कहाँ तो सात वर्षका बालक और कहाँ उसके द्वारा इतने बड़े गिरिराजको हाथपर उठाये रखना। इससे तुम्हारे इस महाबली पुत्रके विषयमें हमें शङ्का होती है। जैसे गजराज एक कमल उठा ले और जैसे बालक गोबरछत्ता हाथमें ले ले, उसी तरह इसने खेल-ही-खेलमें एक हाथसे गिरिराजको उठा लिया था ॥ २—४ ॥

यशोदे! तुम गोरी हो, और नन्दजी! तुम भी सुवर्ण-सदृश गौरवर्णके हो; किंतु यह श्यामवर्णका उत्पन्न हुआ है। इसका रूप-रंग इस कुलके लोगोंसे सर्वथा विलक्षण है। यह बालक तो ऐसा है, जैसे क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हो। बलभद्रजी भी विलक्षण हैं, किंतु इनकी

असंख्यब्रह्माण्डपतये गोलोकधामधिष्णाधिपतये स्वयं भगवते सबलाय नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।

श्रीनारद उवाच

इति शक्रकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य संकटाज्ज भयं भवेत् ॥

(गर्ग०, गिरिराज० ४ । २-६)

विलक्षणता कोई दोषकी बात नहीं है; क्योंकि इनका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ है। यदि तुम सच-सच नहीं बताओगे तो हम तुम्हें जातिसे बहिष्कृत कर देंगे। अथवा यह बताओ कि गोपकुलमें इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? यदि नहीं बताओगे तो हमसे तुम्हारा झगड़ा होगा ॥ ५—७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—गोपोंकी बात सुनकर यशोदाजी तो भयसे काँप उठीं, किंतु उस समय क्रोधसे भरे हुए गोपगणोंसे नन्दराज इस प्रकार बोले ॥ ८ ॥

श्रीनन्दजीने कहा—गोपगण! मैं एकाग्रचित्त होकर गर्गजीकी कही हुई बात तुम्हें बता रहा हूँ, जिससे तुम्हारे मनकी चिन्ता और व्यथा शीघ्र दूर हो जायगी। पहले 'कृष्ण'शब्दके अक्षरोंका अभिप्राय सुनो- "'ककार' कमलाकान्तका वाचक है; 'ऋकार' रामका बोधक है; 'षकार' श्वेतद्वीपनिवासी षड्‌विध ऐश्वर्य-गुणोंके स्वामी भगवान् विष्णुका वाचक है; 'णकार' साक्षात् नरसिंहस्वरूप है; 'अकार' उस अक्षर पुरुषका बोधक है, जो अग्निको भी पी जाता है। अन्तमें जो 'विसर्ग' नामक दो बिन्दु हैं, वे 'नर' और 'नारायण' ऋषियोंके प्रतीक हैं। ये छहों पूर्णतत्त्व जिस परिपूर्णतम परमात्मामें लीन हैं, वही साक्षात् 'कृष्ण' है। इसी अर्थमें इस बालकका नाम 'कृष्ण' कहा गया है। युगके अनुसार इसका वर्ण सत्ययुगमें 'शुक्ल', त्रेतामें 'रक्त' तथा द्वापरमें 'पीत' होता आया है। इस समय द्वापरके अन्त और कलियुगके आदिमें यह बालक 'कृष्ण'रूपको प्राप्त हुआ है, इस कारणसे यह नन्दनन्दन 'कृष्ण' नामसे विख्यात है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त—ये तीन प्रकारके अन्तःकरण 'आठ वसु' कहे गये हैं। इनके अधिष्ठाता देवता भी इसी नामसे प्रसिद्ध हैं। इन वसुओंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित होकर ये श्रीकृष्णदेव ही चेष्टा करते हैं, इसलिये इन्हें 'वासुदेव' कहा गया है ॥ ९—१५ ॥

"वृषभानुनन्दिनी राधा, जो कीर्तिके भवनमें प्रकट हुई है, उसके साक्षात् पति ये ही हैं; इसलिये इन्हें 'राधापति' भी कहा गया है। ये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं और सर्वत्र व्यापक होते हुए भी स्वरूपसे गोलोकधाममें विराजते हैं। नन्द! वे ही ये भगवान् भूतलका भार उतारने, कंसादि दैत्योंको मारने तथा भक्तोंका पालन करनेके लिये तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं। भरतवंशी नन्द! इस बालकके अनन्त नाम हैं, जो वेदोंके लिये भी गोपनीय हैं तथा इसकी लीलाओंके अनुसार और भी बहुत-से नाम विख्यात होंगे। अतः इसके कितने ही महान् विलक्षण कर्म क्यों न हों, उनके सम्बन्धमें कोई विस्मय नहीं करना चाहिये। गोपगण! अपने पुत्रके विषयमें गर्गजीकी कही हुई इस बातको सुनकर मैं कभी संदेह नहीं करता; क्योंकि पृथ्वीपर वेद-वाक्य और ब्राह्मण-वचन ही प्रमाण हैं" ॥ १६—२० ॥

गोप बोले—यदि महामुनि गर्गाचार्य तुम्हारे घर आये थे, तब उसी समय नामकरण-संस्कारमें तुमने भाई-बन्धुओंको क्यों नहीं बुलाया? चुपचाप अपने घरमेंही बालकका नामकरण संस्कार कर लिया! यह तुम्हारी अच्छी रीति है कि सारा कार्य घरमेंही गुप-चुप कर लिया जाय ॥ २१-२२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर क्रोधसे भरे हुए गोप नन्दमन्दिरसे निकलकर वृषभानुवरके पास गये। वृषभानुवर नन्दराजके साक्षात् सहायक थे, तथापि इसकी परवाह न करके जातीय संघटनके बलसे उन्मत्त हुए गोप उनके पास जाकर बोले ॥ २३-२४ ॥

गोपोंने कहा—हे वृषभानुवर! तुम हमारे ज्ञातिवर्गमें प्रधान और महामनस्वी हो। अतः गोपेश्वर भूपाल! तुम नन्दराजको जातिसे अलग कर दो ॥ २५ ॥

वृषभानुवर बोले—नन्दराजका क्या दोष है, जिससे मैं उनको त्याग दूँ? नन्दराज तो समस्त गोपोंके प्रिय, अपनी जातिके मुकुट तथा मेरे भी परम प्रिय हैं ॥ २६ ॥

गोप बोले—राजन्! महामते! यदि तुम नन्दराज-को नहीं छोड़ोगे तो हम सब व्रजवासी तुम्हें छोड़ देंगे। तुम्हारे घरमें कन्या बड़ी आयुकी होकर विवाहके योग्य हो गयी है और तुमने हमारी जातिके प्रधान होकर भी धन-सम्पत्तिके मदसे मतवाले हो अबतक उसे किसी श्रेष्ठ वरके हाथमें नहीं सौंपा है, इसलिये तुम्हारे ऊपर पाप चढ़ा हुआ है। महामते नरेश! आजसे हम तुम्हें जातिभ्रष्ट तथा अपनेसे अलग मान लेंगे; नहीं तो शीघ्र नन्दराजको छोड़ दो, छोड़ दो ॥ २७—२९ ॥

वृषभानुवरने कहा—गोपगण! मैं एकाग्रचित्त होकर गर्गजीकी कही हुई बात बता रहा हूँ, जिससे शीघ्र

ही तुम्हारी चिन्ता-व्यथा दूर हो जायगी। उन्होंने बताया है—"असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, लोकेश्वर, परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण नन्दगृहमें बालक होकर अवतीर्ण हुए हैं। उनसे बढ़कर श्रीराधाके लिये कोई वर नहीं है। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे भूमिका भार उतारने और कंसादिका वध करनेके लिये भूतलपर श्रीकृष्णका अवतार हुआ है। गोलोकमें 'श्रीराधा' नामकी जो श्रीकृष्णकी पटरानी हैं, वे ही तुम्हारे घरमें कन्यारूपसे अवतीर्ण हुई हैं। उन 'परा देवी'को तुम नहीं जानते। मैं इन दोनोंका विवाह नहीं कराऊँगा। इनका विवाह यमुनातटपर भाण्डीर-वनमें होगा। वृन्दावनके समीप निर्जन सुन्दर स्थलमें साक्षात् ब्रह्माजी पधारकर श्रीराधा तथा श्रीकृष्णका विवाह-कार्य सम्पन्न करायेंगे। अतः गोपप्रवर! तुम श्रीराधाको लोकचूडामणि साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्णकी अर्धाङ्गस्वरूपा एवं गोलोकधामकी महारानी समझो। तुम समस्त गोपगण भी गोलोकसे इस भूतलपर आये हो। इसी तरह गोपियाँ और गौएँ भी श्रीराधाकी इच्छासे ही गोलोकसे गोकुलमें आयी हैं।" यों कहकर साक्षात् महामुनि गर्गाचार्य जब चले गये, उसी दिनसे श्रीराधाके विषयमें मैं कभी कोई संदेह या शङ्का नहीं करता। इस भूतलपर ब्राह्मणवचन वेदवाक्यवत् प्रमाण है। गोपो! यह सब रहस्य मैंने तुम्हें सुना दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३०—३९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गोपविवाद' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

गोपोंका वृषभानुवरके वैभवकी प्रशंसा करके नन्दनन्दनकी भगवत्ताका परीक्षण करनेके लिये उन्हें प्रेरित करना और वृषभानुवरका कन्याके विवाहके लिये वरको देनेके निमित्त बहुमूल्य एवं बहुसंख्यक मौक्तिक-हार भेजना तथा श्रीकृष्णकी कृपासे नन्दराजका वधूके लिये उनसे भी अधिक मौक्तिकराशि भेजना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वृषभानुवरकी यह बात सुनकर समस्त व्रजवासी शान्त हो गये। उनका सारा संशय दूर हो गया तथा उनके मनमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ १ ॥

गोप बोले—राजन्! तुम्हारा कथन सत्य है। निश्चय ही यह राधा श्रीहरिकी प्रिया है। इसीके प्रभावसे भूतलपर तुम्हारा वैभव अधिक दिखायी देता है। हजारों मतवाले हाथी, चञ्चल घोड़े तथा देवताओंके विमान-सदृश करोड़ों सुन्दर रथ और शिबिकाएँ तुम्हारे यहाँ सुशोभित होती हैं। इतना ही नहीं, सुवर्ण तथा रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित कोटि-कोटि मनोहर गौएँ, विचित्र भवन, नाना प्रकारके मणिरत्न, भोजन-पान आदिका सर्वविध सौख्य—यह सब इस समय तुम्हारे घरमें प्रत्यक्ष देखा जाता है। तुम्हारा अद्भुत बल देखकर कंस भी पराभूत हो गया है।

महावीर! तुम कान्यकुब्ज देशके स्वामी साक्षात् राजा भलन्दनके जामाता हो तथा कुबेरके समान कोषाधिपति। तुम्हारे समान वैभव नन्दराजके घरमें कहीं नहीं है। नन्दराज तो किसान, गोयूथके अधिपति और दीन हृदयवाले हैं। प्रभो! यदि नन्दके पुत्र साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं तो हम सबके सामने नन्दके वैभवकी परीक्षा कराइये ॥ २—८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उन गोपोंकी बात सुनकर महान् वृषभानुवरने नन्दराजके वैभवकी परीक्षा की। मैथिलेश्वर! उन्होंने स्थूल मोतियोंके एक करोड़ हार लिये, जिनमें पिरोया हुआ एक-एक मोती एक-एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राके मोलपर मिलनेवाला था और उन सबकी प्रभा दूरतक फैल रही थी। नरेश्वर! उन सबको पात्रोंमें रखकर बड़े कुशल वर-वरणकारी लोगोंद्वारा सब गोपोंके देखते-देखते वृषभानुवरने नन्दराजजीके यहाँ भेजा। नन्दराजकी सभामें जाकर अत्यन्त कुशल वर-वरणकर्ता लोगोंने मौक्तिक-हारोंके पात्र उनके सामने रख दिये और प्रणाम करके उनसे कहा ॥ ९—१२ ॥

वर-वरणकर्ता बोले—नन्दराज! जिसके नेत्र नूतन विकसित कमलके समान शोभा पाते हैं तथा जो मुखमें करोड़ों चन्द्रमण्डलोंकी-सी कान्ति धारण करती है, उस अपनी पुत्री श्रीराधाको विवाहके योग्य जानकर वृषभानुवरने सुन्दर वरकी खोज करते हुए यह विचार किया है कि

तुम्हारे पुत्र मदनमोहन श्रीकृष्ण दिव्य वर हैं। गोवर्धन पर्वतको उठानेमें समर्थ, दिव्य भुजाओंसे सम्पन्न तथा उद्‌भट वीर हैं। प्रभो! वैश्यप्रवर!! यह सब देख और सोच-विचारकर वृषभानुवन्दित वृषभानुवरने हम सबको यहाँ भेजा है। आप वरकी गोद भरनेके लिये पहले कन्यापक्षकी ओरसे यह मौक्तिकराशि ग्रहण कीजिये। फिर इधरसे भी कन्याकी गोद भरनेके लिये पर्याप्त मौक्तिकराशि प्रदान कीजिये। यही हमारे कुलकी प्रसिद्ध रीति है॥ १३—१५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस द्रव्यराशिको देखकर उत्कृष्ट नन्दराज बड़े विस्मित हुए; तो भी वे कुछ विचारकर यशोदाजीसे 'उसके तुल्य रत्नराशि है या नहीं' इस बातको पूछनेके लिये वह सब सामान लेकर अन्तःपुरमें गये। वहाँ उस समय नन्द और यशस्विनी यशोदाने चिरकालतक विचार किया, किंतु (अन्ततोगत्वा) इसी निष्कर्षपर पहुँचे कि 'इस मौक्तिकराशिके बराबर दूसरी कोई द्रव्यराशि मेरे घरमें नहीं है। आज लोगोंमें हमारी सारी लाज गयी। हमलोगोंकी सब ओर हँसी उड़ायी जायगी। इस धनके बदलेमें हम दूसरा कौन-सा धन दें? क्या करें? श्रीकृष्णके इस विवाहके निमित्त हमारे द्वारा क्या किया जाना चाहिये? पहले तो जो कुछ वरके लिये आया है, उसे ग्रहण कर लेना चाहिये। पीछे अपने पास धन आनेपर वधूके लिये उपहार भेजा जायगा।' ऐसा विचार करते हुए नन्द और यशोदाजीके पास भगवान् अघमर्दन श्रीकृष्ण अलक्षितभावसे ही वहाँ आ गये। उन मौक्तिक-हारोंमेंसे सौ हार उन्होंने घरसे बाहर खेतोंमें ले जाकर, अपने हाथसे मोतीका एक-एक दाना लेकर, उन्होंने उसी भाँति सारे खेतमें छींट दिया, जैसे किसान अपने खेतोंमें अनाजके दाने बिखेर देता है। तदनन्तर नन्द भी जब उन मुक्तामालाओंकी गणना करने लगे, तब उनमें सौ मालाओंकी कमी देखकर उनके मनमें संदेह हुआ॥ १६—२२॥

नन्दजी बोले—हाय! पहले तो मेरे घरमें जिस रत्नराशिके समान दूसरी कोई रत्नराशि थी ही नहीं, उसमें भी अब सौकी कमी हो गयी। अहो! चारों ओरसे भाई-बन्धुओंके बीच मुझपर बड़ा भारी कलङ्क पोता जायगा। अथवा यदि श्रीकृष्ण या बलरामने खेलनेके लिये उसमेंसे कुछ मोती निकाल लिये हों तो अब दीनचित्त होकर मैं उन्हीं दोनों बालकोंसे पूछूँगा॥ २३-२४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार विचारकर नन्दने भी श्रीकृष्णसे उन मोतियोंके विषयमें आदरपूर्वक पूछा। तब जोरसे हँसते हुए गोवर्धनधारी भगवान् नन्दसे बोले॥ २५॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—बाबा! हम सारे गोप किसान हैं, जो खेतोंमें सब प्रकारके बीज बोया करते हैं; अतः हमने खेतमें मोतीके बीज बिखेर दिये हैं॥ २६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! बेटेके मुँहसे यह बात सुनकर व्रजेश्वर नन्दने उसे डाँट बतायी और उन सबको चुन-बीनकर लानेके लिये उसके साथ खेतोंमें गये। वहाँ मुक्ताफलके सैकड़ों सुन्दर वृक्ष दिखायी देने लगे, जो हरे-हरे पल्लवोंसे सुशोभित और विशालकाय थे। नरेश्वर! जैसे आकाशमें झुंड-के-झुंड तारे शोभा पाते हैं, उसी प्रकार उन वृक्षोंमें कोटि-कोटि मुक्ताफलोंके गुच्छे समूह-के-समूह लटके हुए सुशोभित हो रहे थे। तब हर्षसे भरे हुए व्रजेश्वर नन्दराजने श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर पहलेके समान ही मोटे-मोटे दिव्य मुक्ताफल उन वृक्षोंसे तोड़ लिये और उनके एक कोटि भार गाड़ियोंपर लदवाकर उन वर-वरणकर्ताओंको दे दिये। नरेश्वर! वह सब लेकर वे वरदर्शी लोग वृषभानुवरके पास गये और सबके सुनते हुए नन्दराजके अनुपम वैभवका वर्णन करने लगे॥ २७—३२॥

उस समय सब गोप बड़े विस्मित हुए। नन्दनन्दनको साक्षात् श्रीहरि जानकर समस्त व्रजवासियोंका संशय दूर हो गया और उन्होंने वृषभानुवरको प्रणाम किया। मिथिलेश्वर! उसी दिनसे व्रजके सब लोगोंने यह जान लिया कि श्रीराधा श्रीहरिकी प्रियतमा हैं और श्रीहरि श्रीराधाके प्राणवल्लभ हैं। मिथिलापते! जहाँ नन्दनन्दन श्रीहरिने मोती बिखेरे थे, वहाँ 'मुक्ता-सरोवर' प्रकट हो गया, जो तीर्थोंका राजा है। जो वहाँ एक मोतीका भी दान करता है, वह लाख मोतियोंके दानका फल पाता है, इसमें संशय नहीं है। राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे गिरिराज-महोत्सवका वर्णन किया, जो मनुष्योंके लिये भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ ३३—३७॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीहरिकी भगवत्ताका परीक्षण' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

गिरिराज गोवर्धनसम्बन्धी तीर्थोंका वर्णन

बहुलाश्वने पूछा—महायोगिन् ! आप साक्षात् दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न हैं; अतः यह बताइये कि महात्मा गिरिराजके आस-पास अथवा उनके ऊपर कितने मुख्य तीर्थ हैं ? ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन् ! समूचा गोवर्धन पर्वत ही सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ माना जाता है । वृन्दावन साक्षात् गोलोक है और गिरिराजको उसका मुकुट बताकर सम्मानित किया गया है । वह पर्वत गोपों, गोपियों तथा गौओंका रक्षक एवं महान् कृष्णप्रिय है । जो साक्षात् पूर्णब्रह्मका छत्र बन गया, उससे श्रेष्ठ तीर्थ दूसरा कौन है ! भुवनेश्वर एवं साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने, जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्पर पुरुष हैं, अपने समस्त जनोंके साथ इन्द्रयागको धता बताकर जिसका पूजन आरम्भ किया, उस गिरिराजसे अधिक सौभाग्यशाली कौन होगा ! मैथिल ! जिस पर्वतपर स्थित हो भगवान् श्रीकृष्ण सदा ग्वाल-बालोंके साथ क्रीड़ा करते हैं, उसकी महिमाका वर्णन करनेमें तो चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं । जहाँ बड़े बड़े पापोंकी राशिका नाश करनेवाली मानसी गङ्गा विद्यमान हैं, विशद गोविन्दकुण्ड तथा शुभ्र चन्द्र-सरोवर शोभा पाते हैं, जहाँ राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, ललिताकुण्ड, गोपालकुण्ड तथा कुसुमसरोवर सुशोभित हैं, उस गोवर्धनकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है । श्रीकृष्णके मुकुटका स्पर्श पाकर जहाँकी शिला मुकुटके चिह्नसे सुशोभित हो गयी, उस शिलाका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य देवशिरोमणि हो जाता है । जिस शिलापर श्रीकृष्णने चित्र अङ्कित किये हैं, वह चित्रित और पवित्र 'चित्रशिला' नामकी शिला आज भी गिरिराजके शिखरपर दृष्टिगोचर होती है । बालकोंके साथ क्रीड़ामें संलग्न श्रीकृष्णने जिस शिलाको बजाया था, वह महान् पापसमूहोंका नाश करनेवाली शिला 'वादिनी शिला' (बाजनी शिला)के नामसे प्रसिद्ध हुई । मैथिल ! जहाँ श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंके साथ कन्दुक-क्रीड़ा की थी, उसे 'कन्दुकक्षेत्र' कहते हैं । वहाँ 'शक्रपद' और 'ब्रह्मपद' नामक तीर्थ हैं, जिनका दर्शन और जिन्हें प्रणाम करके मनुष्य इन्द्रलोक और ब्रह्मलोकमें जाता है । जो वहाँकी धूलमें लोटता है, वह साक्षात् विष्णुपदको प्राप्त होता है । जहाँ माधवने गोपोंकी पगड़ियाँ चुरायी थीं, वह महापापहारी तीर्थ उस पर्वतपर 'औष्णीष' नामसे प्रसिद्ध है ॥ २—१४ ॥

एक समय वहाँ दधि बेचनेके लिये गोपवधुओंका समुदाय आ निकला । उनके नूपुरोंकी झनकार सुनकर मदनमोहन श्रीकृष्णने निकट आकर उनकी राह रोक ली । वंशी और वेत्र धारण किये श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंद्वारा उनको चारों ओरसे घेर लिया और स्वयं उनके आगे पैर रखकर मार्गमें उन गोपियोंसे बोले—'इस मार्गपर हमारी ओरसे कर वसूल किया जाता है, सो तुमलोग हमारा दान दे दो' ॥१५-१६॥

गोपियाँ बोलीं—तुम बड़े टेढ़े हो, जो ग्वाल-बालोंके साथ राह रोककर खड़े हो गये ! तुम बड़े गोरस-लम्पट हो । हमारा रास्ता छोड़ दो, नहीं तो माँ बापसहित तुमको हम बलपूर्वक राजा कंसके कारागारमें डलवा देंगी ॥ १७ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—अरी ! कंसका क्या डर दिखाती हो ? मैं गौओंकी शपथ खाकर कहता हूँ, महान् उग्रदण्ड धारण करनेवाले कंसको मैं उसके बन्धु-बान्धव-सहित मार डालूँगा; अथवा मैं उसे मथुरासे गोवर्धनकी घाटीमें खींच लाऊँगा ॥ १८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर बालकों-द्वारा पृथक्-पृथक् सबके दहीपात्र मँगवाकर नन्दनन्दनने बड़े आनन्दके साथ भूमिपर पटक दिये । गोपियाँ परस्पर कहने लगीं—'अहो ! यह नन्दका लाला तो बड़ा ही ढीठ और निडर है, निरङ्कुश है । इसके साथ तो बात भी नहीं करनी चाहिये । यह गाँवमें तो निर्बल बना रहता है और वनमें आकर वीर बन जाता है । हम आज ही चलकर यशोदाजी और नन्दरायजीसे कहती हैं ।' यों कहकर गोपियाँ मुस्कराती हुई अपने घरको लौट गयीं ॥१९—२१॥

इधर माधवने कदम्ब और पलाशके पत्तोंके दोने बनाकर बालकोंके साथ चिकना-चिकना दही ले-लेकर खाया । तबसे वहाँके वृक्षोंके पत्ते दोनेके आकारके होने लग गये । नृपेश्वर ! वह परम पुण्य क्षेत्र 'द्रोण' नामसे प्रसिद्ध हुआ । जो मनुष्य वहाँ दहीदान करके स्वयं भी पत्तेमें रक्खे हुए दहीको पीकर उस तीर्थको नमस्कार करता है, उसकी गोलोकसे कभी च्युति नहीं होती । जहाँ नेत्र मूँदकर माधव

बालकोंके साथ छुका-छिपीके खेल खेलते थे, वहाँ 'लौकिक' नामक पापनाशन तीर्थ हो गया। श्रीहरिकी लीलासे युक्त जो 'कदम्बखण्ड' नामक तीर्थ है, वहाँ सदा ही श्रीकृष्ण लीलारत रहते हैं। उस तीर्थका दर्शन करनेमात्रसे नर नारायण हो जाता है। मैथिल! जहाँ गोवर्धनपर रासमें श्रीराधाने शृङ्गार धारण किया था, वह स्थान 'शृङ्गार-मण्डल'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। नरेश्वर! श्रीकृष्णने जिस रूपसे गोवर्धन पर्वतको धारण किया था, उनका वही रूप शृङ्गारमण्डल-तीर्थमें विद्यमान है। जब कलियुगके चार हजार आठ सौ वर्ष बीत जायँगे, तब शृङ्गारमण्डल क्षेत्रमें गिरिराजकी गुफाके मध्यभागमें सबके देखते-देखते श्रीहरिका स्वतःसिद्ध रूप प्रकट होगा। नरेश्वर! देवताओंका अभिमान चूर्ण करनेवाले उस स्वरूपको सज्जन पुरुष 'श्रीनाथजी'के नामसे पुकारेंगे। राजन्! गोवर्धन पर्वतपर श्रीनाथजी सदा ही लीला करते हैं। मैथिलेन्द्र! कलियुगमें जो लोग अपने नेत्रोंसे श्रीनाथजीके रूपका दर्शन करेंगे, वे कृतार्थ हो जायँगे ॥ २२-३२ ॥

भगवान् भारतके चारों कोनोंमें क्रमशः जगन्नाथ, श्रीरङ्गनाथ, श्रीद्वारकानाथ और श्रीबद्रीनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं। नरेश्वर! भारतके मध्यभागमें भी वे गोवर्धननाथके नामसे विद्यमान हैं। इस प्रकार पवित्र भारतवर्षमें ये पाँचों नाथ देवताओंके भी स्वामी हैं। वे पाँचों नाथ सद्धर्मरूपी मण्डपके पाँच खंभे हैं और सदा आर्तजनोंकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। उन सबका दर्शन करके नर नारायण हो जाता है। जो विद्वान् पुरुष इस भूतलपर चारों नाथोंकी यात्रा करके मध्यवर्ती देवदमन श्रीगोवर्धननाथका दर्शन नहीं करता, उसे यात्राका फल नहीं मिलता। जो गोवर्धन पर्वतपर देवदमन श्रीनाथका दर्शन कर लेता है, उसे पृथ्वीपर चारों नाथोंकी यात्राका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ३३-३७ ॥

मैथिल! जहाँ ऐरावत हाथी और सुरभि गौके चरणोंके चिह्न हैं, वहाँ नमस्कार करके पापी मनुष्य भी वैकुण्ठ-धाममें चला जाता है। जो कोई भी मनुष्य महात्मा श्रीकृष्णके हस्तचिह्न और चरणचिह्नका दर्शन कर लेता है, वह साक्षात् श्रीकृष्णके धाममें जाता है। नरेश्वर! ये तीर्थ, कुण्ड और मन्दिर गिरिराजके अङ्गभूत हैं; उनको बता दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥ ३८-४० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व संवादमें 'श्रीगिरिराजके तीर्थोंका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

विभिन्न तीर्थोंमें गिरिराजके विभिन्न अङ्गोंकी स्थितिका वर्णन

बहुलाश्वने पूछा—महाभाग! देव!! आप पर, अपर—भूत और भविष्यके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः बताइये, गिरिराजके किन-किन अङ्गोंमें कौन-कौन-से तीर्थ विद्यमान हैं? ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन्! जहाँ, जिस अङ्गकी प्रसिद्धि है, वही गिरिराजका उत्तम अङ्ग माना गया है। क्रमशः गणना करनेपर कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जो गिरिराजका अङ्ग न हो। मानद! जैसे ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है और सारे अङ्ग उसीके हैं, उसी प्रकार विभूति और भावकी दृष्टिसे गोवर्धनके जो शाश्वत अङ्ग माने जाते हैं, उनका मैं वर्णन करूँगा ॥ २-३ ॥

शृङ्गारमण्डलके अधोभागमें 'श्रीगोवर्धनका मुख है, जहाँ भगवान्ने व्रजवासियोंके साथ अन्नकूटका उत्सव किया था। 'मानसी गङ्गा' गोवर्धनके दोनों नेत्र हैं, 'चन्द्रसरोवर' नासिका, 'गोविन्दकुण्ड' अधर और 'श्रीकृष्ण कुण्ड' चिबुक है। 'राधाकुण्ड' गोवर्धनकी जिह्वा और 'ललितासरोवर' कपोल है। 'गोपालकुण्ड' कान और 'कुसुम-सरोवर' कर्णान्तभाग है। मिथिलेश्वर! जिस शिलापर मुकुटका चिह्न है, उसे गिरिराजका ललाट समझो। 'चित्र-शिला' उनका मस्तक और 'वादिनीशिला' उनकी ग्रीवा है। 'कन्दुकतीर्थ' उनका पार्श्वभाग है और 'उष्णीषतीर्थ'को उनका कटिप्रदेश बतलाया जाता है। 'द्रोणतीर्थ' पृष्ठदेशमें और 'लौकिकतीर्थ' पेटमें है। 'कदम्बखण्ड' हृदयस्थलमें है। 'शृङ्गारमण्डलतीर्थ' उनका जीवात्मा है। 'श्रीकृष्ण-चरण-चिह्न' महात्मा गोवर्धनका मन है। 'हस्तचिह्नतीर्थ' बुद्धि तथा 'ऐरावतचरणचिह्न' उनका चरण है। सुरभिके चरण

चिह्नोंमें महात्मा गोवर्धनके पंख हैं। 'पुच्छकुण्ड'में पूँछकी भावना की जाती है। 'वत्सकुण्ड'में उनका बल, 'रुद्रकुण्ड'में क्रोध तथा 'इन्द्रसरोवर'में कामकी स्थिति है। 'कुबेरतीर्थ' उनका उद्योगस्थल और 'ब्रह्मतीर्थ' प्रसन्नताका प्रतीक है। पुराणवेत्ता पुरुष 'यमतीर्थ'में गोवर्धनके अहंकारकी स्थिति बताते हैं ॥ ४—१२ ॥

मैथिल! इस प्रकार मैंने तुम्हें सर्वत्र गिरिराजके अङ्ग बताये हैं, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं। जो मनुष्य गिरिराजकी इस विभूतिको सुनता है, वह योगिजनदुर्लभ 'गोलोक' नामक परमधाममें जाता है। गिरिराजोंका भी राजा गोवर्धन पर्वत श्रीहरिके वक्षःस्थलसे प्रकट हुआ है और पुलस्त्यमुनिके तेजसे इस व्रजमण्डलमें उसका शुभागमन हुआ है। उसके दर्शनसे मनुष्यका इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १३—१५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गिरिराजकी विभूतियोंका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्तिका वर्णन

बहुलाश्व बोले—देवर्षे! महान् आश्चर्यकी बात है, गोवर्धन साक्षात् पर्वतोंका राजा एवं श्रीहरिको बहुत ही प्रिय है। उसके समान दूसरा तीर्थ न तो इस भूतलपर है और न स्वर्गमें ही। महामते! आप साक्षात् श्रीहरिके हृदय हैं। अतः अब यह बताइये कि यह गिरिराज श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे कब प्रकट हुआ ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! महामते! गोलोकके प्राकट्यका वृत्तान्त सुनो—यह श्रीहरिकी आदिलीलासे सम्बद्ध है और मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाला है। प्रकृतिसे परे विद्यमान साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण सर्वसमर्थ, निर्गुण पुरुष एवं अनादि आत्मा हैं। उनका तेज अन्तर्मुखी है। वे स्वयंप्रकाश प्रभु निरन्तर रमणशील हैं, जिनपर भामाभिमानी गणनाशील देवताओंका ईश्वर 'काल' भी शासन करनेमें समर्थ नहीं है। राजन्! माया भी जिनपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती, उनपर महत्तत्त्व और सत्त्वादि गुणोंका वश तो चल ही कैसे सकता है! राजन्! उनमें कभी मन, चित्त, बुद्धि और अहंकारका भी प्रवेश नहीं होता। उन्होंने अपने संकल्पसे अपने ही स्वरूपमें साकार ब्रह्मको व्यक्त किया ॥ ३—६½ ॥

सबसे पहले विशालकाय शेषनागका प्रादुर्भाव हुआ, जो कमलनालके समान श्वेतवर्णके हैं। उन्हींकी गोदमें लोकवन्दित महालोक गोलोक प्रकट हुआ, जिसे पाकर भक्तियुक्त पुरुष फिर इस संसारमें नहीं लौटता। फिर असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति गोलोकनाथ भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दसे त्रिपथगा गङ्गा प्रकट हुईं। नरेश्वर! तत्पश्चात् श्रीकृष्णके बायें कंधेसे सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुनाजीका प्रादुर्भाव हुआ, जो शृङ्गार-कुसुमोंसे उसी प्रकार सुशोभित हुईं, जैसे छपी हुई पगड़ीके वस्त्रकी शोभा होती है। तदनन्तर भगवान् श्रीहरिके दोनों गुल्फों (टखनों या घुट्टियों) से हेमरत्नोंसे युक्त दिव्य रासमण्डल और नाना प्रकारके शृङ्गार-साधनोंके समूहका प्रादुर्भाव हुआ। इसके बाद महात्मा श्रीकृष्णकी दोनों पिंडलियोंसे निकुञ्ज प्रकट हुआ, जो सभाभवनों, आँगनों, गलियों और मण्डपोंसे घिरा हुआ था। वह निकुञ्ज वसन्तकी माधुरी धारण किये हुए था। उसमें कूजते हुए कोकिलोंकी काकली सर्वत्र व्याप्त थी। मोर, भ्रमर तथा विविध सरोवरोंसे भी वह परिशोभित एवं परिसेवित दिखायी देता था। राजन्! भगवान्‌के दोनों घुटनोंसे सम्पूर्ण वनोंमें उत्तम श्रीवृन्दावनका आविर्भाव हुआ। साथ ही उन साक्षात् परमात्माकी दोनों जाँघोंसे लीला-सरोवर प्रकट हुआ। उनके कटिप्रदेशसे दिव्य रत्नोंद्वारा जटित प्रभामयी स्वर्णभूमिका प्राकट्य हुआ और उनके उदरमें जो रोमावलियाँ हैं, वे ही विस्तृत माधवी लताएँ बन गयीं। उन लताओंमें नाना प्रकारके पक्षियोंके झुंड सब ओर फैलकर कलरव कर रहे थे। गुंजार करते हुए भ्रमर उन लता कुञ्जोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। वे लताएँ सुन्दर फूलों और फलोंके भारसे इस प्रकार झुकी हुई थीं, जैसे उत्तम कुलकी कन्याएँ लज्जा और विनयके भारसे नतमस्तक रहा करती हैं। भगवान्‌के नाभिकमलसे सहस्रों कमल प्रकट हुए, जो इधर-उधरके सरोवरोंमें इधर उधर सुशोभित हो रहे थे।

भगवान्‌के त्रिवली-प्रान्तसे मन्दगामी और अत्यन्त शीतल समीर प्रकट हुआ और उनके गलेकी हँसुलीसे 'मथुरा' तथा 'द्वारका'—इन दो पुरियोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ७—१८ ॥

श्रीहरिकी दोनों भुजाओंसे 'श्रीदामा' आदि आठ पार्षद उत्पन्न हुए। कलाइयोंसे 'नन्द' आर कराग्रभागसे 'उपनन्द' प्रकट हुए । श्रीकृष्णकी भुजाओंके मूलभागोंसे समस्त वृषभानुओंका प्रादुर्भाव हुआ । नरेश्वर ! समस्त गोपगण श्रीकृष्णके रोमसे उत्पन्न हुए हैं। श्रीकृष्णके मनसे गौओं तथा धर्मधुरंधर वृषभोंका प्राकट्य हुआ । मैथिलेश्वर ! उनकी बुद्धिसे घास और झाड़ियाँ प्रकट हुईं। भगवान्‌के बायें कंधेसे एक परम कान्तिमान् गौर तेज प्रकट हुआ, जिससे लीला, श्री, भूदेवी, विरजा तथा अन्यान्य हरिप्रियाएँ आविर्भूत हुईं । भगवान्‌की प्रियतमा जो 'श्रीराधा' हैं, उन्हींको दूसरे लोग 'लीलावती' या 'लीला'के नामसे जानते हैं। श्रीराधाकी दोनों भुजाओंसे 'विशाखा' और 'ललिता'— इन दो सखियोंका आविर्भाव हुआ । नरेश्वर ! दूसरी-दूसरी जो सहचरी गोपियाँ हैं, वे सब राधाके रोमसे प्रकट हुई हैं। इस प्रकार मधुसूदनने गोलोककी रचना की ॥ १९—२४ ॥

राजन् ! इस तरह अपने सम्पूर्ण लोककी रचना करके असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, परात्पर, परमात्मा, परमेश्वर, परिपूर्ण देव श्रीहरि वहाँ श्रीराधाके साथ सुशोभित हुए। उस गोलोकमें एक दिन सुन्दर रासमण्डलमें, जहाँ बजते हुए नूपुरोंका मधुर शब्द गूँज रहा था, जहाँका आँगन सुन्दर छत्रमें लगी हुई मुक्ताफलकी लड़ियोंसे अमृतकी वर्षा होती रहनेके कारण रसकी बड़ी-बड़ी बूँदोंसे सुशोभित था; मालतीके चँदोवोंसे स्वतः झरते हुए मकरन्द और गन्धसे सरस एवं सुवासित था; जहाँ मृदङ्ग, तालध्वनि और वंशीनाद सब ओर व्याप्त था; जो मधुरकण्ठसे गाये गये गीत आदिके कारण परम मनोहर प्रतीत होता था तथा सुन्दरियोंके रासरससे परिपूर्ण एवं परम मनोरम था; उसके मध्यभागमें स्थित कोटिमनोजमोहन हृदय-वल्लभसे श्रीराधाने रसदान-कुशल कटाक्षपात करके गम्भीर वाणीमें कहा ॥ २५—२८ ॥

श्रीराधा बोलीं—जगदीश्वर ! यदि आप रासमें मेरे प्रेमसे प्रसन्न हैं तो मैं आपके सामने अपने मनकी प्रार्थना व्यक्त करना चाहती हूँ ॥ २९ ॥

श्रीभगवान् बोले—प्रिये ! वामोरु !! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो। तुम्हारे प्रेमके कारण मैं तुम्हें अदेय वस्तु भी दे दूँगा ॥ ३० ॥

श्रीराधाने कहा—वृन्दावनमें यमुनाके तटपर दिव्य निकुञ्जके पार्श्वभागमें आप रासरसके योग्य कोई एकान्त एवं मनोरम स्थान प्रकट कीजिये। देवदेव ! यही मेरा मनोरथ है ॥ ३१ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तब 'तथास्तु' कहकर भगवान्‌ने एकान्त-लीलाके योग्य स्थानका चिन्तन करते हुए नेत्र-कमलोंद्वारा अपने हृदयकी ओर देखा। उसी समय गोपी-समुदायके देखते-देखते श्रीकृष्णके हृदयसे अनुरागके मूर्तिमान् अङ्कुरकी भाँति एक सघन तेज प्रकट हुआ। रासभूमिमें गिरकर वह पर्वतके आकारमें बढ़ गया। वह सारा-का-सारा दिव्य पर्वत रत्नधातुमय था। सुन्दर झरनों और कन्दराओंसे उसकी बड़ी शोभा थी। कदम्ब, बकुल, अशोक आदि वृक्ष तथा लता-जाल उसे और भी मनोहर बना रहे थे। मन्दार और कुन्दवृन्दसे सम्पन्न उस पर्वतपर भाँति भाँतिके पक्षी कलरव कर रहे थे। विदेहराज ! एक ही क्षणमें वह पर्वत एक लाख योजन विस्तृत और शेषकी तरह सौ कोटि योजन लंबा हो गया । उसकी ऊँचाई पचास करोड़ योजनकी हो गयी। पचास कोटि योजनमें फैला हुआ वह पर्वत सदाके लिये गजराजके समान स्थित दिखायी देने लगा। मैथिल ! उसके कोटि योजन विशाल सैकड़ों शिखर दीप्तिमान् होने लगे। उन शिखरोंसे गोवर्धन पर्वत उसी प्रकार सुशोभित हुआ, मानो सुवर्णमय उन्नत कलशोंसे कोई ऊँचा महल शोभा पा रहा हो ॥ ३२—३८॥

कोई-कोई विद्वान् उस गिरिको गोवर्धन और दूसरे लोग 'शतशृङ्ग' कहते हैं। इतना विशाल होनेपर भी वह पर्वत मनसे उत्सुक-सा होकर बढ़ने लगा। इससे गोलोक भयसे विह्वल हो गया और वहाँ सब ओर कोलाहल मच गया। यह देख श्रीहरि उठे और अपने साक्षात् हाथसे शीघ्र ही उसे ताड़ना दी और बोले—'अरे ! प्रच्छन्नरूपसे बढ़ता क्यों आ रहा है ? सम्पूर्ण लोकको आच्छादित करके स्थित हो गया ! क्या ये लोक यहाँ निवास करना नहीं चाहते ?' यों कहकर श्रीहरिने उसे शान्त किया—उसका बढ़ना रोक दिया। उस उत्तम पर्वतको प्रकट हुआ देख भगवत्प्रिया श्रीराधा बहुत प्रसन्न हुईं। राजन् ! वे उसके एकान्त-स्थलमें श्रीहरिके साथ सुशोभित होने लगीं ॥ ३९—४२ ॥

इस प्रकार यह गिरिराज साक्षात् श्रीकृष्णसे प्रेरित होकर इस व्रजमण्डलमें आया है। वह सर्वतीर्थमय है। लता-कुञ्जोंसे

श्याम आभा धारण करनेवाला वह श्रेष्ठ गिरि मेघकी भाँति श्याम तथा देवताओंका प्रिय है। भारतसे पश्चिम दिशामें शाल्मलिद्वीपके मध्यभागमें द्रोणाचलकी पत्नीके गर्भसे गोवर्धनने जन्म लिया। महर्षि पुलस्त्य उसको भारतके व्रजमण्डलमें ले आये। विदेहराज! गोवर्धनके आगमनकी बात मैं तुमसे पहले निवेदन कर चुका हूँ। जैसे यह पहले गोलोकमें उत्सुकतापूर्वक बढ़ने लगा था, उसी तरह यहाँ भी बढ़े तो वह पृथ्वीतलके लिये एक ढक्कन बन जायगा—यह सोचकर मुनिने द्रोणपुत्र गोवर्धनको प्रतिदिन क्षीण होनेका शाप दे दिया ॥ ४१–४६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगिरिराजकी उत्पत्ति' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

गोवर्द्धन-शिलाके स्पर्शसे एक राक्षसका उद्धार तथा दिव्यरूपधारी उस सिद्धके मुखसे गोवर्द्धनकी महिमाका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस विषयमें एक पुराने इतिहासका वर्णन किया जाता है, जिसके श्रवणमात्रसे बड़े-बड़े पापोंका विनाश हो जाता है ॥ १ ॥

गौतमी गङ्गा (गोदावरी) के तटपर विजय नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहता था। वह अपना ऋण वसूल करनेके लिये पापनाशिनी मथुरापुरीमें आया। अपना कार्य पूरा करके जब वह घरको लौटने लगा, तब गोवर्द्धनके तटपर गया। मिथिलेश्वर! वहाँ उसने एक गोल पत्थर ले लिया। धीरे-धीरे वनप्रान्तमें होता हुआ जब वह व्रजमण्डलसे बाहर निकल गया, तब उसे अपने सामनेसे आता हुआ एक घोर राक्षस दिखायी दिया। उसका मुँह उसकी छातीमें था। उसके तीन पैर और छः भुजाएँ थीं, परंतु हाथ तीन ही थे। ओठ बहुत ही मोटे और नाक एक हाथ ऊँची थी। उसकी सात हाथ लंबी जीभ लपलपा रही थी, रोएँ काँटोंके समान थे, आँखें बड़ी-बड़ी और लाल थीं, दाँत टेढ़े-मेढ़े और भयंकर थे। राजन्! वह राक्षस बहुत भूखा था, अतः 'घुर-घुर' शब्द करता हुआ वहाँ खड़े हुए ब्राह्मणके सामने आया। ब्राह्मणने गिरिराजके पत्थरसे उस राक्षसको मारा। गिरिराजकी शिलाका स्पर्श होते ही वह राक्षस-शरीर छोड़कर श्यामसुन्दर-रूपधारी हो गया। उसके विशाल नेत्र प्रफुल्ल कमलपत्रके समान शोभा पाने लगे। वनमाला, पीताम्बर, मुकुट और कुण्डलोंसे उसकी बड़ी शोभा होने लगी। हाथमें वंशी और बेंत लिये वह दूसरे कामदेवके समान प्रतीत होने लगा। इस प्रकार दिव्यरूपधारी होकर उसने दोनों हाथ जोड़कर ब्राह्मण-देवताको बारंबार प्रणाम किया ॥ २–१० ॥

सिद्ध बोला—ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, क्योंकि दूसरोंको संकटसे बचानेके पुण्यकार्यमें लगे हुए हो। महामते! आज तुमने मुझे राक्षसकी योनिसे छुटकारा दिला दिया। इस पाषाणके स्पर्शमात्रसे मेरा कल्याण हो गया। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मेरा उद्धार करनेमें समर्थ नहीं था ॥ ११-१२ ॥

ब्राह्मण बोले—सुव्रत! मैं तो तुम्हारी बात सुनकर आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। मुझमें तुम्हारा उद्धार करनेकी शक्ति नहीं है। पाषाणके स्पर्शका क्या फल है, यह भी मैं नहीं जानता; अतः तुम्हीं बताओ ॥ १३ ॥

सिद्धने कहा—ब्रह्मन्! श्रीमान् गिरिराज गोवर्द्धन पर्वत साक्षात् श्रीहरिका रूप है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। गन्धमादनकी यात्रा करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटिगुना पुण्य गिरिराजके दर्शनसे होता है। विप्रवर! केदारतीर्थमें पाँच हजार वर्षोंतक तपस्या करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल गोवर्द्धन पर्वतपर तप करनेसे मनुष्यको क्षणभरमें प्राप्त हो जाता है ॥ १४–१६ ॥

मलयाचलपर एक भार स्वर्णका दान करनेसे जिस पुण्यफलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटिगुना पुण्य गिरिराजपर एक माशा सुवर्णका दान करनेसे ही मिल जाता है। जो मङ्गलप्रस्थ पर्वतपर सोनेकी दक्षिणा देता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। भगवान्‌के उसी पदको मनुष्य गिरिराजका दर्शन करनेमात्रसे पा लेता है। गिरिराजके समान पुण्यतीर्थ दूसरा कोई नहीं है। ऋषभ पर्वत, कूटक पर्वत तथा कोलक पर्वतपर सोनेसे मढ़े सींगवाली एक करोड़ गौओंका जो दान करता है,

वह भी ब्राह्मणोंका यत्नपूर्वक पूजन करके महान् पुण्यका भागी होता है। ब्रह्मन्! उसकी अपेक्षा भी लाखगुना पुण्य गोवर्द्धन पर्वतकी यात्रा करनेमात्रसे सुलभ होता है। ऋष्यमूक, सह्यगिरि तथा देवगिरिकी एवं सम्पूर्ण पृथ्वीकी यात्रा करनेपर मनुष्य जिस पुण्यफलको पाता है, गिरिराज गोवर्धनकी यात्रा करनेपर उससे भी कोटिगुना अधिक फल उसे प्राप्त हो जाता है। अतः गिरिराजके समान तीर्थ न तो पहले कभी हुआ है और न भविष्यकालमें होगा ही ॥ १७-२३ ॥

श्रीशैलपर दस वर्षोंतक रहकर वहाँके विद्याधरकुण्डमें जो प्रतिदिन स्नान करता है, वह पुण्यात्मा मनुष्य सौ वर्षोंके अनुष्ठानका फल पा लेता है; परंतु गोवर्द्धन पर्वतके पुच्छकुण्डमें एक दिन स्नान करनेवाला मनुष्य कोटि वर्षोंके साक्षात् अनुष्ठानका पुण्यफल पा लेता है, इसमें संशय नहीं है। वेङ्कटाचल, वारिधार, महेन्द्र और विन्ध्याचलपर एक अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करके मनुष्य स्वर्गलोकका अधिपति हो जाता है; परंतु इस गोवर्द्धन पर्वतपर जो यज्ञ करके उत्तम दक्षिणा देता है, वह स्वर्गलोकके मस्तकपर पैर रखकर भगवान् विष्णुके धाममें चला जाता है। द्विजोत्तम! चित्रकूट पर्वतपर श्रीरामनवमीके दिन पयस्विनी (मन्दाकिनी) में, वैशाखकी तृतीयाको पारियात्र पर्वतपर, पूर्णिमाको कुकुराचलपर, द्वादशीके दिन नीलाचलपर और सप्तमीको इन्द्रकील पर्वतपर जो स्नान, दान और तप आदि पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे सब कोटिगुने हो जाते हैं। ब्रह्मन्! इसी प्रकार भारतवर्षके गोवर्द्धन तीर्थमें जो स्नानादि शुभ कर्म किया जाता है, वह सब अनन्तगुना हो जाता है। बृहस्पतिके सिंहराशिमें स्थित होनेपर गोदावरीमें और कुम्भराशिमें स्थित होनेपर हरद्वारमें, पुष्यनक्षत्र आनेपर पुष्करमें, सूर्यग्रहण होनेपर कुरुक्षेत्रमें, चन्द्रग्रहण होनेपर काशीमें, फाल्गुन आनेपर नैमिषारण्यमें, एकादशीके दिन शूकरतीर्थमें, कार्तिककी पूर्णिमाको गढमुक्तेश्वरमें, जन्माष्टमीके दिन मथुरामें, द्वादशीके दिन खाण्डव-वनमें, कार्तिकी पूर्णिमाको वंशेश्वर नामक महावटके पास, मकर-संक्रान्ति लगनेपर प्रयागतीर्थमें, वैधृतियोग आनेपर बर्हिष्मतीमें, श्रीरामनवमीके दिन अयोध्यागत सरयूके तटपर, शिव-चतुर्दशीको शुभ वैद्यनाथ वनमें, सोमवारगत अमावास्याको गङ्गासागर-संगममें, दशमीको सेतुबन्धपर तथा सप्तमीको श्रीरङ्गतीर्थमें किया हुआ दान, तप, स्नान, जप, देवपूजन, ब्राह्मण-पूजन आदि जो शुभकर्म किया जाता है, द्विजोत्तम! वह कोटिगुना हो जाता है। इन सबके समान पुण्य-फल केवल गोवर्धन पर्वतकी यात्रा करनेसे प्राप्त हो जाता है। मैथिलेन्द्र! जो भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाकर निर्मल गोविन्दकुण्डमें स्नान करता है, वह भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है। हमारे गोवर्द्धन पर्वतपर जो मानसी-गङ्गा हैं, उनमें डुबकी लगानेकी समानता करनेवाले सहस्रों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ भी नहीं हैं। विप्रवर! आपने साक्षात् गिरिराजका दर्शन, स्पर्श तथा वहाँ स्नान किया है, अतः इस भूतलपर आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। यदि आपको विश्वास न हो तो मेरी ओर देखिये। मैं बहुत बड़ा महापातकी था, किंतु गोवर्द्धनकी शिलाका स्पर्श होनेमात्रसे मैंने भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त कर लिया ॥ २४-४१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीगिरिराजका माहात्म्य' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सिद्धके द्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन तथा गोलोकसे उतरे हुए विशाल रथपर आरूढ़ हो उसका श्रीकृष्ण-लोकमें गमन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! सिद्धकी यह बात सुनकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। गिरिराजके प्रभावको जानकर उसने सिद्धसे पुनः प्रश्न किया ॥ १ ॥

ब्राह्मणने पूछा—महाभाग! इस समय तो तुम साक्षात् दिव्यरूपधारी दिखायी देते हो। परंतु पूर्वजन्ममें तुम कौन थे और तुमने कौन-सा पाप किया था? ॥ २ ॥

सिद्धने कहा—पूर्वजन्ममें मैं एक धनी वैश्य था। अत्यन्त समृद्ध वैश्य-बालक होनेके कारण मुझे बचपनसे ही जुआ खेलनेकी आदत पड़ गयी थी। धूर्तों और जुआरियोंकी गोष्ठीमें मैं सबसे चतुर समझा जाता था। आगे चलकर मैं

वेश्यामें आसक्त हो गया, कुपथपर चलने और मदिराके मदसे उन्मत्त रहने लगा। ब्रह्मन्! इसके कारण मुझे अपने माता-पिता और पत्नीकी ओरसे बड़ी फटकार मिलने लगी। एक दिन मैंने माँ-बापको तो जहर देकर मार डाला और पत्नीको साथ लेकर कहीं जानेके बहाने निकला और रास्तेमें मैंने तलवारसे उसकी हत्या कर दी। इस तरह उन सबके धनको हथियाकर मैं उस वेश्याके साथ दक्षिण दिशामें चला गया। यह है मेरी दुष्टताका परिचय। दक्षिण जाकर मैं अत्यन्त निर्दयतापूर्वक लूट-पाटका काम करने लगा। एक दिन उस वेश्याको भी मैंने अँधेरे कुएँमें डाल दिया। डाकू तो मैं हो ही गया था, मैंने फाँसी लगाकर सैकड़ों मनुष्योंको मौतके घाट उतार दिया। विप्रवर! धनके लोभसे मैंने सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ कीं। क्षत्रिय-हत्या, वैश्य-हत्या और शूद्र-हत्याकी संख्या तो हजारोंतक पहुँच गयी होगी। एक दिनकी बात है कि मैं मांस लानेके निमित्त मृगोंका वध करनेके लिये वनमें गया। वहाँ एक सर्पके ऊपर मेरा पैर पड़ गया और उसने मुझे डँस लिया। फिर तो तत्काल मेरी मृत्यु हो गयी और यमराजके भयंकर दूतोंने आकर मुझ दुष्ट और महापातकीको भयानक मुद्गरोंसे पीट-पीटकर बाँधा और नरकमें पहुँचा दिया। मुझे महादुष्ट मानकर 'कुम्भीपाक'में डाला गया और वहाँ एक मन्वन्तर-तक रहना पड़ा। तत्पश्चात् 'तप्तसूर्मि' नामक नरकमें मुझ दुष्टको एक कल्पतक महान् दुःख भोगना पड़ा। इस तरह चौरासी लाख नरकोंमेंसे प्रत्येकमें अलग-अलग यमराजकी इच्छासे मैं एक-एक वर्षतक पड़ता और निकलता रहा। तदनन्तर भारतवर्षमें कर्मवासनाके अनुसार मेरा दस बार तो सूअरकी योनिमें जन्म हुआ और सौ बार व्याघ्रकी योनिमें। फिर सौ जन्मोंतक ऊँट और उतने ही जन्मोंतक भैंसा हुआ। इसके बाद एक सहस्र जन्मतक मुझे सर्पकी योनिमें रहना पड़ा। फिर कुछ दुष्ट मनुष्योंने मिलकर मुझे मार डाला। विप्रवर! इस तरह दस हजार वर्ष बीतनेपर जलशून्य विपिनमें मैं ऐसा विकराल और महाखल राक्षस हुआ, जैसा कि तुमने अभी-अभी देखा है। एक दिन किसी शूद्रके शरीरमें आविष्ट होकर व्रजमें गया। वहाँ वृन्दावनके निकटवर्ती यमुनाके सुन्दर तटसे हाथमें छड़ी लिये हुए कुछ श्यामवर्णवाले श्रीकृष्णके पार्षद उठे और मुझे पीटने लगे। उनके द्वारा तिरस्कृत होकर मैं व्रजभूमिसे इधर भाग आया; तबसे बहुत दिनोंतक मैं भूखा रहा और तुम्हें खा जानेके लिये यहाँ आया। इतनेमें ही तुमने मुझे गिरिराजके पत्थरसे मार दिया। मुने! मुझपर साक्षात् श्रीकृष्णकी कृपा हो गयी, जिससे मेरा कल्याण हो गया॥ १–१८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वह इस प्रकार कह ही रहा था कि गोलोकसे एक विशाल रथ उतरा। वह सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी था और उसमें दस हजार घोड़े जुते हुए थे। नरेश्वर! उससे हजारों पहियोंके चलनेकी ध्वनि होती थी। लाखों पार्षद उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। मञ्जीर और क्षुद्र-घण्टिकाओंके समूहसे आच्छादित वह रथ अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था। ब्राह्मणके देखते-देखते उस सिद्धको लेनेके लिये जब वह रथ आया, तब ब्राह्मण और सिद्ध दोनोंने उस दिव्य रथको नमस्कार किया। मिथिलेश्वर! तदनन्तर वह सिद्ध उस रथपर आरूढ़ हो दिङ्मण्डलको प्रकाशित करता हुआ परात्पर श्रीकृष्ण-लोकमें पहुँच गया, जो निकुञ्ज-लीलाके कारण ललित एवं परम मनोहर है। मैथिल! वह ब्राह्मण भी गोवर्द्धनका प्रभाव जान गया था, इसलिये वहाँसे लौटकर समस्त गिरिराजोंके देवता गोवर्द्धन गिरिपर आया और उसकी परिक्रमा एवं उसे प्रणाम करके अपने घरको गया॥ १९–२४॥

राजन्! इस प्रकार मैंने यह विचित्र एवं उत्तम मोक्ष-दायक श्रीगिरिराजखण्ड तुम्हें कह सुनाया। पापी मनुष्य भी इसका श्रवण करके स्वप्नमें भी कभी उग्रदण्डधारी प्रचण्ड यमराजका दर्शन नहीं करता। जो मनुष्य गिरिराजके यशसे परिपूर्ण गोपराज श्रीकृष्णकी नूतन केलिके रहस्यको सुनता है, वह देवराज इन्द्रकी भाँति इस लोकमें सुख भोगता है और नन्दराजके समान परलोकमें शान्तिका अनुभव करता है॥ २५-२६॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीगिरिराजखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें श्रीगिरिराज-प्रभाव-प्रस्ताव-वर्णनके प्रसङ्गमें 'सिद्धमोक्ष' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

श्रीगिरिराजखण्ड सम्पूर्ण॥ ३॥

श्रीसरस्वत्यै नमः

माधुर्यखण्ड

पहला अध्याय

श्रुतिरूपा गोपियोंका वृत्तान्त, उनका श्रीकृष्ण और दुर्वासा मुनिकी बातोंमें संशय तथा श्रीकृष्णद्वारा उसका निराकरण

अतसीकुसुमोपमेयकान्तिर्यमुनाकूलकदम्बमूलवर्ती ।
नवगोपवधूविलासशाली वनमाली वितनोतु मङ्गलानि ॥

'जिनकी अङ्गकान्तिको अलसीके फूलकी उपमा दी जाती है, जो यमुनाकूलवर्ती कदम्बवृक्षके मूलभागमें विद्यमान हैं तथा नूतन गोपाङ्गनाओंके साथ लीला-विलास करते हुए अत्यन्त शोभा पा रहे हैं, वे वनमाली श्रीकृष्ण मङ्गलका विस्तार करें' ॥ १ ॥

परिकरीकृतपीतपटं हरिं शिखिकिरीटनतीकृतकन्धरम् ।
लकुटवेणुकरं चलकुण्डलं पटुतरं नटवेषधरं भजे ॥

'जिन्होंने पीताम्बरकी फेंट बाँध रक्खी है, जिनके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट सुशोभित है और गर्दन एक ओर झुकी हुई है, जो लकुटी और बंशी हाथमें लिये हुए हैं और जिनके कानोंमें चञ्चल कुण्डल झलमला रहे हैं, उन परम पटु, नटवेषधारी श्रीकृष्णका मैं भजन (ध्यान) करता हूँ' ॥ २ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने ! श्रुतिरूपा आदि गोपियोंने, जो पूर्वप्रदत्त वरके अनुसार पहले ही व्रजमें प्रकट हो चुकी थीं, किस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका साहचर्य पाकर अपना मनोरथ पूर्ण किया था ? महाबुद्धे ! गोपाल श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र परम अद्भुत है, इसे कहिये; क्योंकि आप परापरवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३-४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—विदेहराज ! श्रुतिरूपा जो गोपियाँ थीं, वे शेषशायी भगवान् विष्णुके पूर्वकथित वरसे व्रजवासी गोपोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुईं । उन सबने वृन्दावनमें परम कमनीय नन्दनन्दनका दर्शन करके उन्हें वररूपमें पानेकी इच्छासे वृन्दावनेश्वरी वृन्दादेवीकी समाराधना की । वृन्दाके दिये हुए वरसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरि उनके ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो गये और प्रतिदिन उनके घरोंमें रासक्रीडाके लिये जाने लगे । नरेश्वर ! एक दिन रातमें दो पहर बीत जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण रासके लिये उनके घर गये । उस समय उत्कण्ठित गोपियोंने उन परम प्रभुका अत्यन्त भक्ति-भावसे पूजन करके मधुर वाणीमें पूछा ॥ ५—९ ॥

गोपियाँ बोलीं—अघनाशन श्रीकृष्ण ! जैसे चकोरी चन्द्रदर्शनके लिये उत्सुक रहती है, उसी प्रकार हम गोपाङ्गनाएँ आपसे मिलनेको उत्कण्ठित रहती हैं । अतः आप हमारे घरमें शीघ्र क्यों नहीं आये ? ॥ १० ॥

श्रीभगवान्ने कहा—प्रियाओ ! जो जिसके हृदयमें वास करता है, वह उससे दूर कभी नहीं रहता । देखो न, सूर्य तो आकाशमें है और कमल भूमिपर; फिर भी वह उन्हें देखते ही खिल उठता है (वह सूर्यको अपने अत्यन्त निकटस्थ अनुभव करता है)। प्रियाओ ! आज मेरे साक्षात् गुरु भगवान् दुर्वासा मुनि भाण्डीर-वनमें पधारे हैं । उन्हींकी सेवाके लिये मैं चला गया था । गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु भगवान् महेश्वर हैं और गुरु साक्षात् परम ब्रह्म हैं । उन श्रीगुरुको मेरा नमस्कार है । अज्ञानरूपी रतौंधीसे अंधे हुए मनुष्यकी दृष्टिको जिन्होंने ज्ञानाञ्जनकी शलाकासे खोल दिया है, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है । अपने गुरुको मेरा स्वरूप ही समझना चाहिये और कभी उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये । गुरु सम्पूर्ण देवताओंके स्वरूप होते हैं । अतः साधारण मनुष्य समझकर उनकी सेवा नहीं करनी चाहिये*। हे प्रियाओ ! मैं उनका पूजन करके तथा उनके चरणकमलोंमें प्रणाम करके तुम्हारे घर देरीसे पहुँचा हूँ ॥ ११—१६ ॥

---

* गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णका यह उत्तम वचन सुनकर समस्त गोपाङ्गनाओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे हाथ जोड़कर सिर झुकाकर श्रीकृष्णसे बोलीं ॥ १७ ॥

गोपियोंने कहा—प्रभो ! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। आप स्वयं परिपूर्णतम परमेश्वरके भी गुरु दुर्वासा …हैं यह जानकर हमारा मन उनके दर्शनके लिये उत्सुक हो उठा है। देव ! परमेश्वर !! आज रातके दो पहर बीत जानेपर उनका दर्शन हमें कैसे प्राप्त हो सकता है ? बीचमें विशाल नदी यमुना प्रतिबन्धक बनकर खड़ी है; अतः देव ! बिना किसी नावके यमुनाजीको पार करना कैसे सम्भव होगा ? ॥ १८–२० ॥

श्रीभगवान् बोले—प्रियाओ ! यदि तुमलोगोंको अवश्य ही वहां जाना है तो यमुनाजीके पास पहुँचकर मार्ग प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार कहना—'यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी और सब प्रकारके दोषोंसे रहित हैं तो सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुनाजी ! हमारे लिये मार्ग दे दो।' यह बात कहनेपर यमुना तुम्हें स्वतः मार्ग दे देंगी। उस मार्गसे तुम सभी व्रजाङ्गनाएँ सुखपूर्वक चली जाना ॥ २१–२३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उनका यह वचन सुनकर सभी गोपियाँ अलग-अलग विशाल पात्रोंमें छप्पन भोग लेकर यमुनाजीके तटपर गयीं और सिर झुकाकर उन्होंने श्रीकृष्णकी कही हुई बात दुहरा दी। मैथिलेश्वर ! फिर तो तत्काल यमुनाजीने उन गोपियोंके लिये मार्ग दे दिया। उस मार्गसे सभी गोपियाँ अत्यन्त विस्मित हो, भाण्डीर-वटके पास पहुँचीं। वहाँ उन्होंने दुर्वासा मुनिकी परिक्रमा की और उनके आगे बहुत-सी भोजन-सामग्री रखकर उनका दर्शन किया। फिर सब-की-सब कहने लगीं—'मुने ! पहले मेरा अन्न ग्रहण कीजिये, पहले मेरा अन्न भोजन कीजिये !' इस तरह परस्पर विवाद करती हुई गोपियोंका भक्तिसूचक भाव जानकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने यह विमल वचन कहा ॥ २४–२८ ॥

मुनि बोले—गोपियो ! मैं कृतकृत्य परमहंस हूँ, निष्क्रिय हूँ। इसलिये तुमलोग अपना-अपना भोजन अपने ही हाथोंसे मेरे मुँहमें डाल दो ॥ २९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर जब उन्होंने अपना मुँह फैलाया, तब सभी गोपियोंने अत्यन्त हर्षके साथ अपने-अपने छप्पन भोगोंको उनके मुँहमें एक साथ ही डालना आरम्भ किया। अन्न डालती हुई उन गोपियोंके देखते-देखते मुनीश्वर दुर्वासा क्षुधासे पीड़ितकी भाँति उन समस्त भोगोंको, जो करोड़ों भारसे कम न थे, चट कर गये। गोपियाँ आश्चर्यचकित हो एक-दूसरीकी ओर देखने लगीं। नृपश्रेष्ठ ! इस तरह उनके सारे बर्तन खाली हो गये। तत्पश्चात् उन परम शान्त और भक्तवत्सल मुनिको विस्मित हुई सभी गोपियोंने पूर्णमनोरथ होकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा ॥ ३०–३३ ॥

गोपियोंने कहा—मुने ! यहाँ आनेसे पूर्व श्रीकृष्णकी कही हुई बात दुहराकर मार्ग मिल जानेसे यमुनाजीको पार करके हमलोग आपके समीप दर्शनकी शुभ इच्छा लेकर यहाँ आ गयी थीं। अब इधरसे हम कैसे जायँगी, यह महान् संदेह हमारे मनमें हो गया है ! अतः आप ही ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे मार्ग हल्का हो जाय ॥ ३४-३५ ॥

मुनि बोले—गोपियो ! तुम सब यहाँसे सुखपूर्वक चली जाओ। जब यमुनाजीके किनारे पहुँचो, तब मार्गके लिये इस प्रकार कहना—'यदि दुर्वासा मुनि इस भूतलपर केवल दूर्वाका रस पीकर रहते हों, कभी अन्न और जल न लेकर व्रतका पालन करते हों तो सरिताओंकी शिरोमणि यमुनाजी ! हमें मार्ग दे दो।' ऐसी बात कहनेपर यमुनाजी तुम्हें स्वतः मार्ग दे देंगी ॥ ३६–३८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! यह सुनकर गोपियाँ उन मुनिपुंगवको प्रणाम करके यमुनाके तटपर आयीं और मुनिकी बतायी हुई बात कहकर नदी पार हो श्रीकृष्णके पास आ पहुँचीं। वे मङ्गलवामा गोपियाँ इस यात्राके विचित्र अनुभवसे विस्मित थीं। तदनन्तर रासमें गोपाङ्गनाओंने श्रीकृष्णकी ओर देखकर अपने मनमें उठे हुए संदेहको उनसे पूछा। एकान्तमें श्रीहरिने उन सबका मनोरथ पूर्ण कर दिया था ॥ ३९–४१ ॥

गोपियाँ बोलीं—प्रभो ! हमने दुर्वासा मुनिका दर्शन उनके सामने जाकर किया है; किंतु आप दोनोंके वचनोंको सुनकर उनकी सत्यताके सम्बन्धमें हमारे मनमें संदेह उत्पन्न हो गया है। जैसे गुरुजी असत्यवादी हैं, उसी तरह चेलाजी भी मिथ्यावादी हैं—इसमें संशय नहीं है। कमलनयन !

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥
(श्रीमद्भा०, ११ । १७ । २७)

आप तो गोपियोंके उपपति और बचपनसे ही रसिक हैं; फिर आप बालब्रह्मचारी कैसे हुए—यह हमें स्पष्ट बताइये और हमारे सामने बहुत-सा अन्न (भार-के-भार छप्पन भोग) खा जानेवाले ये दुर्वासा मुनि केवल दूर्वाका रस पीकर रहनेवाले कैसे हैं ? व्रजेश्वर ! हमारे मनमें यह भारी संदेह उठा है ॥ ४२—४४ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—गोपियो ! मैं ममता और अहंकारसे रहित, सबके प्रति समान भाव रखनेवाला, सर्वव्यापी, सबसे उत्कृष्ट, सदा विषमताशून्य तथा प्राकृत गुणोंसे रहित हूँ—इसमें संशय नहीं है । तथापि जो भक्त मेरा जिस प्रकार भजन करते हैं, उनका उसी प्रकार मैं भी भजन करता हूँ । इसी प्रकार ज्ञानी साधु महात्मा भी सदा विषम भावनासे रहित होते हैं । योगयुक्त विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह कर्मोंमें आसक्त हुए अज्ञानीजनोंमें बुद्धि-भेद न उत्पन्न करे । उनसे सदा समस्त कर्मोंका सेवन ही कराये । जिस पुरुषके सभी समारम्भ (आयोजन) कामना और संकल्पसे शून्य होते हैं, उनके सारे कर्म ज्ञानरूपी अग्निमें दग्ध हो जाते हैं (अर्थात् उनके किये वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते) । ऐसे पुरुषको ज्ञानीजन पण्डित (तत्त्वज्ञ) कहते हैं । जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जिसने चित्त और बुद्धिको अपने वशमें कर रक्खा है तथा जो समस्त संग्रह-परिग्रह छोड़ चुका है, वह केवल शरीर निर्वाह-सम्बन्धी कर्म करता हुआ किल्बिष (कर्मजनित शुभाशुभ फल) को नहीं प्राप्त होता । इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है । योगसिद्ध पुरुष समयानुसार स्वयं ही अपने-आपमें उस ज्ञानको प्राप्त कर लेता है । जो समस्त कर्मोंको ब्रह्मार्पण करके आसक्ति छोड़कर कर्म करता है, वह पापसे उसी प्रकार लिप्त नहीं होता, जैसे कमलका पत्र जलसे । इसलिये दुर्वासा मुनि तुम सबके हित-साधनमें तत्पर होकर बहुत खानेवाले हो गये । स्वतः उन्हें कभी भोजनकी इच्छा नहीं होती । वे केवल परिमित दूर्वा-रसका ही आहार करते हैं ॥ ४५—५२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर ! श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर समस्त गोपियोंका संशय नष्ट हो गया । वे श्रुतिरूपा गोपाङ्गनाएँ ज्ञानमयी हो गयीं ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रुतिरूपा गोपियोंका उपाख्यान' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

ऋषिरूपा गोपियोंका उपाख्यान—मङ्गदेशके मङ्गल-गोपकी कन्याओंका नन्दराजके व्रजमें आगमन तथा यमुनाजीके तटपर रासमण्डलमें प्रवेश

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिल ! अब तुम ऋषिरूपा गोपियोंकी कथा सुनो । वह सब पापोंको हर लेनेवाली, परम पावन तथा श्रीकृष्णके प्रति भक्ति-भावकी वृद्धि करनेवाली है । मङ्गदेशमें मङ्गल नामसे प्रसिद्ध एक महामनस्वी गोप था, जो लक्ष्मीवान्, शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न तथा नौ लाख गौओंका स्वामी था । मिथिलेश्वर ! उसके पाँच हजार पत्नियाँ थीं । किसी समय दैवयोगसे उसका सारा धन नष्ट हो गया । चोरोंने उसकी गौओंका अपहरण कर लिया । कुछ गौओंको उस देशके राजाने बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया । इस प्रकार दीनता प्राप्त होनेपर मङ्गल-गोप बहुत दुखी हो गया । उन्हीं दिनों श्रीरामचन्द्रजीके वरदानसे श्रीमाधवको प्राप्त हुए दण्डकारण्यके निवासी ऋषि उसकी कन्याएँ हो गये । उस कन्या-समूहको देखकर दुखी गोप मङ्गल और भी दुःखमें डूब गया और आधि-व्याधिसे व्याकुल रहने लगा । उसने मन-ही-मन इस प्रकार कहा ॥ १—६ ॥

मङ्गल बोला—क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन मेरा दुःख दूर करेगा ? इस समय मेरे पास न तो लक्ष्मी है, न ऐश्वर्य है; न कुटुम्बीजन हैं और न कोई बल ही है । हाय ! धनके बिना इन कन्याओंका विवाह कैसे होगा ? जहाँ भोजनमें भी संदेह हो, वहाँ धनकी कैसी आशा ? दीनता तो थी ही । काकतालीयन्यायसे कन्याएँ भी इस घरमें आ गयीं । इसलिये किसी धनवान् और बलवान् राजाको ये कन्याएँ अर्पित करूँगा, तभी इन कन्याओंको सुख मिलेगा ॥ ७—१३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उन कन्याओंकी कोई परवा न करके उसने अपनी ही बुद्धिसे ऐसा निश्चय कर लिया और उसीपर डटा रहा। उन्हीं दिनों मथुरामण्डलसे एक गोप उसके यहाँ आया। वह तीर्थ-यात्री था। उसका नाम था जय। वह बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और वृद्ध था। उसके मुखसे मङ्गलने नन्दराजके अद्भुत वैभवका वर्णन सुना। दीनतासे पीड़ित मङ्गलने बहुत सोच-विचारकर अपनी चारुलोचना कन्याओंको नन्दराजके व्रजमण्डलमें भेज दिया। नन्दराजके घरमें आकर वे रत्नमय भूषणोंसे विभूषित कन्याएँ उनके गोष्ठमें गौओंका गोबर उठानेका काम करने लगीं। वहाँ सुन्दर श्रीकृष्णको देखकर उन कन्याओंको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो आया और वे श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये नित्य यमुनाजीकी सेवा-पूजा करने लगीं। तदनन्तर एक दिन श्यामल अङ्गोंवाली विशाललोचना यमुनाजी उन सबको दर्शन दे, वर-प्रदान करनेके लिये उद्यत हुईं। उन गोपकन्याओंने यह वर माँगा कि 'व्रजेश्वर नन्दराजके पुत्र श्रीकृष्ण हमारे पति हों।' तब 'तथास्तु' कहकर यमुना वहीं अन्तर्धान हो गयीं। वे सब कन्याएँ वृन्दावनमें कार्तिक-पूर्णिमाकी रातको रासमण्डलमें पहुँचीं। वहाँ श्रीहरिने उनके साथ उसी तरह विहार किया, जैसे देवाङ्गनाओंके साथ देवराज इन्द्र किया करते हैं॥ १०—१७॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'ऋषिरूपा गोपियोंका उपाख्यान' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

मैथिलीरूपा गोपियोंका आख्यान; चीरहरणलीला और वरदान-प्राप्ति

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मिथिलेश्वर! अब मिथिलादेशमें उत्पन्न गोपियोंका आख्यान सुनो। यह दशाश्वमेध-तीर्थपर स्नानका फल देनेवाला और भक्ति-भावको बढ़ानेवाला है। श्रीरामचन्द्रजीके वरसे जो नौ नन्दोंके घरोंमें उत्पन्न हुई थीं, वे मैथिलीरूपा गोपकन्याएँ परम कमनीय नन्द-नन्दनका दर्शन करके मोहित हो गयीं। उन्होंने मार्गशीर्षके शुभ मासमें कात्यायनीका व्रत किया और उनकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर वे षोडशोपचारसे उसकी पूजा करने लगीं। अरुणोदयकी वेलामें वे प्रतिदिन एक साथ भगवान्‌के गुण गाती हुई आतीं और श्रीयमुनाजीके जलमें स्नान करती थीं। एक दिन वे व्रजाङ्गनाएँ अपने वस्त्र यमुनाजीके किनारे रखकर उनके जलमें प्रविष्ट हुईं और दोनों हाथोंसे जल उलीचकर एक-दूसरीको भिगोती हुई जल-विहार करने लगीं। प्रातःकाल भगवान् श्यामसुन्दर वहाँ आये और तुरंत उन सबके वस्त्र लेकर, कदम्बपर आरूढ़ हो चोरकी तरह चुप-चाप बैठ गये। राजन्! अपने वस्त्रोंको न देखकर वे गोप-कन्याएँ बड़े विस्मयमें पड़ीं तथा कदम्बपर बैठे हुए श्यामसुन्दरको देखकर लजा गयीं और हँसने लगीं। तब वृक्षपर बैठे हुए श्रीकृष्ण उन गोपियोंसे कहने लगे—'तुम सब लोग यहाँ आकर अपने-अपने कपड़े ले जाओ, अन्यथा मैं नहीं दूँगा।' राजन्! तब वे गोपकन्याएँ शीतल जलके भीतर खड़ी-खड़ी हँसती हुई लज्जासे मुँह नीचे किये बोलीं॥ १—९॥

गोपियोंने कहा—हे मनोहर नन्दनन्दन! हे गोप-रत्न! हे गोपाल-वंशके नूतन हंस! हे महान् पीड़ाको हर लेनेवाले श्रीश्यामसुन्दर! तुम जो आज्ञा करोगे, वही हम करेंगी। तुम्हारी दासी होकर भी हम यहाँ वस्त्रहीन होकर कैसे रहें? आप गोपियोंके वस्त्र लूटनेवाले और माखनचोर हैं। व्रजमें जन्म लेकर भी बड़े रसिक हैं। भय तो आपको छू नहीं सका है। हमारा वस्त्र हमें लौटा दीजिये; नहीं तो हम मथुरानरेशके दरबारमें आपके द्वारा इस अवसरपर की गयी बड़ी भारी अनीतिकी शिकायत करेंगी॥ १०-११॥

श्रीभगवान् बोले—सुन्दर मन्दहास्यसे सुशोभित होनेवाली गोपाङ्गनाओ! यदि तुम मेरी दासियाँ हो तो इस कदम्बकी जड़के पास आकर अपने वस्त्र ले लो। नहीं तो मैं इन सब वस्त्रोंको अपने घर उठा ले जाऊँगा। अतः तुम अविलम्ब मेरे कथनानुसार कार्य करो॥ १२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब वे सब व्रजवासिनी गोपियाँ अत्यन्त काँपती हुई जलसे बाहर निकलीं और आनत-शरीर हो, हाथोंसे योनिको ढककर शीतसे

लाज पाते हुए श्रीकृष्णके हाथसे दिये गये वस्त्र लेकर उन्होंने अपने अङ्गोंमें धारण किये। इसके बाद श्रीकृष्णको लजीली आँखोंसे देखती हुई वहाँ मोहित हो खड़ी रहीं। उनके परम प्रेमसूचक अभिप्रायको जानकर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण उनपर चारों ओरसे दृष्टिपात करके इस प्रकार बोले ॥ १३–१५ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—गोपाङ्गनाओ! तुमने मार्गशीर्ष मासमें मेरी प्राप्तिके लिये जो कात्यायनी-व्रत किया है, वह अवश्य सफल होगा—इसमें संशय नहीं है। परसों दिनमें वनके भीतर यमुनाके मनोहर तटपर मैं तुम्हारे साथ रास करूँगा, जो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेवाला होगा ॥१६-१७॥

यों कहकर परिपूर्णतम श्रीहरि जब चले गये, तब आनन्दोल्लाससे परिपूर्ण हो मन्दहासकी छटा बिखेरती हुई वे समस्त गोप बालाएँ अपने घरोंको गयीं ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मैथिलीरूपा गोपियोंका उपाख्यान' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

कोसलप्रान्तीय स्त्रियोंका व्रजमें गोपी होकर श्रीकृष्णके प्रति अनन्यभावसे प्रेम करना

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब कोसल-प्रदेशकी गोपिकाओंका वर्णन सुनो। यह श्रीकृष्णचरितामृत समस्त पापोंका नाश करनेवाला तथा पुण्यजनक है। कोसल-प्रान्तकी स्त्रियाँ श्रीरामके वरसे व्रजमें नौ उपनन्दोंके घरोंमें उत्पन्न हुईं और व्रजके गोपजनोंके साथ उनका विवाह हो गया। वे सब-की-सब रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थीं। उनकी अङ्गकान्ति पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनीके समान थी। वे नूतन यौवनसे सम्पन्न थीं। उनकी चाल हंसके समान थी और नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल थे। वे पद्मिनी जातिकी नारियाँ थीं। उन्होंने कमनीय महात्मा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके प्रति जारधर्मके अनुसार उत्तम, सुदृढ़ तथा सबसे अधिक स्नेह किया ॥ १–४ ॥

व्रजकी गलियोंमें माधव मुस्कराकर पीताम्बर छीनकर और आँचल खींचकर उनके साथ सदा हास-परिहास किया करते थे। वे गोपबालाएँ जब दही बेचनेके लिये निकलतीं तो 'दही लो, दही लो'—यह कहना भूलकर 'कृष्ण लो, कृष्ण लो' कहने लगती थीं। श्रीकृष्णके प्रति प्रेमासक्त होकर वे कुञ्जमण्डलमें घूमा करती थीं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्रमण्डल, सम्पूर्ण दिशा, वृक्ष तथा जनसमुदायोंमें भी उन्हें केवल कृष्ण ही दिखायी देते थे। प्रेमके समस्त लक्षण उनमें प्रकट थे। श्रीकृष्णने उनके मन हर लिये थे। वे सारी व्रजाङ्गनाएँ आठों सात्त्विक भावोंसे सम्पन्न थीं * ॥५–८॥

प्रेमने उन सबको परमहंसों (ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं) की अवस्थाको पहुँचा दिया था। नरेश्वर! वे कान्तिमती गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णके आनन्दमें ही मग्न हो व्रजकी गलियोंमें विचरा करती थीं। उनमें जड-चेतनका भान नहीं रह गया था। वे जड, उन्मत्त और पिशाचोंकी भाँति कभी मौन रहतीं और कभी बहुत बोलने लगती थीं। वे लाज और चिन्ताको तिलाञ्जलि दे चुकी थीं। इस प्रकार कृतार्थताको प्राप्त हो जो श्रीकृष्णमें तन्मय हो रही थीं, वे गोपाङ्गनाएँ बलपूर्वक खींचकर श्रीकृष्णके मुखारविन्दको चूम लेती थीं। राजन्! उनके तपका मैं क्या वर्णन करूँ? जो सारे लोकव्यवहार एवं मर्यादा-मार्गको तिलाञ्जलि देकर हृदय तथा इन्द्रिय आदिके द्वारा पूर्ण परब्रह्म वासुदेवमें अविचल प्रेम करती थीं; जो रास-क्रीडामें श्रीकृष्णके कंधोंपर अपनी बाँहें रखकर, प्रेमसे विगलितचित्त हो श्रीकृष्णको पूर्णतया अपने वशमें कर चुकी थीं; उनकी तपस्याका अपने सहस्रमुखोंसे वर्णन करनेमें नागराज शेष भी समर्थ नहीं हैं। विदेहराज! न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनोंके तत्त्वज्ञोंमें श्रेष्ठतम महात्मा योग-सांख्य और शुभकर्मद्वारा जिस पदको प्राप्त करते हैं, वही पद केवल भक्ति-भावसे उपलब्ध हो जाता है। आदि-

---

* आठ सात्त्विक भावोंके नाम इस प्रकार हैं—

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः ॥

'अङ्गोंका जकड़ जाना, पसीना होना, रोमाञ्च हो आना, बोलते समय आवाजका बदल जाना, शरीरमें कम्पन होना, मुँहका रंग उड़ जाना, नेत्रोंसे आँसू बहना तथा मरणासन्न अवस्थातक पहुँच जाना—ये आठ प्रेमके सात्त्विक भाव माने गये हैं।'

देव श्रीहरि केवल भक्तिसे ही वशमें होते हैं, निश्चय ही इस विषयमें सदा गोपियाँ ही प्रमाण हैं। उन्होंने कभी सांख्य और योगका अनुष्ठान नहीं किया, तथापि केवल प्रेमसे ही वे भगवत्स्वरूपताको प्राप्त हो गयीं ॥ ९-१५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कोसलप्रान्तीय गोपिकाओंका आख्यान' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

अयोध्यावासिनी गोपियोंके आख्यानके प्रसङ्गमें राजा विमलकी संतानके लिये चिन्ता तथा महामुनि याज्ञवल्क्यद्वारा उन्हें बहुत-सी पुत्री होनेका विश्वास दिलाना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! अब अयोध्यावासिनी गोपियोंका वर्णन सुनो, जो चारों पदार्थोंको देनेवाला तथा साक्षात् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला सर्वोत्कृष्ट साधन है ॥१॥

मिथिलेश्वर! सिन्धुदेशमें चम्पका नामसे प्रसिद्ध एक नगरी थी, जिसमें धर्मपरायण विमल नामक राजा हुए थे। वे कुबेरके समान कोषसे सम्पन्न तथा सिंहके समान मनस्वी थे। वे भगवान् विष्णुके भक्त और प्रशान्तचित्त महात्मा थे। वे अपनी अविचल भक्तिके कारण मूर्तिमान् प्रह्लाद-से प्रतीत होते थे। उन भूपालके छः हजार रानियाँ थीं। वे सब-की-सब सुन्दर रूपवाली तथा कमलनयनी थीं, परंतु भाग्यवश वे वन्ध्या हो गयीं। राजन्! 'मुझे किस पुण्यसे उत्तम संतानकी प्राप्ति होगी?'—ऐसा विचार करते हुए राजा विमलके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये ॥ २-५ ॥

एक दिन उनके यहाँ मुनिवर याज्ञवल्क्य पधारे। राजाने उनको प्रणाम करके उनका विधिवत् पूजन किया और फिर उनके सामने वे विनीतभावसे खड़े हो गये। नृपतिशिरोमणि राजाको चिन्तासे आकुल देख सर्वज्ञ, सर्ववित् तथा शान्त-स्वरूप महामुनि याज्ञवल्क्यने उनसे पूछा ॥ ६-७ ॥

याज्ञवल्क्य बोले—राजन्! तुम दुर्बल क्यों हो गये हो? तुम्हारे हृदयमें कौन-सी चिन्ता खड़ी हो गयी है? इस समय तुम्हारे राज्यके सातों अङ्गोंमें तो कुशल-मङ्गल ही दिखायी देता है? ॥ ८ ॥

विमलने कहा—ब्रह्मन्! आप अपनी तपस्या एवं दिव्यदृष्टिसे क्या नहीं जानते हैं? तथापि आपकी आज्ञाका गौरव मानकर मैं अपना कष्ट बता रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ! मैं संतान-हीनताके दुःखसे चिन्तित हूँ। कौन-सा तप और दान करूँ, जिससे मुझे संतानकी प्राप्ति हो ॥ ९-१० ॥

नारदजी कहते हैं—विमलकी यह बात सुनकर याज्ञवल्क्य मुनिके नेत्र ध्यानमें स्थित हो गये। वे मुनि-श्रेष्ठ भूत और वर्तमानका चिन्तन करते हुए दीर्घकालतक ध्यानमें मग्न रहे ॥ ११ ॥

याज्ञवल्क्य बोले—राजेन्द्र! इस जन्ममें तो तुम्हारे भाग्यमें पुत्र नहीं है, नहीं है, परंतु नृपश्रेष्ठ! तुम्हें पुत्रियाँ करोड़ोंकी संख्यामें प्राप्त होंगी ॥ १२ ॥

राजाने कहा—मुनीन्द्र! पुत्रके बिना कोई भी इस भूतलपर पूर्वजोंके ऋणसे मुक्त नहीं होता। पुत्रहीनके घरमें सदा ही व्यथा बनी रहती है। उसे इस लोक या परलोकमें कुछ भी सुख नहीं मिलता ॥ १३ ॥

याज्ञवल्क्य बोले—राजेन्द्र! खेद न करो। भविष्यमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होनेवाला है। तुम उन्हींको दहेजके साथ अपनी सब पुत्रियाँ समर्पित कर देना। नृपश्रेष्ठ! उसी कर्मसे तुम देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके ऋणसे छूटकर परममोक्ष प्राप्त कर लोगे ॥ १४-१५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—महामुनिका यह वचन सुनकर उस समय राजाको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्यसे पुनः अपना संदेह पूछा ॥ १६ ॥

राजा बोले—मुनीश्वर! कितने वर्ष बीतनेपर किस देशमें और किस कुलमें साक्षात् श्रीहरि अवतीर्ण होंगे? उस समय उनका रूप-रंग क्या होगा? ॥ १७ ॥

याज्ञवल्क्य बोले—महाबाहो! इस द्वापरयुगके जो अवशेष वर्ष हैं, उन्हींमें तुम्हारे राज्यकालसे एक सौ पंद्रह वर्ष व्यतीत होनेपर यादवपुरी मथुरामें यदुकुलके भीतर भाद्रपदमास, कृष्णपक्ष, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र, हर्षण योग, वृषलग्न, बव करण और अष्टमी तिथिमें आधी रातके

समय चन्द्रोदय-कालमें, जब कि सब कुछ अन्धकारसे आच्छन्न होगा, वसुदेव-भवनमें देवकीके गर्भसे साक्षात् श्रीहरिका आविर्भाव होगा—ठीक उसी तरह जैसे यज्ञमें अरणि-काष्ठसे अग्निका प्राकट्य होता है। भगवान्‌के वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न होगा। उनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम होगी। वे वनमालासे अलंकृत और अतीव सुन्दर होंगे। पीताम्बरधारी, कमलनयन तथा अवतारकालमें चतुर्भुज होंगे। तुम उन्हें अपनी कन्याएँ देना। तुम्हारी आयु अभी बहुत है। तुम उस समयतक जीवित रहोगे, इसमें संशय नहीं है ॥ १८–२२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अयोध्यावासिनी गोपाङ्गनाओंका उपाख्यान' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

अयोध्यापुरवासिनी स्त्रियोंका राजा विमलके यहाँ पुत्रीरूपसे उत्पन्न होना; उनके विवाहके लिये राजाका मथुरामें श्रीकृष्णको देखनेके निमित्त दूत भेजना; वहाँ पता न लगनेपर भीष्मजीसे अवतार-रहस्य जानकर उनका श्रीकृष्णके पास दूत प्रेषित करना

नारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर जब साक्षात् महामुनि याज्ञवल्क्य चले गये, तब चम्पका नगरीके स्वामी राजा विमलको बड़ा हर्ष हुआ। अयोध्यापुरवासिनी स्त्रियाँ श्रीरामके वरदानसे उनकी रानियोंके गर्भसे पुत्रीरूपमें प्रकट हुईं। वे सभी राजकन्याएँ बड़ी सुन्दरी थीं। उन्हें विवाहके योग्य अवस्थामें देखकर नृपशिरोमणि चम्पकेश्वरको चिन्ता हुई। उन्होंने याज्ञवल्क्यजीकी बातको याद करके दूतसे कहा ॥ १–३ ॥

विमल बोले—दूत! तुम मथुरा जाओ और वहाँ शूर-पुत्र वसुदेवके सुन्दर घरतक पहुँचकर देखो। वसुदेवका कोई बहुत सुन्दर पुत्र होगा। उसके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न होगा, अङ्गकान्ति मेघमालाकी भाँति श्याम होगी तथा वह वनमालाधारी एवं चतुर्भुज होगा। यदि ऐसी बात हो तो मैं उसके हाथमें अपनी समस्त सुन्दरी कन्याएँ दे दूँगा ॥ ४-५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! महाराज विमलकी यह बात सुनकर वह दूत मथुरापुरीमें गया और मथुराके बड़े-बड़े लोगोंसे उसने सारी अभीष्ट बातें पूछीं। उसकी बात सुनकर मथुराके बुद्धिमान् लोग, जो कंससे डरे हुए थे, उस दूतको एकान्तमें ले आकर उसके कानमें बहुत धीमे स्वरसे बोले ॥ ६-७ ॥

मथुरानिवासियोंने कहा—वसुदेवके जो बहुत-से पुत्र हुए, वे कंसके द्वारा मारे गये। एक छोटी-सी कन्या बच गयी थी, किंतु वह भी आकाशमें उड़ गयी। वसुदेव यहीं रहते हैं, किंतु पुत्रोंसे बिछुड़ जानेके कारण उनके मनमें बड़ा दुःख है। इस समय जो बात तुम हमलोगोंसे पूछ रहे हो, उसे और कहीं न कहना; क्योंकि इस नगरमें कंसका भय है। मथुरापुरीमें जो वसुदेवकी संतानके सम्बन्धमें कोई बात करता है, उसे उनके आठवें पुत्रका शत्रु कंस भारी दण्ड देता है ॥ ८–१० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! जनसाधारणकी यह बात सुनकर दूत चम्पकापुरीमें लौट गया। वहाँ जाकर राजासे उसने वह अद्भुत संवाद कह सुनाया ॥ ११ ॥

दूत बोला—महाराज! मथुरामें शूरपुत्र वसुदेव अवश्य हैं, किंतु संतानहीन होनेके कारण अत्यन्त दीन-की भाँति जीवन व्यतीत करते हैं। सुना है कि पहले उनके अनेक पुत्र हुए थे, जो कंसके हाथसे मारे गये हैं। एक कन्या बची थी, किंतु वह भी कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें उड़ गयी। यह वृत्तान्त सुनकर मैं यदुपुरीसे धीरे-धीरे बाहर निकला। वृन्दावनमें कालिन्दीके सुन्दर एवं रमणीय तटपर विचरते हुए मैंने लताओंके समूहमें अकस्मात् एक शिशु देखा। राजन्! गोपोंके मध्य दूसरा कोई ऐसा बालक नहीं था, जिसके लक्षण उसके समान हों। उस बालकके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न था।

राजा विमलके यज्ञमें श्रीकृष्णका पूजन
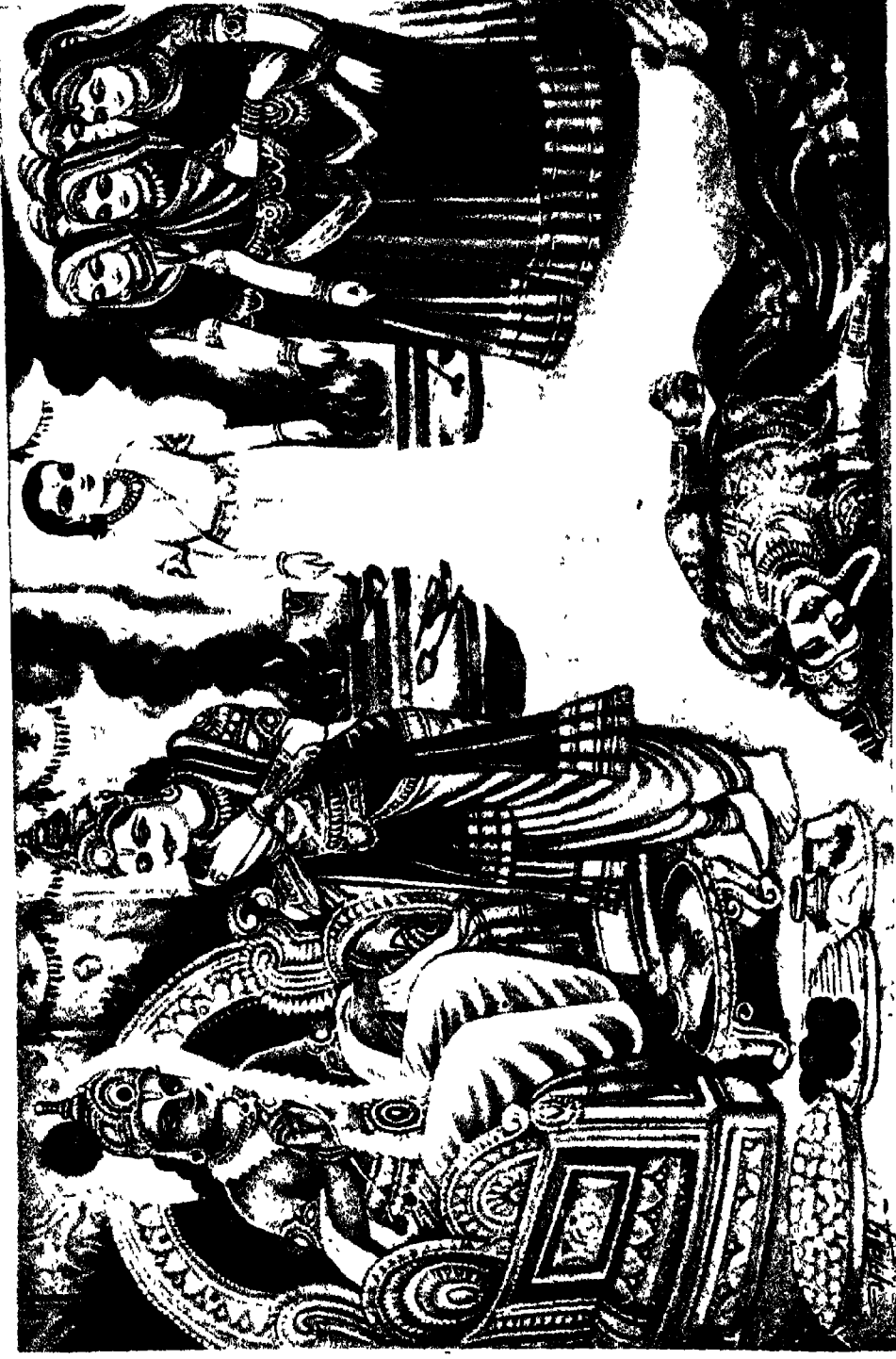
कन्याओंके श्रीकृष्णके अर्पण करनेपर विमलकी भगवत्स्वरूपता

उसकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम थी और वह वनमाला धारण किये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देता था। परंतु अन्तर इतना ही है कि उस गोप-बालकके दो ही बाँहें थीं और आपने वसुदेवकुमार श्रीहरिको चतुर्भुज बताया था। नरेश्वर! बताइये, अब क्या करना चाहिये? क्योंकि मुनिकी बात झूठी नहीं हो सकती। प्रभो! जहाँ-जहाँ, जिस तरह आपकी इच्छा हो, उसके अनुसार वहाँ-वहाँ मुझे भेजिये ॥ १२-१७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! राजा विमल जब इस प्रकार विस्मित होकर विचार कर रहे थे, उसी समय हस्तिनापुरसे सिन्धुदेशको जीतनेके लिये भीष्म आये ॥ १८ ॥

विमल बोले—महाबुद्धिमान् भीष्मजी! पहले याज्ञवल्क्यजीने मुझसे कहा था कि मथुरामें साक्षात् श्रीहरि वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे प्रकट होंगे, इसमें संशय नहीं है। परंतु इस समय वसुदेवके यहाँ परमेश्वर श्रीहरिका प्राकट्य नहीं हुआ है। साथ ही ऋषिकी बात झूठी हो नहीं सकती; अतः इस समय मैं अपनी कन्याओंका दान किसके हाथमें करूँ? आप साक्षात् महाभागवत हैं और पूर्वापरकी बातें जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। बचपनसे ही आपने इन्द्रियोंपर विजय पायी है। आप वीर, धनुर्धर एवं वसुओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये यह बताइये कि अब मुझे क्या करना चाहिये ॥ १९-२१ ॥

नारदजी कहते हैं—गङ्गानन्दन भीष्मजी महान् भगवद्भक्त, विद्वान्, दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न, धर्मके तत्त्वज्ञ तथा श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले थे। उन्होंने राजा विमलसे कहा ॥ २२ ॥

भीष्मजी बोले—राजन्! यह एक गुप्त बात है, जिसे मैंने वेदव्यासजीके मुँहसे सुनी थी। यह प्रसङ्ग समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद तथा हर्षवर्धक है; इसे सुनो। परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरि देवताओंकी रक्षा तथा दैत्योंका वध करनेके लिये वसुदेवके घरमें अवतीर्ण हुए हैं। किंतु आधी रातके समय वसुदेव कंसके भयसे उस बालकको लेकर तुरंत गोकुल चले गये और वहाँ अपने पुत्रको यशोदाकी शय्यापर सुलाकर, यशोदा और नन्दकी पुत्री मायाको साथ ले, मथुरापुरीमें लौट आये। इस प्रकार श्रीकृष्ण गोकुलमें गुप्तरूपसे पलकर बड़े हुए हैं, यह बात दूसरे कोई भी मनुष्य नहीं जानते। वे ही गोपाल-वेषधारी श्रीहरि वृन्दावनमें ग्यारह वर्षोंतक गुप्तरूपसे वास करेंगे। फिर कंसदैत्यका वध करके प्रकट हो जायँगे। अयोध्यापुरवासिनी जो नारियाँ श्रीरामचन्द्रजीके वरसे गोपीभावको प्राप्त हुई हैं, वे सब तुम्हारी पत्नियोंके गर्भसे सुन्दरी कन्याओंके रूपमें उत्पन्न हुई हैं। तुम उन गूढ़-रूपमें विद्यमान देवाधिदेव श्रीकृष्णको अपनी समस्त कन्याएँ अवश्य दे दो। इस कार्यमें कदापि विलम्ब न करो; क्योंकि यह शरीर कालके अधीन है ॥ २३-२९ ॥

यों कहकर जब सर्वज्ञ भीष्मजी हस्तिनापुरको चले गये, तब राजा विमलने नन्दनन्दनके पास अपना दूत भेजा ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अयोध्यापुरवासिनी गोपिकाओंका उपाख्यान' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

राजा विमलका संदेश पाकर भगवान् श्रीकृष्णका उन्हें दर्शन और मोक्ष प्रदान करना तथा उनकी राजकुमारियोंको साथ लेकर व्रजमण्डलमें लौटना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर दूत पुनः सिन्धुदेशसे मथुरा-मण्डलमें आया। वृन्दावनमें विचरते हुए यमुनाके तटपर उसको श्रीकृष्णका दर्शन हुआ। एकान्तमें श्रीकृष्णको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर और उनकी परिक्रमा करके उसने धीरे-धीरे राजा विमलकी कही हुई बात दुहरायी ॥ १-२ ॥

दूतने कहा—जो स्वयं परब्रह्म परमेश्वर हैं, सबसे परे और सबके द्वारा अदृश्य हैं, जो परिपूर्ण देव पुण्यकी राशिसे भी सदा दूर—ऊपर उठे हुए हैं, तथापि संतजनोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मेरा नमस्कार है। गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु पुरुष तथा धर्मकी रक्षाके लिये जो अजन्मा होनेपर भी इन दिनों

कंसादि दैत्योंके वधके लिये यदुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, उन अनन्त गुणोंके महासागर आप श्रीहरिको मेरा नमस्कार है। अहो ! व्रजवासियोंका बहुत बड़ा सौभाग्य है। आपके पिता नन्दराजका कुल धन्य है, यह व्रजमण्डल तथा यह वृन्दावन धन्य हैं, जहाँ आप परमेश्वर श्रीहरि साक्षात् प्रकट हैं। प्रभो ! आप श्रीराधारानीके कण्ठमें सुशोभित सुन्दर (नीलमणिमय) हार हैं, कस्तूरीकी सुगन्धकी भाँति सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और आपका सर्वत्र फैला हुआ निर्मल यश सम्पूर्ण त्रिलोकीको तत्काल श्वेत किये देता है। आप लोगोंके चित्तका सम्पूर्ण अभिप्राय जानते हैं; क्योंकि आप समस्त क्षेत्रोंके ज्ञाता आत्मा हैं और कर्मराशिके साक्षी हैं। तथापि राजा विमलने जो परम रहस्यकी और स्वधर्मसे सम्बद्ध बात कही है, उसको मैं आपसे एकान्तमें बताऊँगा। सिन्धुदेशमें जो चम्पका नामसे प्रसिद्ध इन्द्रपुरीके समान सुन्दर नगरी है, उसके पालक राजा विमल देवराज इन्द्रके समान ऐश्वर्यशाली हैं। उनकी चित्तवृत्ति सदा आपके चरणारविन्दोंमें लगी रहती है। उन्होंने आपकी प्रसन्नताके लिये सदा सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा दान, तप, ब्राह्मण-सेवा, तीर्थसेवन और जप आदि किये हैं। उनके इन उत्तम साधनोंको निमित्त बनाकर आप उन्हें अपना सर्वोत्कृष्ट दर्शन अवश्य दीजिये। उनकी बहुत-सी कन्याएँ हैं, जो प्रफुल्ल कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंसे सुशोभित हैं और आप पूर्ण परमेश्वरको पतिरूपमें अपने निकट पानेके शुभ अवसरकी प्रतीक्षा करती हैं। वे राजकुमारियाँ सदा आपकी प्राप्तिके लिये नियमों और व्रतोंके पालनमें तत्पर हैं तथा आपके चरणोंकी सेवासे उनके तन, मन निर्मल हो गये हैं। व्रजके देवता ! आप अपना उत्तम और अद्भुत दर्शन देकर उन सब राजकन्याओंका पाणिग्रहण कीजिये। इस समय आपके समक्ष जो यह कर्तव्य प्राप्त हुआ है, इसका विचार करके आप सिन्धुदेशमें चलिये और वहाँके लोगोंको अपने पावन दर्शनसे विशुद्ध कीजिये ॥ १—११ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उस दूतकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीहरि बड़े प्रसन्न हुए और क्षणभरमें दूतके साथ ही चम्पकापुरीमें जा पहुँचे। उस समय राजा विमलका महान् यज्ञ चालू था। उसमें वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूँज रही थी। दूतसहित भगवान् श्रीकृष्ण सहसा आकाशसे उस यज्ञमें उतरे। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित, मेघके समान श्याम कान्तिधारी, सुन्दर वनमालालंकृत, पीतपटावृत कमलनयन श्रीहरिको यज्ञभूमिमें आया देख राजा विमल सहसा उठकर खड़े हो गये और प्रेमसे विह्वल हो, दोनों हाथ जोड़ उनके चरणोंके समीप गिर पड़े। उस समय उनके अङ्ग-अङ्गमें रोमाञ्च हो आया था। फिर उठकर राजाने रत्न और सुवर्णसे जटित दिव्य सिंहासनपर भगवान्‌को बिठाया, उनका स्तवन किया तथा विधिवत् पूजन करके वे उनके सामने खड़े हो गये। खिड़कियोंसे झाँककर देखती हुई सुन्दरी राजकुमारियोंकी ओर दृष्टिपात करके माधव श्रीकृष्णने मेघके समान गम्भीर वाणीमें राजा विमलसे कहा ॥ १२—१७ ॥

श्रीभगवान् बोले—महामते ! तुम्हारे मनमें जो वाञ्छनीय हो, वह वर मुझसे माँगो। महामुनि याज्ञवल्क्यके वचनसे ही इस समय तुम्हें मेरा दर्शन हुआ है ॥ १८ ॥

विमलने कहा—देवदेव ! मेरा मन आपके चरणारविन्दमें भ्रमर होकर निवास करे, यही मेरी इच्छा है। इसके सिवा दूसरी कोई अभिलाषा कभी मेरे मनमें नहीं होती ॥ १९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—यों कहकर राजा विमलने अपना सारा कोश और महान् वैभव हाथी, घोड़े एवं रथोंके साथ श्रीकृष्णार्पण कर दिया। अपने-आपको भी उनके चरणोंकी भेंट कर दिया। नरेश्वर ! अपनी समस्त कन्याओंको विधिपूर्वक श्रीहरिके हाथोंमें समर्पित करके भक्ति-विह्वल राजा विमलने श्रीकृष्णको नमस्कार किया। उस समय जन-मण्डलमें जय-जयकारका शब्द गूँज उठा और आकाशमें खड़े हुए देवताओंने वहाँ दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की। फिर उसी समय राजा विमलको भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त हो गया। उनकी अङ्गकान्ति कामदेवके समान प्रकाशित हो उठी। शत सूर्योंके समान तेज धारण किये वे दिशामण्डलको उद्भासित करने लगे। उस यज्ञमें उपस्थित सम्पूर्ण मनुष्योंके देखते-देखते पत्नियोंसहित राजा विमल गरुड़पर आरूढ हो भगवान् श्रीगरुडध्वजको नमस्कार करके वैकुण्ठलोकमें चले गये ॥ २०—२४ ॥

इस प्रकार राजाको मोक्ष प्रदान करके स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उनकी सुन्दरी कुमारियोंको साथ ले, व्रजमण्डलमें आ गये। वहाँ रमणीय कामवनमें, जो दिव्य मन्दिरोंसे सुशोभित था, वे सुन्दरी कृष्णप्रियाएँ आकर रहने लगीं

और भगवान्‌के साथ कन्दुक-क्रीड़ासे मन बहलाने लगीं। जितनी संख्यामें वे श्रीकृष्णप्रिया सखियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके सुन्दर व्रजराज श्रीकृष्ण रासमण्डलमें उनका मनोरञ्जन करते हुए विराजमान हुए। उस रासमण्डलमें उन विमल-कुमारियोंके नेत्रोंसे जो आनन्दजनित जलबिन्दु च्युत होकर गिरे, उन सबसे वहाँ 'विमलकुण्ड' नामक तीर्थ प्रकट हो गया, जो सब तीर्थोंमें उत्तम है। नृपेश्वर! विमलकुण्डका दर्शन करके, उसका जल पीकर तथा उसमें स्नान-पूजन करके मनुष्य मेरुपर्वतके समान विशाल पापको भी नष्ट कर डालता और गोलोकधाममें जाता है। जो मनुष्य अयोध्यावासिनी गोपियोंके इस कथानकको सुनेगा, वह योगिदुर्लभ परमधाम गोलोकमें जायगा ॥ २५—३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अयोध्यापुरवासिनी गोपियोंका उपाख्यान' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

यज्ञसीतास्वरूपा गोपियोंके पूछनेपर श्रीराधाका श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये एकादशी-व्रतका अनुष्ठान बताना और उसके विधि, नियम और माहात्म्यका वर्णन करना

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब यज्ञसीता-स्वरूपा गोपियोंका वर्णन सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक, कामनापूरक तथा मङ्गलका धाम है ॥ १ ॥

दक्षिण दिशामें उशीनर नामसे प्रसिद्ध एक देश है, जहाँ एक समय दस वर्षोंतक इन्द्रने वर्षा नहीं की। उस देशमें जो गोधनसे सम्पन्न गोप थे, वे अनावृष्टिके भयसे व्याकुल हो अपने कुटुम्ब और गोधनोंके साथ व्रजमण्डलमें आ गये। नरेश्वर! नन्दराजकी सहायतासे वे पवित्र वृन्दावनमें यमुनाके सुन्दर एवं सुरम्य तटपर वास करने लगे। भगवान् श्रीरामके वरसे यज्ञसीतास्वरूपा गोपाङ्गनाएँ उन्हींके घरोंमें उत्पन्न हुईं। उन सबके शरीर दिव्य थे तथा वे दिव्य यौवनसे विभूषित थीं। नृपेश्वर! एक दिन वे सुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन करके मोहित हो गयीं और श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई व्रत पूछनेके उद्देश्यसे श्रीराधाके पास गयीं ॥ २—६ ॥

गोपियाँ बोलीं—दिव्यस्वरूपे, कमललोचने, वृष-भानुनन्दिनी श्रीराधे! आप हमें श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई शुभव्रत बतायें। जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं, वे श्रीनन्दनन्दन तुम्हारे वशमें रहते हैं। राधे! तुम विश्वमोहिनी हो और सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत भी हो ॥ ७-८ ॥

श्रीराधाने कहा—प्यारी बहिनो! श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये तुम सब एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे साक्षात् श्रीहरि तुम्हारे वशमें हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥

गोपियोंने पूछा—राधिके! पूरे वर्षभरकी एकादशियोंके क्या नाम हैं, यह बताओ। प्रत्येक मासमें एकादशीका व्रत किस भावसे करना चाहिये? ॥ १० ॥

श्रीराधाने कहा—गोपकुमारियो! मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षमें भगवान् विष्णुके शरीरसे—मुख्यतः उनके मुखसे एक असुरका वध करनेके लिये एकादशीकी उत्पत्ति हुई, अतः वह तिथि अन्य सब तिथियोंसे श्रेष्ठ है। प्रत्येक मासमें पृथक्-पृथक् एकादशी होती है। वही सब व्रतोंमें उत्तम है। मैं तुम सबोंके हितकी कामनासे उस तिथिके छब्बीस नाम बता रही हूँ। (मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशीसे आरम्भ करके कार्तिक शुक्ला एकादशीतक चौबीस एकादशी तिथियाँ होती हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—) उत्पन्ना, मोक्षा, सफला, पुत्रदा, षट्‌तिला, जया, विजया, आमलकी, पापमोचनी, कामदा, वरूथिनी, मोहिनी, अपरा, निर्जला, योगिनी, देवशयनी, कामिनी, पवित्रा, अजा, पद्मा, इन्दिरा, पापाङ्कुशा, रमा तथा प्रबोधिनी। दो एकादशी तिथियाँ मलमासकी होती हैं। उन दोनोंका नाम 'सर्वसम्पत्-प्रदा' है। इस प्रकार जो एकादशीके छब्बीस नामोंका पाठ करता है, वह भी वर्षभरकी द्वादशी (एकादशी) तिथियोंके व्रतका फल पा लेता है ॥ ११—१७½ ॥

व्रजाङ्गनाओ! अब एकादशी-व्रतके नियम सुनो।

मनुष्यको चाहिये कि वह दशमीको एक ही समय भोजन करे और रातमें जितेन्द्रिय रहकर भूमिपर शयन करे। जल भी एक ही बार पीये। धुला हुआ वस्त्र पहने और तन-मनसे अत्यन्त निर्मल रहे। फिर ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर एकादशीको श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करे। तदनन्तर शौचादिसे निवृत्त हो स्नान करे। कुएँका स्नान सबसे निम्नकोटिका है, बावड़ीका स्नान मध्यमकोटिका है, तालाब और पोखरेका स्नान उत्तम श्रेणीमें गिना गया है और नदीका स्नान उससे भी उत्तम है। इस प्रकार स्नान करके व्रत करनेवाला नरश्रेष्ठ क्रोध और लोभका त्याग करके उस दिन नीचों और पाखण्डी मनुष्योंसे बात न करे। जो असत्यवादी, ब्राह्मणनिन्दक, दुराचारी, अगम्या स्त्रीके साथ समागममें रत रहनेवाले, परधनहारी, परस्त्रीगामी, दुर्वृत्त तथा मर्यादाका भङ्ग करनेवाले हैं, उनसे भी व्रती मनुष्य बात न करे। मन्दिरमें भगवान् केशवका पूजन करके वहाँ नैवेद्य लगावे और भक्तियुक्त चित्तसे दीपदान करे। ब्राह्मणोंसे कथा सुनकर उन्हें दक्षिणा दे, रातको जागरण करे और श्रीकृष्ण-सम्बन्धी पदोंका गान एवं कीर्तन करे। वैष्णवव्रत (एकादशी) का पालन करना हो तो दशमीको काँसेका पात्र, मांस, मसूर, कोदो, चना, साग, शहद, पराया अन्न, दुबारा भोजन तथा मैथुन—इन दस वस्तुओंको त्याग दे। जुएका खेल, निद्रा, मद्य-पान, दन्तधावन, परनिन्दा, चुगली, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध और असत्यभाषण—एकादशीको इन ग्यारह वस्तुओंका त्याग कर देना चाहिये। काँसेका पात्र, मांस, शहद, तेल, मिथ्याभोजन, पिट्ठी, साठीका चावल और मसूर आदिका द्वादशीको सेवन न करे। इस विधिसे उत्तम एकादशीव्रतका अनुष्ठान करे॥ १८-३०॥

गोपियाँ बोलीं—परमबुद्धिमती श्रीराधे! एकादशी-व्रतका समय बताओ। उससे क्या फल होता है, यह भी कहो तथा एकादशीके माहात्म्यका भी यथार्थरूपसे वर्णन करो॥ ३१॥

श्रीराधाने कहा—यदि दशमी पचपन घड़ी (दण्ड) तक देखी जाती हो तो वह एकादशी त्याज्य है। फिर तो द्वादशी-को ही उपवास करना चाहिये। यदि पलभर भी दशमीसे वेध प्राप्त हो तो वह सम्पूर्ण एकादशी तिथि त्याग देनेयोग्य है—ठीक उसी तरह, जैसे मदिराकी एक बूँद भी पड़ जाय तो गङ्गाजलसे भरा हुआ कलश त्याज्य हो जाता है। यदि एकादशी बढ़कर द्वादशीके दिन भी कुछ कालतक विद्यमान हो तो दूसरे दिनवाली एकादशी ही व्रतके योग्य है। पहली एकादशीको उस व्रतमें उपवास नहीं करना चाहिये॥ ३२-३४॥

व्रजाङ्गनाओ! अब मैं तुम्हें इस एकादशी-व्रतका फल बता रही हूँ, जिसके श्रवणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। जो अट्ठासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको एकादशीका व्रत करनेवाला मनुष्य उस व्रतके पालनमात्रसे पा लेता है। जो समुद्र और वनोंसहित सारी वसुंधराका दान करता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यसे भी हजारगुना पुण्य एकादशीके महान् व्रतका अनुष्ठान करनेसे सुलभ हो जाता है। जो पापपङ्कसे भरे हुए संसार-सागरमें डूबे हैं, उनके उद्धारके लिये एकादशी-का व्रत ही सर्वोत्तम साधन है। रात्रिकालमें जागरणपूर्वक एकादशी-व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य यदि सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी यमराजके रौद्ररूपका दर्शन नहीं करता। जो द्वादशीको तुलसीदलसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिका पूजन करता है, वह जलसे कमलपत्रकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता। सहस्रों अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूययज्ञ भी एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर नहीं हो सकते। एकादशीका व्रत करनेवाला मनुष्य मातृकुलकी दस, पितृकुलकी दस तथा पत्नीके कुलकी दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जैसी शुक्लपक्षकी एकादशी है, वैसी ही कृष्ण-पक्षकी भी है; दोनोंका समान फल है। दुधारू गाय जैसी सफेद वैसी काली—दोनोंका दूध एक-सा ही होता है। गोपियो! मेरु और मन्दराचलके बराबर बड़े-बड़े सौ जन्मोंके पाप एक ओर और एक ही एकादशीका व्रत दूसरी ओर हो तो वह उन पर्वतोपम पापोंको उसी प्रकार जलाकर भस्म कर देती है, जैसे आगकी चिनगारी रूईके ढेरको दग्ध कर देती है॥ ३५-४४॥

गोपाङ्गनाओ! विधिपूर्वक हो या अविधिपूर्वक, यदि द्वादशीको थोड़ा-सा भी दान कर दिया जाय तो वह मेरु पर्वतके समान महान् हो जाता है। जो एकादशीके दिन भगवान् विष्णुकी कथा सुनता है, वह सात द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीके दानका फल पाता है। यदि मनुष्य शङ्खोद्धार-तीर्थमें स्नान करके गदाधर देवके दर्शनका महान् पुण्य संचित कर ले, तो भी वह पुण्य एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं कर सकता है। प्रभास,

कुरुक्षेत्र, केदार, बदरिकाश्रम, काशी तथा सूकरक्षेत्रमें चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा चार लाख संक्रान्तियोंके अवसरपर मनुष्योंद्वारा जो दान दिया गया हो, वह भी एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर नहीं है। गोपियो! जैसे नागोंमें शेष, पक्षियोंमें गरुड, देवताओंमें विष्णु, वर्णोंमें ब्राह्मण, वृक्षोंमें पीपल तथा पत्रोंमें तुलसीदल सबसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार व्रतोंमें एकादशी तिथि सर्वोत्तम है। जो मनुष्य दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करता है, उसके समान ही फल वह मनुष्य भी पा लेता है, जो एकादशीका व्रत करता है। व्रजाङ्गनाओ! इस प्रकार मैंने तुमसे एकादशियोंके फलका वर्णन किया। अब तुम शीघ्र इस व्रतको आरम्भ करो। बताओ, अब और क्या सुनना चाहती हो? ॥ ४५–५१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यज्ञसीताओंका उपाख्यान एवं एकादशी-माहात्म्य' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

पूर्वकालमें एकादशीका व्रत करके मनोवाञ्छित फल पानेवाले पुण्यात्माओंका परिचय तथा यज्ञसीतास्वरूपा गोपिकाओंको एकादशी-व्रतके प्रभावसे श्रीकृष्ण-सांनिध्यकी प्राप्ति

गोपियाँ बोलीं—सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत सुन्दरी वृषभानु-नन्दिनी! तुम अपनी वाणीसे बृहस्पति मुनिकी वाणीका अनुकरण करती हो। राधे! यह एकादशी-व्रत पहले किसने किया था? यह हमें विशेषरूपसे बताओ; क्योंकि तुम साक्षात् ज्ञानकी निधि हो ॥ १-२ ॥

श्रीराधाने कहा—गोपियो! सबसे पहले देवताओंने अपने छीने गये राज्यकी प्राप्ति तथा दैत्योंके विनाशके लिये एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया था। राजा वैशन्तने पूर्वकालमें यमलोकगत पिताके उद्धारके लिये एकादशी-व्रत किया था। लुम्पक नामके एक राजाको उसके पापके कारण कुटुम्बी-जनोंने अकस्मात् त्याग दिया था। लुम्पकने भी एकादशीका व्रत किया और उसके प्रभावसे अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया। भद्रावती नगरीमें पुत्रहीन राजा केतुमान्‌ने संतोंके कहनेसे एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया और उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हो गयी। एक ब्राह्मणीको देवपत्नियोंने एकादशी-व्रतका पुण्य प्रदान किया, जिससे उस मानवीने धन-धान्य तथा स्वर्गका सुख प्राप्त किया। पुष्पदन्ती और माल्यवान्—दोनों इन्द्रके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हो गये थे। उन दोनोंने एकादशीका व्रत किया और उसके पुण्य-प्रभावसे उन्हें पुनः गन्धर्वत्वकी प्राप्ति हो गयी। पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रपर सेतु बाँधने तथा रावणका वध करनेके लिये एकादशीका व्रत किया था। प्रलयके अन्तमें उत्पन्न हुए आँवलेके वृक्षके नीचे बैठकर देवताओंने सबके कल्याणके लिये एकादशीका व्रत किया था। पिताकी आज्ञासे मेधावीने एकादशीका व्रत किया, जिससे वे अप्सराके साथ सम्पर्कके दोषसे मुक्त हो निर्मल तेजसे सम्पन्न हो गये। ललित-नामक गन्धर्व अपनी पत्नीके साथ ही शापवश राक्षस हो गया था, किंतु एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे उसने पुनः गन्धर्वत्व प्राप्त कर लिया। एकादशीके व्रतसे ही राजा मांधाता, सगर, ककुत्स्थ और महामति मुचुकुन्द पुण्यलोकको प्राप्त हुए। धुन्धुमार आदि अन्य बहुत-से राजाओंने भी एकादशी-व्रतके प्रभावसे ही सद्गति प्राप्त की तथा भगवान् शंकर ब्रह्मकपालसे मुक्त हुए। कुटुम्बीजनोंसे परित्यक्त महादुष्ट वैश्य-पुत्र धृष्टबुद्धि एकादशी-व्रत करके ही वैकुण्ठलोकमें गया था। राजा रुक्माङ्गदने भी एकादशीका व्रत किया था और उसके प्रभावसे भूमण्डलका राज्य भोगकर वे पुरवासियोंसहित वैकुण्ठलोकमें पधारे थे। राजा अम्बरीषने भी एकादशीका व्रत किया था, जिससे कहीं भी प्रतिहत न होनेवाला ब्रह्मशाप उन्हें छू न सका। हेममाली नामक यक्ष कुबेरके शापसे कोढ़ी हो गया था, किंतु एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करके वह पुनः चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हो गया। राजा महीजित्‌ने भी एकादशीका व्रत किया था, जिसके प्रभावसे सुन्दर पुत्र प्राप्तकर वे स्वयं भी वैकुण्ठगामी हुए। राजा हरिश्चन्द्रने भी एकादशीका व्रत किया था, जिससे पृथ्वीका राज्य भोगकर वे अन्तमें पुरवासियोंसहित वैकुण्ठ-धामको गये। पूर्वकालके सत्ययुगमें राजा मुचुकुन्दका दामाद शोभन

भारतवर्षमें एकादशीका उपवास करके उसके पुण्य-प्रभावसे देवताओंके साथ मन्दराचलपर चला गया। वह आज भी वहाँ अपनी रानी चन्द्रभागाके साथ कुबेरकी भाँति राज्य-सुख भोगता है। गोपियो! एकादशीको सम्पूर्ण तिथियोंकी परमेश्वरी समझो। उसकी समानता करनेवाली दूसरी कोई तिथि नहीं है॥ १—२२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधाके मुखसे इस प्रकार एकादशीकी महिमा सुनकर यज्ञसीतास्वरूपा गोपिकाओंने श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे विधिपूर्वक एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया। एकादशी-व्रतसे प्रसन्न हुए साक्षात् भगवान् श्रीहरिने मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमाकी रातमें उन सबके साथ रास किया॥ २३-२४॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें यज्ञसीतोपाख्यानके प्रसङ्गमें 'एकादशीका माहात्म्य' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

पुलिन्द-कन्यारूपिणी गोपियोंके सौभाग्यका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—अब पुलिन्द (कोल-भील) जातिकी स्त्रियोंका, जो गोपी-भावको प्राप्त हुई थीं, मैं वर्णन करता हूँ। यह वर्णन समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला, पुण्यजनक, अद्भुत और भक्तिभावको बढ़ानेवाला है॥ १॥

विन्ध्याचलके वनमें कुछ पुलिन्द (कोल-भील) निवास करते थे। वे उद्भट योद्धा थे और केवल राजाका धन लूटते थे। गरीबोंकी कोई चीज कभी नहीं छूते थे। विन्ध्यदेशके बलवान् राजाने कुपित हो दो अक्षौहिणी सेनाओंके द्वारा उन सभी पुलिन्दोंपर घेरा डाल दिया। वे पुलिन्द भी तलवारों, भालों, शूलों, फरसों, शक्तियों, भुशुण्डियों, भुशुण्डियों और तीर-कमानोंसे कई दिनोंतक राजकीय सैनिकोंके साथ युद्ध करते रहे। (विजयकी आशा न देखकर) उन्होंने सहायताके लिये यादवोंके राजा कंसके पास पत्र भेजा। तब कंसकी आज्ञासे बलवान् दैत्य प्रलम्ब वहाँ आया। उसका शरीर दो योजन ऊँचा था। देहका रंग मेघोंकी काली घटाके समान काला था। माथेपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल धारण किये वह दैत्य सर्पोंकी मालासे विभूषित था। उसके पैरोंमें सोनेकी साँकल थी और हाथमें गदा लेकर वह दैत्य कालके समान जान पड़ता था। उसकी जीभ लपलपा रही थी और रूप बड़ा भयंकर था। वह शत्रुओंपर पर्वतकी चट्टानें तथा बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़कर फेंकता था। पैरोंकी धमकसे धरतीको कँपाते हुए रण-दुर्मद दैत्य प्रलम्बको देखते ही भयभीत तथा पराजित हो विन्ध्यनरेश सेनासहित समराङ्गण छोड़कर सहसा भाग चले, मानो सिंहको देखकर हाथी भाग जाता हो। तब प्रलम्ब उन सब पुलिन्दोंको साथ ले पुनः मथुरापुरीको लौट आया॥ २—९॥

वे सभी पुलिन्द कंसके सेवक हो गये। नृपेश्वर! उन सबने अपने कुटुम्बके साथ कामगिरिपर निवास किया। उन्हींके घरोंमें भगवान् श्रीरामके उत्कृष्ट वरदानसे वे पुलिन्द-स्त्रियाँ दिव्य कन्याओंके रूपमें प्रकट हुईं, जो मूर्तिमती लक्ष्मीकी भाँति पूजित एवं प्रशंसित होती थीं। श्रीकृष्णके दर्शनसे उनके हृदयमें प्रेमकी पीड़ा जाग उठी। वे पुलिन्द-कन्याएँ प्रेमसे विह्वल हो भगवान्‌की श्रीसम्पन्न चरणरजको सिरपर धारण करके दिन-रात उन्हींके ध्यान एवं चिन्तनमें डूबी रहती थीं। वे भी भगवान्‌की कृपासे रासमें आ पहुँचीं और साक्षात् गोलोकके अधिपति, सर्वसमर्थ, परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णको उन्होंने सदाके लिये प्राप्त कर लिया। अहो! इन पुलिन्द-कन्याओंका कैसा महान् सौभाग्य है कि देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंकी रज उन्हें विशेषरूपसे प्राप्त हो गयी। जिसकी भगवान्‌के परम उत्कृष्ट पाद-पद्म-परागमें सुदृढ़ भक्ति है, वह न तो ब्रह्माजीका पद, न महेन्द्रका स्थान, न निरन्तर-स्थायी सार्वभौम सम्राट्का पद, न पाताललोकका आधिपत्य, न योगसिद्धि और न अपुनर्भव (मोक्ष) को ही चाहता है। जो अकिंचन हैं, अपने किये हुए कर्मोंके

फलसे विरक्त हैं, वे हरि-चरण-रजमें आसक्त भगवान्के स्वजन महात्मा भक्त मुनि जिस पदका सेवन करते हैं, वही निरपेक्ष सुख है। दूसरे लोग जिसे सुख कहते हैं, वह वास्तवमें निरपेक्ष नहीं है* ॥ १०—१६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'पुलिन्दी-उपाख्यान' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

लक्ष्मीजीकी सखियोंका वृषभानुओंके घरोंमें कन्यारूपसे उत्पन्न होकर माघमासके व्रतसे श्रीकृष्णको रिझाना और पाना

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब दूसरी गोपियोंका भी वर्णन सुनो, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा श्रीहरिके प्रति भक्ति-भावकी वृद्धि करनेवाला है ॥ १ ॥

राजन्! व्रजमें छः वृषभानु उत्पन्न हुए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—नीतिवित्, मार्गद, शुक्ल, पतङ्ग, दिव्यवाहन तथा गोपेष्ट (ये नामानुरूप गुणोंवाले थे)। उनके घरमें लक्ष्मीपति नारायणके वरदानसे जो कुमारियाँ उत्पन्न हुईं, उनमेंसे कुछ तो रमा-वैकुण्ठवासिनी और कुछ समुद्रसे उत्पन्न हुई लक्ष्मीजीकी सखियाँ थीं, कुछ अजित-पदवासिनी और कुछ ऊर्ध्ववैकुण्ठलोकनिवासिनी देवियाँ थीं, कुछ लोकाचलवासिनी समुद्रसम्भवा लक्ष्मी-सहचरियाँ थीं। उन्होंने सदा श्रीगोविन्दके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए माघमासका व्रत किया। उस व्रतका उद्देश्य था—श्रीकृष्णको प्रसन्न करना। माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको, जो भावी वसन्तके शुभागमनका सूचक प्रथम दिन है, उनके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये श्रीकृष्ण उनके घरके निकट आये। वे व्याघ्रचर्मका वस्त्र पहने, जटाके मुकुट बाँधे, समस्त अङ्गोंमें विभूति रमाये योगीके वेषमें सुशोभित हो, वेणु बजाते हुए जगत्के लोगोंका मन मोह रहे थे। अपनी गलियोंमें उनका शुभागमन हुआ देख सब ओरसे मोहित एवं प्रेम-विह्वल हुई गोपाङ्गनाएँ उस तरुण योगीका दर्शन करनेके लिये आयीं। उन अत्यन्त सुन्दर योगीको देखकर प्रेम और आनन्दमें डूबी हुई समस्त गोपकन्याएँ परस्पर कहने लगीं ॥ २—९ ॥

गोपियाँ बोलीं—यह कौन बालक है, जिसकी आकृति नन्दनन्दनसे ठीक-ठीक मिलती-जुलती है; अथवा यह किसी धनी राजाका पुत्र होगा, जो अपनी स्त्रीके कठोर वचनरूपी बाणसे मर्म बिंध जानेके कारण घरसे विरक्त हो गया और सारे कृत्यकर्म छोड़ बैठा है। यह अत्यन्त रमणीय है। इसका शरीर कैसा सुकुमार है! यह कामदेवके समान सारे विश्वका मन मोह लेनेवाला है। अहो! इसकी माता, इसके पिता, इसकी पत्नी और इसकी बहिन इसके बिना कैसे जीवित होंगी! यह विचार करके सब ओरसे झुंड-की-झुंड व्रजाङ्गनाएँ उनके पास आ गयीं और प्रेमसे विह्वल तथा आश्चर्यचकित हो उन योगीश्वरसे पूछने लगीं ॥ १०—१२ ॥

गोपियोंने पूछा—योगीबाबा! तुम्हारा नाम क्या है? मुनिजी! तुम रहते कहाँ हो? तुम्हारी वृत्ति क्या है

---

* परिपूर्णतमं साक्षाद्गोलोकाधिपतिं प्रभुम् ॥
श्रीकृष्णचरणाम्भोजरजो देवैः सुदुर्लभम् । अहोभाग्यं पुलिन्दीनां तासां प्राप्तं विशेषतः ॥
यः पारमेष्ठ्यमखिलं न महेन्द्रधिष्ण्यं नो सार्वभौममनिशं न रसाधिपत्यम् ।
नो योगसिद्धिमभितो न पुनर्भवं वा वाञ्छत्यलं परमपादरजस्सुभक्तः ॥
निष्किञ्चनाः [illegible]विरागा यत्पदं हरिजना मुनयो महान्तः ।
भक्ता जुषन्ति हरिपादरजःप्रसक्ता अन्ये वदन्ति न सुखं किल नैरपेक्ष्यम् ॥
(गर्ग०, माधुर्य० १० । ११–१६)

और तुमने कौन-सी सिद्धि पायी है ? वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! हमें ये सब बातें बताओ ॥ १३ ॥

सिद्धयोगीने कहा—मैं योगेश्वर हूँ और सदा मानसरोवरमें निवास करता हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रकाश है। मैं अपनी शक्तिसे सदा बिना खाये-पीये ही रहता हूँ। व्रजाङ्गनाओ ! परमहंसोंका जो अपना स्वार्थ—आत्म-साक्षात्कार है, उसीकी सिद्धिके लिये मैं जा रहा हूँ। मुझे दिव्यदृष्टि प्राप्त हो चुकी है। मैं भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंकी बातें जानता हूँ। मन्त्र-विद्याद्वारा उच्चाटन, मारण, मोहन, स्तम्भन तथा वशीकरण भी जानता हूँ ॥ १४–१६ ॥

गोपियोंने पूछा—योगीबाबा ! तुम तो बड़े बुद्धिमान् हो। यदि तुम्हें तीनों कालोंकी बातें ज्ञात हैं तो बताओ न, हमारे मनमें क्या है ? ॥ १७ ॥

सिद्धयोगीने कहा—यह बात तो आपलोगोंके कानमें कहनेयोग्य है। अथवा यदि आपलोगोंकी आज्ञा हो तो सब लोगोंके सामने ही कह डालूँ ॥ १८ ॥

गोपियाँ बोलीं—मुने ! तुम सचमुच योगेश्वर हो। तुम्हें तीनों कालोंका ज्ञान है, इसमें संशय नहीं। यदि तुम्हारे वशीकरण-मन्त्रसे, उसके पाठ करनेमात्रसे तत्काल वे यहीं आ जायँ, जिनका कि हम मन-ही-मन चिन्तन करती हैं, तब हम मानेंगी कि तुम मन्त्रज्ञोंमें सबसे श्रेष्ठ हो ॥ १९-२० ॥

सिद्धयोगीने कहा—व्रजाङ्गनाओ ! तुमने तो ऐसा भाव व्यक्त किया है, जो परम दुर्लभ और दुष्कर है; तथापि मैं तुम्हारी मनोनीत वस्तुको प्रकट करूँगा; क्योंकि सत्पुरुषोंकी कही हुई बात कभी झूठ नहीं होती। व्रजकी वनिताओ ! चिन्ता न करो; अपनी आँखें मूँद लो। तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २१ २२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! 'बहुत अच्छा' कहकर जब गोपियोंने अपनी आँखें मूँद लीं, तब भगवान् श्रीहरि योगीका रूप छोड़कर श्रीनन्दनन्दनके रूपमें प्रकट हो गये। गोपियोंने आँखें खोलकर देखा तो सामने नन्दनन्दन सानन्द मुसकरा रहे हैं। पहले तो वे अत्यन्त विस्मित हुईं; फिर योगीका प्रभाव जाननेपर उन्हें हर्ष हुआ और प्रियतम-का वह मोहन रूप देखकर वे मोहित हो गयीं। तदनन्तर माघमासके महारासमें पावन वृन्दावनके भीतर श्रीहरिने उन गोपाङ्गनाओंके साथ उसी प्रकार विहार किया, जैसे देवाङ्गनाओंके साथ देवराज इन्द्र करते हैं ॥ २३–२५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें रमावैकुण्ठ, श्वेतद्वीप, ऊर्ध्ववैकुण्ठ, अजितपद तथा श्रीलोकाचलमें निवास करनेवाली 'लक्ष्मीजीकी सखियोंके गोपीरूपमें प्रकट होनेका आख्यान' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

दिव्यादिव्य, त्रिगुणवृत्तिमयी भूतल-गोपियोंका वर्णन तथा श्रीराधासहित गोपियोंकी श्रीकृष्णके साथ होली

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! यह मैंने तुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया है, अब दूसरी गोपियोंका वर्णन सुनो। वीतिहोत्र, अग्निभुक्, साम्बु, श्रीकर, गोपति, श्रुत, व्रजेश, पावन तथा शान्त—ये व्रजमें उत्पन्न हुए नौ उपनन्दोंके नाम हैं। वे सब-के-सब धनवान्, रूपवान्, पुत्रवान्, बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले, शील-सदाचारादि गुणोंसे सम्पन्न तथा दानपरायण हैं। इनके घरोंमें देवताओंकी आज्ञाके अनुसार जो कन्याएँ उत्पन्न हुईं, उनमेंसे कोई दिव्य, कोई अदिव्य तथा कोई त्रिगुणवृत्तिवाली थीं। वे सब नाना प्रकारके पूर्वकृत पुण्योंके फलस्वरूप भूतलपर गोपकन्याओंके रूपमें प्रकट हुई थीं। विदेहराज ! वे सब श्रीराधिकाके साथ रहनेवाली उनकी सखियाँ थीं। एक दिनकी बात है, होलिका-महोत्सवपर श्रीहरिको आया हुआ देख उन समस्त व्रजगोपिकाओंने मानिनी श्रीराधासे कहा ॥ १–६ ॥

गोपियाँ बोलीं—रम्भोरु ! चन्द्रवदने ! मधुमानिनि ! स्वामिनि ! ललने ! श्रीराधे ! हमारी यह सुन्दर बात सुनो। ये व्रजभूषण नन्दनन्दन तुम्हारी बरसाना-नगरीके उपवनमें

होलिकोत्सव-विहार करनेके लिये आ रहे हैं। शोभासम्पन्न यौवनके मदसे मत्त उनके चञ्चल नेत्र घूम रहे हैं। घुँघराली नीली अलकावली उनके कंधों और कपोलमण्डलको चूम रही है। शरीरपर पीले रंगका रेशमी जामा अपनी घनी शोभा बिखेर रहा है। वे बजते हुए नूपुरोंकी ध्वनिसे युक्त अपने अरुण चरणारविन्दोंद्वारा सबका ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। उनके मस्तकपर बालरविके समान कान्तिमान् मुकुट है। वे भुजाओंमें विमल अङ्गद, वक्षःस्थलपर हार और कानोंमें विद्युत्को भी विलज्जित करनेवाले मकराकार कुण्डल धारण किये हुए हैं। इस भूमण्डलपर पीताम्बरकी पीत प्रभासे सुशोभित उनका श्याम कान्तिमण्डल उसी प्रकार उत्कृष्ट शोभा पा रहा है, जैसे आकाशमें इन्द्रधनुषसे युक्त मेघमण्डल सुशोभित होता है। अबीर और केसरके रससे उनका सारा अङ्ग लिप्त है। उन्होंने हाथमें नयी पिचकारी ले रक्खी है तथा सखि राधे! तुम्हारे साथ रासरङ्गकी रसमयी क्रीडामें निमग्न रहनेवाले वे श्यामसुन्दर तुम्हारे शीघ्र निकलनेकी राह देखते हुए पास ही खड़े हैं।* तुम भी मान छोड़कर फगुआ (होली) के बहाने निकलो। निश्चय ही आज होलिकाको यश देना चाहिये और अपने भवनमें तुरंत ही रंग-मिश्रित जल, चन्दनके पङ्क और मकरन्द (इत्र आदि पुष्परस) का अधिक मात्रामें संचय कर लेना चाहिये। परम बुद्धिमती प्यारी सखी! उठो और सहसा अपनी सखीमण्डलीके साथ उस स्थानपर चलो, जहाँ वे श्यामसुन्दर भी मौजूद हों। ऐसा समय फिर कभी नहीं मिलेगा। बहती धारामें हाथ धो लेना चाहिये—यह कहावत सर्वत्र विदित है॥ ७—१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब मानवती राधा मान छोड़कर उठीं और सखियोंके समूहसे घिरकर होलीका उत्सव मनानेके लिये निकलीं। चन्दन, अगर, कस्तूरी, हल्दी तथा केसरके घोलसे भरी हुई डोलचियाँ लिये वे बहुसंख्यक व्रजाङ्गनाएँ एक साथ होकर चलीं। रँगे हुए लाल-लाल हाथ, वासन्ती रंगके पीले वस्त्र, बजते हुए नूपुरोंसे युक्त पैर तथा झनकारती हुई करधनीसे सुशोभित कटिप्रदेश—बड़ी मनोहर शोभा थी उन गोपाङ्गनाओंकी। वे हास्ययुक्त गालियोंसे सुशोभित होलीके गीत गा रही थीं। अबीर, गुलालके चूर्ण मुट्ठियोंमें ले-लेकर इधर-उधर फेंकती हुई वे व्रजाङ्गनाएँ भूमि, आकाश और वस्त्रको लाल किये देती थीं। वहाँ अबीरकी करोड़ों मुट्ठियाँ एक साथ उड़ती थीं। सुगन्धित गुलालके चूर्ण भी कोटि-कोटि हाथोंसे बिखेरे जाते थे॥ १३—१७॥

इसी समय व्रजगोपियोंने श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेर लिया, मानो सावनकी साँझमें विद्युन्मालाओंने मेघको सब ओरसे अवरुद्ध कर लिया हो। पहले तो उनके मुँहपर खूब अबीर और गुलाल पोत दिया, फिर सारे अङ्गोंपर अबीर-गुलाल बरसाये तथा केसरयुक्त रंगसे भरी डोलचियोंद्वारा उन्हें विधिपूर्वक भिगोया। नृपेश्वर! वहाँ जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान् भी उनके साथ विहार करते रहे। वहाँ होलिका-महोत्सवमें श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ वैसी ही शोभा पाते थे, जैसे वर्षाकालकी संध्या-वेलामें विद्युन्मालाके साथ मेघ सुशोभित होता है। श्रीराधाने श्रीकृष्णके नेत्रोंमें काजल लगा दिया। श्रीकृष्णने भी अपना नया उत्तरीय (दुपट्टा) गोपियोंको उपहारमें दे दिया। फिर वे परमेश्वर श्रीनन्दभवनको लौट गये। उस समय समस्त देवता उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ १८—२२॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'होलिकोत्सवके प्रसङ्गमें दिव्यादिव्य-त्रिगुणवृत्तिमय भूतल-गोपियोंका उपाख्यान' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

---

* श्रीयौवनोन्मदविघूर्णितलोचनोऽसौ नीलालकालिकलितांसकपोललोलः ।
सत्पीतकञ्चुकघनान्तमशेषमाराद् आच्छादयन् क्वणितनूपुरपादारुणेन ॥
बालार्कमौलिविमलाङ्गदहारमुद्यद्विद्युत्स्फुरन्मकरकुण्डलमादधानः ।
पीताम्बरेण जयति द्युतिमण्डलोऽसौ भूमण्डले स धनुषेव घनो दिविस्थः ॥
आबीरकुङ्कुमरसैश्च विलिप्तदेहो हस्ते गृहीतनवसेचनयन्त्र आरात् ।
प्रेक्षंस्तवाशु सखि वाटमतीव राधे त्वद्रासरङ्गरसकेलिरतः स्थितः सः ॥
(गर्ग०, माधुर्य० १२ । ८—१०)

तेरहवाँ अध्याय

देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! अब देवाङ्गनास्वरूपा गोपियोंका वर्णन सुनो, जो मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला तथा उनके भक्तिभावको बढ़ानेवाला सर्वोत्तम साधन है ॥ १ ॥

मालवदेशमें एक गोप थे, जिनका नाम था—दिवस्पति नन्द । उनके एक सहस्र पत्नियाँ थीं । वे बड़े धनवान् और नीतिज्ञ थे । एक समय तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे उनका मथुरामें आगमन हुआ । वहाँ व्रजाधीश्वर नन्दराजका नाम सुनकर वे उनसे मिलनेके लिये गोकुल गये । वहाँ नन्दराजसे मिलकर और वृन्दावनकी शोभा देखकर महामना दिवस्पति नन्दराजकी आज्ञासे वहीं रहने लगे । उन्होंने दो योजन भूमिको घेरकर गौओंके लिये गोष्ठ बनाया । राजन् ! उस व्रजमें अपने कुटुम्बी बन्धुजनोंके साथ रहते हुए दिवस्पतिको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई । देवल मुनिके आदेशसे समस्त देवाङ्गनाएँ उन्हीं दिवस्पतिकी महादिव्य कन्याएँ हुईं, जो प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्विनी थीं ॥ २—६ ॥

किसी समय श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन पाकर वे सब कन्याएँ मोहित हो गयीं और उन दामोदरकी प्राप्तिके लिये उन्होंने परम उत्तम माघमासका व्रत किया । आधे सूर्यके उदित होते-होते प्रतिदिन वे व्रजाङ्गनाएँ यमुनामें जाकर स्नान करतीं और प्रेमानन्दमें विह्वल हो उच्चस्वरसे श्रीकृष्णकी लीलाएँ गाती थीं । भगवान् श्रीकृष्ण उनपर प्रसन्न होकर बोले—'तुम कोई वर माँगो ।' तब उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर उन परमात्माको प्रणाम करके उनसे धीरे-धीरे कहा ॥ ७—९ ॥

गोपियाँ बोलीं—प्रभो ! निश्चय ही आप योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ हैं । सबके ईश्वर तथा कारणोंके भी कारण हैं । आप वंशीधारी हैं । आपका अङ्ग मन्मथके मनको भी मथ डालनेवाला (मोह लेनेवाला) है । आप सदा हमारे नेत्रोंके समक्ष रहें ॥ १० ॥

राजन् ! तब 'तथास्तु' कहकर जिन आदिदेव श्रीहरिने गोपियोंके लिये अपने दर्शनका द्वार उन्मुक्त कर दिया, वे सदा तुम्हारे हृदयमें, नेत्रमार्गमें बसे रहें और बुलाये हुए-से तत्काल चित्तमें आकर स्थित हो जायँ । जिन्होंने कमरमें पीताम्बर बाँध रक्खा है, जिनके सिरपर मोरपंखका मुकुट सुशोभित है और गर्दन झुकी हुई है, जिनके हाथमें बाँसुरी और लकुटी है तथा कानोंमें रत्नमय कुण्डल झलमला रहे हैं, उन पटुतर नटवेषधारी श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ । आदिदेव श्रीहरि केवल भक्तिसे ही वशमें होते हैं । निश्चय ही इसमें गोपियाँ सदा प्रमाणभूत हैं, जिन्होंने न तो कभी सांख्यका विचार किया न योगका अनुष्ठान; केवल प्रेमसे ही वे भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त हो गयीं ॥ ११—१४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'देवाङ्गनास्वरूपा गोपियोंका उपाख्यान' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

कौरव-सेनासे पीड़ित रंगोजि गोपका कंसकी सहायतासे व्रजमण्डलकी सीमापर निवास तथा उसकी पुत्रीरूपमें जालंधरी गोपियोंका प्राकट्य

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! अब जालंधरके अन्तःपुरकी स्त्रियोंके गोपीरूपमें जन्म लेनेका वर्णन सुनो । महाराज ! साथ ही उनके कर्मोंको भी सुनो, जो सदा ही मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाले हैं ॥ १ ॥

राजन् ! ससनदीके किनारे 'नन्दपत्तन' नामसे प्रसिद्ध एक उत्तम नगर था, जो सब प्रकारकी सम्पदाओंसे सम्पन्न तथा विशाल था । वह दो योजन विस्तृत गोलाकार नगर था । उस नगरका मालिक या पुराधीश रंगोजि नामक एक गोप था, जो महान् बलवान् था । वह पुत्र-पौत्र आदिसे संयुक्त तथा धन-धान्यसे समृद्धिशाली था । हस्तिनापुरके स्वामी राजा धृतराष्ट्रको वह सदा एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ वार्षिक करके रूपमें दिया करता था ।

मिथिलेश्वर ! एक समय वर्ष बीत जानेपर भी धनके मदसे उन्मत्त गोपने राजाको वार्षिक कर नहीं दिया। इतना ही नहीं, वह गोपनायक रंगोजि मिलनेतक नहीं गया। तब धृतराष्ट्रके भेजे हुए दस हजार वीर आकर उस गोपको बाँधकर हस्तिनापुरमें ले आये। कई वर्षोंतक तो रंगोजि कारागारमें बँधा पड़ा रहा। बाँधे और पीटे जानेपर भी वह लोभी गोप डरा नहीं। उसने राजा धृतराष्ट्रको थोड़ा-सा भी धन नहीं दिया ॥ २-८ ॥

किसी समय गोपनायक रंगोजि उस महाभयंकर कारागारसे भाग निकला तथा रातों-रात रङ्गपुरमें आ गया। तब पुनः उसे पकड़ लानेके लिये धृतराष्ट्रकी भेजी हुई शक्तिशाली बल-वाहनसे सम्पन्न तीन अक्षौहिणी सेना गयी। वह गोप भी कवच धारण करके युद्धभूमिमें बारंबार धनुषकी टंकार फैलाता हुआ तीखी धारवाले चमकीले बाण-समूहोंकी वर्षा करके धृतराष्ट्रकी उस सेनाका सामना करने लगा। शत्रुओंने उसके कवच और धनुष काट दिये तथा उसके स्वजनोंका भी वध कर डाला; तब वह अपने पुर (दुर्ग) में आकर कुछ दिनोंतक युद्ध चलाता रहा। अन्तमें अनाथ एवं भयसे पीड़ित रंगोजि किसी शरणदाता या रक्षककी इच्छा करने लगा। उसने यादवराज कंसके पास अपना दूत भेजा। दूत मथुरा पहुँचकर राज-दरबारमें गया और उसने मस्तक झुकाकर दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधे उग्रसेनकुमार कंसको प्रणाम करके करुणासे आर्द्र वाणीमें कहा ॥ ९-१४ ॥

'महाराज ! रङ्गपत्तनमें रंगोजि नामसे प्रसिद्ध एक गोप हैं, जो उस नगरके स्वामी तथा नीतिवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। शत्रुओंने उनके नगरको चारों ओरसे घेर लिया है। वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये हैं और अनाथ होकर आपकी शरणमें आये हैं। इस भूतलपर केवल आप ही दीनों और दुखियोंकी पीड़ा हरनेवाले हैं। भौमासुरादि वीर आपके गुण गाया करते हैं। आप महाबली हैं और देवता, असुर तथा उद्भट भूमि-पालोंको युद्धमें जीतकर देवराज इन्द्रके समान अपनी राजधानीमें विराजमान हैं। जैसे चकोर चन्द्रमाको, कमलोंका समुदाय सूर्यको, चातक शरद् ऋतुके बादलोंद्वारा बरसाये गये जलकणोंको, भूखसे व्याकुल मनुष्य अन्नको तथा प्याससे पीड़ित प्राणी पानीको ही याद करता है, उसी प्रकार रंगोजि गोप शत्रुके भयसे आक्रान्त हो केवल आपका स्मरण कर रहे हैं' ॥ १५-१७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! दूतकी यह बात सुनकर दीनवत्सल कंसने करोड़ों दैत्योंकी सेनाके साथ वहाँ जानेका विचार किया। उसके हाथीके गण्डस्थलपर गोमूत्रमें घोले गये सिन्दूर और कस्तूरीके द्वारा पत्र-रचना की गयी थी। वह हाथी विन्ध्याचलके समान ऊँचा था और उसके गण्डस्थलसे मद झर रहे थे। उसके पैरोंमें साँकलें थीं। वह मेघकी गर्जनाके समान जोर-जोरसे चिग्घाड़ता था। ऐसे कुवलयापीड़ नामक गजराजपर चढ़कर मद-मत्त राजा कंस सहसा कवच आदिसे सुसज्जित हो चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लों तथा केशी, व्योमासुर और वृषासुर आदि दैत्य-योद्धाओंके साथ रङ्गपत्तनकी ओर प्रस्थित हुआ। वहाँ यादवों और कौरवोंकी सेनाओंमें परस्पर बाणों, खड्गों और त्रिशूलोंके प्रहारसे घोर युद्ध हुआ। जब बाणोंसे सब ओर अन्धकार-सा छा गया, तब कंस एक विशाल गदा हाथमें लेकर कौरव-सेनामें उसी प्रकार घुसा, जैसे वनमें दावानल प्रविष्ट हुआ हो। जैसे इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतको गिरा देते हैं, उसी प्रकार कंसने अपनी वज्र-सरीखी गदाकी मारसे कितने ही कवचधारी वीरोंको धराशायी कर दिया। उसने पैरोंके आघातसे रथोंको रौंद डाला, एड़ियोंसे मार-मारकर घोड़ोंका कचूमर निकाल दिया। हाथीको हाथीसे ही मारकर कितने ही गजोंको उनके पाँव पकड़कर उछाल दिया। महाबली कंसने कितने ही हाथियोंके कंधों अथवा कक्ष-भागोंको पकड़कर उन्हें हौदों और झूलोंसहित बलपूर्वक घुमाते हुए आकाशमें फेंक दिया। राजन् ! उस युद्धभूमिमें बलवान् व्योमासुर हाथियोंके शुण्डदण्ड पकड़कर उन्हें चञ्चल घंटाओंसहित उछालकर सामने फेंक देता था। दुष्ट दैत्य बलवान् वृषासुर घोड़ोंसहित रथोंको अपने सींगोंपर उठाकर बारंबार घुमाता हुआ चारों दिशाओंमें फेंकने लगा। राजेन्द्र ! बलवान् दैत्यराज केशीने बलपूर्वक अपने पिछले पैरोंसे बहुत-से वीरों और अश्वोंको इधर-उधर धराशायी कर दिया। ऐसा भयंकर युद्ध देखकर कौरव-सेनाके शेष वीर भयसे व्याकुल हो दसों दिशाओंमें भाग गये। दैत्यराज वीर कंस विजयके उल्लासमें नगारे बजवाता हुआ कुटुम्बसहित रंगोजि गोपको अपने साथ ही मथुरा ले गया ॥ १८-३१ ॥

अपनी सेनाकी पराजयका समाचार सुनकर कौरव क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे। परंतु वर्तमान समयको दैत्योंके अनुकूल देखकर वे सब-के-सब चुप रह गये। व्रजमण्डलकी सीमापर बर्हिषद् नामसे प्रसिद्ध एक मनोहर पुर था, जिसे

बलवान् दैत्यराज कंसने रंगोजिको दे दिया। गोपनायक रंगोजि वहीं निवास करने लगा। श्रीहरिके वरदानसे जालंधरके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ उसी गोपकी पत्नियोंके गर्भसे उत्पन्न हुईं। रूप और यौवनसे विभूषित वे गोपकन्याएँ दूसरे-दूसरे गोपजनोंको ब्याह दी गयीं, परंतु वे जारभावसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ प्रेम करने लगीं। वृन्दावनेश्वर श्यामसुन्दरने चैत्र मासके महारासमें उन सबके साथ पुण्यमय रमणीय वृन्दावनके भीतर विहार किया॥ ३२-३६॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'जालंधरी गोपियोंका उपाख्यान' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

बर्हिष्मतीपुरी आदिकी वनिताओंका गोपीरूपमें प्राकट्य तथा भगवान्‌के साथ उनका रासविलास; मांधाता और सौभरिके संवादमें यमुना-पञ्चाङ्गकी प्रस्तावना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! व्रजमें शोणपुरके स्वामी नन्द बड़े धनी थे। मिथिलेश्वर! उनके पाँच हजार पत्नियाँ थीं। उनके गर्भसे समुद्रसम्भवा लक्ष्मीजीकी वे सखियाँ उत्पन्न हुईं, जिन्हें मत्स्यावतारधारी भगवान्‌से वैसा वर प्राप्त हुआ था। नरेश्वर! इनके सिवा और भी, विचित्र ओषधियाँ, जो पृथ्वीके दोहनसे प्रकट हुई थीं, वहाँ गोपीरूपमें उत्पन्न हुईं। बर्हिष्मतीपुरीकी वे नारियाँ भी, जिन्हें महाराज पृथुका वर प्राप्त था, जातिस्मरा गोपियोंके रूपमें व्रजमें उत्पन्न हुई थीं तथा नर-नारायणके वरदानसे अप्सराएँ भी गोपीरूपमें प्रकट हुई थीं। सुतलवासिनी दैत्यनारियाँ वामनके वरसे तथा नागराजोंकी कन्याएँ भगवान् शेषके उत्तम वरसे व्रजमें उत्पन्न हुईं। दुर्वासा मुनिने उन सबको अद्भुत 'कृष्णा-पञ्चाङ्ग' दिया था, जिससे यमुनाजीकी पूजा करके उन्होंने श्रीपतिका वररूपमें वरण किया॥१-५॥

एक दिनकी बात है—मनोहर वृन्दावनमें दिव्य यमुना-तटपर, जहाँ नर-कोकिलोंसे सुशोभित हरे-भरे वृक्ष-समुदाय शोभा दे रहे थे, भ्रमरोंके गुञ्जारवके साथ कोकिलों और सारसोंकी मीठी बोली गूँज रही थी, वासन्ती लताओंसे आवृत तथा शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुसे परिसेवित मधुमासमें, उन गोपाङ्गनाओंके साथ, मदनमोहन श्यामसुन्दर श्रीहरिने कल्पवृक्षोंकी श्रेणीसे मनोरम प्रतीत होनेवाले कदम्बवृक्षके नीचे एकान्तस्थानमें झूला झूलनेका उत्सव आरम्भ किया। वहाँ यमुना-जलकी उत्ताल तरङ्गोंका कोलाहल फैला हुआ था। वे प्रेमविह्वल गोपाङ्गनाएँ श्रीहरिके साथ झूला झूलनेकी क्रीड़ा कर रही थीं। जैसे रतिके साथ रति-पति कामदेव शोभा पाते हैं, उसी प्रकार करोड़ों चन्द्रोंसे भी अधिक कान्तिमती कीर्तिकुमारी श्रीराधाके साथ वृन्दावनमें श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार जो साक्षात् परिपूर्णतम नन्दनन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त हुई थीं, उन समस्त गोपाङ्गनाओंके तपका क्या वर्णन हो सकता है! नागराजोंकी समस्त सुन्दरी कन्याएँ, जो गोपीरूपमें उत्पन्न हुई थीं, मनोहर चैत्र मासमें यमुनाके तटपर श्रीबलभद्र हरिकी सेवामें उपस्थित थीं। राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो परम पवित्र तथा समस्त पापोंको हर लेनेवाला है। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो?॥ ६-१३॥

बहुलाश्व बोले—मुने! प्रभो! दुर्वासाका दिया हुआ यमुनाजीका पञ्चाङ्ग क्या है, जिससे गोपियोंको गोविन्दकी प्राप्ति हो गयी? उसका मुझसे वर्णन कीजिये॥ १४॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! इस विषयमें विज्ञजन एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंकी पूर्णतया निवृत्ति हो जाती है। अयोध्यामें मांधाता नामसे प्रसिद्ध एक तेजस्वी राजशिरोमणि उस पुरीके अधिपति थे। एक दिन वे शिकार खेलनेके लिये वनमें गये और विचरते हुए, सौभरि मुनिके सुन्दर आश्रमपर जा पहुँचे। उनका वह आश्रम साक्षात् वृन्दावनमें यमुनाजीके मनोहर तटपर स्थित था। वहाँ अपने जामाता सौभरि मुनिको प्रणाम करके मानदाता मांधाताने कहा॥१५-१७॥

मांधाता बोले—भगवन् ! आप साक्षात् सर्वज्ञ हैं, परावरवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और अज्ञानान्धकारसे अंधे हुए लोगोंके लिये दूसरे दिव्य सूर्यके समान हैं। मुझे शीघ्र ही ऐसा कोई उत्तम साधन बताइये, जिससे इस लोकमें सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न राज्य बना रहे और परलोकमें भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त हो ॥ १८-१९ ॥

सौभरि बोले—राजन् ! मैं तुम्हारे सामने यमुनाजीके पञ्चाङ्गका वर्णन करूँगा, जो सदा समस्त सिद्धियोंको देनेवाला तथा श्रीकृष्णके सारूप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। यह साधन जहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँ वह अस्तभावको प्राप्त होता है, वहाँतकके राज्यकी प्राप्ति करानेवाला तथा यहाँ श्रीकृष्णको भी वशीभूत करनेवाला है। सूर्यवंशेन्द्र ! किसी भी देवताके कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, पटल तथा पद्धति—ये पाँच अङ्ग विद्वानोंने बताये हैं ॥ २०-२२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'सौभरि और मांधाताका संवाद तथा बर्हिष्मतीपुरीकी नारियों, अप्सराओं, सुतलवासिनी असुर-कन्याओं तथा नागराज-कन्याओंके गोपीरूपमें उत्पन्न होनेका उपाख्यान' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

श्रीयमुना-कवच

मांधाता बोले—महाभाग ! आप मुझे श्रीकृष्णकी पटरानी यमुनाके सर्वथा निर्मल कवचका उपदेश दीजिये, मैं उसे सदा धारण करूँगा ॥ १ ॥

सौभरि बोले—महामते नरेश ! यमुनाजीका कवच मनुष्योंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाला तथा साक्षात् चारों पदार्थोंको देनेवाला है, तुम इसे सुनो—यमुनाजीके चार भुजाएँ हैं। वे श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थासे युक्त) हैं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर एवं विशाल हैं। वे परम सुन्दरी हैं और दिव्य रथपर बैठी हुई हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करके कवच धारण करे ॥ २-३ ॥

स्नान करके पूर्वाभिमुख हो मौनभावसे कुशासनपर बैठे और कुशोंद्वारा शिखा बाँधकर संध्या-वन्दन करनेके अनन्तर ब्राह्मण (अथवा द्विजमात्र) स्वस्तिकासनसे स्थित हो कवचका पाठ करे। 'यमुना' मेरे मस्तककी रक्षा करें और 'कृष्णा' सदा दोनों नेत्रोंकी। 'श्यामा' भ्रूभंग-देशकी और 'नाकवासिनी' नासिकाकी रक्षा करें। 'साक्षात् परमानन्द-रूपिणी' मेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें। 'श्रीकृष्णवामांस-सम्भूता' (श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई वे देवी) मेरे दोनों कानोंका संरक्षण करें। 'कालिन्दी' अधरोंकी और 'सूर्यकन्या' चिबुक (ठोढ़ी) की रक्षा करें। 'यमस्वसा' (यमराजकी बहिन) मेरी ग्रीवाकी और 'महानदी' मेरे हृदयकी रक्षा करें। 'कृष्णप्रिया' पृष्ठभागका और 'तटिनी' मेरी दोनों भुजाओंका रक्षण करें। 'सुश्रोणी' श्रोणीतट (नितम्ब) की और 'चारुदर्शना' मेरे कटिप्रदेशकी रक्षा करें। 'रम्भोरू' दोनों ऊरुओं (जाँघों) की और 'अङ्घ्रि-भेदिनी' मेरे दोनों घुटनोंकी रक्षा करें। 'रासेश्वरी' गुल्फों (घुट्टियों) का और 'पापापहारिणी' पादयुगलका त्राण करें। 'परिपूर्णतमप्रिया' भीतर-बाहर, नीचे-ऊपर तथा दिशाओं और विदिशाओंमें सब ओरसे मेरी रक्षा करें * ॥ ४-१० ॥

यह श्रीयमुनाका परम अद्भुत कवच है। जो भक्तिभावसे

---

* यमुनायाश्च कवचं सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
चतुष्पदार्थदं साक्षाच्छृणु राजन् महामते ॥
कृष्णां चतुर्भुजां श्यामां पुण्डरीकदलेक्षणाम् ।
रथस्थां सुन्दरीं ध्यात्वा धारयेत् कवचं ततः ॥
स्नातः पूर्वमुखो मौनी कृतसंध्यः कुशासने ।
कुशैर्बद्धशिखो विप्रः पठेद् वै स्वस्तिकासनः ॥
यमुना मे शिरः पातु कृष्णा नेत्रद्वयं सदा ।
श्यामा भ्रूभङ्गदेशं च नासिकां नाकवासिनी ॥
कपोलौ पातु मे साक्षात् परमानन्दरूपिणी ।
कृष्णवामांससम्भूता पातु कर्णद्वयं मम ॥
अधरौ पातु कालिन्दी चिबुकं सूर्यकन्यका ।
यमस्वसा कन्धरां च हृदयं मे महानदी ॥
कृष्णप्रिया पातु पृष्ठं तटिनी मे भुजद्वयम् ।
श्रोणीतटं च सुश्रोणी कटिं मे चारुदर्शना ॥

दस बार इसका पाठ करता है, वह निर्धन भी धनवान् हो जाता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक परिमित आहारका सेवन करते हुए तीन मासतक इसका पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण राज्योंका आधिपत्य प्राप्त कर लेगा, इसमें संशय नहीं है। जो तीन महीनेकी अवधितक प्रतिदिन भक्तिभावसे शुद्धचित्त हो इसका एक सौ दस बार पाठ करेगा, उसको क्या-क्या नहीं मिल जायगा ! जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करेगा, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल मिल जायगा तथा अन्तमें वह योगिदुर्लभ परमधाम गोलोकमें चला जायगा* ॥ ११-१४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीसौभरि-मांधाताके संवादमें 'यमुना-कवच' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीयमुनाका स्तोत्र

मांधाता बोले—मुनिश्रेष्ठ सौभरे ! सम्पूर्ण सिद्धि-प्रदान करनेवाला जो यमुनाजीका दिव्य उत्तम स्तोत्र है, उसका कृपापूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

श्रीसौभरि मुनिने कहा—महामते ! अब तुम सूर्य-कन्या यमुनाका स्तोत्र सुनो, जो इस भूतलपर समस्त सिद्धियोंको देनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंका फल देनेवाला है। श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई 'कृष्णा'को सदा मेरा नमस्कार है। कृष्णे ! तुम श्रीकृष्णस्वरूपिणी हो; तुम्हें बारंबार नमस्कार है। जो पापरूपी पङ्कजलके कलङ्कसे कुत्सित कामी कुबुद्धि मनुष्य सत्पुरुषोंके साथ कलह करता है, उसे भी गूँजते हुए भ्रमर और जलपक्षियोंसे युक्त कलिन्दनन्दिनी यमुना वृन्दावनधाम प्रदान करती हैं। कृष्णे ! तुम्हीं साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूपा हो। तुम्हीं प्रलयसिन्धुके वेगयुक्त भँवरमें महामत्स्यरूप धारण करके विराजती हो। तुम्हारी ऊर्मि ऊर्मिमें भगवान् कूर्मरूपसे वास करते हैं तथा तुम्हारे बिन्दु-बिन्दुमें श्रीगोविन्ददेवकी आभाका दर्शन होता है। तटिनि ! तुम लीलावती हो, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम घनी-भूत मेघके समान श्याम कान्ति धारण करती हो। श्रीकृष्णके बायें कंधेसे तुम्हारा प्राकट्य हुआ है। सम्पूर्ण जलोंकी राशिरूप जो विरजा नदीका वेग है, उसको भी अपने बलसे खण्डित करती हुई, ब्रह्माण्डको छेदकर देवनगर, पर्वत, गण्डशैल आदि दुर्गम वस्तुओंका भेदन करके तुम इस भूमिखण्डके मध्यभागमें अपनी तरङ्गमालाओंको स्थापित करके प्रवाहित होती हो। यमुने ! पृथ्वीपर तुम्हारा नाम दिव्य है। वह श्रवणपथमें आकर पर्वताकार पापसमूहको भी दण्डित एवं खण्डित कर देता है। तुम्हारा वह अखण्ड नाम मेरे वाङ्मण्डल—वचनसमूहमें क्षणभर भी स्थित हो जाय। यदि वह एक बार भी वाणीद्वारा गृहीत हो जाय तो समस्त पापोंका खण्डन हो जाता है। उसके स्मरणसे दण्डनीय पापी भी अदण्डनीय हो जाते हैं। तुम्हारे भाई सूर्यपुत्र यमराजके नगरमें तुम्हारा 'प्रचण्डा' यह नाम सुदृढ़ अतिदण्ड बनकर विचरता है। तुम विषयरूपी अन्धकूपसे पार जाने-के लिये रस्सी हो; अथवा पापरूपी चूहोंके निगल जाने-वाली काली नागिन हो; अथवा विराट् पुरुषकी मूर्तिकी वेणीको अलंकृत करनेवाला नीले पुष्पोंका गजरा हो या उनके मस्तकपर सुशोभित होनेवाली सुन्दर नीलमणिकी

ऊरुद्वयं तु रम्भोरूर्जानुनी त्वङ्घ्रिभेदिनी। गुल्फौ रासेश्वरी पातु पादौ पापापहारिणी ॥
अन्तर्बहिरधश्चोर्ध्वं दिशासु विदिशासु च। समन्तात् पातु जगतः परिपूर्णतमप्रिया ॥
(गर्गं०, माधुर्यं० १६ । २-१०)

* इदं श्रीयमुनायाश्च कवचं परमाद्भुतम्। दशवारं पठेद् भक्त्या निर्धनो धनवान् भवेत् ॥
त्रिभिर्मासैः पठेद् धीमान् ब्रह्मचारी मिताशनः। सर्वराज्याधिपत्यत्वं प्राप्यते नात्र संशयः ॥
दशोत्तरशतं नित्यं त्रिमासावधि भक्तितः। यः पठेत् प्रयतो भूत्वा तस्य किं किं न जायते ॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वतीर्थफलं लभेत्। अन्ते व्रजेत् परं धाम गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥
(गर्गं०, माधुर्यं० १६ । ११-१४)

माला हो। जहाँ आदिकर्ता भगवान् श्रीकृष्णकी वल्लभा, गोलोकमें भी अतिदुर्लभा, अति सौभाग्यवती अद्वितीया नदी श्रीयमुना प्रवाहित होती हैं, उस भूतलके मनुष्योंका भाग्य इसी कारणसे धन्य है। गौओंके समुदाय तथा गोप-गोपियोंकी क्रीडासे कलित कलिन्दनन्दिनी यमुने ! कृष्णप्रमे ! तुम्हारे तटपर जो जलकी गोलाकार, चपल एवं उत्ताल तरङ्गोंका कोलाहल (कल-कल रव) होता है, वह सदा मेरी रक्षा करे। तुम्हारे दुर्गम कुञ्जोंके प्रति कौतूहल रखनेवाले भ्रमर-समुदायके गुञ्जारव, मयूरोंकी केका तथा कूजते हुए कोकिलोंकी काकलीका शब्द भी उस कोलाहलमें मिला रहता है तथा वह व्रज-लताओंके अलंकारको धारण करनेवाला है। शरीरमें जितने रोम हैं, उतनी ही जिह्वाएँ हो जायँ, धरतीपर जितने सिकताकण हैं, उतनी ही वाग्देवियाँ आ जायँ और उनके साथ संत-महात्मा भी शेषनागके समान सहस्रों जिह्वाओंसे युक्त होकर गुणगान करने लग जायँ, तथापि तुम्हारे गुणोंका अन्त कभी नहीं हो सकता। कलिन्दगिरिनन्दिनी यमुनाका यह उत्तम स्तोत्र यदि उषःकालमें ब्राह्मणके मुखसे सुना जाय अथवा स्वयं पढ़ा जाय तो भूतलपर परम मङ्गलका विस्तार करता है। जो कोई मनुष्य भी यदि नित्यशः इसका धारण (चिन्तन) करे तो वह भगवान्‌की निज निकुञ्ज-लीलाके द्वारा वरण किये गये परमपदको प्राप्त होता है *॥ २-११ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीसौभरि-मांधाताके संवादमें 'श्रीयमुनास्तोत्र' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

यमुनाजीके जप और पूजनके लिये पटल और पद्धतिका वर्णन

मांधाता बोले—मुनिश्रेष्ठ ! यमुनाजीके कामपूरक पवित्र पटल तथा पद्धतिका जैसा स्वरूप है, वह मुझे बताइये; क्योंकि आप साक्षात् ज्ञानकी निधि हैं ॥ १ ॥

सौभरिने कहा—महामते ! अब मैं यमुनाजीके पटल तथा पद्धतिका भी वर्णन करता हूँ, जिसका अनुष्ठान, श्रवण अथवा जप करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण करके फिर मायाबीज (ह्रीं) का उच्चारण करे। तत्पश्चात् लक्ष्मीबीज (श्रीं)

---

* मार्तण्डकन्यकायास्तु स्तवं शृणु महामते। सर्वसिद्धिकरं भूमौ चातुर्वर्ण्यफलप्रदम् ॥
कृष्णवामांससम्भूतायै कृष्णायै सततं नमः। नमः श्रीकृष्णरूपिण्यै कृष्णे तुभ्यं नमो नमः ॥
यः पापपङ्काम्बुकलङ्ककुत्सितः कामी कुधीः सत्सु कलिं करोति हि। वृन्दावनं धाम ददाति तस्मै नन्दन्निलिन्दादि कलिन्दनन्दिनी ॥
कृष्णे साक्षात् कृष्णरूपा त्वमेव वेगावर्ते वर्तते मत्स्यरूपी। कर्मावूर्मौ कूर्मरूपी सदा ते बिन्दौ बिन्दौ भाति गोविन्ददेवः ॥
वन्दे लीलावतीं त्वां सघनघननिभां कृष्णवामांसभूतां वेगं वै वैरजाख्यं सकलजलचयं खण्डयन्तीं बलात् स्वात्।
छित्त्वा ब्रह्माण्डमारात् सुरनगरनगान् गण्डशैलादिदुर्गान् भित्त्वा भूखण्डमध्ये नटिनि धृतवतीमूर्मिमालां प्रयान्तीम् ॥
दिव्यं क्वौ नामधेयं श्रुतमथ यमुने दण्डयत्यद्रितुल्यं पापव्यूहं त्वखण्डं वसतु मम गिरामण्डले तु क्षणं तत्।
दण्डयांश्चाकार्यदण्ड्यान् सकृदपि वचसा खण्डितं यद् गृहीतं भ्रातुर्मार्तण्डसूनो रटति पुरि वृढस्ते प्रचण्डेति दण्डः ॥
रज्जुर्वा विषयान्धकूपतरणे पापाङ्कुरवींकरी वेणुश्विक्व विराजमूर्तिशिरसो मालास्ति वा सुन्दरी।
धन्यं भाग्यमतः परं भुवि नृणां यत्रादिकृद्वल्लभा गोलोकेऽप्यतिदुर्लभातिसुभगा भात्यद्वितीया नदी ॥
गोपीगोकुलगोपकेलिकलिते कालिन्दि कृष्णप्रमे त्वत्कूले जलकोलगोलविचलत्कल्लोलकोलाहलः।
त्वत्कान्तारकुतूहलालिकुलझंकारकेकाकुलः कूजत्कोकिलसंकुलो व्रजलतालंकारभृत् पातु माम् ॥
भवन्ति जिह्वास्तनुरोमतुल्या गिरो यदा भूसिकता भवाश्च। तदप्यलं यान्ति न ते गुणान्तं सन्तो महान्तः किल शेषतुल्याः ॥
कलिन्दगिरिनन्दिनीस्तवमयं वरं वापरः। श्रुतश्च यदि पाठितो भुवि तनोति सन्मङ्गलम् ॥
जनोऽपि यदि धारयेत् किल पठेच्च यो नित्यशः। स याति परमं पदं निजनिकुञ्जलीलावृतम् ॥
(गर्ग०, माधुर्य० १७। २-११)

को रखकर उसके बाद कामबीज (क्लीं) का विधिवत् प्रयोग करे। इसके अनन्तर 'कालिन्दी' शब्दका चतुर्थ्यन्त रूप (कालिन्द्यै) रक्खे। फिर 'देवी' शब्दके चतुर्थ्यन्तरूप (देव्यै) का प्रयोग करके अन्तमें 'नमः' पद जोड़ दे। (इस प्रकार 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिन्द्यै देव्यै नमः।' यह मन्त्र बनेगा।) इस मन्त्रका मनुष्य विधिवत् जप करे। इस ग्यारह अक्षरवाले मन्त्रका ग्यारह लाख जप करनेसे इस पृथ्वीपर सिद्धि प्राप्त हो सकती है। मनुष्योंद्वारा जिन-जिन काम्य-पदार्थोंके लिये प्रार्थना की जाती है, वे सब स्वतः सुलभ हो जाते हैं ॥ २–४ ॥

सुन्दर सिंहासनपर षोडशदल कमल अङ्कित करके उसकी कर्णिकामें श्रीकृष्णसहित कालिन्दीका न्यास (स्थापन) करे। कमलके सोलह दलोंमें अलग-अलग विधिपूर्वक नाम ले-लेकर मानवश्रेष्ठ साधक क्रमशः गङ्गा, विरजा, कृष्णा, चन्द्रभागा, सरस्वती, गोमती, कौशिकी, वेणी, सिंधु, गोदावरी, वेदस्मृति, वेत्रवती, शतद्रू, सरयू, ऋषिकुल्या तथा ककुद्मिनीका पूजन करे। पूर्वादि चार दिशाओंमें क्रमशः वृन्दावन, गोवर्धन, वृन्दा तथा तुलसीका उनके नामोच्चारणपूर्वक क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् 'ॐ नमो भगवत्यै कलिन्दनन्दिन्यै सूर्यकन्यकायै यमभगिन्यै श्रीकृष्णप्रियायै यूथीभूतायै स्वाहा।' इस मन्त्रसे आवाहन आदि सोलह उपचारोंको एकाग्रचित्त हो अर्पित करे ॥ ५–१० ॥

इस प्रकार यमुनाका पटल जानो। अब पद्धति बताऊँगा। जबतक पुरश्चरण पूरा न हो जाय, तबतक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए मौनावलम्बनपूर्वक द्विजको जप करना चाहिये। पुरश्चरणकालमें जौका आटा खाय, पृथ्वीपर शयन करे, पत्तलपर भोजन करे और मनको वशमें रक्खे। राजन्! आचार्यको चाहिये कि काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा द्वेषको त्यागकर परम भक्तिभावसे जपमें प्रवृत्त रहे। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर कालिन्दी देवीका ध्यान करे और अरुणोदयकी वेलामें नदीमें स्नान करे। मध्याह्नकालमें और दोनों संध्याओंके समय संध्या-वन्दन अवश्य किया करे। राजन्! जब अनुष्ठान समाप्त हो, तब यमुनाके तटपर जाकर पुत्रोंसहित दस लाख महात्मा ब्राह्मणोंका गन्ध-पुष्पसे पूजन करके उन्हें उत्तम भोजन दे। तदनन्तर वस्त्र, आभूषण और सुवर्णमय चमकीले पात्र तथा उत्तम दक्षिणाएँ दे। इससे निश्चय ही सिद्धि होती है ॥ ११–१७ ॥

महामते नरेश! इस प्रकार मैंने तुमसे यमुनाजीके जप और पूजनकी पद्धति बतायी है। तुम सारा नियम पूर्ण करो। बताओ! अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत मांधाता और सौभरिके संवादमें 'पटल और पद्धतिका वर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

यमुना-सहस्रनाम

मांधाता बोले—मनुष्यश्रेष्ठ! यमुनाजीका सहस्रनाम समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला उत्तम साधन है, आप मुझे उसका उपदेश कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ और निरामय (रोग-शोकसे रहित) हैं ॥ १ ॥

सौभरिने कहा—मांधाता नरेश! मैं तुमसे 'कालिन्दी-सहस्रनाम'का वर्णन करता हूँ। यह समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला, दिव्य तथा श्रीकृष्णको वशीभूत करनेवाला है ॥ २ ॥

विनियोग

ॐ अस्य श्रीकालिन्दीसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य सौभरिः ऋषिः, श्रीयमुना देवता, अनुष्टुप् छन्दः, मायाबीजमिति कीलकम्, रमाबीजमिति शक्तिः, श्रीकलिन्दनन्दिनीप्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

—उक्त वाक्य पढ़कर सहस्रनाम-पाठके लिये विनियोग-का जल छोड़े।

ध्यान

श्यामामम्भोजनेत्रां सघनघनरुचिं रत्नमञ्जीरकूजत्-
काञ्चीकेयूरयुक्तां कनकमणिमये बिभ्रतीं कुण्डले द्वे।
भ्राजच्छ्रीनीलवस्त्रस्फुरदमलचलद्धारभारां मनोज्ञां
ध्याये मार्तण्डपुत्रीं तनुकिरणचयोद्दीप्तदीपाभिरामाम् ॥ ३ ॥

जो श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थावाली) हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दलकी शोभाको छीने लेते हैं, घनीभूत मेघके समान जिनकी नील कान्ति है, जो रत्नोंद्वारा निर्मित बजते हुए नूपुर और झनकारती हुई करधनी एवं केयूर आदि आभूषणोंसे युक्त हैं तथा कानोंमें सुवर्ण एवं मणिनिर्मित दो कुण्डल धारण करती हैं, दीप्तिमती नीली साड़ीपर चमकते हुए गजमौक्तिकके चञ्चल हारका भार वहन करनेसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं, शरीरसे छिटकती हुई किरणोंकी राशिसे उद्दीप्त होनेके कारण जिनकी प्रज्वलित दीपमालाके समान शोभा हो रही है, उन सूर्यनन्दिनी यमुनाजीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ३ ॥

सहस्रनाम

१. ॐ **कालिन्दी**=सच्चिदानन्दस्वरूपा कलिन्दगिरि-नन्दिनी, २. **यमुना**=यमकी बहिन, ३. **कृष्णा**=कृष्णवर्णा, ४. **कृष्णरूपा**=कृष्णस्वरूपा अथवा कृष्णरूपवाली, ५. **सनातनी**=नित्या, ६. **कृष्णवामांससम्भूता**=श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई, ७. **परमानन्दरूपिणी**=परमानन्दमयी ॥ ४ ॥

८. **गोलोकवासिनी**=गोलोकधाममें निवास करनेवाली, ९. **श्यामा**=श्यामवर्णा अथवा षोडश वर्षकी अवस्थावाली, १०. **वृन्दावनविनोदिनी**=वृन्दावनमें मनोरञ्जन करनेवाली, ११. **राधासखी**=श्रीराधाकी सहचरी, १२. **रासलीला**=रासमण्डलमें लीलापरायणा अथवा रासलीलास्वरूपा, १३. **रासमण्डलमण्डिनी**=रासमण्डलको अलंकृत करनेवाली ॥ ५ ॥

१४. **निकुञ्जवासिनी**=निकुञ्जमें निवास करनेवाली, १५. **वल्ली**=लतास्वरूपा, १६. **रङ्गवल्ली**=रासरङ्गस्थलीमें वल्लीके समान शोभा पानेवाली अथवा रङ्गवल्ली नामकी राधा-सखी गोपीसे अभिन्नस्वरूपा, १७. **मनोहरा**=मनको हर लेनेवाली, १८. **श्रीः**=लक्ष्मीस्वरूपा, १९. **रासमण्डलीभूता**=रासमण्डलस्वरूपा अथवा मण्डलाकार होकर रासमण्डलको अलंकृत करनेवाली, २०. **यूथीभूता**=अपनी सहचरियोंके यूथसे संयुक्त, २१. **हरिप्रिया**=श्रीकृष्णकी प्यारी ॥ ६ ॥

२२. **गोलोकतटिनी**=गोलोकधामकी नदी, २३. **दिव्या**=दिव्यस्वरूपा, २४. **निकुञ्जतलवासिनी**=निकुञ्जके भीतर निवास करनेवाली, २५. **दीर्घा**=बहुत लंबे परिमाणकी, २६. **ऊर्मिवेगगम्भीरा**=तरंगोंके वेगसे युक्त एवं गहरी, २७. **पुष्पपल्लववाहिनी**=फूलों और पल्लवोंको बहानेवाली ॥ ७ ॥

२८. **घनश्यामा**=मेघके समान श्याम कान्तिवाली, २९. **मेघमाला**=घनमालास्वरूपा, ३०. **बलाका**=बकपङ्क्तिस्वरूपा, ३१. **पद्ममालिनी**=कमलोंकी मालासे अलंकृत, ३२. **परिपूर्णतमा**=परिपूर्णतम भगवत्स्वरूपा, ३३. **पूर्णा**=पूर्णस्वरूपा, ३४. **पूर्णब्रह्मप्रिया**=पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ३५. **परा**=पराशक्तिस्वरूपा ॥ ८ ॥

३६. **महावेगवती**=बड़े वेगवाली, ३७. **साक्षान्निकुञ्जद्वारनिर्गता**=साक्षात् निकुञ्जके द्वारसे निकली हुई, ३८. **महानदी**=विशाल सरिता, ३९. **मन्दगतिः**=मन्दगतिसे बहनेवाली, ४०. **विरजावेगभेदिनी**=गोलोकधामकी विरजा नदीके वेगका भेदन करनेवाली ॥ ९ ॥

४१. **अनेकब्रह्माण्डगता**=अनेकानेक ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त, ४२. **ब्रह्मद्रवसमाकुला**=ब्रह्मद्रवस्वरूपा गङ्गाजीसे मिली हुई, ४३. **गङ्गामिश्रा**=गङ्गाके जलसे मिश्रित जलवाली, ४४. **निर्मलाभा**=निर्मल आभावाली, ४५. **निर्मला**=सब प्रकारके मलोंसे रहित, ४६. **सरितांवरा**=नदियोंमें श्रेष्ठ ॥ १० ॥

४७. **रत्नबद्धोभयतटी**=दोनों किनारोंकी तटभूमिमें रत्नसे आबद्ध, ४८. **हंसपद्मादिसंकुला**=हंसादि पक्षियों और कमल आदि पुष्पोंसे व्याप्त, ४९. **नदी**=अव्यक्त शब्द, कलकल नाद करनेवाली, ५०. **निर्मलपानीया**=स्वच्छ जलवाली, ५१. **सर्वब्रह्माण्डपावनी**=समस्त ब्रह्माण्डोंको पवित्र करनेवाली ॥ ११ ॥

५२. **वैकुण्ठपरिखीभूता**=वैकुण्ठधामको चारों ओरसे घेरकर परिखा (खाई) के समान सुशोभित, ५३. **परिखा**=खाईस्वरूपा, ५४. **पापहारिणी**=पापोंका नाश करनेवाली, ५५. **ब्रह्मलोकगता**=ब्रह्मलोकमें पहुँची हुई, ५६. **ब्राह्मी**=ब्रह्मशक्तिस्वरूपा, ५७. **स्वर्गा**=स्वर्गलोकस्वरूपा, ५८. **स्वर्गनिवासिनी**=स्वर्गलोकमें वास करनेवाली ॥ १२ ॥

५९. **उल्लसन्ती**=तरङ्गोंद्वारा ऊपरकी ओर उठनेवाली, ६०. **प्रोत्पतन्ती**=जोर-जोरसे उछलनेवाली, ६१. **मेरुमाला**=मेरुपर्वतको मालाकी भाँति अलंकृत करनेवाली, ६२. **महोज्ज्वला**=अत्यन्त प्रकाशमाना, ६३. **श्रीगङ्गाम्भःशिखरिणी**=गङ्गाजीके जलको शिखरका रूप देनेवाली,

६४. गण्डशैलविभेदिनी=गण्डशैलोंका भेदन करनेवाली ॥ १३ ॥

६५. देशान् पुनन्ती=देशोंको पवित्र करनेवाली, **६६. गच्छन्ती**=गतिशीला, **६७. वहन्ती**=प्रवहमाना, **६८. भूमिमध्यगा**=धरतीके भीतर प्रवेश करनेवाली, **६९. मार्तण्डतनूजा**=सूर्यपुत्री, **७०. पुण्या**=पुण्यप्रदा, **७१. कलिन्दगिरिनन्दिनी**=कलिन्द पर्वतसे निकली हुई ॥ १४ ॥

७२. यमस्वसा=यमराजकी बहन, **७३. मन्दहासा**=मन्द-मन्द मुसकरानेवाली, **७४. सुद्विजा**=सुन्दर दाँतोंवाली, **७५. रचिताम्बरा**=धरतीके लिये आच्छादन-वस्त्रके रूपमें निर्मित, **७६. नीलाम्बरा**=नील वस्त्र धारण करनेवाली, **७७. पद्ममुखी**=कमलवदना, **७८. चरन्ती**=विचरनेवाली, **७९. चारुदर्शना**=मनोहर दृष्टिवाली अथवा देखनेमें मनोहर ॥ १५ ॥

८०. रम्भोरूः=कदलीके खंभे-जैसे ऊरुद्वय धारण करनेवाली, **८१. पद्मनयना**=कमललोचना, **८२. माधवी**=माधवप्रिया, **८३. प्रमदा**=यौवनशालिनी, **८४. उत्तमा**=उत्तम, **८५. तपश्चरन्ती**=श्रीकृष्ण-प्राप्तिके लिये तपस्या करनेवाली, **८६. सुश्रोणी**=सुन्दर नितम्बको धारण करनेवाली, **८७. कूजन्नूपुरमेखला**=बजते हुए नूपुरों और करधनीसे सुशोभित ॥ १६ ॥

८८. जलस्थिता=पानीमें निवास करनेवाली, **८९. श्यामलाङ्गी**=श्यामल अङ्गवाली, **९०. खाण्डवाभा**=खाण्डववनकी शोभा, **९१. विहारिणी**=विहारशीला, **९२. गाण्डीविभाषिणी**=अपनी तपस्याका उद्देश्य बतानेके लिये गाण्डीवधारी अर्जुनसे वार्तालाप करनेवाली, **९३. वन्या**=बढ़े हुए प्रवाहवाली, **९४. श्रीकृष्णं वरमिच्छन्ती**=श्रीकृष्णको पति बनानेकी इच्छावाली ॥ १७ ॥

९५. द्वारकागमना=द्वारकामें आगमन करनेवाली, **९६. राज्ञी**=रानी, **९७. पट्टराज्ञी**=पटरानी, **९८. परंगता**=परमात्माको प्राप्त, **९९. महाराज्ञी**=महारानी, **१००. *रत्नभूषा*=*रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित*, *१०१. गोमती*=**गौओंके समुदायसे युक्त अथवा गोमती नदीस्वरूपा, **१०२. तीरचारिणी**=तटपर विचरनेवाली ॥ १८ ॥

१०३. स्वकीया=श्रीकृष्णकी अपनी विवाहिता पत्नी, **१०४. सुखा**=सुखस्वरूपा, **१०५. स्वार्था**=अपने अभीष्ट अर्थको प्राप्त, **१०६. स्वभक्तकार्यसाधिनी**=अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेवाली, **१०७. नवलाङ्गा**=नूतन अङ्गवाली, **१०८. अबला**=स्त्रीरूपा, **१०९. मुग्धा**=भोली-भाली अथवा मुग्धा नायिका, **११०. वराङ्गा**=सुन्दर अङ्गवाली, **१११. वामलोचना**=बाँके नयनोंवाली ॥ १९ ॥

११२. अजातयौवना=अप्राप्त-यौवना, **११३. अदीना**=दीनतारहित एवं उदारस्वरूपा, **११४. प्रभा**=प्रभास्वरूपा, **११५. कान्तिः**=कान्तिस्वरूपा, **११६. द्युतिः**=द्युतिस्वरूपा, **११७. छविः**=छविस्वरूपा, **११८. सुशोभा**=सुन्दर शोभावाली, **११९. परमा**=उत्कृष्टस्वरूपा, **१२०. कीर्तिः**=कीर्तिस्वरूपा, **१२१. कुशला**=चतुरा, **१२२. अज्ञातयौवना**=अपने यौवनके आरम्भको न जाननेवाली ॥ २० ॥

१२३. नवोढा=नवविवाहिता नायिका, **१२४. मध्यगा**=मुग्धा और प्रगल्भाके बीचकी अवस्थावाली, **१२५. मध्या**=मध्या-नायिका, **१२६. प्रौढिः**=प्रौढतासे युक्त, **१२७. प्रौढा**=प्रौढस्वरूपा, **१२८. प्रगल्भका**=प्रगल्भा-नायिका, **१२९. धीरा**=धीरस्वभावा, **१३०. अधीरा**=भगवद्दर्शनके लिये अधीर रहनेवाली, **१३१. धैर्यधरा**=धैर्यधारिणी, **१३२. ज्येष्ठा**=ज्येष्ठ अवस्थावाली, **१३३. श्रेष्ठा**=गुणोंसे श्रेष्ठ, **१३४. कुलाङ्गना**=कुलवधू ॥ २१ ॥

१३५. क्षणप्रभा=विद्युत्के समान कान्तिमती, **१३६. चञ्चला**=वेगशालिनी, **१३७. अर्च्या**=पूजनीया, **१३८. विद्युत्**=विद्योतमाना, **१३९. सौदामनी**=विद्युत्स्वरूपा, **१४०. तडित्**=घनश्यामके अङ्कमें विद्युल्लेखा-सी शोभमाना, **१४१. स्वाधीनपतिका**=स्नेह और सद्व्यवहारसे पतिको वशमें रखनेवाली, **१४२. लक्ष्मी**=लक्ष्मीस्वरूपा, **१४३. पुष्टा**=पुष्ट अङ्गोंवाली अथवा अनुग्रहमयी, **१४४. स्वाधीनभर्तृका**=स्वाधीनपतिका ॥ २२ ॥

१४५. कलहान्तरिता=प्रेम-कलहके कारण कभी-कभी प्रियतमके वियोगका कष्ट सहन करनेवाली नायिका, **१४६. *भीरुः*=*भीरु स्वभाववाली*, १४७. इच्छा=*प्रियतमकी कामना*-**का विषय अथवा अभिलाषारूपिणी, **१४८. प्रोत्कण्ठिता**=प्रियके दर्शन या मिलनके लिये उत्सुक रहनेवाली, **१४९. आकुला**=प्रेम-परिपूर्णा अथवा प्रियतमकी सेवाके कार्यमें व्यस्त, **१५०. कशिपुस्था**=शय्यापर विराजित रहनेवाली, **१५१. दिव्यशय्या**=श्यामसुन्दरके लिये दिव्य शय्या प्रस्तुत

करनेवाली, १५२. **गोविन्दहृतमानसा**=गोविन्दने जिनके मनको हर लिया है, ऐसी ॥ २३ ॥

१५३. **खण्डिता**=खण्डिता-नायिकास्वरूपा, १५४. **अखण्डशोभाढ्या**=अविकल शोभासे सम्पन्न, १५५. **विप्रलब्धा**=विप्रलब्धा-नायिकास्वरूपा, १५६. **अभिसारिका**=प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये संकेत-स्थानपर जानेवाली, १५७. **विरहार्ता**=प्रियतमके विरहकी अनुभूतिसे पीड़ित, १५८. **विरहिणी**=वियोगिनी, १५९. **नारी**=नरावतार श्रीकृष्णकी भार्या, १६० **प्रोषितभर्तृका**=जिसका पति परदेशमें गया हो, ऐसी नायिकास्वरूपा ॥ २४ ॥

१६१. **मानिनी**=मानवती, १६२. **मानदा**=मान देनेवाली, १६३. **प्राज्ञा**=विदुषी, १६४. **मन्दारवनवासिनी**=कल्पवृक्षके काननमें निवास करनेवाली, १६५. **झंकारिणी**=चलते-फिरते या नृत्य करते समय आभूषणोंकी झंकार फैलानेवाली, १६६. **झणत्कारी**=झणत्कार या सिञ्जन-ध्वनि करनेवाली, १६७. **रणन्मञ्जीरनूपुरा**=बजते हुए नूपुर और मञ्जीर धारण करनेवाली ॥ २५ ॥

१६८. **मेखला**=वृन्दावनकी नीलमणिमयी करधनीके समान सुशोभित, १६९. **अमेखला**=साधारण अवस्थामें मेखलासे रहित, १७०. **काञ्ची**='काञ्ची' नामक आभूषणस्वरूपा, १७१. **अकाञ्चनी**=काञ्चनरहित, १७२. **काञ्चनामयी**=सुवर्णस्वरूपा, १७३. **कञ्चुकी**=कञ्चुकधारिणी, १७४. **कञ्चुकमणिः**=कञ्चुकमणिस्वरूपा, १७५. **श्रीकण्ठा**=शोभायुक्त कण्ठवाली, १७६. **आढ्या**=(श्रीकृष्णरूप) सम्पत्तिशालिनी, १७७. **महामणिः**=महामणिस्वरूपा अथवा बहुमूल्य मणि धारण करनेवाली ॥ २६ ॥

१७८. **श्रीहारिणी**=श्रीहारधारिणी, १७९. **पद्महारा**=कमलोंकी मालासे अलंकृत, १८०. **मुक्ता**=नित्यमुक्त, १८१. **मुक्तफलार्चिता**=मुक्ताफलोंसे पूजित, १८२. **रत्नकङ्कणकेयूरा**=रत्ननिर्मित कंगन और केयूर (भुजबंद) धारण करनेवाली, १८३. **स्फुरदङ्गुलिभूषणा**=जिनकी अङ्गुलियोंके भूषण उद्भासित हो रहे हैं, ऐसी ॥ २७ ॥

१८४. **दर्पणा**=दर्पणस्वरूपा, १८५. **दर्पणीभूता**=अपने जलकी निर्मलताके कारण दर्पणका काम देनेवाली, १८६. **दुष्टदर्पविनाशिनी**=दुष्टोंके घमंडको चूर करनेवाली, १८७. **कम्बुग्रीवा**=शङ्खके समान सुन्दर कण्ठवाली, १८८. **कम्बुधरा**=शङ्खनिर्मित आभूषण धारण करनेवाली, १८९. **ग्रैवेयकविराजिता**=कण्ठभूषणसे सुशोभित ॥ २८ ॥

१९०. **ताटङ्किनी**='ताटङ्क (तरकी)' नामक आभूषणविशेषको धारण करनेवाली, १९१. **दन्तधरा**=दन्तधारिणी, १९२. **हेमकुण्डलमण्डिता**=काञ्चन-निर्मित कुण्डलोंसे अलंकृत, १९३. **शिखाभूषा**=अपनी चोटीको विभूषित करनेवाली, १९४. **भालपुष्पा**=ललाट-देशमें पुष्पमय शृङ्गार धारण करनेवाली, १९५. **नासामौक्तिकशोभिता**=नाकमें मोतीकी बुलाकसे शोभित ॥ २९ ॥

१९६. **मणिभूमिगता**=मणिमयी भूमिपर विचरनेवाली, १९७. **देवी**= दिव्यस्वरूपा, १९८. **रैवताद्रिविहारिणी**=श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रैवतक पर्वतपर विहार करनेवाली, १९९. **वृन्दावनगता**=वृन्दावनमें विद्यमाना, २००. **वृन्दा**=वृन्दावनकी अधिष्ठातृदेवी-स्वरूपा, २०१. **वृन्दारण्यनिवासिनी**=वृन्दावनमें निवास करनेवाली ॥ ३० ॥

२०२. **वृन्दावनलता**=वृन्दावनकी लताओंके साथ तादात्म्यको प्राप्त हुई, २०३. **माध्वी**=मकरन्दस्वरूपा, २०४. **वृन्दारण्यविभूषणा**=वृन्दावनको विभूषित करनेवाली, २०५. **सौन्दर्यलहरी लक्ष्मीः**=सुन्दरताकी तरङ्गोंसे युक्त लक्ष्मीस्वरूपा, २०६. **मथुरातीर्थवासिनी**=मथुरापुरीरूप तीर्थमें निवास करनेवाली ॥ ३१ ॥

२०७. **विश्रान्तवासिनी**='विश्रान्त' तीर्थ (विश्रामघाट)में वास करनेवाली, २०८. **काम्या**=कमनीया, २०९. **रम्या**=रमणीया, २१०. **गोकुलवासिनी**=गोकुलमें निवास करनेवाली, २११. **रमणस्थलशोभाढ्या**=रमणस्थलोंकी शोभा बढ़ानेवाली, २१२. **महावनमहानदी**='महावन' नामक वनमें प्रवाहित होनेवाली महती नदी ॥ ३२ ॥

२१३. **प्रणता**=भक्तजनोंद्वारा वन्दिता, २१४. **प्रोन्नता**=अत्यन्त उत्कृष्ट गोलोकधाममें स्थित, अथवा ऊँची लहरोंके कारण उन्नत, २१५. **पुष्टा**=प्रेमानुग्रहसे परिपुष्ट, २१६. **भारती**=भारतवर्षकी नदी, २१७. **भरतार्चिता**=भरतके द्वारा पूजित, २१८. **तीर्थराजगतिः**=तीर्थराज प्रयागकी आश्रयभूता, २१९. **गोत्रा**=गौओंका त्राण करनेवाली अथवा गिरिस्वरूपा, २२०. **गङ्गासागरसंगमा**=गङ्गा तथा सागरसे संगत ॥ ३३ ॥

२२१. **सप्ताब्धिभेदिनी**=सात समुद्रोंका भेदन करनेवाली, २२२. **लोला**=लोल लहरोंवाली, २२३. **सप्तद्**-

सप्तद्वीपगता=बलपूर्वक सातों द्वीपोंमें जानेवाली, २२४. **लुठन्ती**=धरतीपर लोटनेवाली, २२५. **शैलभिद्यन्ती**=पर्वतोंका भेदन करनेवाली, २२६. **स्फुरन्ती**=स्फुरणशीला अथवा अपनी दिव्य प्रभा बिखेरनेवाली, २२७. **वेगवत्तरा**=अतिशय वेगशालिनी ॥ ३४ ॥

२२८. **काञ्चनी**=स्वर्णमयी, २२९. **काञ्चनीभूमिः**=गोलोककी स्वर्णमयी भूमिपर प्रवाहित होनेवाली, २३०. **काञ्चनीभूमिभाविता**=स्वर्णमयी भूमिपर प्रकट, २३१. **लोकदृष्टिः**=जगत्‌को दिव्यदृष्टि प्रदान करनेवाली, २३२. **लोकलीला**=लोकमें लीला करनेवाली, २३३. **लोकालोकाचलार्चिता**=लोकालोकपर्वतपर पूजित होनेवाली ॥३५॥

२३४. **शैलोद्‌गता**=कलिन्दपर्वतसे निकली हुई, २३५. **स्वर्गगता**=मन्दाकिनीरूपसे स्वर्गमें गयी हुई, २३६. **स्वर्गार्चा**=स्वर्गमें अर्चित होनेवाली, २३७. **स्वर्गपूजिता**=स्वर्गलोकमें पूजित, २३८. **वृन्दावनी**=वृन्दावनकी अधिष्ठातृस्वरूपा देवी, २३९. **वनाध्यक्षा**=वनकी स्वामिनी, २४०. **रक्षा**=रक्षिता या रक्षारूपा, २४१. **कक्षा**=वृन्दावनके लिये मेखलारूपा, २४२. **तटीपटी**=तटभूमिको वस्त्रकी भाँति ढकनेवाली ॥ ३६ ॥

२४३. **असिकुण्डगता**=असिकुण्डमें प्राप्त, २४४. **कच्छा**=कछारकी भूमिस्वरूपा, २४५. **स्वच्छन्दा**=स्वच्छन्दगामिनी, २४६. **उच्छलिता**=(वेगसे) उछलनेवाली, २४७. **आद्रिजा**=आदिभूत श्रीकृष्णके वामांससे उद्‌भूत (अथवा 'अद्रिजा' पाठ माना जाय तो पर्वतसे उत्पन्न हुई), २४८. **कुहरस्था**=सरस्वतीरूपसे भूछिद्रमें अथवा भोगवतीरूपसे पाताल-विवरमें स्थित, २४९. **रथप्रस्था**=श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रथपर यात्रा करनेवाली, २५०. **प्रस्था**=प्रस्थानशीला, २५१. **शान्ततरा**=परम शान्तिमयी, २५२. **आतुरा**=श्रीकृष्णदर्शनके लिये आतुर रहनेवाली ॥ ३७ ॥

२५३. **अम्बुच्छटा**=जलकी छटासे शोभित, २५४. **शीकराभा**=फुहारोंसे सुशोभित होनेवाली, २५५. **दर्दुरा**=मेढकोंका आश्रय, अथवा बादलके समान श्याम कान्तिवाली, २५६. **दार्दुरीधरा**=अपने जलके कल-कल नादसे दादुरोंकी-सी ध्वनि धारण करनेवाली, २५७. **पापाङ्कुशा**=पापोंको नष्ट करनेके लिये अङ्कुशस्वरूपा, २५८. **पापसिंही**=पापरूपी गजराजको नष्ट करनेके लिये सिंहीके तुल्य, २५९. **पापद्रुमकुठारिणी**=पापरूपी वृक्षका उच्छेद करनेके लिये कुठाररूपा ॥ ३८ ॥

२६०. **पुण्यसंघा**=पुण्यसमुदायरूपा, २६१. **पुण्यकीर्तिः**=पवित्र कीर्तिवाली अथवा जिनका कीर्तन पुण्य प्रदान करनेवाला है, ऐसी, २६२. **पुण्यदा**=पुण्यदायिनी, २६३. **पुण्यवर्द्धिनी**=अपने दर्शनसे पुण्यकी वृद्धि करनेवाली, २६४. **मधुवननदी**=मधुवनमें बहनेवाली नदी, २६५. **मुख्या**=एक प्रधान नदी, २६६. **अतुला**=तुलनारहित, २६७. **तालवनस्थिता**=तालवनमें स्थित रहनेवाली ॥ ३९ ॥

२६८. **कुमुद्वननदी**=कुमुदवनकी नदी, २६९. **कुब्जा**=टेढ़ी-मेढ़ी, २७०. **कुमुदा**=भगवती दुर्गास्वरूपा, २७१. **अम्भोजवर्द्धिनी**=अपने जलमें कमलोंको बढ़ानेवाली, २७२. **प्लवरूपा**=संसार सागरसे पार होनेके लिये नौकास्वरूपा, २७३. **वेगवती**=वेगशालिनी, २७४. **सिंहसर्पादिवाहिनी**=अपने जलकी धारामें सिंहों तथा सर्पादि जन्तुओंको बहा ले जानेवाली ॥ ४० ॥

२७५. **बहुली**=बहुलवनवाली, २७६. **बहुदा**=बहुत देनेवाली, २७७. **बह्वी**=भूमा (ब्रह्म) स्वरूपा, २७८. **बहुला**=गोरूपा, २७९. **वनवन्दिता**=वनोंद्वारा वन्दित, २८०. **राधाकुण्डकला**=अपनी कलासे राधाकुण्डमें स्थित, २८१. **आराध्या**=आराधनके योग्य, २८२. **कृष्णकुण्डजलाश्रिता**=कृष्णकुण्डके जलमें निवास करनेवाली ॥४१॥

२८३. **ललिताकुण्डगा**=ललिताकुण्डमें व्याप्त, २८४. **घण्टा**=घण्टा-ध्वनिके सदृश अनुरणनात्मक शब्द करनेवाली, २८५. **विशाखा**=विशाखा सखीस्वरूपा, २८६. **कुण्डमण्डिता**=कुण्डों (ह्रदों) से सुशोभित, २८७. **गोविन्दकुण्डनिलया**=गोविन्दकुण्डमें निवास करनेवाली, २८८. **गोपकुण्डतरंगिणी**=गोपकुण्डमें तरंगित होनेवाली ॥४२॥

२८९. **श्रीगङ्गा**=श्रीगङ्गास्वरूपा, २९०. **मानसीगङ्गा**=मानसी-गङ्गास्वरूपा, २९१. **कुसुमाम्बरभाविनी**=पुष्पमय वस्त्रसे सुशोभित अथवा कुसुम-सरोवरके अवकाशमें प्रकट होनेवाली, २९२. **गोवर्द्धिनी**=गोवर्धननाथकी शक्ति अथवा गौओंकी वृद्धि करनेवाली, २९३. **गोधनाढ्या**=गोधनसे सम्पन्न, २९४. **मयूरवरवर्णिनी**=मोरोंके समान सुन्दर वर्णवाली ॥ ४३ ॥

२९५. सारसी=सरोवरोंकी जल-सम्पत्ति अथवा सारस पक्षियोंकी आश्रयभूता, २९६. नीलकण्ठाभा=नील कण्ठ या मयूरकी-सी आभावाली, २९७. कूजत्कोकिलपोतकी=जहाँ कोकिल-कुमारियोंके कल-कूजन होते रहते हैं, ऐसी, २९८. गिरिराजप्रसूः=गिरिराज हिमालयके कलिन्दपर्वतसे प्रकट, २९९. भूरिः=बहुवैभवशालिनी, ३००. आतपत्रा=तटपर रहनेवाले लोगोंकी धूपके कष्टसे रक्षा करनेवाली, ३०१. आतपत्रिणी=पटरानीके रूपमें छत्र धारण करनेवाली ॥ ४४ ॥

३०२. गोवर्द्धनाङ्कगा=गोवर्द्धनगिरिकी गोदमें मोदमाना, ३०३. गोदन्ती=हरतालके समान रंगवाले केसर आदिसे आमोदित, ३०४. दिव्यौषधिनिधिः=दिव्य ओषधियोंकी निधि, ३०५. सृतिः=सद्गतिकी राह, ३०६. पारदी=भवसागरसे पार कर देनेवाली दिव्य शक्ति, ३०७. पारदमयी=पारदस्वरूपा, ३०८. नारदी=नार अर्थात् जल प्रदान करनेवाली, ३०९. शारदी=शरत्कालीन शोभारूपा, ३१०. भृतिः=भरण-पोषणका साधन बनी हुई ॥ ४५ ॥

३११. श्रीकृष्णचरणाङ्कस्था=भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंके अङ्कमें विराजित, ३१२. अकामा=लौकिक कामनाओंसे रहित (अथवा 'कामा' कामस्वरूपा), ३१३. कामवनाञ्चिता=कामवनमें पूजित, ३१४. कामाटवी=कामवनरूपा, ३१५. नन्दिनी=सबको आनन्दित करनेवाली, ३१६. नन्दग्राममही=नन्दग्रामस्थित भूमिरूपा, ३१७. धरा=पृथ्वीरूपा ॥ ४६ ॥

३१८. बृहत्सानुद्युतिप्रोता='बृहत्सानु' पर्वतके शिखरकी शोभासे संयुक्त, ३१९. नन्दीश्वरसमन्विता=नन्दगाँवके नन्दीश्वरगिरिसे समन्विता, ३२०. काकली=कोयलोंकी कुहू-ध्वनिरूपमें स्थित, ३२१. कोकिलमयी=कोयलसे व्याप्ता, ३२२. भाण्डीरकुशकौशला=भाण्डीरवनमें कुशोत्पाटनके कौशलसे युक्त ॥ ४७ ॥

३२३. लोहार्गलप्रदा=श्रीकृष्णके लिये अपने प्रेमके द्वारा लोहकी अर्गला लगा देनेवाली, ३२४. कारा=(श्रीकृष्णको अपने प्रेमके द्वारा रोके रखनेके लिये) कारारूपा, ३२५. काश्मीरवसना=केसरके रंगमें रँगे हुए वस्त्र धारण करनेवाली, ३२६. वृता=श्रीकृष्णके द्वारा स्वीकृता, ३२७. बर्हिषदी=बर्हिषदीपुरीरूपा, ३२८. शोणपुरी=शोणपुरीरूपा, ३२९. शूरक्षेत्रपुराधिका=शूरक्षेत्रपुरसे भी अधिक माहात्म्यवाली ॥ ४८ ॥

३३०. नानाभरणशोभाढ्या=विविध प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न, ३३१. नानावर्णसमन्विता=नाना प्रकारके रंगोंसे युक्त, ३३२. नानानारीकदम्बाढ्या=नाना प्रकारकी स्त्रियोंके समुदायसे युक्त, ३३३. नानारङ्गमहीरुहा=तटवर्ती विविध रंगके वृक्षोंसे सुशोभित ॥ ४९ ॥

३३४. नानालोकगता=नाना लोकोंमें पहुँची हुई, ३३५. अभ्यर्चिः=जिनकी तेजोराशि सब ओर फैली हुई है, ऐसी, ३३६. नानाजलसमन्विता=नाना नदियोंके मिले हुए जलसे युक्त, ३३७. स्त्रीरत्नम्=स्त्रियोंमें रत्नस्वरूपा, ३३८. रत्ननिलया=रत्ननिर्मित गृहमें निवास करनेवाली, ३३९. ललना=श्रीकृष्णकामिनी, ३४०. रत्नरञ्जिनी=रत्नोंके द्वारा विविध रंगोंका प्रकाश फैलानेवाली ॥ ५० ॥

३४१. रङ्गिणी=रङ्गस्थलमें रासके रंगमें रँगी रहनेवाली, ३४२. रङ्गभूमाढ्या=रंगके बाहुल्यसे युक्त, ३४३. रङ्गा=हर्षयुक्ता अथवा रङ्गानाम्नी नदीस्वरूपा, ३४४. रङ्गमहीरुहा=रंगीन वृक्षोंसे युक्त, ३४५. राजविद्या=विद्याओंकी स्वामिनी, ३४६. राजगुह्या=गुह्य वस्तुओंमें सबसे श्रेष्ठ, ३४७. जगत्कीर्तिः=जगत्‌के लिये कीर्तिमयी अथवा कीर्तनीया, ३४८. घना=सघन प्रेमयुक्ता अथवा श्रीकृष्णके वंशीवादनके समय हिमवत् धनीभूत हो जानेवाली, ३४९. अघना=प्रवहणशीला ॥ ५१ ॥

३५०. विलोलघण्टा=चञ्चल घंटाके समान नाद करनेवाली, ३५१. कृष्णाङ्गा=कृष्णके समान अङ्गवाली अथवा श्यामाङ्गी, ३५२. कृष्णदेहसमुद्भवा=श्रीकृष्णके शरीरसे उत्पन्न, ३५३. नीलपङ्कजवर्णाभा=नील कमलके समान वर्ण एवं आभासे युक्त, ३५४. नीलपङ्कजहारिणी=नील कमलकी माला धारण करनेवाली ॥ ५२ ॥

३५५. नीलाभा=नील कान्तिमती, ३५६. नीलपद्माढ्या=नील कमलोंकी सम्पदासे भरी-पूरी, ३५७. नीलाम्भोरुहवासिनी=नील कमलमें निवास करनेवाली, ३५८. नागवल्ली=ताम्बूललतास्वरूपा, ३५९. नागपुरी=नागोंकी नगरी (अर्थात् कालिय आदि नागोंकी निवासभूमि), ३६०. नागवल्लीदलार्चिता=ताम्बूलपत्रसे पूजित ॥ ५३ ॥

३६१. ताम्बूलचर्चिता=ताम्बूलसे रञ्जित, ३६२.

चर्चा=कस्तूरी-चन्दनादि आलेपमयी, ३६३. मकरन्द-मनोहरा=कमलादिके मकरन्दसे मनको हर लेनेवाली, ३६४. सकेशरा=केसरवती, ३६५. केशरिणी=केसर धारण करनेवाली, ३६६. केशपाशाभिशोभिता=केशपाशद्वारा सब ओरसे सुशोभित ॥ ५४ ॥

३६७. कज्जलाभा=काजलकी-सी काली आभावाली, ३६८. कज्जलाक्ता=नेत्रोंमें काजलकी शोभासे युक्त अथवा काजलकी रँगी हुई, ३६९. कज्जली=कजलीके समान काली, ३७०. कलिताञ्जना=नेत्रोंमें अञ्जन धारण करनेवाली, ३७१. अलक्तचरणा=चरणोंमें महावरका रंग लगानेवाली, ३७२. ताम्रा=ताम्रवर्णा, ३७३. लाला=लालनीया, ३७४. ताम्रीकृताम्बरा=ताँबेके समान लाल रंगके वस्त्र धारण करनेवाली ॥ ५५ ॥

३७५. सिन्दूरिता=सीमन्तमें सिन्दूर धारण करनेवाली, ३७६. अलिप्तवाणी=जिसकी वाणी किसी दोषसे लिप्त नहीं होती, ऐसी, ३७७. सुश्री=उत्तम शोभासे युक्त, ३७८. श्रीखण्डमण्डिता=चन्दनसे अलङ्कृत, ३७९. पाटीरपङ्कवसना=चन्दन-पङ्कमय वस्त्र धारण करनेवाली, ३८०. जटामांसी=जटामासीके रूपमें स्थित, ३८१. स्रगम्बरा=पुष्पमालाओंको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाली ॥५६॥

३८२. आगरी=आगर (अमावास्या)के समान (कृष्ण) वर्णवाली, ३८३. अगुरुगन्धाक्ता=अगुरुकी गन्धसे अभिषिक्त, ३८४. तगराश्रितमारुता=जिसकी हवामें तगरका सुगन्ध समायी हुई है, ऐसी, ३८५. सुगन्धितैल-रुचिरा=सुगन्धित तेल (इत्र आदि)से मनोहर, ३८६. कुन्तलालिः=जिनकी अलकोंपर (सुगन्धसे आकृष्ट) भ्रमर मँडराते रहते हैं, ऐसी, ३८७. सकुन्तला=कुन्तलराशिसे युक्त ॥ ५७ ॥

३८८. शकुन्तला=शकुन्तों—पक्षियोंका स्वागत करनेवाली, ३८९. अपांसुला=पतिव्रता, ३९०. पातिव्रत्य-परायणा=पतिव्रताधर्मके पालनमें तत्पर, ३९१. सूर्यप्रभा=सूर्यके समान उद्भासित होनेवाली, ३९२. सूर्यकन्या=सूर्यकी पुत्री, ३९३. सूर्यदेहसमुद्भवा=सूर्यके शरीरसे उत्पन्न ॥ ५८ ॥

३९४. कोटिसूर्यप्रतीकाशा=करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्विनी, ३९५. सूर्यजा=सूर्यपुत्री, ३९६. सूर्यनन्दिनी=सूर्यदेवको आनन्द प्रदान करनेवाली, ३९७. संज्ञा=सम्यक् ज्ञानस्वरूपा, ३९८. संज्ञासुता=संज्ञाकी पुत्री, ३९९. स्वेच्छा=स्वाधीना, ४००. असंज्ञा=(प्रियतमके प्रेममें) बेसुध हो जानेवाली, ४०१. संज्ञा=चेतनारूपा, ४०२. मोदप्रदायिनी=आनन्द प्रदान करनेवाली ॥ ५९ ॥

४०३. संज्ञापुत्री=संज्ञाकी बेटी, ४०४. स्फुरच्छाया=उद्भासित कान्तिवाली, ४०५. तपतीतापकारिणी=(सौतेली बहिन) तपतीको ताप देनेवाली, ४०६. सावर्ण्यानुभवा=श्रीकृष्णके साथ वर्ण-सादृश्यका अनुभव करनेवाली, ४०७. देवी=देवकन्या, ४०८. वडवा=वडवारूपा, ४०९. सौख्यदायिनी=सौख्य प्रदान करनेवाली ॥ ६० ॥

४१०. शनैश्चरानुजा=शनैश्चरकी छोटी बहिन, ४११. कीला=ज्वालामयी, ४१२. चन्द्रवंशविवर्द्धिनी=चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाली, ४१३. चन्द्रवंशवधूः=चन्द्रवंशकी बहू, ४१४. चन्द्रा=आह्लाद प्रदान करनेवाली, ४१५. चन्द्रावलिसहायिनी=चन्द्रावली सखीकी सहायता करनेवाली ॥ ६१ ॥

४१६. चन्द्रावती=चन्द्रावतीस्वरूपा, ४१७. चन्द्रलेखा=चन्द्रलेखास्वरूपा, ४१८. चन्द्रकान्ता=चन्द्रमाके समान कान्तिमती, ४१९. अनुगा=(सदा) प्रियतमका अनुगमन करनेवाली, ४२०. अंशुका=उज्ज्वल-वस्त्रधारिणी, ४२१. भैरवी=भैरवप्रिया, ४२२. पिङ्गलाशङ्की=सूर्यके पारिपार्श्वक पिङ्गलसे आशङ्कित होनेवाली, ४२३. लीलावती=भाँति-भाँतिकी लीला करनेवाली, ४२४. आगरीमयी=अगरकी सुगन्धसे व्याप्त ॥ ६२ ॥

४२५. धनश्री=धनलक्ष्मी या रागिनीविशेष, ४२६. देवगान्धारी=रागिनीविशेष, ४२७. स्वर्मणिः=स्वर्गलोककी मणि, ४२८. गुणवर्द्धिनी=गुणोंकी वृद्धि करनेवाली, ४२९. व्रजमल्ला=व्रजमण्डलमें मल्लस्वरूपा, ४३०. बन्धकारी=विरोधियोंको बन्धनमें डालनेवाली, ४३१. विचित्रा=विचित्र रूप और शक्तिसे सम्पन्न, ४३२. जयकारिणी=विजय प्राप्त करनेवाली ॥ ६३ ॥

४३३. गान्धारी, ४३४. मञ्जरी, ४३५. टोडी, ४३६. गुर्जरी, ४३७. आशावरी, ४३८. जया, ४३९. कर्णाटी=गान्धारीसे लेकर कर्णाटीतक विशेष रागिनियोंके नाम हैं। ये समस्त रागिनियाँ यमुनाजीसे अभिन्न हैं, ४४०. रागिणी=रागिनीस्वरूपा, ४४१.

गौरी=गौरी नामकी रागिनी, ४४२. **वैराटी**=रागिनी विशेष, ४४३. **गौरवाटिका**=रागिनी-विशेष अथवा गौरतेजःस्वरूपा श्रीराधाके लिये उद्यानरूपिणी ॥ ६४ ॥

४४४. **चतुश्चन्द्रा**, ४४५. **कलाहेरी**, ४४६. **तैलङ्गी**, ४४७. **विजयावती**, ४४८. **ताली**=चतुश्चन्द्रासे लेकर तालीतक राग-रागिनियों और तालके नाम हैं, ४४९. **तालस्वरा**=ताली बजाकर स्वरकी सूचना देनेवाली, ४५०. **गाना**=गानस्वरूपा, ४५१. **क्रियामात्रप्रकाशिनी**=ताल के क्रियामात्रको प्रकाशित करनेवाली ॥ ६५ ॥

४५२. **वैशाखी**, ४५३. **चञ्चला**, ४५४. **चारुः**, ४५५. **माचारी**, ४५६. **घूघटी**, ४५७. **घटा**, ४५८. **वैरागरी**, ४५९. **सोरटी**, ४६०. **ईशा**, ४६१. **कैदारी**, ४६२. **जलधारिका**—वैशाखीसे लेकर जलधारिकापर्यन्त सभी नामविशेष रागिनी आदिके सूचक हैं ॥ ६६ ॥

४६३. **कामाकरश्री**, ४६४. **कल्याणी**, ४६५. **गौड़-कल्याणमिश्रिता**, ४६६. **रामसंजीविनी**, ४६७. **हेला**, ४६८. **मन्दारी**, ४६९. **कामरूपिणी**—ये सब भी विशेष प्रकारकी रागिनियाँ हैं ॥ ६७ ॥

४७०. **सारङ्गी**, ४७१. **मारुती**, ४७२. **होढा**, ४७३. **सागरी**, ४७४. **कामवादिनी**, ४७५. **वैभासी**, ४७६. **मङ्गला**—ये भी रागिनियोंके ही नाम हैं। ४७७. **चान्द्री**=रासपूर्णिमाकी चाँदनीस्वरूपा, ४७८. **रास-मण्डलमण्डना**=रासमण्डलको मण्डित करनेवाली ॥६८॥

४७९. **कामधेनुः**=कामधेनुकी भाँति व्यक्तिकी मनोवाञ्छित कामनाको पूर्ण करनेवाली, ४८०. **कामलता**=कामना पूर्ण करनेवाली कल्पलतास्वरूपा, ४८१. **कामदा**=अभीष्ट मनोरथ देनेवाली, ४८२. **कमनीयका**=कमनीया, ४८३. **कल्पवृक्षस्थली**=कल्पवृक्षोंकी स्थानभूता, ४८४. **स्थूला**=स्थूलरूपिणी, ४८५. **क्षुधा**=बुभुक्षास्वरूपिणी, ४८६. **सौधनिवासिनी**=महलमें रहनेवाली ॥ ६९ ॥

४८७. **गोलोकवासिनी**=गोलोकधाममें निवास करनेवाली, ४८८. **सुभ्रूः**=सुन्दर भौंहोंवाली, ४८९. **यष्टि-भृत्**=छड़ी धारण करनेवाली, ४९०. **द्वारपालिका**=द्वार-रक्षिका, ४९१. **शृङ्गारप्रकरा**=शृङ्गार-साधन-सामग्री समुदायरूपा, ४९२. **शृङ्गा**=मन्मथोद्रेकस्वरूपा, ४९३. **स्वच्छा**=विमलस्वरूपा, ४९४. **शय्योपकारिका**=प्रिया-प्रियतमके लिये शय्या सुसज्जित करनेमें उपकारिणी ॥ ७० ॥

४९५. **पार्षदा**=श्रीराधा-कृष्णकी पार्षदस्वरूपा, ४९६. **सुसखीसेव्या**=सुन्दर सखियोंद्वारा सेवनीया, ४९७. **श्री-वृन्दावनपालिका**=श्रीवृन्दावनकी रक्षा करनेवाली, ४९८. **निकुञ्जभृत्**=निकुञ्जका पोषण करनेवाली, ४९९. **कुञ्जपुञ्जा**=कुञ्जसमुदायस्वरूपा, ५००. **गुञ्जाभरणभूषिता**=गुञ्जाके आभूषणोंसे विभूषित ॥ ७१ ॥

५०१. **निकुञ्जवासिनी**=निकुञ्जमें निवास करनेवाली, ५०२. **प्रोष्या**=प्रवासिनी, ५०३. **गोवर्द्धनतटीभवा**=गोवर्धनकी उपत्यकामें मानसी गङ्गाके रूपमें प्रकट, ५०४. **विशाखा**=विशाखा सखीस्वरूपा, ५०५. **ललिता**=ललिता-सखीस्वरूपा अथवा लालित्यशालिनी, ५०६. **रामा**=श्रीकृष्णरमणी, ५०७. **नीरुजा**=रोगरहित, ५०८. **मधु माधवी**=मधुमासकी माधवी लतारूपिणी ॥ ७२ ॥

५०९. **एका**=अद्वितीया, ५१०. **नैकसखी**=अनेक सखियोंवाली, ५११. **शुक्ला**=शुद्धस्वरूपा, ५१२. **सखी-मध्या**=सखियोंके मध्यमें विराजमान, ५१३. **महामनाः**=विशालहृदया, ५१४. **श्रुतिरूपा**=गोपीरूपमें श्रुतिस्वरूपा, ५१५. **ऋषिरूपा**=ऋषिस्वरूपा गोपी, ५१६. **मैथिलाः**=गोपीरूपमें उत्पन्न मिथिलावासिनी स्त्रियाँ, ५१७. **कौशलाः स्त्रियः**=गोपीरूपमें उत्पन्न कोशलवासिनी स्त्रियाँ ॥ ७३ ॥

५१८. **अयोध्यापुरवासिन्यः**=गोपीरूपमें उत्पन्न अयोध्या नगरकी स्त्रियाँ, ५१९. **यज्ञसीताः**=यज्ञसीता स्वरूपा गोपियाँ, ५२०. **पुलिन्दकाः**=गोपीभावको प्राप्त पुलिन्द-कन्याएँ, ५२१. **रमावैकुण्ठवासिन्यः**=लक्ष्मीजीके वैकुण्ठमें निवास करनेवाली स्त्रियाँ (जो गोपीरूपको प्राप्त हुई थीं), ५२२. **श्वेतद्वीपसखीजनाः**=श्वेतद्वीप-निवासिनी सखियाँ ॥ ७४ ॥

५२३. **ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिन्यः**=ऊर्ध्ववैकुण्ठमें वास करनेवाली सखियाँ, ५२४. **दिव्याजितपदाश्रिताः**=दिव्य अजित पदके आश्रित सखियाँ, ५२५. **श्रीलोकाचल-वासिन्यः**=श्रीलोकाचलमें निवास करनेवाली सखियाँ, ५२६. **सागरोद्भवाः श्रीसख्यः**=समुद्रसे उत्पन्न श्री-लक्ष्मीजीकी सखियाँ ॥ ७५ ॥

५२७. **दिव्याः**=दिव्यरूपा गोपियाँ, ५२८. **अदिव्याः**=मानवरूपिणी गोपियाँ, ५२९. **दिव्याङ्गाः**=दिव्य अङ्गोंवाली,

५३०. **श्यामाः**=सर्वव्यापिनी, ५३१. **त्रिगुणवृत्तयः**=त्रिगुणात्मक वृत्तिस्वरूपा, ५३२. **भूमिगोप्यः**=भूतलपर उत्पन्न गोपियाँ, ५३३. **देवनार्यः**=देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ, ५३४. **लताः**=लतारूपिणी गोपियाँ, ५३५. **ओषधिवीरुधः**=ओषधि एवं लता झाड़ी आदिस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ ॥ ७६ ॥

५३६. **जालंधर्यः**=गोपीभावको प्राप्त जालंधरी स्त्रियाँ, ५३७. **सिन्धुसुताः**=समुद्रकन्याएँ, ५३८. **पृथुबर्हिष्मतीभवाः**=राजा पृथुकी बर्हिष्मतीपुरीमें होनेवाली स्त्रियाँ, जो गोपीभावको प्राप्त हुई थीं, ५३९. **दिव्याम्बराः**=दिव्यवस्त्रधारिणी गोपियाँ, ५४०. **अप्सरसः**=गोपीभावको प्राप्त अप्सराएँ, ५४१. **सौतलाः**=सुतललोकवासिनी असुराङ्गनाएँ, जिन्हें गोपीभावकी प्राप्ति हुई थी, ५४२. **नागकन्यकाः**=नागकन्यास्वरूपा गोपियाँ ॥ ७७ ॥

५४३. **परं धाम**=परमधामस्वरूपा, ५४४. **परं ब्रह्म**=परब्रह्मस्वरूपा, ५४५. **पौरुषा**=पुरुषार्थस्वरूपा, ५४६. **प्रकृतिः परा**=पराप्रकृतिस्वरूपा, ५४७. **तटस्था**=तटस्थाशक्तिस्वरूपा, ५४८. **गुणभूः**=गुणोंकी जन्मभूमि, ५४९. **गीता**=सबके द्वारा जिसका यशोगान होता हो, वह, अथवा भगवद्गीतास्वरूपा, ५५०. **गुणागुणमयी**=गुणागुणस्वरूपा, ५५१. **गुणा**=दिव्यगुणात्मिका ॥ ७८ ॥

५५२. **चिद्घना**=चिदानन्दघनस्वरूपा, ५५३. **सदसन्माला**=सदसत्-समूहात्मिका, ५५४. **दृष्टिः**=ज्ञानस्वरूपा अथवा दर्शनस्वरूपा, ५५५. **दृश्या**=दृश्यस्वरूपा, ५५६. **गुणाकरी**=गुणोंकी निधिरूपा, ५५७. **महत्तत्त्वम्**=समष्टि बुद्धिरूपा, ५५८. **अहंकारः**=अहङ्कारस्वरूपा, ५५९. **मनः**=मनःस्वरूपा, ५६०. **बुद्धिः**=बुद्धिरूपा, ५६१. **प्रचेतना**=प्रकृष्ट चेतनास्वरूपा ॥ ७९ ॥

५६२. **चेतो**=चित्तरूपा, ५६३. **वृत्तिः**=व्यवहारस्वरूपा, ५६४. **स्वान्तरात्मा**=निजान्तरात्मस्वरूपा, ५६५. **चतुर्थी**=जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिसे अतीत तुरीयावस्थारूपा, ५६६. **चतुरक्षरा**=प्रणवके चार अक्षर—अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा—ये जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६७. **चतुर्व्यूहा**=वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार व्यूह जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६८. **चतुर्मूर्तिः**=एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी और चतुष्पदी—इन चार मूर्तियोंवाली गायत्री अथवा चतुर्व्यूहस्वरूपा, ५६९. **व्योम**=आकाशरूपा, ५७०. **वायुः**=वायुरूपा, ५७१. **अदः**=दृश्य प्रपञ्चके रूपमें स्थित, ५७२. **जलम्**=जलस्वरूपा ॥ ८० ॥

५७३. **मही**=पृथ्वीरूपा, ५७४. **शब्दः**=शब्दस्वरूपा, ५७५. **रसः**=रसस्वरूपा, ५७६. **गन्धः**=गन्धस्वरूपा, ५७७. **स्पर्शः**=स्पर्शस्वरूपा, ५७८. **रूपम्**=रूपस्वरूपा, ५७९. **अनेकधा**=नाना रूपवाली, ५८०. **कर्मेन्द्रियम्**=कर्मेन्द्रियस्वरूपा, ५८१. **कर्ममयी**=कर्मस्वरूपा, ५८२. **ज्ञानम्**=ज्ञानमयी, ५८३. **ज्ञानेन्द्रियम्**=ज्ञानेन्द्रियस्वरूपा, ५८४. **द्विधा**=प्रकृति-पुरुषरूप दो शरीरवाली अथवा ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय-भेदसे द्विविध इन्द्रियरूपा ॥ ८१ ॥

५८५. **त्रिधा**=क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम—त्रिविध रूपवाली अथवा अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव भेदसे त्रिविध रूपवाली, ५८६. **अधिभूतम्**=भौतिक सृष्टिमें व्याप्त, ५८७. **अध्यात्मम्**=अध्यात्मस्वरूपा, ५८८. **अधिदैवम्**=आधिदैविकरूपवाली, ५८९. **अधिष्ठितम्**=सर्वरूपोंमें अधिष्ठित, ५९०. **ज्ञानशक्तिः**=ज्ञानशक्ति, ५९१. **क्रियाशक्तिः**=क्रियाशक्ति, ५९२. **सर्वदेवाधिदेवता**=समस्त देवताओंकी अधिदेवी ॥ ८२ ॥

५९३. **तत्त्वसंघा**=तत्त्वसमूहरूपा, ५९४. **विराण्मूर्तिः**=विराट्स्वरूपा, ५९५. **धारणा**=धारणाशक्ति, ५९६. **धारणामयी**=धारणाशक्तिरूपा, ५९७. **श्रुतिः**=वेदरूपा, ५९८. **स्मृतिः**=धर्मशास्त्ररूपा, ५९९. **वेदमूर्तिः**=वेदात्मिका, ६००. **संहिता**=संहितास्वरूपा, ६०१. **गर्गसंहिता**=गर्गसंहितारूपा ॥ ८३ ॥

६०२. **पाराशरी**=पाराशरसंहिता (विष्णुपुराण)-रूपा, ६०३. **सृष्टिः**=सृष्टिरूपा अथवा पाराशरी-रचनारूपा, ६०४. **पारहंसी**=परमहंस-विद्यारूपा अथवा परमहंससंहिता, ६०५. **विधातृका**=विधातृस्वरूपा अथवा ब्रह्मसंहिता, ६०६. **याज्ञवल्की**=याज्ञवल्क्यस्मृतिरूपा, ६०७. **भागवती**=भगवान्‌की शक्ति अथवा वैष्णवागमरूपा, ६०८. **श्रीमद्भागवतार्चिता**=श्रीमद्भागवतके द्वारा पूजित—प्रशंसित ॥ ८४ ॥

६०९. **रामायणमयी**=वाल्मीकि-रामायण अथवा प्राचेतस-संहिता अथवा रामचरितस्वरूपा, ६१०. **रम्या**=रमणीया,

६११. **पुराणपुरुषप्रिया**=पुराणपुरुष श्रीकृष्णकी प्रिया, ६१२. **पुराणमूर्त्तिः**=पुराणस्वरूपा, ६१३. **पुण्याङ्गा**=पुण्यशरीरवाली, ६१४. **शास्त्रमूर्त्तिः**=शास्त्रस्वरूपा, ६१५. **महोन्नता**=परम उन्नत ॥ ८५ ॥

६१६. **मनीषा**=बुद्धिरूपा, ६१७. **धिषणा**=प्रज्ञारूपा, ६१८. **बुद्धिः**=मेधारूपा, ६१९. **वाणी**=वाग्देवता, ६२०. **धीः**=बुद्धिरूपा, ६२१. **शेमुषी**=बुद्धिरूपा, ६२२. **मतिः**=निश्चयरूपा, ६२३. **गायत्री**=गायत्रीमन्त्रस्वरूपा, ६२४. **वेदसावित्री**=वेदोक्त गायत्री, ६२५. **ब्रह्माणी**=ब्रह्मशक्ति, ६२६. **ब्रह्मलक्षणा**=वेद-मन्त्रोंद्वारा लक्षित होनेवाली ॥८६॥

६२७. **दुर्गा**=दुर्गम्या अथवा दुर्गादेवी, ६२८. **अपर्णा**=तपस्विनी पार्वती, ६२९. **सती**=दक्षकन्या सती, ६३०. **सत्या**=सत्यस्वरूपा अथवा सत्यभामा, ६३१. **पार्वती**=गिरिराज हिमालयकी पुत्री, ६३२. **चण्डिका**=असुरसंहारिणी शक्ति, ६३३. **अम्बिका**=जगन्माता, ६३४. **आर्या**=श्रेष्ठस्वरूपा, ६३५. **दाक्षायणी**=दक्षप्रजापतिकी कन्या, ६३६. **दाक्षी**=दक्षपुत्री, ६३७. **दक्षयज्ञविघातिनी**=दक्ष-यज्ञविध्वंसमें कारणभूता ॥ ८७ ॥

६३८. **पुलोमजा**=पुलोम दानवकी पुत्री शचीस्वरूपा, ६३९. **शची**=इन्द्रपत्नी, ६४०. **इन्द्राणी**=शची, ६४१. **देवी**=प्रकाशमाना, ६४२. **देववरार्पिता**=देवेश्वर इन्द्रको अर्पित, ६४३. **वायुना धारिणी**=वायुके द्वारा धारण करनेवाली अथवा वयुना=ज्ञानस्वरूपा और धारिणी=धारणशक्ति, ६४४. **धन्या**=धन्यवादके योग्य, ६४५. **वायवी**=वायुशक्ति, ६४६. **वायुवेगगा**=वायुवेगसे चलनेवाली ॥ ८८ ॥

६४७. **यमानुजा**=यमकी छोटी बहिन, ६४८. **संयमनी**=संयमनशक्ति अथवा संयमनीपुरी, ६४९. **संज्ञा**=सूर्यप्रिया संज्ञास्वरूपा, ६५०. **छाया**=संज्ञाकी छायाभूता सवर्णा, ६५१. **स्फुरद्द्युतिः**=उद्दीप्त कान्तिवाली, ६५२. **रत्नवेदी**=रत्नवेदिकारूपा, ६५३. **रत्नवृन्दा**=रत्नसमूहरूपा, ६५४. **तारा**=तारामण्डलरूपा, ६५५. **तरणिमण्डला**=सूर्यमण्डल स्वरूपा ॥ ८९ ॥

६५६. **रुचिः**=प्रभा, ६५७. **शान्तिः**=शान्तिरूपा, ६५८. **क्षमा**=तितिक्षामयी अथवा पृथ्वी, ६५९. **शोभा**=छविमयी, ६६०. **दया**=करुणामयी, ६६१. **दक्षा**=कुशला या चतुरा, ६६२. **द्युतिः**=कान्तिमयी, ६६३. **त्रपा**=लज्जा, ६६४. **तलतुष्टिः**=ताली बजानेसे तुष्ट होनेवाली, ६६५. **विभा**=प्रभा, ६६६. **पुष्टिः**=पुष्टिरूपा, ६६७. **संतुष्टिः**=संतोषमयी, ६६८. **पुष्टभावना**=सुदृढ भावनावाली ॥ ९० ॥

६६९. **चतुर्भुजा**=चार भुजाएँ धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७०. **चारुनेत्रा**=सुन्दर नेत्रवाली, ६७१. **द्विभुजा**=दो बाहुवाली (कालिन्दी या श्रीराधा), ६७२. **अष्टभुजा**=आठ भुजावाली (सरस्वती), ६७३. **अबला**=बलका प्रदर्शन न करनेवाली, ६७४. **शङ्खहस्ता**=हाथमें शङ्ख धारण करनेवाली (वैष्णवी मूर्ति), ६७५. **पद्महस्ता**=हाथमें कमल धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७६. **चक्रहस्ता**=हाथमें चक्र धारण करनेवाली वैष्णवी मूर्ति, ६७७. **गदाधरा**=गदा धारण करनेवाली ॥ ९१ ॥

६७८. **निषङ्गधारिणी**=तरकस धारण करनेवाली, ६७९. **चर्मखड्गपाणिः**=हाथमें ढाल-तलवार लेनेवाली, ६८०. **धनुर्धरा**=धनुष धारण करनेवाली, ६८१. **धनुष्टंकारिणी**=(दुर्गाके रूपमें) धनुषका टंकार करनेवाली, ६८२. **योद्ध्री**=युद्ध करनेवाली, ६८३. **दैत्योद्भट-विनाशिनी**=दैत्यसेनाके उद्भट योद्धाओंका विनाश करनेवाली ॥ ९२ ॥

६८४. **रथस्था**=रथपर बैठनेवाली, ६८५. **गरुडारूढा**=गरुडपर आरूढ होनेवाली, ६८६. **श्रीकृष्ण-हृदयस्थिता**=श्रीकृष्णके हृदयरूपी सिंहासनपर आसीन, ६८७. **वंशीधरा**=कृष्णरूपसे वंशी धारण करनेवाली, ६८८. **कृष्णवेषा**=श्रीकृष्णका वेष धारण करनेवाली, ६८९. **स्रग्विणी**=पुष्पोंके हारोंसे अलकृत, ६९०. **वनमालिनी**=वनमाला धारण करनेवाली ॥ ९३ ॥

६९१. **किरीटधारिणी**=मस्तकपर किरीट धारण करनेवाली, ६९२. **याना**=यानस्वरूपा, ६९३. **मन्दमन्द-गतिः**=धीरे-धीरे चलनेवाली, ६९४. **गतिः**=सद्गतिस्वरूपा अथवा गमनशक्तिरूपा, ६९५. **चन्द्रकोटिप्रतीकाशा**=कोटि-चन्द्रतुल्या, ६९६. **तन्वी**=कृशाङ्गी, ६९७. **कोमल-विग्रहा**=मृदुल शरीरवाली ॥ ९४ ॥

६९८. **भैष्मी**=भीष्मपुत्री रुक्मिणीरूपा, ६९९. **भीष्मसुता**=राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी, ७००. **अभीमा**=अभयंकर -सौम्यरूपवाली, ७०१. **रुक्मिणी**=श्रीकृष्णकी प्रमुख पटरानी, ७०२. **रुक्मरूपिणी**=सुनहले रूपवाली, ७०३. **सत्यभामा**=सत्राजित्की पुत्री, श्रीकृष्ण

प्रिया, **७०४. आत्मवती**=आत्मवान्‌द्वारा पोषित एवं उन्नति प्राप्त दिव्यरूपा पटरानी, **७०५. सत्या**='सत्या' नामवाली श्रीकृष्णकी पटरानी, **७०६. भद्रा**='भद्रा' नामवाली पटरानी, **७०७. सुदक्षिणा**=परम उदारस्वरूपा श्रीकृष्णकी पटरानी ॥ ९५ ॥

७०८. मित्रविन्दा='मित्रविन्दा' नामवाली पटरानी, **७०९. सखी**=राधारानीकी सखी, **७१०. वृन्दा**=वृन्दावनकी अधिदेवी, **७११. वृन्दारण्यध्वजोर्ध्वगा**=वृन्दावनकी ध्वजतुल्या—ऊर्ध्वगामिनी, **७१२. शृङ्गारकारिणी**=शृङ्गार करनेवाली, **७१३. शृङ्गा**=शृङ्गस्वरूपा, **७१४. शृङ्गभूः**=शिखरभूमि, **७१५. शृङ्गदा**=शिखरपर स्थान देनेवाली, **७१६. खगा**=आकाशचारिणी ॥ ९६ ॥

७१७. तितिक्षा=क्षमा, **७१८. ईक्षा**=ईक्षणस्वरूपा, **७१९. स्मृतिः**=स्मरण-शक्ति, **७२०. स्पर्धा**=स्पर्धारूपा, **७२१. स्पृहा**=अभिलाषा, **७२२. श्रद्धा**=आस्तिक्य-बुद्धि स्वरूपा, **७२३. स्वनिर्वृतिः**=निजानन्दस्वरूपा, **७२४. ईशा**=ईशनकर्त्री, **७२५. तृष्णा**=कामना, **७२६. भिदा**=भेदस्वरूपा, **७२७. प्रीतिः**=प्रेम या प्रसन्नता, **७२८. हिंसा**=हिंसावृत्तिरूपा, **७२९. याञ्चा**=याचनारूपा, **७३०. क्लमा**=क्लान्तिरूपा अथवा अक्लमा—क्लमरहिता, **७३१. कृषिः**=कृषि (वार्ताका एक भेद) ॥ ९७ ॥

७३२. आशा=आशारूपिणी, **७३३. निद्रा**=निद्राकी अधिष्ठात्री या निद्रारूपा, **७३४. योगनिद्रा**=योगनिद्रा, जिसका आश्रय लेकर भगवान् विष्णु चार मासतक शयन करते हैं, **७३५. योगिनी**=योगिनीरूपा, **७३६. योगदा**=योगदायिनी, **७३७. युगा**=युगस्वरूपा, **७३८. निष्ठा**=परमगति, आश्रय-शक्ति अथवा आधारस्वरूपा, **७३९. प्रतिष्ठा**=प्रतिष्ठास्वरूपा, आश्रय अथवा अवलम्ब, **७४०. शमितिः**=शमनस्वरूपा, **७४१. सत्त्वप्रकृतिः**=सत्त्वगुणमयी प्रकृतिवाली, **७४२. उत्तमा**=उत्कृष्टस्वरूपा ॥ ९८ ॥

७४३. तमःप्रकृतिदुर्मर्षी=तमोगुणमय स्वभावको दुःखसे सहन करनेवाली, **७४४. रजःप्रकृतिः**=रजोगुण प्रधान प्रकृतिरूपा, **७४५. आनतिः**=सब ओरसे नमन शीला, **७४६. क्रिया**=क्रियाशक्ति, **७४७. अक्रिया**=निष्क्रिय, **७४८. कृतिः**=प्रयत्नरूपा, **७४९. ग्लानिः**=ग्लानिरूपिणी, **७५०. सात्त्विकी**=सत्त्वप्रधाना शक्ति, **७५१. आध्यात्मिकी**=आध्यात्मिक शक्ति, **७५२. वृषा**=धर्मस्वरूपा ॥ ९९ ॥

७५३. सेवा=सेवारूपिणी, **७५४. शिखा**=नदियोंकी शिखाभूता, **७५५. मणिः**=मणि-रत्नस्वरूपा, **७५६. वृद्धिः**=अभ्युदयकी हेतुभूता, **७५७. आहूतिः**=आह्वानस्वरूपा, **७५८. पिङ्गलोद्भवा**=पिङ्गला नाड़ीसे उत्पन्न, **७५९. नागभाषा**=नागोंकी भाषाको जाननेवाली अथवा नागोंसे भाषण करनेवाली, **७६०. नागभूषा**=नागोंसे भूषित, **७६१. नागरी**=नागरी अर्थात् चतुरा, **७६२. नगरी**=नगरस्वरूपा, **७६३. नगा**=वृक्ष अथवा गिरिरूपा ॥ १०० ॥

७६४. नौः=नाव, **७६५. नौका**=नाव, **७६६. भवनौः**=संसारसागरसे पार उतारनेवाली नौका, **७६७. भाव्या**=मनमें भावना (ध्यान) करनेयोग्य, **७६८. भवसागरसेतुका**=भवसागरसे पार जानेके लिये सेतुरूपा, **७६९. मनोमयी**=मनःस्वरूपा, **७७० दारुमयी**=काष्ठकी बनी, **७७१. सैकती**=सिकतासे पूर्ण, **७७२. सिकतामयी**=वालुकासे परिपूर्ण या वालुकामयी ॥ १०१ ॥

७७३. लेख्या=चित्रमयी, **७७४. लेप्या**=मिट्टीकी प्रतिमा, **७७५. मणिमयी**=मणिनिर्मित प्रतिमा, **७७६. प्रतिमा हेमनिर्मिता**=सोनेकी बनी प्रतिमा, **७७७. शैली**=शिलामयी प्रतिमा, **७७८. शैलभवा**=पर्वतसे प्रकट प्रतिमा, **७७९. शीला**=शीलयुक्ता अथवा शीलस्वरूपा, **७८०. शीकराभा**=जलकणों अथवा जलकी फुहारोंसे शोभित, **७८१. चला**=चलस्वरूपा, **७८२. अचला**=अचलस्वरूपा ॥ १०२ ॥

७८३. अस्थिता=अस्थिर, **७८४. सुस्थिता**=सुस्थिर, **७८५. तूली**=तूलिका, **७८६. वैदिकी**=वेदोक्त पद्धति, **७८७. तान्त्रिकी**=तन्त्रोक्त पद्धति, **७८८. विधिः**=विधि वाक्यस्वरूपा, **७८९. संध्या**=रात और दिनकी संधिवेला, **७९०. संध्यावसना**=संध्याकालिक बादल या आकाशकी भाँति लाल वस्त्रवाली, **७९१. वेदसंधिः**=वेदमन्त्रोंमें संधि (संहिता) स्वरूपा, **७९२. सुधामयी**=अमृतमयी ॥ १०३ ॥

७९३. सायंतनी=सायंकालिकी शोभा, **७९४. शिखा**=ज्वालामयी, **७९५. अवेध्या**=अभेदनीया, **७९६. सूक्ष्मा**=सूक्ष्मस्वरूपा, **७९७. जीवकला**=जीवरूप भगवत्-कला, **७९८. कृतिः**=कृतिरूपा, **७९९. आत्मभूता**=सबकी आत्मस्वरूपा, **८००. भाविता**=ध्यान या भावनाकी विषयभूता, **८०१. अण्वी**=सूक्ष्मस्वरूपा, **८०२. प्रह्वी**=

विनयशीला, ८०३. **कमलकर्णिका**=हृदय-कमलकी कर्णिकामें ध्येया ॥ १०४ ॥

८०४. **नीराजनी**=आरती, ८०५. **महाविद्या**=तत्त्व-साक्षात्कार करानेवाली महावाक्यबोधात्मिका महाविद्या, अथवा महाविद्यारूपा महाविद्या, ८०६. **कंदली**=सुखकी अङ्कुरस्वरूपा, ८०७. **कार्यसाधनी**=भक्तजनोंके अभीष्ट कार्यको सिद्ध करनेवाली, ८०८. **पूजा**=अर्चना, ८०९. **प्रतिष्ठा**=स्थापना, ८१०. **विपुला**=विपुलस्वरूपा, ८११. **पुनन्ती**=पवित्र करनेवाली, ८१२. **पारलौकिकी**=परलोकके लिये हित-कारिणी ॥ १०५ ॥

८१३. **शुक्लशुक्तिः**=श्वेत सीपी या सितुहीकी उपलब्धिका स्थान, ८१४. **मौक्तिका**=मुक्तास्वरूपा, ८१५. **प्रतीतिः**=प्रतीतिस्वरूपा, ८१६. **परमेश्वरी**=परमेश्वरप्रिया, ८१७. **विरजा**=निर्मला, ८१८. **उष्णिक्**=वैदिक छन्द-विशेष, ८१९. **विराड्**=विराट्‌रूपा, ८२०. **वेणी**=त्रिवेणीरूपा, ८२१. **वेणुका**=वंशीरूपिणी, ८२२. **वेणुनादिनी**=वेणुनाद करनेवाली—बाँसुरीकी तान छेड़नेवाली ॥ १०६ ॥

८२३. **आवर्तिनी**=भँवरोंसे युक्त, ८२४. **वार्तिकदा**=वार्तिकदायिनी, ८२५. **वार्ता**=कृषि, गोरक्षा और वाणिज्यके भेदसे त्रिविध वार्ता, ८२६. **वृत्तिः**=जीविकारूपा, ८२७. **विमानगा**=विमानपर यात्रा करनेवाली, ८२८. **रासाढ्या**=रासजनित सुखसे सम्पन्न, ८२९. **रासिनी**=रासपरायणा, ८३०. **रासा**=रासस्वरूपा, ८३१=**रास-मण्डलवर्तिनी**=रासमण्डलमें वर्तमान ॥ १०७ ॥

८३२. **गोपगोपीश्वरी**=गोपों तथा गोपाङ्गनाओंकी आराध्या ईश्वरी, ८३३. **गोपी**=गोपीरूपा, ८३४. **गोपी-गोपालवन्दिता**=गोपियों और ग्वालोंसे वन्दित, ८३५. **गोचारिणी**=अपने तटपर गौओंको चरनेके लिये स्थान और सुविधा देनेवाली, ८३६. **गोपनदी**=गोपोंकी नदी, ८३७. **गोपानन्दप्रदायिनी**=गोपोंको आनन्द प्रदान करनेवाली ॥ १०८ ॥

८३८. **पशव्यदा**=पशुओंके लिये हितकर घास प्रदान करनेवाली, ८३९. **गोपसेव्या**=गोपोंके द्वारा सेवनीया, ८४०. **कोटिशो गोगणावृता**=करोड़ों गौओंके समुदायसे घिरी हुई, ८४१. **गोपानुगा**=गोपगण जिनका अनुगमन करते हैं या गोप जिनके सेवक हैं, ऐसी, ८४२. **गोपवती**=गोपोंसे युक्त, ८४३. **गोविन्दपदपादुका**=गोविन्द-चरणोंकी पादुकास्वरूपा ॥ १०९ ॥

८४४. **वृषभानुसुता**=वृषभानुनन्दिनी राधासे अभिन्न, ८४५. **राधा**=श्रीकृष्णकी आराध्या राधास्वरूपा, ८४६. **श्रीकृष्णवशकारिणी**=श्रीकृष्णको वशमें कर लेनेवाली, ८४७. **कृष्णप्राणाधिका**=श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय, ८४८. **शश्वद्रसिका**=नित्यरसिका, ८४९. **रसिके-श्वरी**=रसिकोंकी ईश्वरी ॥ ११० ॥

८५०. **अवटोदा**=अवटोदा नामकी नदी, ८५१. **ताम्रपर्णी**=ताम्रपर्णी नामकी नदी, ८५२. **कृतमाला**=इसी नामवाली नदी, ८५३. **विहायसी**=विहायसी नदी, ८५४. **कृष्णा**=कृष्णा नदी, ८५५. **वेणा**=वेणा नामकी नदी, ८५६. **भीमरथी**=भीमा नामकी नदी, ८५७. **तापी**=तपती नामकी नदी, ८५८. **रेवा**=नर्मदा, ८५९. **महापगा**=विशाल नदी, अथवा महानदी नामकी नदी॥१११॥

८६०. **वैयासकी**=वैयासकी (व्यास) नदी, ८६१. **कावेरी**=कावेरी नदी, ८६२. **तुङ्गभद्रा**=तुङ्गभद्रा नामकी नदी, ८६३. **सरस्वती**=सरस्वती नदी, ८६४. **चन्द्रभागा**=चिनाब नदी, ८६५. **वेत्रवती**=बेतवा नदी, ८६६. **ऋषिकुल्या**=इसी नामकी नदी, ८६७. **ककुद्मिनी**=ककुद्मिनी नदी ॥ ११२ ॥

८६८. **गौतमी**=गोदावरी, ८६९. **कौशिकी**=कोसी नदी, ८७०. **सिन्धुः**=सिन्धु नदी, ८७१. **बाणगङ्गा**=अर्जुनके बाणसे प्रकट हुई पातालगङ्गा, ८७२. **अति-सिद्धिदा**=अत्यन्त सिद्धि प्रदान करनेवाली, ८७३. **गोदावरी**=गौतमी, ८७४. **रत्नमाला**=रत्नमाला नदी, ८७५. **गङ्गा**=गङ्गा नदी, ८७६. **मन्दाकिनी**=आकाश-गङ्गा, ८७७. **बला**=बला नामकी नदी ॥ ११३ ॥

८७८. **स्वर्णदी**=स्वर्गलोककी नदी गङ्गा, ८७९. **जाह्नवी**=जह्नुनन्दिनी गङ्गा, ८८०. **वेला**=वेला नदी, ८८१. **वैष्णवी**=विष्णुकुल्या, ८८२. **मङ्गलालया**=मङ्गलका आवास, ८८३. **बाला**=बाला नदी, ८८४. **विष्णुपदी**=गङ्गा, ८८५. **सिन्धुसागरसंगता**=गङ्गासागर-संगम-स्वरूपा ॥ ११४ ॥

८८६. **गङ्गासागरशोभाढ्या**=गङ्गा और सागरके संगमकी शोभासे सम्पन्न, ८८७. **सामुद्री**=समुद्रप्रिया, ८८८. **रत्नदा**=रत्न प्रदान करनेवाली, ८८९. **धुनी**=नदीरूपा,

८९०. **भागीरथी**=राजा भगीरथके द्वारा लायी गयी गङ्गा, ८९१. **स्वर्भूमिभूः**=गङ्गाके प्राकट्यकी भूमि, ८९२. **श्रीवामनपदच्युता**=श्रीवामनके चरणोंसे च्युत हुई ॥११५॥

८९३. **लक्ष्मीः**=लक्ष्मीस्वरूपा, ८९४. **रमा**=पद्मा, ८९५. **रामणीया**=रमणीयतासे युक्त, ८९६. **भार्गवी**=भृगुपुत्री, ८९७. **विष्णुवल्लभा**=भगवान् विष्णुकी प्रिया, ८९८. **सीता**=सीतास्वरूपा, ८९९. **अर्चिः**=अग्निज्वाला रूपिणी, ९००. **जानकी**=जनकनन्दिनी, ९०१. **माता**=जगज्जननी, ९०२. **कलङ्करहिता**=निष्कलङ्का, ९०३. **कला**=भगवत्कलास्वरूपा ॥ ११६ ॥

९०४. **कृष्णपादाब्जसम्भूता**=श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई, ९०५. **सर्वा**=सर्वस्वरूपा, ९०६. **त्रिपथगामिनी**=त्रिपथगा गङ्गा, ९०७. **धरा**=धरणीस्वरूपा, ९०८. **विश्वम्भरा**=विश्वका भरण-पोषण करनेवाली, ९०९. **अनन्ता**=अन्तरहिता, ९१०. **भूमिः**=आधारभूमिस्वरूपा, ९११. **धात्री**=धाय, ९१२. **क्षमामयी**=क्षमास्वरूपा ॥ ११७ ॥

९१३. **स्थिरा**=स्थिरस्वरूपा, ९१४. **धरित्री**=धारण करनेवाली, ९१५. **धरणी**=लोकधारणी पृथ्वी, ९१६. **उर्वी**=भूमि, ९१७. **शेषफणास्थिता**=शेषनागके फणोंपर रहनेवाली, ९१८. **अयोध्या**=जिसके साथ युद्ध न किया जा सके, ऐसी अजेय पुरी, ९१९. **राघवपुरी**=राघवेन्द्रकी नगरी, ९२०. **कौशिकी**=कुशिकवंशजा, ९२१. **रघुवंशजा**=रघुकुलमें उत्पन्न होनेवाली ॥ ११८ ॥

९२२. **मथुरा**=मथुरा नगरी, ९२३. **माथुरी**=मथुरा मण्डलमें प्रकट, ९२४. **पन्था**=मार्गस्वरूपा, ९२५. **यादवी**=यदुवंशियोंकी नगरी, ९२६. **ध्रुवपूजिता**=ध्रुवसे प्रशंसित, ९२७. **मयायुः**=मयासुरको आयु प्रदान करनेवाली, ९२८. **बिल्वनीलोदा**=बिल्वके समान नील रंगके जलवाली, ९२९. **गङ्गाद्वारविनिर्गता**=हरद्वारसे निकली हुई ॥ ११९ ॥

९३०. **कुशावर्तमयी**=कुशावर्तनामक तीर्थस्वरूपा, ९३१. **ध्रौव्या**=ध्रुवत्वसे युक्त, ९३२. **ध्रुवमण्डलमध्यगा**=ध्रुवमण्डलके बीचसे निकली हुई, ९३३. **काशी**=वाराणसी, ९३४. **शिवपुरी**=शिवकी नगरी, ९३५. **शेषा**=शेषस्वरूपा, ९३६. **विन्ध्या**=विन्ध्यस्वरूपा, ९३७. **वाराणसी**=काशी, ९३८. **शिवा**=शिवस्वरूपा ॥ १२० ॥

९३९. **अवन्तिका**=मालव प्रदेशकी राजधानी और महाकालकी नगरी, ९४०. **देवपुरी**=देवनगरी, ९४१. **प्रोज्ज्वला**=प्रकृष्ट शोभासे सम्पन्न, ९४२ **उज्जयिनी**=उज्जैन, ९४३. **जिता**=जितस्वरूपा, ९४४. **द्वारावती**=द्वारकापुरी, ९४५. **द्वारकामा**=द्वारकी कामनावाली, ९४६. **कुशभूता**=कुशके प्रकट होनेका स्थान, ९४७. **कुशस्थली**=कुशोंकी उत्पत्ति-स्थली द्वारका ॥ १२१ ॥

९४८. **महापुरी**=महानगरी, ९४९. **सप्तपुरी**=सप्तपुरीस्वरूपा, ९५०. **नन्दिग्रामस्थलस्थिता**=नन्दिग्रामके स्थलमें स्थित सरयू अथवा यमुना, ९५१. **शालग्रामशिलादित्या**=शालग्रामशिलाकी उत्पत्तिका स्थान गण्डकी नदी, ९५२. **सम्भलग्राममध्यगा**=सम्भल ग्रामके मध्यमें गयी हुई ॥ १२२ ॥

९५३. **वंशगोपालिनी**=वंशगोपाल-मन्त्रसे युक्त, ९५४. **क्षिप्ता**=क्षिप्तस्वरूपा, ९५५. **हरिमन्दिरवर्तिनी**=भगवान्के मन्दिरमें विद्यमान, ९५६. **बर्हिष्मती**=बर्हिष्मती नामकी नगरी, ९५७. **हस्तिपुरी**=हस्तिनापुर नगरी, ९५८. **शक्रप्रस्थनिवासिनी**=इन्द्रप्रस्थ (देहली) में निवास करनेवाली ॥ १२३ ॥

९५९. **दाडिमी**=दाडिमफलस्वरूपा, ९६०. **सैन्धवी**=सिन्धुप्रिया, ९६१. **जम्बूः**=जम्बूनदीरूपा, ९६२. **पौष्करी**=पुष्करद्वीपसे सम्बन्ध रखनेवाली, ९६३. **पुष्करप्रसूः**=पुष्करकी उत्पत्तिका स्थान, ९६४. **उत्पलावर्तगमना**=उत्पलावर्त तीर्थमें जानेवाली, ९६५. **नैमिषी**=नैमिषारण्यवासिनी ॥ १२४ ॥

९६६. **अनिमिषार्चिता**=देवपूजिता, ९६७. **कुरुजाङ्गलभूः**=कुरुजाङ्गलदेशमें प्रकट, ९६८. **काली**=कृष्णवर्णा अथवा काली गङ्गा, ९६९. **हैमवती**=हिमालयसे उत्पन्न, ९७०. **आर्बुदी**=आबूमें प्रकट, ९७१. **बुधा**=विदुषी, ९७२. **शूकरक्षेत्रविदिता**=शूकरक्षेत्रमें प्रसिद्ध, ९७३. **श्वेतवाराहधारिता**=श्वेतवाराहके द्वारा धारित ॥ १२५ ॥

९७४. **सर्वतीर्थमयी**=सर्वतीर्थस्वरूपा, ९७५. **तीर्था**=तीर्थभूता, ९७६. **तीर्थानां तीर्थकारिणी**=तीर्थोंको तीर्थ बनानेवाली, २७७. **हारिणी सर्वदोषाणाम्**=सब दोषोंको हर लेनेवाली, ९७८. **दायिनी सर्वसम्पदाम्**=सब सम्पत्तियोंको देनेवाली ॥ १२६ ॥

९७९. **वर्धिनी तेजसाम्**=तेजको बढ़ानेवाली, ९८०. **साक्षात्**=प्रत्यक्ष प्रकट, ९८१. **गर्भवासनिकृन्तनी**=माताके

गर्भमें वास करनेके कष्टका उच्छेद करनेवाली, ९८२. **गोलोकधाम**=गोलोककी प्रकाशरूपा, ९८३. **धनिनी**=धनसे सम्पन्न, ९८४. **निकुञ्जनिजमञ्जरी**=निकुञ्जमें अपनी मञ्जरियोंके साथ रहनेवाली ॥ १२७ ॥

९८५. **सर्वोत्तमा**=सबसे उत्तम, ९८६. **सर्वपुण्या**=सर्वाधिक पुण्यशालिनी, ९८७. **सर्वसौन्दर्यशृङ्खला**=सम्पूर्ण सुन्दरताको बाँध रखनेवाली, ९८८. **सर्वतीर्थोपरिगता**=सब तीर्थोंके ऊपर पहुँची हुई, ९८९. **सर्वतीर्थाधिदेवता**=सम्पूर्ण तीर्थोंकी अधिदेवी ॥ १२८ ॥

कालिन्दीके सहस्रनामका वर्णन कीर्ति देनेवाला तथा उत्तम कामपूरक है । यह बड़े-बड़े पापोंको हर लेता, पुण्य देता और आयुको बढ़ानेवाला श्रेष्ठ साधन है । रातमें एक बार इसका पाठ कर ले तो चोरोंसे भय नहीं होता । रास्तेमें दो बार पढ़ ले तो डाकू और लुटेरोंसे कहीं भय नहीं होता । द्विजको चाहिये कि वह द्वितीयासे पूर्णिमातक प्रतिदिन कालिन्दी देवीका ध्यान करके भक्तिभावसे दस बार इस सहस्रनामका पाठ करे; ऐसा करनेसे यदि रोगी हो तो रोगसे छूट जाता है, कैदमें पड़ा हो तो वहाँके बन्धनसे मुक्त हो जाता है, गर्भिणी नारी हो तो वह पुत्र पैदा करती है और विद्यार्थी हो तो वह पण्डित होता है । मोहन, स्तम्भन, वशीकरण, उच्चाटन, मारण, शोषण, दीपन, उन्मादन, तापन, निधिदर्शन आदि जो-जो वस्तु मनुष्य मनमें चाहता है, उस-उसको वह प्राप्त कर लेता है ॥ १२९—१३४ ॥

इसके पाठसे ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होता है, क्षत्रिय पृथ्वीका आधिपत्य प्राप्त करता है, वैश्य खजानेका मालिक होता है और शूद्र इसको सुनकर निर्मल—शुद्ध हो जाता है ॥ १३५ ॥

जो पूजाकालमें प्रतिदिन भक्तिभावसे इसका पाठ करता है, वह जलसे अलिप्त रहनेवाले कमलपत्रकी भाँति पापोंसे कभी लिप्त नहीं होता ॥ १३६ ॥

जो लोग एक वर्षतक पटल और पद्धतिकी विधिका पालन करके प्रतिदिन इस सहस्रनामका सौ बार पाठ करते हैं और उसके बाद स्तोत्र और कवच पढ़ते हैं, वे सातों द्वीपोंसे युक्त पृथिवीका राज्य प्राप्त कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है । जो यमुनाजीमें भक्तिभाव रखकर निष्कामभावसे इसका पाठ करता है, वह पुण्यात्मा धर्म-अर्थ-काम—इस त्रिवर्गको पाकर इस जीवनमें ही जीवन्मुक्त हो जाता है । जो इस प्रसङ्गका पाठ करता है, वह निकुञ्जलीलासे ललित, मनोहर तथा कालिन्दीतटके लता-समुदायोंसे विलसित वृन्दावनके मतवाले भ्रमरोंसे अनुनादित गोलोकधाममें पहुँच जाता है ॥ १३७—१४० ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीसौभरि और मांधाताके संवादमें 'यमुना-सहस्रनामका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

बलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरका वध तथा उसके पूर्वजन्मका परिचय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार यमुनाजीका सहस्रनामस्तोत्र सुनकर वीरभूप-शिरोमणि मांधाता सौभरि मुनिको नमस्कार करके अयोध्यापुरीको चले गये । यह मैंने तुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो महान् पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यप्रद है । बताओ, और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १-२ ॥

बहुलाश्व बोले—ब्रह्मन् ! मैंने आपके मुखसे गोपियोंके चरित्रका उत्तम वर्णन सुना । साथ ही यमुनाके पञ्चाङ्गका भी श्रवण किया, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है । साक्षात् गोलोकके अधिपति भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ ब्रजमण्डलमें आगे कौन-कौन-सी मनोहर लीलाएँ कीं, यह बताइये ॥ ३-४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! एक दिन श्रीबलराम और ग्वाल-बालोंके साथ अपनी गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण भाण्डीरवनमें यमुनाजीके तटपर बालोचित खेल खेलने लगे । बालकोंसे वाह्य-वाहनका खेल करवाते हुए श्रीकृष्ण मनोहर गौओंकी देख-भाल करते हुए वनमें विहार करते थे । (इस खेलमें कुछ लड़के वाहन—घोड़ा आदि बनते और कुछ उनकी पीठपर सवारी करते थे ।) उस समय वहाँ कंसका भेजा हुआ असुर प्रलम्ब गोपरूप धारण करके आया ।

दूसरे ग्वाल-बाल तो उसे न पहचान सके, किंतु भगवान् श्रीकृष्णसे उसकी माया छिपी न रही। खेलमें हारनेवाला बालक जीतनेवालेको पीठपर चढ़ाता था; किंतु जब बलरामजी जीत गये, तब उन्हें कोई भी पीठपर चढ़ानेको तैयार नहीं हुआ। उस समय प्रलम्बासुर ही उन्हें भाण्डीर-वनसे यमुनातटतक अपनी पीठपर चढ़ाकर ले जाने लगा। एक निश्चित स्थान था, जहाँ ढोकर ले जानेवाला बालक अपनी पीठपर चढ़े हुए बालकको उतार देता था; परंतु प्रलम्बासुर उतारनेके स्थानपर पहुँचकर भी उन्हें उतारे बिना ही मथुरातक ले जानेको उद्यत हो गया। उसने बादलोंकी घोर घटाकी भाँति भयानक रूप धारण कर लिया और विशाल पर्वतके समान दुर्गम हो गया। उस दैत्यकी पीठपर बैठे हुए सुन्दर बलरामजीके कानोंमें कान्तिमान् कुण्डल हिल रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा उदित हुए हों अथवा मेघोंकी घटामें बिजली चमक रही हो। उस भयानक दैत्यको देखकर महाबली बलदेवजीको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने उसके मस्तकपर कसके एक मुक्का मारा, मानो इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्रका प्रहार किया हो। उस दैत्यका मस्तक वज्रसे आहत पहाड़की तरह फट गया और वह सहसा पृथ्वीको कम्पित करता हुआ धराशायी हो गया। उसके शरीरसे एक विशाल ज्योति निकली और बलरामजीमें विलीन हो गयी। उस समय देवता बलरामजीके ऊपर नन्दन वनके फूलोंकी वर्षा करने लगे। नृपेश्वर! पृथ्वीपर और आकाशमें भी जय-जयकार होने लगी। राजन्! इस प्रकार श्रीबलदेवजीके परम अद्भुत चरित्रका मैंने तुम्हारे समक्ष वर्णन किया, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ५-१४½ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने! वह रण-दुर्मद दैत्य प्रलम्ब पूर्वजन्ममें कौन था? और बलदेवजीके हाथसे उसकी मुक्ति क्यों हुई? ॥ १५ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! यक्षराज कुबेरने अपने सुन्दर वनमें भगवान् शिवकी पूजाके लिये फुलवारी लगा रक्खी थी और इधर-उधर यक्षोंको तैनात करके उन फूलों-की रक्षाका प्रबन्ध करवाया था; तथापि उस पुष्पवाटिकाके सुन्दर एवं चमकीले फूल लोग तोड़ लिया करते थे। इससे कुपित हो बलवान् यक्षराज कुबेरने यह शाप दिया—'जो यक्ष इस फुलवारीके फूल लेंगे अथवा दूसरे भी जो देवता और मनुष्य आदि फूल तोड़नेका अपराध करेंगे, वे सब सहसा मेरे शापसे भूतलपर असुर हो जायँगे।' एक दिन हूहू नामक गन्धर्वका बेटा 'विजय' तीर्थभूमियोंमें विचरता तथा मार्गमें भगवान् विष्णुके गुणोंको गाता हुआ चैत्ररथ वनमें आया। उसके हाथमें वीणा थी। बेचारा गन्धर्व शापकी बातको नहीं जानता था, अतः उसने वहाँसे कुछ फूल ले लिये। फूल लेते ही वह गन्धर्वरूपको त्यागकर असुर हो गया। फिर तो वह तत्काल महात्मा कुबेरकी शरणमें गया और नमस्कार करके दोनों हाथ जोड़कर धीरे-धीरे शापसे छूटनेके लिये प्रार्थना करने लगा। राजेन्द्र! तब उसपर प्रसन्न होकर कुबेरने भी वर दिया—'मानद! तुम भगवान् विष्णुके भक्त तथा शान्तचित्त महात्मा हो, इस-लिये शोक न करो। द्वापरके अन्तमें भाण्डीर-वनमें यमुनाके तटपर बलदेवजीके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें संदेह नहीं है' ॥ १६-२३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! हूहूका पुत्र वह विजयनामक गन्धर्व ही महान् असुर प्रलम्ब हुआ और कुबेरके वरसे उसको परम मोक्षकी प्राप्ति हुई ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रलम्ब-वध' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

दावानलसे गौओं और ग्वालोंका छुटकारा तथा विप्रपत्नियोंको श्रीकृष्णका दर्शन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीबलराम-सहित समस्त ग्वाल-बाल खेलमें आसक्त हो गये। उधर सारी गौएँ घासके लोभसे विशाल वनमें प्रवेश कर गयीं। उनको लौटा लानेके लिये ग्वाल-बाल बहुत बड़े मूँजके वनमें आ पहुँचे। वहाँ प्रलयाग्निके समान महान् दावानल प्रकट हो गया। उस समय गौओंसहित

समस्त ग्वाल-बाल एकत्र हो बलरामसहित श्रीकृष्णको पुकारने लगे और भयसे आर्त हो, उनकी शरण ग्रहणकर 'बचाओ, बचाओ!' यों कहने लगे। अपने सखाओंके ऊपर अग्निका महान् भय देखकर योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णने कहा—"डरो मत; अपनी आँखें बंद कर लो।' नरेश्वर! जब ग्वालोंने ऐसा कर लिया, तब देवताओंके देखते-देखते भगवान् गोविन्ददेव उस भयकारक अग्निको पी गये। इस प्रकार उस महान् अग्निको पीकर ग्वालों और गौओंको साथ ले श्रीहरि यमुनाके उस पार अशोकवनमें जा पहुँचे। वहाँ भूखसे पीड़ित ग्वाल-बाल बलरामसहित श्रीकृष्णसे हाथ जोड़कर बोले—'प्रभो! हमें बहुत भूख सता रही है।' तब भगवान्ने उनको आङ्गिरस-यज्ञमें भेजा। वे उस श्रेष्ठ यज्ञमें जाकर नमस्कार करके निर्मल वचन बोले॥ १—८॥

गोपोंने कहा—ब्राह्मणो! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए इधर आ निकले हैं, उन सबको भूख लगी है। अतः आप सखाओंसहित उन मदनमोहन श्रीकृष्णके लिये शीघ्र ही अन्न प्रदान करें॥ ९॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर! ग्वाल-बालोंकी वह बात सुनकर वे ब्राह्मण कुछ नहीं बोले। तब ग्वाल-बाल निराश लौट गये और आकर बलरामसहित श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले॥ १०॥

गोपोंने कहा—सखे! तुम व्रजमण्डलमें ही अधीश बने हुए हो। गोकुलमें ही तुम्हारा बल चलता है और नन्दबाबाके आगे ही तुम कठोर दण्डधारी बने हुए हो। प्रचण्ड सूर्यके समान तेजस्वी तुम्हारा प्रकाशमान दण्ड निश्चय ही मथुरापुरीमें अपना प्रभाव नहीं प्रकट करता॥ ११॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तब श्रीहरिने उन ग्वाल-बालोंको पुनः यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके पास भेजा। तब वे पुनः यज्ञशालामें गये और उन ब्राह्मण-पत्नियोंको नमस्कार करके वे श्रीकृष्णके भेजे हुए ग्वाल हाथ जोड़कर बोले॥ १२॥

गोपोंने कहा—ब्राह्मणी देवियो! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ गाय चराते हुए श्रीव्रजराजनन्दन कृष्ण इधर आ गये हैं, उन्हें भूख लगी है। सखाओंसहित उन मदनमोहनके लिये आपलोग शीघ्र ही अन्न प्रदान करें॥ १३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णका शुभागमन सुनकर उन समस्त विप्रपत्नियोंके मनमें उनके दर्शनकी लालसा जाग उठी। उन्होंने विभिन्न पात्रोंमें भोजनकी सामग्री रख ली और तत्काल लोक-लाज छोड़कर वे श्रीकृष्णके पास चली गयीं। रमणीय अशोक-वनमें यमुनाके मनोरम तटपर विप्रपत्नियोंने श्रीहरिका अद्भुत रूप जैसा सुना था, वैसा ही देखा। दर्शन पाकर वे सब परमानन्दमें उसी प्रकार निमग्न हो गयीं, जैसे योगीजन तुरीय ब्रह्मका साक्षात्कार करके आनन्दित हो उठते हैं॥ १४—१६॥

श्रीभगवान् बोले—विप्रपत्नियो! तुमलोग धन्य हो, जो मेरे दर्शनके लिये यहाँतक चली आयीं; अब शीघ्र ही घर लौट जाओ। ब्राह्मणलोग तुमपर कोई संदेह नहीं करेंगे। तुम्हारे ही प्रभावसे तुम्हारे पति-देवता ब्राह्मणलोग तत्काल यज्ञका फल पाकर निर्मल हो, तुम्हारे साथ प्रकृतिसे परे विद्यमान परमधाम गोलोकको चले जायँगे॥ १७-१८½॥

श्रीनारदजी कहते हैं—तब श्रीहरिको नमस्कार करके वे सब स्त्रियाँ यज्ञशालामें चली आयीं, उन्हें देखकर सब ब्राह्मणोंने अपने-आपको धिक्कारा। वे कंसके डरसे स्वयं श्रीकृष्णको देखनेके लिये नहीं जा सके थे॥ १९-२०॥

मैथिल! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ वह अन्न खाकर श्रीकृष्ण गौओंको चराते हुए मनोहर वृन्दावनमें चले गये॥ २१॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'दावानलसे गौओं और ग्वालोंका छुटकारा तथा विप्रपत्नियोंको श्रीकृष्णका दर्शन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका नन्दराजको वरुणलोकसे ले आना और गोप-गोपियोंको वैकुण्ठधामका दर्शन कराना

श्रीनारदजी कहते हैं—एक दिनकी बात है, नन्दराज एकादशीका व्रत करके द्वादशीको निशीथ-कालमें ही ग्वालोंके साथ यमुना-स्नानके लिये गये और जलमें उतरे। वहाँ वरुणका एक सेवक उन्हें पकड़कर वरुणलोकमें ले गया। मैथिलेश्वर! उस समय ग्वालोंमें कुहराम मच गया; तब उन सबको आश्वासन दे भगवान् श्रीहरि वरुणपुरीमें पधारे और उन्होंने सहसा उस पुरीके दुर्गको भस्म कर दिया। करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी श्रीहरिको अत्यन्त कुपित हुआ देख वरुणने तिरस्कृत होकर उन्हें नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा करके हाथ जोड़कर कहा॥ १—४॥

वरुण बोले—श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है। परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंका भरण-पोषण करनेवाले गोलोकपतिको नमस्कार है। चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट तेजोमय श्रीहरिको नमस्कार है। सर्वतेजःस्वरूप आप परमेश्वरको नमस्कार है। सबस्वरूप आप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है। मेरे किसी मूर्ख सेवकने यह पहली बार आपकी अवहेलना की है; उसके लिये आप मुझे क्षमा करें। परेश! भूमन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ; आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये* ॥ ५—७॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर प्रसन्न हुए भगवान् श्रीकृष्ण नन्दजीको जीवित लेकर अपने बन्धुजनोंको सुख प्रदान करते हुए व्रजमण्डलमें लौट आये। नन्दराजके मुखसे श्रीहरिके उस प्रभावको सुनकर गोपी और गोप-समुदाय नन्दनन्दन श्रीकृष्णसे बोले—'प्रभो! यदि आप लोकपालोंसे पूजित साक्षात् भगवान् हैं तो हमें शीघ्र ही उत्तम वैकुण्ठलोकका दर्शन कराइये।' तब उन सबको लेकर श्रीकृष्ण वैकुण्ठधाममें गये और वहाँ उन्होंने ज्योतिर्मण्डलके मध्यमें विराजमान अपने स्वरूपका उन्हें दर्शन कराया। उनके सहस्र भुजाएँ थीं, किरीट और कटक आदि आभूषणोंसे उनका स्वरूप और भी भव्य दिखायी देता था। वे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे सुशोभित थे। असंख्य कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी स्वरूपसे वे शेषनागकी शय्यापर पौढ़े थे। चँवर डुलाये जानेसे उनकी आभा और भी दिव्य जान पड़ती थी। ब्रह्मा आदि देवता उनकी सेवामें लगे थे। उस समय भगवान्के गदाधारी पार्षदोंने उन गोपगणोंको सीधे करके उनसे प्रणाम करवाकर उन्हें प्रयत्नपूर्वक दूर खड़ा किया और उन्हें चकित-सा देख वे पार्षद बोले—'अरे वनचरो! चुप हो जाओ। यहाँ वक्तृता न दो, भाषण न करो। क्या तुमने श्रीहरिकी सभा कभी नहीं देखी है? यहाँ सबके प्रभु देवाधिदेव साक्षात् भगवान् स्थित होते हैं और वेद उनके गुण गाते हैं।' इस प्रकार शिक्षा देनेपर वे गोप हर्षसे भर गये और चुपचाप खड़े हो गये। अब वे मन-ही-मन कहने लगे—'अरे! यह ऊँचे सिंहासनपर बैठा हुआ हमारा श्रीकृष्ण ही तो है! हम समीप खड़े हैं, तो भी हमें नीचे खड़ा करके ऊँचे बैठ गया है और हमसे क्षणभरके लिये बाततक नहीं करता! इसलिये व्रजसे बढ़कर न कोई श्रेष्ठ लोक है और न उससे बढ़कर दूसरा कोई सुखदायक लोक है; क्योंकि व्रजमें तो यह हमारा भाई रहा है और इसके साथ हमारी परस्पर बातचीत होती रही है।' राजन्! इस प्रकार कहते हुए उन गोपोंके साथ परिपूर्णतम प्रभु भगवान् श्रीहरि व्रजमें लौट आये॥ ८—१९॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नन्द आदिका वैकुण्ठदर्शन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

---

* नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च। असंख्यब्रह्माण्डभृते गोलोकपतये नमः॥
चतुर्व्यूहाय महसे नमस्ते सर्वतेजसे। नमस्ते सर्वभावाय परस्मै ब्रह्मणे नमः॥
केनापि मूढेन ममानुगेन कृतं परं हेलनमाद्यमेव।
तत् क्षम्यतां भोः शरणं गतं मां परेश भूमन् परिपाहि पाहि॥
(गर्ग०, माधुर्य० २२। ५—७)

तेईसवाँ अध्याय

अम्बिकावनमें अजगरसे नन्दराजकी रक्षा तथा सुदर्शन-नामक विद्याधरका उद्धार

नारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! एक समय वृषभानु और उपनन्द आदि गोपगण रत्नोंसे भरे हुए छकड़ोंपर सवार होकर अम्बिकावनमें आये। वहाँ भगवती भद्रकाली और भगवान् पशुपतिका विधिपूर्वक पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिया और रातको वहीं नदीके तटपर सो गये। वहाँ रातमें एक सर्प निकला और उसने नन्दका पैर पकड़ लिया। नन्द अत्यन्त भयसे विह्वल हो 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारने लगे। नरेश्वर ! उस समय ग्वाल-बालोंने जलती हुई लकड़ियाँ लेकर उसीसे उस अजगरको मारना शुरू किया, तो भी उसने नन्दका पाँव उसी तरह नहीं छोड़ा, जैसे मणिधर साँप अपनी मणिको नहीं छोड़ता। तब लोकपावन भगवान्ने उस सर्पको तत्काल पैरसे मारा। पैरसे मारते ही वह सर्पका शरीर त्यागकर कृतकृत्य विद्याधर हो गया। उसने श्रीकृष्णको नमस्कार करके उनकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर कहा ॥ १–५½ ॥

सुदर्शन बोला—प्रभो ! मेरा नाम सुदर्शन है, मैं विद्याधरोंका मुखिया हूँ। मुझे अपने बलका बड़ा घमंड था और मैंने अष्टावक्र मुनिको देखकर उनकी हँसी उड़ायी थी। तब उन्होंने मुझे शाप दे दिया—'दुर्मते ! तू सर्प हो जा !' माधव ! उनके उस शापसे आज मैं आपकी कृपासे मुक्त हुआ हूँ। आपके चरण-कमलोंके मकरन्द एवं परागके कणोंका स्पर्श पाकर मैं सहसा दिव्य पदवीको प्राप्त हो गया। जो भूतलका भूरि-भार-हरण करनेके लिये यहाँ अवतीर्ण हुए हैं, उन भगवान् भुवनेश्वरको बारंबार नमस्कार है ॥ ६–८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके वह विद्याधर सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित वैष्णवलोकको चला गया। उस समय श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर नन्द आदि गोप बड़े विस्मित हुए। फिर वे शीघ्र ही अम्बिकावनसे व्रजमण्डलको चले गये। इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो पुण्यप्रद तथा सर्वपापहारी है। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ९–११ ॥

बहुलाश्व बोले—अहो ! श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है, उसे सुनकर मेरा मन पुनः उसे सुनना चाहता है। देवर्षिसत्तम ! व्रजेश्वर परमात्मा श्रीहरिने व्रजमण्डलमें आगे चलकर कौन-सी लीला की ? ॥ १२-१३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत 'सुदर्शनोपाख्यान' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुर और व्योमासुरका वध तथा माधुर्यखण्डका उपसंहार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! एक दिन गोवर्धनके आस-पास बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्ण आँखमिचौनीका खेल खेलने लगे—जिसमें कोई चोर बनता है और कोई रक्षक। वहाँ व्योमासुर नामक दैत्य आया। उस खेलमें कुछ लड़के भेड़ बनते थे और कोई चोर बनकर उन भेड़ोंको ले जाकर कहीं छिपाता था। व्योमासुरने भेड़ बने हुए बहुत-से गोप-बालकोंको बारी-बारीसे ले जाकर पर्वतकी कन्दरामें रक्खा और एक शिलासे उसका द्वार बंद कर दिया। वह मयासुरका महान् बलवान् पुत्र था। यह तो सचमुच चोर निकला, यह जानकर भगवान् मधुसूदनने उसे दोनों भुजाओंद्वारा पकड़ लिया और पृथ्वीपर दे मारा। उस समय दैत्य मृत्युको प्राप्त हो गया और उसके शरीरसे निकला हुआ प्रकाशमान तेज दसों दिशाओंमें घूमकर श्रीकृष्णमें लीन हो गया। उस समय स्वर्गमें और पृथ्वीपर जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। देवता लोग परम आनन्दमें मग्न होकर फूल बरसाने लगे ॥ १–६ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने ! यह व्योम नामक असुर पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यात्मा मनुष्य था, जिसने श्याम घनमें बिजलीकी भाँति श्रीकृष्णमें विलय प्राप्त किया ॥ ७ ॥

नारदजी बोले—राजन् ! काशीमें भीमरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो सदा दान पुण्यमें लगे रहते थे। वे यज्ञकर्ता, दूसरोंको मान देनेवाले, धनुर्धर तथा विष्णुभक्ति-परायण थे। वे राज्यपर अपने पुत्रको बिठाकर स्वयं मलयाचलपर चले गये और वहाँ तपस्या आरम्भ करके एक लाख वर्षतक उसीमें लगे रहे। उनके आश्रममें एक समय महर्षि पुलस्त्य शिष्योंके साथ आये। उनको देखकर भी वे मानी राजर्षि न तो उठकर खड़े हुए और न उनके सामने प्रणत ही हुए। तब पुलस्त्यने उन्हें शाप दे दिया - 'ओ महादुष्ट भूपाल ! तू दैत्य हो जा।' तदनन्तर राजा जब उनके चरणोंमें पड़कर शरणागत हो गये, तब दीनवत्सल मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यने उनसे कहा—'द्वापरके अन्तमें मथुरा जनपदके पवित्र व्रजमण्डलमें साक्षात् यदुवंशराज श्रीकृष्णके बाहुबलसे तुम्हें ऐसी मुक्ति प्राप्त होगी, जिसकी योगीलोग अभिलाषा रखते हैं—इसमें संशय नहीं है' ॥ ८—१३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेहराज ! वही यह राजा भीमरथ मय दैत्यका पुत्र हुआ और श्रीकृष्णके बाहुबलसे मोक्षको प्राप्त हुआ। एक दिन गोपबालोंके व्रजमें महाबली दैत्य अरिष्ट आया। वह अपने सिंहनादसे पृथ्वी और आकाशको गुँजा रहा था और सींगोंसे पर्वतोंके तटोंको विदीर्ण कर रहा था। उसे देखते ही गोपियाँ, गोप तथा गौओंके समुदाय भयसे इधर-उधर भागने लगे। दैत्योंके नाशक भगवान् श्रीकृष्णने उन सबको अभय देते हुए कहा—'डरो मत !' माधवने उसके सींग पकड़ लिये और उसे पीछे ढकेल दिया। उस राक्षसने भी श्रीकृष्णको ढकेलकर दो योजन पीछे कर दिया। तब श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़ ली और बाहुवेगसे घुमाते हुए उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर पटक दिया, जैसे छोटा बालक कमण्डलुको फेंक दे। अरिष्ट फिर उठा। क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो रहे थे। उस महादुष्ट वीरने सींगोंसे लाल पत्थर उखाड़कर मेघकी भाँति गर्जना करते हुए श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। श्रीकृष्णने उस प्रस्तरको पकड़कर उलटे उसीपर दे मारा। उस शिलाखण्डके प्रहारसे वह मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। उसने अपने सींगोंके अग्रभागको पृथ्वीपर पीटना आरम्भ किया, इससे पृथ्वीके भीतरसे पानी निकल आया। तब श्रीकृष्णने उसके सींग पकड़कर बार-बार घुमाते हुए उसे पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे हवा कमलको उठाकर फेंक देती है। उसी समय वह वृषभका रूप त्यागकर ब्राह्मणशरीरधारी हो गया और श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके गद्गद वाणीमें बोला ॥ १४—२३ ॥

ब्राह्मणने कहा—भगवन् ! मैं बृहस्पतिका शिष्य द्विजश्रेष्ठ वरतन्तु हूँ। मैं बृहस्पतिजीके समीप पढ़ने गया था। उस समय उनकी ओर पाँव फैलाकर उनके सामने बैठ गया था। इससे वे मुनि रोषपूर्वक बोले—'तू मेरे आगे बैलकी भाँति बैठा है, इससे गुरुकी अवहेलना हुई है; अतः दुर्बुद्धे ! तू बैल हो जा।' माधव ! उस शापसे मैं वङ्गदेशमें बैल हो गया। असुरोंके सङ्गमें रहनेसे मुझमें असुरभाव आ गया था। अब आपके प्रसादसे मैं शाप और असुरभावसे मुक्त हो गया। आप श्रीकृष्णको नमस्कार है। आप भगवान् वासुदेवको प्रणाम है। प्रणतजनोंके क्लेशका नाश करनेवाले आप गोविन्ददेवको बारंबार नमस्कार है ॥ २४—२८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर श्रीहरिको नमस्कार करके बृहस्पतिके साक्षात् शिष्य वरतन्तु भुवनको प्रकाशित करते हुए विमानसे दिव्यलोकको चले गये। इस प्रकार मैंने अद्भुत माधुर्यखण्डका तुमसे वर्णन किया, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला उत्तम साधन है। जो सदा इसका पाठ करते हैं, उनकी समस्त कामनाओंको यह देनेवाला है। और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २९—३१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें माधुर्यखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'व्योमासुर और अरिष्टासुरका वध' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

माधुर्यखण्ड सम्पूर्ण ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमथुराखण्ड

पहला अध्याय

कंसका नारदजीके कथनानुसार बलराम और श्रीकृष्णको अपना शत्रु समझकर वसुदेव-देवकीको कैद करना, उन दोनों भाइयोंको मारनेकी व्यवस्थामें लगना तथा उन्हें मथुरा ले आनेके लिये अक्रूरजीको नन्दके व्रजमें जानेकी आज्ञा देना

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

जो वसुदेवजीके यहाँ पुत्र-रूपमें प्रकट हुए हैं, जिन्होंने कंस एवं चाणूरका मर्दन किया है तथा जो देवकीको परमानन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—मुने! भगवान् श्रीकृष्णने मथुरामें कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं? उन्होंने कंसको क्यों और कैसे मारा? यह सब मुझसे ठीक-ठीक बताइये॥ २॥

नारदजीने कहा—नृपेश्वर! एक दिन साक्षात् परमात्मा श्रीहरिके मनसे प्रेरित होकर मैं दैत्यवध-सम्बन्धी उद्यमको आगे बढ़ानेके लिये उत्कृष्ट पुरी मथुराके दर्शनार्थ वहाँ आया। आकर राजा कंसके दरबारमें गया। वहाँ कंस इन्द्रसे छीनकर लाये हुए सिंहासनके ऊपर, जहाँ श्वेत-छत्र तना हुआ था और सुन्दर चँवर डुलाये जा रहे थे, विराजमान था। वह बल, पराक्रम और क्रूरताके कारण नागराजके समान दुस्सह प्रतीत होता था। वहाँ पहुँचनेपर उसने मेरा पूजन—स्वागत-सत्कार किया। उस समय मैंने उससे जो कुछ कहा, वह सुनो—'मथुरानरेश! जो कन्या तुम्हारे हाथसे छूटकर आकाशमें उड़ गयी थी, वह देवकीकी नहीं, यशोदाकी पुत्री थी। देवकीसे तो श्रीकृष्ण ही उत्पन्न हुए और रोहिणीके पुत्र बलराम हैं। दैत्यराज! वसुदेवने तुम्हारे शत्रुभूत अपने दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्णको अपने मित्र नन्दराजके यहाँ धरोहरके रूपमें रख दिया है—इसलिये कि तुम्हारे भयसे उनकी रक्षा हो सके। पूतनासे लेकर अरिष्टासुरतक जो-जो उत्कट बलशाली दैत्य नष्ट हुए हैं, वे सब वनमें उन्हीं दोनोंके द्वारा मारे गये हैं। कहा जाता है कि **वे ही दोनों तुम्हारी मृत्यु हैं'**॥ ३—७॥

मेरे यों कहनेपर भोजराज कंस क्रोधसे काँपने लगा। उसने शूरनन्दन वसुदेवको सभामें ही मार डालनेके लिये तीखी तलवार हाथमें ली, परंतु मैंने उसे रोक दिया; तथापि उसने सुदृढ़ और विशाल बेड़ियोंमें पत्नीसहित उन्हें बाँधकर कारागारमें बंद कर दिया। कंससे उक्त बात कहकर जब मैं चला गया, तब उस दैत्यराजने श्रीकृष्ण और बलरामका वध करनेके लिये दैत्यप्रवर केशीको भेजा। तदनन्तर बलवान् भोजराज कंसने चाणूर आदि मल्लों तथा कुवलयापीड नामक हाथीके महावतको बुलवाया और अपना कार्यभार सँभालनेवाले अन्य लोगोंको भी बुलवाकर उनसे इस प्रकार कहा॥ ८—११॥

कंस बोला—हे कूट! हे तोशल! हे महाबली चाणूर! बलराम और कृष्ण—दोनों मेरी मृत्यु हैं, यह बात नारदजीने मुझे भलीभाँति समझा दी है। अतः वे दोनों जब यहाँ आ जायँ, तब तुम सब लोग मल्लोंके खेल (कुश्तीके दाव-पेच) दिखाते हुए उन्हें मार डालना। अब शीघ्र ही मल्लभूमि (अखाड़े) को सुन्दर ढंगसे सुसज्जित कर दो। महावत! रङ्गशालाके द्वारपर मदमत्त हाथी कुवलयापीडको खड़ा रक्खो और मेरे शत्रु जब आ जायँ, तो उन्हें मरवा डालो। कार्यकर्ता जनो! आगामी चतुर्दशीको शान्तिके लिये धनुर्यज्ञ करना है और अमावास्याके दिन यहाँ मल्लयुद्ध होगा॥ १२—१५॥

नारदजी कहते हैं—राजेन्द्र! आत्मीय जनोंसे इस प्रकार कहकर कंसने अक्रूरको तुरंत अपने पास बुलवाया और एकान्त स्थानमें मन्त्रिजनोंको प्रिय लगनेवाली मन्त्रणा की बात कही॥ १६॥

कंस बोला—दानपते ! तुम मेरे माननीय मन्त्री हो, अतः मेरी यह उत्तम बात सुनो । महामते ! कल प्रातःकाल होते ही तुम नन्दके व्रजमें जाओ और मेरा यह कार्य करो । लोग कहते हैं कि वसुदेवके दोनों बेटे वहीं रहते हैं । वे दोनों मेरे शत्रु हैं, यह बात देवर्षि नारदजीने मुझे अच्छी तरह समझा दी है । गोपगण नन्दराज आदिके साथ भेंट लेकर यहाँ आयें और उन्हींके साथ मथुरा नगरी दिखानेके बहाने उन दोनोंको रथपर बिठाकर शीघ्र यहाँ ले आओ । यहाँ आनेपर हाथीसे अथवा बड़े-बड़े पहलवानोंके द्वारा उन दोनों बालकोंको मरवा डालूँगा । उसके बाद वसुदेवकी सहायता करनेवाले नन्दराज, वृषभानुवर, नौ नन्दों और उपनन्दोंको मौतके घाट उतार दूँगा । तदनन्तर वसुदेव, उनके सहायक देवक तथा अपने बूढ़े पिता उग्रसेनको भी, जो राज्य लेनेके लिये उत्सुक रहता है, मार डालूँगा । यह सब हो जानेके बाद समस्त यादवोंका संहार कर डालूँगा, इसमें संशय नहीं है । मन्त्रिन् ! ये सब-के-सब देवता हैं, जो मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए हैं । चन्द्रावतीपति बलवान् शकुनि मेरा बहुत बड़ा मित्र है । भूतसंतापन, दुष्ट, वृक, संकर, कालनाभ, महानाभ तथा हरिश्मश्रु—ये सब मेरे मित्र हैं और बलपूर्वक मेरे लिये अपने प्राण-तक दे सकते हैं । जरासंध तो मेरा श्वशुर ही है और द्विविद मेरा सखा । बाणासुर और नरकासुर भी मेरे प्रति ही सौहार्द रखते हैं । ये सब लोग इस पृथ्वीको जीतकर, इन्द्रसहित देवताओंको बाँधकर और द्रव्य-राशिके स्वामी बने हुए कुबेरको मेरुपर्वतकी दुर्गम कन्दरामें फेंक-कर सदा तीनों लोकोंका राज्य करेंगे, इसमें संशय नहीं है । दानपते ! तुम कवियों (नीतिज्ञ विद्वानों) में शुक्राचार्यके समान हो और बातचीत करनेमें इस भूतल-पर बृहस्पतिके तुल्य हो; अतः इस कार्यको तुरंत सम्पन्न करो ॥ १७–२८ ॥

अक्रूर बोले—यदुपते ! तुमने मनोरथका महासागर ही रच डाला है । यदि दैवकी इच्छा होगी तो यह सागर गोष्पद (गायकी खुरी) के समान हो जायगा और यदि दैव अनुकूल न हुआ, तब तो यह अपार महासागर है ही ॥ २९ ॥

कंस बोला—बलवान् पुरुष दैवका भरोसा छोड़कर कार्य करते हैं और निर्बल दैवका सहारा पकड़े बैठे रहते हैं । कर्मयोगी पुरुष कालस्वरूप श्रीहरिके प्रभावसे सदा निराकुल (शान्त) रहता है ॥ ३० ॥

नारदजी कहते हैं—मन्त्रिप्रवर अक्रूरसे यों कहकर कंस सभास्थलसे उठ गया और कुछ कुपित हो धीरेसे अन्तःपुरमें चला गया ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद बहुलाश्व-संवादमें 'कंसकी मन्त्रणा' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

केशीका वध

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! उधर बलवान् एवं मदोन्मत्त महादैत्य केशी घोड़ेका रूप धारणकर रमणीय वृन्दावनमें गया और मेघकी भाँति गर्जना करने लगा । उसके पैरोंके आघातसे सुदृढ़ वृक्ष भी टूटकर धराशायी हो जाते थे । पूँछकी चोट खाकर आकाशमें घने बादल भी छिन्न-भिन्न हो जाते थे । मैथिलेन्द्र ! उसका वेग दुस्सह था । उसे देखकर गोप-गोपियोंके समुदाय अत्यन्त भयसे व्याकुल हो भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये ॥ १–३ ॥

पाप और पापियोंको पीड़ा देनेवाले भगवान्ने 'डरो मत'—यह कहकर उन सबको अभयदान दिया और कमरमें पीताम्बर कसकर वे उस दैत्यको मार डालनेकी चेष्टामें लग गये । राजन् ! उस महान् असुरने अपने पिछले पैरोंसे श्रीहरिके ऊपर आघात किया और पृथ्वीको कँपाता हुआ वह आकाशमण्डलको अपनी गर्जनासे गुँजाने लगा । तब, जैसे हवा कमलको उखाड़कर फेंक देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णने उस दैत्यके दोनों पैर पकड़कर बाहुबलसे घुमाते हुए उसे एक योजन दूर फेंक दिया । उसने भी क्रोधसे भरे हुए वहाँ आकर व्रजके प्राङ्गणमें भगवान् श्रीहरिके ऊपर अपनी पूँछसे प्रहार किया । राजन् ! तब

श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़ ली और वायुवेगसे बलपूर्वक घुमाते हुए उसे आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया। आकाशसे नीचे गिरनेपर उसे मन-ही-मन कुछ व्याकुलताका अनुभव हुआ, किंतु पुनः उठकर वह बलवान् दैत्य मेघके समान गर्जना करने लगा। अपनी गर्दनके अयालोंको कँपाता और पूँछके बालोंको आकाशमें बार-बार हिलाता हुआ वह दैत्य अपने पैरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ श्रीहरिके सामने उछलकर आया। तब भगवान् मधुसूदनने केशीको एक मुक्का मारा। उनके मुक्केकी मारसे वह दो घड़ीतक बेहोश पड़ा रहा। तब उस अश्वरूपधारी असुरने श्रीहरिके गलेको अपने मुँहसे पकड़ लिया और उन्हें उठाकर वह भूमण्डलसे लाख योजन दूर आकाशमें उठ गया। वहाँ आकाशमें उन दोनोंके बीच दो पहरतक घोर युद्ध हुआ। राजन्! वह अपने पैरोंसे, दाँतोंसे, गर्दनके अयालोंसे, पूँछ और तीखी खुरोंसे बार-बार श्रीहरिपर आघात करने लगा। तब श्रीहरिने उसे दोनों हाथोंसे पकड़कर इधर-उधर घुमाना आरम्भ किया और जैसे बालक कमण्डलु फेंक दे, उसी प्रकार उन्होंने आकाशसे उस दैत्यको नीचे गिरा दिया। फिर भगवान् श्रीहरिने उसके मुँहमें अपनी बाँह डाल दी। वह बाँह उसके उदरतक जा पहुँची और असाध्य रोगकी भाँति बड़े जोरसे बढ़ने लगी। इससे उस महान् असुरकी प्राणवायु अवरुद्ध हो गयी और वह चूतड़से लेंड़ फेंकने लगा। उसका पेट फट गया और वह अश्वरूपधारी असुर तत्काल प्राणोंसे हाथ धो बैठा। शरीरसे पृथक् होनेपर उसने तत्काल दिव्य रूप धारण कर लिया और मुकुट तथा कुण्डलोंसे मण्डित हो भगवान् श्रीकृष्णको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया॥ ४—१७॥

कुमुद बोला—माधव! मैं इन्द्रका अनुचर हूँ। मेरा नाम कुमुद है। मैं बड़ा तेजस्वी, रूपवान् और वीर था तथा देवराज इन्द्रपर छत्र लगाया करता था। पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध हो जानेपर प्राप्त हुई ब्रह्महत्याकी शान्तिके लिये स्वर्गलोकके स्वामीने अश्वमेध नामक उत्तम यज्ञका अनुष्ठान किया। अश्वमेधका घोड़ा श्वेत वर्णका था। उसके कान श्याम रंगके थे और वह मनके समान तीव्र वेगसे चलनेवाला था। मेरे मनमें उसपर चढ़नेकी इच्छा हुई। इस कामनासे मैं प्रसन्न हो उठा और उस घोड़ेको चुराकर अतल-लोकमें चला गया। तब मरुद्गणोंने मुझ महादुष्टको पाशमें बाँधकर देवराज इन्द्रके पास पहुँचाया। देवेन्द्रने मुझे शाप देते हुए कहा—'दुर्बुद्धे! तू राक्षस हो जा। भूतलपर दो मन्वन्तरोंतक तेरी घोड़ेकी-सी आकृति रहे।' प्रभो! आज आपका स्पर्श पाकर मैं उस शापसे तत्काल मुक्त हो गया हूँ। देव! अब मुझे अपना किंकर बना लीजिये। मेरा मन आपके चरणकमलमें लग गया है। आप समस्त लोकोंके एकमात्र साक्षी हैं, आप भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है॥ १८—२३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मिथिलेश्वर! यों कहकर, परमेश्वर श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके, कुमुद अत्यन्त प्रकाशमान उत्तम विमानपर आरूढ़ हो, दिशामण्डलको उद्दीप्त करता हुआ वैकुण्ठलोकको चला गया॥ २४॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'केशीका वध' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

अक्रूरका नन्दग्राम-गमन, मार्गमें उनकी बलराम-श्रीकृष्णसे भेंट तथा उन्हींके साथ नन्दभवनमें प्रवेश; श्रीकृष्णसे बातचीत और उनका मथुरा-गमनके लिये निश्चय, मथुरा-यात्राकी चर्चा सब ओर फैल जानेपर गोपियोंका विरहकी आशङ्कासे उद्विग्न हो उठना

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेन्द्र! अक्रूरजी रथपर आरूढ़ हो राजा कंसका कार्य करनेके लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ नन्दगाँवको गये। पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति उनकी पराभक्ति थी। परम बुद्धिमान् अक्रूर यात्रा करते हुए मार्गमें अपनी बुद्धिसे इस प्रकार विचार करने लगे॥ १-२॥

अक्रूर बोले—मैंने भारतवर्षमें कौन-सा पुण्य किया, निस्स्वार्थभावसे कौन-सा दान दिया, कौन-सा उत्तम यज्ञ, तीर्थयात्रा अथवा ब्राह्मणोंकी शुभ सेवा की है, जिससे आज मैं भगवान् परमेश्वर श्रीहरिका दर्शन करूँगा? मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा उत्तम तप किया और भक्तिभावसे कब किस संत पुरुषका सेवन किया था, जिससे आज मुझे अपने सामने भगवान् श्रीकृष्णका दुर्लभ दर्शन होगा। भगवान् सुरेश्वर श्रीकृष्ण जिनके नेत्रोंके गोचर होते हैं, भूतलपर उन्हींका जन्म सफल है। आज उन भगवान्‌का दुर्लभ दर्शन करके मैं सर्वतोभावेन कृतार्थ हो जाऊँगा॥ ३—५॥

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार श्रीकृष्णका चिन्तन और उत्तम शकुनका दर्शन करते हुए गान्दिनीनन्दन अक्रूर संध्याकालमें रथपर बैठे-बैठे नन्द-गोकुलमें जा पहुँचे। यव और अङ्कुश आदिसे युक्त श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके चिह्न तथा उनकी ललाईसे युक्त धूलिकण उन्हें पृथ्वीपर दिखायी दिये। उनके दर्शनकी उत्कण्ठा एवं भक्तिभावके आनन्दसे विह्वल हो अक्रूरजी रथसे कूद पड़े और उन धूलकणोंमें लोटते हुए नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे। मिथिलेश्वर! जिनके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति प्रकट हो जाती है, उनके लिये ब्रह्मलोकपर्यन्त जगत्‌के सारे सुख तिनकेके समान तुच्छ हो जाते हैं॥ ६—९॥

तदनन्तर रथपर आरूढ़ हो अक्रूर क्षणभरमें नन्दगाँव जा पहुँचे। उन्होंने गोष्ठोंमें पहुँचकर देखा—बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण उधर ही आ रहे हैं। वे दोनों पुराणपुरुष श्यामल-गौरवर्ण परमेश्वर प्रफुल्ल कमलके समान नेत्रवाले थे। रास्तेमें बलराम और श्रीकृष्ण ऐसे जान पड़ते थे, मानो इन्द्रनील और हीरकमणिके दो पर्वत एक-दूसरेके सम्पर्कमें आ गये हों। उन दोनोंके मुकुट बालसूर्यके समान और वस्त्र विद्युत्‌के सदृश थे। उनकी अङ्गकान्ति वर्षाकालके मेघकी भाँति श्याम तथा शरदृतुके बादलकी भाँति गौर थी। उन दोनोंको देखकर अक्रूर तुरंत ही रथसे नीचे उतर गये और भक्तिभावसे सम्पन्न हो उन दोनोंके चरणोंमें गिर पड़े। उनका मुख नेत्रोंसे झरते हुए आँसुओंकी धारासे व्याप्त तथा शरीर रोमाञ्चित था। उन्हें देख परमेश्वर श्रीहरिने दोनों हाथोंसे उठा लिया और वे माधव दयासे द्रवित हो भक्तको हृदयसे लगाकर अश्रुओंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार बलरामसहित श्रीहरि उनसे मिलकर शीघ्र ही उन्हें घर ले आये और वहाँ उन्होंने उनके लिये श्रेष्ठ आसन दिया। अतिथिसत्कारमें एक गाय देकर प्रेमपूर्वक सरस भोजन प्रस्तुत किया। नन्दने अक्रूरको दोनों हाथोंद्वारा हृदयसे लगाकर पूछा—'अहो! तुम कंसके राज्यमें कैसे जी रहे हो? जिस निर्लज्जने अपनी बहिनके नन्हे-से शिशुओंको मार डाला, वह दूसरे लोगोंके प्रति दयालु कैसे होगा?' नन्दजी जब घरमें चले गये, तब श्रीहरिने उनसे माता-पिताकी सारी कुशल पूछी। इसी प्रकार अपने बन्धु-बान्धव यादवोंका समाचार पूछकर कंसकी मारी विपरीत बुद्धिके विषयमें भी जिज्ञासा की॥ १०—१६॥

अक्रूर बोले—देव! परसोंकी बात है, भोजराज कंस हाथमें तलवार ले वसुदेवको मार डालनेके लिये उद्यत हो गया था; किंतु नारदजीने उसे रोक दिया था। समस्त यादव-बन्धु बान्धव भयसे विह्वल और दुःखी हैं। भूमन्! कितने ही कंसके भयसे कुटुम्बसहित दूसरे देशोंमें चले गये हैं। वह आज ही यादवोंको मार डालने और देवताओंको जीत लेनेके लिये उद्योगशील है। इस पृथ्वीपर बलवान् दैत्यराज कंस कुछ और भी करना चाहता है। अतः आप दोनोंको जगत्‌का अक्षय कल्याण करनेके लिये वहाँ अवश्य चलना चाहिये। आप दोनों प्रभुओंके बिना सत्पुरुषोंका कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता॥ १७—२०॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! अक्रूरजीकी बात सुनकर बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने नन्दराजकी सलाह लेकर कार्यकर्ता गोपोंसे इस प्रकार कहा॥ २१॥

श्रीभगवान् बोले—बन्धुओ! बड़े-बूढ़े गोपोंके साथ बलरामसहित मैं तथा नन्दराज भी मथुरा जायँगे। नवों नन्द और उपनन्द तथा छहों वृषभानु सब लोग प्रातःकाल उठकर मथुराकी यात्रा करेंगे; अतः तुम सब लोग दही, दूध और घी आदि गोरस एकत्र करो। उसके साथ राजाको देनेके लिये अन्यान्य उपायन भी होंगे। छकड़ोंके साथ रथोंको भी ठीक-ठाक करके शीघ्र तैयार कर लो॥ २२—२४॥

नारदजी कहते हैं—यह सुनकर कार्य करनेवाले सब गोपोंने घर-घरमें जाकर गोपियोंके सुनते हुए वह सारा कथन ज्यों-का-त्यों दोहरा दिया। यह सुनकर गोपियोंका हृदय उद्विग्न हो उठा। वे भावी विरहकी आशङ्कासे विह्वल हो गयीं और घर-घरमें एकत्र हो, वे सब-की-सब परस्पर इसी विषयकी बातें करने लगीं। नृपेश्वर! महात्मा श्रीकृष्णके प्रस्थानकी यह बात वृषभानुवरके भी घरमें पहुँच गयी। 'प्रियतम चले जायँगे'—यह समाचार भरी सभामें अकस्मात् सुनकर वृषभानुनन्दिनी अत्यन्त दुःखित हो गयीं। वे हवाकी मारी हुई कदलीकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं और मूर्च्छित हो गयीं। किन्हीं गोपियोंकी मुखश्री अत्यन्त मलिन हो गयी। हाथकी अँगूठियाँ कलाइयोंके कंगन बन गयीं। उनके केशोंके बन्धन ढीले हो गये और उनमें गुँथे हुए फूल शीघ्र ही शिथिल होकर गिर पड़े। वे गोपियाँ चित्र-लिखी-सी खड़ी रह गयीं। नृपेश्वर! कुछ गोपियाँ अपने घरमें 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे'—यों कहती हुई अत्यन्त विह्वल हो गयीं और घरके सारे काम-काज छोड़कर योगीकी

भाँति ध्यानानन्दमें मग्न हो गयीं। राजन्! कुछ गोपियाँ समर्थ रहीं, वे एकत्र हो, एक साथ आपसमें इस प्रकार बातें करने लगीं। बात करते समय उनके कण्ठ गद्गद हो गये थे और वाणी लड़खड़ा रही थी। उनके नेत्रोंसे स्वतः अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी॥ २५—३१॥

गोपियाँ बोलीं—अहो! अत्यन्त निर्मोही जनका चरित्र बड़ा विचित्र होता है। वह कहनेयोग्य नहीं है। निर्मोही मनुष्य मुँहसे तो कुछ और कहता है, परंतु हृदयमें कुछ और ही भाव रखता है। उसके मनकी बात तो देवता भी नहीं जानता, फिर मनुष्य कैसे जान सकता है? रासमें इन्होंने जो-जो बात कही थी, उस सबको अधूरी ही छोड़कर वे चले जानेको उद्यत हो गये हैं। अहो! हमारे इन प्राणवल्लभके मथुरापुरी चले जानेपर हम सबको कौन-कौन-सा कष्ट नहीं होगा॥ ३२-३३॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'अक्रूरका आगमन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

श्रीकृष्णका गोपियोंके घरोंमें जाकर उन्हें सान्त्वना देना तथा मार्गमें रथ रोककर खड़ी हुई गोपाङ्गनाओंको समझाकर उनका मथुरापुरीकी ओर प्रस्थित होना

श्रीनारदजी कहते हैं- राजन्! इस प्रकार कहती हुई गोपाङ्गनाओंके अत्यन्त विरह-क्लेशको जानकर भगवान् श्रीकृष्ण उन सबके घरोंमें गये। मिथिलेश्वर! जितनी व्रजाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान् श्रीहरिने स्वयं सबको पृथक्-पृथक् समझाया। श्रीराधाके भवनमें जाकर देखा कि वे सखियोंसे घिरी हुई एकान्त स्थानमें मूर्च्छित पड़ी हैं; तब उन्होंने मधुर स्वरमें मुरली बजायी। वंशीकी ध्वनि सुनकर श्रीराधा सहसा आतुर होकर उठीं। उन्होंने ऑंख खोलकर देखा तो श्रीगोविन्द सामने उपस्थित दिखायी दिये। जैसे पद्मिनी कमलिनी-कुल-वल्लभ सूर्यका दर्शन करके प्रसन्न हो जाती है, उसी प्रकार पद्मिनी नायिका श्रीराधा अपने प्राणवल्लभको सामने देखकर आनन्दमे मग्न हो गयीं और उन्होंने उठकर वहाँ पधारे हुए श्याम-सुन्दरके लिये सादर आसन दिया। कमलनयनी श्रीराधाके मुखपर ऑंसुओंकी धारा बह रही थी। वे अत्यन्त दीन होकर शोक कर रही थीं, अतः भगवान्‌ने मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहा॥ १—६॥

श्रीभगवान् बोले—भद्रे! राधिके! तुम्हारा मन उदास क्यों है? तुम इस तरह शोक न करो। अथवा मेरी मथुरा जानेकी इच्छा सुनकर तुम विरहसे व्याकुल हो उठी हो? देखो, ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे मैं इस पृथ्वीका भार उतारने और कंसादि असुरोंका संहार करनेके लिये तुम्हारे साथ इस भूतलपर अवतीर्ण हुआ हूँ। अतः अपने अवतार-के उद्देश्यकी सिद्धिके लिये मैं मथुरा अवश्य जाऊँगा और भूमिका भार उतारूँगा। तत्पश्चात् शीघ्र यहाँ आऊँगा और तुम्हारा मङ्गल करूँगा॥ ७—९॥

नारदजी कहते हैं—जगदीश्वर श्रीहरिके यों कहनेपर वियोगविह्वला श्रीराधा दावानलसे दग्ध लताकी भाँति मूर्च्छित हो गयीं और उनमें कम्प, रोमाञ्च आदि सात्त्विक भाव प्रकट हो गये। उस अवस्थामे वे अपने प्राणवल्लभसे बोलीं॥ १०॥

श्रीराधाने कहा- प्राणनाथ! तुम पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवश्य मथुरापुरीको जाओ, परंतु मेरी इस निश्चित प्रतिज्ञाको भी सुन लो। यहाँसे तुम्हारे चले जानेपर मैं शरीरको कदापि धारण नहीं करूँगी। यदि तुम मेरी इस प्रतिज्ञा या शपथपर ध्यान नहीं देते हो तो दूसरी बार पुनः अपने जानेकी बात कहकर देख लो। मैं तुरंत कथाशेष हो जाऊँगी। मेरे प्राण अधरोंकी राहसे निकल जानेको अत्यन्त आकुल हैं, ये कपूरकी धूलि-कणोंके समान शीघ्र ही उड़ जायँगे॥ ११-१२॥

श्रीभगवान् बोले— राधिके! मैं वेदस्वरूपा अपनी वाणीको तो टाल देनेमें समर्थ हूँ, किंतु अपने भक्तोंके वचनकी अवहेलना करनेकी शक्ति मुझमे नहीं है। पूर्वकालमें गोलोकमें जो कलह हुआ था, उस समय दिये गये श्रीदामा-के शापसे मेरे साथ तुम्हारा सौ वर्षोंतक वियोग अवश्य

होगा—इसमें संशय नहीं है। कल्याणि! राधिके! शोक न करो। मैंने तुम्हें जो वरदान दिया है, उसको स्मरण करो। प्रत्येक मासमें वियोग-दुःखकी शान्तिके लिये एक दिन मेरा दर्शन तुम्हें प्राप्त होगा ॥ १३—१५ ॥

श्रीराधाने कहा—हरे! प्रत्येक मासमें एक दिन मेरी वियोग-व्यथाको शान्त करनेके लिये यदि तुम दर्शन देने नहीं आओगे तो मैं असह्य दुःखके कारण अपने प्राणोंको अवश्य त्याग दूँगी। लोकाभिराम! जनभूषण! विश्वदीप! मदनमोहन! जगत्‌के पाप-तापको हर लेनेवाले! आनन्दकंद! यदुकुलनन्दन! नन्दकिशोर! आज मेरे सामने अपने आगमनके विषयमें शपथ खाओ ॥ १६ १७ ॥

श्रीभगवान् बोले—रम्भोरु राधे! यदि तुम्हारे वियोग-कालमें प्रतिमास एक दिन मैं तुम्हें दर्शन देनेके लिये न आऊँ तो मेरे लिये गौओंकी शपथ है। मैंने यहाँ जो कुछ कहा है, मेरे उस वचनको तुम संशयरहित और निष्कपट समझो। जो बिना किसी हेतुके निश्छल भावसे मैत्रीको निभाता है, वही पुरुष धन्यतम है। जो मैत्री स्थापित करके कपट करता है, वह स्वार्थरूपी पटमें आच्छादित लम्पट नटमात्र है, उसे धिक्कार है। जैसे यहाँ कर्मेन्द्रियाँ रस, रूप, गन्ध, स्पर्श एवं शब्दको नहीं जान पातीं, उसी प्रकार जो सकाम भाव रखनेवाले मुनि हैं, वे उस निरपेक्षस्वरूप एवं निर्गुण गूढ़ परम सुखको किंचिन्मात्र भी नहीं जानते। जो लोग समदर्शी, जितेन्द्रिय, अपेक्षारहित एवं महान् संत हैं, वे ही उस कामनारहित मेरे परम सुखका अनुभव करते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे ज्ञानेन्द्रियाँ ही रस आदि विषयोंको जान पाती हैं। भामिनि! मनके सारे भाव पारस्परिक हैं—एक-दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। इसलिये किसी एक ही तरफसे प्रीति नहीं होती; दोनों ही ओरसे हुआ करती है। अतः सबको अपनी ओरसे मेरे प्रति प्रेम ही करना चाहिये। इस भूतलपर प्रेमके समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है। राधे! जैसे भाण्डीर-वनमें तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ था, उसी प्रकार फिर होगा। सत्पुरुषोंद्वारा जिस हेतुरहित प्रेमका आश्रय लिया जाता है, उसे भी संत-महात्मा निर्गुण ही मानते हैं। जो लोग तुझ राधिका और मुझ केशवमें उसी प्रकार भेदकी कल्पना नहीं करते, जिस प्रकार दुग्ध और उसकी धवलतामें भेद सम्भव नहीं है, वे निष्काम भावके कारण उद्दीप्त हुई भक्तिसे युक्त महात्मा पुरुष ही मेरे उस ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं। रम्भोरु! जो कुबुद्धि मनुष्य इस भूतलपर तुझ राधिका और मुझ केशवमें भेद-दृष्टि रखते हैं, वे जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक कालसूत्र नरकमें पड़कर दुःख भोगते हैं ॥ १८—२५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीराधा तथा समस्त गोपांगनाओंको आश्वासन दे नीतिकुशल भगवान् गोविन्द नन्दभवनमें लौट आये। तदनन्तर सूर्योदय होनेपर नन्द आदि गोप छकड़ोंद्वारा भेंट-सामग्री भेजकर, स्वयं रथारूढ़ हो, वे सब-के-सब श्रीमथुरापुरीको गये। राजन्! बलराम और श्रीकृष्णके साथ अपने रथपर आरूढ़ हो, गान्दिनीपुत्र अक्रूरने मथुरापुरीके दर्शनके लिये उद्यत हो वहाँसे प्रस्थान किया। मार्गमें कोटि-कोटि गोपाङ्गनाएँ खड़ी हो, क्रोध और मोहसे विह्वल होकर श्रीकृष्णका व्रजसे प्रस्थान देख रही थीं। वे अक्रूरको 'क्रूर क्रूर' कहकर पुकारती हुई कटु वचन सुनाने लगीं और जैसे बादल सूर्यको आच्छादित कर देते हैं, उसी प्रकार गोपियोंके समुदायने अक्रूरके रथको चारों ओरसे घेर लिया। राजन्! भगवान्‌के विरहसे व्याकुल हुई गोपियोंने अक्रूरके रथको, उनके घोड़ोंको और सारथिको भी लाठियोंद्वारा जोर-जोरसे पीटना आरम्भ किया। लाठियोंके प्रहारसे घोड़े वहाँ इधर उधर उछलने लगे। गोपियोंकी दो अँगुलियोंकी चोटसे सारथि उस रथसे नीचे जा गिरा। लोक-लज्जाको तिलाञ्जलि दे, गोपियोंने बलराम और श्रीकृष्णके देखते-देखते अक्रूरको बलपूर्वक रथसे नीचे खींच लिया और अपने कंगनोंसे उनके ऊपर चोट करना आरम्भ किया। गोपी-समुदायकी वह सेना देखकर बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने गान्दिनीनन्दन अक्रूरकी रक्षा करके गोपाङ्गनाओंको समझाया—'व्रजाङ्गनाओ! चिन्ता न करो। मैं आज संध्याको ही लौट आऊँगा। इन अक्रूरजीके सामने व्रजवासी हमारी हँसी न उड़ावें, ऐसा प्रयत्न तुम्हें करना चाहिये' ॥ २६—३५ ॥

यों कहकर बलदेवजी तथा अक्रूरके साथ श्रीकृष्ण सुन्दर वेगशाली अश्वोंकी सहायतासे रथसहित उस मथुरापुरीकी ओर चल दिये, जो यादवोंके समुदायसे सुशोभित थी। जबतक उन्हें रथ, उसकी ध्वजा अथवा

घोड़ोंकी टापसे उड़ायी गयी धूल दिखायी देती रही, तबतक अत्यन्त मोहवश गोपियाँ पथपर ही चित्र-लिखित-सी खड़ी रहीं। श्रीहरिकी कही हुई बातको याद करके उनके मनमें पुनर्मिलनकी आशा बँध गयी थी ॥ ३६-३७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका मथुरापुरीको प्रयाण' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

अक्रूरको भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार तथा उनकी स्तुति; श्रीकृष्णका ग्वालबालोंके साथ पुरी-दर्शनके लिये जाना, नागरी स्त्रियोंका उनपर मोहित होना तथा भगवान्‌के हाथसे एक रजकका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! अक्रूर और बलरामजीके साथ मथुराके उपवनके पास पहुँचकर, यमुनाके निकट रथ रोककर भगवान् श्रीकृष्ण उतर गये और यमुनाका जल पीकर पुनः रथपर आ गये। तब उन दोनों भाइयोंकी आज्ञा ले अक्रूरजी यमुनाजीमें नहानेके लिये गये और नित्य-नैमित्तिक कर्म करनेके लिये यमुनाके निर्मल जलमें उतरे। यमुनाजीका जल अगाध था, उसमें बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही थीं। अक्रूरजीने देखा, उसी जलमें बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई खड़े-खड़े परस्पर बातें कर रहे हैं। नरेश्वर! यह देख अक्रूरजी चकित हो उठे और रथपर जाकर देखा तो वहाँ भी वे दोनों बैठे दिखायी दिये। फिर जलमें आकर देखा तो वहाँ भी उनके दर्शन हुए। बलरामजी नागराज शेषके रूपमें कुंडली मारकर बैठे थे और उनकी गोदमें लोकवन्दित परम प्रकाशमय गोलोक, गोवर्धन पर्वत, यमुना नदी, मनोहर वृन्दावन तथा असंख्य कोटि सूर्योंकी ज्योतियोंका प्रभावशाली मण्डल—ये क्रमशः परिलक्षित हुए। उसी ज्योतिर्मण्डलमें रासमण्डलके भीतर कोटि-कोटि कामदेवोंके सौन्दर्य-माधुर्यको तिरस्कृत करनेवाले साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण श्रीराधारानीके साथ वहाँ अक्रूरके दृष्टिपथमें आये। तब श्रीकृष्णको परब्रह्म परमात्मा समझकर अक्रूरने बारंबार उन्हें नमस्कार किया और दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त हर्षके साथ उनकी स्तुति आरम्भ की ॥ १-८ ॥

अक्रूर बोले—असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधीश्वर तथा गोलोकधामके स्वामी परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है। प्रभो! आप श्रीराधाके प्राणवल्लभ तथा व्रजके अधीश्वर हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। श्रीनन्द-नन्दन तथा माता यशोदाको आमोद प्रदान करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है। देवकीपुत्र! गोविन्द! वासुदेव! जगदीश्वर! यदुकुल-तिलक! जगन्नाथ! पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। मेरी वाणी सदा आपके गुणोंके वर्णनमें लगी रहे। मेरे कान आपकी कथा सुनते रहें। मेरी भुजाएँ आपकी प्रसन्नताके लिये कर्म करनेमें तल्लीन रहें। मन सदा आपके चरणारविन्दोंका चिन्तन करे तथा दोनों नेत्र आपके प्रकाशमान एवं भव्य धामविशेषके दर्शनमें संलग्न हों* ॥ ९-१२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! जब इस प्रकार चकित होकर भगवान्‌का वैभव देखते हुए अक्रूरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण अपने लोकसहित वहीं अन्तर्धान हो गये। तब उन्हें नमस्कार करके नैमित्तिक कर्म पूर्ण करनेके पश्चात् अक्रूर श्रीकृष्णको परब्रह्मस्वरूप जानकर विस्मयपूर्वक रथपर आये।

---

* नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च।
असंख्याण्डाधिपतये गोलोकपतये नमः ॥
श्रीराधापतये तुभ्यं व्रजाधीशाय ते नमः।
नमः श्रीनन्दपुत्राय यशोदानन्दनाय च ॥
देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
यदूत्तम जगन्नाथ पाहि मां पुरुषोत्तम ॥
वाणी सदा ते गुणवर्णने स्यात्
कर्णौ कथायां समदोश्च कर्मणि।
मनः सदा त्वच्चरणारविन्दयो-
र्दृशौ स्फुरद्धामविशेषदर्शने ॥
(गर्ग०, मथुरा० ५। ९-१२)

घनवत् गम्भीर नाद करनेवाले उस वायुवेगशाली रथके द्वारा अक्रूरने बलराम और श्रीकृष्णको दिन डूबते-डूबते मथुरा पहुँचा दिया। वहाँ नगरके उपवनमें नन्दराजको देखकर यदूत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें अक्रूरजीसे बोले ॥ १३—१६ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—मानद ! अब आप अपने रथके द्वारा मथुरापुरीमें पधारें। मैं पीछे ग्वाल-बालोंके साथ आऊँगा ॥ १७ ॥

अक्रूरने कहा—देवदेव ! जगन्नाथ ! गोविन्द ! पुरुषोत्तम ! प्रभो ! आप अपने बड़े भाई तथा ग्वालों-सहित मेरे घरपर चलें। जगत्पते ! अपने चरणारविन्दोंकी धूलसे आज मेरा घर पवित्र कीजिये ! मैं आपको साथ लिये बिना अपने घर नहीं जाऊँगा ॥ १८-१९ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—अक्रूरजी ! मैं यदुवंशियोंके वैरी कंसको मारकर बलरामजी तथा गोप-बन्धुओंके साथ आपके भवनमें अवश्य आऊँगा और आपका प्रिय करूँगा ॥ २० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण वहीं ठहर गये और अक्रूरने मथुरापुरीमें प्रवेश किया। वहाँ कंसको श्रीकृष्णके आगमनका समाचार देकर वे अपने घर चले गये। दूसरे दिन बलराम और गोप-बालकोंके साथ मथुरापुरीको देखनेके लिये उद्यत हुए गोविन्दकी ओर देखकर नन्दने यह बात कही ॥ २१-२२ ॥

'वत्स ! सीधी तरहसे मथुरापुरीको देखकर तुम सब लोग लौट आना। इसे गोकुल न समझो; यहाँ कंसका महाभयंकर राज्य है।' 'बहुत अच्छा'—कहकर भगवान् श्रीकृष्ण नन्दद्वारा प्रेरित बड़े-बूढ़े ग्वालों और ग्वालबालोंके साथ पुरीमें गये। बलरामजी भी उनके साथ थे। दुर्गसे युक्त वह पुरी स्वर्ण एवं रत्नजटित सुन्दर गृहों तथा गगनचुम्बी महलोंसे देवताओंकी राजधानी अमरावतीके समान शोभा पाती थी। यमुनाके तटपर रत्नोंकी सीढ़ियाँ बनी थीं। वहाँ चञ्चल लहरोंका कौतूहल देखते ही बनता था। उन सबसे तथा दिव्य नर-नारियोंसे युक्त वह नगरी अलकापुरीके समान शोभा पा रही थी। मथुरापुरीकी शोभा निहारते और धनिकोंके भवनोंको देखते हुए श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ राजमार्ग (मुख्य सड़क) पर आ गये ॥ २३—२७ ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके आगमनका समाचार सुनकर मथुरापुरीकी स्त्रियाँ, जो उनके विषयमें बहुत कुछ सुन चुकी थीं, सारे काम-काज और शिशुओंको भी छोड़कर उन्हें देखनेके लिये इस प्रकार दौड़ीं, मानो नदियाँ समुद्रकी ओर भागी जा रही हों। कुछ स्त्रियाँ महलोंकी छतसे, कुछ जालीदार झरोखोंके छेदसे, कोई-कोई दीवारोंकी ओटसे, कोई खिड़कियोंपर लगी हुए, पर्दे हटाकर और कुछ नारियाँ दरवाजेके किवाड़ोंसे बाहर निकलकर घरके चबूतरोंपरसे उन्हें देखने लगीं। भगवान् श्रीकृष्णका एक चञ्चल कुन्तल-भाग उनके मुखपर लटक रहा था, मानो उन्होंने अपने सामनेवाले मनुष्योंके मनको हर लेनेके लिये उसे धारण किया था तथा दूसरा कुन्तल-भाग उन्होंने मुकुटके नीचे दबाकर पीछेकी ओर लटका दिया था, मानो पीछेसे आनेवाले लोगोंके मनको मोहनेके लिये उसे उन्होंने पृष्ठभागकी ओर धारण किया था। उनका आधा पीताम्बर कमरमें बँधा हुआ चमक रहा था और आधा कंधेपर पड़ा नील मेघमें विद्युत्‌की-सी शोभा धारण कर रहा था। राजन् ! उन्होंने अपने एक हाथमें कमल और वक्षःस्थलमें वैजयन्ती माला धारण कर रक्खी थी। कानोंमें नवीन मकराकार कुण्डल पहने तथा बालसूर्यके समान कान्तिमान् सोनेके बाजूबंद-से विभूषित बाहुमण्डलवाले, असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति परात्पर भगवान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको देखकर समस्त पुरवासिनी स्त्रियाँ मोहित हो गयीं ॥ २८—३२ ॥

नागरी स्त्रियाँ बोलीं—अहो ! वह वृन्दावन कैसा रमणीय है, जहाँ ये नन्दनन्दन स्वयं निवास करते हैं। वे समस्त गोपगण भी धन्य हैं, जो प्रतिदिन इनके मनोहर रूपका दर्शन करते रहते हैं। वे गोपाङ्गनाएँ भी धन्य हैं—न जाने उन्होंने कौन-सा पुण्य किया है, जो रास-रङ्गमें वे बारंबार उनके अधरामृतका पान किया करती हैं ॥ ३३-३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उस राजमार्गपर एक कपड़ा रँगनेवाला रजक जा रहा था। वह बड़ा घमंडी और उन्मत्त जान पड़ता था। ग्वालबालोंकी अनुमतिसे मधुसूदनने उससे कहा—'मेरे महाबुद्धिमान् मित्र ! हमारे लिये सुन्दर वस्त्र दो; यदि दे दोगे तो तुम्हारा परम कल्याण होगा, इसमें संशय नहीं है।' वह रजक कंसका सेवक और बड़ा भारी दुष्ट था। श्रीकृष्णकी बात सुनकर घृतसे अभिषिक्त अग्निकी भाँति वह अत्यन्त रोषसे प्रज्वलित हो उठा और उस राजमार्गपर माधवसे इस प्रकार बोला ॥ ३५—३७ ॥

रजकने कहा—अरे ! तुम्हारे बाप-दादोंने ऐसे ही वस्त्र धारण किये हैं क्या ? उद्दण्ड ग्वाल-बालो ! क्या तुम्हारे पूर्वज कौपीनधारी नहीं थे ? जंगलमें रहनेवाले गोपो ! यदि जीवन चाहते हो तो तुम सब-के-सब नगरसे शीघ्र निकल जाओ; अन्यथा वस्त्रकी चोरी करनेवाले तुम सब लोगोंको मैं जेलमें बंद करा दूँगा ॥ ३८-३९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस तरहकी बातें करनेवाले उस रजकके मस्तकको यदुकुल-तिलक श्रीकृष्णने खेल-खेलमें हाथके अग्रभागसे ही मरोड़ दिया । विदेहराज ! उसके शरीरकी ज्योति घनश्याम श्रीकृष्णमें लीन हो गयी । राजन् ! फिर तो उसके समस्त अनुगामी सेवक वस्त्रोंके गट्ठर वहीं छोड़कर उसी तरह सब ओर भाग गये, जैसे शरत्कालमें हवाके वेगसे बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं । उन वस्त्रोंमेंसे बलराम और श्रीकृष्ण अपनी पसंदके कपड़े लेकर जब खड़े हो गये, तब शेष वस्त्रोंको ग्वाल-बालों तथा अन्य राहगीरोंने ले लिया । उन वस्त्रोंको कैसे पहनना चाहिये, यह बात ग्वालबाल नहीं जानते थे; अतः बलराम और श्रीकृष्णके देखते-देखते वे उन सुन्दर वस्त्रोंको अस्त-व्यस्त ढंगसे पहनने लगे । इसी समय एक बालकने उन दोनों भाइयोंको देखकर विचित्र वर्णवाले वस्त्रोंको धारण कराकर श्रीकृष्ण और बलदेवके दिव्य वेष बना दिये । राजन् ! इसी तरह अन्य गोप-बालकोंको भी यथोचित वस्त्र पहनाकर उसने बड़ी भक्तिसे श्रीकृष्णका पुनः दर्शन किया । उस बालकपर प्रसन्न हो भगवान्‌ने उसे अपना सारूप्य प्रदान किया तथा बलदेवजीने भी पुनः उसे बल, लक्ष्मी और ऐश्वर्य दिये ॥ ४०-४६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्गसंहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका मथुरामें प्रवेश' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

सुदामा माली और कुब्जापर कृपा; धनुर्भङ्ग तथा मथुराकी स्त्रियोंपर श्रीकृष्णके मधुर-मोहन रूपका प्रभाव

श्रीनारदजी कहते हैं— राजन् ! तदनन्तर ग्वाल-बालोंसहित नन्दनन्दन श्रीकृष्ण और बलराम सुदामा नामवाले एक मालीके घर गये, जो फूलोंके गजरे बनाया करता था । उन दोनों भाइयोंको देखते ही माली उठकर खड़ा हो गया । उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फूलके सिंहासनपर बिठाकर गद्गद वाणीमें कहा ॥ १-२ ॥

सुदामा बोला—देव ! यहाँ आपके शुभागमनसे मेरा कुल तथा घर दोनों धन्य हो गये । मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरी माताके कुलकी सात पीढ़ियाँ, पिताके कुलकी सात पीढ़ियाँ तथा पत्नीके कुलकी भी सात पीढ़ियाँ वैकुण्ठ-लोकमें चली गयीं । आप दोनों परिपूर्णतम परमेश्वर हैं और भूतलका भार उतारनेके लिये इस यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं । मुझ दीनातिदीनके घर आये हुए आप दोनों भाइयोंको नमस्कार है । आप परात्पर जगदीश्वर हैं* ॥ ३-४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर मालीने पुष्पनिर्मित सुन्दर हार और भ्रमरोंकी गुंजारसे निनादित मकरन्द (इत्र, फुलेल आदि) निवेदन करके प्रणाम किया । बलरामसहित भगवान् श्रीहरिने उस पुष्पराशिको धारण करके निकटवर्ती गोपोंको भी दिया और हँसते हुए मुखसे उस मालीसे बोले—'सुदामन् ! मेरे चरणारविन्दोंमें सदा तुम्हारी गुरुतर भक्ति बनी रहे, मेरे भक्तोंका सङ्ग प्राप्त हो और इसी जन्ममें तुम्हें मेरे स्वरूपकी प्राप्ति हो जाय ।' तदनन्तर बलदेवजीने भी इसे उसके कुलमें निरन्तर बढ़नेवाली लक्ष्मी प्रदान की । राजन् ! फिर वे दोनों भाई

* धन्यं कुलं मे भवनं च जन्म
त्वय्यागते देव कुलानि सप्त ।
मातुः पितुः सप्त तथा स्त्रियाश्च
वैकुण्ठलोकं गतवन्ति मन्ये ॥
भूभारमाहर्तुमलं यदोः कुले
जातौ युवां पूर्णतमौ परेश्वरौ ।
नमो युवाभ्यां मम दीनदीनं
गृहं गताभ्यां जगदीश्वरौ परौ ॥
(गर्ग०, मथुरा० ६ । ३-४)

वह कठोर धनुष एक लाख भारके समान भारी था और चतुर्दशी तिथिको पुरवासियोंद्वारा पूजित हो यज्ञमण्डपमें स्थापित किया गया था । पूर्वकालमें भृगुकुलनन्दन परशुरामजीने राजा यदुको वह धनुष दिया था । माधव श्रीकृष्णने उसे देखा; वह कुंडली मारकर बैठे हुए शेषनागके समान प्रतीत होता था । लोग मना करते रह गये, किंतु श्रीकृष्णने हठपूर्वक उस धनुषको उठा लिया और पुरवासियोंके देखते-देखते खेल-खेलमें उसके ऊपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी ॥ २६—३० ॥

राजन् ! फिर श्रीहरिने अपने भुजदण्डोंसे उस धनुषको कानतक खींचा और जैसे हाथी ईखके डंडेको तोड़ डालता है, उसी प्रकार उसको बीचसे खण्डित कर दिया । टूटते हुए उस धनुषकी टंकार बिजलीकी गड़-गड़ाहटके समान प्रतीत हुई । इससे 'भूः' आदि सात लोकों तथा सातों पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये, तारे टूटने लगे, भूखण्ड-मण्डल काँप उठा, पृथ्वीपर रहनेवाले लोगोंके कान तत्काल बहरे-से हो गये । वह शब्द दो घड़ीतक कंसके हृदयको विदीर्ण करता रहा । उस धनुषकी रक्षा करनेवाले आततायी असुर अत्यन्त कुपित होकर उठे और श्रीकृष्णको पकड़ लेनेकी इच्छासे परस्पर कहने लगे—'बाँध लो इसे ।' उन्हें सशस्त्र आक्रमण करते देख बलराम और श्रीकृष्णने धनुषके दोनों टुकड़े लेकर उन दुर्मद दैत्योंको बड़े वेगसे पीटना आरम्भ किया । धनुष-खण्डोंके अत्यन्त प्रबल प्रहारसे कितने ही वीर तत्काल मूर्च्छित हो गये, किन्हींके पाँव टूटे, किन्हींके नख फूटे और कितनोंहीके कंधे एवं बाहुदण्ड खण्डित हो गये । इस प्रकार पाँच हजार दैत्यवीर भूमिपर प्राणशून्य होकर सो गये । समस्त मथुरावासियोंमें हलचल मच गयी । बहुत-से लोग उस घटनाको देखनेके लिये दौड़े आये । नगरीमें सब ओर कोलाहल होने लगा और वहाँके लोगोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया । भोजराज कंसके सभामण्डपका छत्र अकस्मात् टूटकर गिर पड़ा ॥ ३१—३८ ॥

नरेश्वर ! ग्वाल-बालों तथा बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण संध्याके समय धनुषशालासे नन्दराजके निकट आ गये, मानो वे अत्यन्त डर गये हों । गोविन्दका वह अद्भुत सुन्दर रूप देखकर मथुरापुरीकी वनिताएँ विशेषरूपसे मोहित हो गयीं । उनके वस्त्र खिसक गये, गूँथी हुई चोटियाँ ढीली पड़ गयीं; हृदयमें प्रेमजनित पीड़ा जाग उठी और वे अपनी सखियोंसे परस्पर इस प्रकार कहने लगीं ॥ ३९-४० ॥

पुरस्त्रियाँ बोलीं—सखियो ! करोड़ों कामदेवोंकी कान्ति धारण किये श्रीहरि बड़ी उतावलीके साथ मथुरापुरीमें स्वच्छन्द विचरने लगे हैं और जिन-किन्हीं युवतियोंने उन्हें देखा है, उन हम-जैसी सभी स्त्रियोंके समस्त अङ्गोंमें वे अनङ्ग बनकर समाविष्ट हो गये हैं ॥ ४१ ॥

कुछ चतुरा स्त्रियोंने कहा—क्या इस पुरीमें ऐसी क्रूर स्त्रियाँ नहीं हैं, जो अनङ्गमोहन श्रीकृष्णके सारे अङ्गोंको घूर-घूरकर देखती हैं ? हम सब उन परमानन्दमय सर्वाङ्गसुन्दर श्रीकृष्णको भर आँख नहीं निहारतीं ! सखी ! किसीके किसी एक ही अङ्गमें सौन्दर्य-माधुर्य दिखायी देता है और वहीं हमारे नेत्र पतंगके समान टूट पड़ते हैं; परंतु जो सर्वाङ्गसुन्दर एवं मनोहर हैं, उन्हें केवल नेत्रसे पूर्णतया कैसे देखा जा सकता है ? नन्दनन्दनका अङ्ग-अङ्ग सुन्दर है; उसमें जहाँ-जहाँ भी दृष्टि पड़ती है, वहीं-वहीं परम सुख पाकर वहाँ-वहाँसे लौटनेका नाम नहीं लेती । वे लावण्यके महासागर हैं । उनमें हमारा चित्त किस तरह लगा है, मानो उसीमें डूब गया हो ॥ ४२—४४ ॥

मिथिलेश्वर ! नगरकी जिन स्त्रियोंने दिनमें व्रजराज-नन्दनको देखा, उन्होंने स्वप्नमें भी उन्हींका दर्शन किया । फिर जिन्होंने रासमण्डलमें उनके साथ रासलीला की, वे गोपाङ्गनाएँ उनके मधुर मनोहर रूपका कैसे निरन्तर स्मरण न करें ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मथुरादर्शन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

यह कठोर धनुष एक लाख भारके समान भारी था और चतुर्दशी तिथिको पुरवासियोंद्वारा पूजित हो यज्ञमण्डपमें स्थापित किया गया था। पूर्वकालमें भृगुकुलनन्दन परशुरामजीने राजा यदुको वह धनुष दिया था। माधव श्रीकृष्णने उसे देखा; वह कुंडली मारकर बैठे हुए शेषनागके समान प्रतीत होता था। लोग मना करते रह गये, किंतु श्रीकृष्णने हठपूर्वक उस धनुषको उठा लिया और पुरवासियोंके देखते-देखते खेल-खेलमें उसके ऊपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी ॥ २६—३० ॥

राजन् ! फिर श्रीहरिने अपने भुजदण्डोंसे उस धनुषको कानतक खींचा और जैसे हाथी ईखके डंडेको तोड़ डालता है, उसी प्रकार उसको बीचसे खण्डित कर दिया। टूटते हुए उस धनुषकी टंकार बिजलीकी गड़-गड़ाहटके समान प्रतीत हुई। इससे 'भूः' आदि सात लोकों तथा सातों पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये, तारे टूटने लगे, भूखण्ड-मण्डल काँप उठा, पृथ्वीपर रहनेवाले लोगोंके कान तत्काल बहरे-से हो गये। वह शब्द दो घड़ीतक कंसके हृदयको विदीर्ण करता रहा। उस धनुषकी रक्षा करनेवाले आततायी असुर अत्यन्त कुपित होकर उठे और श्रीकृष्णको पकड़ लेनेकी इच्छासे परस्पर कहने लगे—'बाँध लो इसे।' उन्हें सशस्त्र आक्रमण करते देख बलराम और श्रीकृष्णने धनुषके दोनों टुकड़े लेकर उन दुर्मद दैत्योंको बड़े वेगसे पीटना आरम्भ किया। धनुष-खण्डोंके अत्यन्त प्रबल प्रहारसे कितने ही वीर तत्काल मूर्च्छित हो गये, किन्हींके पाँव टूटे, किन्हींके नख फूटे और कितनोंहीके कंधे एवं बाहुदण्ड खण्डित हो गये। इस प्रकार पाँच हजार दैत्यवीर भूमिपर प्राणशून्य होकर सो गये। समस्त मथुरावासियोंमें हलचल मच गयी। बहुत-से लोग उस घटनाको देखनेके लिये दौड़ आये। नगरीमें सब ओर कोलाहल होने लगा और वहाँके लोगोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया। भोजराज कंसके सभामण्डपका छत्र अकस्मात् टूटकर गिर पड़ा ॥ ३१—३८ ॥

मिथिलेश्वर ! ग्वाल-बालों तथा बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण संध्याके समय धनुषशालासे कंसराजके शिविरतक आ गये, मानो वे अत्यन्त डर गये हों। गोविन्दका वह अद्भुत सुन्दर रूप देखकर मथुरापुरीकी वनिताएँ विशेषरूपसे मोहित हो गयीं। उनके वस्त्र खिसक गये, गूँथी हुई चोटियाँ ढीली पड़ गयीं, हृदयमें प्रेमजनित पीड़ा जाग उठी और वे अपनी सखियोंसे परस्पर इस प्रकार कहने लगीं ॥ ३९-४० ॥

पुरस्त्रियाँ बोलीं—सखियो ! करोड़ों कामदेवोंकी कान्ति धारण किये श्रीहरि बड़ी उतावलीके साथ मथुरापुरीमें स्वच्छन्द विचरने लगे हैं और जिन-किन्हीं युवतियोंने उन्हें देखा है, उन हम-जैसी सभी स्त्रियोंके समस्त अङ्गोंमें वे अनङ्ग बनकर समाविष्ट हो गये हैं ॥ ४१ ॥

कुछ चतुरा स्त्रियोंने कहा—क्या इस पुरीमें ऐसी मूढ़ स्त्रियाँ नहीं हैं, जो अनङ्गमोहन श्रीकृष्णके सारे अङ्गोंको घूर-घूरकर देखती हैं ? हम सब उन परमानन्दमय सर्वाङ्गसुन्दर श्रीकृष्णको भर आँख नहीं निहारतीं ! सखी ! किसीके किसी एक ही अङ्गमें सौन्दर्य-माधुर्य दिखायी देता है और वहीं हमारे नेत्र पतंगके समान टूट पड़ते हैं, परंतु जो सर्वाङ्गसुन्दर एवं मनोहर हैं, उन्हें केवल नेत्रोंसे पूर्णतया कैसे देखा जा सकता है ! नन्दनन्दनका अङ्ग-अङ्ग सुन्दर है; उसमें जहाँ-जहाँ भी दृष्टि पड़ती है, वहीं-वहीं परम सुख पाकर वहाँ-वहाँसे लौटनेका नाम नहीं लेती। वे लावण्यके महासागर हैं। उनमें हमारा चित्त किस तरह लगा है, मानो उसीमें डूब गया हो ॥ ४२—४४ ॥

मिथिलेश्वर ! नगरकी जिन स्त्रियोंने दिनमें व्रजराज-नन्दनको देखा, उन्होंने स्वप्नमें भी उन्हींका दर्शन किया। फिर जिन्होंने रासमण्डलमें उनके साथ रासलीला की, वे गोपाङ्गनाएँ उनके मधुर मनोहर रूपका कैसे निरन्तर स्मरण न करें ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मथुरादर्शन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

मल्ल-क्रीड़ा-महोत्सवकी तैयारी; रङ्गद्वारपर कुवलयापीड़का वध तथा श्रीकृष्ण और बलरामका चाणूर और मुष्टिकके साथ मल्लयुद्धमें प्रवृत्त होना

नारदजी कहते हैं—राजन्! रजकके मस्तकके छेदन, धनुषके भञ्जन तथा रक्षकोंके वधका समाचार सुनकर कंसको बड़ा भय हुआ। तत्काल उसके सामने अपशकुन प्रकट हुए। उसके बायें अङ्ग फड़कने लगे, उसे स्वप्नमें अपना अङ्ग-भङ्ग दिखायी देने लगा। इससे दैत्योंके राजा कंसको रातभर नींद नहीं आयी। उसने स्वप्नमें यह भी देखा था कि वह प्रेतोंसे घिरा हुआ है। उसके सारे शरीरमें तेल मला गया है तथा वह नंग-धड़ंग जपाकुसुमकी माला पहिने भैंसेपर चढ़कर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा है॥ १—३॥

प्रातःकाल उठकर उसने कार्यकर्ताओंको बुलवाया और उन्हें मल्लक्रीड़ा-महोत्सव प्रारम्भ करनेकी आज्ञा दी। सभा-मण्डपके सामने ही विशाल प्राङ्गणसे युक्त स्थानपर रङ्गभूमिकी रचना की गयी। वहाँ सोनेके खंभे लगाये गये, सुनहरे चँदोवे ताने गये और उनमें मोतियोंकी लड़ियाँ लटका दी गयीं। नरेश्वर! सुन्दर सोपानों और सुवर्णमय मञ्चोंसे वह रङ्ग-भूमि बड़ी शोभा पाने लगी। राजाके लिये रत्नमय सुन्दर मञ्च स्थापित किया गया। उसपर छत्र लगाया गया। उस मञ्चपर इन्द्रका सिंहासन लगा दिया गया। उसके ऊपर सुन्दर बिछावन और तकिये सुसज्जित कर दिये गये। चन्द्रमण्डलके समान मनोहर दिव्य छत्र तथा हीरेकी बनी हुई मूठवाले हंसकी-सी आभासे युक्त व्यजन और चामरोंसे सुशोभित विश्वकर्माद्वारा रचित वह दस हाथ ऊँचा सिंहासन बड़ा ही चित्ताकर्षक था। उसपर आरूढ़ हो राजा कंस पर्वत-शिखरपर बैठे हुए सिंहके समान शोभा पा रहा था। वहाँ गायकोंद्वारा गीत गाये जाने लगे, वाराङ्गनाएँ नृत्य करने लगीं और मृदङ्ग, पटह, ताल, भेरी तथा आनक आदि बाजे बजने लगे॥ ४—१०॥

राजन्! छोटे-छोटे मण्डलोंके शासक नरेश तथा नगर और जनपदके निवासी बड़े लोग पृथक्-पृथक् मञ्चपर बैठकर मल्लयुद्ध देख रहे थे। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि पहलवान व्यायामोपयोगी मुद्गरोंसे युक्त हो परस्पर युद्धका अभ्यास कर रहे थे। कंसके द्वारा बुलाये गये नन्दराज आदि गोप मस्तक झुकाये राजाको उत्तम भेंट अर्पित करके एक-एक मञ्चका आश्रय ले बैठ गये। नरेश्वर! वहाँ यदुराज कंसके लिये बाणासुर, जरासंध और नरकासुरके नगरसे भी उपहार आये। अन्य जो शम्बर आदि भूपाल थे, उनके पाससे भी बहुत-सी भेंट-सामग्रियाँ आयीं॥ ११—१४½॥

तदनन्तर मायासे बालकरूप धारण किये बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई मल्लोंके खेल देखनेके लिये उस रङ्गशालामें आये। रङ्गमण्डपके द्वारपर कुवलयापीड़ नामक हाथी खड़ा था, जिसके कुम्भस्थलपर गोमूत्रमें सने हुए सिन्दूर और कस्तूरीसे पत्र-रचना की गयी थी। रत्नमय कुण्डलोंसे मण्डित उस महामत्त गजराजके गण्डस्थलसे मद झर रहा था। द्वारपर हाथीको खड़ा देख श्रीकृष्णने महावतसे गम्भीर वाणीमें कहा—'अरे! इस गजराजको दूर हटा ले और मेरी इच्छाके अनुसार मार्ग दे दे। नहीं तो तुझको और तेरे हाथीको अभी भूतलपर मार गिराऊँगा'॥ १५—१८॥

तब कुपित हुए महावतने सम्पूर्ण दिशाओंमें जोर-जोरसे चिग्घाड़ते हुए उस मतवाले हाथीको नन्दनन्दन-पर आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़ाया। गजराजने तत्काल ही श्रीहरिको सूँड़से पकड़कर उठा लिया। परंतु अपना भार अधिक बढ़ाकर श्रीहरि उसकी पकड़से बाहर निकल गये। जैसे वृन्दावनके निकुञ्जोंमें श्रीहरि इधर-उधर लुकते-छिपते थे, उसी प्रकार इधर-उधर घूमकर वे कुवल्यापीड़के पैरोंके बीचमें छिप गये। हाथीने अपनी सूँड़ बढ़ाकर उन्हें पकड़ लिया, किंतु उसकी सूँड़को दोनों हाथोंसे दबाकर श्रीहरि पीछेकी ओरसे निकल गये। तब हाथीने बगलकी दिशामें घूमकर उन्हें पकड़नेकी चेष्टा की, किंतु माधव उसके मस्तकपर मुक्केसे प्रहार करके आगेकी ओर भागे। विदेहराज! उस गजराजने भागते हुए श्रीहरिका पीछा किया। उस समय मथुरापुरीमें कोहराम मच गया। फिर श्रीहरि चक्कर देकर इधर

पीछेकी ओर निकल आये। उधर महाबली बलदेवने, जैसे गरुड़ सर्पको पकड़ते हैं, उसी प्रकार अपने बाहुदण्डोंसे उसकी पूँछ पकड़कर उसे पीछेकी ओर खींचा। तब हँसते हुए भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे बलपूर्वक उसकी सूँड़ पकड़कर उसी तरह आगेकी ओर खींचना आरम्भ किया, जैसे मनुष्य कूएँसे रस्सीको खींचता है। नृपेश्वर! उन दोनों भाइयोंके आकर्षणसे वह हाथी व्याकुल हो उठा। तब सात महावत बलपूर्वक उस हाथीपर चढ़ गये। साथ ही दूसरे महावत भी श्रीकृष्णका वध करनेके लिये तीन सौ हाथी वहाँ ले आये। महावतोंके अङ्कुशकी चोट करनेसे कुपित हुआ वह मतवाला हाथी पुनः श्रीकृष्णकी ओर झपटा। तब बलदेवजीके देखते-देखते साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने उसकी सूँड़ पकड़ ली और इधर-उधर घुमाकर उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर दे मारा, जैसे कोई बालक कमण्डलु पटक दे। उसपर चढ़े हुए सातों महावत इधर-उधर दूर जा गिरे और वहाँ जुटे हुए साधुपुरुषोंके देखते-देखते वह हाथी प्राणशून्य हो गया। विदेहराज! उसके शरीरसे एक ज्योति निकली और श्रीघनश्याममें विलीन हो गयी ॥ १९—३१ ॥

महाबली बलराम और श्रीकृष्णने उस हाथीके दोनों दाँत उखाड़ लिये और, जैसे दो सिंहके बच्चे बहुत-से मृगोंका संहार कर डालें, उसी प्रकार समस्त महावतोंको मौतके घाट उतार दिया। हाथीके मारे जानेपर जो अन्य महावत बचे थे, वे सब इधर-उधर भागकर उसी प्रकार छिप गये, जैसे वर्षाकाल व्यतीत हो जानेपर बादल जहाँ-के-तहाँ विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार कुवलयापीड़का वध करके पसीनेकी बूँदों और हाथीके मदसे अङ्कित हुए बलराम और श्रीकृष्ण, दोनों बन्धु गोपों तथा शेष दर्शनार्थियोंके मुखसे अपनी जय-जयकार सुनते हुए बड़ी उतावलीके साथ रङ्गशालामें प्रविष्ट हुए। उस समय उन दोनोंके मुख अधिक परिश्रमके कारण लाल हो गये थे, उनके हाथोंमें हाथीके दाँत थे। वे दोनों दिशाओंमें एक साथ चलनेवाले अनिल और अनलकी भाँति बड़े वेगसे रङ्गभूमिमें पहुँचे। उस समय मल्लोंने उन्हें महामल्ल समझा और नरोंने नरेन्द्र। नारियोंने उन्हें कामदेव माना और गोपगणोंने अपना स्वामी। पिताकी दृष्टिमें वे पुत्र जान पड़े और दुष्टोंको दण्डधारी यमराजके समान प्रतीत हुए। कंसने उनको अपनी मृत्यु समझा और ज्ञानी पुरुषोंने उन्हें विराट् ब्रह्मके रूपमें देखा। उस समय बलरामके साथ रङ्गशालामें गये हुए श्रीकृष्णको योगियोंमें महात्मा पुरुषोंने परमतत्त्वके रूपमें अनुभव किया। सभी तरहके लोगोंने अपनी पृथक्-पृथक् भावनाके अनुसार उन परिपूर्णदेव श्रीहरिको विभिन्न रूपोंमें देखा और समझा ॥ ३२—३७ ॥

हाथीको मारा गया सुनकर और उन महाबली बन्धुओंको देखकर मनस्वी कंस मन-ही-मन भयभीत हो उठा तथा मञ्चोंपर बैठे हुए दूसरे-दूसरे लोग मन-ही-मन हर्षसे उल्लसित हो उठे और जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर सुखी होते हैं, उसी प्रकार वे उन्हें देखकर परमानन्दमें निमग्न हो गये। नगरके लोग अत्यन्त उत्सुक हो एक-दूसरेके कान-से-कान सटाकर परस्पर कहने लगे—'ये दोनों वसुदेवनन्दन साक्षात् परमपुरुष परमेश्वर हैं। अहो! व्रजमण्डल अत्यन्त रमणीय एवं श्रेष्ठ है, जहाँ ये साक्षात् माधव विचरते रहे हैं और जिनका आज दुर्लभ दर्शन पाकर हम सर्वतोभावसे कृतार्थ हो रहे हैं' ॥ ३८—४० ॥

नारदजी कहते हैं—मैथिल! जब पुरवासी लोग इस प्रकार बात कर रहे थे और भाँति-भाँतिके बाजे बज रहे थे, उस समय चाणूरने बलराम और श्रीकृष्ण—दोनोंके पास आकर कहा ॥ ४१ ॥

चाणूर बोला—हे राम! हे कृष्ण! आप दोनों बड़े बलवान् हैं, अतः महाराजके सामने अपने बलका प्रदर्शन करते हुए युद्ध कीजिये। यदुकुल-तिलक महाराज कंस यदि इस युद्धसे प्रसन्न हो गये तो आपलोगोंकी और हमारी कौन-कौन-सी भलाई नहीं होगी? (अर्थात् सब होगी) ॥ ४२ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—राजाके कृपा-प्रसादसे तो हमारी पहलेसे ही बहुत भलाई हो रही है। किंतु इतना ध्यान रक्खो कि हमलोग बालक हैं; अतः समान बलवाले बालकोंके साथ ही हमारा युद्ध होगा, किसी बलवान्‌के साथ नहीं। इसकी यथोचित व्यवस्था होनी चाहिये, यहाँ अधर्म-युद्ध कदापि न होने पाये ॥ ४३ ॥

चाणूरने कहा—न तो आप बालक हैं और न

बलरामजी ही किशोर हैं। आप साक्षात् बलवानोंमें भी बलिष्ठ हैं; क्योंकि सहस्र मतवाले हाथियोंका बल धारण करनेवाले कुवलयापीड़को आप दोनोंने खिलवाड़में ही मार डाला है ॥ ४४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! चाणूरकी ऐसी बात सुनकर अघमर्दन भगवान् श्रीकृष्ण चाणूरके साथ और बलवान् बलरामजी मुष्टिकके साथ मल्लयुद्ध करने लगे। वे एक दूसरेके भुजदण्डोंको दोनों भुजाओंसे पकड़कर अपनी ओर खींचते और पीछे ढकेलते थे। लोगोंके देखते-देखते वे दोनों भाई विजयकी इच्छासे लड़नेवाले दो हाथियोंकी भाँति अपने शत्रुओंसे भिड़ गये। साक्षात् श्रीहरिने चाणूरके शरीरको दोनों हाथोंसे उठाकर उसके देहभारको उसी प्रकार तौला, जैसे ब्रह्माजी पुण्यात्माओंके पुण्य-भारको तौला करते हैं। फिर महावीर चाणूरने भगवान् श्रीहरिको एक ही हाथसे उसी प्रकार लीलापूर्वक उठा लिया, जैसे नागराज शेष भूमण्डलको अपने एक ही फनपर धारण करते हैं। माधवने अपनी भुजाओंके वेगसे चाणूरकी गर्दन और कमरमें हाथ लगाकर उसे उठा लिया और सहसा पृथ्वीपर दे मारा। एक ओर श्रीकृष्ण और चाणूर तथा दूसरी ओर बलराम और मुष्टिक एक दूसरेको हाथों, घुटनों, पैरों, भुजाओं, छातियों, अङ्गुलियों और मुक्कोंसे मारने लगे। बलराम और श्रीकृष्णके मुखोंपर परिश्रमजनित पसीनेकी बूँदें देखकर दयासे द्रवित हो उस समय महलकी खिड़कियोंके पास बैठी हुई राजरानियाँ आपसमें कहने लगीं ॥ ४५—५१ ॥

स्त्रियाँ बोलीं—अहो! राजाके मौजूद रहते उनके सामने सभामें यह बहुत बड़ा अधर्म हो रहा है। कहाँ तो वज्रके समान सुदृढ़ शरीरवाले ये दोनों पहलवान और कहाँ फूलके सदृश सुकुमार बलराम और कृष्ण। अहो! हम मथुरापुरवासियोंका कैसा अभाग्य है कि हमें आज इतने दिनों बाद इनका दर्शन भी हुआ तो युद्धके अवसरपर। वनवासी गोपोंका महान् सौभाग्य अत्यन्त धन्यवादके योग्य है, जिन्हें रास रसके साथ श्रीकृष्ण-बलरामका दर्शन होता आ रहा है। सखियो! आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस दुष्टचित्त राजाके रहते हुए कोई भी कुछ कहनेको समर्थ नहीं हो सकता। इसलिये हमारे पुण्यके बलसे ये दोनों बन्धु शीघ्र ही अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें ॥ ५२—५४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मल्लयुद्धका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लोंका तथा कंस और उसके भाइयोंका वध

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! नन्दराजका चित्त करुणासे द्रवित हो रहा था। उनकी ओर ध्यान देकर तथा वनिताओंके मनोरथको याद करके श्रीहरिने शत्रुओंको मार डालनेका संकल्प मनमें लेकर बलपूर्वक युद्ध आरम्भ किया ॥ १ ॥

चाणूरको भुजदण्डोंसे उठाकर श्रीकृष्णने बलपूर्वक अकस्मात् आकाशमें उसी प्रकार फेंक दिया, जैसे हवाने उखड़े हुए कमलको सहसा उड़ा दिया हो। आकाशसे नीचे मुँह किये वह पृथ्वीपर इतने वेगसे गिरा, मानो कोई तारा टूट पड़ा हो। फिर उठकर चाणूरने श्रीकृष्णको जोरसे एक मुक्का मारा। उसके मुक्केकी मारसे परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण विचलित नहीं हुए। उन्होंने तत्काल चाणूरको उठाकर पृथ्वीपर पटक दिया। चाणूरके दाँत टूट गये। वह मदोन्मत्त मल्ल क्रोधसे तमतमा उठा। मैथिल! उसने श्रीकृष्णकी छातीपर दोनों हाथोंसे मुक्के मारे। नरेश्वर! तब दोनों हाथोंसे उसके दोनों हाथ पकड़कर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने कंसके आगे उसे घुमाना आरम्भ किया और सबके देखते-देखते पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे किसी बालकने कमण्डलु पटक दिया हो। श्रीकृष्णके इस प्रहारसे चाणूर मल्लका मस्तक फट गया। राजन्! वह रक्त वमन करता हुआ तत्काल मर गया ॥ २—७½ ॥

इसी प्रकार महाबली बलदेवने रणदुर्गम मल्ल मुष्टिकके पैरको मुट्ठीसे पकड़कर आकाशमें घुमाया और जैसे गरुड़ सर्पको पटक दे, उसी प्रकार उसे पृथ्वीपर दे मारा। फिर तो मुष्टिक मुँहसे खून उगलता हुआ कालके गालमें चला गया। तत्पश्चात् कूटको सामने आया देख महाबली बलदेवने एक ही मुक्केसे उसी प्रकार मार गिराया, जैसे

देवराज इन्द्रने वज्रसे किसी पर्वतको धराशायी कर दिया हो। राजन्! जैसे गरुड अपनी तीखी चोंचसे नागको घायल कर देता है, उसी प्रकार सामने आये हुए शलको नन्द-नन्दनने लातसे मार गिराया। फिर तोशलको पकड़कर श्रीकृष्णने उसे बीचसे ही चीर डाला और जैसे हाथी किसी पेड़की डालीको तोड़ फेंके, उसी प्रकार उसे कंसके मञ्चके सामने फेंक दिया। ये सब मल्ल अखाड़ेमें गिराये जाते ही मौतके मुखमें चले गये और उनके शरीरसे निकली हुई ज्योतियाँ सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान् वैकुण्ठ (श्रीकृष्ण) में समा गयीं॥ ८–१३॥

इस प्रकार बलराम और श्रीकृष्णके द्वारा अनेक मल्लोंके मारे जानेपर शेष मल्ल भयसे व्याकुल हो प्राण बचानेकी इच्छासे भाग खड़े हुए। तदनन्तर श्रीदामा आदि अपने मित्र गोपोंको खींचकर माधवने उनके साथ समस्त सज्जनोंके सामने मल्लयुद्धका खेल आरम्भ किया। किरीट और कुण्डलधारी बलराम तथा श्रीकृष्णको ग्वाल-बालोंके साथ रङ्गभूमिमें विहार करते देख समस्त पुरवासी विस्मयसे चकित हो उठे। कंसके सिवा अन्य सब लोगोंके मुँहसे 'जय हो! जय हो' की बोली निकलने लगी। सब ओरसे साधुवाद सुनायी देने लगा और नगारे बज उठे। अपनी पराजय देख कंस अत्यन्त क्रोधसे भर गया और बाजे बंद करनेकी आज्ञा देकर फड़कते हुए अधरोंसे बोला॥ १४––१८॥

कंसने कहा—वसुदेवके दोनों पुत्र खोटी बुद्धि और खोटे विचारवाले हैं। इन दोनोंको हठात् और शीघ्र मेरे नगरसे निकाल दो। व्रजवासियोंका सारा धन हर लो और दुर्बुद्धि नन्दको सहसा कैद कर लो। आज मेरे दुर्बुद्धि पिता शूरपुत्र उग्रसेनका भी मस्तक तुरंत काट लो, काट लो। पृथ्वीपर जहाँ-कहीं भी और यहाँ भी जो-जो वृष्णिवंशी यादव मिल जायँ, उन सबको देवताओंके अंशसे उत्पन्न समझकर मार डालो॥ १९-२०॥

नारदजी कहते हैं—जब कंस इस प्रकार बढ़-चढ़कर बातें बना रहा था, उस समय यदुनन्दन श्रीकृष्ण सहसा क्रोधसे भर गये और उछलकर उसके मञ्चके ऊपर चढ़ गये। अपनी मूर्तिमान् मृत्युको आता देख कंस तुरंत उठकर खड़ा हो गया और उस मदमत्त नरेशने श्रीकृष्णको डाँट बताते हुए ढाल-तलवार हाथमें ले ली। श्रीकृष्णने ढाल-तलवार लिये हुए कंसको सहसा दोनों हाथोंसे उसी प्रकार पकड़ लिया, जैसे पक्षिराज गरुडने अपनी चोंचके दो भागोंद्वारा किसी विषधर सर्पको दबा लिया हो। कंसके हाथसे तलवार छूटकर गिर गयी। ढाल भी दूर जा पड़ी। वह बलवान् वीर बल लगाकर श्रीकृष्णकी भुजाओंके बन्धनसे उसी प्रकार निकल गया, जैसे पुण्डरीक नाग गरुडकी चोंचसे छूट निकला हो॥ २१–२४॥

वे दोनों बलवान् वीर उस मञ्चपर वेगसे एक-दूसरेको रौंदते हुए उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे पर्वतके शिखरपर दो सिंह परस्पर जूझते हुए शोभा पा रहे हों। कंस बलपूर्वक उछलकर सौ हाथ ऊपर आकाशमें चला गया। फिर श्रीकृष्णने भी उछलकर उसे इस प्रकार पकड़ लिया, मानो एक बाज पक्षीने दूसरे बाज पक्षीको आकाशमें धर दबोचा हो। उस प्रचण्ड दैत्यपुंगव कंसको भुजदण्डोंसे पकड़कर तीनों लोकोंका बल धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने चारों ओर घुमाना आरम्भ किया। फिर रोषसे भरकर उन्होंने कंसको आकाशसे उस मञ्चपर ही दे मारा। मञ्चके स्तम्भ-दण्ड उसी प्रकार टूट गये, जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष टूट जाता है। आकाशसे नीचे गिरनेपर भी वज्रतुल्य अङ्गोंवाला कंस मन-ही-मन किंचित् व्याकुल होकर सहसा उठ गया और महात्मा श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगा। भगवान् गोविन्दने पुनः उसे बाहुदण्डोंद्वारा उठाकर मञ्चपर फेंक दिया और उसकी छातीपर चढ़कर माधवने उसका मुकुट उतार लिया। फिर तुरंत उसके केश पकड़कर स्वयं श्रीहरिने उसे मञ्चसे रङ्गभूमिमें उसी प्रकार पटक दिया, जैसे किसीने शैल-शिखरसे किसी भारी शिलाखण्डको नीचे गिरा दिया हो। फिर सबके आधारभूत, अनन्त-पराक्रमी, आदि-अन्तरहित, सनातन भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भी उसके ऊपर वेगसे कूद पड़े॥ २५––३२॥

राजन्! इस प्रकार उन दोनोंके गिरनेसे वहाँका भूमण्डल सहसा थालीकी भाँति गहरा हो गया और दो घड़ीतक धरती काँपती रही। नरेश्वर! श्रीकृष्णने उस मरे हुए भोजराजके शवको सबके देखते-देखते वहाँकी भूमिपर उसी प्रकार घसीटा, जैसे सिंहने मरे हुए गजराजको खींचा हो। नरेश्वर! उस समय इधर-उधर दौड़ते हुए भूपालोंका हाहाकार सुनायी देने लगा। महाबली कंसने वैर-भावसे देवेश्वर श्रीकृष्णका भजन करके उसी प्रकार उनका सारूप्य प्राप्त कर लिया, जैसे कीड़ा भृङ्गीके चिन्तनसे उसीका रूप ग्रहण कर लेता है॥ ३३–३५½॥

कंसको धराशायी हुआ देख उसके आठ महाबली भाई सुहुत, सृष्टि, न्यग्रोध, तुष्टिमान्, राष्ट्रपालक, सुनामा, कङ्क और शङ्कु—क्रोधसे ओष्ठ फड़फड़ाते हुए ढाल और तलवार ले युद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णपर टूट पड़े। उन्हें आते देख रोहिणीनन्दन बलरामने मुद्गर हाथमें लेकर उसी प्रकार उनके निकट हुंकार किया, जैसे सिंह मृगोंको देखकर दहाड़ता है। मिथिलेश्वर! उस हुंकारसे ही उनपर इतना भय छा गया कि उनके हाथोंसे शस्त्र उसी प्रकार गिर पड़े, जैसे डंडा मारनेसे आमके फल गिरते हैं। निःशस्त्र होनेपर भी उन महावीरोंने बलरामको चारों ओरसे मुक्कोंद्वारा मारना आरम्भ किया—ठीक उसी तरह जैसे हाथी किसी पर्वतको अपनी सूँड़से इधर-उधरसे पीटते हों। बलरामजीने सृष्टि और सुनामाको मुद्गरसे मार डाला, न्यग्रोधको भुजाओंके वेगसे धराशायी कर दिया और कङ्कको बायें हाथसे मार गिराया। माधवने शङ्कु, सुहुत और तुष्टिमान्को बायें पैरसे कुचल दिया तथा राष्ट्रपालको दाहिने पैरके आघातसे कालके गालमें भेज दिया। इस प्रकार आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति वे आठों वीर सहसा धराशायी हो गये। विदेहराज! उन सबकी ज्योति भगवान्में लीन हो गयी॥ ३६–४३॥

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। उस समय चारों ओर जय-जयकार होने लगी। देवतालोग उसी क्षण नन्दनवनके फूलोंकी वर्षा करने लगे। विद्याधरियाँ और गन्धर्वाङ्गनाएँ हर्षसे विह्वल हो नृत्य करने लगीं। विद्याधर, गन्धर्व और किंनर भगवान्का यश गाने लगे। ब्रह्मा आदि देवता, मुनि और सिद्ध विमानोंद्वारा भगवान्का दर्शन करनेके लिये आये। वे वैदिक-मन्त्रोंका पाठ करते हुए दिव्य वाणीद्वारा बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाइयोंकी स्तुति करने लगे॥ ४४–४६॥

तदनन्तर कंसकी अस्ति-प्राप्ति आदि रानियाँ हाथोंसे छाती पीटती हुई महलसे बाहर निकलीं और प्राप्त हुए वैधव्यके दुःखसे दुखी हो विलाप करने लगीं॥ ४७॥

स्त्रियाँ बोलीं—हा नाथ! हे युद्धप्रिय! हे महाबली वीर! तुम कहाँ चले गये? तुम तो त्रिभुवनविजयी तथा साक्षात् देवताओंके लिये भी दुर्जय वीर थे। तुमने निर्दय होकर अपनी बहिनके नवजात बच्चोंकी हत्या की थी और दस दिनसे कम और अधिक उम्रवाले दूसरे-दूसरे बालकोंका भी बलपूर्वक वध कर डाला; उसी घोर पापके कारण तुम ऐसी दशाको प्राप्त हुए हो॥ ४८–५०॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार आँसूभरी आँखें एवं मुखवाली दीन दुखी राजरानियोंको धीरज देकर लोकभावन भगवान्ने यमुनाके तटपर श्रीवसुदेवनन्दनसे शुभ चिताएँ बनवायीं और मारे गये मामाओंकी पारलौकिक क्रियाएँ करवाकर सबको समझाया॥ ५१-५२॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कंसका वध' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

श्रीकृष्णद्वारा वसुदेव-देवकीकी बन्धनसे मुक्ति; श्रीकृष्ण और बलरामका गुरुकुलमें विद्याध्ययन तथा गुरुदक्षिणाके रूपमें गुरुके मरे हुए पुत्रको यमलोकसे लाकर लौटाना; श्रीअक्रूरको हस्तिनापुर भेजना तथा कुब्जाका मनोरथ पूर्ण करना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम साक्षात् वृष्णिवंशियोंसे घिरे हुए देवकी और वसुदेवके समीप गये। नरेश्वर! अपने दोनों पुत्रोंको देखकर उन दोनोंके बन्धन उसी प्रकार स्वतः ढीले पड़ गये, जैसे गरुड़को आया देख नागपाशके बन्धन स्वतः खुल जाते हैं॥ १-२॥

बलरामसहित श्रीहरिने माता-पिताको अपने प्रभावके ज्ञानसे सम्पन्न देख तत्काल अपनी माया फैला दी, जो बलपूर्वक जगत्को मोह लेनेवाली है। बलराम और कृष्ण मेरे पुत्र हैं, यह जानकर वसुदेवजी मोहसे व्याकुल हो गये और आँसू बहाते हुए देवकीके साथ सहसा उठकर उन्होंने दोनों पुत्रोंको हृदयसे लगा लिया। तब वृष्णिवंशियोंसे घिरे हुए

श्रीहरिने उन दोनोंको आश्वासन दे अपने नाना उग्रसेनको मथुराका राजा बना दिया। कंसके भयसे दूसरे देशोंमें भगे हुए यादवोंको बुलाकर भगवान्‌ने प्रेमपूर्वक उन्हें यदुपुरीमें कुटुम्बसहित रहनेके लिये स्थान दिया। गोपगणोंके साथ अपने घरको जानेके लिये उद्यत नन्दराजको प्रणाम बलरामसहित श्रीकृष्णने उन्हें अपनी मायासे मोहित-सा करते हुए कहा- 'तात! अब आप इसी मथुरापुरीमें निवास कीजिये। यदि आपके मनमें यहाँसे जानेकी इच्छा उठ खड़ी हुई हो, तो जाइये। मैं भी यदुवंशियोंकी व्यवस्था करके भैया बलरामके साथ आपके पास आ जाऊँगा' ॥ ३-८ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार बलराम और श्रीकृष्णके द्वारा पूजित एवं सम्मानित नन्दराज वसुदेवजीको हृदयसे लगाकर प्रेमातुर हो व्रजको चले गये। वसुदेवजीने श्रीकृष्णके जन्म नक्षत्रपर जो पहले दस लाख गोदान करनेका संकल्प किया था, उसे पूरा करनेके लिये उतनी गौओंको वस्त्र और मालाओंसे अलंकृत करके ब्राह्मणोंको दे दिया। फिर धर्मज्ञ वसुदेवने गर्गाचार्यको बुलाकर श्रीकृष्ण और बलभद्रका विधिवत् यज्ञोपवीत-संस्कार करवाया। तदनन्तर समस्त विद्याओंका अध्ययन करनेके लिये उद्यत हो परमेश्वर बलराम और श्रीकृष्ण साधारण जनोंकी भाँति गुरु सांदीपनिके पास आये। गुरुकी उत्तम सेवा करके दोनों माधवोंने थोड़े ही समयमें सारी विद्याएँ पढ़ लीं और वे दोनों समस्त विद्वानोंके शिरोमणि हो गये। तत्पश्चात् वे दोनों भाई हाथ जोड़कर गुरुजीको दक्षिणा देनेके लिये उद्यत हुए। उस समय उन ब्राह्मण गुरुने उन दोनोंसे दक्षिणामें अपने मरे हुए पुत्रको माँगा। तब वे दोनों भाई सुनहरे साज सामानोंसे युक्त रथपर आरूढ़ हो, मन-इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रभासतीर्थमें समुद्रके निकट गये। दोनों ही भयानक पराक्रमी थे। उन्हें आया जान समुद्र तत्काल काँप उठा और रत्नोंकी उत्तम भेंट ले आकर, दोनों हाथ जोड़ उनके चरणप्रान्तमें पड़ गया। उससे भगवान्‌ने कहा—'तुम मेरे गुरुदेवके पुत्रको शीघ्र ही लौटा दो। तुमने अपनी प्रचण्ड लहरोंके घटाटोपसे उस ब्राह्मण-बालकका अपहरण कर लिया था' ॥ ९-१७ ॥

समुद्र बोला—भगवन्! देवदेवेश्वर! मैंने उस ब्राह्मण-बालकका अपहरण नहीं किया है। उसका हरण तो शङ्खरूपधारी असुर पञ्चजनने किया है। वह बलिष्ठ दैत्यराज सदा मेरे उदरमें निवास करता है। देव! वह देवताओंके लिये भी भयकारक है, अतः आपको उसे जीत लेना चाहिये ॥ १८-१९ ॥

नारदजी कहते हैं—समुद्रके यों कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कमरमें दृढ़तापूर्वक वस्त्र बाँध लिया और वे भयंकर शब्द करनेवाले उस समुद्रमें बड़े वेगसे कूद पड़े। विदेहराज! त्रिलोकीका भार धारण करनेवाले श्रीकृष्णके कूदनेसे वह समुद्र इस प्रकार अत्यन्त काँपने लगा, मानो वज्रकूट गिरिके* द्वारा उसे मथ डाला गया हो। तब वीर पञ्चजन दैत्य युद्ध करनेके लिये सहसा श्रीकृष्णके सामने आया। उसने माधवपर अपना शूल चला दिया, किंतु उस शूलको हाथमें लेकर श्रीकृष्णने उसीके द्वारा उसपर आघात किया। उस आघातसे मूर्च्छित हो वह समुद्रमें गिर पड़ा। फिर सहसा उठकर कुछ व्याकुलचित्त हुए पञ्चजनने देवेश्वर श्रीहरिको इस प्रकार अपने मस्तकसे मारा, मानो किसी सर्पने पक्षिराज गरुडपर अपने फनसे प्रहार किया हो। तब साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिने कुपित होकर बड़े वेगसे उसके मस्तकपर मुक्का मारा। श्रीकृष्णके मुक्केकी मारसे तत्काल उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। विदेहराज! उसके शरीरसे निकली हुई ज्योति घनश्याम श्रीकृष्णमें लीन हो गयी। इस प्रकार पञ्चजनको मारकर और उसके शरीरसे उत्पन्न शङ्खको साथ ले, वे श्रीकृष्ण सहसा महासागरसे निकले और रथपर आ बैठे ॥ २०-२७ ॥

तदनन्तर मनोहर बलराम और श्रीकृष्ण वायुके समान वेगशाली रथके द्वारा यमराजकी विशाल पुरी संयमनीमें गये। वहाँ उन्होंने मेघ-गर्जनाके समान भयंकर लोक-प्रचण्ड पाञ्चजन्यकी ध्वनि सब ओर फैला दी। उसे सुनकर सभासदोंसहित यमराज काँप उठे। यमपुरीके चौरासी लाख नरकोंमें पड़े हुए पापियोंमेंसे जिन-जिनके कानोंमें वह ध्वनि पड़ी, वे सब-के-सब मोक्ष पा गये। यमराज उसी क्षण पूजा और उपहारकी सामग्री लेकर श्रीकृष्ण-बलरामके चरणप्रान्तमें आ गिरे। वे उनके तेजसे पराभूत हो गये थे, अतः हाथ जोड़कर बोले ॥ २८-३१ ॥

यमराजने कहा—हे हरे! हे कृपासिन्धो! हे महाबली बलराम! आप दोनों असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति तथा परिपूर्णतम परमेश्वर हैं। आप दोनों देवता पुराण-पुरुष, सबसे महान्, सर्वेश्वर तथा सम्पूर्ण जगत्‌के लोगोंके अधीश्वर हैं। आज भी आप दोनों सबके ऊपर विराजमान

हैं । परमेश्वरो ! आप अपनी वाणीद्वारा हमें आज्ञा दें कि हमें क्या सेवा करनी है* ॥ ३२-३३ ॥

श्रीभगवान् बोले—महामते लोकपाल यम ! मेरे गुरुपुत्रको ले आओ और मेरी वाणीका आदर करते हुए कहीं भी न्यायोचित रीतिसे राज्य करो ॥ ३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उसी समय यमराजने गुरुपुत्रको ले आकर श्रीकृष्णके हाथमें सौंप दिया । फिर साक्षात् श्रीहरि उसे लेकर अवन्तिकापुरीमें आये और उन्होंने श्रीगुरुको उनका वह शिशुपुत्र समर्पित कर दिया । फिर गुरुके आशीर्वादसे सम्भावित हो, उन दोनों भाइयोंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और वे रथपर चढ़कर मथुरापुरीमें आ गये । वहाँ यदुवंशियोंने उनका बड़ा सम्मान किया ॥ ३५-३६ ॥

एक दिन समस्त कारणोंके भी कारण श्रीकृष्ण अपने भक्त पाण्डवोंका स्मरण करते हुए बलराम-जीके साथ अक्रूरके घर गये । नरेश्वर ! अक्रूर सहसा उठकर खड़े हो गये और बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें हृदयसे लगाकर, षोडश उपचारोंद्वारा उनका पूजन करके, हाथ जोड़ सामने खड़े हो गये । उनका मनोरथ पूर्ण हो चुका था । उन्होंने प्रेमानन्दके आँसू बहाते हुए उनसे कहा ॥ ३७–३९ ॥

अक्रूर बोले—प्रभुओ ! जिन्होंने मार्गमें मैंने जो कुछ कहा या सोचा था, वह सब पूर्ण कर दिया, उन्हीं आप दोनों—बलराम और श्रीकृष्णको मेरा नित्य बारंबार नमस्कार है । आप दोनों समस्त लोकोंमें सर्वाधिक सुन्दर हैं । जन-भूषणोंमें भी उत्तम हैं । सम्पूर्ण जगत्‌को बाहर और भीतरसे भी प्रकाशित करनेवाले हैं । इस समय गौ, ब्राह्मण, साधु, वेद, धर्म तथा देवताओंकी रक्षाके लिये आप दोनों यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं । परिपूर्ण तेजस्वी आप दोनों परमेश्वर कंसादि दैत्योंका विनाश करनेके लिये गोलोकधामसे भारतवर्षके भूमण्डलमें पधारे हैं । मैं नित्य-निरन्तर आप दोनोंको प्रणाम करता हूँ* ॥ ४०–४२ ॥

श्रीभगवान् बोले—आप हमारे बड़े-बूढ़े गुरुजन और धैर्यवान् हैं । मैं आपके आगे बालक हूँ । महामते ! संत पुरुष कभी अपनी बड़ाई नहीं करते । दानपते ! पाण्डवोंका कुशल-समाचार जाननेके लिये आप शीघ्र हस्तिनापुर जाइये और वहाँ उन सबसे मिल-जुलकर लौट आइये ॥ ४३-४४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उस समय अक्रूरसे यों कहकर समस्त कार्योंका सम्पादन करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वसुदेवजीके भवनमें लौट आये । उधर अक्रूर कौरवेन्द्रपुरी हस्तिनापुरमें जाकर पाण्डवोंसे मिले और, पुनः वहाँसे लौटकर उन्होंने श्रीकृष्णसे सारा समाचार कह सुनाया ॥ ४५-४६ ॥

अक्रूरने कहा—भगवन् ! पाण्डव लोग कौरवोंके दिये हुए दुःख भोग रहे है । आप दोनोंके सिवा दूसरा कोई भी उनकी सहायता करनेवाला नहीं है । पाण्डुके मर जानेपर पृथाके सभी पुत्र आप दोनोंके चरणारविन्दोंमें ही चित्त लगाये बैठे हैं ॥ ४७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! अक्रूरजीके मुखसे यह समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कौरवोंका आधा राज्य बलपूर्वक पाण्डवोंको दे दिया । तदनन्तर अपनी कही हुई बातको याद करके भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवको साथ ले कुब्जाके महामङ्गलसंयुक्त भवनमें गये । श्रीहरिको आया देख परम-रूपवती कुब्जाने तुरंत ही भक्तिभावसे पाद्य आदि उपचार समर्पित करके अपने प्राणवल्लभका पूजन किया । कुब्जाके उत्तम भवनकी दीवारोंमें सोने और रत्न जड़े गये थे । उस रूपवती रमणीके साथ श्रीहरि उसी प्रकार शोभित हुए,

---

* हे हरे हे कृपासिन्धो राम राम महाबल ।
असंख्यब्रह्माण्डपती परिपूर्णतमौ युवाम् ॥
देवौ पुराणौ पुरुषौ महान्तौ
सर्वेश्वरौ सर्वजगज्जनेशौ ।
अत्रैव सर्वोपरिवर्तमानौ
गिरा निजाज्ञां वदतं परेशौ ॥
(गर्ग०, मथुरा० ९ । ३२-३३)

* युवाभ्यां रामकृष्णाभ्यां ताभ्यां नित्यं नमो नमः ।
याभ्यां मार्गे यदुक्तं मे पूर्णं तच्च कृतं प्रभू ॥
लोकाभिरामौ जनभूषणोत्तमौ चान्तर्बहिः सर्वजगत्प्रदीपकौ ।
गोविप्रसाधुश्रुतिधर्मदेवतारक्षार्थमत्रैव यदोः कुले गतौ ॥
कंसादिदैत्येन्द्रविनाशहेतवे गोलोकलोकात् परिपूर्णतेजसौ ।
समागतौ भारतभूमिमण्डले युवां परेशौ सततं नतोऽस्म्यहम् ॥
(गर्ग०, मथुरा० ९ । ४०–४२)

अक्रूरके द्वारा श्रीबलराम-कृष्णका स्तवन

कुब्जाके द्वारा श्रीकृष्णका सत्कार [मथुरा० अ० ९

जैसे वैकुण्ठधाममें रमाके साथ रमापति विष्णु शोभा पाते हैं। राजन्! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जिस मैरन्ध्रीके पति हो गये, उसका महान् तप कैसा आश्चर्यजनक है। विदेहराज! वहाँ लीलासे मानव-शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरि आठ दिनोंतक टिके रहकर नवें दिन वसुदेवजीके भवनमें लौट आये। विदेहनरेश! मथुरामें इस प्रकार जो श्रीकृष्णका चरित्र है, वह समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा आयुकी वृद्धिका उत्तम साधन है। वह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला तथा श्रीकृष्णको भी वशमें कर लेनेवाला है। तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुमसे कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ४८—५५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यदुसौख्य' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

धोबी, दर्जी और सुदामा मालीके पूर्वजन्मका परिचय

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! आपके मुखसे मैंने भगवान् श्रीकृष्णके पावन चरित्रका श्रवण किया, किंतु पुनः अधिकाधिक सुननेकी इच्छा हो रही है। जैसे प्यासा प्राणी जलकी इच्छा करता है, उसी तरह मेरा मन आज श्रीकृष्ण-चरित्रको सुनना चाहता है। आपने कंसके जन्म-कर्मोंका वर्णन किया और मैंने सुना। केशी आदि बड़े-बड़े दैत्योंके पूर्वजन्मकी बातें भी मैंने सुनीं। अब यह जानना चाहता हूँ कि अहो! जिसकी महती ज्योति श्रीकृष्णमें लीन हुई, वह धोबी पूर्वजन्ममें कौन था? और श्रीहरिने उसका वध क्यों किया? ॥ १—३ ॥

नारदजीने कहा—विदेहराज! त्रेतायुगकी बात है, अयोध्यापुरीमें श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे। उनके राज्य-कालमें प्रजाकी मनोवृत्ति एवं दुःख-सुख जाननेके लिये गुप्तचर घूमा करते थे। एक दिन उन गुप्तचरोंके सुनते हुए किसी धोबीने अपनी भार्यासे कहा—'तू दुष्टा है और दूसरेके घरमें रहकर आयी है; इसलिये अब तुझे मैं नहीं रक्खूँगा। स्त्रीके लोभी राजा राम भले ही सीताको रख लें, किंतु मैं तुझे नहीं स्वीकार करूँगा।' इस प्रकार बहुत-से लोगोंके मुखसे आक्षेपयुक्त बात सुनकर श्रीराघवेन्द्रने लोकापवादके भयसे सहसा सीताको वनमें त्याग दिया। रघु-कुल-तिलक श्रीरामने उस धोबीको दण्ड देनेकी इच्छा नहीं की। वही द्वापरके अन्तमें मथुरा-पुरीमें फिर धोबी ही हुआ। उसने सीताके प्रति जो कुवाच्य कहा था, उस दोषकी शान्तिके लिये श्रीहरिने स्वयं ही उसका वध किया, तथापि उन श्रीकरुणानिधिने उस धोबीको मोक्ष प्रदान किया। राजन्! दयालु श्रीकृष्णचन्द्रका यह परम अद्भुत चरित्र मैंने तुमसे कहा। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो? ॥ ४—९ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! पूर्वजन्ममें वह दर्जी कौन था, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने अपना सारूप्य प्रदान किया? ॥ १० ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! पहले मिथिलापुरीमें एक दर्जी था, जो भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्तिभाव रखता था। उसने श्रीरामके विवाहके समय राजा सीरध्वज जनककी आज्ञासे श्रीराम और लक्ष्मणके दूल्हवेषके लिये महीन डोरोंसे कपड़े सीये थे। वह वस्त्र सीनेकी कलामें अत्यन्त कुशल था। राजन्! करोड़ों कामदेवोंके समान लावण्यवाले सुन्दर श्रीराम और लक्ष्मणको देखकर वह महामनस्वी दर्जी मोहित हो गया था। उसने मन-ही-मन यह इच्छा की कि मैं कभी अपने हाथोंसे इनके अङ्गोंमें वस्त्र पहिनाऊँ। श्रीरघुनाथजी सर्वज्ञ हैं। उन्होंने मन-ही-मन उसे वर दे दिया कि 'द्वापरके अन्तमें भारतीय व्रजमण्डलमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' श्रीरामचन्द्रजीके वरदानसे वही यह दर्जी मथुरामें प्रकट हुआ था, जिसने उन दोनों बन्धुओंकी वेष-रचना करके उनका सारूप्य प्राप्त कर लिया ॥ ११—१६ ॥

बहुलाश्वने पूछा—ब्रह्मन्! सुदामा मालीने, जिसके घरमें परम मनोहर बलराम और श्रीकृष्ण स्वयं पधारे थे, कौन-सा पुण्य किया था? बताइये ॥ १७ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! राजराज कुबेरका एक परम रमणीय सुन्दर वन है, जो चैत्ररथ-वनके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें फूल लगानेवाला एक माली था, जो हेम-

मालीके नामसे पुकारा जाता था। वह भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर, शान्त, दानशील तथा महान् सत्सङ्गी था। उसने भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये देवताओंकी पूजा की। पाँच हजार वर्षोंतक प्रतिदिन तीन सौ कमल पुष्प लेकर वह भगवान् शंकरके आगे रखता और उन्हें प्रणाम करता था। एक समय करुणानिधि त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हो बोले- 'परम बुद्धिमान् मालाकार! तुम इच्छानुसार वर माँगो।' तब हेममालीने हाथ जोड़कर महादेवजीको नमस्कार किया और परिक्रमा करके उनके सामने खड़ा हो मस्तक झुकाकर कहा॥१८-२२॥

हेममाली बोला—भगवन्! परिपूर्णतम प्रभु श्रीकृष्ण कभी मेरे घर पधारें और मैं इन नेत्रोंसे उनका प्रत्यक्ष दर्शन करूँ—ऐसी मेरी इच्छा है। आपके वरदानसे मेरी यह अभिलाषा पूर्ण हो॥२३॥

श्रीमहादेवजीने कहा—महामते! द्वापरके अन्तमें भारतवर्षकी मथुरापुरीमें तुम्हारा यह मनोरथ सफल होगा, इसमें संशय नहीं है॥२४॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! महादेवजीके वरदानसे वह महामना हेममाली ही द्वापरके अन्तमें सुदामा माली हुआ था। इसीलिये साक्षात् बलराम और श्रीकृष्ण भगवान् शिवकी वाणी सत्य करनेके लिये उसके घर पधारे थे। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥२५-२६॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'धोबी, दर्जी और सुदामा मालीका उपाख्यान' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

कुब्जा और कुवलयापीडके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन

श्रीबहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! सैरन्ध्रीने पूर्वकालमें कौन-सा परम दुष्कर तप किया था, जिससे देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ भगवान् श्रीकृष्ण उसपर रीझ गये?॥१॥

नारदजीने कहा—राजन्! करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी जब पञ्चवटीमें रहते थे, उस समय शूर्पणखा नामक राक्षसी उन्हें देखकर अत्यन्त मोहित हो गयी। 'श्रीरघुनाथजी एकपत्नीव्रतके पालनमें तत्पर हैं, अतः इनके मनमें दूसरी किसी स्त्रीके प्रति मोह नहीं है'—यह विचारकर रावणकी बहिन क्रोधसे सीताको खा जानेके लिये दौड़ी। उस समय श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मणने रुष्ट होकर तीखी धारवाली तलवारसे तत्काल उसकी नाक और कान काट लिये। नाक कट जानेपर उसने लङ्कामें जाकर रावणको यह सब समाचार बता दिया और स्वयं अत्यन्त खिन्नचित्त होकर वह पुष्कर-तीर्थमें चली गयी। वहाँ जलमें खड़ी हो भगवान् शंकरका ध्यान तथा श्रीरामको पतिरूपमें पानेकी कामना करती हुई शूर्पणखाने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। इससे प्रसन्न हो देवाधिदेव भगवान् उमापति पुष्कर-तीर्थमें आकर बोले—'तुम वर माँगो'॥२-७॥

शूर्पणखाने कहा—परम देवदेव! आप समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं; अतः मुझे यह वर दीजिये कि सत्पुरुषोंके प्रिय श्रीरामचन्द्रजी मेरे पति हों॥८॥

शिवने कहा—राक्षसी! सुनो। यह वर तुम्हारे लिये अभी सफल नहीं होगा। द्वापरके अन्तमें मथुरापुरीमें तुम्हारी यह कामना पूरी होगी, इसमें संशय नहीं है॥९॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! महामते! वही इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली शूर्पणखा नामक राक्षसी श्रीमथुरापुरीमें 'कुब्जा' नामसे प्रसिद्ध हुई थी। महादेवजीके वरसे ही वह श्रीकृष्णकी प्रिया हुई। यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें बताया। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥१०-११॥

बहुलाश्व बोले—नारदजी! यह कुवलयापीड पूर्व-जन्ममें कौन था? कैसे हाथीकी योनिको प्राप्त हुआ? और किस पुण्यसे भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हुआ?॥१२॥

नारदजीने कहा—राजा बलिके एक विशालकाय एवं बलवान् पुत्र था, जिसका नाम था—मन्दगति। वह समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा एक लाख हाथियोंके समान बलशाली था। एक समय श्रीरङ्गनाथकी यात्राके लिये वह घरसे निकला और जन-समुदायमें सम्मिलित हो

गया। मन्दगति मतवाले हाथीके समान वेगसे भुजाएँ हिला-हिलाकर लोगोंको कुचलता जा रहा था। रास्तेमें उसकी भुजाओंके वेगसे बूढ़े त्रित मुनि गिर पड़े। उन्होंने कुपित होकर उस मतवाले बलिष्ठ बलिकुमारको शाप दे दिया॥ १३-१५॥

त्रितने कहा—'दुर्मते! तू हाथीके समान मदोन्मत्त होकर रङ्ग-यात्रामें लोगोंको कुचलता जा रहा है, अतः हाथी हो जा।' इस प्रकार शाप मिलनेपर वह बलवान् दैत्य मन्दगति तत्काल तेजोभ्रष्ट हो गया और उसका शरीर केंचुलकी भाँति छूटकर नीचे जा गिरा। मुनिके प्रभावको जाननेवाले उस दैत्यने तुरंत ही हाथ जोड़ प्रणाम और परिक्रमा करके त्रित मुनिसे कहा॥ १६-१८॥

मन्दगति बोला—हे मुने! कृपासिन्धो! आप द्विजोंमें श्रेष्ठ योगीन्द्र हैं। इस गज-योनिसे मुझे कब छुटकारा मिलेगा, यह मुझे शीघ्र बताइये। मुने! आजसे आप-जैसे महात्माओंकी अवहेलना मेरेद्वारा कभी नहीं होगी। ब्रह्मन्! आप-जैसे मुनि वर और शाप—दोनोंको देनेमें समर्थ हैं॥ १९-२०॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! उस दैत्यद्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर महामुनि त्रितका क्रोध दूर हो गया। फिर उन कृपालु ब्राह्मण-शिरोमणिने उस दैत्यसे कहा॥ २१॥

त्रित बोले—दैत्यराज! मेरी बात झूठी नहीं हो सकती, तथापि तुम्हारी भक्तिसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इसलिये तुम्हें ऐसा दिव्य वर प्रदान करूँगा, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। दैत्येन्द्र! शोक न करो। श्रीहरिकी नगरी मथुरामें श्रीकृष्णके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें संशय नहीं है॥ २२-२३॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! वही यह मन्दगति दैत्य विन्ध्यपर्वतपर कुवलयापीड नामसे विख्यात हाथी हुआ, जो बलमें अकेला ही दस हजार हाथियोंके समान था। उसे मगधराज जरासंधने लाख हाथियोंके द्वारा वनमें पकड़ा। विदेहराज! फिर उसने कंसको दहेजमें वह हाथी दे दिया। त्रित मुनिके कथनानुसार उसका तेज श्रीकृष्णमें लीन हुआ। यह प्रसङ्ग मैंने तुमसे कहा, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २४-२६॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कुब्जा और कुवलयापीडके पूर्वजन्मका वर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

चाणूर आदि मल्ल, कंसके छोटे भाइयों तथा पञ्चजन दैत्यके पूर्वजन्मगत वृत्तान्तका वर्णन

बहुलाश्व बोले—चाणूर आदि जो मल्ल थे, वे पूर्वजन्ममें कौन थे, जो यहाँ मथुरापुरीमें आये थे? अहो! उनका कैसा सौभाग्य है कि साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रके साथ उन्हें युद्धका अवसर मिला॥ १॥

नारदजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें अमरावतीपुरीमें उतथ्य नामसे प्रसिद्ध महामुनि निवास करते थे। उनके पाँच पुत्र हुए, जो कामदेवके समान कान्तिमान् थे। उन लोगोंने विद्या, स्वाध्याय और जप छोड़कर मदसे उन्मत्त हो राजा बलिके यहाँ जाकर प्रतिदिन मल्लयुद्धकी शिक्षा लेनी आरम्भ की। अपने पुत्रोंको ब्राह्मणोचित कर्मसे सर्वथा भ्रष्ट, वेदाध्ययनसे रहित तथा मदमत्त हुआ देख मुनिश्रेष्ठ उतथ्यने रोषपूर्वक उनसे कहा॥ २-४॥

उतथ्य बोले—शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान तथा आस्तिकता—ये ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं। शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्धभूमिमें पीठ न दिखाना, दान तथा ऐश्वर्य—ये क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं। कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य—ये वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं तथा सेवात्मक कर्म शूद्रके लिये भी स्वाभाविक है। दुर्बनो! तुमलोग ब्राह्मणके पुत्र होकर भी ब्राह्मणोचित कर्मसे दूर रहकर क्षत्रियोचित मल्लयुद्धका कार्य कैसे करते हो? अतः तुमलोग भारतभूमिपर मल्ल हो जाओ और असुरोंके सङ्गसे शीघ्र ही दुर्बन बन जाओ॥ ५-९॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! वे उतथ्यके पुत्र ही पृथ्वीपर मल्लोंके रूपमें उत्पन्न हुए। नरेश्वर! उन्होंने श्रीकृष्णके शरीरका स्पर्श करनेमात्रसे परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। इस प्रकार मैंने चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और

बोला—इन मल्लोंके पूर्वचरित्रका वर्णन किया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १०-११ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने ! कंसके छोटे भाई जो कङ्क, न्यग्रोध आदि आठ योद्धा थे, वे सब पूर्वजन्ममें कौन थे ? जो कि परममोक्षको प्राप्त हुए, यह बताइये ! ॥ १२ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! पूर्वकालकी बात है, कुबेरकी राजधानी अलकामें 'देवयक्ष' नामसे प्रसिद्ध एक यक्ष रहता था । वह ज्ञानी, ज्ञानपरायण, शिवभक्तिसे सम्मानित तथा महातेजस्वी था । उसके आठ पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं— देवकूट, महागिरि, गण्ड, दण्ड, प्रचण्ड, खण्ड, अखण्ड और पृथु । एक दिन शिवपूजाके निमित्त अरुणोदयकी वेलामें एक सहस्र पुण्डरीक पुष्प लानेके लिये देवयक्षकी आज्ञा पाकर वे सब गये । उन्होंने भ्रमरोंके गुञ्जारवसे युक्त सहस्र कमल-पुष्प मानसरोवरसे लाकर, उनकी गन्धको लोभसे सूँघकर पिताको अर्पित किये । फूलोंको उच्छिष्ट करनेके दोषसे शिवपूजासे तिरस्कृत हुए वे मूढ़ यक्ष तीन जन्मोंके लिये असुरयोनिको प्राप्त हुए । मिथिलेश्वर ! विदेहराज ! बलदेवजीके कल्याणकारी हाथोंसे मारे जाकर वे दोषसे मुक्त हो गये और परममोक्षको प्राप्त हुए । नरेश्वर ! कंसके छोटे भाइयोंके पूर्वजन्मका यह वृत्तान्त मैंने कहा, तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १३-१९ ॥

बहुलाश्वने पूछा—ब्रह्मन् ! यह शङ्खरूपधारी दैत्य पञ्चजन पूर्वजन्ममें कौन था, जिसकी अस्थियोंका शङ्ख भगवान् श्रीकृष्णके करकमलमें सुशोभित हुआ ? ॥ २० ॥

नारदजी कहते हैं—विदेहराज ! पूर्वकालसे ही ये चक्र आदि त्रिलोकीनाथ श्रीहरिके उपाङ्ग रहे हैं । वे सब-के-सब उनके तेजमें संगृहीत हुए थे । राजन् ! उनमेंसे पाञ्चजन्य शङ्खको बड़ी ऊँची पदवी प्राप्त हुई । वह श्रीकृष्णके मुँहसे लगकर उनके अधरामृतका पान किया करता था ॥ २१-२२ ॥

एक दिन शङ्खराजने मन-ही-मन मानका अनुभव किया और इस प्रकार कहा—'मेरी कान्ति राजहंसके समान श्वेत है । मुझे साक्षात् श्रीहरिने अपने हाथोंसे गृहीत किया है । मैं दक्षिणावर्त शङ्ख हूँ और युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर श्रीकृष्ण मुझे बजाया करते हैं । भगवान् श्रीकृष्णका जो अधरामृत क्षीरसागर-कन्या लक्ष्मीके लिये भी दुर्लभ है, उसे मैं दिन-रात पीता रहता हूँ; अतः मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ ।' विदेहराज ! इस प्रकार मान प्रकट करते हुए पाञ्चजन्य शङ्खको लक्ष्मीने क्रोधपूर्वक शाप दिया—'दुर्मते ! तू दैत्य हो जा ।' वही शङ्खराज समुद्रमें यह पञ्चजन नामक दैत्य हुआ था, जो वैरभावसे भजनके कारण पुनः देवेश्वर श्रीहरिको प्राप्त हुआ । उसकी ज्योति देवेश्वर श्रीकृष्णमें लीन हो गयी और अब वह उन्हींके हाथमें शोभा पाता है । उस शङ्खराजका सौभाग्य अद्भुत है, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २३-२७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'चाणूर आदि मल्लों, कंसके भाइयों तथा पञ्चजन दैत्यके पूर्वजन्मका उपाख्यान' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी आज्ञासे उद्धवका व्रजमें आना और श्रीदामा आदि सखाओंका उनसे श्रीकृष्ण-विरहके दुःखका निवेदन

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! अपने कुटुम्बीजनों तथा जाति-भाइयोंको मथुरापुरीमें निवास देकर यदु-कुल-तिलक श्रीकृष्णने आगे चलकर कौन-कौन-सा कार्य किया ? ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् भक्तवत्सल श्रीकृष्णने गोपी और गोपगणोंसे भरे हुए दीन-दुखी गोकुलका स्मरण किया । अतः एक दिन एकान्तमें अपने सखा भक्त उद्धवको बुलाकर भगवान्‌ने प्रेमगद्गद वाणीमें कहा ॥ २-३ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे सखे ! लता-कुञ्जोंके समुदाय आदिसे अलंकृत सुन्दर व्रजमण्डलमें शीघ्र ही जाओ । गोवर्धन और यमुनाकी शोभासे मनोहर वृन्दावनमें तथा गोप-गोपियोंसे भरे हुए गोकुलमें भी पधारो । मित्र ! मेरा

एक पत्र तो नन्दबाबाको देना और दूसरा यशोदा मैयाके हाथमें देना। सखे! तीसरा पत्र श्रीराधिकाको उनके सुन्दर मन्दिरमें जाकर देना और चौथा मेरे सखा ग्वालबालोंको मेरा शुभ कुशल-समाचार निवेदन करते हुए देना। इसी प्रकार अत्यन्त मोहित हुई गोपाङ्गनाओंके सैकड़ों यूथोंको पृथक्-पृथक् पत्र देने हैं। मेरे पिता नन्दराज बड़े दयालु हैं। उनका मन मुझमें ही लगा रहता है और मेरी मैया यशोदा शीघ्र ही अपने पास बुलानेके लिये मेरा स्मरण करती हैं। तुम तो नीतिशास्त्रके विद्वान् हो; सुन्दर-सुन्दर बातें सुनाकर उन दोनोंके हृदयमें मेरी परम प्रीति धारण कराना। मेरी प्राणवल्लभा राधिका मेरे वियोगसे आतुर है और मेरे बिना मोहवश सारे जगत्को सूना समझती है। उन सबको मेरे वियोगके कारण जो मानसिक व्यथा हो रही है, उसे मेरे संदेश-वचनोंद्वारा शान्त करो; क्योंकि तुम बातचीत करनेमें बड़े कुशल हो। सुदामा आदि ग्वाल-बाल मेरे प्रिय सखा हैं। मुझ अपने मित्रके बिना वे भी मोहसे आतुर हैं, तुम उन्हें भी मित्रकी तरह सुख देना। मैं थोड़े ही समयमें श्रीव्रजधाममें आऊँगा। गोपाङ्गनाएँ मेरे वियोगकी व्यथाके वेगसे व्याकुल हैं। उनका मन मुझमें ही लगा हुआ है। उनके शरीर और प्राण भी मुझमें ही स्थित हैं। मन्त्रिप्रवर! जिन्होंने मेरे लिये अपने लोक-परलोक सब त्याग दिये हैं, उन अबलाओंका भरण-पोषण मैं स्वतः कैसे नहीं करूँगा। उद्धव! वे मेरे आते समय प्राण त्याग देनेको उद्यत थीं। वे आज भी बड़ी कठिनाईसे प्राण धारण करती हैं। मेरे वियोगसे उत्पन्न उनकी मानसिक व्यथाको तुम मेरे संदेश-वचनोंके द्वारा शान्त करो; क्योंकि वार्तालापकी कलामें तुम परम कुशल हो। सखे! मैं पहले जिस रथपर आरूढ़ होकर व्रजसे आया था, उसी रथको, उन्हीं घोड़ों, सारथि और बजती हुई घण्टिकाओंसे सुसज्जित करके अपने साथ ले जाओ। मेरे समान ही रूप बना लो। अभी पीताम्बर, वैजयन्ती माला, सहस्रदल कमल, दिव्य रत्नोंकी प्रभासे मण्डित कुण्डल तथा कोटि बालरवियोंके समान उद्दीप्त कौस्तुभमणि भी धारण कर लो। मेरी उच्चस्वरसे बजनेवाली मनोहर बाँसुरी तथा फूलोंसे सजी हुई जगन्मोहिनी यष्टि (छड़ी) भी ले लो। उद्धव! मेरे ही समान दिव्य सुगन्धसे आवृत सुन्दर चन्दन, मोरपंख और बजते हुए नूपुरोंसे युक्त नटवर-वेष धारण कर लो। इसी तरह मेरा ही मोरपंखका मुकुट तथा दोनों बाजूबंद धारण करके मेरे आदेशसे अभी यथासम्भव शीघ्र जाओ, जाओ॥ ४—१४॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णके यों कहनेपर उद्धवने शीघ्र ही हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा करके रथपर आरूढ़ हो वे व्रजकी ओर चल दिये, जहाँ कोटि-कोटि मनोहर गौएँ दिव्य भूषणोंसे विभूषित हो श्वेत पर्वतके समान दिखायी देती थीं। वे सब-की-सब दूध देनेवाली तरुणी (कलोर), सुशीला, सुरूपा और सद्गुणवती थीं। उनके साथ बछड़े भी थे। उनकी पूँछके बाल पीले थे। चलते समय उनकी मूर्तियाँ बड़ी भव्य दिखायी देती थीं। गलेके घंटों और पैरोंके मञ्जीरोंका झंकार होता रहता था। वे किङ्किणियों (क्षुद्र-घण्टिकाओं) के जालसे मण्डित थे। कितनी ही गौएँ सुवर्णके समान रंगवाली थीं। उनके सींगोंमें सोना मढ़ा गया था तथा नाना प्रकारके हारों और मालाओंसे अलंकृत हुई उन गौओंकी प्रभा सब ओर छिटक रही थी। कोई लाल, कोई हरी, कोई ताँबेके रंगवाली, कोई पीली, कोई श्यामा और कोई चितकबरी थी। उस व्रजमें धूम्रवर्ण और कोयलके-से काले रंगकी भी गौएँ दृष्टिगोचर होती थीं। तात्पर्य यह कि उस व्रजभूमिमें अनेकानेक रंगवाली गौएँ परिलक्षित होती थीं। वे समुद्रकी तरह अथाह दूध देनेवाली थीं। उनके अङ्गोंपर तरुणी स्त्रियोंके हाथोंके छापे लगे हुए थे। हिरनकी भाँति चौकड़ी भरनेवाले बछड़े उन सुन्दर गौओंकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन गौओंके झुंडमें बड़े-बड़े साँड़ इधर-उधर चलते दिखायी देते थे, उनके कंधे और सींग बड़े-बड़े थे। वे सब-के-सब धर्मधुरंधर थे। गोपगण हाथोंमें बेंतकी छड़ी और बाँसुरी लिये हुए थे। उनकी अङ्गकान्ति श्याम दिखायी देती थी। वे कामदेवोंको भी मोहित करनेवाली रागोंमें श्रीकृष्ण-लीलाओंका उच्चस्वरसे गान कर रहे थे। उद्धवको दूरसे आते देख, उन्हें कृष्ण समझकर व्रजके बालक श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे॥ १५—२२॥

गोप बोले—मित्र! ये नन्दनन्दन आ रहे हैं, जो हमारे प्रिय सखा हैं; निस्संदेह वे ही हैं। मेघके समान श्यामकान्ति, शरीरपर पीताम्बर, गलेमें वैजयन्ती माला तथा कानोंमें रत्नमय कुण्डल इनकी शोभा बढ़ाते हैं। वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि, हाथोंमें गोल-गोल कड़े शोभा दे रहे हैं। हाथमें सहस्रदल कमल धारण करके माथेपर वही मुकुट पहने हुए हैं, जो करोड़ों मार्तण्डोंके तेजको तिरस्कृत कर देता है। वे ही घोड़े

और वही किङ्किणीजालसे मण्डित रथ है। इस रथपर बलदेवजी नहीं हैं, अकेले नन्दनन्दन ही दिखायी देते हैं ॥ २४–२६ ॥

नारदजी कहते हैं—विदेहराज ! इस प्रकार बातें करते हुए श्रीदामा आदि गोपाल कृष्णकी ही आकृति धारण करनेवाले कृष्ण-सखा उद्धवके पास रथके चारों ओरसे आ गये। निकट आनेपर वे बोले—'श्रीकृष्ण तो नहीं हैं; किंतु साक्षात् उनके ही समान आकृतिवाला यह पुरुष कौन है ?' इस तरह बोलते हुए उन गोपालोंको नमस्कार करके उद्धवने उन सबको हृदयसे लगाया और अपने स्वामी श्यामसुन्दरकी चर्चा आरम्भ की ॥ २७-२८ ॥

उद्धव बोले—श्रीदामन् ! यह तुम्हारे सखा श्रीकृष्णका दिया हुआ पत्र है, इसमें संशय नहीं है; तुम इसे ग्रहण करो। ग्वाल बालोंसहित तुम शोक न करो। साक्षात् श्रीहरि सकुशल हैं। वे भगवान् यादवोंका महान् कार्य सिद्ध करके बलरामजीके साथ थोड़े ही दिनोंमें यहाँ आयेंगे ॥ २९-३० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उनके हाथके दिये हुए पत्रको पढ़कर श्रीदामा आदि व्रजके बालक बहुत आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें बोले ॥ ३१ ॥

गोपोंने कहा—हे पथिक ! निर्मोही नन्दनन्दनमें ही हमारा तन, वैभव, धन, बल और समस्त अन्तःकरण लगा हुआ है। श्रीकृष्णके बिना हमारा व्रज ही नहीं शून्य हुआ है, हमारे लिये सारा संसार सूना हो गया है। महामते ! श्रीहरिके बिना उनके वियोगके दुःखसे हम व्रजवासियोंके लिये एक-एक क्षण युगके समान, एक-एक घड़ी मन्वन्तरके तुल्य, एक एक प्रहर कल्पके समान तथा एक एक दिन द्विपरार्धके सदृश हो गया है। उद्धव ! हम दिन-रात उसे भुला नहीं पाते। हमारे जीवनमें वह कैसी दुष्ट घड़ी आयी थी, जिसमें श्यामसुन्दर यहाँसे चले गये। यद्यपि हम मित्रताके नाते सदा उनका अपराध करते रहे हैं, तथापि हम वनवासियोंके मनको उन्होंने सदाके लिये हर लिया ॥ ३२–३४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उद्धवका आगमन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

उद्धवका श्रीकृष्ण-सखाओंको आश्वासन; नन्द और यशोदासे बातचीत तथा उनकी प्रेम-लक्षणा-भक्तिसे चकित होकर उद्धवका उन्हें श्रीकृष्णके चरित्र सुनाना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार प्रेम भरे गोपोंसे, जो श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल थे, प्रेमी भक्त उद्धवने विस्मयरहित होकर कहा ॥ १ ॥

उद्धव बोले—व्रजवासियो ! मैं श्रीकृष्णका दास हूँ—उनका प्रेमपात्र तथा एकान्त सेवक हूँ। श्रीहरिने बड़ी उतावलीके साथ आपलोगोंका कुशल-मङ्गल जाननेके लिये मुझे यहाँ भेजा है। यहाँसे मथुरापुरीको लौटकर श्रीहरिसे आपलोगोंकी विरह-वेदना निवेदित करके अपने नेत्रोंके जलसे उनके चरण पखारकर उन्हें प्रसन्न करूँगा और उन्हें साथ लेकर शीघ्र ही आपलोगोंके समीप आऊँगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है, यह कभी झूठी नहीं होगी। गोपालगण ! आपलोग प्रसन्न हों, शोक न करें। आप इस व्रजमें शीघ्र ही श्रीवल्लभ श्रीहरिका दर्शन करेंगे ॥ २–५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार ग्वालोंको आश्वासन दे, रथपर बैठे हुए यदुनन्दन उद्धव श्रीदामा आदि गोपोंके साथ हर्षसे भरकर नन्दगाँवमें प्रविष्ट हुए। उस समय सूर्य समुद्रमें डूब चुके थे। उद्धवका आगमन सुनकर परम बुद्धिमान् नन्दराजने शीघ्र आकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक हृदयसे लगाया और बड़े हर्षसे उनका पूजन—स्वागत-सत्कार किया। जब उद्धवजी भोजन करके शान्तभावसे शय्यापर आसीन हुए, तब नन्दराजने भी शय्यापर स्थित हो गद्गद वाणीमें कहा ॥ ६–८ ॥

नन्द बोले—महामते उद्धव ! क्या मेरे मित्र वसुदेव मथुरापुरीमें अपने पुत्रोंके साथ सकुशल हैं ? सखे ! कंसके मर जानेपर यादव-शिरोमणियोंको इस भूतलपर परम सुख-सुविधाकी प्राप्ति हुई है। क्या कभी बलरामसहित माधव अपनी माता यशोदाको भी याद करते हैं ? यहाँके ग्वाल, गोवर्धन पर्वत, गौओंके समुदाय और व्रज, वृन्दावन,

यमुना-पुलिन अथवा यमुना नदीका भी कभी स्मरण करते हैं ? हा दैव ! अब मैं किस समय बिम्बफलके समान लाल ओठवाले अपने पुत्र कमल-नयन श्यामसुन्दरको बलराम और ग्वाल-बालोंके साथ बार-बार घरके आँगन और चबूतरोंपर लोटते देखूँगा ? कुञ्ज, निकुञ्ज, महानदी यमुना, गिरिराज गोवर्धन, यह वृन्दावन तथा दूसरे-दूसरे वन, गृह, लता, वृक्ष और गौओंके समुदाय तथा इनके साथ ही यह सारा व्रज मुकुन्दके बिना विषतुल्य प्रतीत हो रहा है। कमल-दलके समान विशाल नेत्रवाले श्रीकृष्णके बिना मेरे जीवन, शयन और भोजनको भी धिक्कार है। इस भूतलपर चन्द्रमासे बिछुड़े हुए चकोरकी भाँति मैं उनके आगमनकी बहुत अधिक आशासे ही जीवन धारण कर रहा हूँ। महामते ! मैं श्रीकृष्ण और बलरामको परात्पर परमेश्वर ही मानता हूँ। देवताओंके अत्यन्त प्रार्थना करनेपर वे पूर्णतम भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये स्वेच्छासे अवतीर्ण हुए हैं और अब संतोंकी रक्षामें तत्पर हैं ॥ ९—१४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! परमेश्वर श्रीहरिका बार-बार स्मरण करके नवनन्दराज तकियेपर सिर रखकर चुप हो गये। उनका अङ्ग-अङ्ग उत्कण्ठाके कारण रोमाञ्च-युक्त और विह्वल हो रहा था। राजन् ! उस समय श्रीकृष्ण-सखा उद्धवके देखते-देखते श्रीनन्दराजके नेत्र-कमलोंसे निकलती हुई अश्रुधारा बिस्तर और तकियेसहित शय्याको भिगोकर आँगनमें बह चली ॥ १५-१६ ॥

मथुरापुरीसे उद्धवजीका आना सुनकर सती यशोदा तुरंत दरवाजेके किवाड़ोंके पास चली आयीं और अपने पुत्रकी चर्चा सुनने लगीं। उस समय स्नेहवश उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा और नेत्र-कमलोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। फिर वे लाज छोड़कर पुत्रस्नेहसे उद्धवके पास चली आयीं और सारा कुशल-मङ्गल स्वयं पूछने लगीं। नेत्रोंसे बहती हुई अश्रुधाराको आँचलसे पोंछकर, हरिकी भावनासे विह्वल नन्द-जीकी उपस्थितिमें वे बोलीं ॥ १७-१८ ॥

यशोदाने कहा—उद्धव ! क्या कन्हैया कभी मुझको अथवा अपने बाबा नन्दराजको याद करता है ? इनके भाई सनन्द उसे देखनेके लिये बहुत उत्सुक रहते हैं, क्या वह इनका भी स्मरण करता है ? इस व्रजमें नौ नन्द, नौ उपनन्द और छः वृषभानु रहते हैं। क्या कन्हैया इन सबको याद करता है ? जिनकी गोदीमें बैठकर उसने वन-वनमें बालकेलि की थी, जिनके साथ नन्दनन्दन सानन्द गेंद खेला करता था, उन अपने स्नेही गोपोंका वह कभी स्वतः स्मरण करता है ? मुझे मेरे जीवनमें एक ही यह बेटा मिला था, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं; फिर भी वह एक ही पुत्र मुझ दीन-दुखी माँको छोड़कर दूसरी दिशाको चला गया। महामते ! स्नेह करनेवालोंके लिये कष्ट होना अनिवार्य है, यह कैसी आश्चर्यकी बात है। मानद ! बताओ—मैं पुत्रके बिना क्या करूँ, कैसे जीवित रहूँ ? 'मैया मुझे दही दे, या मुझे ताजा माखन दे'—इस प्रकार मधुर वाणीमें बोलकर वह घरमें सदा हठ किया करता था। वही कन्हैया अब दोपहरमें कैसे भोजन करता होगा ? यह मेरा लाला कन्हैया व्रजवासियोंका जीवन है, व्रजका धन है, इस कुलका दीपक है तथा अपनी बाल-लीलासे सबके मनको मोह लेनेवाला है। उसके लालन-पालनमें मेरे इतने वर्षोंके दिन एक क्षणकी भाँति बीत गये। अहो ! आज नन्दनन्दनके बिना वही दिन एक कल्पके समान भारी हो गया है। जिस कन्हैयाको ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चरानेके लिये मैं गाँवकी सीमापर और नदीके किनारे भी नहीं जाने देती थी, हाय ! वही अब मथुरा चला गया ! 'ओ मोहन !'—यों दूरसे पुकारकर जो उसे गोदमें लेते और लाड़-प्यार करते थे, वे ही नन्दराज उसके बिना खेद और विषादमें डूबे रहते हैं। अहो ! एक दिन दहीका भाँड़ फोड़ देनेपर मुझ निर्मोहिनीने उस बच्चे-को रस्सीसे बाँध दिया था। आज वह करतूत याद करके मैं शोकमें डूब रही हूँ। यह आँगन, सारा सभामण्डप, मकान, सरोवर, गली, व्रज, महलोंकी छतें सब सूनी हो गयी हैं। मुकुन्दके बिना यह सारा जगत् विषके तुल्य प्रतीत होता है। कन्हैयाके बिना मेरे इस जीवनको धिक्कार है ॥ १९—३० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यशोदा और नन्दमें उच्चकोटिके प्रेमका लक्षण प्रकट हुआ देख उद्धव अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। उनका अपना सारा ज्ञानाभिमान गल गया ॥ ३१ ॥

उद्धव बोले—अहो ! महाप्रभु नन्द और यशोदाजी ! मेरे शरीरमें जितने रोम हैं, वे सब यदि जिह्वाएँ हो जायँ तो उन जिह्वाओंद्वारा भी मैं आप दोनोंकी महत्ताका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। आप दोनोंने साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति ऐसी प्रेमलक्षणा भक्ति की है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। आप दोनोंको जो सनातन प्रेमलक्षणा-

भक्ति प्राप्त हुई है, वह तीर्थाटन, तपस्या, दान, सांख्य और योगसे भी सुलभ नहीं है। हे नन्द और हे व्रजेश्वरी यशोदे! आप दोनों शोक न करें। ये दो पत्र आपलोग शीघ्र ही अपने हाथमें लें। इन पत्रोंको निस्संदेह श्रीकृष्णने ही दिया है। अपने बड़े भाई बलरामजीके साथ नन्दनन्दन श्रीकृष्ण यदुपुरीमें कुशलपूर्वक हैं। यादवोंका महान् कार्य सिद्ध करके बलरामसहित श्रीभगवान् यहाँ भी थोड़े ही समयमें आयेंगे ॥ १२—३६ ॥

तुम नन्दनन्दन श्रीकृष्णको परिपूर्णतम परमात्मा समझो। वे कंस आदि दैत्योंका वध और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे आपके घरमें अवतीर्ण हुए हैं। बलराम-सहित श्रीहरिने जन्मदानसे ही अद्भुत लीला आरम्भ कर दी थी। पूतनाके प्राणोंका अपहरण, शकटका भञ्जन, तृणावर्तको मार गिराना, यमलार्जुन वृक्षोंको तोड़ गिराना और अपने मुखमें यशोदाजीको विश्वरूपका दर्शन कराना आदि उनकी अलौकिक लीलाएँ हैं। वृन्दावनमें बछड़े चराते हुए उन प्रभावशाली भगवान्ने गोपोंके देखते देखते बकासुर और वत्सासुरका वध किया, अघासुरको मारा, धेनुकासुरको कुचल डाला, कालियनागको रौंद डाला, दावानलको पी लिया तथा तत्पश्चात् बलदेवजीने प्रलम्बासुरका वध किया। आप सब लोगोंके देखते हुए जैसे गजराज अपनी सूँड़में कमल धारण करता है, उसी प्रकार श्रीहरिने एक ही हाथसे लीला-पूर्वक गोवर्धन पर्वतको उखाड़कर उठा लिया। उन जगदीश्वरने शङ्खचूड़से उसकी चूडामणि ले ली और अरिष्टासुरका वध करके केशीको भी कालके गालमें भेज दिया। व्योमासुर बड़ा भारी दैत्य था, किंतु भगवान्ने उसे मुक्केसे ही मसल डाला ॥ ३७—४४½ ॥

महामते! इसी प्रकार मथुरामें भी उन्होंने विचित्र पराक्रम प्रकट किया। कंसका रजक बड़ा डींग हाँकता था, किंतु श्रीहरिने एक ही हाथकी चोटसे उसका काम तमाम कर दिया। सब लोगोंके देखते-देखते कंसके प्रचण्ड धनुर्दण्डको बीचसे ही खण्डित कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे हाथी ईखके डंडेको तोड़ डालता है। कुवलयापीड नामक हाथी बलमें दस हजार हाथियोंकी समानता करता था, किंतु भगवान्ने उसकी सूँड़ पकड़कर उसे भूतलपर दे मारा। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलको माधवने मल्लयुद्ध करके भूपृष्ठपर मार गिराया। मदमत्त दैत्य कंस एक लाख हाथियोंके समान बलशाली था; परंतु उसे श्रीकृष्णने मञ्चसे उठाकर भुजाओंके वेगसे घुमाते हुए पृथ्वीपर उसी तरह पटक दिया, जैसे कोई बालक कमण्डलुको गिरा दे। फिर जैसे हाथीपर सिंह कूदे, उसी प्रकार वे कंसपर कूद पड़े। कंसके कङ्क आदि छोटे भाइयोंका महाबली बलदेवने मुद्गरसे ही तुरंत उसी प्रकार कचूमर निकाल दिया, जैसे किसी सिंहने बहुत से मृगोंको मौतके घाट उतार दिया हो। अपने गुरुको दक्षिणा देनेके लिये महासागरमें कूदकर स्वयं श्रीहरिने शङ्खरूपधारी पञ्चजन नामक असुरका संहार कर डाला। महानन्द! ये अद्भुत चरित्र भगवान् श्रीकृष्णके बिना कौन कर सकता है? उन श्रीहरिको नमस्कार है ॥ ४५—५३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नन्दराज और उद्धवका मिलन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

गोपाङ्गनाओंके साथ उद्धवका कदली-वनमें जाना और वहाँ उनकी स्तुति करके श्रीकृष्णद्वारा भेजे गये पत्र अर्पित करना

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीहरिकी चर्चा करते हुए नन्द और उद्धवकी वह रात एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी। उनके हर्षको बढ़ानेवाली होनेके कारण उसका 'क्षणदा' (आनन्ददायिनी) नाम चरितार्थ हो गया। जब ब्राह्ममुहूर्त आया, तब सारी गोपाङ्गनाओंने उठकर अपने-अपने द्वारकी देहली एवं आँगन लीपकर वहाँ प्रज्वलित दीप रख दिये। फिर हाथ-पैर धोकर मथानीमें रस्सी लगाकर वे स्नेहयुक्त दहीको सब ओरसे मथने लगीं। मथानीकी रस्सी खींचनेसे चञ्चल हुए हार और हाथों-के कंगन बज रहे थे। उनकी वेणियोंसे फूल झर-झरकर गिर रहे थे और चमकते हुए कुण्डल उनके कानोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। वे सब-की-सब चन्द्रमुखी, कमलनयनी

तथा विचित्र वर्णोंके वस्त्र धारण करनेके कारण अत्यन्त मनोहर थीं। श्रीकृष्ण और बलदेवके मङ्गलमय चरित्रोंका घर-घरमें जहाँ-तहाँ प्रेमपूर्वक गान कर रही थीं। प्रत्येक गोष्ठमें सुन्दर गौएँ इधर-उधर रँभा रही थीं। गली-गलीमें सर्वत्र दही मथनेके शब्दसे मिश्रित गोपाङ्गनाओंका गीत सुनकर विस्मित हुए उद्धव इस प्रकार बोल उठे—'अहो! इस नन्द-नगरमें तो भक्तिदेवी यत्र-तत्र-सर्वत्र नृत्य कर रही हैं।' यों कहते हुए वे गाँवसे दूर यमुना-नदीमें स्नान करनेके लिये गये ॥ १—८ ॥

उस समय उद्धवके रथको देखकर गोपियाँ बोलीं—सखियो! आज यहाँ किसका रथ आ पहुँचा है! अथवा वह क्रूर अक्रूर ही तो फिर नहीं आया है, जो नूतन-कमल-दल-लोचन श्रीनन्दनन्दनको मधुपुरी मथुरामें लिवा ले गया था? जैसे कद्रूने जगत्‌के लोगोंको मारने या डँसवानेके लिये ही इधर-उधर विषधर नागोंको उत्पन्न किया है, उसी प्रकार स्नेही सत्पुरुषोंको तीव्र ताप देनेके लिये ही न जाने उसकी माताने उसे किस कुसमयमें जन्म दिया था! जो कंसका स्वार्थसाधक तथा कंसका ही अत्यन्त निर्दय सखा है, वह इस व्रजमण्डलमें फिर क्यों आया है? अपने मरे हुए स्वामीकी पारलौकिक क्रिया क्या आज वह हमलोगोंके प्राणोंसे ही सम्पन्न करेगा? ॥ ९—११ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार बातचीत करती हुई व्रजकी गोपाङ्गनाएँ सारथिके मुखको दो अङ्गुलियोंसे ठोककर निकटसे पूछने लगीं—'जल्दी बताओ, यह किसका रथ है?' बेचारा सारथि आर्तभावसे हक्का-बक्का-सा होकर देखने लगा। इतनेमें उन्हें उद्धवजी आते दिखायी दिये। उनकी कान्ति मेघके समान श्याम थी। नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल थे। आकार भी श्रीकृष्णसे मिलता-जुलता था। वे करोड़ों कामदेवोंको मोह लेनेवाले जान पड़ते थे। उनके शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था। उन्होंने गलेमें नूतन वैजयन्ती माला धारण कर रक्खी थी, जिसपर झुंड-के-झुंड भ्रमर टूटे पड़ते थे। उनके हाथमें सहस्रदल कमल सुशोभित था। उन्होंने हाथोंमें बाँसुरी और बेंतकी छड़ी ले रक्खी थी। उनका वेष बड़ा मनोहर था। करोड़ों बालरवियोंकी कान्तिसे युक्त मुकुट उनके मस्तकको मण्डित कर रहा था। वक्षःस्थलमें कौस्तुभ नामक महामणि प्रकाशमान थी और रत्नमय कुण्डल उनके कपोलमण्डलकी कान्ति बढ़ा रहे थे। नरेश्वर! चाल-ढाल, आकृति, शोभा, वस्त्र, हास और मधुस्वर—सभी दृष्टियोंसे श्रीकृष्णका सादृश्य धारण करनेवाले उन उद्धवको देखकर समस्त गोपियाँ चकित हो गयीं और उन्हें गोविन्दका सखा जानकर उनके सामने आयीं ॥ १२—१५ ॥

यह जानकर कि ये भगवान् श्रीहरिका संदेश लेकर आये हैं, वे नीतियुक्त सुन्दर वचन बोलकर उनके प्रति आदर दिखाने लगीं तथा संतोंके स्वामी गोविन्दकी गूढ़ कुशल पूछनेके लिये उन उद्धवजीको साथ लेकर वे कदलीवनमें गयीं, जहाँ वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा यमुनाके तटपर मनोहर निकुञ्ज-मन्दिरमें भगवान्‌के विरहसे आतुर होकर बैठी थीं और उन श्रीहरिके बिना सारे जगत्‌को सर्वथा सूना मानती थीं। जो पहले केलोंके पत्तोंसे और घिसे हुए चन्दनके पङ्कसे शीतल मेघमन्दिर-सा प्रतीत होता था तथा यमुनाकी चञ्चल चारु तरंगोंकी फुहार पड़नेसे जहाँ ऐसा प्रतीत होता था कि साक्षात् सुधाकिरण चन्द्रमाकी सुधाराशि स्वतः गल रही है, ऐसा कदली-वन सारा-का-सारा श्रीराधाकी वियोगाग्निके तेजसे अत्यन्त झुलस गया था। केवल श्रीकृष्णके शुभागमनकी आशासे श्रीराधा अपने शरीरकी रक्षा कर रही थीं। श्रीकृष्णके सखा उद्धवका आगमन सुनकर श्रीराधाने अपनी सखियोंके द्वारा अन्न, पान और मधुपर्क आदि माङ्गलिक वस्तुएँ अर्पितकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उस समय वे बारंबार 'श्रीकृष्ण-कृष्ण'का उच्चारण करती थीं। गोविन्दके वियोगसे खिन्न हुई राधा अमावास्यामें प्रविष्ट चन्द्र-कलाकी भाँति क्षीण हो रही थीं। उस समय उद्धवने नताङ्गी एवं कृशाङ्गी राधाको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके वे हर्षपूर्वक बोले ॥ १६—२१ ॥

उद्धवने कहा—श्रीराधे! श्रीकृष्ण सदा परिपूर्णतम भगवान् हैं और आप सदा परिपूर्णतमा भगवती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र नित्यलीलापरायण हैं और आप नित्य-लीलाका सम्पादन करनेवाली नित्यलीलावती हैं। श्रीकृष्ण भूमा हैं और आप इन्दिरा हैं। श्रीकृष्ण नित्य सनातन ब्रह्मा हैं और आप सदा उनकी शक्ति सरस्वती हैं। श्रीकृष्ण शिव हैं और आप कल्याणस्वरूपा शिवा हैं। भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु हैं और आप निश्चय ही उनकी पराशक्ति वैष्णवी हैं। आदिदेवता श्रीहरि कौमारसर्ग—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार हैं तथा

आप ज्ञानमयी शुभा स्मृति हैं। श्रीहरि प्रलयकालके जलमें क्रीडा करनेवाले यज्ञवराह हैं और आप ही वसुधा हैं। श्रीहरि मनसे जब देवर्षिवर्य नारद बनते हैं, तब साक्षात् आप ही उनके हाथकी वीणा होती हैं। श्रीहरि जब धर्मनन्दन नर और नारायण होते हैं, तब आप ही जगत्‌में शान्ति स्थापित करनेवाली साक्षात् शान्तिरूपिणी होती हैं। श्रीकृष्ण ही साक्षात् महाप्रभु कपिल हैं और आप ही सिद्धसेविता सिद्धि। राधे! श्रीकृष्ण महामुनीश्वर दत्तात्रेय हैं और आप ही नित्यज्ञानमयी सिद्धि। श्रीहरि यज्ञ हैं और आप दक्षिणा। वे उरुक्रम वामन हैं तो आप सदा उनकी शक्ति जयन्ती हैं। श्रीहरि जब समस्त राजाओंके अधिराज पृथु होते हैं, तब आप उन महाराजकी पटरानी अर्चिदेवीके रूपमें प्रकट होती हैं। शङ्खासुरका वध करनेके लिये जब श्रीहरिने मत्स्यावतार ग्रहण किया, तब आप श्रुतिरूपा हुईं। मन्दराचलद्वारा समुद्रमन्थनके समय श्रीहरि कच्छपरूपमें प्रकट हुए, तब आप वासुकिनागमें शुभदायिनी नेती शक्तिरूपसे प्रकट हुईं। शुभे! परमेश्वर श्रीहरि जब पीडाहारी धन्वन्तरिके रूपमें आविर्भूत हुए, तब आप दिव्य सुधामयी ओषधिके रूपमें दृष्टिगोचर हुईं। श्रीकृष्णचन्द्र जब मोहिनीरूपमें सामने आये, तब आप उनके भीतर विश्व-विमोहिनी मोहिनीके रूपमें अभिव्यक्त हुईं। श्रीहरि जब नृसिंहरूप धारण करके नृसिंह-लीला करने लगे, तब आप निजभक्तवत्सला लीलाके रूपमें सामने आयीं। जब श्रीकृष्णने वामनरूप धारण किया, तब आप अपने भक्तजनोंद्वारा कीर्तित कीर्तिरूपिणी हुईं। जब श्रीहरि भृगुनन्दन परशुरामका रूप धारण करके सामने आये, तब आप ही उनके कुठारकी धारा बनीं। श्रीकृष्णचन्द्र जब रघुकुलचन्द्र श्रीराम हुए, तब आप ही उनकी धर्मपत्नी जनकनन्दिनी सीता थीं। जब शार्ङ्गधन्वा श्रीहरि बादरायणमुनि व्यासके रूपमें प्रकट होते हैं, तब आप वेदान्ततत्त्वको प्रकट करनेवाली देववाणीके रूपमें आविर्भूत होती हैं। वृष्णि-कुल-तिलक माधव ही जब संकर्षणरूप होते हैं, तब आप ही ब्रह्मभवा रेवतीके रूपमें उनकी सेवामें विराजमान होती हैं। श्रीहरि जब असुरोंको मोहित करनेवाले बुद्धके रूपमें प्रकट होते हैं, तब आप विश्वजनमोहिनी बुद्धि होती हैं। जब श्रीहरि धर्मपालक कल्किके रूपमें प्रकट होंगे, तब आप कृतिरूपिणी होंगी ॥ २२–३३ ॥

चन्द्रमुखी राधे! चन्द्रमण्डलमें श्रीकृष्ण ही चन्द्ररूप हैं और आप ही सदा चन्द्रिकारूपिणी हैं। आकाशगत सूर्यमण्डलमें श्रीकृष्ण ही सूर्य हैं और आप ही उनकी प्रभामयी परिधिके रूपमे प्रतिष्ठित हैं। राधे! निश्चय ही यादवेन्द्र श्रीहरि सदा देवराज इन्द्रके रूपमें विराजते हैं और आप वहाँ शचीश्वरी शचीके रूपमें निवास करती हैं। परमेश्वर श्रीहरि ही हिरण्यरेता अग्नि हैं और आप ही सदा हिरण्मयी पराज्योति हैं। श्रीकृष्ण ही राजराज कुबेरके रूपमें विराजते हैं और आप ही उनकी निधिमें निधीश्वरी होकर शोभा पाती हैं। साक्षात् श्रीहरि ही क्षीरसागर हैं और आप ही तरंगित होनेवाली श्वेत रेशमके समान शुक्लवर्णा तरङ्गमाला हैं। सर्वेश्वर श्रीहरि जब-जब कोई शरीर धारण करते हैं, तब-तब आप उनके अनुरूप शक्तिके रूपमें प्रसिद्ध होती हैं। स्वयं श्रीहरि जगत्-स्वरूप तथा ब्रह्मरूप हैं और आप ही जगन्मयी एवं ब्रह्ममयी चैतन्यशक्ति हैं। राधे! आज भी वे ही ये श्रीहरि व्रजराजनन्दन हैं और आप उनकी प्रिया वृषभानुनन्दिनी हैं। आप दोनोंने जगत्‌में सुख-शान्तिकी स्थापनाके लिये नाना प्रकारके क्रीडामय चरित्रोंद्वारा ललित आदि लीलाओंके रूपमें सत्त्वमयी लीला प्रकट की है। पुराणपुरुष श्रीकृष्ण स्वयं परब्रह्म हैं और आप ही उनकी इच्छारूपिणी लीलाशक्ति हैं। आप दोनोंके श्रीविग्रह सदा परस्पर संयुक्त हैं। ऐसे आप दोनों श्रीराधा-कृष्णको मेरा नमस्कार है। राधिके! आप शोक न करें और अपने प्राणनाथका दिया हुआ यह पत्र लें। उन्होंने यह संदेश दिया है कि मैं कुछ ही दिनोंमें यहाँके कार्योंका सम्पादन करके वहाँ आऊँगा। गोपाङ्गनाओ! आज ही भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए ये परम मङ्गलमय सैकड़ों पत्र आपलोग ग्रहण करें। श्रीकृष्णकी प्रियतमा व्रजसुन्दरियोंके शत-शत यूथोंके लिये ये पत्र अर्पित किये गये हैं ॥ ३४–४१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उद्धवद्वारा श्रीराधाका दर्शन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

उद्धवद्वारा श्रीराधा तथा गोपीजनोंको आश्वासन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीराधाने पत्र लेकर उसे अपने मस्तकपर रक्खा, फिर नेत्रों और छातीसे लगाया। तदनन्तर उसे पढ़कर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका स्मरण करके, अत्यन्त प्रेमातुर हो नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाती हुई वे उद्धवके सामने ही मूर्च्छाकी पराकाष्ठाको पहुँच गयीं। तब सखियोंने उनके ऊपर केसर, अगुरु और चन्दनसे मिश्रित जल तथा पुष्परस छिड़ककर चँवर डुलाना आरम्भ किया। इससे पुनः उनकी चेतना लौटी। कमललोचना श्रीराधाको वियोग-दुःखके सागरमें डूबी हुई देख उद्धव तथा गोपियाँ नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहाने लगीं। राजन् ! उन सबके आँसुओंके प्रवाहसे तत्काल वृन्दावनमें कह्लार-पुष्पोंसे सुशोभित लीला-सरोवर प्रकट हो गया। नरेश्वर ! जो मनुष्य उस सरोवरका दर्शन, उसके जलका पान तथा उसमें भलीभाँति स्नान करके इस कथाको सुनता है, वह कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो श्रीकृष्णको प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर उद्धवके मुखसे श्रीकृष्णके पुनरागमनका समाचार सुनकर वे सब गोपाङ्गनाएँ महात्मा गोविन्दका सम्पूर्ण कुशल-मङ्गल पूछने लगीं ॥ १–७ ॥

श्रीराधा बोलीं—उद्धव ! वह समय कब आयेगा, जब मैं घनके समान श्यामकान्तिवाले आनन्दप्रद श्रीव्रजराज-नन्दनका दर्शन करूँगी ? जैसे मयूरी मेघमालाके और चकोरी चन्द्रमाके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित रहती है, उसी प्रकार मैं भी उनका दर्शन पानेके लिये उत्सुक हूँ। किस कुसमयमें मेरा उनसे वियोग हुआ, जिससे इस पृथ्वीपर एक-एक क्षण मेरे लिये एक कल्पके समान हो गया है ! गोविन्दके युगलचरणोंके बिना यह विरहकी रात इतनी बड़ी हो गयी है कि ब्रह्माजीकी आयुके द्विपरार्ध कालको भी तिरस्कृत कर रही है। उद्धव ! क्या कभी श्यामसुन्दर इस व्रजके मार्गपर भी पदार्पण करेंगे ? आप मुझे शीघ्र बताइये, वे वहाँ कौन-सा कार्य कर रहे हैं ? आजतक बड़े प्रयाससे मैंने इन प्राणोंको धारण किया है। उनके झूठे वादेसे आतुर हुए ये प्राण हठात् निकले जा रहे हैं। आज तुम्हें देखकर क्षणभरके लिये मेरा हृदय शीतल हुआ है। तुम्हारे आनेसे आज मैं उसी तरह प्रसन्न हुई हूँ, जैसे पूर्वकालमें पवनपुत्र हनुमान्‌के लङ्कामें आनेसे जनकनन्दिनी सीता प्रसन्न हुई थीं। मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ उद्धव ! जो आशा देकर अपने स्नेह-मोहरूपी धनको त्यागकर और अपनी ही कही हुई बातको भुलाकर मथुरा चले गये, उनके लिखे हुए इस पत्रके वाक्यांशको भी मैं सत्य नहीं मानती। तुम स्वयं उनको यहाँ ले आओ ॥ ८–१२ ॥

उद्धव बोले—श्रीराधे ! मैं मथुरापुरी लौटकर आपके इस महान् विरहजनित दुःखको उन्हें सुनाऊँगा और अपने आँसुओंके जलसे उनके चरण पखारूँगा। जैसे भी होगा, श्रीहरिको मथुरापुरीसे लेकर पुनः यहाँ आऊँगा—यह बात मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ। अतः अब आप शोक न करें ॥ १३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर प्रसन्न हुई श्रीराधाने रास-रङ्गस्थलमें चन्द्रमाद्वारा दी गयी दो सुन्दर चन्द्रकान्त मणियाँ श्यामसुन्दरको देनेके लिये उद्धवके हाथमें दीं। पूर्वकालमें चन्द्रमाने जो दो सहस्रदल कमल भेंट किये थे, उन्हें भी प्रसन्न हुई भक्तवत्सला श्रीराधाने उद्धवको अर्पित किया। हरिप्रिया श्रीराधाने प्राणवल्लभके लिये छत्र, दिव्य सिंहासन तथा दो मनोहर चँवर, जो श्रीकृष्णके संकल्पसे प्रकट हुए थे, उद्धवके हाथमें दिये। साथ ही यह वरदान भी दिया कि 'उद्धव ! तुम ऐश्वर्यज्ञानसे सम्पन्न, समस्त उपदेशक गुरुओंके भी उपदेशक तथा श्रीकृष्णके साथ रहनेवाले होओगे।' श्रीराधाने उन्हें निर्गुण-भावसे सम्पन्न प्रेम-लक्षणा भक्ति तथा ज्ञान-विज्ञान-सहित वैराग्य भी प्रदान किया। विदेहराज ! श्रीहरि शङ्खचूड यक्षसे जो उसकी चूडामणि छीन लाये थे, वह सुन्दर चूडामणि चन्द्रानना गोपीने उद्धवके हाथमें दी। राजन् ! इसी प्रकार अन्य गोपाङ्गनाओंने भी महात्मा उद्धवके हाथमें सुन्दर आभूषणोंकी राशि समर्पित की ॥ १४–२० ॥

नारदजी कहते हैं—उद्धवजीकी शुभार्थक वाणी सुनकर जब श्रीराधिकाजी अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं, तब सभामण्डपमें स्थित हुए श्रीकृष्ण-सखा उद्धवके पास बैठकर व्रजगोप-वधूटियोंने पृथक्-पृथक् उनसे पूछा ॥ २१ ॥

गोपाङ्गनाएँ बोलीं—उद्धवजी ! हमें शीघ्र बताइये, जिन-जिनके लिये श्रीहरिने पत्र लिखा है, उनके लिये कोई अद्भुत संदेश भी कहा है क्या ? आप परावरवेत्ताओंमें उत्तम, साक्षात् श्रीकृष्णके सखा, उनके ही समान आकृति-वाले और महान् हैं (अतः उनकी कही हुई बात हमसे अवश्य कहिये) ॥ २२ ॥

उद्धवने कहा—गोपाङ्गनाओ ! जैसे तुमलोग देवेश्वर श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण करती रहती हो, उसी प्रकार वे भी प्रतिक्षण तुम्हारा स्मरण करते हैं। निस्संदेह मेरे सामने ही वे तुम्हें याद करते रहते हैं। मैं श्रीहरिका एकान्त सेवक हूँ। एक दिन तुमलोगोंका स्मरण करके नन्दनन्दन श्रीहरिने मुझे बुलाया और तुमसे कहनेके लिये अपने मनका संदेश इस प्रकार कहा ॥ २३-२४ ॥

श्रीभगवान् बोले—विषयोंमें आसक्त हुआ मन बन्धनकारक होता है; वही यदि मुझ परमपुरुषमें आसक्त हो जाय तो मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला होता है। अतः ज्ञानीजन मनको बन्धन और मोक्ष—दोनोंका कारण बताते हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह मनको जीतकर इस पृथ्वीपर असङ्ग (आसक्तिशून्य) होकर विचरे। जब विवेकी पुरुष निर्मल अध्यात्मयोगके द्वारा मुझ साक्षात् परात्पर ब्रह्मको सर्वत्र व्यापक जान लेता है, तब वह मनके कषाय (राग या आसक्ति) को त्याग देता है। यद्यपि मेघ सूर्यसे ही उत्पन्न हुआ उसका कार्यरूप है, तथापि जबतक वह सूर्य और दर्शककी दृष्टिके बीचमें स्थित है, तबतक दृष्टि सूर्यको नहीं देख पाती। (उसी प्रकार जबतक अन्तःकरण-आत्माके बीचमें कषायरूप आवरण है, तबतक मुझ परमात्मा-का दर्शन नहीं हो पाता।) व्रजाङ्गनाओ ! मैं स्थूल भावसे दूर हूँ, परंतु तत्त्वदृष्टिसे तुममें और मुझमें कोई दूरी नहीं है। अतः यहाँके वियोगको तुम मेरी प्राप्तिका साधन बना लो। सांख्यभावसे जिस पदकी प्राप्ति होती है, अवश्य ही वह योगभाव (योग-साधना या वियोगकी अनुभूति) से भी स्वतः प्राप्त हो जाता है ॥ २५—२७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उद्धवद्वारा श्रीराधा तथा गोपियोंको आश्वासन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्णको स्मरण करके श्रीराधा तथा गोपियोंके करुण उद्गार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णका यह संदेश सुनकर प्रसन्न हुई गोपाङ्गनाएँ आँसू बहाती हुई गद्गद कण्ठसे उद्धवसे बोलीं ॥ १ ॥

गोलोकवासिनी गोपियोंने कहा—उद्धव ! पहलेके प्रियजनोंको त्यागकर श्रीकृष्ण परदेश चले गये, उसपर भी वहाँसे उन्होंने योग लिख भेजा है। अहो ! निर्मोहीपन-का बल तो देखो ॥ २ ॥

द्वारपालिका गोपिकाएँ बोलीं—सखियो ! देखो, चन्द्रमाकी चकोरपर, सूर्यकी कमलपर, कमलकी भ्रमरपर तथा मेघकी चातकपर जैसे कभी प्रीति नहीं होती, उसी प्रकार श्यामसुन्दरका हमलोगोंपर प्रेम नहीं है ॥ ३ ॥

शृङ्गार धारण करानेवाली गोपियोंने कहा—सखियो ! चकोर चन्द्रमाका मित्र है, परंतु उसके भाग्यमें सदा आगकी चिनगारियाँ चबाना ही बदा है। विधाताने जिसके भाग्यमें जो कुछ लिख दिया है, वह कभी कम नहीं होता ॥ ४ ॥

शय्योपकारिका गोपियाँ बोलीं—वधिक भी मृगोंको बाण मारकर तुरंत आतुर हो उनकी सुध लेता है; किंतु कटाक्षोंसे अपने प्रियजनोंको घायल करके कोई निर्मोही उनका स्मरणतक न करे—यह कैसा आश्चर्य है ! ॥ ५ ॥

पार्षदा गोपियोंने कहा—विरहजनित दुःखको कोई विरही ही जानता है, दूसरा कोई कभी उस दुःखको नहीं समझ सकता—जैसे जिसके अङ्गोंमें काँटा गड़ा है, उसकी पीड़ाको वही जानता है, जिसके पहले कभी काँटा गड़ चुका है; जिसके शरीरमें कभी काँटा गड़ा ही नहीं, वह उसके दर्दको क्या जानेगा ! ॥ ६ ॥

वृन्दावन-पालिका गोपियाँ बोलीं—निष्काम प्रेमके सुखको निष्काम प्रेमी ही जानता है। जो किसी कारण या कामनाको लेकर प्रेम करता है, वह निष्काम प्रेमके सुखको क्या

जानेगा ! क्या कभी कर्मेन्द्रियाँ रसका अनुभव कर सकती हैं ? ॥ ७ ॥

गोवर्धन-वासिनी गोपियोंने कहा—पुरवनिताओंसे प्रेम करनेवाला अब सैरन्ध्री (कुब्जा) का नायक बन बैठा है। उसे पर्वत एवं वनमें रहनेवाली स्त्रियोंसे क्या लेना है। इस विषयमें अधिक कहना व्यर्थ है ॥ ८ ॥

कुञ्जविधायिका गोपियाँ बोलीं—हाय ! मतवाले भ्रमरोंके गुञ्जारवसे व्याप्त माधवी कुञ्ज-पुञ्जमें जिनको हम सदा अपनी आँखोंमें बसाये रखती थीं, उनकी आज यह कथा सुनी जाती है ! ॥ ९ ॥

निकुञ्जवासिनी गोपियोंने कहा—वृन्दावनमें मतवाले भ्रमरोंके समुदायसे युक्त यमुना-तटवर्ती कदम्ब-कुञ्जमें धीरे-धीरे बलराम, ग्वाल-बाल और गोधनके साथ विचरते हुए नन्दनन्दनका हम भजन करती हैं ॥ १० ॥

यमुनाजीके यूथमें सम्मिलित गोपियाँ बोलीं—कब हमारा भी वैसा ही समय होगा, जैसा आज मथुरापुर-वासिनी स्त्रियोंका देखा जाता है ? व्रजाङ्गनाओ ! शोक न करो। किसीकी कभी सदा जय या पराजय नहीं होती। विधाताके हृदयमें तनिक भी दया नहीं है; जैसे बालक खिलौनोंको अलग करता और मिलाता है, उसी प्रकार वह विधाता समस्त भूतोंको संयुक्त और वियुक्त करता रहता है। जो पहले कुबड़ी थी, वह आज सीधी और समान अङ्गवाली हो गयी; जो दासी थी, वह कुलीन हो गयी तथा जो कुरूपा थी, वह रूपवती होकर चमक उठी है। अहो ! चार ही दिनोंमें वह अपनी विजयके नगारे पीटने लगी है ॥ ११—१३ ॥

विरजा-यूथकी गोपियोंने कहा—किसीकी भी बाँह सदा प्रियके कंधेपर नहीं रहती, किसी भी वनमें सदा वसन्त नहीं होता, कोई भी सदा जवान नहीं रहता, ये देवराज इन्द्र भी सदा राज्य नहीं करते हैं। कोई चार दिनोंके लिये भले ही खूब मान कर ले ॥ १४ ॥

ललिता-यूथकी गोपियाँ बोलीं—मन्थरा भी कुबड़ी थी, जिसने अयोध्यापुरीमें श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकको रोकवाकर उसमें विघ्न उपस्थित कर दिया। वह कुब्जा ही यह मथुरापुरीमें आ गयी है। गोपिकाओ ! जो कुब्जा है, वह क्या-क्या नहीं कर सकती ? ॥ १५ ॥

विशाखा-यूथकी गोपियोंने कहा—जो गौएँ चरानेके लिये अनुगामी ग्वाल-बालोंके साथ वनमें जाते हैं और लौटते समय वंशीनादके द्वारा नगर-गाँवके लोगोंको अपने आगमनका बोध करा देते हैं तथा जो अपनी गतिसे मतवाले हाथीकी चालका अनुकरण करते हैं, उन नन्दनन्दन-को हम भुला नहीं सकतीं ॥ १६ ॥

माया-यूथकी गोपियाँ बोलीं—साँकरी गलियोंमें हमारा आँचल पकड़कर, हठात् हमें अपनी भुजाओंमें भरकर और हृदयसे लगाकर परस्परकी खींचातानीसे हर्ष और भयका अनुभव करनेवाले उन श्रीहरिको हम कब अपने घरोंमें ले जायँगी ? ॥ १७ ॥

अष्टसखियोंने कहा—उद्धव ! उन सर्वाङ्गसुन्दर नन्दनन्दनको निहारकर हमारे नेत्र अब संसारकी ओर नहीं देखते—नहीं देखना चाहते। वे ही नन्दराजकुमार मथुरापुरीमें विराज रहे हैं। शीघ्र बताओ, अब हमारा क्या होगा ? ॥ १८ ॥

षोडश सखियाँ बोलीं—वनमें प्रेमपीडाको बढ़ानेवाली बाँसुरीकी मधुर तान सुनकर हमारे दोनों कान अब संसारी गीत नहीं सुनना चाहते, वे तो कौओंकी 'काँव-काँव' के समान कड़वे लगते हैं ॥ १९ ॥

बत्तीस सखियोंने कहा—अपने मित्रको प्रीतिसे, शत्रुको नीतिसे, लोभीको धनसे, ब्राह्मणको आदरसे, गुरुको बारंबार प्रणामसे तथा रसिकको रससे वशमें किया जाता है; परंतु निर्मोहीको कोई कैसे वशमें कर सकता है ? ॥२०॥

श्रुतिरूपा गोपियाँ बोलीं—जो जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें व्याप्त होकर भी उनसे परे हैं तथा इस जगत्‌के हेतु होते हुए भी वास्तवमें अहेतु हैं, ये समस्त गुण जिनसे ही प्रेरित होकर अपने-अपने विषयोंकी ओर प्रवाहित होते हैं; तथा जैसे आगसे निकली हुई चिनगारियाँ पुनः उसमें प्रविष्ट नहीं होतीं, उसी प्रकार महत्तत्त्व, इन्द्रिय-समुदाय तथा इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देव-समुदाय जिनमें प्रवेश नहीं पाते, उन परमात्माको नमस्कार है ॥ २१ ॥

ऋषिरूपा गोपियोंने कहा—बलवानोंमें भी अत्यन्त बलिष्ठ यह काल जिनपर अपना शासन चलानेमें समर्थ नहीं है, माया भी जिनको वशीभूत नहीं कर पाती तथा वेद भी जिन्हें अपने विधिवाक्योंका विषय नहीं बना पाता, उस अमृतस्वरूप, परम प्रशान्त, शुद्ध, परात्पर पूर्णब्रह्मकी हम शरण लेती हैं ॥ २२ ॥

देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ बोलीं—जिन परमेश्वरके अंशांश, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण आदि अवतार होते हैं, और जिनसे ही इस जगत्‌की सृष्टि, पालन एवं संहार होते हैं, उन पूर्णसे भी परे परिपूर्णतम श्रीकृष्णको हम प्रणाम करती हैं ॥ २३ ॥

यज्ञसीतारूपा गोपियोंने कहा—ये श्यामसुन्दर निकुञ्ज-लतिकाओंके लिये कुसुमाकर (वसन्त) हैं, श्रीराधाके हृदय तथा कण्ठको विभूषित करनेवाले हार हैं, श्रीरास-मण्डलके अधिपति हैं, व्रजमण्डलके ईश्वर हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डोंके महीमण्डलका परिपालन करनेवाले हैं ॥ २४ ॥

रमावैकुण्ठवासिनी गोपियाँ बोलीं—जिन्होंने समस्त गोपीयूथको अलंकृत किया, अपनी चरण-रजसे वृन्दावन तथा गिरिराज गोवर्धनको विभूषित किया तथा जो सम्पूर्ण लोकोंके अभ्युदयके लिये इस भूमण्डलपर आविर्भूत हुए, उन नागराजके समान परिपुष्ट भुजावाले अनन्त लीला-विलास-शाली श्रीश्यामसुन्दरका हम भजन करती हैं ॥ २५ ॥

श्वेतद्वीपकी सखियोंने कहा—जैसे बालक कुकुरमुत्ते-को बिना श्रमके उठा लेता है और जैसे गजराज अपनी सूँड़से अनायास ही कमलको उठा लेता है, उसी प्रकार जिन्होंने खिलवाड़में ही पर्वतको एक हाथसे उठाकर अद्भुत शोभा प्राप्त की, वे कृपानिधान श्रीव्रजराजनन्दन हमें कभी विस्मृत नहीं होते ॥ २६ ॥

ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिनी गोपियाँ बोलीं—हमारी श्यामवर्णमयी आँखें सारे जगत्‌को श्याममय ही देखती हैं, इन्हें द्वैत तो दीखता ही नहीं; फिर ये योगका सेवन क्या करेंगी ? ॥ २७ ॥

लोकाचलवासिनी गोपियोंने कहा—स्नेहका पाश दृढ होता है। वह कभी टूटने-कटनेवाला नहीं है। हम उसे नहीं काट सकतीं। श्रीहरिके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं कर सकता। एकमात्र वे ही ऐसे हैं, जो नागपाशको काटने-वाले गरुडकी भाँति इस स्नेहपाशको काटकर मथुरा चले गये ॥ २८ ॥

अजितपदाश्रिता गोपियाँ बोलीं—हमारे दोनों नेत्र श्रीकृष्णमें लग गये हैं, वे दसों दिशाओंमें दौड़ लगानेपर भी अन्यत्र कहीं उसी प्रकार नहीं टिक पाते, जैसे कमलसे जिसकी लगन लगी है, वह भ्रमर अन्य फूलोंपर कदापि नहीं जाता ॥ २९ ॥

श्रीसखियोंने कहा—लोग अपनी कृपणतासे यशको, क्रोधसे गुणसमूहके उदयको, दुर्व्यसनोंसे धनको तथा कपट-पूर्ण बर्तावसे मैत्रीको नष्ट कर देते हैं ॥ ३० ॥

मिथिलावासिनी स्त्रियाँ बोलीं—धन देकर तनकी रक्षा करे, तन देकर लाज बचाये तथा मित्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये आवश्यकता पड़ जाय तो धन, तन और लाज—तीनोंका उत्सर्ग कर दे ॥ ३१ ॥

कोसलप्रान्तवासिनी गोपियोंने कहा—वियोग-जनित दुःखकी दशाको जीवात्माके बिना दूसरा कोई नहीं जानता है, परंतु वह उसे बतानेमें असमर्थ है। (बताती है, वाणी, किंतु उसे उस दुःखका अनुभव नहीं है।) भले ही बाणोंके आघातसे हृदय विदीर्ण हो जाय, किंतु कभी किसीको प्रिय-वियोगका कष्ट न प्राप्त हो ॥ ३२ ॥

अयोध्यापुरवासिनी गोपियाँ बोलीं—पहले निराश करके फिर आशा दे दी और अपने मथुराकी आशा (दिशा) में चले गये ? उसके ऊपर हमारे लिये योग लिखा है। अहो ! निर्मोही जनोंका चित्र (या चित्त) विचित्र होता है ॥ ३३ ॥

पुलिन्दी गोपियोंने कहा—पूर्वकालकी बात है, दण्डकवनमें शूर्पणखा अत्यन्त विह्वल होकर इन्हें अपना पति बनानेके लिये इनके पास आयी; किंतु इन्होंने सुमित्राकुमार-को प्रेरणा देकर बलपूर्वक उसे कुरूप बना दिया। ऐसे पुरुषसे आप सबको कृपाकी आशा कैसे हो रही है ? ॥ ३४ ॥

सुतलवासिनी गोपियाँ बोलीं—राजा बलि भगवद्भक्त, सत्यपरायण और बहुत अधिक दान करनेवाले थे, परंतु उनसे भेंट-पूजा लेकर जिन्होंने कुपित हो उन्हें बन्धनमें डाल दिया था, उन वामनरूपधारी कपट ब्रह्मचारी बने हुए श्रीहरिकी न जाने लक्ष्मीजी या अन्य भक्तजन कैसे सेवा करते हैं ? ॥ ३५ ॥

जालंधरी गोपियोंने कहा—पूर्वकालमें असुरश्रेष्ठ भक्तप्रवर कयाधूकुमार प्रह्लादको बहुत अधिक कष्ट सहन करना पड़ा, तब कहीं नृसिंहरूप धारण करके इन्होंने उनकी सहायता की। अहो ! इनमें निष्ठुरताकी पराकाष्ठा प्रत्यक्ष देखी जाती है ॥ ३६ ॥

भूमिगोपियाँ बोलीं—अहो ! अत्यन्त निर्मोही जनका

चरित्र अत्यन्त विचित्र होता है, वह कहने योग्य नहीं है। मुखसे और ही बात निकलेगी, किंतु हृदयमें कोई और ही विचार रहेगा। ऐसे लोगोंको देवता भी नहीं समझ पाते, फिर मनुष्य कैसे जान सकता है? ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णकी यादमें गोपियोंके वचन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

गोपियोंके उद्गार तथा उनसे विदा लेकर उद्धवका मथुराको लौटना

बर्हिष्मतीपुरीकी गोपियोंने कहा—अहो! प्रलयके समुद्रमें वाराहरूपधारी महात्मा श्रीहरिने कृपापूर्वक जिसका उद्धार किया था, उसी पृथ्वीको मारनेके लिये आदिराज पृथुके रूपमें वे उसके पीछे दौड़े। दयालु होकर भी वे निर्दयताके लिये उद्यत हो गये [अतः कभी कठोर होना और कभी कृपा करना इन श्रीहरिका स्वभाव ही है] ? ॥ १ ॥

लतारूपा गोपियाँ बोलीं—विश्वके वैद्य महात्मा धन्वन्तरि पूर्वकालमें अमृत-कलशके साथ समुद्रसे प्रकट हुए, किंतु उन्होंने वह अमृत अपने हाथसे नहीं बाँटा; परंतु जब उसके लिये देवता और असुर आपसमें वैर बाँधकर युद्धके लिये उद्यत हो गये, तब कलहप्रिय श्रीहरिने स्वयं मोहिनी नारीका रूप धारण करके वह सुधा केवल देवताओंको पिला दी॥ २ ॥

नागेन्द्रकन्यारूपा गोपियोंने कहा—दण्डक नामक महावनमें इन श्रीहरिको श्रीरामरूपमें देखकर शूर्पणखा इन्हें अपना पति बनानेकी इच्छासे इनके पास आयी थी, किंतु लक्ष्मणसहित इन्होंने उस बेचारीके नाक-कान काटकर कुरूप बना दिया। यह कैसी निष्ठुरता है; उसने इनका क्या बिगाड़ा था? ॥ ३ ॥

समुद्रकन्यारूपा गोपियाँ बोलीं—जो प्रतिदिन सैकड़ों घरोंमें जाती और लोगोंको सुख-दुःख दिया करती है, वह चञ्चला लक्ष्मी इन श्रीहरिके पास न जाने स्वकीया और सुशीला बनकर कैसे टिकी हुई है? ॥ ४ ॥

अप्सरारूपा गोपियोंने कहा—सखियो! इनके प्रति प्रीति करनेसे रावणकी बहिनको अपनी नाक और कानोंसे हाथ धोना पड़ा था, अतः उनकी बात छोड़ो। इन्होंने तुम्हारे ऊपर उससे भी अधिक कृपा की है [कि नाक-कान छोड़ दिये] ॥ ५ ॥

दिव्यरूपा गोपियाँ बोलीं—ये राजा बलिसे बलि लेकर सर्वेश्वर हैं और उन्हें बाँधकर भी दयालु हैं; मुक्तिके नाथ होकर भी इन्होंने अपने भक्त बलिको नीचे सुतललोकमें फेंक दिया। इनकी कथासे आश्चर्य होता है॥ ६ ॥

अदिव्या गोपियोंने कहा—पूर्वकालमें शतरूपाके साथ मनु शान्तभावसे तपस्या करते थे। उस समय दैत्योंने उन्हें बहुत बाधा पहुँचायी। तत्पश्चात् उन दयानिधि श्रीहरिने आकर उनकी रक्षा की [पहले दुःख देना और पीछे आँसू पोंछना इनका स्वभाव है।] ॥ ७ ॥

सत्त्ववृत्तिरूपा गोपियाँ बोलीं—भक्त ध्रुव और प्रह्लादने पहले बहुत कष्ट पाया, तदनन्तर उन्होंने कृपापूर्वक उनकी रक्षा की; हमारे ये दीनवत्सल प्रभु पहले किसीकी रक्षा नहीं करते, कष्ट भुगतानेके बाद ही करते हैं ॥८॥

रजोगुणवृत्तिरूपा गोपियोंने कहा—रुक्माङ्गद, हरिश्चन्द्र और अम्बरीष—इन साधु शिरोमणि नरेशोंके सत्यकी परीक्षा करके ही श्रीहरिने उन्हें पुनः भागवती समृद्धि प्रदान की [सम्भव है, हमारे भी प्रेमकी परीक्षा ली जाती हो।] ॥ ९ ॥

तमोगुणवृत्तिरूपा गोपियाँ बोलीं—जिन छली-बली श्रीहरिने पूर्वकालमें वृन्दाको छला था, इन्हींको आज छलमयी और बलवती कुब्जाने छल लिया। [जैसेको तैसा मिला।] कटार या कृपाणिका एक ही ओरसे टेढ़ी होती है, तथापि बहुत-से लोगोंका घात करती है; इधर कुब्जा तो तीन जगहसे टेढ़ी है; उसे तीन जगहसे टेढ़े श्रीकृष्ण मिल गये, फिर वह कितनोंका घात करेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। श्रीकृष्णकी राह देखते-देखते हमारी आँखें बहुत दुखने लगी हैं और उनके आनेकी अवधि वामनके पाद-विक्षेपकी तरह बढ़ती ही जाती है। इस माधवमासमें माधवके

बिना हमारे शरीरका चमड़ा पीला पड़ गया, हमारी गतिमें शिथिलता आ गयी—पाँव थक गये और मन अत्यन्त उद्भ्रान्त हो गया है। हा दैव ! किस समय हम सब उषःकालमें सौतके हारके चिह्नसे चिह्नित होकर आये हुए नन्दनन्दनको देखेंगी ॥ १०—१४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णका चिन्तन करती हुई प्रेमविह्वला गोपियाँ उत्कण्ठित हो रोने लगीं और मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। तब पृथक्-पृथक् सबको आश्वासन दे, नीतिनिपुण वचनोंद्वारा सब गोपियोंको समझा-बुझाकर उद्धवने श्रीराधासे कहा ॥ १५-१६ ॥

उद्धव बोले—परिपूर्णतमे ! कृष्णास्वरूपे ! वृषभानुवरनन्दिनि ! मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये। व्रजेश्वरि ! आपको नमस्कार है। शुभे ! महात्मा श्रीकृष्णको उनके पत्रका उत्तर दीजिये। उसके द्वारा शीघ्र ही उनके चरणोंमें प्रणाम करके मैं उन्हें आपके पास ले आऊँगा ॥ १७-१८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर राधा तुरंत ही लेखनी और मसीपात्र लेकर समाचारका चिन्तन करने लगीं, तबतक उनके नेत्रोंमें अश्रुवर्षा होने लगी। श्रीराधाने जो-जो पत्र हाथमें लेकर उसे लेखनीसे संयुक्त किया, वह-वह उनके नेत्र-कमलोंके नीरसे भीग गया। श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे अश्रुधारा बहाती हुई कमलनयनी राधासे विस्मित हुए उद्धवने कहा ॥ १९-२१ ॥

उद्धव बोले—श्रीराधे ! आप कैसे लिखती हैं और कैसे दुःख प्रकट करती हैं, यह सब कथा मैं आपके लिखे बिना ही मैं उनसे निवेदित करूँगा ॥ २२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उद्धवकी वाणी सुनकर राधाने याधारहित हो समस्त गोपियोंके साथ उस समय उद्धवका पूजन किया। तत्पश्चात् परादेवी रासेश्वरी श्रीराधाको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके, गोपीगणोंसे विदा ले, सबको बार-बार मस्तक झुकाकर उद्धव रत्नभूषणभूषित उस दिव्याकार रथपर आरूढ़ हुए। उनको अपनी बुद्धि और ज्ञानपर जो बड़ा अभिमान था, वह दूर हो गया। वे संध्याके समय नन्दजीके पास लौट आये। सबेरे सूर्योदय होनेपर गोपी यशोदाको नमस्कार करके, उद्धव नन्दराजकी आज्ञा ले क्रमशः नौ नन्दों, वृषभानुओं, उपनन्दों, अन्य लोगों तथा कृष्णके सम्पूर्ण सखाओंसे अलग-अलग मिले और उनसे विदा ले, रथपर आरूढ़ हो वहाँसे चल दिये। समस्त गोप और गोपियोंके समुदाय उनके पीछे पीछे दूरतक पहुँचानेके लिये गये। उद्धव सबको स्नेहपूर्वक लौटाकर मथुराको चले गये। श्रीकृष्ण यमुनाके मनोहर तटपर अक्षयवटके नीचे एकान्त स्थानमें बैठे हुए थे। वहाँ उनको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धव नेत्र-कमलोंसे आँसू बहाते हुए प्रेमगद्गद वाणीमें बोले ॥ २३—२९ ॥

उद्धवने कहा—देव ! आप तो सबके साक्षी हैं, आपको मुझे क्या बताना है। आप राधिका और गोपियोंका कल्याण कीजिये, कल्याण कीजिये; उन्हें दर्शन दीजिये। 'मैं देवदेवेश्वर श्रीकृष्णको तुम्हारे पास ले आऊँगा।' ऐसी-बात मैंने उनसे कही है। कृपानिधे ! मेरे इस वचनकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। भक्तोंके परमेश्वर ! जैसे आपने प्रह्लाद और रुक्माङ्गदकी, बलि और खट्वाङ्गकी तथा अम्बरीष और ध्रुवकी प्रतिज्ञा रक्खी है, उसी प्रकार मेरी की हुई प्रतिज्ञाकी भी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ३०—३२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गोपियोंके वचन तथा उद्धवका मथुरा लौट जाना' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका उद्धवके साथ व्रजमें प्रत्यागमन और यमुना-तटपर गौओंका उनके रथको चारों ओरसे घेर लेना; गोपोंके साथ उनकी भेंट; नन्दगाँवसे नन्दरायजी एवं यशोदाका गोपों एवं गोपियोंको लेकर गाजे-बाजेके साथ उनकी अगवानीके लिये निकलना तथा सबके साथ श्रीकृष्णका नन्दनगरमें प्रवेश

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार भक्तका वचन सुनकर भक्तवत्सल अच्युतने अपने कहे हुए वचनको याद करके व्रजमें जानेका विचार किया। समस्त कार्यभारोंपर दृष्टि रखनेके लिये बलदेवजीको मथुरामें ही

छोड़कर, चञ्चल घोड़ोंसे जुते हुए किङ्किणीजालमण्डित सुवर्ण-जटित सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर उद्धवके साथ आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंको दर्शन देनेके लिये नन्दगाँवको गये। गोवर्द्धन, गोकुल और वृन्दावनको देखते हुए श्रीकृष्ण यमुनाके मनोहर तटपर पहुँचे। व्रजेश्वर श्रीकृष्णको देखते ही कोटि-कोटि गौएँ चारों ओरसे दौड़ती हुई उनके पास आ गयीं। उन सबके स्तनोंसे स्नेहके कारण दूध झर रहा था। वे कान और पूँछ उठाकर रँभा रही थीं। उनके साथ बछड़े भी थे। मुखमें घासके ग्रास लिये खड़ी हुई गौएँ नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहा रही थीं। उनकी व्यथा वेदना दूर हो गयी थी। राजन्! जैसे बादल रथ, अरुण और अश्वोंसहित शरत्कालके सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार उद्धवके देखते-देखते गौओंने उस रथको सब ओरसे घेर लिया। गोपाल श्रीहरि उन सब गौओंके अलग-अलग नाम बोलकर अपने श्रीहस्तसे उनके अङ्गोंको सहलाते हुए बड़े हर्षको प्राप्त हुए। गौओंके समुदायको उनके समीप गया देख श्रीदामा आदि व्रज-बालक विस्मित हो परस्पर कहने लगे॥ १-९॥

गोप बोले—सखाओ! उस वायुके समान वेगशाली तथा कांस्यपत्र (झाँझ) की ध्वनिके समान शब्द करनेवाले, कलश और ध्वजसहित रथको, जिसमें सैकड़ों अश्व जुते हैं तथा जो शत सूर्योंके समान शोभाशाली है, गौओंने कैसे घेर लिया है? गौओंके इस हर्षसे यह सूचित होता है कि इस रथ-पर दूसरा कोई नहीं, *साक्षात् व्रजराजनन्दन ही आ रहे हैं*; क्योंकि हमारे दाहिने अङ्ग भी फड़क रहे हैं और नीलकण्ठ पक्षी हमारे ऊपर उड़कर वंदनवारका-सा विस्तार करते हैं॥ १०-११॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मन-ही-मन ऐसा विचार करके वे सब गोप वहाँ आ गये। आनेपर उन लोगोंने अपने मित्र *माधवको उसी प्रकार* देखा, जैसे साधारण जन अपनी खोयी हुई वस्तुके मिल जानेपर उसे देखते हैं। उनपर दृष्टि पड़ते ही साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण रथसे कूद पड़े और उन सबको आगे करके, प्रेमविह्वल हो अपनी दोनों भुजाओंसे भेंटने लगे। नेत्र-कमलोंसे अश्रुधारा बहाते हुए उन्होंने पृथक्-पृथक् सबको हृदयसे लगाया। अहो! इस भूतलपर भक्तिके माहात्म्यका वर्णन कौन कर सकता है! मिथिलेश्वर! वे सब गोप नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए फूट-फूटकर रोने लगे। श्रीकृष्णके वियोगसे वे इतने विह्वल हो गये थे कि मिल जानेपर भी सहसा उनसे कुछ कहनेमें समर्थ न हो सके। तब साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिने उन प्रेमानन्दसे विह्वल सखाओंको मधुर वाणीसे आश्वासन दिया। श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंके साथ उद्धवको अपने आनेका समाचार देनेके लिये भेजा। उद्धवने नन्द-नगरमें जाकर बताया कि 'श्रीकृष्ण पधारे हैं'॥ १२-१७॥

गोपवल्लभ नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आगमन सुनकर समस्त गोप परिपूर्णमनोरथ होकर उन्हें लिवा लानेके लिये निकले। भेरी, मृदङ्ग, पटह आदि बाजे मधुरस्वरमें बजने लगे। भरे हुए कलश लिये ब्राह्मणलोग वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। लाजा (खील) आदि माङ्गलिक वस्तुओंसे मिश्रित गन्ध और अक्षत साथ ले यशोदाके साथ श्रीनन्दराज अगवानीके लिये गये। तत्पश्चात् सिन्दूर रञ्जित सूँड़में सोनेकी साँकल धारण किये मदोन्मत्त हाथीको आगे रखकर भानुतुल्य तेजस्वी श्रीवृषभानुवर अपनी रानी कलावतीके साथ वहाँ आये। नन्द, उपनन्द, वृषभानु, बूढ़े, जवान और बालक गोप पूर्णमनोरथ हो, फूलोंके हार, बाँसुरी, गुञ्जा और मोरपंख लिये नगरसे बाहर निकले। नरेश्वर! गोप-बालक श्रीकृष्णके दर्शनकी बड़ी भारी लालसा लिये, हाथोंमें वंशी, बेंत और विषाण (सींग) धारण किये, बड़े हर्षके साथ नन्दनन्दनके गुण गाते और पीले वस्त्र हिला-हिलाकर नाचते थे॥ १८-२२॥

सखियोंके मुखसे श्रीहरिके शुभागमनका शुभ संवाद सुनकर श्रीराधा शयनसे उठ खड़ी हुई और महान् हर्षसे युक्त हो उन्होंने उन सबको अपने भूषण उसी प्रकार लुटा दिये, जैसे प्रसन्न हुई नूतन पद्मिनी अपनी सुगन्ध लुटाया करती है। मिथिलेश्वर! गोपाङ्गनाओंके आठ, सोलह, बत्तीस और दो यूथोंके *साथ श्रीराधा* मनोहर शिबिकापर आरूढ़ हो श्रीधरके दर्शनके लिये आयीं। नृपेश्वर! इसी प्रकार करोड़ों गोपियाँ अपने घरका सारा काम-काज छोड़कर, उलटे-सीधे वस्त्र और आभूषण धारण किये वहाँ आयीं। प्रेमके कारण वे मनके समान तीव्र गतिसे चल रही थीं। ऐसा लगता था कि वृक्ष, गौ, मृग और पक्षियोंसहित सारा व्रज मण्डल श्रीकृष्णको आया हुआ देख प्रेमसे आतुर हो उठा है॥ २३-२५½॥

श्रीकृष्णने मस्तकपर अञ्जलि बाँधे पिता श्रीनन्दराजको

और मैया यशोदाको प्रणाम किया। बहुत दिनोंके बाद आये हुए अपने पुत्रको दोनों भुजाओंमें भरकर और हृदयसे लगाकर श्रीनन्दराजने अपने नेत्र-जलसे उनको नहला दिया। यशोदासहित श्रीनन्दका मनोरथ आज चिरकालके बाद पूर्ण हुआ था। नन्द, उपनन्द और वृषभानु आदि सम्पूर्ण बड़े-बूढ़े गोपोंको प्रणाम करके, उनके आशीर्वाद ले श्रीकृष्ण समवयस्क मित्रोंसे परस्पर गले मिले और अपनेसे छोटे सखाओंका हाथ पकड़कर उनके साथ बैठे ॥ २६—२८ ॥

तदनन्तर श्रीहरि यशोदासहित नन्दको हाथीपर चढ़ाकर स्वयं रथपर बैठे और नन्द उपनन्द तथा गो-समुदायके साथ श्रीनन्दराजके नगरमें प्रविष्ट हुए। उसी समय देवताओंने उनपर फूलोंकी वर्षा की और पुरवासिनी गोपाङ्गनाओंने आचार-प्राप्त लावा (खील) बिखेरे। श्रीहरिके घर पधारनेपर गोपोंने वहाँ 'जय हो, जय हो' ऐसे माङ्गलिक शब्दका बारंबार उच्चारण किया। उस समय आर्त हुए गोपगण गद्गद वाणीमें कहने लगे—'लाला! तुम्हारा यह सखा उद्धव परम धन्य है; क्योंकि इसने गोपजनोंके जीवनभूत साक्षात् तुम्हारा दर्शन करा दिया' ॥ २९—३१ ॥

नृपेश्वर! इस प्रकार मैंने श्रीहरिके व्रजमें पुनरागमनका वृत्तान्त तुमसे कह सुनाया, अब और क्या सुनना चाहते हो? श्रीहरिका यह विचित्र चरित्र देवताओं और असुरोंके लिये भी परम कल्याणप्रद है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका व्रजमें आगमनोत्सव' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका कदली-वनमें श्रीराधा और गोपियोंके साथ मिलन; रासोत्सव तथा उसी प्रसङ्गमें रोहिताचलपर महामुनि ऋभुका मोक्ष

बहुलाश्वने पूछा—मुने! साक्षात् भगवान्ने व्रज-मण्डलमें पधारकर आगे कौन सा कार्य किया? श्रीराधा तथा गोपाङ्गनाओंको किस प्रकार दर्शन दिया? गोपियोंके मनोरथ पूर्ण करके वे पुनः मथुरामें कैसे आये? विप्रेन्द्र! आप परापर-वेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, अतः ये सब बातें मुझे बताइये ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! सन्ध्याकालमें श्रीराधाका बुलावा पाकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सदा-शीतल कदली-वनके एकान्त प्रदेशमें गये। वहाँ, जिसमें फुहारे चलते थे, ऐसा मेघमहल था, रम्भाद्वारा चन्दन छिड़का जाता था, यमुनाजीको छूकर प्रवाहित होनेवाली मन्द वायु ठंडे जलके कण बिखेरती थी और सुधाकर चन्द्रमाकी रश्मियोंसे निरन्तर अमृत झरता रहता था। ऐसा शीतल कदली वन भी श्रीराधाके विरहानलकी आँचसे भस्मीभूत हो गया था। श्रीकृष्णसे मिलनकी आशा ही श्रीराधाकी निरन्तर रक्षा कर रही थी। वहीं गोपियोंके सारे के सारे यूथ आ जुटे, जो सैकड़ोंकी संख्यामें थे। उन्होंने श्रीराधासे निवेदन किया कि 'माधव पधारे हैं।' यह सुनकर साक्षात् वृषभानुवरकी पुत्री श्रीराधा सहसा उठीं और सखियोंसे घिरी हुई वे श्रीकृष्णको लिवा लानेके लिये आयीं। उन्होंने श्रीहरिको आसन दिया। पाद्य, अर्घ्य और आचमन आदि मनोहर उपचार प्रस्तुत किये। साथ ही कुशल पूछनेमें अत्यन्त चतुर श्रीराधा श्रीहरिसे आदरपूर्वक कुशल भी पूछती जा रही थीं। कोटि-कोटि तरुण कंदर्पोंके माधुर्यको हर लेनेवाले श्रीहरिका दर्शन करके राधाने सम्पूर्ण दुःखको उसी प्रकार त्याग दिया, जैसे ब्रह्मका बोध प्राप्त होनेपर ज्ञानी गुणोंके प्रति तादात्म्यका भाव छोड़ देता है। कीर्तिकुमारीने प्रसन्न होकर शृङ्गार धारण किया। श्रीकृष्ण जब परदेशके पथिक होकर गये थे, तबसे उन्होंने अपने शरीरपर शृङ्गार धारण नहीं किया था। न कभी चन्दन लगाया, न पान खाया, न सुधासदृश स्वादिष्ट भोजन ही ग्रहण किया। न दिव्य सेजकी रचना की और न कभी किसीके साथ हास-परिहास ही किया। परिपूर्णतम भगवान्की प्रियतमा आनन्दके आँसू बहाती हुई अपने परिपूर्णतम प्रियतम श्रीकृष्णसे गद्गद वाणीमें बोलीं ॥ ३—१२ ॥

श्रीराधाने कहा—प्यारे! यादवपुरी मथुरा कितनी दूर है, जो अबतक नहीं आये? वहाँ तुम क्या करते रहे? मैं अपने एकान्त दुःखको कैसे बताऊँ? तुम तो सबके साक्षी हो, अतः सब जानते हो। राजा सौदासकी रानी मदयन्ती,

नलकी प्यारी रानी दमयन्ती तथा मिथिलेशनन्दिनी सीता—इन तीनोंमेंसे कोई यहाँ नहीं है। फिर किसको सामने रखकर इस वैरी विरहके दुःखका मैं वर्णन करूँ? ये गोपाङ्गनाएँ भी मेरी-जैसी परिस्थितिमें ही हैं, अतः वे भी कभी इस दुःखका निरूपण करनेमें समर्थ नहीं हैं। जैसे चकोरी शरत्कालके चन्द्रमाको और मयूरी नूतन मेघको देखना चाहती है, उसी प्रकार मैं तुम श्रीवृन्दावनचन्द्र तथा घनश्यामको देखनेके लिये उत्कण्ठित रहती हूँ। तुम्हारे सखा उद्धव धन्य हैं, जिन्होंने शीघ्र ही तुम्हारा दर्शन करा दिया। इस व्रजमें दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जिसके प्रेमसे तुम यहाँ आते ॥ ११—१६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कहती और निरन्तर रोती हुई श्रेष्ठ लक्ष्मीरूपा श्रीराधाको देखकर श्यामसुन्दरका अङ्ग-अङ्ग करुणासे विह्वल हो गया। उनके नेत्रोंसे भी अश्रु झरने लगे। उन्होंने तत्काल दोनों हाथोंसे खींचकर प्रियतमाको हृदयसे लगा लिया और नीतियुक्त वचनोंसे उन्हें धीरज बँधाया ॥ १७ ॥

श्रीभगवान् बोले—राधे! शोक न करो, मैं तुम्हारे प्रेमसे ही यहाँ आया हूँ। हम दोनोंका तेज भेदरहित एवं एक है। लोगोंने इसे दो मान रक्खा है। शुभे! जैसे दूध और उसकी धवलता एक है, उसी प्रकार सदा हम दोनों एक हैं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ तुम सदा विराजमान हो। हम दोनोंका वियोग कभी होता ही नहीं। मैं पूर्ण परब्रह्म हूँ और तुम जगन्माता तटस्था शक्ति हो। हम दोनोंके बीचमें वियोगकी कल्पना मिथ्या ज्ञानके कारण है, तुम इसे समझो। वरानने! जैसे आकाशमें नित्य विराजमान महान् वायु सर्वत्र व्यापक है, जैसे जल सूक्ष्मरूपसे सर्वत्र व्याप्त है, जैसे काष्ठमें अग्नि व्याप्त रहती है और जैसे भीतर और बाहर स्थित यह पृथग्भूता पृथ्वी परमाणुरूपसे सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार मैं निर्विकारभावसे सर्वत्र विद्यमान हूँ। जैसे जल विविध रंगोंसे युक्त होनेपर भी उनसे पृथक् है, उसी प्रकार मैं त्रिगुणात्मक भावोंके सम्पर्कमें रहकर भी उनसे सर्वथा असम्पृक्त हूँ। इसी प्रकार तुम मेरे स्वरूपको देखो और समझो; इससे सदा आनन्द बना रहेगा। सुमुखि! 'मैं' और 'मेरा'—इन दो भावोंके कारण द्वैतकी कल्पना होती है। जबतक सूर्यसे ही उत्पन्न हुआ मेघ सूर्य और दृष्टिके बीचमें विद्यमान है, तबतक दृष्टि अपने ही स्वरूपभूत सूर्यका दर्शन नहीं कर पाती। इसी प्रकार जबतक प्राकृत गुण व्यवधान बनकर खड़े हैं, तबतक जीवात्मा अपने ही स्वरूपभूत परमात्माको नहीं देख पाता। इन तीनों गुणोंका आवरण दूर होनेपर ही वह परमात्माका साक्षात्कार कर पाता है। यदि मन गुणों (विषयों) में आसक्त है तो वह बन्धनकारक होता है, और यदि परम पुरुष परमात्मामें संलग्न है तो मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला हो जाता है। इस प्रकार मनको बन्धन और मोक्ष—दोनोंका कारण बताया गया है। उस मनको जीतकर पृथ्वीपर असङ्ग होकर विचरे। भामिनि! लोकमें मनका सम्पूर्णभाव (सम्बन्ध) दोनों ओरसे परस्परकी अपेक्षा रखकर होता है, एक ओरसे नहीं होता। किंतु प्रेम स्वयं ही किया जाता है, अतः मुझमें अपनी ओरसे ही प्रेम करना चाहिये। प्रेमके समान इस भूतलपर दूसरा कोई भी मेरी प्राप्तिका साधन नहीं है ॥ १८—२६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीहरिका यह वचन सुनकर कीर्तिनन्दिनी श्रीराधाने गोपियोंके साथ उन माधव श्रीकृष्णका पूजन किया। तदनन्तर कार्तिक पूर्णिमाकी रातमें गोपियों और श्रीराधिकाके साथ रासमण्डलमें उपस्थित हो साक्षात् श्रीहरिने मुरली बजायी। राजन्! यमुनाके निकट रासकी रङ्गभूमिमें श्रीराधा तथा अन्य सुन्दरी व्रजरमणियोंके साथ राधावल्लभ श्रीकृष्ण शोभा पाने लगे। रासमें जितनी गोपाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके वृन्दावनाधीश्वर श्रीहरि दिव्य वृन्दावनमें विहार करने लगे। उनके चरणोंके नूपुर और मञ्जीर बज रहे थे। वनमाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। पीताम्बर पहिने, एक हाथमें कमल लिये, प्रातःकालिक सूर्यके समान कान्तिमान् मुकुट धारण किये, विद्युल्लताके तुल्य जगमगाते हुए सुवर्णमय कुण्डलोंसे मण्डित हो, बेंतकी छड़ी लिये, वंशी बजाते हुए, मेघकी-सी कान्तिवाले श्रीहरि नटवर-वेषमें सुशोभित हुए। अत्यन्त प्रकाशमान कौस्तुभरत्न उनके वक्षःस्थलपर दिव्य प्रभा बिखेर रहा था। कानोंमें चिकने और चमकीले कुण्डल हिल रहे थे। रासमण्डलमें श्रीराधाके साथ वे उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे रतिके साथ रतिपति। जैसे स्वर्गमें शचीके साथ इन्द्र तथा आकाशमें चपलाके साथ मेघ शोभा पाते हैं, वृन्दावनमें वृन्दाके साथ वृन्दावनेश्वरकी वैसी ही शोभा हो रही थी। वे वृन्दावन, यमुना-पुलिन, वन और उपवनकी शोभा निहारते हुए गोपी-समुदायके साथ

गोवर्धन पर्वतपर गये। भगवान् व्रजेश्वरने देखा सौ यूथवाली गोपाङ्गनाओंको अपने सौभाग्यपर अभिमान हो उठा है, तब वे श्रीराधाके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २७–३६ ॥

अब वे गोवर्धनसे तीन योजन दूर चन्दनकी गन्धसे सुवासित सुन्दर रोहिताचलको चले गये। श्रीराधाके साथ वहाँके लता कुञ्जों और निकुञ्जोंको देखते तथा वार्तालाप करते हुए सुनहरी लताओंके आश्रयभूत उस पर्वतपर विचरने लगे। वहाँ बदरीनाथके द्वारा निर्मित रमणीय देवसरोवर है, जो बड़े-बड़े मत्स्यों, कछुओं और मगर आदि जल-जन्तुओं तथा हंस-सारस आदि पक्षियोंसे व्याप्त था। सहस्रदल कमल उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। इधर-उधर मँडराते हुए भ्रमरोंकी मधुर ध्वनिसे युक्त नर-कोकिलोंकी काकली वहाँ सब ओर व्याप्त थी। उसके तटपर मन्द-मन्द वायु चल रही थी और प्रफुल्ल कमलोंकी सुगन्ध छायी हुई थी। रमास्वरूपा राधाके साथ माधव उस सरोवरके किनारे बैठ गये। उसी सरोवरके कूलपर महामुनि ऋभु एक पैरसे खड़े होकर तपस्या कर रहे थे और निरन्तर श्रीकृष्णके चिन्तनमें तत्पर थे। साठ हजार, साठ सौ वर्षोंसे वे निराहार और निर्जल रहकर शान्तभावसे तपस्यामें लगे थे। श्रीकृष्णने उन्हें देखा। राधाने उन्हें देखकर मुस्कराते हुए पूछा- 'ये कौन हैं?' माधव बोले --'प्रिये! इनका माहात्म्य बढ़ाओ। ये भक्त हैं। इन महामुनिकी भक्ति देखो।'- कहकर श्रीकृष्णने 'हे ऋभो!' यह नाम लेकर उच्चस्वरसे पुकारा। किंतु उन्होंने उनका वह शुभ वचन नहीं सुना; क्योंकि वे ध्यानकी चरमावस्था (समाधि) में पहुँच गये थे। तब श्रीहरि उस समय मुनिके हृदयसे तत्काल तिरोहित हो गये। श्रीहरिको ध्यानसे निर्गत होनेके कारण न देखकर मुनीन्द्र ऋभु अत्यन्त विस्मित हो गये। फिर तो उन्होंने आँखें खोल दीं और अपने सामने चपलाके साथ मेघकी भाँति राधाके साथ श्रीकृष्णको देखा, जो अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको अनुरञ्जित प्रकाशित कर रहे थे। यह देख वे हरिभक्तिपरायण महात्मा शीघ्र उठे और राधासहित श्रीहरिकी परिक्रमा करके, मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े। फिर अत्यन्त गद्गद वाणीमें श्रीकृष्णसे बोले ॥ ३७-४८ ॥

श्रीऋभुने कहा—श्रीकृष्ण और कृष्णाको नमस्कार। श्रीराधा और माधवको नमस्कार। परिपूर्णतमा और परिपूर्णतमको नमस्कार। देव घनश्याम और श्यामाको सदा नमस्कार है। रासेश्वर तथा रासेश्वरीको नित्य-निरन्तर बारंबार नमस्कार है। गोलोकातीत लीलावाले श्रीकृष्णको तथा लीलावती श्रीराधाको बारंबार नमस्कार है। असंख्य ब्रह्माण्डोंकी अधिदेवी तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंकी निधिको नमस्कार है। आप दोनों भूभार हरण करनेके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं और मुझे शान्ति प्रदान करनेके लिये यहाँ पधारे हैं। परस्पर संयुक्त विग्रहवाले आप दोनों श्रीराधा और श्रीहरिको मेरा नमस्कार है* ॥ ४९–५२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें नेत्रोंसे प्रेमाश्रुकी वर्षा करते हुए प्रेमानन्द-निमग्न महामुनि ऋभुने अपने प्राण त्याग दिये। उसी समय उनके शरीरसे दस सूर्योंके समान दीप्तिमती ज्योति निकली और दसों दिशाओंमें घूमती हुई श्रीकृष्णमें लीन हो गयी। अपने भक्तकी यह प्रेमलक्षणा-भक्ति देखकर श्रीकृष्णने अपने नेत्रोंमें आनन्दके अश्रु बहाते हुए बड़े प्रेमसे उनका नाम लेकर पुकारा। तब श्रीकृष्णका-सा रूप धारण किये वे मुनि श्रीकृष्णके चरण-कमलसे पुनः प्रकट हुए। उस समय उनका सौन्दर्य कोटि कोटि कंदर्पोंको तिरस्कृत कर रहा था और वे विनयसे सिर झुकाये हुए खड़े थे। करुणानिधि श्रीकृष्णने उन्हें भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया और आश्वासन दे, अपना दिव्य कल्याणकारी हाथ उनके मस्तकपर रक्खा। मिथिलेश्वर! तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और श्रीराधाकी परिक्रमा करके, उन्हें प्रणाम कर, मुनिवर ऋभु एक मनोहर विमानपर आरूढ़ हो, अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए, गोलोकधामको चले

---

* नमः कृष्णाय कृष्णायै राधायै माधवाय च।
परिपूर्णतमायै च परिपूर्णतमाय च॥
घनश्यामाय देवाय श्यामायै सततं नमः।
रासेश्वराय सततं रासेश्वर्यै नमो नमः॥
गोलोकातीतलीलाय लीलावत्यै नमो नमः।
असंख्याण्डाधिदेव्यै चासंख्याण्डनिधये नमः॥
भूभारहाराय भुवं गताभ्यां
मच्छान्तये चात्र समागताभ्याम्।
परस्पर संवितविग्रहाभ्यां
नमो युवाभ्यां हरिराधिकाभ्याम्॥
(गर्ग०, मथुरा० २० । ४९–५२)

गये। महामुनि ऋभुकी यह परा मुक्ति देखकर वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधिकाको बड़ा विस्मय हुआ। वे बहुत देरतक आनन्दके आँसू बहाती रहीं। फिर श्रीकृष्णसे बोलीं ॥ ५३-५९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें रासोत्सवके प्रसङ्गमें 'ऋभुका मोक्ष' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णकी द्रवरूपताके प्रसङ्गमें नारदजीका उपाख्यान

राधाने कहा—माधव! ये मुनिश्रेष्ठ धन्य हैं, जो तुम्हारे इतने बड़े भक्त और महान् प्रेमी थे। इन्होंने तुम्हारा सारूप्य प्राप्त कर लिया और तुम भी इनके लिये आँसू बहाते रहे। पापनाशन! अब तुम्हें इनके शरीरका दाह-संस्कार भी करना चाहिये। इनका यह शरीर तपस्याके प्रभावसे अभीतक निर्मल आकारमें प्रकाशित हो रहा है॥ १-२॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! वहाँ श्रीराधा इस प्रकार कह ही रही थीं कि मुनिका शरीर एक नदीके रूपमें परिणत हो गया। रोहिताचलपर बहती हुई वह पापनाशिनी नदी आज भी देखी जाती है। उनके शरीरको नदीके रूपमें परिणत देख राधाको और भी अधिक विस्मय हुआ। तब वे वृषभानुवरनन्दिनी नन्दराजकुमारसे इस प्रकार बोलीं॥ ३ ४॥

राधाने कहा—श्यामसुन्दर! इन महामुनिका यह शरीर जलरूपमें कैसे परिणत हो गया? देव! मेरे इस संशयको तुम पूर्णरूपसे मिटा दो॥ ५॥

श्रीभगवान्ने कहा—रम्भोरु! ये मुनीश्वर प्रेम-लक्षणा-भक्तिसे संयुक्त थे, इसीलिये इनका यह शरीर द्रव-भावको प्राप्त हुआ है। तुम्हारे साथ मुझे वर देनेके लिये आया देख महामुनि ऋभु अत्यन्त हर्षित हुए थे, इसीलिये इनका कलेवर उसी प्रकार जलरूपमें परिणत हो गया, जैसे मैं पहले द्रवभावको प्राप्त हुआ था॥ ६ ७॥

श्रीराधाने पूछा—देवदेव! दयानिधे! तुम कैसे द्रवभावको प्राप्त हुए थे? यह बात मुझे बड़ी विचित्र लग रही है, तुम विस्तारसे सब बात बताओ॥ ८॥

श्रीभगवान्ने कहा—इस विषयमें जानकार लोग इस प्राचीन इतिहासको सुनाया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है॥ ९॥

पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्मा मेरे नाभि-कमलसे प्रकट हो प्राकृत जगत्की सृष्टि करने लगे। वे अपनी तपस्या और मेरे वरदानसे शक्तिशाली रहे। एक समय सृष्टिकर्ता ब्रह्माकी गोदसे सुन्दर पुत्र नारदजीका जन्म हुआ। वे मेरी भक्तिसे उन्मत्त होकर भूमण्डलपर भ्रमण करते हुए मेरे नाम-पदोंका कीर्तन करने लगे। एक दिन प्रजापति ब्रह्मदेवने नारदजीसे कहा—'महामते! यह व्यर्थ घूमना छोड़ो और प्रजाकी सृष्टि करो।' उनकी बात सुनकर ज्ञानमार्ग-परायण नारदने इस प्रकार कहा—'पिताजी! मैं सृष्टि नहीं करूँगा; क्योंकि वह शोक-मोह पैदा करनेवाली है। मैं तो श्रीहरिके नामोंका कीर्तन और उनकी भक्ति करूँगा। आप भी इस सृष्टि-व्यापारमें लगकर दुःखसे अत्यन्त आतुर रहते हैं, अतः आप भी सृष्टि-रचना छोड़ दीजिये' ॥ १०-१४ ॥

यह सुनकर ब्रह्माजीके अधर क्रोधसे फड़कने लगे। उन्होंने कुपित हो शाप देते हुए कहा—'दुर्मते! तुम एक कल्पतक सदा गाने-बजानेमें ही लगे रहनेवाले गन्धर्व हो जाओ।' श्रीराधे! इस प्रकार ब्रह्माके शापसे नारदजी उपबर्हण नामक गन्धर्व हो गये। वे एक कल्पतक देवलोकमें गन्धर्वराजके पदपर प्रतिष्ठित रहे। एक दिन स्त्रियोंसे घिरे हुए वे ब्रह्माजीके लोकमें गये। वहाँ सुन्दरियोंमें मन लगा रहनेके कारण उन्होंने बेताला गीत गाया। तब ब्रह्माने पुनः शाप दे दिया—'दुर्मते! तू शूद्र हो जा।' इस प्रकार ब्रह्माजीके शापसे वे दासीपुत्र हो गये। राधे! फिर सत्सङ्गके प्रभावसे नारदजी ब्रह्मपुत्रताको प्राप्त हुए। तदनन्तर पुनः भक्तिभावसे उन्मत्त हो भूतलपर विचरते हुए वे मेरे पदोंका गान एवं कीर्तन करने लगे। मुनीन्द्र नारद वैष्णवोंमें श्रेष्ठ, मेरे प्रिय तथा ज्ञानके सूर्य हैं। वे परम भागवत हैं और सदा मुझमें ही मन लगाये रहते हैं॥ १५-२०॥

एक दिन विभिन्न लोकोंका दर्शन करते हुए गान-तत्पर

नारद, जिनकी सर्वत्र गति है, इलावृतखण्डमें गये, जहाँ, प्रिये ! जम्बूफलके रसमे प्रकट हुई श्यामवर्णा जम्बूनदी प्रवाहित होती है तथा जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है । उस देशमें रत्नमय प्रासादोंसे युक्त तथा दिव्य नर-नारियोंसे भरा हुआ एक 'वेदनगर'-नामक नगर है, जिसे योगी नारदने देखा । वहाँ कितने ही लोगोंके पैर नहीं थे, गुल्फ नहीं थे और घुटने भी नहीं थे । जङ्घा अथवा जघन-भागका भी कितने ही लोगोंके पास अभाव था । वे विकलाङ्ग और कृशोदर थे और कितनोंके पीठके मध्यभागमें कूबर निकल आयी थी, दाँत गिर गये थे या ढीले हो गये थे, कंधे ऊँचे थे, मुख झुका हुआ था और कितनोंके गर्दन ही नहीं थी । इस प्रकार नारदजीने वहाँकी स्त्रियों और पुरुषोंको अङ्ग-भङ्ग देखा । उन सबको देखकर मुनिने कहा—'अहो ! यह क्या बात है ? यह सब तो विचित्र ही दिखायी देता है । आप सब लोगोंके मुँह कमलके समान हैं, शरीर दिव्य हैं और वस्त्र भी अच्छे हैं । आपलोग देवता हैं या उपदेवता अथवा कोई ऋषिश्रेष्ठ हैं ! आप सब लोग बाजोंके साथ हैं तथा रमणीय गीत गानेमें संलग्न हैं । आप अङ्ग-भङ्ग कैसे हो गये, यह बात शीघ्र मुझे बताइये ।' उनके इस प्रकार पूछनेपर वे सब दीनचित्त होकर बोले ॥ २१–२८ ॥

रागोंने कहा—मुने ! हमारे शरीरमें स्वतः बड़ा भारी दुःख पैदा हो गया है । परंतु यह सब उसके आगे कहना चाहिये, जो उसे दूर कर सके । महर्षे ! हमलोग राग हैं और वेदपुरमें निवास करते हैं । मानद ! हम अङ्ग भङ्ग कैसे हो गये, इसका कारण बताते हैं, सुनिये; हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीके एक पुत्र पैदा हुआ है, जिसका नाम है, नारद । वह महामुनि प्रेमसे उन्मत्त होकर बेसमय ध्रुवपद गाता हुआ इस पृथ्वीपर विचरा करता है । उसके ताल स्वरसे रहित असामयिक गानों-विगानोंसे हम सब अङ्ग भङ्ग हो गये हैं ॥ २९–३२ ॥

उनकी यह बात सुनकर नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ । उनका गर्व गल गया और वे रागोंसे हँसते हुए-से बोले ॥ ३३ ॥

मुनिने कहा—रागगण ! मुझे शीघ्र बताओ । नारद-मुनिको किस प्रकारसे काल और तालका ज्ञान हो सकता है, जिससे वे स्वरयुक्त गीत गा सकें ॥ ३४ ॥

रागोंने कहा—साक्षात् वैकुण्ठनाथकी प्रिय भार्याओंमें मुख्य सरस्वती देवी यदि नारदको संगीतकी शिक्षा दे सकें तो वे मुनि कौन सा राग किस समय, किस ताल-स्वरसे गाना चाहिये, इसे जान सकते हैं ॥ ३५ ॥

उनकी यह बात सुनकर दीनवत्सल नारद सरस्वतीका कृपा-प्रसाद प्राप्त करनेके लिये तुरंत ही शुभ्रगिरिपर चले गये । वहाँ उन्होंने सौ दिव्य वर्षोंतक निरन्तर अत्यन्त दुष्कर तपस्या की । व्रजेश्वरि ! उन्होंने अन्न जल छोड़कर केवल सरस्वतीके ध्यानमें मन लगा लिया था । नारदजीकी तपस्यासे वह पर्वत अपना 'शुभ्र' नाम छोड़कर 'नारदगिरि'के नामसे प्रख्यात हो गया । वह सारा पर्वत उनकी तपस्यासे पवित्र हो गया । तपस्याका पर्यवसान होनेपर साक्षात् वाग्देवता विष्णुप्रिया श्रीसरस्वती वहाँ आयीं । नारदजीने उन दिव्यवर्णा देवीको देखा । देखकर वे सहसा उठ खड़े हुए और उन्हें नमस्कार करके परिक्रमा-पूर्वक नतमस्तक हो, वे मुनीश्वर सरस्वती देवीके रूप, गुण और माधुर्यकी स्तुति करने लगे ॥ ३६–४० ॥

नारदजी बोले—नवीन सूर्यके बिम्बकी द्युतिको उगलने और हिलनेवाले रत्नमय कर्णफूल, केयूर, किरीट और कङ्कण जिनकी शोभा बढ़ाते हैं तथा जो चमकते और झनकारते हुए नूपुरोंके शिञ्जन रवसे रञ्जित होती हैं, उन कोटि चन्द्रमाओंसे अधिक उज्ज्वल मुखवाली सरस्वती देवी-को मैं नमस्कार करता हूँ । जो चञ्चल चरण और चञ्चुपुट-वाले उड़ते हुए कलहंसपर विराजमान होती तथा निर्मल मुक्ता-फलोंके अनेक हार धारण करती हैं, उन सौभाग्यशालिनी सरस्वती देवीको मैं प्रणाम करता हूँ । जो अपने दोनों पार्श्वके दो दो निर्मल हाथोंमें क्रमशः वर, अभय, पुस्तक और उत्तम वीणा धारण करती हैं, उन जगन्मयी, ब्रह्ममयी, शुभदा एवं मनोहरा सरस्वती देवीको मैं नमस्कार करता हूँ । श्वेतवर्णकी लहरदार रेशमी साड़ी पहननेवाली अतीव मङ्गलस्वरूपे सरस्वति ! मुझे स्वर तालका ज्ञान प्रदान कीजिये, जिससे मैं अविनाशी एवं सर्वोत्कृष्ट रासमण्डलमें सर्वोपरि और अद्वितीय संगीतज्ञ हो जाऊँ* ॥ ४१–४४ ॥

---

* नवार्कबिम्बद्युतिमुद्गलद्वलत्ताटङ्ककेयूरकिरीटकङ्कणाम् ।
स्फुरत्क्वणन्नूपुररावरञ्जितां नमामि कोटीन्दुमुखीं सरस्वतीम् ॥
वन्दे गताहं कलहंसउद्गते चलत्पदे चञ्चलचञ्चुसम्पुटे ।
निर्धौतमुक्ताफलहारसंचयं संधारयन्तीं सुभगां सरस्वतीम् ॥
वराभयं पुस्तकवल्लकीयुतं परं दधानां विमले करद्वये ।
नमाम्यहं त्वां शुभदां सरस्वतीं जगन्मयीं ब्रह्ममयीं मनोहराम् ॥
तरङ्गितक्षौमसिताम्बरे परे देहि स्वरज्ञानमतीवमङ्गले ।
येनाद्वितीयो हि भवेयमक्षरे सर्वोपरि स्यां पररासमण्डले ॥
(गर्ग०, मथुरा० २१ । ४१–४४)

श्रीभगवान् कहते हैं—श्रीराधे! सरस्वतीका यह नारदोक्त दिव्य स्तोत्र जडताका नाश करनेवाला है। जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करेगा, वह इस लोकमें विद्यावान् होगा। तब प्रसन्न हुई वाग्देवताने महात्मा नारदको भगवत्प्रदत्त स्वरब्रह्मसे विभूषित एक वीणा प्रदान की। साथ ही राग-रागिनी, उनके पुत्र, देश-कालादिकृत भेद तथा ताल, लय और स्वरोंका ज्ञान भी दिया। ग्रामोंके छप्पन कोटि भेद और असंख्य अवान्तरभेद, नृत्य, वादित्र तथा सुन्दर मूर्च्छना—इन सबका ज्ञान नारदजीको प्राप्त हुआ। वैकुण्ठपतिकी प्रियाओंमें मुख्य सरस्वती देवीने स्वरगम्य सिद्धपदोंद्वारा नारदजीको संगीतकी शिक्षा दी। राधे! नारदको रासमण्डलके उपयुक्त अद्वितीय रागोद्भावक बनाकर विष्णुवल्लभा वाग्देवी वैकुण्ठधामको चली गयीं॥ ४५-५०॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नारदोपाख्यान' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

नारदका अनेक लोकोंमें होते हुए गोलोकमें पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णके समक्ष अपनी कलाका प्रदर्शन करना तथा श्रीकृष्णका द्रवरूप होना

श्रीभगवान् कहते हैं—श्रीराधे! इस रागरूप मनोहर एवं गुह्य ज्ञानका उपदेश किसको देना चाहिये, इसका बुद्धिपूर्वक विचार करके नारदजी गन्धर्व-नगरमें गये। वहाँ तुम्बुरु नामक गन्धर्वको अपना शिष्य बनाकर नारदजी मधुरस्वरसे वीणा बजाते हुए मेरे गुणोंका गान करने लगे। तदनन्तर उनके हृदयमें यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि 'किन लोगोंके सामने इस मनोहर रागरूप गीतका गान करना चाहिये? इसको सुननेका पात्र कौन है?' इसकी खोज करते हुए नारद इन्द्रके पास आये। उनको इस विषयका आनन्द लेते न देख मुनिश्रेष्ठ नारद सखा तुम्बुरुके साथ राग-रागिनियोंका निरूपण करनेके लिये सूर्यलोकमें गये। वहाँ सूर्यदेवको रथके द्वारा भागे जाते देख देवर्षिशिरोमणि महामुनि नारद वहाँसे तत्काल शिवजीके पास चले गये। राधे! ज्ञानतत्त्वज्ञ भूतनाथ शिवके नेत्र ध्यानमें निश्चल हैं, यह देख नारदजी ब्रह्मलोकमें गये। सृष्टिकर्ता ब्रह्माको सृष्टि-रचनामें व्यग्र देख, वे वहाँ भी न ठहर सके; उस स्थानसे विष्णुके सर्वलोकवन्दित वैकुण्ठधाममें चले गये। भक्तोंके स्वामी भक्तवत्सल भगवान् विष्णुको किसी भक्तपर कृपा करनेके लिये कहीं जाते देख योगीन्द्र नारद तुम्बुरुके साथ अन्यत्र चल दिये॥ १-८॥

वृषभानुनन्दिनि! योगीश्वर संतोंकी गति त्रिलोकीके भीतर और बाहर भी बतायी गयी है। जो केवल कर्मी हैं, उन्हें वैसी गति नहीं प्राप्त होती। मुनीश्वर नारद करोड़ों ब्रह्माण्ड-समूहोंको लाँघकर प्रकृतिसे परे गोलोकधाममें जा पहुँचे। उत्ताल तरंगोंसे सुशोभित विरजा नदीको पार करके वे शीघ्र ही भ्रमरोंकी ध्वनिसे निनादित रमणीय वृन्दावनमें गये, जो सदा वसन्त ऋतुसे युक्त है और जहाँके लताभवन मन्द मारुतके झोंकेसे कम्पायमान रहते हैं। वृन्दावनसे गोवर्धन पर्वतका दर्शन करते हुए नारदजी मेरे निकुञ्जमें आये। निकुञ्जद्वारपर सखियोंने पूछा—'आप दोनों कौन हैं? कहाँसे आये हैं और यहाँ क्या कार्य है?' ऐसा प्रश्न होनेपर मुनि और तुम्बुरु दोनों बोले—'सुन्दरियो! हम दोनों गान-विद्यामें कुशल गायक हैं और अपनी वीणाकी मधुर ध्वनि साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् राधावल्लभ श्रीकृष्णको सुनानेके लिये आये हैं। हम वन्दीजनोंमें उत्तम हैं। हमारी यह बात महात्मा श्रीकृष्णसे निवेदित कर देनी चाहिये'॥ ९-१५॥

यह सुनकर सखियोंने उनका संदेश मेरे पास पहुँचाया और मेरी आज्ञासे लौटकर मधुरवाणीमें उन वन्दियोंको भीतर चलनेका आदेश दिया। करोड़ों सूर्योंकी ज्योतिसे व्याप्त मेरे निकुञ्जके आँगनमें, जहाँ सब ओर कौस्तुभमणि जड़ी थी, मनोहर चँवर डुलाये जा रहे थे, हिलते हुए मोतियोंकी झालरोंसे युक्त छत्र तने थे और करोड़ों सखियाँ विराजमान थीं, आकर महापद्ममय आसनपर तुम्हारे साथ बैठे हुए मुझ श्रीकृष्णका उन दोनोंने दर्शन किया। फिर प्रणाम और परिक्रमा करके वे मेरी आज्ञासे वहाँ बैठे और

मेरी स्तुति करके मेरे गुणोंका गान करनेके लिये उद्यत हुए। आतोद्य (वाद्य विशेष) को दबाते और देवदत्त स्वरामृतमयी वीणाको झंकृत करते हुए, तुम्बुरुसहित नारदने वीणावादनकी अद्वितीय कलाको प्रस्तुत किया। मैं उससे बहुत संतुष्ट हुआ और सिर हिलाता हुआ उस वीणाकी प्रशंसनीय स्वर-लहरीकी सराहना करने लगा। अन्ततोगत्वा प्रेमके वशीभूत हो अपने-आपको देकर मैं जलरूप हो गया। मेरे दिव्य शरीरसे जो जल प्रकट हुआ, उसे 'ब्रह्मद्रव'के नामसे लोग जानते हैं। उसके भीतर कोटि कोटि ब्रह्माण्ड-राशियाँ लुढ़कती रहती हैं। उस उन्नत एवं शुभ जलराशिमें लुढ़कते हुए ये ब्रह्माण्ड इन्द्रायणके फलके समान प्रतीत होते हैं ॥ १६—२२½ ॥

राधे! यह ब्रह्माण्ड 'पृश्निगर्भ' नामसे प्रसिद्ध है, जो मेरे त्रिविक्रम रूपके पदाघातसे फूट गया था। उसका भेदन करके जो साक्षात् ब्रह्मद्रवका जल यहाँ आया, उसे इस शुभ मन्वन्तरमें पूर्ववर्ती लोगोंने पापहारिणी स्वर्धुनी 'गङ्गा'के नामसे जाना था। उस गङ्गाको द्युलोकमें 'मन्दाकिनी', पृथ्वीपर 'भागीरथी' और अधोलोक—पातालमें 'भोगवती' कहा गया है। इस प्रकार एक ही गङ्गा त्रिपथगामिनी होकर तीन नामोंसे विख्यात हुई। इसमें स्नान करनेके लिये प्रणतभावसे जाते हुए मनुष्यके लिये पग-पगपर राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल दुर्लभ नहीं रह जाता। जो सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गङ्गा गङ्गा'का उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता और विष्णुलोकमें जाता है। कलियुगमें गङ्गा दर्शन करनेसे सौ जन्मोंका, जल पीनेसे दो सौ जन्मोंका और स्नान करनेसे एक सहस्र जन्मोंका पाप नष्ट कर देती है। जो जाह्नवी गङ्गाका दर्शन करते हैं, उनका जन्म सफल है। जो उनके दर्शनसे वञ्चित रह जाते हैं, उनका जन्म व्यर्थ चला गया* ॥ २३—२९ ॥

हे भीरु राधे! जैसे विरजा तुम्हारे भयसे द्रवरूपताको प्राप्त हो गयी, जैसे विरजाके सातों पुत्र सात समुद्रोंके रूपमें द्रवभावको प्राप्त हो गये, जैसे विष्णु 'कृष्णा' नदी हुए, जैसे शिवदेव 'वेणी' नदी हुए, जैसे ब्रह्मा 'ककुद्मिनी गङ्गा' हुए और जैसे अप्सरा 'गण्डकी' नदी हो गयी, उसी प्रकार ये ऋभु नामक मुनि भी ब्रह्मभावको प्राप्त हुए हैं। यह ऋभुकी प्रेमलक्षणा भक्तिसे सम्भव हुआ है, इसमें संशय नहीं है। जो इस पापहारिणी पवित्र कथाका श्रवण करता है, वह मनुष्य सब लोकोंको लाँघकर मेरे गोलोकधाममें चला जाता है ॥ ३०—३३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अपनी प्रिया श्रीराधासे कहकर श्रीहरि ऋभुके आश्रमसे श्रीराधाके साथ ही मालती वनमें चले आये। फिर गोपियोंकी विरह-व्यथाको जान भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ यमुनाके मङ्गलमय पुलिनपर चले आये। उस समय समस्त गोपीगणोंका मान और व्यथा-भार दूर हो गया। उन्होंने, जैसे चपलाएँ मेघका आलिङ्गन करती हैं, उसी प्रकार घनश्यामको अपनी भुजाओंमें भर लिया। तब श्रीहरि वृन्दावनमें यमुनाके मनोहर तटपर गोपाङ्गनाओंके साथ मधुरस्वरमें वंशी बजाने लगे। भगवान्के उस मधुर रागसे गोपकन्याएँ मूर्च्छित हो गयीं, नदियोंका वेग रुक गया, पक्षी अचल हो गये। समस्त देवताओंने मौन धारण कर लिया, देवनायक स्तब्ध हो गये, वृक्षोंसे जल बहने लगा तथा सारा जगत् मानो निद्रामें निमग्न हो गया। रात्रिकालमें रास रचाकर श्रीराधिका और गोपियोंके मनोरथ पूर्ण करके ब्राह्ममुहूर्तमें भगवान् श्रीकृष्ण नन्दभवनको लौट आये। गोपिकाओंके साथ श्रीराधिका भी अपना आनन्दमय मनोरथ प्राप्त करके वृषभानुवरके सुन्दर मन्दिरमें चली गयीं ॥ ३४—४१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नारदोपाख्यान' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

---

* गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
दृष्ट्वा जन्मशतं पापं पीत्वा जन्मशतद्वयम्। स्नात्वा जन्मसहस्राणां हन्ति गङ्गा कलौ युगे॥
सफलं जन्म वै तेषां ये पश्यन्ति हि जाह्नवीम्। वृथा जन्मगतं तेषां ये न पश्यन्ति जाह्नवीम्॥
(गर्ग०, मथुरा० २२। २७-२९)

तेईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका व्रजसे लौटकर मथुरामें आगमन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें कई दिनोंतक रहकर सबको अपना दर्शन दे मथुरा जानेको उद्यत हुए । नौ नन्दों, नौ उपनन्दों, छः वृषभानुओं तथा वृषभानुवर और व्रजेश्वर नन्दराजसे मिलकर, कलावती, यशोदा, अन्यान्य गोपियों तथा गौओंके गणोंसे भी भेंट करके, आश्वासन और ज्ञान दे, सबसे विदा लेकर माधव चञ्चल अश्वोंसे जुते हुए अपने दिव्य रथपर आरूढ़ हो मथुरा जानेकी इच्छासे नन्दगाँवसे बाहर निकले । उनके पीछे-पीछे समस्त मोहित व्रजवासी बहुत दूरतक गये । वे माधवके अत्यन्त कष्टमय विरहको नहीं सह सके । जिन्हें भूमण्डलपर कभी एक बार भी श्रीविष्णुका दर्शन हुआ हो, उन्हें भी उनका विरह दुस्सह हो जाता है; फिर जिन्हें प्रतिदिन उनका दर्शन होता रहा हो, उनको उनके विरहसे कितना दुःख होता होगा, इसका वर्णन कैसे किया जा सकता है । नरेश्वर ! अपलक नेत्रोंसे श्रीधरके मुँहकी ओर देखते हुए समस्त व्रजवासी गोप स्नेह-सम्बन्धके कारण प्रेमविह्वल हो उनसे बोले ॥ १—७ ॥

गोपोंने कहा—श्रीकृष्ण ! तुम फिर जल्दी आना और हम समस्त व्रजवासियोंकी रक्षा करना । जैसे पूर्वकालमें तुमने देवताओंको अमृत प्रदान किया था, उसी प्रकार अब हमें अपने दर्शनकी सुधाका पान कराते रहना । देव ! केवल तुम्हीं सदा यशोदाके आनन्ददायक हो, तुम्हीं श्रीनन्दराजको आनन्द प्रदान करनेवाले हो और तुम्हीं व्रजवासियोंके जीवन हो । प्रभो ! तुम्हीं इस व्रजके धन हो, गोप-कुलके दीपक हो और महापुरुषोंके भी मनको मोहनेवाले हो । जैसे निदाघसे जले हुए प्राणीको शीतल जल प्राप्त हो जाय, सर्दीसे पीड़ित मनुष्यको जैसे आग मिल जाय, ज्वरसे आर्त पुरुषको उपयुक्त औषध प्राप्त हो जाय और मरे हुए मानवको भी जैसे मङ्गल-मय अमृत मिल जाय, तो वे जी उठते हैं, उसी प्रकार समस्त व्रजके लिये तुम्हारा दर्शन ही जीवन है; इसलिये तुम यहीं निवास करो । इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ । हमारे इस जन्म अथवा पूर्वजन्ममें जो कुछ भी पुण्य हुआ हो, उसके फलस्वरूप हमारा चित्त सदा तुम्हारे चरणारविन्दोंमें लगा रहे । जिनका चित्त तुम्हारे चरण-कमलमें लगा हुआ है, वे भक्त-जन तुम्हें सदा ही प्रिय हैं । तुम प्रकृतिसे परे निर्गुण हो, तथापि अपने भक्तोंके लिये सगुण हो जाते हो । तुम्हें अपने भक्तसे अधिक प्रिय शिव, ब्रह्मा और लक्ष्मी भी नहीं हैं । जो ब्रह्मपद आदिकी अभिलाषाको छोड़कर तुम भगवान्का निष्कामभावसे भजन करते हैं, वे मुक्तचित्त पुरुष ही शान्त एवं निरपेक्ष सुखका अनुभव करते हैं* ॥ ८—१५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर वे सब गोप प्रेमसे विह्वल हो श्रीकृष्णके देखते-देखते आनन्दके आँसू बहाते हुए रोने लगे । भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णके मुखपर भी अश्रुकी धारा बह चली । वे प्रज्ञाचेता परमेश्वर उन विरह-विह्वल गोपोंसे बोले ॥ १६-१७ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—व्रजवासियो ! तुम सब मेरे प्राण हो और मेरे परम प्रिय हो । मेरा हृदय तुमलोगोंमें ही स्थित है, केवल शरीर अन्यत्र दिखायी देता है । मैं प्रतिमास तुम सबको देखने और दर्शन देनेके लिये आऊँगा, यह वचन देता हूँ । मनसे मैं दूर नहीं हूँ । मन ही सबका कारण है† । हे गोपगण ! यादवोंसे युद्ध करनेके लिये

---

* शीघ्रमागच्छ हे कृष्ण सर्वांश्चो व्रजवासिनः ।
पाहि संदर्शनं देहि देवेभ्यो ह्यमृतं यथा ॥
त्वमेव सर्वदा देव यशोदानन्ददायकः ।
श्रीनन्दनन्दनस्त्वं वै जीवनं व्रजवासिनाम् ॥
व्रजे धनं कुले दीपो मोहनो महतामपि ।
यथा निदाघदग्धस्य प्राप्तं वै शीतलं जलम् ॥
शीतार्तस्य यथा वह्निर्ज्वरार्तस्य यथौषधम् ।
मृतस्य मानवस्यापि पीयूषं मङ्गलं यथा ॥
तथा व्रजस्य सर्वस्य जीवनं तव दर्शनम् ।
तस्मादत्र स्थितिं कुर्याद् बहुना कथितेन किम् ॥
यच्चोऽस्ति किंचित्सुकृतमस्मिन् वा पूर्वजन्मनि ।
तत्फलेन सदा चेतो भूयात् त्वत्पादपङ्कजे ॥
येषां चेतस्त्वत्पदाब्जे ते भक्तास्त्वत्प्रियाः सदा ।
भक्तार्थं सगुणोऽसि त्वं निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥
तव भक्तात्प्रियो नास्ति शिवो ब्रह्मा न चेन्दिरा ।
विसृज्य पारमेष्ठ्यादि निष्कामास्त्वां भजन्ति ये ।
नैरपेक्ष्यं सुखं शान्तं ते विदुर्मुक्तचेतसः ॥
(गर्ग०, मथुरा० २३ । ८—१५)

† मत्प्राणा मत्प्रिया यूयं सर्वे वै व्रजवासिनः ।
हृदयं मेऽस्ति युष्मासु देहोऽन्यत्र विलक्ष्यते ॥
मासं प्रत्यागमिष्यामि युष्मान् द्रष्टुं वचो मम ।
मनसा नहि दूरोऽस्मि मनः सर्वस्य कारणम् ॥
(गर्ग०, मथुरा० २३ । १८-१९)

जरासंध आया है, अतः यदुवंशियोंकी सहायताके लिये मैं जाता हूँ, तुम्हें शोक नहीं होना चाहिये ॥ १८–२० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार उन गोपोंको बार-बार आश्वासन दे, फिर लौटकर यशोदासहित नन्दराजको दूसरे रथपर बिठाया और श्रीदामा आदि सखाओंको साथ ले, उद्धवसहित रथपर आरूढ हो, वे सर्वकारण-कारण भगवान् मथुराको गये । वीर ! जबतक रथ, उसमें जुते हुए सौ वेगशाली घोड़े और फहराती पताकाओंसे युक्त तिरंगा ध्वज तथा उड़ती हुई धूल दिखायी देती रही, तबतक अन्य व्रजवासी वहीं खड़े रहे । फिर वे अपने घरको लौट आये ॥२१—२३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रका यह परम उत्तम विचित्र चरित्र मनुष्योंके महान् पापोंको हर लेनेवाला है । जो भक्तप्रवर पृथ्वीपर इस चरित्रको सुनता है, वह उत्तमोत्तम गोलोकधाममें जाता है ॥२४॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें व्रजयात्राके प्रसङ्गमें 'श्रीकृष्णका आगमन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

बलदेवजीके द्वारा कोल दैत्यका वध; उनकी गङ्गातटवर्ती तीर्थोंमें यात्रा; माण्डूकदेवको वरदान और भावी वृत्तान्तकी सूचना देना; फिर गङ्गाके अन्यान्य तीर्थोंमें स्नान-दान करके मथुरामें लौट जाना

बहुलाश्वने पूछा—मुने ! गोपाङ्गनाओं और गोपोंको उत्तम दर्शन देकर मथुरामें लौटनेके पश्चात् श्रीकृष्ण तथा बलरामने क्या किया ? श्रीकृष्ण और बलदेवका चरित्र बड़ा मधुर है । यह समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद तथा चतुर्वर्गरूप फल प्रदान करनेवाला है ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! अब श्रीकृष्ण और बलदेवजीका दूसरा चरित्र सुनो, जो सर्वपापहारी, पुण्यदायक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला है । नरेश्वर ! कोलनामक दैत्यसे पीड़ित हुए बहुत-से लोग दीनचित्त हो ब्राह्मणोंके साथ कौशारविपुरसे मथुरामें आये । उस समय रोहिणीनन्दन बलराम शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ हो घोड़े-से अग्रगामी लोगोंके साथ शिकार खेलनेके लिये मथुरासे निकले थे । मार्गमें ही उन्हें प्रणाम करके उनकी विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् सब लोग उनके चरणोंमें प्रणत हो गये और हाथ जोड़ हर्ष-गद्गद वाणीमें बोले ॥ ३–६ ॥

प्रजाजनोंने कहा—राम ! महाबाहु राम ! महाबली देवदेव ! हम सब लोग कोलनामक दैत्यसे पीड़ित हो आपकी शरणमें आये हैं । कोल दैत्य कंसका सखा है । वह महाबली दैत्य राजा कौशारविको जीतकर उन्हींके नगरमें राज्य करता है । राजा कौशारवि उसके भयसे गङ्गातटपर चले गये हैं और वहाँ पुनः अपने राज्यकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त जितेन्द्रिय हो आपके चरण-कमलोंका भजन कर रहे हैं । विभो ! आप उनकी सहायता कीजिये । हम उन्हींकी शुभ प्रजा हैं, जिनका उन्होंने पुत्रकी भाँति पालन किया है । उनके संरक्षणमें हम-लोग बड़े सुखी थे । प्रभो ! अब दुष्ट कोल हमें निरन्तर पीड़ा दे रहा है । यद्यपि आपने त्रिभुवनविजयी वीर कंसको मार डाला है, तथापि देवेन्द्र ! जबतक कोल जीवित है, तबतक कंसको भी मरा हुआ नहीं मानना चाहिये । आप प्रकृतिसे परे होकर भी भक्तोंकी रक्षाके लिये ही सगुणरूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ७–१२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उनका वचन सुनकर भक्तवत्सल श्रीबलराम गङ्गा-यमुनाके बीचमें बसी हुई कौशाम्बी-नगरीको गये । बलरामजीको युद्धके लिये आया हुआ सुनकर प्रचण्ड-पराक्रमी कोल भी दस अक्षौहिणी सेनासे सुसज्जित हो कौशाम्बीसे बाहर निकला । प्रलय-कालके समुद्रकी भाँति गर्जना करनेवाली वह सेना एक नदीके समान आयी । चञ्चल घोड़े उसकी उठती हुई तरङ्गमाला थे । रथ और हाथी आदि उसमें तिमिङ्गिल (मगर-मत्स्य) के समान प्रतीत होते थे । वीर योद्धारूपी भँवर उठ रहे थे । उसे देखकर बलरामजीने हलका सेतु बाँध दिया और हलाग्र-भागसे उस सेनाको खींच-खींचकर मुसलके सुदृढ़ प्रहारसे मारना आरम्भ किया । उनके प्रहारसे एक साथ ही पैदल वीर, घोड़े, रथ और हाथी रणभूमिमें फलोंकी भाँति पिस उठे और करोड़ोंकी संख्यामें सब ओर धराशायी हो गये । शेष

योद्धा भयसे पीड़ित हो युद्ध-मण्डलसे भाग निकले। शल्य भारी दैत्य कोल बलरामजीके साथ अकेला ही युद्ध करने लगा॥ १३—१८॥

उस दैत्यराजने बलदेवजीकी ओर अपना हाथी बढ़ाया। उस हाथीके कुम्भस्थलपर गोमूत्रमें घोले हुए सिन्दूर और कस्तूरीके द्वारा पत्र-रचना की गयी थी। सोनेकी साँकलसे युक्त कटिबन्ध रत्नखचित था। उसके गण्डस्थलसे मद झर रहा था। उसके चार दाँत थे। घंटेकी ध्वनिसे वह और भीषण प्रतीत होता था। उसका कद ऊँचा था और वह दिग्गजके समान चिग्घाड़ता था। उसके शरीरका रंग प्रलयकालके मेघके समान काला था। कोल तीखा अङ्कुश लेकर उसके कानकी ओरसे उस हाथीपर चढ़ गया था। कोलके द्वारा प्रेरित उस मतवाले हाथीको अपनी ओर आता देख बलदेवजीने उसके ऊपर मुसलसे उसी प्रकार प्रहार किया, जैसे इन्द्रने वज्रसे किसी पर्वतपर आघात किया हो। मिथिलेश्वर! मुसलकी मारसे उस महान् गजराजका मस्तक उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया, जैसे डंडेकी मारसे कोई मिट्टीका घड़ा टूक-टूक हो गया हो॥ १९—२३॥

कोलका मुँह सूअरके समान था। लाल नेत्रोंवाला वह दैत्य हाथीसे गिर पड़ा। उसने महात्मा माधव—बलदेवके ऊपर तीखा शूल चलाया। विदेहराज! तब बलरामने मुसलसे मारकर उसके शूलके उसी प्रकार सैकड़ों टुकड़े कर दिये, जैसे किसी बालकने लाठीके प्रहारसे काँचके बर्तन तोड़ डाले हों। तब उस दुष्टने सहस्र भार (लगभग ३००० मन) लोहेकी बनी हुई एक भारी गदा हाथमें लेकर बलरामजीकी छातीपर चोट की और वह मेघके समान गर्ज उठा। उस गदाके प्रहारको सहकर महाबली बलदेवने काजलके समान काले शरीरवाले कोलके मस्तकपर मुसलसे प्रहार किया। मुसलके प्रहारसे उसका सिर फट गया और वह रणभूमिमें गिर पड़ा; तो भी उठकर बलदेवजीको मुक्केसे भारी चोट पहुँचाकर वह वहीं अन्तर्धान हो गया। फिर उस मायावी दैत्यने अत्यन्त भयंकर दैत्य-सम्बन्धिनी माया प्रकट की। तुरंत ही बड़ी भारी आँधीसे प्रेरित प्रलय-कालके मेघोंसे, जो अन्धकार फैला रहे थे, आकाश आच्छादित हो गया। जपाके पुष्पोंके समान रक्तके बिन्दुओंकी निरन्तर वर्षा होने लगी। उसके बाद घनीभूत काले मेघोंने घृणित वस्तुओंकी वर्षा प्रारम्भ की। पीब, मेद, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांससे युक्त अमेध्य जलकी वर्षा होने लगी। उस वृष्टिसे सब ओर हाहाकार होने लगा। दैत्यद्वारा रची गयी मायाको जानकर महाप्रभु बलदेवने शत्रुसेनाको विदीर्ण करनेवाले विशाल मुसलको चलाया। वह समस्त अस्त्रोंका घातक, स्वच्छ और सुदृढ़ अस्त्र अष्टधातुओंका बना हुआ था। उसकी लंबाई सौ योजनकी थी तथा वह प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। बलदेवजीका अस्त्र मुसल दसों दिशाओंमें घूमता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था। उसने आकाशके बादलोंको उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे सूर्य कुहरेको मिटा देता है। उस मुसलको आकाशमें गया हुआ देख भगवान् बलभद्रने स्वतः 'हल' नामक अस्त्र उठाया और अपने वैभवसे सबको खींच-खींचकर बलपूर्वक बीचमें ही विदीर्ण कर दिया॥ २४—३६॥

उस दैत्यकी मायाका नाश हो जानेपर महाबली बलदेवने अपने बाहुदण्डोंसे उसके मदोत्कट भुजदण्ड पकड़ लिये और जैसे बालक रुईकी राशिको घुमाये, उसी प्रकार इधर-उधर घुमाते हुए उसे पृथ्वीपर इस प्रकार दे मारा, मानो किसी बालकने कमण्डलु पटक दिया हो। उस दैत्यके पतनसे पर्वत, समुद्र और वनके साथ सारा भूमण्डल एक नाड़ी (घड़ी) तक काँपता रहा। दैत्यके दाँत टूट गये, नेत्र बाहर निकल आये और वह मूर्च्छित होकर मृत्युका ग्रास बन गया। इस प्रकार महादैत्य कोल वज्रके मारे हुए वृत्रासुरकी भाँति प्राणशून्य हो गया। उस समय स्वर्गमें और धरतीपर जय-जयकार होने लगा। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वे फूलोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार कोलका वध करके श्रीकृष्णके बड़े भाई बलदेवने कौशाम्बीपुरी राजा कौशारविको दे दी और स्वयं गर्गाचार्य आदिके साथ वे भागीरथीमें स्नान करनेके लिये गये। उनका यह कार्य समस्त दोषोंके निवारण एवं लोकसंग्रहके लिये था॥ ३७—४३॥

गर्ग आदि ब्राह्मण-आचार्योंने मङ्गलमय वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए माधव—बलरामको गङ्गामें स्नान करवाया। विदेहराज! बलरामजी ब्राह्मणोंको एक लाख हाथी, दो लाख रथ, एक करोड़ घोड़े, दस अरब दुधारू गायें, सौ अरब रत्न और जाम्बूनद सुवर्णके भार दानमें देकर मथुरापुरीको चले गये। मिथिलेश्वर! बलरामने गङ्गाजीमें जहाँ स्नान किया, उस महापुण्यमय तीर्थको विद्वान्‌लोग 'रामतीर्थ'के नामसे जानते हैं। जो मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमा एवं कार्तिक मासमें रामतीर्थकी गङ्गामें स्नान करता है, वह हरिद्वारकी अपेक्षा सौगुने पुण्यका भागी होता है॥ ४४—४८॥

बहुलाश्वने पूछा—महामुने ! कौशाम्बीसे कितनी दूर और किस स्थानपर महापुण्यमय 'रामतीर्थ' विद्यमान है, यह मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ ४९ ॥

नारदजीने कहा—राजेन्द्र ! कौशाम्बीसे ईशानकोणमें चार योजनकी दूरीपर और वायव्यकोणमें शूकरक्षेत्रसे चार योजनकी दूरीपर, कर्णक्षेत्रसे छः कोस और नलक्षेत्रसे पाँच कोस आग्नेय दिशामें रामतीर्थकी स्थिति बताते हैं। वृद्धकेशी सिद्धपीठसे और बिल्वकेश-वनसे पूर्व दिशामें तीन कोसकी दूरीपर विद्वानोंने रामतीर्थकी स्थिति मानी है ॥ ५०—५२ ॥

वङ्गदेशमें दृढाश्व नामक एक राजा थे। वे लोमश मुनिको कुरूप देखकर सदा उनकी हँसी उड़ाया करते थे। इससे उन महामुनिने उन्हें शाप दे दिया—'ओ महादुष्ट ! तू विकराल शूकरमुख असुर हो जा।' इस प्रकार मुनिके शापसे राजा कोल्नामक क्रोडमुख असुर हो गया। फिर बलदेवजीके प्रहारसे आसुर-शरीरको छोड़कर महादैत्य कोल्ने परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। तब बलराम उद्धव आदि तीन मन्त्रियोंके साथ वहाँसे तत्काल 'जह्नुतीर्थ'को चले गये, जहाँ जह्नुके दाहिने कानसे गङ्गाजीका प्रादुर्भाव हुआ था। उस ब्राह्मण-शिरोमणि जह्नुके नामपर ही गङ्गाको 'जाह्नवी' कहा जाता है। वहाँ ब्राह्मणोंको दान दे रातभर सब लोग वहीं रहे। तदनन्तर वहाँसे पश्चिम भागमें पाण्डवोंका अत्यन्त प्रिय 'आहारस्थान' नामक स्थान है, जहाँ पहुँचकर उन लोगोंने रात्रिमें निवास किया। वहाँ ब्राह्मणोंको दान तथा उत्तम गुणकारक भोजन देकर वे वहाँसे एक योजन दूर माण्डूकदेवके पास गये ॥ ५३—५९ ॥

माण्डूकदेवने अनन्तदेवकी कृपा प्राप्त करनेके लिये बड़ी भारी तपस्या की थी। उसीके लिये अपने समाजके साथ बलदेवजी वहाँ गये। वह मुँह ऊपर किये एक पैरके बलपर खड़ा था। उसके नेत्र ध्यानमें निश्चल थे। वह हृदयमें बलदेवजीके स्वरूपका दर्शन करते हुए उन्हींके साक्षात् दर्शनके लिये लोलुप था। बलदेवजीने उसके हृदयसे अपने उस स्वरूप-को हटा लिया, तब उसने नेत्र खोलकर अपने आराध्यदेवको बाहर देखा। अनन्तदेवके उस परम सुन्दर रूपको उसने देखा। वे वनमालासे सुशोभित थे और एक कानमें कुण्डल धारण किये हुए थे। उनकी अङ्गकान्ति गौर थी तथा वे ताल-चिह्नसे अङ्कित ध्वजावाले रथपर बैठे थे। अनन्तदेवके उस परम सुन्दर रूपको देखकर उसने बड़ी भक्तिसे उनकी स्तुति की। फिर वह अपने आराध्यके चरणोंमें गिर पड़ा। बलदेवजीने उसके मस्तकपर हाथ रक्खा और कहा—'वर माँगो।' तब वह बोला—'स्वामिन् ! यदि आप साक्षात् भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं, अथवा यदि मैं आपके अनुग्रहका पात्र हूँ, तो शुकदेवजीके मुखसे निकली हुई उस सर्वोत्तम भागवतसंहिताको मुझे दीजिये, जो समस्त कलिदोषोंका विनाश करनेवाली एवं श्रेष्ठ है' ॥ ६०—६५ ॥

बलदेवजीने कहा—अनघ ! तुम्हें उद्धवजीके द्वारा श्रीमद्भागवतसंहिताकी प्राप्ति होगी, जिसका कीर्तन कलियुगमें सर्वाधिक महत्त्व रखनेवाला है ॥ ६६ ॥

माण्डूकने पूछा—स्वामिन् ! भगवान्‌ने उद्धवजीको भागवतसंहिता सुनानेका मुख्य अधिकार क्यों दिया है ? और उनके साथ मेरा संयोग कब होगा ? आप इस मेरे संदेहका निवारण कीजिये ॥ ६७ ॥

बलदेवजी बोले—मैं परम गोपनीय एवं परम अद्भुत रहस्यकी बात बताता हूँ। आज भी मेरे निकट ये उद्धवजी विराजते हैं। तुम इनका दर्शन कर लो। यह उत्तम दर्शन तुम्हें परमार्थ प्रदान करनेवाला है; परंतु आज तीर्थयात्राके अवसरपर तुम्हें इनका उपदेश नहीं प्राप्त हो सकता। जिस प्रकार ये भागवतके उपदेशक होंगे, वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ। मैंने उद्धवको श्रीमान् आचार्यके पदपर इसलिये स्थापित किया है कि ये संहिताज्ञानस्वरूप हैं। नन्द आदि व्रजवासियों तथा गोपाङ्गनाओंकी प्रीतिके लिये भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। अपना स्वरूप, परिकरका पद और जो कुछ भी पूर्ण भगवत्ता है, वह सब, अपने स्वभाव और गुणके साथ परमात्मा श्रीकृष्णने उद्धवको अर्पित की है। उन्होंने उद्धवको और अपनेको एक ही मानकर आचरण किया है। श्रीकृष्णने अपना आन्तरिक रहस्य पहिले उद्धवके सिवा और किसीपर नहीं प्रकट किया था। उन्होंने इसमें अपनी अभिन्नताका साक्षात्कार किया है। व्रजवासियोंने इन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण ही जानकर बड़े आदरसे इनका पूजन किया था। वसन्त और ग्रीष्म, दोनों ऋतुओंमें इन्होंने व्रजभूमिमें विचरण किया और श्रीराधा तथा राधाकुण्डके आस-पासके लोगोंका शोक शान्त किया। उद्धव व्रजवासी अनुगामियोंके साथ वहाँकी भूमिमें यत्र-तत्र सर्वत्र विचरे हैं। इन्हें गौओं तथा नन्द आदि गोपों और गोपाङ्गनाओंका 'वियोगार्तिहारी' कहा गया है। ये मन्त्रीके अधिकारमें कुशल तथा समस्त पार्षदों

के अग्रगामी हैं। जब भगवान्‌के अन्तर्धानकी वेला आयेगी, उस समय धर्मपालक-देहधारी भगवान् उद्धवको अपना परम अद्भुत तेज भी दे देंगे। इनका मुद्राधिकार (भगवान्‌की ओरसे कुछ भी कहने और उनकी मुद्रिका या मोहरकी छाप लगाकर कोई आदेश जारी करनेका अधिकार) तो सर्वत्र और सदा ही विराजता है। अन्तर्धानकालमें इन्हें भगवान्‌की ओरसे विशेष अधिकार दिया जायगा। ये बदरिकाश्रम-तीर्थमें विराजमान परिकरोंसहित धर्मनन्दनको भगवद्रहस्यका बोध करायेंगे। अर्जुन आदिको भगवान्‌के वियोगमें जो बड़ी भारी पीड़ा होगी, उसका निवारण उद्धव ही करेंगे। मथुरामें यादवोंका उत्तराधिकारी वज्रनाभ होगा। श्रीकृष्णके पौत्रों तथा महारानियोंके समुदायमें जो भगवद् वियोगकी वेदना होगी, उसे दूर करनेके लिये साक्षात् श्रीहरिके द्वारा उद्धव ही नियुक्त किये जायँगे ॥ ६८–८० ॥

कौरवोंके कुलमें परीक्षित् नामसे विख्यात राजा होगा। उसका अत्यन्त तेजस्वी पुत्र जनमेजय नामसे प्रसिद्ध होगा। वह अपने पिताके शत्रु तक्षक नागके कुलका नाशक सर्प-यज्ञ करेगा, इसमें संशय नहीं है। उसको भी सारी यज्ञ-सामग्री उद्धवके द्वारा ही प्राप्त होगी। उस समय दिव्य श्रीमद्भागवतपुराणकी कथा होगी, जिसमें उज्ज्वल (सात्त्विक) प्रकृतिके लोग समवेत होंगे, इसमें संशय नहीं है। महान् भगवद्भक्तोंमें उत्तम ब्रह्मर्षि (आस्तीक) के प्रसादसे जनमेजयद्वारा होनेवाले सर्पसत्रकी समाप्ति हो जायगी। महाराज जनमेजय यज्ञ-संस्कार करानेवाले ब्राह्मणोंका पूजन करके उन्हें सौ ग्राम अग्रहारके रूपमें देंगे ॥ ८१–८५ ॥

तदनन्तर आचार्यप्रवर श्रीप्रसादजीकी आज्ञासे राजा जनमेजय शूकरक्षेत्र (सोरों) में जायँगे और वहाँ एक मास ठहरेंगे। उस तीर्थमें अनेक प्रकारके दान—गौ, बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, रत्न, वस्त्र तथा इच्छानुसार भोजन—ब्राह्मणोंको देकर वे अपने आचार्यके साथ उस स्थानसे लौटकर गङ्गातटके तीर्थस्थानोंका दर्शन करते हुए सत्पुरुषोंसे घिरे शयाननगरमें आकर सेवकोंसहित डेरा डालेंगे। वहाँ श्रीगुरुकी आज्ञासे सामग्री और साधन जुटाकर अश्वमेध यज्ञ करेंगे और सर्वजेता (दिग्विजयी) होंगे। इस प्रकार एकच्छत्र राज्यके स्वामी होकर श्रीगुरुदेवकी शरण ले शयाननगरसे पूर्व दिशामें रमणीय गङ्गाके तटपर अत्यन्त एकान्तवासीके रूपमें तीर्थ-सेवन करेंगे। वहाँ धार्मिकोंके समाजमें बड़े आनन्दके साथ भवरोगविनाशिनी भागवत-कथा होगी। उस पूर्ण समाजमें एक तुम भी रहोगे और भागवतकी कथा सुनोगे। उसे सुनकर तुम्हें निर्मल-पदकी प्राप्ति होगी। तुमने मेरे लिये तपस्या की है, इसलिये तुम्हारे सामने मैंने इस रहस्यको प्रकाशित किया है। इस प्रकार माण्डूकदेवको वर देकर सेवकोंसहित बलरामजी वहाँसे चले गये ॥ ८६–९४ ॥

शुद्ध शयाननगरसे ईशानकोणमें गङ्गातटपर स्थित एक रमणीय स्थान है, जो कण्टकतीर्थसे उत्तर है और पुष्पवती नदीसे दक्षिण दिशामें विद्यमान है। उसका विस्तार एक कोसमें है। वहीं ठहरकर संकर्षणदेव दान-पुण्यमें लग गये। बलरामजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ दस हजार घोड़ों, सौ रथों, एक हजार हाथियों और दस हजार गौओंका दान किया। वहाँ समस्त देवता तथा तपस्याके धनी ऋषि-मुनि आये। उन सबने बड़े आदरसे संकर्षणदेवका पूजन किया। फिर इस प्रकार स्तुति की—'प्रभो! आप कोलेश दैत्यके हन्ता तथा गर्दभासुर (धेनुक) का विनाश करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। हलायुध! आपको प्रणाम है। मुसलास्त्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सौन्दर्यस्वरूप आपको प्रणाम है। तालचिह्नित ध्वजा धारण करनेवाले आपको बारंबार नमस्कार है।*' उन सबके द्वारा की गयी इस स्तुतिको सुनकर संकर्षण बोले—'आप सब लोगोंको जो अभीष्ट हो, वह वर मुझसे माँगिये' ॥ ९५–१०० ॥

ब्रह्मर्षि और देवता बोले—भगवन्! जब-जब आपत्तिमें पड़कर हम आपके चरणोंका चिन्तन करें, तब-तब आपकी आज्ञासे समस्त बाधाओंसे मुक्त हो जायँ ॥ १०१ ॥

बलरामने कहा—जब-जब आपलोग मेरी शरणमें आकर मेरा स्मरण करेंगे, तब-तब कलियुगमें निश्चय ही मैं आपलोगोंकी रक्षा करूँगा, यह मेरा सत्य वचन है। इस स्थानपर मुनिपुंगवोंने मेरा पूजन करके वर प्राप्त किया, इसलिये कलियुगमें यह तीर्थ 'संकर्षणस्थान'के नामसे विख्यात होगा। जो लोग इस तीर्थमें गङ्गा-स्नान और

* नमः कोलेशघाताय खरासुरविघातिने ।
हलायुध नमस्तेऽस्तु मुसलाख्याय ते नमः ॥
नमः सौन्दर्यरूपाय तालाङ्काय नमो नमः ॥
(गर्ग०, मथुरा० २४ । ९९)

देवताओंका पूजन करेंगे, ब्राह्मणोंको दान देंगे, उन्हें भोजन करायेंगे और विष्णुभगवान्‌की पूजा करेंगे, इस भूतलपर उनका जीवन सफल होगा। वे देवताओंके लोकमें जायँगे। अथवा यदि उनके मनमें कोई अभीष्ट होगा तो उस अभीष्टको ही प्राप्त कर लेंगे ॥ १०२—१०५ ॥

तदनन्तर बलराम सबके साथ अपनी पुरी मथुराको चले गये। कोल राक्षसका वध और गङ्गाके जलमें स्नान करके उन्होंने लोकसंग्रहके लिये प्रायश्चित्त किया था। जो मनुष्य बलके देवता बलरामकी इस कथाको सुनेंगे, वे सब पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होंगे ॥ १०६-१०७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कोलदैत्यका वध' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पचीसवाँ अध्याय

मथुरापुरीका माहात्म्य एवं मथुराखण्डका उपसंहार

बहुलाश्वने पूछा—मुने! जहाँ बलरामजी अकस्मात् पहुँच गये, वहाँ ऐसा उत्तम तीर्थ सुना गया। अहो! मथुरापुरी धन्य है, जहाँ वे नित्य निवास करते हैं। मथुराका देवता कौन है? क्षत्ता (द्वारपाल) कौन है? उसकी रक्षा कौन करता है? चार कौन है? मन्त्रिप्रवर कौन है? और किन-किन लोगोंके द्वारा वहाँकी भूमिका सेवन किया गया है? ॥ १-२ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण हरि स्वयं ही मथुराके स्वामी या देवता हैं। भगवान् केशवदेव वहाँके क्लेशनाशक हैं। साक्षात् भगवान्‌ने कपिल नामक ब्राह्मणको अपनी वाराहमूर्ति प्रदान की थी। कपिलने प्रसन्न होकर वह मूर्ति देवराज इन्द्रको दे दी। फिर समस्त लोकोंको रुलानेवाला राक्षसराज रावण देवताओंको जीतकर उस मूर्तिका स्तवन करके उसे पुष्पकविमानपर रखकर लङ्कामें ले आया और उसकी पूजा करने लगा। मिथिलेश्वर! तदनन्तर राघवेन्द्र श्रीराम लङ्कापर विजय प्राप्त करके भगवान् वाराहको प्रयत्नपूर्वक अयोध्यापुरीमें ले आये और वहाँ उनकी अर्चना करते रहे। तत्पश्चात् शत्रुघ्न श्रीरामकी स्तुति करके उनकी आज्ञासे उस वाराह-विग्रहको प्रयत्नपूर्वक महापुरी मथुरामें ले आये और वहाँ वाराह भगवान्‌की स्थापना करके उनको प्रणाम किया। फिर समस्त मथुरावासियोंने उन वरदायक भगवान्‌की सेवा-पूजा प्रारम्भ की। वे ही ये साक्षात् कपिल-वाराह मथुरापुरीमें श्रेष्ठ मन्त्री माने गये हैं। 'भूतेश्वर' नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव मथुराके द्वारपाल या क्षेत्रपाल हैं। वे पापियोंको दण्ड देकर भक्तिके लिये उन्हें मन्त्रोपदेश करते हैं। महाविद्यास्वरूपा दुर्गम कष्ट दूर करनेवाली चण्डिकादेवी दुर्गा सिंहपर आरूढ़ हो सदा मथुरापुरीकी रक्षा करती हैं। मैं (नारद) ही मथुराका चार (गुप्तचर) हूँ और इधर-उधर लोगोंपर दृष्टि रखकर सबकी बात महात्मा श्रीकृष्णको बताता हूँ। विदेहराज! नगरके मध्यभागमें स्थित शुभदायिनी करुणामयी मथुरादेवी समस्त भूखे लोगोंको अन्न प्रदान करती हैं। मथुरामें मरे हुए लोगोंको विमानोंद्वारा ले जानेके लिये श्याम अङ्गवाले, चार भुजाधारी श्रीकृष्णपार्षद आते-जाते रहते हैं ॥ ३—१३ ॥

महापुरी मथुरा, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है, श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मथुरामें आकर निराहार रहते हुए सौ दिव्य वर्षोंतक तपस्या की। उस समय वे परब्रह्म श्रीहरिके नामका जप करते थे, इससे उन्हें स्वायम्भुवमनु-जैसे प्रवीण पुत्रकी प्राप्ति हुई। नृपराज! सतीपति देववर भूतेश मधुवनमें एक सौ दिव्य वर्षतक तप करके श्रीकृष्णकी कृपासे तत्काल मथुरापुरी और माथुर-मण्डलके क्षेत्रपाल हो गये। श्रीकृष्णके कृपा-प्रसादसे ही मैं मथुरा-मण्डलका चार बना हूँ और सदा भ्रमण करता रहता हूँ। इसी प्रकार 'दुर्गा' मथुरामें जाती हैं और निश्चय ही श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं। इन्द्रने मथुरामें तप करके इन्द्रपद, सूर्यने तप करके वैवस्वत मनु-जैसा पुत्र, कुबेरने अक्षयनिधि, वरुणने पाश और ध्रुवने मधुवनमें तप करके सम्यक् ध्रुवपद प्राप्त किया था। यहीं तपस्या करके अम्बरीषने मोक्ष पाया, रामने अक्षय शक्ति एवं लवणासुरसे विजय प्राप्त की। राजा रघुने सिद्धि पायी तथा इसी मधुवनमें तप करके चित्रकेतुने भी अभीष्ट फल प्राप्त किया। यहींके सुन्दर मधुवनमें तप करके अत्यन्त बलिष्ठ हुए महासुर मधुने माधवमासमें मधुसूदन माधवके साथ युद्धभूमिमें जाकर युद्ध किया। सप्तर्षियोंने मथुरामें आकर यहीं तपस्या करके योगसिद्धि प्राप्त की। पूर्वकालमें अन्य ऋषियोंने भी यहाँ तप करके सर्वतोमुखी सफलता पायी थी और गोकर्ण नामक वैश्यने भी यहाँ तप करके महानिधि उपलब्ध की थी। इसी शुभ मधुवनमें लोकरावण रावणने

तपस्या करके स्वर्गके देवताओंपर विजय पायी तथा राक्षसोंको अधिकारी बनाकर मन्दिर-निर्माण करके लङ्कामें प्रतिष्ठित हो बड़ी शोभा प्राप्त की। मिथिलेश्वर! यहीं सुन्दर मधुवनमें तपस्या करके हस्तिनापुरके राजा शंतनुने अत्यन्त साधुशिरोमणि तथा तत्त्वार्थसागरके कर्णधार भीष्मको पुत्ररूपमें प्राप्त किया ॥ १४—२३ ॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षि-शिरोमणे! मथुराका माहात्म्य बताइये। वहाँ निवास करनेवाले सज्जनोंको किस फलकी प्राप्ति बतायी गयी है? ॥ २४ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! आदियुगमें भगवान् वराहने महासागरके जलमें, जहाँ बड़ी ऊँची लहरें उठ रही थीं, डूबी हुई पृथ्वीको, जैसे हाथी सूँड़से कमलको उठा ले, उसी प्रकार स्वयं अपनी दाढ़से उठाकर जब जलके ऊपर स्थापित किया, तब मथुराके माहात्म्यका इस प्रकार वर्णन किया था। यदि मनुष्य 'मथुरा'का नाम ले ले तो उसे भगवन्नामोच्चारणका फल मिलता है। यदि वह मथुराका नाम सुन ले तो श्रीकृष्णके कथा-श्रवणका फल पाता है। मथुराका स्पर्श प्राप्त करके मनुष्य साधु-संतोंके स्पर्शका फल पाता है। मथुरामें रहकर किसी भी गन्धको ग्रहण करनेवाला मानव भगवच्चरणोंपर चढ़ी हुई तुलसीके पत्रकी सुगन्ध लेनेका फल प्राप्त करता है। मथुराका दर्शन करनेवाला मानव श्रीहरिके दर्शनका फल पाता है। स्वतः किया हुआ आहार भी यहाँ भगवान् लक्ष्मीपतिके नैवेद्य—प्रसाद-भक्षणका फल देता है। दोनो बाँहोंसे वहाँ कोई भी कार्य करके श्रीहरिकी सेवा करनेका फल पाता है और वहाँ घूमने-फिरनेवाला भी पग-पगपर तीर्थयात्राके फलका भागी होता है ॥ २५—२७ ॥

राजन्! सुनो। जो राजाधिराजोंका हनन करनेवाला, अपने सगोत्रका घातक तथा तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रयत्नशील होता है, ऐसा महापापी भी मथुरामें निवास करनेसे योगीश्वरोंकी गतिको प्राप्त होता है। उन पैरोंको धिक्कार है, जो कभी मधुवनमें नहीं गये। उन नेत्रोंको धिक्कार है, जो कभी मथुराका दर्शन नहीं कर सके। मिथिलेश्वर! उन कानोंको धिक्कार है, जो मथुराका नाम नहीं सुन पाते और उस वाणीको भी धिक्कार है, जो कभी थोड़ा-सा भी मथुराका नाम नहीं ले सकी। विदेहराज! मथुरामें चौदह करोड़ वन हैं, जहाँ तीर्थोंका निवास है। इन तीर्थोंमेंसे प्रत्येक मोक्षदायक है। मैं मथुराका नामोच्चारण करता हूँ और साक्षात् मथुराको प्रणाम करता हूँ। जिसमें असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति परिपूर्णतम देवता गोलोकनाथ साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयं अवतार लिया, उस मथुरापुरीको नमस्कार है। दूसरी पुरियोंमें क्या रक्खा है? जिस मथुराका नाम तत्काल पापोंका नाश कर देता है, जिसके नामोच्चारण करनेवालेको सब प्रकारकी मुक्तियाँ सुलभ हैं तथा जिसकी गली-गलीमें मुक्ति मिलती है, उस मथुराको इन्हीं विशेषताओंके कारण विद्वान् पुरुष श्रेष्ठतम मानते हैं। यद्यपि संसारमें काशी आदि पुरियाँ भी मोक्षदायिनी हैं, तथापि उन सबमें मथुरा ही धन्य है, जो जन्म, मौञ्जीव्रत, मृत्यु और दाह-संस्कारोंद्वारा मनुष्योंको चार प्रकारकी मुक्ति प्रदान करती है। जो सब पुरियोंकी ईश्वरी, व्रजेश्वरी, तीर्थेश्वरी, यज्ञ तथा तपकी निधीश्वरी, मोक्षदायिनी तथा परम धर्म-धुरंधरा है, मधुवनमें उस श्रीकृष्णपुरी मथुराको मैं नमस्कार करता हूँ। वैदेहराजेन्द्र! जो लोग एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णमें चित्त लगाकर संयम और नियमपूर्वक जहाँ-कहीं भी रहते हुए मधुपुरीके इस माहात्म्यको सुनते हैं, वे मथुराकी परिक्रमाके फलको प्राप्त करते हैं—इसमें संशय नहीं है ॥ २८—३५ ॥

विदेहराज! जो लोग इस मथुराखण्डको सब ओर सुनते, गाते और पढ़ते हैं, उनको यहीं सब प्रकारकी समृद्धि और सिद्धियाँ सदा स्वभावसे ही प्राप्त होती रहती हैं। जो बहुत वैभवकी इच्छा करनेवाले लोग नियमपूर्वक रहकर इस मथुराखण्डका इक्कीस बार श्रवण करते हैं, उनके घर और द्वारको हाथीके कर्णतालोंसे प्रताड़ित भ्रमरावली अलंकृत करती है। इसको पढ़ने और सुननेवाला ब्राह्मण विद्वान् होता है, राजकुमार युद्धमें विजयी होता है, वैश्य निधियोंका स्वामी होता है तथा शूद्र भी शुद्ध—निर्मल हो जाता है। स्त्रियाँ हों या पुरुष—इसे निकटसे सुननेवालोंके अत्यन्त दुर्लभ मनोरथ भी पूर्ण हो जाते हैं। जो बिना किसी कामनाके भगवान्‌में मन लगाकर इस भूतलपर भक्ति-भावसे इस मथुरा-माहात्म्य अथवा मथुराखण्डको सुनता है, वह विघ्नोंपर विजय पाकर, स्वर्गलोकके अधिपतियोंको लाँघकर सीधे गोलोकधाममें चला जाता है ॥ ३६—३९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीमथुराखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीमथुरा-माहात्म्य' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

श्रीमथुराखण्ड सम्पूर्ण

श्रीगणेशाय नमः

द्वारकाखण्ड

पहला अध्याय

जरासंधका विशाल सेनाके साथ मथुरापर आक्रमण; श्रीकृष्ण और बलरामद्वारा उसकी सेनाका संहार; मगधराजकी पराजय तथा श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरामें विजयी होकर लौटना

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ १ ॥

जो वसुदेवके पुत्र और देवकीनन्दन होनेके साथ ही नन्दगोपके भी कुमार हैं, उन सच्चिदानन्दस्वरूप गोविन्दको बारंबार नमस्कार है ॥ १ ॥

बहुलाश्वने पूछा—ब्रह्मन्! मैंने आपके मुखसे अद्भुत मथुराखण्डकी कथा सुनी। अब मुझे श्रीकृष्ण-चरितामृतसे पूर्ण द्वारकाखण्ड सुनाइये। श्रीरमावल्लभ श्रीकृष्णके कितने विवाह, कितने पुत्र और कितने पौत्र हुए? महामते! उनके मथुराको छोड़कर द्वारकामें निवास करनेका क्या कारण है? ये सब बातें बताइये ॥ २-३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—मैथिलेश्वर! महाबली कंसके मारे जानेपर उसकी दो रानियाँ—अस्ति और प्राप्ति बड़े दुःखसे जरासंधके घर गयीं। उनके मुखसे कंसके मरणका वृत्तान्त सुनकर जरापुत्र महाबली जरासंध अत्यन्त कुपित हो इस भूतलको यदुवंशियोंसे शून्य कर देनेके लिये उद्यत हो गया। राजन्! उस बलवान् नरेशने तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर मथुरापुरीपर धावा बोल दिया। महासागरके समान गर्जना करनेवाली उसकी सेना और भयसे व्याकुल हुई अपनी नगरीको देखकर साक्षात् भगवान्ने सभामें बलदेव-जीसे कहा ॥ ४-७ ॥

'भैया बलरामजी! इस मगधराज जरासंधकी सारी सेनाको तो निस्संदेह नष्ट कर देना चाहिये, किंतु इस मगधनरेशको तो नहीं मारना चाहिये, जिससे यह पुनः सेना जुटाकर ले आनेका उद्योग करे। जरासंधको ही निमित्त बनाकर पृथ्वीके राजाओंके रूपमें स्थित पृथ्वीके सारे भारको यहीं रहकर हर लूँगा और साधु पुरुषोंका प्रिय करूँगा' ॥ ८-९ ॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि वैकुण्ठसे सबके देखते-देखते दो सुन्दर रथ उतर आये। उन रथोंपर तत्काल आरूढ़ हो महाबली बलराम और श्रीकृष्ण यदुवंशियोंकी थोड़ी-सी सेना साथ लेकर तुरंत ही नगरसे बाहर निकले। आकाशमें देवताओंके देखते-देखते भूतलपर यादवों और मागधोंमें अद्भुत रोमाञ्चकारी एवं तुमुल युद्ध होने लगा। पहले महाबली मगधराज रथपर आरूढ़ हो दस अक्षौहिणी सेनाके साथ भगवान् श्रीकृष्ण-के सामने आकर लड़ने लगा। धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन जरासंध-की सहायताके लिये पाँच अक्षौहिणी सेनाके साथ आकर यादवोंके साथ युद्ध करने लगा। राजन्! विन्ध्यदेशका बलवान् राजा पाँच अक्षौहिणी सेनाके साथ तथा वङ्गदेश-का महाबली नरेश तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उस महायुद्धमें जरासंधकी ओरसे सम्मिलित हुआ। मिथिलेश्वर! इसी तरह दूसरे राजा भी जो जरासंधके वशवर्ती थे, प्राण-पनसे उसकी सहायता कर रहे थे ॥ १०—१६ ॥

शत्रुसेनासे व्याप्त आकाशमें बाणोंका अन्धकार फैल जाने-पर शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषकी टंकार-ध्वनि प्रारम्भ की। उस टंकारसे सात लोकों और सात पातालों-सहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो उठे, तारे टूटने लगे और सारा भूखण्डमण्डल काँपने लगा। शत्रुओंका सारा सैन्यमण्डल उसी क्षण बहरा-सा हो गया, घोड़े युद्धमण्डलसे उछलकर भागने लगे तथा हाथियोंने भी अपना मुँह फेर लिया। जरासंधकी सारी सेना उस टंकारसे भयविह्वल हो भाग चली और उलटी दिशामें दो कोस जाकर फिर वहाँ आयी। इस प्रकार विद्युत्-की पीली प्रभासे युक्त एवं कान्तिमान् शार्ङ्गधनुषकी टंकार फैलाकर श्रीहरिने अपने बाणसमूहोंकी वर्षासे जरासंधकी सारी सेनाको आच्छादित कर दिया ॥ १७-२१ ॥

राजन्! शार्ङ्गधन्वाके बाणोंसे शत्रुसेनाके रथ चूर-चूर

हो गये, पहिये टूक-टूक होकर गिर पड़े तथा रथी और सारथि भी मारे जाकर भूमिपर सदाके लिये सो गये। गजारोहियोंके साथ चलनेवाले हाथी उनके बाणोंसे दो टूक हो गये। सवारोंसहित घोड़े बाणोंद्वारा गर्दन कट जानेसे धराशायी हो गये। इसी प्रकार उस महायुद्धमें वक्षःस्थल और मस्तक छिन्न हो जानेसे पैदल योद्धा धराशायी हो गये। उनके कवचोंकी धज्जियाँ उड़ गयी थीं। वे निस्संदेह कालके गालमें चले गये। राजन्! जैसे फूटे हुए बर्तन कोई अधोमुख और कोई ऊर्ध्वमुख होकर पड़े दिखायी देते हैं, उसी प्रकार जिनके शरीर कट गये थे, वे राजकुमार उस समराङ्गणमें कोई ऊर्ध्वमुख और कोई अधोमुख होकर पड़े हुए थे। एक ही क्षणमें उस युद्धभूमिमें सौ कोस लंबी खूनकी नदी बह चली, जो अत्यन्त दुर्गम थी। हाथी उसमें ग्राहके समान जान पड़ते थे। ऊँटों और गदहोंके धड़ आदि कच्छपके समान प्रतीत होते थे। रथ शिशुमारों (सूँसों)का, केश सेवारोंका तथा कटी हुई भुजाएँ सर्पोंका भ्रम उत्पन्न करती थीं। हाथ मछलियाँ तथा मुकुटोंके रत्न, हार एवं कुण्डल कंकड़-पत्थर जान पड़ते थे। अस्त्र-शस्त्र सीप, छत्र शङ्ख तथा चामर और ध्वजा बालू प्रतीत होते थे। रथके पहिये भँवरका भ्रम उत्पन्न कर रहे थे और दोनों ओरकी सेनाएँ उस रुधिर-सरिताके दोनों तट थीं। इस तरह वह शतयोजन-विस्तृत नदी वैतरणीके समान भयंकर जान पड़ने लगी। प्रमथ, भैरव, भूत, वेताल और योगिनियाँ अट्टहास करती हुई रणभूमिमें नाचने लगीं। नृपेश्वर! वे भूत-वेताल आदि खप्पर-में ले-लेकर निरन्तर रक्त पी रहे थे और भगवान् शंकरकी मुण्डमाला बनानेके लिये कटे हुए सिरोंका संग्रह कर रहे थे। सैकड़ों डाकिनियोंसे घिरी हुई भद्रकाली वहाँका गरम-गरम रक्त पीती हुई अट्टहास करने लगी। विद्याधरियाँ, स्वर्गवासिनी गन्धर्वकन्याएँ तथा अप्सराएँ क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर वीरगति पानेवाले देवरूपधारी वीरोंको अपने पतिके रूपमें वरण कर रही थीं। आकाशमें उन वीरोंको पकड़कर पति बनानेके निमित्त वे आपसमें कलह करने लगीं। वे कहतीं—'ये तो मेरे अनुरूप हैं, अतः मैं ही इनका वरण करूँगी।' इस प्रकार उनमें आसक्त-चित्त हुई सुरबालाएँ परस्पर विवादपर उतर आयी थीं। कुछ धर्मपरायण वीर समराङ्गणसे तनिक भी विचलित न होनेके कारण मार्तण्ड-मण्डलका भेदन करके सीधे भगवान् विष्णुके दिव्य-धाममें चले गये। शेष सेनाको त्रिलोकीका बल धारण करने-वाले बलदेवजी कुपित हो हलसे खींचकर मुसलसे मारने लगे। इस प्रकार जरासंधकी सेनाका सब ओरसे संहार हो जानेपर दुर्योधन, विन्ध्यराज तथा वङ्गनरेश—सब भयभीत हो रणभूमिसे इधर-उधर भाग गये॥ २२—३७॥

राजन्! तब दस हजार हाथियोंके समान बलशाली महापराक्रमी जरासंध रथपर आरूढ़ हो बलदेवजीके सामने आया। यदुश्रेष्ठ बलरामने जरासंधके सुन्दर रथको हलाग्रभागसे खींचकर मुसलकी चोटसे चूर्ण कर डाला। घोड़े और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए जरासंधने सारे शस्त्र-समूहको त्यागकर बलदेवको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया। फिर उन दोनोंमें रणभूमिके भीतर घोर युद्ध होने लगा। मैथिल! आकाशमें खड़े देवताओं तथा भूतलपर विद्यमान मनुष्योंके देखते-देखते वे दोनों महाबली वीर मल्लयुद्धमें दो सिंहोंके समान जूझने लगे। वे छातीसे, मस्तकसे, भुजाओंसे चोट करते हुए पृथक्-पृथक् पैरोंको पकड़कर एक-दूसरेको गिरानेकी चेष्टा करते थे। उन दोनोंके युद्धसे वहाँका सारा भूखण्डमण्डल खुदकर गड्ढेके समान हो गया। राजन्! उस समय भूमि सहसा बटलोईकी तरह दो घड़ीतक काँपती रही। तब यदुश्रेष्ठ बलरामने अपने बाहुदण्डोंसे जरासंधको पकड़कर इस प्रकार पृथ्वीपर दे मारा, मानो किसी बालकने कमण्डलु पटक दिया हो। बलरामने जरासंधके ऊपर चढ़कर उस शत्रुको मार डालनेके लिये क्रोधसे भरकर घोर मुसल हाथमें लिया। यह देख परि-पूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णने उन्हें तत्काल रोक दिया। तब यदु-कुल-तिलक बलरामने उसे छोड़ दिया। जरासंधने लज्जित होकर तपस्याके लिये जानेका विचार किया, परंतु अपने मुख्य मन्त्रियोंके मना करनेपर मगधराज तपस्याके लिये न जाकर मगधदेशको ही लौट गया। इस प्रकार मधुसूदन माधवने जरासंधपर विजय पायी॥ ३८—४८॥

युद्धमें जो कुछ भी धन-वित्त हाथ लगा, वह सब सुखावह वैभव साथ लेकर, यादवोंको आगे करके, बलदेवसहित परि-पूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण सूतों, मागधों और वन्दीजनोंके मुखसे विजय-गान सुनते हुए, शङ्खध्वनि, दुन्दुभिनाद तथा वेद-मन्त्रोंके भारी घोषके साथ मथुरापुरीमें प्रविष्ट हुए। मार्गमें माङ्गलिक वस्तुओं, खीलों और फूलोंसे उनकी पूजा होती थी। प्रत्येक द्वारपर मङ्गल-कलशसे सुशोभित पुरीकी शोभा देखते हुए पीताम्बरधारी, श्याम-सुन्दर-विग्रह, शुभाङ्ग-शोभित, चमकीले किरीट, अङ्गद और

कुण्डलोंसे उद्भासित, शार्ङ्ग आदि अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करनेवाले भगवान् गरुडध्वज, तालध्वज बलरामके साथ, मुखसे मन्दहासकी छटा बिखेरते हुए राजा उग्रसेनके पास जा, उन्हें सारी धन-सामग्री भेंट की। उस समय चञ्चल घोड़ोंसे जुता हुआ उनका रथ उद्दीप्त हो रहा था तथा देवगण उनकी पूजा-प्रशंसा कर रहे थे ॥ ४९–५१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'जरासंध-पराजय' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

मथुरापर जरासंध और कालयवनका आक्रमण; भगवान्‌का युद्ध छोड़कर एक गुफामें जाना और वहाँ गये हुए कालयवनको मुचुकुन्दके दृष्टिपातसे दग्ध कराना; मुचुकुन्दको वर देकर बदरिकाश्रमकी ओर भेजना और स्वयं म्लेच्छ-सेनाका संहार करके जरासंधके सामनेसे भागकर श्रीकृष्ण-बलरामका प्रवर्षणगिरि होते हुए द्वारका पहुँचना और जरासंधका उस पर्वतको जलाकर मगधको लौट जाना

नारदजी कहते हैं—राजन्! जरासंध पुनः उतनी ही अक्षौहिणी सेना लेकर शीघ्र ही यादवोंके साथ युद्धके लिये आ गया, किंतु श्रीकृष्णसे वह फिर पराजित हो गया। श्रीकृष्णके प्रभावसे समस्त यादव अभ्युदयको प्राप्त हुए। उन्हें धनुष और हाथी आदिके बलसे सदा शत्रुओंको लूटनेका साहस हो गया ॥ १-२ ॥

राजन्! जब साहस प्राप्त हो गया, तब बालक और पनिहारिनें भी बिना युद्धके ही शत्रुओंकी सम्पत्तिका अपहरण करने लगीं। शत्रुओंके द्रव्यके अपहरणका अवसर देखते हुए मथुराके बलवेत्ता समस्त नागरिक बड़े हर्षको प्राप्त हुए। इस प्रकार सत्रह बार अपनी सेनाका संहार कराकर जरासंध परास्त हुआ। तदनन्तर अठारहवीं बार भी उसने संग्राममें आनेका विचार किया। इसी समय मेरी प्रेरणासे महाबली कालयवनने एक करोड़ म्लेच्छोंकी सेनाको साथ लेकर क्रोधपूर्वक मथुरापर घेरा डाल दिया। म्लेच्छोंकी सेना देखकर, अपने नगरको भयविह्वल जान, दोनों ओरसे आनेवाले भयका विचार करके श्रीकृष्ण बलरामके साथ चिन्तित हो गये ॥ ३–७ ॥

अपने सजातीय बन्धुओंकी रक्षाके लिये माधवने भयंकर गर्जना करनेवाले समुद्रके भीतर एक ही रातमें द्वारका-दुर्गका निर्माण कराया, जहाँ विश्वकर्माने आठों दिक्पालोंकी सिद्धियाँ निर्मित कीं तथा मोक्षकी इच्छा रखनेवाले साधकोंको जहाँ वैकुण्ठकी सारी सम्पत्तिका दर्शन होता है। मिथिलेश्वर! श्रीहरि 'योगशक्तिसे समस्त आत्मीयजनोंको द्वारकादुर्गमें पहुँचाकर, बलरामजीकी आज्ञा ले मथुरा नगरसे बिना अस्त्र-शस्त्रके ही निकले। मैंने जो पहचान बतायी थी, उसके अनुसार उस दुष्ट कालयवनने श्रीहरिको पहचान लिया और उन्हें बिना अस्त्र-शस्त्रके देखकर स्वयं भी आयुध त्यागकर उनसे युद्ध करनेके लिये पैदल ही आया। वे युद्धसे विमुख होकर भागने लगे। जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ हैं, उन्हीं श्रीहरिको पकड़नेके लिये वह अपने सैनिकोंके देखते-देखते उनका पीछा करने लगा ॥ ८–१२ ॥

माधव अपने शरीरको एक ही हाथ आगे दिखाते हुए भागते-भागते दूर चले गये और शीघ्र ही श्यामलाचलकी कन्दरामें घुस गये। मांधाताके बड़े पुत्र मुचुकुन्द उस गुहामें शयन करते थे। उन्होंने पूर्वकालमें असुरोंसे देवताओंकी रक्षा की थी। नरेश्वर! उस समय देवसेनाकी रक्षामें तत्पर रहनेके कारण वे दिन-रात सो नहीं पाते थे। कार्य सिद्ध हो जानेपर सब देवताओंने प्रसन्न होकर उन नृपश्रेष्ठसे कहा ॥ १३–१५ ॥

'राजन्! तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, उसको वरदानके रूपमें माँग लो।' तब राजेन्द्र मुचुकुन्दने देवताओंको प्रणाम करके उनसे कहा—'मैं अच्छी तरह सोना चाहता हूँ। सोकर उठनेपर मुझे साक्षात् श्रीहरिका दर्शन हो। जो हत-चेतन पुरुष बीचमें मुझे जगा दे, वह मेरी दृष्टि पड़ते ही तत्काल भस्म हो जाय।' देवताओंने 'तथास्तु' कहकर

उन्हें उनका अभिलषित वर दे दिया। तब राजा मुचुकुन्दने पूर्वकालके सत्ययुगमें शयन किया ॥ १६—१८ ॥

भगवान्‌के पीछे-पीछे कालयवनने भी उस गुफामें प्रवेश किया और मुचुकुन्दको पीताम्बर ओढ़कर सोया हुआ श्रीकृष्ण ही समझकर क्रोधसे भरे हुए उस महादुष्ट यवनने तुरंत ही उनके ऊपर लातसे प्रहार किया। मुचुकुन्द सहसा उठ बैठे और उन्होंने धीरे-धीरे आँखें खोलकर चारों ओर दृष्टिपात किया। उस समय कालयवन उन्हें पास ही खड़ा दिखायी दिया। मैथिल! रोषसे भरे हुए नरेशकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन अपने ही देहसे उत्पन्न आगकी ज्वालासे उसी क्षण जलकर भस्म हो गया ॥ १९—२१ ॥

यवनके भस्मीभूत हो जानेपर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान्‌ने बुद्धिमान् मुचुकुन्दको अपने स्वरूपका दर्शन कराया। करोड़ों सूर्योंके समान जाज्वल्यमान ज्योतिर्मण्डलमय भगवान् खड़े थे। उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल, बाँहोंमें अङ्गद और पैरोंमें नूपुर उद्दीप्त हो रहे थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। वे चार भुजाओंसे सम्पन्न थे। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान विशाल थे और उनकी ग्रीवामें वनमाला लटक रही थी। वे अपने लावण्यसे करोड़ों कामदेवोंको लज्जित कर रहे थे। उनकी कान्ति काले मेघके समान श्याम थी। उन्हें देखकर राजा हर्षसे उल्लसित हो उठकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उन्हें परिपूर्णतम भगवान् जानकर भक्तिभावसे प्रणाम किया ॥ २२—२५ ॥

मुचुकुन्दने कहा—जो वसुदेवपुत्र और देवकीनन्दन होते हुए भी श्रीनन्दगोपके कुमार हैं, उन सच्चिदानन्दस्वरूप गोविन्दको बारंबार नमस्कार है। जिनकी नाभिसे ब्रह्माण्ड-कमलकी उत्पत्ति हुई है, जो कमलकी मालासे अलंकृत हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं तथा चरण भी अपनी शोभासे कमलोंको तिरस्कृत करते हैं, उन भगवान्‌को बारंबार नमस्कार है। शुद्ध-बुद्ध परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार है। प्रणतजनोंके क्लेशका नाश करनेवाले गोविन्दको बारंबार नमस्कार है। जिनकी सहस्रों मूर्तियाँ हैं, जो सहस्रों चरण, नेत्र, मस्तक, ऊरु और भुजा धारण करनेवाले हैं, जिनके सहस्रों नाम हैं तथा जो सहस्र कोटि युगोंको धारण करते हैं, उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। हरे! इस भूतलपर मेरे समान कोई पातकी नहीं है और आपके समान पापहारी भी दूसरा कोई नहीं है—यह जानकर जगन्नाथ देव! आपकी जैसी इच्छा हो, वैसी ही कृपा मेरे ऊपर कीजिये* ॥ २६—३० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! मुचुकुन्दके इस प्रकार स्तुति करनेपर साक्षात् परमानन्दस्वरूप श्रीहरिने उन्हें निर्गुण भक्त जानकर गम्भीर वाणीमें कहा ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजसिंह! तुम धन्य हो तथा निरपेक्ष दिव्य भक्तिभावसे भरी हुई तुम्हारी विमल बुद्धि भी धन्य है। तुम आज ही मेरे धाम बदरिकाश्रमको चले जाओ। वहीं तपस्या करके दूसरे जन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण होओगे। महाराज! ब्राह्मण-शरीरसे प्रेमलक्षणा-भक्ति करके तुम प्रकृतिसे परे मेरे दिव्य धाममें पहुँच जाओगे, जहाँसे फिर यहाँ लौटना नहीं होता है ॥ ३२—३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीहरिकी आज्ञा पाकर, पुनः उनकी स्तुति, वन्दना और परिक्रमा करके, नतमस्तक एवं श्रीकृष्णप्रेमसे विह्वल हुए मुचुकुन्द उस गुहादुर्गसे बाहर निकले। द्वापरमें छोटी आकृतिवाले मनुष्य कई ताड़ ऊँचे राजा मुचुकुन्दको देखकर मार्गमें भयभीत हो इधर-उधर भागने लगते थे। 'मत डरो! मत डरो!'—इस प्रकार अभयदान देते हुए मुचुकुन्द उत्तर दिशाको चले गये। इस तरह उन बुद्धिमान् मुचुकुन्दको वरदान देकर भगवान् पुनः म्लेच्छोंसे घिरी हुई मथुरामें आये और सारी म्लेच्छसेनाका संहार करके बलपूर्वक उसका धन छीन लिया ॥ ३५—३८ ॥

---

* मुचुकुन्द उवाच

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥
नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥
नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥
हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी।
इति त्वं च मत्वा जगन्नाथ देव यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम् ॥
(गर्ग०, द्वारका० २ । २६—३०)

तदनन्तर राजा जरासंधने पुनः युद्ध करनेका विचार मनमें लेकर मुहूर्त बतानेवाले मागध ब्राह्मणोंको बुलवाया और कहा—'यदि मैं वासुदेवको जीतकर लौटूँगा तो तुम्हारे अधीन रहकर सदा तुमलोगोंकी पूजा करूँगा । तबतक हे ब्राह्मणो ! तुमलोग मेरे कारागारमें ठहरो । यदि मैं पराजित हुआ तो तुम सबको मार डालूँगा, इसमें संशय नहीं है' ॥ ३९-४१ ॥

ब्राह्मणोंसे यों कहकर महाबली राजा जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर शीघ्र मथुरामें आया । मागध ब्राह्मणोंकी बात सत्य करनेके लिये भगवान्‌ने अपनी टेक छोड़ दी और मनुष्यकी-सी चेष्टाको अपनाकर अपने नगरसे भयभीतकी भाँति परमदेव बलराम और श्रीकृष्ण पैदल ही बड़े जोरसे भागे । उन्हें भागते देख मगधराज अट्टहास करने लगा । वह ब्राह्मणोंके वचनोंका अनुसरण करके रथसेनाके साथ उनका पीछा करने लगा । वे दोनों भाई श्रीहरि दक्षिण दिशाकी ओर जाते हुए प्रवर्षणगिरिपर पहुँच गये । उन दोनोंको उस पर्वतपर ही छिपे जान जरासंधने लकड़ी जलाकर वहाँके जंगलमें आग लगा दी । प्रवर्षण-गिरिके समस्त वनके भस्मीभूत हो जानेपर उस जलते हुए पर्वतके ग्यारह योजन ऊँचे शिखरसे कूदकर वे दोनों देवेश्वर शत्रुओंसे अलक्षित रहकर द्वारकामें जा पहुँचे । महाबली वीर मगधराज उन दोनोंको दग्ध हुआ जान अपनी विजयके नगारे बजवाता हुआ मगधदेशको लौट गया ॥ ४२-४८ ॥

नरेश्वर ! उसने बड़ी भक्तिसे ब्राह्मणोंका पूजन किया और कहा—'ब्राह्मण जिसका सहायक है, उसकी पराजय कैसे हो सकती है !' ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्वारकावास-कथन' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

बलदेवजीका रेवतीके साथ विवाह

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान्‌के द्वारकामें निवासका कारण बताया । अब उन परमेश्वर-बन्धुओंके विवाह आदिके बारे वृत्तान्त सुनाऊँगा । मिथिलेश्वर ! तुम पहले बलदेवजीके विवाहका वृत्तान्त सुनो, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला तथा आयुकी वृद्धि करनेवाला उत्तम साधन है ॥ १-२ ॥

सूर्यवंशमें महामनस्वी राजा आनर्त हुए, जिनके नामसे भयंकर गर्जना करनेवाले समुद्रके तटपर आनर्तदेश बसा हुआ था । राजा आनर्तके एक रैवत नामका पुत्र हुआ, जो गुणोंकी खान तथा चक्रवर्ती राजाके लक्षणोंसे सम्पन्न था । उसने कुशस्थलीपुरीका निर्माण करके वहीं रहकर राज्यशासन किया । रैवतके सौ पुत्र थे और रेवती नामवाली एक कन्या । वह सर्वोत्तम चिरंजीवी तथा सुन्दर वर पानेकी इच्छा रखती थी । एक दिन स्वर्णरत्नविभूषित रथपर आरूढ़ हो अपनी पुत्रीको भी उसीपर बिठाकर राजा रैवत भूमण्डलकी परिक्रमा करने लगे । (इस यात्राका उद्देश्य था—पुत्रीके लिये योग्य वरकी खोज ।) अन्ततोगत्वा राजाने अपनी पुत्रीके लिये वरकी जिज्ञासाके निमित्त योगबलसे ब्रह्मलोकमें पदार्पण किया और वहाँ ब्रह्माजीके चरणोंमें शीश झुकाया । उस समय ब्रह्माजीकी सभामें पूर्वचित्ति नामकी अप्सराका गान हो रहा था, इसलिये वे एक क्षणतक चुपचाप बैठे रहे । तदनन्तर ब्रह्माजीको एकाग्रचित्त हुआ जानकर उनसे अपना अभिप्राय निवेदित किया ॥ ३-८ ॥

रैवत बोले—प्रभो ! आप परम पुराणपुरुष हैं । आपसे ही इस विश्वरूपी वृक्षका अङ्कुर उत्पन्न हुआ है । आप पूर्ण परमात्मा परमेश्वर हैं और अपने पारमेष्ठ्य धाममें सदा स्थित रहकर इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार किया करते हैं । देव ! वेद आपके मुख हैं, धर्म हृदय है, अधर्म पृष्ठभाग है, मनु बुद्धि है, देवता अङ्ग हैं, असुर पैर हैं और सारा संसार आपका शरीर है । आप सम्पूर्ण विश्वको अपने हाथपर रक्खे हुए आँवलेकी भाँति प्रत्यक्ष देखते हैं और जैसे सारथि रथको अभीष्ट मार्गमें ले जाता है, उसी प्रकार आप संसाररूपी रथको तीनों गुणों अथवा त्रिगुणात्मक विषयोंकी ओर ले जानेमें समर्थ हैं । आप एकमात्र अद्वितीय हैं तथा जैसे मकड़ी अपने स्वरूपसे ही एक जाला उत्पन्न करती और फिर उसे ग्रस लेती है, उसी

प्रकार आप जगत्‌रूपी एक जाल बुन रहे हैं और समय आनेपर फिर इसे अपने-आपमें विलीन कर लेंगे। महेन्द्रका निवासस्थान—स्वर्गलोक आपके वशमें है; फिर सार्वभौम राज्य और योगसिद्धि आपके अधीन हों, इसके लिये तो कहना ही क्या है। आप सदा पारमेष्ठ्य पद—ब्रह्मधाममें स्थित हैं। ऐसे अनन्तगुणशाली आप भूमा (महान् एवं सर्वव्यापी) पुरुषको नमस्कार है। विधे! आप स्वयम्भू (स्वयं प्रकट हुए) हैं, तीनों लोकोंके पितामह (पिताके भी पिता) हैं। अपने इसी प्रभावके कारण आपको 'सुरज्येष्ठ' कहा जाता है। आप सर्वदर्शी हैं, अतः मेरी इस पुत्रीके लिये आप शीघ्र ही मुझे कोई दिव्य, सर्वगुण-सम्पन्न तथा चिरंजीवी वर बताइये ॥ ९–१३ ॥

नारदजी कहते हैं—मैथिल! यह सुनकर सर्वदर्शी भगवान् स्वयम्भू ब्रह्माने राजा रैवतसे हँसते हुए-से कहा ॥ १४ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—राजन्! इस क्षणतक पृथ्वीपर महाबली काल बड़ी तेजीके साथ बीत चुका है। सत्ताईस चतुर्युगियाँ समाप्त हो चुकी हैं। मर्त्यलोकमें तुम्हारे पुत्र, पौत्र और उनके भाई-बन्धु नहीं रह गये हैं। उनके पुत्रोंके भी पोते-नातियोंके गोत्रतक अब नहीं सुनायी देते हैं। अतः राजन्! शीघ्र जाओ और सर्वश्रेष्ठ नररत्न सनातन पुरुष बलदेवजीको यह कन्यारत्न समर्पित करो। साक्षात् गोलोकके अधिपति परिपूर्णतम प्रभु बलराम और केशव भूमिका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति होते हुए भी वे दोनों भक्तवत्सल हरि वसुदेवनन्दन होकर द्वारकामें यदुवंशियोंके साथ विराज रहे हैं ॥ १५–१९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर नृपश्रेष्ठ रैवत ब्रह्माजीको नमस्कार करके पुनः समृद्धिशालिनी द्वारकापुरीमें आये। बलदेवजीसे कन्याका विवाह करके दहेजमें विश्वकर्माका बनाया हुआ एक दिव्य रथ प्रदान किया, जो एक योजन विस्तृत था। उस रथमें एक सहस्र अश्व जुते हुए थे। मिथिलेश्वर! ब्रह्माजीके दिये हुए दिव्य वस्त्र तथा रत्न देकर राजा रैवत मङ्गलमय बदरिकाश्रम-तीर्थमें तपस्या करनेके लिये चले गये। उस समय यदुपुरीके घर-घरमें महान् उत्सव मनाया गया। तदनन्तर भगवान् संकर्षण रानी रेवतीके साथ बड़ी शोभा पाने लगे। जो मनुष्य बलदेवजीके विवाहकी इस कथाको सुनेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमसिद्धिको प्राप्त होगा ॥ २०–२४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'बलदेव-विवाहोत्सव' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

श्रीकृष्णको रुक्मिणीका संदेश; ब्राह्मणसहित श्रीकृष्णका कुण्डिनपुरमें आगमन; कन्या और वरके अपने-अपने घरोंमें मङ्गलाचार; शिशुपालके साथ आयी हुई बारातको विदर्भराजका ठहरनेके लिये स्थान देना

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! अब श्रीकृष्ण-देवके विवाहका वृत्तान्त सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यजनक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्ग-मय फल प्रदान करनेवाला है ॥ १ ॥

विदर्भदेशमें भीष्मक नामसे प्रसिद्ध एक प्रतापी राजा राज्य करते थे, जो कुण्डिनपुरके स्वामी, श्रीसम्पन्न तथा सम्पूर्ण धर्मवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ थे। उनके रुक्मिणी नामक एक पुत्री हुई, जो लक्ष्मीजीका अंश थी। वह इतनी अधिक सुन्दरी थी कि उसके सामने करोड़ों चन्द्रमा फीके लगें। वह सद्गुणरूपी आभूषणोंसे विभूषित थी। पहलेकी बात है, एक दिन मेरे मुँहसे श्रीहरिके अलौकिक गुणोंका वर्णन सुनकर वह राजकुमारी परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको अपने अनुरूप पति मानने लगी। इसी तरह मेरे मुखसे रुक्मिणीके रूप और गुणोंका प्रीतिवर्धक वर्णन सुनकर श्रीहरिने उसे अपने योग्य पत्नी समझा और उसके साथ विवाह करनेका मन-ही-मन संकल्प किया। श्रीकृष्णके भावको जाननेवाले सर्वधर्मज्ञ राजा भीष्मकने भी अपनी उस कन्याको उन्हींके हाथमें देनेका निश्चय किया था; किंतु युवराज रुक्मीने यत्नपूर्वक पिताको रोका और श्रीकृष्णके शत्रु महावीर शिशुपालको रुक्मिणीके योग्य वर माना ॥ २–७ ॥

मिथिलेश्वर ! इससे भीष्मककुमारी रुक्मिणीके चित्तमें बड़ा खेद हुआ और उसने एक ब्राह्मणको अपना दूत बनाकर महात्मा श्रीकृष्णके पास भेजा। ब्राह्मणदेवता जब दिव्य द्वारकापुरीमें पहुँचे, तब श्रीकृष्णने उनकी आवभगत की। उन्होंने वहीं भोजन किया और श्रीकृष्णके मन्दिरमें ही आसन लगाकर विश्राम किया। फिर महात्मा श्रीकृष्णने उनसे सारा कुशल-समाचार पूछा। उनकी आज्ञा पाकर ब्राह्मणने उन्हें सब बातें बतायीं ॥ ८–१० ॥

[वे रुक्मिणीका पत्र सुनाते हुए बोले—] "स्वस्ति श्री ५ नित्यानन्द-महासागर श्रीमद्दिव्यगुणपरिपूर्ण वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण ! जोग लिखी कुण्डिनपुरसे रुक्मिणीका कोटिशः प्रणाम स्वीकृत हो। यहाँ कुशल है, वहाँ भी कुशल चाहिये। आगे आपका पत्र आया और श्रीनारदजीकी वाणीसे भी यह ज्ञात हुआ कि आप प्रकृतिसे परे परमेश्वर हैं। यद्यपि सर्वज्ञ होनेके नाते आप सब कुछ जानते हैं, तथापि मैं गुप्त बात आपको बता रही हूँ। महामते ! आप मुझे वीरका भाग (अपना अंश) जानें और स्वीकार करें। यदि चेदिराज शिशुपालने मेरा हाथ पकड़ लिया तो यह समझना चाहिये कि सिंहके लिये नियत बलिका भाग कोई मृग (कुत्ता, बिल्ली आदि) उठा ले गया। यदि आप ऐसा सोचते हों कि 'तुम तो कुण्डिनपुरके दुर्गमें निवास करती हो, तुम्हें मैं किस प्रकार ब्याहकर लाऊँगा', तो इसके विषयमें भी सुन लीजिये। हरे ! यहाँकी कुल-प्रथाके अनुसार विवाहके एक दिन पूर्व राजकुमारी कुलदेवीके मन्दिरको जाती है। यह यात्रा बड़ी धूम-धामसे की जाती है। अतः मैं जहाँ कुलदेवीका मन्दिर है, वहाँपर आऊँगी। प्रभो ! वहीं आप मुझे अपने साथ ले लें" ॥ ११–१५ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! ब्राह्मणके मुखसे रुक्मिणीके उस अभिप्रायको सुनकर सबको मान देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अपने सारथि दारुकको बुलाकर कहा—'मेरा रथ शीघ्र ही जोतकर तैयार करो।' पिछली रातमें वैकुण्ठसे प्राप्त हुए उस रथको, जो किङ्किणी-जालसे युक्त और सुवर्ण एवं रत्नोंसे जटित था, शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके श्रेष्ठ अश्वोंसे जोतकर दारुकने सुसज्जित किया। घोड़े चञ्चल तथा चारु चामरोंसे विभूषित थे। उनसे युक्त, सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी उस दिव्य विशाल रथपर लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने पहले तो अपने हाथसे उस ब्राह्मणदेवताको बैठाया और स्वयं सारथिकी पीठपर अपने श्रीचरण-कमल रखकर वे रथपर आरूढ़ हुए। राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण विदर्भदेशको चले। श्रीकृष्ण अकेले ही समस्त राजमण्डलके बीचसे राजकन्याको हर लाने गये हैं, इस समाचारसे बलरामजीको युद्धकी आशङ्का हुई, अतः वे भाईकी सहायता करनेके लिये समर्थ बल-वाहनसे युक्त सम्पूर्ण यादव-सेनाको लेकर विपक्षी राजाओंको जीतनेके लिये पीछेसे शीघ्रतापूर्वक गये ॥ १६–२२ ॥

प्रातःकाल होते-होते ब्राह्मण और रथके साथ भगवान् श्रीकृष्ण कुण्डिनपुरके उपवनमें आ पहुँचे। वहाँ एक इमलीके वृक्षके नीचे घोड़ेकी झूल बिछाकर वे बैठ गये। उस स्थानसे कुछ दूरीपर उत्तम कुण्डिनपुर दिखायी देता था। वह नगर बहुत बड़े दुर्गसे घिरा हुआ सात योजन गोलाकार भूमिपर बसा था। वहाँ जलसे भरी हुई तीन परिखाएँ थीं, जो दुर्लङ्घ्य और दुर्गम थीं। उनकी चौड़ाई सौ धनुष थी। वे परिखाएँ (खाइयाँ) चौमासेकी नदीके समान जलसे भरी हुई थीं। दुर्गकी दीवार पचास हाथ ऊँची थी। नगरमें रमणीय अट्टालिकाएँ शोभा पाती थीं, जिनके सुनहरे शिखरपर सोनेके कलश उद्भासित होते थे। ध्वजके ऊपर चमकती हुई पताकाएँ फहरा रही थीं। कबूतर और मोर आदि पक्षी जहाँ-तहाँ उड़ रहे थे ॥ २३–२७ ॥

शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये उद्यत हो राजा भीष्मकने रत्नमण्डपमें वैवाहिक सामग्रीका सचय कराया। राजन् ! नारियोंद्वारा गाये जानेवाले गीत और मङ्गलाचारसे युक्त सुन्दर भवनमें रुक्मिणी उसी प्रकार शोभा पा रही थी, जैसे सिद्धियोंसे भूमिकी शोभा होती है। अथर्ववेदके विद्वानोंने रुक्मिणीको भलीभाँति नहलाकर रत्नमय आभूषण तथा वस्त्र धारण करवाये और वेदमन्त्रोंद्वारा शान्तिकर्म करके वधूकी रक्षा की। महामनस्वी राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको लाख भार सोना, दो लाख भार मोती, सहस्र भार वस्त्र और छः अरब गायें दानमें दीं ॥ २८–३३ ॥

उसी प्रकार दमघोषपुत्र शिशुपालके लिये भी ब्राह्मणोंने पहले परमशान्तिका विधान करके रक्षाबन्धन करवाया। ब्राह्मणोंद्वारा जब शिशुपालका माङ्गलिक स्नानकर्म सम्पन्न हो गया, तब उसे पीले रंगका रेशमी जामा पहनाकर सुशोभित किया गया। सिरपर मुकुट और मुकुटके ऊपर फूलोंका सुन्दर सेहरा सजाया गया। हार, कंगन, भुजबंद और चूड़ामणिसे विभूषित हुए शिशुपालकी माङ्गलिक गाजों-बाजोंके साथ गन्ध और अक्षतद्वारा विशिष्ट पूजा की

गयी। आचारलाजों (खीलों) से शिशुपालको सुन्दर वर सजाकर ऊँचे हाथीपर चढ़ाया गया। उसके साथ बारात लिये दमघोष निकले। मिथिलेश्वर! जरासंध, शाल्व, बुद्धिमान् दन्तवक्त्र, विदूरथ और पौण्ड्रक पीछे और अगल-बगलसे उसके रक्षक होकर चले। महाबली दमघोष विशाल सेना साथ लेकर उच्चस्वरसे नगारे बजवाते हुए कुण्डिनपुरको गये। सामनेसे यदुदेव श्रीकृष्णका कन्या-अपहरण-विषयक उद्योग सुनकर दूसरे हजारों राजा शिशुपालके सहायक बनकर आये ॥ ३४—४० ॥

भीष्मकने आगे आकर राजा दमघोषका विधिपूर्वक पूजन किया। कश्मीरी कम्बलों तथा समुद्रसे उत्पन्न दिव्य अरुणवर्णके रत्नोंसे सबको मण्डित किया। सबके कण्ठोंमें मोतियोंकी मालाएँ पहनायीं। सुगन्धयुक्त पुष्परस (इत्र-फुलेल आदि) से सबका स्वागत किया। उस राज्यमें राजाओंके शिविरोंमें वाराङ्गनाओंके नृत्य हो रहे थे। मृदङ्ग बजाये जा रहे थे। उस समय विदर्भके महाराजने समागत राजाओंसहित वरके लिये अलग-अलग वासस्थान प्रदान किये ॥ ४१—४३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कुण्डिनपुरकी यात्रा' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

रुक्मिणीकी चिन्ता; ब्राह्मणद्वारा श्रीहरिके शुभागमनका समाचार पाकर प्रसन्नता; भीष्मकद्वारा बलराम और श्रीकृष्णका सत्कार; पुरवासियोंकी कामना; रुक्मिणीकी कुलदेवीके पूजनके लिये यात्रा, देवीसे प्रार्थना तथा सौभाग्यवती स्त्रियोंसे आशीर्वादकी प्राप्ति

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका चिन्तन करती हुई कमललोचना भीष्मकुमारी रुक्मिणी उनके बिना जीवनको व्यर्थ मानने लगी। वह निरन्तर घनश्यामका ही ध्यान करती थी। इसी अवस्थामें वह मन-ही-मन कहने लगी ॥ १ ॥

रुक्मिणी बोली—अहो! मेरे विवाहका मुहूर्त आनेमें अब एक ही रात बाकी रह गयी है, किंतु मेरे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र नहीं आये। मैं नहीं जानती कि इसमें क्या कारण है? जो ब्राह्मणदेवता उनके पास गये थे, वे भी अबतक लौटकर नहीं आये। हे विधाता! इसमें क्या हेतु है? ये यदु-कुल-तिलक देवेश्वर श्रीकृष्ण निश्चय ही मुझमें कोई दोष देखकर मेरा पाणिग्रहण करनेके निमित्त अधिक उद्योगशील होकर नहीं आ रहे हैं। हाय विधाता! अब मैं क्या करूँ! हाय! मुझ अभागिनीके लिये विधाता अनुकूल नहीं हैं। चन्द्रशेखर भगवान् शिव तथा गणेशजी भी प्रतिकूल हो गये हैं। भगवती गौरीने भी मुझसे मुँह फेर लिया है और गौ तथा ब्राह्मण भी मेरे अनुकूल नहीं हैं ॥ २—४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस तरह चिन्तामें पड़ी हुई वह भीष्म-राजकुमारी महलकी अट्टालिकाओंमें चक्कर लगाती हुई ऊँचे शिखरसे श्रीकृष्णचन्द्रकी बाट देखने लगी। इतनेमें ही रुक्मिणीका बायाँ अङ्ग फड़क उठा, मानो वही उनकी शङ्काका उत्तर या समाधान था। कालको जाननेवाली सर्वमङ्गला श्रीभीष्मनन्दिनी उस अङ्ग-स्फुरणसे बहुत प्रसन्न हुई ॥ ५-६ ॥

उसी समय श्रीकृष्णका भेजा हुआ ब्राह्मण तत्काल वहाँ आ पहुँचा। श्रीकृष्णका आगमन-सम्बन्धी सारा वृत्तान्त उसने धीरेसे रुक्मिणीको बता दिया। इससे श्रीभीष्म-राजकुमारीको बड़ा हर्ष हुआ और वह ब्राह्मणदेवताके चरणोंमें प्रणत होकर बोली—'विप्रवर! मैं तुम्हारे वंशसे कभी दूर नहीं जाऊँगी (अर्थात् तुम्हारी कुल-परम्परामें धन-सम्पत्तिका कभी अभाव नहीं होगा), यह मेरा प्रतिज्ञापूर्ण वचन है ॥ ७-८ ॥

विदर्भराज भीष्मकने जब सुना कि मेरी कन्याका विवाह देखनेके लिये उत्सुक हो बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई पधारे हैं, तब वे ब्राह्मणोंके साथ उन्हें लिवा लानेके लिये निकले; क्योंकि उन्हें उनके प्रभावका पूर्ण परिज्ञान था। मङ्गल-पात्रोंमें गन्ध और अक्षत भरकर वस्त्र तथा रत्नराशि रखकर माङ्गलिक गाजे-बाजेके साथ वे आये। मधुपर्कोंके कोटिशः कलशसमूह सजाकर राजाने बलराम और श्रीकृष्ण—

दोनों परमेश्वर-बन्धुओंका विधिपूर्वक पूजन किया। पूजन करके वे मन-ही-मन यह सोचकर अत्यन्त खिन्न हो गये कि 'अहो! मैंने इन्हींको अपनी कन्या क्यों नहीं दी?' उनको सेनासहित आनन्दवनमें ठहराया और उन्हें प्रणाम करके वे अपने महलमें लौट आये ॥ ९-१२ ॥

तीनों लोकोंके लावण्यकी निधि परमेश्वर श्रीवसुदेव-नन्दनका आगमन सुनकर कुण्डिनपुरके निवासी वहाँ आये और अपने नेत्रपुटोंसे उनके मुखारविन्दकी मकरन्द-सुधाका पान करने लगे। वे पुरवासी परस्पर इस प्रकार बात करने लगे—'बन्धुओ! रुक्मिणी तो इन भगवान् श्रीकृष्णकी ही पत्नी होने योग्य है, दूसरे किसीकी नहीं।' उन नगर-निवासियोंने श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका विवाह हो, इसके लिये विधातासे प्रार्थना करते हुए अपने सारे पुण्य समर्पित कर दिये। वे श्रीकृष्णके लावण्यके बन्धनमें बँध गये थे। उन्होंने पुनः आपसमें इस प्रकार कहा—'यदि यहाँ इनका विवाह हो जाय तो ये कभी-कभी स्वयं श्वशुरके घर अवश्य आया करेंगे? उस समय हम सब लोग निकटसे इनका दर्शन करेंगे और कृतकृत्य हो जायँगे। लोकमें इनके दर्शनसे वञ्चित होकर दीर्घकालतक जीनेसे क्या लाभ' ॥ १३-१५ ॥

नरेश्वर! जब लोग इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय भीष्म राजकुमारी रुक्मिणी गिरिराजनन्दिनी उमाका पूजन करनेके लिये अपनी सम्पूर्ण सखियोंके साथ अन्तः-पुरसे बाहर निकली। श्रीकृष्णने उसके हृदयको हर लिया था। उस समय भेरी, मृदङ्ग और दुन्दुभिकी जोर-जोरसे ध्वनि होने लगी। अच्छे गायक गीत गाने लगे, वन्दीजन और मागध यशोगान करने लगे और वाराङ्गनाओंका मनोहर नृत्य होने लगा। इन सबके साथ जय-जयकारका मङ्गल-घोष उच्चस्वरसे गूँजने लगा ॥ १६-१७ ॥

लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी कोटि चन्द्रमण्डलकी कान्ति धारण कर रही थी। बालरविके समान दीप्तिमान् कुण्डल उसके कानोंकी शोभा बढ़ा रहे थे और पार्श्ववर्तिनी परिचारिकाओंका समुदाय श्वेत छत्र लगाये व्यजन और चमकीले चामर डुलाते हुए उसकी सेवामें संलग्न था। म्यानसे खींचकर लाखों श्वेत रंगकी नंगी तलवारें हाथमें लिये पैदल वीर योद्धा इधर-उधरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। इनसे थोड़ी ही दूरपर घुड़सवार, रथी और हाथीसवार योद्धा भी अस्त्र उठाये राजकुमारीकी रक्षामें लगे थे ॥ १८-१९ ॥

देवीके मन्दिरमें पहुँचकर आँगनमें शान्त और शुद्धभावसे खड़ी हो राजकुमारीने अपने कमलोपम हाथ और पैर धोये। फिर मौनभावसे देवीके समीप जाकर उसने दोनों हाथ जोड़, भवभीतिहारिणी भवानीकी सेवामें इस प्रकार प्रार्थना की—'दुर्गे! गणेश-कार्तिकेय आदि सन्तानोंसहित शोभा पानेवाली शुभकारिणी भवानी शिवे! मैं तुम्हें सदा प्रणाम करती हूँ और यह वर माँगती हूँ कि प्रकृतिसे परे विराजमान साक्षात् परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों' ॥ २०-२१ ॥

उस समय सखियाँ कहने लगीं—'शुभे! इस तरह श्रीकृष्णका नाम न लो। चेदिराज शिशुपालके उद्देश्यसे वर माँगो।' इस तरह बोलती हुई सखियोंके बीच खड़ी भीष्मनन्दिनी पुनः भवानीके भवनमें पूर्वोक्त प्रार्थनाको ही दुहराने लगी। 'अम्ब! यह बालिका है, कुछ जानती नहीं; अतः आप इसकी बातपर ध्यान न दें।'—यों कहती हुई सखियोंके बीचमें स्थित हो रुक्मिणीने गन्ध, अक्षत, धूप, आभूषण, पुष्पहार, पुष्प, दीपमाला, पूआ आदि भोग, वस्त्र, फल, गन्ने तथा ताम्बूल आदि अर्पण करके बड़ी भक्तिसे भवानीकी सेवा-पूजा की। तदनन्तर देवीको प्रणाम करके, बहुत-से आभूषण आदिद्वारा सौभाग्य-वती स्त्रियोंका पूजन करके राजकुमारीने उन सबको प्रणाम किया ॥ २२-२४ ॥

उन सम्पूर्ण सौभाग्यवती स्त्रियोंने रुक्मिणीको वर दिये और परम मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान किये—'राजकुमारी! तुम्हारा रूप-सौन्दर्य सदा महारानी शतरूपाके समान अक्षय बना रहे, शील-स्वभाव गिरिराजनन्दिनी उमाके समान शोभित हो। तुममें पतिसेवाका भाव अरुन्धतीके समान हो और क्षमा जनकनन्दिनी सीताके समान। भीष्मनन्दिनि! तुम्हारा सौभाग्य (यज्ञपत्नी) दक्षिणाके समान और उत्तम वैभव शचीके तुल्य हो। तुम्हारी वाणी सरस्वतीके सदृश और पतिभक्ति संतोंकी हरिभक्तिके समान हो' ॥ २५-२६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'रुक्मिणीका निर्गमन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका अपहरण तथा यादव-वीरोंके साथ युद्धमें विपक्षी राजाओंकी पराजय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार ब्राह्मण-पत्नियोंके शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित हो रुक्मिणीने पुनः बार-बार देवी तथा विप्र-वधुओंको प्रणाम किया ॥ १ ॥

तत्पश्चात् मौनव्रतका त्याग करके भीष्म-राजकुमारी सखी-सहेलियोंके साथ धीरे-धीरे गिरिजागृहसे बाहर निकली। उस समय करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमती कमल-लोचना रुक्मिणीको वीर योद्धाओंने अकस्मात् इस प्रकार देखा, मानो निर्धनोंको सहसा कोई उत्तम निधि मिल गयी हो। घुड़सवार, रथी, हाथीसवार और पैदल—जो-जो रक्षक वहाँ आये थे, वे सब रुक्मिणीपर दृष्टि पड़ते ही मोहित हो गये। उसके मुस्कानयुक्त कटाक्ष कामदेवके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंके समान थे। उनसे आहत एवं पीड़ित हो समस्त सैनिक अपने अस्त्र त्यागकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २—५ ॥

इसी समय घंटियों और मँजीरोंके नादसे मुखरित तथा वैकुण्ठस्थित नैःश्रेयस नामक वनमें उद्भूत अश्वोंसे जुते हुए, फहराती हुई ऊँची पताकासे अलंकृत तथा वायुके समान वेगशाली रथद्वारा दारुक सारथिसहित श्रीहरि अपनी सेनाकी टक्करसे उस रक्षक-सेनामें दरार उत्पन्न करके तत्काल वहाँ उसी प्रकार घुस आये, जैसे वायु कमलवनमें बेरोक-टोक प्रविष्ट हो जाती है। शत्रुओंके देखते-देखते शीघ्र ही स्त्री-समुदायके पास पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मनन्दिनी रुक्मिणीको अपने रथपर चढ़ाकर, जैसे गरुड़ देवताओंके सामनेसे सुधाका कलश उठा ले गये थे, उसी प्रकार उस राजकन्याका अपहरण कर लिया। राजन्! उस समय वे शस्त्रोंमें उत्तम दिव्य शार्ङ्ग-धनुषको बारंबार टंकार रहे थे। तदनन्तर बड़े वेगसे अपनी सेनाके भीतर श्रीहरिके लौट आनेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ और यादवोंके नगारे एक साथ ही बज उठे। सिद्ध और सिद्धोंकी कन्याएँ तथा देवतालोग हर्षसे भरकर श्रीकृष्णके रथपर नन्दनवनके फूलोंकी वर्षा करने लगे। तब जय-जयकारकी ध्वनिके साथ बलराम-सहित श्रीकृष्ण धीरे-धीरे वहाँसे आने लगे—ठीक उसी प्रकार जैसे सिंह सियारोंके बीचसे अपना भाग लेकर मौजसे चला जाता है ॥ ६—१२ ॥

रुक्मिणीका हरण हो जानेपर उस समय बड़ा भारी कोलाहल मचा। रक्षक सैनिक आपसमें ही शस्त्रोंके प्रहार-पूर्वक युद्ध करने लगे। जरासंधके वशमें रहनेवाले समस्त मानी नृपश्रेष्ठ इस घटनासे प्राप्त हुए अपने पराभव और सुयशके नाशको नहीं सह सके। वे परस्पर कहने लगे—'अहो! हमलोगोंको धिक्कार है। हम धनुर्धर राजाओंके यशको गोपोंने उसी प्रकार हर लिया, जैसे सियारोंने सिंहोंके यशका अपहरण किया हो। इससे बढ़कर हमारी पराजय और क्या हो सकती है?' यों कहकर सब-के-सब क्रोधसे भर उठे और द्यूतक्रीड़ा एवं चौपड़ आदि खेलोंको छोड़कर, कवच और सेनासे सुसज्जित हो उन्होंने युद्धके लिये शस्त्र उठा लिये। क्रोधसे भरा हुआ पौण्ड्रक दो अक्षौहिणी सेनाके साथ, महावीर विदूरथ तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ, अत्यन्त दारुण दन्तवक्र पाँच अक्षौहिणी सेनाके साथ, राजपुरका स्वामी राजा शाल्व तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ तथा महाबली जरासंध दस अक्षौहिणी सेनाके साथ महा-मनस्वी यादवोंके समक्ष युद्धके लिये आ पहुँचे। चेदिराज शिशुपालके पक्षवाले अन्य सहस्रों योद्धा भी श्रीकृष्णके सामने धनुषको टंकारते हुए युद्धके लिये आ धमके ॥ १३—२० ॥

प्रलयकालके महासागरकी भाँति उस विशाल सेनाको देखकर यदुश्रेष्ठ योद्धा उसे पार करनेके लिये श्रीकृष्णके पास आ गये। श्रीकृष्ण ही उनके केवट और जहाज थे। देवता और दानवोंकी भाँति उन स्वकीय एवं परकीय सैनिकोंमें अत्यन्त अद्भुत तथा रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध होने लगा। उस संग्राममें रथी रथियोंके साथ, पैदल पैदलोंके साथ, हाथीसवार हाथीसवारोंके साथ और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ जूझने लगे। शस्त्रोंकी वर्षासे अन्धकार-सा छा गया। उस समय रुक्मिणीको भयसे विह्वल हुई देख भगवान् श्रीकृष्णने अभय-दान देते हुए कहा—'डरो मत' ॥ २१—२४ ॥

बलदेवजीके छोटे भाई वीरवर गद अपने महान् धनुषको कम्पित करते हुए शत्रुओंकी सेनामें उसी प्रकार घुस गये, जैसे वनमें दावानल। गदके बाणोंसे अश्वोंके विदीर्ण

हो जानेके कारण कितने ही रथी योद्धाओंके कवच कटकर छिन्न-भिन्न हो गये, घोड़े और सारथि मारे गये तथा वे स्वयं भी प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। पैदल योद्धाओंके पैर कट गये। राजन्! गदके बाणोंसे व्यथित हो शत्रु-योद्धा आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति धराशायी हो गये। नरेश्वर! घोड़ोंपर चढ़े हुए कितने ही वीर गदके बाणोंसे विदीर्ण हो समराङ्गणमें बृहतालफलकी भाँति घोड़ोंसहित गिर पड़े। इसी प्रकार गदके बाणोंसे कुम्भस्थल फट जानेके कारण बीच-बीचसे विदीर्ण हुए हाथी कुष्माण्डके टुकड़ोंकी भाँति पृथ्वीपर पड़े शोभा पा रहे थे॥ २५-२९॥

तदनन्तर शत्रुओंकी सारी सेना भाग चली। यह देख गदा-युद्ध-विशारद महाबली शाल्वने गदके ऊपर अपनी गदासे आघात किया। गदाकी चोट खाकर गदा-युद्धके प्रभावको जाननेवाले धनुर्धर गद धनुषद्वारा युद्ध करना छोड़कर तत्काल मनसे अत्यन्त व्यथाका अनुभव करते हुए युद्धभूमिमें गिर पड़े। गिरकर भी वे सहसा उठ खड़े हुए और तत्काल बलदेवजीकी दी हुई गदाको गदने अपने हाथमें ले लिया। लाख भार लोहेकी बनी हुई वह भारी गदा कौमोदकीके समान सुदृढ थी। उसके द्वारा गदने राजा शाल्वपर उसी प्रकार चोट की, जैसे इन्द्रने वज्रद्वारा किसी पर्वतपर आघात किया हो। गदाके प्रहारसे व्यथित हो राजा शाल्व जब पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब पौण्ड्रक, जरासंध, दन्तवक्र और विदूरथ—ये चारों वीर गदके प्रति रोषसे भरे हुए वहाँ आ पहुँचे। महावीर पौण्ड्रकने भी जैसे कोई कटु वचनोंसे मित्रताके सम्बन्धको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार दस तीखे बाण मारकर गदके रथपर फहराती हुई पताकाको काट डाला॥ ३०-३५½॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् दन्तवक्रने गदाकी चोटसे गदके सुन्दर रथको भी इस तरह चूर-चूर कर डाला, मानो किसीने डंडेकी मारसे मिट्टीका सुन्दर घड़ा फोड़ डाला हो। विदेहराज! इसी प्रकार जरासंधने उस रथके घोड़े मार डाले और विदूरथने सारथिको तीखे बाणोंसे पृथ्वीपर मार गिराया। तब मूसल हाथमें ले बलवान् बलदेवजी बड़ी तीव्रगतिसे वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने दन्तवक्रके विकराल एवं भयानक मुखपर बड़े जोरसे प्रहार किया। समराङ्गणमें युद्ध करते हुए दन्तवक्रके मुखमें मुसलकी चोट पड़नेपर उसके मुखमें जो एक टेढ़ा दाँत बच रहा था, वह भी भूमिपर गिर पड़ा। फिर तो रुक्मिणीसहित दैत्यनाशन श्रीहरि हँसने लगे। इसी समय रोषसे भरे हुए बलदेवजीने अपने मुसलसे शीघ्रतापूर्वक पौण्ड्रक, जरासंध तथा दुष्ट विदूरथको भी चोट पहुँचायी। ये तीनों ही वीर खूनसे लथपथ हो युद्ध-भूमिमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े॥ ३६-४१॥

इसके बाद वहाँ आयी हुई सारी सेनाको कुपित हुए महाबली बलदेवने हलसे खींचकर मुसलकी मारसे मौतके घाट उतार दिया। उस समराङ्गणमें दस योजन दूरतक हाथी, घोड़े और पैदल-सैनिक पिस उठे, चूर-चूर हो गये और धरतीपर सदाके लिये सो गये। तब मरनेसे बचे हुए जरासंध आदि समस्त नरेश मैदान छोड़कर भाग गये और जिसकी उमंग नष्ट हो गयी थी तथा जो अत्यन्त हतोत्साह हो चला था, उस शिशुपालके पास जाकर बोले—'पुरुष-सिंह! तुम अपने मनकी इस ग्लानिको त्याग दो। एक विवाह तो क्या, इस भूतलपर तुम्हारे सौ विवाह हो जायँगे। हमलोग आज ही द्वारकामें चलकर बलराम और श्रीकृष्णको बाँध लेंगे तथा समुद्रकी काञ्ची धारण करनेवाली इस पृथ्वीको यादवोंसे सूनी कर डालेंगे'॥ ४२-४६॥

इस प्रकार मित्रोंके प्रबोध देनेपर चेदिराज शिशुपाल चन्द्रिकापुरको चला गया और मरनेसे बचे हुए दूसरे समस्त नरेश भी अपने-अपने नगरको पधारे॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'रुक्मिणी-हरण और यदुवंशियोंकी विजय' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके हाथोंसे रुक्मीकी पराजय तथा द्वारकामें रुक्मिणी और श्रीकृष्णका विवाह

श्रीनारदजी कहते हैं—रुक्मिणीके हरण और मित्रोंकी पराजयका वृत्तान्त सुनकर भीष्मपुत्र रुक्मीने समस्त भूपालोंके सुनते हुए यह प्रतिज्ञा की—'राजाओ ! मैं आपलोगोंके सामने यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्धमें श्रीकृष्णको मारकर रुक्मिणीको लौटाये बिना मैं कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा' ॥ १-२ ॥

यों कहकर उस महा उद्भट वीरने दिव्य कवच धारण किया, जो ठोस एवं श्यामवर्णका था । उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह नील मेघसे निर्मित हुआ हो। फिर उसने सिरपर सिन्धुदेशीय शिरस्त्राण (टोप) रक्खा; सौवीर देशका बना हुआ सुन्दर धनुष, लाट देशके दो तरकस, म्लेच्छ देशकी तलवार, कुटज देशकी ढाल, येठरकी महाशक्ति, गुजरातकी गदा, बंगालका परिघ और कोङ्कण देशका हस्तत्राण (दस्ताना) धारण करके अङ्गुलियोंमें गोधाके चर्मसे निर्मित अङ्गुलित्राण बाँध लिया और किरीट, रत्नमय कुण्डल तथा सोनेके बाजूबंदसे विभूषित हो रुक्मीने युद्ध करनेका निश्चय किया। फिर चञ्चल घोड़ोंसे युक्त जैत्ररथपर आरूढ हो, दो अक्षौहिणी सेना साथ लिये उसने श्रीकृष्णका पीछा किया। शत्रुओंकी सेनाको पुनः आती देख महाबली बलरामने यादवोंकी सेना साथ ले समराङ्गणमें उसका सामना किया। रुक्मी बार-बार धनुष टंकारता और कठोर वचन बोलता हुआ अतिरथी देवेश्वर श्रीकृष्णके पास जा पहुँचा और बोला—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह । यदि जीवित रहना चाहता है तो तुरंत मेरी बहिनको छोड़ दे। नहीं तो मैं सेनासहित तुझे इसी समय यमलोकको भेज दूँगा । तेरे कुलपर राजा ययातिका शाप लगा हुआ है और तू ग्वालोंकी जूठन खानेवाला है । जरासंधके भयसे भीत रहता है और कालयवनके आगेसे पीठ दिखाकर भाग चुका है' ॥ ३—११ ॥

यों कहकर उसने अपने तरकससे एक बाण निकालकर धनुषपर चढ़ा लिया और उसे कानतक खींचकर श्रीकृष्णकी छातीको लक्ष्य करके चला दिया। उस बाणसे आहत होनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णने एक सायकसे उसके धनुषकी टंकार करनेवाली प्रत्यञ्चा इस प्रकार काट दी, मानो गरुडने किसी सर्पिणीको छिन्न-भिन्न कर डाला हो । फिर रुक्मीने शीघ्र ही अपने धनुषपर टंकार-ध्वनि करनेवाली दूसरी स्वर्णभूषित प्रत्यञ्चा चढ़ा ली और दस बाणोंद्वारा रणभूमिमें श्रीहरिको घायल कर दिया । तब श्रीकृष्णने एक बाण मारकर रुक्मीके प्रत्यञ्चासहित धनुषको उसी क्षण वैसे ही काट दिया, जैसे ज्ञानके द्वारा त्रिगुणात्मक संसार-बन्धनको काट दिया जाता है । श्रीकृष्णने अपने अमोघ बाणद्वारा बीचमें ही उसके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। फिर उन्होंने रुक्मीको भी बाण मारकर युद्धमें क्षत-विक्षत कर दिया । धनुष कट जानेपर विदर्भराज-कुमारने श्रीहरिके ऊपर चमचमाती हुई महाशक्ति उसी प्रकार चलायी, जैसे किसी मुनिने विज्ञानके लिये महाशक्तिका प्रयोग किया हो। गदाधारी भगवान् गदाग्रजने अपनी गदासे उस महाशक्तिपर प्रहार किया, जिससे उसके दो टुकड़े हो गये । उस खण्डित शक्तिने रुक्मीके ही सारथिको मार डाला । भगवान्की वेगशालिनी कौमोदकी नामवाली भारी गदाने रुक्मीके रथके ऊपर पड़कर उसे घोड़ोंसहित उसी प्रकार चूर्ण कर दिया, जैसे वज्रके प्रहारसे कोई पर्वत चकनाचूर हो गया हो । तब भीष्मकुमार रुक्मीने भी श्रीहरिपर गदा चलायी, किंतु भगवान्ने उसे पुनः चक्र चलाकर चूर्ण कर दिया । सोनेके बाजूबंदसे विभूषित बलवान् रुक्मीने बंगालका परिघ हाथमें लेकर उसके द्वारा श्रीहरिके कंधेपर प्रहार किया और उस युद्धभूमिमें मेघके समान गर्जना करने लगा। परिघसे ताडित होनेपर भी पुष्पमालाके आघातको कुछ भी न गिननेवाले हाथीकी भाँति भगवान् अविचल रहे । उन्होंने उसी परिघसे समराङ्गणमें रुक्मीपर आघात किया । परिघकी चोट खाकर रुक्मी मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। फिर उसने युद्धभूमिमें माधवकी भर्त्सना करते हुए ढाल और तलवार हाथमें ले ली । भगवान्ने भी अपने खड्गका प्रहार करके उसकी ढाल और तलवार काट दी। उस खड्गके अग्रभागसे रुक्मीका शिरस्त्राण और विशाल कवच कटकर गिर पड़े । दस्ताने-हाथ उसके दस्ताने भी काट दिये गये । अब उस युद्धमें रुक्मीके हाथमें केवल तलवारकी मुट्ठी रह गयी थी। उस दशामें अपने पास आये हुए रुक्मीको श्रीहरिने भुजदण्डोंसे पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा और जैसे मृगके

ऊपर सिंह सवार हो जाय, उसी प्रकार वे उसके ऊपर चढ़ गये तथा रोषपूर्वक तीखी धारवाले अपने नन्दन नामके खड्गको हाथमें ले लिया। श्रीकृष्णको अपने भाईके वधके लिये उद्यत देख रुक्मिणी भयसे विह्वल हो उठी और पतिके चरणोंमें गिरकर उस सती-साध्वी राजकुमारीने करुणस्वरमें कहा ॥ १२-२७ ॥

श्रीरुक्मिणी बोली—अनन्त! देवेश्वर! जगन्निवास! योगेश्वर! आपकी शक्ति अचिन्त्य है। आप इस जगत्के पालक हैं। अतः करुणासागर! आपके द्वारा शालके समान विशाल भुजावाले मेरे भाईका वध होना उचित नहीं है ॥ २८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! डरके मारे विलाप करती हुई रुक्मिणीका मुँह दुःखके कारण सूख गया था। उसका कण्ठ रुँध गया। अपनी प्रिया सती रुक्मिणीकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीहरि रुक्मीके वधसे विरत हो गये। फिर उसीके कमरबन्धसे बाँधकर तीखी धारवाले खड्गसे श्रीहरिने रुक्मीके आधे मुखकी दाढ़ी-मूँछके बाल साफ कर दिये ॥ २९-३० ॥

इतनेमें ही दो अक्षौहिणी सेनाको परास्त करके सैनिकोंसहित बलरामजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि रुक्मी कुरूप और दीन अवस्थामें बँधा पड़ा है। फिर तो उनके हृदयमें दया आ गयी और उसका बन्धन खोलकर बलरामजीने श्रीहरिको फटकारते हुए कहा—'कृष्ण! तुमने यह अच्छा नहीं किया; यह लोकनिन्दित कर्म है। अपनी पत्नीके भाइयोंके साथ इस प्रकार परिहास नहीं किया जाता। जिसके बड़े भाईको तुमने विरूप कर दिया, वह रुक्मिणी भाईकी इस दुर्दशासे चिन्तित होकर तुम्हें क्या कहेगी?' श्रीकृष्णसे यों कहकर वे रुक्मिणीसे बोले—"कल्याणि! तुम शोक न करो। शुचिस्मिते! स्वस्थ हो जाओ! आर्यकुमारी! महामते! तुम शोक बिल्कुल छोड़ दो, मनमें दुःख मत मानो। प्रिय अथवा अप्रिय जो भी प्राप्त होता है, वह सब मैं कालका किया हुआ मानता हूँ। जैसे घनमाला वायुके अधीन होती है, उसी प्रकार यह सारा जगत् कालके वशीभूत है। उस कालको तुम कलना करनेवालोंका स्वामी परमेश्वर एवं विष्णु समझो। 'मैं' और 'मेरा' यह भाव ही जगत्के लिये बन्धनका कारण होता है। अहंता और ममतासे रहित भाव ही 'मोक्ष' है, इसमें संशय नहीं है; सुख और दुःख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। यह सब लोगोंका अपना भ्रम ही है। शत्रु, मित्र और उदासीनकी कल्पना संसारी लोगोंद्वारा अज्ञानके कारण की गयी है" ॥ ३१-३८ ॥

इस प्रकार भगवान् बलरामके समझानेपर भीष्मकपुत्र रुक्मी वैमनस्य छोड़कर चला गया और रुक्मिणीको भी प्रसन्नता हुई। रुक्मीका मनोरथ व्यर्थ हो चुका था, बलराम और श्रीकृष्णके द्वारा जीवित छोड़ दिये जानेपर अपने विरूपकरणकी घटनाको याद करके उसने तपस्यामें लग जानेका विचार किया। किंतु मुख्य-मुख्य मन्त्रियोंके मना करनेपर उसने तपका विचार छोड़ दिया, तथापि कुण्डिनपुरमें फिर पैर नहीं रक्खा। रुक्मीने अपने निवासके लिये भोजकट नामक एक उत्तम नगरका निर्माण कराया ॥ ३९-४१ ॥

राजन्! बलराम और यदुवंशी योद्धाओंसे घिरे हुए रुक्मिणीसहित भगवान् गोविन्द अपनी विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए द्वारकाको चले गये। वहाँ बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। मार्गशीर्ष मासमें साक्षात् श्रीहरिने वैदिक-विधिके अनुसार रुचिर मुखवाली रुक्मिणीके साथ विवाह किया। रुक्मिणीपति श्रीहरिका विवाह सम्पन्न हो जानेपर श्रीरुक्मिणी देवी उनके रुक्म-मन्दिर (सुवर्णमय भवन) की शोभा बढ़ाने लगीं। पुण्यवती द्वारकापुरी उस समय देवराज इन्द्रकी अमरावतीके समान सुशोभित हो रही थी। भीष्मनन्दिनी रुक्मिणीके विवाहकी इस विचित्र कथाको जो भक्तिभावसे सुनता और सुनाता है, वह भक्त इस लोकमें भी वैभवसे सम्पन्न रहता है और देहावसानके पश्चात् वही मोक्षका भागी होता है ॥ ४२-४५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीरुक्मिणीका विवाह' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके साथ विवाह और उनकी संततिका वर्णन; प्रद्युम्नका प्राकट्य तथा रति और रुक्म-पुत्रीके साथ उनका विवाह

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! अब श्रीकृष्णकी पत्नियोंके मङ्गलमय विवाहका वृत्तान्त सुनो, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा आयुकी वृद्धिका सर्वोत्तम साधन है ॥ १ ॥

सत्राजित नामसे प्रसिद्ध यादवको साक्षात् भगवान् सूर्यने स्यमन्तक मणि दे रक्खी थी । भगवान् श्रीकृष्णने राजा उग्रसेनके लिये वह मणि माँगी । मिथिलेश्वर ! सत्राजितने द्रव्यके लोभसे वह मणि नहीं दी; क्योंकि उस मणिसे प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण स्वतः प्राप्त होता रहता था । एक दिन सत्राजितका भाई प्रसेन उस मणिको अपने कण्ठमें बाँधकर सिन्धुदेशीय अश्वपर आरूढ़ हो शिकार खेलनेके लिये वनमें विचरने लगा । वहाँ एक सिंहने प्रसेनको मार डाला । फिर उस सिंहको भी जाम्बवान्ने मारा और तत्काल उस मणिको लेकर जाम्बवान् अपनी गुफामें चला गया । सत्राजित लोगोंमें यह प्रचार करने लगा कि 'मेरा भाई प्रसेन मणिको कण्ठमें धारण करके वनमें गया था, किंतु श्रीकृष्णने वहाँ उसका वध कर दिया; इसीलिये आज सबेरे वह सभाभवनमें नहीं आया' ॥ २—६ ॥

भगवान्पर कलङ्कका टीका लग गया । वे कुछ नागरिकोंको साथ ले वनमें गये । महामते ! वहाँ उन्होंने पहले घोड़ेसहित मरे हुए प्रसेनके और किसी दूसरेके द्वारा मारे गये सिंहके शवको पड़ा देखा । यह देखकर पद-चिह्नसे पता लगाते हुए वे ऋक्षराज जाम्बवान्की गुफा-तक पहुँच गये । फिर वहाँसे मणि लानेके लिये साक्षात् श्रीहरिने गुफाके भीतर प्रवेश करके अट्ठाईस दिनोंतक युद्ध किया तथा ऋक्षराज जाम्बवान्पर विजय पायी । राजेन्द्र ! जाम्बवान्ने अपनी सुन्दरी कन्या जाम्बवतीको उस मणिके साथ श्रीहरिके हाथमें दे दिया । उसे लेकर भगवान् द्वारकामें लौटे । उन्होंने सत्राजितको मणि दे दी और स्वयं कलङ्कसे मुक्त हुए । सत्राजितको अपने कृत्यपर बड़ी लज्जा आयी और वे मुँह नीचे किये भयभीत-से रहने लगे । मिथिलेश्वर ! उन्होंने यादव-परिवारमें शान्ति रखनेके लिये अपनी पुत्री सत्यभामा तथा उस मणिको भी भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर दिया ॥ ७—११ ॥

तदनन्तर बन्धुवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी सहायताके लिये इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) गये । उन्होंने वर्षाके चार महीने वहीं व्यतीत किये । एक दिन गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ रथपर आरूढ़ हो श्रीहरि निर्मल नीरसे भरी हुई यमुनाके तीरपर शिकार खेलनेके लिये विचरने लगे । वहाँ साक्षात् कालिन्दी देवी भगवान् श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्या कर रही थीं । पाण्डव अर्जुनने उन्हें श्रीकृष्णको दिखाया । फिर वे भगवान् उन्हें साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ आये । वहाँसे द्वारकामें पहुँचकर उन्होंने मनोहराङ्गी सूर्यकन्या कालिन्दीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया । उस समय परम मङ्गलमय उत्सवका विस्तारके साथ आयोजन किया गया था ॥ १२—१५ ॥

अवन्तीके नरेशकी एक पुत्री थी, जो रूप-लावण्यसे मनको हर लेनेवाली थी । उसका नाम था मित्रविन्दा । भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीकी ही भाँति मित्रविन्दाको भी स्वयंवरसे हर लाये ॥ १६ ॥

राजा नग्नजित्के एक पुत्री थी, जो लोगोंमें सत्याके नामसे विख्यात थी । उसके विवाहके लिये राजाने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'सात साँड़ोंको जो एक साथ ही नाथ देगा, उसी वीरको मैं अपनी पुत्री दूँगा ।' भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंके देखते-देखते उन सातों साँड़ोंको नाथकर सत्याके साथ विवाह किया ॥ १७ ॥

केकयराज-कुमारी भद्राको भी भगवान् श्रीहरि उसकी इच्छाके अनुसार अपने घर ले आये । वहाँ कालिन्दीकी ही भाँति भद्राके साथ उन्होंने विधिपूर्वक विवाह किया ॥ १८ ॥

राजन् ! राजा बृहत्सेनके एक पुत्री थी, जिसे लोग लक्ष्मणा कहते थे । वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी । उसके यहाँ स्वयंवरमें मत्स्यवेधकी शर्त रक्खी गयी थी । भगवान्ने उस मत्स्यका भेदन किया और अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले शत्रुओंको परास्त करके लक्ष्मणाका हाथ पकड़ा ॥ १९ ॥

सोलह हजार एक सौ राजकुमारियाँ भौमासुरके कारागारमें बंद थीं । भगवान्ने भौमासुरका वध करके उसकी

कैदसे उनको छुड़ाया। उन चारुदर्शना युवतियोंकी इच्छा देखकर वे उन्हें अपने साथ ले आये ॥ २० ॥

एक ही मुहूर्तमें विभिन्न भवनोंमें रहती हुई उन युवतियोंके साथ अपनी मायासे उतने ही रूप धारण करके भगवान्‌ने उन सबका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। इस प्रकार सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंमेंसे प्रत्येकने श्रीकृष्णके दस-दस पुत्र उत्पन्न किये। वे सभी गुणोंमें पिताके समान थे ॥ २१-२२ ॥

भीष्मककन्या रुक्मिणीके गर्भसे सबसे पहले प्रद्युम्न प्रकट हुए। वे कामदेवके अवतार थे और पिताकी ही भाँति समस्त शुभलक्षणोंसे विभूषित थे। निर्दयी शम्बरासुरने दस दिनोंके भीतर ही उन्हें सूतिकागारसे उठाकर समुद्रमें फेंक दिया। वहाँ उन्हें एक मत्स्य निगल गया, तथापि वे श्रीकृष्णकुमार मत्स्यके उदरमें मरे नहीं। वह मत्स्य शम्बरासुरके पाकालयमें चीरा गया तो उसमेंसे प्रद्युम्न निकले। वहाँ उनकी पूर्वपत्नी रतिने उनका पालन किया। जब वे बड़े हुए और युवावस्था प्रारम्भ हुई, तब उन्हें अपने शत्रुकी करतूतका पता चला। राजन्! फिर अपने शत्रु शम्बरासुरका वध करके वे दिव्य भार्या रतिके साथ द्वारकामें आये। उनका वह कर्म बड़ा ही विचित्र एवं अद्भुत था ॥ २३-२६ ॥

राजन्! महारथी श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न रुक्मीकी बेटीको भोजकट नगरके स्वयंवरस्थलसे हर लाये और द्वारकामें उसके साथ उनका विवाह हुआ। प्रद्युम्नसे अनिरुद्ध नामक पुत्रका जन्म हुआ, जिसमें दस हजार हाथियोंका बल था। वे ब्रह्माजीके अवतार समझे जाते थे। उनकी कान्ति शरत्कालके प्रफुल्ल नील कमलके समान श्याम थी ॥ २७-२८ ॥

इस प्रकार मैंने परिपूर्णतम भगवान्‌के चतुर्व्यूहावतारका तथा उनके विवाह-सम्बन्धी परम मङ्गलमय विचित्र चरित्रका तुमसे वर्णन किया है, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा आयुकी वृद्धिका उत्तम साधन है। राजन्! अब तुम पुनः क्या सुनना चाहते हो? ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णकी समस्त रानियोंके विवाहका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

द्वारकापुरीके पृथ्वीपर आनेका कारण; राजा आनर्तकी तपस्या और उनपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा

बहुलाश्व बोले—मुने! तीनों लोकोंमें विख्यात द्वारकापुरी धन्य है, जहाँ साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं। आपके मुखसे सुना है कि द्वारकापुरी साक्षात् श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई है; प्रभो! ब्रह्मन्! किस कालमें वह पुरी यहाँ आयी, यह मुझे बताइये ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! तुम्हें साधुवाद है। तुमने बहुत अच्छा किया, जो द्वारकाके यहाँ आगमनका कारण पूछा, जिसे सुनकर लोकघाती पातकी भी शुद्ध हो जाता है ॥ ३ ॥

मनुके पुत्र शर्याति नामक एक राजा हुए, जो चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने दस हजार वर्षोंतक इस भूतलपर धर्म-पूर्वक राज्य किया। उनके तीन पुत्र हुए, जो समस्त धर्मज्ञ पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे। उनके नाम थे—उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण। राजा शर्यातिने उत्तानबर्हिको पूर्व दिशा, भूरिषेणको दक्षिण दिशा और आनर्तको सारी पश्चिम दिशाका राज्य दिया। फिर वे पुत्रोंसे बोले—'यह सारी पृथ्वी मेरी है। मैंने धर्मपूर्वक इसका पालन किया है तथा बलिष्ठ होकर बलपूर्वक इसका अर्जन किया है; अतः तुमलोग इसका पालन करो।' पिताकी यह बात सुनकर मझले पुत्र ज्ञानी आनर्तने मानो हँसते हुए यह ज्ञानमय वचन कहा ॥ ४-८ ॥

आनर्त बोले—राजन्! यह सारी पृथ्वी आपकी नहीं है। न आपने कभी इसका पालन किया है और न आपके बलसे इसका अर्जन हुआ है। राजन्! बलिष्ठ तो भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, अतः यह पृथ्वी श्रीकृष्णदेवकी है। उन्हींने इसका पालन किया और उन्हींके तेजसे इस सम्पूर्ण

वसुंधराका अर्जन हुआ है। भगवान श्रीहरिके समान बलिष्ठ दूसरा कोई नहीं है। वे ही भगवान् अपने द्वारा प्रकट किये गये इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। वे ही परब्रह्म परमात्मा हैं और वे ही भगवान् कलना करनेवालोंके स्वामी 'काल' हैं। जो सम्पूर्ण भूतोंके भीतर प्रवेश करके सबका आश्रय है, वह विश्वरक्षक अधियज्ञ साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि ही हैं। जिनके भयसे हवा चलती है, जिनके भयसे सूर्य तपते हैं, जिनके भयसे पर्जन्यदेव वर्षा करते हैं और जिनके भयसे मृत्यु घूमती रहती है, राजन्! उन साक्षात् परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णका सम्पूर्ण हृदयसे अहंकारशून्य होकर भजन कीजिये॥९—१४॥

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! राजा शर्याति ज्ञानको प्राप्त होकर भी पुत्रके वाग्बाणोंसे आहत हो, रोषसे फड़कते हुए अधरोंद्वारा अपने मध्यम पुत्र आनर्तसे बोले॥ १५॥

शर्यातिने कहा—ओ खोटी बुद्धिवाले बालक! दूर हट जाओ। गुरुकी भाँति उपदेश कैसे कर रहे हो? जहाँतक मेरा राज्य है, वहाँतककी भूमिपर तुम निवास मत करो। तुमने जिन सर्वसहायक श्रीकृष्णकी आराधना की है, वे भगवान् भी क्या तुम्हारे लिये कोई नयी पृथ्वी दे देंगे?॥१६-१७॥

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! उनके यों कहनेपर दूसरोंको मान देनेवाले आनर्तने राजासे कहा—'जहाँतक पृथ्वीपर आपका राज्य है, वहाँतक मेरा निवास नहीं होगा!'॥ १८॥

पिता राजा शर्यातिद्वारा निकाले गये आनर्त उनसे बिदा ले समुद्रके तटपर चले गये और समुद्रकी वेलामें पहुँचकर दस हजार वर्षोंतक तपस्या करते रहे। आनर्तकी प्रेमलक्षणा-भक्तिसे प्रसन्न हो भगवान् श्रीहरिने उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया और वर माँगनेके लिये कहा। आनर्त दोनों हाथ जोड़कर शीघ्रतापूर्वक उठे और रोमाञ्चयुक्त तथा प्रेमसे विह्वल हो उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणाम किया॥ १९—२१॥

आनर्त बोले—सबके हृदयमें वास करनेवाले आप वासुदेवको नमस्कार है। आकर्षण-शक्तिके अधिष्ठातृ-देवता आप संकर्षणको नमस्कार है। कामावतार प्रद्युम्न और ब्रह्मावतार अनिरुद्धको भी नमस्कार है। भगवन्! आप साधु संतोंके प्रतिपालक हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। देव! मेरे पिताने मुझे राज्यसे बाहर निकाल दिया है, अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मुझे दूसरी कोई भूमि दीजिये, जहाँ मेरा निवास हो सके। ध्रुव भी जिनके कृपा-प्रसादसे सर्वोत्तम पदको प्राप्त हुए, प्रणतजनोंका क्लेश दूर करनेवाले उन भगवान् (आप) को मेरा नमस्कार है*॥ २२—२४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! आनर्तको आनत एवं दीन जानकर दीनवत्सल भगवान्‌ने प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें श्रीमुखसे कहा॥ २५॥

श्रीभगवान् बोले—नरेश्वर! इस लोकमें दूसरी कोई पृथ्वी तो है नहीं, फिर मैं क्या करूँ? परंतप! तुम्हारी भक्तिसे मैं संतुष्ट हूँ, अतः अपनी बात सत्य करनेके लिये तुम्हें अपने दिव्यलोक वैकुण्ठधामका सौ योजन लंबा-चौड़ा भूखण्ड लाकर देता हूँ। वह अत्यन्त निर्मल तथा शुभद है॥ २६-२७॥

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेहराज! आनर्तनरेशसे यों कहकर भक्त-वत्सल भगवान् श्रीकृष्णने वैकुण्ठसे सौ योजन विशाल भूखण्ड उखाड़ मँगाया और भयंकर शब्द करनेवाले समुद्रमें सुदर्शन चक्रकी नींव बनाकर उसीके ऊपर उस भूखण्डको स्थापित किया। राजा आनर्तने एक लाख वर्षोंतक पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न हो वहाँ राज्य किया। उस राज्यमें वैकुण्ठका वैभव भरा हुआ था। आनर्तके पिता शर्यातिने जब यह समाचार सुना, तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। आनर्तके प्रसादसे ही 'आनर्त' नामक देश प्रकट हुआ। आनर्तके रेवत नामका पुत्र हुआ। पूर्वकालमें भीशैल नामक पर्वतका एक पुत्र था। आनर्तने उसे अपने शार्यातसे उखाड़कर आनर्त देशमें स्थापित किया। रेवतके द्वारा लाये जानेसे उन्हींके नामपर वह पर्वत 'रेवतक'

---

* आनर्त उवाच—

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥
× × ×
ध्रुवोऽपि यत्प्रसादेन ययौ सर्वोत्तमं पदम्।
तस्मै नमो भगवते प्रणतक्लेशहारिणे॥
(गर्ग०, द्वारका० ९। २२, २४)

नामसे विख्यात हुआ। राजा रैवत कुशस्थलीपुरीका निर्माण करके वहाँ दीर्घकालतक राज्य करनेके पश्चात् अपनी कन्या रेवतीको साथ ले ब्रह्मलोकमें गये, यह सब कथा मेरे द्वारा बलदेव-विवाहके प्रसङ्गमें कही जा चुकी है। इसी कारण पुण्यमयी द्वारकापुरीको देवताओंने 'मोक्षका द्वार' माना है॥ २८—३५॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्वारकापुरीके पृथ्वीपर आनेका कारण' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

द्वारकापुरी, गोमती और चक्रतीर्थका माहात्म्य; कुबेरके वैष्णवयज्ञमें दुर्वासामुनिद्वारा घण्टानाद और पार्श्वमौलिको शाप

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे द्वारकाके आगमनका कारण बताया, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यदायक है; अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ १॥

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! कल्याणस्वरूपा द्वारका नगरीकी भूमि सर्वतीर्थमयी है, अतः वहाँके मुख्य-मुख्य तीर्थोंको मुझे बताइये॥ २॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! द्वारकासे प्रभासतककी सीमा बनाकर जो तीर्थमयी यज्ञभूमि है, वही मोक्षदायिनी 'द्वारका' है। उसका विस्तार सौ योजन है। द्वारका नगरीका दर्शन करके नर नारायण हो जाता है। द्वारकामें कोई गधा भी मर जाय तो वह चतुर्भुज होकर वैकुण्ठलोकमें जाता है। जो द्वारकाका दर्शन करता है, उसकी कथा सुनता है तथा कभी 'द्वारका' इस नामका उच्चारण करता है, अथवा वहाँ दर्शन-स्नान करके तिनकेका भी दान करता है, वह मृत्युके पश्चात् परमगतिको प्राप्त होता है॥३—५॥

एक समय भक्त रैवतको प्रेमानन्दमें आकुल देख श्रीहरिने उसे अपने स्वरूपका दर्शन कराया। उस समय उनके मुँहपर अश्रुधारा बह चली थी। भगवान‌्के नेत्र-बिन्दुओंसे महानदी गोमती प्रकट हुई, जिसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्या-जैसे पातकोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो मनुष्य गोमती-तटकी पवित्र रज लेकर अपने सिरपर धारण करता है, वह सौ जन्मोंके किये हुए पापसे तत्काल मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। मनुष्य कहीं भी स्नान करते समय यदि 'गोमती'—इस नामका उच्चारण कर लेता है तो उसे निस्संदेह गोमतीमें स्नान करनेका पुण्यफल प्राप्त हो जाता है। विदेहराज! जो मकर-राशिमें सूर्यके स्थित रहते समय माघ मासमें प्रयागकी त्रिवेणीमें स्नान करता है, वह सौ अश्वमेध-यज्ञोंका पुण्यफल पा लेता है; परंतु यदि वह सूर्यके मकरगत होनेपर गोमतीमें स्नान कर ले तो उसे प्रयाग-स्नानकी अपेक्षा सहस्रगुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है। गोमतीका माहात्म्य बतानेमें चार मुखोंवाले ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। गोमतीके 'चक्रतीर्थ'में जो-जो पाषाण हैं, वे सब-के-सब चक्रभावको प्राप्त होते हैं; अतः उनकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। जो चक्रके चिह्नसे युक्त चक्रतीर्थमें द्वादशीको स्नान करता है, वह पाप-भाजन होनेपर भी चक्रपाणिके पदको प्राप्त होता है। करोड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे पतित हुआ पातकी मनुष्य भी चक्रतीर्थकी सीढ़ियोंतक पहुँचकर मोक्ष-पदपर आरूढ़ हो जाता है॥ ६—१४॥

बहुलाश्वने पूछा—महामते! महानदी गोमतीमें जो चक्रतीर्थ है, वह शुभ अर्थको देनेवाला तथा लोगोंके लिये अधिक माननीय कैसे हो गया? यह मुझे बताइये॥ १५॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! इसी विषयमें विज्ञजन इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं, जिसके श्रवण-मात्रसे सर्वथा पापोंकी हानि हो जाती है॥ १६॥

एक समयकी बात है, अलकापुरीके स्वामी राजाधिराज धर्मात्मा निधिपति भगवान् कुबेरने कैलासके उत्तर तटकी भूमिपर वैष्णवयज्ञ आरम्भ किया। उनके उस यज्ञमें स्वयं भगवान् विष्णु अपने धामसे उतर आये थे। ब्रह्मा, शिव, जम्भभेदी इन्द्र, जल-जन्तुओंके अधिपति वरुण, वायु, यम, सूर्य, सोम, सर्वजनेश्वरी पृथ्वी, गन्धर्व, अप्सरा और सिद्ध—सभी उस यज्ञमें वहाँ पधारे थे॥ १७—१९॥

नरेश्वर! समस्त देवर्षि और ब्रह्मर्षि भी वहाँ आये। उस समय कुबेरका पुत्र नलकूबर धनाध्यक्ष था। यज्ञकी रक्षामें वीरभद्रको नियुक्त किया गया था। सत्पुरुषोंकी सेवाका भार गजानन गणपतिके ऊपर था। समस्त मरुद्गण रसोई परोसनेका कार्य करते थे। स्वामिकार्तिकेय धर्मपरायण रहकर सभामण्डपमें समागत अतिथिजनोंकी पूजा-सत्कार करते थे तथा घण्टानाद और पार्श्वमौलि—ये दोनों कुबेरके मन्त्री, जो सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे, दानाध्यक्ष बनाये गये थे। इस प्रकार महान् उत्सवसे परिपूर्ण उस यज्ञका विधिपूर्वक अनुष्ठान सम्पन्न हुआ॥ २०—२३॥

यज्ञान्तका अवभृथ-स्नान करके महामनस्वी राजराज कुबेरने देवताओंको उनका उत्तम भाग दिया और ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा दी। इस प्रकार उस श्रेष्ठ यज्ञके परिपूर्ण होनेपर जब समस्त देवर्षिगण संतुष्ट हो गये, तब दण्ड, छत्र और जटा धारण किये महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे। वे स्वभावसे ही क्रोधी और कृशकाय थे। उनके चरणोंमें खड़ाऊँ शोभा पाती थी। दाढ़ी-मूँछके बाल बढ़े हुए थे। पेट सूखकर सट गया था। कुशासन, समिधा, जलपात्र और मृगचर्म धारण किये वे श्रेष्ठ मुनि वहाँ पधारे। वहाँ पधारे हुए उन महर्षिके पास जाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करके भयभीत हुए कुबेरने परिक्रमापूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'ब्रह्मन्! आपके पदार्पण करनेसे आज मेरा जन्म सफल हो गया, भवन सार्थक हो गया और यह मेरा यज्ञ भी सफल हो गया'॥ २४—२८॥

इस तरह उनके संतोष देनेपर भगवान् दुर्वासा मुनि जोर जोरसे हँसते हुए उन मनुष्यधर्मा देवता कुबेरसे बोले—'तुम राजराज, धर्मात्मा, दानी और ब्राह्मणभक्त हो। तुमने भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाले वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान किया है। प्रभो! वैश्रवण! मैंने कहीं कभी भी तुमसे कुछ नहीं माँगा है, परंतु आज तुम्हें दानिशिरोमणि समझकर मैं याचना करूँगा। यदि तुमने मेरी याचना सफल कर दी तो मैं तुम्हें उत्तम वर दूँगा; नहीं तो अत्यन्त भयंकर शाप देकर तुम्हें भस्म कर डालूँगा। त्रिलोकीकी सारी—नवों निधियाँ तुम्हारे घरमें मौजूद हैं, उन सबको मुझे दे दो; तुम्हारा भला हो। मैं उन निधियोंके लिये ही यहाँ आया हूँ'॥ २९—३३॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर दानशील, उदारचेता, गुह्यकोंके स्वामी राजराजने उनसे कहा—'बहुत अच्छा, आप मेरा प्रतिग्रह स्वीकार करें।' इस प्रकार निधियोंको दे डालनेकी चेष्टा करते हुए निधिपति कुबेरसे उनके दानाध्यक्ष मन्त्री घण्टानाद और पार्श्वमौलि लोभसे मोहित होकर बोले॥ ३४-३५॥

उन दोनोंने कहा—यह लोभी ब्राह्मण अकेला ही तो है, सारी निधियाँ लेकर क्या करेगा? इसे एक लाख दिव्य दीनार दे दीजिये, बाकी अपने पास रखिये। अपनी वृत्तिकी तथा इस उत्तर दिशाकी रक्षा कीजिये॥ ३६॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! उन मन्त्रियोंका वह कठोर वचन सुनकर दुर्वासा रोषसे आग-बबूला हो उठे। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं तथा उनके नेत्र लाल हो गये। सारा ब्रह्माण्ड बटलोईकी तरह दो निमेषतक हिलता रहा। कुबेरको अपने चरणोंमें पड़ा देख मुनिने उन दोनों मन्त्रियोंको शाप दे दिया॥ ३७-३८॥

मुनिने कहा—महादुष्ट घण्टानाद! तेरी बुद्धि पापमें ही लगी रहनेवाली है। तू अत्यन्त लोभी है, ग्राहकी भाँति धनग्राही है; अतः हे महाखल! तू ग्राह हो जा। पापपूर्ण विचार रखनेवाले पार्श्वमौले! तू भी धनके लोभ और मदसे भरा हुआ है और हाथीकी भाँति प्रेरणा दे रहा है; अतः दुर्बुद्धे! तू हाथी हो जा॥ ३९-४०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उन दोनोंको शाप दे कुबेरसे निधि लेकर मुनिवर दुर्वासाने पुनः कुबेरको अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान किया—'कुबेर! इस दानसे तुम्हारे पास नौ निधियाँ द्विगुणित होकर आ जायँ।' यों कहकर वे निधियोंके साथ वहाँसे चल दिये। अहा! परम तेजस्वी महर्षियोंका बल कैसा अद्भुत है!॥ ४१-४२॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें गोमतीके उपाख्यानके प्रसङ्गमें 'चक्रतीर्थका माहात्म्य' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

गज और ग्राह बने हुए मन्त्रियोंका युद्ध और भगवान् विष्णुके द्वारा उनका उद्धार

नारदजी कहते हैं—राजन् ! कुबेरके दोनों मन्त्री ब्राह्मणके शापसे मोहित होकर अत्यन्त दीन दुखी हो गये। उस यज्ञमें साक्षात् भगवान् विष्णु पधारे थे। वे अपनी शरणमें आये हुए उन दोनों मन्त्रियोंसे बोले ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—मेरी अर्चनासे युक्त इस यज्ञमें तुम दोनोंको दुःख उठाना पड़ा है। ब्राह्मणोंकी कही हुई बातको टाल देने या अन्यथा करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। तुम दोनों ग्राह और हाथी हो जाओ। जब कभी तुम दोनोंमें युद्ध छिड़ जायगा, तब मेरी कृपासे तुम दोनों अपने पूर्ववर्ती स्वरूपको प्राप्त हो जाओगे ॥ २-३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् विष्णुके यों कहनेपर राजाधिराज कुबेरके वे दोनों मन्त्री ग्राह और हाथी हो गये, परंतु उन्हें अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना रहा। घण्टानाद ग्राह हो गया और सैकड़ों वर्षोंतक गोमतीमें रहा। वह बड़ा विकराल, अत्यन्त भयंकर तथा सदा रौद्ररूप धारण किये रहता था। पार्श्वमौलि रैवतक पर्वतके जंगलमें चार दाँतोंवाला हाथी हुआ। उसके शरीरका रंग काजलके समान काला था। उसके पृष्ठ भागकी ऊँचाई सौ धनुषके बराबर थी। वञ्जुल, कुरब, कुन्द, बदर, बेंत, बाँस, केला, भोजपत्रका पेड़, कचनार, बिजैसार, अर्जुन, मन्दार, बकायन, अशोक, बरगद, आम, चम्पा, चन्दन, कटहल, गूलर, पीपल, खजूर, बिजौरा नींबू, चिरौंजी, आमड़ा, आम्र तथा क्रमुक (पूगीफल) के वृक्षोंसे परिमण्डित रैवतकके विशाल वनमें वह महागजराज विचरा करता था ॥ ४-९ ॥

एक समय वैशाख मासमें वह गजराज पर्वतीय कन्दरासे निकलकर अपने गणोंके साथ चिग्घाड़ता हुआ गोमती गङ्गामें स्नानके लिये आया। बहुत देरतक जलमें स्नान करके इधर-उधर सूँड़ घुमाते हुए उस गजराजने अपनी सूँड़के जलसे हाथियोंके सभी छोटे-छोटे बच्चोंको नहलाया। वह महाबलिष्ठ महान् ग्राह भी दैवकी प्रेरणासे उसी जलमें विद्यमान था। उसने दैवकी प्रेरणासे रोषसे भरकर उस गजराजका एक पैर पकड़ लिया। वह बलोन्मत्त गजराजको अपने घरमें खींच ले गया। फिर हाथी भी उसे खींचकर जलके बाहर ले आया। तत्पश्चात् उसने पुनः हाथीको खींचा। हथिनियाँ और उसके बच्चे उस गजराजको संकटसे उबारनेमें असमर्थ थे। इस प्रकार युद्ध करते और परस्पर एक-दूसरेको खींचते हुए उन दोनोंके पचपन वर्ष व्यतीत हो गये। सत्पुरुषोंके नेत्रोंके समक्ष यह घटना घटित हो रही थी। इस प्रकार कष्टमें पड़कर कालपाशके वशीभूत हो पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेवाला वह महान् गजराज प्रेमलक्षणा-भक्तिसे श्रीहरिके चरणोंका आश्रय ले उन्हींका चिन्तन करने लगा ॥ १०-१६ ॥

गजेन्द्र बोला—हे श्रीकृष्ण ! हे कृष्ण (अर्जुन) के सखा तथा हे श्याम शरीर धारण करनेवाले देवेश्वर विष्णुदेव ! आप श्रीकृष्णको मेरा प्रणाम प्राप्त हो। हे पूर्ण प्रभो ! हे परमपावन पुण्यकीर्ते ! हे परमेश्वर ! पापके पाशसे मेरी रक्षा करो, रक्षा करो * ॥ १७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार ग्राहने जिसका पैर पकड़ लिया था, उस हाथीको अपना स्मरण करता जान, दीनवत्सल श्रीहरि गरुड़पर आरूढ़ हो बड़े वेगसे दौड़े आये। उन्होंने स्वयं ही गरुड़से उतरकर दौड़ते हुए उस ग्राहपर चक्र चलाया। चक्रके वहाँ पहुँचनेके पहले ही ग्राहका वह अद्भुत मस्तक उसके धड़से कटकर अलग हो गया, जैसे दीनताके प्राप्त होते ही धन चला जाता है। इसके बाद वह चक्र गोमतीके कुण्डमें महान् शब्द करता हुआ गिरा। उसने वहाँके समस्त प्रस्तर-समूहोंको चक्रसे चिह्नित कर दिया। उसकी नेमिकी रगड़से वहाँ कल्याणकारी 'चक्रतीर्थ' प्रकट हो गया। राजन् ! उस चक्रतीर्थके दर्शनसे ब्रह्महत्या छूट जाती है। मस्तक कट जानेसे ग्राहने अपना पूर्वरूप धारण कर लिया और श्रीकृष्णके अनुग्रहसे उस हाथीका दिव्य रूप हो गया ॥ १८-२२ ॥

फिर श्रीहरिकी परिक्रमा, नमस्कार और स्तुति करके हाथ जोड़े हुए वे दोनों कुबेर-मन्त्री पुनः अपने स्थानको

---

* श्रीकृष्ण कृष्णसख कृष्णवपुर्धरेश
कृष्णाय ते प्रणतिरस्तु सुरेश विष्णो।
पूर्णप्रभो परमपावन पुण्यकीर्ते
मां पाहि पाहि परमेश्वर पापपाशात्॥
(गर्ग०, द्वारका० ११ । १७)

चले गये। देवतालोग फूल बरसाते हुए जय-जयकार करने लगे। भगवान् प्रकृतिसे परे विद्यमान अपने साक्षात् धाममें चले गये। जो नरश्रेष्ठ चक्रतीर्थकी इस कथाको सुनता है, वह चक्रतीर्थमें स्नान करनेका फल पाता है— इसमें संशय नहीं है। जो एकाग्रचित्त हो गज और ग्राहकी इस पुण्यमयी कथाको सुनता है, उसके बुरे स्वप्न नष्ट हो जाते हैं तथा निश्चय ही उसे अच्छे स्वप्न दिखायी देते हैं॥ २३—२६॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें चक्रतीर्थकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें 'गज और ग्राहका शापसे उद्धार' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

महामुनि त्रितके शापसे कक्षीवान्का शङ्खरूप होकर सरोवरमें रहना और श्रीकृष्णके द्वारा उसका उद्धार होना; शङ्खोद्धार-तीर्थकी महिमा

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! द्वारकामें जो 'शङ्खोद्धार' नामक तीर्थ है, वह सब तीर्थोंमें प्रधान है। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके सुवर्णका दान देता है, वह सम्पूर्ण उपद्रवोंसे रहित विष्णुलोकमें जाता है॥ १॥

एक समय श्रीकृष्णभक्त शान्तचित्त महामुनि त्रित तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे आनर्तदेशमें आये। वहाँ एक सुन्दर सरोवर देखकर मुनिने उसमें स्नान करके श्रीहरिकी पूजा की। उस पूजामें सुन्दर लक्षणोंसे युक्त जो महाशङ्ख वे बजाया करते थे, उसे उन्हींके शिष्य कक्षीवान्ने अत्यन्त लोभके कारण चुरा लिया। पूजाका शङ्ख चुराया गया देख मुनिवर त्रित कुपित होकर बोले—'जो मेरा शङ्ख ले गया है, वह अवश्य ही शङ्ख हो जाय।' कक्षीवान् तत्काल शापसे पीड़ित हो शङ्ख हो गया और गुरुके चरणोंमें गिरकर बोला—'भगवन्! मेरी रक्षा कीजिये।' त्रितमुनि शीघ्र ही शान्त हो गये और बोले—'दुर्बुद्धे! यह तुमने क्या किया? चोरीके दोषसे जो पाप हुआ है, उसका फल भोग। मेरी बात झूठी नहीं हो सकती। तू यहाँ श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका चिन्तन करता रह; वे ही तेरा उद्धार करेंगे'॥ २—६½॥

राजन्! यों कहकर जब महामुनि त्रितदेव वहाँसे चले गये, तब शङ्खरूपधारी कक्षीवान् उस सरोवरमें कूद पड़ा और 'कृष्ण! कृष्ण!!' पुकारता हुआ सौ वर्षोंतक वहीं रहा॥ ७-८॥

तदनन्तर भक्तवत्सल परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण उस सरोवरके तटपर आये और उसे अभय-दान देते हुए बोले—'डरो मत।' मेघ-गर्जनाके समान भगवान्की वह गम्भीर वाणी सुनकर वह जलचर शङ्ख चीख उठा—'देवदेव! जगत्पते!! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तब सर्वसामर्थ्यशाली कृपापरायण भगवान्ने नागराजके शरीरकी भाँति अपनी हृष्ट-पुष्ट भुजाके द्वारा उस भक्त शङ्खका उसी प्रकार जलसे उद्धार किया, जैसे किसी समय उन्होंने गजका उद्धार किया था। कक्षीवान् उसी क्षण शङ्खका रूप छोड़कर दिव्यरूप-धारी हो गया और हाथ जोड़ श्रीहरिको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगा॥ ९—१२॥

कक्षीवान्ने कहा—वासुदेव! आपको नमस्कार है। गोविन्द! पुरुषोत्तम! दीनवत्सल! दीनानाथ! द्वारकानाथ! परमेश्वर! आपको मेरा बारंबार प्रणाम है। आपने ही ध्रुवको ध्रुवपद प्रदान किया, प्रह्लादकी पीड़ा हर ली, गजराजका उद्धार किया तथा राजा बलिकी भेंट स्वीकार की; आपको बारंबार नमस्कार है। द्रौपदीका चीर बढ़ाकर उसकी लाज बचानेवाले आप श्रीहरिको नमस्कार है। विष, अग्नि और वनवाससे पाण्डवोंकी रक्षा करनेवाले पाण्डव-सहायक आपको नमस्कार है। यदुकुलके रक्षक तथा इन्द्रके कोपसे व्रजके गोपोंकी रक्षा करनेवाले आपको नमस्कार है। गुरुको, माता देवकीको और ब्राह्मणको उनके मरे हुए पुत्रोंको लाकर देनेवाले श्रीकृष्ण! आपको बारंबार नमस्कार है। जरासंधकी कैदमें पड़े हुए नरेशोंको वहाँसे छुटकारा दिलानेवाले, राजा नृगका उद्धार करनेवाले तथा सुदामाकी दीनता हर लेनेवाले आप साक्षात् परमेश्वरको नमस्कार है। आप वासुदेव श्रीकृष्णको नमस्कार है। संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धको भी

नमस्कार है। इस प्रकार चतुर्व्यूहरूपधारी आप परमेश्वरको मेरा प्रणाम है। देवदेव! आप ही मेरी माता, आप ही पिता, आप ही बन्धु, आप ही सखा, आप ही विद्या, आप ही धन और आप ही मेरे सब कुछ हैं* ॥ १३—१९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार श्रीहरिकी स्तुति करके प्रेम पूरित कर्त्तावान् एक श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो यादवोंके देखते-देखते, सैकड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी होकर, दसों दिशाओंको उद्भासित करता हुआ समस्त उपद्रवोंसे रहित विष्णुधाममें चला गया। मैथिलेश्वर! श्रीहरिने जिस सरोवरके तटपर शङ्खका उद्धार किया था, वह उस घटनाके कारण ही परम पुण्यमय 'शङ्खोद्धार-तीर्थ'के नामसे प्रसिद्ध हो गया। जो श्रेष्ठ मानव शङ्खोद्धारकी इस कथाको सुनता है, वह शङ्खोद्धार तीर्थमें स्नान करनेका फल पा जाता है—इसमें संशय नहीं है ॥ २०—२३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शङ्खोद्धार-तीर्थका माहात्म्य' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

प्रभास, सरस्वती, बोधपिप्पल और गोमती-सिन्धु-संगमका माहात्म्य

श्रीनारदजी कहते हैं—महामते! विदेहराज! प्रभास तीर्थका भी माहात्म्य सुनो, जो सर्वपापापहारी, पुण्यदायक तथा तेजकी वृद्धि करनेवाला है। राजन्! सिंहराशिमें बृहस्पतिके रहते गोदावरीमें, कुम्भगत बृहस्पतिके होनेपर हरक्षेत्र (हरद्वार) में, सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें और चन्द्रग्रहणके अवसरपर काशीमें स्नान और दान करके मनुष्य जिस पुण्यको पाता है, उससे सौगुना पुण्य प्रभास-क्षेत्रमें प्रतिदिन स्नान करनेसे प्राप्त होता रहता है। दक्षके शापसे राजयक्ष्मा नामक रोग हो जानेपर नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा जहाँ स्नान करके तत्काल शाप दोषसे मुक्त हो गये और पुनः उनकी कलाओंका उदय हुआ, वही 'प्रभासतीर्थ' है ॥ १—४ ॥

राजन्! उस तीर्थमें परम पुण्यमयी पश्चिमवाहिनी सरस्वती प्रवाहित होती हैं। उनके जलमें स्नान करके पापी मनुष्य भी साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है। नरेश्वर! सरस्वतीके तटपर 'बोधपिप्पल' नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको परम कल्याणमय भागवत-धर्मका उपदेश दिया था। राजन्! उस बोधपिप्पलकी विधिवत् पूजा करके, सिर नवाकर जो उसका स्पर्श करता है और ब्रह्मसम्मित भागवतपुराणको सुनता है—मनको संयममें रखते हुए मौन-भावसे भागवतका आधा श्लोक या चौथाई श्लोक भी सुन लेता है—उसके हाथमें भगवान् विष्णुका परमपद आ जाता है, अर्थात् उसके लिये परमपदकी प्राप्ति निश्चित हो जाती है। जो प्रभासमें भाद्रपद मासकी पूर्णिमा तिथिको सोनेके सिंहासनसे युक्त श्रीमद्भागवतपुराणका दान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जिन्होंने कहीं या कभी श्रीमद्-भागवतपुराण नहीं सुना, उन भूमिवासी मनुष्योंका जन्म व्यर्थ चला गया। जिन्होंने भागवतपुराण नहीं सुना, जिनके द्वारा पुराण पुरुष परमात्माकी आराधना नहीं की गयी तथा जिन लोगोंने भूमिदेवों—ब्राह्मणोंके मुखरूपी अग्निमें उत्तम

* वासुदेव नमस्तेऽस्तु गोविन्द पुरुषोत्तम। दीनवत्सल दीनेश द्वारकेश परेश्वर ॥
ध्रुवे ध्रुवपदं दात्रे प्रह्लादस्यार्तिहारिणे। गजस्योद्धारिणे तुभ्यं बलेर्बलिविदे नमः ॥
द्रौपदीचीरसंत्राणकारिणे हरये नमः। गराग्निवनवासेभ्यः पाण्डवानां सहायिने ॥
यादवत्राणकर्त्रे च शक्रादाभीररक्षिणे। गुरुमातृद्विजानां च पुत्रदात्रे नमो नमः ॥
जरासंधनिरोधार्तनृपाणां मोक्षकारिणे। नृगस्योद्धारिणे साक्षात् सुदाम्नो दैन्यहारिणे ॥
वासुदेवाय कृष्णाय नमः संकर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय चतुर्व्यूहाय ते नमः ॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥
(गर्ग०, द्वारका० १२ । १३—१९)

भोजनकी आहुति नहीं दी, उन मनुष्योंका जन्म व्यर्थ चला गया* ॥ ५—११ ॥

द्वारकामें गोमती और समुद्रका संगम सब तीर्थोंका राजा है, जिसमें स्नान करके मनुष्य निर्मल वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। गङ्गासागर-संगम-तीर्थमें स्नान करनेसे सौ अश्वमेधयज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त होता है। उससे भी सहस्रगुना पुण्य गोमती सागर-संगममें स्नान करनेसे सुलभ होता है। इसी विषयमें पुराणवेत्ता पुरुष इस पुरातन इतिहासका कथन किया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य पाप-तापसे मुक्त हो जाता है ॥ १२—१४ ॥

पूर्वकालमें हस्तिनापुरमें राजमार्गपति नामक एक श्रेष्ठ वैश्य निवास करता था। वह महान् गौरवशाली तथा कुबेरके समान निधिपति था। आगे चलकर वह वैश्य वेश्याओंके प्रसङ्गमें रहने लगा। वह विटों (धूर्तों और लम्पटों) की गोष्ठीमें बड़ा चतुर समझा जाता था। जुआ खेलनेमें उसकी बड़ी आसक्ति थी। वह लोभ, मोह और मदसे उन्मत्त रहता था। वह महादुष्ट वैश्य सदा झूठ बोलता और कुकर्ममें लगा रहता था। उसने ब्राह्मणों, पितरों और देवताओंके निमित्त कभी धनका दान नहीं किया। वह यदि कहीं दूरसे भगवान्‌की कथा-वार्ता होती देख लेता तो कतराकर जल्दी ही और दूर निकल जाता था। उसने माँ बापकी कभी सेवा नहीं की और अपने पुत्रोंको भी धन नहीं दिया। वह ऐसा दुर्बुद्धि और खल था कि धनाढ्य होनेपर भी अपनी पत्नीको त्यागकर उससे अलग रहने लगा। वेश्याओंके सङ्गमें रहनेसे उसका आधा धन नष्ट हो गया, आधा चोर चुरा ले गये और जो कुछ थोड़ा-सा पृथ्वीमें गड़ा हुआ था, वह स्वतः वहीं विलीन हो गया; क्योंकि पुण्यसे लक्ष्मी बढ़ती है और पापसे निश्चय ही नष्ट हो जाती है ॥ १५—२० ॥

इस प्रकार वेश्याओंमें आसक्त हुआ वह महादुष्ट वैश्य निर्धन हो गया और उसी रमणीय नगर हस्तिनापुरमें चोरीका काम करने लगा। उन दिनों वहाँ राजा शंतनु राज्य करते थे। उन्होंने चोरीके कर्ममें लगे हुए उस वैश्यको रस्सियोंसे बाँधकर अपने देशसे बाहर निकलवा दिया। वनमें रहकर वह जीवोंकी हिंसा करने लगा। उन्हीं दिनों वहाँ बहुत वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। तब दुर्भिक्षसे पीड़ित हुआ वह वैश्य पश्चिम दिशाकी ओर चला गया। वहाँ एक वनमें किसी सिंहने अपने पंजेसे उसको मार डाला। उसी समय यमदूत आये और उसे पाशोंमें बाँधकर नीचे मुख करके लटकाये तथा कोड़ोंसे पीटते हुए यमलोकके मार्गपर ले चले। तदनन्तर कोई महान् गृध्र उसकी बाँहका मांस लेकर आकाशमें उड़ गया और अपनी चोंचसे तुरंत ही उसको खाने लगा। अन्य पक्षी जिन्हें मांस नहीं मिला था, वे सब आतुर हो उसीमेंसे अपने लिये भी मांस ग्रहण करने लगे। इस प्रकार चील आदि पक्षियोंका वहाँ महान् कोलाहल होने लगा; तथापि उस गृध्रने अपने मुखसे उस मांसको नहीं छोड़ा। वह उड़ते-उड़ते पश्चिम दिशाकी ओर चला गया। वहाँ उसीके समान शक्तिशाली एक दूसरे गृध्रने उसके मुखपर अपनी तीखी चोंचसे प्रहार किया। तब उसके मुँहसे वह मांस गोमती सागर-संगममें गिर गया। उस तीर्थमें उसके मांसके डूबते ही यह महापातकी वैश्य यमदूतोंके पाशोंको स्वयं तोड़कर चार भुजाओंसे युक्त देवता हो गया और उन दूतोंके देखते-देखते दिव्य विमानपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वह श्रीहरिके परमधाममें चला गया ॥ २१—३१ ॥

जो मनुष्य गोमती-समुद्र-संगमके इस माहात्म्यको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रभास, सरस्वती, बोधपिप्पल तथा गोमती-सिन्धु-संगमका माहात्म्य' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

---

* पुराणं न श्रुतं यैस्तु श्रीमद्भागवतं क्वचित्। तेषां वृथा जन्म गतं नराणां भूमिवासिनाम् ॥
यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाराधितो यैः पुरुषः पुराणः। हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम् ॥
(गर्ग०, द्वारका० १३ । १०-११)

चौदहवाँ अध्याय

द्वारका क्षेत्रके समुद्र तथा रैवतक पर्वतका माहात्म्य

श्रीनारदजी कहते हैं—सबको सम्मान देनेवाले नरेश ! अब द्वारावती और समुद्रके माहात्म्यका वर्णन सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा उन तीर्थोंमें स्नानका फल देनेवाला है ॥ १ ॥

महीपते ! जो वैशाख मासकी पूर्णमासीको व्रत रहकर, स्नानपूर्वक नदीपतिसमुद्रका विधिवत् पूजन और उसे नमस्कार करके रत्नोंका दान करता है, उसके शरीरमें तीनों देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) निवास करते हैं तथा उसके दर्शन मात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है । इतना ही नहीं—उसके शरीरके स्पर्शसे तत्काल ब्रह्महत्या छूट जाती है तथा वह जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँकी भूमि मङ्गलमयी हो जाती है । जगत्का वध करनेवाला पापी मनुष्य भी उसका दर्शन करके मरनेपर अपने पाप-समूहका उच्छेद कर डालता और परम मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २—५ ॥

मानद ! अब रैवत पर्वतका माहात्म्य सुनो, जो समस्त पापोंको दूर करनेवाला, पुण्यदायक तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है । गौतमका पुत्र मेधावी बड़ा बुद्धिमान् और विष्णुभक्त था । उसने सौ अयुत (दस लाख) वर्षोंतक विन्ध्याचल पर्वतपर तपस्या की । एक दिन साक्षात् अपान्तरतमा नामक मुनि उससे मिलनेके लिये आये, परंतु उत्कट तपस्वी मेधावी अपने आसनसे नहीं उठा । तब अपान्तरतमा रोषसे भर गये और उसे शाप देते हुए बोले—"संतोंके प्रति भक्ति न रखनेवाले पापात्मन् ! तुझे अपने तपोबलपर बड़ा गर्व हो गया है । तेरी स्थिति पर्वतके समान है । अतः दुर्मते ! तू यहीं पर्वत हो जा ।" यों कहकर साक्षात् अपान्तरतमा मुनि चले गये । मेधावी शैलभावको प्राप्त हो श्रीशैलका पुत्र हुआ । परंतु वह महाबुद्धिमान्, तपस्वी तथा विष्णुभक्तिके प्रभावसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करनेवाला हुआ ॥ ६—११ ॥

एक दिन मेरे मुखसे द्वारकापुरीका माहात्म्य सुनकर श्रीशैलके पुत्रने कहा—"मुने ! आप शीघ्र राजा रैवतके पास जाइये और उनसे मेरी कही हुई प्रार्थना सुना दीजिये। क्योंकि आप बड़े दीनवत्सल हैं । ये महाबली राजा रैवत यदि प्रसन्न हो जायँ और मुझे यहाँसे उठा ले चलें, तब मेरा द्वारकापुरीके क्षेत्रमें निवास सम्भव होगा ।" विष्णु-भक्तोंको शान्ति प्रदान करना तो मेरा काम ही ठहरा । मैंने उस पर्वतकुमारकी बात सुनकर शीघ्र ही राजा रैवतके पास जा उसकी कही हुई बात सुना दी । राजन् ! मेरी बात सुनकर राजा रैवत बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"यहाँ कोई पर्वत नहीं है; अतः उस शैलपुत्रको दोनों भुजाओंसे उखाड़कर यहाँ लाऊँगा और द्वारकामें उसकी स्थापना करूँगा ।"—ऐसी प्रतिज्ञा उन्होंने की ॥ १२—१६ ॥

राजा रैवत उस पर्वतको चुरा लानेके लिये ज्यों ही प्रस्थित हुए, उनसे भी पहले मैं श्रीशैलके नगरमें जा पहुँचा । मुझे कलह प्रिय लगता है, इसलिये मैंने महात्मा श्रीशैलको राजाका उसके पुत्रको चोरीसे सम्बन्ध रखनेवाला सारा वृत्तान्त कह सुनाया । श्रीशैलने पुत्रके मोहवश उसको डाँटकर कहा—"तू कहाँ जा रहा है ?" इसके बाद श्रीशैल गिरिराज सुमेरु और नगेश्वर हिमवान्के पास गया । वह धर्मात्मा पर्वत पुत्रस्नेहसे बहुत व्याकुल था । उसने उन पर्वतराजोंसे कहा—"मुझे दैवने यहाँ एक पुत्र दिया है, मेरे बहुत-से पुत्र नहीं हैं; उस एकको भी यहाँसे हर ले जानेके लिये महाबली राजा रैवत आये हैं । इन महात्मा राजाके कारण मेरा पुत्र विदेश चला जा रहा है । मैं पुत्रस्नेहसे विकल होकर आप दोनोंकी शरणमें आया हूँ । आपलोग राजा रैवतको जीतकर शीघ्र ही मुझे मेरा पुत्र दिला दें ॥ १७—२२ ॥

जातिके प्रति पक्षपात होनेके कारण वे दोनों पर्वत, सुमेरु और हिमालय, लाखों दूसरे पर्वतोंसे घिरे हुए तुरंत ही युद्धके लिये आये । उधर हनुमान्‌जीने जैसे द्रोणगिरिको उखाड़ लिया था, उसी प्रकार रैवतने अपनी दोनों भुजाओंसे उस पर्वतको उखाड़कर बलपूर्वक ऊपर उठा लिया और ज्यों ही वहाँसे चलनेका विचार किया, त्यों ही अस्त्र-शस्त्र धारण किये बहुत-से पर्वतोंको वहाँ उपस्थित देखा । उन्हें देखकर राजाने उच्चस्वरसे अट्टहास किया, मानो विद्युत्पातकी गड़गड़ाहट हुई हो । उनके उस सिंहनादसे सातों लोकों और सातों पातालोंके साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गूँज उठा । उसी समय उन समस्त योद्धाओंके हाथोंसे सारे अस्त्र-शस्त्र स्वतः गिर गये । जब वे पर्वत निःशस्त्र हो गये, तब बार-बार

कोलाहल करते हुए मार्गमें पर्वतसहित जाते हुए रैवतको मुक्कों और घुटनोंसे उसी प्रकार मारने लगे, जैसे पूर्वकालमें द्रोणाचलके रक्षक महाबली हनुमान्‌जीके पीछे उन्हें मार गिरानेके लिये ये कुछ दूरतक गये थे। उन पर्वतोंके चोट करनेपर भी राजा रैवतने अपने हाथमें उक्त पर्वतको नहीं छोड़ा ॥ २३–२८ ॥

मिथिलेश्वर! मेरे ही मुखसे राजा रैवतके ऊपर पर्वतोंका आक्रमण सुनकर भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तकी सहायताके लिये तत्काल आकाशमार्गसे आ गये और राजाको अपना उत्कृष्ट तेज देकर 'डरो मत'—यों कहकर, अभयदान दे, तुरंत वहीं अन्तर्धान हो गये। भगवान्‌के चले जानेपर उन्हींके तेजसे सम्पन्न हो राजा रैवतने एक हाथपर उस पर्वतको रख लिया और वज्रको भी चूर कर देनेवाले अपने मुक्केसे सुमेरु पर्वतको इस प्रकार मारा, मानो महाबली वज्रधारी इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्रसे प्रहार किया हो। उनके मुक्केकी मारसे मेरु पर्वत व्याकुल होकर गिर पड़ा। फिर हिमवान्‌को भी अपने बाहुवेगसे धराशायी करके उस रण दुर्मद नरेशने विन्ध्य आदि अन्य पर्वतोंको अपने पैरोंसे रौंद डाला ॥ २९–३३ ॥

विन्ध्य आदि सभी पर्वत उनके पैरोंके आघातसे कुचले जानेके कारण भयभीत हो युद्धका मैदान छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग चले। इस प्रकार पर्वतोंके समुदायपर विजय पाकर पर्वतके समान सुदृढ़ शरीरवाले राजा रैवतने उस पर्वतको विजय-गर्जनाके साथ ले जाकर आनर्तदेशमें स्थापित कर दिया ॥ ३४-३५ ॥

राजन्! वह पर्वत राजा रैवतके ही नामपर 'रैवतकाचल'के रूपमें विख्यात हुआ। भगवान्‌के प्रति भक्तिभावसे युक्त वह श्रेष्ठ पर्वत आज भी द्वारका क्षेत्रमें विराजमान है। उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है। उसके स्पर्शमात्रसे मनुष्य सौ यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है। उस पर्वतकी यात्रा और परिक्रमा करके नतमस्तक हो जो मनुष्य ब्राह्मणको भोजन देता है, वह भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त कर लेता है ॥ ३६–३८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'समुद्र और रैवतकाचलका माहात्म्य' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

यज्ञतीर्थ, कपिटङ्कतीर्थ, नृगकूप, गोपीभूमि तथा गोपीचन्दनकी महिमा; द्वारकाकी मिट्टीके स्पर्शसे एक महान् पापीका उद्धार

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उस पर्वतपर पूर्वकालमें राजा रैवतने यज्ञतीर्थका निर्माण किया, जहाँ एक यज्ञ करके मनुष्य कोटियज्ञोंका फल पाता है। वहीं 'कपिटङ्क' नामक तीर्थ है, जो एक कपिके मार गिराये जानेसे प्रकट हुआ था। राजन्! रैवतक गिरिपर वह तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला है ॥ १-२ ॥

भौमासुरका सखा एक द्विविद नामक वानर था, जो बड़ा ही दुष्ट था। उसे बलरामजीने वज्रके समान चोट करनेवाले मुक्केसे जहाँ मारा था, वही स्थान 'कपिटङ्कतीर्थ' है। वह वानर सत्पुरुषोंकी अवहेलना करनेवाला था, तो भी वहाँ मारे जानेसे तत्काल मुक्त हो गया। नरेश्वर! उस तीर्थमें स्नान करनेके लिये सदा देवतालोग आया करते हैं। 'कलविङ्कतीर्थ'की यात्रा करनेपर कोटि गोदानका फल प्राप्त होता है। इससे दूना पुण्य शुभ दण्डकारण्यकी यात्रा करनेपर मिलता है। उससे भी चौगुना पुण्य सैन्धवनामक विशाल वनकी यात्रा करनेपर सुलभ होता है। उसकी अपेक्षा भी पाँचगुना अधिक पुण्य जम्बूमार्गकी यात्रा करनेसे मनुष्यको मिल जाता है। पुष्करतीर्थके वनमें उससे भी दसगुना पुण्य प्राप्त होता है। उससे दसगुना पुण्य 'उत्पलावर्ततीर्थ'की यात्रासे सुलभ होता है। उसकी अपेक्षा भी दसगुना पुण्य 'नैमिषारण्यतीर्थ'में बताया गया है। विदेहराज! नैमिषारण्यसे भी सौगुना पुण्य 'कपिटङ्कतीर्थ'में स्नान करनेसे प्राप्त होता है ॥ ३–८ ॥

द्वारकामें एक 'नृगकूप' है, जो तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ है। उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है। राजा नृगने अनजानमें एक ब्राह्मणकी गायको दूसरे ब्राह्मणके हाथमें दे दिया था। उसी पापसे उन्हें गिरगिटका शरीर धारण करके कूपमें रहना पड़ा। दानियोंमें सर्वश्रेष्ठ राजा

नृग भी एक छोटे-से पापके कारण अन्धकूपमें गिरे और चार युगोंतक उसीमें रहे । फिर सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान् श्रीकृष्णने उनका उद्धार किया । महीपते ! उसी दिनसे 'नृगकूप' तीर्थस्वरूप हो गया। कार्तिककी पूर्णिमाको उस कूपके जलसे स्नान करना चाहिये । ऐसा करनेवाला मनुष्य कोटिजन्मोंके किये हुए पापसे छुटकारा पा जाता है, इसमें संशय नहीं है । वहाँ विधिपूर्वक जो एक भी गोदान करता है, वह निस्संदेह कोटि गोदानके पुण्यफलका भागी होता है ॥ ९–१३½ ॥

राजन् ! अब 'गोपीभूमि'का माहात्म्य सुनो, जो पापहारी उत्तम तीर्थ है । उसके श्रवणमात्रसे कर्मबन्धनसे छुटकारा मिल जाता है । जहाँ गोपियोंने निवास किया था, उस निवासके कारण ही वह स्थान 'गोपीभूमि'के नामसे प्रसिद्ध हुआ । वहाँ गोपियोंके अङ्गरागसे उत्पन्न उत्तम गोपीचन्दन उपलब्ध होता है । जो अपने अङ्गोंमें गोपीचन्दन लगाता है, उसे गङ्गास्नानका फल मिलता है । जो सदा गोपीचन्दन-की मुद्राओंसे मुद्रित होता है, अर्थात् गोपीचन्दनका छापा-तिलक लगाता है, उसे प्रतिदिन महानदियोंमें स्नान करनेका पुण्यफल प्राप्त होता है । उसने सहस्र अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ कर लिये । सब तीर्थोंका सेवन, दान और व्रतोंका अनुष्ठान भी कर लिया । निस्संदेह वह नित्य गोपी-चन्दन लगानेमात्रसे कृतार्थ हो जाता है । गङ्गाकी मिट्टीसे दुगुना पुण्य चित्रकूटकी रजका माना गया है, उससे भी दसगुना पुण्य पञ्चवटीकी रजका है, उसकी अपेक्षा भी सौगुना पुण्य गोपीचन्दनरूप रजका है । गोपीचन्दनको तुम वृन्दावनकी रजके समान समझो । जिसके शरीरमें गोपी-चन्दन लगा हो, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी उसे यमराज भी अपने साथ नहीं ले जा सकते, फिर यमदूतोंकी तो बात ही क्या है । पापी होनेपर भी जो पुरुष प्रतिदिन गोपीचन्दन-का तिलक धारण करता है, वह श्रीहरिके गोलोकधाममें जाता है, जहाँ प्राकृत गुणोंका प्रवेश नहीं है ॥ १४–२२ ॥

सिन्धुदेशका एक राजा था, जिसका नाम दीर्घबाहु था । वह अन्यायपूर्ण जीवन बितानेवाला, दुष्टात्मा और सदा वेश्यासङ्गमें रत रहनेवाला था । उसने भारतवर्षमें सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ की थीं । उस दुरात्माने दस गर्भवती स्त्रियोंका वध किया था । उसने शिकार खेलते समय अपने बाण-समूहोंसे कपिला गौओंकी हत्या की थी । एक दिन वह सिंधी घोड़ेपर चढ़कर मृगयाके लिये वनमें गया । वहाँ उसके कुपित मन्त्रीने राज्यके लोभसे उस महाखल नरेशको तीखी धारवाली तलवारसे उस वनमें ही मार डाला । उसको पृथ्वीपर पड़ा और मृत्युको प्राप्त हुआ देख यमके सेवक बाँधकर परस्पर हर्ष प्रकट करते हुए उसे यमपुरी ले गये । उस पापीको सामने खड़ा देख बलवान् यमराजने तुरंत ही चित्रगुप्तसे पूछा 'इसके योग्य कौन-सी यातना है ?' ॥ २३–२८ ॥

चित्रगुप्तने कहा—महाराज ! निस्संदेह इसे चौरासी लाख नरकोंमें बारी-बारीसे गिराया जाय और जबतक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं, तबतक यह नरकका कष्ट भोगता रहे । इसने भारतवर्षमें जन्म लेकर एक क्षण भी कभी पुण्य कर्म नहीं किया है । इसने दस गर्भवती स्त्रियों-की और असंख्य कपिला गौओंकी हत्या की है । इसके सिवा वन्य पशुओंकी हत्या तो इसने हजारोंकी संख्यामें की है । इसलिये देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला यह महान् पापी है ॥ २९–३१ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उस समय यमकी आज्ञासे यमदूत उस पापात्माको लेकर कुम्भीपाक नरकमें ले गये, जिसका दीर्घ विस्तार एक सहस्र योजनका था । वहाँ विशाल कड़ाहमें तपाया हुआ तेल भरा था । उस खौलते हुए तेलमें फेन उठ रहे थे । यमदूतोंने उस पापीको उसी कुम्भीपाकमें गिरा दिया । उसके गिरते ही वहाँकी प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित अग्नि तत्काल शीतल हो गयी । विदेहराज ! जैसे प्रह्लादको खौलते हुए तेलमें फेंकनेपर वह शीतल हो गया था, उसी प्रकार उस पापीको नरकमें गिरानेसे वहाँकी ज्वाला शान्त हो गया । यमदूतोंने उसी समय यह विचित्र घटना महात्मा यमको बतायी । चित्रगुप्तके साथ धर्मराज बड़ी चिन्तामें पड़े और सोचने लगे—'इसने तो भूतलपर क्षणभर भी कभी कोई पुण्य नहीं किया है ।' नरेश्वर ! इसी समय धर्मराजकी सभामें व्यासजी पधारे । उनकी विधि-पूर्वक पूजा करके परम बुद्धिमान् धर्मात्मा धर्मराजने उन्हें प्रणाम करके पूछा ॥ ३२–३६ ॥

यम बोले—भगवन् ! इस पापीने पहले कभी कहीं कोई सुकृत नहीं किया है । इसलिये जिसमें फेन उठ रहा था, ऐसे खौलते हुए तेलसे भरे कुम्भीपाकके महान् कड़ाहमें इसको फेंका गया था । इसके डालते ही वहाँकी आग तत्काल शीतल हो गयी । इस संदेहके कारण मेरे चित्तमें निश्चय ही बड़ा खेद है ॥ ३७–३८ ॥
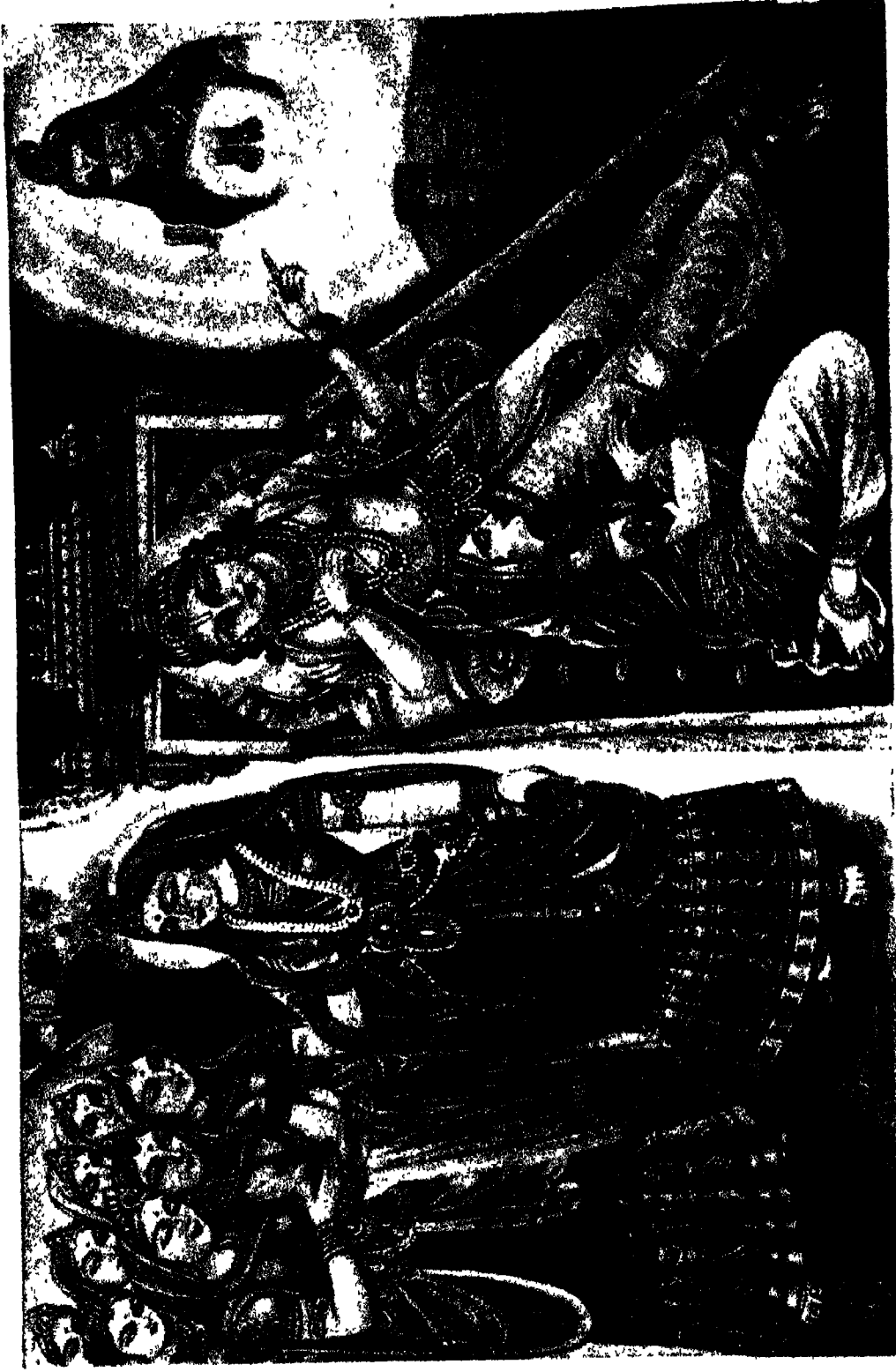
श्रीराधा और रुक्मिणी आदिका मिलन

श्रीराधाके हृदयमें श्रीकृष्णचरणोंकी नित्य स्थिति

श्रीव्यासजीने कहा—महाराज ! पाप-पुण्यकी गति उसी प्रकार बड़ी सूक्ष्म होती है, जैसे सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वानोंमें श्रेष्ठ प्रज्ञावान् पुरुषोंने ब्रह्मकी गति सूक्ष्म बतायी है। दैवयोगसे इसको स्वयं ही प्रत्यक्ष एवं सार्थक पुण्य प्राप्त हो गया है। महामते ! जिस पुण्यसे वह शुद्ध हुआ है, उसे बताता हूँ; [illegible] ! जहाँ किसीके हाथसे द्वारकाकी मिट्टी पड़ी हुई थी, वहीं इस पापीकी मृत्यु हुई है। उस मृत्तिकाके प्रभावसे ही यह पापी शुद्ध हो गया है। जिसके अङ्गमें गोपीचन्दनका लेप हो, वह 'नर'से 'नारायण' हो जाता है। उसके दर्शनमात्रसे तत्काल ब्रह्महत्या छूट जाती है ॥ ३९-४२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर धर्मराज उसे ले आये और इच्छानुसार चलनेवाले एक विशेष विमानपर उसे बैठाकर उन्होंने प्रकृतिसे परे वैकुण्ठधामको भेज दिया। गोपीचन्दनके सुयश (प्रताप)का ज्ञान उनको अकस्मात् उसी समय हुआ। राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें गोपीचन्दनकी महिमा बतायी। जो श्रेष्ठ मनुष्य गोपीचन्दनके इस माहात्म्यको सुनता है, वह महात्मा श्रीकृष्णके परमधाममें जाता है ॥ ४३-४४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-व्यास-संवादमें 'कपिटङ्क, नृग-कूप तथा गोपीभूमिकी महिमाका वर्णन' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

सिद्धाश्रमकी महिमाके प्रसङ्गमें श्रीराधा और गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्ण और उनकी सोलह हजार रानियोंका समागम

श्रीनारदजी कहते हैं—महामते विदेहराज ! अब सिद्धाश्रमका माहात्म्य सुनो, जिसका स्मरण करनेमात्रसे समस्त पाप छूट जाते हैं। जिसके स्पर्शमात्रसे साक्षात् श्रीहरिसे कभी वियोग नहीं होता, उसी तीर्थको पुराणवेत्ता पुरुष 'सिद्धाश्रम' कहते हैं। जिसके दर्शनसे सालोक्य, स्पर्शसे सामीप्य, जिसमें स्नान करनेसे सारूप्य और जहाँ निवास करनेसे सायुज्य मोक्षकी प्राप्ति होती है, उसे ही 'सिद्धाश्रम' जानो ॥ १-३ ॥

एक समय चन्द्रानना सखीके मुखसे सिद्धाश्रम तीर्थका माहात्म्य सुनकर श्रीकृष्णके वियोगसे व्याकुल हुई श्रीराधाने उसमें नहानेका विचार किया। वैशाख मासमें सूर्यग्रहणके पर्वपर सिद्धाश्रम तीर्थकी यात्राके लिये कदली-वनसे उठकर श्रीराधाने गोपाङ्गनाओंके सौ यूथ और समस्त गोपगणोंके साथ वहाँ जानेका मन-ही-मन निश्चय किया। श्रीदामाके शापके कारण होनेवाले श्रीकृष्णवियोगके सौ वर्ष बीत चुके थे। श्रीराधिका शिबिकामें आरूढ़ हुईं। उनपर छत्र-चँवर डुलाये जाने लगे। इस प्रकार वे सती श्रीराधा आनर्तदेशके महातीर्थ सिद्धाश्रमको गयीं ॥ ४-७ ॥

नरेश्वर ! वहीं साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सोलह हजार रानियोंके साथ यादवगणोंसे घिरे हुए तीर्थयात्राके लिये आये। करोड़ों बलिष्ठ गोपाल हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये श्रीराधिकाकी आज्ञाके अनुसार सिद्धाश्रमकी चारों ओरसे रक्षा कर रहे थे। गोपियोंके सौ यूथ भी बड़े शक्तिशाली थे। वे, तथा अन्य गोपाङ्गनाएँ हाथोंमें बेंतकी छड़ी लिये सिद्धाश्रममें विधिपूर्वक स्नान करती हुई श्रीराधाकी सेवामें तत्पर थीं। द्वारकावासी स्नानकी इच्छासे वहाँ आकर खड़े थे। शस्त्र और वेत्र धारण करनेवाले गोपोंने उन्हें मार-मारकर दूर हटा दिया। इसी समय भगवान् श्रीकृष्णकी रानियोंने सिद्धाश्रममें प्रवेश किया। उन रानियोंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'देवकीनन्दन ! आप सर्वज्ञ हैं, अतः हमें बताइये, यह कौन स्त्री स्नान कर रही है, जिसका वैभव अद्भुत दिखायी देता है तथा जिसका गौरव मानकर समस्त यादव-पुंगव यहाँ भयभीत से खड़े हैं। अहो ! यह किसकी प्रिया है, इसका क्या नाम है और यह कहाँकी रहनेवाली है ?' ॥ ८-१३ ॥

श्रीभगवान् बोले—ये साक्षात् वृषभानुकी पुत्री कीर्तिनन्दिनी श्रीराधा हैं, जो सम्पूर्ण व्रजकी अधीश्वरी, गोपाङ्गनाओंकी स्वामिनी तथा मेरी प्राणवल्लभा हैं। ये व्रजसे गोपीगणोंके साथ सिद्धाश्रममें स्नान करनेके लिये आयी हैं। इन्हींके गौरवसे ये यादव त्रस्त होकर खड़े हैं। इन्हींका यह अद्भुत वैभव है ॥ १४-१५ ॥

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अपने अनुपम रूप और

यौवनपर गर्व करनेवाली भामिनी सत्यभामा अपनी सौतोंके बीच धीरे-धीरे बोलीं—'क्या राधा ही रूपवती हैं, मैं रूपवती नहीं हूँ ? पूर्वकालमें बहुत-से लोगोंने मेरी याचना की थी। मैं अपने रूप और औदार्य-गुणसे सदा ही पूजित रही हूँ। सखियो ! मेरे रूपके ही कारण शतधन्वाकी मृत्यु हुई, अक्रूर और कृतवर्माको यदुपुरीसे पलायन करना पड़ा। जो स्यमन्तक मणि प्रतिदिन अपने-आप आठ भार सुवर्णकी सृष्टि करती है, जिसके रहनेसे दुर्भिक्ष, महामारी आदि कष्ट स्वतः भाग जाते हैं तथा जिसकी पूजाके स्थानमें सर्प, आधि-व्याधि, अमङ्गल और मायावी लोग नहीं रह पाते, मेरे पिताने वही स्यमन्तक मणि मेरे दहेजमें दी थी। उस मणिसे मेरे घरमें भी सम्पूर्ण अद्भुत वैभव प्रकट हो गया है। मैं अपने महान् प्रेमसे श्रीकृष्णको वशमें रखती हूँ, उनके साथ गरुड़पर बैठकर यात्रा करती हूँ। प्राग्ज्योतिषपुरमें भौमासुरके साथ जो महान् युद्ध हुआ था, उसे मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। मेरी ही कृपासे तुम सब प्राग्ज्योतिषपुरसे द्वारकापुरीमें आयीं और सब-की-सब श्रीकृष्णकी पत्नी हुईं, इसमें संशय नहीं है। मेरी ही बातका आदर करके इन श्रीकृष्णने इन्द्रको छत्र दिया। मेरा ही प्रिय करनेकी इच्छासे इन्होंने देवमाता अदितिको उनके दोनों कुण्डल अर्पित किये। ऐरावतके वंशमें उत्पन्न बड़े-बड़े गजराज, जो भौमासुरकी सम्पत्ति थे, मेरी ही इच्छासे महात्मा श्रीकृष्णद्वारा द्वारकामें लाये गये। मेरे ही कारण श्रीहरिने देवराज इन्द्रसे भी महान् वैर ठान लिया। मेरे द्वारपर वृक्षराज पारिजात सदा सुशोभित होता है। मैंने अपने पातिव्रतधर्मसे ही श्रीकृष्णको वशमें कर रखा है। मैंने समस्त सामग्रियोंके साथ नारदजीके हाथ श्रीकृष्णका दान कर दिया था। मेरे समान गौरव और वैभव किसी भी स्त्रीको नहीं प्राप्त हो सकता। रूप और उदारता भी मेरे तुल्य किसी भी स्त्रीमें नहीं है। फिर राधाकी तो बात ही क्या है ? जिनके रूपपर चेदिराज शिशुपाल आदिने रणभूमिमें श्रीकृष्णके साथ युद्ध छेड़ दिया था, उन रुक्मिणीका रूप-सौन्दर्य क्या किसीसे कम है ? सुन्दर भौंहोंवाली बहिन रुक्मिणी ! तुम क्योंकर रूपवती नहीं हो ! सखियो ! राधा एक गोपकी कन्या है और तुम सब राजकुमारियाँ हो; सभी धन्य और मान्य हो तथा मानवती स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हो' ॥ १६–२९ ॥

मिथिलेश्वर ! सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर रुक्मिणी आदि सभी श्रेष्ठ रानियाँ मानवती हो गयीं। उन सबको अपने कुल, कौशल, शील, धन, रूप और यौवनपर गर्व था। वे आठों पटरानियाँ सबको मान देनेवाले श्रीकृष्णसे बोलीं ॥ ३०-३१ ॥

रानियाँ बोलीं—प्रभो ! आपके मुँहसे पहले हमने राधाके रूपकी बड़ी बड़ाई सुनी है, जिनके प्रति तुम सदा अनुरक्त रहते हो और वे भी सदा तुम्हारे अनुरागके रंगमें रँगी रहती हैं। आज हम उन्हीं तुम्हारी व्रजवासिनी प्रियतमा राधाको देखना चाहती हैं, जो सदा तुम्हारे वियोगसे खिन्न रहती हैं और यहाँ स्नानके लिये आयी हुई हैं ॥ ३२-३३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तब 'तथास्तु' कहकर पटरानियोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण सोलह हजार रानियोंके साथ श्रीराधाका दर्शन करनेके लिये गये। सोनेके रमणीय शिविरमें—जो ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित था और जिस सुन्दर शिविरमें चन्द्रमण्डलकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाला चँदोवा तना था; मोतियोंकी झालरोंसे युक्त परदा लगा था और जहाँ स्वच्छ वस्त्रोंका सुन्दर बिछौना बिछा था; मालतीके मकरन्द एवं इत्र आदिकी सुगन्ध जहाँ सब ओर छा रही थी और उसीके कारण भ्रमरावलियाँ जहाँ मधुर गुञ्जन कर रही थीं—पटरानी श्रीराधा, जिनका चित्त श्रीकृष्णने चुरा लिया था, विराजमान थीं और सखियाँ हंसके समान श्वेत एवं दिव्य व्यजन डुलाकर उनकी सेवा करती थीं। कोई सखी उनके ऊपर छत्र ताने हुए थीं, कुछ सखियाँ झूलेकी डोर पकड़कर झुला रही थीं और कुछ इधर-उधर आती-जाती दिखायी देती थीं। श्रीराधाके कानोंमें बालरविके समान कान्तिमान् कुण्डल झलमला रहे थे। विद्युत्के समान उद्दीप्त माला धारण करनेके कारण उनकी मनोहरता और भी बढ़ गयी थी। उनके श्रीअङ्गोंसे कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाश फैल रहा था। वे तन्वङ्गी तथा कोमलाङ्गी थीं। वे अपने पैरोंकी सुन्दर अङ्गुलियोंके अग्रभागसे पुष्पाच्छादित मनोहर भूमिपर अत्यन्त कोमल चरणारविन्द धीरे-धीरे रख रही थीं ॥ ३४—४० ॥

महाराज ! उन श्रीराधाको दूरसे ही देखकर श्रीकृष्णकी वे सहस्र रानियाँ उनके रूपसे अत्यन्त मोहित होकर मूर्च्छित हो गयीं। उनके तेजसे इनकी कान्ति उसी तरह

विलुप्त हो गयी, जैसे सूर्योदय होनेपर तारिकाएँ। इन्हें जो रूपका अभिमान था, वह जाता रहा। वे सब रानियाँ परस्पर इस प्रकार कहने लगीं—'अहो! ऐसा अद्भुत रूप तो तीनों लोकोंमें कहीं भी नहीं है। हमने इनके अद्वितीय मनोहर रूपको जैसा सुना था, वैसा ही देखा।' इस प्रकार आपसमें बात करती हुई वे रानियाँ श्रीकृष्णको आगे करके श्रीराधिकाके पास जा पहुँचीं। गोपाङ्गनाओं तथा राजकुमारियोंके नेत्र आपसमें मिले॥ ४१—४४॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें सिद्धाश्रम-माहात्म्यके प्रसङ्गमें 'श्रीराधाके रूपका दर्शन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

सिद्धाश्रममें श्रीराधा और श्रीकृष्णका मिलन; श्रीकृष्णकी रानियोंका श्रीराधाको अपने शिविरमें बुलाकर उनका सत्कार करना तथा श्रीहरिके द्वारा उनकी उत्कृष्ट प्रीतिका प्रकाशन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! पटरानियोंसहित श्रीकृष्णको आया देख गोपाङ्गनाएँ अत्यन्त हर्षसे खिल उठीं और तत्काल जय-जयकार करने लगीं। श्रीराधा सहसा उठीं और हाथ जोड़, श्रीहरिकी परिक्रमा करके अपने कमलोपम नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाने लगीं। उन्होंने श्रीकृष्णके बैठनेके लिये एक सोनेका सिंहासन दिया, जिसके पायोंमें स्यमन्तक मणि जड़ी हुई थी। पार्श्वभागमें चिन्तामणि जगमगा रही थी, मध्यभागमें पद्मराग मणि शोभा दे रही थी। वह सिंहासन चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार था। उसकी पादपीठिकामें कौस्तुभ मणियाँ जड़ी गयी थीं। वह सिंहासन कुण्डमण्डलसे मण्डित था; पारिजातके पुष्पोंसे सज्जित और अमृतवर्षी छत्रसे अलंकृत था॥ १—४॥

उन्हें सिंहासन देकर श्रीराधा हास्ययुक्त मुखसे बोलीं—'आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरी तपस्याका फल मिल गया। श्रीहरे! तुम आ गये तो आज मेरा धर्म-कर्म सफल हो गया। श्रीसिद्धाश्रमका स्नान धन्य है, जिससे मेरा मनोरथ अद्भुत रीतिसे सफल हुआ। मैंने तो कभी तुम्हारी भक्ति भी नहीं की। तुम भक्तोंके सहायक हो। देव! तुमने मेरी सहायताके लिये इस भूतलपर बहुत-से असुरोंको मार भगाया। जिससे त्रिलोक-विजयी कंस भी डरता था, उस शङ्खचूडको तुमने मेरे कहनेसे मार गिराया। हरे! मेरे प्रति प्रेम रखनेके कारण ही तुमने व्रजमण्डलमें देवलोकका वैभव दिखाया। देव! तुमने बलपूर्वक इन्द्रका मान भङ्ग किया और मेरे ही कारण व्रजकी रक्षा करते हुए गोवर्धन पर्वतको धारण किया। रासमण्डलमें गोपियोंने तुम्हारा यथेष्ट आलिङ्गन किया और तुम उनके वशमें हो गये। देव! तुम्हारा यह चरित्र नरलोककी विडम्बना मात्र है'॥ ५—१०॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहती हुई श्रीराधाने चन्द्राननाकी प्रेरणासे तुरंत श्रीकृष्णकी रानियोंपर दृष्टिपात किया और बड़े आदरके साथ उन सबको सम्मान दिया। रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा, कालिन्दी और मित्रविन्दासे परस्पर गले मिलकर, रोहिणी आदि सोलह हजार रानियोंको भी प्रेमानन्दमयी श्रीराधाने दोनों भुजाओंसे पकड़कर सानन्द हृदयसे लगाया॥ ११—१३॥

श्रीराधा बोलीं—बहिनो! जैसे चन्द्रमा एक है, किंतु उससे स्नेह रखनेवाले चकोर बहुत हैं, जैसे सूर्य एक हैं, किंतु उन्हें देखनेवाली दृष्टियाँ बहुत हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र एक हैं, किंतु इनमें भक्तिभाव रखनेवाली हम सब बहुत-सी स्त्रियाँ हैं। जैसे कमलके प्रभावको भ्रमर जानता है तथा रत्नके प्रभावको उसकी परख करनेवाला जौहरी जानता है, जैसे विद्याके प्रभावको विद्वान् और काव्यके प्रभावको कवीन्द्र जानता है, जैसे सहस्रों मनुष्योंके होनेपर भी रसके प्रभावको केवल रसिक जानता है, उसी प्रकार, हे राजकुमारियो! इस भूतलपर श्रीकृष्णके प्रभावको यथार्थरूपसे इनका भक्त ही जानता है॥ १४—१६॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीराधाकी बात सुनकर उस समय सपत्नियोंसहित भीष्मनन्दिनी रुक्मिणीने कमललोचना श्रीराधासे कहा॥ १७॥

रुक्मिणी बोलीं—श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनि ! तुम धन्य हो । तुम्हारे भक्ति-भावसे ये श्रीकृष्ण सदा तुम्हारे वशमें रहते हैं । तीनों लोकोंके लोग जिनकी कथा-वार्ता निरन्तर कहते-सुनते हैं, वे ही भगवान् दिन-रात तुम्हारी कथा कहा करते हैं । श्रीहरिके प्रति तुम्हारे प्रेम-भावका स्वरूप जैसा हमने सुना था, वैसा ही देखा । तुम्हारे लिये कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है । देवि ! तुम हमारे शिविरमें शीघ्र चलो; हम सब तुम्हें ले चलनेके लिये ही यहाँ आयी हैं ॥ १८-१९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर भीष्मनन्दिनी रुक्मिणी कीर्तिकुमारी श्रीराधाको बड़े आदरसे महात्मा श्रीकृष्णके साथ अपने शिविरमें ले आयीं । सर्वतोभद्र नामक शिविरमें, जो कमलोंके केसरसे सुवासित था, सोनेके पलंगपर, शिरीष पुष्पके समान कोमल बिछावन बिछाकर, तकिया लगाकर, वस्त्र, माला और शृङ्गार-सामग्रीसे सपत्नियोंसहित सती रुक्मिणीने रात्रिके समय विधिवत् पूजा करके उन्हें सुखपूर्वक ठहराया । फिर गोपाङ्गनाओंके सौ यूथोंका भी पृथक्-पृथक् पूजन करके उन कृष्णप्रियाओंने सबके साथ बहुविध वार्तालाप किया । फिर श्रीराधाको वहाँ सुलाकर वे रानियाँ प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने शिविरमें गयीं । श्रीकृष्णके पास पहुँचकर रुक्मिणीने देखा कि वे बैठे-बैठे जाग रहे हैं । तब उन्होंने श्रीकृष्णसे पूछा—'स्वामिन् ! आप सोते क्यों नहीं ?' ॥ २०-२४ ॥

श्रीभगवान् बोले—सुभ्रु ! तुमने अगवानी करके, विनयपूर्वक प्रेमभरी बातें सुनाकर, आश्वासन देकर व्रजेश्वरी श्रीराधाकी भलीभाँति पूजा की है और वे अत्यन्त प्रसन्न हुई हैं; परंतु एक बातकी ओर तुमने ध्यान नहीं दिया । वे प्रतिदिन सोनेसे पहले उत्तम दूध पिया करती हैं, किंतु सुन्दरि ! आज श्रीराधाने दुग्धपान नहीं किया । महामते ! इसीलिये अबतक उनके नेत्रोंमें नींद नहीं आयी है; और भीष्मनन्दिनि ! यही कारण है कि मैं भी नहीं सो सका हूँ ॥ २५-२७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! पतिदेवताकी यह उत्तम बात सुनकर रुक्मिणी अपनी सौतोंके साथ दूध लेकर बड़े आदरसे श्रीराधाके समीप गयीं । सोनेके कटोरेमें मिश्री मिलाया हुआ गरम दूध ढालकर भीष्मकनन्दिनीने बड़े प्रेमसे श्रीराधाको पिलाया । इस प्रकार विधिवत् पूजा करके उनके हाथमें पानका बीड़ा दिया और सत्यभामा आदि सपत्नियोंके साथ अपने शिविरमें लौट आयीं ॥२८-३०॥

श्रीकृष्णके समीप आकर शुभस्वरूपा श्रीरुक्मिणी अपने द्वारा की गयी दूध पहुँचाने और पिलानेकी सेवाका वर्णन करते हुए साक्षात् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी सेवामें लग गयीं । अपने कोमल कर-पल्लवोंसे निरन्तर श्रीचरणोंका लालन करती हुई रुक्मिणी श्रीकृष्णके पाद-तलमें नये छाले देख आश्चर्यसे चकित हो उठीं । उन्होंने पूछा—'प्रभो ! आपके चरण-तलोंमें छाले कैसे उभड़ आये हैं ? भगवन् ! ये आज ही उभड़े हैं । मैं नहीं जानती कि इसका कारण क्या है ।' तब श्रीहरिने श्रीराधाकी भक्तिको प्रकाशित करनेके लिये सोलह हजार रानियोंके सामने स्वयं रुक्मिणीसे कहा ॥ ३१-३४ ॥

श्रीभगवान् बोले—श्रीराधिकाके हृदयारविन्दमें मेरा चरणारविन्द सदा विराजमान रहता है; उनके प्रेमपाशमें बँधकर वह निरन्तर वहीं रहता है, कभी निमेषमात्रके लिये भी अलग नहीं होता । आज तुमलोगोंने उन्हें कुछ अधिक गरम दूध पिला दिया है । वह दूध मेरे पैरोंपर पड़ा और उनमें छाले पड़ गये । तुम सबने उन्हें थोड़ा गरम दूध नहीं दिया, अधिक गरम दूध दे दिया ॥३५-३६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! श्रीकृष्णकी बात सुनकर रुक्मिणी आदि सुन्दरियाँ बड़े प्रेमसे उनके पैर सहलाने लगीं और उन्हें सब ओरसे बड़ा विस्मय हुआ । वे परस्पर कहने लगीं—'मधुसूदन माधवमें श्रीराधाकी प्रीति बहुत ही उच्च कोटिकी है । उनकी समानता करनेवाली कोई स्त्री नहीं है । ये श्रीराधा इस भूतलपर अद्वितीय नारी हैं' ॥ ३७-३८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें सिद्धाश्रममें श्रीराधाकृष्ण-समागमके प्रसङ्गमें 'श्रीराधाके प्रेमका प्रकाश' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

सिद्धाश्रममें व्रजाङ्गनाओं तथा सोलह सहस्र रानियोंके साथ श्यामसुन्दरकी रासक्रीड़ाका वर्णन तथा श्रीराधाके मुखसे वृन्दावनके रासकी उत्कृष्टताका प्रतिपादन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीराधा और गोपीगणोंका उत्कृष्ट प्रेम जानकर रुक्मिणी आदि राजकुमारियोंने रासक्रीड़ा देखनेके लिये उत्सुक हो श्रीहरिसे कहा ॥ १ ॥

पटरानियाँ बोलीं—श्यामसुन्दर ! तुममें प्रेम-लक्षणा-भक्ति रखनेवाली गोपसुन्दरियाँ धन्य हैं, जो रास-रङ्गमें सम्मिलित हुई थीं। इन सबके तपका क्या वर्णन हो सकता है। माधव ! प्रभो ! यदि तुम हमारी प्रार्थना स्वीकार करो तो, वृन्दावनमें तुमने जिस विधिसे रास रचाया था, उस विधिको हम देखना चाहती हैं। तुम यहीं हो, श्रीराधा यहीं विराज रही हैं, सम्पूर्ण गोपसुन्दरियाँ एवं व्रजाङ्गनाएँ भी यहीं हैं और हम सब भी यहीं हैं; अतः देवेश्वर ! यहाँ रासका आयोजन सर्वथा उचित होगा। जगन्नाथ ! तुम हमारे इस मनोरथको पूर्ण करो। मनोहर ! प्राणवल्लभ ! हमने दूसरा कोई मनोरथ नहीं प्रकट किया है, केवल रासक्रीड़ाका दर्शन कराओ। रानियोंकी यह बात सुनकर भगवान् हँसने लगे। उन्होंने प्रेमपूरित होकर उन सबको अपने वचनोंद्वारा मोहित-सी करते हुए कहा ॥ २—६ ॥

श्रीभगवान् बोले—अङ्गनाओ ! रासेश्वरी श्रीराधाके मनमें भी रासक्रीड़ाकी इच्छा हो तो यहाँ रास हो सकता है। अतः तुम्हीं सब जाकर उनसे पूछो। श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर रुक्मिणी आदि राजकुमारियोंने श्रीराधाके पास जाकर हँसते हुए मुखसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा ॥ ७-८ ॥

श्रीरानियाँ बोलीं—रम्भोरु ! चन्द्रवदने ! व्रजसुन्दरियोंकी स्वामिनि ! रासेश्वरि ! प्रियतमे ! सखि ! शीलरूपिणि ! रासमें कीर्तिरानीके कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाली शुभाङ्गि ! हम सब तुम्हारी सखियाँ तुमसे एक बात पूछने आयी हैं। रासमें रस-प्रदान करनेवाले रासेश्वर यहीं हैं तथा रासकी अधीश्वरी तुम भी यहीं हो और अन्य समस्त गोपसुन्दरियाँ भी यहीं हैं। इसी प्रकार हम सब भी यहीं हैं; अतः सब प्रकारसे रसका आस्वादन करनेके लिये तुम यहाँ रासका आयोजन करो। प्रियतमे ! ऐसा हो तो यह हमारे लिये अत्यन्त प्रिय होगा ॥ ९-१० ॥

श्रीराधाने कहा—सत्पुरुषोंपर कृपा करनेवाले परम रासेश्वर श्यामसुन्दरके मनमें यदि रासक्रीड़ाकी अभिलाषा हो तो यहाँ रास हो सकता है। अतः मेरी प्रियतमा सखियो ! तुम सब परम सेवा-शुश्रूषा और पराभक्तिसे उनकी पूजा करके उन्हें वशमें करो ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! श्रीराधाकी बात सुनकर रानियोंने श्रीकृष्णकी कही हुई बात बतायी। तब महामना श्रीराधा 'तथास्तु' कहकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। फिर वैशाख मासकी पूर्णिमाको उस शुभ एवं पुण्यतीर्थ सिद्धाश्रममें जब रात्रिका प्रथम प्रहर प्राप्त हुआ और चन्द्रमाकी चाँदनी सब ओर फैल गयी, तब रासक्रीड़ाका आरम्भ हुआ। रासेश्वरके रासका आनन्द प्राप्त करनेके लिये रासेश्वरी श्रीराधा तैयार हो गयीं और उनके साथ रसिक-शेखर श्यामसुन्दर रासस्थलीमें उसी तरह सुशोभित हुए, जैसे रतिके साथ रतिपति मदन। जितनी सम्पूर्ण गोपसुन्दरियाँ और जितनी राजकन्याएँ वहाँ उपस्थित थीं, उतने ही रूप धारण करके दो-दो सुन्दरियोंके बीचमें एक-एक श्रीकृष्ण शोभा पाने लगे। ताल, वेणु और मृदङ्गोंकी ध्वनिके साथ मधुर कण्ठवाली सखियोंके गीत और उनके नूपुर-काञ्ची आदि आभूषणोंकी मधुर झनकारका मिला हुआ महान् शब्द वहाँ सब ओर गूँज उठा ॥ १२—१६ ॥

राजन् ! करोड़ों कामदेवोंके लावण्यको लज्जित करनेवाले, वनमालाधारी, कुण्डलमण्डित एवं किरीट, वलय और भुजबंदोंसे अलंकृत पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर रासेश्वर रासमें स्वयं रासेश्वरीके साथ गीत गाने लगे। विदेहराज ! जैसे तारागणोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा शोभा पाता है, उसी प्रकार रासेश्वर श्रीकृष्ण उन सुन्दरियोंके साथ सुशोभित हो रहे थे। मिथिलेश्वर ! इस प्रकार वह महानन्दमयी सम्पूर्ण शुभ निशा रासमण्डलमें एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी। श्रीरासमण्डलकी शोभा देख रुक्मिणी आदि समस्त पटरानियाँ परमानन्दको प्राप्त हुईं। उन सबका मनोरथ पूर्ण हो गया। रासकी समाप्ति होनेपर रुक्मिणी आदि रानियोंने प्रेमपरवश होकर साक्षात् परिपूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे कहा ॥ १७—२१ ॥

रानियाँ बोलीं—प्रभो ! मनोहर रास-रङ्गमें आपकी रूप-माधुरी देखकर हमारा मन उसी प्रकार आत्मानन्दमें निमग्न हो गया, जैसे ज्ञानी मुनि ब्रह्मानन्दमें डूब जाते हैं । ऐसा रास दूसरा न हुआ होगा न होगा । माधव ! यहाँ गोपाङ्गनाओंके सौ यूथ विद्यमान हैं । सखियोंसहित हम सोलह हजार आपकी पत्नियाँ भी इसमें सम्मिलित रही हैं । करोड़ों सखियोंके साथ आठों पटरानियाँ भी यहाँ उपस्थित हैं । माधवेश्वर ! ऐसा रास तो वृन्दावनमें भी नहीं हुआ होगा ॥ २३-२४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार अभिमान प्रकट करनेवाली रानियोंकी बात सुनकर श्यामसुन्दर श्रीहरि हँसने लगे और बोले—'यहाँका रास सर्वोत्कृष्ट है या वृन्दावनका, यह तुम श्रीराधासे ही पूछो' ॥ २५ ॥

तब सत्यभामा आदि सब रानियोंने मनोहारिणी श्रीराधासे इसके विषयमें पूछा । श्रीराधा मन-ही-मन कुछ हँसती हुई यह उत्तम बात बोलीं ॥ २६ ॥

श्रीराधाने कहा—सखियो ! बहुत-सी सुन्दरियोंसे भरा हुआ यहाँका रास भी बहुत अच्छा रहा है; परंतु पहले-पहल वृन्दावनमें जो रास हुआ था, उसके समान यह कदापि नहीं था । वहाँ दिव्य वृक्षों और लताओंसे व्याप्त, प्रेमके भारसे झुकी हुई लता-वल्लरियोंसे विलसित और मधुमत्त मधुपोंसे सुशोभित वृन्दावन कहाँ है ? पुष्प-समूहोंको बहाती हुई फूलोंके छापसे अलंकृत श्यामपटकी भाँति शोभा पानेवाली हंसों और पद्मवनोंसे व्याप्त यमुना नदी यहाँ कहाँ उपलब्ध है ? फूलोंके भारसे झुकी हुई माधवी लताएँ यहाँ कहाँ दिखायी देती हैं ? प्रेमपरवश पक्षी कहाँ मधुरस्वरोंमें गान कर रहे हैं ? चञ्चल भ्रमर-पुञ्जोंसे युक्त कुञ्ज और दिव्य-मन्दिरोंसे मण्डित निकुञ्ज यहाँ कहाँ सुलभ हैं ! कमलोंके परागको लेकर शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु यहाँ कहाँ बह रही है ? ऊँचे-ऊँचे मनोहर शिखरोंसे सुशोभित, सर्वत्र फल-फूलोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर कन्दराओंसे अलंकृत महाकाय गजराजकी भाँति शोभा पानेवाला गिरिराज गोवर्धन यहाँ कहाँ दृष्टिगोचर होता है ? जहाँ वायुने कोमल बालुका संचय कर रक्खा है, यमुनाके उस रमणीय पुलिनपर वंशी और बेंतकी छड़ी धारण किये, मल्ल अथवा नटवरके वेषमें विराजित श्यामसुन्दरकी झाँकी यहाँ कहाँ मिल रही है ? इस स्थानपर श्रीकृष्णके लिये वनमालासे विभूषित शृङ्गार कहाँ उपलब्ध है ? श्यामसुन्दरकी काली, घुँघराली और सुगन्धयुक्त अलकावलियोंका दर्शन यहाँ कहाँ होता है ? श्रीकृष्णके स्निग्ध कपोलोंसे मनोहर मुखपर दोनों ओर कुण्डलोंका हिलना डुलना कहाँ दीखता है ? उनके मुखपर पत्र-रचना कहाँ की गयी है ? कहाँ सुगन्धके लोभसे भ्रमरावलियाँ टूटी पड़ती हैं ? कहाँ वह प्रेमपूर्ण निरीक्षण, स्पर्श और हर्षोल्लास यहाँ सुलभ हुआ है ? कामदेवके तीखे बाणोंको तिरस्कृत करनेवाले नेत्रकोणोंसे निहारनेपर जो कटाक्षपातजनित रस प्रकट होता है, वह यहाँ कहाँ प्राप्त हुआ है ? दोनों हाथोंसे एक-दूसरेको पकड़कर खींचना, हाथसे हाथ छुड़ाना, निकुञ्जमें छिपना, सामने होनेपर भी दिखायी न देना आदि लीलाएँ यहाँ कहाँ दिखायी देती हैं ? यहाँ चीर उठा लेना अथवा वंशी और बेंतको चुरा लेना कहाँ सम्भव हुआ है ? प्रेमसे दोनों भुजाओंद्वारा परस्पर खींचकर हृदयसे लगाना, बार-बार एक-दूसरेको पकड़ना, श्यामसुन्दरकी बाँहोंपर चन्दनका लेप लगाना आदि बातें यहाँ कहाँ सम्भव हुई हैं ? जहाँ-जहाँकी जो लीला है, वहीं वहीं वह शोभा पाती है । जहाँ वृन्दावन नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिल सकता ॥ २७—४० ॥

नारदजी कहते हैं—श्रीराधाकी यह बात सुनकर सारी पटरानियोंने अपने रास-सम्बन्धी अभिमानको त्याग दिया । वे हर्षित और विस्मित हो गयीं । इस प्रकार राधिकावल्लभ श्रीकृष्ण सिद्धाश्रममें रासक्रीड़ा सम्पन्न करके, समस्त गोपियोंको साथ ले, श्रीराधा और अपनी रानियोंसहित द्वारकामें प्रविष्ट हुए । उन्होंने श्रीराधाके लिये बहुत-से सुन्दर मन्दिर बनवाये । उन समस्त व्रजाङ्गनाओंके रहनेके लिये भी सुखपूर्वक व्यवस्था की ॥ ४१—४३½ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार मैंने सिद्धाश्रमकी कथा तुम्हें सुनायी है, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाली, पुण्यमयी तथा सबको मोक्ष देनेवाली है ॥ ४४-४५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें सिद्धाश्रम-माहात्म्यके प्रसङ्गमें 'रासोत्सव' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

लीला-सरोवर, हरिमन्दिर, ज्ञानतीर्थ, कृष्ण-कुण्ड, बलभद्र-सरोवर, दानतीर्थ, गणपतितीर्थ और मायातीर्थ आदिका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! द्वारावती-मण्डल सौ योजन विस्तृत है। उसकी पूरी परिक्रमा चार सौ योजनोंकी है। उसके बीचमें श्रीकृष्णनिर्मित दुर्ग बारह योजन विस्तृत है। दूसरा बाहरी दुर्ग नब्बे कोसोंमें महात्मा श्रीकृष्णद्वारा निर्मित हुआ है, जो शत्रुओंके लिये दुर्लङ्घ्य है। राजन्! तीसरा बाहरी दुर्ग दो कम दो सौ कोसोंमें संघटित हुआ है, जिसमें रत्नमय प्रासादोंका निर्माण हुआ था। इनके अन्तर्दुर्गमें भी महात्मा श्रीकृष्णके नौ लाख विचित्र मन्दिर हैं॥ १-४॥

वहाँ राधा-मन्दिरके द्वारपर 'लीला-सरोवर' है, जो समस्त तीर्थोंमें उत्तम माना गया है। राजन्! उसका गोलोकसे आगमन हुआ है। उसमें स्नान करके व्रत-धारणपूर्वक एकाग्रचित्त हो, अष्टमी तिथिको विधिवत् सुवर्णका दान दे तीर्थको नमस्कार करे तो पापी मनुष्य भी कोटिजन्मोंके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है- इसमें संशय नहीं है। प्राणान्त होनेपर उस मनुष्यको लेनेके लिये निश्चय ही गोलोकसे एक विशाल विमान आता है, जो सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी होता है। वह मनुष्य दस कामदेवोंके समान लावण्यशाली, रत्नमय कुण्डलोंसे मण्डित, वनमालाधारी, पीताम्बरसे आच्छादित, श्यामकान्तिमान्, सहस्रों सूर्योंके समान दीप्तिमान्, सहस्रों पार्षदोंसे सेवित दिव्यरूप धारण कर लेता है। उसके दोनों ओर चँवर डुलाये जाते हैं, जय-जयकार की जाती है, वेणुध्वनिके साथ दुन्दुभियोंका गम्भीर नाद होता रहता है। इस अवस्थामें वह उस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो गोलोकधाममें जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ५-१०॥

महामते राजन्! अब अन्य तीर्थोंका वर्णन सुनो! वहाँ सोलह हजार एक सौ आठ तीर्थ हैं और वहाँ श्रीकृष्णकी उतनी ही पत्नियोंके पृथक्-पृथक् भवन हैं। उन सबकी बारी-बारीसे परिक्रमा और वन्दना करके 'ज्ञानतीर्थ'में गोता लगाकर जो पारिजातका स्पर्श करता है, उसे तत्काल ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। उसके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्ण सदा प्रसन्नचित्त होकर वास करते हैं। समूची सिद्धियाँ और समृद्धियाँ स्वभावतः उसकी सेवामें उपस्थित रहती हैं। जो श्रीहरिके मन्दिरका दर्शन करता है, वह मुक्त और कृतार्थ हो जाता है। उसके समान दूसरा कोई वैष्णव नहीं है और उस तीर्थके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है॥ ११-१५॥

भगवान्के मन्दिरका विस्तार पाँच योजन है। वहाँसे सौ धनुषकी दूरीपर 'श्रीकृष्ण-कुण्ड' है, जो भगवान् श्रीकृष्णके तेजसे प्रकट हुआ है। उसी कुण्डमें स्नान करके जाम्बवती-नन्दन साम्ब कुष्ठरोगसे मुक्त हुए थे। उस कुण्डके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है॥ १६-१७॥

मैथिल! वहाँसे अठारह पदकी दूरीपर पूर्व दिशामें सब तीर्थोंमें उत्तम, पुण्यदायक और विशाल 'बलभद्र-सरोवर' है। महाबली बलदेवजीने पृथ्वीकी परिक्रमा करके जहाँ यज्ञ किया, वहीं उस सरोवरका निर्माण कराकर वे रेवती रानीके साथ विराजमान हुए। उसमें स्नान करके मनुष्य तत्काल समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाता है। पृथ्वीकी परिक्रमाका फल उसके लिये दुर्लभ नहीं रह जाता॥ १८-२०॥

राजन्! भगवान्के मन्दिरसे सहस्र धनुष आगे दक्षिण दिशामें गणनाथका महान् तीर्थ है। राजन्! अपने पुत्र प्रद्युम्नको जन्म देनेपर, जब वे दस दिन बीतनेके पहले ही अपहृत कर लिये गये, तब रुक्मिणीने जहाँ गणेश-पूजाका अनुष्ठान किया था, वहीं 'गणनाथ तीर्थ' है। नृपेश्वर! वहाँ स्नान करके जो स्वर्णका दान देता है, उसे पुत्रकी प्राप्ति होती है और उसका वंश बढ़ता है॥ २१-२३॥

राजन्! भगवान्के मन्दिरसे पश्चिम दिशामें दो सौ धनुषकी दूरीपर परम मङ्गलमय 'दानतीर्थ' है। वहाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रसन्नताके लिये जो प्रतिदिन दान करता है, वह उत्तम पुण्यका भागी होता है। विदेहराज! उस तीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य दो पल सोना, आठ पल चाँदी और सौ रेशमी पट्टाम्बर दान देता है तथा सहस्रों मोहर और

नवरत्नोंका दान करता है, उस श्रेष्ठ मानवको मिलनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो। सहस्र अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञ भी दानतीर्थके पुण्यकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। बदरिकाश्रम तीर्थकी यात्रासे मनुष्य जिस फलको पाता है, सूर्यके मेषराशिपर रहते समय सैन्धवारण्यकी यात्रा करनेपर जिस फलकी प्राप्ति होती है, सूर्यके वृषराशिमें रहते समय उत्पलावर्त्ततीर्थकी यात्रामें स्नान-दानका उन दोनों तीर्थोंकी अपेक्षा लाखगुना फल मिलता है—इसमें संशय नहीं है। परंतु विदेहराज! दानतीर्थमें उससे भी कोटिगुना फल प्राप्त होता है। जो दानतीर्थमें एक मासतक स्नान करता है, उसको जिस अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है, उसका ज्ञान चित्रगुप्तको भी नहीं है। उस तीर्थका माहात्म्य बतलानेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। सब दानोंमें अश्वदान उत्तम माना गया है, अश्वदानसे श्रेष्ठ गजदान और गजदानसे श्रेष्ठ रथदान है। राजन्! रथदानसे भी बढ़कर भूमिदान है, भूमिदानसे अधिक माहात्म्य अन्नदानका बताया जाता है। अन्नदानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है न होगा; क्योंकि देवताओं, ऋषियों, पितरों और भूतोंकी भी अन्नदानसे ही तृप्ति होती है। जो महामनस्वी मनुष्य दानतीर्थमें अन्नका दान करता है, वह तीनों ऋणोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परमधाममें जाता है। राजेन्द्र! मातृकुलकी दस, पितृकुलकी दस तथा पत्नीके कुलकी दस पीढ़ियोंका वह मनुष्य उद्धार कर देता है। दानतीर्थमें दान करनेवाले मानव देहत्यागके पश्चात् चतुर्भुज दिव्य रूप धारण करके, गरुडध्वज फहराते हुए, वनमाला और पीताम्बरसे अलंकृत हो भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं॥ २४–३८॥

राजन्! भगवान्‌के मन्दिरसे उत्तर दिशामें आधे कोसकी दूरीपर मनोहर 'मायातीर्थ' है, जहाँ चण्ड-मुण्डका विनाश करनेवाली दुर्गतिनाशिनी सिंहवाहिनी भद्रकाली दुर्गा नित्य विराजती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण स्यमन्तक मणि ले आनेके लिये जब ऋक्षराज जाम्बवान्‌की गुफामें गये थे, तब देवकीने अपने पुत्रकी मङ्गल-कामनाके लिये श्रेष्ठ फलोंद्वारा इन्हीं दुर्गादेवीका पूजन किया था। इसी पूजाके प्रभावसे उस बिलसे निकलकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिया जाम्बवती तथा मणिके साथ घर लौटे थे। वहाँ सुप्रसिद्ध 'मायातीर्थ' है, जो सेवकोंको उत्तम फल प्रदान करनेवाला है। जो मानव मायातीर्थमें स्नान करके मायादेवीका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है॥ ३९–४२॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रथम दुर्गके भीतर लीला-सरोवर, हरिमन्दिर, ज्ञानतीर्थ, कृष्ण-कुण्ड, बलभद्र-सरोवर, दानतीर्थ, गणपतितीर्थ और मायातीर्थके माहात्म्यका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

इन्द्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, सूर्यकुण्ड, नीललोहित-तीर्थ और सप्तसामुद्रक-तीर्थका माहात्म्य

श्रीनारदजी कहते हैं—विदेहराज! द्वितीय दुर्गके भी पूर्वद्वारपर परम पुण्यमय 'इन्द्रतीर्थ' है, जो अभीष्ट भोगोंका देनेवाला तथा सिद्धिदायक है। राजन्! उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य इन्द्रलोकको जाता है तथा इस लोकमें भी चन्द्रमाके समान उज्ज्वल वैभव प्राप्त कर लेता है॥१-२॥

इसी प्रकार दक्षिण द्वारपर 'सूर्यकुण्ड' नामक तीर्थ बताया जाता है, जहाँ सत्राजितने स्यमन्तककी पूजा की थी। नृपेश्वर! वहाँ स्नान करके जो मनुष्य पद्मराग मणिका दान करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी विमानके द्वारा सूर्यलोकको जाता है॥ ३ ४॥

इसी प्रकार पश्चिमद्वारपर 'ब्रह्मतीर्थ' नामक एक विशिष्ट तीर्थ है। राजन्! जो बुद्धिमान् मानव वहाँ स्नान करके सोनेके पात्रमें खीरका दान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। वह ब्रह्मघाती, पितृघाती, गोहत्यारा, मातृहत्यारा और आचार्यका वध करनेवाला पापी भी क्यों न हो, इन्द्रलोकमें पैर रखकर ब्रह्ममय शरीर धारण करके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल विमानद्वारा ब्रह्मधामको जाता है॥ ५–७॥

इसी प्रकार उत्तरद्वारपर भगवान् नीललोहितका क्षेत्र है, जहाँ साक्षात् नीललोहित महादेव विराजते हैं। विदेहराज! उस तीर्थमें समस्त देवता, मुनि, सप्तर्षि तथा सम्पूर्ण मरुद्गण

निवास करते हैं। उसी तीर्थमें प्रयत्नपूर्वक 'नीललोहित' नामक शिवलिङ्गकी पूजा करके लोकरावण रावणने अनुपम ऐश्वर्य प्राप्त किया था। नरेश्वर! कैलासकी यात्रा करनेपर मनुष्य जिस फलको पाता है, उससे सौगुना पुण्य भगवान् नीललोहितके दर्शनसे होता है। जो मनुष्य 'नीललोहित-कुण्ड'में तीन दिनोंतक स्नान करता है, वह सहस्रों पापोंसे युक्त होनेपर भी शिवलोकमें जाता है ॥ ८–१२ ॥

जहाँ 'सप्त-सामुद्रक' अथवा 'सप्त-सागर' तीर्थ सुशोभित है, वहाँ उस तीर्थमें स्नान करके पापी मनुष्य पाप समूहोंसे छुटकारा पा जाता है तथा सात समुद्रोंमें स्नान करनेका पुण्य वह तत्काल प्राप्त कर लेता है। मनुजेश्वर! उस तीर्थके आस-पास भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, पर्जन्य, कुबेर, सोम, पृथ्वी, अग्नि और जलके स्वामी वरुण—सदा निवास करते हैं। नरेश्वर! ब्रह्माण्डमें जो कोई सात करोड़ तीर्थ हैं, वे सब उस 'सप्तसामुद्रक-तीर्थ'में वास करते हैं। उसमें स्नान करनेके पश्चात् जो मनुष्य उस सम्पूर्ण तीर्थकी परिक्रमा करता है, वह द्वारका-यात्राका सारा फल पा लेता है। 'सप्तसामुद्रक-तीर्थ'की यात्रा किये बिना द्वारका-यात्रा फलवती नहीं होती। देवताओंने 'सप्तसामुद्रक-तीर्थ'को भगवान् विष्णुका स्वरूप माना है ॥ १३–१८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्वितीय दुर्गके भीतर इन्द्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, सूर्यकुण्ड, नीललोहिततीर्थ तथा सप्तसामुद्रक-तीर्थके माहात्म्यका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

तृतीय दुर्गके द्वार-देवताओंके दर्शन और पूजनकी महिमा तथा पिण्डारक-तीर्थका माहात्म्य

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तृतीय दुर्गके पूर्वद्वार-पर अञ्जनीनन्दन महाबली हनुमान्‌जी अहर्निश पहरा देते हैं। जो मनुष्य वहाँ महाबली भगवद्भक्त हनुमान्‌जीका दर्शन कर लेता है, वह हनुमान्‌जीकी ही भाँति महान् भगवद्-भक्त होता है ॥ १-२ ॥

इसी प्रकार दक्षिणद्वारकी सुदर्शनचक्र दिन-रात रक्षा करता है। राजन्! उस सुदर्शनका चित्त सदा श्रीकृष्णमें ही लगा रहता है। उसके दर्शनमात्रसे मानव श्रीहरिका उत्तम भक्त होता है। सुदर्शनचक्र उस भक्तकी भी सदा रक्षा किया करता है ॥ ३-४ ॥

इसी तरह पश्चिमद्वारकी बलवान् ऋक्षराज जाम्बवान् रक्षा करते हैं। राजन्! वे निरन्तर भगवद्भजनमें लगे रहते हैं। उन महाबली भगवद्भक्त जाम्बवान्‌का दर्शन करके मनुष्य इस लोकमें चिरंजीवी तथा श्रीहरिका भक्त होता है। इसी प्रकार महाबली विष्वक्सेन उत्तरद्वारकी अहर्निश रक्षा करते हैं। राजन्! वे श्रीकृष्णके विशाल हृदय हैं। राजन्! उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥ ५–७½ ॥

दुर्गसे बाहर 'पिण्डारक-तीर्थ' है, उसकी महिमा सुनो। राजशिरोमणे! पिण्डारक तीर्थका माहात्म्य ध्यान देकर सुनो, जिसके स्मरणमात्रसे मनुष्य बड़े बड़े पापोंसे छुटकारा पा जाता है। रैवतक पर्वत और समुद्रके बीचमें पिण्डारक क्षेत्र है, जो तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ और अर्थ-सिद्धिका द्वाररूप है। विदेहराज! उसी तीर्थमें महाबली यदुराजने परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर यज्ञोंके राजा राजसूयका अनुष्ठान किया था। राजन्! राजा उग्रसेनके उस उत्तम यज्ञमें समस्त तीर्थोंका आवाहन किया गया था और वे तीर्थ सब ओरसे आकर उसमें निवास करने लगे। सम्पूर्ण तीर्थोंके पिण्डीभूत होनेसे उस तीर्थका नाम 'पिण्डारक' हुआ। उसमें स्नान करके मनुष्य तत्काल राजसूय यज्ञका फल पा लेता है। वहीं तीन दिनतक स्नान करके व्रतका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो जो ब्राह्मणोंको स्वर्णदान देकर उनके चरणोंमें प्रणत होता है, वह महात्मा यहीं नरदेव होता है—

इसमें संशय नहीं है। वह प्रतिदिन बन्दीजनोंके द्वारा अपना यशोगान सुनता है, स्वर्ण, रत्न और उत्तम वस्त्र आदिसे सम्पन्न होता है। चन्द्रमुखी ललनाओंके समुदाय उसकी सेवामें रहते हैं। वह नित्य हृष्ट-पुष्ट और महाबलवान् होता है। उसके दरवाजेपर दिन-रात घन गर्जनके समान दुन्दुभियाँ बजती रहती हैं। वह देखता है कि उसके बाहरी एवं भीतरी आँगनमें गजराज चिग्घाड़ते और घोड़े हिनहिनाते रहते हैं तथा नरेशोंकी भीड़ लगी रहती है और उसके रत्नमय महलोंपर अनेकानेक ध्वज फहराते रहते हैं। मतवाले हाथियोंके कानोंसे प्रताड़ित भ्रमरमण्डली उसके सामन्त-नरेशोंद्वारा मण्डित द्वारकी शोभा बढ़ाती है। पिण्डारक-तीर्थमें स्नान किये बिना इस लोकमें किसीको राज्य कैसे प्राप्त हो सकता है और पापात्मा मनुष्य भी उस तीर्थमें स्नान किये बिना जीवनके अन्तमें मोक्ष कैसे पा सकता है? पिण्डारक तीर्थमें स्नान किये बिना किसीको शर्म (कल्याण) की प्राप्ति नहीं होती। पिण्डारक तीर्थमें स्नान किये बिना कर्म, धर्म और वर्म (रक्षाकवच) नहीं प्राप्त हो सकते। पिण्डारक तीर्थमें स्नान किये बिना मनुष्य वियोगका दुःख झेलता है। उसमें स्नान करनेवाला मानव उस दुःखसे दूर रहता अथवा विशिष्ट योगी होता है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला पुण्यात्मा मनुष्य उत्तम भोगोंसे सम्पन्न होता है। रोग उसे छू नहीं सकते ॥ ८-२२ ॥

विदेहराज! जो वैशाख मासमें द्वारावतीकी परिक्रमा करके उसको नमस्कार करता है, उसके हाथमें इस लोक और परलोककी सारी सिद्धियाँ आ जाती हैं। जो चैत्रकी पौर्णमासीसे लेकर वैशाखकी पौर्णमासीतक द्वारकाकी यात्रा करता है और प्रतिदिन तीर्थ स्नान, भूमिशयन, शौचाचार, मौनव्रत एवं नवान्न-भोजनके नियममें रहता है, उसको मिलनेवाले पुण्यकी संख्या बतानेमें वेदमय चतुर्मुख ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। जो कदाचित् वर्षाकी धाराओंको गिन ले, वह भी श्रीकृष्णपुरीकी यात्रामें होनेवाले पुण्यकी परिगणना नहीं कर सकता। जैसे तिथियोंमें एकादशी, सर्पोंमें नागराज शेष, पक्षियोंमें गरुड, इतिहास पुराणोंमें महाभारत और जैसे देवताओंमें देवाधिदेव यदुदेवदेव वासुदेव सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण पुरियों और क्षेत्रोंमें पुण्यवती द्वारावती प्रशस्त है। अहो! भूतलपर वैकुण्ठलीलाकी अधिकारिणी मनोहरा कुशस्थली (द्वारका) पुरी यदुमण्डलमें उसी प्रकार सुशोभित होती है, जैसे विद्युन्मालाओंसे आकाशमें मेघमालाकी शोभा होती है। यह पुरी धन्य है, जिस पुरीमें साक्षात् परम पुरुष परमेश्वर चतुर्व्यूहरूप धारण करके विराज रहे हैं। जिन्होंने उग्रसेनको राजाधिराजका पद दे रक्खा है, उन श्रीकृष्ण हरिको बारंबार नमस्कार है। विदेहराज! जब भगवान् अपने परमधामको पधारेंगे, उस समय उस दिव्य पुरीको समुद्र डुबा देगा। केवल श्रीहरिका दिव्य मन्दिर अवशिष्ट रहेगा, उसीमें भगवान् सदा निवास करेंगे। कलियुगमें वहाँ रहनेवाले लोग प्रतिदिन और निरन्तर सागरकी जलध्वनिमें श्रीकृष्णकी कही हुई यह बात सुना करते हैं—'ब्राह्मण विद्वान् हो या अविद्वान्—वह मेरा ही शरीर है।' जो ब्राह्मण होकर समुद्रके तटसे अगाध जलमें जाकर वहाँसे परमेश्वरकी प्रतिमा लायेगा और उसकी स्थापना करके विशाल मन्दिर बनायेगा, वह साक्षात् सूर्य है। नरदेव! कलियुगमें जो भक्तजन श्रीद्वारकानाथके स्वरूपका दर्शन करते हैं, वे योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ विष्णुपदको प्राप्त कर लेते हैं। राजन्! यह मैंने श्रीकृष्णपुरीके माहात्म्यका तुमसे वर्णन किया है। जो भक्तिभावसे इसे सुनता और सुनाता है, वह द्वारकापुरीमें निवासका फल पाता है ॥ २३—३४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें तृतीय दुर्गके भीतर 'पिण्डारक-तीर्थका माहात्म्य' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

सुदामा ब्राह्मणका उपाख्यान

नारदजी कहते हैं—सुदामा नामक श्रीकृष्णके एक ब्राह्मण सखा थे। वे अपनी पत्नी सत्याके साथ अपने नगरमें रहते थे। सुदामा वेद-वेदाङ्गके पारंगत थे, परंतु धनहीन थे और थे वैराग्यवान्। वे अपनी अनुकूल पत्नीके साथ

अयाचित वृत्तिके द्वारा जीवन-निर्वाह करते। सुदामाने एक दिन दरिद्रतासे उत्पीड़ित दुःखिनी अपनी पत्नीसे कहा—'पतिव्रते ! द्वारकाधीश श्रीकृष्ण मेरे मित्र हैं, सांदीपनि गुरुके घरमें मैंने उनके साथ विद्याध्ययन किया है; परंतु श्रीकृष्णके भोज, वृष्णि और अन्धकोंके अधीश्वर होनेके बाद मेरा उनसे मिलना नहीं हुआ। वे त्रिलोकीके नाथ भगवान् दुःखहारी और दीनवत्सल हैं' ॥ १—४½ ॥

पतिके वचन सुनकर पतिव्रता सत्याने, जिसका कण्ठ सूख रहा था, जो फटे-पुराने कपड़े पहने हुए थी, भूखसे अत्यन्त पीड़ित थी, पतिदेवसे कहा—'ब्रह्मन् ! जब साक्षात् श्रीपति हरि आपके सखा हैं, तब हमलोग फटे चिथड़े पहने और भूखे क्यों रहें ? लोग द्वारका जाकर साक्षात् कमलापतिके दर्शन करते हैं और धनवान् होकर घर लौटते हैं; अतएव आप भी वहाँ जाइये' ॥ ५—७ ॥

सुदामाने कहा—मैं भक्तको सिखाया करता हूँ और आज तुम मुझीको सिखा रही हो ? प्रिये ! तुम एक विद्वान् ब्राह्मणको माँगकर धन प्राप्त करनेका उपदेश दे रही हो ?॥ ८ ॥

सत्याने कहा—आपके सखा साक्षात् लक्ष्मीपति हैं और यहाँसे बहुत दूर भी नहीं हैं; अतएव आप उनके पास जाइये। वे आपके दुःख-दारिद्र्यका नाश कर देंगे। दुःख-दरिद्रता भोगते भोगते हमारी उम्र बीत चली। स्वामिन् ! ऐसे कृपानिधि दाताकी मित्रताका क्या यही फल है ? ॥ ९-१० ॥

सुदामाने कहा—विधाताने जो भाग्यमें लिख दिया है, वह होगा ही। भद्रे ! जाने-आनेसे क्या होता है ? घरमें रहकर श्रीहरिका ध्यान करना ठीक है। जिनके दरवाजेमें राजा, देवता, गन्धर्व और किंनर भी बिना आज्ञाके प्रवेश नहीं कर सकते, वहाँ मुझ-सरीखे दीनको कौन पूछेगा ? ॥ ११-१२ ॥

सत्या बोली—यह सत्य है कि उनकी आज्ञाके बिना देवता, गन्धर्व और किंनर अंदर नहीं जा सकते; परंतु साक्षात् हरि तो अन्तर्यामी हैं, वे अपना दूत भेजकर आपको अंदर बुला लेंगे ॥ १३ ॥

ब्राह्मणने कहा—भामिनि ! मेरी बात सुनो। श्रीकृष्ण अवश्य ही ऐसे दयालु हैं, परंतु विपत्तिके समय धनवान् मित्रके घर जाना उचित नहीं है। विशेषतः बहुत दिनोंके बाद उन अन्तरङ्ग प्रेमास्पदको देखकर मैं उनसे क्या याचना करूँगा ? लोभसे रहित होनेपर ही प्रेम हुआ करता है, माँगनेपर प्रेम नहीं रहा करता * ॥ १४-१५ ॥

सत्या बोली—आप दुःख-दारिद्र्यका नाश करनेवाले श्रीकृष्णके दर्शन करें, माँगना नहीं होगा। वे अपने आप ही प्रचुर सम्पत्ति दे देंगे ॥ १५½ ॥

सुदामाने पत्नीके द्वारा बहुत तरहसे समझाये-बुझाये जानेपर यह विचार किया—'इस निमित्तसे मित्रके दर्शनका परम लाभ तो हो ही जायगा, परंतु मैं उनको उपहार क्या दूँगा ? दरिद्रताके कारण कुछ देनेको है नहीं, इसीसे लज्जित हो रहा हूँ' ॥ १६-१७ ॥

पतिके मुखसे यह बात सुनकर सती ब्राह्मणी दूसरे घरसे चार मुट्ठी तन्दुल (चिउड़ा) माँग लायी और एक पुराने चिथड़ेमें बाँधकर उन्हें पतिको दे दिया। तदनन्तर सुदामाजी मैले कपड़ेसे अपने मैले-कुचैले दुर्बल शरीरको ढककर उन चिउड़ोंको लेकर मन-ही-मन ब्रह्मण्यदेवका स्मरण करते हुए धीरे-धीरे श्रीकृष्णके नगरकी ओर चल दिये ॥ १८—२० ॥

ब्राह्मणने नौकासे समुद्र पार करके स्वर्णमय विचित्र द्वारकापुरीके दर्शन किये। उस पुरीमें पताकाएँ फहरा रही थीं। कतार-की-कतार सभा-भवन और भाँति-भाँतिके दुर्ग सुशोभित थे। बलवान् यादव-वीर उसकी रक्षा कर रहे थे। उसमें चार सड़कें थीं। ब्राह्मणने श्रीकृष्णकी पुरीको देखकर लोगोंसे पूछा—'श्रीकृष्णका भवन कौन सा है, यह बताइये।' इस बातको सुनकर माधवकी द्वारका-पुरीके रक्षकोंने कहा—'सभी भवनोंमें श्रीकृष्ण हैं।' यह सुनकर ब्राह्मण किसी एक भवनमें घुस गये और अंदर जाकर देखा कि पलंगपर श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उन्हें देखकर सुदामाको ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति हुई। माधवने सखा सुदामाको आया देखकर सहसा उठकर उन्हें अपने

---

* विपत्तिकाले मित्रस्य न गच्छेद् गृहमुत्तमम् ॥
कथं नु याचनां कुर्वे चिराद् दृष्ट्वा सखं प्रियम्।
निर्लोभात्तु भवेत् प्रीतिर्याचनात्तु गमिष्यति ॥
(गर्ग०, द्वारका० २२। १४-१५)

बाहुपाशमें बाँधकर हृदयसे लगा लिया और वे आनन्दके आँसू बहाने लगे। तदनन्तर स्वर्ण पात्रोंमें भरे जलके द्वारा उनके दोनों चरणोंका प्रक्षालन किया और उस जलको अपने मस्तकपर धारण करके ब्राह्मणको अपने पलंगपर बैठा लिया। फिर गन्ध, चन्दन, अगुरु, कुङ्कुम, धूप, दीप, मधुपर्क और पक्वान्नके द्वारा उनकी पूजा की। पश्चात् पानका बीड़ा देकर गोदान किया और मलिन-वस्त्रधारी दुबले-पतले, पके बालोंवाले ब्राह्मणसे पधारनेका कारण पूछा। मित्रविन्दाजी मुस्कुराती हुई पंखेके द्वारा सुदामाजीकी सेवा करने लगीं। श्रीकृष्णकी पटरानियाँ सब विस्मित होकर हँसने लगीं और ब्राह्मणको इस प्रकार पूजित देखकर परस्पर कहने लगीं—'इन भिखारीने कौन-सी तपस्या की है, जिससे स्वयं त्रैलोक्यनाथ बड़े भाईकी तरह इनका सत्कार कर रहे हैं।' इसी बीच दोनों मित्र आपसमें हाथ पकड़े हुए पुरानी गुरुके घरकी बातें करने लगे॥ २१—३१॥

श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मन्! सुनो। हम दोनोंने वहाँ सारी विद्याओंका अध्ययन साथ-साथ किया है, परंतु गुरु-दक्षिणा देनेके बाद तुमसे मिलना नहीं हुआ। मैं जरासंधके भयसे द्वारका चला आया। सखे! तुम कहाँ रहते हो, बताओ। तुम्हें याद होगा, एक दिन गुरुपत्नीकी आज्ञासे हम विद्यार्थीगण लकड़ी लानेके लिये भयंकर वनमें गये थे। वहाँ जानेपर वर्षा और तूफानके मारे भयानक विपत्तिमें पड़ गये। सूर्य अस्त हो गया, रात्रिका घोर अन्धकार छा गया। सब जगह जल-ही-जल हो रहा था, जमीन कहीं दिखायी नहीं देती थी। हम परस्पर हाथ पकड़े बिजलीके प्रकाशमें सब जगह इधर-उधर घूमते रहे। फिर सूर्योदय होनेपर महामना गुरु सांदीपनिजीने वनमें जाकर जलमें सर्दीसे ठिठुरते हुए हम छात्रोंको दर्शन दिया। गुरुजीकी आँखें आँसू बहा रही थीं। उन्होंने हम सबको जलसे निकालकर जमीनपर लाकर कहा—'मेरे बच्चो! तुम मेरी आज्ञाका पूरा पालन करनेवाले हो। प्राणियोंके लिये सबसे प्रिय आत्मा है। तुमने उसका भी अनादर करके मुझको प्रधानता दी, इसलिये मैं संतुष्ट होकर तुमलोगोंको दुर्लभ वर दे रहा हूँ। तुमलोगोंकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हों। वेद और पुराणादि शास्त्र तुम्हारे कण्ठस्थ हो जायँ।' मित्र! गुरुजीकी इसी कृपासे तभीसे हमलोग सुखोंसे परिपूर्ण हैं॥ ३२—४१॥

सुदामाजीने कहा—तुम देवदेव हो, सबके गुरु हो और कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हो। तुम श्रीपति हो। तुम्हारा गुरुकुलमें निवास करना अत्यन्त विडम्बना है॥४२॥

राजन्! ब्राह्मण सुदामाने परमात्मा श्रीकृष्णको वे चिउड़े नहीं दिये। वे मुँह नीचा किये बैठे रहे। सर्वात्मा भगवान् उनके आनेका कारण जान गये—'ये ब्राह्मण धनके इच्छुक नहीं हैं, मुक्तिके लिये ही मेरा भजन करते हैं। इनकी दुःखिनी पतिव्रता पत्नी ही धनकी अभिलाषा रखती है; पर इन अदाता दम्पतिको मैं धन दूँ कैसे?'—यों सोचते-सोचते श्रीहरिने जान लिया कि 'मेरे लिये ये कुछ चिउड़ा लाये हैं, पर लज्जाके मारे दे नहीं पा रहे हैं; अतएव मैं ही माँग लूँगा।' यों विचारकर श्रीकृष्णने कहा—'मित्र! घरसे मेरे लिये क्या उपहार लाये हो? प्रेमका दान अणुमात्र होनेपर भी महान् होता है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक मुझे पत्र पुष्प फल जल प्रदान करता है, भक्तके द्वारा दिये हुए उस पदार्थका मैं बड़े ही आदरके साथ भोग लगाता हूँ।' भगवान्‌ने यह कहकर अदाता उस सुदामा ब्राह्मणके चिथड़ेको पकड़कर 'यह क्या है'—यों कहते हुए स्वयं चिउड़ोंको ले लिया और बोले—'सखे! यह तो तुम मेरे लिये परम प्रीतिकर वस्तु लाये हो। ब्रह्मन्! इन तन्दुलोंसे मुझ विश्वरूप भगवान्‌की तृप्ति हो जायगी। मैं गोकुलमें ऐसे श्रेष्ठ चिउड़े खाया करता था, यशोदा दिया करती थी; परंतु उसके बाद आजतक मुझे ये देखनेको भी नहीं मिले'*॥ ४३—५२॥

इतना कहकर श्रीहरिने एक मुट्ठी चिउड़े चबाकर सारी पृथ्वीकी सम्पत्ति सुदामाको दे दी और दूसरी मुट्ठी खाकर ज्यों ही पातालकी सम्पत्ति देनेको तैयार हुए, वक्षःस्थलनिवासिनी लक्ष्मीदेवीने उसी क्षण हाथ पकड़कर कहा—'नाथ! बिना अपराध आप मेरा त्याग क्यों कर रहे हैं? श्रीकृष्ण! आपने जो कुछ दिया है, वही पर्याप्त है। उसीसे ये ब्राह्मण इन्द्रके समान हो जायँगे'॥५३-५४½॥

इधर ब्राह्मणको इस दानका कुछ पता नहीं लगा।

---

* एतत्त्वयोपनीतं मे सखे परमप्रीणनम्।
विश्वं मां तर्पयिष्यन्ति ब्रह्मन्नेते च तण्डुलाः॥
ईदृशा गोकुले भुक्ताः श्रेष्ठाः पृथुकतण्डुलाः।
मात्रा यशोदया दत्ताः पुनस्तान्नैव दृष्टवान्॥
(गर्ग०, द्वारका० २२। ५१-५२)

भगवान्की मायाने सारी सम्पत्तिको उनके घर पहुँचा दिया। सुदामाजीने एक रात वहाँ सुखपूर्वक रहकर, भोजन-पान आदि करके, दूसरे दिन श्रीकृष्णको नमस्कार करके घर जानेकी अनुमति माँगी। भगवान्ने अनुमति देकर वन्दन और आलिङ्गन किया। ब्राह्मण लज्जावश कुछ भी न माँगकर घर लौट चले और एक ब्राह्मणके प्रति श्रीकृष्णकी श्रद्धा देखकर मन-ही-मन सोचने लगे—'दरिद्र होनेपर भी श्रीकृष्णने मुझे अपनी दोनों भुजाओंमें भरकर मेरा आलिङ्गन किया। मेरे-सरीखे दरिद्र ब्राह्मणको पर्यङ्कपर बैठाकर भाईके समान आदर दिया। रुक्मिणी-सत्यभामाने व्यजनके द्वारा मेरी सेवा की। मैं निर्धन धन पाकर रमापति भगवान्को भूल न जाऊँ—इसीसे करुणावश उन्होंने मुझे धन नहीं दिया' ॥ ५५-६०½ ॥

वे इस प्रकार विचारते हुए पत्नीका स्मरण करते हुए सोचने लगे—"मैं घर जाकर कह दूँगा—'यह लो, कोटि-कोटि धनराशि ग्रहण करो। श्रीकृष्ण ब्रह्मण्यदेव हैं, दाता हैं, पर तुम्हारे लिये तो कृपण ही रहे। दूसरेके घरको रत्नोंसे भरा देखकर कोई कामना नहीं करनी चाहिये। ललाटमें जो कुछ विधिने लिखा है, उसमें अन्यथा नहीं होता।'' *मन-ही मन यों कहते हुए सुदामाजी अपनी पुरीमें आ पहुँचे। पुरीको देखकर वे चकित हो गये। बड़े-बड़े दरवाजे, ध्वजाओंसे सुशोभित सोनेके किले और महल खड़े हैं। विचित्र तोरण और कलशोंसे वह सुशोभित है। नगरी सज्जनोंसे भरी और उसमें इतने रत्न है कि दूसरी द्वारका-पुरीकी-सी ही शोभा हो रही है ॥ ६१-६६ ॥

ब्राह्मणने कहा—'यह क्या है ? यह किसका स्थान है ?' वे रास्ते चलते रहे। नगरके नर-नारियोंने उन्हें साथ ले चलना चाहा; पर वे गये नहीं। यह देखकर दास-दासियोंने अपनी स्वामिनी (सुदामाकी पत्नी) के पास जाकर सुदामाजीके आनेकी बात कही। उनको बड़ा आनन्द हुआ और वे साक्षात् लक्ष्मीरूपा ब्राह्मणी बड़े सम्मानके साथ पतिके स्वागतके लिये शिबिकापर सवार होकर दास-दासियोंके साथ घरसे निकलीं। सुदामा इधर-उधर घूम रहे थे। पत्नीने अपना मुख दिखाकर उन्हें विश्वास कराया। सुदामाजी स्वर्ण-रत्नादिसे विभूषित, प्रभा और रूपसे सम्पन्न, विमानवासिनी दूसरी लक्ष्मीकी तरह अपनी तरुणी भार्याको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने समझा—'यह सब श्रीकृष्णकी ही कृपा है' ॥ ६७—७१ ॥

भोजनकी सामग्री, रत्न, ऐश्वर्य, पर्यङ्क, व्यजन, आसन, चँदोवे, स्वर्णपात्र और तोरण आदिसे सुसज्जित अपनी पुरीमें सुदामाजीने पत्नीके साथ प्रवेश किया। उनका घर तो श्रीकृष्णके भवनके समान हो गया था। श्रीकृष्णकी कृपासे सुदामा भी तरुण हो गये, पर विषयोंसे सर्वथा अनासक्त रहकर वे बिना किसी हेतुके—अनायास प्राप्त हुई समृद्धिका उपभोग करने लगे। वे अपनी पत्नीके साथ ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके द्वारा उस सम्पत्तिको त्यागनेका विचार करके मन ही-मन सोचने लगे—'मेरे पास इतनी समृद्धि कहाँसे आयी ? यह देव-दुर्लभ सम्पत्ति ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णकी ही दी हुई है। इतनी सम्पत्ति देकर भी उन्होंने स्वयं मुझसे कुछ कहा भी नहीं। मेरे चिउड़ोंके दानोंको मुट्ठीमें लेकर बड़ी प्रीतिसे उन्होंने भोग लगाया। जन्म-जन्ममें मुझे उन्हींका सख्य और दास्य प्राप्त हो। मै उनके चरण-कमलोंका ध्यान करके संसार-सागरसे पार हो जाऊँगा' ॥ ७२-७७ ॥

सुदामाने मन-ही-मन इस प्रकारका निश्चय करके पत्नीके साथ श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें अपना मन लगा दिया और सारा धन ब्राह्मणोंको बाँटकर भगवान्के धाममें चले गये ॥ ७८ ॥

जो मनुष्य इस श्रीकृष्ण-चरितका श्रवण करता है, वह दरिद्रतासे मुक्त होकर उत्तम भगवद्भक्त हो जाता है ॥ ७९ ॥

नरेश्वर ! तुम्हारे सामने इस पुण्यमय द्वारकाखण्डका वर्णन किया गया। जो इस खण्डका सदा श्रवण करते हैं, उन्हें उत्तम कीर्ति, कुल, अतिशय भुक्ति-मुक्ति और राज्य प्राप्त होता है ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें द्वारकाखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'सुदामा ब्राह्मणके उपाख्यानका वर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

द्वारकाखण्ड सम्पूर्ण

* रत्नैः प्रपूरितान् गेहान् दृष्ट्वा वाञ्छां न कारयेत्। ललाटे लिखितं यद् यत्र तन्न्यूनं भविष्यति ॥ (गर्ग०, द्वारका० २२ । ६४)

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

विश्वजित्खण्ड

पहला अध्याय

राजा मरुत्तका उपाख्यान

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ १ ॥

सबके हृदयमें वास करनेवाले सर्वसाक्षी वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—चतुर्व्यूहस्वरूप आप भगवान्‌को नमस्कार है ॥ १ ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥

मैं अज्ञानरूपी रतौंधीके रोगसे अंधा हो रहा था। जिन्होंने ज्ञानाञ्जनकी शलाकासे मेरी दिव्य दृष्टि खोल दी है, उन श्रीगुरुदेवको मेरा नमस्कार है ॥ २ ॥

श्रीगर्गजीने कहा—मुने! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र मैंने तुमसे कह सुनाया, जो मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका देनेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३ ॥

शौनकने कहा—तपोधन! श्रीकृष्णके प्रिय भक्त तथा श्रीहरिमें प्रगाढ़ प्रीति रखनेवाले मैथिलराज बहुलाश्वने फिर देवर्षि नारदसे क्या पूछा, वही प्रसङ्ग मुझे सुनाइये ॥ ४ ॥

श्रीगर्गजी बोले—मुने! भगवान् श्रीकृष्णने (मरुत्त के अवतार) उग्रसेनको यादवोंका राजा बनाया, यह सुनकर मिथिलानरेश बहुलाश्वको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने नारदजीसे प्रश्न किया ॥ ५ ॥

बहुलाश्व बोले—देवर्षे! ये मरुत्त कौन थे? ये किस पुण्यसे भूतलपर यदुवंशियोंके राजा उग्रसेन हो गये? जिनके स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी सहायक हुए, उनकी महिमा अद्भुत है। देवर्षिशिरोमणे! उनकी महत्ता क्या थी? यह मुझे बताइये ॥ ६-७ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! सत्ययुगमें सूर्यवंशी राजा मरुत्त चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने विधिपूर्वक विश्वजित्-यज्ञका अनुष्ठान किया था। वे हिमालयके उत्तर भागमें बहुत बड़ी सामग्री एकत्र करके, मुनिश्रेष्ठ संवर्तको आचार्य बनाकर यज्ञके लिये दीक्षित हुए। उनके यज्ञमें पाँच योजन विस्तृत कुण्ड बना था। एक योजनका तो ब्रह्मकुण्ड था और दो दो कोसके पाँच कुण्ड और बने थे। कुण्डके गर्तका जो विस्तार था, तदनुसार वेदियोंसे दस मेखलाएँ बनी थीं। उस यज्ञमण्डपमें जो स्तम्भ बना था, उसकी ऊँचाई एक हजार हाथकी थी। वह महान् यज्ञस्तम्भ बड़ी शोभा पाता था। उसमें सोनेका यज्ञमण्डप बना था, जिसका विस्तार बीस योजन था। चँदोवों, वंदनवारों और कदलीखण्डोंसे वह यज्ञमण्डप मण्डित था। उस यज्ञमें ब्रह्मा रुद्र आदि देवता अपने गणोंके साथ पधारे थे। समस्त ऋषि मुनि स्वयं उस यज्ञमें आये थे। उस यज्ञमें दस लाख होता, दस लाख दीक्षित, पाँच लाख अध्वर्यु और उद्गाता अलग थे। वहाँ चारों वेदोंके विद्वान् ब्राह्मण बुलाये गये थे, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थतत्त्वके ज्ञाता थे। और भी करोड़ों ब्राह्मण उसमें पूजित हुए थे। उस यज्ञमें हाथीकी सूँड़के समान घीकी मोटी घृतधाराओंकी आहुति दी गयी थी, जिसको खाकर अग्निदेवको अजीर्णका रोग हो गया। मिथिलेश्वर! उस यज्ञके विषयमें ऐसा होना कोई विचित्र बात न जानो ॥ ८-१६ ॥

उस यज्ञमें विश्वेदेवगण सभासद् थे। वे जिन-जिनके लिये भाग देना आवश्यक बताते थे, उन-उनके लिये भागका परिवेषण (परोसनेका कार्य) स्वयं मरुद्गण करते थे। उस यज्ञके समय त्रिलोकीमें कोई भी ऐसे जीव नहीं थे, जो भूखे रह गये हों। सम्पूर्ण देवताओंको सोमरस पीते पीते अजीर्ण हो गया था। यजमान राजा मरुत्तने उस यज्ञमें आचार्य संवर्तको जम्बूद्वीपका राज्य दे दिया। इसके सिवा चौदह लाख हाथी, चौदह लाख भार सुवर्ण, सौ अरबी घोड़े तथा नौ करोड़ बहुमूल्य रत्न भी यज्ञान्तमें महात्मा आचार्यको दक्षिणाके रूपमें दिये। प्रत्येक ब्राह्मणको उन्होंने पाँच-

पाँच हजार घोड़े, सौ-सौ हाथी और सौ-सौ भार सुवर्ण प्रदान किया। जलपात्र और भोजनपात्र सब सुवर्णके बने हुए थे, जो अत्यन्त उद्दीप्त दिखायी देते थे। उनमें भोजन करके सब ब्राह्मण संतुष्ट होकर विदा हुए। ब्राह्मणोंके फेंके हुए उच्छिष्ट स्वर्णपात्रोंसे हिमालयके ... सौ योजनका सुवर्णमय पर्वत बन गया था, जो आज भी देखा जा सकता है॥ १७-२३॥

राजा मरुत्तका जैसा यज्ञ हुआ, वैसा दूसरे किसी राजाका कभी नहीं हुआ। राजेन्द्र! सुनो, त्रिलोकीमें वैसा यज्ञ न हुआ है न होगा। उस यज्ञकुण्डमें साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होकर महात्मा राजा मरुत्तको अपने स्वरूपका दर्शन कराया था। उन श्रीहरिका दर्शन करके, उनके चरणोंमें माथा नवाकर, राजा मरुत्त दोनों हाथ जोड़े खड़े रहे; कुछ बोल न सके। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे प्रेमसे विह्वल हो गये। इस तरह उन प्रेमपूरित नरेशको अपने चरणोंमें प्रणत हुआ देख साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले॥ २४-२७॥

श्रीभगवान्ने कहा—राजन्! तुमने अपने विनयसे मुझे संतुष्ट किया है। निष्कामभावसे सम्पादित उत्तम यज्ञोंद्वारा मेरी पूजा की है। महामते! तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँग लो। मैं तुम्हें वह वरदान दूँगा, जो स्वर्गके देवताओंके लिये भी दुर्लभ है॥ २८॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! राजा मरुत्तने भगवान्का उपर्युक्त वचन सुनकर, हाथ जोड़, परिक्रमा करके, उन परमेश्वर हरिका परम भक्तिभावसे विशद उपचारोंद्वारा पूजन किया और प्रणाम करके अत्यन्त गद्गद वाणीमें कहा॥ २९॥

मरुत्त बोले—श्रीपुरुषोत्तमोत्तम! आपके चरणारविन्दोंसे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम वर मैं नहीं जानता। जैसे प्यास लगनेपर दुर्बुद्धि नरपशु गङ्गाजीके तटपर पहुँचकर भी प्यास बुझानेके लिये कुआँ खोदते हैं (उसी प्रकार आपके चरणारविन्दोंको पाकर दूसरे किसी वरकी इच्छा करना दुर्बुद्धिका ही परिचय देना है) तथापि हे व्रजेश्वर! आपकी आज्ञाका गौरव रखनेके लिये मैं यही वर माँगता हूँ कि मेरे हृदय-कमलसे आपका चरणारविन्द कदापि दूर न जाय; क्योंकि वही चारों पुरुषार्थों तथा अर्थ-सम्पदाओंका मूल कहा गया है॥ ३०-३१॥

श्रीभगवान् बोले—राजन्! तुम्हारी निर्मल मति धन्य है। तुम्हें वरदानका लोभ दिये जानेपर भी तुम्हारी बुद्धिमें किसी कामनाका उदय नहीं हुआ है। तथापि तुम मुझसे कोई अभीष्ट वर माँग लो; क्योंकि फल देकर भक्तको सुखी किये बिना मुझे सुख नहीं मिलता॥ ३२॥

मरुत्तने कहा—प्रभो! यदि मुझे अभीष्ट वर देना ही है तो इस भूतलपर वैकुण्ठलोकको स्थापित कर दीजिये और भक्तवत्सल! उसी पुरमें श्रेष्ठ भक्तजनोंके साथ मैं निवास करूँ और आप मेरी रक्षा करते रहें॥ ३३॥

श्रीभगवान् बोले—राजन्! जबतक इस मन्वन्तरके अट्ठाईस युग बीतेंगे, तबतक तुम स्वर्गका सुख भोगकर अट्ठाईसवें द्वापरमें मेरे साथ पृथ्वीपर आकर अपने मनोरथके समुद्रको गोवत्सकी खुरीके समान बना लोगे। अर्थात् उस समय तुम्हारा यह सारा मनोरथ अनायास ही पूर्ण हो जायगा॥ ३४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! यों कहकर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण वहीं अन्तर्धान हो गये। वे ही ये राजा मरुत्त उग्रसेन हुए। श्रीहरिने स्वयं उनसे राजसूय-यज्ञ करवाया। मैथिलेश्वर! त्रिलोकीमें कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो भगवद्भक्तोंके लिये दुर्लभ हो? नृपोत्तम! जो मनुष्य मरुत्तके इस चरित्रको सुनता है, उसे भक्तियुक्त ज्ञान और वैराग्यकी प्राप्ति होती है॥ ३५—३७॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित् खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीमरुत्तका उपाख्यान' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

पादुकाएँ दीं तथा वेगशालिनी भद्रकालीने प्रद्युम्नको माला भेंट की। इन्द्रने महात्मा प्रद्युम्नको सहस्रों ध्वजोंसे सुशोभित महादिव्य रत्नमय विजय दिलानेवाला रथ प्रदान किया ॥ २१-२८ ॥

उस समय शङ्ख और दुन्दुभियाँ बजने लगीं। ताल और वीणा आदिके शब्द होने लगे। जय-जयकारकी ध्वनिसे युक्त मृदङ्ग और वेणुओंके उत्तम नादसे तथा वेद-मन्त्रोंके घोषसे वहाँका स्थान गूँज उठा। मोतियोंकी वर्षाके साथ खील और फूलोंकी वृष्टि होने लगी। देवताओंने प्रद्युम्नके ऊपर पुष्पोंकी झड़ी लगा दी ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रद्युम्नका विजयाभिषेक' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

प्रद्युम्नके नेतृत्वमें दिग्विजयके लिये प्रस्थित हुई यादवोंकी गजसेना, अश्वसेना तथा योद्धाओंका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण, राजा उग्रसेन, बलरामजी तथा गुरु गर्गाचार्यको नमस्कार करके, उनकी आज्ञा ले, प्रद्युम्न रथपर आरूढ हो कुशस्थली पुरीसे बाहर निकले। फिर उनके पीछे समस्त उद्धव आदि यादव, भोजवंशी, वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी, मधुवंशी, शूरवंशी और दशार्हवंशमें उत्पन्न वीर चले। फिर श्रीकृष्णके भाई गद आदि सब वीर श्रीकृष्णकी अनुमति ले पुत्रों और सेनाओंके साथ चल दिये। साम्ब आदि महारथी भी प्रद्युम्नके साथ गये ॥ १—३ ॥

वे सभी यादव वीर किरीट, कुण्डल तथा लोहेके बने हुए कवचसे अलंकृत थे। उनके साथ करोड़ोंकी संख्यामें चतुरङ्गिणी सेना थी। वे सब द्वारकापुरीसे बाहर निकले। उनके रथ मोर, हंस, गरुड, मीन और तालके चिह्नसे युक्त ध्वजोंसे सुशोभित थे, सूर्यमण्डलके समान तेजोमय थे और चञ्चल अश्व उनमें जोते गये थे। उन रथोंके कलश और शिखर सोनेके बने थे, मोतियोंकी वन्दनवारें उनकी शोभा बढ़ाती थीं। वे सभी रथ वायुवेगका अनुकरण करते थे। उनमें दिव्य चँवर डुलाये जा रहे थे। वे वीरोंके समुदायसे सुशोभित तथा सुनहरे देव-विमानोंके समान प्रकाशमान थे, ऐसे रथोंद्वारा उन मनोहर वीरोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। उस सेनामें अत्यन्त उद्भट ऊँचे-ऊँचे गजराज थे, जिनके गण्डस्थलसे मद झर रहे थे। उनके मुखमण्डलपर चित्र-विचित्र पत्र-रचना की गयी थी। वे सुनहरे कवचसे सुशोभित थे। उनकी पीठपर लाल रंगकी झूल पड़ी थी और उनके उभय पार्श्वमें लटकाये गये घंटे बज रहे थे। नरेश्वर! उस गजसेनाके हाथी गिरिराजके शिखर-जैसे जान पड़ते थे। वे भद्रजातीय गजेन्द्र विभिन्न दिशाओंमें विद्यमान गजराजों—दिग्गजोंकी नकल करते दिखायी देते थे। कोई भद्रजातीय थे, जिनकी चर्चा की गयी है। दूसरे भद्रमृग जातिके थे। कुछ हाथी विन्ध्याचल पर्वतमें उत्पन्न हुए थे और कुछ कश्मीरी थे। कितने ही मलयाचलमें उत्पन्न थे। बहुत-से हिमालयमें पैदा हुए थे। कुछ मुरण्ड देशमें उत्पन्न हुए थे और कितने ही कैलास पर्वतके जंगलोंमें पैदा हुए थे। कितनोंके जन्म ऐरावत-कुलमें हुए थे, जिनके चार दाँत थे और उनकी गर्दनोंमें जंजीर (गरदनी या गिराँव) सुशोभित थीं। उनके ऊर्ध्वभागमें तीन-तीन सूँड़ें थीं और वे भूतलपर तथा आकाशमें भी चल सकते थे ॥ ४—१२ ॥

करोड़ों हाथी ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित थे। उनपर करोड़ों दुन्दुभियाँ रक्खी गयी थीं। उस सेनाके भीतर करोड़ोंकी संख्यामें विद्यमान वे हाथी रत्न-समूहसे मण्डित थे और महावतोंसे प्रेरित होकर चलते थे। गर्जना करते हुए, मेघोंकी घटाके समान काले तथा नीले रंगकी झूलसे आच्छादित वे गजराज उस सैन्य-सागरमें इधर-उधर मगरमच्छोंके समान शोभा पाते थे। वे अपनी सूँड़ोंसे लता-झाड़ियोंको उखाड़कर सूर्यमण्डलकी ओर फेंकते, पैरोंके आघातसे धरतीको कम्पित करते और मदकी वर्षासे पर्वतोंको आर्द्र किये देते थे। वे अपने कुम्भस्थलोंकी टक्करसे दुर्ग, शैल और शिलाखण्डोंको भी गिराने

[illegible] ... [illegible] प्रद्युम्नके [illegible] भेंट की । इन्होंने महात्मा प्रद्युम्नको [illegible] सुशोभित महादिव्य, रत्नमय [illegible] दिखलानेवाला रथ प्रदान किया ॥ २१—२८ ॥

उस समय शङ्ख और दुन्दुभियाँ बजने लगीं । [illegible] और वीणा आदिके शब्द होने लगे । [illegible] युक्त मृदङ्ग और वेणुओंके [illegible] घोषसे वहाँका स्थान गूँज उठा । [illegible] सीक और फूलोंकी वृष्टि होने लगी । [illegible] ऊपर पुष्पोंकी झड़ी लगा दी ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्‌खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रद्युम्नका विजयाभिषेक' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

प्रद्युम्नके नेतृत्वमें दिग्विजयके लिये प्रस्थित हुई यादवोंकी चतुरङ्गिणी सेना, अश्वसेना तथा योद्धाओंका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण, राजा उग्रसेन, बलरामजी तथा गुरु गर्गाचार्यको नमस्कार करके, उनकी आज्ञा ले, प्रद्युम्न रथपर आरूढ़ हो कुशस्थली पुरीसे बाहर निकले। फिर उनके पीछे समस्त उद्धव आदि यादव, भोजवंशी, वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी, मधुवंशी, शूरवंशी और दशार्हवंशमें उत्पन्न वीर चले । फिर श्रीकृष्णके भाई गद आदि सब वीर श्रीकृष्णकी अनुमति ले पुत्रों और सेनाओंके साथ चल दिये । साम्ब आदि महारथी भी प्रद्युम्नके साथ गये ॥ १—३ ॥

वे सभी यादव वीर किरीट, कुण्डल तथा सोनेके बने हुए कवचसे अलंकृत थे । उनके साथ करोड़ोंकी संख्यामें चतुरङ्गिणी सेना थी । वे सब द्वारकापुरीसे बाहर निकले । उनके रथ मोर, हंस, गरुड़, मीन और तालके चिह्नसे युक्त ध्वजोंसे सुशोभित थे, सूर्यमण्डलके समान तेजोमय थे और चञ्चल अश्व उनमें जोते गये थे । उन रथोंके कलश और शिखर सोनेके बने थे, मोतियोंकी बन्दनवारें उनकी शोभा बढ़ाती थीं । वे सभी रथ वायुवेगका अनुकरण करते थे । उनमें दिव्य चँवर डुलाये जा रहे थे । वे वीरोंके समुदायसे सुशोभित तथा सुनहरे देव-विमानोंके समान प्रकाशमान थे, ऐसे रथोंद्वारा उन मनोहर वीरोंकी बड़ी शोभा हो रही थी । उस सेनामें अत्यन्त उद्भट ऊँचे-ऊँचे गजराज थे, जिनके [illegible] बह रहे थे । उनके [illegible], विचित्र [illegible] की गयी थी । वे [illegible] सुशोभित थे । [illegible] और उनके उभय पार्श्वमें लटकाये गये घंटे बज रहे थे । नरेश्वर ! उस राजसेनाके हाथी गिरिराजके शिखर-जैसे जान पड़ते थे । वे भद्रजातीय गजेन्द्र विभिन्न दिशाओंमें विद्यमान गजराजों—दिग्गजोंकी नकल करते दिखायी देते थे । कोई मन्द्रजातीय थे, जिनकी चर्चा की गयी है । दूसरे मृगजातिके थे । कुछ हाथी विन्ध्याचल पर्वतमें उत्पन्न हुए थे और कुछ कश्मीरी थे । कितने ही मलयाचलमें उत्पन्न थे । बहुत-से हिमालयमें पैदा हुए थे । कुछ गुरुण्ड देशमें उत्पन्न हुए थे और कितने ही कैलास पर्वतके जंगलोंमें पैदा हुए थे । कितनोंके जन्म ऐरावत-कुलमें हुए थे, जिनके चार दाँत थे और उनकी गर्दनोंमें जंजीर (गरदनी या गिरौंव) सुशोभित थीं । उनके ऊर्ध्वभागमें तीन-तीन सूँड़ें थीं और वे भूतलपर तथा आकाशमें भी चल सकते थे ॥ ४—१२ ॥

करोड़ों हाथी ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित थे । उनपर करोड़ों दुन्दुभियाँ रक्खी गयी थीं । उस सेनाके भीतर करोड़ोंकी संख्यामें विद्यमान वे हाथी रत्न-समूहसे मण्डित थे और महावतोंसे प्रेरित होकर चलते थे । गर्जना करते हुए मेघोंकी घटाके समान काले तथा नीले रंगकी झूलसे आच्छादित वे गजराज उस सैन्य-सागरमें इधर-उधर मगरमच्छोंके समान शोभा पाते थे । वे अपनी सूँड़ोंसे लता-झाड़ियोंको उखाड़कर [illegible] की ओर फेंकते, पैरोंके आघातसे [illegible] और [illegible] वृक्षोंको [illegible] देते थे । वे [illegible] कुण्डलोंकी [illegible] और [illegible]

तथा शत्रुसेनाको खण्डित करनेकी शक्ति रखते थे। उस यादव-सेनामें ऐसे ऐसे हाथी विद्यमान थे ॥ १३-१६ ॥

राजन्! गजसेनाके पीछे घोड़ोंकी सेना निकली। उन घोड़ोंमें कुछ मत्स्यदेशके, कुछ कलिन्दपर्वतके, कुछ उशीनर देशके, कुछ कोसल, विदर्भ और कुरुजाङ्गल देशके थे। कोई काम्बोजीय (काबुली), कोई सृञ्जयदेशीय, कोई केकय और कुन्ति देशोंके पैदा हुए थे। कोई दरद, केरल, अङ्ग, वङ्ग और विकट जनपदोंमें पैदा हुए थे। कितने ही कोङ्कण, कोटक, कर्नाटक तथा गुजरातमें पैदा हुए घोड़े थे। कोई सौवीर देशके और कोई सिंधी थे। कितने ही पञ्चाल (पंजाब) और आबूमें उत्पन्न हुए थे। कितने ही कच्छी घोड़े थे। कुछ आनर्त, गन्धार और मालव देशके अश्व थे। कुछ महाराष्ट्रमें उत्पन्न, कुछ तैलंग देशमें पैदा हुए और कुछ दरियाई घोड़े थे ॥ १७-२० ॥

परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णकी अश्वशालाओंमें जो घोड़े विद्यमान थे, वे भी सब-के-सब उस दिग्विजय-यात्रामें निकल पड़े। कुछ श्वेतद्वीपसे आये थे। कुछ जो वैकुण्ठ, अजितपद तथा रमावैकुण्ठ लोकसे प्राप्त हुए अश्व थे, वे भी उस सेनाके साथ निकल गये। वे सोनेके हारोंसे सुशोभित और मोतियोंकी मालाओंसे मनोहर दिखायी देते थे। उनकी शिखामें मणि पहिनायी गयी थी, जिसकी सुदूरतक फैली हुई किरणें उन अश्वोंकी शोभा बढ़ाती थीं और उनके साज-सामान भी बहुत सुन्दर थे। चामर (कलँगी) से अलंकृत हुए उन घोड़ोंकी पूँछ, मुख और पैरोंमें प्रभा-सी छिटक रही थी। यादवोंकी उस विशाल सेनामें ऐसे-ऐसे घोड़े दृष्टिगोचर होते थे, जो वायु और मनके समान वेगशाली थे। वे अपने पैरोंसे धरतीका तो स्पर्श ही नहीं करते थे—उड़ते-से चलते थे। मिथिलेश्वर! उनकी गति ऐसी हल्की थी कि वे कच्चे सूतोंपर और बुदबुदोंपर भी चल सकते थे। पारे पर, मकड़ीके जालोंपर और पानीके फुहारोंपर भी वे निराधार चलते दिखायी देते थे। वे चञ्चल अश्व पर्वतोंकी घाटियों, नदियों, दुर्गमस्थानों, गड्ढों और ऊँचे-ऊँचे प्रासादोंको भी निरन्तर लाँघने जा रहे थे। मैथिलेन्द्र! वे इधर उधर मोर, तीतर, कौञ्च (सारस), हंस और खञ्जरीटकी गतिका अनुकरण करते हुए पृथ्वीपर नाचते चलते थे। कई अश्व पाँखवाले थे। उनके शरीर दिव्य थे, कान श्याम-वर्णके थे, आकृति मनोहर थी। पूँछके बाल पीले रंगके थे और शरीरकी कान्ति चन्द्रमाके समान श्वेत थी। वे भी श्रीकृष्णकी अश्वशालासे निकले थे। कुछ घोड़े उच्चैःश्रवाके कुलमें उत्पन्न हुए थे, कुछ सूर्यदेवके घोड़ोंसे पैदा हुए थे। कितने ही अश्व अश्विनीकुमारोंकी पढ़ायी हुई विद्या (चलनेकी कला) से सम्पन्न थे। कितनोंको वरुण देवताने अच्छी चालकी शिक्षा दी थी। किन्हींकी कान्ति मन्दार-पुष्पके समान थी। कुछ मनोहर अश्व चितकबरे थे। कितनोंके रंग अश्विनी पुष्प (कनेर) के समान पीले थे। बहुत-से अश्व सुनहरी तथा हरी कान्तिसे उद्भासित थे। कितने ही अश्व पद्मराग मणिकी-सी कान्तिवाले थे। वे सभी समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त दिखायी देते थे। राजन्! इनके सिवा और भी कोटि-कोटि अश्व कुशस्थली पुरीसे बाहर निकले ॥ २१-३२ ॥

सेनाके धनुर्धर वीर ऐसे थे, जिन्हें कई युद्धोंमें अपने शौर्यके लिये कीर्ति प्राप्त हो चुकी थी। उन सबने शक्ति, त्रिशूल, तलवार, गदा, कवच और पाश धारण कर रक्खे थे। नरेश्वर! वे शस्त्र-धाराओंकी वर्षा करते हुए प्रलयकालके महासागरके समान प्रतीत होते थे। रणभूमिमें दिग्गजोंकी भाँति शत्रुओंको रौंदते और कुचलते दिखायी देते थे। राजन्! इस प्रकार यादवोंकी वह विशाल सेना निकली, जो अत्यन्त अद्भुत थी। उसे देखकर देवता और असुर—सभी विस्मित हो उठे ॥ ३३-३५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यादवसेनाका प्रयाण' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

सेनासहित यादव वीरोंकी दिग्विजयके लिये यात्रा

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार सेनासे घिरे हुए धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ वीर प्रद्युम्नसे श्रीकृष्ण-बलदेवसहित उग्रसेनने कहा ॥ १ ॥

उग्रसेन बोले—हे महाप्राज्ञ प्रद्युम्न! तुम श्रीकृष्णकी कृपासे समस्त राजाओंपर विजय प्राप्त करके शीघ्र ही द्वारका-में लौट आओगे। इस बातको ध्यानमें रक्खो कि धर्मज्ञ पुरुष

मतवाले, असावधान, उन्मत्त (पागल), सोये हुए, बालक, जड, नारी, शरणागत, रथहीन और भयभीत शत्रुको नहीं मारते । संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी पीड़ाका निवारण तथा कुमार्गमें चलनेवालोंका वध राजाके लिये परम धर्म है । इस प्रकार जो आततायी है (अर्थात् दूसरोंको विष देनेवाला, [illegible] घरोंमें आग लगानेवाला, क्षेत्र और नारीका अपहरण करनेवाला है), वह अवश्य वधके योग्य है। स्त्री, पुरुष या नपुंसक कोई भी क्यों न हो, जो अपने आपको ही महत्त्व देनेवाले, अधम तथा समस्त प्राणियोंके प्रति निर्दय हैं, ऐसे लोगोंका वध करना राजाओंके लिये वध न करनेके ही बराबर है। अर्थात् दुष्टोंके वधमें राजाओंको दोष नहीं लगता। धर्मयुद्धमें शत्रुओंका वध करना प्रजापालक राजाके लिये पाप नहीं है । आदिराजा स्वायम्भुव मनुने पूर्वकालमें राजाओंसे कहा था कि 'जो रणमें निर्भय होकर आगे पाँव बढ़ाते हुए प्राण त्याग देता है, वह सूर्यमण्डलका भेदन करके परमधाममें जाता है । जो योद्धा क्षत्रिय होकर भी भयके कारण युद्धमें पीठ दिखाकर रणभूमिमें स्वामीको अकेला छोड़कर पलायन कर जाता है, वह महारौरव नरकमें पड़ता है । राजाका कर्तव्य है कि वह सेनाकी रक्षा करे और सेनाका कर्तव्य है कि वह राजाकी ही रक्षा करे । सूतको चाहिये कि वह संकटमें पड़े हुए रथीका प्राण बचाये और रथी सारथिकी रक्षा करे । तुम समस्त यादव सामर्थ्यशाली सेना और वाहनसे सम्पन्न हो; अतः तुम सब मिलकर प्रद्युम्नकी ही रक्षा करना और प्रद्युम्न तुमलोगोंकी रक्षा करें । गौ, ब्राह्मण, देवता, धर्म, वेद और साधुपुरुष— इस भूतलपर मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले सभी मनुष्योंके लिये सदा पूजनीय हैं । वेद भगवान् विष्णुकी वाणी हैं, ब्राह्मण उनका मुख है, गौएँ श्रीहरिका शरीर है, देवता अङ्ग हैं और साधुपुरुष साक्षात् उनके प्राण माने गये हैं । ये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण हरि भक्तिके वशीभूत हो जिनके चित्तमें निवास करते हैं, उन वीरोंकी सदा विजय होती है* ॥ २-१३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! समस्त यादवोंने राजा उग्रसेनके इस आदेशको सिर झुकाकर स्वीकार किया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया । तत्पश्चात् प्रद्युम्नने मस्तक झुकाकर राजा उग्रसेन, शूर, वसुदेव, बलभद्र, श्रीकृष्ण तथा महामुनि गर्गाचार्यको प्रणाम किया । नृपेश्वर ! तदनन्तर श्रीकृष्ण और बलदेवके साथ राजा उग्रसेन यदुपुरीमें चले गये और दिग्विजयकी इच्छावाले श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्नने यादव-सेनाके साथ आगेके लिये प्रस्थान किया ॥ १४-१६ ॥

मैथिलेश्वर ! उस सेनाके समस्त सुवर्णमय शिविरोंसे चार योजन लंबा राजमार्ग भी आच्छादित एवं सुशोभित होता था । सेनाके आगे विशाल वाहिनीसे युक्त महाबली कृतवर्मा थे और उनके पीछे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अक्रूर अपने सैन्यदलके साथ चल रहे थे । तत्पश्चात् मन्त्री उद्धव पाँच प्रतिमाओंके साथ जा रहे थे । राजन् ! उनके पीछे अठारह महारथी सौ अक्षौहिणी सेनाके साथ यात्रा कर रहे थे । उनके नाम इस प्रकार हैं- प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, देवबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रभानु, विरूप, कवि और न्यग्रोध । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण-प्रेरित गद आदि समस्त वीर चल रहे थे । भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्हके वंशज वीर उस सेनामें सम्मिलित थे । समस्त यादवोंकी संख्या छप्पन कोटि बतायी जाती है । नरेश्वर ! उस यादव-सेनाकी गणना भला, इस भूतलपर कौन करेगा ॥ १७-२१ ॥

इस प्रकार विशाल सेनाको साथ लिये जाते हुए यादव नरेशोंके धनुषके टंकारके साथ पीटे जाते हुए नगारोंका महान् घोष भूमण्डलमें व्याप्त हो रहा था । गजेन्द्रोंका चीत्कार, हयेन्द्रोंकी हिनहिनाहट, दगती हुई भुशुण्डी (तोप) की आवाज, दृढ़ता रखनेवाले वीरोंकी गर्जना और शङ्खोंकी गम्भीर ध्वनियोंसे वे यादव वीर बिजलीकी गड़गड़ाहटसे युक्त प्रचण्ड मेघोंका-सा दृश्य उपस्थित करते थे । सारा भूमण्डल ही उस सेनासे शोभित हो रहा था । पृथ्वीपर चलते हुए उन महात्मा वीरोंके तुमुलनादसे दिग्गजोंके कान भी बहरे से हो गये थे तथा शत्रुगण साहस छोड़कर तत्काल अपने दुर्गकी ओर भागने लगे थे । पानीमें रहनेवाले कच्छप 'पृथ्वीपर यह क्या हो रहा है ?'—यों कहते तथा 'हम कहाँसे कहाँ जायँ ?' यों बोलते हुए भागने लगे । वे मन-ही-मन सोचते थे 'हे विधाता ! यह उपद्रव कहाँ जा रहा है, जिसमें

---

* गावो विप्राः सुरा धर्मश्छन्दांसि भुवि साधवः ।
पूजनीयाः सदा सर्वैर्मनुष्यैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥
वेदा विष्णुवचो विप्रा मुखं गावस्तनुर्हरेः ।
अङ्गानि देवताः साक्षात् साधवो ह्यसवः स्मृताः ॥
श्रीकृष्णोऽयं हरिः साक्षात् परिपूर्णतमः प्रभुः ।
येषां चित्ते स्थितो भक्त्या तेषां तु विजयः सदा ॥
(गर्ग०, विश्व० ४ । ११-१३)

समस्त लोकोंसहित यह अचला पृथ्वी भी विचलित हो गयी है ?' ॥ २२–२७ ॥

विदेहराज ! यह तो एक बहाना था। उसकी आड़ लेकर परमेश्वर श्रीहरि भूतलका भार उतार रहे थे। जो यदुकुलमें चतुर्व्यूहरूप धारण करके विराजमान हैं, उन अनन्त-गुणशाली पृथ्वीपालक भगवान्‌को नमस्कार है ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रद्युम्नकी दिग्विजयार्थ यात्रा' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

यादव-सेनाकी कच्छ और कलिङ्गदेशपर विजय

श्रीबहुलाश्वने पूछा—देवर्षिशिरोमणे ! श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्न क्रमशः किन-किन देशोंको जीतनेके लिये गये, उनके उदार कर्मोंका मेरे समक्ष वर्णन कीजिये। अहो ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी अपने भक्तोंपर ऐसी कृपा है, जो श्रवण और चिन्तन किये जानेपर पापीजनोंको उनके कुलसहित पवित्र कर देती है ॥ १-२ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। तुम्हारी विमल बुद्धिको साधुवाद ! श्रीकृष्णके भक्तोंका चरित्र तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है। राजन् ! वर्षाकालमें बादलोंसे बरसती हुई जलधाराओंको तथा भूमिके समस्त धूलिकणोंको कोई विद्वान् पुरुष भले ही गिन डाले, किंतु महान् श्रीहरिके गुणोंको कोई नहीं गिन सकता। रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न उस श्वेत छत्रसे सुशोभित थे, जिसकी छाया चार योजनतक दिखायी देती थी। वे इन्द्रके दिये हुए रथपर आरूढ़ हो अपनी सेनाके साथ पहले कच्छ देशोंको जीतनेके लिये उसी प्रकार गये, जैसे पूर्वकालमें भगवान् शंकरने त्रिपुरोंको जीतनेके लिये रथसे यात्रा की थी। कच्छ देशका राजा शुभ्र शिकार खेलनेके लिये निकला था। वह यादवोंकी सेनाको आयी हुई जान अपनी राजधानी हालपुरीको लौट गया ॥ ३–७ ॥

प्रद्युम्नकी आयी हुई सेना हाथियोंके पदाघातसे वृक्षोंको चूर-चूर करती और विभिन्न देशोंके भवनोंको गिराती हुई चल रही थी। उससे उठे हुए धूलिसमूहोंसे आकाश अन्धकाराच्छन्न हो गया और कच्छ देशके सभी निवासी भयभीत हो गये। उस समय राजा शुभ्र अत्यन्त हर्षित हो तत्काल सोनेकी मालाओंसे अलंकृत पाँच सौ हाथी, दस हजार घोड़े और बीस भार सुवर्ण लेकर सामने आया। उसने भेंट देकर पुष्पहारसे अपने दोनों हाथ बाँधकर प्रद्युम्नको प्रणाम किया। इससे प्रसन्न होकर शम्बरारि प्रद्युम्नने राजा शुभ्रको रत्नोंकी बनी हुई एक माला पुरस्कारके रूपमें दी और उसके राज्यपर पुनः उसीको प्रतिष्ठित कर दिया। राजन् ! साधुपुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है ॥ ८–१२ ॥

तदनन्तर बलवान् रुक्मिणीनन्दन कलिङ्ग देशको जीतनेके लिये गये। उनके साथ फहराती पताकाओंसे सुशोभित उत्तम सेनाएँ थीं। उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो मेघोंकी मण्डलीके साथ देवराज इन्द्र यात्रा कर रहे हों। कलिङ्गराज अपनी सेना तथा शक्तिशाली हाथी-सवारोंके साथ महात्मा प्रद्युम्नके सामने युद्ध करनेके लिये निकला। कलिङ्गको आया देख धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध एकमात्र रथ लेकर यादव-सेनाके आगे खड़े हो उसकी सेनाओंके साथ युद्ध करने लगे। अपने धनुषकी बार-बार टंकार करते हुए वीर अनिरुद्धने सौ बाणोंसे कलिङ्गराजको, दस-दस बाणोंसे उसके रथियों और हाथियोंको घायल कर दिया। यह देख उनके अपने और शत्रुपक्षके सभी योद्धाओंने 'साधु-साधु' कहकर उन्हें शाबाशी दी। प्रद्युम्नके देखते हुए ही अनिरुद्ध युद्ध करने लगे। नरेश्वर ! उनके बाण-समूहोंसे कितने ही वीरोंके दो टुकड़े हो गये, हाथियोंके मस्तक विदीर्ण हो गये और घोड़ोंके पैर कट गये। रथोंके पहिये चूर-चूर हो गये, घोड़े और उनके साथ-साथ चलनेवाले कालके गालमें चले गये, रथी और सारथि आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धराशायी हो गये। मैथिल ! शत्रुकी सेना भागने लगी। अपनी सेनाको भागती देख हाथीपर बैठा हुआ कलिङ्गराज बड़े रोषसे आगे बढ़ा। उसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया था। उसने तुरंत ही

बहत्तर भार लोहेकी बनी हुई भारी गदा चलायी और अपने हाथीके द्वारा बड़े-बड़े वीरोंको गिराता हुआ बलवान् कलिङ्गराज मेघके समान गर्जना करने लगा। उस गदाके प्रहारसे किंचित् व्याकुलचित्त होकर अनिरुद्ध युद्धस्थलमें ही रथपर गिर पड़े। यह देख यादवोंके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने तत्काल तीखे और चमकीले बाणोंद्वारा कलिङ्गराजको उसी प्रकार चोट पहुँचाना आरम्भ किया, जैसे मांसयुक्त बाजको कुरर पक्षी अपनी चोंचोंसे पीड़ा देते हों। कलिङ्गराजने भी उस समय कुपित हो अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और बार-बार उसकी टंकार करते हुए अपने बाणोंसे शत्रुओंके बाणोंको चूर-चूर कर दिया ॥ १३—२४ ॥

मैथिलेश्वर! तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने गदा लेकर बायें हाथसे उसके हाथीपर प्रहार किया, फिर अर्धचन्द्राकार बाणसे उसको चोट पहुँचायी। नरेश्वर! उस प्रहारसे वह हाथी छिन्न-भिन्न होकर इस प्रकार बिखर गया, मानो इन्द्रके वज्रकी चोटसे कोई शैलखण्ड बिखर गया हो। कलिङ्गराज हाथीसे गिर पड़ा और विशाल गदा लेकर उसने गदको मारा और गदने भी तत्काल कलिङ्गराजपर गदासे आघात किया। कलिङ्गराज और गदमें वहाँ घोर युद्ध होने लगा। उनकी दोनों गदाएँ आगकी चिनगारियाँ बिखेरती हुई चूर-चूर हो गयीं। तत्पश्चात् गदने कलिङ्गराजको पकड़कर समरभूमिमें दे मारा। जैसे गरुड़ किसी साँपको पटककर खींचता हो, उसी प्रकार गद तुरंत ही अपने हाथसे कलिङ्गराजको घसीटने लगे। गदाके प्रहारसे पीड़ित कलिङ्गराजकी हड्डियाँ चूर-चूर हो रही थीं। वह महात्मा प्रद्युम्नकी शरणमें आ गया। उसने भेंट देकर कहा—'आप देवताओंके भी देवता परमेश्वर हैं। कुपित हुए दण्डधर यमराजकी भाँति आपके आक्रमणको पृथ्वीपर कौन सह सकता है! आपको नमस्कार है' ॥ २५—३१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कच्छ और कलिङ्गदेशपर विजय' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

प्रद्युम्नका मरुधन्व देशके राजा गयको हराकर मालवनरेश तथा माहिष्मती पुरीके राजासे बिना युद्ध किये ही भेंट प्राप्त करना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कलिङ्गराजपर विजय पाकर यादवेश्वर प्रद्युम्न मरुधन्व (मारवाड़) देशमें इस प्रकार गये, मानो अग्निने जलधर आक्रमण किया हो। धन्वदेशका राजा गय पर्वतीय दुर्गमें रहता था। उसकी स्थिति जानकर यादवेश्वरने उसके पास उद्धवको भेजा। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धव गिरिदुर्गमें गये और राजसभामें प्रवेश करके गयसे बोले—'महामते नरेश! मेरी बात सुनिये। यादवोंके स्वामी महान् राजराजेश्वर उग्रसेन जम्बूद्वीपके राजाओंको जीतकर राजसूययज्ञ करेंगे। साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं, उन महाराजके मन्त्री हुए हैं। उन्होंने ही धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ साक्षात् प्रद्युम्नको यहाँ भेजा है। आप यदि अपने कुलका कुशल-क्षेम चाहें तो शीघ्र भेंट लेकर उनके पास चलें' ॥ १—६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर शौर्य और पराक्रमके मदसे उन्मत्त रहनेवाले महाबली राजा गयने कुछ कुपित होकर उद्धवसे कहा ॥ ७ ॥

गय बोले—महामते! मैं युद्ध किये बिना उनके लिये भेंट नहीं दूँगा। आप-जैसे यादवलोग अभी थोड़े ही दिनोंसे वृद्धिको प्राप्त हुए हैं—नये धनी हैं ॥ ८ ॥

राजन्! उसके यों कहनेपर उद्धवजीने प्रद्युम्नके पास आकर समस्त यादवोंके सामने राजा गयकी कही हुई बात दुहरा दी। फिर तो उसी समय रुक्मिणीपुत्रने गिरिदुर्गपर आक्रमण किया। गयके सैनिकोंका यादवोंके साथ घोर युद्ध हुआ। हाथियोंके पैरोंसे नागरिकों तथा भूमिपर चलनेवाले लोगोंको कुचलता और वृक्षोंको रौंदता हुआ राजा गय दो अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये निकला। रथी रथियोंके साथ, बड़े-बड़े गज गजराजोंके साथ, घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ तथा वीर वीरोंके साथ परस्पर युद्ध करने लगे। तीखे बाण-समूहों, ढाल, तलवार, गदा, ऋष्टि, पाश, फरसे, शतघ्नी

और भुशुण्डी आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी मारसे भयातुर हो गयके सैनिक यादवोंसे परास्त हो अपना-अपना रथ छोड़कर सब-के-सब दसों दिशाओंमें भाग चले ॥ ९–१४ ॥

अपनी सेनाके पलायन करनेपर महाबली गय बार-बार धनुषकी टंकार करता हुआ अकेला ही युद्धके लिये आगे बढ़ा। तेजस्वी श्रीकृष्णपुत्र दीप्तिमान्ने धनुषसे छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुके घोड़ोंको मार डाला। एक बाणसे सारथिको नष्ट करके दो बाणोंसे उसकी ऊँची ध्वजा काट डाली। तीन बाणोंसे रथको तोड़-फोड़कर पाँच बाणोंसे उसके कवचको छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर महाबली दीप्तिमान्ने सौ बाण मारकर गयके धनुषको भी खण्डित कर दिया। गयने दूसरे धनुषको लेकर बीस बाणोंद्वारा श्रीकृष्णपुत्र दीप्तिमान्को घायल कर दिया। फिर वह बलवान् वीर मेघके समान गर्जना करने लगा। समराङ्गणमें उसके प्रहारसे दीप्तिमान्के हृदयमें कुछ व्याकुलता हुई, तथापि उन्होंने एक ज्योतिर्मयी सुदृढ़ शक्ति हाथमें ली और उसे घुमाकर महात्मा गयके ऊपर चलाया। उस शक्तिने राजाके हृदयको विदीर्ण करके उसका बहुत रक्त पी लिया। राजन्! गय भी समराङ्गणमें गिरकर मूर्च्छित हो गया। दीप्तिमान् अपने धनुषकी कोटि शत्रुके गलेमें डालकर उसे घसीटते हुए प्रद्युम्नके सामने उसी प्रकार ले आये, जैसे गरुड़ किसी नागको खींच लाया हो। उस समय मानवों तथा देवताओंकी दुन्दुभियाँ एक साथ ही बज उठीं। देवता आकाशसे और पार्थिव नरेश भूतलसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। राजन्! तब गयने भी शम्बरारि श्रीकृष्ण-पुत्र प्रद्युम्नके चरणोंका पूजन किया ॥ १५–२२½ ॥

वहाँसे महात्मा प्रद्युम्न अवन्तिकापुरको गये, उसी प्रकार जैसे भ्रमर सुनहरी कर्णिकापर टूट पड़े। उनका आगमन सुनकर मालवनरेश जयसेनने उनकी भलीभाँति पूजा की। मिथिलेश्वर! वे प्रद्युम्नके प्रभावको जानते थे, अतः उनसे अपनी पराजय स्वीकार करके उन्होंने बड़े-बूढ़ोंको बुलवाया और उनके द्वारा महात्मा प्रद्युम्नको उत्तम भेंट सामग्री अर्पित की। वहाँ अपने पिताकी बुआ राजाधिदेवीको प्रणाम करके महामनस्वी प्रद्युम्नने अपने फुफेरे भाई विन्द और अनुविन्दको गलेसे लगाया और मालवदेशके योद्धाओंसे सादर घिरकर वे बड़ी शोभाको प्राप्त हुए ॥ २३–२५ ॥

वहाँसे धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न माहिष्मती पुरीको गये और यादवों तथा अपने सैनिकोंके साथ वहाँ उन्होंने नर्मदा नदीका दर्शन किया। जलके कल्लोलोंसे सुशोभित नर्मदा मानो शृङ्गार-तिलक धारण किये हुए थी और छपी हुई पगड़ीकी भाँति पुष्पसमूहोंको बहा रही थी। बेंत, बाँस तथा अन्य वृक्षोंसे फूले हुए माधव-तरुओंसे घिरी हुई नर्मदा मूर्तिमान् तेजस्वी देवताओंसे घिरी हुई आकाश गङ्गाकी-सी शोभा पाती थी। उसके तटपर छावनी डालकर यादवेश्वर प्रद्युम्न यादवोंके साथ इस प्रकार विराजमान हुए, मानो देवताओंके साथ देवराज इन्द्र शोभा पा रहे हों। महाराज! माहिष्मती पुरीके स्वामी इन्द्रनील बड़े ज्ञानी थे, उन्होंने महात्मा प्रद्युम्नके पास अपना दूत भेजा। दूतने प्रद्युम्नराज-के शिविरमें आकर हाथ जोड़ प्रणाम किया और सबके सुनते हुए वहाँ यह बात कही ॥ २६–३१ ॥

दूत बोला—प्रभो! हस्तिनापुरके राजा बुद्धिमान् धृतराष्ट्रने इन अत्यन्त बलवान् वीर इन्द्रनीलको माहिष्मती पुरीके राज्यपर स्थापित किया है, अतः ये किसीको बलि या भेंट नहीं देंगे। दुर्योधनको स्वेच्छासे ही ये द्रव्यराशि भेंट करते हैं, बलात्कारसे नहीं। आपलोग युद्ध कर सकते हैं, परंतु यहाँ युद्धसे कोई लाभ नहीं होगा ॥ ३२-३३ ॥

श्रीप्रद्युम्नने कहा—दूत! जैसे राजा गय और कलिङ्ग राजने अपमानित होनेपर भेंट दी, उसी तरह यहाँके राजा भी पराजित होकर भेंट देंगे। माहिष्मतीके राजा बड़े राजाधिराज बने हैं; परंतु ये महाराज उग्रसेनको नहीं जानते ॥ ३४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहनेपर दूतने तत्काल आकर राजसभामें माहिष्मतीपतिसे प्रद्युम्नकी कही हुई बात कह सुनायी। माहिष्मतीके राजाने देखा कि यादवोंकी सेना बड़ी उद्भट है (अतः उससे युद्ध करना ठीक न होगा); इसलिये वे पाँच हजार हाथी, एक लाख घोड़े और दस हजार विजयशील रथ लेकर निकले और महात्मा प्रद्युम्नसे मिलकर वह सब कुछ उन्हें भेंट कर दिया ॥ ३५–३७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'माहिष्मतीपुरीपर विजय' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

गुजरात-नरेश ऋष्यपर विजय प्राप्त करके यादव-सेनाका चेदिदेशके स्वामी दमघोषके यहाँ जाना; राजाका यादवोंसे प्रेमपूर्ण बर्ताव करनेका निश्चय, किंतु शिशुपालका माता-पिताके विरुद्ध यादवोंसे युद्धका आग्रह

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! महापराक्रमी प्रद्युम्न माहिष्मतीके राजाको जीतकर अपनी विशाल सेना लिये गुजरातके राजाके यहाँ गये। जैसे पक्षिराज गरुड अपनी चोंचसे सर्पको पकड़ लेते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने गुर्जरदेशके अधिपति महाबली वीर ऋष्यको सेनाद्वारा जा पकड़ा। उनसे तत्काल भेंट वसूल करके महाबली यादवेन्द्र अपनी विशाल वाहिनी साथ लिये हुए चेदिदेशमें जा पहुँचे। चेदिराज दमघोष वसुदेवजीके बहनोई थे; किंतु उनका पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्णका पक्का शत्रु कहा गया है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् उद्धव महाबली दमघोषके पास गये और उनको प्रणाम करके बोले ॥ १–५ ॥

उद्धवने कहा—राजन् ! महाराज उग्रसेनको बलि (भेंट) दीजिये। वे समस्त राजाओंको जीतकर राजसूय-यज्ञ करेंगे ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! उद्धवजीका यह वचन सुनकर दमघोषके दुष्ट पुत्र शिशुपालके ओष्ठ फड़कने लगे। वह अत्यन्त कुपित हो राजसभामें तुरंत इस प्रकार बोला ॥ ७ ॥

शिशुपालने कहा—अहो ! कालकी गति दुर्लङ्घ्य है। यह संसार कैसा विचित्र है ! कालात्मा विधाताके प्राजापत्यपर भी कलह या विवाद खड़ा हो गया है (अर्थात् लोक-विधाता ब्रह्मा और घटनिर्माता कुम्भकारमें झगड़ा हो रहा है कि प्रजापति कौन है)। कहाँ राजहंस और कहाँ कौआ ! कहाँ पण्डित तथा कहाँ मूर्ख ! जो सेवक है, वे चक्रवर्ती राजाको—अपने स्वामीको जीतनेकी इच्छा रखते हैं। राजा ययातिके शापसे यदुवंशी राज्य-पदसे भ्रष्ट हो चुके हैं; किंतु वे छोटा-सा राज्य पाकर उसी तरह इतरा उठे हैं, जैसे छोटी नदियाँ थोड़ा-सा जल पाकर उमँड़ने लगती हैं—उच्छलित होने लगती हैं। जो हीनवंशका होकर राजा हो जाता है, जो मूर्खका बेटा होकर पण्डित हो जाता है, अथवा जो सदाका निर्धन कभी धन पा जाता है, वह घमंडसे भरकर सारे जगत्को तृणवत् मानने लगता है। उग्रसेन कितने दिनोंसे राजपदवीको प्राप्त हुआ है ? वासुदेव मन्त्री बना है और उग्रसेन उसीके बलसे और केवल उसीसे पूजित होकर राजा बन बैठा है। उसके मन्त्री वासुदेवने जरासंधके भयसे भागकर अपनी पुरी मथुराको छोड़कर समुद्रकी शरण ली है। वह पहले 'नन्द' नामक अहीरका भी बेटा कहा जाता था। उसीको वसुदेव लाज-हया छोड़कर अपना पुत्र मानने लगे हैं। वसुदेव तो गोरे रंगके हैं, उनसे उत्पन्न हुआ यह कृष्ण श्यामवर्णका कैसे हो गया ? केवल पिता ही नहीं, पितामह भी गोरे हैं। उनके कुलकी संततिमें इस वासुदेवकी गणना हो, यह बड़े दुःख और हँसीकी बात है। मैं उसके पुत्र प्रद्युम्नको यादवों तथा सेनासहित जीतकर भूमण्डलको यादवोंसे शून्य कर देनेके लिये कुशस्थलीपर चढ़ाई करूँगा ॥ ८–१६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर धनुष और अक्षय बाणोंसे भरे दो तरकस लेकर शिशुपालको युद्धके लिये जानेको उद्यत देख चेदिराजने उससे कहा ॥ १७ ॥

दमघोष बोले—बेटा ! मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। क्रोध न करो, न करो। जो सहसा कोई कार्य करता है, उसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती। क्षमाके समान धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन दूसरा कोई नहीं है। इसलिये सामनीतिसे काम लेना चाहिये। सामके तुल्य दूसरा कोई सुखद उपाय नहीं है। दानसे सामकी शोभा होती है और सामकी सत्कारसे। सत्कारकी भी तभी शोभा होती है, जब वह यथा-योग्य गुण देखकर किया जाय। यादव और चेदिप सगे-सम्बन्धी माने गये हैं; अतः मैं वास्तवमें यही चाहता हूँ कि यादवों तथा चेदिपोंमें कलह न हो ॥ १८–२१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—बुद्धिमान् दमघोषके समझानेपर भी शिशुपाल अनमना हो गया, कुछ बोला नहीं। वह महाखल चुपचाप बैठा रहा। राजन् ! चेदिराजकी रानी श्रुतिश्रवा शूरनन्दन वसुदेवकी बहिन थीं। वे अपने पुत्र

शिशुपालके पास आकर अच्छी तरह विनययुक्त होकर बोलीं ॥ २२-२३ ॥

श्रुतिश्रवाने कहा—बेटा ! खेद न करो। यादवों तथा चेदियोंमें कभी कलह नहीं होना चाहिये। शूरनन्दन वसुदेव तुम्हारे मामा हैं और उनके पुत्र श्रीकृष्ण भी तुम्हारे भाई ही हैं। उनके जो प्रद्युम्न आदि सैकड़ों महावीर पुत्र आये हैं, वे सब मेरे और तुम्हारे द्वारा लाड़-प्यार पानेके योग्य तथा समादरणीय हैं। उनके साथ युद्ध करना उचित नहीं होगा। तात ! मैं तुम्हारे साथ स्वयं स्नेहार्द्रचित्त होकर उन समागत यादवोंको लेनेके लिये चलूँगी। चिरकालसे मेरे मनमें उन सबको देखनेकी उत्कण्ठा है। मैं बड़े उत्सव एवं उत्साहके साथ उनको घर लाऊँगी। ऐसा अवसर फिर कभी नहीं आयेगा ॥ २४–२६ ॥

शिशुपाल बोला—बलराम, कृष्ण तथा समस्त यादव मेरे शत्रु हैं। जिन्होंने मेरा तिरस्कार किया है, उन सबको मैं भी अपने सैनिकोंद्वारा मरवा डालूँगा। पूर्वकालमें कुण्डिनपुरमें राम तथा कृष्ण, इन दोनों भाइयोंने मेरी अवहेलना की, मेरा विवाह रोक दिया; अतः वे मेरे भाई नहीं, शत्रु हैं। यदि तुम दोनों (मेरे माता-पिता होकर) यादवोंका समर्थन करोगे तो मैं तुम दोनों पिता-माताको मजबूत बेड़ियोंसे बाँधकर उसी तरह कारागारमें डाल दूँगा, जैसे कंसने अपने माँ-बापको कैद कर लिया था। अन्यथा तुम दोनोंका वध भी कर डालूँगा। मेरी शपथ या प्रतिज्ञा बड़ी कठोर होती है (इसे टालना कठिन है) ॥ २७–३० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—शिशुपालकी कड़ी बातें सुनकर चेदिराज चुप हो गये। उद्धवजी अपनी सेनामें लौट आये और जो कुछ शिशुपालने कहा था, वह सब उन्होंने वहाँ कह सुनाया। तदनन्तर वाहिनी, ध्वजिनी, पृतना और अक्षौहिणी—ये चार प्रकारकी शिशुपालकी सेनाएँ सुसज्जित हुईं ॥ ३१-३२ ॥

बहुलाश्वने पूछा—प्रभो ! वाहिनी आदि सेनाओंकी संख्या मुझे बताइये; क्योंकि ऋषिलोग भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंकी बातें जानते हैं ॥ ३३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! सौ हाथी, ग्यारह सौ रथी, दस हजार घोड़े और एक लाख पैदल—यह 'सेना'का लक्षण है। इससे दुगुनी सेनाको 'चतुरङ्गिणी' कहते हैं। चार सौ हाथी, दस हजार रथ, चार लाख घोड़े तथा एक करोड़ पैदल—इतने सैनिक लोहेका कवच पहने और शक्तिशाली बल-वाहनोंसे सम्पन्न, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता शूरवीर जिस सेनामें विद्यमान हों, उसे विद्वानोंने 'वाहिनी' कहा है। वाहिनीसे दुगुनी सेनाको 'ध्वजिनी' नाम दिया गया है। ध्वजिनीसे दुगुनी सेनाको पूर्वकालके विद्वानोंने 'पृतना' माना है। पृतनासे दुगुनी सेना 'अक्षौहिणी' कही गयी है। जो साहसी वीर है, उसे 'शूर' कहा गया है। जो सौ शूरवीरोंकी रक्षा करता है, उसे 'सामन्त' कहते हैं। जो युद्धमें सौ सामन्तोंकी रक्षा करता है, उसे 'गजी' (या गजारोही) योद्धा कहते हैं। जो समराङ्गणमें सारथि और अश्वोंसहित रथकी रक्षा कर सकता है, वह 'रथी' कहा गया है। जो अपने बाणोंसे सेनाकी रक्षा करता है, उसे 'महारथी' कहते हैं। जो अपनी सेनाकी रक्षा और शत्रुओंका संहार करते हुए रणक्षेत्रमें अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्ध कर सके, उसे सदा 'अतिरथी' माना गया है ॥ ३४–४१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत श्रीनारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गुर्जर और चेदिदेशमें गमन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

शिशुपालके मित्र द्युमान् तथा शक्तका वध

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! शिशुपाल अपनी सेनाको साथ ले माता-पिताका तिरस्कार करके चन्द्रिकापुरसे बाहर निकला। दुष्टोंका ऐसा स्वभाव ही होता है। उसके साथ 'वाहिनी' और 'ध्वजिनी' सेनाओंसे युक्त द्युमान् और शक्त निकले। शिशुपालके दो मन्त्रियोंके नाम थे, रङ्ग और पिङ्ग। वे दोनों क्रमशः 'पृतना' और 'अक्षौहिणी' सेना लिये युद्धके लिये नगरसे बाहर आये ॥ १ २ ॥

नरेश्वर ! शिशुपालकी महासेना प्रलयकालके महासागरके समान उमड़ती आ रही थी। उसे देखकर यदुवंशी वीर भगवान् श्रीकृष्णको ही जहाज बनाये, उस सैन्य-

सागरसे पार होनेके लिये सामने आये। महाबली द्युमान् शिशुपालसे प्रेरित हो 'वाहिनी' सेनासहित आगे बढ़कर यादव योद्धाओंके साथ युद्ध करने लगा। समराङ्गणमें दोनों सेनाओंकी बाण वर्षासे अन्धकार छा गया। घोड़ोंकी टापोंसे इतनी धूल उड़ी कि आकाश आच्छादित हो गया। नरेश्वर! दौड़ते हुए घोड़े उछलकर हाथियोंके मस्तकपर पाँव रख देते थे और घायल हुए हाथी युद्धभूमिमें पैरोंसे शत्रुओंको गिराते और सूँड़की फुफकारोंसे इधर उधर फेंकते-कुचलते आगे बढ़ रहे थे। उनके मस्तकपर कस्तूरी और सिन्दूरसे पत्र-रचना की गयी थी और ऊपर लाल रंगकी झूल उनकी शोभा बढ़ाती थी। पैदल सैनिक बाणों, गदाओं, परिघों, तलवारों, शूलों और शक्तियोंकी मारसे अङ्ग-अङ्ग कट जानेके कारण धराशायी हो रहे थे। उनके पैर, घुटने और बाहुदण्ड छिन्न भिन्न हो गये। राजन्! कोई अपनी तीखी तलवारसे युद्धमें घोड़ोंके दो टुकड़े कर देता था। कितने ही वीर हाथियोंके दाँत पकड़कर उनके मस्तकोंपर चढ़ जाते थे और सिंहकी भाँति महावतों तथा हाथी-सवारोंको चीर फाड़ डालते थे। बहुत-से महाबली घुड़सवार योद्धा हाथियोंके कुम्भस्थलको फोड़कर शत्रु-सैनिकोंपर खड्गका प्रहार करते और उन्हें विदीर्ण कर डालते थे। ऐसा दिखायी देता था कि घोड़ोंकी पीठसे उनका सम्बन्ध नहीं होता है। वे नटोंकी तरह विद्युत्-वेगसे घोड़ोंपर चढ़ते-उतरते रहते थे॥ ३—११॥

शत्रुओंकी सेनाका वेगपूर्वक आक्रमण होता देख अक्रूर सामने आये। उन्होंने बाणोंकी वर्षासे दुर्दिन (बरसात) का दृश्य उपस्थित कर दिया। द्युमान्‌ने भी अपने धनुषसे छूटे हुए बाणसमूहोंकी बौछारसे अक्रूरको आच्छादित कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे बादल वर्षाकालमें सूर्यको ढक देता है। गान्दिनी-पुत्र अक्रूरने क्रोधसे मूर्च्छित हो द्युमान्‌के बाण-समूहोंपर विजय पाकर उस वीरके ऊपर शक्तिसे प्रहार किया। उस प्रहारसे द्युमान्‌का अङ्ग विदीर्ण हो गया। वह दो घड़ीके लिये अपनी चेतना खो बैठा। परंतु शिशुपालके उस बलवान् मित्रने फिर शीघ्र ही उठकर युद्ध आरम्भ कर दिया। द्युमान्‌ने लाख भार लोहेकी बनी हुई एक भारी गदा हाथमें ली और उसके द्वारा अक्रूरकी छातीपर चोट करके मेघके समान गर्जना की। उसके प्रहारसे अक्रूर मन ही-मन किंचित् व्याकुल हो उठे। तब बार-बार अपने धनुषकी टंकार करते हुए युयुधान (सात्यकि) सामने आये। उन्होंने खेल खेलमें एक ही बाण मारकर तुरंत द्युमान्‌का मस्तक काट डाला। द्युमान्‌के गिर जानेपर उसके वीर सैनिक युद्धका मैदान छोड़कर भाग चले॥ १२—१७॥

उसी समय अपनी सेनाको भागती देख शक्र वहाँ आ पहुँचा। उसने बुद्धिमान् युयुधानपर सहसा शूल चलाया। युयुधानने अपने बाण-समूहोंसे उस शूलके सौ टुकड़े कर दिये। तब शक्रने परिघ उठाकर युयुधानपर दे मारा। अर्जुनके सखा युयुधान क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये। इतनेमें ही महाबली वीर कृतवर्मा वहाँ आ पहुँचा। उसने बाण मारकर अश्वसहित शक्रके भी रथको चूर-चूर कर दिया। तब शक्रने भी गदाकी चोटसे कृतवर्माके उत्तम रथको चकनाचूर कर डाला। राजन्! कृतवर्माने रथ छोड़कर शक्रको रोषपूर्वक पकड़ लिया और उसे गिराकर दोनों भुजाओंसे उछालकर एक योजन दूर फेंक दिया। उस युद्धभूमिमें शक्रके गिर जानेपर शिशुपालकी आज्ञासे उसके दोनों मन्त्री रङ्ग और पिङ्ग क्रमशः 'पृतना' और 'अक्षौहिणी' सेनाओंके साथ बाण-वर्षा करते और युद्धमें शत्रुओंको कुचलते हुए आये। मैथिलेश्वर! ऐसा जान पड़ता था, मानो अग्नि और वायु देवता एक साथ आ पहुँचे हैं। उन दोनोंकी उद्भट सेनाको देख पिताके समान पराक्रमी यादवेन्द्र प्रद्युम्न धनुष हाथमें लेकर भरी सभामें इस प्रकार बोले॥ १८—२५॥

प्रद्युम्नने कहा—योद्धाओ! रङ्ग और पिङ्गके साथ होनेवाले युद्धमें मैं अग्रगामी होकर जाऊँगा; क्योंकि रङ्ग और पिङ्ग महान् बल पराक्रमसे सम्पन्न दिखायी देते हैं॥२६॥

श्रीनारदजी कहते हैं—प्रद्युम्नकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णके बलवान् पुत्र नीतिवेत्ता महाबाहु भानु सबसे आगे होकर अपने बड़े भाईसे बोले॥ २७॥

भानुने कहा—प्रभो! जब तीनों लोक एक साथ युद्धके लिये आपके सम्मुख उपस्थित दिखायी दें, तब आपके धनुषकी टंकार होगी, इसमें संशय नहीं है। मैं केवल तलवारसे ही रङ्ग और पिङ्गके मस्तक काटकर तरबूजके दो टुकड़ोंकी भाँति हाथमें लिये यहाँ प्रवेश करूँगा॥२८-२९॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्युमान् और शक्रका वध' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

भानुके द्वारा रङ्ग-पिङ्गका वध; प्रद्युम्न और शिशुपालका भयंकर युद्ध तथा चेदिदेशपर प्रद्युम्नकी विजय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर शत्रुसूदन भानु ढाल तलवार लेकर पैदल ही शत्रुसेनामें उसी प्रकार घुस गये, जैसे जंगली हाथी जंगलमें प्रवेश करता है। भानुने अपने खड्गसे शत्रु-योद्धाओंकी भुजाएँ काट डालीं। हाथी और घोड़े भी जब सामने या आस पास मिल जाते थे, तब वे अपनी तलवारसे उनके दो टुकड़े कर डालते थे। वे उस समराङ्गणमें शत्रुओंका छेदन करते हुए अकेले ही विचरने और शोभा पाने लगे। उनका दूसरा साथी केवल खड्ग था। जैसे कुहासे और बादलोंसे आच्छादित होनेपर भी सूर्यदेव अपने तेजसे उद्भासित होते हैं, उसी प्रकार शत्रुओंसे आवृत होनेपर भी वीरवर भानु अपने विशिष्ट तेजका परिचय दे रहे थे ॥ १—७ ॥

मिथिलेश्वर! भानुके खड्गसे जिनके कुम्भस्थल कट गये थे, उन हाथियोंके मस्तकोंसे मोती रणभूमिमें उसी प्रकार गिरते थे, जैसे पुण्यकर्मोंके क्षीण हो जानेपर स्वर्गवासी जनोंके तारे (ज्योतिर्मय रूप) भूतलपर गिर पड़ते हैं। उस समराङ्गणमें हस्तिमारक (हाथियोंको मारनेवाले) शत्रुसेनाका संहार करके महायशस्वी वीर भानु रङ्ग और पिङ्गके ऊपर टूट पड़े। भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए खड्गसे रङ्ग और पिङ्गके रथोंको नष्ट करके भानुने सारथियोंसहित उनके घोड़ोंके दो-दो टुकड़े कर डाले। तब महा-उद्भट वीर रङ्ग और पिङ्गने भी खड्ग लेकर भानुपर प्रहार किया। परंतु भानुके शरीरतक पहुँचते ही वे दोनों खड्ग टूक-टूक हो गये। भानुकी तलवारकी चोटसे रङ्ग और पिङ्गके मस्तक एक साथ ही युद्ध-भूमिमें जा गिरे। यह अद्भुत-सी बात हुई। विजयी वीर भानु सेनापतियोंसे प्रशंसित हो रङ्ग और पिङ्गके मस्तक लेकर प्रद्युम्नके सामने आये। उस समय मानवीय दुन्दुभियोंके साथ देव-दुन्दुभियाँ भी बज उठीं। सब ओर जय जयकार होने लगा। देवताओंने फूल बरसाये। रङ्ग और पिङ्गके मारे जानेका समाचार सुनकर शिशुपालके रोषकी सीमा न रही। वह विजयशील रथपर आरूढ़ हो यादवोंके सामने गया। उसके साथ मदकी धारा बहानेवाले, सोनेके हौदेसे युक्त और रत्नजटित कम्बल (कालीन या झूल) से भूषित बहुत-से विशालकाय गजराज चले, जिनके हिलते हुए घंटोंकी घनघनाहट दूर दूरतक फैल रही थी। देवताओंके विमानोंकी भाँति शोभा पानेवाले रथों, वायुके तुल्य वेगशाली तुरंगमों तथा विद्याधरोंके सदृश पराक्रमी वीरोंके द्वारा वह पृथ्वीतलको निनादित करता हुआ चल रहा था ॥ ८—१३ ॥

नरेश्वर! शिशुपालकी सेनाको आती देख धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न इन्द्रके दिये हुए रथपर आरूढ़ हो सबके आगे होकर उसका सामना करनेके लिये चले। उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओं और आकाशको गुँजाते हुए अपना शङ्ख बजाया। दूसरोंको मान देनेवाले नरेश! उस शङ्ख-नादसे शत्रुओंके हृदयमें कँपकँपी होने लगी। शिशुपालकी विशाल सेना राजप्रासाद या राजकीय दुर्गकी भाँति दुर्गम थी। उसमें प्रवेश करनेके लिये रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने सहसा बाणोंका सोपान बनाया। दमघोषनन्दन बुद्धिमान् शिशुपालने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए ब्रह्मास्त्रका संधान किया, जिसको उसने दत्तात्रेयजीसे सीखा था। उसके प्रचण्ड तेजको सब ओर फैलता देख युद्धभूमिमें रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नने भी ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग करके लीलापूर्वक शत्रुके उस अस्त्रका संहार कर दिया। नरेश्वर! तब महा-बुद्धिमान् शिशुपालने अङ्गारास्त्रका प्रयोग किया, जिसे जमदग्नि-नन्दन परशुरामने महेन्द्र पर्वतपर उसको दिया था। उस अस्त्रके द्वारा अङ्गारोंकी वर्षा होनेसे प्रद्युम्नकी सेना अत्यन्त व्याकुल हो उठी। तब श्रीकृष्णकुमारने महादिव्य पर्जन्यास्त्र-का प्रयोग किया। उससे मेघोंद्वारा जलकी मोटी धाराएँ गिरायी जाने लगीं, अतः सारे अङ्गार बुझ गये। तब शिशुपालने कुपित होकर गजास्त्रका संधान किया, जिसकी शिक्षा उसे अगस्त्य मुनिने मलयाचलपर दी थी। उस अस्त्रसे अत्यन्त उद्भट करोड़ों विशालकाय गजराज प्रकट होने लगे। उन्होंने महात्मा प्रद्युम्नकी सेनाको रणभूमिमें गिराना आरम्भ किया। इससे यादवोंकी सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया। यह देख युद्धमें होड़ लगाकर आगे बढ़नेवाले प्रद्युम्नने नृसिंहास्त्रका संधान किया। उससे नृसिंहका प्राकट्य हुआ, जो अपनी गर्जनासे भूतलको प्रतिध्वनित कर रहे थे।

उनके अथाह चमक रहे थे। उनकी गर्दन और पूँछके बाल बड़े-बड़े थे। पंजोंके नख हलकी फालके समान बड़े-बड़े होनेके कारण उनके स्वरूपकी भयंकरताको बढ़ा रहे थे। नृसिंह उस समराङ्गणमें उन हाथियोंका भक्षण करते हुए हुंकारके साथ सिंहनाद करने लगे। उन हाथियोंके कुम्भस्थलोंको विदीर्ण करके उछलते हुए भगवान् नृसिंह समस्त गज समूहोंका मर्दन करके वहीं अन्तर्धान हो गये। तब महाबली शिशुपालने रोषपूर्वक परिघ चलाया। परंतु माधव प्रद्युम्नने यमदण्डसे मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये। फिर तो चेदिराज शिशुपालके रोषकी सीमा न रही। उसने ढाल और तलवार लेकर प्रद्युम्नपर इस प्रकार धावा किया, जैसे पतंग प्रज्वलित अग्निकी ओर टूटता है। श्रीकृष्णकुमारने वेगपूर्वक उसके खड्गपर यमदण्डसे प्रहार किया, जिससे ढाल-सहित उसकी वह तलवार चूर-चूर हो गयी। फिर यादवेश्वर प्रद्युम्नने सहसा वरुणके दिये हुए पाशसे दमघोषपुत्र शिशुपालको बाँधकर समराङ्गणमें घसीटना आरम्भ किया। अब उन्होंने शिशुपालका काम तमाम करनेके लिये रोषपूर्वक तलवार हाथमें ली। इतनेमें ही गदने वेगसे आगे बढ़कर उनके दोनों हाथ पकड़ लिये ॥ १४—३१ ॥

गद बोले—रुक्मिणीनन्दन ! परिपूर्णतम महात्मा श्रीकृष्णके हाथसे इसका वध होनेवाला है; इसलिये तुम इसे मारकर देवताओंकी बात झूठी न करो ॥ ३२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! शिशुपालके बाँध लिये जानेपर बड़ा भारी कोलाहल मचा। उस समय चेदिराज दमघोष भेंट लेकर प्रद्युम्नके सामने आये। उन्हें आया देख शीघ्र ही अपने अस्त्र-शस्त्र फेंककर प्रद्युम्न आगे बढ़े। उन्होंने चेदिराजके चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया। महाराज दमघोष महात्मा प्रद्युम्नसे मिलकर उन्हें आशीर्वाद देते हुए गद्गद वाणीमें बोले ॥ ३३—३५ ॥

दमघोषने कहा—यादव-शिरोमणे प्रद्युम्न ! तुम धन्य हो। दयानिधे ! मेरे पुत्रने जो अपराध किया है, उसे क्षमा कर दो ॥ ३६ ॥

श्रीप्रद्युम्न बोले—प्रभो ! इसमें न मेरा दोष है, न आपका और न आपके पुत्रका ही दोष है। जो कुछ भी प्रिय अथवा अप्रिय होता है, वह सब मैं कालका किया हुआ ही मानता हूँ ॥ ३७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! प्रद्युम्नके यों कहनेपर राजा दमघोष उनके द्वारा बाँधे गये शिशुपालको छुड़ाकर उसे साथ ले चन्द्रिकापुरीमें गये। साक्षात् श्रीकृष्णके समान तेजस्वी प्रद्युम्नके बल-पराक्रमका समाचार सुनकर प्रायः कोई राजा उनके साथ युद्ध करनेको उद्यत नहीं हुए। सबने चुपचाप उनकी सेवामें भेंट अर्पित कर दी ॥ ३८-३९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वृक-पिङ्गका वध, शिशुपालका युद्ध और चेदिदेशपर विजय' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

यादव-सेनाका कोङ्कण, कुटक, त्रिगर्त, केरल, तैलंग, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि देशोंपर विजय प्राप्तकर करूष देशमें जाना तथा वहाँ दन्तवक्त्रका घोर युद्ध

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! तदनन्तर मनुतीर्थमें स्नान करके प्रद्युम्न बारंबार दुन्दुभि बजवाते हुए यादव-सेनाके साथ कोङ्कण देशमें गये। कोङ्कण देशका राजा मेधावी गदायुद्धमें अत्यन्त कुशल था। वह मल्लयुद्धके द्वारा विपक्षीके बलकी परीक्षा करनेके लिये अकेला ही आया। उसने सेनासहित प्रद्युम्नसे कहा—'यादवेश्वर ! मुझे गदायुद्ध प्रदान करो। प्रभो ! मेरे बलका नाश करो' ॥ १—३ ॥

प्रद्युम्न बोले—हे मल्ल ! इस भूतलपर एक-से-एक बढ़कर बलवान् वीर हैं, अतः तुम अपने बलपर घमंड न करो। भगवान् विष्णुकी माया बड़ी दुर्गम है। हमलोग बहुत-से वीर यहाँ एकत्र हैं और तुम अकेले ही हमसे युद्ध करनेके लिये आये हो। महामल्ल ! यह अधर्म दिखायी देता है, अतः इस समय लौट जाओ ॥ ४-५ ॥

मल्ल बोला—जब आपलोग बलशाली वीर होकर भी युद्ध नहीं कर रहे हैं, तो मेरे पैरोंके नीचेसे होकर निकल जाइये; तभी अब यहाँसे लौटूँगा ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिल ! उस मल्लके यों कहनेपर समस्त यादव-पुंगव वीर क्रोधसे भर गये। तब उसके देखते-देखते बलदेवजीके छोटे भाई बलवान् वीर गद गदा लेकर सामने खड़े हो गये। फिर वह भी सबके सम्मुख गदा उठाकर खड़ा हो गया। उस महाबली मल्लने गदके ऊपर एक बड़ी भारी गदा फेंकी। गदने उसकी गदाको हाथमें थाम लिया और अपनी गदा उसके ऊपर दे मारी। गदकी गदासे आहत होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और मुखसे रक्त वमन करने लगा। अब उसने युद्धकी इच्छा त्याग दी। तदनन्तर कोङ्कणवासी मेधावीने श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नको प्रणाम करके कहा—'मैंने आपलोगोंकी परीक्षाके लिये यह कार्य किया था। आप तो साक्षात् भगवान् ही हैं। कहाँ आप और कहाँ मुझ जैसा प्राकृत मनुष्य! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ' ॥ ७–१२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर, भेंट देकर और श्रीहरिके पुत्रको नमस्कार करके कोङ्कण देशका राजा क्षत्रिय-शिरोमणि मेधावी अपनी पुरीको चला गया। कुटक देशका स्वामी मौलि शिकार खेलनेके लिये नगरसे बाहर निकला था। उसे जाम्बवतीकुमार महाबाहु साम्बने जा पकड़ा। उससे भेंट लेकर प्रद्युम्न दण्डकारण्यको गये। वहाँ मुनियोंके आश्रम देखते हुए सेनासहित श्रीकृष्ण-कुमार क्रमशः निर्विन्ध्या, पयोष्णी तथा तापी नदीमें स्नान करके महाक्षेत्र शूर्पारकमें गये। वहाँसे आर्या द्वैपायनी देवीका दर्शन करके ऋष्यमूककी शोभा देखते हुए प्रवर्षण गिरिपर गये, जहाँ साक्षात् भगवान् पर्जन्य (इन्द्र) नित्य वर्षा करते हैं। वहाँसे गोकर्ण नामक शिवक्षेत्रका दर्शन करते हुए महाबली श्रीकृष्णकुमार अपने सैनिकोंके साथ त्रिगर्त और केरल देशोंपर विजय पानेके लिये गये। केरलके राजा अम्बष्ठने मेरे मुखसे महात्मा प्रद्युम्नके शुभागमनकी बात सुनकर शीघ्र ही उन्हें भेंट अर्पित कर दी। तब वे कृष्णावेणी नदीको पार करके अपने सैनिकोंकी पद-धूलि-राशिसे आकाशमें अन्धकार-सा फैलाते हुए तैलंग देशमें गये। तैलंग देशके राजाका नाम विशालाक्ष था। वे अपने नगरके उपवनमें सुन्दरियोंके साथ विहार करते थे। मधुर ध्वनियोंसे व्याप्त मृदङ्ग आदि बाजे बज रहे थे तथा अप्सराएँ उत्कृष्ट रागोंद्वारा देवेन्द्रके समान उस राजाके सुयशका गान कर रही थीं। उस समय सुन्दरी रमणी रानी मन्दारमालिनीने धूलसे व्याप्त आकाशकी ओर देखकर राजासे कहा। रानीके बिम्बोपम अरुण ओष्ठ सूख गये थे ॥ १३–२३ ॥

मन्दारमालिनी बोली—राजन्! आप सदा विहारमें ही रत रहनेके कारण दूसरी किसी बातको नहीं जानते हैं, दिन-रात कामकी उत्कण्ठाके कारण चञ्चल बने रहते हैं। और मैं भी आपके मुखपर बिखरी हुई अलकोंकी सुगन्धपर लुभायी भ्रमरी होकर अभी यह न जान सकी कि दुःख क्या होता है। परंतु आज द्वारकाके राजा उग्रसेनके राजसूय यज्ञका बीड़ा उठाकर दिग्विजयके लिये निकले हुए वे यदुराजकुमार प्रद्युम्न चेदि आदि समस्त नरेशोंको जीतकर यहाँ आ गये हैं। उनके दुन्दुभियोंकी धुंकार-ध्वनि सुनिये। उसके साथ हाथियोंके चिग्घाड़ने और घोड़ोंकी हिनहिनाहटकी ध्वनि भी मिली हुई है। शङ्खोंके तुमुल नादसे वह प्रलयकालके गर्जनका अनुकरण कर रही है। शत्रुघाती प्रद्युम्नके पास तुरंत भेंट भेज दीजिये। डरकर भागती हुई भूपसुन्दरियोंकी ओर देखिये, इनके बँधे हुए केशपाशोंसे फूल झड़ गये हैं। ये कमलरूप (नेत्रोंसे) जलकी वर्षा कर रही हैं और वनमें पलायन करनेके कारण इनके केशोंके शृङ्गार बिगड़ गये हैं—स्पष्ट प्रतीत नहीं हो रहे हैं ॥ २४–२७ ॥

पत्नीकी बात सुनकर राजा विशालाक्ष अत्यन्त प्रसन्न हो भेंट-सामग्री लेकर प्रद्युम्नके सामने आये। उनके द्वारा पूजित और सम्मानित हो धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ साक्षात् प्रद्युम्न पम्पा सरोवर तीर्थमें स्नान करके वहाँसे महाराष्ट्रकी ओर चल दिये। महाराष्ट्रके राजा विमल विष्णुभक्त थे। उन्होंने बड़े भक्तिभावसे श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नका सब प्रकारसे पूजन किया। इसी प्रकार कर्नाटकके राजा सहस्रजित् स्वयं ही बहुत-सी भेंट-सामग्री लेकर आये और महात्मा प्रद्युम्नको अर्पित करके उन्होंने कल्याणके लिये उन परम प्रभु जगदीश्वरका स्तवन किया ॥ २८–३१ ॥

मिथिलेश्वर! जैसे योगी देहमें होनेवाले विषयभोगोंपर विजय पानेकी चेष्टा करता है, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न यादवोंके साथ करूष देशको जीतनेके लिये गये। नरेश्वर! वहाँ महारङ्कपुरमें परम बुद्धिमान् राजा वृद्धशर्मा रहते थे, जो वसुदेवकी बहिन श्रुतदेवाके पति थे। उनका पुत्र दन्तवक्त्र श्रीकृष्णका शत्रु कहा गया है। उसने भी शिशुपालकी भाँति कुपित हो यादवोंके साथ स्वयं युद्ध करनेका विचार किया। यद्यपि माता-पिताने

उसे मना किया, तथापि दैत्योंके प्रति अनुराग रखनेवाले उस दैत्यने 'मैं यादवोंको मार डालूँगा'—इस प्रकार अपना क्रोध प्रकट किया । वह लाख भारकी बनी हुई भारी गदा लेकर प्रद्युम्नकी सेनाके सामने अकेला ही युद्ध करनेके लिये गया । दन्तवक्त्रके शरीरका रंग काला था । वह कोयलेके पहाड़-सा जान पड़ता था । उसकी जीभ लपलपाती रहती थी और रूप बड़ा भयंकर था । वह दस ताड़के बराबर ऊँचा था । मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल तथा वक्षपर सोनेके कवचसे विभूषित वह करूष-राजकुमार करधनीकी लड़ें पहिने हुए था । उसके चञ्चल चरणोंमें नूपुर बज रहे थे । वह अपने वेगसे पृथ्वीको कँपाता, पर्वतों तथा वृक्षोंको गिराता और अपनी गदाके प्रहारसे शत्रुओंको कालके गालमें भेजता हुआ यमराजके समान दुर्जय प्रतीत होता था । समराङ्गणमें दन्तवक्त्रको उपस्थित देख समस्त यादव भयसे थर्रा उठे । उसके आते ही महान् कोलाहल मच गया । प्रद्युम्नने उसके ऊपर बारंबार धनुषकी टंकार करती हुई अठारह अक्षौहिणी विशाल सेना भेजी ॥ ३२-४१ ॥

राजन् ! जैसे हाथी किसी पर्वतपर चारों ओरसे टक्कर मारते हों, उसी प्रकार समस्त यादवोंने बाणों, फरसों, शतघ्नियों तथा भुशुण्डियोंसे दन्तवक्त्रपर प्रहार करना आरम्भ किया । राजेन्द्र ! दन्तवक्त्रने अपनी गदासे रणभूमिमें बहुत-से उत्कट गजराजोंके कुम्भस्थल विदीर्ण करके उन्हें मार गिराया । किन्हीं हाथियोंको, जो किङ्किणी-जालसे निनादित, साँकलोंसे सुशोभित, हौदोंसे अलंकृत और चञ्चल घंटोंके रणत्कारसे युक्त थे, उसने पाँव पकड़कर उठा लिया और जैसे हवा रूईको दूर उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया । वह दैत्यराज किन्हीं-किन्हीं हाथियोंकी सूँड पकड़कर आकाशमें घुमाता और उन चिग्घाड़ते हुए गजराजोंको विभिन्न दिशाओंमें फेंक देता था । किन्हीं हाथियोंकी पीठकी हड्डियोंपर, किन्हींकी काँखोंमें—उभय पार्श्वोंमें पैरोंसे आक्रमण करके वह दैत्य कालाग्निरुद्रकी भाँति शोभा पाता था । वह वीर सारथि, घोड़े, ध्वजा और महारथियोंसहित रथोंको आकाशमें उसी तरह उछाल देता था, जैसे आँधी कमलोंको उड़ा ले जाती है । उसने घोड़ों और पैदल सैनिकोंको भी बलपूर्वक उठा-उठाकर आकाशमें फेंक दिया । बहुत-से महाबली राजकुमार ऊपर या नीचे मुँह किये शस्त्रों तथा रत्नमय केयूरोंसहित आकाशसे गिरते हुए तारोंके समान प्रतीत होते थे और मुँहसे रक्त वमन कर रहे थे । मैथिल ! उस दैत्यपुंगवने अपनी गदासे यादव-सेनाको उसी प्रकार मथ डाला, जैसे भगवान् श्रीवराहने प्रलयकालके समुद्रको अपनी दंष्ट्रासे विक्षुब्ध कर दिया था ॥ ४२-५० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कोङ्कण, कुटक, त्रिगर्त, केरल, तैलंग, महाराष्ट्र और कर्नाटकपर विजय पाकर यादव-सेनाका करूष देशमें गमन' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

दन्तवक्त्रकी पराजय तथा करूष देशपर यादव-सेनाकी विजय

श्रीनारदजी कहते हैं—तब श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंने मिलकर महाबली दन्तवक्त्रको क्षत-विक्षत कर दिया । घायल हुआ दन्तवक्त्र रक्तधारासे रञ्जित हो उसी प्रकार अत्यन्त शोभा पाने लगा, जैसे महावरके रंगसे रँगा हुआ कोई ऊँचा महल सुशोभित हो रहा हो । उसने शत्रुओंके प्रहारको कुछ भी नहीं गिना । कृतवर्माने समराङ्गणमें उसे बाण समूहोंद्वारा घायल किया, सात्यकिने तलवारसे चोट पहुँचायी और अक्रूरने उस महाबली वीरपर शक्तिसे प्रहार किया । रोहिणीनन्दन सारणने उसके ऊपर कुठारसे आघात किया । रणदुर्मद दन्तवक्त्रने भी सात्यकिको गदासे चोट पहुँचायी, कृतवर्माको हाथसे और अक्रूरको लातसे मारा तथा सारणको भुजाओंके बलसे आहत कर दिया । अक्रूर, कृतवर्मा, सात्यकि और सारण—ये चारों वीर आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । तदनन्तर जाम्बवतीकुमार साम्बने उसकी गदा लेकर, गदाके ऊपर अपनी गदा रखकर उससे दन्तवक्त्रको मारा । दन्तवक्त्रने गदा फेंक दी और जाम्बवती कुमार साम्बको पकड़कर दोनों भुजाओंसे रणमण्डलमें गिरा दिया । तब साम्बने भी उठकर उसके दोनों पैर पकड़कर उसे भूपृष्ठपर दे मारा । यह एक अद्भुत-सी बात

हुई । दन्तवक्र उठकर उस समय अट्टहास करने लगा । उसकी आवाजसे सात लोकों और पातालोंसहित समूचा ब्रह्माण्ड गूँज उठा । सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी और सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए पताका-मण्डित दिव्य रथपर आरूढ होकर आये हुए धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नकी ओर देखकर दन्तवक्रने यह कठोर बात कही ॥ १–११ ॥

दन्तवक्र बोला—तुम समस्त यादव, वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी लोग स्वल्पशक्तिवाले, तुच्छ, रणभूमिसे भागे हुए और युद्धभीरु हो । राजा ययातिके शापसे तुम्हारा तेज भ्रष्ट हो गया है । तुम राज्यभ्रष्ट और निर्लज्ज हो । मैं अकेला हूँ और तुम बहुसंख्यक हो; तथापि अधर्म मार्गपर चलनेवाले तथा धर्मशास्त्रकी मर्यादाको विलुप्त करनेवाले तुम नराधमोंने मेरे साथ युद्ध किया है । तुम्हारा पिता श्रीकृष्ण पहले नन्दके पशुओंका चरवाहा था । वह ग्वालोंकी जूठन खाता था, किंतु आज वही यादवोंका ईश्वर बना बैठा है । उसने गोपियोंके घरमें माखन, दही, घी, दूध और तक्र आदि गोरसकी चोरी की थी । वह रासमण्डलमें रसिया बनकर नाचता था, किंतु अब जरासंधके भयसे उसने भी समुद्रकी शरण ले ली है । जो कालयवनके सामने डरपोककी तरह भागा था, वही आज 'यदुनाथ' बना है । उसके दिये हुए थोड़े-से राज्यको पाकर उग्रसेन उस अल्पसारके लिये यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ करेगा ! कालकी गति दुर्लङ्घ्य है । अहो ! सारा संसार विचित्र हो गया । अत्यन्त दुर्बल सियार सिंह और व्याघ्रपर शासन करने चला है ! ॥ १२–१८ ॥

श्रीप्रद्युम्नने कहा—ओ निन्दक ! पहिले कुण्डिन-पुरमें तूने यादवोंके बड़े-बड़े बलको शायद नहीं देखा था, किंतु आज यहाँ देख लेगा । करूषराज ! तुमलोग मेरे सम्बन्धी हो, यह जानकर मैं तुमसे युद्ध नहीं करना चाहता था । किंतु तूने बलपूर्वक युद्ध छेड़ दिया । यह तेरे द्वारा धर्मशास्त्रानुमोदित कार्य ही तो किया गया है । नन्दराज साक्षात् द्रोण नामक वसु हैं, जो गोप-कुलमें अवतीर्ण हुए हैं । गोलोकमें जो गोपालगण हैं, वे साक्षात् श्रीकृष्णके रोमसे प्रकट हुए हैं और गोपियाँ श्रीराधाके रोमसे उद्भूत हुई हैं । वे सब-की-सब यहाँ व्रजमें उतर आयी हैं । कुछ ऐसी भी गोपाङ्गनाएँ हैं, जो पूर्वकृत पुण्यकर्मों तथा उत्तम वरोंके प्रभावसे श्रीकृष्ण-को प्राप्त हुई हैं । भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा हैं, असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्पर ब्रह्म हैं । जिनके अपने तेजमें सम्पूर्ण तेज विलीन होते हैं, उन्हें ब्रह्मा आदि उत्कृष्ट देवता साक्षात् 'परिपूर्णतम' कहते हैं, पूर्वकालमें जो चक्रवर्ती राजा मरुत्त थे, वे ही श्रीकृष्णके वरदानसे यादवराज उग्रसेन हुए हैं । तू निरङ्कुश और महामूर्ख है, जो महान् गुणशाली महा-पुरुषकी निन्दा करता है । जैसे सिंह गीदड़की आवाजपर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार महाराज उग्रसेन अथवा भगवान् श्रीकृष्ण तेरी बकवासपर कोई विचार नहीं करेंगे ॥ १९–२६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! प्रद्युम्नकी ऐसी बात सुनकर मदमत्त दन्तवक्र एक भारी गदा लेकर उनके रथपर टूट पड़ा । उसने अपनी गदासे चोट करके उस रथके सहस्र घोड़ोंको गिरा दिया और गर्जना करने लगा । उसका भयंकर रूप देखकर सब घोड़े भाग चले । तब प्रद्युम्नने भी गदा लेकर उसकी छातीमें बड़े जोरसे प्रहार किया । उस प्रहारसे दैत्यराज दन्तवक्र मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा । अब उन दोनोंमें गदासे घोर युद्ध होने लगा । गदाओंसे परस्पर प्रहार करते हुए वे दोनों वीर एक-दूसरेको रणभूमिमें रौंदने और गर्जने लगे । राजन् ! उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वतपर दो सिंह आपसमें जूझ रहे हों ॥ २७–३० ॥

दन्तवक्रने दोनों हाथोंसे श्रीकृष्णकुमारको पकड़कर भूमि-पर उसी प्रकार गिरा दिया, जैसे एक सिंहने दूसरे सिंहको बलपूर्वक पटक दिया हो । प्रद्युम्नने भी उठकर बलपूर्वक उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और भुजाओंद्वारा घुमाकर उसे पृथ्वी-पर दे मारा । प्रद्युम्नके प्रहारसे वह रक्त वमन करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं; शरीर शिथिल हो गया । उसे मूर्छा आ गयी । वह आकृतिसे घबराया हुआ प्रतीत होने लगा । दन्तवक्र इन्द्रके वज्रसे आहत हुए पर्वतकी भाँति भूपृष्ठपर सुशोभित हो रहा था । उसके शरीरके धक्केसे समुद्रसहित पृथ्वी हिलने लगी, दिग्गज विचलित हो उठे, तारे खिसक गये और समुद्र काँपने लगे । राजेन्द्र ! उसके गिरनेके धमाकेसे तीनों लोकोंके कान बहरे हो गये । उसी समय करूषराज महात्मा वृद्धशर्मा रानी श्रुतदेवाके साथ महाराज-

पुरसे वहाँ आ पहुँचे। वे यादवोंके साथ सुन्दर ढंगसे संधि करना चाहते थे। मिथिलेश्वर! वे शम्बरशत्रु प्रद्युम्नको भेंट देकर, पुत्रको साथ ले, संधि करके यदुपुंगवोंसे पूजित हो, पुनः महारङ्गपुरको चले गये ॥ ३१—३७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'दन्तवक्त्रके साथ युद्धमें करूष देशपर विजय' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

उशीनर आदि देशोंपर प्रद्युम्नकी विजय तथा उनकी जिज्ञासापर मुनिवर अगस्त्यद्वारा तत्त्वज्ञानका प्रतिपादन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! दक्षिण सागरमें स्नान करके यादवराज प्रद्युम्न वहाँसे सेनासहित उशीनर देशको जीतनेके लिये आये, जहाँ ग्वालोंकी मण्डलीके साथ कोटि-कोटि भव्यमूर्तिवाली गौएँ विचरती और चरती हैं। उशीनर देशके लोग दूध पीते और गोरे रंगके मनोहर रूपवाले होते हैं। वे मक्खनकी भेंट लेकर प्रद्युम्नके सामने गये। उनसे पूजित होकर प्रद्युम्नने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, वस्त्र और भूषण आदि बहुत धन दिया। उशीनरकी राजधानी चम्पावती नामक पुरी मणि और रत्नोंसे सम्पन्न थी। वह राजाओंसे उसी प्रकार शोभा पाती थी, जैसे सर्पोंसे भोगवतीपुरी। चम्पावतीके स्वामी वीर राजा हेमाङ्गद शीघ्र ही भेंट लेकर आये। उन्होंने श्रीकृष्ण-कुमार प्रद्युम्नको प्रणाम किया। उनसे संतुष्ट होकर प्रद्युम्नने उन्हें केसरयुक्त कमलोंकी माला दी और सहस्रदलोंकी शोभासे सम्पन्न एक दिव्य कमल भी अर्पित किया ॥ १—७ ॥

तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न धनुष धारण किये तथा बार-बार दुन्दुभि बजवाते हुए अपनी सेनाके साथ विदर्भ देशको गये। कुण्डिनपुरके राजा भीष्मकने वहाँ पधारे हुए रुक्मिणीपुत्रको अपने घर ले आकर बहुत धन दे, सेनासहित उनका पूजन किया। तत्पश्चात् नानाको प्रणाम करके बलवान् यादवेश्वर रुक्मिणीनन्दन कुन्त और दरद देशोंको गये। मार्गमें मलयाचलके चन्दनको स्पर्श करता हुआ समीर उनकी सेवा कर रहा था। श्रीखण्ड और केतकी पुष्पोंकी गन्धसे भरे हुए मलयाचलपर उन्होंने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यका दर्शन किया, जो किसी समय महासागरको पी गये थे। श्रीकृष्णकुमार दोनों हाथ जोड़कर उन महामुनिको नमस्कार करके उनकी पर्णशालामें खड़े हो गये। मुनिने शुभाशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया ॥ ८—१२ ॥

तब श्रीप्रद्युम्नने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! यह जगत् तो दृश्य-पदार्थ होनेके कारण मिथ्या है*, फिर सत्यकी भाँति कैसे स्थित है? तथा जीव ब्रह्मका अंश होनेके कारण नित्य-मुक्त है, ऐसा होनेपर भी यह गुणोंसे कैसे बँध जाता है? यह मेरा प्रश्न है, आप इसका भलीभाँति निरूपण कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ, दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न तथा समस्त ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ १३-१४ ॥

अगस्त्यजीने कहा—रुक्मिणीनन्दन! तुम साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र हो, तथापि मुझसे प्रश्न करते हो! तुम्हारा यह प्रश्न पूछना लीलामात्र है (क्योंकि तुम सर्वज्ञ हो)। प्रभो! जैसे भगवान् श्रीहरि लोक-संग्रहके लिये ही कर्म करते हैं, उसी प्रकार तुम भी मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये विचर रहे हो। जैसे सत्य सूर्यका जलमें जो प्रतिबिम्ब दिखायी देता है, वह मिथ्या होनेपर भी सत्य-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार प्रकृति और परमात्माका प्रतिबिम्बस्वरूप यह दृश्य जगत् असत् होनेपर भी सत्य-सा दृष्टिगोचर होता है। जैसे शीशेमें मुख, रस्सीमें सर्प तथा बालुका-राशिमें जलकी सत्यवत् प्रतीति होती है, उसी प्रकार यह सत् परमात्मा देहगत सत्त्वादि गुणोंसे बद्ध जान पड़ता है—अन्तःकरणरूपी दर्पणमें सत्का प्रतिबिम्ब ही जीवरूपमें प्रतीतिगोचर होता है। (शीशेमें मुख आबद्ध न होनेपर भी बद्ध-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार नित्यमुक्त परमात्मा सत्त्वादि गुणमय अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित होकर बद्ध-सा जान पड़ता है) ॥ १५—१८ ॥

प्रद्युम्नने पूछा—ब्रह्मज्ञ शिरोमणे! जिस उपायसे इस

* जगत्के मिथ्यात्वका साधक अनुमान प्रमाण इस प्रकार है—जगत् असत्, दृश्यमानत्वात् स्वप्नदृष्टपदार्थवत्।

वैराग्य प्राप्त करके देहधारी जीव क्षणमपि बन्धनमें न पड़े, वह मुझे बताइये ॥ १९ ॥

अगस्त्यजीने कहा—जो विवेकका आश्रय लेकर जगत्को मनोमय (मनके संकल्पमात्रसे प्रकट) मानकर सनातन ब्रह्मका भजन करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। राजन्! उस परमात्माको जन्म, मृत्यु, शोक, मोह, बाल्य, यौवन, जरा, अहंता, मद, व्याधियाँ, डर, सुख, दुःख, क्षुधा, रति, मानसिक चिन्ता और भय कभी नहीं प्राप्त होते; क्योंकि आत्मा निरीह (चेष्टारहित), निराकार, सर्वथा अहंकारशून्य, शुद्धस्वरूप, गुणोंका आश्रय, साक्षात् परमेश्वर, निष्कल तथा आत्मद्रष्टा है। जिसको मुनीश्वरोंने सदा पूर्ण एवं ज्ञानमय जाना है, उस परब्रह्म परमात्माको जानकर यह जीव सुखपूर्वक विचरे ॥ २०—२३ ॥

जो पुरुष (आत्मा) इस जगत्के सो जानेपर भी जागता है, सबको देखता है, उस द्रष्टाको यह लोक कभी नहीं देखता, कदापि नहीं जानता। जैसे विभिन्न रंगोंसे स्फटिक-मणि कभी लिप्त नहीं होती तथा जैसे आकाश कोटरोंसे, अग्नि काष्ठसे और वायु चलती हुई धूलसे लिप्त नहीं होती, उसी प्रकार ब्रह्म गुणोंसे कभी लिप्त नहीं होता। जो लक्षणाओंसे, व्यञ्जनाद्वारा व्यक्त होनेवाली ध्वनि एवं अलङ्कारोंसे कभी ज्ञानका विषय नहीं होता, वह लौकिक वाक्योंद्वारा कैसे जाना जा सकता है। उस अन्तर्यामी परब्रह्मको नमस्कार है। कुछ लोग इस परमात्माको 'कर्म' कहते हैं, दूसरे लोग उसे 'काल'की संज्ञा देते हैं। अन्य विद्वान् उसे 'कर्त्ता' एवं 'योग' कहते हैं, दूसरे विचारक उसको 'सांख्य' एवं 'ब्रह्म' बताते हैं। कोई 'परमात्मा' और 'वासुदेव' कहते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, निगमागम तथा आत्मानुभवसे उस परब्रह्मके स्वरूपका विचार करके इस जगत्में अनासक्तभावसे विचरे। जैसे जल के चञ्चल होनेसे उसमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमा भी चञ्चल-से प्रतीत होते हैं और नेत्रोंके घूमनेसे धरती भी घूमती-सी दिखायी देती है, उसी प्रकार गुणोंके भ्रमणसे मनके भ्रान्त होनेपर उसमें स्थित आत्मा भी भ्रान्त-सा जान पड़ता है ॥ २४—३० ॥

राजन्! जैसे हाथसे घुमाया जाता हुआ अलातचक्र मण्डलाकार घूमता जान पड़ता है, उसी प्रकार गुणोंद्वारा भ्रान्त मनके द्वारा अज्ञानविमोहित जीव ऐसा कहने और मानने लगता है कि 'मैं करूँगा, मैं कर्ता हूँ, यह मेरा है, वह तुम्हारा है, यह तुम हो, यह मैं हूँ, मैं सुखी हूँ और मैं दुःखी हूँ' इत्यादि।

सत्त्व, रज और तम—ये तीनों प्रकृतिके गुण हैं, आत्माके नहीं। उन गुणोंद्वारा यह सारा जगत् उसी तरह व्याप्त है, जैसे सूतसे वस्त्र ओत-प्रोत होता है। सत्त्वगुणमें स्थित जीव ऊपर-को जाते हैं, रजोगुणी जीव मध्यवर्ती लोकमें रहते हैं तथा तमोगुणकी वृत्तिमें स्थित तामसजन नीचे (नरकादिमें) जाते हैं। श्रीकृष्णकुमार! जैसे अँधेरेमें रखी हुई रस्सीमें सर्पबुद्धि होती है, दूरसे मरीचिका (सूर्यकिरण) में जलकी भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार अज्ञानमोहित जीव परब्रह्ममें इस जगत्की भ्रान्त धारणा बना लेता है। सुखको उसी तरह आने-जानेवाला समझो, जैसे मण्डलवर्ती राजाओंका राज्य। मनुष्योंका दुःख भी उसी प्रकार है, जैसे नरकवासियोंका। धनमाला, देहके गुण तथा दिन और रात जैसे स्थिर नहीं होते, उसी तरह सुख-दुःख भी स्थिर नहीं है। जैसे तीर्थ-यात्रियों या व्यापारियोंका समुदाय सदा साथ नहीं रहता, उसी तरह यह दृश्य प्रपञ्च भी शाश्वत नहीं है। कोई भी वस्तु सदा नहीं रहती। जैसे पंख निकल आनेपर पक्षीको घोंसलेसे और नदीके पार चले जानेपर पथिकको नावसे कोई प्रयोजन नहीं रहता, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जानेपर अभिमान उत्पन्न करनेवाले लोकसे क्या प्रयोजन रह जाता है। समदर्शी मुनि इसी प्रकार अपने मार्गका शीघ्र निश्चय करके असङ्गभावसे विचरे। जैसे अनेक जलपात्रोंमें एक ही चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होता है और जैसे काष्ठसमूहमें एक अग्नि व्याप्त है, उसी प्रकार एक ही साक्षात् भगवान् परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है। जैसे महान् आकाश घट और मठके बाहर तथा भीतर भी अभिन्नभावसे विद्यमान है, उसी प्रकार परमात्मा अपने ही द्वारा उद्भावित देहधारियोंके बाहर-भीतर निर्लिप्तरूपसे विराजमान है। जो भगवान् श्रीकृष्णका शान्तचित्त, ज्ञाननिष्ठ एवं वैराग्यवान् भक्त है, उसे गुण उसी प्रकार नहीं छूते, जैसे जल कमलदलको स्पर्श नहीं करता। ज्ञानी पुरुष सदा आनन्दमग्न हो बालककी भाँति विचरता है। वह अपने शरीरकी ओर उसी प्रकार दृष्टि नहीं रखता, जैसे मदिरा पीकर मतवाला हुआ मनुष्य अपने पहिने हुए वस्त्रकी सँभाल नहीं रखता ॥ ३१—४१ ॥

राजन्! जैसे सूर्योदय होनेपर घरकी वस्तु दिखायी देने लगती है, उसी प्रकार अज्ञानको दूर करके ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्मतत्त्वका साक्षात्कार कर लेता है। जैसे पृथक्-पृथक् द्वारवाली इन्द्रियोंसे एक ही विषय अनेक गुणोंका

आश्रय प्रतीत होता है, उसी प्रकार एक ही ब्रह्म उसके प्रतिपादक शास्त्रमार्गोंसे अनेक-सा जान पड़ता है। नरेश्वर! इस ब्रह्मको कोई परमपद कहते हैं, कोई वैष्णवधाम बताते हैं, कोई व्यापक वैकुण्ठ, कोई शान्त, कोई परम कैवल्य तथा कोई अविनाशी परमधाम कहते हैं। किन्हींके मतमें वह अक्षरपद है, कोई उसे पराकाष्ठा कहते हैं, कोई प्रकृतिसे परे ...धाम बताते हैं और कोई पुराणवेत्ता उसको विशाद निकुञ्ज कहते हैं। इस लोकमें रहनेवाला मानव उस पद-को ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे प्राप्त करता है, दूसरे किसी साधनसे नहीं। परमपुरुष कैवल्यनाथ परात्पर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पदको मनुष्य उपर्युक्त साधनोंद्वारा उन्हींकी कृपासे प्राप्त करता है और उसे प्राप्त करके भक्त पुरुष कभी वहाँसे लौटता नहीं ॥ ४२—४७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह भागवत ज्ञान सुनकर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने दोनों हाथ जोड़, भक्ति-भावसे नमस्कार करके महामुनि अगस्त्यजीका पूजन किया ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उशीनर, विदर्भ, कुन्त, दरद आदि देशोंपर विजयके प्रसङ्गमें अगस्त्य और प्रद्युम्नकी ज्ञानचर्चा' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

शाल्व आदि देशों तथा द्विविद वानरपर प्रद्युम्नकी विजय; लङ्कासे विभीषणका आना और उन्हें भेंट समर्पित करना

नारदजी कहते हैं—राजन्! कृतमाला और ताम्रपर्णी नदियोंमें स्नान करके श्रीयादवेश्वर प्रद्युम्न अपने यादव सैनिकोंके साथ गजपुरको गये। गजपुरका स्वामी राजा शाल्व था। वह मेरे मुँहसे यादवोंका आगमन सुनकर शीघ्र ही वानरराज द्विविदके पास गया। वीर द्विविद मित्रकी सहायता करनेके लिये उद्यत हो यादवोंके प्रति मनमें अत्यन्त क्रोध लेकर प्रद्युम्नकी सेनाका सामना करनेके लिये गया। वह अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको हिला देता था। द्विविदने अपने नखों और दाँतोंद्वारा पताका और ध्वजपट्टोंको चीर डाला। वे ध्वज कश्मीरी शालोंसे आवृत, मुद्राङ्कित तथा स्वर्णभूषित थे। उसने रथोंको ऊपर उछाल दिया, हाथियोंपर वेगपूर्वक चढ़कर घोड़ोंको भगाया और वह वानरोचित किल्कारियोंके साथ भौंहें नचाकर सबको भयभीत करने लगा। इस प्रकार कोलाहल मच जानेपर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए रथपर आरूढ़ हो उसके पास आ गये। मदमत्त द्विविद उस रथके आस-पास उछलने लगा और अपनी पूँछसे घोड़ोंसहित रथ, ध्वज और छत्रको कम्पित करने लगा। प्रद्युम्नने अपने धनुषकी कोटिसे उसका गला पकड़कर खींचा। तब अत्यन्त कुपित हुए उस वानरने उनके ऊपर मुक्केसे प्रहार किया। तदनन्तर प्रद्युम्नने विधिपूर्वक धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और कानतक खींचकर छोड़े गये एक बाणसे द्विविदको बींध दिया। राजेन्द्र! उस बाणने आकाशमें आधे पहरतक द्विविदको घुमाकर सौ योजन दूर लङ्कामें गिरा दिया। वहाँ दो घड़ीतक राक्षसोंके साथ उसका युद्ध हुआ और उसने राक्षसोंको मार गिराया। राजन्! इधर यदु-कुल-तिलक प्रद्युम्नने दुन्दुभिनाद कराते हुए विजय प्राप्त करके शाल्वसे भेंट ली और दक्षिण-मथुरा (मदुरा) का दर्शन करके वे त्रिकूट पर्वतपर जा चढ़े। उधर वानरराज द्विविद त्रिकूटसे मैनाकके शिखरपर गया, मैनाकसे सिंहल जाकर वह पुनः भारतवर्षमें आया। धीरे-धीरे वानरेन्द्र द्विविद हिमालयपर गया और हिमालयके शिखरसे प्राग्ज्योतिषपुरको जा पहुँचा ॥ १—१४ ॥

यादवेश्वर प्रद्युम्न मल्लारदेशके अधिपति रामकृष्णपर विजय पाकर महाक्षेत्र सेतुबन्ध तीर्थमें गये। महावीर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न शतयोजनविस्तृत मकरालय समुद्रका दर्शन करके उसके तटपर जाकर ठहर गये। वहाँ साम्ब आदि भाइयों और अक्रूर आदि अपने यादवोंको बुलाकर योगेश्वरेश्वर प्रद्युम्नने सभामें उद्धवसे कहा ॥ १५—१७ ॥

प्रद्युम्न बोले—भोजकुलतिलक मन्त्रिवर उद्धवजी! परम तेजस्वी लङ्कापति विभीषण इस द्वीपका राजा तथा राक्षस-समूहोंका सरदार है। यदि वह शीघ्र भेंट न दे तो बताइये, यहाँ हमें क्या करना चाहिये? ॥ १८ ॥

उद्धवजीने कहा—प्रभो ! आप देवाधिदेव पुरुषोत्तमोत्तम हैं । आप ही परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र हैं, तथापि आप साधारण लोगोंकी भाँति मुझसे पूछते हैं ! बड़े-बड़े योगीश्वर भी आपकी मायाका पार नहीं पाते । भूमन् ! ब्रह्मा आदि देवता भी सदा पराजित होकर जिनके उत्तम अनुशासनका भार सदा अपने मस्तकपर ढोते हैं, वही साक्षात् पुरुषोत्तम आप हैं । मैं तो आपका दासानुदास हूँ, फिर मैं आपको क्या सलाह दूँगा ?॥ १९-२० ॥

नारदजी कहते हैं— मैथिलेश्वर ! उद्धवके यों कहनेपर श्रीहरिस्वरूप भगवान् प्रद्युम्नने एक ताड़पत्र लेकर उसपर अपना संदेश लिखा—'राक्षसराज ! तुम भोजराज उग्रसेनके लिये भेंट दो; यदि बलाभिमानवश तुम मेरी बात नहीं सुनोगे तो मैं धनुषसे छोड़े गये बाणोंद्वारा समुद्रपर सेतु बाँधकर सैन्यसमूहके साथ लङ्कापर चढ़ाई करूँगा ।' यह लिखकर प्रचण्ड-पराक्रमी प्रद्युम्नने कोदण्ड हाथमें लिया और अपने पत्रको बाणमें लगाकर उस बाणको कानतक खींचा और छोड़ दिया । उस धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचनेसे बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान टंकार-ध्वनि प्रकट हुई । उस नादसे पातालोंसहित सारे लोकोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा । प्रद्युम्नके धनुषसे छूटा हुआ बाण सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ विद्युत्के समान तड़तड़ाकर विभीषणकी सभामें गिरा । उसके गिरते ही सब राक्षस चकित-से होकर उठकर खड़े हो गये । उन दुष्टोंने बड़े वेगसे अपने कवच और शस्त्र ग्रहण कर लिये । महाबली राक्षसराज विभीषण बाणसे पत्रको खींचकर पढ़ गये । सभामें वह पत्र पढ़कर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ । उसी समय उस राजसभामें शुक्राचार्य आ पहुँचे । विभीषणने पाद्य आदि उपचारोंद्वारा उनका पूजन किया और हाथ जोड़, प्रणाम करके कहा ॥ २१-२८ ॥

विभीषण बोले—भगवन् ! यह किसका बाण है ? भूतलपर भोजराज कौन हैं और उनका बल क्या है, यह मुझे बताइये; क्योंकि आप साक्षात् दिव्यदृष्टिवाले हैं ॥ २९ ॥

श्रीशुक्रने कहा—राक्षसराज ! इस विषयमें पुराणवेत्ता विद्वान् इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं, जिसके सुननेमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है । पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पुत्र सनक आदि चार मुनि तीनों लोकोंमें भ्रमण करते हुए भगवान् विष्णुके दिव्यलोकमें गये । वे नंगे बालकके रूपमें थे । उन्हें शिशु जानकर जय और विजय नामक द्वारपालोंने, जो अन्तःपुरमें पहरेदार थे, बेंतकी छड़ीसे रोक दिया । वे श्रीहरिके दर्शनकी लालसा लेकर आये थे । रोके जानेपर उन्हें क्रोध हुआ और उन्होंने उन दोनों द्वारपालोंको शाप देते हुए कहा—'तुम दोनों दुष्ट हो; इसलिये असुर हो जाओ । तीन जन्मोंके पश्चात् शुद्ध होओगे ।' इस प्रकार शाप प्राप्त करके वे दोनों अपने भवनसे गिरे और भूमण्डलमें आकर दैत्यों तथा दानवोंसे पूजित दितिपुत्र हुए । उनमेंसे ज्येष्ठका नाम हिरण्यकशिपु था और छोटेका नाम हिरण्याक्ष । प्रलयके जलमें पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये भगवान् श्रीहरि यज्ञ-वाराहके रूपमें प्रकट हुए । उन्होंने महाबली हिरण्याक्ष नामक दैत्यको मुक्केसे मार डाला और साक्षात् चण्ड-पराक्रमी नृसिंह होकर कयाधू-कुमार प्रह्लादकी सहायता करते हुए हिरण्यकशिपुका उदर विदीर्ण कर दिया । वे ही दोनों भाई फिर केशिनीके गर्भसे विश्रवाके पुत्र होकर उत्पन्न हुए, जो सम्पूर्ण लोकोंको एकमात्र ताप देनेवाले रावण और कुम्भकर्ण कहलाये । श्रीरामचन्द्रजीके सायकोंसे घायल होकर वे दोनों युद्धभूमिमें सदाके लिये सो गये । वे महान् वेगशाली राक्षसराज रावण और कुम्भकर्ण तुम्हारी आँखोंके सामने मारे गये थे । अब उनका तीसरा जन्म हुआ । इस जन्ममें वे क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए हैं । उनका नाम शिशुपाल और दन्तवक्त्र है । वे इस युगमें भी बड़े बलवान् हैं । उन दोनोंके वधके लिये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् असंख्य-ब्रह्माण्डपति परात्पर गोलोकनाथ श्रीकृष्ण यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं । वे यादवेन्द्र बहुत-सी लीलाएँ करते हुए इस समय द्वारकामें विराजमान हैं । युधिष्ठिरके महायज्ञमें शाल्वके साथ होनेवाले युद्धमें माधव शिशुपाल और दन्तवक्त्रका वध कर डालेंगे, इसमें संशय नहीं है । उन्हींके पुत्र शम्बरसूदन प्रद्युम्न दिग्विजयके लिये निकले हैं । वे जम्बूद्वीपके समस्त राजाओंपर विजय प्राप्त करेंगे । उन सबके जीत लिये जानेपर यदु-कुल-तिलक भोजराज उग्रसेन द्वारकामें राजसूय यज्ञ करेंगे । उन्हींके धनुषसे बलपूर्वक छूटा हुआ यह प्रचण्ड वेगशाली बाण यहाँ आया है । इसपर उनके नामका चिह्न है । यह विद्युत्की गड़गड़ाहटसे भी अधिक आवाज करनेवाला है । राक्षसराज ! यह बाण समस्त दिङ्मण्डलको उद्भासित करता हुआ यहाँतक आ पहुँचा है ॥ ३०-४५ ॥

नारदजी कहते हैं—नरेश्वर ! राक्षसोंके सरदार श्रीरामभक्त विभीषणने यह जानकर कि भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी ही हैं, भेंट-सामग्री लेकर प्रद्युम्नकी सेनाके पास गये। उस समय शीघ्र ही आकाशसे उतरकर मेघके समान श्यामकान्तिसे प्रकाशित होनेवाले विशालकाय विजयदर्शी विभीषण श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नकी परिक्रमा करके हाथ जोड़ उनके सामने खड़े हो गये ॥ ४६-४७ ॥

विभीषण बोले—प्रभो ! आप साक्षात् भगवान् वासुदेव तथा सबके स्रष्टा हैं, आपको नमस्कार है। आप ही संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं; आपको प्रणाम है। मत्स्य, कूर्म और वराहावतार धारण करनेवाले आप परमेश्वरको बारंबार नमस्कार है। श्रीरामचन्द्रको नमस्कार है। भृगुकुलभूषण परशुरामजीको बारंबार नमस्कार है। आप भगवान् वामनको नमस्कार है। आप ही साक्षात् नरसिंह हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप शुद्ध-बुद्धदेवको नमस्कार है। सबकी पीड़ा हर लेनेवाले कल्किरूप आप भगवान्‌को मेरा नमस्कार है* ॥ ४८-५० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर दूसरोंको मान देनेवाले विभीषणने श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नका बड़े भक्तिभावसे सोलह उपचारोंद्वारा पूजन किया। उस समय उनकी वाणी गद्गद हो रही थी। फिर परम संतुष्ट हुए प्रद्युम्नने उनको वैराग्यपूर्ण ज्ञान, शान्तिदायिनी भक्ति तथा प्रेमलक्षणा परानुरक्ति प्रदान की। साथ ही ब्रह्माजी-की दी हुई परम दिव्य पद्मरागनिर्मित मस्तकमणि तथा पुलस्त्यपौत्र कुबेरद्वारा पूर्वकालमें दी हुई रत्नोंकी दीप्तिमती माला प्रदान की। फिर चन्द्रमाकी दी हुई चन्द्रकान्त मणि तथा उत्तम पीताम्बर परम प्रभु प्रद्युम्नने उन्हें अर्पित किये। तदनन्तर महाबली राक्षसराज विभीषण प्रद्युम्नको प्रणाम करके उन्हें भेंट देकर अपने पार्षदगणों-के साथ लङ्कापुरीको लौट गये ॥ ५१-५५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शाल्व, मल्लार एवं लङ्कापर विजय' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

मलयपर्वतके निकट दत्तात्रेयका दर्शन और उपदेश तथा महेन्द्रपर्वतपर परशुरामजीके द्वारा यादवसेनाका सत्कार और श्रेष्ठ भक्तके स्वरूपका निरूपण

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्ण-कुमार कामदेवस्वरूप प्रद्युम्न ऋषभ पर्वतका दर्शन करके श्रीरङ्गक्षेत्रमें गये। फिर काञ्चीपुरी एवं सरिताओंमें श्रेष्ठ प्राचीका दर्शन करके, कावेरी नदीके पार जाकर सह्यगिरिके समीपवर्ती देशोंमें गये। भगवान् प्रद्युम्न हरिके साथ यादवोंकी विशाल सेना भी थी। मैथिलेश्वर ! उन्होंने देखा कि उनके सैन्य-शिविरकी ओर एक खुले केशवाला दिगम्बर अवधूत भागता चला आ रहा है। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट है और उसपर धूल पड़ी हुई है। बालक उसके पीछे दौड़ रहे हैं और इधर-उधरसे तालियाँ पीट रहे हैं, कोलाहल करते हैं और हँसते हैं। उस अवधूतको देखकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उद्धवसे बोले ॥ १—४½ ॥

प्रद्युम्नने कहा—यह हृष्ट-पुष्ट शरीरवाला कौन पुरुष बालक, उन्मत्त और पिशाचकी भाँति भागा आ रहा है ! यह लोगोंसे तिरस्कृत होनेपर भी हँसता है और अत्यन्त आनन्दित होता है ॥ ५-६ ॥

उद्धव बोले—ये परमहंस अवधूत श्रीहरिके कलावतार साक्षात् महामुनि दत्तात्रेय हैं, जो सदा आनन्दमय देखे जाते हैं। इन्हींके प्रसादसे पूर्ववर्ती उत्कृष्ट नरेश सहस्रार्जुन आदि

* नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥
नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमो नमः। नमः श्रीरामचन्द्राय भार्गवाय नमो नमः ॥
वामनाय नमस्तुभ्यं नृसिंहाय नमो नमः। नमो बुद्धाय शुद्धाय कल्कये चार्तिहारिणे ॥
(गर्ग०, विश्वजित० १३ । ४८—५०)

तथा यदु एवं प्रह्लाद आदिने परम सिद्धि प्राप्त की है ॥७ ८॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर यदु-कुल-तिलक प्रद्युम्नने मुनिकी पूजा और वन्दना करके दिव्य आसनपर बिठाकर उनसे प्रश्न किया ॥ ९ ॥

प्रद्युम्न बोले—भगवन्! मेरे हृदयमें एक संदेह है, प्रभो! उसका नाश कीजिये। जगत्का स्वरूप क्या है, ब्रह्मके मार्ग कौन हैं तथा तत्त्व क्या है? यह सब ठीक-ठीक बताइये ॥ १० ॥

दत्तात्रेयने कहा—जबतक अन्धकारके कारण वस्तु दिखायी नहीं देती, तभीतक उल्का या मशालकी आवश्यकता होती है। जब महानन्द ब्रह्ममें हो जाय, तब उल्काका क्या प्रयोजन है। साधो! जगत् तभीतक टिका रहता है, जबतक तत्त्वका ज्ञान नहीं होता। परब्रह्म परमात्माके ज्ञात या प्राप्त हो जानेपर जगत्का क्या प्रयोजन है। जैसे मुखका प्रतिबिम्ब दर्पणमें दिखायी देता है, परंतु वास्तविक शरीर उससे भिन्न है, उसी प्रकार प्रधान अर्थात् प्रकृतिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है, परंतु ज्ञानके आलोकमें वह परात्पर परमात्मा सिद्ध होता है। जैसे सूर्योदय होनेपर सारी वस्तुएँ नेत्रसे दिखायी देती हैं, उसी प्रकार ज्ञानोदय होनेपर ब्रह्म तत्त्वका साक्षात्कार होता है। फिर जीव कहीं नहीं दृष्टिगोचर होता ॥ ११ -१४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उपदेश सुनकर यादवराज प्रद्युम्नने उनको नमस्कार किया और सेनाके साथ वे द्रविड़ देशमें वेंकुण्ठाचल (वेङ्कटाचल) के पास गये। द्रविड़ देशके स्वामी धर्मतत्त्वज्ञ राजर्षि सत्यवाक्ने वहाँ भक्तिसे प्रद्युम्नका आदर-सत्कार किया। फिर श्रीशैलका दर्शन करके वहाँके अद्भुत शिवालय तथा स्कन्दस्वामीका दर्शन प्राप्त कर वे पम्पा-सरोवरपर गये। तदनन्तर श्रीद्वारकानाथ प्रद्युम्न गोदावरी और भीमरथी आदि भगवन्-तीर्थोंका दर्शन करते हुए महेन्द्राचलपर गये। उस पर्वतपर क्षत्रियोंका अन्त करने-वाले भृगुवंशी परशुरामजी विराजमान थे। उन्हें नमस्कार और उनकी परिक्रमा करके श्रीकृष्णनन्दन वहाँ खड़े हो गये। राजेन्द्र! परशुरामजीने उन्हें आशीर्वाद देकर यादवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका योगशक्तिसे सत्कार किया। दाल, भात, चटनी, दहीमें भिगोयी हुई भाजीकी पकौड़ियाँ, सिखरन, अवलेह (सिरका या अचार), पालकका साग, इक्षुभक्षिका (राब और चीनीका बना हुआ भोज्य पदार्थ-विशेष), शक्करके मेलसे बना हुआ त्रिकोणाकार मिष्टान्न (गुझिया, समोसा आदि), बड़ा, मधुशीर्षक (मधुपर्क या घेवर आदि मिष्टान्न-विशेष), फेणिका (फेनी), उपरिष्ट (पूड़ी या पूआ आदि), छिद्रयुक्त शतपत्र (एक प्रकारकी मिठाई), चक्राभचिह्निका (चक्राकार चिह्नवाली मिठाई, इमिरती आदि), सुधाकुण्डलिका (जलेबी), घृतपूर (घीकी बनी हुई पूड़ी), वायुपूर (मालपूआ), चन्द्रकला, दधिस्थूली (दहीमें भीगकर फूली हुई बड़ी), कपूरसे वासित खाँडकी बनी मिठाई, गोधूमपरिखा (खाजा), इनके साथ सुन्दर-सुन्दर फल, उत्तम दधि, मोदक (लड्डू आदि), शाक-सौधान (विविध शाकोंके समुदाय), मण्ड (दूधकी मलाई या झाग), खीर, दही, गायका घी, ताजा माखन, मण्डूरी (सागका रस), कुम्हड़ा, पापड़, शक्तिका (शक्तिवर्धक पेय, द्राक्षासव आदि), लस्सी, सुवीराम्ल (खट्टी काँजी), सुधारस (शहद या मीठा शर्बत), उत्तमोत्तम फल, मिश्री, नाना प्रकारके फल, मोहनभोग, (हलुआ), नमकीन पदार्थ, कसैले, मीठे, तीते, कड़वे और खट्टे अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ —इन सबको छप्पन भोग कहा गया है। भृगुकुलभूषण परशुरामजीने अपने योग-बलसे इन सब पदार्थोंके पर्वत-जैसे ढेर लगा दिये। सारी सेना भोजन कर चुकी, तब भी वहाँ वे खाद्य पदार्थोंके पर्वत हाथभर भी छोटे नहीं हुए। परशुरामजीका यह वैभव देखकर सब लोग अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। राजन्! यादवोंसहित श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने उस समय परशुरामजीको नमस्कार करके सबके सामने इस प्रकार पूछा ॥ १५—३०१/२ ॥

प्रद्युम्न बोले—भगवन्! आपने हम सब लोगोंको अत्यन्त उत्तम भोजन प्रदान किया। प्रभो! सारी समृद्धियाँ और सिद्धियाँ आपके चरणोंमें लोटती हैं। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि समस्त हरिभक्तोंमें श्रीहरिका प्रिय भक्त कौन है? विप्रेन्द्र! यह मुझे बताइये; क्योंकि आप परावर-वेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३१-३२ ॥

परशुरामजीने कहा—प्रभो! आप क्या नहीं जानते, तो भी साधारण लोगोंकी भाँति पूछते हैं। लोगोंको शिक्षा देनेके लिये ही आप इस तरह सत्सङ्ग करते हुए भूतलपर विचरते हैं। जो अकिंचन है—जिसके पास कोई संग्रह-परिग्रह नहीं है, जो केवल श्रीहरिके चरणारविन्दोंके परागपर ही लुब्ध है, श्रीहरिकी सुन्दर कथाके श्रवण-कीर्तनमें ही तत्पर रहता है तथा जिसका चित्त भगवान्के

रूपसिन्धुकी लहरोंमें ही डूबा रहता है, वही श्रीकृष्णचन्द्रका प्रिय भक्त कहा गया है। परमेश्वर! जिस महापुरुषने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर रक्खा है, जो समस्त जंगम प्राणियोंके प्रति स्नेह एवं दयाका भाव रखता है, जो शान्त, सहनशील, अत्यन्त कारुणिक, सबका सुहृद् एवं सत्पुरुष है, वही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्रिय भक्त कहा गया है। वह अपने चरणोंकी धूलिसे सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करता है। जो निरन्तर परमेश्वर श्रीहरिके चरणोंकी धूलिका आश्रय ले, सम्पूर्ण ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्ती सम्राट्के पद, रसातलके आधिपत्य, योगसिद्धि और मोक्षकी भी कभी इच्छा नहीं करता, वही भगवान्का श्रेष्ठ भक्त है। जो अकिंचन हैं, जिनको अपने किये हुए कर्मोंके फलमें विरक्ति है तथा जो श्रीहरिकी चरणरजमें ही आसक्त हैं, वे महामुनि भगवदीय भक्तजन ही भगवान्के उस परमपदका सेवन करते हैं; अन्य लोग उस नैरपेक्ष्य सुखका अनुभव नहीं कर पाते। भगवान् पुरुषोत्तमको अपने भक्तसे बढ़कर प्रिय कोई नहीं जान पड़ता। न शिव, न ब्रह्मा, न लक्ष्मी और न रोहिणीनन्दन बलरामजी ही उन्हें भक्तसे अधिक प्रिय हैं। भक्तोंने उनके मनको बाँध रक्खा है, अतः सकल लोकजनोंके चूडामणि भगवान् श्रीकृष्ण सदा भक्तोंके पीछे-पीछे चलते हैं। अपने भक्तजनोंके पीछे चलते हुए भगवान् परमात्मा श्रीकृष्ण उनके प्रति अपनी रुचि—अपना अनुराग सूचित करते हैं और समस्त लोकोंको पवित्र करते हैं। इसीलिये भगवान् मुकुन्द अतिशय भजन करनेवाले लोगोंको मोक्ष तो दे देते हैं, परंतु उत्तम भक्तियोग कदापि नहीं देते* ॥ ३३-३९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! यह उपदेश सुनकर यादवेन्द्र प्रद्युम्नने श्रीभार्गवकुलभूषण परशुरामजीको नमस्कार किया और वहाँसे पूर्व दिशामें विद्यमान गङ्गासागर-संगमकी ओर प्रस्थान किया ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्रविड़ देशपर विजय' नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

उड्डीश-डामर देशके राजा, वङ्गदेशके अधिपति वीरधन्वा तथा असमके नरेश पुण्ड्रपर यादव-सेनाकी विजय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! दिग्विजयके बहाने भूभार हरण करनेवाले साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न अङ्गदेशको गये। अङ्गदेशका स्वामी केवल अन्तःपुरका अधिपति होकर वनमें विहार करता था। वहाँ यादवोंने उसे जा पकड़ा,

---

* निष्किंचनो हरिपदाब्जपरागलुब्धः श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनतत्परो यः ।
तद्रूपसिन्धुलहरीविनिमग्नचित्तः श्रीकृष्णचन्द्रदयितः कथितः स भक्तः ॥
दान्तो महानखिलजंगमवत्सकोऽथ शान्तस्तितिक्षुरतिकारुणिकः सुहृत्सत् ।
लोकं पुनाति निजपादरजोभिराराद् श्रीकृष्णचन्द्रदयितः कथितः परेश ॥
न पारमेष्ठ्यमखिलं न महेन्द्रधिष्ण्यं नो सार्वभौममनिशं न रसाधिपत्यम् ।
नो योगसिद्धिमपि नो नपुनर्भवं वा वाञ्छत्यकं परमपादरजः स भक्तः ॥
निष्किंचनाः स्वकृतकर्मफलैर्विरागा यत्तत्पदं हरिजना मुनयो महान्तः ।
भक्ता जुषन्ति हरिपादरजःप्रसक्ता अन्ये विदन्ति न सुखं किल नैरपेक्ष्यम् ॥
भक्तात्प्रियो न विदितः पुरुषोत्तमस्य शम्भुर्विधिर्न च रमा न च रौहिणेयः ।
भक्ताननुव्रजति भक्तनिबद्धचित्तश्चूडामणिः सकललोकजनस्य कृष्णः ॥
गच्छन्निजं जनमनु प्रपुनाति लोकानावेदयन् हरिजने स्वरुचिं महात्मा ।
तस्मादतीव भजतां भगवान् मुकुन्दो मुक्तिं ददाति न कदापि सुभक्तियोगम् ॥

(गर्ग०, विश्वजित्० १४ । ३४—३९)

तब उसने महात्मा प्रद्युम्नको पर्याप्त भेंट दी ॥ १-२ ॥

उड्डीश-डामर (उड़ीसा) देशके राजा महाबली बृहद्बाहुने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी । वह अपने बलके अभिमानसे मत्त रहता था । प्रद्युम्नने जाम्बवती-कुमार वीरवर साम्बको उसे वशमें करनेके लिये भेजा । साम्ब सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो, धनुष हाथमें ले अकेले ही गये । नरेश्वर ! उन्होंने बाण-समूहोंसे डामर नगरको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघ तुषार-राशिसे किसी पर्वतको चारों ओरसे ढक देता है । इस प्रकार धर्षित एवं पराजित होकर डामराधीशने तत्काल हाथ जोड़ लिये और महात्मा प्रद्युम्नको नमस्कार करके भेंट अर्पित की ॥ ३—६ ॥

तत्पश्चात् वङ्गदेशके अधिपति मदमत्त एवं वीर राजा वीरधन्वा एक अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये यादव-सेनाके सम्मुख आये । वे बड़े बलवान् थे । यादवोंकी ओरसे श्रीहरिके पुत्र चन्द्रभानुने प्रद्युम्नके देखते-देखते वीरधन्वाकी उस सेनाको बाणोंद्वारा उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे कोई कटु वचनोंद्वारा मित्रताका भेदन कर दे । उनके बाणोंसे विदीर्ण हुए हाथियोंके मस्तकसे चमकते हुए मोती भूमिपर इस प्रकार गिरने लगे, मानो रातमें आकाशसे तारे बिखर रहे हों । अनेक रथी वीर धराशायी हो गये । हाथी-घोड़े और पैदल सैनिक उनके बाणोंसे मस्तक कट जानेके कारण कुम्हड़ेके टुकड़ों जैसे इधर उधर गिरे दिखायी देते थे । क्षणभरमें वीरधन्वाकी सेना रक्तकी नदीके रूपमें परिणत हो गयी, जो मनस्वी वीरोंका हर्ष बढ़ाती और डरपोकोंको भयभीत करती थी ॥ ७—११ ॥

कटे हुए मस्तक और धड़ किरीट, कुण्डल, केयूर, कंगन और अस्त्र शस्त्रोंसहित दौड़ रहे थे । उनके कारण वहाँकी भूमि महामारी सी प्रतीत होती थी । कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, भैरव तथा ब्रह्मराक्षस बड़े वेगसे आकर शंकरजीके गलेकी मुण्डमाला बनानेके लिये वहाँपर गिरे हुए मस्तकोंको उठा लेते थे । इस तरह जब सारी सेना मार गिरायी गयी, तब वीरधन्वा सामने आये, उन्होंने तुरंत ही वज्र-सरीखी गदासे चन्द्रभानुपर चोट की । उस गदाके भारी प्रहारसे श्रीकृष्णकुमार चन्द्रभानु विचलित नहीं हुए। उन्होंने गदा लेकर तत्काल वीरधन्वाकी छातीपर दे मारी । उस गदाके प्रहारसे पीड़ित एवं मूर्च्छित हो मुँहसे रक्त वमन करते हुए वीरधन्वा कटे हुए वृक्षकी भाँति भूतलपर गिर पड़े । दो घड़ीमें उनको फिर चेतना हुई, तब उन वङ्ग-देशके नरेशने महात्मा प्रद्युम्नकी शरण ली ॥ १२—१७ ॥

राजन् ! जब भेंट देकर वीरधन्वा अपने नगरको चले गये, तब अमित-पराक्रमी प्रद्युम्न ब्रह्मपुत्र नद पार करके असम देशमें गये । वहाँके राजा बिम्बको पकड़कर यादवेश्वर प्रद्युम्नने भेंट ली और यादवोंके साथ कामरूप देशमें गये । कामरूप देशके राजा पुण्ड्र इन्द्रजालकी विद्या (जादू) में बड़े निपुण थे । वे अपनी सेनाके साथ प्रद्युम्नके सामने युद्धके लिये निकले । उस समय असमियों और यादवोंमें घोर युद्ध हुआ । बाण, कुठार, परिघ, शूल, खड्ग, ऋष्टि तथा शक्तियोंसे प्रहार किया गया । मैथिलेश्वर ! तदनन्तर राजा पुण्ड्रने पिशाच, नाग तथा राक्षसोंकी माया प्रकट की; फिर तो सब ओर गुह्यक, गन्धर्व तथा कच्चे मांस चबानेवाले पिशाच रणभूमिमें दौड़ने तथा बारंबार कोटि कोटि अङ्गारोंकी वृष्टि करने लगे । एक ही क्षणमें यादवोंकी सेनापर मुँहसे विष वमन करते और फुंकारते हुए सर्प टूट पड़े । गधेपर बैठे हुए टेढ़े मेढ़े दाँत और लपलपाती हुई जीभवाले भयंकर राक्षस युद्धमें मनुष्योंको चबाते तथा भागते दिखायी देने लगे । सिंहके समान मुखवाले यक्ष तथा अश्वमुख किंनर हाथोंमें शूल लिये 'मारो-काटो' कहते हुए इधर-उधर विचरने लगे । क्षणभरमें सारा आकाश मेघोंकी घटासे आच्छादित हो गया । राजन् ! वायुके वेगसे उड़ी हुई धूलके कारण सब ओर अन्धकार छा गया । भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्ह वंशके योद्धा उस महायुद्धमें भयभीत हो गये । यदुश्रेष्ठ वीरोंने अपने अस्त्र शस्त्र नीचे डाल दिये ॥ १८—२८ ॥

मैथिल ! तब इस भयके निवारणका उपाय जाननेवाले श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने पिताके दिये हुए धनुषको हाथमें लेकर बाणोंद्वारा सात्त्विक महाविद्याका प्रयोग किया । फिर जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहासे तथा बादलोंको छिन्न-भिन्न कर डालते हैं, उसी प्रकार प्रद्युम्नने बाणोंद्वारा पिशाचों, नागों, यक्षों, राक्षसों तथा गन्धर्वोंके घने अन्धकारको नष्ट कर दिया । जैसे हवा कमलको उड़ाकर पृथ्वीपर फेंक देती है, उसी प्रकार प्रद्युम्नने बाणोंद्वारा रथ और वाहनसहित शत्रु राजा पुण्ड्रको दो घड़ीतक आकाशमें घुमाकर रणभूमिमें पटक दिया । राजाकी मूर्च्छा दूर होनेपर वे पराजित हो

प्रद्युम्नकी शरणमें गये और तत्काल भेंटके रूपमें एक लाख घोड़े और दस हजार हाथी देकर उन्होंने श्रीकृष्णकुमारको प्रणाम किया। वहाँसे अपनी सेनाद्वारा शोणनद और विपाशा (व्यास) नदी पार करते हुए यदुकुलनन्दन धनुर्धर वीर प्रद्युम्न केकय देशमें आ पहुँचे। केकय देशके राजा महाबली धृतकेतु वसुदेवकी बहिन साक्षात् श्रुतकीर्तिके महान् पति थे। उन्होंने यादवोंसहित प्रद्युम्नका बड़े भक्ति-भावसे पूजन किया। राजन्! वे श्रीकृष्णके प्रभावको जानते थे॥ २९—३५॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'केकय देशपर विजय' नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

मिथिलाके राजा धृतिद्वारा ब्रह्मचारीके रूपमें पधारे हुए प्रद्युम्नका पूजन; उन दोनोंका शुभ संवाद; प्रद्युम्नका राजाको प्रत्यक्ष दर्शन दे, उनसे पूजित हो शिविरमें जाना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! वहाँसे विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए यदुनन्दन प्रद्युम्न तुम्हारे सुख-सम्पन्न मिथिला देशमें आये। कलश-शोभित अत्यन्त ऊँचे स्वर्णमय सौध-शिखरोंसे युक्त मिथिलापुरीको दूरसे देखकर प्रद्युम्नने उद्धवसे पूछा॥ १-२॥

प्रद्युम्न बोले—मन्त्रिप्रवर! इस समय यह किसकी राजधानी मेरी दृष्टिमें आ रही है, जो बहुसंख्यक महलोंसे भोगवती पुरीकी भाँति शोभा पाती है?॥ ३॥

उद्धवने कहा—मानद! यह राजा जनककी पुरी मिथिला है। इस समय यहाँ मिथिलानरेश महाभागवत विद्वान् धृति रहते हैं। वे समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण उनके इष्टदेव हैं और वे स्वयं भी श्रीहरिको बहुत प्रिय हैं। उनके पुत्रका नाम बहुलाश्व है, जो बचपनसे ही भगवान्‌की भक्ति करनेवाला है। उसे दर्शन देनेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारेंगे। राजकुमार बहुलाश्व तथा ब्राह्मण श्रुतदेवको द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही याद किया करते हैं। प्रभो! इन्हें देवेन्द्र भी नहीं जीत सकते, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या; क्योंकि धृतिने अपनी परा भक्तिसे श्रीकृष्णको वशमें कर लिया है॥ ४—७½॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उद्धवजीको अपना शिष्य बनाकर उनके साथ राजा धृतिका दर्शन करनेके लिये आये। उद्धव-सहित प्रद्युम्नने राजाकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये ही मिथिलापुरीको देखा। वहाँके सभी वीर कवच और शस्त्र धारण करके माला और तिलकसे सुशोभित थे। वे सब-के-सब मालाद्वारा श्रीकृष्ण-नामका जप करते थे। मिथिलाके लोगोंके द्वार-द्वारपर श्रीहरिके नाम लिखे थे और श्रीकृष्णके सुन्दर-सुन्दर चित्र अङ्कित थे। मानद! वहाँ घरोंकी प्रत्येक दीवारपर गदा, पद्म, दसों अवतारके चित्र और शङ्ख, चक्र अङ्कित थे। घर-घरके आँगनमें तुलसीके मन्दिर दिखायी देते थे॥ ८—१२½॥

इस तरह मिथिलाके महलोंको देखते हुए उन्होंने वहाँके लोगोंपर भी दृष्टिपात किया, जो सब-के-सब माला-तिलकधारी भगवद्भक्त थे। उन्होंने केसर अथवा कुङ्कुमके बारह-बारह तिलक लगा रक्खे थे। वहाँके ब्राह्मण गोपीचन्दनकी मुद्राओंसे चर्चित, शान्तस्वरूप तथा ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी थे। उनके अङ्गोंपर हरिमन्दिरके चित्र अङ्कित थे। ललाटमें गदाकी मुद्रा, सिरपर हरिनाम और दोनों भुजाओंमें चक्र, शङ्ख, पद्म, कूर्म और मत्स्य अङ्कित थे। कितने ही लोगोंने मस्तकपर धनुष और बाणके चित्र तथा हृदयमें नन्दक नामक खड्ग, मुसल और हलके चिह्न धारण कर रक्खे थे॥ १३—१७॥

राजन्! तदनन्तर प्रद्युम्नने देखा—वहाँकी गली-गलीमें कुछ मनुष्य भागवत सुन रहे हैं। दूसरे लोग हरिवंश और महाभारत नामक इतिहास श्रवण कर रहे हैं। कुछ लोग सनत्कुमारसंहिता, वासिष्ठसंहिता, याज्ञवल्क्यसंहिता, पराशरसंहिता, गर्गसंहिता, पौलस्त्य-संहिता और धर्मसंहिता आदिका पाठ कर रहे हैं। ब्रह्म-पुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिङ्गपुराण, गरुडपुराण, नारदीयपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, वामनपुराण,

मार्कण्डेयपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण—इन सब पुराणोंको गली-गलीमें, घर-घरमें वहाँके सब लोग सुनते थे। कुछ लोग श्रीरामचरणामृतसे पूर्ण वाल्मीकि-के महाकाव्य रामायणका पाठ करते थे। कुछ लोग स्मृतियोंके और कुछ ब्राह्मण वेदत्रयीके स्वाध्यायमें लगे थे। कुछ लोग मङ्गलधाम वैष्णव यज्ञका अनुष्ठान करते थे। कितने ही मनुष्य राधाकृष्ण, कृष्ण-कृष्ण आदि नामोंका बारंबार कीर्तन करते थे। कुछ लोग हरिकीर्तनमें तत्पर रहकर नाचते और गाते थे। वहाँके प्रत्येक मन्दिरमें मृदङ्ग, ताल, झाँझ और वीणा आदि मनोहर वाद्योंके साथ लोगोंद्वारा किया जानेवाला हरिकीर्तन सुनायी पड़ता था। राजन्! मिथिलाके घर-घरमें वहाँके निवासी प्रेमलक्षणा नवधाभक्ति करते थे॥१८—२६॥

इस प्रकार नगरीका दर्शन करके भगवान् प्रद्युम्न हरिने राजद्वारपर पहुँचकर शीघ्र ही मैथिलनरेशका दर्शन किया। मैथिलेशकी सभामें वेदव्यास, शुकमुनि, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, गौतम, मैं और बृहस्पति बैठे थे। दूसरे भी धर्मके वक्ता तथा हरिनिष्ठ मुनि वहाँ मूर्तिमान् वेदकी भाँति इधर-उधर बैठे दिखायी देते थे। नरेश्वर मैथिलेन्द्र धृति वहाँ भक्तिभावसे नतमस्तक होकर बलदेवजीकी चरणपादुकाकी विधिवत् पूजा कर रहे थे। वे श्रीकृष्ण और बलदेवके मुक्तिदायक नामोंका जप भी करते जाते थे। शिष्यसहित ब्रह्मचारीको आया देख राजा-ने उठकर नमस्कार किया। उनकी पाद्य आदि उपचारोंसे विधिवत् पूजा करके मैथिलेश्वर राजा धृति दोनों हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये॥ २७—३२॥

जनकने कहा—भगवन्! आपके पदार्पणसे आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा राज-भवन शुद्ध एवं परमोज्ज्वल हो गया, देवता, ऋषि और पितर—सब संतुष्ट हो गये। भगवन्! आप-जैसे निर्भ्रान्त और समदर्शी साधु भूतलपर दीनजनोंका कल्याण करनेके लिये ही विचरते हैं॥ ३३-३४॥

ब्रह्मचारी बोले—राजसिंह! आप धन्य है, आपकी यह मिथिलापुरी धन्य है तथा विष्णु-भक्तिसे भरपूर आपकी सारी प्रजा भी धन्य है॥ ३५॥

जनकने कहा—प्रभो! न तो यह नगरी मेरी है, न प्रजा मेरी है और न गृह तथा धन-धान्य मेरे हैं। स्त्री, पुत्र और पौत्रादि मेरे पास जो कुछ है, वह सब भगवान् श्रीकृष्णका ही है। साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति होकर गोलोकधाममें विराजते हैं। वे पुरुषोत्तम एक होकर भी स्वयं ही वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके रूपमें भूतलपर प्रकट हुए हैं। महामुने ब्रह्मन्! शरीर, मन, वाणी, बुद्धि अथवा समस्त इन्द्रियोंद्वारा मैंने जो भी पुण्यकर्म किया है, वह सब भगवान् श्रीकृष्णको समर्पित है॥ ३६—३९॥

ब्रह्मचारीने कहा—महाभाग, विष्णुभक्तशिरोमणे, विदेहराज! तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हो भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें सायुज्य मोक्ष प्रदान करेंगे॥ ४०॥

जनक बोले—ब्रह्मन्! मैं आप-जैसे श्रीकृष्णभक्त महात्माओंका दास हूँ। मैंने अपने मनमें किसी हेतु अथवा कामनाको स्थान नहीं दिया है; अतः मैं एकत्व या सायुज्य-रूपा मुक्ति नहीं पाना चाहता॥ ४१॥

ब्रह्मचारीने कहा—राजन्! तुम, हेतुरहित होकर अहैतुकी भक्ति करते हो, अतः निर्गुण भक्ति-भावके कारण तुम प्रेमके लक्षणोंसे सम्पन्न हो। साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न दिग्विजयके लिये निकले हैं। वे आपके घरपर क्यों नहीं आये—इस बातको लेकर मेरे मनमें महान् संदेह हो गया है॥४२-४३॥

जनक बोले—भगवान् प्रद्युम्न साक्षात् अन्तर्यामी स्वयं श्रीहरि हैं। वे सदा, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी हैं। फिर बताइये तो सही, क्या वे यहाँ नहीं हैं?॥ ४४॥

ब्रह्मचारीने कहा—यदि ज्ञानदृष्टिसे भी तुम श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको यहाँ निरन्तर स्थित मानते हो तो दिव्यदृष्टिवाले प्रह्लादकी भाँति तुम उनका यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन कराओ॥ ४५॥

श्रीनारदजी कहते हैं—बहुलाश्व! यह सुनकर महाभागवत राजा धृतिने अपने मुखपर अश्रुधारा बहाते हुए गद्गद वाणीमें कहा॥ ४६॥

जनक बोले—यदि मेरेद्वारा भगवान् श्रीहरिकी इस भूतलपर अहैतुकी भक्ति की गयी है तो श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्न मेरे सामने प्रकट हो जायँ। यदि मैं श्रीकृष्ण-भक्तोंका दास होऊँ, यदि मुझपर उनकी कृपा हो और यदि सर्वत्र मेरी श्रीकृष्णबुद्धि हो तो मेरा यह मनोरथ पूर्ण हो जाय॥ ४७-४८॥

नारदजी कहते हैं—बहुलाश्व! उनके इतना कहते ही श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न तत्काल ब्रह्मचारीका रूप छोड़कर

सबके देखते देखते अपने साक्षात् स्वरूपसे प्रकट हो गये। हरिभक्तिनिष्ठ शिष्य उद्धव भी गद्गद हो गये। मेघोंके समान श्याम कान्ति, प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल नेत्र, लंबी लंबी भुजाएँ, जगत्‌के लोगोंका मन हर लेनेवाला रूप सबके सामने प्रकट हो गया। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा दे रहा था। उनका शोभासम्पन्न मुखारविन्द-... नीली घुँघराली अलकावलियोंसे अलंकृत था। शिशिर ऋतुके बालरविके समान कान्तिमान किरीट, दिव्य कुण्डल, करधनी और बाजूबंद आदिसे उनका दिव्य विग्रह उद्भासित हो रहा था। श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको इस प्रकार देखकर राजा धृतिने उनको हाथ जोड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥४९-५१॥

जनक बोले—भूमन्! मेरा सौभाग्य महान् एवं अत्यन्त धन्य है। अहो! आज आपने मुझे अपने स्वरूपका साक्षात् दर्शन कराया। आज मेरा महिमा कयाधू-कुमार प्रह्लादके समान बढ़ गयी। आज मैं अपने कुलसहित कृतार्थ हो गया ॥ ५२ ॥

श्रीप्रद्युम्नने कहा—नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, मेरे प्रभावको जाननेवाले भक्त हो। मैं इस समय तुम्हारे भक्तिभावकी परीक्षाके लिये ही यहाँ आया था। मैथिलेश्वर! आज ही तुम्हें मेरा सारूप्य प्राप्त हो जाय और इस लोकमें तुम्हारे बल, आयु और कीर्तिका अत्यन्त विस्तार हो ॥ ५३-५४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! तुम्हारे पिता धृतिसे पूजित हो भक्तवत्सल भगवान् प्रद्युम्न वहाँ आये हुए संतोंके सामने ही अपने शिविरकी ओर चले गये ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्‌खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'जनकका उपाख्यान' नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

मगधदेशपर यादवोंकी विजय तथा मगधराज जरासंधकी पराजय

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर मत्स्यके चिह्नसे सुशोभित ध्वजा फहराते हुए प्रद्युम्न मगधदेशपर विजय पानेके लिये अपनी सेनाके साथ तुरंत गिरिव्रजकी ओर चल दिये। श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नको, विशेषतः दिग्विजयके लिये, आया सुनकर मगधराज जरासंधको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १-२ ॥

जरासंध बोला—समस्त यादव अत्यन्त तुच्छ और युद्धसे डरनेवाले कायर हैं। वे ही आज पृथ्वीपर विजय पानेके लिये निकले हैं! जान पड़ता है, उनकी बुद्धि मारी गयी है। इस दुरात्मा प्रद्युम्नका पिता माधव स्वयं मेरे भयसे अपनी पुरी मथुरा छोड़कर समुद्रकी शरणमें जा छिपा है। प्रवर्षणगिरिपर मैंने बलराम और कृष्णको बलपूर्वक भस्म कर दिया था, किंतु वे छलपूर्वक वहाँसे भाग निकले और द्वारकामें जाकर रहने लगे। अब मैं स्वयं कुशस्थलीपर चढ़ाई करूँगा और उन दोनों भाइयोंको उग्रसेनसहित बाँध लाऊँगा। समुद्रसे घिरी हुई इस पृथ्वीको यादवोंसे शून्य कर दूँगा ॥ ३-६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर बलवान् राजा जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ गिरिव्रज नगरसे बाहर निकला। मगधराजके साथ हाथियोंकी विशाल सेना थी। उन हाथियोंके मुखपर गोमूत्र, सिन्दूर-राशि एवं कस्तूरीद्वारा पत्र-रचना की गयी थी। उनके गण्डस्थलोंसे मदकी धारा बह रही थी। वे हाथी ऐरावत-कुलमें उत्पन्न होनेके कारण चार दाँतोंसे सुशोभित थे और सूँड़की फुफकारोंसे बहुसंख्यक वृक्षोंको तोड़कर फेंकते चलते थे। उन गजराजोंसे मगधराजकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे मेघोंसे भगवान् इन्द्रकी होती है। राजन्! देवताओंके विमानोंके समान आकारवाले अगणित रथ उसके साथ चल रहे थे, जिनके ऊपर ध्वज फहराते थे, सारथि बैठे थे, चँवर डुल रहे थे और चञ्चल पहियोंसे घर्घर ध्वनि प्रकट हो रही थी। वायुके समान वेगशाली तथा विचित्र विचित्र वर्णवाले मदमत्त अश्व सुनहरे पट्टे और हार आदिसे सुशोभित थे। उनकी शिखाओं एवं बागडोरोंके ऊपरी भागमें चँवर (कलगी) सुशोभित थे। कवच धारण किये तथा हाथोंमें ढाल-तलवार एवं धनुष लिये वीरजन विद्याधरोंके समान शोभा पाते थे। उन सबके

साथ महाबली मगधराज युद्धके लिये निकला। दुन्दुभियोंकी धुंकारों और धनुषोंकी टकारोंसे दिशाएँ निनादित हो रही थीं। धरती डोलने लगी और सैनिकोंद्वारा उड़ायी गयी धूलसे आकाश छा गया। मैथिल! जरासंधकी वह सेना उमड़ते हुए प्रलय-सागरके समान भयंकर थी। उसे देखकर समस्त यादव विस्मित हो गये॥ ७–१४॥

मगधराजके उस सैन्य-सागरको देखकर भगवान् प्रद्युम्नने दक्षिणावर्त शङ्ख बजाया और उसीके द्वारा मानो अपने योद्धाओंको अभयदान देते हुए कहा—'डरो मत।' तदनन्तर महाबाहु साम्ब प्रद्युम्नके सामने ही दस अक्षौहिणी सेना लेकर मगधराजके साथ युद्ध करने लगे। उस रणभूमिमें हाथी हाथियोंसे और रथी रथियोंसे जूझने लगे। मैथिलेश्वर! घोड़े घोड़ोंसे और पैदल पैदलोंसे भिड़ गये। मागधों और यादवोंमें देवताओं और दानवोंके समान अद्भुत, रोमाञ्चकारी एवं भयंकर युद्ध होने लगा। कुछ घुड़सवार वीर हाथोंमें भाले लिये इधर-उधर मारकाट मचाते हुए गजारोहियों तथा हाथियोंके कुम्भस्थलोंपर बैठे हुए महावतोंको भी मार गिराते थे। कुछ योद्धा विद्युत्के समान दीप्तिमती शक्तियोंको लेकर बलपूर्वक शत्रुओंपर फेंकते थे। वे शक्तियाँ कवचधारी शत्रुओंको भी विदीर्ण करके धरतीमें समा जाती थीं। कितने ही वीर रणभूमिमें गरजते हुए रथोंके चक्के उठा-उठाकर फेंकते थे और सैनिकोंके समूहको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर देते थे, जैसे सूर्य कुहासेको नष्ट कर देते हैं। कुछ लोग भिन्दिपालों, मुद्गरों, कुल्हाड़ियों, तलवारों, पट्टिशों, छुरों, कटारों, रिष्टियों तथा तीखे निस्त्रिंशों (खड्गों) से युद्ध करते थे। तोमरों, गदाओं और बाणोंसे कटकर वीरों, हाथियों और घोड़ोंके मस्तक पृथ्वीपर गिर रहे थे। वहां केवल धड़ हाथमें खड्ग लिये संग्राममें दौड़ते हुए बड़े भयंकर प्रतीत होते थे और घोड़ों तथा मनुष्योंको धराशायी करते हुए उछलते थे। वीरोंके ऊपर वीर गिर रहे थे। उनकी भुजाएं छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। कितने ही घोड़े बाणोंसे गर्दन कट जानेके कारण घोड़ोंपर ही गिर पड़ते थे। विद्याधर और गन्धर्वके जातिकी स्त्रियाँ वीरगतिको प्राप्त हुए योद्धाओंको दिव्य रूपसे आकाशमें पहुँचनेपर उन्हें अपना पति बना लेना चाहती थीं। इसके लिये उन सबोंमें परस्पर महान् कलह होने लगता था। नरेश्वर! कितने ही क्षत्रिय-धर्मपरायण और सदा ही संग्राममें शोभा पानेवाले योद्धा युद्धमें प्राण दे देते थे, किंतु एक पग भी पीछे नहीं हटते थे। वे सूर्य-मण्डलका भेदन करके परमपदको प्राप्त हो जाते थे और शिशुमारचक्रमें उसी प्रकार नाचते थे, जैसे मण्डलाकार भूमिपर नट॥ १५–२८॥

इस प्रकार साम्बके महावीर सैनिकोंने मागध-सेनाको रौंद डाला। वह सेना उनके देखते-देखते उसी प्रकार भाग चली, जैसे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिसे अशुभ नष्ट हो जाता है। किन्हींके कवच कट गये थे तो किन्हींके धनुष; कितने ही सैनिक खड्ग और रिष्टियोंको हाथसे फेंककर पीठ दिखाते हुए भाग रहे थे। अपनी सेनाको पलायन करती देख मागधराज धनुषकी टंकार करता हुआ वहाँ आया और सबको अभयदान देते हुए बोला—'डरो मत।' जरासंधने धनुषकी प्रत्यञ्चाद्वारा अपनी सेनाको आगे बढ़नेकी उसी प्रकार प्रेरणा दी, जैसे कोई महावत अङ्कुशसे हाथीको हाँक रहा हो। इसी समय साम्ब भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने धनुषसे छूटे हुए दस बाणोंद्वारा महाबली मागधराजको समरभूमिमें घायल कर दिया। फिर जाम्बवतीकुमार साम्बने उसके धनुषकी प्रत्यञ्चाको, जो सागरके उत्ताल तरंगोंके भयानक संघर्षकी भाँति शब्द करनेवाली थी, दस बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला। तदनन्तर महाबली जरासंधने दूसरा धनुष हाथमें लेकर दस अग्रगामी बाणोंद्वारा साम्बके धनुषको काट डाला। जरापुत्र मागधेन्द्रने चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको, दोसे ध्वजको, तीनसे रथको और एकसे सारथिको मार डाला। धनुषके कट जानेपर तथा घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए महाबली साम्ब दूसरे रथपर चढ़ गये और अत्यन्त उग्र धनुषपर विधिपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उन्होंने सौ बाणोंद्वारा जरासंधके रथको चूर-चूर कर दिया। उस समय जरासंध रथ छोड़कर बड़े वेगसे हाथीपर चढ़ गया। उस हाथीपर मागधेन्द्रकी वैसी ही शोभा हुई, जैसे ऐरावतपर चढ़े हुए इन्द्रकी होती है॥ २९–३९॥

जरासंधके मनमें अत्यन्त क्रोध भरा हुआ था। उसने साम्बपर एक मतवाले हाथीको बढ़ाया, जिसके अङ्ग-अङ्गमें विचित्र पत्र रचना की गयी थी तथा जो देखनेमें काल, अन्तक और यमके समान भयंकर था। उस नागराजने अपनी सूँड़से रथसहित साम्बको उठाकर चीत्कार करते हुए नौ योजन दूर फेंक दिया। मैथिल! उस समय साम्बकी सेनामें बड़ा भारी कोलाहल मच गया। फिर तो प्रद्युम्नके पाससे गद वेगपूर्वक उसी प्रकार उसकी सेनाके सामने आये, जैसे

सूर्य अन्धकारका नाश करते हुए उदयाचलसे उदित हुए हों। जरासंधके उस हाथीको वसुदेवनन्दन गदने मुक्केसे इस प्रकार मारा, जैसे इन्द्रने ऊँचे पर्वतपर वज्रसे प्रहार किया हो। उनके मुष्टिकप्रहारसे व्याकुल होकर वह हाथी धरतीपर गिर पड़ा। राजन्! वह उसी समय मृत्युका ग्रास बन गया। वह अद्भुत-सी बात हुई। तब जरासंधने उठकर बड़े वेगसे गदा उठायी और उसे सहसा गदपर दे मारी। उस समय उस बलवान् वीरने घनके समान गर्जना की; किंतु उसके प्रहारसे गद समराङ्गणसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने तुरंत ही लाख भारकी बनी हुई गदा लेकर जरासंधपर प्रहार किया और सिंहके समान गर्जना की। राजन्! उनके उस प्रहारसे व्यथित हो बलवान् बृहद्रथकुमार जरासंधने उठकर गदासहित गदको पकड़ लिया और बड़े रोषके साथ आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया। तब महाबली गदने भी जरासंधको उठाकर घुमाया और उसे आकाशमें एक सहस्र योजन दूर फेंक दिया। राजा मागध आकाशसे विन्ध्यपर्वतपर गिर पड़ा॥ ४०—५०॥

महाबली जरासंधने पुनः उठकर गदके साथ युद्ध आरम्भ किया। उसी समय साम्ब आ पहुँचे। उन्होंने मागधेश्वर जरासंधको पकड़कर पृथ्वीपर उसी प्रकार पटक दिया, जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको बलपूर्वक पछाड़ दे। तब मगधके राजाने एक मुक्केसे साम्बको और दूसरे मुक्केसे गदको मारा और समराङ्गणमें बड़े जोरसे गर्जना की। उसके मुक्केकी मारसे व्यथित हो गद और साम्ब दोनों मूर्च्छित हो गये। उस समय युद्धभूमिमें तत्काल ही महान् हाहाकार मच गया। फिर तो यादवराज प्रद्युम्न ऊँची पताकावाले रथके द्वारा एक अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ पहुँचे और 'डरो मत' यों कहकर गदको अभयदान दिया। उन्हें देख जरासंधने लाख भारकी बनी हुई गदा हाथमें ली और जैसे जंगलमें दावानल फैल जाता है, उसी प्रकार उसने यादव-सेनामें प्रवेश किया। राजेन्द्र! उसने वीरोंसहित रथों, हाथियों तथा बहुत-से सिंधी घोड़ोंको इस तरह मार गिराया, मानो किसी महान् गजराजने बहुत-से कमलोंको उखाड़ फेंका हो। जरासंधकी जो सेना भाग गयी थी, वह भी सारी-की-सारी लौट आयी। उसने यादव-सेनाको चारों ओरसे घेरकर तीखे बाणोंसे मारना आरम्भ किया। यादवराज प्रद्युम्न उस युद्धमें निर्भय होकर लड़ने लगे। उन्होंने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए बाणोंद्वारा शत्रुओंको गिराना आरम्भ किया॥ ५१—५८½॥

उसी समय यदुपुरीसे बलदेवजी आ पहुँचे। वे समस्त सत्पुरुषोंके देखते-देखते वहीं प्रकट हो गये। महाबली बलदेवने कुपित होकर मगधराजकी विशाल सेनाको हलके अग्रभागसे खींचकर मुसलसे मारना आरम्भ किया। उनके द्वारा मारे गये रथ, घोड़े, हाथी और पैदल मस्तक विदीर्ण हो जानेसे सौ योजनतक धराशायी हो गये। वे सब-के-सब कालके गालमें चले गये। उस समय देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ एक साथ बजने लगीं। देवतालोग बलदेवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। यादवोंकी अपनी सेनामें तत्काल जोर-जोरसे जय-जयकार होने लगी। तदनन्तर प्रद्युम्न आदिने निश्चिन्त होकर भगवान् कामपाल (बलदेव) को नमस्कार किया। राजन्! इस प्रकार भक्तवत्सल महाबली भगवान् बलदेव मागधराजको जीतकर द्वारकाको चले गये। जरासंधका बुद्धिमान् पुत्र सहदेव भेंट-सामग्री लेकर गिरिद्रुगसे निकला और शम्बरारि प्रद्युम्नजीके सामने उपस्थित हुआ। एक अरब घोड़े, दो लाख रथ और साठ हजार हाथी उसने प्रद्युम्नको नमस्कार करके दिये; क्योंकि वह प्रद्युम्नजीके प्रभावको जानता था॥ ५९—६७॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मागध-विजय' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

गया, गोमती, सरयू एवं गङ्गाके तटवर्ती प्रदेश, काशी, प्रयाग एवं विन्ध्यदेशमें यादव-सेनाकी यात्रा; श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंका हस्तलाघव तथा विवाह; मथुरा, शूरसेन जनपदों एवं नन्द-गोकुलमें प्रद्युम्न आदिका समादर

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने सैनिकोंसहित गयामें जाकर फल्गुनदीमें स्नान किया। फिर अन्य देशोंको जीतनेके लिये वहाँसे आगेको प्रस्थान किया। जरासंधको पराजित हुआ सुनकर उस समय अन्य राजा आतङ्कवश भयार्त हो प्रद्युम्नकी शरणमें आये और उन सबने उन्हें भेंट दी॥ १-२॥

गोमती तथा पुण्यसलिला सरयूके तटपर होते हुए प्रद्युम्नजी गङ्गाके किनारे काशीपुरीमें आये। वहाँ पार्ष्णिग्राह (विरोधी) काशिराज शिकार खेलनेके लिये गये थे, जो वहीं पकड़ लिये गये। काशिराजने भी यह सुनकर कि प्रद्युम्नकी सेना विशाल है, उन्हें भेंट अर्पित की॥ ३-४॥

राजन्! तत्पश्चात् बलवान् प्रद्युम्न अपने सैनिकोंके साथ कोसल जनपदमें गये और अयोध्याके निकट नन्दिग्राममें उन्होंने अपनी सेनाकी छावनी डाल दी। कोसलराज नग्नजित्‌ने, जो तत्त्वज्ञानी थे, बहुत-से घोड़े, हाथी, रथ और महान् धन देकर शम्बरारि प्रद्युम्नका पूजन किया। उत्तर दिशाके स्वामी दीपतम, नेपालके राजा गज तथा विशाला नगरीके स्वामी बर्हिण—इन सबने उन्हें भेंट दी। नैमिषारण्यके स्वामी बड़े भगवद्भक्त और श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले थे। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रद्युम्नको बलि अर्पित की। इसके बाद श्रीकृष्णकुमार प्रयाग गये और वहाँ पापनाशिनी त्रिवेणीमें स्नान करके उन्होंने महान् दान किया; क्योंकि वे तीर्थराजके प्रभावको जानते थे। बीस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, चार लाख रथ, सोनेकी माला तथा सुनहरे वस्त्रोंसे विभूषित दस अरब गौएँ, दस भार स्वर्ण, एक लाख मोती, दो लाख नवरत्न, दस लाख वस्त्र तथा दो लाख कश्मीरी शाल एवं नये कम्बल हरिप्रिय तीर्थराजमें प्रद्युम्नने ब्राह्मणोंको दिये॥ ५-१२½॥

मिथिलेश्वर! कारूष देशका राजा पौण्ड्रक भगवान् श्रीकृष्णका शत्रु था, तथापि उसने भी शङ्कित होनेके कारण श्रीकृष्णकुमारका पूजन किया। पञ्चाल और कान्यकुब्ज देशमें प्रद्युम्नके आगमनकी बात सुनकर वहाँके समस्त नरेश भयभीत हो गये। सबने अपने-अपने दुर्गके दरवाजे बंद कर लिये। सब लोग यादवराजसे भयातुर हो दुर्गका आश्रय लेकर रहने लगे। कितने ही लोग भाग चले। विन्ध्यदेशके अधिपति महाबली राजा दीर्घबाहु उत्तम सामना करनेके लिये शम्बरारि प्रद्युम्नकी सेनामें आये॥ १३-१६॥

दीर्घबाहु बोले—आप सब यादवेन्द्र दिग्विजयके लिये आये हैं; अतः मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये। इससे मेरे चित्तमें संतोष होगा। जलसे भरे हुए काँचके बर्तनको बाणसे बेधा जाय, किंतु एक बूँद भी पानी न गिरे और बाण उसमें खड़ा रहे, बर्तन फूटे नहीं, ऐसी जिसके हाथमें स्फूर्ति हो, वह अपने इस हस्तलाघवका परिचय दे। जो मेरी इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करेंगे, उन्हें मैं अपनी कन्याएँ ब्याह दूँगा। आप समस्त यादवेन्द्रगण धनुर्वेदमें कुशल हैं। मैंने भी नारदजीके मुखसे पहले सुना था कि यादवलोग बड़े बलवान् हैं॥ १७-२०॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! राजा दीर्घबाहुकी बात सुनकर सब लोग विस्मित हो गये। उनमेंसे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नजीने भरी सभामें विन्ध्यदेशके नरेशको आश्वासन देते हुए कहा—'तथास्तु (ऐसा ही होगा)।' प्रद्युम्नजीने पृथ्वीपर दो जगह बड़ा-सा बाँस गाड़ दिया और उन दोनोंके बीचमें (अरगनीकी भाँति) एक रस्सी तान दी। फिर उस रस्सीमें समस्त सत्पुरुषोंके देखते-देखते जलसे भरा एक काँचका घड़ा लटका दिया। फिर उन श्रीकृष्णकुमारने धनुष उठाया और उसे भली-भाँति देखकर उसकी डोरीपर बाणका संधान किया। वह बाण छूटा और काँचके पात्रको छेदकर बीचमें आधा निकला हुआ स्थित हो गया। एक ही ओर मुख और पङ्ख दोनों दृष्टिगोचर होते थे। काँचके घड़ेमें धँसा हुआ वह बाण बादलमें प्रविष्ट सूर्यकी किरणके समान सुशोभित होता था। वह एक अद्भुत-सा दृश्य था। त्रिकुटाके फलकी भाँति उस पात्रके न तो टुकड़े हुए, न वह अपने स्थानसे विचलित हुआ; न उसमें कम्पन हुआ और न उससे एक बूँद पानी ही गिरा। विदेहराज! भगवान् प्रद्युम्नने फिर दूसरे बाणका संधान किया। वह भी पहले बाणका स्थान छोड़कर उस घड़ेमें उसीकी भाँति स्थित हो गया॥ २१-२६॥

तदनन्तर साम्बने भी धनुष लेकर पाँच बाण छोड़े। वे भी काँचपात्रका भेदन करके उसमें आधे निकले हुए स्थित हो गये। तदनन्तर सात्यकिने भी धनुष लेकर एक ही बाण मारा, किंतु सबके देखते-देखते वह काँचका पात्र चूर-चूर हो गया। यह देख समस्त यादव तथा दूसरे-दूसरे मानव जोर-जोरसे हँसने लगे और बोले—'बस-बस, तुम्हीं इस भूतलपर मानवोंमें अर्जुनके समान महान् बाणधारी हो; तुम्हारे सामने अर्जुन, भरत तथा श्रीरामचन्द्रजी भी मात हैं। अथवा तुम त्रिपुरहन्ता रुद्र हो। द्रोण, भीष्म, कर्ण तथा परशुरामजी भी तुमसे हार मान लेंगे'॥ २७-३०॥

तदनन्तर दूसरा पात्र लटकाकर धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने उसके नीचे आकर उसे गौरसे देखकर हलके हाथसे बाण मारा। वह बाण भी उस पात्रका भेदन करके

आधा निकला हुआ उसमें स्थित हो गया। उस पात्रसे पाँच हाथ ऊपर आकाशमें एक पत्थर लटकाकर दीप्तिमान्ने धनुष उठाया और उसपर एक बाणका संधान किया। वह बाण भी पात्रके निचले भागको भेदकर अनिरुद्धवाले बाणको आगे छोड़ता हुआ ऊपरवाले पत्थरसे जा टकराया और फिर वेगसे उस पात्रमें ही आकर स्थित हो गया। तथापि बाणवेगके कारण उस पात्रसे एक बूँद भी पानी नीचे नहीं गिरा। बाण जबतक गया-आया, तबतक भी जब पानीकी एक बूँद नहीं गिरी, तब यह चमत्कार देखकर सब वीर उन्हें बार-बार साधुवाद देने लगे ॥ ३१–३५ ॥

तत्पश्चात् भानुने पात्रको अच्छी तरह देखा-भाला। फिर सबके देखते-देखते नेत्र बंद करके धनुष लेकर दूरसे बाण चलाया। उस बाणने भी उस समय पात्रका भेदन करके उसे अधोमुख कर दिया और फिर तत्काल ही उसका मुख ऊपरकी ओर करके वह उसमें आधा निकला हुआ स्थित हो गया; तब भी बाणके वेगसे एक बूँद भी जल नहीं गिरा और पात्र भी नहीं फूट सका। यह अद्भुत-सी बात हुई। इस प्रकार श्रीकृष्णके जो अठारह महारथी पुत्र थे, उन सबने पात्रका भेदन किया, किंतु जलका स्राव नहीं हुआ ॥ ३६–३९ ॥

यह हस्तलाघव देखकर बिन्दुदेशके राजा दीर्घबाहु बड़े विस्मित हुए। उन्होंने उनके हाथमें अपनी अठारह सुलोचना कन्याएँ प्रदान कीं। उनके विवाहकालमें शङ्ख, भेरी और आनक आदि बाजे बजे, गन्धर्वोंने गीत गाये तथा अप्सराओंने नृत्य किया। देवताओंने उन सबके ऊपर जयध्वनिके साथ फूल बरसाये और स्वर्गवासियोंने उन सबकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजा दीर्घबाहुने साठ हजार हाथी, एक अरब घोड़े, दस लाख रथ, एक लाख दासियाँ तथा चार लाख शिबिकाएँ दहेजमें दीं। यदुकुलतिलक प्रद्युम्नने वह सारा दहेज द्वारकापुरीको भेज दिया ॥ ४०–४४ ॥

तत्पश्चात् दीर्घबाहुकी अनुमति ले प्रद्युम्न निषध देशको गये। मैथिल! निषधके राजाका नाम वीरसेन था। उन्होंने भी महात्मा प्रद्युम्नको भेंट दी। इसी प्रकार भद्रदेशके अधिपति बृहत्सेनने, जो श्रीकृष्णको इष्टदेव माननेवाले तथा श्रीहरिके प्रिय भक्त थे, सेनासहित प्रद्युम्नका सादर पूजन किया। तब वे सैनिकोंसहित माथुर, शूरसेन तथा मधु नामक जनपदोंमें गये। वहाँ स्वागतपूर्वक पूजित हो, वे पुनः मधुरामें आये। तदनन्तर वनोंसहित मधुराकी परिक्रमा करके वे व्रजमें गये। राजन्! वहाँ उन्होंने गोप-गोपी, यशोदा, व्रजेश्वर नन्दराज, वृषभानु तथा उपनन्दोंको नमस्कार करके बड़ी शोभा पायी। नन्दराजको बारंबार भेंट-उपहार अर्पित करके, उन सबके द्वारा सम्मानित हो वे कई दिनोंतक नन्द गोकुलमें टिके रहे ॥ ४५–५० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'माथुर तथा शूरसेन जनपदोंपर विजय' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

यादव-सेनाका विस्तार; कौरवोंके पास उद्धवका दूतके रूपमें जाकर प्रद्युम्नका संदेश सुनाना; कौरवोंके कटु उत्तरसे रुष्ट यादवोंकी हस्तिनापुरपर चढ़ाई

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद महाबाहु प्रद्युम्न अपनी सेनाओंके साथ उच्चस्वरसे दुन्दुभिनाद करते हुए बड़े वेगसे कुरुदेशमें गये। बीस योजन लंबी भूमिपर उनकी सेनाके शिविर लगे थे। उस छावनीका विस्तार भी दस योजनसे कम नहीं था। उस सेनाकी विस्तृत छावनीमें आने-जानेके लिये पाँच योजन लंबी सड़क थी। वहाँ धनाढ्य वैश्योंने सहस्रों दूकानें लगा रक्खी थीं। रत्नोंके पारखी (जौहरी), वस्त्रोंके व्यवसायी, काँचकी वस्तुओंके निर्माता, वायक (कपड़ा बुनने और सीनेवाले), रँगरेज, कुम्हार, कंदकार (मिश्री आदि बनानेवाले हलवाई), तूलकार (कपासमेंसे रूई निकालनेवाले), पटकार (वस्त्रनिर्माता), टङ्ककार (तार आदि टाँकनेका काम करनेवाले) अथवा 'टङ्क' नामक औजार बनानेवाले, चित्रकार, पत्रकार (कागज बनानेवाले), नाई,

पटुके, शङ्खकार, पर्णकार (दोने बनानेवाले), शिल्पी, लाक्षाकार (लखारे), माली, रजक, (धोबी), तेली, तमोली, पत्थरोंपर खुदाई करने या चित्र बनानेवाले, भड़भूज, काचभेदी, स्थूल-सूक्ष्म मोती आदि रत्नोंका भेदन करनेवाले—ये सभी कारीगर वहाँकी सड़कपर दृष्टिगोचर होते थे। कहीं भानुमतीका खेल दिखानेवाले बाजीगर थे, कहीं इन्द्रजाल फैलानेवाले जादूगर। कहीं नट नृत्य करते थे तो कहीं दो भालुओंका युद्ध होता था। कहीं डमरू बजा-बजाकर वानरोंके खेल दिखाये जाते थे, कहीं बारह प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित वाराङ्गनाओंके नृत्यका कार्यक्रम चल रहा था। वे वारवधुएँ अपने दिव्य सोलह शृङ्गारोंसे अप्सराओंका भी मन हर लेती थीं। यद्यपि कौरवोंके लिये यादवोंकी सेना अपने भाई-बन्धुओंकी ही सेना थी, तथापि हस्तिनापुरमें उसका बड़ा भारी आतङ्क फैल गया। वहाँके लोग बड़े वेगसे इधर उधर खिसकने लगे—वे घबराकर कहीं अन्यत्र चले जानेकी चेष्टामें लग गये। सब लोग अपने घरोंमें अरगला (बिलाई, साँकल एवं ताले) लगाकर भागने लगे। घर-घरमें और जन-जनमें बड़ा भारी कोलाहल होने लगा—सर्वत्र हलचल मच गयी। शौर्य, पराक्रम और बलसे सम्पन्न कौरव चक्रवर्ती राजा थे। वे समुद्र-तककी पृथ्वीके अधिपति थे, तथापि यादवोंकी विशाल सेना देखकर वे भी अत्यन्त शङ्कित हो गये ॥१-१४॥

प्रद्युम्नने बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धवको दूत बनाकर भेजा। वे कौरवेन्द्र-नगर हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्रसे मिले। महाराज धृतराष्ट्रके राजमहलका आँगन मदकी धारा बहानेवाले तथा कस्तूरी और कुङ्कुमसे विभूषित गण्डस्थलोंसे सुशोभित हाथियोंकी सिन्दूर रञ्जित सूँड़पर बैठने और उनके कानोंसे प्रताड़ित होनेवाले भ्रमरोंसे मण्डित था। हस्तिनापुरके स्वामी राजाधिराज धृतराष्ट्रकी सेवामें भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, बाह्लीक, भौम्य, शकुनि, संजय, दुःशासन, विदुर, लक्ष्मण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, सोमदत्त तथा श्रीयशकेतु उपस्थित थे। वे सब-के-सब सोनेके सिंहासनपर श्वेत छत्र और चँवरसे सुशोभित होकर बैठे थे। उसी समय वहाँ पहुँचकर उद्धवने महाराजको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनसे कहा ॥ १५-१८ ॥

उद्धव बोले—राजेन्द्र-शिरोमणे! प्रद्युम्नने आपके पास मेरे द्वारा जो संदेश कहलाया है, उसे सुनिये—'महाबली यादवराज उग्रसेन समस्त भूपतियोंके भी स्वामी हैं। वे समस्त राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे। उन्हींके भेजे हुए रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न सेनाके साथ जम्बूद्वीपके अत्यन्त उद्भट वीर नरेशोंको जीतनेके लिये निकले हैं। वे चेदिराज शिशुपाल, शाल्व, जरासंध तथा दन्तवक्र आदि भूपालोंपर विजय पाकर यहाँतक आ पहुँचे हैं। आप उन्हें भेंट दीजिये। यादव और कौरव एक दूसरेके भाई-बन्धु हैं। इन बन्धुओंमें एकता बनी रहे, इसके लिये आपको भेंट और उपहार-सामग्री देनी ही चाहिये। ऐसा करनेसे कौरवों-वृष्णिवंशियोंमें कलह नहीं होगा। यदि आप भेंट नहीं देंगे तो युद्ध अनिवार्य हो जायगा।' यह उनकी कही हुई बात है, जिसे मैंने आपके सम्मुख प्रस्तुत किया है। महाराज! यदि मुझसे कोई धृष्टता हुई हो तो उसे क्षमा कीजिये, दूत सर्वथा निर्दोष होता है। अब आप जो उत्तर दें, उसे मैं वहाँ जाकर सुना दूँगा ॥ १९-२३½ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! उद्धवका वह कथन सुनकर समस्त कौरव क्रोधसे तमतमा उठे। वे अपने शौर्य और पराक्रमके मदसे उन्मत्त थे। उनके होठ फड़कने लगे और वे बोले ॥ २४ ॥

कौरवोंने कहा—अहो! कालकी गति दुर्लङ्घ्य है, यह जगत् विचित्र है, दुर्बल सियार भी वनमें सिंहके ऊपर धावा बोलने लगे हैं। जिन्हें हमारे सम्बन्धसे ही प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, जिनको हमलोगोंने ही राज्य सिंहासन दिया है, वे ही यादव अपने दाताओंके प्रतिकूल उसी प्रकार सिर उठा रहे हैं, जैसे साँप दूध पिलानेवाले दाताओंको ही काट लेते हैं। समस्त वृष्णिवंशी सदाके डरपोक हैं, वे युद्धका अवसर आते ही व्याकुलचित्त हो जाते हैं; तथापि वे निर्लज्ज आज हमलोगोंपर हुकूमत करने चले हैं। उग्रसेनमें बल ही कितना है! वह अनाचारी होकर भी, जम्बूद्वीपमें निवास करनेवाले समस्त राजाओंको जीतकर, उनसे भेंट लेकर राजसूय यज्ञ करेगा—यह कितने आश्चर्यकी बात है! जहाँ भीष्म, कर्ण, द्रोण, दुर्योधन आदि महापराक्रमी वीर बैठे हैं, वहाँ उस दुर्बुद्धि प्रद्युम्नने तुमको मन्त्री बनाकर भेजा है! अतः हमारा यह कहना है कि यदि तुमलोगोंकी जीवित रहनेकी

इच्छा हो तो अपनी द्वारकापुरीको लौट जाओ। यदि नहीं जाओगे, तो तुम सब लोगोंको आज हम यमलोक भेज देंगे ॥ २५—३० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णविरोधी कौरवोंका इस प्रकार भाषण सुनकर उद्धवने प्रद्युम्नके पास जा, सब कुछ कह सुनाया। कौरवोंकी बात सुनकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नके होठ रोषके मारे फड़कने लगे। वे शार्ङ्ग धनुष हाथमें लेकर बोले ॥ ३१-३२ ॥

प्रद्युम्नने कहा—कौरव यद्यपि हमारे बन्धु हैं, तथापि ये मदसे उन्मत्त हो गये हैं। इसलिये उनको अपने तीखे बाणोंसे उसी प्रकार नष्ट कर डालूँगा, जैसे योगी कठोर नियमोंद्वारा अपने दैहिक रोगोंको नष्ट कर डालता है। यादवोंके सैन्य-समूहमें जो कोई भी वीर कौरवोंसे भेंट दिलवानेका प्रयास नहीं करेगा, वह अपने माता-पिताका औरस-पुत्र नहीं माना जायगा ॥ ३३-३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! उसी क्षण भोज, वृष्णि और अन्धक आदि समस्त यादव कुपित हो अपनी सेनाओं-के साथ हस्तिनापुरपर जा चढ़े ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कौरवोंके लिये दूत-प्रेषण' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

कौरवोंकी सेनाका युद्धभूमिमें आना; दोनों ओरके सैनिकोंका तुमुल युद्ध और प्रद्युम्नके द्वारा दुर्योधनकी पराजय

नारदजी कहते हैं—राजन्! उसी समय जिनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी थी, वे समस्त कौरव भी अपनी-अपनी सेनाओंके साथ प्रद्युम्नका सामना करनेके लिये निकले। रत्नजटित कम्बल (कालीन या झूल) से अलंकृत और सोनेकी साँकलोंसे सुशोभित साठ हजार हाथी विजयध्वज फहराते हुए निकले। प्रलय-पयोधिके महान् आवर्तों (भँवरों एवं तरंगों) के टकरानेके समान गगनभेदिनी ध्वनि करनेवाली साठ हजार दुन्दुभियोंका गम्भीर घोष फैलानेवाले वे गजराज क्रमशः आगे बढ़ने लगे। लोहेके कवच बाँधे तथा शिरस्त्राण धारण किये दो लाख महामल्ल भी युद्धके लिये निकले। उनके साथ बहुत-से हाथी और साँड भी थे। तदनन्तर सोनेके कंगन, बाजूबंद, किरीट और सुन्दर कुण्डल पहने, स्वर्णमय कवच धारण किये दो लाख गजारोही योद्धा निकले। तत्पश्चात् पीले कवच और टेढ़ी पगड़ीसे सुशोभित दो लाख वीर योद्धा, जो अनेक संग्रामोंमें विजयकीर्ति पा चुके थे, युद्धके लिये निकले। वे भी हाथियोंपर ही बैठे थे। कोई लाल रंगके वस्त्र पहने और लाल रंगके ही आभूषणोंसे विभूषित थे। वे लाल रंगकी ही झूलसे सज्जित ऊँचे गजराजोंपर चढ़कर युद्धके लिये निकले थे। कुछ हाथीसवार योद्धा काले रंगके कपड़े पहिने हुए थे, कुछ हरे वस्त्रोंसे सुसज्जित थे। कुछ लोग श्वेत वस्त्र धारण किये हुए और कुछ गुलाबी कपड़ोंसे सजे हुए युद्धके लिये आये थे। करोड़ों राजन्यकुमार देव-विमानोंके समान रथोंपर बैठकर आये थे, जो अत्यन्त ऊँचे और सिंहध्वजसे सुशोभित थे। उन रथोंपर पताकाएँ फहरा रही थीं। अङ्ग-वङ्ग तथा सिन्धु देशोंमें उत्पन्न हुए चञ्चल घोड़ोंपर, जो मनके समान वेगशाली तथा सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे, सवार हो बहुत-से क्षत्रिय-योद्धा शस्त्र लिये नगरसे बाहर निकले ॥ १—१० ॥

राजन्! लोहेके कवचोंसे अलंकृत तथा विद्याधरोंके समान युद्धकुशल बहुसंख्यक वीर चारों ओरसे झुंड-के-झुंड निकलने लगे। भेरी, मृदङ्ग, पटह और आनक आदि युद्धके बाजे बजने लगे। सूत, मागध और वंदीजन कौरवों-का यश गा रहे थे। धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अपनी विशाल सेनाके बीच बहुत बड़े रथपर बैठा शोभा पा रहा था। वह रथ चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल तथा चार योजनके घेरेवाले छत्रसे अलंकृत हो, अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता था। वह छत्र उसे राजाओंकी ओरसे भेंटके रूपमें प्राप्त हुआ था। हीरेके बने हुए दण्डवाले बहुत-से व्यजन चँवर डुलानेवालोंके हाथोंमें सुशोभित हो उस रथकी शोभा बढ़ाते थे। उसमें श्वेत रंगके घोड़े जुते हुए थे और उसके

ऊपर सिंहध्वज फहरा रहा था। दुर्योधनके अतिरिक्त अन्य धृतराष्ट्र-पुत्र भी अलग-अलग रथपर बैठे थे। उनके रथोंपर भी चार-चार योजनके घेरेवाले छत्र, जिनमें मोतीकी झालरें लटक रही थीं, शोभा दे रहे थे। भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, बाह्लीक, कर्ण, शल्य, बुद्धिमान् सोमदत्त, अश्वत्थामा, धौम्य, धनुर्धर वीर लक्ष्मण, शकुनि, दुश्शासन, संजय, भूरिश्रवा तथा यज्ञकेतुके साथ सुन्दर रथपर बैठकर आता हुआ राजा दुर्योधन मरुद्गणोंके साथ इन्द्रकी भाँति शोभा पा रहा था ॥ ११–१८½ ॥

राजन्! उसी समय इन्द्रप्रस्थसे पाण्डवोंकी भेजी हुई दो 'पृतना' सेना कौरवोंकी सहायताके लिये आयी। कौरवोंकी सोलह अक्षौहिणी सेनाओंके चलनेसे पृथ्वी हिलने लगी, दिशाओंमें कोलाहल व्याप्त हो गया और उड़ती हुई धूलसे आकाशमें अन्धकार छा गया। घोड़े, हाथी तथा रथोंकी रेणुसे व्याप्त आकाशमें सूर्य एक तारेके समान प्रतीत होता था। भूतलपर अन्धकार फैल गया। समस्त देवता शङ्कित हो गये। यत्र-तत्र हाथियोंकी टक्करसे वृक्ष टूट-टूटकर गिरने लगे। घुड़सवार वीरोंके अश्वचालनसे भूखण्ड-मण्डल खुद गया। कौरव और वृष्णिवंशियोंकी सेनाएँ परस्पर जूझने लगीं। जैसे प्रलयकालमें सातों समुद्र अपनी तरंगोंसे टकराने लगते हैं, उसी प्रकार उभय पक्षकी सेनाएँ तीखे शस्त्रोंसे परस्पर प्रहार करने लगीं। जैसे बाज पक्षी मांसके लिये आपसमें जूझते हैं, उसी प्रकार उस युद्धभूमिमें घोड़े घोड़ोंसे, हाथी हाथियोंसे, रथी रथियोंसे और पैदल पैदलोंसे भिड़ गये। महावत महावतोंसे, सारथि सारथियोंसे तथा राजा राजाओंसे रोषपूर्वक इस प्रकार युद्ध करने लगे, मानो सिंह सिंहोंसे पूरी शक्ति लगाकर युद्ध कर रहे हों। तलवार, भाले, शक्ति, बर्छे, पट्टिश, मुद्गर, गदा, मुसल, चक्र, तोमर, भिन्दिपाल, शतघ्नी, भुशुण्डी तथा कुठार आदि चमकीले अस्त्र-शस्त्रों एवं बाण-समूहोंद्वारा रोषावेशसे भरे हुए योद्धा एक-दूसरेके मस्तक काटने लगे ॥ १९–२७½ ॥

रणभूमिमें बाणोंद्वारा अन्धकार फैल जानेपर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए दुर्योधनके साथ युद्ध करने लगे। नृपेश्वर! अनिरुद्ध भीष्मके साथ, दीप्तिमान् कृपाचार्यके साथ, भानु द्रोणाचार्यके साथ, साम्ब बाह्लीकके साथ, मधु कर्णके साथ तथा बृहद्भानु शल्यके साथ भिड़ गये। मैथिल! श्रीकृष्णके पुत्र चित्रभानु बुद्धिमान् सोमदत्तके साथ, वृक अश्वत्थामाके साथ, अरुण धौम्यके साथ, पुष्कर दुर्योधनपुत्र लक्ष्मणके साथ, कृष्णकुमार वेदबाहु उस महायुद्धमें शकुनिके साथ, श्रीहरिके पुत्र श्रुतदेव समराङ्गणमें दुश्शासनके साथ तथा सुनन्दन संजयके साथ युद्ध करने लगे। राजन्! गद विदुरके साथ, कृतवर्मा भूरिश्रवाके साथ तथा अक्रूर यज्ञकेतुके साथ संग्राम भूमिमें लड़ने लगे ॥ २८–३४ ॥

इस प्रकार दोनों सेनाओंमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ गया। श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने दुर्योधनकी विशाल सेनाको अपने बाण-समूहोंद्वारा उसी प्रकार मथ डाला, जैसे वाराह-अवतारधारी भगवान्ने प्रलयकालके महासागरको अपनी दाढ़से विक्षुब्ध कर दिया था। बाणसे विदीर्ण मस्तकवाले हाथियोंके मुक्ताफल आकाशसे गिरते समय ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो रातमें भूतलपर तारे बिखर रहे हों। मैथिलेन्द्र! प्रद्युम्नने अपने बाणोंसे उस महासमरमें सारथि, रथी एवं रथोंको उसी तरह मार गिराया, जैसे वायु अपने वेगसे बड़े-बड़े वृक्षोंको धराशायी कर देती है ॥ ३५–३७½ ॥

उस समय दुर्योधन बार-बार अपने धनुषको टंकारता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने उस युद्धमें दस बाणोंको प्रद्युम्नपर छोड़ा, किंतु यादवेश्वर भगवान् प्रद्युम्नने उन बाणोंको अपने ऊपर पहुँचनेके पहले ही काट गिराया। तब दुर्योधनने पुनः प्रद्युम्नके कवचको अपना निशाना बनाकर सोनेके पंखवाले दस सायक चलाये। वे सायक प्रद्युम्नके कवचको विदीर्ण करके उनके शरीरमें समा गये। तत्पश्चात् सहस्र बाण समूहोंद्वारा प्रहार करके धृतराष्ट्रके बलवान् पुत्र महावीर दुर्योधनने प्रद्युम्नके रथके सहस्र घोड़ोंको मार डाला। फिर सौ बाणोंसे प्रत्यञ्चासहित उनके उत्तम धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ ३८–४१½ ॥

प्रद्युम्न उस रथको त्यागकर तत्काल दूसरे रथपर जा बैठे। इसके बाद उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए धनुषको हाथमें लेकर उसपर विधिपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ायी और एक बाणका संधान करके उसे अपने कानतक खींचा। फिर बाहुदण्डके वेगसे उस बाणको दुर्योधनके रथके नीचे धँसा दिया। वह बाण दुर्योधनके रथको ले उड़ा और दो घड़ीतक उसे आकाशमें घुमाता रहा। तत्पश्चात् जैसे छोटा बालक कमण्डलुको फेंक देता है, उसी प्रकार उस बाणने दुर्योधनके रथको आकाशसे नीचे गिरा दिया। नीचे गिरनेसे वह

रथ तत्काल चूर-चूर हो गया। उसके सभी घोड़े सारथिसहित मृत्युके ग्रास बन गये। महाबली धृतराष्ट्रपुत्र तत्काल दूसरे रथपर जा बैठा। उसने दस सायकोंद्वारा युद्धभूमिमें प्रद्युम्नको घायल कर दिया। उन सायकोंसे आहत होनेपर भी श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न फूलकी मालासे मारे गये हाथीकी भाँति तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने श्रीकृष्णके दिये हुए कोदण्डपर एक बाण रखा और उसे चला दिया। वह बाण रथसहित दुर्योधनको लेकर ज्यों ही महाकाशमें पहुँचा, त्यों ही प्रद्युम्नका छोड़ा हुआ दूसरा बाण भी शीघ्र उसे लेकर और भी आगे बढ़ गया। तबतक तीसरा बाण भी वहाँ पहुँचा। उसने अश्व तथा सारथिसहित उस रथको लेकर राजमन्दिरके आँगनमें आकाशसे धृतराष्ट्रके समीप इस प्रकार ला पटका, मानो वायुने कमलकोषको उड़ाकर नीचे डाल दिया हो। उस रथको वहाँ गिराकर वह बाण रणभूमिमें प्रद्युम्नके पास लौट आया। नीचे गिरते ही वह रथ अङ्गारकी भाँति बिखर गया! दुर्योधन मुखसे रक्त वमन करता हुआ मूर्च्छित हो गया॥ ४२—५२॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यादव-कौरव-युद्धका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कौरव तथा यादव वीरोंका घमासान युद्ध; बलराम और श्रीकृष्णका प्रकट होकर उनमें मेल कराना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! दुर्योधनके चले जानेपर वहाँ बड़ा भारी हाहाकार मचा। तब गङ्गानन्दन देवव्रत भीष्म तुरंत वहाँ आ पहुँचे और उन यादवोंके देखते-देखते बारबार धनुष टंकारते हुए यादव-सेनाको उसी प्रकार भस्म करने लगे, जैसे प्रज्वलित दावानल किसी वनको दग्ध कर देता है॥ १-२॥

भीष्मजी समस्त धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ, महान् भगवद्भक्त, विद्वान् और वीर-समुदायके अग्रगण्य थे। उन्होंने युद्धमें परशुरामजीके भी छक्के छुड़ा दिये थे। उनके मस्तकपर शिरस्त्राण एवं मुकुट शोभा पाता था। उनकी अङ्ग-कान्ति गौर थी। दाढ़ी-मूँछके बाल सफेद हो गये थे। वे कौरवोंके पितामह थे, तो भी बलपूर्वक युद्धभूमिमें विचरते हुए सोलह वर्षके नवयुवकके समान जान पड़ते थे। उन्होंने अपने बाणोंसे अनिरुद्धकी विशाल सेनाको मार गिराया। हाथियोंके मस्तक कट गये, घोड़ोंकी गर्दनें उतर गयीं। हाथमें तलवार लिये पैदल योद्धा बाणोंकी मार खाकर दो-दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गये। रथोंके सारथि, घोड़ों और रथियोंको मारकर उन रथोंको भी भीष्मने चूर्ण कर दिया। जिन राजकुमारोंके पैर कट गये थे, वे ऊर्ध्वमुख होनेपर भी अधोमुख हो गये। हाथमें खड्ग और धनुष लिये योद्धा बाँहें कट जानेके कारण धराशायी हो गये। कुछ सैनिकोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये और वे प्राणशून्य होकर भूमिपर गिर पड़े। वहाँ गिरे हुए स्वर्ण-भूषित वीरों, घोड़ों, रथों और हाथियोंसे वह युद्धमण्डल कटे हुए वृक्षोंसे वनकी भाँति शोभा पा रहा था। राजन्! वह रणभूमि मूर्तिमती महामारीके समान प्रतीत होती थी। अस्त्र-शस्त्र उसके दाँत, बाण केश, ध्वजा-पताका उसके वस्त्र और हाथी उसके स्तन जान पड़ते थे। रथोंके पहिये उसके कानोंके कुण्डल-से प्रतीत होते थे॥ ३—९½॥

वहाँ रक्त-स्रावसे प्रकट हुई नदी तीव्र वेगसे प्रवाहित होने लगी। उसमें रथ, घोड़े और मनुष्य भी बह चले। वह रक्त-सरिता वैतरणीके समान मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्गम हो गयी थी। कूष्माण्ड, उन्माद और बेतालगण भैरवनाद करते हुए आये और रुद्रकी माला बनानेके लिये वहाँसे नरमुण्डोंका संग्रह करने लगे। अपनी सेनाको रणभूमिमें गिरी देख महान् धनुर्धर-शिरोमणि अनिरुद्ध बहुत बड़ी पताकावाले रथपर आरूढ़ हो, भीष्मका सामना करनेके लिये आगे बढ़े। राजन्! प्रलयकालके महासागरसे उठी हुई ऊँची-ऊँची भँवरों और तरंगोंके भयानक घात-प्रतिघातसे प्रकट हुई ध्वनिके समान गम्भीर नाद करनेवाली भीष्मके धनुषकी प्रत्यञ्चाको प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धने एक ही बाणसे काट डाला—ठीक उसी तरह, जैसे गरुडने अपनी तीखी चोंचसे किसी नागिनके दो टुकड़े कर दिये हों। तब मनस्वी भीष्मने दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा

चढ़ायी और युद्धभूमिमें सबके देखते देखते उसपर ब्रह्मास्त्रका संधान किया। उससे बड़ा प्रचण्ड तेज प्रकट हुआ। यह देख माधव अनिरुद्धने भी अपनी सेनाकी रक्षाके लिये स्वयं भी ब्रह्मास्त्रका संधान किया। वे दोनों ब्रह्मास्त्र बारह सूर्योंके समान तेजस्वी होकर परस्पर युद्ध करने लगे। तब अनिरुद्धने तीनों लोकोंका दहन करनेमें समर्थ उन दोनों अस्त्रोंका उपसंहार कर दिया। साथ ही उन यदु-कुल तिलक अनिरुद्धने गङ्गानन्दन भीष्मके विद्युत्के समान दीप्तिमान् धनुषको भी सायकोंद्वारा उसी तरह काट डाला, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहासको नष्ट कर देता है। तब भीष्मने लाख भारकी बनी हुई सुदृढ़ गदा हाथमें लेकर उसे अनिरुद्धपर चलाया और सिंहके समान गर्जना की। जैसे गरुड़ किसी नागिनको पंजेसे पकड़ ले, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् अनिरुद्धने भीष्मकी गदाको बायें हाथसे पकड़ लिया और दाहिने हाथसे अपनी गदा उनकी छातीपर दे मारी। उस गदाके प्रहारसे व्यथित हो गङ्गानन्दन भीष्म मूर्च्छित होकर रथसे गिर पड़े। उस युद्धमण्डलमें वे आकाशसे गिरे हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे। तब वहीं खड़े हुए महात्मा अनिरुद्धपर कृपाचार्यने सहसा शक्तिका प्रहार किया। उस समय रोषसे उनके अधर फड़क रहे थे। नरेश्वर! उस शक्तिको कृष्णपुत्र दीप्तिमान्ने (अनिरुद्धतक पहुँचनेसे पहले) मार्गमें ही अपनी तीखी धार-वाली तलवारसे उसी प्रकार काट दिया, जैसे किसीने कटु वचनसे मित्रता खण्डित कर दी हो। तदनन्तर रोषसे भरे हुए महाबाहु द्रोणाचार्यने बारंबार धनुषकी टंकार करके भानुके ऊपर पर्वतास्त्रका प्रयोग किया। शत्रुकी सेनाको चूर्ण करते हुए बड़े-बड़े पर्वत आकाशसे गिरने लगे। राजेन्द्र! उन पर्वतोंके गिरनेसे यादव सेनामें महान् हाहाकार मच गया॥१०-२५॥

तब श्रीकृष्णपुत्र भानुने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। उससे प्रचण्ड आँधी प्रकट हुई, जिससे सारे पर्वत रण-भूमिसे उड़ गये। उसी अवसरपर कुपित हुए बाह्लीकने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, जिससे दावानलसे विशाल वनकी भाँति शत्रुकी सेना भस्मसात् होने लगी। यह देख उस रणभूमिमें जाम्बवतीनन्दन साम्बने पर्जन्यास्त्रका प्रयोग किया, जिसके द्वारा ज्ञानसे अहंकारकी भाँति वह अग्नि शान्त हो गयी। तब रोषसे भरे हुए कर्णने मधुको छोड़कर साम्बके ऊपर बीस बाण मारे। फिर वह बलवान् वीर मेघके समान गर्जना करने लगा। उसके बाणोंसे आहत हो रथसहित साम्ब दो घड़ीतक चक्कर काटते रहे। फिर मन ही-मन कुछ व्याकुल हो एक कोस दूर जा गिरे। फिर तो उन्होंने रथ छोड़ दिया और गदा लेकर वे रणभूमिमें आ पहुँचे। उस गदाके द्वारा जाम्बवती कुमार साम्बने कर्णको गहरी चोट पहुँचायी। राजन्! उस चोटसे पीड़ित हो महाबली वीर कर्ण पृथ्वीपर गिर पड़ा और समराङ्गणमें मूर्च्छित हो गया। साम्ब भी अपना धनुष लेकर दूसरे रथपर बैठ वेगसे जा चढ़े। उन्होंने बीस बाणोंसे शल्यको और पाँच बाणोंसे सोमदत्तको घायल कर दिया। राजन्! इतना ही नहीं, उन्होंने दस बाणोंसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको, सोलह बाणोंसे धौम्यको, दस बाणोंसे लक्ष्मणको, पाँचसे शकुनिको, बीस सायकोंसे दुःशासनको, बारहसे संजयको, सौ बाणोंसे भूरिश्रवाको तथा तीन बाणोंसे यज्ञकेतुको भी समराङ्गणमें घायल कर दिया। फिर बलवान् वीर साम्ब मेघके समान गर्जना करने लगे। तदनन्तर साम्बने दस-दस बाणोंसे सारथियोंको, एक-एकसे हाथियों और घोड़ोंको और पाँच पाँच बाणोंसे अन्य वीरोंको चोट पहुँचायी। जाम्बवतीकुमार साम्बका वह हस्तलाघव देखकर अपने एवं शत्रुपक्षके सभी सैनिक अत्यन्त विस्मित हो गये। इसी समय भीष्मने उठकर अपना उत्तम धनुष हाथमें लिया और दस बाण मारकर साम्बके श्रेष्ठ कोदण्डको खण्डित कर दिया। तदनन्तर महाबली वीर भीष्म, द्रोणाचार्य तथा कर्ण - तीनोंने यादव सेनाको तत्काल सायकोंद्वारा घायल करना उसी प्रकार आरम्भ किया, जैसे तीनों गुण उद्रिक्त होनेपर ज्ञानको नष्ट कर देते हैं॥ २६-३९½॥

मानद! दुर्योधन रथपर आरूढ़ हो पुनः युद्धके लिये आया। उसके साथ दस अक्षौहिणी सेना थी, जिसका महान् कोलाहल छा रहा था। मिथिलेश्वर! उस समय पुराणपुरुष देवेश्वर बलराम और श्रीकृष्ण वहाँ प्रकट हो गये। बलरामके रथपर तालध्वज और श्रीकृष्णके रथपर गरुडध्वज शोभा दे रहे थे। वे दोनों भाई अपनी दिव्य-कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान कर रहे थे। उस समय देवता जय जयकार कर उठे। मुख्य-मुख्य गन्धर्व मनोहर गान करने लगे। देवताओंके आनक और दुन्दुभियोंकी ध्वनि होने लगी तथा देवाङ्गनाएँ खील (लावा) और फूल बरसाने लगीं। उसी समय यदुवंशी वीर परमेश्वर बलराम और श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम करने लगे। दुर्योधन आदि कौरव सब ओर अस्त्र-शस्त्र

रखकर उन्हें उत्तम बलि अर्पित करने लगे । सभी प्रसन्न थे और सबके हाथ जुड़े हुए थे। परमेश्वर श्रीहरिने अपने मदोन्मत्त प्रद्युम्न आदि पुत्रोंको डाँट बतायी और भीष्म आदि कौरवोंको प्रणाम करके, दुर्योधनसे मिलकर वे दोनों इस प्रकार बोले ॥ ४०-४५ ॥

श्रीबलराम और श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! इन बालबुद्धिवाले यादवोंने जो कुछ किया है, उसके लिये क्षमा कर दो; अपने मनमें दुःख न मानो । नृपेश्वर ! इन लोगोंने जो भी कठोर बात कही है, वह हम दोनोंके प्रति कही गयी मान लो । राजन् ! इस भूतलपर यादव और कौरवोंमें कदापि किंचिन्मात्र भी कलह नहीं होना चाहिये । ये सब परस्पर सम्बन्धी और ज्ञाति हैं । हमलोग धोती और उत्तरीयकी भाँति परस्पर एक-दूसरेका प्रिय करनेवाले हैं ॥ ४६-४७ ॥

नारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर ! कौरवोंसे निरन्तर पूजित और सेवित हो देवेश्वर बलराम और श्रीकृष्ण प्रद्युम्न आदि यादवोंके साथ वहाँ अत्यन्त सुशोभित हुए ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यादव और कौरवोंमें मेल' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

अर्जुनसहित प्रद्युम्नका कालयवन-पुत्र चण्डको जीतकर भारतवर्षके बाहर पूर्वोत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान

नारदजी कहते हैं—राजन ! भाइयों तथा अन्यान्य कुरुवंशियोंके साथ दुर्योधनको शान्त करके यदु-कुल-तिलक बलराम और श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे मिलनेके लिये इन्द्रप्रस्थको गये । तब अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा स्वजनोंके साथ श्रीकृष्णकी अगवानीके लिये इन्द्रप्रस्थसे बाहर आये । उनके साथ इन्द्रप्रस्थके अन्यान्य निवासी भी शङ्खध्वनि, दुन्दुभिनाद, वेदमन्त्रोंका घोष तथा वेणुवादन-पूर्वक पुष्पवर्षा करते हुए आये । बलराम और श्रीकृष्णको राजा युधिष्ठिरने दोनों भुजाओंसे खींचकर हृदयसे लगा लिया और परमानन्दका अनुभव किया । वे योगीकी भाँति आनन्दमें डूब गये । प्रद्युम्न आदि श्रीकृष्णकुमारोंने भी श्रीयुधिष्ठिरको प्रणाम किया । युधिष्ठिरने उन सबको दोनों हाथोंसे पकड़कर आशीर्वाद दिया । श्रीहरिने स्वयं अर्जुन और भीमसेनको हृदयसे लगाकर उनका कुशल-समाचार पूछा तथा नकुल और सहदेवने उनके चरणोंमें वन्दना की ॥ १-५½ ॥

श्रीकृष्ण और बलराम साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं, असंख्य ब्रह्माण्डोंके पालक हैं । भगवद्भक्त युधिष्ठिरने उन दोनों भाइयोंका पूर्णतर समादर किया । उन्होंने यदुकुलके मुख्य वीर प्रद्युम्न आदिको सैनिकोंसहित दिग्विजयके लिये विधिपूर्वक भेजा और सारी पृथ्वीको जीतनेके लिये आज्ञा दी । फिर वे दोनों भक्तवत्सल सर्वेश्वर बन्धु भाइयोंसहित धर्मराज युधिष्ठिरसे मिलकर द्वारकाको चले गये । राजन् ! गौर और श्याम वर्णवाले दोनों भाई, बलराम और श्रीकृष्ण सबके मनको हर लेनेवाले हैं । नरेश्वर ! इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णका चरित्र कहा । यह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला है । अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ६-९½ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने ! बलरामसहित पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जब कुशस्थलीको चले गये, तब साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न हरिने क्या किया ? उनका अद्भुत चरित्र श्रवण करनेयोग्य तथा मनोहर है । जो जीवन्मुक्त ज्ञानी भक्त हैं, उनके लिये भी भगवच्चरित्र सदा श्रवणीय है, फिर जिज्ञासु भक्तोंके लिये तो कहना ही क्या । भगवान्‌का चरित्र अर्थार्थी भक्तोंको सदा अर्थ देनेवाला और आर्त्त भक्तोंकी पीड़ाको शान्त करनेवाला है । इतना ही नहीं, स्थावर आदि चार प्रकारके जो जीव-समुदाय हैं, उन सबके पापोंका वह नाश करनेवाला है । दिग्विजयके इच्छुक श्रीहरिकुमार प्रद्युम्न किस प्रकार सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय प्राप्त करके पुनः सेनासहित द्वारकामें लौटे, यह सारा वृत्तान्त आप मुझे ठीक-ठीक बतलाइये । देवर्षे ! आप ब्रह्माजीके पुत्र और

साक्षात् सर्वदर्शी भगवान् हैं, भगवान् श्रीकृष्णके मन हैं; अतः पहले श्रीहरिके मनस्वरूप आपको मेरा प्रणाम है ॥ १०—१४ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी । तुम भगवत्प्रभावके ज्ञाता होनेके कारण धन्य हो ! इस भूतलपर श्रीकृष्णचरित्रको सुननेके पात्र (सुयोग्य अधिकारी) तुम्हीं हो । नरेश्वर ! श्रीकृष्णके चले जानेपर अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंसे प्रद्युम्नकी रक्षा करनेके लिये स्नेहवश उनके साथ शीघ्र ही अपने भाई अर्जुनको भी जानेकी आज्ञा दे दी; क्योंकि उनके मनमें बाहरी शत्रुओंसे प्रद्युम्न आदिपर भय आनेकी आशङ्का हो गयी थी ॥ १५-१६ ॥

मिथिलेश्वर ! तदनन्तर अर्जुनके साथ यदुश्रेष्ठ प्रद्युम्न विशाल सेनाको अपने साथ लिये तत्काल त्रिगर्त जनपदमें जा पहुँचे । त्रिगर्तके राजा धनुर्धर सुशर्माने शङ्कित होकर, महामना प्रद्युम्नको भेंट दी । फिर मत्स्य देशके राजा विराटसे पूजित होकर, यादवेश्वर प्रद्युम्नने सरस्वती नदीमें स्नान करके कुरुक्षेत्र तीर्थका दर्शन किया । फिर पृथूदक, बिन्दु-सरोवर, त्रितकूप और सुदर्शन आदि तीर्थोंमें होते हुए, सरस्वतीमें स्नान करके, वहाँ अनेक प्रकारके दान दे वे आगे बढ़ गये । कौशाम्बी* नगरीमें पहुँचनेपर सारस्वत प्रदेशके राजा कुशाम्बने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी; क्योंकि वे दुर्योधनके वशीभूत होनेके कारण उसीके पिछलग्गू थे । तब प्रद्युम्नकी आज्ञा पाकर चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पराक्रमी चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और दसवें चारु—इन दसों रुक्मिणीपुत्रोंने सिंधी घोड़ोंपर सवार हो, सबके देखते-देखते कौशाम्बी नगरीको चारों ओरसे घेर लिया । उनके बाणोंसे राजधानीके महलोंके शिखर, ध्वज, कलश और तोलिका आदि चूर-चूर होकर उसी प्रकार गिरने लगे, जैसे वानरोंके प्रहारसे लङ्काकी अट्टालिकाएँ टूट-टूटकर गिरने लगी थीं । रुक्मिणीकुमारोंने जब इस प्रकार बाणोंद्वारा अन्धकार फैला दिया, तब राजा कुशाम्ब हाथमें बहुत-सी भेंट-सामग्री लिये नगरसे बाहर निकले । उन्होंने हाथ जोड़कर शम्बरारिको नमस्कार किया और बहुत-सी भेंट-सामग्री देकर भयार्त एवं भयविह्वल राजाने नगरीकी रक्षा की । उसी समय सौवीरराज सुदेव, आभीरराज विचित्र, सिन्धुपति चित्राङ्गद, कश्मीरराज महौजा, जाङ्गलदेशाधिपति सुमेरु, लाक्षेश्वर धर्मपति और गन्धर्वराज विडौजा—इन सबने भी, जो दुर्योधनके वशवर्ती थे, भयके कारण बलि अर्पित करके अत्यन्त विनीत होकर कृष्णकुमार प्रद्युम्नको प्रणाम किया । तदनन्तर अपनी सेनासे घिरे हुए महाबाहु प्रद्युम्न उद्भट वीर कल्किके समान अर्बुद और म्लेच्छ देशोंपर विजय पानेके लिये प्रस्तुत हुए ॥ १७—३० ॥

कालयवनका महाबली पुत्र यवनेन्द्र चण्ड प्रद्युम्नका आगमन सुनकर अत्यन्त क्रोधसे भर गया । 'आज मैं अपने पिताकी हत्या करनेवाले शत्रुके पुत्रका वध करके बापका बदला चुका लूँगा'—मन-ही-मन ऐसा विचार करके दस करोड़ म्लेच्छोंकी सेना लिये, मदकी धारा बहाने और गर्जनेवाले ऊँचे गजराजपर आरूढ़ हो, आँखें लाल करके, वह महात्मा प्रद्युम्नके सामने निकला । चण्डकी प्रेरणासे तीखे बाणोंकी वर्षा करनेवाली उस विशाल सेनाको आयी देख प्रद्युम्न अपने सैनिकोंसे बोले ॥ ३१—३४ ॥

प्रद्युम्नने कहा—जो शत्रुसेनाका संहार करके शिरस्त्राणसहित चण्डका मस्तक काटकर यहाँ ला देगा, उस वीरको मैं अपनी सेनाका सेनापति बनाऊँगा ॥ ३५ ॥

नारदजी कहते हैं- राजन् ! जब प्रद्युम्न पास ही इस प्रकार कह रहे थे, तब गाण्डीवधारी कपिध्वज अर्जुनने बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए अकेले ही शत्रुकी सेनामें प्रवेश किया । रणदुर्मद गाण्डीवधारीने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए विशिखोंद्वारा सामने खड़े हुए वीरों, रथों, हाथियों और घोड़ोंके दो-दो टुकड़े कर डाले । हाथोंमें शक्ति, खड्ग तथा ऋष्टि (दुधारा खाँड़ा) लिये कितने ही शत्रु-सैनिक भुजाएँ कट जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े । कितने ही कवचधारी वीरोंके पैर कट गये और नख विदीर्ण हो गये । जिनके हौदे छिन्न-भिन्न हो गये और शरीर घायल हो गये थे, ऐसे हाथी युद्धभूमिमें इधर-उधर भागने लगे । उनके घंटे कहीं गिर गये और हौदे कहीं जा पड़े । वे अपनी सूँड़ोंसे हाथियोंको भी गिराते हुए भाग चले । अर्जुनके बाणोंसे दो-दो टूक हुए हाथियों और घोड़ोंसे भरा हुआ वह समराङ्गण हँसुओंसे काटे गये कुम्हड़ोंके टुकड़ोंसे व्याप्त

---

* इतिहासप्रसिद्ध कौशाम्बी नगरी तो इलाहाबाद जिलेके 'कोसम' नामसे प्रसिद्ध स्थानके आस-पास रही है । यह बात खुदाई आदिसे भी सिद्ध हो चुकी है । यहाँ जिस 'कौशाम्बी' की चर्चा है, वह दूसरी ही है; राजा कुशाम्बके नामपर बसी हुई राजधानीको 'कौशाम्बी' कहा गया है ।

हुए खेत-सा जान पड़ता था । फिर तो म्लेच्छ सैनिक अपने-अपने हथियार फेंक, समराङ्गण छोड़कर जोर-जोरसे भागने लगे—ठीक उसी तरह जैसे सूर्यकी किरणोंसे विदीर्ण हुए कुहासोंके समुदाय नष्ट हो जाते हैं ॥ ३६–४१ ॥

मैथिलेन्द्र ! हाथीपर बैठे हुए म्लेच्छराज चण्डने एक शक्ति घुमाकर अर्जुनके ऊपर फेंकी और सिंहके समान गर्जना की । राजेन्द्र ! बलवान् श्रीकृष्ण-सखा अर्जुनने विद्युल्लताके समान अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिके गाण्डीव-मुक्त बाणोंद्वारा खेल-खेलमें ही सौ टुकड़े कर डाले । महाम्लेच्छ चण्ड रोषसे भरकर जबतक धनुष उठाये, तबतक ही गाण्डीवधारीने लीलापूर्वक एक बाण मारकर उसके उस धनुषको काट दिया । तब प्रचण्ड-पराक्रमी चण्डने दूसरा धनुष हाथमें लेकर प्रलयकालके महासागरकी बड़ी-बड़ी भँवरोंके टकरानेकी भाँति गम्भीर नाद करनेवाली अर्जुनकी प्रत्यञ्चाको उसी तरह काट दिया, जैसे गरुड किसी सर्पिणीके टुकड़े-टुकड़े कर डाले । तब अर्जुनने ढालके साथ चमकती हुई अपनी तलवार ले ली और उससे चण्डके गजराजकी कुम्भस्थलीपर इस प्रकार प्रहार किया, मानो इन्द्रने पर्वतपर वज्र मार दिया हो । अग्निदेवके दिये हुए उस खड्गसे उस हाथीका कुम्भस्थल फट गया । उसने चिग्घाड़ करते हुए धरतीपर घुटने टेक दिये । फिर वह अत्यन्त मूर्च्छित हो गया । तब चण्डने भी तलवार लेकर पाण्डुनन्दन अर्जुनपर प्रहार किया, परंतु कुरु-कुल-तिलक अर्जुनने उसके खड्गको ढालपर रोककर उसके ऊपर अपनी तलवारसे वार किया । इससे चण्डका शिरस्त्राणसहित मस्तक धड़से अलग हो गया । तदनन्तर अर्जुनने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और चण्डके मस्तकको बाणपर रखकर उसे धनुषपर खींचकर चलाया और प्रद्युम्नकी सेनामें उसे फेंक दिया ॥ ४२–५० ॥

उस समय जय-जयकारके साथ दुन्दुभि बजने लगी और देवतालोग अर्जुनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे । फिर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने उसी क्षण विजयध्वजसे विभूषित अपनी सेनाका अर्जुनको सेनापति बना दिया । उस समय यादव-सेनाके मुख्य वीरोंने हाथमें श्वेत चँवर आदि लेकर कपिध्वज अर्जुनके ऊपर हवा की । फिर तो वेगशाली अर्बुदाधीशने प्रद्युम्नकी शरण ली । उसने डरते हुए हाथ जोड़कर नमस्कार किया और भेंट अर्पित की । मोरङ्गके राजा मन्दहासने भयभीत हो महात्मा प्रद्युम्नको दस लाख घोड़े देकर नमस्कार किया । इस प्रकार भरतखण्डपर विजय पाकर यदु-कुल-तिलक श्रीकृष्णकुमारने हिमालयको दक्षिण दिशामें करके पूर्वोत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५१–५५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'बहुदिग्विजय' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

यादव-सेनाका बाणासुरसे भेंट लेकर अलकापुरीको प्रस्थान तथा यादवों और यक्षोंका युद्ध

नारदजी कहते हैं—राजन् ! नदों, नदियों और समुद्रोंने भी सेनासहित महात्मा प्रद्युम्नको उनके तेजसे धर्षित हो रथ निकलनेके लिये मार्ग दे दिया ॥ १ ॥

कैलास पर्वतके पार्श्वभागमें बाणासुरका निवासस्थान शोणितपुर था । वहाँ श्रेष्ठ मानव-वीर यादवेश्वर प्रद्युम्न गये । यदुवंशियोंको पुनः आया देख, बाणासुरको बड़ा क्रोध हुआ । उसने बारह अक्षौहिणी सेनाके द्वारा उनके साथ युद्ध करनेका विचार किया । इसी समय त्रिशूलधारी साक्षात् पुराणपुरुष महेश्वर देव नन्दी वृषभपर आरूढ़ हो हिमाचलपुत्री उमाके साथ बाणासुरके पास आये और बोले ॥ २–४ ॥

शिवने कहा—असुरराज ! साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्पर परमात्मा हैं । हम तीनों—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—उन्हींकी कला हैं और उनकी आज्ञाको सदा अपने मस्तकपर धारण करते हैं; फिर तुम-जैसे सामान्य कोटिके जीवोंकी तो बात ही क्या । उन्हींके पौत्र अनिरुद्धको तुमने बाँध लिया

था, जिसके कारण उन्होंने अपने प्रभावसे संग्राममें तुम्हारी भुजाएँ काट डाली थीं। क्या उन श्रीहरिको तुम नहीं जानते ? (उन्हें इतनी जल्दी भूल गये ?) अतः तुम दानवोंके लिये श्रीहरिके पुत्र पूजनीय हैं। अनिरुद्ध तो तुम्हारे दामाद ही हैं, अतः तुम्हारे लिये उनके पूजनीय होनेमें तो कोई संशय नहीं है। असुरपुंगव ! मैं तुम्हें युद्धके लिये आज्ञा नहीं देता। यदि नहीं मानोगे तो अपने बलसे युद्ध करो; परंतु तुम्हारे मनका युद्ध-विषयक संकल्प मुझे तो व्यर्थ ही दिखायी देता है ॥ ५-९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् शिवके समझाने-पर बाणासुरने अनिरुद्धको बुलाकर उनका पूजन किया और दहेज दिया। फिर सेनासहित प्रद्युम्नका बन्धुके समान सादर पूजन करके महाबाहु बाणने उन महात्माको दस हजार हाथी, पाँच लाख रथ तथा एक करोड़ घोड़े भेंटमें दिये ॥ १०-११½ ॥

महाराज ! तदनन्तर धनुर्धर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न अपने यादव सैनिकोंके साथ गुह्यकों (यक्षों) से मण्डित अलकापुरीको गये। नन्दा और अलकनन्दा—ये दो गङ्गाएँ परिखा (खाईं) की भाँति उस पुरीको घेरे हुए हैं। वहाँ वे दोनों नदियाँ रत्नोंकी बनी हुई सीढ़ियोंसे युक्त हैं। वह पुरी यक्षवधुओंसे सुशोभित है। विद्याधरों और किंनरोंकी सुन्दरियाँ सब ओरसे उसकी मनोहरताको बढ़ाती हैं। दिव्य नागकन्याओंसे सुशोभित भोगवती पुरीकी भाँति गुह्यक-कन्याओंसे अलकापुरीकी शोभा हो रही थी। नरेश्वर ! कुबेरने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी। यद्यपि वे श्रीहरिके प्रभावको जानते थे, तथापि उन्होंने भेंट देना स्वीकार नहीं किया। अहो ! मायाका बल कितना अद्भुत है ! 'मैं लोकपाल हूँ', इस अज्ञानसे वे सदा मोहित रहते थे। अतः बलवान् यक्षोंसे प्रेरित होकर उन्होंने युद्ध करनेका ही विचार किया; क्योंकि निर्धनको यदि धन मिल जाता है तो वह सारे जगत्को तृणवत् मानने लगता है। फिर जो भूतलपर नव-निधियोंके अधिपति हों, उनके अहंकारका क्या वर्णन हो सकता है। मानद ! उसी समय कुबेरका भेजा हुआ दूत हेममुकुट प्रद्युम्नके पास आकर सभामें मस्तक झुकाकर उनसे इस प्रकार बोला ॥ १२-१८½ ॥

हेममुकुटने कहा—राजन् ! यदु-कुल-तिलक ! अलकापुरीके स्वामी धनके अधीश्वर लोकपाल राजराज कुबेरने जो संदेश दिया है, उसे आप सुनिये—"जैसे स्वर्गलोकमें प्रभु इन्द्र देवताओंके राजा कहे गये हैं, उसी प्रकार भूतलपर एकमात्र मैं ही राजाओंका महान् अधिराज होनेके कारण 'राजराज' कहा गया हूँ। यद्यपि मेरा धर्म (शील-स्वभाव) मनुष्योंके ही समान है, तथापि भूतलपर राजाधिराजोंने सदा मेरा पूजन किया है। इसलिये उग्रसेनको ही मुझे उत्तम भेंट देनी चाहिये (मैं भेंट लेनेका अधिकारी हूँ, देनेका नहीं)। इसलिये मैं यदुराज उग्रसेनको कदापि भेंट नहीं दूँगा। यदि तुम नहीं मानोगे, तो युद्ध करूँगा, इसमें संशय नहीं" ॥ १९-२२ ॥

नारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर ! दूतकी यह बात सुनकर भगवान् प्रद्युम्न हरि कुपित हो उठे। रोषसे उनकी आँखें लाल हो गयीं और होठ फड़कने लगे ॥ २३ ॥

प्रद्युम्न बोले—वृष्णिवंशियोंके स्वामी उग्रसेन राजराजों-के भी इन्द्र हैं। तुम्हारे स्वामी राजराज कुबेर उन्हें अच्छी तरह नहीं जानते; साक्षात् इन्द्रादि देवता भी उनकी चरण पादुकाओंपर अपने मुकुट रगड़ते हैं। इन्द्रने भयसे ही उनकी सेवामें अपनी सुधर्मा सभा और पारिजात वृक्ष अर्पित कर दिये हैं। वरुणने श्यामकर्ण घोड़े देकर उन्हें प्रणाम किया है। इन्हीं डरपोक राजराजने उनके पास नवों निधियाँ पहुँचायी हैं। फिर भी उन महाबली महाराजको ये राजराज नहीं जानते ! उन यादवराजकी सभामें असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं विराजते हैं। यह सारा भूमण्डल जिनके एक मस्तकपर तिलकके समान दिखायी देता है, वे सहस्र मस्तकवाले अनन्त-देव भी उग्रसेनकी सभामें नित्य विराजमान रहते हैं। महाराज उग्रसेनने मुझे महात्मा कुबेरके लिये नाराचों (बाणों) की भेंट देनेके निमित्त यहाँ भेजा है, अतः इस समय मैं यही करूँगा ॥ २४-२९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर प्रचण्ड-पराक्रमी प्रद्युम्नने अपना कोदण्ड उठाया और भुजदण्डोंसे धनुषकी डोरी खींचते हुए टंकार-ध्वनि की। प्रत्यञ्चाके आस्फोटनसे ही विद्युत्की गड़गड़ाहटके समान भयंकर शब्द प्रकट हुआ। उससे सात लोकों तथा पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। राजन् ! दिग्गज विचलित हो गये, तारे टूटने लगे और भूखण्ड-मण्डल हिल उठा। धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने तरकससे एक बाण खींचकर उसे अपने

धनुषकी प्रत्यञ्चापर रक्खा और उसे छोड़ दिया। बारह सूर्योंके समान तेजस्वी उस बाणने सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको प्रकाशित करते हुए गुह्यकराजके छत्र और चँवरको काट दिया। यह अत्यन्त विचित्र काण्ड देखकर राजराज कुबेरके क्रोधकी सीमा न रही। वे पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो सैनिकोंके साथ युद्धकी कामनासे पुरीके बाहर निकले। उनके साथ घण्टानाद और पार्श्वमौलि नामक यक्ष-मन्त्री भी थे। कुबेरके नलकूबर और मणिग्रीव नामक दोनों पुत्र ध्वजके अग्रभागमें सुशोभित हो रहे थे। उनकी सेनाके कुछ यक्ष अश्वमुख थे, कितने ही यक्षोंके मुख सिंहके समान थे। कुछ सूँस और मगरके समान मुखवाले थे, कोई आधे पीले और आधे काले थे, किन्हींके केश ऊपरकी ओर उठे थे। वे सब-के-सब मदसे उन्मत्त थे। टेढ़े-मेढ़े दाँत, लपलपाती हुई जीभ और विशाल दंष्ट्रावाले महाबली यक्षोंके मुख विकराल दिखायी देते थे। वे कवच तथा ढाल-तलवार धारण किये हुए थे। शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डि और परिघ—ये आयुध उनके हाथोंमें देखे जाते थे। कुछ यक्षोंने धनुष और बाण ले रक्खे थे और किन्हींके हाथोंमें फरसे चमक रहे थे। युद्धके लिये निकले हुए हाथीसवार, रथारोही और घुड़सवार यक्षोंके सहस्रों मण्डल शोभा पाते थे। शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे तथा सूत, मागध और वन्दीजनोंके स्तुति-पाठसे भूतलपर कुबेरके वीर सैनिक आकाशमें विद्युत्-गर्जनासे युक्त मेघोंके समान जान पड़ते थे॥ ३०—४१॥

विदेहराज! इस प्रकार दिव्य महायोगमय सिद्धक्षेत्रसे करोड़ों मतवाले यक्ष निकल पड़े। उनके आ जानेपर प्रमथोंकी विशाल सेना उनकी सहायताके लिये आ पहुँची। कितने ही भूत और प्रमथ विकराल वदन और मदोन्मत्त दिखायी देते थे। उनके साथ डाकिनियोंके समुदाय, यातुधान, बैताल, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, प्रेत, मातृकागण, निशाचर, पिशाच, ब्रह्मराक्षस और भैरव भी थे, जो भीषण गर्जना करते हुए 'मारो, काटो, फाड़ो' की रट लगा रहे थे। इस प्रकार वहाँ करोड़ों भूतावलियाँ आ पहुँचीं, जो सांवर्तक मेघोंकी भाँति पृथ्वी और आकाशको आच्छादित किये हुए थीं। मोरपर बैठे हुए स्वामी कार्तिकेय तथा चूहेपर चढ़े हुए गणेशजी डमरूकी ध्वनिके साथ वीरभद्रको लिये सबसे आगे आ पहुँचे। प्रमथगण उन दोनोंके यशका गान कर रहे थे। इस प्रकार पुण्यजनोंका यादवोंके साथ तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ, जो अद्भुत और रोमाञ्चकारी था। रथी रथियोंसे, पैदल पैदलोंसे, घोड़े घोड़ोंसे और हाथी हाथियोंसे परस्पर जूझने लगे। राजेन्द्र! रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंके पैरोंसे उठी हुई धूलने सूर्यसहित आकाशमण्डलको ढक दिया॥ ४२—५१॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यादव-सेनाकी यक्षदेशपर चढ़ाई' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

यादव-सेना और यक्ष-सेनाका घोर युद्ध

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे वहाँ अन्धकार छा जानेपर महाबली मणिग्रीवने बाणोंद्वारा वैरी-वाहिनीका उसी प्रकार विध्वंस आरम्भ किया, जैसे कोई कटु-वचनोंद्वारा मित्रताका नाश करे। मणिग्रीवके बाण-समूहोंसे क्षत-विक्षत हो, हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति धराशायी होने लगे। उस समय श्रीकृष्ण और सत्यभामाके बलवान् पुत्र चन्द्रभानुने पाँच बाण मारकर मणिग्रीवके कोदण्डको खण्डित कर दिया तथा दस बाणोंसे उसके रथका छेदन करके बलवान् चन्द्रभानु घनके समान गर्जना करने लगे। यह देख मणिग्रीवने भी चन्द्रभानुपर अपनी शक्ति चलायी। मैथिल! वह शक्ति सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करती हुई बड़ी भारी उल्काके समान गिरी; परंतु चन्द्रभानुने खेल-सा करते हुए उसे बायें हाथसे पकड़ लिया। उन्होंने उसी शक्तिके द्वारा समराङ्गणमें महाबली मणिग्रीवको घायल कर दिया। तत्पश्चात् महाबली चन्द्रभानु उस रणभूमिमें पुनः गर्जना करने लगे। उस प्रहारसे मणिग्रीव मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। तब नलकूबरकी प्रेरणासे असुरोंने बाणोंका जाल-सा बिछाकर चन्द्रभानुको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे बादल वर्षाकालके सूर्यको ढक देते हैं॥ १—७½॥

तब श्रीकृष्णपुत्र दीप्तिमान् खड्ग हाथमें लेकर बड़े वेगसे यक्षोंकी सेनामें इस प्रकार घुस गये, मानो सूर्यने कुहासेके भीतर प्रवेश किया हो। उनके खड्ग-प्रहारसे कितने ही यक्षोंके दो-दो टुकड़े हो गये; कितने ही मस्तक, पैर, कंधे, बाँहें, हाथ, कान और ओठ छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण युद्धमें पृथ्वीपर गिर पड़े। किरीट, कुण्डल और शिरस्त्राणोंसहित उनके कटे हुए बीभत्स मस्तक रक्तकी धारा बहा रहे थे और उनसे ढकी हुई रणभूमि महामारी-सी जान पड़ती थी। मरनेसे बचे हुए घायल यक्ष भयसे विह्वल होकर भाग गये। मिथिलेश्वर! उस समय यक्ष-सैनिकोंमें हाहाकार मच गया॥ ८—१२॥

तब कवचधारी नलकूबर धनुषकी टंकार करते हुए बहुत ऊँची पताकावाले रथपर आरूढ़ हो वहाँ आ पहुँचे और 'डरो मत'—यों कहकर अपने सैनिकोंको अभयदान देने लगे। नलकूबरने पाँच बाणोंसे कृतवर्मापर, दस बाणोंसे अर्जुनपर और बीस बाणोंसे दीप्तिमान्‌पर प्रहार किया। राजन्! तब महाबाहु कृतवर्माने अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको निनादित करते हुए पाँच विशिखोंद्वारा नलकूबरको करारी चोट पहुँचायी। वे बाण नलकूबरका कवच फाड़कर शरीरको छेदते हुए सबके देखते-देखते धरातलमें उसी प्रकार समा गये, जैसे सर्प बाँबीमें घुस जाते हैं। कृतवर्माके बाणसे अङ्ग विदीर्ण हो जानेके कारण नलकूबरको मूर्च्छित हुआ देख सारथि हेममाली उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया। घण्टानाद और पार्श्वमौलि, कुबेरके ये दोनों मन्त्री अपने बाण-समूहोंसे यादवोंकी उद्भट सेनाको घायल करने लगे। गृध्रपक्षसे युक्त सुनहरे पंख और तीखे मुखवाले, मनके समान वेगशाली उन दोनोंके बाण सूर्यकी किरणोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंको उद्भासित कर रहे थे॥ १३—१९॥

तदनन्तर महावीर अर्जुनने उन मन्त्रियोंके बाणोंके उत्तरमें बहुत-से बाण चलाना आरम्भ किया। दोनों ओर चलनेवाले बाणोंके संघर्षसे युद्धभूमिमें हजारों विस्फुलिङ्ग (अग्निकण) प्रकट होने लगे। नरेश्वर! आकाशमें खद्योतोंकी भाँति चमकनेवाले वे चञ्चल विस्फुलिङ्ग अलात-चक्रकी भाँति शोभा पाने लगे। रण दुर्मद वीर गाण्डीवधारी अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए विशिखोंद्वारा उस समस्त बाण-समूहको क्षणमात्रमें काट गिराया। उन्होंने बाणोंके समुदायसे दो योजनके घेरेमें पिंजरा-सा बना दिया और बल-पूर्वक उन दोनों मन्त्रियोंके ध्वजसहित रथोंको उस घेरेके अंदर कर लिया। वे दोनों मारे गये—यह जानकर समस्त पुण्यजन (यक्ष) तत्काल युद्ध छोड़कर हाहाकार करते हुए भाग चले॥ २०—२३½॥

उसी समय करोड़ों भूतवृन्द युद्धभूमिमें आ गये। राजन्! कोटि-कोटि डाकिनियाँ रणभूमिमें हाथियोंको उठा-उठाकर फेंकने लगीं। मनुष्यों, घोड़ों तथा रथियोंको पृथक्-पृथक् मुँहमें डालकर चबाने लगीं। एक-एक मानवके पीछे एक-एक भूत लगा था। दसके साथ दस भूत दौड़ते दिखायी देते थे। प्रमथगणोंने खट्वाङ्गसे बारंबार लोगोंको मारा और गिराया। यातुधानियाँ रणमण्डलमें नरमुण्डोंको चबा रही थीं। वेतालगण खप्परमें बहुत-सा रक्त ले-लेकर पी रहे थे, विनायक नाचते और प्रेत गाते थे। कूष्माण्ड और उन्माद उस युद्ध-भूमिमें गिरे हुए मस्तकोंका संग्रह करते थे। स्वर्गगामी वीरोंके मस्तकोंका उनके द्वारा किया जानेवाला वह संग्रह भगवान् शिवकी मुण्डमाला बनानेके लिये था। मातृगण, ब्रह्मराक्षस और भैरव उस युद्धमें कटकर गिरे हुए मस्तकोंको गेंदकी तरह बारंबार उछालते फेंकते हुए हँसते, खिलखिलाते और अट्टहास करते थे। विकराल मुखवाले पिशाच बुरी तरह कूद-फाँद रहे थे। पिशाचिनियाँ युद्धमें बच्चोंको गरम-गरम रक्त पिलाती थीं और बच्चोंको आश्वासन देते हुए कहती थीं—'बेटा! मत रोओ। हम तुम्हें इन लोगोंकी आँखें भी निकाल-निकालकर देंगी'॥ २४—३१½॥

इस प्रकार भूतगणोंका बल बढ़ता देख बलदेवके छोटे भाई बलवान् गद हाथमें गदा लेकर मेघोंके समान गर्जना करने लगे। लाख भारकी उस मौर्वी गदासे गदने उस विशाल भूत-सेनाको उसी प्रकार मार गिराया, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको धराशायी कर देते हैं। गदाकी मारसे मस्तक फट जानेके कारण बहुत-से कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, पिशाच और ब्रह्मराक्षस मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। गदने समराङ्गणमें डाकिनियोंके दाँत तोड़ डाले, प्रमथोंके कंधे विदीर्ण कर दिये और यातुधानोंके मुख छिन्न-भिन्न कर डाले। राजन्! गदासे रौंदे गये प्रेत दसों दिशाओंमें उसी तरह भाग चले, जैसे प्रलयकालके समुद्रमें भगवान् वाराहकी दाढ़से अङ्ग-भङ्ग होनेके कारण दैत्य पलायन कर गये थे॥ ३२—३६½॥

भूतगणोंके भाग जानेपर वीरभद्र सामने आया। उस बलवान् भूतनाथने बलदेवके छोटे भाई गदको गदासे मारा। गदने उसकी गदाको अपनी गदापर रोक लिया और फिर

अपनी गदा उसके ऊपर चलायी । मैथिलेश्वर ! वीरभद्र और गदमें बड़ा भयंकर गदायुद्ध हुआ । वे दोनों ही गदाएँ आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई परस्पर टकराकर चूर-चूर हो गयीं । फिर एक-दूसरेको ललकारते हुए उन दोनोंमें मल्लयुद्ध छिड़ गया । वे भुजाओं, घुटनों और पैरोंके आघातसे पर्वतोंको गिराते हुए लड़ने लगे । वीरभद्रने बलपूर्वक करवीर पर्वतको उखाड़कर अट्टहास करते हुए उसको गदके ऊपर फेंका । गदने उस पर्वतको पकड़ लिया और फिर उसीके ऊपर उसे दे मारा । तब बलवान् वीरभद्रने वीरवर गदको पकड़कर बड़े वेगसे आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया । वहाँसे भूमिपर गिरनेपर गदके मनमें कुछ व्याकुलता हो गयी । फिर महाबली गदने वीरभद्रको भी उठा लिया और वेगसे घुमाकर शीघ्र ही उसे भी लाख योजन दूर फेंक दिया । वीरभद्र कैलास पर्वतके शिखरपर गिरा । गदाके प्रहारसे तो वह पीड़ित था ही, अतः दो घड़ीतक मूर्च्छामें पड़ा रहा ॥ ३७—४५ ॥

तदनन्तर शक्ति उठाये स्वामिकार्तिकेय बड़े वेगसे युद्ध-भूमिमें पहुँचे । उन्होंने अनिरुद्ध और साम्बको लक्ष्य करके शीघ्र ही अपनी शक्ति चलायी । अनिरुद्धके रथका भेदन कर, साम्बको घायल करके, उनके रथको भी तोड़ती हुई वह शक्ति उस युद्धभूमिमें सहस्रों हाथियों, रथों और लाखों वीरोंको मारकर दसों दिशाओंमें चमकती और कड़कती हुई बिजलीकी तरह फुफकारती सर्पिणीके समान भूमिमें समा गयी । तब क्रोधसे भरे महाबाहु जाम्बवतीकुमार साम्बने प्रत्यञ्चाका घोष करते हुए तरकससे एक बाण निकाला । वह बाण एक होता हुआ भी तरकससे बाहर निकलते ही दस हो गया । धनुषपर रखते समय सौ और खींचते समय उसने सहस्र रूप धारण कर लिये । छूटते समय उस बाणके लाख रूप हो गये और लक्ष्योंतक पहुँचते-पहुँचते उसने कोटि रूप धारण कर लिये । इस प्रकार उस अनेक रूपधारी विशिखने शिखी (मोर) और शिखिवाहन स्वामिकार्तिकेयको घायल करके समराङ्गणमें कोटि-कोटि वीरोंको विदीर्ण कर डाला ॥ ४६—५१½ ॥

कार्तिकेयके क्षत-विक्षत होने और कुछ व्याकुलचित्त हो जानेपर चूहेपर चढ़े हुए गणेश्वर गजानन वहाँ आ पहुँचे । उनके कुम्भस्थलपर गोमूत्र, सिन्दूर और कस्तूरीके द्वारा विचित्र पत्र-रचना की गयी थी । उनका सुन्दर वक्र-तुण्ड कुङ्कुमसे आलिप्त था । सिन्दूरपूर्ण कपोलोंके कारण उनकी बड़ी मनोहर आभा दिखायी देती थी । कानोंका उज्ज्वल वर्ण मानो कपूरकी धूलसे धवलित किया गया था । उनके कपोलोंपर बहती हुई मदधारासे जिनके अङ्ग विह्वल हो रहे थे, वे मतवाले भ्रमर उनके चञ्चल कर्णतालोंसे आहत हो, गुञ्जारव करते हुए मानो संगीत, ताल और वासन्तिक रागकी सृष्टि कर रहे थे । उन मधुपोंसे सेवित भाल-चन्द्र-धारी गणपति अनुपम शोभा पा रहे थे । उनकी अङ्ग-कान्ति बालरविके समान अरुणोज्ज्वल थी । उनकी बाँहोंमें निर्मल अङ्गद, गलेमें हेमनिर्मित हार और हँसुली थी तथा मस्तकपर धारण किये हुए मुकुटकी किरणोंके द्वारा वे सब ओरसे दीप्तिमान् दिखायी देते थे । वे चूहेपर विराजमान थे । उनके मुखमें एक ही दाँत था । गजाकार भव्य मूर्ति शोभा पा रही थी । उन्होंने हाथोंमें पाश, अङ्कुश, कमल और कुठार-समूह धारण कर रखे थे । उनका कद ऊँचा था । उनके चार भुजाएँ थीं । वे घोर संग्राममें प्रवृत्त थे । किन्हीं शस्त्रधारियोंको सूँड़में लपेटकर अपने अङ्कुशकी मारसे उनका कचूमर निकाल देते थे । अनेक धारवाले फरसेसे समस्त शस्त्रधारियोंका संहार करते हुए वे श्रीपरशुरामजीके समान जान पड़ते थे । पैदल वीरों, हाथियों, घोड़ों तथा रथ-समूहसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनाको धराशायिनी करके, रथसहित साम्बको पकड़कर, वे युद्धस्थलसे दूर फेंक रहे थे । उन्हें देखकर यादवगणोंसहित प्रद्युम्नके मनमें बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने अपने परम बुद्धिमान् पुत्र अनिरुद्धसे यह उत्तम बात कही ॥५२—५७॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'घोर-युद्धका वर्णन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पचीसवाँ अध्याय

प्रद्युम्नका एक युक्तिके द्वारा गणेशजीको रणभूमिसे हटाकर गुह्यकसेनापर विजय प्राप्त करना और कुबेरका उनके लिये बहुत-सी भेंट-सामग्री देकर उनकी स्तुति करना; फिर प्राग्ज्योतिषपुरमें भेंट लेकर प्रद्युम्नका विरोधी वानर द्विविदको किष्किन्धामें फेंक देना

प्रद्युम्न बोले—बेटा ! ये महाबली गणेश साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी कला हैं। इन्हें देवता भी नहीं जीत सकते, फिर भूतलके मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? जिनके निकट इनका वास है, उनके पक्षकी पराजय नहीं होती। पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने शिवलोकमें इन्हें ऐसा ही वर दिया था। यदि ये यहाँ रहेंगे तो हमलोगों की कदापि विजय नहीं हो सकती। भगवान् श्रीकृष्णके वरदानसे इनका बल बहुत बढ़ा-चढ़ा है और ये शत्रुपक्षमें चले गये हैं। इसलिये तुम प्रचण्ड मार्जार (बड़ा भारी बिलाव) होकर हुंकार करते हुए युद्ध-भूमिसे बलपूर्वक इनके चूहेको मार भगाओ। इस महायुद्धमें अपने फूत्कारोंके द्वारा दसों दिशाओंमें उसे खदेड़ो। जबतक मैं शत्रुसेनापर विजय पाता हूँ, तबतक तुम इसे शीघ्र ही दूर भगानेका प्रयास करो ॥ १—४½ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तब भगवान् अनिरुद्धने प्रचण्ड मार्जारका रूप धारण किया। वे गणेशजीसे अलक्षित ही रहे। वैष्णवी मायाके प्रभावसे गणेशजी उन्हें पहचान न सके। वह प्रचण्ड मार्जार विकट फूत्कार करता हुआ चूहेके सामने कूद पड़ा। राजन् ! वह मुँह फाड़-फाड़कर निरन्तर उसे देखने और तीखे नखोंसे विशेष चोट पहुँचाने लगा। चूहा उस बिलावको देखते ही भयसे विह्वल हो गया और तुरंत काँपता हुआ रणभूमिसे भाग चला। क्रोधसे भरा हुआ मार्जार स्थूल रूप धारण करके उसका पीछा करने लगा। गणेशजी बारंबार उस चूहेको युद्धभूमिकी ओर लौटानेका प्रयत्न करने लगे; किंतु प्रचण्ड मार्जारसे पीड़ित चूहा युद्धभूमिकी ओर नहीं लौटा, नहीं लौटा। मैथिल ! वह सात द्वीपों, सात समुद्रों, दिशाओं और विदिशाओंमें तथा ऊपरके सातों लोकोंमें भागता फिरा; किंतु उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिली ॥ ५—१० ॥

राजन् ! गणेशजीको पीठपर लिये वह चूहा जहाँ जहाँ गया, वहाँ-वहाँ प्रचण्ड-पराक्रमी मार्जार भी उसका पीछा करता रहा। इस प्रकार चूहेसहित गणेशजी जब सुदूर दिशाओंमें चले गये और अपने पक्षके सभी प्रमथ गण विस्मित हो गये, तब पुष्पक-विमानपर बैठे हुए कुबेरने अपनी गुह्यक-सम्बन्धिनी माया फैलायी। अपना दिव्य धनुष लेकर, महेश्वरको नमस्कार करके उन्होंने मन्त्रसहित कवच धारण किया और बाण-समूहोंका संधान किया। उसी समय आकाशमें प्रलयकालिक मेघ छा गये। बिजलियोंकी गड़गड़ाहट और महाभयंकर मेघोंकी घटासे अन्धकार फैल गया। हाथीके समान मोटे-मोटे जलबिन्दु और ओले गिरने लगे। बादल अत्यन्त भयंकर जलधाराओंकी वृष्टि करने लगे। क्षणभरमें समस्त समुद्रोंने भूतलको आप्लावित कर लिया। रणमण्डलमें सजीव पर्वत दिखायी पड़ने लगे। प्राकृत प्रलय हुआ जान यादव भयसे विह्वल हो गये। वे अस्त्र-शस्त्र त्यागकर बारंबार 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' पुकारने लगे। गुह्यकोंकी उस मायाको जानकर भगवान् श्रीप्रद्युम्न हरिने अपनी सत्त्वात्मिका विद्याको, जो समस्त मायाओंको नष्ट करनेवाली है, जपकर बाणके बीचमें कामबीज (क्लीं) की स्थापना की। फिर उसके मुखपर प्रणव तथा श्रीबीज (ॐ श्रीं) का आधान करके उसे कानतक खींचा और चतुर्भुज श्रीकृष्णका स्मरण करके विद्युत्के समान टंकार-ध्वनि करनेवाले धनुषसे भुजदण्डोंद्वारा उस विशिखको चलाया। कोदण्ड-दण्डसे छूटे हुए उस विशिखने दिङ्मण्डलको उद्योतित करते हुए उस गुह्यक-सम्बन्धिनी मायाको उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे सूर्यदेव अन्धकारका ध्वंस कर देते हैं ॥ ११—२१½ ॥

यह देख पुष्पकपर बैठे हुए राजराज कुबेर भयभीत हो काँप उठे और यक्षोंके साथ समराङ्गणसे भागकर अपनी पुरीको चले गये। देवतालोग प्रद्युम्नके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। समस्त यादव जय-जयकार करते हुए हर्षके साथ हँसने लगे। राजन् ! उस समय अत्यन्त हर्षित हो राजराज कुबेर हाथ जोड़, भेंट लेकर

शीघ्र ही प्रद्युम्नके सामने गये । राजन् ! दो सूँड़ोंसे सुशोभित और चार दाँतोंसे युक्त, ऊँचाईमें पर्वतोंसे भी होड़ लेनेवाले दो लाख मदवर्षी हाथी, मोतीकी बन्दनवारोंसे सुशोभित, सुवर्णनिर्मित, सूर्यतुल्य तेजस्वी एवं सौ घोड़ोंसे खिंचे हुए दस लाख रथ, चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिवाले दस अरब घोड़े, माणिक्य-जटित चार लाख चमकीली शिबिकाएँ तथा पिंजरोंमें बंद दो लाख सिंह कुबेरने प्रद्युम्नको भेंट किये । विदेहराज ! चीते, मृग, गवय और शिकारी कुत्ते एक-एक करोड़की संख्यामें दिये । नृपेश्वर ! पिंजरोंमें विराजमान तोता, मैना, कोकिल, सुनहरे हंस और अन्यान्य विचित्र पक्षी राजराजने लाख-लाखकी संख्यामें अर्पित किये ॥ २२—३०½ ॥

कुबेरने विश्वकर्माका बनाया हुआ विष्णुदत्त नामक एक विमान भी दिया, जिसमें मोतीकी झालरें लटक रही थीं । उसकी ऊँचाई आठ योजन और लंबाई-चौड़ाई नौ योजनकी थी । उसमें लाख-लाख ध्वज और कलश लगे हुए थे । वह इच्छानुसार चलनेवाला विमान सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित तथा सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी था । मैथिल ! उसके अतिरिक्त सहस्रों कल्पवृक्ष, सैकड़ों कामधेनुएँ, सौ चिन्तामणियाँ तथा सौ दिव्य पारस पत्थर भी कुबेरने दिये, जिनके स्पर्शसे लोहा भी सोना हो जाता है । छत्र, चँवर और सोनेके सिंहासन भी सौ-सौकी संख्यामें भेंट किये । दिव्य पद्मोंकी सुन्दर केसरोंसे युक्त माला दी । सौ द्रोण अमृत, नाना प्रकारके फल, रत्न-जटित सोनेके आभूषण, दिव्य वस्त्र, दिव्य कज्जल, सोने-चाँदीके करोड़ों सुन्दर पात्र, अमोघ शस्त्र तथा कोटि सुवर्णमुद्राएँ भी भेंट कीं । बोझ ढोनेवाले हाथियों और मनुष्योंद्वारा सब सामान भेजकर कुबेरने नौ निधियाँ प्रदान कीं । इस प्रकार महात्मा प्रद्युम्नको भेंट-सामग्री अर्पित करके राजराजने उनकी परिक्रमा की और हर्षसे भरकर प्रणामपूर्वक उनसे कहा ॥ ३१—३८½ ॥

कुबेर बोले—आप भगवान् महात्मा पुरुष हैं; आपको नमस्कार है । आप अनादि, सर्वज्ञ, निर्गुण एवं परमात्मा हैं । प्रधान और पुरुष—दोनोंके नियन्ता और प्रत्यक्-चैतन्य-धाम हैं; आपको बारंबार नमस्कार है । स्वयंज्योतिःस्वरूप और श्यामल अङ्गवाले आपको नमस्कार है । आप वासुदेवको नमस्कार, संकर्षणको नमस्कार, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं सात्वत-भक्तोंके प्रतिपालक आपको नमस्कार है । आप ही 'मदन', 'मार' और 'कंदर्प' आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं; आपको बारंबार नमस्कार है । दर्पक, काम, पञ्चबाण, अनङ्ग तथा शम्बरासुरके शत्रु भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है । हे मन्मथ ! आपको नमस्कार है । हे मीनकेतन ! आपको नमस्कार है । आप मनोभव देव तथा कुसुमेषु (फूलोंके बाण धारण करनेवाले) हैं; आपको नमस्कार है । अनन्यज ! आपको नमस्कार है । रतिपते ! आपको बारंबार नमस्कार है । आप पुष्पधन्वा और मकरध्वजको नमस्कार है । प्रभु स्मर ! आपको नित्य नमस्कार है । जगद्विजयी आप कामदेवको सादर प्रणाम है । रुक्मवतीके भर्ता तथा सुन्दरीके पति आपको नमस्कार है । भूमन् ! 'मैं यह करूँगा, यह करता हूँ', 'यह मेरा है, यह तुम्हारा है', 'मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ', 'ये मेरे सुहृद् लोग हैं'—इत्यादि बातें कहता हुआ यह सारा जगत् अहंकारसे मोहित हो रहा है । प्रधान, काल, अन्तःकरण और शरीर-जनित गुणोंद्वारा शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवाला जनसमुदाय बन्धनमें पड़ता है । वह काँचमें बालकको, बालुका-राशिमें जलको और रस्सीमें सर्पको अपनी आँखोंसे देखता है, भ्रमको ही सत्य मानता है । यही दशा मेरी है । आज मैंने मूढ़तावश आपकी अवहेलना की है । प्रभो ! आपकी मायासे मेरा चित्त मोहित था, इसीलिये मुझसे ऐसा अपराध बन गया । परंतु जैसे पिता बालकके अपराधको अपने मनमें स्थान नहीं देता, उसी प्रकार आप भी मेरे अपराधको भुला देंगे । आपकी कृपासे फिर मेरी ऐसी बुद्धि कभी न हो । आपके चरणारविन्दोंमें सदा मेरी पराभक्ति बनी रहे, जिसे सर्वोत्कृष्ट माना गया है । आप मुझे वैराग्ययुक्त ज्ञान, जो परम कल्याणका आधार है, प्रदान करें और अपने भक्तजनोंके प्रशस्त सत्सङ्गका अवसर देते रहें* ॥ ३९—५० ॥

---

* कुबेर उवाच

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥
अनादये सर्वविदे निर्गुणाय महात्मने ।
प्रधानपुरुषेशाय प्रत्यग्धाम्ने नमो नमः ॥
स्वयंज्योतिःस्वरूपाय श्यामलाङ्गाय ते नमः ।
नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ।
मदनाय च माराय कंदर्पाय नमो नमः ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! जो प्रातःकाल उठकर प्रद्युम्नके कल्याणमय स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके संकटकालमें साक्षात् श्रीहरि सदा सहायक होंगे।* राजन् ! इस प्रकार स्तुति करनेवाले यक्षराज कुबेरसे भगवान् प्रद्युम्न हरिने कहा 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा।' फिर उन्होंने सिरपर धारण करने योग्य पद्मराग मणि दी। 'डरो मत'—यों कहकर, अभयदान दे, यादवेश्वर प्रद्युम्नने कुबेरको लीला-छत्र, चँवर और मणिमय सिंहासन प्रीति-पुरस्कारके रूपमें प्रदान किये। तदनन्तर प्रद्युम्नकी परिक्रमा करके धनेश्वर राजराज चले गये। महात्मा प्रद्युम्नके द्वारा राजराज कुबेरकी पराजय हुई सुनकर किन्हीं राजाओंने भी उनके साथ युद्ध नहीं किया। सबने सादर भेंट अर्पित की ॥ ५१—५४½ ॥

तत्पश्चात् महाबाहु प्रद्युम्न बहुत-सी दुन्दुभियोंका घोष फैलाते हुए सारी सेनाके साथ प्राग्ज्योतिषपुरको गये। वहाँ भौमासुरके पुत्र नीलने उनके तेजसे तिरस्कृत हो तत्काल उन महात्मा प्रद्युम्नके लिये उपहार-सामग्री अर्पित कर दी ॥ ५५—५६½ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरके द्वारपर द्विविद नामक महाबली वानर रहता था, जिसे पहले प्रद्युम्नने बाण मारा था। उसने रोषके आवेशमें उठकर अपने दाँतों और तीखे नखोंसे बहुत-से वीरों और घोड़ोंको विदीर्ण कर दिया और भौंहें टेढ़ी करके वह जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। उसने बहुत-से रथोंको अपनी पूँछमें बाँधकर खारे पानीके समुद्रमें फेंक दिया और दोनों हाथोंसे हाथियोंको पकड़कर बलपूर्वक आकाशमें उछाल दिया। श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने उस वानरको शत्रुताके भावसे युक्त जानकर उसके विरुद्ध शार्ङ्गधनुषद्वारा एक बाण चलाया। उस बाणने उसे सहसा उठाकर बलपूर्वक आकाशमें घुमाया और पूर्ववत् उस महाकपिको किष्किन्धामें ले जाकर पटक दिया। फिर वह प्रकाशमान बाण प्रद्युम्नके तरकसमें लौट आया ॥ ५७—६२ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'यक्ष-देशपर विजय' नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

किम्पुरुषवर्षके रत्नवल्लीपुरमें किम्पुरुषोंद्वारा हरिचरित्रका गान; वहाँके राजाद्वारा भेंट पाकर यादव-सेनाका आगे जाना; मार्गमें अजगररूपधारी शापभ्रष्ट गन्धर्वका उद्धार; वसन्ततिलकापुरीके राजा भृङ्गार-तिलकको पराजित करके प्रद्युम्नका हरिवर्षके लिये प्रस्थान

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर प्रद्युम्न कमलोंसे अलंकृत सरोवरोंद्वारा सुशोभित दूसरे-दूसरे देशोंकी, दिव्य वृक्षों और दिव्य लताओंसे व्याप्त तथा सहस्रदल ओर गये। प्रचण्ड-पराक्रमी प्रद्युम्न सौ अक्षौहिणी सेनाके

दर्पकाय च कामाय पञ्चबाणाय ते नमः । अनङ्गाय नमस्तुभ्यं नमस्ते शम्बरारये ॥
हे मन्मथ नमस्तुभ्यं नमस्ते मीनकेतन । मनोभवाय देवाय नमस्ते कुसुमेषवे ॥
अनन्यज नमस्तुभ्यं रतिभर्त्रे नमो नमः । नमस्ते पुष्पधनुषे मकरध्वज ते नमः ॥
स्मराय प्रभवे नित्यं जगद्विजयकारिणे । नमो रुक्मवतीभर्त्रे सुन्दरीपतये नमः ॥
इदं करिष्यामि करोमि भूमन् ममेदमस्तीति तवेदमाशुवम् । अहं सुखी दुःखयुतः सुहृज्जनो लोको ह्यहंकारविमोहितोऽखिलः ॥
प्रधानकालाशयदेवजैर्गुणैः कुर्वन् विकर्माणि जनो निबध्यते । कालेऽर्भकं सैकत एव जीवनं गुणे च सर्पं प्रतनोति सोऽक्षिभिः ॥
कृतं मया हेलनमद्य मौढ्यतस्त्वन्मायया मोहितचेतसा प्रभो । न मन्यसे बालकृतं पितेव हि मा भूद् पुनर्मे मतिरीदृशी मनाक् ॥
तथा भवेत्त्वच्चरणारविन्दयोर्भक्तिः परा वा च विदुर्गरीयसीम् । ज्ञानं च वैराग्ययुतं शिवास्पदं देहि प्रशस्तं निजसाधुसंगमम् ॥
(गर्ग०, विश्वजित्० २५ । ३९—५०)

* नारद उवाच
प्रद्युम्नस्य शुभं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । संकटे तस्य भगवान् सहायः स्याद्धरिः स्वयम् ॥
(गर्ग०, विश्वजित्० २५ । ५१)

साथ यक्षोंद्वारा बताये हुए मार्गसे किम्पुरुषवर्षमें गये। वहाँ हेमकूट गिरिकी तराईमें रत्नवल्लीपुर है। वहाँके निवासी किम्पुरुष शम्बरारि प्रद्युम्नके सुनते हुए कह रहे थे॥ १—३॥

किम्पुरुष कहते थे—अहो! पुरियोंमें श्रेष्ठ मथुरापुरी अत्यन्त धन्य है, जिसमें साक्षात् परमेश्वर हरिने अवतार लिया है। अहो! यदुकुल सदा ही परम धन्य है, जिसमें समस्त ब्रह्माण्डके पालक श्रीहरिका प्रादुर्भाव हुआ है। शूरपुत्र वसुदेवका वह निवास-मन्दिर भी धन्य है, जिसे गोलोकनाथने अपनी उपस्थितिसे अत्यन्त मनोहर बना दिया है। देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ वह माथुर-मण्डल धन्य है, जहाँ माधव विचरते हैं। वह मनोहर महावन धन्यातिधन्य है, जहाँ शिशुरूपधारी श्रीहरि अपने जन्मस्थानको छोड़कर गये, जहाँ शिशु बलरामके साथ श्रीकृष्ण विचरे हैं और उनके दुधमुँहे बालकरूपका माता यशोदाने सुन्दर ढंगसे लालन-पालन किया है। परात्पर परमात्मा श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंके पावन परागसे विराजित श्रीवृन्दावन अत्यन्त पुण्यतम तीर्थ है, जहाँ गोप-बालों और बलरामजीके साथ गौएँ चराते हुए साक्षात् श्रीहरि विचरे हैं। जिस वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्ण व्रजसुन्दरियोंके साथ दानलीला, मानलीला तथा रासलीला करते हुए विचरे हैं, उसके भी पवित्र यशका तीनों लोकोंके लोग गान करते हैं। अहो! वृषभानुनन्दिनी लीलावती श्रीराधा, जो अपने गोलोक-धाममें शोभा पाती हैं, परम धन्य हैं, जिन्होंने भ्रमरोंके गुञ्जारवसे व्याप्त कालिन्दीतटवर्ती वनमें श्रीकृष्णके साथ विहार किया है। अहो! कलिन्दनन्दिनी यमुना भी धन्य हैं, जो भगवान् श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई हैं। उनके तटपर भ्रमरोंकी ध्वनिसे व्याप्त जो वंशीवट है, उसके तथा उसके निकटवर्ती यमुनाजलके स्पर्शसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। जिसका प्रादुर्भाव भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे हुआ है तथा जिसके दर्शनसे पुनर्जन्म नहीं होता, वह उत्कृष्ट गिरीन्द्रराज-राज गोवर्धन व्रजमण्डलमें विराजमान है। अहो! वैकुण्ठ-लीलाकी अधिकारिणी कुशस्थली नामवाली मनोहर पुरी धन्यातिधन्य है, जो आकाशमें विद्युन्मण्डलसे मेघमालाकी भाँति भूतलपर यादव-मण्डलीसे विराजमान है। उस कुशस्थलीमें ही साक्षात् परमपुरुष परमेश्वर चतुर्व्यूहरूप धारण करके अत्यन्त शोभा पा रहे हैं। जिन्होंने राजा उग्रसेनको राजाधिराजकी पदवी दे दी, उन श्रीकृष्ण हरिको बारंबार नमस्कार है। उन बुद्धिमान् राजा उग्रसेनसे प्रेरित हो महान् वीर मकरध्वज प्रद्युम्न सम्पूर्ण जगत्पर विजय पानेके लिये निकले हैं, जिनका दुर्लभ दर्शन पाकर आज हमलोग सब ओरसे कृतार्थ हो जायँगे॥ ४—१४॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उज्ज्वल यशोवर्धक चरित्रोंद्वारा श्रीहरिने निर्मल त्रिलोकको उसी प्रकार और भी निर्मल बना दिया, जैसे पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे मिलकर ऊँची उठती हुई चमकीली तरंगोंद्वारा स्वर्गीय गजराज ऐरावत क्षीरसिन्धुके दुग्धको और भी उज्ज्वल बना देता है। नरेश्वर! इस प्रकार शम्बरारि प्रद्युम्नने अपने निर्मल यशका गान सुनकर अत्यन्त हर्षसे रोमाञ्चित-शरीर होकर उन किम्पुरुषोंको केयूर, हार, नवरत्न, मनोहर किरीट, मणिमय कुण्डल और कंगन आदि बहुत धन दिया। रत्नवल्लीपुरके स्वामी चन्द्रवंशी राजा सुबाहुने नमस्कार करके महात्मा प्रद्युम्नको बलि (भेंट) अर्पित की। उनपर प्रसन्न होकर महामना मीनकेतन भगवान् प्रद्युम्नने उन्हें दिव्य चूडामणि देकर इस प्रकार पूछा॥ १५—१८॥

प्रद्युम्न बोले—राजन् सुबाहु! इस नगरका 'रत्नवल्लीपुर' नाम किसने रक्खा है? यह नाम तो मैं पहले पहल आपके ही मुँहसे सुन रहा हूँ, अतः इस विषयमें आप सब कुछ मुझे बताइये॥ १९॥

सुबाहुने कहा—राजन्! पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। उससे चौदह रत्न निकले। फिर उस सागरसे अमृतपूर्ण मनोहर कलश निकला। उस कलशको साक्षात् कमलनयन श्रीहरिने दोनों नेत्रोंसे देखा। उनके नेत्रोंसे हर्षके आँसूकी एक बूँद उस कलशमें गिर पड़ी। उससे एक वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसे 'तुलसी' कहते हैं। भगवान् विष्णुने उस वृक्षका नाम रक्खा—'रत्नवल्ली'। उन्होंने किम्पुरुषवर्षके हेमकूट पर्वतकी उपत्यकामें भूमिपर उस रत्नवल्लीकी स्थापना की; अतः वह रत्नवल्ली नामक वृक्ष सदा यहीं विराजता है। उसी वृक्षके नामपर यह नगर 'रत्नवल्लीपुर' नामसे प्रसिद्ध हुआ। यहाँ प्रतिदिन रामपूजक महात्मा हनुमान्जी संगीतकुशल आर्ष्टिषेणके साथ दर्शनके लिये आया करते हैं॥ २०—२५½॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर प्रद्युम्नजीने मनोहारिणी रत्नवल्लीजीका दर्शन किया और उसकी परिक्रमा करके वे अन्य देशोंको गये॥ २६½॥

हेमकूटकी तलहटीमें एक बड़ा भयंकर वन प्राप्त हुआ, जो झिल्लियोंकी झनकारसे युक्त और सिंह तथा चीतोंके दहाड़नेकी आवाजसे व्याप्त था। जंगली गजराजोंसे भरे हुए उस वनमें गीदड़ों और उल्लुओंकी आवाज सुनायी देती थी। बाँस, पीपल, मदार, बरगद, भोजपत्र, काली हरैंकी बेलों और बेरके वृक्षोंसे वह वन अत्यन्त घना जान पड़ता था। उस वनसे एक अजगर साँप निकला, जो दस योजन लंबा था। वह बारंबार फुफकारता हुआ झुंड-के-झुंड हाथियोंको निगलने लगा। मिथिलेश्वर ! उस समय सेनामें हाहाकार मच गया। उसके प्रचण्ड विषसे मिली हुई वायुसे विभिन्न दिशाओंकी सारी वस्तुएँ भस्म हो जाती थीं। तब भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु—सत्यभामाके इन दस पुत्रोंने तीखे बाणोंसे उस भयंकर एवं मदमत्त सर्पको बींधना आरम्भ किया। बाणोंसे सारे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और सर्पका रूप छोड़कर एक तेजस्वी एवं दीप्तिमान् गन्धर्व हो गया। उसने समस्त श्रीकृष्ण-पुत्रोंको नमस्कार किया। देवता फूल बरसाने लगे और वह समस्त दिङ्मण्डलको उद्भासित करता हुआ विमानके द्वारा स्वर्गलोकको चला गया ॥ २७–३५ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुने ! यह गन्धर्व कौन था और पहलेके किस पापसे सर्प हुआ था, यह बताइये; क्योंकि आप भूत, वर्तमान और भविष्यकी बातें जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! आर्ष्टिषेण गन्धर्वका जो सुन्दर भ्राता सुमति था, वह हनुमान्‌जीसे रामायण पढ़नेके लिये आया। हनुमान्‌जी हेमकूट पर्वतपर श्रीरामकी सेवामें प्रातःकालसे लेकर चौदह घड़ीतक लगे रहते थे। वे लक्ष्मण-सहित जानकीपति श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान कर रहे थे। इसी समय उसने साँपकी भाँति फुफकार करके हनुमान्‌जीका ध्यान भङ्ग कर दिया। तब वानरराज महावीर हनुमान्‌जीने कुपित होकर सुमतिको शाप दे दिया—'दुर्बुद्धे ! तू सर्प हो जा।' सुमतिने उसी समय उनके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—'देव ! आप अपनी शरणमें आये हुए मुझ दीनकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' ॥ ३७–४१ ॥

तब प्रसन्न होकर धर्मज्ञ भगवान् हनुमानने सुमतिसे कहा—'द्वापरके अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके पुत्रोंके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंद्वारा जब तुम्हारा शरीर विदीर्ण हो जायगा, तब तुम अपने गन्धर्व-शरीरको प्राप्त कर लोगे—इसमें संशय नहीं है।' विदेहराज ! वही सुमति नामक गन्धर्व शापसे मुक्त हुआ। सत्पुरुषोंका शाप भी वरदानके तुल्य है; फिर उनका वरदान मोक्ष देनेवाला हो जाय, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ ४२-४३ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार महाबाहु प्रद्युम्न मनोहर चैत्र-देशोंको गये, जो वासन्ती और माधवी लताओंसे सुशोभित थे। वहाँ भ्रमरोंकी ध्वनिसे शोभा पानेवाले सहस्रदल कमलोंका पराग सरोवरोंमें अबीर-चूर्णकी भाँति गिरता था। रास्तेमें इलायची और लौंगकी लताएँ लहलहाती थीं, जो सैनिकोंके पाँवोंसे कुचलकर धूलमें मिल जाती थीं। झुंड-के-झुंड भ्रमर हाथियोंके कर्णतालोंसे ताड़ित हो आस-पास मँडराते हुए शोभा पाते थे ॥ ४४–४६ ॥

राजन् ! वहाँके पुरुष दस हजार हाथियोंके समान बलवान् होते हैं। उनके शरीरपर झुर्रियाँ नहीं दिखायी देतीं। उनके बाल नहीं पकते और शरीरमें पसीना, थकावट एवं दुर्गन्ध नहीं होती। वहाँ प्रतिदिन त्रेता-युगके समान समय रहता है। दिव्य ओषधियों तथा नदियोंके गुणकारी प्रभावसे वहाँके लोगोंकी आयु दस हजार वर्षकी हुआ करती है। वहाँ अमृतके समान जल और स्वर्णमयी भूमि शोभा पाती है। उस भूमिसे मोती, मूँगे, वैदूर्य आदि रत्नोंकी उत्पत्ति होती है। वहाँकी मदमत्त रमणियाँ बड़ी सुन्दरी और अक्षय यौवनसे विभूषित होती हैं। वे वहाँके उपवनोंमें दूरसे ऐसी चमकती हैं, जैसे बादलोंमें बिजलियाँ ॥ ४७–५० ॥

वहाँ वसन्ततिलका नामकी एक सुन्दर सुरम्य नगरी है, जहाँ शृङ्गार-तिलक नामके महाबली राजा राज्य करते हैं। विजयी वीरोंको एकत्र करके, स्वयं भी कवच धारण किये, हाथीपर सवार हो, वे राजा शृङ्गार-तिलक प्रद्युम्नके सामने युद्धके लिये निकले। उस समय साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु—जाम्बवतीके इन दस पुत्रोंने वहाँ नाराचोंसे दुर्दिन उपस्थित कर दिया। मैथिल ! उन बाणोंसे विदीर्ण होकर विपक्षी योद्धा भागने लगे। बाणोंसे अन्धकार छा जानेपर वहाँ महान् कोलाहल मच गया। तब महाबली शृ[illegible]-तिलकने हाथीपर बैठे-बैठे ही त्रिशूलसे

रोषपूर्वक साम्बकी छातीपर चोट पहुँचायी तथा अन्य योद्धाओंको अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा धराशायी कर दिया। वे युद्धभूमिमें अकेले इस प्रकार विचरने लगे, जैसे वनमें दावानल फैल रहा हो। उस समय गदने आकर उनके मदमत्त हाथीको उसकी सूँड़ पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया। राजा शृङ्गार-तिलक भी तत्काल दूर जा गिरे। फिर तो भयसे व्याकुल हो उन्होंने युद्धमें उसी क्षण दोनों हाथ जोड़ लिये और एक अरब घोड़े, एक लाख रथ और दस हजार हाथी प्रद्युम्नको भेंटमें दिये ॥ ५१—६० ॥

इस प्रकार किम्पुरुषवर्षपर विजय पाकर महाबली श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न निषादोंके बिलाये हुए मार्गसे हरिवर्षकी ओर प्रस्थित हुए ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'किम्पुरुषवर्षपर विजय' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

प्रद्युम्नद्वारा गरुडास्त्रका प्रयोग होनेपर गीधोंके आक्रमणसे यादव-सेनाकी रक्षा; दशार्णदेशपर विजय तथा दशार्णमोचन तीर्थमें स्नान

नारदजी कहते हैं—राजन्! हरिवर्ष नामक खण्ड सम्पूर्ण सम्पदाओंसे सम्पन्न है। मिथिलेश्वर! उसकी सीमा साक्षात् निषध पर्वत है। वीरोंके कोदण्डोंकी टंकार-ध्वनिसे वहाँका वन्यप्रान्त व्याप्त हो जानेपर, वहाँसे एक-एक कोसके लंबे शरीर और तीखी चोंचवाले महागृध्र तथा गरुड पक्षी उड़े। नरेश्वर! वे सब-के-सब दीर्घायु और भूखे थे। उन्होंने यादव-सैनिकों, हाथियों और घोड़ोंको भी अपना ग्रास बनाना आरम्भ किया। आकाश पक्षियोंसे व्याप्त हो गया। उनकी पाँखोंकी हवासे आँधी-सी उठने लगी। सेनामें अन्धकार छा गया और महान् हाहाकार होने लगा ॥ १—४ ॥

तब महाबाहु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने गरुडास्त्रका संधान किया। उस अस्त्रसे साक्षात् विनतानन्दन पक्षिराज गरुड प्रकट हो गये। अन्धकारसे भरी हुई उस सेनामें पहुँचकर पक्षिराजने अपनी चोंच और चमकीले पंखोंकी मारसे कितने ही गीधों, कुलिङ्गों और गरुडोंको धराशायी कर दिया। उन सबका घमंड चूर हो गया, पंख कट गये और वे सब पक्षी क्षत-विक्षत हो गरुडके भयसे घबराकर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ ५—७½ ॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णकुमार दशार्ण जनपदमें गये। दशार्ण देशके राजा शुभाङ्ग सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। युद्धमें उनका बल दस हजार हाथियोंके समान हो जाता था। वे निष्कौशाम्बीपुरीके अधिपति थे। वेदव्यासके मुखसे प्रद्युम्नका प्रचण्ड पौरुष सुनकर वे दशार्णा नदी पार करके आ गये थे। शुभाङ्गने हाथ जोड़कर किरीटसहित अपना मस्तक झुका दिया और महात्मा प्रद्युम्नको उत्तम रत्नोंकी भेंट दी। सर्वत्र व्यापक और सर्वदर्शी साक्षात् भगवान् प्रद्युम्नने शुभाङ्गसे लोकसंग्रहकी इच्छासे इस प्रकार पूछा ॥ ८—१२ ॥

प्रद्युम्नने कहा— निष्कौशाम्बीपुरीके अधीश्वर राजन्! यह देश 'दशार्ण' क्यों कहलाता है? किसके नामपर इसका ऐसा नाम हुआ है, यह मुझे बताइये ॥ १३ ॥

शुभाङ्गने कहा—पूर्वकालमें भगवान् नृसिंह हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लादके साथ यहाँ आये और हरिवर्षमें ही बस गये। भक्तवत्सल भगवान् नृसिंहने प्रह्लादसे कहा ॥ १४½ ॥

नृसिंह बोले—पुत्र! तुम मेरे शान्त-भक्त हो, तथापि तुम्हारे पिताका मेरेद्वारा वध हुआ है; अतः महामते! मैं तुम्हारे वंशमें अब और किसीको नहीं मारूँगा ॥ १५ ॥

शुभाङ्ग कहते हैं—रुक्मिणीनन्दन! इस प्रकार कहते हुए भगवान् नृसिंहके दोनों नेत्रोंसे आनन्दजनित जलबिन्दु पृथ्वीपर गिरे। उन बिन्दुओंसे 'मङ्गलायन सरोवर' प्रकट हो गया। तब वरप्राप्त धर्मात्मा प्रह्लाद हर्षविह्वल हो दोनों हाथ जोड़कर भगवान् नृसिंहसे बोले ॥ १६-१७ ॥

प्रह्लादने कहा—भक्तजनप्रतिपालक परमेश्वर! मैंने माता-पिताकी सेवा नहीं की; अतः मैं उनके ऋणसे कैसे मुक्त होऊँगा? ॥ १८ ॥

नृसिंह बोले—महाभाग! तुम मेरे नेत्र-जलसे प्रकट हुए इस मङ्गलायन तीर्थमें स्नान करो। इससे तुम दस प्रकारके

ऋणोंसे छुटकारा पा जाओगे। माता, पिता, पत्नी, पुत्र, गुरु, देवता, ब्राह्मण, शरणागत, ऋषि तथा पितरोंका ऋण 'दशार्ण' कहलाता है। जो इस महातीर्थमें स्नान कर लेगा, वह सबकी अवहेलनामें तत्पर हो तो भी दस प्रकारके ऋणोंसे छुटकारा पा जायगा—इसमें संशय नहीं है ॥ १९–२१ ॥

शुभाङ्ग कहते हैं—कयाधू-कुमार प्रह्लाद इस 'दशार्णमोचन तीर्थ'में स्नान करके सब ऋणोंसे मुक्त हो गये। वे आज भी निषधगिरिसे यहाँ इस तीर्थमें नहानेके लिये आया करते हैं। दशार्णमोचन तीर्थके निकटका देश 'दशार्ण' कहलाता है। उसीके स्रोतसे प्रकट हुई यह नदी 'दशार्णा' कहलाती है ॥ २२-२३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर भगवान् प्रद्युम्नने समस्त परिकरोंके साथ दशार्णमोचन तीर्थमें स्नान और दान किया। नरेश्वर! जो दशार्णमोचनकी कथा भी सुन लेगा, वह दस ऋणोंसे मुक्त हो जायगा और मोक्षका भागी होगा ॥ २४-२५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'दशार्ण देशपर विजय' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

उत्तरकुरुवर्षपर यादवोंकी विजय; वाराहीपुरीमें राजा गुणाकरद्वारा प्रद्युम्नका समादर

नारदजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद महाबाहु प्रद्युम्न सुमेरुके उत्तरवर्ती और शृङ्गवान् पर्वतके पास बसे हुए विचित्र समृद्धिशाली 'उत्तरकुरु' नामक देशमें गये। वहाँ 'भद्रा' नामकी गङ्गामें स्नान करके वे वाराहीनगरीमें जा पहुँचे, जहाँ कुरुवर्षके अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् गुणाकर राज्य करते थे ॥ १-२ ॥

राजा गुणाकरने बड़ी भारी सामग्रीका संचय करके देवर्षिगणोंसे घिरे रहकर दसवें अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया था। उन्होंने एक मनोहर श्वेतवर्ण श्यामकर्ण अश्व छोड़ा था और उनके पुत्र वीरधन्वा उस अश्वकी रक्षाके लिये निकले थे। प्रचण्ड-पराक्रमी महावीर वीरधन्वा उस घोड़ेकी देख-भाल करते हुए दस अक्षौहिणी सेनाके साथ विचर रहे थे। वीर, चन्द्र, सेन, चित्रगु, वेगवान्, आम, शङ्कु, वसु, श्रीमान् और कुन्ति— नामजितीके इन दस पुत्रोंने सब ओरसे शुभ्र घोड़ेको घेरकर पकड़ लिया और हर्षसे भरे हुए वे 'यह किसका छोड़ा हुआ घोड़ा है?'—यों कहते हुए प्रद्युम्नकी सेनाके पास आये। उसके ललाटमें बँधे हुए पत्रको पढ़कर प्रद्युम्नको बड़ा विस्मय हुआ। समस्त यादव हाथोंमें उत्तम आयुध लिये विस्मयमें पड़े हुए थे ॥ ३–८ ॥

नरेश्वर! इतनेमें ही उस घोड़ेको खोजती हुई वीरधन्वाकी सेना वहाँ आ पहुँची। उसकी सेनाके लोग यादव-वाहिनीसे उठती हुई धूलको देखकर आश्चर्यचकित हो दूर ही खड़े रह गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'प्रचण्ड-पराक्रमी राजा गुणाकरके शासन-कालमें कुरुखण्ड-मण्डलमें दस्यु किंवा लुटेरे कहीं नहीं हैं। गौओंके चरकर लौटनेका भी समय नहीं हुआ है। कहींसे बवण्डर उठा हो, यह भी नहीं जान पड़ता। फिर यह सूर्यमण्डलको आच्छादित कर देनेवाला धूल-समूह कहाँसे आया?' दूसरी सेनाके लोग जब इस प्रकार बातें कर रहे थे, उसी समय धनुषकी टंकार, हाथियोंकी चिग्घाड़, गजराजोंकी चीत्कार, घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा रणवाद्योंकी ध्वनि—इन सबकी मिली-जुली आवाज सुनायी दी ॥ ९–११ ॥

तब श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नकी प्रेरणासे उद्धवजी तुरंत ही वीरधन्वाकी सेनामें पहुँचकर, रथपर बैठे हुए गुणाकरके औरस-पुत्र सूर्यतुल्य तेजस्वी वीरधन्वाको प्रणाम करके उनसे इस प्रकार बोले—'राजन्! भूपालोंके इन्द्र, द्वारकाधीश, यदु-कुल-भूषण महाराज उग्रसेन जम्बूद्वीपके राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे। उनकी प्रेरणासे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ वीर प्रद्युम्न भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षको जीतकर उत्तरकुरुवर्षमें पधारे हैं। उत्तरकुरुवर्षके स्वामी भी महात्मा प्रद्युम्नको अवश्य भेंट देंगे। दस अक्षौहिणी सेनाके साथ आये हुए प्रद्युम्नका कुबेरने भी पूजन किया है, अतः तुम्हें भी महात्मा प्रद्युम्नको उपहार देना चाहिये। उनके द्वारा बाँधे गये यज्ञपशुको लौटा लेनेकी शक्ति इस भूतलपर और किसमें है!

साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके सहायक हैं । यदि उपहार-दान और सम्मान करो, तब तो भला होगा; अन्यथा युद्ध होना अनिवार्य है' ॥ १२-१७½ ॥

वीरधन्वाने कहा—राजाधिराज गुणाकरका पूजन तो देवराज इन्द्रने भी किया है, अतः वे महात्मा प्रद्युम्नको भेंट नहीं देंगे । रमणीय शृङ्गवान् पर्वतपर भगवान् वराह विद्यमान हैं, जिनकी सेवा भूमिदेवी सदा अत्यन्त आदरके साथ करती हैं । उन्हींके क्षेत्रमें राजा गुणाकरने भगवान् वराहके ध्यानपूर्वक तपस्या की है । दस हजार वर्ष पूर्ण होनेपर वाराहरूपधारी भगवान् हरिने संतुष्ट होकर अपने भक्त राजासे कहा—'वर माँगो ।' राजाने श्रीहरिको नमस्कार करके पुलकित और प्रेमसे विह्वल होकर कहा—'भगवन् ! आपको छोड़कर दूसरा कोई देवता, असुर अथवा मनुष्य मुझे भूतलपर जीतनेवाला न हो, यही मेरा अभीष्ट वर है ।' तब 'तथास्तु' कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये । इसलिये महाराज गुणाकरके यशःस्वरूप अश्वको आपलोग स्वतः छोड़ दें । नहीं तो, मैं आपलोगोंके साथ युद्ध करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ १८-२४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! वीरधन्वाके यों कहनेपर उद्धवने वहाँसे शीघ्र अपनी सेनामें आकर वहाँ जो बात हुई थी, वह सब यादवोंकी सभामें सुना दी । तब श्रुतकर्मा, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, एकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक—कालिन्दीके ये दस पुत्र प्रद्युम्नके देखते-देखते दस अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये आगे आ गये । फिर तो प्रचण्ड-पराक्रमी उत्तरकुरुवासियोंके साथ यादव-वीरोंका इस प्रकार तुमुल युद्ध होने लगा, जैसे दो समुद्र आपसमें टकरा गये हों । चमकते हुए तीखे अस्त्र-शस्त्रोंसे वीर-शिरोमणियोंकी बड़ी शोभा होने लगी । क्षणमात्रमें रक्तकी बड़ी भयंकर नदी बह चली । राजेन्द्र ! वह रुधिरकी नदी सौ योजनतक फैल गयी । तब मरनेसे बचे हुए उत्तरकुरुके लोग भाग चले—ठीक उसी तरह जैसे शरत्काल आनेपर बादलोंके समूह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥ २५-३०½ ॥

कालिन्दीके बलवान् पुत्र महावीर पूर्णमासने अपने बाण-समूहोंद्वारा वीरधन्वाके रथको चूर-चूर कर दिया । वीरधन्वाने रथहीन हो जानेपर भी बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए महाबली पूर्णमासपर बीस बाणोंसे प्रहार किया, परंतु पूर्णमासने स्वयं भी बाण मारकर उन बीसों बाणोंके बीचसे दो-दो टुकड़े कर दिये । राजेन्द्र ! वीरधन्वाने भी एक बाण मारकर पूर्णमासकी गम्भीर ध्वनि करनेवाली प्रत्यञ्चाको उसी तरह काट दिया, जैसे कोई कटुवचनसे मित्रताको खण्डित कर देता है । तब महाबली पूर्णमासने लाख भारकी बनी हुई भारी गदा हाथमें ले तुरंत ही वीरधन्वापर दे मारी । गदाके प्रहारसे व्यथित हो मदोत्कट योद्धा वीरधन्वाने श्रीकृष्णपुत्र पूर्णमासपर परिघसे प्रहार किया । तब पूर्णमासने उठकर पवन नामक पर्वतको उखाड़ लिया । फिर उन श्रीहरिकुमारने दोनों हाथोंसे उस पर्वतको घुमाकर वाराहीपुरीमें वेगपूर्वक फेंक दिया । वीरधन्वा उस पर्वतपर ही थे, अतः वे भी उसके साथ गुणाकरके यज्ञस्थलमें जा गिरे और मुँहसे रक्त वमन करते हुए मूर्च्छित हो गये । उनका युद्धविषयक वेग नष्ट हो गया था ॥ ३१-३९ ॥

उस समय वाराहीपुरीमें महान् हाहाकार मच गया । देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं । देवताओंने पूर्णमासके ऊपर फूलोंकी वर्षा की । अपने पुत्रको मूर्च्छित हुआ देख राजा गुणाकर यज्ञस्थलसे उठकर खड़े हो गये और उन्होंने अपना दिव्य कोदण्ड लेकर युद्ध करनेका विचार किया । धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ और सर्वज्ञ विद्वान् मुनीन्द्र वामदेव उस यज्ञमें होता थे । उन्हें युद्धमें जानेके लिये उद्यत देख वामदेवजीने उनसे कहा ॥ ४०-४२ ॥

वामदेवजी बोले—राजन् ! तुम नहीं जानते कि परिपूर्णतम परमात्मा श्रीहरि देवताओंका महान् कार्य सिद्ध करनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं । पृथ्वीका भार उतारने और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हो वे साक्षात् भगवान् द्वारकापुरीमें विराजते हैं । उन्हीं श्रीकृष्णने उग्रसेनके यज्ञकी सिद्धिके लिये सम्पूर्ण जगत्को जीतनेके निमित्त अपने पुत्र यादवेश्वर प्रद्युम्नको भेजा है ॥ ४३-४४ ॥

गुणाकरने कहा—ब्रह्मन् ! आप परावर-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः मुझे परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णका लक्षण बताइये ॥ ४५ ॥

वामदेवजी बोले—जिनके अपने तेजमें अन्य सारे तेज लीन हो जाते हैं, उन्हें साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा श्रीहरि कहते हैं । अंशांश, अंश, आवेश, कला तथा पूर्ण—अवतारके ये पाँच भेद हैं । व्यास आदि महर्षियोंने छठा

परिपूर्णतम तत्त्व कहा है। परिपूर्णतम तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि उन्होंने एक कार्यके लिये आकर करोड़ों कार्य सिद्ध किये हैं ॥ ४६-४८ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णका माहात्म्य सुनकर राजा गुणाकरने वैर छोड़ दिया और भेंट-उपहार लेकर वे प्रद्युम्नका दर्शन करनेके लिये आये। श्रीकृष्ण कुमारकी परिक्रमा करके राजाने उन्हें नमस्कार किया और भेंट देकर नेत्रोंसे अश्रु बहाते हुए वे गद्गद वाणीमें बोले ॥ ४९-५० ॥

गुणाकरने कहा—प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया। आजके दिन मेरा कुल पवित्र हुआ। आज मेरे सारे क्रतु और सम्पूर्ण क्रियाएँ आपके दर्शनसे सफल हो गयीं। परेश! भूमन्! आपके चरणोंकी भक्ति ही परमार्थरूपा है। साधुपुरुषोंके सङ्गसे आपकी वह परा भक्ति हमें सदा प्राप्त हो। आप ही अपने भक्तोंपर कृपा करनेवाले साक्षात् भक्तवत्सल भगवान् हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ५१-५२ ॥

प्रद्युम्नने कहा—राजन्! आपको ज्ञान और वैराग्यसे युक्त प्रेमलक्षणा-भक्ति तो प्राप्त ही है, मेरे भक्तोंका सङ्ग भी आपको मिलता रहे। आपके यहाँ भागवती श्री सदा बनी रहे ॥ ५३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर प्रसन्न हुए भक्तवत्सल श्रीकृष्णकुमार भगवान् प्रद्युम्नने राजाको अश्वमेध यज्ञका घोड़ा लौटा दिया ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'उत्तरकुरुवर्षपर यादवोंकी विजय' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

प्रद्युम्नकी हिरण्मयवर्षपर विजय; मधुमक्खियों और वानरोंके आक्रमणसे छुटकारा; राजा देवसखसे भेंटकी प्राप्ति तथा चन्द्रकान्ता नदीमें स्नान

नारदजी कहते हैं—राजन्! महाबाहु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उत्तरकुरुवर्षपर विजय पाकर 'हिरण्मय' नामक वर्षको जीतनेके लिये गये, जहाँ 'स्रोत' नामका विशाल एवं दीप्तिमान् सीमापर्वत शोभा पाता है। वहाँ कूर्मावतारधारी साक्षात् भगवान् श्रीहरि विराजते हैं और अर्यमा उनकी आराधनामें रहते हैं। हिरण्मयवर्षमें 'पुष्पमाला' नदीके तटपर 'चित्रवन' नामसे प्रसिद्ध एक विशाल वन है, जो फूलों और फलोंके भारसे लदा रहता है। कंद और मूलकी तो वह स्वतः निधि ही है। मैथिलेश्वर! वहाँ नल और नीलके वंशज वानर रहते हैं, जिन्हें त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने स्थापित किया था ॥ १—४ ॥

सेनाका कोलाहल सुनकर वे युद्धकी कामनासे बाहर निकले और भौंहें टेढ़ी किये, क्रोधके वशीभूत हो, उछलते हुए प्रद्युम्नकी सेनापर टूट पड़े। नरेश्वर! वे नखों, दाँतों और पूँछोंसे घोड़ों, हाथियों और मनुष्योंको घायल करने लगे। रथोंको अपनी पूँछोंमें बाँधकर वे बलपूर्वक आकाशमें फेंक देते थे। कुछ वानर विजयध्वजनाथके विजयरथको और अर्जुनके कपिध्वज रथको लाङ्गूलमें बाँधकर आकाशमें उड़ गये। कपिध्वज अर्जुनकी ध्वजापर साक्षात् भगवान् कपीन्द्र हनुमान् निवास करते थे। वे अर्जुनके सखा थे। उन्होंने कुपित हो सम्पूर्ण दिशाओंमें अपनी पूँछ घुमाकर उन आक्रमणकारी वानरोंको बाँध-बाँधकर पृथ्वीपर पटकना आरम्भ किया। तब उन्हें पहचानकर समस्त श्रीरामकिंकर वानर हर्षसे भर गये ॥ ५—९ ॥

राजन्! उन वानरोंने हाथ जोड़कर धीरे-धीरे सब ओरसे आकर पवनपुत्रको प्रणाम किया। कुछ आलिङ्गन करने लगे, कुछ वेगसे उछलने लगे और कुछ वानर उनकी पूँछ और पैरोंको चूमने लगे। महावीर अञ्जनीकुमारने उन्हें हृदयसे लगाकर उनके शरीरपर हाथ फेरा और उन्हें आशीर्वाद देकर उनका कुशल-समाचार पूछा। नरेश्वर! उन्हें प्रणाम करके सब वानर चित्रवनमें चले गये और हनुमान्‌जी अर्जुनके ध्वजमें अन्तर्धान हो गये ॥ १०-१२½ ॥

तदनन्तर मीनध्वज प्रद्युम्न मकर नामक देशसे होते हुए वृष्णिवंशियोंके साथ बार-बार दुन्दुभि बजवाते हुए आगे

बढ़े। मकरगिरिके पास उनकी दुन्दुभियोंकी ध्वनि सुनकर मधु भक्षण करनेवाली करोड़ों मधुमक्खियाँ उड़कर आ गयीं। उन्होंने सारी सेनाको डँसना आरम्भ किया। उस समय हाथी भी चीत्कार कर उठे। तब महाबाहु श्रीकृष्णकुमारने वायव्यास्त्र का संधान किया। राजन्! उस अस्त्रसे उठी हुई वायुसे प्रताड़ित हो वे सब मधुमक्खियाँ दसों दिशाओंमें उड़ गयीं। मिथिलेश्वर! उस देशके सभी मनुष्योंके मुख मगर-से थे ॥ १३–१६½ ॥

उसके बाद डिण्डिभ देश आया, जहाँ हाथियोंके समान मुखवाले लोग दिखायी दिये। इस प्रकार अनेक देशोंका दर्शन करते हुए श्रीकृष्णकुमार त्रिशृङ्ग देशमें गये। वहाँ भी उन्होंने शृङ्गधारी मनुष्य देखे। त्रिशृङ्गगिरिके पास स्वर्णचर्चिका नामकी नगरी थी। जिसमें सोनेके महल शोभा पाते थे। वह दिव्य पुरी रत्ननिर्मित परकोटोंसे सुशोभित थी। मङ्गलकी निवासभूता वह नगरी चन्द्रकान्ता नदीके तट पर विराजमान थी। राजन्! जैसे इन्द्र अमरावती पुरीमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार प्रद्युम्नने उस पुरीमें पदार्पण किया। जैसे नागों और नागकन्याओंसे भोगवतीपुरीकी शोभा होती है, उसी प्रकार विद्युत्‌की-सी दीप्तिवाले सुवर्णसदृश गौरवर्णके स्त्री-पुरुषोंसे वह स्वर्णचर्चिका नगरी सुशोभित थी। वहाँके बलवान् राजा महावीर देवसख नामसे प्रसिद्ध थे। उन्होंने मेरे मुँहसे यादव-सेनाके बलका वृत्तान्त सुनकर भेंटकी सुवर्णमय सामग्री ले, बड़े भक्तिभावसे प्रद्युम्नका पूजन किया। महाबाहु भगवान् प्रद्युम्न हरिने उनसे पूछा—'आप सब लोगोंकी शोभा चन्द्रमाके समान कैसे है? यह मुझे शीघ्र बताइये' ॥ १७—२३½ ॥

देवसख बोले—यदूत्तम! पितरोंके स्वामी अर्यमाने कूर्मरूपधारी भगवान् लक्ष्मीपतिके दोनों चरणोंका जिस जलसे प्रक्षालन किया, उस चरणोदकसे एक महानदी प्रकट हो गयी, जो श्वेतपर्वतके शिखरसे नीचेको उतरती है। एक समयकी बात है—मनुके पुत्र प्रमेधाको उनके गुरुने गौओंकी रक्षाका कार्य सौंपा था। उन्होंने रात्रिके समय सिंहकी आशङ्कासे तलवार चलाकर बिना जाने एक कपिला गौका वध कर दिया। तब गुरुवर वसिष्ठके शापसे वे शूद्रत्वको प्राप्त हो गये और उनका शरीर कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गया। तब वे तीर्थोंमें विचरने लगे। इस नदीमें स्नान करके वे मनुपुत्र गलित कुष्ठ रोगसे मुक्त हो गये और उनके शरीरकी कान्ति चन्द्रमाके समान हो गयी। तभीसे हिरण्मयवर्षके भीतर यह नदी 'चन्द्रकान्ता' नामसे प्रसिद्ध हुई। जबसे मनुकुमार प्रमेधा चन्द्रकान्ता नदीमें स्नान करके गलित-कुष्ठसे मुक्त हुए, तबसे हम सब लोग नियमपूर्वक इस नदीमें स्नान करने लगे। नृपोत्तम! यही कारण है कि इस पृथ्वीपर हमलोग चन्द्रमाके तुल्य रूपवाले हैं, इसमें संशय नहीं है ॥२४—३०॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सुनकर महाबाहु प्रद्युम्नने यादवोंके साथ चन्द्रकान्ता नदीमें स्नान करके अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्‌खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'हिरण्मयवर्षपर विजय' नामक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

रम्यकवर्षमें कलङ्क राक्षसपर विजय; नैःश्रेयसवन, मानवी नगरी तथा मानवगिरिका दर्शन; श्राद्धदेव मनुद्वारा प्रद्युम्नकी स्तुति

नारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार हिरण्मय-खण्डपर विजय पाकर महाबली प्रद्युम्न देवलोककी भाँति प्रकाशित होनेवाले रम्यकवर्षमें गये। उसका सीमा-पर्वत साक्षात् गिरिराज 'नील' है। उसके उत्तरवर्ती काले देशमें भयंकर नादसे परिपूर्ण 'भीमनादिनी' नामकी नगरी है। वहाँ कालनेमिका पुत्र कलङ्क नामका राक्षस रहता था, त्रेतायुगमें श्रीरामचन्द्रजीसे डरकर युद्धभूमिसे भाग आया था। वह लङ्कापुरीसे यहाँ आकर राक्षसोंके साथ निवास करता था। उसने दस हजार राक्षसोंके साथ यादवोंसे युद्ध करनेका निश्चय किया। काले रंगका वह राक्षसराज गधेपर आरूढ हो यादव-सेनाके सामने आया। यादवों और राक्षसोंमें घोर युद्ध होने लगा। प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, सह, ओज, महाशक्ति तथा अपराजित—लक्ष्मणाके गर्भसे उत्पन्न हुए श्रीकृष्णके ये

इस कल्याणस्वरूप पुत्र तीखे और चमकीले बाणोंकी वर्षा करते हुए सबसे आगे आ गये। जैसे वायुके वेगसे बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार उन्होंने बाणसमूहोंद्वारा राक्षस-सेनाको तहस-नहस कर दिया। उनके बाणोंसे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जानेपर वे रणदुर्मद राक्षस मदमत्त हो यादव-सेनापर त्रिशूलों और मुद्गरोंकी वर्षा करने लगे। उस समय राक्षसराज कल्कु हाथियों तथा रथियोंको चबाता हुआ आगे बढ़ा। वह घोड़ों और अस्त्र-शस्त्रोंसहित मनुष्योंको तत्काल मुँहमें डाल लेता था। हौदों, रत्नजटित झूलों तथा घण्टा-नादसे युक्त हाथियोंको पैरोंकी ओरसे उठाकर बलपूर्वक आकाशमें फेंक देता था। तब श्रीहरिके पुत्र प्रघोषने कपीन्द्रास्त्रका संधान किया। उस बाणसे साक्षात् वायुपुत्र बलवान् हनुमान् प्रकट हुए। उन्होंने जैसे वायु रूईको उड़ा देती है, उसी प्रकार उस राक्षसको आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया ॥ १-१२ ॥

तब हनुमान्‌जीको पहचानकर राक्षसराज कल्कुने गर्जना करते हुए लाख भारकी बनी हुई भारी गदा उनके ऊपर फेंकी। हनुमान्‌जी वेगसे उछले और वह गदा भूमिपर गिर पड़ी। उछलते हुए वानरराजने, बार-बार भौंहें टेढ़ी करते हुए, कल्कुको एक मुक्का मारा और उसका किरीट ले लिया। तब कल्कुने भी उस समय उन्हें मारनेके लिये अपना त्रिशूल हाथमें लिया; किंतु वे कपीन्द्र हनुमान् वेगसे उछलकर उसकी पीठपर कूद पड़े और दोनो हाथोंसे पकड़कर उसे भूमिपर गिरा दिया। फिर वैदूर्य पर्वतको ले आकर उसके ऊपर डाल दिया। पर्वतके गिरनेसे उसका कचूमर निकल गया, उसके सारे अङ्ग चूर-चूर हो गये और वह मृत्युका ग्रास बन गया ॥ १३-१७ ॥

उस समय शङ्खध्वनिके साथ जय-जयकार होने लगी और साक्षात् भगवान् हनुमान् वहीं अन्तर्धान हो गये। देवताओंने प्रद्युम्नपर फूलोंकी वर्षा की। फिर अपनी सेनासे घिरे हुए महाबाहु प्रद्युम्न मनुकी स्वर्णमयी मनोहारिणी नगरीमें गये। वहाँ नैःश्रेयस नामक वन था, जो कल्पवृक्षों तथा कल्पलताओंसे घिरा हुआ था। हरिचन्दन, मन्दार और पारिजात उस वनकी शोभा बढ़ाते थे। संतानवृक्षके पुष्पोंकी सुगन्धसे मिश्रित वायु उस वनमें सुवास फैला रही थी। केतकी, चम्पालता और कुटज पुष्पोंसे परिसेवित वह वन माधवी लताओंके पुष्प-फल-समन्वित समूहसे व्याप्त था। कलरव करते हुए विहंगमोंके वृन्दसे वह वन वैकुण्ठलोक-सा सुन्दर प्रतीत होता था। वहाँ चारुधि नामसे प्रसिद्ध एक पर्वत था, जिसकी लंबाई पाँच सौ योजन थी। राजन्! उस पर्वतके निचले भागका विस्तार सौ योजनका था। नर-कोकिल, कोकिलाएँ, मोर, सारस, तोते, चकवे, चकोर, हंस और दात्यूह (पपीहा) नामक पक्षी वहाँ कलरव करते थे। सभी ऋतुओंके फूलोंकी शोभासे सम्पन्न वह नैःश्रेयस-वन नन्दनवनको तिरस्कृत करता था। मिथिलेश्वर! वहाँ मृगोंके बच्चे सिंहोंके साथ खेलते थे। नेवले सर्पोंके साथ वैरविहीन होकर रहते थे। वहाँ भ्रमरोंके गुञ्जारवसे युक्त दस हजार सरोवर थे, जिनमें दीप्तिमान् शतदल और सहस्रदल कमल शोभा दे रहे थे। इधर-उधर सब ओर वर्तमान वह सुन्दर वन मूर्तिमान् आनन्द-सा जान पड़ता था। सर्वज्ञ विद्वान् प्रद्युम्नने उस वनकी शोभा देखकर निकले हुए नागरिकोंसे यह अभीष्ट प्रश्न पूछा ॥ १८-२८½ ॥

प्रद्युम्न बोले—हे पवित्र शासनमें रहनेवाले लोगो! यह रमणीय नगरी किसकी है और यह अद्भुत वन भी किसका है? आपलोग विस्तारपूर्वक सब बात बतायें ॥ २९ ॥

उन लोगोंने कहा—नरेश्वर! वैवस्वत मनु, जो इस समय रमणीय मानव पर्वतपर मत्स्यावतारधारी भगवान् नारायण हरिकी आराधनामें लगे हैं और यहाँ सदा निवास करनेवाले मत्स्य भगवान्‌की वन्दनापूर्वक बड़ी भारी तपस्या करते हैं, उन्हींकी यह रमणीय नगरी है और उन्हींका यह नैःश्रेयसवन है। यहाँकी भूमि और यह पर्वत दोनों वैकुण्ठ-लोकसे लाये गये हैं। आप सब राजा, जो इस पृथ्वीपर विराजमान हैं, इन्हीं वैवस्वत मनुके वंशज हैं, चाहे वे सूर्य-वंशके हों या चन्द्रवंशके ॥ ३०-३२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! समस्त क्षत्रियोंके उन वृद्ध प्रपितामह श्राद्धदेव मनुका परिचय पाकर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न बड़े विस्मित हुए। लोगोंकी बात सुनकर तत्काल भाइयोंसे तथा अन्य यादवोंसे घिरे हुए प्रद्युम्नने मानवगिरिपर चढ़कर भगवान् श्राद्धदेवका दर्शन किया। वे सौ सूर्योंके समान तेजस्वी जान पड़ते थे और अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। वे महायोग-मय राजेन्द्र शान्तरूप थे। महाराज! वे वेदव्यास और शुक आदिसे तथा वसिष्ठ और बृहस्पति आदिसे परस्पर श्रीहरिका यश सुनते थे। यादवोंके साथ प्रद्युम्नने हाथ जोड़कर उन्हें

प्रणाम किया और वे उनके सामने खड़े हो गये । श्रीहरिके प्रभावको जाननेवाले मनुने उन्हें उठकर आसन दिया और गद्गद वाणीमें इस प्रकार कहा ॥ ३३—३७ ॥

मनु बोले—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध-रूपमें प्रकट आप भक्तजन-प्रतिपालक प्रभुको नमस्कार है । आप ही अनादि, आत्मा तथा अन्तर्यामी पुरुष हैं । आप प्रकृतिसे परे होनेके कारण सत्त्वादि तीनों गुणोंसे अतीत हैं । प्रकृतिको अपनी शक्तिसे वशमें करके गुणोंद्वारा श्रेष्ठ विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं । अतः अज्ञान-कल्पित इस प्रपञ्चको सब ओरसे छोड़कर इस सम्पूर्ण जगत्‌को मनका संकल्पमात्र जानकर मायासे परे जो निर्गुण आदिपुरुष, सर्वज्ञ, सबके आदिकारण, अन्तर्यामी एवं सनातन परमात्मा हैं, उन्हीं आपका मैं आश्रय लेता हूँ । जो इस विश्वके सो जानेपर भी जागते हैं; जिन्हें जगत्‌के लोग नहीं जानते; जो सत्‌से परे, सर्वद्रष्टा एवं आदिपुरुष हैं; जिन्हें अज्ञानीजन नहीं देख पाते; जो सर्वथा स्वच्छ—शुद्ध-बुद्ध स्वरूप हैं, उन आप परमात्माका मैं भजन करता हूँ । जैसे आकाश घटसे, अग्नि काष्ठसे तथा वायु अपने ऊपर छाये हुए धूल-कणोंसे लिप्त नहीं होते, उसी प्रकार आप समस्त गुणोंसे निर्लिप्त हैं । जैसे स्फटिक मणि दूसरे-दूसरे रंगोंके सम्पर्कसे उस रंगकी दिखायी देनेपर भी स्वरूपतः परम उज्ज्वल है, उसी प्रकार आप भी परम विशुद्ध हैं । व्यञ्जना, लक्षणा अथवा अभिधा शक्तिसे, वाणीके विभिन्न मार्गोंसे तथा स्फोटपरायण वैयाकरणोंद्वारा भी परमार्थ-पदका सम्यग्ज्ञान नहीं प्राप्त किया जाता । साधु वाच्यार्थ एवं उत्तम ध्वनिके द्वारा भी जिसका बोध नहीं हो पाता, वह ब्रह्म लौकिक वाक्योंद्वारा कैसे जाना जा सकता है । जिसे इस पृथ्वीपर कुछ लोग (मीमांसक) 'कर्म' कहते हैं, कुछ लोग (नैयायिक) 'कर्ता' कहते हैं, कोई 'काल', कोई 'परम योग' और कोई 'विचार' बताते हैं, उसे ही वेदान्तवेत्ता ज्ञानी पुरुष 'ब्रह्म' कहते हैं । जिसे इस लोकमें कालज गुण, ज्ञानेन्द्रियाँ, चित्त, मन और बुद्धि नहीं छू पाती हैं, जहाँ अहंकार और महत्तत्त्वकी भी पहुँच नहीं है तथा वेद भी जिसका वर्णन नहीं कर पाते, वह 'परब्रह्म' है । जैसे चिनगारियाँ अग्निमें प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार सारे तत्त्व उस परब्रह्ममें ही विलीन होते हैं । जिसे संतलोग 'हिरण्यगर्भ', 'परमात्मतत्त्व' और 'वासुदेव' कहते हैं, ऐसे ब्रह्मस्वरूप आप ही 'पुरुषोत्तमोत्तम' हैं—यह जानकर मैं सदा असङ्गभावसे विचरण करता हूँ* ॥ ३८—४६ ॥

---

* नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥
अनादिरात्मा पुरुषस्त्वमेव
त्वं निर्गुणोऽसि प्रकृतेः परस्त्वम् ।
सदा वशीकृत्य बलात्प्रधानं
गुणैः सृजस्यत्सि च पासि विश्वम् ॥
ततो विवेकं स विहाय सर्वतो
मत्वाखिलं चात्र मनोमयं जगत् ।
मायापरं निर्गुणमादिपूरुषं
सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥
जागर्ति योऽस्मिन् शयनंगते सति
नायं जनो वेद सतः परं नम् ।
पश्यन्तमाद्यं पुरुषं हि वज्जनो
न पश्यति स्वच्छमलं च तं भजे ॥
यथा नभोऽग्निः पवनो न सज्जते
घटेन काष्ठेन रजोभिरावृतैः ।
तथा भवान् सर्वगुणैश्च निर्मलो
वर्णैर्यथा स्यात् स्फटिको महोज्ज्वलः ॥
व्यञ्जनेन वा लक्षणया च वाक्पथै-
रथं पदं स्फोटपरायणैः परम् ।
न ज्ञायते यद्ध्वनिनोत्तमेन सद्-
वाच्येन तद् ब्रह्म कुतस्तु लौकिकैः ॥
वदन्ति केचिद् भुवि कर्म कर्तृ यत्-
कालं च केचित् परयोगमेव तत् ।
केचिद् विचारं प्रवदन्ति यच्च तद्
ब्रह्मेति वेदान्तविदो वदन्ति ॥
यं न स्पृशन्तीह गुणा न कालजा
ज्ञानेन्द्रियं चित्तमनो न बुद्धयः ।
नाहं च वेदो वदतामि तत्परं
विशन्ति सर्वे ज्वलने स्फुलिङ्गवत् ॥
हिरण्यगर्भं परमात्मतत्त्वं
यद् वासुदेवं प्रवदन्ति सन्तः ।
एवंविधं त्वां पुरुषोत्तमोत्तमं
मत्वा सदाहं विचराम्यसङ्गः ॥
(गर्ग०, विश्वजित्० ३० । ३८-४६)

नारदजी कहते हैं—राजन् ! मनुका यह वचन सुनकर उस समय भगवान् प्रद्युम्न हरि मन्द-मन्द मुसकुराते हुए गम्भीर वाणीद्वारा उन्हें मोहित करते हुए-से बोले ॥ ४७ ॥

प्रद्युम्नने कहा—महाराज ! आप हम क्षत्रियोंके आदिराजा, पितामह, वृद्ध, श्लाघनीय तथा धर्म-धुरंधर हैं। राजन् ! हमलोग आपके द्वारा रक्षणीय तथा सर्वतः पालनीय प्रजा हैं। आप जो दिव्य तप करते हैं, उससे जगत्को सुख मिलता है। आप-जैसे साधुपुरुष परमात्मा श्रीहरिके स्वरूप हैं; अतः वे ही सदा हूँदनेयोग्य हैं। साधुपुरुष ही मनुष्योंके अन्तःकरणमें छाये हुए मोहान्धकारका हरण करते हैं, सूर्यदेव नहीं ॥ ४८—५० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर मनुको प्रणाम करके, उनकी अनुमति ले, परिक्रमा करके, भगवान् श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न स्वयं नीचेकी भूमिपर उतर गये ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मालवदेशपर विजय' नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

रम्यकवर्षमें मन्मथशालिनी पुरीके लोगोंद्वारा श्रीकृष्णलीलाका गान; प्रजापति व्यति संवत्सरद्वारा प्रद्युम्नका पूजन; कामवनमें प्रद्युम्नका अपने कामदेव-स्वरूपमें विलय

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार रम्यकवर्ष पर विजय पाकर महाबली श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न सुमेरु पर्वतके पूर्वभागमें स्थित 'केतुमाल'वर्षमें गये ॥ १ ॥

मिथिलेश्वर ! उस वर्षका सीमापर्वत 'माल्यवान्' है, जहाँसे 'चार' नामवाली महापातकनाशिनी गङ्गा प्रवाहित होती है। माल्यवान् गिरिके पास मन्मथशालिनी पुरी है, जो अपने रत्नमय परकोटों और महलोंसे देवताओंकी राजधानी (अमरावती) की भाँति शोभा पाती है। राजन् ! वहाँके पुरुष कामदेवके समान कान्तिमान् हैं। उनकी अङ्ग-कान्ति शरद्-ऋतुके प्रफुल्ल नील-कमलके समान होती है और उनके नेत्र भी विकसित कमल-दलकी शोभाको लज्जित करते हैं। यहाँकी नव-यौवना कामिनियाँ पीताम्बर धारण करके फूलोंके हार पहनकर मनोहर वेषमें कन्दुक-क्रीडा किया करती हैं। उनके शरीरका स्पर्श करके प्रवाहित होनेवाली वायु मतवाले भ्रमरोंकी ध्वनिसे निनादित हो चारों ओर सौ योजन विस्तृत भू-भागको सुवासित करती है। उस पुरीमें निवास करनेवाले बहुसंख्यक मनुष्य नगरसे बाहर निकले और प्रद्युम्नके सुनते-सुनते श्रीहरिके यशका गान करने लगे ॥ २—७ ॥

केतुमालवासी बोले—जो जगत्की पीड़ा हर लेनेवाले साक्षात् प्रधान-पुरुषेश्वर आदिदेव शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं और जिन्होंने देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भूलोकको रक्षा करनेके लिये भारतवर्षमें अवतार लिया है, उन भगवान् पुरुषोत्तमको नमस्कार है। वे प्रकट होनेके बाद माता-पिताको बन्धनमुक्त करके शिशुरूपमें पिताके घरसे नन्दभवनको चले गये, वहाँ दयामयी नन्दपत्नी यशोदाने बड़े प्यारसे उनका लालन-पालन किया, अनन्त मङ्गलमयी शोभासे सम्पन्न उन्होंने अपनेको मारनेके लिये आयी हुई पूतनाके प्राणोंका अपहरण कर लिया। बालकरूपमें ही रोते हुए उन श्रीनन्दनन्दनने छकड़ेको उलट दिया और महादैत्य तृणावर्तकी पीठपर चढ़कर उसे मार गिराया। माताको अपने विश्वरूपका दर्शन कराया, गर्गाचार्यके द्वारा उनका नामकरण-संस्कार हुआ और गर्गाचार्यने उनकी सुन्दर सौभाग्य-लक्ष्मीका वर्णन किया। व्रजके लोगोंने उन्हें लाड़ लड़ाया, उनके द्वारा माखनचोरीकी लीलाएँ हुईं। श्याम मनोहररूपधारी कोमल बालक श्रीकृष्णने दहीके मटके फोड़कर उसमेंसे खूब दही खाया और माताने जब छोटी-सी रस्सीसे उन्हें ओखलीमें बाँध दिया, तब उन्होंने वह ओखली अटकाकर दो यमल वृक्षोंको तोड़ दिया, वृन्दावनमें बछड़ों और ग्वाल-बालोंके साथ विचरते हुए श्रीहरिने कपित्थवृक्षोंद्वारा वत्सासुरको मारकर यमुना-किनारे बकासुरके तीखे चञ्चुपुटोंको पकड़ लिया और दोनों हाथोंसे उस दैत्यको तिनकेकी भाँति चीर डाला। ग्वाल-बालोंके साथ बहुसंख्यक बछड़ोंके समुदायको चराते

तथा वेणु बजाते हुए उन मदनमोहन-वेषधारी प्रभुने अघासुरके मुखमें पड़े हुए गोपों और गौओंकी रक्षा की और जब ब्रह्माजी ग्वालों और बछड़ोंको चुरा ले गये, तब वे स्वयं ही तत्काल गोप-बालक और बछड़े बनकर पूर्ववत् सारा कार्य चलाने लगे, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण सबके शरीरमें क्षेत्रज्ञ एवं अन्तर्यामी आत्मा हैं । वे ही अनन्त, पूर्ण, प्रधान और पुरुषके ईश्वर (क्षर और अक्षरसे अतीत पुरुषोत्तम) तथा आदिदेव हैं । वे अजन्मा प्रभु ग्वाल-बाल और बछड़ोंका रूप धारण करके व्रजके अन्य बालकोंमें विहार करते और ब्रह्माजीको मोहित करते हुए वन और विचरने लगे ॥ ८–१४ ॥

उन्होंने बलवान् धेनुकासुरको बलपूर्वक ताड़के वृक्षपर दे मारा और ताड़-फल लेकर चले आये । फिर यमुनाके जलमें कूदकर सहसा कालियनागको जा पकड़ा और उसके फनोंपर नृत्य करके उसे जलसे बाहर निकाल दिया । तदनन्तर वे दावानलको पी गये और बलरामजीके सहयोगसे शीघ्र ही सुदृढ़ मुष्टिका-प्रहार करके उन्होंने प्रलम्बासुरको मौतके घाट उतार दिया । वनमें मधुर स्वरसे वेणु बजाकर उन्होंने व्रजवधुओंको वहाँ बुला लिया और उनके मुखसे अपनी कीर्तिका गान सुना । यमुनामें नग्न स्नान करनेवाली गोप-किशोरियोंके दिव्य वस्त्र चुराये और वनमें ब्राह्मण-पत्नियोंके दिये हुए भातका ग्वाल-बालोंके साथ भरपेट भोजन किया । इन्द्र-पूजा बंद करके गोवर्धन-पूजा चालू करनेपर जब पर्जन्यदेव घोर वर्षा करने लगे, तब कृपापूर्वक उन्होंने पशुओंकी रक्षा करनेके लिये गोवर्धन पर्वतको छत्रकी भाँति उठा लिया—ठीक उसी तरह जैसे साधारण बालक गोबर छत्ता उठा ले । जैसे गजराज अनायास कमलका फूल उठा लेता है, उसी प्रकार एक हाथपर पर्वत उठाये भगवान्‌को देखकर शचीपति इन्द्रने इनकी स्तुति की । वरुणलोकमें जाकर वहाँसे नन्दजीको सुरक्षित ले आये तथा स्वजनोंको भगवान्‌ने अन्धकारसे परे अपने दिव्य परमधाम गोलोकका दर्शन कराया । श्रीरासमण्डलमें उपस्थित हो भगवान्‌ने व्रज-सुन्दरियोंके साथ रास-क्रीड़ा की और यमुना-पुलिनपर गोपाङ्गनाओंके साथ विहार किया ॥ १५–१८ ॥

व्रजसुन्दरियोंको अपने मादक यौवनपर अभिमान करते देख उनके उस मानका अपहरण करनेके लिये भगवान् उनके बीचसे अन्तर्धान हो गये । तब उनके दर्शनके लिये व्याकुल हुई व्रजाङ्गनाएँ उन्हींकी कीर्तिका गान करने लगीं । तदनन्तर विरहसे व्याकुल हुई उन व्रजबालाओंके बीच फूलोंके हार धारण किये, मनोहररूपधारी साक्षात् मदनमोहन श्रीहरि पुनः प्रकट हो गये । वृन्दावनमें श्यामसुन्दरने शबरराजकी परम सुन्दरी किशोरियोंके साथ उसी प्रकार रमण किया, जैसे आदिदेव भगवान् विष्णु अपनी विभूतियोंके साथ रमण करते हैं । उस समय बड़े-बड़े देवताओंने उनकी स्तुति की । उन माधवने रास-रङ्गस्थलीमें केयूर, कुण्डल और किरीट आदि आभूषणोंसे मनोहर वेष धारण करके रमण किया । भगवान्‌ने अम्बिकावनमें नन्दराजको अजगरके मुखसे छुड़ाकर उस सर्पको भी मोक्ष प्रदान किया । शङ्खचूड़ यक्षसे उसकी मणि ले ली । गोपोंने उनकी स्तुति की और उन्होंने वृषभरूपधारी अरिष्टासुरका एक सींग पकड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया और एक ही हाथसे उसे मार डाला । कंसको बड़ा भय हो गया था, इसलिये उसने केशीको भेजा । वह मेघके समान काला एवं प्रचण्ड शक्तिशाली दानव था । भगवान्‌ने उसे एक बार पकड़कर छोड़ दिया । किंतु जब पुनः बड़े वेगसे उसने आक्रमण किया, तब श्रीकृष्णने उसके मुँहके भीतर अपनी बाँह डाल दी और इस युक्तिसे उसे मार डाला ॥ १९–२२ ॥

भगवान् नारदने जिनकी सौभाग्य-लक्ष्मीका अनेक प्रकारसे वर्णन किया है, उन परमात्मा श्रीहरिने व्योमासुरको भी प्राणहीन कर दिया । अक्रूरके द्वारा उन आदिदेवके महान् ऐश्वर्यका वर्णन किया गया । वे गोपीजनोंके अत्यन्त विरहातुर चित्तको भी चुरानेवाले हैं । उन्होंने अपने हितकारी श्वफल्कपुत्र अक्रूरको जलके भीतर अपना दिव्य रूप दिखाकर फिर समेट लिया । उनके साथ वे परमेश्वर मथुराके उपवनमें पहुँचे और ग्वाल-बालों तथा बलरामजीके साथ उन्होंने मथुरापुरीका दर्शन किया । स्वच्छन्दतापूर्वक मधुपुरीमें विचरते हुए श्रीहरिने कटुवादी रजकको मौतके घाट उतार दिया । अपने प्रेमी दर्जीको उत्तम वर दिये, फूलोंकी माला अर्पित करनेवाले मालीपर कृपा की, कुब्जाको सीधी करके सुन्दरी बनाया और कंसकी यज्ञशालामें रक्खे हुए धनुषको नवाते हुए सहसा उसे तोड़ डाला । रङ्गशालाके द्वारपर कुवलया पीड़ हाथीका वध करके दो राजकीय पहलवानोंको रङ्गभूमिमें

पछाड़कर कंसको भी आ पकड़ा और उसे अखाड़ेमें गिराकर प्राणशून्य कर दिया। फिर माता-पिताको कैदसे छुड़ाकर महान् शक्तिशाली उग्रसेनको मथुरापुरीका राजा बना दिया। नन्दजीको प्रसन्न करके बहुत भेंट दी; गोपोंको बुलाकर उन सबको धनसे तृप्त करके बहुत कुछ निवेदन किया और उन्हें व्रजको लौटाकर वे गुरुके घरमें विद्या पढ़नेके लिये गये। वहाँ अध्ययन समाप्त करके श्रीकृष्णने समुद्रवासी पञ्चजन नामक दानवका वध करनेके पश्चात् गुरुके मरे हुए पुत्रको यमलोकसे लाकर दक्षिणाके रूपमें उन्हें अर्पित किया। उद्धवको भेजकर अपने प्रेम संदेशसे गोपीजनोंको अनुगृहीत किया और अक्रूरको हस्तिनापुर भेजकर पाण्डवोंका समाचार जाना। तदनन्तर श्रीकृष्णने बलवान् जरासंधको पराजित करके मुचुकुन्दकी दृष्टिसे प्रकट हुई अग्निके द्वारा कालयवनको भस्म कर दिया॥ २३-२८॥

इसके बाद अपने रहनेके लिये श्रीहरिने अद्भुत पुरी कुशस्थलीका निर्माण कराके कुण्डिनपुरसे भीष्मक-कन्या रुक्मिणीका अपहरण किया। अपने पुत्रके द्वारा शत्रु शम्बरासुरका वध कराया तथा युद्धमें ऋक्षराज जाम्बवान्‌को जीतकर उनसे प्राप्त हुई मणि राजा उग्रसेनको दे दी। तत्पश्चात् परमेश्वर श्रीकृष्ण सत्यभामाके पति हुए। उन्होंने अपने श्वशुर सत्राजितका वध करनेवाले शतधन्वाका सिर काट लिया और कुछ कालके बाद सूर्यपुत्री यमुनाके साथ विवाह किया। इसके बाद उन्होंने अवन्ति-राजकुमारी मित्रवृन्दाका हरण किया तथा स्वयंवर-गृहमें सात वृषभोंका दमन करके श्रीकृष्णने कोसलराज नग्नजित्‌की पुत्री सत्याका पाणिग्रहण किया। तत्पश्चात् केकयराज-कन्या भद्राका हरण किया और सम्पूर्ण मद्रदेशके राजाकी पुत्री लक्ष्मणाको स्वयंवरमें जीता। युद्ध-भूमिमें शस्त्र-समूहोंद्वारा सेनासहित भौमासुरको जीतकर सोलह सहस्र सुन्दरियोंको वे ब्याह लाये। सत्यभामाकी इच्छासे उन्होंने केवल गरुडको साथ लेकर स्वर्गमें इन्द्रको परास्त किया और वहाँसे पारिजात वृक्ष तथा सुधर्मा सभाको वे उठा लाये। उन्होंने द्यूत-सभामें बलरामजीके द्वारा दुष्ट रुक्मीको मरवा डाला और बाणासुरकी सहस्र भुजाओंमेंसे दोको छोड़कर शेष सबके सौ-सौ टुकड़े कर डाले। उन परमात्माने राजा उग्रसेनके राजसूय यज्ञकी सिद्धिके निमित्त सम्पूर्ण जगत्‌को जीतनेके लिये अपने पुत्र शम्बरशत्रु प्रद्युम्नजीको भेजा, जो भूमण्डलके समस्त राजाओंको जीतकर यहाँ केतुमालपतिपर विजय पानेके लिये आये हैं। उनको हमारा नमस्कार है॥ २९-३३॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह सब सुनकर प्रसन्न हो महामनस्वी श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न हरिने उन लोगोंको कुण्डल, कड़े, हीरा, मणि, हाथी और घोड़े पुरस्कारके रूपमें दिये। उस मन्मथशालिनी पुरीमें महान् प्रजापति व्यति संवत्सरने प्रद्युम्नको नमस्कार करके भेंट अर्पित की॥ ३४-३५॥

तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न दिव्य कामवनमें गये, जो अन्य साधारण लोगोंके लिये अगम्य था; केवल प्रजापतिकी पुत्रियाँ उसमें जा सकती थीं। वह सुन्दर वन साक्षात् कामदेवका क्रीडास्थल था और कामाग्निके तेजसे चारों ओरसे सुरक्षित था। वहाँ नारियोंका गर्भ प्राणशून्य होकर गिर पड़ता था, वर्षभर भी टिक नहीं पाता था॥ ३६-३७॥

राजन्! उस समय उस उत्कृष्ट कामवनसे फूलोंके पाँच बाण लिये पुष्पधन्वा कामदेव निकले। उनके श्याम शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। उनका रूप अत्यन्त मनोहर था। उन्होंने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका गम्भीर घोष फैलाया। उनके बाणका स्पर्श होते ही यादव-वीर अपने सैनिकों, घोड़ों, हाथियों और पैदलोंके साथ स्वतः काममोहित होकर गिर पड़े। उनके बाणके वेगका वर्णन नहीं हो सकता। तदनन्तर जगदीश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न उसी समय कामदेवके स्वरूपमें विलीन हो गये, जैसे पानी पानीमें मिल जाता है। नरेश्वर! सैनिकोंसहित समस्त यादव रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नको कामदेवका पूर्ण-स्वरूप जानकर तत्काल चकित हो गये॥ ३८-४०॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मन्मथदेशपर विजय' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाके द्वारा प्रद्युम्नका पूजन तथा स्तवन; यादव-सेनाकी चन्द्रावती पुरीपर चढ़ाई; श्रीकृष्णकुमार वृकके द्वारा हिरण्याक्ष-पुत्र हृष्टका वध

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न समूचे केतुमालवर्षपर विजय पाकर, धनुष धारण किये, योग समृद्धियोंसे युक्त 'भद्राश्ववर्ष'में गये, जिसकी सीमाका पर्वत साक्षात् 'गन्धमादन' बड़ी शोभा पाता है, जहाँसे पापनाशिनी गङ्गा 'सीता' नामसे प्रवाहित होती हैं । वहाँ सर्वपापनाशक 'वेदक्षेत्र' नामक महातीर्थ है, जहाँ महाबाहु हयग्रीव हरिका निवास है । धर्मपुत्र भद्रश्रवा उनकी सेवा करते हैं ॥ १–३½ ॥

सीता-गङ्गाके पुलिनपर महात्मा प्रद्युम्नकी सेनाके शिविर पड़ गये, जो सुनहरे वस्त्रोंके कारण बड़े मनोहर जान पड़ते थे । भद्राश्व देशके अधिपति धर्मपुत्र महाबली महात्मा भद्रश्रवाने भक्तिभावसे परिक्रमा करके श्रीकृष्ण-कुमारको प्रणाम किया और उन्हें भेंट अर्पित की । फिर वे उनसे बोले ॥ ४-५ ॥

भद्रश्रवाने कहा—प्रभो ! आप साक्षात् पूर्ण—परिपूर्णतम भगवान् हैं । साधुपुरुषोंकी रक्षाके निमित्त ही दिग्विजयके लिये निकले हैं । भगवन् ! आपने पूर्वकालमें शम्बर नामक दैत्यको परास्त किया था । उसका छोटा भाई उत्कच बड़ा दुष्ट था, जो गोकुलमें छकड़ेपर जा बैठा था । वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारा मारा गया; परंतु उसका बड़ा भाई महादुष्ट बलवान् शकुनि अभी जीवित है । देव ! वह आपसे ही परास्त होनेयोग्य है, दूसरा कोई कदापि उसे जीत नहीं सकता ॥ ६–८½ ॥

प्रद्युम्नने पूछा—धर्मनन्दन ! दैत्यराज शकुनि किसके वंशमें उत्पन्न हुआ है, उसका निवास किस नगरमें है और उसका बल क्या है—यह बताइये ॥ ९½ ॥

भद्रश्रवाने कहा—भगवन् ! कश्यप मुनिके द्वारा दितिके गर्भसे दो आदिदैत्य उत्पन्न हुए, जिनमें बड़ेका नाम हिरण्यकशिपु और छोटेका नाम हिरण्याक्ष था । हिरण्याक्षके भी नौ पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—शकुनि, शम्बर, हृष्ट, भूत-संतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु तथा उत्कच । देवकूटसे दक्षिण दिशामें जठरगिरिकी तराईमें चन्द्रावती नामक पुरी है, जो दैत्योंके दुर्गसे सुशोभित है । वहाँ छः भाइयोंसे घिरा हुआ शकुनि निवास करता है । यदूत्तम ! ऋषिलोग जब-जब यज्ञका आरम्भ करते हैं, तब-तब वह उनके यज्ञको भङ्ग कर देता है । भक्तजनपालक ! उससे इन्द्र आदि देवता भी उद्विग्न हो उठे हैं । देव ! वह देवद्रोही दैत्यराज आपसे ही जीते जाने योग्य है; क्योंकि आपने भक्तोंकी शान्तिके लिये सम्पूर्ण जगत्‌को जीता है । आप भगवान् प्रद्युम्नको नमस्कार है । चतुर्व्यूहरूप आपको प्रणाम है । गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु तथा वेदोंके प्रतिपालक आपको नमस्कार है ॥ १०–१७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार प्रार्थना करनेपर साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न हरिने राजा भद्रश्रवाको 'डरिये मत'—यों कहकर अभयदान दिया । तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्नने अपनी सेनाके साथ चन्द्रावतीपुरीमें पहुँचनेके लिये वहाँसे तत्काल प्रस्थान किया । शकुनिको मेरे मुँहसे यह समाचार मिल गया कि 'तुम्हें मारनेके लिये यदुकुलतिलक प्रद्युम्न आ रहे हैं ।' यह सुनकर उस दैत्यराजने दैत्योंकी सभामें शूल उठाकर कहा ॥ १८–२० ॥

शकुनि बोला—बड़े सौभाग्य और प्रसन्नताकी बात है कि मेरा शत्रु प्रद्युम्न स्वयं यहाँ आ रहा है । दैत्यो ! मुझे उसे परास्त करना है; क्योंकि मुझपर मेरे भाईका ऋण पहलेसे ही चढ़ा हुआ है । जिसने पूर्वकालमें मेरे भाई शम्बरको मारा था, उसी अपराधके कारण मैं यादवोंसहित उस प्रद्युम्नको मार डालूँगा । इसलिये असुरो ! तुमलोग जाओ और उसकी सेनाका विध्वंस करो । तत्पश्चात् मैं उसका, देवराज इन्द्रका और देवताओंका भी वध करूँगा ॥ २१–२३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! शकुनिकी आवाज सुनकर महाबली दैत्य हृष्ट एक करोड़ दैत्योंकी सेना साथ लिये यादव-सेनाके सम्मुख युद्धके लिये आया । लीलासे ही मानव-शरीर धारण करनेवाले भगवान् प्रद्युम्नने अपनी सम्पूर्ण सेनाका गृध्रव्यूह बनाया, अर्थात् गृध्रकी आकृतिमें

अपनी सेनाको खड़ा किया। पद्मव्यूहमें चोंचके स्थानपर धनुर्धरशिरोमणि अनिरुद्ध खड़े हुए, ग्रीवा-भागमें अर्जुन तथा पृष्ठभागमें जाम्बवतीकुमार साम्ब विराजमान हुए। राजन्! दोनों पैरोंकी जगह दीप्तिमान् और गद खड़े हुए, उदरभागमें पार्ष्णि और पुच्छभागमें श्रीकृष्णकुमार भानु थे॥ २४–२७॥

नरेश्वर! सीता-गङ्गाके तटपर यादवोंके साथ दैत्योंका उसी प्रकार घोर युद्ध हुआ, जैसे समुद्र समुद्रोंसे टकरा रहे हों। जैसे बादल जलकी धारा बरसाते हैं, उसी प्रकार दानव यादवोंपर बाण, त्रिशूल, मुसल, मुद्गर, तोमर तथा ऋष्टियोंकी वृष्टि करने लगे। राजन्! सेनाओंके पैरोंसे उड़ी हुई अपार धूलने सूर्य और आकाशको आच्छादित कर दिया। किसीको अपना बाण भी नहीं दिखायी देता था। जैसे वर्षाके बादल सूर्यको आच्छादित करके अन्धकार फैला देते हैं, वही दशा उस समय हुई थी॥ २८–३०॥

वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और दसवें क्षुधि—मित्रविन्दाके ये दस पुत्र दानवोंके साथ युद्ध करने लगे। जब बाणोंसे अन्धकार छा गया, तब श्रीहरिकुमार वृक बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए सबसे आगे आ गये। वे बाण समूहोंसे दैत्योंको विदीर्ण करने लगे, जैसे कोई कटुवचनोंसे मित्रताको खण्डित करे। उन्होंने दैत्य सेनाके हाथियों, रथों और पैदल वीरोंको धराशायी कर दिया। वे कवच और धनुष कट जानेके कारण समराङ्गणमें गिर पड़े॥ ३१–३४॥

वृकके बाणोंसे जिनके पैर कट गये थे, वे आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति धरतीपर गिर गये। किन्हींके मुँह नीचेकी ओर थे और किन्हींके ऊपरकी ओर। राजन्! बाण समूहोंसे भुजाओंके छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वे रणभूमिमें फूटे हुए बर्तनोंके ढेरसे शोभित होते थे। उस रणमण्डलमें हाथी बाणोंकी मारसे दो टूक होकर पड़े थे और छुरीसे काटे गये कूष्माण्डके टुकड़ोंके समान प्रतीत होते थे॥ ३५-३६½॥

इसी समय महाबली दुष्ट सिंहपर चढ़कर आया। उसने दस बाण मारकर वृकके कवच और धनुषकी प्रत्यञ्चाको काट डाला। फिर चार बाणोंसे चारों घोड़े, दो बाणोंसे सारथि और तीन बाणोंसे ध्वज खण्डित कर दिये। फिर बीस बाण मारकर उस दानवराजने वृकके रथको नष्ट कर दिया। धनुष कट गया, घोड़े और सारथि मार डाले गये, तब वृक दूसरे रथपर जा चढ़े तथा रोषपूर्वक धनुष हाथमें लिया। इतनेमें ही असुर दुष्टने वृकके उस धनुषको भी काट डाला! तब यादवपुंगव वृकने गदा हाथमें लेकर सिंहके मस्तकपर तथा उसकी पीठपर बैठे हुए दैत्यपर भी प्रहार किया। तब क्रोधसे भरे हुए सिंहने समराङ्गणमें उछलकर अपने नखों, दाँतों और पंजोंसे अनेक योधाओंको मार गिराया। उसकी जीभ लपलपा रही थी, अयाल चमक रहे थे। उसने भीषण हुंकार करके वृकको उसी भाँति गिरा दिया, जैसे हाथी केलेके तनेको धराशायी कर दे॥ ३७–४३॥

नरेश्वर! वृकने उस सिंहको दोनों हाथोंसे पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा। फिर वे उसके ऊपर चढ़कर वैसे ही गर्जने लगे, जैसे एक पहलवान दूसरे पहलवानको पटककर उसकी छातीपर चढ़ बैठे और गर्जने लगे। जब वह सिंह पुनः उछलने और उनके शरीरको बलपूर्वक चबाने लगा, तब बलवान् मित्रविन्दा-कुमारने उसके ऊपर एक मुक्का मारा। उनके मुक्केकी मारसे सिंहने दम तोड़ दिया। तब कुपित हुए दैत्यप्रवर दुष्टने उनके ऊपर शीघ्र ही शूल फेंका। किंतु बड़ी भारी उल्काके समान तेजस्वी उस शूलको वृकने तलवारसे उसी प्रकार टूक-टूक कर दिया, जैसे गरुड अपनी तीखी चोंचके प्रहारसे किसी सर्पके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। दुष्टने भी अपनी तलवार लेकर गर्जना की और भूतलको कँपाते हुए उसने महाबली वृकके मस्तकपर उसके द्वारा प्रहार किया। तब बलवान् वृकने तलवारको म्यानपर दैत्यके वारको रोका तथा अपने खड्गके द्वारा दैत्यके कंधेपर चोट पहुँचायी। उस खड्गसे दैत्यका सिर कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। किरीट और कुण्डलोंसे युक्त वह मस्तक गिरे हुए कमण्डलुके समान शोभा पाता था॥ ४४–५०॥

महाराज! दुष्टके मारे जानेपर शेष दैत्य भयसे व्याकुल हो भागकर चन्द्रावतीपुरीको चले गये। उस समय देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और देवतालोग वृकके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ५१-५२॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'दुष्ट दैत्यका वध' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

संग्रामजित्‌के हाथसे भूत-संतापनका वध

नारदजी कहते हैं—राजन् ! हृष्टको मारा गया सुनकर शकुनिके क्रोधकी सीमा न रही। उसने देवताओं-को भी भय देनेवाले अपने भाइयोंको भेजा। भूत-संतापन नामक दैत्य हाथीपर चढ़कर निकला। वृक दैत्य गधेपर और कालनाभ सूअरपर चढ़कर आया। महानाभ मतवाले ऊँटपर तथा हरिश्मश्रु तिमिंगिल (अतिकाय मगरमच्छ) पर बैठकर निकला ॥ १-२½ ॥

मयासुरका बनाया हुआ एक विजयशील रथ था, जिसपर वैजयन्ती पताका फहराती थी। इसीलिये वह 'वैजयन्त' और 'जैत्र' कहलाता था। उसका विस्तार पाँच योजनका था और उसमें एक हजार घोड़े जुते हुए थे। वह मायामय रथ इच्छानुसार चलनेवाला तथा सैकड़ों पताकाओंसे सुशोभित था। उसमें एक हजार कलश लगे थे और मोतीकी झालरें लटक रही थीं। वह रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित तथा सौ चन्द्रमाओंके समान उज्ज्वल था। उसमें एक हजार पहिये लगे थे तथा उसमें लटकाये गये बहुत-से घंटे उसकी शोभा बढ़ाते थे। शकुनि उसी रथपर आरूढ़ हो सबसे पीछे युद्धकी इच्छासे निकला ॥ ३—६ ॥

मैथिलेश्वर ! उसके साथ बारह अक्षौहिणी दैत्योंकी सेना थी। धनुषोंकी टंकार, वीरोंके सिंहनाद, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथोंकी घरघराहट तथा हाथियोंकी चीत्कारोंसे मानो समस्त दिङ्मण्डल गर्जना कर रहा था। दैत्यसेनाके अभियानसे समस्त भूमण्डल काँपने लगा। नरेश्वर ! अनेकानेक पर्वत धराशायी हो गये। समुद्र विक्षुब्ध हो उठे और अपनी मर्यादाको लाँघ गये। देवताओंने तुरंत ही अमरावतीपुरीके दरवाजे बंद कर लिये और वहाँ अर्गला डाल दी। उस भीषण सेनाको देखकर धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, बलवान् तथा धैर्यशाली वीर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न यदुकुलके श्रेष्ठ वीरोंसे इस प्रकार बोले ॥ ७—१० ॥

प्रद्युम्नने कहा—वीरो ! भूतलपर जो हमारा यह शरीर है, पाँच भूतोंका बना हुआ है, फेनके समान क्षणभङ्गुर है, कर्म और गुण आदिसे इसका निर्माण हुआ है। इसका आना-जाना लगा रहता है तथा यह कालके अधीन है। यह जगत् बालकोंके रचे हुए खिलवाड़के समान है। विद्वान् पुरुष इसके लिये कभी शोक नहीं करते। सात्त्विक पुरुष ऊर्ध्वलोकमें गमन करते हैं, राजस मनुष्य मध्यलोकमें स्थित होते हैं और तामस जीव नीचेके नरकलोकोंमें जाते हैं। इन तीनोंसे जो भिन्न हैं, वे बारंबार कर्मानुसार विचरते हुए नाना योनियोंमें जन्मते-मरते रहते हैं। यह लोक सब ओरसे भयग्रस्त है; जैसे नेत्रोंके घूमनेसे धरती व्यर्थ ही घूमती-सी प्रतीत होती है, उसी प्रकार यह मनःकल्पित सम्पूर्ण जगत् भ्रान्त होता है। जैसे काँच (दर्पण आदि) में प्रतिबिम्बित अपने ही स्वरूपको देखकर बालक मुग्ध होता है, उसी प्रकार यहाँ सब कुछ भ्रान्तिपूर्ण है। जैसे मण्डलवर्ती जनोंका सुख अस्थिर होता है, उसी प्रकार पातालनिवासियोंका भी सुख अचल नहीं है। यज्ञोंद्वारा उपलब्ध देवताओंके सुखको भी इसी प्रकार चञ्चल समझना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुष यही सोचकर समस्त सांसारिक सुखको तिनकेके समान त्याग देते हैं। ऋतुके गुण, देहके गुण और स्वभाव प्रतिदिन जाते—परिवर्तित होते रहते हैं; उसी प्रकार मनुष्योंका भी आवागमन लगा रहता है। यहाँ जो-जो दृश्यमान वस्तु है, वह कोई भी सत्य नहीं है। जैसे यात्रामें राहगीरोंका समागम होता है और फिर सब-के-सब जहाँ-तहाँ चले जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ सब आगमापायी है, कुछ भी स्थिर नहीं है। जैसे इस लोकमें देखी हुई वस्तु उल्का या विद्युद्-विलासके समान अस्थिर है, उसी प्रकार पारलौकिक वस्तुके विषयमें भी समझना चाहिये। उन दोनोंसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ! अतः सर्वत्र परमेश्वर श्रीहरिको देखते हुए कल्याण-मार्गका निश्चय करके सदा उसीपर चलना चाहिये। जैसे जलपात्रोंके समूहमें सर्वत्र एक ही चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होता है तथा जैसे समिधाओंके समुदायमें एक ही अग्नितत्त्वका बोध होता है, उसी प्रकार एक ही परमात्मा भगवान् स्वयं निर्मित देहधारियोंके भीतर और बाहर अनेक-सा जान पड़ता है। जो ज्ञाननिष्ठ है, अत्यन्त वैराग्यका आश्रय ले चुका है, भगवान् श्रीकृष्णका भक्त है और किसी भी वस्तु-की अपेक्षा नहीं रखता, वह तपोवनमें निवास करे या घरमें, उसे तीनों गुण सर्वथा स्पर्श नहीं करते। इसीलिये

संन्यासी, जिसने परात्पर ब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया है, सदा सुखी एवं आनन्दमय हो बालककी तरह विचरता है। जैसे मदिराके मदसे अन्धा हुआ मनुष्य यह नहीं देखता कि मेरेद्वारा पहना हुआ वस्त्र शरीरपर है या गिर गया, उसी प्रकार सिद्ध पुरुष समस्त सिद्धियोंके कारणभूत शरीरके विषयमें यह नहीं देखता कि वह प्रारब्धवश है या गिर गया अथवा कहीं आता है या जाता है। जैसे सूर्योदय होनेपर सारा अन्धकार नष्ट हो जाता है और घरमें रखी हुई वस्तु लोगोंको यथावस्थित रूपसे दिखायी देने लगती है, उसी प्रकार ज्ञानोदय होनेपर अज्ञानान्धकार मिट जाता है और अपने शरीरके भीतर ही परब्रह्म प्रकाशित होने लगता है। जैसे इन्द्रियोंके पृथक्-पृथक् मार्गमें तीनों गुणोंके आश्रयभूत परमार्थ वस्तुका उन्नयन (सम्यग्ज्ञान) नहीं हो सकता, उसी प्रकार अनन्त परमात्माका एकमात्र अद्वितीय धाम मुनियोंके बताये विभिन्न शास्त्रमार्गोंद्वारा पूर्णतः नहीं जाना जा सकता। कुछ लोग वैष्णवधामको 'परमपद' कहते हैं, कोई वैकुण्ठको परमेश्वरका 'परमधाम' बताते हैं, कोई अज्ञानान्धकारसे परे जो शान्तस्वरूप परम ब्रह्म है, उसे 'परमपद' मानते हैं और कुछ लोग कैवल्य मोक्षको ही 'परमधाम' की संज्ञा देते हैं। कोई अक्षर तत्त्वकी उत्कृष्टताका प्रतिपादन करते हैं, कोई गोलोक धामको ही सबका आदिकारण कहते हैं तथा कुछ लोग भगवान्‌की निज लीलाओंसे परिपूर्ण निकुञ्जको ही 'सर्वोत्कृष्ट पद' बताते हैं। मननशील मुनि इन सबके रूपमें श्रीकृष्णपदको ही प्राप्त करता है ॥ ११—२३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नकी यह बात सुनकर, भेदभेदक ज्ञान प्राप्त करके, हर्ष और उत्साहसे भरे हुए समस्त यादव-श्रेष्ठ वीरोंने शस्त्र ग्रहण कर लिये। फिर तो सीता-गङ्गाके तटपर यादवोंके साथ दैत्योंका तुमुल युद्ध हुआ—वैसे ही, जैसे समुद्रके तटपर वानरोंके साथ राक्षसोंका हुआ था। रथी रथियोंसे, पैदल पैदलोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे और गजारोही गजारोहियोंसे जूझने लगे। महावतोंसे प्रेरित हुए, हौदोंसे सुशोभित कुछ उन्मत्त गजराज मेघाडम्बरसे युक्त गिरिराजोंके समान दिखायी देते थे। राजन्! वे समराङ्गणमें फुफकारते-चिग्घाड़ते तथा साँकलोंसे युक्त सूँड़ोंद्वारा रथियों, घुड़सवारों तथा पैदल वीरोंको धराशायी करते हुए विचर रहे थे। वे घोड़ों और सारथियोंसहित रथोंको सूँड़से लपेटकर भूमिपर पटक देते और बलपूर्वक पुनः उठाकर आकाशमें फेंक देते थे। राजन्! उस युद्धभूमिमें सब ओर दौड़ते हुए क्षत-विक्षत गजराज कुछ लोगोंको सुदृढ़ सूँड़ोंद्वारा विदीर्ण करके उन्हें पैरोंसे मसल देते थे। महाराज! घुड़सवारोंद्वारा प्रेरित पंखयुक्त घोड़े रथोंको लाँघकर हाथियोंके कुम्भस्थलपर चढ़ जाते थे। कुछ महावीर घुड़सवार युद्धके मदमें उन्मत्त हो, हाथमें शक्ति लिये घोड़ोंके द्वारा हाथियोंके कुम्भस्थलपर पहुँचकर गजारोही नरेशोंको उसी प्रकार मार डालते थे, जैसे सिंह यूथपति गजराजोंको मार गिराते हैं। कुछ घुड़सवार योद्धा तलवारोंके वेगसे सामनेकी सेनाको विदीर्ण करते हुए उसी प्रकार सकुशल आगे निकल जाते थे, जैसे वायु अपने वेगसे लीलापूर्वक कमलवनको रौंदकर आगे बढ़ जाती है। कुछ घुड़सवार समराङ्गणमें उछलते हुए खड्गोंद्वारा उसी प्रकार आपसमें ही आघात प्रत्याघात करने लगते थे, जैसे आकाशमें पक्षी किसी मांसके टुकड़ेके लिये एक दूसरेको चोंचसे मारने लगते हैं। कुछ पैदल योद्धा खड्गोंसे, कुछ फरसों और चक्रोंसे तथा कुछ योद्धा तीखे भालोंसे फलोंकी तरह विपक्षियोंके मस्तक काट लेते थे ॥ २४—३५ ॥

संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, विजित्, जय, सुभद्र, वाम, सत्यक तथा अश्वयु—भद्राके गर्भसे उत्पन्न हुए ये श्रीकृष्णके दस औरस पुत्र सबसे आगे आकर दैत्यपुंगवोंके साथ युद्ध करने लगे। महाराज! हाथीपर चढ़े हुए महान् असुर भूत-संतापनने अपने नाराचोंकी वर्षासे दुर्दिनका दृश्य उपस्थित कर दिया। भूत-संतापनके बाणोंद्वारा अन्धकार फैला दिये जानेपर श्रीकृष्णके बलवान् पुत्र संग्रामजित् उसका सामना करनेके लिये आये। उन्होंने रणभूमिमें सैकड़ों बाण मारकर भूत-संतापनको घायल कर दिया। तब बलवान् भूत-संतापनने प्रलयकालके समुद्रोंके संघर्षसे प्रकट होनेवाले भयंकर घोषके समान टंकारध्वनि करनेवाली संग्रामजित्‌के धनुषकी प्रत्यञ्चाको काट दिया। तब संग्रामजित्‌ने विद्युत्‌के समान दीप्तिमान् अपना दूसरा धनुष लेकर उसपर विधिपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ायी, फिर सौ बाण छोड़े। वे बाण भूत-संतापनके धनुषकी प्रत्यञ्चा, लोहनिर्मित कवच, शरीर और हाथीका छेदन भेदन करते हुए धरतीमें समा गये। बाणोंके उस प्रहारसे पीड़ित हो भूत-संतापन मन-ही-मन कुछ घबराया, फिर उस बलवान् वीरने अपने हाथीको आगे बढ़ाया।

काल और यमके समान भयानक उस हाथीको आक्रमण करते देख, बलवान् संग्रामजित्‌ने अपना दिव्य खड्ग लेकर रणभूमिमें उसके ऊपर प्रहार किया। उस खड्ग-प्रहारसे उसकी सूँड़के दो टुकड़े हो गये और वह भयानक चीत्कार करता तथा गण्डस्थलसे मद बहाता हुआ भूत-संतापनको छोड़कर जगत्‌को कम्पित करता हुआ भागा। बड़े-बड़े वीरोंको धराशायी करता हुआ और बारंबार घंटे बजाता हुआ सीधे दैत्यपुरी चन्द्रावतीको चला गया। कोई भी बलपूर्वक उसे रोक न सका ॥ ३६—४७ ॥

इस प्रकार हाथीके संग्रामभूमिसे भाग जानेपर वहाँ महान् कोलाहल मच गया। तब भूत-संतापनने श्रीकृष्ण-पुत्रके ऊपर तीखी धारवाला चक्र चलाया, जो ग्रीष्मऋतुके सूर्यकी भाँति उद्भासित हो रहा था। महाराज! उस घूमते चक्रको अपने ऊपर आया देख बलवान् भद्राकुमारने अपने चक्रद्वारा लीलापूर्वक उसके सौ टुकड़े कर डाले। तब उस महान् असुरने जठरगिरिका एक शिखर उखाड़कर आकाश-मण्डलको निनादित करते हुए श्रीकृष्ण-पुत्रपर फेंका। राजेन्द्र! संग्रामजित्‌ने उस शिखरको बलपूर्वक दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और उसीके द्वारा रणभूमिमें भूत-संतापनपर प्रहार किया। तब दैत्यपुंगव भूत-संतापन समूचे जठरगिरिको उखाड़कर उसे हाथमें ले, संग्रामभूमिमें खड़ा हुआ "अब मैं इसी पर्वतसे संग्राममें तुम्हारा काम तमाम कर दूँगा"—इस प्रकार मुखसे कहने लगा। यह देख श्रीहरिके पुत्र संग्रामजित्‌ने भी देवकूट नामक पहाड़ उखाड़ लिया और मुखसे कहा—"मैं भी इसीसे युद्धभूमिमें तेरे प्राण ले लूँगा" ॥ ४८—५४ ॥

राजन्! यों कहकर वे उसके सामने खड़े हो गये। वह अद्भुत-सी घटना हुई। नरेश्वर! पर्वत फेंकते हुए भूत-संतापनपर बलवान् संग्रामजित्‌ने संग्राममें अपने हाथके पर्वतसे प्रहार किया। भारी बोझसे युक्त जठर और देवकूट दोनों पर्वत दैत्यके मस्तकपर गिरे। उनसे दो वज्रोंके टकरानेका-सा भयानक शब्द हुआ। विदेहराज! दोनोंकी चोटसे गिरकर भूत-संतापन मृत्युका ग्रास बन गया और उसकी ज्योति संग्रामजित्‌में विलीन हो गयी। संग्रामजित्‌की सेनामें विजयसूचक दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता उन भद्राकुमारके ऊपर फूल बरसाने लगे ॥ ५५—५९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'भूत-संतापन दैत्यका वध' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

अनिरुद्धके हाथसे वृक दैत्यका वध

श्रीनारदजी कहते हैं—मिथिलेश्वर! संग्रामजित्‌के द्वारा उस महायुद्धमें भूत-संतापनके मारे जानेपर दैत्य-सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया। तब शकुनि, वृक, कालनाभ और महानाभ तथा हरिश्मश्रु—ये पाँच वीर रणभूमिमें उतरे ॥ १-२ ॥

श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न शकुनिके साथ युद्ध करने लगे और अनिरुद्ध वृकके साथ। साम्ब कालनाभसे और दीप्तिमान् महानाभसे भिड़ गये। बलवान् वीर श्रीकृष्ण-कुमार भानु हरिश्मश्रु नामक असुरके साथ लड़ने लगे। सबके आगे थे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध। वे अपने बाणोंद्वारा दैत्योंको उसी प्रकार विदीर्ण करने लगे, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंका भेदन करते हैं। अनिरुद्धके बाणोंसे दैत्योंके पैर, कंधे और घुटने कट गये। वे सब-के-सब मूर्च्छित हो तेज हवाके उखाड़े हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। अनिरुद्धके तीखे बाणोंसे जिनके मेघडम्बर (हौदे), कुम्भस्थल और सूँड़ें छिन्न-भिन्न हो गयी थीं, दाँत टूट गये और कान कट गये थे, वे हाथी रणभूमिमें उसी प्रकार गिरे, जैसे वज्रके आघातसे पर्वत ढह जाते हैं। हाथियोंके दो टुकड़े होकर पड़े थे और उनके ऊपर कश्मीरी झूल चमक रही थी। हाथियोंके विदीर्ण कुम्भस्थलोंसे इधर-उधर बिखरे हुए मोती चमक रहे थे। राजेन्द्र! वे बाणजन्य अन्धकारमें उसी प्रकार उद्दीप्त हो रहे थे, जैसे रातमें तारे चमचमाते हैं। अनिरुद्धके बाणोंसे प्रधर्षित कितने ही वीर मूर्च्छित होकर भूमिपर पड़े थे। वह दृश्य अद्भुत-सा प्रतीत होता था। कितने ही रथी भूमिपर गिरे थे और उनके रथ सूने खड़े थे। कुछ

योद्धाओंके कटे हुए मस्तक ऐसे दिखायी देते थे जैसे हाथीके पैरोंसे कैथके फल ॥ ३—१०½ ॥

राजेन्द्र ! एक ही क्षणमें उस संग्रामके भीतर दैत्योंकी सेनाओंमें इतना अधिक रक्त गिरा कि उसकी भयानक नदी बह चली। हाथी उसमें ग्राहके समान जान पड़ते थे; ऊँटों एवं गधोंके धड़ एवं मुख आदि कच्छप जान पड़ते थे; रथ द्वीपके समान प्रतीत होते थे, केश सेवारका भ्रम उत्पन्न करते थे और कटी हुई भुजाएँ सर्पिणी-सी जान पड़ती थीं। कटे हाथ उसमें मछलियाँ थे और मुकुट, रत्नहार एवं कुण्डल कंकड़-पत्थरका स्थान ले रहे थे। शस्त्र, शक्ति, छत्र, शङ्ख, चँवर और ध्वज बालुका-राशिके समान थे, रथोंके चक्के भँवरका भ्रम पैदा करते थे। दोनों ओरकी सेनाएँ ही उस रक्त-सरिताके दोनों तट थीं। नृपेश्वर ! सौ योजनतक फैली हुई वह खूनकी नदी वैतरणीके समान भयंकर जान पड़ती थी। प्रमथ, भैरव, भूत, बेताल और योगिनीगण उस रण मण्डलमें अट्टहास करते, नाचते और निरन्तर खप्परमें खून लेकर पीते थे। वे भगवान् रुद्रकी मुण्डमाला बनानेके लिये नरमुण्डोंका संग्रह भी करते थे। सिंहपर चढ़ी हुई भद्रकाली सैकड़ों डाकिनियोंके साथ आकर उस समराङ्गणमें दैत्योंको अपना ग्रास बनाती और अट्टहास करती थीं। विमानपर बैठी हुई विद्याधरियाँ, गन्धर्वकन्याएँ और अप्सराएँ क्षत्रिय-धर्ममें स्थित रहकर वीरगतिको प्राप्त हुए देवस्वरूप वीरोंका पतिरूपमें वरण करती थीं। आकाशमें उन वीरोंको पतिरूपमें चुनते समय वे सुन्दरियाँ परस्पर कलह कर बैठती थीं। कोई कहती—'ये मेरे योग्य हैं, तुमलोगोंके योग्य नहीं।' इस तरह वे विह्वल-चित्त हो विवाद कर रही थीं। कुछ वीर धर्ममें तत्पर रहकर समरकी रङ्गभूमिसे तनिक भी विचलित नहीं हुए, इसलिये वे सूर्यमण्डलका भेदन करके दिव्य विष्णुपदको जा पहुँचे। कुछ दैत्य अनिरुद्धको अपने शत्रुके रूपमें देखकर भाग खड़े हुए। कुछ असुर अपना-अपना युद्ध छोड़कर दसों दिशाओंमें पलायन कर गये ॥ ११—२१½ ॥

उसी समय गधेपर चढ़ा हुआ भयंकर महादैत्य वृक गर्जना करता तथा बार-बार धनुष टंकारता हुआ युद्ध करने आया। उस रणदुर्मद दैत्यने भी दस बाण मारकर अनिरुद्धके प्रत्यञ्चासहित धनुषको काट दिया। धनुष कट जानेपर महाबली अनिरुद्धने दूसरा धनुष हाथमें लिया और दस बाण मारकर वृकके कोदण्डको भी खण्डित कर दिया। इसपर वृकके होठ रोषसे फड़क उठे। उसने त्रिशूल उठाकर जीभ लपलपाते हुए धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धसे कहा ॥ २२—२५½ ॥

दैत्य बोला—तू पराक्रमी क्षत्रिय है और तूने आज मेरी सेनाका विनाश किया है, इसलिये मैं अभी तुझे मारे डालता हूँ। तू मेरा अद्भुत पराक्रम देख ले ॥ २६ ॥

अनिरुद्धने कहा—दैत्य ! जो लोग मुँहसे बढ़-बढ़कर बातें बनाते हैं, वे यहाँ कुछ नहीं कर पाते। मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा। तुम मेरा उत्तम पराक्रम देखो। यदि मैं युद्धमें तुम्हें नहीं मार सकूँ तो मेरी शपथ सुन लो—मुझे ब्राह्मण, गौ, गर्भस्थ शिशु और बालकोंकी हत्याका सदा ही पाप लगे ॥ २७-२८ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! गधेपर बैठे हुए महादुष्ट वृकने भी शपथ खाकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धपर त्रिशूलसे प्रहार किया। परंतु राजन् ! प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धने उस त्रिशूलको बायें हाथसे पकड़ लिया और सहसा उसीसे महाबली दैत्य वृकको घायल कर दिया। तब तो वह असुर क्रोधसे भर गया। उसने एक भारी गदा चलाकर सहसा अनिरुद्धके रथको बलपूर्वक चूर-चूर कर डाला। तब प्रद्युम्नकुमारने तीखी धारवाली तलवारसे शत्रुकी दोनों भुजाएँ उसी तरह काट डालीं, जैसे इन्द्रने वज्रसे शीघ्र ही पर्वतोंकी दोनों पाँखें काट दी थीं। तब वह बाहुविहीन दैत्य पैरोंसे पृथ्वीको कँपाता हुआ लपलपाती जीभसे युक्त भयंकर मुँह फैलाकर ऐसा दिखायी देने लगा, मानो वह सारे आकाशको ही पी जायगा। फिर विकराल दाढ़ोंवाले उस दैत्यराजने, जैसे मगरमच्छ किसी बड़े मत्स्यको निगल जाय, उसी प्रकार प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको अपना ग्रास बना लिया ॥ २९—३४½ ॥

महाराज ! वे श्रीकृष्णके पौत्र थे, इसलिये दैत्यके पेटमें जानेपर भी श्रीकृष्णकी कृपासे मरे नहीं, मछलीके पेटमें पड़े हुए प्रद्युम्नकी भाँति बच गये। जैसे अघासुरके पेटमें जाकर भी श्रीकृष्ण और ग्वाल-बाल बच गये थे,

जैसे बकासुरके उदरमें स्वयं श्रीकृष्ण नहीं मरे थे और जैसे वृत्रासुरके उदरमें जाकर भी इन्द्र बच गये थे, उसी प्रकार वृकासुरके पेटमें अनिरुद्धकी प्राण-रक्षा हो गयी ॥ ३५-३६½ ॥

विदेहराज ! उस समय यादवोंकी सेनामें हाहाकार मच गया । तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने गदा लेकर उसे महाबली वृक दैत्यके मस्तकपर मारा । दैत्यका सिर फट गया और उससे रक्तकी बूँदें टपकने लगीं । रक्तकी धारासे उस विशालकाय दैत्यकी उसी तरह शोभा हुई, जैसे गेरुमिश्रित जलकी धारासे विन्ध्याचल सुशोभित होता है ॥ ३७—३९ ॥

तदनन्तर अर्जुनने अपनी तलवार लेकर अनायास ही उसके दोनों पैर काट डाले । पैर कट जानेपर वह पंख-कटे पर्वतकी भाँति धरतीपर गिर पड़ा । अनिरुद्ध अपनी तलवारसे उसका पेट फाड़कर बाहर निकल आये । जैसे इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरको मारा था, उसी प्रकार अनिरुद्धने अपनी तलवारसे उसका मस्तक काट डाला । उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगी तथा देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं । देवता-लोग अनिरुद्धके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे । राजन् ! यह अद्भुत वृत्तान्त मैंने तुमसे कह सुनाया, अब और क्या सुनाना चाहते हो ? ॥ ४०—४३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वृक दैत्यका वध' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय

साम्बद्वारा कालनाभ दैत्यका वध

बहुलाश्व बोले—मुने ! आश्चर्य है, प्रद्युम्नकुमारने बड़ा अद्भुत युद्ध किया । महादैत्य वृकके मारे जानेपर फिर उस समराङ्गणमें क्या हुआ ? ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! वृकको मारा गया देख महान् असुर कालनाभ बार-बार धनुष टंकारता हुआ सूअरपर चढ़कर रणभूमिमें आया । उस असुरने समराङ्गणमें अक्रूरको बीस, गदको दस, अर्जुनको दस, सात्यकिको पाँच, कृत-वर्माको दस, प्रद्युम्नको सौ, अनिरुद्धको बीस, दीप्तिमान्‌को पाँच और साम्बको सौ बाण मारकर उन सबको घायल कर दिया । उसके बाणोंकी चोटसे दो घड़ीके लिये वे सभी वीर व्याकुल हो गये । उन सबके घोड़े भी मारे गये तथा रथ रणभूमिमें चूर-चूर हो गये । उसके हाथकी फुर्ती देख-कर रुक्मिणीनन्दन प्रसन्न हो गये । उन्होंने कालनाभको समराङ्गणमें साधुवाद देकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २—६½ ॥

तत्पश्चात् प्रद्युम्नने अपना धनुष लेकर उसपर एक बाण रक्खा । कोदण्डसे छूटे हुए उस बाणने उस दैत्यके विशालकाय सूअरको ऊपर उठाकर लाख योजन दूर स्वर्ग-लोककी सीमातक ले जाकर घुमाते हुए आकाशसे भयंकर गर्जना करनेवाले समुद्रमें गिरा दिया । तत्पश्चात् साक्षात् भगवान् प्रद्युम्नने दूसरे बाणका संधान किया । उस बाणने भी महाबली कालनाभको ऊपर ले जाकर घुमाते हुए बल-पूर्वक चन्द्रावतीपुरीमें पटक दिया । वहाँ गिरनेपर कालनाभके मनमें कुछ घबराहट हुई । वह दैत्यराज काल भारकी बनी हुई भारी गदा हाथमें लेकर पुनः रणभूमिमें आ पहुँचा और यादव-सेनाका विनाश करने लगा ॥ ७—११½ ॥

वज्र-सदृश गदासे हाथी, रथ, घोड़े और पैदल वीरोंको वह बड़े वेगसे उसी प्रकार धराशायी करने लगा, जैसे आँधी वृक्षोंको गिरा देती है; किन्हींको दोनों हाथोंसे उठाकर वह बलपूर्वक आकाशमें फेंक देता था । राजन् ! वे आकाशसे पृथ्वीपर वर्षाके ओलोंकी भाँति गिरते थे । तब जाम्बवतीकुमार साम्बने गदा लेकर महान् असुर कालनाभके मस्तकपर गहरी चोट पहुँचायी । रणमण्डलके भीतर गदाओंद्वारा उन दोनों वीरोंमें घोर युद्ध होने लगा । वे दोनों ही गदाएँ आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई परस्पर टकराकर चूर-चूर हो गयीं । फिर वे दोनों वीर दूसरी गदाएँ लेकर युद्धके लिये खड़े हुए । उस समय कालनाभने जाम्बवतीकुमार साम्बसे कहा—'मैं एक प्रहारसे ही तुम्हारा काम तमाम कर सकता हूँ, इसमें संशय नहीं है ।' तब उस रणभूमिमें साम्ब बोले—'पहले तुम मेरे ऊपर प्रहार करो ।' तब कालनाभने साम्बके मस्तकपर गदासे चोट की, किंतु जाम्बवतीनन्दन साम्बने

मस्तकके ऊपर गदा रोक ली और अपनी गदासे कालनाभ दैत्यकी छातीमें आघात किया। उस गदाकी चोटसे दैत्यकी छाती फट गयी और वह मुँहसे रक्त वमन करता हुआ प्राणशून्य हो वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १२–२०॥

नरेश्वर! तब तो जय-जयकार होने लगी और सत्पुरुष साम्बको साधुवाद देने लगे। देवताओं और मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ एक साथ ही बज उठीं। देवतालोग साम्बकी सेनाके ऊपर फूल बरसाने लगे, विद्याधरियाँ नाचने लगीं और गन्धर्वगण सानन्द गीत गाने लगे॥ २१-२२॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'कालनाभ दैत्यका वध' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

दीप्तिमान्‌द्वारा महानाभका वध

नारदजी कहते हैं—राजन्! कालनाभ दैत्यके गिर जानेपर दैत्यसेनामें बड़ा भारी कोलाहल मचा। तब महानाभ नामक दैत्य ऊँटपर चढ़कर समराङ्गणमें आया। वह मायावी दैत्यराज मुँहसे आग उगलने लगा। उस आगसे दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं और धरतीके वृक्ष जलने लगे। महाराज! वीरोंके कवच, पगड़ी, कटिबन्ध और अँगरखा आदि मूँजके फूल (भुआड़ी) तथा रूईके समान जल उठे। राजन्! समुद्रतटवर्ती नगरोंके बने हुए पीले, लाल, सफेद, काले, चितकबरे और सूक्ष्म झूलों तथा हेम-रत्नखचित कश्मीरी कालीनोंसहित बहुत-से हाथी उस समराङ्गणमें दावानलसे दग्ध होनेवाले वृक्षोंसहित पर्वतोंकी भाँति जल रहे थे। मस्तकपर धारण कराये गये रत्नों, चामरों, हारों और सुनहरे साज-बाजोंके साथ जलते हुए घोड़े उस युद्ध-भूमिमें दावाग्निसे दग्ध होनेवाले हरिणोंकी भाँति उछलते और चौकड़ी भरते थे॥ १–६॥

अपनी सेनाको भयसे व्याकुल देख श्रीकृष्णकुमार दीप्तिमान्‌ने उस मायामयी आगको बुझानेके लिये पार्जन्यास्त्र-का संधान किया। फिर तो उस बाणसे प्रलयकालके मेघोंकी भाँति नील जलधर प्रकट हुए और भयंकर गर्जना करते हुए जलकी धाराएँ बरसाने लगे। महाराज! उस धारा-सम्पातसे भूतलपर पावस ऋतु प्रकट हो गयी। नर कोकिल, मादा कोकिल, मोर और सारस आदि पक्षी अपनी मधुर बोलियाँ बोलने लगे। मेढक भी टर-टर करने लगे। इन्द्रगोप (बीर-बहूटी) नामक लाल रंगके झुंड-के-झुंड कीट जहाँ-तहाँ शोभित होने लगे। मैथिलेन्द्र! इन्द्रधनुष और विद्युन्मालासे आकाश उद्दीप्त दिखायी देने लगा॥ ७–१०॥

इस प्रकार उस आगके बुझ जानेपर महान् असुर महानाभने दीप्तिमान्‌के ऊपर बड़े रोषसे अपना तीखा त्रिशूल चलाया। सर्पकी भाँति अपनी ओर आते हुए उस त्रिशूलको रोहिणीपुत्र दीप्तिमान्‌ने युद्धभूमिमें तलवारसे उसी प्रकार काट डाला, जैसे गरुड़ने अपनी चोंचसे किसी नागके दो टुकड़े कर दिये हों। महानाभका वाहन उद्भट ऊँट उन्हें दाँतसे काटनेके लिये आगे बढ़ा। तब दीप्तिमान्‌ने समराङ्गणमें उसके ऊपर अपनी तलवारसे चोट की। खड्गसे उसकी गर्दन कट गयी और वह दो टूक हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। महानाभके देखते-देखते उस ऊँटके प्राण-पखेरू उड़ गये। तब दैत्य महानाभ बड़े वेगसे हाथीपर जा चढ़ा और हाथमें शूल लेकर व्योम-मण्डलको अपनी गर्जनासे गुँजाता हुआ फिर युद्धके लिये आ गया। श्रीकृष्णनन्दन दीप्तिमान् चञ्चल और काले रंगके सिंधी घोड़ेपर चढ़कर विद्युत्‌के समान कान्तिमान् खड्गसे अद्भुत शोभा पाने लगे। उन्होंने घोड़ेके पेटमें एड़ लगायी और वह भूतलसे उछलकर हाथीके कुम्भस्थलपर इस प्रकार जा चढ़ा, मानो कोई सिंह पर्वतके सिखरपर बड़े वेगसे चढ़ गया हो॥ ११–१७॥

फिर श्रीकृष्णकुमार दीप्तिमान्‌ने तीखी धारवाले खड्गसे महानाभके मस्तकको सहसा धड़से अलग कर दिया। बाण-वर्षा करती हुई उस दुरात्माकी सेनाका दीप्तिमान्‌ने अपनी तलवारसे उसी तरह संहार कर डाला, जैसे सिंह हाथियोंके झुंडको रौंद डालता है। कुछ दैत्य खड्गसे मारे गये, शेष

रणभूमिसे पलायन कर गये। देवता श्रीसाम्बके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे, किंनर और गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराओंके समुदाय नृत्य करने लगे। ऋषियों, मुनियों और देवताओंने श्रीहरिके पुत्रका स्तवन किया ॥ १८-२१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'महानाभका वध' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-पुत्र भानुके हाथसे हरिश्मश्रु दैत्यका वध

नारदजी कहते हैं—राजन्! महानाभ मारा गया, यह सुनकर तथा दैत्यसेना पलायन कर गयी—यह देखकर, मगरमच्छपर चढ़ा हुआ दैत्य हरिश्मश्रु समरभूमिमें आया। उस समय हरिश्मश्रु दैत्यके ओठ फड़क रहे थे, उसने यादवोंके सुनते हुए अत्यन्त कठोर वचन कहा ॥ १-२ ॥

हरिश्मश्रु बोला—अरे! तुम सब लोग मेरी शक्तिके सामने क्या हो? स्वल्प-पराक्रमी मनुष्य ही तो हो। दीन-हीन होनेपर भी केवल अस्त्र-शस्त्रोंके बलपर जीतते हो। तुम-जैसे लोगोंमें पुरुषार्थ ही क्या है? यदि तुम्हारे दलमें कोई भी बलवान् हो तो मेरे साथ बिना अस्त्र-शस्त्रके मल्लयुद्ध करे, जिससे तुम्हारे पौरुषका पता लगे ॥ ३-४ ॥

नारदजी कहते हैं—दैत्यकी ऐसी बात सुनकर और उसके अत्यन्त उद्भट शरीरको देखकर सब लोग परस्पर उसकी प्रशंसा करते हुए मौन रह गये—उसे कोई उत्तर न दे सके। तब सत्यभामाके बलवान् पुत्र भानु मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए रणभूमिमें अस्त्र-शस्त्र त्यागकर सहसा उसके सामने खड़े हो गये। राजन्! महाबली हरिश्मश्रु तिमिंगिल (मगरमच्छ) की पीठसे उतरकर भुजाओंपर ताल ठोंकता हुआ सयत्न होकर सामने खड़ा हो गया। जैसे दो हाथी वनमें दाँतोंद्वारा परस्पर प्रहार करते हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर बाँहोंसे बाँह मिलाकर एक-दूसरेको बलपूर्वक ढकेलने लगे ॥ ५-८ ॥

राजराजेन्द्र! उस दैत्यने भानुको अपनी भुजाओंसे सौ योजन पीछे उसी प्रकार ढकेल दिया, जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको बलपूर्वक पछाड़ देता है। तब पुनः श्रीकृष्णकुमारने महान् असुर हरिश्मश्रुको बलपूर्वक सहसा सहस्र योजन पीछे ढकेल दिया। तत्पश्चात् दैत्यराज हरिश्मश्रुने अपनी बाँहको भानुके कंधेमें फँसाकर उन्हें अपनी कमरपर ले लिया और फिर घुटना पकड़कर उन्हें पृथ्वीपर पटक दिया। तब भानुने अपने बाहुबलसे उसे पीठपर ले लिया और उसकी जाँघें पकड़कर उस दैत्यको धरतीपर दे मारा। तदनन्तर वे दोनों पुनः उठकर भुजाओंपर ताल ठोंकते हुए खड़े हो गये। राजन्! वे दोनों फुर्ती दिखाते हुए गरुड और सर्पकी भाँति एक दूसरेसे लड़ने लगे। दैत्यने अपने बाहुबलसे श्रीकृष्ण-नन्दन भानुके पैर पकड़कर उन्हें आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया। आकाशसे गिरनेपर भानुको मन-ही-मन कुछ व्याकुलता हुई; किंतु जैसे शैल-शिखरसे गिरकर प्रह्लाद बच गये थे, उसी प्रकार श्रीहरिकी कृपासे भानुकी भी रक्षा हो गयी। तब श्रीकृष्णकुमारने हरिश्मश्रुकी लंबी दाढ़ी पकड़कर उसे घुमाया और आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया। आकाशसे गिरनेपर उसके मनमें भी कुछ व्याकुलता हुई। फिर उसने दाढ़ीको अपने मुँहपर सँभालकर भानुको एक मुक्का मारा ॥ ९-१७ ॥

राजन्! फिर दो घड़ीतक उन दोनोंमें मुक्का-मुक्कीका युद्ध चलता रहा। हरिश्मश्रुका अङ्ग-अङ्ग पिस उठा। तब उसने भानुके मस्तकपर बड़े वेगसे पत्थर मारा। तब तो भानुके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने लाल आँखें करके एक वृक्ष उखाड़ा और उसे दैत्यके मस्तकपर दे मारा। हरिश्मश्रुने भी एक वृक्ष लेकर उसे भानुके मस्तकपर चलाया। उस समय उस महादैत्यके नेत्र लाल हो गये थे और वह क्रोधसे मूर्च्छित होकर अपना विवेक खो बैठा था। उसने एक हाथीकी सूँड़ पकड़कर उस हाथीके द्वारा ही भानुपर प्रहार किया। भानुने एक दूसरा हाथी लेकर उसके चलाये हुए हाथीको हाथमें पकड़ लिया और महादैत्य हरिश्मश्रुपर दृढ़ता-पूर्वक हाथीसे ही प्रहार किया। वह हाथी चीत्कार कर उठा। दैत्यने उस हाथीको लेकर धरतीपर पटक दिया और उसके दोनों दाँत उखाड़कर उन्हींसे भानुको चोट पहुँचायी।

इसी समय भानुको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—'इस दैत्यकी मृत्यु इसकी दाढ़ीमें ही है। यह महान् असुर भगवान् शिवके दिये हुए वरदानसे अत्यन्त प्रबल हो गया है' ॥ १८–२३½ ॥

महाराज! आकाशवाणीका यह कथन सुनकर भानु क्रोधसे भरकर दौड़े। उन्होंने दोनों हाथोंसे दैत्यके पाँव पकड़कर बारंबार गर्जना करते हुए उसे घुमाया और सबके देखते-देखते भूपृष्ठपर उसी तरह पटक दिया, जैसे बालक कमण्डलुको गिरा देता है ॥ २४-२५½ ॥

फिर हाथोंसे बल लगाकर उसके मुँहसे दाढ़ी उखाड़ ली और महान् असुरके मस्तकपर एक मुक्का मारा। नृपेश्वर! फिर तो दैत्य हरिश्मश्रुकी तत्काल मृत्यु हो गयी और मनुष्यों तथा देवताओंके विजय-सूचक नगारे एक साथ ही बजने लगे। जय-जयकारकी ध्वनि सब ओर व्याप्त हो उठी और देवनायक नाचने लगे ॥ २६–२८ ॥

राजन्! देवता प्रसन्न हो पुष्पवर्षा करने लगे। इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णके पुत्रोंके परम अद्भुत पराक्रमका वर्णन किया है। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'हरिश्मश्रु दैत्यका वध' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय

प्रद्युम्न और शकुनिके घोर युद्धका वर्णन

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! हरिश्मश्रु आदि भाइयोंको मारा गया जानकर महान् असुर शकुनिने आगे क्या किया? ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! हरिश्मश्रुके मारे जानेपर शकुनि क्रोधसे अचेत-सा हो गया। भ्राताओंकी मृत्युसे उत्पन्न हुए शोकमें डूबकर समराङ्गणमें दैत्योंको सम्बोधित करके उसने कहा ॥ २ ॥

शकुनि बोला—हे पौलोम और कालकेयगण! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। अहो! दैवका बल अद्भुत है, उसके कारण क्या उलट-फेर नहीं हो सकता? मेरे भाई कालनाभने पूर्वकालमें समुद्र-मन्थनके अवसरपर यमराजको जीत लिया था, परंतु दैववश वह भी यहाँ मनुष्योंके हाथसे मारा गया। शम्बरने साक्षात् सूर्यदेवको परास्त किया था, किंतु वह बालक श्रीकृष्णकुमारके हाथसे पराजित हुआ। उत्कच महाबलियोंमें भी महाबली था और इन्द्रपर भी विजय पा चुका था, परंतु वह भी बालकृष्णके हाथों मारा गया, यह बात मैंने नारदजीके मुखसे सुनी थी। पहले समुद्र-मन्थनके समय जिसने समस्त असुरोंके समक्ष अग्निदेवको पराजित किया था, वह मेरा भाई वृक भी एक मनुष्यद्वारा मार गिराया गया। जिसके सामनेसे पूर्वकालमें वरुण देवता भी भयभीत हो युद्धसे पीठ दिखाकर भाग गये थे, उस भूतसंतापनको भी तुच्छ पराक्रमवाले मनुष्योंने मार डाला। जिसने पहले महायुद्धमें अपने पराक्रमद्वारा भगवान् शिवको संतुष्ट किया था, उस वृकको यहाँ युद्धमें तुच्छ वृष्णिवंशियोंने मार गिराया। मेरे भाई महानाभने देवलोकमें वायुको भी परास्त किया था, किंतु यहाँ इस समय उसको भी यदुकुलके मनुष्योंने मार डाला। हा दैव! जिसने स्वर्गलोकमें बलवान् इन्द्रपुत्रको परास्त किया था, उस हरिश्मश्रुको भी यहाँ मानवोंने मार गिराया। इसलिये मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि इस पृथ्वीको मैं यादवोंसे शून्य कर दूँगा ॥ ३–११ ॥

जरासंध, शाल्व, बुद्धिमान् दन्तवक्त्र तथा शिशुपाल—ये मेरे मित्र हैं। सुतल लोकसे प्रचण्ड-पराक्रमी दानवोंको बुलाकर इन मित्रों तथा आपलोगोंके साथ मैं देवताओंको जीतनेके लिये जाऊँगा और उस युद्धमें बाणासुर भी हमारे साथ होगा। प्रद्युम्न आदि जो उद्भट यादव हैं, उन दुरात्माओंको जीतकर और स्त्रियोंसहित देवताओंको बाँधकर मैं मेरुपर्वतकी गुफाके मुँहमें डाल दूँगा। गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, तपस्वी, यज्ञ, श्राद्ध, तितिक्षु तथा नाना तीर्थोंका सेवन करनेवाले धर्मात्माओंको भी मैं निस्संदेह मार डालूँगा। फिर सुखपूर्वक विचरूँगा। देवताओंपर विजय पानेवाला महाबली पराक्रमी राजा कंस धन्य था। वह मेरा मित्र और परम सुहृद् था। खेदकी बात है कि आज वह इस भूतलपर विद्यमान नहीं है ॥ १२—१६½ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर महाबली दानवराज दैत्य शकुनि युद्धमें सहसा प्रद्युम्नके सामने आ गया। सात भार लोहेके समान सुदृढ़ एवं विशाल धनुष लेकर उसने उसकी प्रत्यञ्चाको टंकारित किया। उसका वह धनुष मयासुरका बनाया हुआ था। उस धनुषकी टंकार-ध्वनिसे दिग्गजोंके कान बहरे हो गये, अनेक पर्वत ढह गये और समुद्र अपनी मर्यादासे विचलित हो उठे। नरेश्वर! सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा और भूमण्डल काँपने लगा। उसकी प्रत्यञ्चाके घोर शब्दसे विह्वल हो योद्धाओंके ऊपर योद्धा गिर पड़े। हाथी रणभूमि छोड़कर भागने लगे और घोड़े युद्धभूमिमें उछलने-कूदने लगे॥ १७—२१॥

इस प्रकार सब लोग अचानक भयसे घबराकर भागने लगे। तब महान् बल-पराक्रमसे युक्त गद आदि वीर रथपर बैठकर धनुषकी टंकार करते हुए वहाँ आये। शकुनिने संग्राम-भूमिमें अर्जुनको दस बाण मारे। इससे रथसहित गाण्डीवधारी अर्जुन चार कोस दूर जाकर गिरे। रणदुर्मद शकुनिने गदके ऊपर बीस बाणोंसे प्रहार किया। राजन्! उसने गदको रथसहित व्योममण्डलमें फेंक दिया और जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। राजन्! उस वीरने रथसहित धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको चालीस बाणोंसे बींध डाला और अपने सिंहनादसे आकाश-मण्डलको निनादित कर दिया। अनिरुद्धका घोड़ोंसहित रथ सोलह कोस दूर जा गिरा। विदेहराज! शकुनिने समराङ्गणमें साम्बको सौ बाण मारे। राजन्! साम्ब भी रथसहित आकाशमें जा समरभूमिसे बत्तीस योजन दूर मार्गपर जा गिरे॥ २२—२७½॥

तत्पश्चात् प्रद्युम्नको सामने आया देख शकुनि क्रोधसे भर गया तथा उसने रणक्षेत्रमें सहसा बाण-समूहोंसे उन्हें घायल कर दिया। राजन्! प्रद्युम्नका रथ दो घड़ीतक चक्कर काटता हुआ सौ कोस दूर पृथ्वीपर इस प्रकार जा गिरा, मानो किसीके द्वारा कमण्डलु फेंक दिया गया हो। शकुनिका बल देखकर समस्त यादव चकित हो उठे। जैसे हाथी पहाड़से सिर टकराते हैं, उसी प्रकार समस्त यादव नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा उस दैत्यको घायल करने लगे। गद, अर्जुन, अनिरुद्ध एवं जाम्बवतीकुमार साम्ब अपने धनुषकी टंकार करते हुए पुनः युद्धभूमिमें आ गये। राजन्! तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न वायुके समान वेगशाली रथपर बैठकर धनुषकी टंकार करते हुए युद्ध-मण्डलमें आ पहुँचे। शकुनिके धनुषकी प्रत्यञ्चा प्रलय-कालके समुद्रोंके टकरानेके शब्द-जैसी भयंकर टंकार करती थी। श्रीकृष्णकुमारने दस बाण मारकर उसे काट दिया। फिर सहस्र बाणोंसे उसके सहस्र घोड़ोंको, सौ शिलीमुखोंद्वारा उसके रथको और बीस बाण मारकर उसके सारथिको पृथ्वीपर गिरा दिया। तब उसने रथको उठाकर उसमें दूसरे घोड़े जोते और दूसरा सारथि बैठाकर वह दैत्यराज पुनः रथपर आरूढ़ हुआ। राजन्! तत्पश्चात् उसने प्रचण्ड पराक्रमसे युक्त कोदण्डपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी। इसके बाद पीठपर पड़े हुए तरकससे सौ बाण खींचकर उसने धनुषपर रक्खे और कानतक खींचकर प्रद्युम्नसे कहा॥ २८—३७॥

शकुनि बोला—तुम सब लोगोंमें मेरे मुख्य शत्रु तथा मदमत्त योद्धा हो, अतः पहले तुम्हारा ही वध करूँगा। तत्पश्चात् स्वस्थ तेजवाले यादवोंकी सारी सेनाका संहार कर डालूँगा॥ ३८॥

प्रद्युम्नने कहा—असुर! प्राणियोंकी आयु सदा कालके बलसे नष्ट होती या बीतती है। वह बारंबार छायाकी तरह आती-जाती है। जैसे बादलोंकी पङ्क्ति आकाशमें वायुकी शक्तिसे आती-जाती है, उसी तरह सुख-दुःख भी कालकी प्रेरणासे आता-जाता रहता है। जैसे किसान बोयी हुई खेतीको सींचता है और जब वह पक जाती है, तब स्वयं उसे हँसुएसे सब ओरसे काट लेता है, उसी प्रकार दुर्जय काल अपनी ही रची हुई देहधारियोंकी श्रेणीको अपने गुणोंद्वारा पालता है और फिर समय आनेपर उसका संहार कर डालता है। जीव तो अहंकारसे मोहित होकर ही ऐसा मानता है कि 'मैं यह करूँगा, मैं यह करता हूँ; यह मेरा है और वह तेरा है; मैं सुखी हूँ, दुखी हूँ और ये मेरे सुहृद् हैं' इत्यादि॥ ३९—४१॥

शकुनि बोला—नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, जो अपनी वाणीद्वारा ऋषि-मुनियोंका अनुकरण करते हो। तीन गुणोंके अनुसार पृथक्-पृथक् जो प्राणियोंका स्वभाव है, उसका उनके लिये त्याग करना कठिन होता है॥ ४२॥

नारदजी कहते हैं—मैथिलेन्द्र! युद्धस्थलमें इस प्रकार परस्पर तत्त्वज्ञकी बातें करते हुए प्रद्युम्न और शकुनि इन्द्र और वृत्रासुरकी भाँति युद्ध करने लगे। शकुनिके धनुषसे छूटे हुए विशिख सूर्यकी किरणोंके समान चमक उठे, परंतु श्रीकृष्णकुमारने एक ही बाणसे उन सबको काट दिया—ठीक उसी तरह, जैसे एक ही कद्रुनन्दनसे मनुष्य

पुरानी मित्रताको भी खण्डित कर देता है। तब रण-दुर्मद शकुनिने लाख भारकी बनी भारी और विशाल गदा हाथमें लेकर प्रद्युम्नके मस्तकपर दे मारी। साक्षात् भगवान् प्रद्युम्नने अपनी वज्र-सरीखी गदासे उसकी गदाके सौ टुकड़े कर दिये—उसी प्रकार जैसे कोई डंडा मारकर काँचके बर्तन टूक-टूक कर दे। तब रोषके आवेशसे युक्त हुए उस दैत्यने एक चमचमाता हुआ त्रिशूल हाथमें लिया और उच्चस्वरसे गर्जना करते हुए उसके द्वारा प्रद्युम्नके मस्तकपर प्रहार किया। श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नने भी त्रिशूल मारकर दैत्यके त्रिशूलके सौ टुकड़े कर डाले। इसके बाद रुक्मिणीनन्दनने एक तीखी बरछी लेकर शकुनिके ऊपर चलायी॥ ४३—४८॥

बरछीसे उसकी छाती छिद गयी। इससे उसके मनमें कुछ घबराहट हुई, तथापि उसने समराङ्गणमें प्रद्युम्नको परिघसे पीट दिया। तब बलवान् रुक्मिणीकुमारने यमदण्ड लेकर दैत्यके उस अद्भुत परिघको उसके द्वारा चूर-चूर कर डाला। इतना ही नहीं, वेगपूर्वक चलाये हुए उस यम-दण्डसे सहसा उसके घोड़ोंको, सारथिको और उस दिव्य रथको भी धराशायी कर दिया। नरेश्वर! सारथिके मर जानेपर और घोड़ोंसहित रथ एवं परिघके भी चूर-चूर हो जानेपर उस महादैत्यने रोषपूर्वक खड्ग हाथमें लिया। मैथिल! जैसे गरुड किसी सर्पके दो टुकड़े कर दे, उसी प्रकार महावीर प्रद्युम्नने यमदण्डके द्वारा उसके खड्गके दो टुकड़े कर डाले। इसके बाद श्रीकृष्णकुमारने उसी यमदण्डसे दैत्यके कंधेपर प्रहार किया। उसके आघातसे शकुनिको तत्काल मूर्च्छा आ गयी। तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए प्रद्युम्नने तत्काल दैत्य-सेनाके भीतर प्रवेश किया। जैसे दावानल जंगलको जलाता है, उसी प्रकार वे उस सेनाके बड़े-बड़े वीरोंको धराशायी करने लगे। माधव प्रद्युम्नने उस यमदण्डके द्वारा यमराजकी भाँति हाथियों, घोड़ों, रथों और उन आततायी दैत्योंको मार गिराया। दैत्योंके पैर, मुख, अङ्ग और भुजाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं। वे समस्त दैत्य और दानव कालके गालमें चले गये। भीम-पराक्रमी प्रद्युम्नको यमराजका रूप धारण किये देख कितने ही दैत्य युद्धभूमिसे अपना-अपना स्थान छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ४९—५८॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शकुनि और प्रद्युम्नके युद्धका वर्णन' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

शकुनिके मायामय अस्त्रोंका प्रद्युम्नद्वारा निवारण तथा उनके चलाये हुए श्रीकृष्णास्त्रसे युद्धस्थलमें भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव

नारदजी कहते हैं—महाराज! शकुनिने फिर उठकर जब अपनी सेनाका विनाश हुआ देखा, तब उसने लाख भारके समान भारी धनुष हाथमें लिया। राजन्! उस प्रचण्ड-विक्रमशाली कोदण्डपर तीखा बाण रखकर बलवान् दैत्यराज शकुनिने रणभूमिमें प्रद्युम्नसे कहा॥ १-२॥

शकुनि बोला—राजन्! इस भूतलपर कर्म ही प्रधान है। महान् कर्म ही साक्षात् गुरु तथा सामर्थ्यशाली ईश्वर है। यहाँ कर्मसे ही उच्चता और नीचता प्रकट होती है तथा उस कर्मसे ही विजय और पराजय होती है। जैसे सहस्रों गौओंके बीचमें छोड़ा हुआ बछड़ा सत्पुरुषोंके देखते-देखते अपनी माताको ढूँढ़ लेता है, वैसे ही जिसने भी शुभाशुभ कर्म किया है, उसके द्वारा किया हुआ कर्म सहस्रों मनुष्योंके होनेपर भी उस कर्ताको ही प्राप्त होता है। इसके अनुसार मैं सुदृढ़ कर्म करके उसके द्वारा अपने शत्रुस्वरूप तुमको अवश्य जीत लूँगा। इसके लिये मैंने शपथ खायी है। तुम भी शीघ्र ही इसका प्रतीकार करो, जिससे इस भूमिपर तुम्हारी पराजय न हो॥ ३—५॥

प्रद्युम्नने कहा—दैत्यराज! यदि तुम कर्मको प्रधान मानते हो तो यह भी जान लो कि कालके बिना उसका कोई फल नहीं होता। कर्म करनेपर भी उसके पाक या परिणाममें कभी-कभी विघ्न उपस्थित हो जाता है, अतः श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषोंने सदा काल या समयको ही बलिष्ठ माना है। दैत्यराज! सुनो, कर्मके परिपाकका अवसर आनेपर भी कर्ताके बिना उसका फल कदापि नहीं प्राप्त होता। इसलिये श्रेष्ठ

पुरुष कर्ताको ही प्रधान मानते हैं, कर्म और कालको नहीं। कुछ लोग योग (उपाय) को ही प्रधान मानते हैं; क्योंकि उसके बिना भूतलपर कोई भी कर्म और उसके फलकी सिद्धि नहीं हो सकती। काल, कर्म और कर्ताके रहते हुए भी योगके बिना सब व्यर्थ हो जाता है। योग, कर्म, कर्ता और कालके होते हुए भी विधिज्ञानके बिना सब व्यर्थ हो जाता है, जैसे परिणामके प्रकार आदिका विचार किये बिना फलका यथावत् साधन नहीं होता। योग, कर्म, कर्ता, काल और विधिज्ञानके होनेपर भी ब्रह्म-पुरुषके बिना कुछ भी नहीं होता। इसलिये मैं उन परिपूर्णतम भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ, जिनसे अखिल विश्वका ज्ञान होता है ॥ ६—१० ॥

शकुनि बोला—हे महाबाहु प्रद्युम्न! तुम तो साक्षात् ज्ञानके निधि हो, तुम्हारे दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। जो तुम्हारा सङ्ग पाकर प्रतिदिन तुमसे वार्तालाप करते हैं, उनकी महिमाका वर्णन करनेमें तो चार मुखवाले ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं ॥ ११-१२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर मायावी और बलवान् दैत्यराज शकुनिने मयासुरसे सीखे हुए रौरवास्त्रका संधान किया। राजन्! उस अस्त्रसे बड़े-बड़े नाग, दंदशूक और विषैले बिच्छू करोड़ोंकी संख्यामें निकले। वे सब-के-सब बड़े विकराल और रौद्ररूपधारी थे। उनके द्वारा डसी हुई सारी सेना उनके फुफकारोंसे मतवाली हो गयी। यह देख परम बुद्धिमान् प्रद्युम्नने गरुडास्त्रका संधान किया। उस अस्त्रसे कोटि-कोटि गरुड, नीलकण्ठ, मोर तथा अन्य भयानक पक्षी उस दैत्यके देखते-देखते प्रकट हुए। उन पक्षियोंने उस युद्धमें नागों, दंदशूकों तथा बिच्छुओंको निगल लिया। फिर वे तीखी चोंच और बड़ी पाँखवाले पक्षी क्षणभरमें अदृश्य हो गये ॥ १३—१७ ॥

राजन्! तब उस रणदुर्मद दैत्य शकुनिने भी राक्षसी, गान्धर्वी, गौह्यकी और पैशाची मायाका संधान किया। उन बाणोंसे निकले हुए विकराल और काले रूपवाले करोड़ों भूत और प्रेत वहाँ अङ्गारोंकी वर्षा करने लगे। उस तामसी और पैशाची मायाको जानकर युद्धाभिलाषी श्रीकृष्णकुमार मीनध्वज प्रद्युम्नने सत्त्वास्त्रका संधान किया। राजन्! उस बाणसे करोड़ों विष्णुपार्षद प्रकट हुए, जिन्होंने उस पैशाची मायाको वैसे ही नष्ट कर दिया, जैसे गरुड नागिनको नष्ट कर दे। तब उस मायावी दैत्यने पुनः गौह्यकी मायाका संधान किया, जिससे गर्जन-तर्जन करते हुए करोड़ों भयानक मेघ प्रकट हुए। वे मल, मूत्र, रक्त, मेदा, मज्जा और हड्डीकी वर्षा करने लगे। महाराज! उस गौह्यकी मायाको जानकर भगवान् प्रद्युम्न हरिने उसके विनाशके लिये वाणपर शूकरास्त्रका संधान किया। उस बाणसे घर्घर ध्वनि करनेवाले भगवान् यज्ञवाराहका प्राकट्य हुआ। वे वेगसे अपनी सटाएँ (गर्दनके बाल) हिलाकर तीखी दाढ़से बादलोंको विदीर्ण करते हुए उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे मस्त गजराज बाँसके झुरमुटोंको तोड़ता-फोड़ता शोभा पाता है ॥ १८—२५ ॥

तदनन्तर उस दैत्यने रणमण्डलमें गान्धर्वी माया प्रकट की। युद्ध अदृश्य हो गया और वहाँ सोनेके करोड़ों महल खड़े हो गये। सत्पुरुषोंके देखते-देखते वे स्वर्णमय भवन वस्त्रों और अलंकारोंसे सज गये। वहाँ विद्याधरियाँ और गन्धर्व नाचने-गाने लगे। नरेश्वर! मृदङ्ग, ताल और वाद्योंके मोहक शब्दों तथा रागयुक्त हाव-भाव और कटाक्षोंद्वारा लोगोंको संतुष्ट करती हुई सोलह वर्षकी-सी अवस्थावाली कमलनयनी, मनोमोहिनी, सुन्दरी रमणियाँ वहाँ प्रकट हो गयीं। उनके रूप-लावण्य तथा रागसे जब समस्त वृष्णिवंशी पुरुष मोहित हो गये, तब उस मोहिनी गान्धर्वी मायाको जानकर उसके निवारणके लिये महाबली प्रद्युम्नने रणभूमिमें ज्ञानास्त्रका संधान किया ॥ २६—३० ॥

नृपेश्वर! उस समय ज्ञानोदय होनेपर सबके मोहका नाश हो गया। उस मायाके नष्ट हो जानेपर क्रोधसे भरे हुए मायावी दैत्यराज शकुनिने राक्षसी मायाका संधान किया। राजन्! फिर तो क्षणभरमें सारा आकाश पंखधारी पर्वतोंसे आच्छादित हो गया। पृथ्वीपर घोर अन्धकार छा गया, मानो प्रलयकालमें मेघोंकी घोर घटा घिर आयी हो। आकाशसे चारों ओर जले वृक्ष, प्रस्तर-खण्ड, हड्डियाँ, धड़, रक्त, गदाएँ, परिघ, खड्ग और मुसल आदि बरसने लगे। विदेहराज! पर्वत मेघोंके समान आकाशमें घूमने लगे। हाथियों और घोड़ोंको अपना भक्ष्य बनाते हुए सैकड़ों राक्षस और यातुधान हाथोंमें शूल लिये 'काट डालो, फाड़ डालो' इत्यादि कहते हुए दृष्टिगोचर होने लगे। रणमण्डलमें बहुत-से सिंह, व्याघ्र और वाराह दिखायी देने लगे, जो अपने नखोंद्वारा हाथियोंको विदीर्ण करते हुए उनके शरीरोंको चबा रहे थे। अपनी सेनाको पलायन करती देख महाबली प्रद्युम्नने उस राक्षसी मायाको जीतनेके लिये नरसिंहास्त्रका

संधान किया। इससे साक्षात् रौद्ररूपधारी भगवान् नरसिंह हरि प्रकट हो गये, जिनके अयाल चमक रहे थे, जीभ लपलपा रही थी तथा बड़े-बड़े नख और पूँछ उनकी शोभा बढ़ाते थे। बाल हिल रहे थे, मुँह डरावना दिखायी देता था और वे हुंकारसे अत्यन्त भीषण प्रतीत होते थे। रण-मण्डलमें सिंहनाद करते हुए वे खड़े हो गये। उनके उस सिंहनादसे सात पाताल और सातों लोकोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये, तारे खिसक गये और भूखण्ड-मण्डल काँपने लगा। वे अपने तीखे नखोंसे दैत्योंके देखते-देखते वृक्षोंसहित पर्वतोंको आकाशमें उठाकर उनकी सेनाके बीच भू-पृष्ठपर पटक देते थे। राक्षसोंको पकड़कर बड़े वेगसे फाड़ डालते थे। उन नरहरिने युद्धस्थल-में यातुधानोंको अपने पैरोंसे मसल डाला। सिंहों, व्याघ्रों और वाराहोंको तीखे नखोंसे विदीर्ण करके आकाशमें फेंक दिया। फिर वे भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३१—४३॥

इस प्रकार राक्षसी मायाके नष्ट हो जानेपर रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नने समराङ्गणमें विजयदायक मौलेन्द्र नामक शङ्ख बजाया। उस समय दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिश्रित जय-जय घोष होने लगा। प्रद्युम्नके ऊपर देवतालोग फूल बरसाने लगे। अपनी मायाके नष्ट हो जानेपर दैत्यराज शकुनि रथ और सैनिकोंके साथ वहीं अदृश्य हो गया। इसके बाद उसने मय नामक दैत्यद्वारा सिखायी हुई दैतेयी माया प्रकट की। उस समय बिजलीकी कड़कके साथ हाथीकी सूँड़के समान मोटी जलधाराएँ बरसाते हुए सांवर्तक मेघगण सत्पुरुषों-के देखते-देखते आकाशमें छा गये। एक ही क्षणमें सारे समुद्र प्रचण्ड आँधीसे कम्पित और क्षुभित हो परस्पर टकराते हुए अपने भँवरोंसे समस्त भूमण्डलको आप्लावित करने लगे। उसमें यादवोंके आत्मीय जनोंसहित सारे वृक्ष डूब गये। यह देख समस्त यादव बहुत भयभीत हो गये तथा राम-कृष्णके नामोंका कीर्तन करते हुए अपना सारा पराक्रम भूल गये। राजेन्द्र! एक ही क्षणमें वे सब लोग चुपचाप पराजित हो गये। तब महाबाहु प्रद्युम्नने प्रचण्ड पराक्रमके आश्रयभूत कोदण्डपर बाण रखकर उनके ऊपर सहसा श्रीकृष्णास्त्रका संधान किया॥ ४४—५१॥

मिथिलेश्वर! उस समय वहाँ कुशस्थली पुरीके प्रातःकालीन करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् उत्कृष्ट तेजःपुञ्ज स्वयं इस प्रकार प्रकट हुआ, मानो वह अपने अभीष्ट अर्थका मूर्तिमान् रूप हो। वह तेज दसों दिशाओंका अनुरञ्जन कर रहा था। उस परम तेजके भीतर नूतन जलधरके समान श्याम छविसे सुशोभित, सुवर्णमय कमलकी रेणुके सदृश पीत वसनसे समलंकृत, भ्रमरोंके गुञ्जारवसे निनादित, कुन्तल-राशिधारी, वैजयन्तीमाला पहने, श्रीवत्सचिह्न एवं उत्तम कौस्तुभरत्नसे सुशोभित वक्षवाले, प्रफुल्ल पङ्कजके तुल्य विशाललोचन, चार भुजाधारी श्रीकृष्ण दृष्टिगोचर हुए। उनके मस्तकपर सुन्दर किरीट, कण्ठमें मनोहर हार तथा चरणोंमें नवल नूपुर शोभा दे रहे थे। कानोंमें नूतन सूर्यकी-सी कान्तिवाले सोनेके कुण्डल झलमला रहे थे॥ ५२—५४॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको देखकर यदुवंशी अत्यन्त हर्षसे खिल उठे। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर उन परमेश्वरको प्रणाम किया। मिथिलेश्वर! उस समय देवता-लोग सब ओरसे फूल बरसाकर जोर-जोरसे जय-जयकार करने लगे। तत्काल आये हुए शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए एक ही बाणसे लीलापूर्वक शकुनिके प्रत्यञ्चासहित कोदण्डको रोषपूर्वक खण्डित कर दिया। धनुष कट जानेपर तिरस्कृत हुआ शकुनि युद्ध छोड़कर अपने अस्त्र-शस्त्रोंका समूह ले आनेके लिये चन्द्रावतीपुरीको चला गया॥ ५५—५७॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णका आगमन' नामक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

शकुनिके जीवस्वरूप शुकका निधन

नारदजी कहते हैं—राजन्! शकुनिके चले जानेपर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने प्रद्युम्न आदि समस्त यादवोंको बुलाकर इस प्रकार कहा॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—पूर्वकालमें सुमेरु पर्वतके उत्तर-भागमें इस शकुनि नामक दैत्यने चार युगोंतक निराहार रहकर तपस्याद्वारा भगवान् शिवको संतुष्ट किया। चार युग

व्यतीत हो जानेपर साक्षात् महेश्वरदेवने प्रकट होकर दर्शन दिया और कहा—'वर माँगो।' दैत्य शकुनिने उनको प्रणाम किया। उसका रोम-रोम खिल उठा और नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये। उसने दोनों हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें धीरेसे कहा—'प्रभो! यदि मैं मरूँ तो भूतलका स्पर्श होते ही फिर जी जाऊँ और आकाशमें भी हे देव! दो घड़ीतक मेरी मृत्यु न हो।' दैत्यके इस प्रकार कहनेपर भगवान् हरने उसे दोनों वर दे दिये और पिंजरेमें रक्खे हुए एक तोतेको देकर उस नतमस्तक दैत्यसे कहा—'निष्पाप दैत्य! यह तोता तुम्हारे जीवके तुल्य है। तुम इसकी सदा रक्षा करना। असुर! इसके मर जानेपर तुम्हें यह जानना चाहिये कि मेरी ही मृत्यु हो गयी है।' उसे इस प्रकार वर देकर रुद्रदेव अन्तर्धान हो गये। इसलिये दुर्गमें तोतेकी मृत्यु हो जानेपर शकुनिका वध होगा ॥ २-८ ॥

नारदजी कहते हैं—यह कहकर वीरोंकी उस सभामें भगवान् देवकीनन्दनने गरुडको शीघ्र बुलाकर हँसते हुए मुखसे कहा ॥ ९ ॥

श्रीभगवान् बोले—परम बुद्धिमान् गरुड! मेरी बात सुनो, तुम चन्द्रावतीपुरीको जाओ। वह पुरी सौ योजन विस्तृत है और दैत्योंकी सेनासे घिरी हुई है। सुवर्ण और रत्नोंसे मनोहर प्रतीत होनेवाले गगनचुम्बी महलों तथा विचित्र उपवनों एवं उद्यानोंसे सुशोभित है। बड़े-बड़े दैत्य उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उसके प्रत्येक दुर्गमें और दरवाजोंपर दैत्यपुंगव उसकी रक्षा करते हैं (उस पुरीमें जाकर तुम शकुनिके महलके भीतर पिंजरेमें सुरक्षित तोतेको मार डालो) ॥ १०-११½ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! उस पुरीको देखनेके लिये गरुडने सूक्ष्म रूप धारण कर लिया। वे दैत्योंसे अलक्षित रहकर, अट्टालिकाओं तथा तोलिकाओंका निरीक्षण करते हुए, उड़-उड़कर एक महलसे दूसरे महलमें होते हुए शकुनिके भवनमें आ पहुँचे। दैत्यके जीवस्वरूप शुककी खोज करते हुए गरुडजी क्षणभर वहाँ खड़े रहे। उस समय दैत्यराज शकुनि वहाँ युद्धके लिये कवच धारण किये भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र ले रहा था। उस वीरका हृदय क्रोधसे भरा हुआ था। राजन्! उसकी स्त्री मदालसा उसकी कमरमें दोनों हाथ डालकर बोली ॥ १२-१५ ॥

मदालसाने कहा—राजन्! प्राणनाथ! तुम्हारे सारे सुहृद्, अनुकूल चलनेवाले भाई तथा उद्भट दैत्यप्रवर युद्धमें मारे गये। यादवोंके साथ युद्ध करनेके लिये न जाओ; क्योंकि उनके पक्षमें साक्षात् भगवान् श्रीहरि आ गये हैं। उन्हें तत्काल भेंट अर्पित करो, जिससे कल्याणकी प्राप्ति हो ॥ १६-१७ ॥

शकुनि बोला—प्रिये! यादवोंने बलपूर्वक मेरे भाइयोंका वध किया है, अतः मैं अपनी सेनाओंद्वारा उन्हें अवश्य मारूँगा। भगवान् शिवके वरदानसे भूतलपर मेरी मृत्यु नहीं होगी। प्रिये! चन्द्रनामक उपद्वीपमें सुन्दर पतंग पर्वतपर इस समय मेरा जीवरूपी शुक विद्यमान है। शङ्खचूड नामक सर्प दिन-रात उसकी रक्षा करता है। इस बातको कोई नहीं जानता। फिर मेरी मृत्यु कैसे हो सकती है ॥ १८-२० ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! शुकविषयक वृत्तान्त सुनकर दिव्यवाहन गरुडने वहाँसे चन्द्रनामक उपद्वीपमें जानेका विचार किया। वेगसे उड़ते हुए गरुड समुद्रके तटपर जा पहुँचे और चन्द्रद्वीपकी खोज करते हुए आकाशमें विचरने लगे। शतयोजन विस्तृत एवं भयंकर गर्जना करनेवाले समुद्रपर दृष्टिपात करते हुए पक्षिराज गरुड लतावृन्दसे मनोरम सिंहलद्वीपमें पहुँच गये। वहाँके लोगोंसे गरुडने पूछा—'इस स्थानका क्या नाम है?' उत्तर मिला—'सिंहलद्वीप।' तब वहाँसे उड़ते हुए गरुड बड़े वेगसे त्रिकूट-पर्वतके शिखरपर बसी हुई लङ्कामें जा पहुँचे। लङ्का जाकर वहाँसे भी उड़े और पाञ्चजन्यद्वीपमें चले गये। पाञ्चजन्य-सागरके निकट पहुँचनेपर बलवान् पक्षिराज गरुडको बड़ी भूख लगी। इन्होंने हठात् तीखी चोंचद्वारा बहुत-से मत्स्य पकड़ लिये। उन्हीं मत्स्योंमें एक बड़ा भारी मगर भी आ गया, जो दो योजन लंबा था। उसने गरुडका एक पैर पकड़ लिया और पानीके भीतर खींचने लगा। गरुड अपना बल लगाकर उसे किनारेकी ओर खींचने लगे। राजन्! उस समय दो घड़ीतक उन दोनोंमें खींचातानी चलती रही। गरुडका वेग बड़ा प्रचण्ड था। उन्होंने अपनी तीखी चोंचसे उस मगरकी पीठपर इस प्रकार चोट की, मानो यमराजने यमदण्डसे प्रहार किया हो। उसी समय वह मगरका रूप छोड़कर तत्काल एक महान् विद्याधर हो गया। उसने साक्षात् गरुडको मस्तक झुकाया और हँसते हुए कहा ॥ २१-३० ॥

विद्याधर बोला—मैं पूर्वकालमें हेमकुण्डल नामक प्रसिद्ध विद्याधर था। एक दिन देवमण्डलमें सम्मिलित हो मैं आकाशगङ्गामें स्नान करनेके लिये गया। वहाँ मुनिश्रेष्ठ ककुत्स्थ पहलेसे स्नान कर रहे थे। हँसी-हँसीमें उनका पैर पकड़कर मैं उन्हें जलके भीतर खींच ले गया। तब ककुत्स्थने मुझे शाप देते हुए कहा—'दुर्बुद्धे! तू मगर हो जा।' तब मैंने उन्हें अनुनय-विनयसे प्रसन्न किया। वे शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और वर देते हुए बोले—'गरुडकी चोंचका प्रहार होनेपर तुम मगरकी योनिसे छूट जाओगे।' प्रभो! आज आपकी कृपासे मैं ककुत्स्थ मुनिके शापसे छुटकारा पा गया॥ ३१—३४॥

नारदजी कहते हैं—यों कहकर जब हेमकुण्डल नामक विद्याधर स्वर्गलोकको चला गया, तब गरुड दोनों पाँखोंसे उड़कर वहाँसे व्योममण्डलमें पहुँच गये। वहाँसे वेगपूर्वक उड़ते हुए वे हरिण नामक उपद्वीपमें गये। वहाँ अपान्तरतमा नामक मुनि बड़ी भारी तपस्या करते थे। उनके आश्रममें जानेपर पक्षिराज गरुडकी एक पाँख टूटकर गिर गयी। उसे देखकर अपान्तरतमा नामक मुनि गरुडसे बोले—'पक्षिन्! मेरे मस्तकपर अपनी पाँख रखकर तुम सुखपूर्वक चले जाओ।' तब गरुड उनके मस्तकपर पाँख रखकर आगे बढ़ गये। अपने ही समान अनेकानेक चन्द्रोपम पंख गरुडने उनके सिरपर देखे। इससे उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। तब अपान्तरतमा मुनि गरुडसे बोले—'पक्षिराज! जब-जब श्रीकृष्णका अवतार होता है, तब-तब सदा गरुडकी एक पाँख यहाँ गिरती है। कल्प-कल्पमें श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार होता है और तब-तब मेरे मस्तकपर गरुडका पंख गिरता है। इस प्रकार यहाँ अनन्त पंख पड़े हैं। जो सबके आदि-अन्त बताये जाते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ' ॥३५—४१॥

नारदजी कहते हैं—यह सुनकर गरुड आश्चर्यचकित हो उठे। उन्होंने उन मुनिवरको प्रणाम करके फिर अपनी उड़ान भरी और आकाशमण्डलमें होते हुए वे रमणकद्वीपमें चले गये। वहाँ सर्पोंसे बलि लेकर वे आवर्तकद्वीपमें गये और वहाँके सुधाकुण्डमें सुधाका पान करके बलवान् पक्षिराज शुकद्वीपमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने मुझसे चन्द्रद्वीपका पता पूछा। फिर मेरे कहनेसे पक्षी गरुड उत्तर दिशाकी ओर गये। इस तरह वे खगेश्वर चन्द्रद्वीपके पर्वतपर जा पहुँचे। वहाँ विनतानन्दनने जलदुर्ग और अग्निदुर्ग देखा। मिथिलेश्वर! बलवान् पक्षिराजने सारे जलदुर्गको अपनी चोंचमें लेकर उसीसे अग्निदुर्गको बुझा दिया। वहाँ पर्वतीय कन्दराके द्वारपर जो लाखों दैत्य सोये थे, वे उठ खड़े हुए। उनके साथ दो घड़ीतक गरुडका युद्ध चलता रहा। पक्षिराजने युद्धमें अपने पंजोंसे कितने ही राक्षसोंको विदीर्ण कर डाला, किन्हींको पाँखोंसे मारकर धराशायी कर दिया। कुछ दैत्योंको चोंचसे पकड़कर बलवान् पक्षिराजने पर्वतके पृष्ठभागपर पटक दिया और फिर उठाकर बलपूर्वक आकाशमें फेंक दिया। कुछ मर गये और शेष दैत्य दसों दिशाओंमें भाग गये। इस तरह दैत्योंका संहार करके पक्षिराज गुफामें घुस गये॥ ४२—५०॥

वहाँ शङ्खचूड़ नामक सर्पके मस्तकपर उन्होंने अपने चमकीले पैरसे आघात किया। शङ्खचूड़ गरुडको देखकर अत्यन्त तिरस्कृत हो पिंजरेके तोतेको पानीमें फेंककर शीघ्र ही वहाँसे पलायन कर गया। राजन्! गरुडने पिंजरेसहित शुकको तत्काल अपनी चोंचमें लेकर आकाशमें उड़ते हुए युद्धस्थलमें जानेका विचार किया। तबतक भागे हुए दैत्योंका महान् कोलाहल आरम्भ हुआ। नरेश्वर! 'तोता ले गया, तोता ले गया'—इस प्रकार चिल्लाते हुए उन असुरोंकी आवाज आकाशमें और सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गयी और दैत्यकी सेनाओंके लोगोंने भी इस बातको सुना॥ ५१—५४॥

स्वर्ग, भूतल एवं समस्त ब्रह्माण्डमें 'तोता ले गया, तोता ले गया'की आवाज गूँज उठी। उसे सुनकर असुरोंसहित शकुनि सशङ्क हो गया। वह शूल लेकर तत्काल चन्द्रावतीपुरीसे उठा और 'गरुड तोतेको ले गये हैं'—यह सुनकर रोषपूर्वक उनका पीछा करने लगा। उसने गरुडको अपने शूलसे मारा, तो भी उन्होंने मुखसे तोतेको नहीं छोड़ा। वे सातों समुद्र और सातों द्वीपोंका निरीक्षण करते हुए आगे बढ़ते गये। दैत्यराज शकुनिने प्रत्येक दिशामें और आकाशके भीतर भी उनका पीछा किया। राजन्! नागान्तक गरुड आकाशमें भ्रमण करते हुए कोटि योजनतक चले गये। दैत्यके त्रिशूलकी मारसे वे क्षत-विक्षत हो गये, तथापि मुखसे तोतेको छोड़ नहीं सके॥ ५५—५८½॥

राजन्! लाख योजन ऊँचे आकाशमें जानेपर पिंजरेसहित शुक पत्थरकी भाँति सुमेरुपर्वतके शिखरपर बड़े

गरुड़द्वारा फेंके हुए पिंजरस्थ शुककी मृत्यु | शकुनिपत्नी मदालसा अपने पुत्रसहित भगवान्‌की शरणमें

(विश्वजित् अ० ४७-४२)

वेगसे गिरा । पिंजड़ा टूट गया और तोतेके प्राण-पखेरू उड़ गये । तदनन्तर गरुड़ उस महायुद्धमें श्रीकृष्णके पास चले गये । राजन् ! दैत्य शकुनि खिन्न-चित्त हो चन्द्रावती-पुरीमें लौट गया ॥ ५९–६१ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'गरुडका आगमन' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

शकुनिका घोर युद्ध; सात बार मारे जानेपर भी उसका भूमिके स्पर्शसे पुनः जी उठना; अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा युक्तिपूर्वक उसका वध

नारदजी कहते हैं—राजन् ! शेष दैत्योंको लेकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये बलवान् वीर शकुनि, दिव्य मनोहर अश्व उच्चैःश्रवापर आरूढ़ हो, क्रोधसे अचेत-सा होकर, धनुषकी टंकार करता हुआ भगवान् श्रीकृष्णके भी सम्मुख युद्ध करनेके लिये आ गया ॥ १-२ ॥

रणदुर्मद दैत्य शकुनि तथा उसकी सेनाका पुनः आगमन देख समस्त वृष्णिवंशियोंने अपने-अपने आयुध उठा लिये । उस समय दैत्योंका यादवोंके साथ घोर युद्ध हुआ । वीरोंके साथ वीर इस तरह जूझने लगे, जैसे सिंहोंके साथ सिंह लड़ रहे हों । राजन् ! मेघकी गर्जनाके समान बारंबार कोदण्डकी टंकार करता हुआ शकुनि सबके आगे था । उसने नाराचोंद्वारा दुर्दिन उपस्थित कर दिया । बाणोंका अन्धकार छा जानेपर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् गरुडध्वज अपने उस धनुषसे उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे इन्द्रधनुषसे मेघकी शोभा होती है । साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अपने एक ही बाणसे लीलापूर्वक असुर शकुनिके बाण-समूहोंको काट डाला ॥ ३–७ ॥

मिथिलेश्वर ! युद्धमें अपने कोदण्डको कानतक खींचकर शकुनिने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयमें दस बाण मारे । तब प्रलय-समुद्रके महान् आवर्तोंके भीषण संघर्षके समान गम्भीर नाद करनेवाली शकुनिके धनुषकी प्रत्यञ्चाको श्रीकृष्णने दस बाणोंसे काट डाला । नरेश्वर ! मायावी दैत्य शकुनि सबके देखते-देखते सौ रूप धारण करके श्रीहरिके साथ युद्ध करने लगा । तब साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण एक सहस्र रूप धारण करके उस दैत्यके साथ युद्ध करने लगे, यह अद्भुत सी बात हुई । बलवान् दैत्यराज शकुनिने मयासुरके बनाये हुए अग्नितुल्य तेजस्वी त्रिशूलको घुमाकर उसे श्रीहरिके ऊपर चला दिया । तब कुपित हुए परिपूर्णतम महाबाहु श्रीहरिने उस त्रिशूलको वैसे ही काट दिया, जैसे तीखी चोंचवाला गरुड किसी सर्पको टूक-टूक कर डाले ॥ ८–१३ ॥

तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए महाबाहु श्रीहरिने शकुनिके मस्तकपर अपनी गदा चलायी तथा उस वज्रतुल्य गदाकी चोटसे उस दैत्यको घोड़ेसे नीचे गिरा दिया । गदाकी चोटसे पीड़ित हुआ दैत्य क्षणभरके लिये मूर्छित हो गया । फिर युद्धस्थलमें अपनी गदा लेकर वह माधवके साथ युद्ध करने लगा ॥ १४-१५ ॥

उस समय रणमण्डलमें गदाओंद्वारा उन दोनोंके बीच घोर युद्ध हुआ । गदाओंके टकरानेका चट-चट शब्द वज्रके टकरानेकी भाँति सुनायी पड़ता था । श्रीकृष्णकी गदासे चूर-चूर होकर शकुनिकी गदा पृथ्वीपर गिर पड़ी । वह युद्धमें सबके देखते देखते अङ्गारकी भाँति दहकने लगी । जैसे पर्वतकी कन्दरामें दो सिंह लड़ते हों, जैसे वनमें दो मतवाले हाथी जूझते हों, उसी प्रकार समराङ्गणमें वे दोनों—श्रीकृष्ण और शकुनि परस्पर युद्ध करने लगे । शकुनिने श्रीकृष्णको सौ योजन पीछे कर दिया और श्रीकृष्णने उसे भूतलपर सहस्र योजन पीछे ढकेल दिया । तब त्रिभुवननाथ श्रीहरिने उसे दोनों भुजाओंमें पकड़कर आँधीके धक्केसे जमीनपर वैसे ही पटक दिया, जैसे किसी बालकने कमण्डलु फेंक दिया हो । इससे उस दैत्यको कुछ व्यथा हुई । फिर उस युद्ध-दुर्मद दुराचारी शकुनिने जारुधि पर्वतको पकड़कर उसे श्रीकृष्णपर चला दिया । पर्वतको अपने ऊपर आता देख कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने पुनः उसे उसीकी ओर लौटा दिया । इस प्रकार जय-शब्दका उच्चारण करते हुए वे दोनों एक-दूसरेपर उसी पर्वतके द्वारा प्रहार करते

रहे। राजन्! उस पर्वतके आघातसे उन दोनोंने चन्द्रावती-पुरीको भी चूर्ण कर दिया ॥ १६–२२½ ॥

उस समय दैत्य शकुनिने अत्यन्त कुपित हो ढाल-तलवार उठा ली और महात्मा श्रीकृष्णके सामने वह युद्धके लिये आ गया। तब भगवान् शार्ङ्गधरने अपना शार्ङ्गधनुष लेकर उसके ऊपर सहसा अर्धचन्द्रमुख बाणका संधान किया, जो युद्धस्थलमें ग्रीष्मऋतुके सूर्यके समान उद्भासित हो उठा। शार्ङ्गधनुषसे छूटा हुआ वह दिव्य बाण दिङ्मण्डलको विद्योतित करता हुआ शकुनिका मस्तक काटकर भूमिका भेदन करके तललोकमें चला गया। उस समय दैत्य शकुनि प्राणशून्य होकर युद्ध-स्थलमें गिर पड़ा। मिथिलेश्वर! भूमिका स्पर्श होते ही वह क्षणभरमें पुनः जीवित हो उठा। अपने कटे हुए मस्तकको अपने ही हाथसे धड़पर रखकर वह युद्ध करनेके लिये पुनः उठ खड़ा हुआ, वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ २३–२७½ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णके हाथसे सात बार मारे जानेपर भी वह महान् असुर भूमिके स्पर्शसे जी उठा तथा राहुकी भाँति फिर उठ खड़ा हुआ। अब वह अकेले ही यादव-कुलका संहार करनेके लिये उद्यत हुआ। वनमें दावानलकी भाँति उस शक्तिशाली महादैत्यने तत्काल यादव-सेनामें प्रवेश किया। उसने घोड़ों और अस्त्र-शस्त्रोंसहित महावीर घुड़सवारोंको तथा मदमत्त हाथियोंको भुजाओंसे पकड़कर आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया। किन्हीं हाथियोंका सूँड़, किन्हींके दोनों कंधे तथा किन्हींके दोनों कक्ष पकड़कर फेंकता हुआ वह दैत्य कालाग्नि रुद्रके समान जान पड़ता था ॥ २८–३१½ ॥

उस दैत्यके दोनों पैरों और हाथोंने उस महासमरमें जब भारी आतङ्क उत्पन्न कर दिया और महात्मा श्रीकृष्णकी सेनामें जोरसे हाहाकार होने लगा, तब विश्वरक्षक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने साधुपुरुषोंकी रक्षाके लिये अपने अस्त्र सुदर्शनचक्रका प्रयोग किया। उनके हाथसे छूटा हुआ तीखा सुदर्शनचक्र प्रलयकालके कोटि सूर्योंकी दीप्तिमती प्रभासे प्रज्वलित हो उठा। उसने उस महायुद्धमें शकुनिके सुदृढ़ मस्तकको उसी तरह काट लिया, जैसे वज्रने वृत्रासुरका मस्तक काटा था। तबतक भगवान् श्रीकृष्णने महासमरमें मरे हुए शकुनिको बलपूर्वक आकाशमें फेंक दिया। फिर श्रीपतिने यादवोंसे कहा—'तुमलोग इसके शरीरको बाणोंसे ऊपर-ही-ऊपर फेंकते रहो' ॥ ३२–३५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! श्रीहरिकी ऐसी बात सुनकर समस्त यादवश्रेष्ठ वीर आकाशसे गिरते हुए उस दैत्यको चमकीले बाणोंसे ताड़ित करने लगे। राजन्! दीप्तिमान्के बाणोंसे आहत हो वह दैत्य लोगोंके देखते-देखते गेंदकी भाँति सौ योजन ऊपर चला गया। फिर साम्बके बाणका धक्का पाकर वह एक सहस्र योजन ऊपर चला गया। जब वह पुनः आकाशसे नीचे गिरने लगा, तब अर्जुनने अपने बाणसे उसपर चोट की। उस बाणसे वह दैत्यराज दस हजार योजन ऊपर चला गया। तदनन्तर जब वह नीचे आने लगा, तब अनिरुद्धके बाणने उसे लाख योजन ऊपर उछाल दिया। इसके बाद प्रद्युम्नके बाणसे वह दस लाख योजन ऊपर उठ गया। तत्पश्चात् उसे पुनः आकाशसे नीचे गिरते देख योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने उसपर बाण मारा, जिससे वह कोटि योजन ऊपर चला गया। इस प्रकार दो पहरतक वह दैत्य आकाशमें ही स्थित रह गया, उसे नीचे नहीं गिरने दिया ॥ ३६–४१ ॥

तदनन्तर साक्षात् श्रीहरिने उसके ऊपर दूसरा बाण मारा। उस बाणने सम्पूर्ण दिशाओंमें उसको कोटि योजनतक घुमाकर समुद्रमें वैसे ही ला पटका, जैसे हवाने कमलके फूलको उड़ाकर नीचे डाल दिया हो। राजन्! इस प्रकार जब उस दैत्यकी मृत्यु हो गयी, तब उसके शरीरसे एक प्रकाशमान ज्योति निकली और वह चारों ओरसे परिक्रमा देकर भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हो गयी। उस समय भूतल और आकाशमें जय-जयकार होने लगी। विद्याधरियाँ और गन्धर्वकन्याएँ आनन्दमग्न हो आकाशमें नृत्य करने लगीं, किंनर और गन्धर्व यश गाने लगे तथा सिद्ध और चारण स्तुति सुनाने लगे। समस्त ऋषियों और मुनियोंने श्रीहरिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और सूर्य आदि सब देवता वहाँ आ गये और श्रीकृष्णके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४२–४७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शकुनि दैत्यका वध' नामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका यादवोंके साथ चन्द्रावतीपुरीमें आकर शकुनि-पुत्रको वहाँका राज्य देना तथा शकुनि आदिके पूर्व जन्मोंका परिचय

नारदजी कहते हैं—राजन् ! बचे हुए दैत्य रणभूमिसे भाग गये । यादवेन्द्र भगवान् श्रीहरि वीणा, वेणु, मृदङ्ग और दुन्दुभि आदि बाजे बजवाते और सूत, मागध एवं वन्दीजनोंके मुखसे अपने यशका गान सुनते हुए, पुत्रों तथा अन्य यादवोंके साथ सेनासे घिरकर शङ्ख, चक्र, गदा, कमल और शार्ङ्गधनुषसे सुशोभित हो, देवताओंसहित चन्द्रावतीपुरीमें आये । वहाँ अपने पतिके मारे जानेके कारण रानी मदालसा शकुनिके पुत्रको गोदमें लिये दुःखसे आतुर हो अत्यन्त करुणाजनक विलाप कर रही थी । उसके मुखपर अश्रुधारा बह रही थी और वह अत्यन्त दीन हो गयी थी । उसने तुरंत ही हाथ जोड़कर अपने बच्चेको श्रीकृष्णके चरणोंमें डाल दिया और भगवान्‌को नमस्कार करके कहा ॥ १—५ ॥

मदालसा बोली—प्रभो ! आदिदेव ! आप भूतलका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं । आप ही संसारके स्रष्टा हैं और प्रलयकाल आनेपर आप ही इसका संहार करेंगे; किंतु कभी आप गुणोंसे लिप्त नहीं होते । मैं आपकी अनुकूलता प्राप्त करनेके लिये आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ । मेरा बेटा बहुत डरा हुआ है । आप इसकी रक्षा कीजिये । देव ! इसके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखिये । देवेश ! जगन्निवास ! मेरे पतिने आपका जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये ॥ ६-७ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! मदालसाके यों कहनेपर महामति भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके मस्तकपर अपने दोनों हाथ रखकर चन्द्रावतीका सारा राज्य उसे दे दिया । फिर कल्पपर्यन्तकी लंबी आयु देकर वैराग्यपूर्ण ज्ञान एवं अपनी भक्ति प्रदान की । तदनन्तर उस शकुनिकुमारको श्रीकृष्णने अपने गलेकी सुन्दर माला उतारकर दे दी । शकुनिने पहले युद्धमें इन्द्रसे जो उच्चैःश्रवा घोड़ा, चिन्तामणि रत्न, कामधेनु और कल्पवृक्ष छीन लिये थे, वे सब श्रीजनार्दनने प्रयत्नपूर्वक देवेन्द्रको लौटा दिये; क्योंकि भगवान् स्वयं ही गौओं, ब्राह्मणों, देवताओं, साधुओं तथा वेदोंके प्रतिपालक हैं ॥ ८—११ ॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे ! पूर्वकालमें वे महाबली शकुनि आदि दैत्य कौन थे और कैसे इन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई ? इस बातको लेकर मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है ॥ १२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! पूर्वकालके ब्रह्मकल्पकी बात है, परावसु गन्धर्वोंका राजा था । उसके बड़े सुन्दर नौ औरस पुत्र हुए । वे सभी कामदेवके समान रूप-सौन्दर्यशाली, दिव्य भूषणोंसे विभूषित और गीत-वाद्य-विशारद थे तथा प्रतिदिन ब्रह्मलोकमें गान किया करते थे । उनके नाम थे—मन्दार, मन्दर, मन्द, मन्दहास, महाबल, सुदेव, सुघन, तोष और श्रीभानु । एक समय ब्रह्माजीने अपनी पुत्री वाग्देवता सरस्वतीको मोहपूर्वक देखा । विधाताके इस व्यवहारको लक्ष्य करके परावसुके पुत्र मन-ही-मन हँसने लगे । सुरश्रेष्ठ ब्रह्माके प्रति अपराध करनेके कारण उन्हें तामसी योनिमें जाना पड़ा । श्वेतवाराहकल्प आनेपर वे नवों गन्धर्व हिरण्याक्षकी पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए । उस समय उनके नाम इस प्रकार हुए—शकुनि, शम्बर, दृष्ट, भूत-संतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु तथा उत्कच । एक दिनकी बात है, अपने घरपर आये हुए अपान्तरतमा मुनिको नमस्कार करके उनकी विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् उन सबने आदरपूर्वक इस प्रकार पूछा ॥ १३—१९ ॥

दैत्य बोले—ब्रह्मन् ! सुनिये । आप अपने मुँहसे कहते हैं कि कैवल्यके स्वामी साक्षात् भगवान् श्रीहरि हैं, वे भक्तवत्सल भगवान् भक्तोंको मोक्ष प्रदान करते हैं; परंतु हमलोग आसुरी-योनिमें पड़कर सदा कुसङ्गमें तत्पर रहनेवाले और दुष्ट हैं, हमने कभी भगवान्‌की भक्ति नहीं की । अतः इस जन्ममें हमारा मोक्ष कैसे होगा ? ब्रह्मन् ! हमें परम कल्याणका उपाय बताइये; क्योंकि प्रभो ! आप दीनजनोंके कल्याणके लिये ही जगत्‌में विचरते रहते हैं ॥ २०—२२ ॥

अपान्तरतमाने कहा—दैत्यकुमारो ! गुण पृथक्-पृथक् नहीं रहते, वे सब मिले-जुले होते हैं । अथवा जिसके जो गुण हैं, वे उससे विलग नहीं होते । अतः उन्हीं गुणोंके द्वारा जो गुणातीत मोक्षदायक परमात्मा श्रीहरिका भजन करते रहे हैं, वे दैत्य उन परमात्माको प्राप्त हो चुके हैं ।

वैवाहिक सम्बन्ध, सौहार्द, स्नेह, भय, क्रोध तथा स्मय (अभिमान)—इन भावों या गुणोंको सदा श्रीकृष्णके प्रति प्रयुक्त करके वे दैत्यगण उन्हींमें लीन हो गये। उदाहरणतः भगवान् पृश्निगर्भके साथ एकता (एक कुल, कुटुम्ब या गोत्र) का सम्बन्ध माननेके कारण प्रजापतिगण मुक्त हो गये। भगवान्के प्रति सौहार्द स्थापित करनेसे कयाधूपुत्र प्रह्लादने भगवान्को पा लिया। श्रीहरिके प्रति स्नेहसे सुतपा मुनि, भयसे हिरण्यकशिपु, क्रोधसे तुम्हारे पिता हिरण्याक्ष तथा स्मय (अभिमान) से श्रुतियोंने योगीजनोंके लिये भी परम दुर्लभ पदको प्राप्त कर लिया। जिस किसी भावसे सम्भव हो, श्रीकृष्णमें मनको लगाये। ये देवताओंके भक्तियोगके द्वारा ही भगवान्में मन लगाकर उनका धाम प्राप्त करते हैं॥ २३—२७॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर अपान्तरतमा मुनि अन्तर्धान हो गये। तबसे शकुनि आदिने परिपूर्णतम श्रीहरिमें वैरभाव स्थापित किया। उन्होंने वैरभावसे ही परमेश्वर श्रीकृष्णको पा लिया। राजेन्द्र! इसमें कोई आश्चर्य न मानो। जैसे कीड़ा भ्रमरका चिन्तन करनेसे तद्रूप हो जाता है, उसी प्रकार भगवच्चिन्तन करनेवाला जीव भगवान्का सारूप्य प्राप्त कर लेता है॥ २८-२९॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शकुनि-पुत्रपर कृपा' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

इलावृतवर्षमें राजा शोभनसे भेंटकी प्राप्ति; स्वायम्भुव मनुकी तपोभूमिमें मूर्तिमती सिद्धियोंका निवास; लीलावतीपुरीमें अग्निदेवसे उपायनकी उपलब्धि; वेदनगरमें मूर्तिमान् वेद, राग, ताल, स्वर, ग्राम और नृत्यके भेदोंका वर्णन

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार भद्राश्ववर्षपर विजय पाकर श्रीयादवेश्वर हरि यादव-सैनिकोंके साथ इलावृतवर्षको गये॥ १॥

मिथिलेश्वर! इलावृतवर्षमें ही रत्नमय शिखरोंसे सुशोभित, देवताओंका निवासस्थान, दीप्तिमान् स्वर्णमय पर्वत गिरिराजाधिराज 'सुमेरु' है, जो भूमण्डलरूपी कमलकी कर्णिकाके समान शोभा पाता है। उसके चारों ओर मन्दर, मेरु-मन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद—ये चार पर्वत शोभा पाते हैं। इन चारोंसे घिरा हुआ वह एक गिरिराज सुमेरु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पदार्थोंसे युक्त मनोरथकी भाँति शोभा पाता है॥ २-३॥

उस इलावृतवर्षमें जम्बूफलके रससे उत्पन्न होनेवाला जाम्बूनद नामक स्वतःसिद्ध स्वर्ण उपलब्ध होता है। वहाँ जम्बूरससे 'अरुणोदा' नामकी नदी प्रकट हुई है, जिसका जल पीनेसे इस भूतलपर कोई रोग नहीं होता। राजन्! वहाँ कदम्बवृक्षसे उत्पन्न 'कादम्ब' नामक मधुकी पाँच धाराएँ प्रवाहित होती हैं, जिनके पीनेसे मनुष्योंको कभी सर्दी-गर्मी, विवर्णता (कान्तिका फीका पड़ना), थकावट तथा दुर्गन्ध आदि दोष नहीं प्राप्त होते। उन मधु-धाराओंसे कामपूरक नद प्रकट हुए हैं, जो मनुष्योंकी इच्छाके अनुसार रत्न, अन्न, वस्त्र, सुन्दर आभूषण, शय्या तथा आसन आदि जो-जो दिव्य फल हैं, उन सबको अर्पित करते हैं। इसी प्रकार वहाँ सुप्रसिद्ध 'कार्ष्णवन' है, जहाँ भगवान् संकर्षण विराजते हैं, जिस वनमें भगवान् शिव स्वतः अपनी प्रेयसी ज्योतियोंके साथ रमण करते हैं तथा जिसमें गये हुए पुरुष तत्काल स्त्रीरूपमें परिणत हो जाते हैं। स्वर्णमय कमल, शीतल वसन्त वायु, केसरके वृक्ष, लवङ्ग-लताओंके समूह तथा देववृक्षोंकी सुगन्धके सेवनसे मदान्ध भ्रमर—ये सब इलावृतवर्षकी अत्यन्त शोभा बढ़ाते हैं। वैदूर्यमणिके अङ्कुरोंसे विचित्र लगनेवाली वहाँकी मनोहर स्वर्णमयी भूमिको देखते हुए भगवान् श्रीहरिने अलंकारमण्डित देवताओंसे पूर्ण इलावृतवर्षको जीतकर वहाँसे भेंट ग्रहण की॥ ४—९॥

पूर्वकालके सत्ययुगमें राजा मुचुकुन्दके जामाता शोभनने भारतवर्षमें एकादशीका व्रत करके जो पुण्य अर्जन किया, उसके फलस्वरूप देवताओंने उन्हें मन्दराचलपर निवास दे दिया। आज भी वह राजकुमार कुबेरकी भाँति रानी चन्द्र-

मायाके साथ यहाँ राज्य करता है। मिथिलेश्वर ! वह परम सुन्दर शोभन भेंट लेकर देवप्रवर भगवान् श्रीकृष्णके सामने आया। यदुकुलतिलक श्रीहरिकी परिक्रमा करके शोभन उनके चरणारविन्दोंमें पड़ गया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, उन परमात्माको शीघ्र ही भेंट देकर पुनः मन्दराचलको चला गया ॥ १०—१२ ॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षिप्रवर ! राजा शोभनके चले जानेपर भगवान् मधुसूदनने आगे कौन-सा कार्य किया, यह बतलाइये ॥ १३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! उस मन्दराचलके शिखरपर एक परम दिव्य सरोवर है, उसमें स्वर्णमय कमल खिलते हैं। यह देखकर किरीटधारी अर्जुनने माधव श्रीकृष्णसे पूछा—'देवकीनन्दन ! सुवर्णमयी लताओं और स्वर्णमय कमलोंसे व्याप्त यह अद्भुत कुण्ड किसका है ? मुझे बताइये ॥ १४-१५ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—स्वायम्भुव मनुके कुलमें उत्पन्न आदि राजाधिराज पृथुने यहाँ दिव्य तप किया था। उन्हींका यह अद्भुत दिव्य कुण्ड है। पार्थ ! इसका जल पीकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा इसमें स्नान करके नरेतर प्राणी भी मेरे परमधाममें पहुँच जाता है ॥ १६-१७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! यहाँ साक्षात् भगवान्‌ने एक तपोभूमिमें पदार्पण किया, जहाँ सदा आठों सिद्धियाँ मूर्तिमती होकर नृत्य करती हैं। उन सिद्धियोंको देखकर उद्धवने सनातन भगवान्से पूछा ॥ १८½ ॥

उद्धव बोले—भगवन् ! मन्दराचलके समीप यह किसकी तपोभूमि है ? प्रभो ! यहाँ कौन-सी स्त्रियाँ मूर्तिमती होकर विराज रही हैं—कृपया यह बतायें ॥१९॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—उद्धव ! यहाँ पूर्वकालमें स्वायम्भुव मनुने तपस्या की थी। उन्हींकी यह सुन्दर तपोभूमि है, जो आज भी परम कल्याणकारिणी है। यहीं नारी-रूपधारिणी आठ सिद्धियाँ सदा विद्यमान रहती हैं। यहाँ जो कोई भी आ जाय, उसे भी आठों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यहाँ एक क्षण भी तपस्या करके मानव देवत्व प्राप्त कर लेता है। चतुर्मुख ब्रह्मा भी इस तपोभूमिके माहात्म्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २०—२२ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यों कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सेनासे घिरे हुए और बारंबार दुन्दुभि बजवाते हुए उन अत्यन्त उत्कट प्रदेशोंमें गये, जहाँ पूर्वकालमें हिरण्यकशिपु दैत्यने तपस्या की थी और जहाँ लीलावती नामकी एक स्वर्णमयी नगरी है। उस लीलावतीके स्वामी साक्षात् वीतिहोत्र नामधारी अग्नि हैं, जो उत्तम भक्तका पालन करते हुए नित्य मूर्तिमान् होकर राज्य करते हैं। उन धनंजयदेवने भी परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको भेंट देकर उनकी उत्तम स्तुति की ॥ २३—२६ ॥

इस प्रकार सारे इलावृतवर्षका दर्शन करते हुए देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्ण वेदनगरमें गये, जो जम्बूद्वीपका एक मनोरम स्थान है। उस नगरमें भगवान् निगम (वेद) सदा मूर्तिमान् होकर दिखायी देते हैं। उनकी सभामें सदा वीणा-पुस्तकधारिणी वाग्देवता वाणी (सरस्वती) सुन्दर एवं मङ्गलके अधिष्ठानभूत श्रीकृष्ण-चरितका गान करती हैं। नरेश्वर ! उर्वशी और विप्रचित्ति आदि अप्सराएँ वहाँ नृत्य करती हैं और अपने हाव-भाव तथा कटाक्षोंद्वारा वेदेश्वरको रिझाती रहती हैं। मैं, विश्वावसु, तुम्बुरु, सुदर्शन तथा चित्ररथ—ये सब लोग वेणु, वीणा, मृदङ्ग, मुख-यष्टि आदि वाद्योंको लयताल एवं दुन्दुभिके साथ विधिवत् बजाया करते हैं। नरेश्वर ! वहाँ ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सानुनासिक और निरनुनासिक—इन अठारह भेदोंके साथ स्तुतियाँ गायी जाती हैं। नरेश्वर ! वेदपुरमें आठों ताल, सातों स्वर और तीनों ग्राम मूर्तिमान् होकर विराजते हैं ॥ २७—३४ ॥

वेदनगरमें राग-रागिनियाँ भी मूर्तिमती होकर निवास करती हैं। भैरव, मेघमल्लार, दीपक, मालकोश, श्रीराग और हिन्दोल—ये सब राग बताये गये हैं। इनकी पाँच-पाँच स्त्रियाँ—रागिनियाँ हैं और आठ-आठ पुत्र हैं। नरेश्वर ! वे सब वहाँ मूर्तिमान् होकर विचरते हैं। 'भैरव' भूरे रंगका है, 'मालकोश' का रंग तोतेके समान हरा है, 'मेघमल्लार' की कान्ति मोरके समान है। 'दीपक'-का रंग सुवर्णके समान है और 'श्रीराग' अरुण रंगका है। मिथिलेश्वर ! 'हिन्दोल'का रंग दिव्य हंसके समान शोभा पाता है ॥ ३५—३८½ ॥

बहुलाश्वने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! ताल, स्वर, ग्राम और

---

१. 'अ इ उ ऋ'—इन स्वरोंमेंसे प्रत्येकके ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत—ये तीन-तीन भेद होते हैं; फिर प्रत्येकके उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित—ये तीन भेद होनेसे नौ भेद हुए। फिर इन सबके सानुनासिक और निरनुनासिक भेद होनेसे अठारह भेद होते हैं।

नृत्य—इसके कितने-कितने भेद हैं? इन सबका नामोल्लेख-पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३९ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! रूपक, चर्चरीक, परमठ, त्रिघट, कमठ, मल्लक, ब्राटित् और तुटा—ये आठ ताल हैं। राजन्! निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत तथा पञ्चम—ये सात स्वर कहे गये हैं। माधुर्य, गान्धार और ध्रौव्य—ये तीन ग्राम माने गये हैं। राव, ताण्डव, नाट्य, गान्धर्व, कैंनर, वैद्याधर, गौह्यक और आप्सरस—ये आठ नृत्यके भेद हैं। ये सभी दस-दस हाव-भाव और अनुभावों-से युक्त हैं। स्वरोंका बोध करानेवाला पद 'सा रे ग म प ध नि'—इस प्रकार है। राजन्! यह सब मैंने तुम्हें बताया, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ४०—४४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वेदनगरका वर्णन' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

रागिनियों तथा रागपुत्रोंके नाम और वेद आदिके द्वारा भगवान्‌का स्तवन

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! रागिनियों और राग-पुत्रोंके नाम मुझे बताइये; क्योंकि परावरवेत्ता विद्वानोंमें आप सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! कालभेद, देशभेद और स्वरमिश्रित क्रियाके भेदसे विद्वानोंने गीतके छप्पन करोड़ भेद बताये हैं। नृपेश्वर! इन सबके अन्तर्भेद तो अनन्त हैं। आनन्दस्वरूप जो शब्दब्रह्ममय श्रीहरि हैं, इन्हींको तुम राग समझो। इसलिये भूतलपर इन सबके जो मुख्य-मुख्य भेद हैं, उन्हींका मैं तुम्हारे सामने वर्णन करूँगा ॥२-३½॥

भैरवी, पिङ्गला, शङ्खी, लीलावती और आगरी—ये भैरवरागकी पाँच रागिनियाँ बतलायी गयी हैं। महर्षि, कमुद, पिङ्गल, मागध, बिलावल, वैशाख, ललित और पञ्चम—ये भैरवरागके भिन्न-भिन्न आठ पुत्र बतलाये गये हैं। मिथिलेश्वर! चित्रा, जयजयवन्ती, विचित्रा, व्रजमल्लारी, अन्धकारी—ये मेघमल्लार रागकी पाँच मनोहारिणी रागिनियाँ कही गयी हैं। श्यामकार, सोरठ, नट, उड्डायन, केदार, व्रजरहस्य, जलधार और विहाग—ये मल्लार रागके आठ पुत्र प्राचीन विद्वानोंने बताये हैं। कञ्चुकी, मञ्जरी, टोडी, गुर्जरी और शाबरी—ये दीपक रागकी पाँच रागिनियाँ विख्यात हैं। विदेहराज! कल्याण, शुभकाम, गौडकल्याण, कामरूप, कान्हरा, रामसंजीवन, सुखनामा और मन्दहास—ये विद्वानोंद्वारा दीपक रागके आठ पुत्र कहे गये हैं। मिथिलेश्वर! गान्धारी, वेदगान्धारी, धनाश्री, स्वर्मणि तथा गुणागरी—ये पाँच रागमण्डलमें मालकोश रागकी रागिनियाँ कही गयी हैं। मेघ, मचल, माडमाचार, कौशिक, चन्द्रहार, घुंघुट, विहार तथा नन्द—ये मालकोश रागके आठ पुत्र बतलाये गये हैं ॥ ४—१५½ ॥

राजेन्द्र! वैराटी, कर्णाटी, गौरी, गौरावटी तथा चतुश्चन्द्र-कला—ये पुरातन पण्डितोंद्वारा कही गयी श्रीरागकी विख्यात पाँच रागिनियाँ हैं। महाराज! सारङ्ग, सागर, गौर, मरुत, पञ्चशर, गोविन्द, हमीर तथा गीर्भीर—ये श्रीरागके आठ मनोहर पुत्र हैं। वसन्ती, परजा, हेरी, तैलङ्गी और सुन्दरी—ये हिन्दोल रागकी पाँच रागिनियाँ प्रसिद्ध हैं। मैथिलेन्द्र! मङ्गल, वसन्त, विनोद, कुमुद, विहित, विभास, स्वर तथा मण्डल—विद्वानोंद्वारा ये आठ हिन्दोल रागके पुत्र कहे गये हैं ॥ १६—२१ ॥

बहुलाश्वने पूछा—शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीहरिके साक्षात् स्वरूप महात्मा निगम (वेद) के, जो रागमण्डलमें हिन्दोलके नामसे विख्यात हैं, पृथक्-पृथक् अङ्ग इस भूतलपर कौन-कौन-से हैं—यह मुझे बताइये ॥ २२-२३ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! वेदस्वरूप श्रीहरिका मुख 'व्याकरण' कहा गया है, पिङ्गल-कथित 'छन्दःशास्त्र' उनका पैर बताया जाता है, 'मीमांसा-शास्त्र' (कर्मकाण्ड) हाथ है, 'ज्योतिष-शास्त्र'को नेत्र बताया गया है। 'आयुर्वेद' पृष्ठदेश, 'धनुर्वेद' वक्षःस्थल, 'गान्धर्ववेद' रसना और 'वैशेषिक शास्त्र' मन है। सांख्य बुद्धि, न्यायवाद अहंकार और वेदान्त महात्मा वेदका चित्त है। मिथिलेश्वर! रागरूप जो शास्त्र है, उसे वेदराजका विहारस्थल समझो। राजन्! ये सब बातें तुम्हें बतायीं। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ २४—२७ ॥

बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे! उस वेदपुरमें आकर साक्षात् भगवान् श्रीहरिने क्या किया, यह मुझे बताइये; क्योंकि आप साक्षात् दिव्यदर्शी हैं॥ २८॥

नारदजीने कहा—राजन्! यादवेश्वर श्रीकृष्ण जब वेदपुरमें आये, तब निगम (वेद) भी सरस्वतीके साथ भेंट लेकर आये। गन्धर्व, अप्सरा, ग्राम, ताल, स्वर तथा भेदोंसहित राग भी उनके साथ थे। उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्‌को प्रणाम किया। देवताओंके भी देवता साक्षात् भगवान् जनार्दन वेदपर प्रसन्न हो समस्त यादवोंके समक्ष उनसे बोले॥ २९—३१॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—निगम! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो। मेरे प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें भक्तोंके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है!॥ ३२॥

वेद बोले—देव! परमेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं तो यहाँ मेरे जो ये उत्तम पार्षद हैं, उन सबको अपने दिव्य रूपका दर्शन कराइये। अत्यन्त उद्दीप्त तेजवाले अपने निज धाम गोलोकमें आपका जो स्वरूप है तथा वृन्दावनमें और वहाँके रासमण्डलमें आपका जो रूप प्रकट होता है, उसीका ये सब लोग दर्शन करना चाहते हैं॥ ३३-३४॥

श्रीनारदजी कहते हैं—मैथिलेश्वर! वेदका कथन सुनकर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने श्रीराधाके साथ अपने परम दिव्य रूपका उन्हें दर्शन कराया। उस अनुपम सुन्दर रूपको देखकर सब लोग मूर्च्छित हो गये। अपना शरीर तथा सुख भुलाकर वे सभी सात्त्विक भावोंसे पूरित हो गये। राजन्! उस समय अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो वे वाद्योंके मधुर शब्दोंके साथ यदुपुङ्गवोंके देखते-देखते भगवान्‌के समक्ष नाचने और गान करने लगे। मैथिलेश्वर! भगवान्‌का माधुर्यमय अद्भुत रूप जैसा सुना गया था, वैसा ही देखा गया और उसी प्रकार वेद आदिने (उसका नीचे दिये शब्दोंमें) वर्णन किया॥ ३५—३८॥

वेदने कहा—देव! आप सत्स्वरूप, ज्ञानमात्र, सत्-असत्से परे, व्यापक, सनातन, प्रशान्तरूप, विभवात्मक, सम, महत्, प्रकाशरूप, परम दुर्गम, परात्पर तथा अपने धाम (चिन्मय प्रकाश) द्वारा छल एवं अज्ञानके अन्धकार-को निरस्त करनेवाले 'ब्रह्म' हैं; आपको मैं प्रणाम करता हूँ[1]॥ ३९॥

सरस्वती बोलीं—भगवन्! योगीलोग आपको परम ज्योतिःस्वरूप जानते हैं, वहीं भक्तजन आपको चिन्मय विग्रहसे युक्त बताते हैं। इस समय जो आपके चरणारविन्द-युगल देखे गये हैं, वे समस्त ज्योतियोंके अधीश्वर हैं। वे सदा मेरे लिये कल्याणकारी हों[2]॥ ४०॥

गन्धर्व बोले—प्रभो! श्याम और गौर तेजके रूपमें अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित जो आपका तेजोमय स्वरूप है, वह आपने अपनी इच्छासे प्रकट किया है। उन्हीं युगल धामों (स्वरूपों)से आप नित्य उसी प्रकार पूर्णतया विराजित रहते हैं, जैसे मेघ श्याम वर्ण तथा बिजलीसे शोभा पाता है[3]॥ ४१॥

अप्सराओंने कहा—जैसे तमाल सुवर्णमयी लतासे, मेघ विद्युन्मालासे तथा जैसे नील गिरिराज सोनेकी खानसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार आप आदिपुरुष श्यामसुन्दर अपनी प्रेयसी श्रीराधारानीके नित्य साहचर्यसे शोभा पाते हैं[4]॥ ४२॥

तीनों ग्राम बोले—जिनके चरणारविन्दोंके पावन परागको शिव, रमा (लक्ष्मी), ज्ञानीपुरुष तथा देवताओं-

---

१. सज्ज्ञानमात्रं सदसत्परं बृह-
च्छाश्वतं प्रशान्तं विभवं समं महत्।
त्वां ब्रह्म वन्दे बहु दुर्गमं परं
सदा स्वधाम्ना परिभूतकैतवम्॥

२. महः परं त्वां किल योगिनो विदुः
सविग्रहं तत्र वदन्ति सात्वताः।
दृष्टं तु यत्ते पदयोर्द्वयं मे
क्षेमाय भूयान्महसामधीश्वरम्॥

३. श्यामं च गौरं विदितं स्वधाम्ना
कृतं त्वया धाम निजेच्छया हि।
विराजसे नित्यमलं च ताभ्यां
घनो यथा मेचकदामिनीभ्याम्॥

४. यथा तमालः कलधौतवल्ल्या
घनो यथा चञ्चलया चकास्ति।
नीलोऽद्रिराजो निकषाश्मखन्या
श्रीराधयाऽऽद्यस्त्वमु तथा रमण्या॥

सहित श्रीराधा अपने चित्तमें धारण करना चाहती हैं, माधवके उन चरण-कमलोंका सदा भजन करो ॥ ४३ ॥

तालोंने कहा—जिनके कारण राजा बलि सत्स्वरूप होकर प्रतिष्ठित हुए, उन्हीं भगवान्‌को बलि अर्पित करनी चाहिये। अपने संतत चित्तरूपी गुफामें श्रीहरिके उस चरणको ही प्रतिष्ठित करके उसकी सेवा करो[6] ॥ ४४ ॥

गान (लय) बोले—संतजन जिनकी शरण लेकर दुःख-शोकको निकाल फेंकते हैं, श्रीराधा-माधवके उन दिव्य चरण-कमलोंको हम सदा हृदयमें धारण करें[7] ॥ ४५ ॥

स्वर बोले—जो शरद् ऋतुके प्रफुल्ल पङ्कजकी शोभाको अत्यन्त तिरस्कृत कर देते हैं, मुनिरूपी भ्रमर जिनका आस्वादन करते हैं, जो वज्र, कमल और शङ्ख आदिके चिह्नोंसे सुशोभित हैं, जिनपर सोनेके नूपुर चमक रहे हैं तथा जिन्होंने भक्तोंके त्रिविध तापोंका उन्मूलन कर दिया है, श्रीराधावल्लभके उन चञ्चल-द्युतिशाली युगल चरणारविन्दोंको मैं हृदयमें धारण करता हूँ[8] ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वेदादिके द्वारा की गयी स्तुतिका वर्णन' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

रागिनियों तथा राग-पुत्रोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन और उनका द्वारकापुरीके लिये प्रस्थान

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर भैरव आदि रागगण भगवान् श्रीहरिके सामने उपस्थित हुए और रूपके अनुरूप उनके प्रत्येक अवयवका दर्शन करके अत्यन्त हर्षित हुए। श्रीहरिके विग्रहमें जिस-जिस अङ्गपर उनकी दृष्टि पड़ती था, वहीं-वहीं वह ठहर जाती थी। लावण्य-विशेषका अनुभव करके वह वहाँसे हटनेमें समर्थ नहीं होती थी। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उस अत्यन्त अद्भुत रूपका दर्शन करके वे भी पृथक्-पृथक् उसका गुणगान करने लगे ॥ १—३ ॥

भैरव बोला—श्रीहरिके दोनों घुटनोंका चिन्तन करो, जिन्हें सदा अङ्कमें लेकर कमला अपने कमलोपम करोंसे उनकी सेवा करती हैं ॥ ४ ॥

मेघमल्लारने कहा—सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णकी दोनों जाँघें, मानो कदलीखण्ड हैं, सोनेके खंभे हैं, तेजसे पूर्ण हैं, अनुपम शोभासे सम्पन्न हैं तथा पीताम्बरसे ढकी हुई हैं। उन दोनों वन्दनीय ऊरु-युगलका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५ ॥

दीपक रागने कहा—भगवान्‌के कटिभागसे नीचे जो सम्पूर्ण चरण हैं, वे समस्त सुखोंको देनेवाले हैं तथा सुवर्णकी-सी कान्ति धारण करते हैं, उन सुप्रसिद्ध चरणोंका भजन करो ॥ ६ ॥

मालकोश बोला—भगवान् श्रीहरिकी जो कमर है, वह केशके समान अत्यन्त पतली है और वह मनुष्योंकी दृष्टिका मान हर लेती है, अर्थात् उस कटिको देखनेमें दृष्टि समर्थ नहीं हो पाती; वह मन्द-मन्द समीरके चलनेपर भी अत्यन्त कम्पित होने या लचकने लगती है। इस प्रकार वह सबके चित्तको हर लेनेवाली है। मैं विनम्र मस्तकसे उसकी वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥

श्रीराग बोला—राधिकावल्लभका जो नाभि-सरोवर है, उसका मैं अपने हृदयमें प्रतिदिन ध्यान करता हूँ। वह पुष्करकुण्डके समान शोभा पाता है। त्रिवलीरूप लहरोंसे उसकी मनोहरता बढ़ गयी है और वहाँकी रोमावलीने कामदेवके क्रीडा-काननको तिरस्कृत कर दिया है ॥ ८ ॥

---

५. यस्य पदस्य परागं शम्भुरमाब्जादिदेवैः । इच्छति चेतसि राधा तं भज माधवपादम् ॥

६. येन बलिः सद्बिहरेत्प्रतिष्ठितमेव हरेत । तं भज पादं तु हरेश्चेतसि तस्ये कुहरे ॥

७. यस्मिन्यान्ति बहिर्दुःखं सन्तो यच्छरणं गताः । राधामाधवयोर्दिव्यं दधाम पदपङ्कजम् ॥

८. शरद्विकचपङ्कजश्रियमतीव विद्वेषकं मिलिन्दमुनिसेवितं कुलिशकंजचिह्नावृतम् ।
स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्ततापत्रयं चलद्द्युति पदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः ॥

(गर्ग०, विश्वजित० ४४ । ४३—४६)

हिन्दोल रागने कहा—उदरमें जो त्रिवलीकी पंक्ति है, वह क्या अक्षरोंकी पंक्ति (वर्णमाला) है ? अथवा पीपलके पत्तेपर मोहन-माला दिखायी देती है ? क्या कमल-दलपर कोई श्याम रेखा है या उदरमें यह रोमावलि फैली हुई है ? ॥ ९ ॥

भैरवरागकी रागिनियाँ बोलीं—श्रीकृष्ण हरिका जो पीताम्बर है, वह दीप्तिमान् इन्द्रधनुष तो नहीं है ? सोनेके तारोंकी शिल्पकलाद्वारा वह मनोहर ढंगसे टँका हुआ है। उसका ही भजन करो, वह मनुष्योंका दुःख हर लेनेवाला है ॥ १० ॥

भैरवके पुत्रोंने कहा—भगवन् ! आपकी चारों भुजाएँ चारों समुद्रोंके समान सम्पूर्ण विश्वको परिपूर्ण करने-वाली हैं, चार पदार्थोंके समान आनन्ददायिनी हैं, लोक-रूपी चँदोवाके वितानमें दण्डका काम देती हैं तथा भूमिको धारण करनेमें दिग्गजोंके समान प्रतीत होती हैं ॥ ११ ॥

मेघमल्लारकी रागिनियाँ बोलीं—सर्ववल्लभ भूमिपति भगवान् श्रीहरिके मधुर अधरका, हे मन ! तू सदा चिन्तन कर। वह लाल रंगके बिम्ब-फलकी-सी कान्तिसे मण्डित है तथा नूतन जपाकुसुमके लाल दलोंकी भाँति उसका सुन्दर स्वरूप है ॥ १२ ॥

मेघमल्लारके बेटे बोले—परमेश्वर श्रीकृष्णकी जो निर्मल दन्त-पङ्क्ति है, उसका सदा ध्यान करो। उसने कपूर, केवड़ेके फूल, मोती, हीरे, श्रीखण्ड चन्दन, चन्द्रमा, चपला, अमृत तथा मल्लिका-पुष्पोंकी कान्तिको पहलेसे ही तिरस्कृत कर दिया है ॥ १३ ॥

दीपक रागकी रागिनियोंने कहा—भगवन् ! निजजनोंकी रक्षा करनेमें समर्थ तथा अभीष्ट वस्तु देनेमें दक्ष जो आपके युगल नयनोंका कृपाकटाक्ष है, वह रात-दिन हमारी रक्षा करे। वह कटाक्ष कामदेवके बाणोंका परीक्षक है—उससे भी तीव्र शक्तिवाला है। उसने सम्पूर्ण लावण्यकी दीक्षा ले ली है, अर्थात् वह समस्त लावण्यकी राशि है। उसने अपनी उदारताके सामने कल्पवृक्षको भी तिरस्कृत कर दिया है तथा उसके एक-दो नहीं, करोड़ों लक्ष्य हैं ॥ १४ ॥

दीपकके पुत्र बोले—क्या ये नूतन कमलके बीच दो कुलिङ्ग (गौरैया) पक्षी बैठे हैं या तीनों लोकोंके दुःखोंका नाश करनेके लिये दो तीखी तलवारें हैं या कामदेवके दो विजयशील धनुष हैं, अथवा परमात्मा श्रीकृष्णके मुखचन्द्रमें युगल भ्रूमण्डल शोभा पा रहे हैं ॥ १५ ॥

मालकोशकी रागिनियोंने कहा—सुन्दर कपोल-मण्डलपर दो चञ्चल कुण्डल नृत्य कर रहे हैं, मानो चन्द्रमण्डलमें दो नागिनें नाच रही हों, अथवा मकरन्दसे परिपूर्ण कमलपर भ्रमरावली मँडरा रही हो ॥ १६ ॥

मालकोशके पुत्र बोले—आकाश-मण्डलमें सूर्यदेव उदित हुए हैं या मेघमालामें बिजली चमक रही है अथवा यदुपति भगवान् श्रीकृष्णके गण्डमण्डल (कपोलद्वय) पर ज्योतिके खण्ड-सा कनक-निर्मित कुण्डल झलमला रहा है ॥ १७ ॥

श्रीरागकी रागिनियाँ बोलीं—दो कुलिङ्ग किंवा दो खञ्जन पक्षियोंकी पंक्तियोंका परस्पर युद्ध हुआ। उनके मध्यमें बीच-बचाव करनेके लिये प्रफुल्ल कमलपर एक तोता निकट आ गया है, जो अरुण बिम्ब-फलको प्राप्त करनेकी इच्छासे वहाँ बैठा शोभा पाता है (यहाँ कुलिङ्ग या खञ्जन पक्षी भगवान्‌के दोनों नेत्र हैं, उनके बीचमें बैठा हुआ तोता नासिका है, प्रफुल्ल कमल मुख है और अरुण बिम्ब-फल अधर है) ॥ १८ ॥

श्रीरागके पुत्र बोले—जिन्होंने अपनी कमरमें पीताम्बर बाँध रक्खा है, मस्तकपर मोर-मुकुट धारण किया है और ग्रीवाको एक ओर झुका दिया है, जो हाथमें लकुटी और वंशी लिये हैं तथा जिनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे हैं, उन पटुतर नटवर-वेषधारी श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ* ॥ १९ ॥

हिन्दोलरागकी रागिनियाँ बोलीं—जिनकी श्याम कान्तिकी अलसीके फूलसे उपमा दी जाती है, जो यमुनाके तटपर कदम्ब-काननके मध्यभागमें विराजमान हैं तथा नयी अवस्थाकी गोपसुन्दरियोंके साथ विहार करते हुए शोभा पाते हैं, वे वनमाली हम सबके मङ्गलका विस्तार करें† ॥ २० ॥

हिन्दोलरागके पुत्रोंने कहा—हरे ! भूतलपर मेरे समान पातकी नहीं है और आपके समान कोई पापापहारी भी नहीं है। इसलिये आपको जगन्नाथदेव मानकर मैं

---

* परिकरीकृतपीतपटं हरिं शिखिकिरीटनतीकृतकन्धरम् ।
लकुटवेणुकरं चलकुण्डलं पटुतरं नटवेषधरं भजे ॥
(गर्ग०, विश्वजित्० ४५ । १९)

† अतसीकुसुमोपमेयकान्तिर्यमुनाकूलकदम्बमध्यवर्ती ।
नवगोपवधूविहारशाली वनमाली वितनोतु मङ्गलानि ॥
(गर्ग०, विश्वजित्० ४५ । २०)

संपत्ति आपकी ही है। आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा मेरे प्रति कीजिये ॥ २१ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! रागोंद्वारा किये गये उपर्युक्त ध्यानको जो सदा सुनता अथवा पढ़ता है, भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार वेद आदिको अपने स्वरूपका दर्शन कराके साक्षात् श्रीहरि उन सबके देखते-देखते चतुर्भुज शार्ङ्गपाणि बन गये ॥ २२-२३ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णका दर्शन करके जब देवतालोग अपने गणोंके साथ चले गये, तब सेनामें अपने पुत्र यदुकुल-तिलक शम्बर-शत्रु प्रद्युम्नको स्थापित करके परात्पर भगवान् श्रीहरिने अपनी द्वारकापुरीमें जानेका विचार किया। मिथिलेश्वर! उनके रथपर मञ्जीर, घंटा और किङ्किणीकी मधुर ध्वनि होने लगी। सुन्दर कांस्य-पात्र (झाँझ) की आवाज भी उसमें मिल गयी। दारुकने उस रथमें सुग्रीव आदि चञ्चल घोड़े जोत दिये। वह उत्तम रत्नयुक्त आभूषणोंसे सजाया गया था, उसके आगे वेद-मन्त्रोंका घोष भी होता था और उसके ऊपरका गरुडध्वज प्रभञ्जनके वेगसे फहरा रहा था। ऐसे रथके द्वारा वेदपुरीको छोड़कर परमात्मा श्रीहरि यादववृन्दसे मण्डित द्वारकापुरीको चले गये ॥ २४—२७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'श्रीकृष्णके ध्यानका वर्णन' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

यादवों और गन्धर्वोंका युद्ध, बलभद्रजीका प्राकट्य, उनके द्वारा गन्धर्वसेनाका संहार, गन्धर्वराजकी पराजय, वसन्तमालती नगरीका हलद्वारा कर्षण; गन्धर्वराजका भेंट लेकर शरणमें आना और उनपर बलरामजीकी कृपा

नारदजी कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके द्वारकापुरीको चले जानेपर प्रद्युम्न अपने सैनिकोंके साथ कामदुघनदके समीप गये। वहाँ गन्धर्वोंकी मनोहारिणी हेम-रत्नमयी वसन्तमालती नामकी नगरी है, जिसका विस्तार सौ योजनका है। लवङ्ग-लताओंके समूह, इलायची, केसर, जायफल, जावित्री, श्रीखण्ड चन्दन और पारिजातके वृक्ष उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। मतवाले भ्रमरोंके गुञ्जारवसे निनादित, विचित्र पक्षियोंके कलरवसे मुखरित तथा गन्धर्वोंसे सुशोभित वह नगरी नागोंसे युक्त भोगवतीपुरीके समान शोभा पाती थी ॥ १—४ ॥

वहाँ पतंग नामसे प्रसिद्ध महाबली गन्धर्वराज राज्य करते थे, जो बड़े पुण्यात्मा थे और जिनका बल पौरुष देवराज इन्द्रके समान था। उन्होंने सुना कि दिग्विजयके लिये निकले हुए प्रद्युम्न आ रहे हैं, तब उन गन्धर्वराजने उद्भट गन्धर्वोंसे युक्त होकर युद्ध करनेका निश्चय किया। रथ, घोड़े, हाथी और पैदल दस करोड़ गन्धर्वोंके साथ राजा पतंग प्रद्युम्नके सामने युद्धके लिये आये। गन्धर्वों और यादवोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। भालों, गदाओं, परिघों, मुद्गरों, तोमरों तथा भुशुण्डियोंकी मार होने लगी। बाणोंसे अन्धकार फैल जानेपर अतिरथी बलवान् वीर पतंग धनुषको टंकारते हुए आगे बढ़े और मेघके समान गर्जना करने लगे। बलदेवजीके बलवान् अनुज गदने गदा लेकर गन्धर्वोंकी सेनाको वैसे ही धराशायी करना आरम्भ किया, जैसे देवराज इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको ढहा देते हैं ॥ ५—१० ॥

गदकी गदाके प्रहारसे कितने ही गन्धर्व युद्धभूमिमें गिर गये, उनके रथ चूर-चूर हो गये और समस्त हाथियोंके कुम्भस्थल फट गये। कितने ही घुड़सवार वीर भी युद्धके मुहानेपर प्राणशून्य होकर पड़ गये। भुजाएँ कट जानेसे कितने ही गन्धर्व उत्तानमुख और औंधेमुख पड़े दिखायी देते थे। क्षणमात्रमें गन्धर्वोंकी सेनामें खूनकी नदी बह चली। प्रमथगण भगवान् रुद्रकी मुण्डमाला बनानेके लिये युद्धभूमिमें नरमुण्डोंका संग्रह करने लगे। सिंहपर चढ़ी हुई भद्रकाली सैकड़ों डाकिनियोंके साथ युद्धभूमिमें आकर खप्परमें खून भर-भरकर पीती दिखायी देने लगीं ॥ ११—१४ ॥

इस तरह गदके द्वारा किये गये युद्धमें जब गन्धर्वगण पलायन करने लगे, तब गन्धर्वोंके राजा पतंग एक लाख

गजसेनाके साथ वहाँ आ पहुँचे । मिथिलेश्वर ! पतंगने आते ही गदकी छातीमें गदा मारी । गदने भी अपनी गदासे पतंगके वक्षपर बलपूर्वक चोट पहुँचायी । उन दोनोंमें दो घड़ीतक गदायुद्ध चलता रहा । उनकी दोनों गदाएँ आगकी चिनगारियाँ बिखेरती हुई चूर-चूर हो गयीं । रणदुर्मद पतंगने लाख भारकी भारी गदा लेकर तुरंत ही गदके मस्तकपर मारी । गदाके उस प्रहारसे गद क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये । इस प्रकार महामना पतंगने जब घोर युद्ध किया, तब उसी समय द्वारकापुरीसे एक तेजपुञ्ज आ पहुँचा ॥ १५-१९½ ॥

समस्त यादवोंने करोड़ों सूर्योंके तुल्य तेजस्वी उस तेजपुञ्जको देखा । उसके भीतरसे गोरे अङ्गवाले महाबली भक्तवत्सल भगवान् बलदेव सहसा प्रकट हो गये । नीलाम्बरधारी बलशाली बलरामने कुपित हो गन्धर्वोंकी सारी सेनाको हलसे खींचकर मुसलसे मारना आरम्भ किया । बहुत-से रथों, हाथियों और घोड़ोंको उन्होंने कालके गालमें पहुँचा दिया । शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीर सब-के-सब चूर-चूर हुए पत्थरोंकी भाँति एक साथ ही भूतलपर बिखर गये । पतंग भी रथहीन हो भारी भयके कारण वहाँसे वसन्तमालती पुरीमें चले गये और पुनः यादवोंसे युद्ध करनेके लिये सेनाका व्यूह बनाने लगे ॥ २०-२४ ॥

नरेश्वर ! सौ योजन विस्तृत गन्धर्वोंकी सम्पूर्ण वसन्तमालती नामकी महापुरीको हलसे उपाटकर कुपित हुए बलदेवजीने कामदुघ नदमें गिरानेके लिये खींचा । उस नगरीके भवन धड़ाधड़ धराशायी होने लगे । फिर तो तत्काल वहाँ हाहाकार मच गया । अपनी नगरीको टेढ़ी या करवट लेती हुई नौकाकी भाँति डगमगाती देख पतंग सर्वथा पराभूत हो, तत्काल समस्त गन्धर्वोंके साथ हाथ जोड़, भेंट-सामग्रीके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥ २५-२७ ॥

उसने दो लाख ऐसे विमान बलदेवजीको भेंट किये, जो सुवर्णके समान कान्तिवाले तथा विविध रत्नोंसे जटित थे । मोतीकी बंदनवारें उनकी शोभा बढ़ाती थीं । विश्वकर्माने उन विमानोंको दस-दस योजन विस्तृत बनाया था । वे सभी विमान इच्छानुसार चलनेवाले तथा कोटि-कोटि कलशों एवं पताकाओंसे सुशोभित थे । उनसे सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था । चार लाख गौएँ, दस अरब घोड़े, इलायची, लवङ्ग, केसर और जायफलोंके साथ दिव्य अमृतफलोंसे भरे करोड़ों पात्र उपहारके रूपमें लाकर उन्होंने दिये । फिर वे नमस्कार करके तिरस्कृतकी भाँति हाथ जोड़कर बलरामजीसे बोले; उन्हें बलभद्रजीके प्रभावका पूरा परिचय मिल गया था ॥ २८-३१½ ॥

पतंगने कहा—राम ! महापराक्रमी बलराम ! मैंने आपके पराक्रमको पहले नहीं जाना था, इसलिये अपराध कर बैठा । जिनके एक फनपर सारा भूमण्डल तिलके समान दिखायी देता है, उनके सामने कौन ठहर सकता है । भगवन् ! कामपाल ! देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है । साक्षात् अनन्त एवं शेषस्वरूप आप बलरामको बारंबार प्रणाम है । अच्युत देव ! आपकी जय हो, जय हो । परात्पर ! साक्षात् अनन्त ! आपकी कीर्ति दिगन्ततक फैली हुई है । आप समस्त देवताओं, मुनीन्द्रों और फणीन्द्रोंसे श्रेष्ठ हैं । मुसलधारी ! आप बलवान् हलधरको नमस्कार है* ॥ ३२-३४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! पतंगके इस प्रकार स्तुति करनेपर महाबली बलभद्रजीका चित्त प्रसन्न हो गया । उन्होंने गन्धर्वको 'अब तुम मत डरो'—यों कहकर अभयदान दिया । तदनन्तर यादवेश्वर बलदेव अपने चरणोंमें पड़े हुए प्रद्युम्नको सेनाके संचालक-पदपर स्थापित करके, यादवोंसे प्रशंसित हो शीघ्र ही द्वारकापुरीको चले गये ॥ ३५-३६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'वसन्तमालती नगरीका कर्षण' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

---

* जय जयाच्युत देव परात्पर स्वयमनन्त दिगन्तगतश्रुते । सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रवराय ते मुसलिने बलिने हलिने नमः ॥
(गर्ग०, विश्वजित्० ४६ । ३४)

सैंतालीसवाँ अध्याय

यादव-सेनाके साथ शक्रसखका युद्ध और उसकी पराजय

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर महावीर प्रद्युम्न अपनी विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए यादव-सैनिकोंके साथ मधुधारा नदीके तटपर गये । सुवर्णगिरिके किनारे कुबेरके सुन्दर वनमें, जो सुनहरे हंसों और काञ्चनी लतिकाओंसे सम्पन्न है, पहुँचे । मिथिलेश्वर ! हिमालयकी गुफाएँ देवताओंके लिये दुर्गका काम देती हैं । वहाँ दानवोंकी पहुँच नहीं हो पाती । वहाँ गङ्गातटवर्ती बेंतकी झाड़ियाँ छायी रहती हैं । कभी-कभी दानवोंसे डरकर स्वर्गसे भागे हुए आठों लोकपालोंकी निधियाँ वहाँ निवास करती हैं ॥ १–४ ॥

शक्रसख नामक देव-शिरोमणि उस प्रान्तके अधिपति हैं । प्रद्युम्नका आगमन सुनकर उन्होंने उनके साथ युद्ध करनेका विचार किया । प्रद्युम्नके भेजे हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् उद्धव मार्गदर्शी लोगोंसे रास्ता पूछते हुए शक्रसखकी नगरीमें गये । सभामें पहुँचकर मन्त्रिप्रवर प्रभु उद्धवने राजा इन्द्रसखको नमस्कार करके प्रद्युम्नकी कही हुई बातें विस्तारके साथ कह सुनायीं ॥ ५–७ ॥

उद्धव बोले—यादवोंके इन्द्र, द्वारकापुरीके स्वामी राजाधिराज उग्रसेन जम्बूद्वीपके नरेशोंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे । उनके द्वारा दिग्विजयके लिये भेजे गये बलवान् रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न अपने तेजसे भारत आदि वर्षोंको जीतकर आज ही इलावृतवर्षपर विजय पानेके लिये आये हैं । उन श्रीकृष्णकुमारका बल महान् है । यदि आप अपने कुलकी कुशल चाहते हों तो शीघ्र ही उन्हे भेंट दीजिये । सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ नरेश ! यदि आप भेंट नहीं देंगे तो आपके साथ युद्ध अनिवार्य होगा ॥ ८–१०½ ॥

शक्रसख बोले—दूत ! सुनो ! देवतालोग भी सदा मेरी पूजा करते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है । मैं सिद्ध हूँ, महावीर हूँ और एक लाख हाथियोंके समान बलवान् हूँ । आठों लोकपालोंके आधिपत्यका रक्षक हूँ । कुबेरके समान कोशसे सम्पन्न तथा इन्द्रके समान उद्भट शक्तिशाली हूँ । उग्रसेनको ही मुझे उत्तम उपायन भेंट करना चाहिये । मैंने पहले कभी किसीको भेंट नहीं दी है, इसलिये मैं तुम्हारे यदुराजको भी भेंट नहीं दूँगा ॥ ११–१३ ॥

उद्धव बोले—यादवोंके तेजसे जैसे कुबेरको तिरस्कार प्राप्त हुआ है और उन्हें भेंट देनी पड़ी है; जैसे वैश्वदेशके बलवान् राजा शृङ्गारतिलकने भेंट दी है; हरिवर्षके राजा शुभाङ्ग, उत्तराखण्डके स्वामी गुणाकर, दैत्योंके सखा राक्षसराज लङ्कापति संवत्सर, केतुमाल और शकुनि आदि बड़े-बड़े असुरोंने जैसे भेंट दी है, राजन् ! उसी तरह उन्हीं-सी दुर्दशामें पड़नेपर आप भी प्रद्युम्नको भेंट देंगे ॥ १४–१६ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! उद्धवकी उपर्युक्त बात सुनकर बलवान् शक्रसखने कुपित हो उद्धवको इस प्रकार उत्तर दिया—'भगवद्भक्त-शिरोमणे ! सुनो ! जबतक मैं भेंट दूँ, तबतक तुम यहीं ठहरो । अन्यथा तुम जाने नहीं पाओगे । महामते ! मेरी यह बात सत्य है, सत्य है ॥ १७-१८ ॥

उद्धव बोले—हम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ और श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं । जो हमारी शिक्षा नहीं मानते, उनका मङ्गल नहीं होता ॥ १९ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार शक्रसखने उद्धवको वहाँ नजरबंद कर लिया । उद्धवके नहीं लौटनेसे यदुवंशी लोग चिन्तित हो गये । उन्हें देखे बिना उन सबके कई दिन बीत गये । तब मेरे मुखसे उद्धवजीके अवरोधका समाचार सुनकर भगवान् प्रद्युम्न हरि त्रिपुरासुरको जीतनेके लिये यात्रा करनेवाले महादेवजीके समान शक्रसखपर विजय पानेके लिये चले । उनके साथ समस्त यादव-बन्धु और सारी सेना थी । प्रद्युम्नजी सुवर्णाद्रिकी गुफाके द्वारपर जा पहुँचे । दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिश्रित वीर योद्धाओंके कोदण्डोंकी टंकारों, घोड़ोंके हिनहिनाहटकी आवाजों तथा हाथियोंकी चिग्घाड़ोंसे दसों दिशाएँ गूँज उठीं । सैनिकोंके पैरोंसे उड़ी हुई धूल भी सब ओर व्याप्त हो गयी । शक्रसखकी सेना यादवोंसे युद्ध करने लगी । भयंकर युद्ध होने लगा, व्योम-मण्डल अस्त्र-शस्त्रोंसे आच्छादित हो गया । नृपेश्वर ! यह सब देखकर मेरु-पर्वतके निवासी समस्त देवता भयभीत हो उठे ॥ २०–२४ ॥

इसी समय कोधसे भरा और रथपर चढ़ा महाबली

शक्रसख दस अक्षौहिणी सेनाके साथ आये बढ़कर यादवोंके साथ युद्ध करने लगा। देवताओंका यादवोंके साथ तुमुल युद्ध छिड़ गया। राजन्! प्राकृत प्रलयके समय चारों समुद्रोंके टकरानेसे जैसी भीषण ध्वनि होती है, वैसा ही महान् कोलाहल वहाँ होने लगा। अस्त्र-शस्त्रोंसे वहाँ अन्धकार-सा छा गया। उस समय बलदेवके छोटे भाई रोहिणीनन्दन वीर सारण कवच धारण किये, हाथीपर बैठकर, बारंबार धनुषकी टंकार करते हुए सबसे आगे आ गये और अपने कोदण्डसे छूटे हुए बाणोंद्वारा शक्रसख-की सेनाका संहार करने लगे। सारणके बाणसमूहोंसे कितने ही वीरोंके दो-दो टुकड़े हो गये। युद्धभूमिमें बहुत-से रथ करवट लेकर वृक्षोंके समान धराशायी हो गये। उस समय जिनके कुम्भस्थल फट गये थे, उन हाथियोंके मोती इधर-उधर गिर रहे थे। बाणोंके अन्धकारमें वे बिखरे हुए मोती रात्रिकालमें तारागणोंके समान चमकने लगे। कटते हुए घोड़ों, पैदल योद्धाओं तथा हाथियोंसे वह समराङ्गण भूतगणोंसे युक्त भूतनाथके क्रीडास्थल महाश्मशान-सा जान पड़ता था। सारणका बल देखकर सब देवता भाग चले। उनके कोदण्ड छिन्न-भिन्न हो गये, कवच चारों ओरसे फट गये ॥ २५-३३ ॥

अपनी सेनाको पलायन करती देख बलवान् शक्रसख धनुष टंकारता हुआ वहाँ आ पहुँचा और बड़े जोरसे मेघकी भाँति गर्जना करने लगा। वीर धनुर्धर बलवान् शक्रसखने समराङ्गणमें अर्जुनको दस, साम्ब और अनिरुद्धको सौ-सौ, गदको दो सौ तथा सारणको एक सहस्र बाण मारे। उसके बाणोंकी मारसे रथी वीर दो-दो घड़ीतक उसी प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे कुम्हारके चाक घूम रहे हों। वह अद्भुत-सी बात हुई। उस तरह चक्कर काटनेसे घोड़े मृत्युके प्रास बन गये, रथोंके बन्धन ढीले पड़ गये, रथियोंके मनमें खेद होने लगा और सारथि भी युद्धमें मूर्च्छित हो गये ॥ ३४-३८ ॥

राजेन्द्र! उस समय जाम्बवतीनन्दन साम्ब दूसरे रथपर आरूढ़ हो बलपूर्वक धनुष टंकारते हुए आये। उन्होंने शक्रसखके धनुषको दस बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला। दो बाणोंसे उसके सारथिको और सौ बाणोंसे घोड़ोंको यमलोक भेजकर सहस्र बाणोंद्वारा उसके रथको भी चूर-चूर कर दिया। धनुषके कट जाने तथा घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए शक्रसखने मतवाले गजराजपर आरूढ़ हो रोषपूर्वक शूल हाथमें ले लिया। बलवान् शक्रसखने उस शूलसे साम्बकी छातीमें चोट की। उस आघातसे साम्बका मन कुछ व्याकुल हो गया ॥ ३९-४२ ॥

शक्रसखका हाथी एक-एक योजनका डग भरता था। उसका रंग कज्जलगिरिके समान काला था। उसकी ऊँचाई चार योजनकी थी। उसके दो दाँत आधे योजनतक आगे निकले हुए थे। वह बड़े जोरसे चिग्घाड़ता था। उसके चार-चार योजन विस्तृत तीन सूँड़ें थीं। उनके द्वारा वह साँकलोंको गिराता, हाथियों और वीरोंको कुचलता तथा रथों और घोड़ोंको इधर-उधर दाँतों और पैरोंसे विनष्ट करता हुआ काल, अन्तक और यमके समान दिखायी देता था। शत्रुसे प्रेरित उस महान् गजराजको आते और विचरते देख यादव-सैनिक भयभीत हो युद्धसे भाग चले ॥ ४३-४६ ॥

उस समय बलदेवजीके छोटे भाई बलवान् गदने गदा लेकर उस वज्र-सरीखी गदासे उक्त गजराजके कुम्भस्थलपर बड़े जोरसे आघात किया। उस आघातसे उसका कुम्भस्थल फट गया और वह हाथी युद्धस्थलमें पंख कटे हुए पर्वतके समान ढह गया। वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४७-४८ ॥

तदनन्तर शक्रसखने ज्यों ही रोषपूर्वक गदा उठानेकी चेष्टा की, त्यों ही गदने अपनी गदासे उसकी छातीमें चोट पहुँचायी। उस आघातसे वह हाथीसहित गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। फिर उठकर उसने युद्धस्थलमें दोनों हाथोंसे गदा उठायी। गद और शक्रसख दोनों इस प्रकार परस्पर गदायुद्ध करने लगे, जैसे रङ्गशालामें दो मल्ल और जंगलमें दो हाथी लड़ रहे हों। तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने अपनी दोनों भुजाओंसे उस वीरको उठा लिया और बलपूर्वक उसे सौ योजन ऊपर उसके नगरमें फेंक दिया। उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगी, विजयकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और सब लोग बारंबार गदकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४९-५३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'शक्रसखका युद्ध' नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

शकुनसका प्रद्युम्नको भेंट अर्पण, प्रद्युम्नका लीलावतीपुरीके स्वयंवरमें सुन्दरीको प्राप्त करना तथा इलावृतवर्षसे लौटकर भारत एवं द्वारकापुरीमें आना

नारदजी कहते हैं—राजन्! अपने नगरमें गिरकर शकुनसखा अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। फिर उस मूर्च्छासे वह उठा। उठनेपर भी एक क्षणतक उसे बड़ी घबराहट रही॥ १॥

तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको परब्रह्म जानकर शकुनसखा बड़ी उतावलीके साथ अपने पाससे भेंट-सामग्री लेकर यादव-सेनाके समीप गया। ऐरावतकुलमें उत्पन्न हुए तीन सूँड़ और चार दाँतवाले श्वेत रंगके एक हजार मदवर्षी हाथी, सुवर्णगिरिपर उत्पन्न हुए दो योजन विस्तृत शरीरवाले तथा दिग्गजोंके समान उन्मत्त पर्वताकार एक करोड़ हाथी, जिनके मुख दिव्य थे और जिनकी गति भी दिव्य थी, करोड़ोंकी संख्यामें उपस्थित किये गये। राजन्! इन सबके साथ सोनेके बने हुए उत्तम दिव्य रथ भी थे, जिनकी संख्या सौ अरब थी। दस हजार विमान भेंटके लिये लाये गये, जो दो-दो योजन विस्तारसे सुशोभित थे। दस लाख कामधेनु गौएँ और एक हजार पारिजात वृक्ष प्रस्तुत किये गये। तड़ागोंमें परिपुष्ट हुए सीपके मोती, जो पत्थरपर चढ़ाकर चमकाये गये थे तथा चमेलीके इत्रसे आर्द्र, शिरीष-कुसुमोंसे सज्जित तथा दूधके फेनकी तरह सफेद करोड़ों शय्याएँ लायी गयीं, जिनपर सुन्दर तकिये भी रखे गये थे। हाथीके दाँतकी बनी हुई उनकी पाटियाँ रत्नोंसे जटित थीं और उनके पायोंमें भी सुवर्ण तथा रत्न जड़े गये थे। विचित्र वितान (चँदोवे) और दीवारोंपर लगाये जानेवाले वस्त्र, करोड़ोंकी संख्यामें भेंट किये गये। छूनेमें कोमल एवं चितकबरे आसन तथा विश्वकर्माद्वारा रचित बड़े-बड़े तकिये दिये गये, जो मोतियोंके गुच्छों और सुवर्ण-रत्न आदिके द्वारा खचित थे। वे सब सहस्रोंकी संख्यामें थे। हजारों परदे, करोड़ों पालकियाँ, छत्र, चँवर और दिव्य सिंहासनोंके साथ करोड़ों व्यजन, जो राजलक्ष्मीके भूषण थे, प्रस्तुत किये गये। कोटि द्रोण अमृत, सुधर्मा सभा, सर्वतोभद्र मण्डल, सहस्रदल कमल, हीरे, पन्ने और मोती दिये गये। कोटि भार गोमेद और नीलम दिये गये, सहस्रों भार सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त और वैदूर्य मणियोंके थे। कोटि भार स्यमन्तक मणियोंके लाये गये थे। नरेश्वर! पद्मराग मणिके भारोंकी संख्या एक अरब थी। जाम्बूनद सुवर्ण, हाटक सुवर्ण तथा सुवर्णगिरिसे प्राप्त सुवर्णोंके भी कोटि-कोटि भार प्रस्तुत किये गये॥ २–१६॥

मैथिलेश्वर! आठ लोकपालोंके आधिपत्यकी रक्षा करनेवाला शकुनसखा अपना राज्य तथा देवताओंकी सम्पूर्ण निधियोंको भेंटके लिये लेकर उद्धवजीके साथ यादव-सेनाके पास गया और कुशलताके लिये वह अद्भुत भेंट अर्पित करके उसने प्रद्युम्नको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। शम्बरशत्रु प्रद्युम्नने संतुष्ट होकर उसे रत्नमाला अर्पित की और उस राज्यपर उसीको पुनः स्थापित कर दिया। राजन्! सत्पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है॥ १७–१९॥

इस प्रकार जिसने प्रद्युम्नको भेंट दी थी, उस शकुनसखको जीतकर वे सेनासहित आगे गये। अब उनके सैनिकोंकी छावनी अरुणोदा नदीके तटपर पड़ी। महामूल्य रत्नोंसे जटित चँदोवे सौ योजनतक तन गये। वहाँ दिव्य पताकाएँ फहराने लगीं और वहाँकी भूमिपर विजय-ध्वजकी स्थापना हो गयी। उन ध्वजा-पताकाओंके कारण वह शिविरसमूह उत्ताल तरंगोंसे युक्त महासागरकी भाँति शोभा पाने लगा॥ २०-२१½॥

राजन्! इसी समय आकाशसे ऐरावतपर चढ़े हुए देवराज इन्द्र सहसा सेनासहित वहाँ उतर आये। देवताओंकी दुन्दुभियाँ भी उनके साथ-साथ बजती आयीं। यह देख सम्पूर्ण यादव-वीरोंने बड़े वेगसे अपने अस्त्र-शस्त्र उठा लिये। पुनः देवराज इन्द्रको पहचानकर समस्त नरेश बड़े प्रसन्न हुए। उस समय इन्द्रने भरी सभामें प्रद्युम्नसे कहा—"महाबाहु नरेश! तुम परावर-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो, अतः मेरी बात सुनो! सुवर्णगिरिके शिखरोंपर लीलावती नामसे प्रसिद्ध एक सुन्दर पुरी है। वहाँ विद्याधरोंके राजा सुकृति राज्य करते हैं। उनकी एक सुन्दरी नामवाली कन्या है, जो सौ चन्द्रमाओंके समान रूप-लावण्यसे सुशोभित और परम सुन्दरी है। राजन्! उसके स्वयंवरमें समस्त लोकपाल और देवता दिव्यरूप धारण करके आये हैं; किंतु वह राजकन्या कहती है कि 'जिसको देखकर मैं मूर्च्छित हो जाऊँगी, वही मेरा पति होगा।' यह बात कहकर वह सुन्दर वर पानेकी इच्छा रखती है। तुम उस उत्सवमें भी अपने समस्त भाइयोंके साथ सहसा चलो और देववृन्दसे अधिष्ठित उस सुन्दर स्वयंवरको देखो"॥ २२–२९॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर भगवान् प्रद्युम्न अपने यदुवंशी भाइयोंसहित देवेन्द्रके साथ सहसा लीलावतीपुरीमें गये । जहाँ स्वयंवर हो रहा था, वहाँका प्राङ्गण बड़ा विशाल था । जड़े गये रत्नोंके कारण उसकी मनोहरता बढ़ गयी थी । उस स्थानपर चन्दन, अगर, कस्तूरी और केसरके द्रवका छिड़काव किया गया था । मोतीकी बंदनवारों, बहुमूल्य वितानों और जाम्बूनद सुवर्णके आसनोंसे वह स्वयंवर-भवन साक्षात् दूसरे इन्द्रलोक-सा शोभा पाता था ॥ ३०—३२ ॥

नरेश्वर ! प्रद्युम्न उस स्वयंवरमें गये और सिंह जैसे किसी पर्वतके शिखरपर बैठता है, उसी प्रकार सबके देखते-देखते एक दिव्य आसनपर विराजमान हुए । मैथिल ! वहाँ जितने प्रजापति, मुनि, देवता, रुद्रगण, मरुद्गण, आदित्यगण, वसुगण, अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार, यम, वरुण, सोम, कुबेर, इन्द्र, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किंनर तथा अन्यान्य सभी समागत एवं रत्नाभरणोंसे विभूषित देव थे, उन्होंने प्रद्युम्नको आया देख अपने विवाहकी आशा छोड़ दी ॥ ३३—३६ ॥

इसी समय सुन्दरी हाथमें रत्नमाला लिये अपने रूप-लावण्यसे रति और रम्भाको भी तिरस्कृत करती हुई-सी निकली । वह वराङ्गी अङ्गना सरस्वती, लक्ष्मी तथा रूपवती शचीकी विडम्बना करती हुई-सी जान पड़ती थी । मैथिल ! जिसे देखकर सब ओर समस्त सभासद् मोहको प्राप्त हो गये, वह लक्ष्मीके समान राजकुमारी सुन्दरी सब लोगोंके सामने अपने लिये योग्य वरकी इस प्रकार खोज करने लगी, मानो चपला नूतन जलधरको ढूँढ़ रही हो ॥३७-३८॥

दिव्याम्बरधारी तथा प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल लोचनवाले नरलोकसुन्दर वीर प्रद्युम्नके पास पहुँचकर वह सुन्दरी विद्याधरी मूर्च्छित हो गयी । फिर थोड़ी ही देरमें उसे चेत हुआ । वह उठी और आनन्दविभोर होकर प्रद्युम्नके गलेमें सुन्दर माला डालकर खड़ी रह गयी । मिथिलेश्वर ! विद्याधरोंके राजा सुकृतिने अपनी पुत्री सुन्दरीको प्रद्युम्नके हाथमें दे दिया । सब ओर माङ्गलिक वाद्य बज उठे, किंतु इस वैवाहिक मङ्गलको देखकर देवतालोग सहन न कर सके । उन लोगोंने उस स्वयंवरको चारों ओरसे उसी प्रकार घेर लिया, जैसे प्रचण्ड मेघोंने सूर्य-देवको आच्छादित कर लिया हो । उन देवताओंको क्रोधके वशीभूत हो धनुष उठाये और युद्धके मदसे उद्धत हुए देख साक्षात् प्रद्युम्न हरिने भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए बाणसहित श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर यादवोंके साथ सिंहनाद किया । मिथिलेश्वर ! उनके धनुषसे छूटे हुए चमकीले बाणोंद्वारा देवताओंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये, उनके कवचोंकी धज्जियाँ उड़ गयीं । जैसे सूर्यकी किरणोंसे कुहासेके बादल फट जाते हैं, उसी प्रकार वे देवता दसों दिशाओंमें भाग खड़े हुए ॥ ३९—४३ ॥

इस प्रकार साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न स्वयंवर जीतकर और इलावृतखण्डपर विजय पाकर भारतवर्षको जानेके लिये उद्यत हुए । भाइयों, यादवों, सैनिकों तथा समस्त मन्त्रीजनोंके साथ विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए वे भारत-खण्डमें आये । अनेक देशोंको देखते हुए जम्बूद्वीप-विजयी बलवान् वीर श्रीकृष्णकुमार क्रमशः आनर्तप्रदेशमें और द्वारकाके देशोंमें आये । प्रद्युम्नके द्वारा भेजे गये बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् उद्धवने राजसभामें पहुँचकर राजा उग्रसेनको तथा भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया । प्रत्येक वर्षमें क्या-क्या हुआ और जम्बूद्वीपपर किस तरह विजय मिली, वह सारा वृत्तान्त उद्धवजीने यथोचित रूपसे कह सुनाया ॥ ४४—४८ ॥

तब राजा उग्रसेन श्रीकृष्ण-बलदेव एवं सम्पूर्ण वृद्धजनोंके साथ प्रद्युम्नको लानेके लिये निकले । गीत-वाद्योंकी ध्वनि तथा वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोषके साथ मोतियों, खीलों और फूलोंकी वर्षापूर्वक मङ्गलपाठ करते हुए लोग उनकी अगवानीके लिये आये । नरेश्वर ! एक गजराजको आगे करके सोनेके कलश, गन्धर्व, अप्सराएँ, शङ्ख, दुन्दुभि, वेणु, गन्ध, अक्षत, सोनेके पात्र, फूल, धूप तथा जौके अङ्कुर साथ लिये राजा उग्रसेन प्रद्युम्नके सम्मुख आये ॥ ४९—५२ ॥

मैथिल ! श्रीकृष्णकुमारने यादव-बन्धुओंके साथ खड्ग ले जाकर महाराज उग्रसेनके सामने रख दिया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया । मीन-केतन प्रद्युम्नने श्रीकृष्ण-बलरामको मस्तक झुकाकर समस्त वृद्धजनोंको प्रणाम करनेके अनन्तर शीघ्र जाकर श्रीगर्गाचार्यके चरणोंमें नमस्कार किया । राजा उग्रसेन भूरि-भूरि प्रशंसा करके, वैदिक-मन्त्रों तथा ब्राह्मणोंके सहयोगसे विधिवत् पूजन करके, प्रद्युम्नको हाथीपर बिठाकर द्वारकापुरीमें गये । द्वारकामें सर्वत्र—घर-घरमें मङ्गल-उत्सव हुआ । नरेश्वर ! इस प्रकार मैंने तुम्हारी पूछी हुई सब बातें कहीं, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ५३—५६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'प्रद्युम्नका द्वारका-गमन' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञमें ऋषियों, ब्राह्मणों, राजाओं, तीर्थों, क्षेत्रों, देवगणों तथा सुहृद्-सम्बन्धियोंका शुभागमन

बहुलाश्वने पूछा—विप्रवर ! आप परावर-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः मुझे यह बताइये कि राजा उग्रसेनने किस प्रकार राजसूय यज्ञका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! तदनन्तर समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजा उग्रसेनने भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे क्रतुराज राजसूयका सम्पादन किया । यदुकुलके आचार्य गर्गजीसे यत्नपूर्वक मुहूर्त पूछकर भाई-बन्धुओं तथा सुहृदोंको निमन्त्रण दिया । अत्यन्त भक्तिभावसे बुलाये जानेपर ऋषि, मुनि तथा ब्राह्मण—सब लोग अपने पुत्रों और शिष्योंके साथ द्वारकामें आये ॥ २—४ ॥

राजन् ! साक्षात् वेदव्यास, शुकदेव, पराशर, मैत्रेय, पैल, सुमन्तु, दुर्वासा, वैशम्पायन, जैमिनि, भार्गव परशुराम, दत्तात्रेय, असित, अङ्गिरा, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, कण्व, विश्वामित्र, शतानन्द, भारद्वाज, गौतम, कपिल, सनकादि, विभाण्ड, पतञ्जलि, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, प्राड्विपाक, मुनिश्रेष्ठ शाण्डिल्य तथा दूसरे-दूसरे मुनि वहाँ शिष्योंसहित पधारे । ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, देवगण, रुद्रगण, आदित्यगण, मरुद्गण, समस्त वसुगण, अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार, यम, वरुण, सोम, कुबेर, गणेश, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व तथा किंनर आदिका शुभागमन हुआ । गन्धर्व-सुन्दरियाँ, अप्सराएँ और समस्त विद्याधरियाँ वहाँ आयीं । वेताल, दानव, दैत्य, प्रह्लाद, बलि, भीषण राक्षसोंके साथ लङ्कापति विभीषण तथा समस्त वानरोंके साथ वायुनन्दन हनुमान् पधारे । भालुओं और दाढ़वाले वन्य पशुओंके साथ बलवान् ऋक्षराज जाम्बवान्‌का आगमन हुआ । समस्त पक्षियोंके साथ बलवान् पक्षिराज गरुड आये । समस्त सर्पगणोंको साथ लिये बलवान् नागराज वासुकि पधारे । सम्पूर्ण कामधेनुओंके साथ गोरूपधारिणी पृथ्वीका आगमन हुआ । समस्त मूर्तिमान् पर्वतोंके साथ मेरु और हिमालय पधारे । गुल्मों, वृक्षों और लताओंके साथ प्रयागके वृक्षराज अक्षयवटका शुभागमन हुआ ॥ ५–१५ ॥

महानदियोंके साथ श्रीगङ्गा और यमुना नदी आयीं । रत्नोंकी भेंटके साथ सातों समुद्र पधारे । ये सब-के-सब उग्रसेनके राजसूय यज्ञमें सहर्ष आये । सात स्वर, तीन ग्राम, नौ अरण्य, महीतलमें नौ ऊसर, विख्यात चौदह गुहा, तीर्थराज प्रयाग, पुष्कर, बदरिकाश्रम, सिद्धाश्रम, कुण्डों और समस्त सरोवरोंसहित विनशन (कुरुक्षेत्र), समस्त उपवनोंके साथ दण्डक आदि वन—ये सब-के-सब समग्र विमल क्षेत्रोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए ॥ १६–१९ ॥

व्रजसे श्रीमान् गिरिराज गोवर्धन, वृन्दावन, दूसरे-दूसरे वन, सरोवर तथा कुण्ड भी पधारे । रानी कीर्तिदा और गोपियोंके साथ गोपिकेश्वरी यशोदा साक्षात् पधारीं । अपने करोड़ों सखी-समूहोंके साथ शिबिकारूढ़ा श्रीराधाका भी शुभागमन हुआ । गोपियोंके सौ यूथ भी द्वारकामें सानन्द पधारे ॥ २०–२२ ॥

जहाँ आजकल गोपी-भूमि है, वहीं उन्हें ठहराया गया । उन्हींके अङ्गरागसे वहाँ गोपीचन्दन प्रकट हुआ । जिसके अङ्गमें गोपीचन्दन लग जाता है, वह मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है ॥ २३ ॥

चारों वर्णोंके सभी लोग उस यज्ञमें उपस्थित हुए थे । प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र, कलिका अवतार साक्षात् दुर्योधन, शाल्व, भीष्म, कर्ण, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, दमघोष, इन्द्रशर्मा, महाराज जयसेन, धृष्टकेतु, भीष्मक, कोसलराज नग्नजित्, बृहत्सेन तथा तुम्हारे पितामह, साक्षात् मिथिलेश्वर धृति तथा अन्य राजा, सुहृद्-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव अपनी रानियों तथा पुत्र-पौत्रोंके साथ उस यज्ञमें पधारे थे ॥ २४–२८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'स्वजन-शुभागमन' नामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पचासवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञका मङ्गलमय उत्सव; देवताओं, ब्राह्मणों तथा अतिथियोंका दान-मानसे सत्कार

नारदजी कहते हैं—राजन् ! अर्थसिद्धिके द्वारभूत पिण्डारक क्षेत्रमें, जो रैवतक पर्वत और समुद्रके बीचमें स्थित है, यज्ञका आरम्भ हुआ । उस यज्ञमें जो कुण्ड बना, उसका विस्तार पाँच योजनका था । ब्रह्मकुण्ड एक योजनका

और पाँच कुण्ड दो कोसमें बनाये गये। वे सभी कुण्ड मेखला, गर्त, विस्तार और वेदियोंके साथ सुन्दर ढंगसे निर्मित हुए थे। वहाँका महान् यज्ञस्तम्भ एक हजार हाथ ऊँचा था। सुवर्णमय यज्ञमण्डपका विस्तार पाँच योजनका था, जो चँदोवों और वंदनवारोंसे सुशोभित था। केलेके खंभे उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ १—४ ॥

भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्ह वंशके यादवोंसे घिरे हुए राजा उग्रसेन देवताओंसे युक्त इन्द्रकी भाँति उस यज्ञमण्डपमें शोभा पाते थे। जैसे परमात्मा अपनी विभूतियोंसे शोभा पाता है, उसी प्रकार परिपूर्णतम भगवान् यज्ञावतार श्रीकृष्ण उस यज्ञमें अपने पुत्रों और पौत्रोंसे सुशोभित होते थे ॥ ५-६ ॥

महान् सम्भारका संचय करके, गर्गाचार्यको गुरु बनाकर यदुराज उग्रसेनने क्रतुश्रेष्ठ राजसूय यज्ञकी दीक्षा ली। मैथिल! उस यज्ञमें दस लाख होता, दस लाख दीक्षित अध्वर्यु और पाँच लाख उद्गाता थे। अग्निकुण्डमें हाथीकी सूँड़के समान मोटी घृतकी धारा गिरायी जाती थी, जिसे खा-पीकर अग्निदेवता अजीर्ण रोगके शिकार हो गये। उन दिनों तीनों लोकोंमें कोई भी जीव भूखे नहीं रह गये। सब देवता सोमपान करके अजीर्णके रोगी हो गये ॥ ७—१० ॥

अपनी धर्मपत्नी रुचिमतीके साथ बलवान् यादवराज उग्रसेनने पिण्डारक तीर्थमें यज्ञका अवभृथ-स्नान किया। वे व्यास आदि मुनीश्वरोंके साथ वेद-मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक नहाये। जैसे दक्षिणासे यज्ञकी शोभा होती है, उसी तरह रानी रुचिमतीके साथ राजा उग्रसेनकी शोभा हुई। देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता उग्रसेनके ऊपर फूल बरसाने लगे। सोनेके हारसे विभूषित चौदह लाख हाथी उग्रसेनने दान किये। सौ अरब घोड़े उन्होंने यज्ञान्तमें दक्षिणाके रूपमें दिये। बहुमूल्य हारों और वस्त्रोंके साथ करोड़ों नवरत्न मुनिवर गर्गाचार्यको भेंट किये। साथ ही उन्हें घर-गृहस्थीके उपकरण भी अर्पित किये। महामनस्वी यादवेन्द्र राजा उग्रसेनने उस यज्ञमें एक हजार हाथी, दस हजार घोड़े और बीस भार सुवर्ण ब्रह्मा बने हुए ब्राह्मणको दिये। जैसे राजा मरुत्तके यज्ञमें ब्राह्मणलोग दक्षिणासे इतने संतुष्ट हुए थे कि अपने-अपने सुवर्णमय पात्र भी छोड़कर चल दिये थे, उसी प्रकार महाराज उग्रसेनके इस यज्ञमें भी ब्राह्मण संतुष्ट तथा हर्षोत्फुल्ल होकर अपने घर लौटे। अपने-अपने भागको पाकर संतुष्ट हुए सब देवता स्वर्गलोकको चले गये। वंदीजनोंको भी बहुत द्रव्य दिया गया, जिससे जय-जयकार करते हुए वे अपने घर गये। राक्षस, दैत्य, वानर, दाढ़वाले पशु तथा पक्षी भी संतुष्ट होकर गये। समस्त नाग भी संतुष्टचित्त होकर अपने-अपने घर पधारे। गौएँ, पर्वत, वृक्ष-समुदाय, नदियाँ, तीर्थ तथा समुद्र—सबको अपना-अपना भाग प्राप्त हुआ और वे सब संतुष्ट होकर अपने-अपने स्थानको पधारे। जो राजा आमन्त्रित किये गये थे, उन्हें भी बहुत भेंट देकर दान-मानके द्वारा उनकी पूजा की गयी और वे सब संतुष्ट होकर अपने-अपने घर गये। नन्द आदि मुख्य-मुख्य गोपोंका पूजन स्वयं श्रीकृष्णने किया। वे सब लोग प्रेम और दानसे प्रसन्न हो व्रजको लौटे ॥ ११—२२½ ॥

राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे राजसूय महायज्ञके मङ्गलमय उत्सवका वर्णन किया। जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहाँ कौन-सा कार्य सफल नहीं होगा? जो मनुष्य सदा इस कथाको पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण, परेश, परमेश्वर और पुराणपुरुष हैं; वे तुमको पवित्र करें। जो मनुष्य उनकी इस विचित्र कथाको सुनते हैं, वे अपने कुलको पवित्र कर देते हैं। विदेहराज! परमेश्वर श्रीहरिने यज्ञके बहाने समस्त भूतलका भार उतार दिया। जो यदुकुलमें चतुर्व्यूह-रूप धारण करके प्रकट हुए, उन अनन्त-गुणशाली भुवन-पालक परमेश्वरको नमस्कार है* ॥ २३—२७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें विश्वजित्खण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें उग्रसेनके महान् अभ्युदयके प्रसङ्गमें 'राजसूय-यज्ञोत्सवका वर्णन' नामक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

विश्वजित्खण्ड सम्पूर्ण

* पूर्णः परेशः परमेश्वरः प्रभुः पुनातु वो यः पुरुषः पुराणः ।
शृण्वन्ति ये तस्य कथां विचित्रां कुर्वन्ति तीर्थं स्वकुलं नरास्ते ॥
छलेन यज्ञस्य हरिः परेश्वरो भारं विदेहेश भुवोऽवतारयत् ।
योऽभूच्चतुर्व्यूहधरो यदोः कुले तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूभृते ॥
(गर्ग०, विश्वजित्० ५० । २६-२७)

श्रीगणेशाय नमः

श्रीबलभद्रखण्ड

पहला अध्याय

श्रीबलभद्रजीके अवतारका कारण

राजा बहुलाश्वने कहा—ब्रह्मन्! आपके श्रीमुखसे मैंने अमृतकी अपेक्षा भी परम मधुर, मङ्गलमय, परम अद्भुत विश्वजित्खण्डका श्रवण किया। महात्मा श्रीकृष्ण परिपूर्णतम भगवान् हैं, उनकी सोलह हजार पत्नियोंमेंसे प्रत्येकके दस-दस पुत्र हुए। मुनिवर! उनके फिर करोड़ों पुत्र और पौत्र उत्पन्न हुए। पृथ्वीके रजकण गिने जा सकते हैं, किंतु कोई विद्वान् कवि भी श्रीकृष्णके वंशजोंकी गणना करनेमें समर्थ नहीं है। महात्मा बलरामजीकी रेवती पत्नी थीं। उनके एक भी पुत्र नहीं हुआ। कृपापूर्वक इसका रहस्य बताइये॥ १—४॥

श्रीनारदजी कहने लगे—तुम्हारा प्रश्न बहुत सुन्दर है। भगवान् अच्युतके बड़े भाई भगवान् संकर्षण कामपाल हैं। उन बलरामजीकी कथा मैं तुम्हारे सामने भलीभाँति वर्णन करूँगा। दुर्योधनके गुरु प्राड्विपाक नामक मुनि योगियोंके और मुनियोंके अधीश्वर थे। वे एक दिन हस्तिनापुर पधारे। दुर्योधनने महान् आदरके साथ उनका विविध उपचारोंके द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजन किया। फिर वे महामूल्यवान् सिंहासनपर विराजित हुए। दुर्योधन उनकी वन्दना और प्रदक्षिणा करके, हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया। फिर अपने मनके संदेहको स्मरण करके उनसे कहा—'भगवान् संकर्षण साक्षात् बलभद्रजीका इस भूमण्डल-में किस कारणसे और किनकी प्रार्थनासे शुभागमन हुआ? उन्होंने मेरे नगरको उलटाकर टेढ़ा कर दिया था। वे मेरे गुरु हैं। मुझको उन्होंने ही गदायुद्ध सिखलाया था। आप उनके प्रभावका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये'॥ ५—९॥

प्राड्विपाक मुनिने कहा—कुरुसत्तम युवराज! यादवश्रेष्ठ बलभद्रजीका प्रभाव सुनो। उसके सुननेसे पापोंका सम्पूर्णतया विनाश हो जाता है। इसी द्वापरके अन्तकी बात है, राजाओंके रूपमें करोड़ों-करोड़ों दैत्यसेनाओंने उत्पन्न होकर पृथ्वीको भयानक भारसे दबा दिया। तब पृथ्वीने गौका रूप धारण करके स्वयम्भू ब्रह्माजीकी शरण ली। देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने सम्पूर्ण देवताओंके और शंकरजीके साथ श्रीवैकुण्ठनाथको आगे किया और भगवान् वामनदेवके बायें पैरके अँगूठेके नखसे कटे हुए ऊर्ध्व ब्रह्माण्डकटाहके छिद्रके द्वारा वे बाहर निकले। वहाँ ब्रह्माजी देवताओंसहित ब्रह्मद्रव (श्रीगङ्गाजी) के समीप उपस्थित हुए और उसमें करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डोंको लुढ़कते देखा। तदनन्तर वे विरजा नदीके तटपर पहुँचे। इसके बाद देवताओंके साथ ब्रह्माने अनन्तकोटि सूर्योंकी ज्योतियोंके समान तेजोमण्डलके दर्शन किये। उन्होंने ध्यान और प्रणाम किया। वहाँ देवताओंसहित ब्रह्माजीको भगवान् संकर्षणके दर्शन हुए। उनके हजार मुख थे और उनका श्रीविग्रह अनन्त गुणोंसे लक्षित था। वे अनन्त भगवान् कुण्डलाकारमें विराजित थे। उन अनन्तकी गोदमें उन्हें वृन्दावन, यमुना नदी, गोवर्धन गिरि, कुञ्ज-निकुञ्ज, लता-बेलोंकी कतारें, भाँति-भाँतिके वृक्ष, गोपाल, गोपी और गोकुलसे परिपूर्ण सर्वलोकके द्वारा नमस्कृत परमसुन्दर गोलोकधामकी उपलब्धि हुई और वहाँ निकुञ्जेश्वर स्वयं भगवान्की अनुमति प्राप्त करके वे अन्तःपुरमें पहुँचे। वहाँ उस निजनिकुञ्जमें साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विराजित थे, जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं। उन राधापति भगवान्की श्यामसुन्दर कान्ति है। वे पीताम्बर पहने हुए हैं। उनके गलेमें वनमाला सुशोभित है और वे वंशी धारण किये हुए हैं। ध्वनि करते हुए स्वर्णके नूपुर, किङ्किणी, कड़े, बाजूबंद, हार, उज्ज्वल आभापूर्ण कौस्तुभमणि तथा अँगूठियोंसे अलंकृत हैं। करोड़ों-करोड़ों बाल-सूर्योंके समान द्युतिवाले किरीट और कुण्डल उन्हें सुशोभित कर रहे हैं। उनका मुख-कमल अलकावलियोंसे समलंकृत है। ऐसे कमल-वदन भगवान्को ब्रह्मा आदि देवताओंने नमस्कार किया और पृथ्वीके भारका सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। भगवान् श्रीकृष्णने उनकी सब बातोंको सुन-जानकर अपने निज जन समस्त देवताओंको पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये यथायोग्य आदेश दिया और सहस्र मुखवाले भगवान्

अनन्तसे वे यों कहने लगे—'हे अनन्त ! तुम पहले वसुदेवजीकी पत्नी देवकीके गर्भमें आकर फिर रोहिणीके उदरसे प्रकट होओ । तदनन्तर मैं देवकीके पुत्रके रूपमें आविर्भूत होऊँगा' ॥ १०–१६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलभद्रके अवतारका कारण' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

श्रीबलभद्रजीके अवतारकी तैयारी

प्राड्विपाक मुनिने कहा—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके कहनेपर हजार मुखवाले अनन्त आनेके लिये तैयार होकर अपनी सभामें आकर विराजित हुए। उसी समय सिद्ध, चारण और गन्धर्वोंने आकर अत्यन्त विनीत भावसे सिर झुकाकर उन्हें सब ओरसे नमस्कार किया। इसके बाद तालके चिह्नसे सुशोभित ध्वजावाले दिव्य रथमें घोड़े जोतकर सुमति नामक सारथि उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। शत्रुकी सेनाका विदारण करनेवाला 'मुसल', दैत्योंका कचूमर निकालनेवाला 'हल' और ब्रह्ममय नामक 'कवच' भी उ..के सामने आकर उपस्थित हो गया। तदनन्तर वहाँ सबके देखते-देखते बलभद्रजीकी सभामें श्रीशेषजी रमावैकुण्ठसे पधारे। उनके एक सहस्र फनोंपर मुकुट सुशोभित थे। सिद्ध-चारणगण तथा पाणिनि और पतञ्जलि आदि मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे। ऐसे वे शेषजी आकर स्तुति करके संकर्षणके श्रीविग्रहमें विलीन हो गये। उसके बाद अजितवैकुण्ठसे सहस्रवदन शेषजीका वहाँ शुभागमन हुआ। वे अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महद् आदि रुद्रोंसे घिरे हुए थे। भयंकर प्रेत और विनायक आदि उनके चारों ओर फैले थे। बलराम-सभामें आकर शेषनागने उनका स्तवन किया और स्तवन करनेके पश्चात् वे उन्हींके शरीरमें विलीन हो गये। तदनन्तर श्वेतद्वीपसे कुमुद और कुमुदाक्ष आदि प्रधान पार्षदोंके द्वारा सेवित, हजार फनोंके ऊपर विराजमान मुकुटोंसे सुशोभित, नीलाम्बरधारी, श्वेतपर्वतके समान प्रभावाले, नील कुन्तलकी कान्तिसे मण्डित, भयंकर रूपवाले शेषजी पधारे और वे भी सबके देखते-देखते अनन्तके देहमें विलीन हो गये। फिर उसी समय इलावृत-वर्षसे शेषजी आये। भगवती पार्वतीकी दासी करोड़ों स्त्रियोंके यूथ उनकी सेवा कर रहे थे। मुकुट-मण्डित हजार मुखोंवाले शेषजी चमचमाते हुए किरीट, कुण्डल और बाजूबंदसे सुशोभित थे। सभामें आकर वे भी भगवान् अनन्तके श्रीविग्रहमें प्रवेश कर गये। तदनन्तर पातालके बत्तीस हजार योजन नीचेसे शेषजी आये। वे हजार मुखवाले शेषजी 'भगवान्‌की तामसी' कलासे सम्पन्न थे। उन्होंने अनन्त सूर्योंके समान प्रकाशमान किरीट धारण कर रक्खा था। व्यास, पराशर, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, नारद, सांख्यायन, पुलस्त्य, बृहस्पति और मैत्रेय आदि महर्षियोंकी संनिधिसे उनकी अपार शोभा हो रही थी। वासुकि, महाशङ्ख, श्वेत, धनंजय, धृतराष्ट्र, कुहक, कालिय, तक्षक, कम्बल, अश्वतर और देवदत्तादि नागराज उन्हें चँवर डुला रहे थे। कस्तूरी, अगर, केसर और चन्दनके द्वारा अनुलिप्त बहुत-सी नागकन्याएँ उनकी सेवा कर रही थीं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व और विद्याधरोंके द्वारा उनका यशोगान हो रहा था। हाटकेश्वर, त्रिपुर, बल, कालकेय, कलि और निवातकवचादि दैत्य उनके अनुयायी होकर आगे-आगे चल रहे थे। ग्यारह रुद्र व्यूहाकारसे उनके आगे-आगे और कस्तूरीमृग, कामधेनु तथा वरुण उनके पीछे चल रहे थे। वीणा, मृदङ्ग, ताल और दुन्दुभिके शब्द हो रहे थे। वे फणिधर गजराजके समान तीव्र गतिसे वहाँ पधारे। उनके एक फनपर यह सारा भूमण्डल सरसोंके दानेकी तरह प्रतीत हो रहा था। ऐसे शेषजी वहाँ आकर भगवान् महा अनन्तके श्रीविग्रहमें प्रविष्ट हो गये ॥ १–८ ॥

सभाके सम्पूर्ण पार्षदोंने इस विचित्र लीलाको देखा और वे उन्हें परिपूर्णतम भगवान् समझकर सर्वथा अवनत और आश्चर्यचकित हो गये। तदनन्तर अनन्तमुख महान् अनन्त भगवान् संकर्षणने सिद्धपार्षदोंसे कहा—'भूमिका भार हरण करनेके लिये मैं भूमण्डलपर चलूँगा। इसलिये तुमलोग आकर यादवकुलमें जन्म ग्रहण करो।' तदनन्तर वे सुमति सारथिसे बोले—'तुम बड़े बलवान् और शूरवीर हो। तुम यहाँ ही रहो। किसी प्रकारका शोक न करो। जिस समय युद्धाभिलाषी होकर मैं तुम्हें याद करूँगा,

उसी समय तालचिह्नित दिव्य रथको लेकर तुम मेरे समीप आ जाना। हे हल और मुसल! मैं जब-जब तुम्हारा स्मरण करूँ, तब-तब तुम मेरे सामने प्रकट हो जाना। कवच! तुम भी वैसे ही प्रकट होना। हे पाणिनि आदि, व्यास आदि तथा कुमुद आदि मुनियो! ग्यारह रुद्रो! हे कोटि-कोटि रुद्रो! गिरिजापति श्रीशंकरजी! गन्धर्वो! वासुकि आदि नागराजो! निवातकवचादि दैत्यो! हे वरुण और कामधेनु! मैं भूमण्डलपर भारतवर्षमें यदुकुलमें अवतार लूँगा। तुम सब वहाँ सदा-सर्वदा मेरा दर्शन करना' ॥ ९—१४ ॥

प्राड्विपाक मुनि कहने लगे—इस प्रकार आज्ञा पाकर वे सभी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। उनके चले जानेके अनन्तर भगवान् अनन्तने नागकन्याओंके यूथसे कहा—'मैं तुम्हारा अभिप्राय जानता हूँ, तुम सभी तपस्याके द्वारा गोपोंके घर जन्म लेकर मेरा दर्शन करना। किसी समय कालिन्दीके तटपर मनोहर रासमण्डलमें तुम्हारे साथ रास करके मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।' तदनन्तर निवातकवचोंके राजा कलिने हाथ जोड़कर प्रभुके चरण कमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पण की और भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक टेककर कहा—'भगवन्! मुझे आज्ञा दीजिये, मेरे लिये क्या काम होगा? आप जहाँ पधारेंगे, वहाँ ही मैं भी चलूँगा। पिताजी! आपके वियोगमें मुझे महान् दुःख होगा; आप भक्तवत्सल हैं, अतएव मुझे साथ ले चलिये।' इस प्रकार प्रार्थना सुनकर भगवान् अनन्तने प्रसन्न हो अपने भक्त कलिराजसे कहा—'तुम मेरे साथ सुखपूर्वक भारतवर्षमें चलो। तुम वहाँ कौरवकुलमें धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनके नाममें विख्यात चक्रवर्ती राजा बनो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम्हें गदायुद्ध सिखाऊँगा।' इस प्रकार कहनेपर उन्हें नमस्कार करके राजा कलि अपने स्थानपर चला गया। उसी कलि तुमने दुर्योधनके रूपमें जन्म लिया है। भगवान् विष्णुकी मायासे तुमको अपने स्वरूपकी स्मृति नहीं है ॥ १५—२० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'बलभद्रजीके अवतारकी तैयारी' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

ज्योतिष्मतीका उपाख्यान

प्राड्विपाक मुनिने कहा—तदनन्तर करोड़ों शारदीय चन्द्रमाओंकी कान्तिवाली स्वयं नागलक्ष्मी महान् रथपर सवार होकर वहाँ पधारीं। करोड़ों सखियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। उन्होंने आकर अपने स्वामी महान् अनन्त भगवान् संकर्षणसे कहा—'भगवन्! मैं भी आपके साथ ही भूमण्डलपर चलूँगी। आपके वियोगकी व्यथा मुझे इतना व्याकुल कर देगी कि मैं अपने प्राणोंको नहीं रख सकूँगी।' नागलक्ष्मीका गला भर आया था। भगवान् अनन्तने, जो समस्त जगत्‌के कारणके भी कारण हैं, भक्तोंका दुःख-निवारण करना ही जिनका स्वभाव है और जिनका श्रीविग्रह ऐरावतके समान बृहत् सर्परूप है, अपनी प्रियाकी यह दशा देखकर कहा—'हे रम्भोरु! तुम शोक मत करो। पृथ्वीपर आकर रेवतीकी देहमें विलीन हो जाओ। फिर मेरी सेवामें उपस्थित हो जाओगी।' यह सुनकर नागलक्ष्मी बोलीं—रेवती कौन हैं, किसकी कन्या हैं और कहाँ रहती हैं—आप विस्तारसे मुझे बताइये।' यह सुनकर भगवान् अनन्तने मुस्कराते हुए अपनी प्रियासे कहा—॥ १—५ ॥

"आदि सृष्टिकी बात है। कद्रूके गर्भसे कश्यपजीके पुत्र-रूपमें मैं उत्पन्न हुआ था। भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे मैंने अखण्ड भूमण्डलको कमण्डलुके समान अपने एक फनपर धारण कर लिया और सब लोकोंसे नीचेके लोकमें आकर मैं विराजित हो गया। मेरे इस प्रकार वहाँ स्थित होनेपर चक्षुष्‌के पुत्र अतिबल चाक्षुष नामक मनु सप्तद्वीपमय अखण्ड पृथ्वीमण्डलके सर्वगुणसम्पन्न सम्राट् हुए, बड़े-बड़े मण्डलेश्वर राजा उनके चरणकमलोंपर अपने मस्तक लिया करते थे। इन्द्रादि देवतागण भी उनका शासन मानते थे। प्रचण्ड धनुषवाले वे चाक्षुष मनु शत्रुओंके समस्त बल-गर्वको चूर्ण करके स्थित थे। उन चाक्षुष मनुके सुद्युम्नादि अनेक पुत्र हुए। तदनन्तर मनुने यज्ञ किया और उनके यज्ञकुण्डसे ज्योतिष्मती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। एक दिन चाक्षुष

मनुने स्नेहवश अपनी उस कन्यासे पूछा—'बताओ, तुम कैसा वर चाहती हो ?' तब कन्याने उत्तर दिया कि 'जो सबसे अधिक बलवान् हों, वे ही मेरे स्वामी बनें।' यह सुनकर राजाने इन्द्रको सबसे अधिक बलवान् समझकर बुलाया। वज्रधारी इन्द्रके सामने आनेपर राजाने आदरपूर्वक उन्हें आसनपर बैठाया और कहा—'आपकी अपेक्षा कोई और अधिक बलवान् है कि नहीं, यह आप सत्य-सत्य बताइये। नहीं तो स्मृति कहती है—पृथ्वी देवीने कहा है कि "सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है; मैं सब कुछ सहन कर सकती हूँ, परंतु मिथ्यावादी मनुष्यका भार मुझसे नहीं सहा जाता *।"' इन्द्रने कहा—'मैं बलवान् नहीं हूँ। वायु देवता मुझसे अधिक बलवान् हैं। मैं उन्हींकी सहायतासे कार्य किया करता हूँ।' यों कहकर इन्द्र चले गये। तब राजाने वायुका आवाहन किया और उनसे पूछा—'सच-सच बताइये, आपसे भी बढ़कर कोई बलवान् है ?' वायु बोले—'पर्वत मुझसे बलवान् हैं; क्योंकि मेरा वेग उन्हें उखाड़ नहीं सकता।' यह कहकर वायु चले गये। तब राजाने पर्वतोंको बुलाया और कहा—'सच बताइये, भूमण्डलमें आपसे अधिक बलवान् कौन है ?' पर्वतोंने उत्तर दिया—'हमलोगोंको अपने ऊपर धारण करनेके कारण भूमण्डल हमसे अधिक बलवान् है।' पर्वत इतना कहकर चले गये। तब राजाने भूमण्डलको बुलाकर पूछा—'सत्य सत्य बताओ, तुमसे भी अधिक कोई शक्ति-सम्पन्न है या नहीं' ॥ ६—१४ ॥

यह सुनकर भूमण्डलने कहा—'मुझसे अधिक बलवान् भगवान् संकर्षण हैं। वे नित्य अनन्त, अनन्त गुणोंके समुद्र हैं। वे आदिदेव हैं, वासुदेवरूप हैं, उनके हजार मुख हैं, उनका विग्रह गजराजके समान विशाल है, वे कैलासके समान उज्ज्वल प्रभावाले हैं, करोड़ों सूर्योंके समान उनकी ज्योति है। वे सुन्दरतामें करोड़ों कामदेवोंके गर्वको चूर्ण करनेवाले हैं। कमल-पत्रके समान उनके सुन्दर नेत्र हैं। वे दिव्य निर्मल कमल-कर्णिकाओंकी मालासे सुशोभित हैं, जिनके परिमलका पान करनेके लिये भ्रमरोंके यूथ गुंजार करते रहते हैं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व और श्रेष्ठ विद्याधरोंके द्वारा जिनका यशोगान होता रहता है; देवता, दानव, सर्प और मुनिगण जिनका सदा आराधन करते हैं और जो सबसे ऊपर विराजमान हैं; जिनके एक मस्तकपर पर्वत, नदी, समुद्र, वन और करोड़ों-करोड़ों प्राणियोंसे अलंकृत अखण्ड भूमण्डल दिखायी देता है और तीनों लोकोंमें जिनका नाम-कीर्तन करनेसे त्रिलोकीका वध करनेवाला भी कैवल्य-मोक्षको प्राप्त करता है—ऐसे प्रभावसम्पन्न, समस्त कारणोंके कारण, सबके ईश्वर और सबसे अधिक शक्तिशाली भगवान् संकर्षण हैं। वे रसातलके मूलभागमें विराजमान हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है' ॥ १५—१७ ॥

महानन्तने कहा—इस प्रकार कहकर भूमण्डलके चले जानेपर मेरे माधुर्य और प्रभावको जानकर ज्योतिष्मतीने पिताकी आज्ञा ली और मुझे प्राप्त करनेके लिये विन्ध्याचल पर्वतपर तप करने चली गयी। उसने लाख वर्षोंतक वहाँ तपस्या की। वह गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निके बीचमें बैठकर तप करती, वर्षामें निरन्तर जल-धाराको सहन करती और सर्दीके दिनोंमें कण्ठपर्यन्त ठंडे जलमें डूबी रहती। वह तपस्याके कालमें नीचे जमीनपर ही सोया करती ॥ १८-१९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें
'ज्योतिष्मतीका उपाख्यान' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

रेवतीका उपाख्यान

श्रीमहानन्तने कहा—तदनन्तर सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिवाली, तपस्यामें संलग्न, नवयौवना, सुन्दरी ज्योतिष्मतीपर इन्द्र, यम, कुबेर, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चरकी दृष्टि पड़ी। उसके रूपको देखकर उनके अंदर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा उद्दीप्त हो उठी और वे सम्मोहित-चित्त हो गये। तब उन्होंने ज्योतिष्मतीके आश्रमपर आकर कहा—'सुन्दरी! रम्भोरु! तुम्हें धन्य है। तुम किसके लिये तप कर रही हो? तुम्हारी अवस्था अभी तपके योग्य नहीं है। तुम अपने मनका अभिप्राय हमलोगोंके

* न हि सत्यात् परो धर्म इति होवाच भूरियम्। सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्॥ (गर्ग०, श्रीबलभद्र० १ । ११)

सामने प्रकट करो ।' यह सुनकर ज्योतिष्मती बोली कि 'हजार मुखवाले भगवान् अनन्त मेरे स्वामी हों, मैं इसीलिये तप कर रही हूँ ।' ज्योतिष्मतीकी यह बात सुनकर इन्द्रादि देवता हँस पड़े और अलग-अलग अपनी बात कहनेको तैयार हो गये । उनमें सबसे पहले इन्द्र यों बोले ॥ १-२ ॥

इन्द्रने कहा—सर्पराजको स्वामी बनानेके लिये तुम व्यर्थ ही तप कर रही हो । मैं देवताओंका राजा हूँ । मैंने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं और मैं स्वयं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ । तुम मुझे वरण कर लो ॥ ३ ॥

यमराज बोले—मैं सारे जगत्के प्राणियोंका दण्ड-विधान करनेवाला यमराज हूँ । तुम मुझे वरण कर लो और पितृलोकमें मेरी सबसे श्रेष्ठ पत्नी होकर रहो ॥ ४ ॥

कुबेरने कहा—वरानने ! मैं सम्पूर्ण धनका स्वामी हूँ । तुम मुझे राजाधिराज समझो और संकर्षणके प्रति प्रीति छोड़कर शीघ्र मुझे पतिरूपमें वरण कर लो ॥ ५ ॥

अग्निदेव बोले—विशाललोचने ! मैं सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रतिष्ठित, समस्त देवताओंका मुखरूप हूँ । अन्य सभीके प्रति वासनाका त्याग करके तुम मुझे भजो ॥ ६ ॥

वरुणने कहा—भामिनी ! मैं जलचरोंका स्वामी एवं लोकपाल हूँ । मेरे हाथमें सदा पाश रहता है । सातों समुद्रोंका ऐश्वर्य मेरा ही वैभव है । यह समझकर तुम मुझे पतिरूपमें वरण करो ॥ ७ ॥

सूर्यदेवता बोले—हे चाक्षुषात्मजे ! मैं जगत्का नेत्र हूँ । मेरी प्रचण्ड किरणें सर्वत्र व्याप्त रहती हैं । अतएव पातालमें रहनेवाले अनन्तका त्याग करके तुम स्वर्गके आभूषणरूप मुझको वरण करो ॥ ८ ॥

चन्द्रमाने कहा—मैं ओषधियोंका अधीश्वर, नक्षत्रों-का राजा, अमृतकी खान एवं ब्राह्मणश्रेष्ठ हूँ और कामिनियोंको बल प्रदान करनेवाला हूँ । हे गजगामिनी ! तुम मेरी उपासना करो ॥ ९ ॥

मङ्गल बोले—यह पृथ्वी मेरी माता है और साक्षात् उरुक्रम भगवान् मेरे पिता हैं । मेरा नाम मङ्गल है । हे कल्याणी ! संसारके विपुल कल्याणकी कामना करनेवाली तुम मुझे अपना पति बनाओ ॥ १० ॥

बुधने कहा—मैं बुद्धिमान्, शूरवीर और कामिनियों-के रसको बढ़ानेवाला बुध हूँ । तुम सब देवताओंका परित्याग करके मेरे साथ आनन्दका अनुभव करो ॥ ११ ॥

बृहस्पति बोले—'मैं देवताओंका आचार्य, बुद्धिमान्, वाणीका स्वामी साक्षात् बृहस्पति हूँ । हे शुभे ! यह समझकर तुम मेरी उपासना करो ॥ १२ ॥

शुक्रने कहा—मैं दैत्योंका गुरु, भृगुके वंशमें उत्पन्न साक्षात् कवि हूँ । महाप्राज्ञे ! तुम अपने कल्याणकी बात सोचकर मेरी भामिनी बन जाओ ॥ १३ ॥

शनि बोले—कल्याणी ! मैं सबसे अधिक बलवान् हूँ । देवताओंके ऊपर भी मेरा प्रभाव है । अपनी दृष्टिसे सारे संसारको भस्म कर डालनेकी मुझमें शक्ति है । अतएव सारी चिन्ताओंका त्याग करके तुम मुझे पतिरूपमें वरण कर लो ॥ १४ ॥

भगवान् महानन्तने कहा—इन सबकी बात सुनते ही ज्योतिष्मतीके नेत्र लाल हो गये, उनका अधर काँपने लगा और भौंहें टेढ़ी हो गयीं । क्रोधकी आग भड़क उठी । फिर उन्होंने मेरा स्मरण किया और अत्यन्त क्रोधके आवेशमें आ गयीं । ज्योतिष्मतीके क्रोधसे ब्रह्मलोकसे लेकर पाताल एवं भूमण्डलसहित सारा ब्रह्माण्ड काँप उठा । सब ओर महान् भय छा गया ॥ १५-१६ ॥

यह देखते ही शापके भयसे काँपते हुए इन्द्रादि देवताओंने सब दिशाओंसे पूजनकी सामग्री ली और ज्योतिष्मतीके चरण-कमलोंपर गिरकर वे 'बचाओ ! बचाओ !!' पुकारने लगे । इन्द्रादि देवताओंके द्वारा इस प्रकार शान्त करनेका प्रयत्न करनेपर भी ज्योतिष्मतीने उन्हें पृथक्-पृथक् शाप दे दिया ॥ १७ ॥

ज्योतिष्मती बोली—शनि ! तू दुष्ट है, मुझे छलनेके लिये यहाँ आया है । तू अभी पङ्गु हो जा । तेरी नीची दृष्टि हो जाय । तू अत्यन्त काला-कलूटा और दुबला-पतला हो जा, निन्दनीय काले उड़द खाया कर और काले तिलका तेल पिया कर । शुक्र ! तू अभी एक आँखसे काना हो जा । बृहस्पति ! तू स्त्रीभावको प्राप्त हो जा । बुध ! तेरा वार (दिन) निष्फल हो जाय । बुधवारको किसीके कुछ कहने और कहीं यात्रा करनेपर सफलता नहीं मिलेगी । मङ्गल ! तू बंदरके समान मुखवाला हो जा ।

चन्द्रमा ! तेरे राजयक्ष्माका रोग हो जाय । सूर्य ! तेरे दाँत टूट जायँ । वरुण ! तू जलोदर रोगका शिकार हो जा । अग्नि ! तू सब कुछ खानेवाला बन जा । कुबेर ! तेरा पुष्पक विमान छिन जाय । यमराज ! बलवान् राक्षस युद्धमें तेरा मान-भङ्ग करें और तू शक्तिशाली राक्षसोंसे युद्धमें हार जा । देवाधम इन्द्र ! तू मुझे हरनेके लिये आया है और अपने मुँहसे तूने परमात्माकी निन्दा की है । स्वर्गमें किसी राजाके द्वारा तेरी पत्नी शची हर ली जायगी, वह स्वर्ग-सुखका भोग करेगा और तू वहाँसे भगा दिया जायगा । अरे स्वर्गके राजा ! किसी राक्षसके द्वारा युद्धमें तेरी हार होगी । तू पाशमें बाँधा जायगा और वे लङ्कापुरीमें ले जाकर तुझे अन्धकारपूर्ण कारागारमें डाल देंगे ॥ १८—२३ ॥

भगवान् महानन्त बोले—तदनन्तर ज्योतिष्मतीके द्वारा शापको प्राप्तकर देवताओंके बीच इन्द्र कुपित हो गये और इन्द्रने भी ज्योतिष्मतीको शाप दे दिया—'हे क्रोधकारिणी ! संकर्षणको पतिके रूपमें प्राप्त करके भी इस जन्म अथवा दूसरे जन्ममें अथवा कभी तुम्हारे घरमें पुत्रोत्सव नहीं होगा ।' इन्द्र ज्योतिष्मतीके तेजसे बड़े तिरस्कृत हो गये थे । उन्होंने इस प्रकार कहकर सारे देवताओंके साथ स्वर्ग-की यात्रा की । ज्योतिष्मती फिर तपस्यामें लग गयी ॥ २४ ॥

तदनन्तर सारे जगत्के कारणभूत ब्रह्माजीकी दृष्टि ज्योतिष्मतीके तपकी ओर गयी और वे हंसपर सवार होकर ब्रह्मविद् ब्राह्मण और ब्राह्मी आदि शक्तियोंके साथ अपने भवनसे वहाँ पधारे । आकाशमें ही स्थित हुए ब्रह्माने उसको सम्बोधन करके कहा—'ज्योतिष्मती, चाक्षुष मनुकी पुत्री ! तुम्हारा तप सफल हो गया । इस तपमें तुम सिद्ध हो गयी । मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम वर माँगो' ॥ २५-२६ ॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर ज्योतिष्मती कण्ठपर्यन्त जलसे बाहर निकली । उसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया, उनका स्तवन किया और वह हाथ जोड़कर कहने लगी—'भगवन् ! यदि निश्चय ही आप मुझपर प्रसन्न हैं तो हजार मुखवाले भगवान् संकर्षण मेरे पति हों, यह मुझे वर दीजिये ।' देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने यह सुनकर उत्तरमें कहा—'पुत्री ! तुम्हारा मनोरथ दुर्लभ है, तथापि मैं उसे पूर्ण करूँगा । आजसे ही वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ हुआ है । इसकी सत्ताईस चतुर्युगी बीत जानेपर भगवान् संकर्षण तुम्हारे पति होंगे ।' यह सुनकर ज्योतिष्मतीने ब्रह्माजीसे कहा—'देवदेव भगवन् ! यह तो बड़ा लंबा समय है । आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, अतएव मेरा मनोरथ शीघ्र पूर्ण कीजिये । नहीं तो, जैसे मैंने देवताओंको शाप दिया है, वैसे ही आपको भी शाप दे दूँगी ।'

ज्योतिष्मतीके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्माजी शापके भयसे डर गये और क्षणभर विचार करनेके बाद बोले—'राजकुमारी ! तुम आनर्त देशके राजा रेवतके यहाँ कन्या बनो । वे राजा कुशस्थलीमें वर्तमान हैं । फिर इसी जन्ममें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा । किसी कारणसे सत्ताईस चतुर्युगीका समय एक घड़ीके समान बीत जायगा ।' ज्योतिष्मतीको इस प्रकार वर देकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २७—३० ॥

तदनन्तर ज्योतिष्मतीने आनर्त देशमें कुशस्थलीके राजा रेवतकी पत्नीसे जन्म धारण किया । उस समय उसका नाम रेवती रक्खा गया । वह रूप, गुण और उदारतासे सुशोभित, नूतन कमलके समान नेत्रवाली रेवती विवाहके योग्य हो गयी ॥ ३१ ॥

एक दिन राजा रेवत अन्तःपुरमें अपनी भार्याके साथ बैठे थे । उन्होंने स्नेहवश कन्यासे कहा—'तुम कैसा वर चाहती हो, बताओ ।' यह सुनकर उसी समय रेवतीने कहा—'जो सबमें बलवान् हैं, वही मेरे पति हों' ॥ ३२ ॥

यह सुनकर राजा रेवत कन्याको लेकर, अपनी भार्याके साथ दीर्घायु बलवान् वरकी खोजके लिये रथपर सवार हो सभी लोकोंको लाँघते हुए ब्रह्मलोकको गये । वहाँ घड़ीभर ठहरे । इतनेमें ही पृथ्वीलोकके सत्ताईस चतुर्युगोंका समय पूरा हो गया । महानन्तने नागलक्ष्मीसे कहा—'रम्भोरु ! वह रेवती अब भी ब्रह्मलोकमें ही है । तुम उसकी देहमें प्रवेश कर जाओ और आवेशावतारिणी बनो । तदनन्तर द्वारकामें आकर मेरे साथ आनन्दका उपभोग करना' ॥ ३३-३४ ॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—नागलक्ष्मीने महानन्तके इन वचनोंको सुनकर अपने स्वामी भगवान् संकर्षणकी आज्ञा ली और ब्रह्मलोकमें जाकर रेवतीके विग्रहमें आविष्ट हो गयी ॥ ३५ ॥

कौरवेन्द्र दुर्योधन ! तदनन्तर भगवान् संकर्षण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये सर्वलोकनमस्कृत गोलोक-

धाममें पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। यही भगवान् बलभद्रजीका आविर्भाव-वृत्तान्त है। मैंने यह तुमको सुनाया है। यह समस्त पापोंका नाश करनेवाला और परम मङ्गलमय है। युवराज! अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'रेवती-उपाख्यान' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीबलराम और श्रीकृष्णका प्राकट्य

दुर्योधनने कहा—मुनिराज! पूर्वजन्ममें मैं भगवान् संकर्षणका भक्त था, अतः मैं धन्य हूँ। आपने मुझे यह स्मरण करा दिया। साथ ही भगवान् वासुदेवकी प्रभावयुक्त परम अद्भुत महिमा भी आपने सुनायी। अब यह बतलानेकी कृपा कीजिये कि भगवान् बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर अपने पिताकी नगरी मथुरासे व्रजमें कैसे गमन किया और व्रजवासियोंसे वे गुप्तरूपमें किस प्रकार रहे ॥ १ ॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—यादवोंकी पुरी मथुरामें राजा उग्रसेन थे। एक समय उनके बड़े भाई देवककी कन्या देवकीसे वसुदेवजीका विवाह हुआ। विवाहके उपरान्त वर-वधूकी विदाईके समय उग्रसेननन्दन कंस स्वयं वसुदेव-देवकीका रथ चलाने लगा। उसी समय आकाशवाणी हुई—'अरे निर्बोध! तू जिसका रथ चला रहा है, उसीका आठवाँ गर्भ तेरा विनाश करेगा।' यह सुनते ही कालनेमि-तनय महान् दैत्य कंस हाथमें तलवार लेकर बहिन देवकीका वध करनेको तैयार हो गया। उसी क्षण वसुदेवजीने कंसको समझाकर कहा कि 'तुम इसका वध मत करो। जिनसे तुमको और मुझको भी भय हो रहा है, देवकीके गर्भसे उत्पन्न वे जितने पुत्र होंगे, मैं सबको लाकर तुम्हें दे दूँगा।' वसुदेवजीकी बातपर विश्वास करके कंसने देवकी, वसुदेव दोनोंको कारागारमें बंद करवा दिया और वह निश्चिन्त हो गया।

तदनन्तर देवकीके पहला पुत्र उत्पन्न हुआ। वसुदेवजीने उसे तुरंत लाकर कंसको दे दिया। कंसने समझा, वसुदेवजी बड़े सत्यवादी हैं। अतएव उसने लड़केका वध नहीं किया। इसके उपरान्त उसके यहाँ नारदजी पधारे और उन्होंने कहा—'जैसे ग्रहोंकी टेढ़ी चाल है, वैसे ही देवताओंकी चाल भी उल्टी होती है। सम्भव है, इधर-उधरसे गिननेपर यही लड़का आठवाँ माना जाय और तुम्हारा शत्रु बने। विशेष बात तो यह है कि सारे यादवोंके रूपमें देवता ही अवतीर्ण हैं और वे सभी तुम्हारा वध चाहते हैं।' नारदजीसे इस प्रकारकी बात सुनी, तबसे कंस देवकीसे उत्पन्न प्रत्येक लड़केको मारने लगा। उस समय कंसके भयसे यादवोंमें भगदड़ मच गयी और वे महान् कष्टोंका अनुभव करने लगे। तदनन्तर देवकीके सातवें गर्भमें भगवान् अनन्तका आगमन हुआ। वसुदेवजीकी एक दूसरी पत्नी रोहिणी भी कंसके भयसे नन्दबाबाके यहाँ गोकुलमें रहा करती थीं। भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर योगमाया भगवान् अनन्तको देवकीके उदरसे खींचकर वसुदेव-पत्नी रोहिणीके गर्भमें स्थापित करनेको तैयार हो गयी ॥ २—७ ॥

वहाँ ये श्लोक हैं—

देवक्याः सप्तमे गर्भे हर्षशोकविवर्धने ।
व्रजं प्रणीते रोहिण्यामनन्ते योगमायया ॥
अहो गर्भः क्व विगत इत्यूचुर्मथुरा जनाः ॥ ८ ॥

अथ व्रजे पञ्चदिनेषु भाद्रे
स्वातौ च षष्ठ्यां च सिते बुधे च ।
उच्चैर्ग्रहैः पञ्चभिरावृते च
लग्ने तुलाख्ये दिनमध्यदेशे ॥ ९ ॥

सुरेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं
घनेषु मुञ्चत्सु च वारिबिन्दून् ।
बभूव देवो वसुदेवपत्न्यां
विभासयन् नन्दगृहं स्वभासा ॥ १० ॥

नन्दोऽपि कुर्वन् शिशुजातकर्म
दत्वा द्विजेभ्यो नियुतं गवां च ।
गोपान् समाहूय सुगायकांश्च
रावैर्महामङ्गलमाततान ॥ ११ ॥

देवकीका सातवाँ गर्भ एक ही साथ हर्ष और शोक बढ़ानेवाला था। योगमायाने उसे व्रजमें ले जाकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया। तब मथुराके लोगोंने कहा—'अहो! देवकीका गर्भ कहाँ चला गया? बड़े आश्चर्यकी बात है!' उसके पाँच दिन बाद भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको, जो स्वाति नक्षत्र और बुधवारसे युक्त थी, मध्याह्नके समय, तुला लग्नमें, जब पाँच ग्रह उच्चके होकर स्थित थे, व्रजमें वसुदेव-पत्नी रोहिणीके गर्भसे अपने तेजके द्वारा नन्द-भवनको उद्भासित करते हुए महात्मा बलरामजी प्रकट हुए। उस समय मेघोंने जलबिन्दु बरसाये और देवताओंने पुष्पोंकी वृष्टि की। नन्दजीने शिशुका जातकर्म-संस्कार करवाया। ब्राह्मणोंको दस लाख गौएँ दानमें दीं, फिर गोपोंको बुलाकर अच्छे-अच्छे गायकोंके संगीतके साथ महा-महोत्सव मनाया॥ ८–११॥

तदनन्तर देवकीके आठवें गर्भसे अर्द्धरात्रिके समय परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए। उसी समय इधर नन्दरानी यशोदाजीके गर्भसे कन्याके रूपमें योगमाया प्रकट हुई। योगमायाके प्रभावसे सारा जगत् सो गया था। तब भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे वसुदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर यमुनाके उस पार वृन्दावनमें पहुँच गये और यशोदाके शयनागारमें जाकर उन्होंने यशोदाकी गोदमें बालक श्रीकृष्णको सुला दिया और कन्याको लेकर वे अपने स्थानपर लौट आये। इसके बाद कारागारमें बालककी रुदन-ध्वनि सुनायी पड़ी। शत्रुके भयसे डरा हुआ कंस तुरंत आ पहुँचा और उसने तत्काल उत्पन्न हुई उस कन्याको उठा लिया एवं उसे एक शिलापर पटक दिया। ठीक उसी समय कंसके हाथसे छूटकर कन्या बड़े जोरसे उछली और ऊपर आकाशमें जाकर योगमायाके रूपमें परिणत हो गयी। सिद्ध, चारण, गन्धर्व और मुनिगण उनका स्तवन कर रहे थे। योगमायाने कंससे कहा—'रे दुष्ट! तेरा पूर्वका शत्रु कहीं उत्पन्न हो चुका है। तू इन बेचारे दीन वसुदेव-देवकीको व्यर्थ ही क्यों कष्ट दे रहा है?' इस प्रकार कहकर वे योगमाया विन्ध्याचलको चली गयीं।

देवीके इन वचनोंसे कंस बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। फिर उसने देवकी और वसुदेवको तो छोड़ दिया और पूतना आदि दैत्योंको बुलाकर आज्ञा दी कि 'दस दिनके अंदर पैदा हुए जितने भी बालक हों, सबको मार डालो।' कंसकी आज्ञा पाकर दैत्यगण बालकोंका वध करने लगे। इधर नन्दने भी पुत्र-जन्म सुनकर महान् उत्सव मनानेकी योजना की। हे कुरुराज! इस प्रकार कंसके भयके बहाने भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण व्रजमें पधारे। वे अपनी मायासे ही वहाँ गुप्तरूपमें रहे और व्रजवासियोंपर कृपा करनेके लिये व्रजमें प्रकट होते ही विविध प्रकारकी अद्भुत बाल-लीला करने लगे। अब तुम क्या सुनना चाहते हो?॥ १२—१६॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलराम और श्रीकृष्णका प्राकट्य' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

प्राड्विपाक मुनिके द्वारा श्रीराम-कृष्णकी व्रजलीलाका वर्णन

दुर्योधनने पूछा—मुनिराज! भगवान् अनन्त श्रीबलरामजी और अनन्त-लीलाकारी भगवान् श्रीकृष्णने भूमण्डलपर अवतार लेकर विचरण किया। अब संक्षेपमें यह बतानेकी कृपा कीजिये कि व्रजमें, मथुरामें, द्वारकामें और अन्यत्र उन्होंने क्या-क्या लीलाएँ कीं?॥ १॥

प्राड्विपाक मुनिने उत्तर दिया—दुर्योधन! भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होते ही अद्भुत लीला आरम्भ कर दी। उन्होंने पूतनाको मोक्ष प्रदान किया, शकटासुर और तृणावर्तका उद्धार किया, (माताको) विश्वरूप दिखलाया, दधिकी चोरी की, अपने श्रीमुखमें ब्रह्माण्डके दर्शन करवाये, यमलार्जुन वृक्षोंको उखाड़ा और दुर्वासाजीको मायाका प्रभाव दिखलाया। श्रीमद्गर्गाचार्यजीके द्वारा राधाकृष्ण नामकी सुन्दरता और महिमाका वर्णन कराया। ब्रह्माजीने वृषभानुराजनन्दिनी राधिकाके साथ भाण्डीर-वनके रास-मण्डलमें श्रीकृष्णका विवाह करवाया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, बलराम दोनोंने वृन्दावन आकर वत्सासुर और बकासुर आदि दानवोंका संहार

किया, गोपालोंके साथ गायें चराते हुए वृन्दावनमें विचरण किया। फिर तालवनमें गधेके समान रेंकनेवाला जो धेनुकासुर दैत्य रहता था, उसने अपनी दुलत्ती चलाकर बलरामजीको चोट पहुँचानेकी चेष्टा की। तब शक्तिशाली बलदेवजीने दोनों हाथोंसे उसे पकड़कर ताड़के वृक्षपर दे मारा। वह फिर उठकर सामने आया तो बलरामजीने उसे पुनः जमीनपर दे पटका। फलतः उसका सिर फूट गया और वह मूर्च्छित हो गया। तब बलरामजीने शीघ्र ही उसके एक मुक्का मारा, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। तदनन्तर श्रीकृष्णने कालियनागका दमन, दावाग्नि-पान आदि लीलाएँ कीं, फिर श्रीराधिकाजीके प्रति प्रेम-प्रकाश करके उनके प्रेमकी परीक्षा ली, वृन्दावनमें विहार किया, हाव-भावयुक्त दानलीला और मानलीला, शङ्ख-चूडादिका वध और शिवासुरि-उपाख्यान इत्यादिके प्रवचनकी बहुत-सी लीलाएँ कीं।

तदनन्तर एक समय गोवर्धन-पूजा की गयी। इन्द्रने यज्ञ-भागसे वञ्चित होनेपर कुपित होकर सांवर्तक आदि मेघोंके द्वारा व्रजमण्डलपर घोर वर्षा आरम्भ कर दी। सारे व्रजवासी भयसे व्याकुल हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने उनको आतुर देखकर—'डरो मत' यों कहकर अभय दान दिया। फिर उन्होंने गिरिराज गोवर्धनको उखाड़कर, जैसे बालक छत्रक (कुकुरमुत्ता) को उठा लेता है, ठीक वैसे ही गोवर्धनको अपने एक हाथपर रख लिया। सात वर्षकी अवस्थावाले श्रीकृष्ण पूरे सात दिनोंतक पर्वत-को हाथपर उठाये बिना हिले-डुले अविचल खड़े रहे। तब तो सम्पूर्ण देवताओंके साथ इन्द्र भयभीत हो गये और उन्होंने अत्यन्त नम्रताके साथ मुकुट झुकाकर भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय युगल चरणोंमें प्रणाम किया, उनकी स्तुति की और अभिषेक किया। तदनन्तर कामधेनु सुरभि और देवता तथा मुनियोंके साथ वे स्वर्गको चले गये। गोवर्धन-धारणकी इस अद्भुत लीलाको देखकर सभी गोप अत्यन्त विस्मित हो गये। फिर श्रीकृष्णने खेतमें मोती आदिके बीज बोकर मोती उपजानेका चमत्कार-मय ऐश्वर्य गोपोंको दिखलाया ॥ २—८ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, मैथिली, कोसलदेशनिवासिनी, अयोध्यावासिनी, यज्ञसीता, पुलिन्दका, रमावैकुण्ठवासिनी तथा श्वेतद्वीपनिवासिनी, ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिनी, अजितपदवासिनी, श्रीलोकाचल-निवासिनी, दिव्या, अदिव्या, त्रिगुणवृत्ति, भूमि, गोपी, देवश्री, जालंधरी, माहिष्मती, पुरन्ध्री, अप्सरा, सुतलवासिनी और नागेन्द्रकन्या आदि गोपीयूथोंके साथ पृथक्-पृथक् रास-मण्डलकी रचना की ॥ ९ ॥

एक समय श्रीबलरामजीके साथ श्रीकृष्णचन्द्र भाण्डीर-वनमें गोपबालकोंके साथ गौएँ चराने गये। वहाँ आकर एक दूसरेको ढोने और ढोवानेका खेल करने लगे। उस समय वहाँ प्रलम्बासुर नामक एक दैत्य गोप-बालकका वेश धारणकर खेलमें शामिल हो गया, बलरामजी उसपर विजयी हुए। अतः उन्हें पीठपर चढ़ाकर वह चलने लगा। वह गिरिराजके समान विशाल देहवाला असुर मथुराकी ओर जाना चाहता था कि उस असुरकी पीठपर सवार अमित-पराक्रमी श्रीबलदेवजीने, रोषमें भरकर जैसे इन्द्र किसी पर्वतपर प्रहार करे, वैसे ही उसके मस्तकपर मुष्टि-प्रहार किया। उस प्रहारसे वज्रकी चोट खाये हुए पहाड़की तरह असुरका सिर टूक-टूक हो गया और उसी क्षण वह भूमिपर गिर पड़ा ॥ १०-११ ॥

एक समय गरमीके दिनोंमें सभी गौएँ और गोपाल किसी मूँजके वनमें जा पहुँचे। इतनेमें ही वहाँ बड़े जोरकी प्रलयाग्निके समान दावाग्नि जल उठी और वह चारों तरफ फैल गयी। तब गोपालगण 'हे राम! हे कृष्ण! हम शरणागत गोपालोंकी रक्षा करो, रक्षा करो।' यों पुकार उठे। भगवान्ने तुरंत कहा—'डरो मत। तुम सब अपनी-अपनी आँखें मूँद लो।' यों कहकर भगवान् उस भीषण दावाग्निको पी गये। तदनन्तर गोपाल और गायोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण भाण्डीर-वनसे यमुनाके तटपर पधारे और अशोक-वनमें यज्ञदीक्षित द्विजोंकी पत्नियोंके द्वारा लाया हुआ भोजन ग्रहण किया। इसके बाद एक दिन व्रजमें नन्दबाबा-को वरुण देवताने अपहरण कर लिया, तब भगवान्ने वरुणका मान-भङ्ग करके नन्द आदि गोपोंको सम्पूर्ण लोकोंके द्वारा नमस्कृत वैकुण्ठके दर्शन कराये। इसके अनन्तर एक दिन अम्बिका-काननमें सरस्वती नदीके तटपर सुदर्शन नामक सर्प नन्दजीको निगलने लगा। तब भगवान् श्रीकृष्णने अखिल लोकपालोंके द्वारा वन्दनीय अपने चरण-कमलका उससे स्पर्श कराया। चरण-स्पर्श प्राप्त होते ही वह सर्प-शरीरसे मुक्त हो गया। एक समय श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ गोप-बालकोंको लिये आँखमिचौनी और चोर-साहूकार

का खेल खेल रहे थे। उसी समय कंसका सखा व्योमासुर चोरके रूपमें वहाँ आया। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्रचण्ड दोनों भुजाओंसे उसे पकड़कर दसों दिशाओंमें घुमाते हुए पृथ्वीपर पटक दिया। इसी प्रकार कंसका भेजा हुआ अरिष्टासुर बैलके रूपमें आया। भगवान्ने उसके दोनों सींग पकड़कर उसे भी धराशायी कर दिया। तब नारदजीने आकर कंसको श्रीकृष्णकी ये सारी लीलाएँ सुनायीं। सुनकर कंसने केशीको भेजा, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके मुहँमें अपनी भुजा प्रवेश कराकर उसके मर्मको भेद डाला। श्रीकृष्णने इस प्रकार बलरामजी-के साथ व्रज-मण्डलमें अनेक अद्भुत लीलाओंकी रचना की ॥ १२—१७ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीरामकृष्णकी व्रजलीलाका वर्णन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

श्रीराम-कृष्णकी मथुरा-लीलाका वर्णन

श्रीप्राड्विपाक मुनि बोले—युवराज दुर्योधन ! भगवान् बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्रने मथुरामें जो-जो लीलाएँ कीं, उनका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ। सुनो। कुछ समयके पश्चात् कालनेमिकुमार कंसने बलराम और श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरजीको भेजा। अक्रूरजी व्रजमें पधारे। श्रीकृष्णको मथुरा जानेके लिये प्रस्तुत देखकर गोपियाँ विरहसे आतुर हो गयीं। भगवान्ने उन सबको अलग-अलग बुलाकर आश्वासन दिया। फिर बलरामजीसहित स्वयं रथपर सवार होकर अक्रूरजीके साथ मथुराकी ओर चले। जाते समय रास्तेमें यमुनाजी पड़ीं। उनके जलमें भगवान्ने अक्रूरको अपने तेज या धामके दर्शन कराये। तदनन्तर पूर्वाह्नके समय वे मथुरामें जा पहुँचे और अपराह्नकालतक मथुरापुरीको सब ओरसे देखते रहे। लीलारूपमें मनुष्यका वेष धारण किये हुए श्रीराम-कृष्ण साक्षात् पुराण-पुरुष हैं। मथुरा नगरीके सभी नर-नारियोंके मनमें उनके दर्शनका आनन्द प्राप्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी और वे अपना सारा काम-धाम छोड़कर, जैसे नदियाँ समुद्रकी ओर दौड़ती हैं, वैसे ही उनकी ओर दौड़ पड़े। कोटि-कोटि कामदेवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले भगवान् राम-कृष्णने अपना सौन्दर्य सबको दिखलाया और उन सबका मन हरण करते हुए वे स्वेच्छासे विचरण करने लगे ॥ १—३ ॥

तदनन्तर राजमार्गमें भगवान्ने धोबी और रँगरेजसे कपड़ोंकी याचना की; परंतु उन्होंने जब वस्त्र नहीं दिये, तब सबके देखते-देखते ही हाथोंसे प्रहार करके धोबी और रँगरेज दोनोंको इस जीवनसे मुक्त कर दिया। तदनन्तर भगवान्को एक दर्जी मिला। उसने वस्त्रोंके द्वारा उनको सजाया और भगवान्ने उसे अपना सारूप्य प्रदान कर दिया। फिर कुब्जा सैरन्ध्री मिली। वह तीन जगहसे टेढ़ी थी। चन्दन-ग्रहण करनेके बहाने भगवान्ने उसको सीधी कर दिया। वह तीनों लोकोंमें सुन्दरी बन गयी। तत्पश्चात् वहाँके वैश्य व्यापारियों-से बातचीत की और कुछ बच्चोंको साथ लेकर, जहाँ कंसका धनुष रक्खा था, उस स्थानपर वे जा पहुँचे। वह धनुष स्वर्णसे मण्डित था और सात ताड़ वृक्षोंके बराबर उसकी लंबाई थी। हजारों पुरुषोंके द्वारा भी वह उठाया नहीं जा सकता था। वह धनुष अष्टधातुसे बना हुआ था, अत्यन्त भारी था और उसका बोझ लाख भारके समान था। कंसने वह धनुष परशुरामजीसे प्राप्त किया था। वह वैष्णव (भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाला) धनुष साक्षात् भगवान् शेषके समान कुण्डलाकार था। भगवान् श्रीकृष्णने उसे देखा और बलपूर्वक उठा लिया; फिर सब लोगोंके देखते-देखते ही लीलापूर्वक उस धनुषको चढ़ाया और कानतक तानकर ले गये। तदनन्तर दोनों भुजाओंका सहारा लगाकर उसको बीचसे उसी प्रकार तोड़ डाला, जैसे हाथी अपनी सूँड़से गन्नेको तोड़ देता है। धनुषके टूटनेकी भयानक ध्वनिसे पातालसहित सप्तलोकमय सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। तारे और दिग्गजगण अपने स्थानसे विचलित हो चले। इतना ही नहीं, सारा भूमण्डल दो घड़ीतक थालीकी तरह काँपता रह गया ॥ ४—७ ॥

अपराह्नके समय रङ्गशालाके द्वारपर कुवलयापीड हाथी दिखायी दिया। भगवान्ने उसके समीप आकर बालक्रीडाके

रूपमें क्षणभर उसके साथ युद्ध किया, तदनन्तर उसकी सूँड़को पकड़कर उसे इधर-उधर घुमाया और फिर वैसे ही जमीनपर पटक दिया, जैसे बालक कमण्डलुको पटक दे। कुवलयापीड़ हाथीका इस प्रकार वध करके श्रीबलराम और कृष्णचन्द्र कंस-रचित रङ्गभूमिमें पहुँचे और उन्होंने वहाँपर बैठे हुए सभी लोगोंको उनके अपने-अपने भावके अनुसार यथायोग्य दर्शन दिये। फिर अखाड़ेमें पहुँचकर मल्लयुद्धके लिये जा डटे और कंसके सामने सब लोगोंके देखते-देखते ही भगवान् बलराम और कृष्णचन्द्रने चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलको धराशायी कर दिया। श्रीकृष्णके इन कार्योंको देखकर कंस दुर्वचनोंके द्वारा उनका तिरस्कार करने लगा। इसी बीच भगवान् श्रीकृष्ण कूदकर उस कटुभाषी कंसके अत्यन्त ऊँचे मञ्चपर चढ़ गये। तुरंत मृत्युके समान श्रीकृष्णको सामने आया देखकर कंस मञ्चसे उठा और भगवान्की भर्त्सना करते हुए उसने उसी क्षण ढाल और तलवारको हाथमें उठा लिया। श्रीकृष्णने तुरंत ढाल-तलवार लिये हुए कंसको, जैसे गरुड अपनी चोंचसे विषधर सर्पको पकड़ ले, वैसे ही बलपूर्वक अपनी प्रचण्ड भुजाओंसे पकड़ लिया। पर गरुडकी चोंचसे जिस प्रकार सर्प छूटकर निकल भागे, उसी प्रकार कंस भगवान्के भुज-बन्धनसे निकल गया और ढाल-तलवार लेकर फिर लड़नेके लिये तैयार हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण और कंस—दोनों मञ्चपर आ गये और वेगपूर्वक एक दूसरेपर आक्रमण करते हुए वैसे ही सुशोभित हुए, जैसे पर्वतपर दो सिंह लड़ते हुए शोभित हों। तदनन्तर कंस उछलकर सौ हाथ ऊपर आकाशमें चला गया, तब भगवान् श्रीकृष्णने भी वैसे ही उछलकर बाजकी तरह उसे पकड़ लिया। कंस पुनः श्रीकृष्णके हाथोंसे छूटकर निकल भागा, तब त्रिलोकको धारण करनेवाले श्रीकृष्णने फिर अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे उसको पकड़ लिया और इधर-उधर घुमाते हुए महाकाशसे उसे मञ्चपर पटक दिया। जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष टूट जाता है, उसी प्रकार कंसके गिरते ही मञ्चके खंभे टूट गये। वज्रके समान कठोर शरीरवाला वह कंस नीचे गिर पड़ा। एक बार उसे कुछ व्याकुलता हुई; परंतु वह फिर सहसा उठा और महात्मा श्रीकृष्णके साथ जूझने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंसे पकड़कर उसे मञ्चपर पटक दिया और वे उसकी छातीपर चढ़ बैठे। तब उन्होंने उसके सिरको पकड़कर केश खींचते हुए, जैसे पर्वतसे कोई चट्टानको गिराये, वैसे ही उसे मञ्चसे नीचे अखाड़ेमें गिरा दिया। तदनन्तर सबके आधारस्वरूप अनन्त-पराक्रमशाली सनातन पुरुष भगवान् स्वयं वेगपूर्वक मञ्चसे कूदकर कंसके ऊपर जा पड़े। इस प्रकार दोनोंके गिरनेसे पृथ्वी कुछ नीचे धँस गयी और सारा भूमण्डल तीन घड़ीतक थालीकी तरह काँपता रह गया। कंसके प्राण निकल गये। सबके देखते-देखते ही जैसे भूमिपर पड़े हुए गजराजको सिंह खींच रहा हो, वैसे ही वे कंसके शरीरको घसीटने लगे। राजाओंमें हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे—'अहो! कैसे आश्चर्यकी बात है कि वैरभावसे स्मरण करनेवाला कंस भी उन प्रभुके सारूप्यको वैसे ही प्राप्त हो गया, जैसे कीड़ा भृङ्गीके रूपमें परिणत हो जाता है॥ ८–१५॥

कंसकी मृत्यु देखकर उसके छोटे भाई तत्काल ढाल-तलवार लेकर वहाँ आ डटे। उनपर बलभद्रजीकी दृष्टि पड़ी और उन्होंने मुद्गर उठाकर सब ओरसे प्रहार करते हुए सबको धराशायी कर दिया। तब देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। सर्वत्र जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की। विद्याधरियाँ नृत्य करने लगीं और विद्याधर, गन्धर्व तथा किंनर भगवान्का यशोगान करने लगे। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने सबको आश्वासन देकर माता-पिताको बन्धनमुक्त किया और उग्रसेनको राज्य सौंप दिया। फिर यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न होनेपर सांदीपनि मुनिके समीप जाकर समस्त विद्याओंका अध्ययन किया। दक्षिणारूपमें मरे हुए गुरुपुत्रोंको लाकर प्रदान किया, शङ्खासुरका वध किया। फिर वे मथुरामें आकर निवास करने लगे। व्रजकी व्यथाको दूर करनेके लिये भगवान्ने उद्धवको वहाँ भेजा। फिर स्वयं वहाँ जाकर रासमण्डलमें श्रीराधा और गोपियोंको अपने दर्शन कराये। रासमें ऋभु ऋषिको मुक्ति दी, फिर मथुरामें मथुरानरेशके सदृश कार्य करते हुए विराजमान हुए। बलरामजीने भी कोलासुरका वध करके मथुरापुरीमें शुभागमन किया। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी हजारों-हजारों पवित्र और विचित्र लीलाएँ मथुरामें सम्पन्न हुईं॥ १६-१७॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीराम-कृष्णकी मथुरा-लीलाका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

श्रीराम-कृष्णकी द्वारका-लीलाका वर्णन

प्राड्विपाक मुनिने कहा—युवराज दुर्योधन ! अब भगवान् श्रीबलराम और श्रीकृष्णकी द्वारका-लीलाओंको संक्षेपमें सुनो। धृतराष्ट्र-तनय ! जब कंसका देहावसान हो गया, तब उसके न रहनेपर भी उसके साथ अन्तरङ्ग मैत्रीका निर्वाह करनेके लिये जरासंध आया। भगवान्ने उसपर विजय प्राप्त की। तदनन्तर समुद्रके बीचमें द्वारका-दुर्गका निर्माण किया। फिर एक ही रात्रिमें अपने सारे बन्धु-बान्धवोंको वहाँ भेजकर उनके रहनेकी व्यवस्था की। कालयवनके आनेपर मुचुकुन्दद्वारा उसका वध करवाया। तदनन्तर बलरामजी और श्रीकृष्ण दोनों प्रवर्षण पर्वतपर गये और वहाँसे द्वारकाको प्रस्थान किया ॥ १ ॥

ब्रह्मलोकसे लौटे हुए राजा रेवतने रत्न आदि आभूषणोंसे अलंकृत कन्या रेवतीको लेकर आगमन किया और प्रतापी बलरामजीके हाथोंमें उसे सविधि समर्पण कर दिया। फिर राजा रेवत तप करनेके लिये बदरिकाश्रमको चले गये। उसके बाद श्रीकृष्णने कुण्डिनपुर जाकर शत्रुओंके देखते-देखते रुक्मिणीजीका हरण किया एवं जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, नाग्नजिती, भद्रा और लक्ष्मणाका एवं भौमासुरका वध करके सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंका पाणिग्रहण किया। राजन् ! भीष्मककुमारी रुक्मिणीके गर्भसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रथम पुत्र प्रद्युम्न हुए। ये कामदेवके अवतार अपने पिता श्रीकृष्णके समान ही सुन्दर थे। इनसे अनिरुद्धका जन्म हुआ, जो ब्रह्माके अवतार हैं ॥ २—४ ॥

तत्पश्चात् एक समय राजा उग्रसेनके यहाँ राजसूय यज्ञका प्रस्ताव हुआ और दिग्विजयके लिये प्रद्युम्नजीने बीड़ा उठा लिया। यादवों तथा अपने भाइयोंके साथ उन्होंने विजययात्रा आरम्भ की और जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंपर विजय प्राप्त करके कामदुघ नदके समीप पहुँचे। वहाँ वसन्तमालती नामक नगरीके स्वामी गन्धर्वराज पतंगके साथ उनका युद्ध हुआ। गदा-युद्ध आरम्भ होनेपर बलदेवजीके छोटे भाई गदने गदाके द्वारा गदाधारी पतंगपर प्रहार किया। पतंगने भी गदाके द्वारा बड़े वेगसे गदके हृदयपर आघात किया। इस प्रकार दो घड़ीतक दोनोंका युद्ध होनेके पश्चात् पतंगकी गदाके प्रहारसे क्षणभरके लिये गदको मूर्च्छा आ गयी। उस समय हाहाकार मच गया और इसी बीच करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी बलभद्रजी वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने गन्धर्वोंकी सारी सेनाको हलकी नोकके द्वारा खींच लिया और उसके ऊपर कठोर मुसलका प्रहार करना आरम्भ कर दिया। इससे पतंगकी सारी सेना—शूरवीर योद्धा, हाथी और रथ सभी चूर-चूर हो गये। तब तो रथ-हीन पतंग भयभीत होकर अपने नगरको चला गया और यादवोंसे युद्ध करनेके लिये फिरसे व्यूहाकार सेना सजाने लगा। बलभद्रजीको जब इसका पता लगा, तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर गन्धर्वोंकी वसन्तमालती नामकी उस विशाल नगरीको, जिसका विस्तार सौ योजनमें था, हलके द्वारा उखाड़ लिया और कामदुघ नदमें डुबा देनेके लिये उसे खींचने लगे। नगरीके महलों और घरोंका गिरना-ढहना आरम्भ हो गया। चारों ओर हाहाकार मच उठा। सारी नगरी समुद्रमें चक्कर खाती हुई टेढ़ी नावकी तरह घूमने लगी। यह देखकर गन्धर्वराज पतंग भयभीत हो गये और अपने गन्धर्व भाई-बन्धुओंके साथ हाथ जोड़कर बलभद्रजीके समीप उपस्थित हुए। उन्होंने विश्वकर्माके द्वारा निर्मित दो लाख विमान, चार लाख हाथी, एक करोड़ घोड़े और दस करोड़ स्वर्ण तथा दिव्य रत्नोंका भार बलदेवजीकी सेवामें समर्पण किया और प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया ॥ ५—९ ॥

फिर साम्बको छुड़ानेके लिये बलरामजी यहाँ तुम्हारे हस्तिनापुरमें पधारे और तुम सबके सामने ही उन्होंने हलकी नोकसे तुम्हारे नगरको उखाड़ लिया और गङ्गामें डुबोनेके लिये खींचने लगे। फिर नागकन्या गोपियोंके साथ रास-मण्डलमें यमुनाजीको भी उन्होंने अपने हलकी नोकसे खींचा। तदनन्तर, एक समयकी बात है, नारदजीकी प्रेरणासे भौमासुरका सखा और सुग्रीवका मन्त्री द्विविद नामक बंदर युद्ध करनेके लिये आया। रैवतक पर्वतपर बलरामजीके साथ चार घड़ीतक उसका युद्ध हुआ। वह वृक्ष और शिलाओंके द्वारा बलरामजीपर प्रहार कर रहा था। उसी स्थितिमें बलरामजीने मुसलके द्वारा उसके मस्तकपर चोट पहुँचायी। पर वह मरा नहीं और फिरसे बलरामजीको

मुक्का मारकर दौड़ा । भगवान् अच्युतके बड़े भाई बलरामजीने अपने दोनों हाथोंसे उसे पकड़ लिया और रैवतक पर्वतपर दे मारा, फिर उसके हृदयमें बड़े जोरसे मुष्टि-प्रहार किया । तब बंदर नीचे गिर गया । उसके गिरनेसे वृक्षसहित सारा पर्वत कमण्डलुकी तरह काँपने लगा ॥ १०-११ ॥

प्रिय दुर्योधन ! तदनन्तर पाण्डवोंके साथ तुमलोगोंके युद्धका उद्योग सुनकर बलरामजी तीर्थयात्राके बहाने नागरिकों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर द्वारकाकी प्रदक्षिणा करके पुरीसे बाहर निकले । फिर उन्होंने सिद्धाश्रम और प्रभासमें स्नान किया । पश्चिम दिशामें स्थित सरस्वती, प्रतिस्रोता, सैन्धवारण्य, जम्बूमार्ग, उत्पलावर्त, अर्बुद (आबू), हैमवन्त और सिन्धु-नदमें पृथक्-पृथक् स्नान किया । तदनन्तर बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, अग्नितीर्थ, औशनस, आग्नेय, वायव, सौदास, गुहतीर्थ और श्राद्धदेव आदि तीर्थोंमें स्नान किया । तदनन्तर उत्तर दिशामें आकर कैलास, करवीर, महायोग, गणेश, कौबेर, प्राग्ज्योतिष, रङ्गवल्ली, सीताराम आदि क्षेत्र, चैत्रदेश, वसन्ततिलक, दशार्ण, भद्र, कूर्मतीर्थ, पुष्पमाला, चित्रवण, चन्द्रकान्त, नैश्रेयस, मनु पर्वत, चक्षु, कामशालिनी, कामवन, वेदक्षेत्र, सीता, पृथुतीर्थ, तपोभूमि, लीलावती, वेदनगर, गान्धर्व, शक्र, भीमरथी, श्रीजाह्नवी, कालिन्दी, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, मथुरा और पुष्कर आदि तीर्थोंमें स्नान किया । फिर वहाँसे संभलग्राम और सूकरक्षेत्र (सोरों)में गये । इस प्रकार तीर्थोंकी यात्रा करते हुए साक्षात् संकर्षण श्रीबलरामजी नैमिषारण्यमें पहुँचे ॥ १२—१३ ॥

बलरामजीको आया देखकर शौनकादि मुनियोंने खड़े होकर उनको प्रणाम किया और उनकी अर्चा की । वहाँ वेदव्यासजीके शिष्य रोमहर्षणजी विराजमान थे । वे खड़े नहीं हुए । बलरामजीने यह देखकर हाथमें जो कुश लिये हुए थे, उसीकी नोकसे मुनिको निहत कर दिया । यह देखकर सब मुनि हाहाकार करने लगे । बलरामजीने यह सब देखा । समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले होनेपर भी उन्होंने लोक-संग्रहके लिये अपनी शुद्धिकी कामनासे बारह महीनेतक तीर्थ-स्नान करनेका व्रत ले लिया । वहाँ इल्वलका पुत्र बल्वल नामक दैत्य रहता था । वह नैमिषारण्यमें पर्वोंके अवसरपर भयानक आँधीके साथ-साथ धूलकी तथा दुर्गन्धपूर्ण पीब, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांस आदिकी वर्षा करता । उसकी जीभ सदा लपलपाया करती, वज्रके समान दृढ़ उसके अङ्ग थे । कज्जलगिरिके समान उसकी काली आकृति थी और तपाये हुए ताँबेके समान मूँछ-दाढ़ीवाला वह असुर बड़ा ही भयानक दीख पड़ता था । ऋषि-ब्राह्मणोंकी शान्तिके लिये उस भयानक असुरको बलरामजीने आकाशमें खींचकर उसके मस्तकपर मुसलके द्वारा प्रहार किया । मुसलकी चोट लगते ही उसके प्राण निकल गये और वह आकाशसे कमण्डलुकी तरह नीचे गिर पड़ा । तदनन्तर प्रसन्नतासे खिले हुए मुखवाले मुनियोंने बलरामजीका स्तवन किया, उनको बड़े-बड़े आशीर्वाद दिये और जिस प्रकार वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रका देवतालोगोंने अभिषेक किया था, उसी प्रकार बलरामजीका अभिषेक किया । तदनन्तर मुनियोंसे आज्ञा लेकर बलरामजीने सरयू, कौशिकी (कोसी), मानसरोवर, गण्डकी और गौतमी आदि तीर्थोंमें स्नान किया । फिर अयोध्या, नन्दिग्राम, बर्हिष्मती और ब्रह्मावर्त आदि तीर्थोंमें स्नान करके वे तीर्थराज प्रयागमें पधारे और वहाँ दस हजार हाथियोंका दान किया । तदनन्तर चित्रकूट, विन्ध्याचल, काशी, विपाशा, शोण, मिथिला और गया आदि तीर्थोंमें स्नान करके गङ्गासागर-संगमपर गये और वहाँ स्वर्णके सींगोंसे और सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित सौ करोड़ गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं । प्रत्येक गौपर स्वर्ण और रत्नोंका भार पृथक्-रूपसे लदा हुआ था । तदनन्तर वहाँसे दक्षिण दिशामें आकर क्रमशः महेन्द्रादि पर्वत, सप्त गोदावरी, वेणी, पम्पा, भीमरथी, स्कन्दक्षेत्र, श्रीशैल, वेङ्कट, काञ्ची, कावेरी, श्रीरङ्ग, ऋषभाद्रि, समुद्रसेतु, कृतमाला, ताम्रपर्णी, मलयाचल, कुलाचल, दक्षिणसिन्धु, फाल्गुनतीर्थ, पंचाप्सर, गोकर्ण, शूर्पारक, तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, दण्डक, रेवा, माहिष्मती और अवन्तिका आदि तीर्थोंका स्वयं भगवान् संकर्षणने सेवन किया । तत्पश्चात् तुम्हारी सहायताके लिये विशसन (कुरुक्षेत्र) में पधारेंगे । यह मैंने बलभद्रजीका परम पावन तीर्थयात्रा-चरित्र तुम्हारे सामने वर्णन किया । कौरवेन्द्र ! यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला, सर्वकल्याणकारी पवित्र प्रसङ्ग है । अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १४—१८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीराम-कृष्णकी द्वारका-लीलाका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन

दुर्योधनने पूछा—भगवन्, मुनिसत्तम ! भगवान् बलभद्रजीने नागकन्या गोपियोंके साथ यमुनाजीके तटपर कब विहार किया था ? ॥ १ ॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—एक समयकी बात है, व्रजके सुहृद्-बन्धुओंको देखनेकी बलरामजीके मनमें बड़ी उत्कण्ठा पैदा हो गयी। तब वे अपने तालध्वजसे युक्त रथपर सवार होकर द्वारकासे निकले और गौओं, गोपालों तथा गोपियोंसे भरे गोकुलमें जा पहुँचे। नन्दराज और यशोदाजी भी बहुत दिनोंसे उन्हें देखनेके लिये उत्कण्ठित थे, अतएव उन्होंने उनको हृदयसे लगा लिया। फिर बलभद्रजी गौओं, गोपियों और गोपालोंसे मिले और पूरे वसन्तके दो महीने उन्होंने वहाँ निवास किया। पहले जिन नागकन्याओंके गोपी होनेका वर्णन आ चुका है, उन्होंने गर्गाचार्यजीसे बलभद्रजीका पञ्चाङ्ग* प्राप्त करके उसे सिद्ध किया था। उसीके प्रभावसे बलभद्रजीने प्रसन्न होकर कालिन्दीके तटपर उनके साथ रासमण्डलमें रास-क्रीड़ा की। उस दिन चैत्रकी पूर्णिमा थी। अरुण वर्णके पूर्ण चन्द्र उदित होकर सारे वनको अपनी रंग-विरंगी किरणोंसे रञ्जित कर रहे थे। शीतल पवन कमलके मकरन्द और परागको लिये सर्वत्र मन्द गतिसे प्रवाहित हो रहा था। आनन्ददायिनी यमुना अपनी चञ्चल लहरियोंसे निर्मल पुलिनभूमिको व्याप्त कर रही थी। कुञ्जोंकी प्राङ्गण-भूमि विविध निकुञ्ज-पुञ्जोंसे सुशोभित तथा चमचमाते हुए सुन्दर पल्लवों और पुष्पोंके परागसे आवृत थी। मोर और कोयल मधुर स्वरमें कूज रहे थे और मधुपान-मत्त मधुकरोंकी मधुर-ध्वनिसे मुखरित व्रज-भूमि अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रही थी।

बलरामजीके पैरोंमें नूपुरकी मधुर ध्वनि हो रही थी। चमकती हुई मणियोंके कड़े, करधनी, केयूर, हार, किरीट और कुण्डलोंसे वे अलंकृत थे। उनके वदनपर कमल-दलकी छटा छा रही थी। वे नीलाम्बर धारण किये हुए थे। उनके विमल कमल-दलके समान नेत्र थे। ऐसे श्रीबलदेवजी यक्षिणियोंके साथ यक्षराजकी भाँति रासमण्डलमें गोपियोंके द्वारा घिरे हुए विराजित थे ॥ २—५ ॥

* जिसमें पद्धति, पटल, स्तोत्र, कवच और सहस्रनाम—साधकके ये पाँच अङ्ग होते हैं, उसे 'पञ्चाङ्ग' कहते हैं।

तदनन्तर वरुणके द्वारा प्रेरित वारुणी देवी वृक्षोंके कोटरोंसे प्रकट होकर बहने लगीं। उस पुष्पासवकी सुगन्धसे सारा वन सुगन्धमय हो गया। मधुके लोभसे मधुकर-पुञ्ज मधुर गुंजार करने लगा। वारुणि-पानसे मद-विह्वल, कमल-दलके समान विशाल और अरुण नेत्रवाले बलदेवजीके अङ्ग प्रेमावेशसे चञ्चल हो उठे। तदनन्तर लीला-विहारजन्य श्रमके कारण जलकणकी भाँति पसीनेकी बूँदें उनके मुखपर प्रकट हो गयीं और उन्होंने कपोलोंपर रचित चित्रकारीको धो दिया। तदनन्तर गजराजकी-सी चालवाले और गजेन्द्र ऐरावतकी सूँड़के समान विशाल भुजाओंवाले बलदेवजी गोपियोंके साथ वैसे ही क्रीड़ा करने लगे, जैसे उन्मत्त मातङ्ग हथिनियोंके साथ करता है। उनके सिंहस्कन्धतुल्य कंधेपर हल और हाथमें मुसल सुशोभित था। करोड़ों-करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंकी प्रभाके समान उनका तेज छिटक रहा था। देदीप्यमान रत्नोंके मञ्जीर, चञ्चल नूपुर, मधुर शब्द करती हुई स्वर्णमयी किङ्किणी, कड़े, ताटङ्क, हार, श्रीकण्ठ, अँगूठियाँ और सिरपर दिव्य मणि-भूषण सुशोभित थे। काली नागिनको लजानेवाली कृष्ण अलकावलीकी वेणीसे युक्त और कपोलोंपर चित्रित मनोहर पत्रावलियोंसे सुशोभित गोप-सुन्दरियोंके साथ अखिल भुवनपति भगवान् बलरामजी वहाँ विराजित होकर रास-विहार करने लगे ॥ ६ ॥

फिर यमुनाके किनारे वनमें विचरण और क्रीड़ा करते हुए बलदेवजीके मुख-कमलपर पसीनेकी बूँदें दिखायी देने लगीं। तब उन्होंने स्नान तथा जल-क्रीड़ा करनेके लिये दूरसे ही यमुनाजीको पुकारा, परंतु यमुना नहीं आयीं। फिर तो बलदेवजीने क्रोधमें भरकर हलकी नोकसे यमुनाजीको खींच लिया और कहा—'आज मैंने तुमको बुलाया, किंतु तुम मेरा अपमान करके नहीं आयीं। तुम मनमाना बर्ताव करनेवाली हो। अच्छा, अभी इस मुसलके द्वारा मैं तुम्हारे सौ टुकड़े कर देता हूँ।' यमुनाजीको जब बलरामजीने इस प्रकार डाँटा, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर उनके चरण-कमलोंपर गिर पड़ीं और बोलीं—'हे लोकाभिराम राम! हे संकर्षण! बलभद्र! हे महाबाहो!! मैं आपके असीम बल-पराक्रमका

नहीं जानती थी। आपके एक ही मस्तकपर सारा भूखण्डमण्डल सरसोंके समान पड़ा रहता है। मैं आपके परम प्रभावसे अनभिज्ञ हूँ और आपकी शरणमें आयी हूँ। आप भक्तवत्सल हैं। मुझे छोड़ दीजिये।' इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गोपराज बलभद्रजीने यमुनाको छोड़ दिया और हथिनियोंके साथ गजराजकी भाँति वे गोपियोंके साथ जलक्रीड़ा करने लगे। तदनन्तर उनके यमुनासे बाहर निकलनेपर यमुनाजीने आकर उन्हें बहुत-से नील वस्त्र और स्वर्ण तथा रत्नोंके आभूषण भेंट किये। दुर्योधन! बलरामजीने उन सब वस्त्राभूषणोंको पृथक्-पृथक् गोपियोंमें बाँट दिया और स्वयं नीलाम्बर तथा नवीन रत्नोंसे निर्मित स्वर्णमालाको धारण करके ऐरावतकी भाँति विराजमान हो गये। कौरवेन्द्र! इस प्रकार क्रीडारत यादवश्रेष्ठ बलरामजीने वसन्त ऋतुकी रात्रिको व्यतीत किया। जिस प्रकार हस्तिनापुरको देखनेपर भगवान् बलरामजीके पराक्रमका दर्शन होता है, उसी प्रकार आजतक यमुनाजी टेढ़े मार्गसे प्रवाहित होती हुई उनकी शक्तिको सूचित कर रही हैं। भगवान् बलरामजीके इस रासलीलाके प्रसङ्गको जो मनुष्य सुनता अथवा सुनाता है, वह सारे पापोंसे मुक्त होकर परमानन्द-पदको प्राप्त होता है। युवराज! अब क्या सुनना चाहते हो?॥ ७—११॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

श्रीबलभद्रजीकी पूजा-पद्धति और पटल

दुर्योधनने कहा—भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं। यह बतानेकी कृपा कीजिये कि गोपियोंके यूथको श्रीगर्गाचार्यजीने बलभद्र-पञ्चाङ्ग किस प्रकार प्रदान किया था॥ १॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—कुरुराज! एक बार गर्गजी यमुना-स्नान करनेके लिये गर्गाचलसे चलकर व्रजपुरमें पधारे। यमुनाजीके तटकी ललित लताएँ पवनके प्रवाहसे हिल रही थीं। पुष्पोंके सौरभसे मत्त हुए भ्रमरोंके समूह गुंजार कर रहे थे। इस प्रकारके यमुना-तटपर एक निकुञ्जके नीचे एकान्तमें श्रीगर्गाचार्य भगवान् बलराम और श्रीकृष्णका ध्यान करने लगे। उस समय गोपियोंने आकर उनको प्रणाम किया। उनको स्मरण हो आया कि हम पूर्वजन्मकी नागेन्द्र-कन्याएँ हैं। तब उन्होंने बलभद्रजीको प्राप्त करनेके लिये गर्गजीसे सेवाका साधन पूछा। कन्याओंकी इस अनुपम भक्तिको देखकर उनके उद्देश्यकी सिद्धिके लिये गर्गजीने उनको पद्धति, पटल, स्तोत्र, कवच और सहस्रनाम—यह पञ्चाङ्ग साधन प्रदान किया। अब बताओ, तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ २॥

दुर्योधनने कहा—ब्रह्मन् गुरुदेव! आप भक्तवत्सल हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप कृपया बलरामजीकी 'पद्धति'का वर्णन कीजिये, जिसे जानकर मैं सिद्धि प्राप्त कर सकूँ॥ ३॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—राजसत्तम! जिससे महाप्रभु बलरामजी प्रसन्न हो जाते हैं, उस बलभद्र-पद्धतिके नियम सुनो। वे भगवान् बलरामजी सहस्रमुखवाले हैं। समस्त भुवनोंके अधीश्वर हैं। बहुत-से दान और तीर्थ-सेवनसे उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वे तो केवल 'अनन्य-भक्ति'से प्राप्त होते हैं। श्रीहरिके बड़े भाई उन बलरामजीकी भक्ति सत्सङ्गके द्वारा शीघ्र प्राप्त हो सकती है। जिनमें प्रेमलक्षणा भक्तिका उदय हो जाता है, वे ही सिद्ध पुरुष हैं। ब्राह्म-मुहूर्तमें उठते ही भगवान् राम-कृष्णके नामोंका उच्चारण करे, फिर गुरुदेवको और पृथ्वीको (मनसे) प्रणाम करके पृथ्वीपर पैर रक्खे। तदनन्तर स्नान-आचमन करके निर्जनमें कुशासनपर बैठ जाय, दोनों हाथ गोदमें रख ले और अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर परमदेव सनातन हरि भगवान् श्रीबलरामजीका ध्यान करे। उनका गौरवर्ण है। उन्होंने नीलाम्बर धारण कर रक्खा है। वे वनमालासे विभूषित हैं। बड़ी मनमोहन मूर्ति है। ऐसे हलधर भगवान् बलरामजीको प्रसन्न करनेके लिये नित्य उनका ध्यान करना चाहिये। साधकको चाहिये कि वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो, मौन-धारण करे और क्रोधका त्याग करके तीनों कालमें संध्या-वन्दन करे। मनमें कोई कामना, लोभ और मोह न रहे। सत्यभाषण करे। जितेन्द्रिय होकर एक बार मात्र पायसका भोजन करे। दो बार जलपान करे। पवित्र रेशमी वस्त्र पहने और जमीनपर शयन करे। इस प्रकार छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर

एकाग्र मनसे भजन करनेपर सम्पूर्ण कारणोंके कारण परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीसंकर्षणजी सदाके लिये प्रसन्न हो जाते हैं। महाबाहु कौरवराज ! इस प्रकार मैंने महात्मा बलभद्रजीकी 'पद्धति'का वर्णन किया, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ४-१४ ॥

दुर्योधनने कहा—मुनिराज ! अब देवदेव बलरामजीका 'पटल' सुनाइये, जिसका साधन करके मैं सदा उनके चरण-कमलोंकी सेवा कर सकूँ ॥ १५ ॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—भगवान् बलरामजीका पटल महान् गोपनीय और सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसे पहले ब्रह्माजीने एकान्त स्थानमें महात्मा नारदजीको दिया था। पहले प्रणव (ॐ) लिखकर फिर कामबीज (क्लीं) लिखना चाहिये। तत्पश्चात् 'कालिन्दीभेदन' और 'संकर्षण'—इन दो पदोंको चतुर्थ्यन्त लिखकर अन्तमें स्वाहा जोड़ देना चाहिये। यों करनेपर '**ॐ क्लीं कालिन्दीभेदनाय संकर्षणाय स्वाहा**'—यह मन्त्र बन जाता है। यह षोडशाक्षर मन्त्रराज ब्रह्माजीके द्वारा कहा गया है। मनुष्यको व्रत लेकर इस मन्त्रका एक लाख सोलह हजार जप करना चाहिये। इस प्रकार करनेपर साधक इस लोक और परलोकमें परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संदेह नहीं। मन्त्र-जपके बाद विशेष रूपसे महापूजा करनी चाहिये। (उसका विधान यह है—) राजन् ! मनोरम स्थण्डिलपर कर्णिकास्थित केसरोंसे उज्ज्वल बत्तीस दलोंवाला एक सुन्दर पाँच रंगका कमल अङ्कित करे। उसपर मङ्गलमय स्वर्ण-सिंहासन रक्खे। उसके ऊपर बलरामजीकी परम श्रेष्ठ मूर्तिको पधराकर उनकी भलीभाँति पूजा करे। '**ॐ नमो भगवते पुरुषोत्तमाय वासुदेवाय संकर्षणाय सहस्रवदनाय महानन्ताय स्वाहा**'—इस मन्त्रसे शिखा-बन्धन करे। तत्पश्चात् श्रीबलरामजीको सब दिशाओंमें प्रणाम करके उनके सम्मुख अत्यन्त विनयपूर्वक बैठ जाय। फिर '**ॐ जय जयानन्त बलभद्र कामपाल तालाङ्क कालिन्दीभञ्जन आविराविर्भव मम सम्मुखो भव।**' इसको पढ़कर आवाहन करे ॥ १६-२२ ॥

तदनन्तर '**नमस्तेऽस्तु सीरपाणे हलमुसलधर रौहिणेय नीलाम्बर राम रेवतीरमण नमस्तेऽस्तु।**' इस मन्त्रके द्वारा आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नानीय, यज्ञोपवीत, वस्त्र, भूषण, गन्ध, अक्षत, पुष्प, मधुपर्क, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पाञ्जलि आदि उपचार प्रदान करे। अनन्तर '**ॐ विष्णवे मधुसूदनाय वामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामोदराय संकर्षणाय वासुदेवाय प्रद्युम्नायानिरुद्धायाधोक्षजाय पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः।**'

—इस मन्त्रके द्वारा पाद, गुल्फ, जानु, ऊरु, कटि, उदर, पार्श्व, पीठ, भुजा, कंधे, अधर, नेत्र और मस्तक आदि सर्वाङ्गकी पृथक्-पृथक् पूजा करे। इसके बाद शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, असि, धनुष, बेत्र, हल, मुसल, कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स, पीताम्बर, नीलाम्बर, वंशी, वेत्र, गरुडाङ्क और तालाङ्क ध्वजसे चिह्नित रथ, दारुक, सुमति, कुमुद, कुमुदाक्ष और श्रीदामा—इन शब्दोंके पहले ॐ और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़ दे। इससे '**ॐ शङ्खाय नमः**', '**ॐ चक्राय नमः**'—ऐसा रूप बन जायगा। इन मन्त्रोंके द्वारा सबका पूजन करे। इसी प्रकार कमलके सब ओर अपने-अपने स्थानपर विष्वक्सेन, वेदव्यास, दुर्गा, गणेश, दिक्पाल और नवग्रह आदिका भी पृथक्-पृथक् पूजन करना चाहिये। तदनन्तर परिसमूहन आदि स्थालीपाकके विधानसे अग्निदेवकी पूजा करके पूर्वोक्त '**ॐ क्लीं कालिन्दीभेदनाय संकर्षणाय स्वाहा।**'—इस मन्त्रसे पचीस हजार आहुतियाँ दे। फिर इसी प्रकार '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रसे आठ हजार और चतुर्व्यूहसंज्ञक '**ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च॥**'—इस मन्त्रसे आठ हजार आहुतियाँ दे। इसके बाद अग्निकी प्रदक्षिणा करे और आचार्यको नमस्कार करके उन्हें मूल्यवान् वस्त्र, स्वर्णके आभूषण, ताम्रपात्र, सवत्सा गौ और स्वर्ण आदि दक्षिणा देकर प्रसन्न करे। फिर ब्राह्मणोंका पूजन-सत्कार करके उनको तथा नगरवासी जनोंको भोजन कराये। तत्पश्चात् आचार्यको प्रणाम करे। जो पुरुष इस पटल-पद्धतिके अनुसार श्रीबलरामजीका स्मरण-पूजन करता है, वह इस लोक और परलोकमें विविध सिद्धियों और समृद्धियोंके द्वारा सुसम्पन्न होता है। हे राजन् ! भगवान् बलरामजीका यह गोपनीय और सर्वसिद्धिप्रद 'पटल' तुमको सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २३-२५ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलभद्रजीकी पूजा-पद्धति और पटल' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीबलराम-स्तोत्र

दुर्योधनने कहा—महामुनि प्राड्विपाकजी ! अब भगवान् श्रीबलरामजीका वह स्तोत्र, जो साक्षात् समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला है, कृपापूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—राजन् ! बलरामजीका स्तोत्र श्रीवेदव्यासजीके द्वारा प्रणीत है, यह मनुष्योंको समस्त सिद्धियाँ और मोक्ष भी प्रदान करनेवाला है । इस शुभ स्तवराजको तुम सुनो ॥ २ ॥

"देवादिदेव ! भगवन् ! कामपाल ! आपको नमस्कार ! हे बलरामजी ! आप साक्षात् अनन्त और शेषजी हैं, आपको नमस्कार । आप पृथ्वीको धारण करनेवाले, परिपूर्ण ब्रह्म, स्वयं प्रकाशमान, हाथमें हल लिये हुए, हजार मस्तकोंसे युक्त संकर्षण हैं । आपको नित्य मेरे नमस्कार हैं । पुरुषश्रेष्ठ बलरामजी ! आप भगवान् अच्युतके बड़े भाई हैं, रेवतीके स्वामी हैं, हल आपका शस्त्र है और आप प्रलम्बासुरका संहार करनेवाले हैं । आप मेरी रक्षा करें । भगवान् बलराम, बलभद्र और तालध्वजको मेरे बार-बार नमस्कार हैं । आप गौरवर्ण हैं, नीलाम्बर धारण किये हुए हैं, रोहिणीके कुमार हैं; आपको नमस्कार ! आप धेनुकासुर, मुष्टिकासुर, कूट, बल्वल, रुक्मी, कूपकर्ण और कुम्भाण्डके शत्रु और उनके संहारक हैं । आप कालिन्दीका भेदन करनेवाले, हस्तिनापुरका आकर्षण करनेवाले, द्विविद वानरका वध करनेवाले, यादवोंके राजा और व्रज-मण्डलको सुशोभित करनेवाले हैं । आपने कंसके भाइयोंका वध किया है, आप सबके स्वामी और तीर्थोंमें भ्रमण करनेवाले हैं । आप दुर्योधनके साक्षात् गुरु हैं । प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । हे अच्युत ! आपकी जय हो, जय हो । हे परात्पर देव ! आप स्वयं अनन्त एवं दिशा-विदिशाओंमें कीर्तित हैं । आप देवता, मुनि और सर्पोंके स्वामियोंमें श्रेष्ठ हैं । हल तथा मुसलको धारण करनेवाले भगवान् बलरामजीको मेरे नमस्कार हैं । जो मनुष्य इस स्तवराजका निरन्तर पाठ करता है, वह श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होता है । जगत्में वह शत्रुका शमन करनेवाले सम्पूर्ण बलोंसे सम्पन्न हो जाता है और उसे धन तथा स्वजन प्रचुररूपसे प्राप्त रहते हैं* ॥ ३—११ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलरामस्तोत्र' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

---

* दुर्योधन उवाच—

स्तोत्रं श्रीबलदेवस्य प्राड्विपाक महामुने । वद मां कृपया साक्षात् सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥

प्राड्विपाक उवाच—

स्तवराजं तु रामस्य वेदव्यासकृतं शुभम् । सर्वसिद्धिप्रदं राजन् शृणु कैवल्यदं नृणाम् ॥
देवादिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः ॥
धराधराय पूर्णाय स्वधाम्ने सीरपाणये । सहस्रशिरसे नित्यं नमः संकर्षणाय ते ॥
रेवतीरमण त्वं वै बलदेवोऽच्युताग्रज । हलायुध प्रलम्बघ्न पाहि मां पुरुषोत्तम ॥
बलाय बलभद्राय तालाङ्काय नमो नमः । नीलाम्बराय गौराय रौहिणेयाय ते नमः ॥
धेनुकारिर्मुष्टिकारिः कूटारिर्बल्वलान्तकः । रुक्म्यरिः कूपकर्णारिः कुम्भाण्डारिस्त्वमेव हि ॥
कालिन्दीभेदनोऽसि त्वं हस्तिनापुरकर्षकः । द्विविदारिर्यादवेन्द्रो व्रजमण्डलमण्डनः ॥
कंसभ्रातृप्रहन्तासि तीर्थयात्राकरः प्रभुः । दुर्योधनगुरुः साक्षात् पाहि पाहि प्रभो त्वतः ॥
जय जयाच्युत देव परात्पर स्वयमनन्त दिगन्तगतश्रुत । सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रवराय ते मुसलिने बलिने हलिने नमः ॥
यः पठेत् सततं स्तवनं नरः स तु हरेः परमं पदमाप्नुयात् । जगति सर्वबलं त्वरिमर्दनं भवति तस्य धनं स्वजनं धनम् ॥

(गर्ग०, बलभद्र० ११ । १—११)

बारहवाँ अध्याय

श्रीबलराम-कवच

दुर्योधनने कहा—महामुने ! श्रीमान् गर्गाचार्यने गोपियोंको जो सब तरहसे रक्षा करनेवाला दिव्य कवच दिया था, आप उसे मुझको प्रदान कीजिये ॥ १ ॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—मनुष्य जलमें स्नान करके रेशमी वस्त्र धारण करे, कुशासनपर बैठे और हाथमें कुशकी पवित्री पहनकर मन्त्रका शोधन करे। तदनन्तर अच्युताग्रज भगवान् बलरामजीका स्मरण करके उन्हें प्रणाम करे। फिर मनको एकाग्र करके मन्त्ररूपी कवचको धारण करे ॥ २ ॥

जो भगवान् गोलोकधामके अधिपति हैं, जिनका कीर्तन परम पवित्र है, वे परमेश्वर शत्रुओंसे मेरी रक्षा करें। जिनके मस्तकपर भूमण्डल सरसोंकी तरह प्रतीत होता है, वे भगवान् भूमण्डलमें मेरी रक्षा करें। हलधर-भगवान् सेनामें और युद्धमें सदा मेरी रक्षा करें। मुसलधारी भगवान् दुर्गमें और आदिदेव भगवान् संकर्षण वनमें मेरी रक्षा करें। यमुनाके प्रवाहको रोकनेवाले भगवान् जलमें और नीलाम्बरधारी भगवान् अग्निमें निरन्तर मेरी रक्षा करें। भगवान् राम वायु (आँधी)में मेरी रक्षा करें। शून्य (आकाश) में भगवान् बलदेव और महान् समुद्रमें अनन्तवपु भगवान् मेरी सदा रक्षा करें। पर्वतोंपर भगवान् वासुदेव मेरी रक्षा करें। घोर विवादमें हजार मस्तकवाले प्रभु, रोगमें श्रीरोहिणीनन्दन तथा विपत्तिमें भगवान् कामपाल मेरी रक्षा करें। धेनुकासुरके शत्रु भगवान् काम (कामना) से मेरी सदा रक्षा करें। द्विविदपर प्रहार करनेवाले भगवान् क्रोधमें, बल्वलके शत्रु भगवान् लोभसे और जरासंधके शत्रु भगवान् मोहसे सदा मेरी रक्षा करें। भगवान् वृष्णिधुर्य प्रातःकालके समय, भगवान् मथुरापुरी-नरेश पूर्वाह्न (प्रहर दिन चढ़े), गोपसखा मध्याह्नमें और स्वराट् भगवान् पराह्न (दिनके पिछले पहर) में सदा मेरी रक्षा करें। भगवान् फणीन्द्र सायंकालमें तथा परात्पर प्रदोषके समय मेरी सदा रक्षा करें। मध्यरात्रि और प्रत्यूषकालके समय भगवान् दुरन्तवीर्य मेरी सदा रक्षा करें। कोनोंमें रेवतीपति, दिशाओंमें प्रलम्बासुरके शत्रु, नीचे यदूद्वह, ऊपर बलभद्र और दूर अथवा पास सब दिशाओंमें भगवान् बलदेवजी मेरी सदा रक्षा करें। भीतरसे पुरुषोत्तम और बाहरसे महाबल नागेन्द्रलील मेरी सदा रक्षा करें और पूर्ण परमेश्वर महान् हरि स्वयं सदा-सर्वदा मेरे हृदयमें निवास करते हुए उत्कृष्ट रूपमें सदा मेरी रक्षा करें ॥ ३-११ ॥

श्रीबलभद्रजीके इस उत्तम कवचको देव तथा असुरोंके भयका नाश करनेवाला, पापरूप ईंधनको जलानेके लिये साक्षात् अग्निरूप और विघ्नोंके घटका विनाश करनेवाला सिद्धासनरूप समझे* ॥१२॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत श्रीप्राड्विपाक मुनि और दुर्योधनके संवादमें 'श्रीबलरामकवच' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

---

* दुर्योधन उवाच—

गोपीभ्यः कवचं दत्तं गर्गाचार्येण धीमता । सर्वरक्षाकरं दिव्यं देहि मह्यं महामुने ॥

प्राड्विपाक उवाच—

स्नात्वा जले क्षौमधरः कुशासनः पवित्रपाणिः कृतमन्त्रमार्जनः ।
स्मृत्वाथ नत्वा बलमच्युताग्रजं संधारयेद् वर्म समाहितो भवेत् ॥

गोलोकधामाधिपतिः परेश्वरः परेषु मां पातु पवित्रकीर्तनः ।
भूमण्डलं सर्षपवद् विलक्ष्यते यन्मूर्ध्नि मां पातु स भूमिमण्डले ॥

सेनासु मां रक्षतु सीरपाणिर्युद्धे सदा रक्षतु मां हली च ।
दुर्गेषु चाव्यान्मुसली सदा मां वनेषु संकर्षण आदिदेवः ॥

कलिन्दजावेगहरो जलेषु नीलाम्बरो रक्षतु मां सदाग्नौ ।
वायौ च रामोऽवतु खे बलश्च महार्णवेऽनन्तवपुः सदा माम् ॥

तेरहवाँ अध्याय

बलभद्र-सहस्रनाम

दुर्योधनने कहा—महामुने प्राड्विपाकजी ! भगवान् बलभद्रके सहस्रनामको, जो देवताओंके लिये भी गोपनीय—अज्ञात है, मुझसे कहिये ॥ १ ॥

प्राड्विपाक मुनि बोले—साधु, साधु ! महाराज ! तुम्हारा यश सर्वथा निर्मल है। तुमने जिसके लिये प्रश्न किया है, वह परम देवदुर्लभ सहस्रनाम गर्गजीके द्वारा कथित है। उन दिव्य सहस्र नामोंका वर्णन मैं तुम्हारे सामने कर रहा हूँ। गर्गाचार्यजीने यमुनाजीके मङ्गलमय तटपर यह सहस्रनाम गोपियोंको प्रदान किया था ॥ २ ॥

विनियोग

'ॐ अस्य श्रीबलभद्रसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य गर्गाचार्य ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, संकर्षणः परमात्मा देवता, बलभद्र इति बीजम्, रेवतीरमण इति शक्तिः, अनन्त इति कीलकम्, बलभद्र-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः' ॥ ३ ॥

(इस बलभद्रसहस्रनाम-स्तोत्ररूपी मन्त्रके गर्गाचार्य ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, परमात्मा संकर्षण देवता हैं, बलभद्र बीज है, रेवतीरमण शक्ति है, अनन्त कीलक है, श्रीबलभद्रकी प्रीतिके लिये इसका विनियोग है ॥ ३ ॥)

इसको पढ़कर सहस्रनाम-पाठके लिये विनियोगका जल छोड़ दे। तत्पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—

ध्यान

स्फुरदमलकिरीटं किङ्किणीकङ्कणार्हं
चलदलककपोलं कुण्डलश्रीमुखाब्जम् ।
तुहिनगिरिमनोज्ञं नीलमेघाम्बराढ्यं
हलमुसलविशालं कामपालं समीडे ॥ ४ ॥

जिनका निर्मल किरीट दमक रहा है, जो करधनी तथा कङ्कणोंसे अलंकृत हैं, चञ्चल अलकावलीसे जिनके कपोल सुशोभित हैं, जिनका मुख-कमल कुण्डलोंसे देदीप्यमान है, जो हिमाचल गिरिके समान मनोहर उज्ज्वल हैं तथा नीलाम्बर धारण किये हुए हैं। विशाल हल-मुसल धारण करनेवाले उन भगवान् कामपाल बलभद्रजीका मैं स्तवन करता हूँ ॥ ४ ॥

सहस्रनाम आरम्भ

१. ॐ बलभद्र, २. रामभद्र, ३. राम, ४. संकर्षण, ५. अच्युत, ६. रेवतीरमण, ७. देव, ८. कामपाल, ९. हलायुध ॥ ५ ॥

श्रीवासुदेवोऽवतु पर्वतेषु सहस्रशीर्षा च महाविवादे ।
रोगेषु मां रक्षतु रौहिणेयो मां कामपालोऽवतु वा विपत्सु ॥
कामात् सदा रक्षतु धेनुकारिः क्रोधात् सदा मां द्विविदप्रहारी ।
लोभात् सदा रक्षतु बल्वलारिर्मोहात् सदा मां किल मागधारिः ॥
प्रातः सदा रक्षतु वृष्णिधुर्यः प्राह्णे सदा मां मथुरापुरेन्द्रः ।
मध्यंदिने गोपसखः प्रपातु स्वराट् पराह्णेऽवतु मां सदैव ॥
सायं फणीन्द्रोऽवतु मां सदैव परात्परो रक्षतु मां प्रदोषे ।
पूर्णे निशीथे च दुरन्तवीर्यः प्रत्यूषकालेऽवतु मां सदैव ॥
विदिक्षु मां रक्षतु रेवतीपतिर्दिक्षु प्रलम्बारिरधो यदूद्वहः ।
ऊर्ध्वं सदा मां बलभद्र आरात् तथा समन्ताद् बलदेव एव हि ॥
अन्तः सदाव्यात् पुरुषोत्तमो बहिर्नागेन्द्रलीलोऽवतु मां महाबलः ।
सदान्तरात्मा च वसन् हरिः स्वयं प्रपातु पूर्णः परमेश्वरो महान् ॥
देवासुराणां भयनाशनं च हुताशनं पापचयैन्धनानाम् ।
विनाशनं विघ्नघटस्य विद्धि सिद्धासनं वर्मवरं बलस्य ॥

(गर्ग०, बलभद्र० १३ । १-१२)

१०. नीलाम्बर, ११. श्वेतवर्ण, १२. बलदेव, १३. अच्युताग्रज, १४. प्रलम्बघ्न, १५. महावीर, १६. रौहिणेय, १७. प्रतापवान् ॥ ६ ॥

१८. तालाङ्क, १९. मुसली, २०. हली, २१. हरि, २२. यदुवर, २३. बली, २४. सीरपाणि, २५. पद्म-पाणि, २६. लगुडी, २७. वेणुवादन ॥ ७ ॥

२८. कालिन्दीभेदन, २९. वीर, ३०. बल, ३१. प्रबल, ३२. ऊर्ध्वग, ३३. वासुदेवकला, ३४. अनन्त, ३५. सहस्रवदन, ३६. स्वराट् ॥ ८ ॥

३७. वसु, ३८. वसुमती, ३९. भर्ता, ४०. वासुदेव, ४१. वसूत्तम, ४२. यदूत्तम, ४३. यादवेन्द्र, ४४. माधव, ४५. वृष्णिवल्लभ ॥ ९ ॥

४६. द्वारकेश, ४७. माथुरेश, ४८. दानी, ४९. मानी, ५०. महामना, ५१. पूर्ण, ५२. पुराण, ५३. पुरुष, ५४. परेश, ५५. परमेश्वर ॥ १० ॥

५६. परिपूर्णतम, ५७. साक्षात् परम, ५८. पुरुषोत्तम, ५९. अनन्त, ६०. शाश्वत, ६१. शेष, ६२. भगवान्, ६३. प्रकृतेः पर ॥ ११ ॥

६४. जीवात्मा, ६५. परमात्मा, ६६. अन्त-रात्मा, ६७. ध्रुव, ६८. अव्यय, ६९. चतुर्व्यूह, ७०. चतुर्वेद, ७१. चतुर्मूर्ति, ७२. चतुष्पद ॥ १२ ॥

७३. प्रधान, ७४. प्रकृति, ७५. साक्षी, ७६. संघात, ७७. संघवान्, ७८. सखी, ७९. महामना, ८०. बुद्धिसख, ८१. चेत, ८२. अहंकार, ८३. आवृत ॥ १३ ॥

८४. इन्द्रियेश, ८५. देवता, ८६. आत्मा, ८७. ज्ञान, ८८. कर्म, ८९. शर्म, ९०. अद्वितीय, ९१. द्वितीय, ९२. निराकार, ९३. निरञ्जन ॥ १४ ॥

९४. विराट्, ९५. सम्राट्, ९६. महौघ, ९७. आधार, ९८. स्थास्नु, ९९. चरिष्णुमान्, १००. फणीन्द्र, १०१. फणिराज, १०२. सहस्र-फणमण्डित ॥ १५ ॥

१०३. फणीश्वर, १०४. फणी, १०५. स्फूर्ति, १०६. फूत्कारी, १०७. चीत्कर, १०८. प्रभु, १०९. मणिहार, ११०. मणिधर, १११. वितली, ११२. सुतली, ११३. तली ॥ १६ ॥

११४. अतली, ११५. सुतलेश, ११६. पाताल, ११७. तलातल, ११८. रसातल, ११९. भोगितल, १२०. स्फुरद्दन्त, १२१. महातल ॥ १७ ॥

१२२. वासुकि, १२३. शङ्खचूडाभ, १२४. देवदत्त, १२५. धनंजय, १२६. कम्बलाश्व, १२७. वेगतर, १२८. धृतराष्ट्र, १२९. महाभुज ॥ १८ ॥

१३०. वारुणीमदमत्ताङ्ग, १३१. मदघूर्णित-लोचन, १३२. पद्माक्ष, १३३. पद्ममाली, १३४. वनमाली, १३५. मधुश्रवा ॥ १९ ॥

१३६. कोटिकंदर्पलावण्य, १३७. नागकन्या-समर्चित, १३८. नूपुरी, १३९. कटिसूत्री, १४०. कटकी, १४१. कनकाङ्गदी ॥ २० ॥

१४२. मुकुटी, १४३. कुण्डली, १४४. दण्डी, १४५. शिखण्डी, १४६. खण्डमण्डली, १४७. कलि, १४८. कलिप्रिय, १४९. काल, १५०. निवात-कवचेश्वर ॥ २१ ॥

१५१. संहारकृत्, १५२. रुद्रवपु, १५३. कालाग्नि, १५४. प्रलय, १५५. लय, १५६. महाहि, १५७. पाणिनि, १५८. शास्त्रकार, १५९. भाष्यकार, १६०. पतञ्जलि ॥ २२ ॥

१६१. कात्यायन, १६२. पक्किकाभू, १६३. स्फोटायन, १६४. उरंगम, १६५. वैकुण्ठ, १६६. याज्ञिक, १६७. यज्ञ, १६८. वामन, १६९. हरिण, १७०. हरि ॥ २३ ॥

१७१. कृष्ण, १७२. विष्णु, १७३. महाविष्णु, १७४. प्रभविष्णु, १७५. विशेषवित्, १७६. हंस, १७७. योगेश्वर, १७८. कूर्म, १७९. वाराह, १८०. नारद, १८१. मुनि ॥ २४ ॥

१८२. सनक, १८३. कपिल, १८४. मत्स्य, १८५. कमठ, १८६. देवमङ्गल, १८७. दत्तात्रेय, १८८. पृथु, १८९. वृद्ध, १९०. ऋषभ, १९१. भार्गवोत्तम ॥ २५ ॥

१९२. धन्वन्तरि, १९३. नृसिंह, १९४. कल्कि, १९५. नारायण, १९६. नर, १९७. रामचन्द्र, १९८. राघवेन्द्र, १९९. कोसलेन्द्र, २००. रघूद्वह ॥ २६ ॥

२०१. काकुत्स्थ, २०२. करुणासिन्धु, २०३. राजेन्द्र, २०४. सर्वलक्षण, २०५. शूर, २०६.

दाशरथि, २०७. त्राता, २०८. कौसल्यानन्दवर्द्धन ॥ २७ ॥

२०९. सौमित्रि, २१०. भरत, २११. धन्वी, २१२. शत्रुघ्न, २१३. शत्रुतापन, २१४. निषङ्गी, २१५. कवची, २१६. खड्गी, २१७. शरी, २१८. ज्याहतकोष्ठक ॥ २८ ॥

२१९. बद्धगोधाङ्गुलित्राण, २२०. शम्भुकोदण्डभञ्जन, २२१. यज्ञत्राता, २२२. यज्ञभर्ता, २२३. मारीचवधकारक ॥ २९ ॥

२२४. असुरारि, २२५. ताडकारि, २२६. विभीषणसहायकृत्, २२७. पितृवाक्यकर, २२८. हर्षी, २२९. विराधारि, २३०. वनेचर ॥ ३० ॥

२३१. मुनि, २३२. मुनिप्रिय, २३३. चित्रकूटारण्यनिवासकृत्, २३४. कबन्धहा, २३५. दण्डकेश, २३६. राम, २३७. राजीवलोचन ॥ ३१ ॥

२३८. मतङ्ग, २३९. वनसंचारी, २४०. नेता, २४१. पञ्चवटीपति, २४२. सुग्रीव, २४३. सुग्रीवसखा, २४४. हनुमत्प्रीतमानस ॥ ३२ ॥

२४५. सेतुबन्ध, २४६. रावणारि, २४७. लङ्कादहनतत्पर, २४८. रावण्यरि, २४९. पुष्पकस्थ, २५०. जानकीविरहातुर ॥ ३३ ॥

२५१. अयोध्याधिपति, २५२. श्रीमान्, २५३. लवणारि, २५४. सुरार्चित, २५५. सूर्यवंशी, २५६. चन्द्रवंशी, २५७. वंशीवाद्यविशारद ॥ ३४ ॥

२५८. गोपति, २५९. गोपवृन्देश, २६०. गोप, २६१. गोपीशतावृत, २६२. गोकुलेश, २६३. गोपपुत्र, २६४. गोपाल, २६५. गोगणाश्रय ॥ ३५ ॥

२६६. पूतनारि, २६७. बकारि, २६८. तृणावर्तनिपातक, २६९. अघारि, २७०. धेनुकारि, २७१. प्रलम्बारि, २७२. व्रजेश्वर ॥ ३६ ॥

२७३. अरिष्टहा, २७४. केशिशत्रु, २७५. व्योमासुरविनाशकृत्, २७६. अग्निपान, २७७. दुग्धपान, २७८. वृन्दावनलता, २७९. आश्रित ॥ ३७ ॥

२८०. यशोमतीसुत, २८१. भव्य, २८२. रोहिणीलालित, २८३. शिशु, २८४. रासमण्डलमध्यस्थ, २८५. रासमण्डलमण्डन ॥ ३८ ॥

२८६. गोपिकाशतयूथार्थी, २८७. शङ्खचूडवधोद्यत, २८८. गोवर्द्धनसमुद्धर्ता, २८९. शक्रजित्, २९०. व्रजरक्षक ॥ ३९ ॥

२९१. वृषभानुवर, २९२. नन्द, २९३. आनन्द, २९४. नन्दवर्द्धन, २९५. नन्दराजसुत, २९६. श्रीश, २९७. कंसारि, २९८. कालियान्तक ॥ ४० ॥

२९९. रजकारि, ३००. मुष्टिकारि, ३०१. कंसकोदण्डभञ्जन, ३०२. चाणूरारि, ३०३. कूटहन्ता, ३०४. शलारि, ३०५. तोशलान्तक ॥ ४१ ॥

३०६. कंसभ्रातृनिहन्ता, ३०७. मल्लयुद्धप्रवर्तक, ३०८. गजहन्ता, ३०९. कंसहन्ता, ३१०. कालहन्ता, ३११. कलङ्कहा ॥ ४२ ॥

३१२. मागधारि, ३१३. यवनहा, ३१४. पाण्डुपुत्रसहायकृत्, ३१५. चतुर्भुज, ३१६. श्यामलाङ्ग, ३१७. सौम्य, ३१८. औपगविप्रिय ॥ ४३ ॥

३१९. युद्धभृत्, ३२०. उद्धवसखा, ३२१. मन्त्री, ३२२. मन्त्रविशारद, ३२३. वीरहा, ३२४. वीरमथन, ३२५. शङ्खधर, ३२६. चक्रधर, ३२७. गदाधर ॥ ४४ ॥

३२८. रेवतीचित्तहर्ता, ३२९. रेवतीहर्षवर्द्धन, ३३०. रेवतीप्राणनाथ, ३३१. रेवतीप्रियकारक ॥ ४५ ॥

३३२. ज्योति, ३३३. ज्योतिष्मतीभर्ता, ३३४. रैवताद्रिविहारकृत्, ३३५. धृतिनाथ, ३३६. धनाध्यक्ष, ३३७. दानाध्यक्ष, ३३८. धनेश्वर ॥ ४६ ॥

३३९. मैथिलार्चितपादाब्ज, ३४०. मानद, ३४१. भक्तवत्सल, ३४२. दुर्योधनगुरु, ३४३. गुर्वी, ३४४. गदाशिक्षाकर, ३४५. क्षमी ॥ ४७ ॥

३४६. मुरारि, ३४७. मदन, ३४८. मन्द, ३४९. अनिरुद्ध, ३५०. धन्विनां वर, ३५१. कल्पवृक्ष, ३५२. कल्पवृक्षी, ३५३. कल्पवृक्षवनप्रभु ॥ ४८ ॥

३५४. स्यमन्तकमणि, ३५५. मान्य, ३५६. गाण्डीवी, ३५७. कौरवेश्वर, ३५८. कूष्माण्डखण्डनकर, ३५९. कूपकर्णप्रहारकृत् ॥ ४९ ॥

३६०. सेव्य, ३६१. रैवतजामाता, ३६२. मधुसेवित, ३६३. माधवसेवित, ३६४. बलिष्ठ,

३६५. पुष्करसंप्रोक्ष, ३६६. हृष्ट, ३६७. पुष्ट, ३६८. प्रहर्षित ॥ ५० ॥

३६९. वाराणसीगत, ३७०. क्रुद्ध, ३७१. सर्व, ३७२. पौण्ड्रकघातक, ३७३. सुनन्दी, ३७४. शिखरी, ३७५. शिल्पी, ३७६. द्विविदाङ्गनिषूदन ॥ ५१ ॥

३७७. हस्तिनापुरसंकर्षी, ३७८. रथी, ३७९. कौरवपूजित, ३८०. विश्वकर्मा, ३८१. विश्वधर्मा, ३८२. देवशर्मा, ३८३. दयानिधि ॥ ५२ ॥

३८४. महाराज, ३८५. छत्रधर, ३८६. महाराजोपलक्षण, ३८७. सिद्धगीत, ३८८. सिद्धकथ, ३८९. शुक्लचामरवीजित ॥ ५३ ॥

३९०. तारास, ३९१. कीरनास, ३९२. बिम्बोष्ठ, ३९३. सुस्मितच्छवि, ३९४. करीन्द्र, ३९५. करदोर्दण्ड, ३९६. प्रचण्ड, ३९७. मेघमण्डल ॥ ५४ ॥

३९८. कपाटवक्षा, ३९९. पीनांस, ४००. पद्मपाद, ४०१. स्फुरद्द्युति, ४०२. महाविभूति, ४०३. भूतेश, ४०४. बन्धमोक्षी, ४०५. समीक्षण ॥ ५५ ॥

४०६. चैद्यशत्रु, ४०७. शत्रुसंध, ४०८. दन्तवक्त्रनिषूदक, ४०९. अजातशत्रु, ४१०. पापघ्न, ४११. हरिदाससहायकृत् ॥ ५६ ॥

४१२. शालबाहु, ४१३. शाल्वहन्ता, ४१४. तीर्थयायी, ४१५. जनेश्वर, ४१६. नैमिषारण्ययात्रार्थी, ४१७. गोमतीतीरवासकृत् ॥ ५७ ॥

४१८. गण्डकीस्नानवान्, ४१९. स्रग्वी, ४२०. वैजयन्तीविराजित, ४२१. अम्लान, ४२२. पङ्कजधर, ४२३. विपाशी, ४२४. शोणसंप्लुत ॥ ५८ ॥

४२५. प्रयागतीर्थराज, ४२६. सरयू, ४२७. सेतुबन्धन, ४२८. गयाशिर, ४२९. धनद, ४३०. पौलस्त्य, ४३१. पुलहाश्रम ॥ ५९ ॥

४३२. गङ्गासागरसङ्गार्थी, ४३३. सप्तगोदावरीपति, ४३४. वेणी, ४३५. भीमरथी, ४३६. गोदा, ४३७. ताम्रपर्णी, ४३८. वटोदका ॥ ६० ॥

४३९. कृतमाला, ४४०. महापुण्या, ४४१. कावेरी, ४४२. पयस्विनी, ४४३. प्रतीची, ४४४. सुप्रभा, ४४५. वेणी, ४४६. त्रिवेणी, ४४७. सरयूपमा ॥ ६१ ॥

४४८. कृष्णा, ४४९. पम्पा, ४५०. नर्मदा, ४५१. गङ्गा, ४५२. भागीरथी, ४५३. नदी, ४५४. सिद्धाश्रम, ४५५. प्रभास, ४५६. बिन्दु, ४५७. बिन्दुसरोवर ॥ ६२ ॥

४५८. पुष्कर, ४५९. सैन्धव, ४६०. जम्बू, ४६१. नरनारायणाश्रम, ४६२. कुरुक्षेत्रपति, ४६३. राम, ४६४. जामदग्न्य, ४६५. महामुनि ॥ ६३ ॥

४६६. इल्वलात्मजहन्ता, ४६७. सुदामा, ४६८. सौख्यदायक, ४६९. विश्वजित्, ४७०. विश्वनाथ, ४७१. त्रिलोकविजयी, ४७२. जयी ॥ ६४ ॥

४७३. वसन्तमालतीकर्षी, ४७४. गद, ४७५. गद्य, ४७६. गदाग्रज, ४७७. गुणार्णव, ४७८. गुणनिधि, ४७९. गुणपात्री, ४८०. गुणाकर ॥ ६५ ॥

४८१. रङ्गवल्ली, ४८२. जलाकार, ४८३. निर्गुण, ४८४. सगुण, ४८५. बृहत्, ४८६. दृष्ट, ४८७. श्रुत, ४८८. भवत्, ४८९. भूत, ४९०. भविष्यत्, ४९१. अल्पविग्रह ॥ ६६ ॥

४९२. अनादि, ४९३. आदि, ४९४. आनन्द, ४९५. प्रत्यग्धामा, ४९६. निरन्तर, ४९७. गुणातीत, ४९८. सम, ४९९. साम्य, ५००. समदृक्, ५०१. निर्विकल्पक ॥ ६७ ॥

५०२. गूढ, ५०३. व्यूढ, ५०४. गुण, ५०५. गौण, ५०६. गुणाभास, ५०७. गुणावृत, ५०८. नित्य, ५०९. अक्षर, ५१०. निर्विकार, ५११. क्षर, ५१२. अजस्रसुख, ५१३. अमृत ॥ ६८ ॥

५१४. सर्वग, ५१५. सर्ववित्, ५१६. सार्थ, ५१७. समबुद्धि, ५१८. समप्रभ, ५१९. अक्लेद्य, ५२०. अच्छेद्य, ५२१. आपूर्ण, ५२२. अशोष्य, ५२३. अदाह्य, ५२४. अनिवर्तक ॥ ६९ ॥

५२५. ब्रह्म, ५२६. ब्रह्मधर, ५२७. ब्रह्मा, ५२८. ज्ञापक, ५२९. व्यापक, ५३०. कवि, ५३१. अध्यात्म, ५३२. अधिभूत, ५३३. अधिदैव, ५३४. स्वाश्रय, ५३५. अश्रय ॥ ७० ॥

५३६. महावायु, ५३७. महावीर, ५३८. चेष्टा, ५३९. रूपतनुस्थित, ५४०. प्रेरक, ५४१. बोधक, ५४२. बोधी, ५४३. त्रयोविंशतिकगण ॥ ७१ ॥

५४४. अंशांश, ५४५. नरावेश, ५४६. अवतार, ५४७. भूपरिस्थित, ५४८. मह, ५४९. जन, ५५०. तप, ५५१. सत्य, ५५२. भू, ५५३. भुव, ५५४. स्व ॥ ७२ ॥

५५५. नैमित्तिक, ५५६. प्राकृतिक, ५५७. आत्यन्तिकमय लय, ५५८. सर्ग, ५५९. विसर्ग, ५६०. सर्गादि, ५६१. निरोध, ५६२. रोध, ५६३. ऊतिमान् ॥ ७३ ॥

५६४. मन्वन्तरावतार, ५६५. मनु, ५६६. मनुसुत, ५६७. अनघ, ५६८. स्वयम्भू, ५६९. शाम्भव, ५७०. शङ्कु, ५७१. स्वायम्भुव-सहायकृत् ॥ ७४ ॥

५७२. सुरालय, ५७३. देवगिरि, ५७४. मेरु, ५७५. हेम, ५७६. अर्चित, ५७७. गिरि, ५७८. गिरीश, ५७९. गणनाथ, ५८०. गौरी, ५८१. ईश, ५८२. गिरिगह्वर ॥ ७५ ॥

५८३. विन्ध्य, ५८४. त्रिकूट, ५८५. मैनाक, ५८६. सुवेल, ५८७. पारिभद्रक, ५८८. पतंग, ५८९. शिशिर, ५९०. कङ्क, ५९१. जारुधि, ५९२. शैलसत्तम ॥ ७६ ॥

५९३. कालञ्जर, ५९४. बृहत्सानु, ५९५. दरीभृत्, ५९६. नन्दिकेश्वर, ५९७. संतान, ५९८. तरुराज, ५९९. मन्दार, ६००. पारिजातक ॥ ७७ ॥

६०१. जयन्तकृत्, ६०२. जयन्ताङ्ग, ६०३. जयन्ती, ६०४. दिग्, ६०५. जयाकुल, ६०६. वृत्रहा, ६०७. देवलोक, ६०८. शशी, ६०९. कुमुदबान्धव ॥ ७८ ॥

६१०. नक्षत्रेश, ६११. सुधा, ६१२. सिन्धु, ६१३. मृग, ६१४. पुष्य, ६१५. पुनर्वसु, ६१६. हस्त, ६१७. अभिजित्, ६१८. श्रवण, ६१९. वैधृत, ६२०. भास्करोदय ॥ ७९ ॥

६२१. ऐन्द्र, ६२२. साध्य, ६२३. शुभ, ६२४. शुक्ल, ६२५. व्यतीपात, ६२६. ध्रुव, ६२७. सित, ६२८. शिशुमार, ६२९. देवमय, ६३०. ब्रह्मलोक, ६३१. विलक्षण ॥ ८० ॥

६३२. राम, ६३३. वैकुण्ठनाथ, ६३४. व्यापी, ६३५. वैकुण्ठनायक, ६३६. श्वेतद्वीप, ६३७. अजितपद, ६३८. लोकालोकचलाश्रित ॥ ८१ ॥

६३९. भूमि, ६४०. वैकुण्ठदेव, ६४१. कोटि-ब्रह्माण्डकारक, ६४२. असंख्यब्रह्माण्डपति, ६४३. गोलोकेश, ६४४. गवां पति ॥ ८२ ॥

६४५. गोलोकधामधिषण, ६४६. गोपिकाकण्ठ-भूषण, ६४७. ह्रीधर, ६४८. श्रीधर, ६४९. लीलाधर, ६५०. गिरिधर, ६५१. धुरी ॥ ८३ ॥

६५२. कुन्तधारी, ६५३. त्रिशूली, ६५४. बीभत्सी, ६५५. घर्घरस्वन, ६५६. शूलार्पितगज, ६५७. सूच्यर्पितगज, ६५८. गजचर्मधर, ६५९. गर्जी ॥ ८४ ॥

६६०. अन्त्रमाली, ६६१. मुण्डमाली, ६६२. व्याली, ६६३. दण्डकमण्डलु, ६६४. वेतालभृत्, ६६५. भूतसंघ, ६६६. कूष्माण्डगणसंवृत ॥ ८५ ॥

६६७. प्रमथेश, ६६८. पशुपति, ६६९. मृडानी, ६७०. ईश, ६७१. मृड, ६७२. वृष, ६७३. कृतान्त-संघारि, ६७४. कालसंघारि, ६७५. कूट, ६७६. कल्पान्तभैरव ॥ ८६ ॥

६७७. षडानन, ६७८. वीरभद्र, ६७९. दक्षयज्ञविघातक, ६८०. खर्पराशी, ६८१. विषाशी, ६८२. शक्तिहस्त, ६८३. शिवा, ६८४. अर्थद ॥ ८७ ॥

६८५. पिनाकटंकारकर, ६८६. चलज्झंकारनूपुर, ६८७. पण्डित, ६८८. तर्क-विद्वान्, ६८९. वेदपाठी, ६९०. श्रुतीश्वर ॥ ८८ ॥

६९१. वेदान्तकृत्, ६९२. सांख्यशास्त्री, ६९३. मीमांसी, ६९४. कणनामभाक्, ६९५. काणादि, ६९६. गोतम, ६९७. वादी, ६९८. वाद, ६९९. नैयायिक, ७००. नय ॥ ८९ ॥

७०१. वैशेषिक, ७०२. धर्मशास्त्री, ७०३. सर्वशास्त्रार्थतत्त्वग, ७०४. वैयाकरणकृत्, ७०५. छन्द, ७०६. वैयास, ७०७. प्राकृति, ७०८. वच ॥ ९० ॥

७०९. पाराशरीसंहितावित्, ७१०. काव्यकृत्, ७११. नाटकप्रद, ७१२. पौराणिक, ७१३. स्मृतिकर, ७१४. वैद्य, ७१५. विद्याविशारद ॥ ९१ ॥

७१६. अलंकार, ७१७. लक्षणार्थ, ७१८. व्यङ्ग्यवित्, ७१९. ध्वनिवित्, ७२०. ध्वनि, ७२१. वाक्यस्फोट, ७२२. पदस्फोट, ७२३. स्फोटवृत्ति, ७२४. रसार्थवित् ॥ ९२ ॥

७२५. शृङ्गार, ७२६. उज्ज्वल, ७२७. स्वच्छ, ७२८. अद्भुत, ७२९. हास्य, ७३०. भयानक, ७३१. अश्वत्थ, ७३२. यवभोजी, ७३३. यवक्रीत, ७३४. यवाशन ॥ ९३ ॥

७३५. प्रह्लादरक्षक, ७३६. स्निग्ध, ७३७. पेलवंशाविवर्धन, ७३८. गताधि, ७३९. अम्बरीषाङ्ग, ७४०. विगाधि, ७४१. गाधीनां वर ॥ ९४ ॥

७४२. नानामणिसमाकीर्ण, ७४३. नानारत्नविभूषण, ७४४. नानापुष्पधर, ७४५. पुष्पी, ७४६. पुष्पधन्वा, ७४७. प्रपुष्पित ॥ ९५ ॥

७४८. नानाचन्दनगन्धाढ्य, ७४९. नानापुष्परसार्चित, ७५०. नानावर्णमय, ७५१. वर्ण, ७५२. सदा नानावस्त्रधर ॥ ९६ ॥

७५३. नानापद्माकर, ७५४. कौशी, ७५५. नानाकौशेयवेषधृक्, ७५६. रत्नकम्बलधारी, ७५७. धौतवस्त्रसमावृत ॥ ९७ ॥

७५८. उत्तरीयधर, ७५९. पूर्ण, ७६०. घनकञ्चुकवान्, ७६१. संघवान्, ७६२. पीतोष्णीष, ७६३. सितोष्णीष, ७६४. रक्तोष्णीष, ७६५. दिगम्बर ॥ ९८ ॥

७६६. दिव्याङ्ग, ७६७. दिव्यरचन, ७६८. दिव्यालोकविलोकित, ७६९. सर्वोपम, ७७०. निरुपम, ७७१. गोलोकाङ्कीकृताङ्गण ॥ ९९ ॥

७७२. कृतस्वोत्सङ्गगोलोक, ७७३. कुण्डली, ७७४. भूत, ७७५. माश्रित, ७७६. माथुर, ७७७. मथुरा, ७७८. मादर्शी, ७७९. चलत्खञ्जनलोचन ॥ १०० ॥

७८०. दधिहर्ता, ७८१. दुग्धहर, ७८२. नवनीतसिताशन, ७८३. तक्रभुक्, ७८४. तक्रहारी, ७८५. दधिचौर्यकृतश्रम ॥ १०१ ॥

७८६. प्रभावतीबद्धकर, ७८७. दामी, ७८८. दामोदर, ७८९. दमी, ७९०. सिकताभूमिचारी, ७९१. बालकेलि, ७९२. व्रजार्भक ॥ १०२ ॥

७९३. धूलिधूसरसर्वाङ्ग, ७९४. काकपक्षधर, ७९५. सुधी, ७९६. मुक्तकेश, ७९७. वत्सवृन्द, ७९८. कालिन्दीकूलवीक्षण ॥ १०३ ॥

७९९. जलकोलाहली, ८००. कूली, ८०१. पङ्कप्राङ्गणलेपक, ८०२. श्रीवृन्दावनसंचारी, ८०३. वंशीवटतटस्थित ॥ १०४ ॥

८०४. महावननिवासी, ८०५. लोहार्गलवनाधिप, ८०६. साधु, ८०७. प्रियतम, ८०८. साध्य, ८०९. साध्वीश, ८१०. गतसाध्वस ॥ १०५ ॥

८११. रङ्गनाथ, ८१२. विट्ठलेश, ८१३. मुक्तिनाथ, ८१४. अघनाशक, ८१५. सुकीर्ति, ८१६. सुयशा, ८१७. स्फीत, ८१८. यशस्वी, ८१९. रङ्गरञ्जन ॥ १०६ ॥

८२०. रागषट्क, ८२१. रागपुत्र, ८२२. रागिणी, ८२३. रमणोत्सुक, ८२४. दीपक, ८२५. मेघमल्लार, ८२६. श्रीराग, ८२७. मालकोशक ॥ १०७ ॥

८२८. हिन्दोल, ८२९. भैरवाख्य, ८३०. स्वरजातिस्मर, ८३१. मृदु, ८३२. ताल, ८३३. मान, ८३४. प्रमाण, ८३५. स्वरगम्य, ८३६. कलाक्षर ॥ १०८ ॥

८३७. शमी, ८३८. श्यामी, ८३९. शतानन्द, ८४०. शतयाम, ८४१. शतक्रतु, ८४२. जागर, ८४३. सुप्त, ८४४. आसुप्त, ८४५. सुषुप्त, ८४६. स्वप्न, ८४७. उर्वर ॥ १०९ ॥

८४८. ऊर्ज, ८४९. स्फूर्ज, ८५०. निर्जर, ८५१. विज्वर, ८५२. ज्वरवर्जित, ८५३. ज्वरजित्, ८५४. ज्वरकर्ता, ८५५. ज्वरयुक्त, ८५६. त्रिज्वर, ८५७. ज्वर ॥ ११० ॥

८५८. जाम्बवान्, ८५९. जम्बुकाशङ्की, ८६०. जम्बूद्वीप, ८६१. द्विपारिहा, ८६२. शाल्मलि, ८६३. शाल्मलिद्वीप,८६४. प्लक्ष,८६५. प्लक्षवनेश्वर ॥१११॥

८६६. कुशधारी, ८६७. कुश, ८६८. कौशी, ८६९. कौशिक, ८७०. कुशविग्रह, ८७१. कुशस्थली-पति, ८७२. काशीनाथ, ८७३. भैरवशासन ॥११२॥

८७४. दाशार्ह, ८७५. सात्वत, ८७६. वृष्णि, ८७७. भोज, ८७८. अन्धकनिवासकृत्, ८७९. अन्धक, ८८०. दुन्दुभि, ८८१. द्योत, ८८२. प्रद्योत. ८८३. सात्वतां पति ॥ ११३ ॥

८८४. शूरसेन, ८८५. अनुविषय, ८८६. भोजेश्वर, ८८७. वृष्णीश्वर, ८८८. अन्धकेश्वर, ८८९. आहुक, ८९०. सर्वनीतिज्ञ, ८९१. उग्रसेन, ८९२. महोग्रवाक् ॥ ११४ ॥

८९३. उग्रसेनप्रिय, ८९४. प्रार्थ्य, ८९५. प्रार्थ, ८९६. यदुसभापति, ८९७. सुधर्माधिपति, ८९८. सत्व, ८९९. वृष्णिचक्रावृत, ९००. भिषक् ॥ ११५ ॥

९०१. सभाशील, ९०२. सभादीप, ९०३. सभाग्नि, ९०४. सभारवि, ९०५. सभाचन्द्र, ९०६. सभाभास, ९०७. सभादेव, ९०८. सभापति ॥११६॥

९०९. प्रजार्थद, ९१०. प्रजाभर्ता, ९११. प्रजा-पालनतत्पर, ९१२. द्वारकादुर्गसंचारी, ९१३. द्वारकाग्रहविग्रह ॥ ११७ ॥

९१४. द्वारकादुःखसंहर्ता, ९१५. द्वारकाजन-मङ्गल, ९१६. जगन्माता, ९१७. जगत्त्राता, ९१८. जगद्भर्ता, ९१९. जगत्पिता ॥ ११८ ॥

९२०. जगद्बन्धु, ९२१. जगद्भ्राता, ९२२. जगन्मित्र, ९२३. जगत्सख, ९२४. ब्रह्मण्यदेव, ९२५. ब्रह्मण्य, ९२६. ब्रह्मपादरजो दधत् ॥ ११९ ॥

९२७. ब्रह्मपादरजःस्पर्शी, ९२८. ब्रह्मपादनिषेवक, ९२९. विप्राङ्घ्रिजलपूताङ्ग, ९३०. विप्रसेवा-परायण ॥ १२० ॥

९३१. विप्रमुख्य, ९३२. विप्रहित, ९३३. विप्रगीतमहाकथ, ९३४. विप्रपादजलार्द्राङ्ग, ९३५. विप्रपादोदकप्रिय ॥ १२१ ॥

९३६. विप्रभक्त, ९३७. विप्रगुरु, ९३८. विप्र, ९३९. विप्रपदानुग, ९४०. अक्षौहिणीवृत, ९४१. योद्धा, ९४२. प्रतिमापञ्चसंयुत ॥ १२२ ॥

९४३. चतुर, ९४४. अङ्गिरा, ९४५. पद्मवर्ती, ९४६. सामन्तोद्धृतपादुक, ९४७. गजकोटिप्रयायी, ९४८. रथकोटिजयध्वज ॥ १२३ ॥

९४९. महारथ,९५०. अतिरथ,९५१. जैत्रस्यन्दन-मास्थित, ९५२. नारायणास्त्री, ९५३. ब्रह्मास्त्री, ९५४. रणश्लाघी, ९५५. रणोद्भट ॥ १२४ ॥

९५६. मदोत्कट, ९५७. युद्धवीर, ९५८. देवासुर-भयंकर, ९५९. करिकर्णमरुत्प्रेजत्कुन्तलव्याप्तकुण्डल ॥ १२५ ॥

९६०. अग्रग, ९६१. वीरसम्मर्द, ९६२. मर्द्दल, ९६३. रणदुर्मद, ९६४. भटप्रतिभट, ९६५. प्रोच्य, ९६६. बाणवर्षी, ९६७. इषुतोयद ॥ १२६ ॥

९६८. खड्गखण्डितसर्वाङ्ग, ९६९. षोडशाब्द, ९७०. षडक्षर, ९७१. वीरघोष, ९७२. अक्लिष्टवपु, ९७३. वज्राङ्ग, ९७४. वज्रभेदन ॥ १२७ ॥

९७५. रुग्णवज्र, ९७६. भग्नदन्त, ९७७. शत्रु-निर्भर्त्सनोद्यत, ९७८. अट्टहास, ९७९. पट्टधर, ९८०. पट्टराज्ञीपति, ९८१. पट्ट ॥ १२८ ॥

९८२. कल, ९८३. पटहवादित्र, ९८४. हुंकार, ९८५. गर्जितस्वन, ९८६. साधु, ९८७. भक्तपराधीन, ९८८. स्वतन्त्र, ९८९. साधुभूषण ॥ १२९ ॥

९९०. अस्वतन्त्र, ९९१. साधुमय, ९९२. मनाक्-साधुप्रसन्नमना, ९९३. साधुप्रिय, ९९४. साधुधन, ९९५. साधुज्ञाति, ९९६. सुधाघन ॥ १३० ॥

९९७. साधुचारी, ९९८. साधुचित्त, ९९९. साधुवह्य, १०००. शुभास्पद ।

इस प्रकार भगवान् बलभद्रजीके एक सहस्र नामोंका वर्णन किया गया ॥ १३१ ॥

माहात्म्य-अध्ययन

यह सहस्रनाम मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि और चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) फल प्रदान करनेवाला है। जो इसका सौ बार पाठ करता है, वह इस लोकमें विद्यावान् होता है। इस सहस्रनामका पाठ करनेसे मनुष्य लक्ष्मी, वैभव, सद्वंशमें जन्म, रूप, बल तथा तेज सब कुछ प्राप्त करता है। गङ्गाजी एवं यमुनाजीके तटपर अथवा देवालय (देवमन्दिर) में इसके एक हजार पाठ करनेसे जबर्दस्ती सिद्धि मिलती है। इसके पाठसे पुत्रकी कामनावालेको पुत्र तथा धनार्थीको धन प्राप्त होता है। बन्धनमें पड़ा मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है और रोगीका रोग चला जाता है। जो मनुष्य पुरश्चरणकी विधिसे पद्धति, पटल, स्तोत्र, कवच-सहित इस सहस्रनामका दस हजार बार पाठ करता है तथा होम, तर्पण, गोदान तथा ब्राह्मणका पूजनरूप कर्म विधिवत् करता है, वह समस्त भूमण्डलका स्वामी चक्रवर्ती राजा होता है। वह अनेक सामन्त राजाओंसे घिरा रहता है। मदकी गन्धसे विह्वल भ्रमर मतवाले हाथियोंके कानोंकी चपेटसे आहत हो उड़ते हुए उसके द्वारपर जाकर उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। राजेन्द्र ! यदि कोई मनुष्य निष्कामभावसे रेवतीरमण भगवान् बलभद्रजीकी प्रसन्नताके लिये इस सहस्रनामका पाठ करता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है। अच्युताग्रज बलभद्रजी सदा-सर्वदा उसके घरमें निवास करते हैं। हे महाराज ! घोर पापी मनुष्य भी यदि इस सहस्रनामका पाठ करता है तो उसके मेरुके समान सारे पाप कट जाते हैं और वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग करके अन्तमें परात्पर गोलोकधामको प्रयाण कर जाता है* ॥ १३२–१४१ ॥

नारदजी कहते हैं—अच्युताग्रज श्रीबलभद्रजीके इस पञ्चाङ्गको सुनकर धृतिमान् दुर्योधनने सेवा-भाव तथा परम भक्तिके साथ प्राड्विपाक मुनिकी पूजा की। तदनन्तर मुनीन्द्र प्राड्विपाकजीने दुर्योधनको आशीर्वाद देकर उनकी अनुमति प्राप्त कर हस्तिनापुरसे अपने आश्रमको गमन किया। परब्रह्म परमात्मा भगवान् अनन्त श्रीबलभद्रजीकी कथाको जो पुरुष सुनता अथवा सुनाता है, वह आनन्दमय बन जाता है। नृपेन्द्र ! मैं आपके सामने इन सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले बलभद्रखण्डका वर्णन कर चुका। जो मनुष्य इसका श्रवण करता है, वह भगवान् श्रीहरिके शोकरहित अखण्ड आनन्दमय धामको प्राप्त हो जाता है ॥ १४२–१४४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीबलभद्रखण्डके अन्तर्गत प्राड्विपाक-दुर्योधन-संवादमें 'श्रीबलभद्र सहस्रनाम' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

श्रीबलभद्रखण्ड सम्पूर्ण

---

* इति नाम्ना सहस्रं तु बलभद्रस्य कीर्तितम् ॥

सर्वसिद्धिप्रदं नृणां चतुर्वर्गफलप्रदम् । शतवारं पठेद्यस्तु स विद्यावान् भवेदिह ॥

इन्दिरां च विभूतिं चाभिजनं रूपमेव च । बलमोजश्च पठनात्सर्वं प्राप्नोति मानवः ॥

गङ्गाकूलेऽथ कालिन्दीकूले देवालये तथा । सहस्रावर्तपाठेन बलात् सिद्धिः प्रजायते ॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् । बन्धात्प्रमुच्यते बद्धो रोगी रोगान्निवर्तते ॥

अयुतावर्तपाठे च पुरश्चर्याविधानतः । होमतर्पणगोदानविप्रार्चनक्रतोषमात् ॥

पटलं पद्धतिं स्तोत्रं कवचं तु विधाय च । महामण्डलभर्ता स्यात्सेवितो मण्डलेश्वरैः ॥

मत्तेभकर्णप्रहिता मदगन्धेन विह्वला । अलंकरोति तद्द्वारं भ्रमद्भृङ्गावली भृशम् ॥

निष्कारणः पठेद्यस्तु प्रीत्यर्थं रेवतीपतेः । नाम्नां सहस्रं राजेन्द्र स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

सदा वसेत्तस्य गृहे बलभद्रोऽच्युताग्रजः । महापातक्यपि जनः पठेन्नामसहस्रकम् ॥

छित्त्वा मेरुसमं पापं भुक्त्वा सर्वसुखं त्विह । परात्परं महाराज गोलोकं धाम याति हि ॥

(गर्ग-संहिता, बलभद्र० १३ । १३२–१४१)

श्रीगणेशाय नमः

श्रीविज्ञानखण्ड

पहला अध्याय

द्वारकामें वेदव्यासजीका आगमन और उग्रसेनद्वारा उनका स्वागत-पूजन

राजा बहुलाश्वने कहा—मुने! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उस भक्तिमार्गका, जो सर्वश्रेष्ठ है तथा जिसके प्रभावसे मैं भी भक्त बन जाऊँ, वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

नारदजी बोले—राजन्! वेदव्यासजीके मुखसे सुने हुए भक्तिमार्गका मैं वर्णन करता हूँ। यह वह मार्ग है, जिसपर चलनेसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं॥ २ ॥

जनकजी! अपने भुजदण्डोंके बलसे उद्धत इन्द्रपर विजय प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें सुधर्मा नामकी दिव्य सभाकी प्रतिष्ठा की थी। राजन्! विश्वकर्माके द्वारा रचे गये वैदूर्य मणिके खंभोंकी करोड़ों पंक्तियाँ उसके मण्डपकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँकी भूमि पद्मराग-मणिसे जड़ी गयी थी। उसपर मूँगेकी दीवालोंसे कई विभाग बने थे, जिनपर रंग-बिरंगे चँदोवे शोभा दे रहे थे और मोतियोंकी झालरें लटकायी हुई थीं। उसकी दीवालें सिंहासनके आकारकी थीं। उनपर काले मेघमें कौंधनेवाली बिजलीका-सा प्रकाश फैलानेवाले जाम्बूनद सुवर्णके करोड़ों चमचमाते हुए कलश सुशोभित थे। वहाँ प्रातःकालीन सूर्यकी भाँति चमकनेवाले रत्नमय केयूर, करधनी, कङ्कण और नूपुरोंसे सैकड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाको छिटकानेवाली गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ हर्षमें भरकर गान किया करती थीं और सुमधुर वाद्योंके साथ विद्याधरियाँ परस्पर लाग-डाँट रखती हुई नृत्य करती थीं। उसके चारों कोनोंमें मनोहर देववृक्षों सहित नन्दन, सर्वतोभद्र, ध्रौव्य एवं चैत्ररथ नामक वन सुशोभित थे। महाराज! उस सभाप्रदेशके अन्तर्गत स्वच्छ जलवाले लाखों सरोवर तथा भ्रमरोंसे भरपूर बहुत-से हजार दलवाले कमल दिखायी पड़ते थे। इस प्रकारकी वह सुधर्मा सभा ध्वजा एवं पताकाओंसे अलंकृत तथा दस योजनके विस्तारवाली थी। पाँच योजनकी उसकी ऊँचाई थी। उसमें गया हुआ पुरुष अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझता है। जिसे वहाँका सिंहासन उपलब्ध हो जाता, वह तो 'मैं इन्द्र हूँ'—यों कल्पना करने लगता है। त्रिलोकीमें जितने चातुर्य गुण हैं, वे सभी उस पुरुषके शरीरमें आकर रहने लगते हैं। वहाँ जितनी देर मनुष्य ठहरता है, उतनी देरतक शोक-मोह, जरा मृत्यु तथा भूख-प्यास—ये छः प्रकारकी ऊर्मियाँ (विकार) उसके पास नहीं फटकतीं। महाराज! जितने मनुष्य वहाँ प्रवेश करते हैं, उतनी ही बड़ी वह सभा अपने प्रभावसे दिखायी देने लगती है। जनकजी! यादवोंकी संख्या छप्पन करोड़ थी। अनुचरोंसहित वे सभी उक्त सभा-भवनके आँगनके एक चौथाई भागमें ही समाये हुए दीख पड़ते थे। महाराज! जहाँ साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान रहते थे, उस सभाका वर्णन कौन कर सकता है।

उस सभामें एक दिन महाराज उग्रसेन विराजमान थे। करोड़ों यादव उन्हें घेरे हुए थे। सूत, मागध और वन्दियोंद्वारा महाराजका यशोगान हो रहा था। साक्षात् पराशरकुमार मुनिवर वेदव्यासजी आकाशमार्गसे वहाँ पधारे। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्यामल थी और वे बिजलीके समान पीली जटा धारण किये हुए थे। उन्हें देखकर यदुराज तुरंत उठ खड़े हुए और उन्होंने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया। फिर उन्हें आसनपर बिठाकर तथा पूजाके उपचार समर्पित कर वे मुनिके सामने खड़े हो गये ॥३-१९॥

राजा उग्रसेन बोले—ब्रह्मन्! आज आपके यहाँ पधारनेपर मेरा जन्म, महल तथा धर्माचरण—सब कुछ सफल हो गया। भगवन्! आप जैसे सदा आनन्दस्वरूप महानुभावोंकी कुशल तो स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रको अभीष्ट है। फिर भी अपनी कुशल कहिये, जिससे मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। प्रभो! आपके समान साधुपुरुष जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ लौकिकी और पारलौकिकी दोनों प्रकारकी सिद्धियाँ रहती ही हैं। मुनिवर व्यासजी! जहाँ संत पुरुष एक क्षण भी निवास करते हैं, वहाँ स्वयं श्रीहरि रहते हैं; ब्रह्मन्! फिर लौकिक गुणोंकी तो बात ही क्या है। मुनिवर! मैंने पूर्वजन्ममें कौन सा पुण्य अथवा यज्ञ किया था, जिसके फलस्वरूप मुझे

द्वारकाका राज्य प्राप्त हो गया। यही नहीं, आपके समान बड़े-बड़े ब्राह्मण देवता मेरे महलोंमें प्रतिदिन पधारते रहते हैं। इससे मैं अनुमान करता हूँ कि मैंने निस्संदेह सबसे बड़ा पुण्य किया है ॥ २०—२५ ॥

व्यासजीने कहा—महाराज! तुम धन्य हो तथा तुम्हारी निर्मल बुद्धिको भी धन्यवाद है। राजन्! पूर्वजन्ममें तुमने सबसे बड़ा पुण्य किया था। राजन्! तुम्हारा नाम मरुत्त था। मनमें किसी भी प्रकारकी कामना न रखकर तुमने विश्वजित् नामका यज्ञ किया था। उससे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हुए। तुम्हारे निष्कामभावसे तुम्हें यह परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरि ही हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड उनके अधीन हैं और वे परात्पर प्रभु गोलोकके स्वामी हैं। वे परम स्वतन्त्र होनेपर भी भक्तिके वशीभूत हो तुम्हारे महलोंमें विराजते हैं। यदुराज! यहाँ यही विचित्र बात है कि भजन करनेवालोंको भगवान् मुक्ति दे देते हैं, किंतु भक्तिका साधन कभी नहीं देते। राजन्! इसीलिये 'भक्तियोगको बहुत दुर्लभ समझो' ॥ २६—३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'द्वारकाम श्रीवेदव्यासका आगमन' नामक पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

व्यासजीके द्वारा गतियोंका निरूपण

राजा उग्रसेन बोले—आपके द्वारा किये गये वर्णनको सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया तथा आनन्दसे भर गया हूँ। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की। मेरे मनमें उठे हुए संदेहको दूर करनेमें आप ही समर्थ हैं। ब्रह्मन्! सकाम कर्मोंकी क्या गति होती है, उनका क्या लक्षण है और उनके कितने भेद हैं? इसे तत्त्वतः कहनेकी कृपा कीजिये ॥ १-२ ॥

व्यासजीने कहा—राजन्! गुणोंके साथ सम्बन्धसे सभी कर्म सकाम हो जाते हैं, वे ही फलका त्याग कर देनेपर निष्काम हो जाते हैं। यदुराज! जो सकाम कर्म है, उसे बन्धन समझो। जो निष्काम कर्म होता है, वह मोक्ष देनेवाला है। अतएव वह परम मङ्गलमय होता है। सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंकी उत्पत्ति प्रकृतिसे होती है। जैसे भगवान् विष्णुसे सारे पदार्थ व्याप्त हैं, उसी प्रकार गुणोंसे सम्पूर्ण विश्व ओतप्रोत है। सत्त्वगुणकी स्थितिमें जिनके प्राण निकलते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाते हैं, रजोगुणमें प्रयाण करनेवाले नरलोकके अधिकारी होते हैं तथा तमोगुणकी अधिकतामें मरनेवालेको नरककी यातना भोगनी पड़ती है। जो गुणोंके सम्बन्धसे रहित होते हैं, वे श्रीकृष्णको प्राप्त होते हैं।

राजन्! जिन्होंने वनवासी होकर पञ्चाग्नियोंका सेवनरूप तप किया है, वे निष्पाप होकर सप्तर्षियोंके लोकमें चले जाते हैं। जो संन्यास-आश्रमके नियमोंका पालन करनेवाले त्रिदण्डधारी हैं तथा जिन्होंने इन्द्रिय एवं मनके स्वभावपर विजय पा ली है, वे सत्यलोकके यात्री होते हैं। जो निर्मल चित्तवाले ऊर्ध्वरेता योगिराज अष्टाङ्गयोगका सेवन करते हैं, वे उसके प्रभावसे जनलोक अथवा महर्लोकमें जाते हैं— इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। यज्ञका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष बहुत वर्षोंतक इन्द्रलोकमें वास पाता है। दानशील व्यक्ति चन्द्रलोकको और व्रतशील पुरुष सूर्यलोकको जाता है। तीर्थोंकी यात्रा करनेवाले अग्निलोकको, सत्यप्रतिज्ञ वरुणलोकको, विष्णुके उपासक वैकुण्ठलोकको तथा शिवकी आराधना करनेवाले शिवलोकको प्रयाण करते हैं। जो सुख, ऐश्वर्य और संतानकी कामनासे नित्य पितरोंका पूजन करते हैं, वे दक्षिण-मार्गसे अर्यमाके साथ पितृलोकको चले जाते हैं। इसी प्रकार पाँच देवोंकी उपासना करनेवाले स्मार्तलोग स्वर्गलोकके अधिकारी होते हैं, प्रजापतियोंके उपासक दक्ष आदि प्रजापतियोंके लोकको जाते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतलोकको और यक्षोंको पूजनेवाले यक्षलोकमें प्रयाण करते हैं। राजन्! जो जिसके भक्त होते हैं, वे उसीके लोकमें जाते हैं— इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। राजन्! वैसे ही बुरे सङ्गके वशीभूत होकर पापमें रचे पचे रहनेवाले लोग यमलोकमें जाते हैं, जो दारुण नरकोंसे घिरा हुआ है। महामते! ब्रह्मलोकपर्यन्त जितने भी लोक हैं, उनमें जानेपर पुनरागमन होता है। राजन्! इससे तुम समझ लो कि सम्पूर्ण लोक पुनरावर्ती

हैं। सकाम-कर्मियोंकी यही गमनागमनरूप गति होती है। जबतक जीवके पुण्य समाप्त नहीं होते, तबतक वह स्वर्गलोकमें विहार करता है। पुण्यके शेष हो जानेपर उसे न चाहनेपर भी कालकी प्रेरणासे नीचे गिरना पड़ता है। अतः हे महाबाहु यादवेन्द्र! कर्ममें फलका त्याग कर देना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह ज्ञान और वैराग्यसे युक्त होकर निष्काम भक्त हो जाय। फिर प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीहरिके भक्तजनोंका प्रीतिपात्र बनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंकी, जो अभय प्रदान करनेवाले हैं और जो परमहंसोंद्वारा सेवित हैं, उपासना करनी चाहिये। जो हठपूर्वक समस्त लोकोंका संहार करनेवाली है, वह मृत्यु भी उस भगवद्धाममें पहुँच जानेपर शान्त हो जाती है॥ ३–२१॥

राजा उग्रसेन बोले—भगवन्! समस्त लोकोंको पुनरावर्ती कहा गया है। इस बातसे उन सभी लोकोंके प्रति मेरे अन्तःकरणमें निस्संदेह विराग उत्पन्न हो गया है। ब्रह्मन्! जहाँ जाकर प्राणी वापस नहीं लौटता और जो सबसे परे है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वह परम धाम कहाँपर है—यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ २२-२३॥

श्रीव्यासजीने कहा—जहाँ गये हुए प्राणी वहाँसे लौटते नहीं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वह धाम ब्रह्माण्डोंके बाहर है। विज्ञजन उसे ही उत्तम 'गोलोकधाम' कहते हैं। जीव-समूहसे भरा हुआ पचास करोड़ योजनमें विस्तृत यह ब्रह्माण्ड है। इसके आगे इससे दुगुनी अर्थात् सौ करोड़ योजनके विस्तारवाली ब्रह्मद्रव नामकी जलराशि है, जिसमें यह ब्रह्माण्ड परमाणुके समान दिखायी पड़ता है। उसमें इसके अतिरिक्त करोड़ों ब्रह्माण्ड और हैं। उसके उस पार वह गोलोक है, जहाँ न सूर्यका प्रकाश है, न चन्द्रमाका और न अग्निका ही। काम, क्रोध, लोभ और मोहकी वहाँ गति नहीं है। वहाँ न शोक है न बुढ़ापा है, न मृत्यु है और न पीड़ा है। वहाँ प्रकृति और काल भी नहीं हैं, फिर गुणोंका तो प्रवेश वहाँ हो ही कैसे सकता है। जो स्वयं अनिर्वाच्य है, वह शब्दब्रह्म (वेद) भी उस लोकका वर्णन करनेमें असमर्थ है। भगवान् श्रीकृष्णके तेजसे प्रकट हुए अनेक पार्षद वहाँ रहते हैं। राजन्! जो इन्द्रियों तथा मनपर विजय पाये हुए अकिंचन भक्त हैं, अर्थात् सांसारिक प्राणिपदार्थोंमें जिनका कहीं कुछ भी ममत्व नहीं रह गया है, जो सबमें समान भाव रखनेवाले हैं, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके मकरन्द-रसमें सदा निमग्न रहते हैं तथा जो प्रेमलक्षणा भक्तिसे युक्त एवं सर्वदाके लिये कामनासे सर्वथा रहित हो गये हैं, वे ही समस्त लोकोंको लाँघकर उस उत्तम भगवद्धाममें जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है॥ २४–३१॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'व्यासजीके द्वारा गतियोंका निरूपण' नामक दूसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

सकाम एवं निष्काम भक्तियोगका वर्णन

राजा उग्रसेनने कहा—ब्रह्मन्! गुण और कर्मकी गति आपके श्रीमुखसे मैं सुन चुका। सभी लोक आवागमनसे युक्त हैं, यह भी भलीभाँति निश्चित हो गया। निष्कामभावसे साक्षात् श्रीहरिका सेवन करनेपर भक्तोंको वह उत्तम धाम, जो दिव्य एवं दूसरोंके लिये दुर्लभ है, मिलता है—यह भी सुन लिया। आप वर्णन करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अब मुझे यह बताइये कि भक्तियोग, जिसके प्रभावसे भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, कितने प्रकारका है?॥ १–३॥

श्रीव्यासजी बोले—द्वारकानरेश! तुम धन्य हो। तुम श्रीहरिके प्रेमी हो तथा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे इष्टदेव हैं। तुमने भक्तियोगके सम्बन्धमें प्रश्न किया है, इससे तुम्हारी वह निर्मल बुद्धि भी धन्य है। यादव! जिसे सुनकर संसारका संहार करनेवाला घोर पापी भी शुद्ध हो जाता है, उस भक्तियोगका वर्णन विस्तारपूर्वक तुम्हें सुनाता हूँ। राजन्! सगुण और निर्गुण—भेदसे भक्तियोग दो प्रकारका है। सगुणके अनेक भेद हैं और निर्गुणका एक ही लक्षण है। देहधारियोंके गुणानुसार सगुण भक्तिके विभिन्न प्रकार होते हैं। उन गुणोंसे युक्त तीन तरहके भक्त होते हैं। उनका वर्णन अलग-अलग सुनो। जो भेद-दृष्टि रखनेवाला क्रोधी पुरुष हिंसा, दम्भ और मात्सर्यका आश्रय लेकर श्रीहरिकी भक्ति करता है, उसे 'तामस भक्त'

कहा गया है। राजन्! जो यश, ऐश्वर्य तथा इन्द्रियोंके विषयोंको लक्ष्य करके यत्नपूर्वक श्रीहरिकी उपासना करता है, उसकी गणना 'राजसिक' भक्तोंमें है। जो कर्मक्षयका उद्देश्य लेकर अभेद-दृष्टिसे मोक्षके लिये भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, वह भक्त 'सात्त्विक' कहा जाता है। महामते! अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ये चार प्रकारके पुरुष भगवान् विष्णुका भजन करते हैं। इन्होंने स्वयं अपना कल्याण कर लिया है। यों भक्तियोगके अनेक प्रकार हैं। भक्तियोगके द्वारा जो श्रीहरिका पूजन करते हैं, वे सकामी भक्त भी बड़े सुकृती—पुण्यात्मा हैं॥ ४—१२॥

इसी प्रकार अब निर्गुण भक्तियोगका लक्षण सुनो। जैसे गङ्गाजीका जल स्वाभाविक ही समुद्रकी ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार श्रवणमात्रसे साक्षात् परिपूर्णतम एवं सम्पूर्ण कारणोंके भी कारण भगवान् श्रीकृष्णके प्रति बिना ही कारण मनकी गति अविच्छिन्न एवं अखण्डितरूपसे प्रवाहित होने लगे, इसे 'निर्गुणभक्ति' कहा गया है। मानद! अब निर्गुण भक्तोंके लक्षण सुनो। भगवान्‌के उन भक्तोंकी अखण्ड भूमण्डलके राज्य, ब्रह्माके पद, इन्द्रासन, पातालके स्वामित्व तथा योगकी सिद्धियोंमें भी स्पृहा नहीं रहती। यादवेश्वर! भगवदनुरागका आनन्द उनपर छाया रहता है, इसीलिये वे भगवान्‌के द्वारा दिये जानेपर भी सालोक्य मुक्तिको कभी स्वीकार नहीं करते। दूर रहनेपर जैसा प्रेम होता है, समीप आनेपर वैसा नहीं होता, यह सोचकर वे निष्काम भक्त भगवान्‌के विरहमें व्याकुल रहना पसंद करते हैं, अतः सामीप्य मुक्तिकी भी इच्छा नहीं करते। किन्हीं भक्तोंको भगवान् सारूप्य मुक्ति देते हैं, किंतु निरपेक्ष होनेके कारण भक्त उसे भी स्वीकार नहीं करते। समानत्वकी अभिमति होनेपर भी केवल भगवान्‌की सेवाके प्रति ही उनकी उत्कण्ठा बनी रहती है। ऐसे भक्त एकत्व (सायुज्य) अथवा ब्रह्मके साथ एकतारूप कैवल्यको भी कभी नहीं लेते। उनका अभिप्राय यह है कि यदि ऐसा हो जाय तो स्वामी और सेवकके धर्ममें अन्तर ही क्या रह जायगा। जो निरपेक्ष भक्त होते हैं, उनकी सबमें समान दृष्टि रहती है। उनका स्वभाव शान्त होता है और वे किसीसे वैर नहीं रखते। उनकी यह धारणा है कि कैवल्यसे लेकर सांसारिक समस्त पदोंका ग्रहण करना सकामभावके ही अन्तर्गत है। जिस प्रकार फूलोंकी गन्धको नासिका ही जानती है, आँखको उसका ज्ञान नहीं होता, ठीक वैसे ही निरपेक्षतारूप महान् आनन्दको भगवान्‌के निष्काम भक्त ही जानते हैं। जैसे रसको बनानेवाला हाथ रसके स्वादसे सदा अनभिज्ञ ही रहता है, उसी प्रकार सकामी भक्त कभी भी उस आनन्दको नहीं जान सकते। अतएव राजन्! इस भक्तियोगको ही तुम परम श्रेष्ठ पद समझो। अब निष्काम भक्तोंकी उपासना-पद्धतिका तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ, उसका स्वरूप है—भगवान् विष्णुका स्मरण, उनके नाम-गुणोंका कीर्तन, श्रवण, चरणोंकी सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और अपनेको भगवान्‌के चरणोंमें निवेदित कर देना। राजन्! जो निरन्तर भगवान्‌की प्रेमलक्षणा भक्ति करते हैं, वे भगवद्भावकी भावना करनेवाले भक्त जगत्‌में दुर्लभ हैं॥ १३—२६॥

जो बड़ोंके प्रति सम्मान, छोटोंके प्रति सब तरहसे दया तथा अपनी बराबरीवालोंके साथ मित्रताका बर्ताव करते हैं, सम्पूर्ण जीवोंपर जिनकी सदा दया रहती है, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके मधुकर हैं, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा बनी रहती है, जो अपने विदेशस्थ स्वामीको याद करनेवाली स्त्रीकी भाँति भगवान् श्रीकृष्णको याद करते रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके स्मरणसे जिनका रोम-रोम पुलकित हो उठता है, नेत्रोंसे आनन्दकी धारा बहने लगती है, भगवान्‌के विरहमें कभी-कभी जिनके शरीरका रंग बदल जाता है, जो मधुर वाणीसे 'श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे!' की रट लगाये रहते हैं तथा रातदिन भगवान् श्रीहरिमें जिनकी लगन लगी रहती है, वे ही भागवतोत्तम—भगवान्‌के उत्तम भक्त हैं॥ २७—३०॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'सकाम-निष्काम भक्तियोगका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

भक्त-संतकी महिमाका वर्णन

श्रीव्यासजी बोले—जो आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी तथा ग्रह-नक्षत्रों एवं तारागणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी झाँकी करते हुए बार-बार हर्षित होते हैं, करोड़ों कामदेवोंको मोहित करनेवाले—राधानायक सर्वात्मा नन्दनन्दन

श्रीकृष्णचन्द्र उन भक्तोंके सामने बोलते हुए दृष्टिगोचर होने लगते हैं। सदा आनन्दस्वरूप उन भगवान्‌का दर्शन प्राप्त करके वे अत्यन्त हर्षसे भर जाते हैं और ठहाका मारकर हँसने लगते हैं। वे कभी बोलते और कभी दौड़ लगाया करते हैं। कभी गाते, कभी नाचते और कभी चुप हो रहते हैं। भगवान् विष्णुके वे उत्तम भक्त कृतकृत्य हो गये रहते हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप ही होते हैं। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। काल अथवा यमराज—कोई भी उन्हें दण्ड देनेमें समर्थ नहीं होता। ऐसे भक्तोंके वामभागमें कौमोदकी गदा, दक्षिणमें सुदर्शन चक्र, आगे शार्ङ्ग धनुष, पीछे बादलकी भाँति गर्जनेवाला पाञ्चजन्य शङ्ख, नन्दन नामकी महान् तलवार, शतचन्द्र नामक ढाल और अनेकों तीखे बाण—भगवान्‌के ये सभी प्रधान-प्रधान आयुध रात-दिन सजग रहकर उनकी रक्षा किया करते हैं। इसी प्रकार महान् कमल उनके ऊपर बारंबार छाया करनेके लिये प्रस्तुत रहता है। उन सत्पुरुषोंके श्रमको गरुडजी पंखोंकी हवासे दूर करते रहते हैं। जहाँ-जहाँ उपर्युक्त इन महात्मा पुरुषोंका गमन होता है, वहाँ-वहाँ स्वयं श्रीहरि पधारते हैं और अपने शोभायुक्त चरण-कमलोंके परागसे उस भू-भागको तीर्थ बना देते हैं। जहाँ सत्जन एक क्षण भी ठहरते हैं, वहाँ तीर्थोंका निवास हो जाता है। यदि उस स्थानपर किसी पापीका भी देहावसान हो जाय तो उसे भगवान् विष्णुका परमपद प्राप्त हो जाता है। जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण इष्ट हैं, उनको दूरसे ही देखकर आधि-व्याधि, भूत, प्रेत और पिशाच दसों दिशाओंमें भाग खड़े होते हैं। अनपेक्ष साधु पुरुषोंको नदी, नद, पर्वत, समुद्र तथा दूसरे व्यवधान भी सब जगह मार्ग दे देते हैं। जो साधु हैं, ज्ञानमें निष्ठा रखनेवाले हैं, जिनका विषयोंसे विराग हो चुका है, जिनकी जगत्‌में किसीसे शत्रुता नहीं होती ऐसे महात्मा पुरुषोंका दर्शन पुण्यहीन मनुष्योंके लिये अत्यन्त कठिन है। भगवान् श्रीकृष्णका भक्त जिस कुलमें उत्पन्न होता है, वह कुल स्वयं मलिन ही क्यों न हो, उसे तुम ब्राह्मणवंशकी भाँति अत्यन्त निर्मल समझो। राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णका भक्त तो अपने पितृकुलके दस पुरुषोंको तार देता है। इतना ही नहीं, उसके मातृ-कुल तथा पत्नीकुलकी भी दस-दस पीढ़ियाँ नरकयातना एवं पापोंके बन्धनसे मुक्त हो जाती हैं। महात्मा पुरुषोंके सम्बन्धी, पोष्यवर्ग, नौकर, सुहृज्जन, शत्रु, भार ढोनेवाले, घरमें रहनेवाले पक्षी, चींटियाँ, मच्छर तथा कीट-पतङ्ग भी—सभी पावन बन जाते हैं। देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका भक्त ऐसे देशमें भी, जो ब्राह्मणके रहने योग्य नहीं है तथा जिसमें कृष्णसार मृग नहीं दिखायी देते अथवा सौवीर, कीकट, मगध एवं म्लेच्छोंके देशमें रहनेपर भी लोगोंको पवित्र करनेवाला होता है। राजन् ! जो संत पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं, वे ज्ञानयोग, धर्म, तीर्थ एवं यज्ञसे वर्जित होते हुए भी भगवान् श्रीहरिके मन्दिर (धाम) में चले जाते हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके भक्तोंकी महिमा मैंने कह सुनायी। इसके वर्णनसे ही मनुष्योंको चारों पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं। अब आगे क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १-२० ॥

राजा उग्रसेनने पूछा—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् परिपूर्णतम परमात्मा हैं। दुरात्मा दन्तवक्रकी ज्योति उनमें लीन हो गयी—ऐसी बात सुनी गयी है। विप्रवर ! यह महान् आश्चर्यकी बात है; क्योंकि महात्मा पुरुषोंको प्राप्त होने योग्य सायुज्य पद अन्य किसी साधारण व्यक्तिको, और वह भी एक शत्रुको, कैसे सुलभ हो गया ? ॥२१-२२॥

श्रीव्यासजी बोले—राजन् ! 'यह मेरा है और यह मैं हूँ'—यह विषमता त्रिगुणात्मक प्राणियोंमें रहती है; क्योंकि वे काम-क्रोधादिमें रचे-पचे रहते हैं। परम प्रभु श्रीहरिके अंदर ऐसी भावना नहीं होती। जो किसी भी भावसे भगवान्‌में अपना मन लगाता है, उसे श्रीहरिकी सरूपता उपलब्ध हो जाती है—ठीक उसी प्रकार, जैसे कीड़ा भृङ्गीके रूपमें परिणत हो जाता है। सांख्ययोगके साधनके बिना भी मनुष्य स्नेह, काम, भय, क्रोध, एकता तथा सुहृदताका भाव रखकर भगवान्‌से तन्मयता प्राप्त कर लेते हैं। राजन् ! नन्द-यशोदा आदिने तथा वसुदेव आदि दूसरे-दूसरे लोगोंने स्नेहसे और गोपियोंने कामभावसे भगवान्‌को प्राप्त किया, न कि ब्रह्मभावनासे। कारण यह है कि वे भगवान्‌के रूप, गुण एवं माधुर्यभावमें अपना मन भलीभाँति लगाये रहते थे। तुम्हारे पुत्र कंसको भयके कारण उनका सायुज्य प्राप्त हुआ। इस दन्तवक्रको और शिशुपाल आदि दूसरोंको क्रोधसे, तुम सभी यादवोंको एकता—सजातीयताके भावसे तथा हमलोगोंको सुहृदतासे भगवान् सुलभ हुए हैं। अतएव किसी भी उपायसे भगवान् श्रीकृष्णमें मन

लगाना चाहिये । रात-दिन स्मरण करते रहना—यह शत्रुके लिये ही सम्भव है; और कहीं ऐसा नहीं होता । यही कारण है कि दैत्यगण भगवान् श्रीहरिमें शत्रुभाव किया करते हैं ॥ २३—२९ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'भक्त संतकी महिमाका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

भक्तिकी महिमाका वर्णन

श्रीव्यासजीने कहा—राजन् ! वत्सासुर, अघासुर, धेनुकासुर, बकासुर, पूतना, केशी, कालयवन, अरिष्टासुर, प्रलम्बासुर, द्विविद नामक बंदर, बल्वल, शङ्ख और शाल्व—इन सभीने जब प्रकृति और पुरुषसे परे प्रभुको प्राप्त कर लिया, तब फिर भक्तिभाव रखनेवाले उन्हें प्राप्त कर लें, इसमें कहना ही क्या है । राजन् ! पूर्वकालकी बात है—अत्यन्त बलशाली मधु और कैटभ नामके दानव, इसी प्रकार हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु तथा रावण और कुम्भकर्ण भी भगवान् विष्णुके साथ वैर ठानकर उनके परमपदको प्राप्त हो गये । फिर जो सदा सत्सङ्गसे प्रेम करते थे तथा अत्यन्त आदरणीय भगवानके शोभायुक्त चरण-कमलोंके मकरन्द एवं परागमें जिनका मन लुभाया रहता था—ऐसे प्रह्लाद, बाणासुर, राजा बलि, शङ्खचूड एवं विभीषण आदि किस-किसने भगवान् विष्णुके धामको नहीं प्राप्त किया ? देवर्षि नारद, बृहस्पति, वसिष्ठ, पराशर आदि तथा सांख्यायन, असित, शुकदेव एवं सनक प्रभृति निष्काम भक्त—जो कमल-लोचन भगवान्के चरण-कमलोंके मकरन्दके प्रधान भ्रमर कहे जाते हैं—भूमण्डलमें बिना ही स्वार्थके भ्रमण करते रहते हैं । यति, उत्कल, अङ्ग, भरत, अर्जुन, जनकजी, गाधि, प्रियव्रत, यदु आदि एवं अम्बरीष तथा अन्य निष्काम भक्त एवं श्रेष्ठ परमहंस गण भगवान् श्रीकृष्णकी अमृतमयी कथाके पानसे मस्त हुए घूमते हैं । मन्दोदरी, मतङ्गमुनिकी शिष्या भक्तिमती शबरी, तारा, अत्रिमुनिकी प्रिया साध्वी अनसूया, अहल्या, कुन्ती और द्रुपदराजकुमारी द्रौपदी—ये सभी प्रशंसनीय भक्त-महिलाएँ हो चुकी हैं । परमहंसोंके समान ही इनकी भी ख्याति है । सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, जाम्बवान्, गरुड, जटायु, काकभुशुण्डि आदि तिर्यक् योनियोंके संत, कुब्जा, वायक, सुदामा माली तथा गुह आदि भी भक्तोंका सङ्ग पाकर श्रीहरिके उत्तम भक्त बन गये । धर्म, तप, योग, सांख्य, यज्ञ, तीर्थयात्रा, यम-नियम, चान्द्रायण आदि व्रत, वेदपाठ, दक्षिणा, पूजा अथवा दान—भक्तिके बिना ये कोई भी भगवान् श्रीकृष्णको वशमें नहीं कर सकते । यज्ञ, व्रत, स्वाध्याय, तप, तीर्थ, योग, पूजा, नियमादि और सांख्ययोग—इनसे जो फल मिलता है, वह सब-का-सब इस संसारमें भक्तिसे सुलभ है । इतना ही नहीं, भक्तिसे जिस पदकी उपलब्धि होती है, वह इन साधनोंसे कभी उपलब्ध नहीं हो सकता । यह भक्ति जगत्भरके पापोंसे अधमोंका उद्धार करनेवाली, जगत्से तारनेवाली, संसाररूपी महासागरके भव जल प्रवाहसे उबारनेवाली, विषयसेवनके द्वारा संचित कर्मोंका नाश करनेवाली तथा परात्पर परम प्रभु भगवान्का पद प्रदान करनेवाली है । यह भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनरूपी रसके प्रति औत्सुक्यसे सुशोभित परम उत्सव मनानेके लिये वसन्तपञ्चमीके समान है । साथ ही यह प्रचुर फल एवं पल्लवोंके भारसे झुकी हुई वसन्तकालीन दिव्य लताके समान सदा शोभा पाती है । मोहरूपी काले बादलके बीच चमकती हुई बिजलीकी भाँति यह भक्ति शास्त्रोंमें छिपे हुए रहस्योंके वचनोंको प्रकट करनेवाली ज्योतिके समान है । इसे विजयरूप कार्तिककी दीपावली तथा सर्वजयी गुणोंपर विजय पानेके लिये विजयादशमी भी कह सकते हैं । सांख्य और योग जिसके अगल-बगलमें लगे हुए डंडे हैं, सैकड़ों गुणों और भावोंके भेद जिसकी कीलें हैं, नवधा भक्तिके श्रवण-कीर्तन आदि जो नौ भेद हैं, वे ही जिसके बीचके दण्ड (पैर टिकनेके पाये) हैं, भगवद्धामको पहुँचानेवाली ऐसी यह सरल सीढ़ी है ॥ १—१३ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'भक्तिकी महिमाका वर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

मन्दिर-निर्माण तथा विग्रहप्रतिष्ठा एवं पूजाकी विधि

राजा उग्रसेनने पूछा—मुने ! गृहस्थ कर्म-ग्रहसे ग्रस्त रहता है। ऐसी कौन-सी विधि है, जिसके द्वारा यह कर्मासक्त गृहस्थ महात्मा श्रीकृष्णकी सेवा कर सके ? उसे कहनेकी कृपा कीजिये। (साथ ही यह भी बताइये कि) जिसके जीवनमें भक्तिका अङ्कुर ही नहीं है अथवा है तो वह बढ़ता नहीं, ऐसे व्यक्तिमें स्वयं श्रीहरि किस प्रकार प्रसन्न हो सकते हैं ॥ १-२ ॥

श्रीव्यासजी बोले—यदि भक्तिका अङ्कुर न हो तो सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये। सत्सङ्गसे वह अङ्कुर उत्पन्न हो सकता है और उससे बढ़ भी जाता है। राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके सेवनकी विधि, जिसके प्रभावसे यह गृहस्थ भी शीघ्र भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त कर सकता है और जो अत्यन्त सुलभ है, वह तुम्हें मैं बतलाता हूँ। जिनकी आचार्यके सत्कुलमें उत्पत्ति हुई हो तथा जो भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें तत्पर हों, उनको गुरु बनाकर मनुष्य सिद्धि पाता है। मनुष्यको चाहिये कि वह ऐसे गुरुसे महात्मा श्रीकृष्णकी सेवा-विधि सीखे। जो भगवान् विष्णुकी दीक्षासे रहित है, उसका सब कुछ निष्फल हो जाता है। गुरुहीन मानवका दर्शन करनेपर पुरुषका पुण्य नष्ट हो जाता है ॥ ३-७ ॥

सनातन भगवान् श्रीहरिका मन्दिर उत्तरमुख बनवाना चाहिये। उसमें ऊँचा आसन स्थापित करके उसके ऊपर कलशसे सुशोभित पीठ स्थापित करे। उसमें तीन सीढ़ी बनाये, जिनके नाम सत्, चित् एवं आनन्द रक्खे। आसनको मूल्यवान् वस्त्रसे ढककर उसपर रूईकी गद्दी बिछा दे। उसके आसपास तकिये लगाकर उन्हें स्वर्णके तारोंसे निर्मित वस्त्रसे ढक दे। दीवालोंपर भाँति-भाँतिके चित्र अङ्कित करे और भीतर पर्दा लगा दे। सब ओर मण्डप बनाये तथा तोरण-बंदनवार, झरोखे, जलके फुहारे तथा जालियोंसे मन्दिरको खूब सजाया जाय। मन्दिरके आँगनमें चाँदीके सुन्दर सभामण्डप बनाये जायँ। वहाँ आँगनके बीच तुलसीजीका मनोहर चबूतरा हो। मन्दिरके बाहरी द्वारपर दो हाथी बनवाने चाहिये। राजन् ! वैसे ही बनावटी दो सिंह भी बैठा दे। मन्दिरका शिखर सोनेका हो। शिखरपर उसके नीचे चक्र बनवा दे। मन्दिरके द्वारपर अगल-बगल श्रीहरिके मङ्गलमय नाम लिखने चाहिये। दीवालपर एक ओर गदा, पद्म, शङ्ख और शार्ङ्गधनुष अङ्कित कराये। बायीं ओर तरकस और दाहिनी तरफ केवल बाणकी चित्रकारी बनवाये। मन्दिरके पिछले भागमें शतचन्द्र नामक ढाल, नन्दक नामवाली तलवार, हल और मुसल प्रयत्नपूर्वक अङ्कित कराये। सिंहासनकी पीठपर गोपियों तथा गौओंको, उसकी सीढ़ीपर गोपालोंको और किवाड़पर 'जय' एवं 'विजय' लिखे। देहलीपर कल्पवृक्ष, खंभोंपर मनोहर लताएँ, जहाँ तहाँ दीवालोंपर पापनाशिनी गङ्गा, यमुना, वृन्दावन, गोवर्द्धन, चीरहरण तथा रास-मण्डल आदिके लीलाचित्र अङ्कित कराये। फिर प्रयत्न करके चित्रकूट, पञ्चवटी, राम एवं रावणका युद्ध अङ्कित कराये, किंतु उसमें जानकी-हरणका प्रसङ्ग अङ्कित न कराया जाय। दसों अवतारोंके चित्र, नर-नारायणाश्रम (बदरिकाश्रम), सातों पुरियाँ, तीनों ग्राम, नौ वन और नौ ऊसर भूमिके चित्र अङ्कित कराये। बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकारके चित्रोंको अङ्कित कराके मन्दिरका निर्माण कराये। तदनन्तर उसमें भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहकी स्थापना करे। श्रीकृष्णकी किशोर अवस्था हो और वे हाथमें बाँसुरी लिये उसे बजाना ही चाहते हों तथा उनका दाहिना पैर टेढ़ा हो—इस प्रकारका रूप सेवाके लिये सर्वोत्तम माना गया है। भक्त परम भक्तिके साथ इस प्रकारके विग्रहस्वरूपकी शीघ्र ही गुरुके द्वारा मन्दिरमें प्रतिष्ठा करा दे और फिर अत्यन्त भावके साथ सेवामें तत्पर हो जाय। जीभको भगवान्के प्रसादके रसमें, नासिकाको तुलसीदलकी सुगन्धमें और कानोंको भगवान्के कथा-श्रवणमें लगा दे। इस प्रकार सेवापरायण हो जाय। भागवतोत्तम पुरुषोंका कहना है कि जो भावको जाननेवाला पुरुष रात-दिन श्रीकृष्णकी सेवा करता है, वही प्रेमलक्षणसम्पन्न उत्तम भक्त है। राजन् ! एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ भगवान् श्रीकृष्णके सेवनकी सोलहवीं कलाके एक अंशके बराबर भी नहीं हैं। जो मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाकथा तथा सेवाके उपदेशकका भी दर्शन कर लेता है, वह करोड़ों जन्मके किये हुए पापोंसे छूट जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है। देहावसान हो जानेपर उसे ले आनेके लिये श्यामसुन्दरके समान मनोहर विग्रहवाले भगवान्के पार्षद गोलोकसे रथ लेकर दौड़े आते हैं ॥ ८-२८ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'मन्दिरनिर्माण तथा विग्रह-प्रतिष्ठा एवं पूजाकी विधि' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

नित्यकर्म और पूजा-विधिका वर्णन

श्रीवेदव्यासजी बोले—राजन्! ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर भगवान् गोविन्द, गुरुदेव और कश्यप आदि ऋषियोंके नामोंका बारंबार उच्चारण करे। तत्पश्चात् वह हरिभक्त भूमिको प्रणाम करके जमीनपर पैर रक्खे। फिर वह सकाम भक्त आचमन करके तत्काल आनन्दपूर्वक आसनपर बैठ जाय। हाथोंको गोदमें रखकर श्वास रोककर (गुरुदेवका) ध्यान करे—'भगवान् गुरुदेव ज्ञानमुद्रा धारण किये हुए हैं, उनका स्वरूप अत्यन्त शान्त है और वे स्वस्तिकासनसे विराज रहे हैं।' यों गुरुदेवका ध्यान करनेके पश्चात् भक्त एकाग्र मन होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करे—'श्रीकृष्णचन्द्रकी अवस्था किशोर है, श्यामल श्रीविग्रह है, जो करोंमें वंशी एवं बेंतसे विभूषित, अत्यन्त ही मनोहर है।' इस प्रकार श्रीहरिका ध्यान करनेके पश्चात् बाहर चला जाय। महाराज! गृहस्थ पुरुष कैसे पवित्र होता है—अब उस विधानको पूरा-पूरा सुनो ॥ १—५ ॥

मिट्टी लेकर '**अश्वक्रान्ते**' इत्यादि मन्त्रसे शौचके अन्तमें एक बार लिङ्गमें, तीन बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें, सात बार दोनों हाथोंमें तथा तीन-तीन बार प्रत्येक पैरमें मिट्टी और जल लगाकर शुद्धि करे। ब्रह्मचारी और वानप्रस्थको इससे दूना करना चाहिये। भगवान्की सेवा करनेवाले संन्यासीकी शुद्धि इससे चौगुना करनेपर होती है। रोगी और पथिकोंकी इसके आधेसे तथा शूद्र एवं स्त्रीका उससे भी आधेसे पवित्र होनेका विधान है। शौचकर्मसे रहित मनुष्यकी सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। मुखकी शुद्धि भी होनी चाहिये; क्योंकि मुखशुद्धिसे रहित मनुष्यको मन्त्र फल देनेवाले नहीं होते। 'वनस्पते! तुम मेरे लिये आयु, बल, वीर्य, यश, पुत्र, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान और प्रज्ञा प्रदान करो।'*—इस मन्त्रका उच्चारण करके दातुन ग्रहण करे। बबूल, दूधवाले वृक्ष, कपास निर्गुण्डी, आँवला, वट, एरंड और दुर्गन्धयुक्त वृक्ष दातुनके लिये निषिद्ध हैं। फिर हाथ जोड़े हुए '**हरितहय**' इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भगवान् सूर्यको प्रणाम करे। तदनन्तर स्वस्थचित्त हो प्रह्लाद आदि भगवान् श्रीहरिके भक्तोंको प्रणाम करे। तुलसीकी मिट्टी लगाकर स्नान करे। स्नान करते समय 'श्रीगङ्गाष्टक' और 'यमुनाष्टक'का सविधि पाठ करना चाहिये। अयोध्या, मथुरा, मायावती (हरद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारावतीपुरी (द्वारका)—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। (अतः इनका भी स्मरण करना चाहिये।) महायोगमें शालग्राम, हरिमन्दिरमें सम्भलग्राम और कोसलमें नन्दिग्राम—ये तीन ग्राम कहे गये हैं (इन तीन ग्रामोंका स्मरण करे)। दण्डकारण्य, सैन्धवारण्य, जम्बूमार्ग, पुष्कल, उत्पलावर्त, नैमिषारण्य, कुरुजाङ्गल, अर्बुद और हेमन्त—ये नौ अरण्य माने गये हैं। इन सभी तीर्थोंके नाम बारंबार उच्चारण करके स्नान करे। स्नानके बाद उत्तम रेशमी (अहिंसायुक्त) वस्त्र पहने। बारह तिलक और आठ मुद्राएँ धारण करे। फिर संध्या करके पवित्र हो मौन होकर भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरमें जाय ॥ ६—१९ ॥

घण्टा-ताली बजाकर, 'जय हो, जय हो' इत्यादि शब्दोंका उच्चारण करते हुए कहे—

'**उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द योगनिद्रां विहाय च।**'

'भगवान् गोविन्द! योगनिद्राका परित्याग करके उठिये—उठिये।' राजन्! भगवान्को उठानेका यह (स्मार्त) मन्त्र है। इसका उच्चारण करके श्रीहरिको जगाये। तत्पश्चात् मङ्गल-आरती लेकर भगवान्के मुखपर घुमाये। तदनन्तर देश एवं कालके प्रभावको जाननेवाला तथा भावका ज्ञाता वह भक्त (तदनुकूल ही) भगवान्को स्नान कराकर मङ्गलमय वस्त्राभूषणोंके द्वारा भगवान्का शृङ्गार करे। पश्चात् आरती करके भगवान्को अन्नभोग अर्पण करे। भाँति-भाँतिके रसमय उत्तम भोज्य पदार्थोंका महाभोग निवेदन करके महाभोगकी आरती करे। तदनन्तर भगवान्को शयन कराये। इसके बाद तुलसीकी गन्धसे युक्त परम प्रसादको नित्यप्रति स्वयं ग्रहण करे। जो नित्य इस प्रकार भगवान्की पूजा करता है, वह कृतार्थ हो जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं है। इसके बाद विधिवत् मध्याह्नका राजभोग निवेदन करके राजभोगकी आरती करे। फिर भगवान्को शयन कराये। दिनको चार घड़ी शेष

---

* आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

रहनेपर यथाविधि शङ्ख बजाकर श्रीहरिको उठाये; तदनन्तर संध्याकी आरती करके दूध आदि निवेदन करे। प्रदोषकाल आनेपर प्रदोषकी आरती करे। रातमें उत्तम मिष्टान्नका भोग लगाकर श्रीहरिको शयन कराये। राजेन्द्र! यह राजसेवा है—राजाओंके लिये ही इस प्रकारकी सेवाका विधान है। अतः इसका नाम 'राजसी' है ॥ २०—२८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें दत्तचित्त हो सम्यक् प्रकारसे लगा हुआ मनुष्य अपने सौ कुलोंको तारकर आत्यन्तिक परम पदको प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, रामनवमी, राधाष्टमी, अन्नकूट, वामन-द्वादशी, नृसिंह-चतुर्दशी तथा अनन्तचतुर्दशी—इन अवसरोंपर भगवान् श्रीकृष्णकी महापूजा करनी चाहिये ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'नित्यकर्म और पूजा-विधिका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

पूजा-विधिका वर्णन

श्रीव्यासजी बोले—तदनन्तर स्नान एवं नित्य नैमित्तिक क्रियाका सम्पादन करके शुद्ध स्थण्डिलपर पाँच रंगोंसे युक्त मण्डल बनाये। वेदकी ऋचाओंद्वारा विधिवत् मङ्गलमय दिव्य उज्ज्वल कमलकी रचना करे। उसमें बत्तीस दल हों और वह केसर और कर्णिकासे युक्त हो। राजन्! कर्णिकाके ऊपर श्रीहरिका सुन्दर सिंहासन स्थापित करके उसपर राधा, रमा, भूदेवी और विरजाकी स्थापना करे। उन देवियोंके मध्यमें साक्षात् पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको प्रतिष्ठित करे। कमलके आठ दलोंमें राधिकाजीकी मङ्गलमयी आठ सुन्दरी सखियाँ रहें। इसके बाद आठ दलोंमें भगवान् श्रीकृष्णके सखाओंकी स्थापना करे। इसी प्रकार सोलह दलोंपर सखियोंके दो-दो समुदाय रहें। फिर बुद्धिमान् पुरुष कमलके समीप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, नन्दक नामक तलवार, शार्ङ्गधनुष, बाण, हल, मुसल, कौस्तुभमणि, वनमाला, श्रीवत्स, नीलाम्बर, पीताम्बर, वंशी और बेंत—इन सबको स्थापित करे। फिर इसके पार्श्वमें ताललक्षण एवं गरुडध्वजसे युक्त रथ, सुमति एवं दारुक नामवाले सारथि, गरुड, कुमुद, नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, बल, महाबल और कुमुदाक्षकी विद्वान् पुरुष यत्नपूर्वक स्थापना करे। इसी प्रकार सब दिशाओंमें पृथक्-पृथक् दिक्पालोंको पधराना चाहिये। फिर वहीं विष्वक्सेन, शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, लक्ष्मी, गणेश, नवग्रह, वरुण तथा षोडश मातृकाओंको आसन दे। कमलके अगले भागमें वेदीपर पण्डितजन श्रीसिंहोंकी स्थापना करें। इसके बाद आवाहन करके आसन, पाद्य, विशेषार्घ्य, स्नान, यज्ञोपवीत, वस्त्र, चन्दन, अक्षत, मधुपर्क, फूल, धूप, दीप, आभूषण, स्वादिष्ट नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल और दक्षिणा समर्पण करे। प्रदक्षिणा और प्रार्थना करके आरती करे। फिर नमस्कार करे। हर एक कर्मके लिये अलग-अलग विधान है—आवाहनमें पुष्प, आसनमें दो कुश और पाद्यमें श्यामादूर्वा और अपराजिताका उपयोग करे। यादव! अर्घ्यमें सुन्दर गन्धवाले पुष्प रखने चाहिये। राजन्! स्नानके जलमें चन्दन, खस, कपूर, कुङ्कुम और और अगुरु मिलावे। महामते! इसी प्रकारका जल स्नानके लिये उत्तम होता है। मधुपर्कमें आँवला एवं कमल, धूपमें अष्टगन्ध और दीपमें कपूर देना चाहिये। पीले रंगका यज्ञोपवीत, वस्त्रमें पीताम्बर, भूषणके स्थानपर सोना और गन्धके स्थानमें कुङ्कुम तथा चन्दन देने चाहिये। फूलोंमें तुलसीकी मञ्जरी, अक्षतोंमें चावल और नैवेद्यमें नाना प्रकारके पक्वान्न और षड्रस भोजन-पदार्थ उत्तम माने गये हैं। जलमें केवल गङ्गाजल और यमुनाजल। राजन्! भोजनोपरान्त आचमनके जलमें जायफल और कङ्कोल मिला दे। ताम्बूलमें लौंग और इलायची मिला दे। दक्षिणाके स्थानपर सुवर्ण अर्पण करे। प्रदक्षिणाके प्रकरणमें घूमना और आरतीमें गोघृत लेना योग्य है। महाराज! प्रार्थनामें भगवान् श्रीहरिकी प्रेमलक्षणायुक्त भक्ति करना और नमस्कारके स्थानपर अत्यन्त मग्न होकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर पूजकको चाहिये कि वह पवित्र होकर द्वादशाक्षर मन्त्रसे शिखा बाँध ले और पूजाकी सभी सामग्रियाँ आगे रखकर भगवान्‌के सामने बैठ जाय ॥ १—२४ ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'पूजा-विधिका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

पूजोपचार तथा पूजन-प्रकारका वर्णन

श्रीव्यासजी बोले—महाराज ! पूजन-सामग्री अर्पण करनेके सुन्दर मन्त्र वेदमें कहे गये हैं। मैं तुम्हारे लिये उनका वर्णन करता हूँ। एकाग्र-मन होकर सुनो ॥ १ ॥

(मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए पूजा करनी चाहिये। मन्त्र अर्थसहित निम्नलिखित हैं।)

आवाहन—**गोलोकधामाधिपते रमापते**
गोविन्द दामोदर दीनवत्सल ।
राधापते माधव सात्वतां पते
सिंहासनेऽस्मिन् मम सम्मुखो भव ॥

गोविन्द ! आप गोलोकधामके स्वामी हैं। दीनोंपर दया करना आपका स्वभाव है। दामोदर ! आप लक्ष्मी एवं राधिकाजीके प्राणनाथ हैं। यादवोंके अधीश्वर हैं। माधव ! इस सिंहासनपर मेरे सामने आप विराजमान होइये ॥ २ ॥

आसन—**श्रीपद्मरागस्फुरदूर्ध्वपृष्ठं**
महार्हवैदूर्यखचित्पदाब्जम् ।
वैकुण्ठ वैकुण्ठपते गृहाण
पीतं तडिच्छाटककुम्भखण्डम् ॥

वैकुण्ठपते ! इस आसनके ऊपरकी पीठपर माणिक्य चमक रहा है। पायोंमें वैदूर्यमणि (पुखराज) जड़ी गयी है। यह बिजलीके समान चमकती हुई सुवर्णकी कलशियोंसे युक्त है। कृपया आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ ३ ॥

पाद्य—**परं स्थितं निर्मलरौक्मपात्रे**
समाहृतं विन्दुसरोवराद्धि ।
योगेश देवेश जगन्निवास
गृहाण पाद्यं प्रणमामि पादौ ॥

देवेश ! स्वच्छ सुवर्णके पात्रमें विन्दुसरोवरसे लाकर उत्तम जल रक्खा गया है। योगेश ! आप जगत्‌के अधिष्ठाता हैं। मैं आपके चरणोंको प्रणाम करता हूँ। आप इस पाद्यको स्वीकार करें ॥ ४ ॥

अर्घ्य—**जलजचम्पकपुष्पसमन्वितं**
विमलमर्घ्यममर्त्यदरस्थितम् ।
अभिगृहाण रमारमण प्रभो
यदुपते यदुनाथ यदूत्तम ॥

रमारमण प्रभो ! यदुपते ! यदुनाथ ! यदूत्तम ! कमल तथा चम्पाके पुष्पोंसे समन्वित तथा शङ्खमें भरे हुए इस निर्मल उत्तम अर्घ्यको ग्रहण करें ॥ ५ ॥

स्नान—**काश्मीरपाटीरविमिश्रितेन**
सुमल्लिकोशीरयुता जलेन ।
स्नानं कुरु त्वं यदुनाथ देव
गोविन्द गोपालक तीर्थपाद ॥

गोविन्द ! आप यादवोंके स्वामी तथा गौओंकी रक्षा करनेवाले हैं। आपके चरण तीर्थस्वरूप हैं। भगवन् ! केसर, चन्दन, चमेली और खससे सुवासित यह जल है। आप इससे स्नान कीजिये ॥ ६ ॥

मधुपर्क—**मध्याह्नचण्डार्कभवश्रमापहं**
सिताक्तसम्पर्कमनोहरं परम् ।
गृहाण विष्णो मधुपर्कमेनं
संदृश्य पीताम्बर सात्वतां पते ॥

यदुपते ! आप पीताम्बर धारण करनेवाले हैं। आपके लिये मधुपर्क तैयार है। यह मध्याह्नके प्रचण्ड मार्तण्डके उत्तापजनित श्रमको दूर करनेवाला है। मिश्रीके मिल जानेसे यह अत्यन्त मनोहर हो गया है। भगवन् ! आप इसकी ओर दृष्टि डालकर इसे स्वीकार करनेकी कृपा करें ॥ ७ ॥

वस्त्र—**विभो सर्वतः प्रस्फुरत् प्रोज्ज्वलं च**
स्फुरद्रश्मिशून्यं परं दुर्लभं च ।
स्वतो निर्मितं पद्मकिञ्जल्कवर्णं
गृहाणाम्बरं देव पीताम्बराख्यम् ॥

प्रभो ! 'पीताम्बर' नामक वस्त्र प्रस्तुत है। इसकी प्रभा अत्यन्त उज्ज्वल है, इसकी किरणें सब ओर छिटक रही हैं। परम दुर्लभ यह वस्त्र अपने-आप बना हुआ है। कमलके केसर-जैसा इसका रंग है। कृपया आप इसे ग्रहण करें ॥ ८ ॥

यज्ञोपवीत—**सुवर्णाभमापीतवर्णं सुमन्त्रैः**
परं प्रोक्षितं वेदविन्निर्मितं च ।
शुभं यज्ञकार्येषु नैमित्तिकेषु
प्रभो यज्ञ यज्ञोपवीतं गृहाण ॥

भगवन् ! सुवर्णके समान चमचमाता हुआ हल्के पीले वर्णका यह यज्ञोपवीत है। उत्तम मन्त्रोंद्वारा भलीभाँति

इसका प्रोक्षण हुआ है । वेदज्ञ ब्राह्मणोंने इसकी रचना की है । पाँच नैमित्तिक कर्मोंमें इसका उपयोग कल्याणदायक होता है । प्रभो ! आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ ९ ॥

आभूषण—कनकरत्नमयं मयनिर्मितं

मदनदर्पकदनं सदनं रुचाम् ।

उषसि पूषसुवर्णविभूषणं

सकललोकविभूषण गृह्यताम् ॥

अखिललोकविभूषण ! सोने एवं रत्नोंसे बना हुआ यह सुवर्णमय भूषण उपस्थित है । वह मयके हाथकी कारीगरी है । कामदेवकी कान्तिको फीका करनेवाला यह प्रभाका भंडार है । भगवन् ! प्रातःकालीन सूर्यके समान चमचमाता यह भूषण आप स्वीकार कीजिये ॥ १० ॥

गन्ध—संध्येन्दुशोभं बहुमङ्गलं श्री-

काश्मीरपाटीरकपङ्कयुक्तम् ।

समण्डनं गन्धचयं गृहाण

समस्तभूमण्डलभारहारिन् ॥

सायंकालके चन्द्रमाके समान शोभायमान, अनेक मङ्गलोंको देनेवाला, केसर एवं कपूरसे युक्त यह गन्धराशि आपका अलंकार है । सम्पूर्ण लोकोंके भारको दूर करनेवाले भगवन् ! आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ ११ ॥

अक्षत—ब्रह्मावर्ते ब्रह्मणा पूर्वमुप्तान्

ब्राह्मैस्तोयैः सिञ्चितान् विष्णुना च ।

रुद्रेणारात् रक्षितान् राक्षसेभ्यः

साक्षात् भूमन्नक्षतांस्त्वं गृहाण ॥

पहले ब्रह्माने ब्रह्मावर्त देशमें जिन्हें बोया था, भगवान् विष्णुने वेदमय जलसे जिनका सेचन किया तथा शंकरजीने समीप आकर राक्षसोंसे जिनकी रक्षा की, भगवन् ! उन अक्षतोंको स्वयं आप ग्रहण कीजिये ॥ १२ ॥

पुष्प—मन्दारसंतानकपारिजात-

कल्पद्रुमश्रीहरिचन्दनानाम् ।

गृहाण पुष्पाणि हरे तुलस्या

मिश्राणि साक्षान्नवमञ्जरीभिः ॥

भगवन् ! मन्दार, संतानक, पारिजात, कल्पवृक्ष और हरिचन्दनके ये पुष्प उपस्थित हैं । नूतन मञ्जरियोंके साथ तुलसीपत्रोंका भी इनमें सम्मिश्रण हुआ है, आप इन्हें ग्रहण करें ॥ १३ ॥

धूप—लवङ्गपाटीरजचूर्णमिश्रं

सुरासुरेन्द्रादिमनुष्यनन्दं च ।

सद्यःसुगन्धीकृतहर्म्यदेशं

द्वारावतीभूप गृहाण धूपम् ॥

द्वारकाधीश ! जो लौंग एवं मलयागिरिके चूर्णसे मिश्रित है, देवता, दानव एवं मनुष्योंको आनन्दित करनेकी जिसमें शक्ति है तथा जो तत्काल महलोंको सुगन्धित बनानेवाला है, ऐसे धूपको आप ग्रहण कीजिये ॥ १४ ॥

दीप—तमोहारिणं ज्ञानमूर्तिं मनोज्ञं

लसद्वर्तिकर्पूरपूरं गवाज्यम् ।

जगन्नाथ देव प्रभो विश्वदीप

स्फुरज्ज्योतिषं दीपमुख्यं गृहाण ॥

प्रभो ! आप जगत्के स्वामी एवं विश्वको प्रकाशित करनेवाले हैं । अन्धकारका नाश करनेवाला ज्ञानस्वरूप यह प्रधान दीप आपके लिये तैयार है, जो बत्तियोंसे सजाया हुआ अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है । यह गायके घीसे पूर्ण है । साथ ही इसमें कपूर भी छोड़ा गया है । भगवन् ! इस प्रकार चमचमाती हुई लौवाले इस दीपको स्वीकार करें ॥ १५ ॥

नैवेद्य—रसैः षड्भिर्वेदविधिव्यवस्थितं

रसै रसाढ्यं च यशोमतीकृतम् ।

गृहाण नैवेद्यमिदं सुरोचकं

गव्यामृतं सुन्दर नन्दनन्दन ॥

नन्दनन्दन ! षड्रससे युक्त एवं वेदोक्त विधिसे तैयार किया हुआ नैवेद्य आपके लिये उपस्थित है । यह रसोंसे भरपूर है और यशोदाजीने इसे बनाया है । स्वादिष्ट होनेके साथ गोघृतके प्रयोगसे यह अमृतमय बन गया है । अतः इसे आप ग्रहण कीजिये ॥ १६ ॥

जल—गङ्गोत्तरीवेगबलात् समुद्धृतं

सुवर्णपात्रेण हिमांशुशीतलम् ।

सुनिर्मलाम्भो ह्यमृतोपमं जलं

गृहाण राधावर भक्तवत्सल ॥

भक्तवत्सल ! गङ्गोत्तरीकी धारासे यत्नपूर्वक प्राप्त किया हुआ यह अमृतमय जल है, जो हिमालयके टुकड़ेकी भाँति शीतल है । यह सुवर्णके पात्रमें रखा गया है और इससे अति निर्मल आभा निकल रही है । राधावर ! आप इसे स्वीकार कीजिये ॥ १७ ॥

आचमन—राधापते श्रीविरजापते प्रभो

श्रियःपते सर्वपते च भूपते ।

कङ्कोलजातीफलपुष्पवासितं

वरं गृहाणाचमनं दयानिधे ॥

राधापते ! आप भगवती विरजाके स्वामी हैं। सर्वेश्वर ! आप लक्ष्मीजीके प्राणनाथ एवं भूमण्डलके अधीश्वर हैं। दयानिधे ! कङ्कोल, जायफल और पुष्पोंसे सुवासित यह उत्तम आचमनीय प्रस्तुत है। प्रभो ! इसे ग्रहण कीजिये ॥ १८ ॥

ताम्बूल—जातीफलैलासुलवङ्गनाग-
वल्लीदलैः पूगफलैश्च संयुतम्।
मुक्तासुधाखादिरसारयुक्तं
गृहाण ताम्बूलमिदं रमेश ॥

रमेश ! जायफल, इलायची, लौंग, नागकेसर, सुपारी, मोतीकी भस्म और खैरके सारसे युक्त यह ताम्बूल स्वीकार कीजिये ॥ १९ ॥

दक्षिणा—नाकपालवसुपालमौलिभि-
र्वन्दिताङ्घ्रियुगल प्रभो हरे।
दक्षिणां परिगृहाण माधव
लोकदक्षवर दक्षिणापते ॥

प्रभो ! नाकपाल और वसुपालोंके मुकुटोंसे आपके युगल चरण-कमलकी पूजा हुई है। आप दक्षिणाके पति हैं। प्राणियोंको धन प्रदान करनेमें आप बड़े कुशल हैं। भगवन् ! आप यह दक्षिणा ग्रहण करें ॥ २० ॥

नीराजन—प्रस्फुरत्परमदीप्तिमङ्गलं
गोघृताक्तनवपञ्चवर्तिकम्।
आर्तिकं परिगृहाण चार्तिहन्
पुण्यकीर्तिविशदीकृतावने ॥

आर्तिहन् ! श्रेष्ठ प्रकाशसे युक्त दीप्तिमयी यह मङ्गलमय आरती है। गायके घीसे भीगी हुई चौदह बत्तियाँ इसमें लगी हैं। अपनी पवित्र कीर्तिका विस्तार करनेवाले भगवन् ! आप इसे ग्रहण कीजिये ॥ २१ ॥

नमस्कार—नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

जो अनन्त हैं, जिनके हजारों विग्रह हैं, जिनके चरण, जंघा, बाहु, ऊरु, मस्तक एवं नेत्रोंकी संख्या भी हजारोंकी है, जो नित्य हैं, जिनके हजारों नाम हैं तथा जो करोड़ों युगोंको धारण करनेवाले हैं, उन परम पुरुष भगवान्‌के लिये मेरा नमस्कार है ॥ २२ ॥

प्रदक्षिणा—समस्ततीर्थव्रतदानपूर्तजं फलम्।
लभेत् परस्य शाश्वतं करोति यः प्रदक्षिणाम् ॥

जो मनुष्य परम प्रभु भगवान्‌की प्रदक्षिणा करता है, उसके लिये सम्पूर्ण तीर्थ, यज्ञ, दान तथा पूर्त (कुँआ, बावली, पोखरा आदि खुदवाने, बगीचा लगवाने आदिसे उत्पन्न हुआ) फल सुलभ हो जाता है ॥ २३ ॥

प्रार्थना—हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ
तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी।
इति त्वं च मत्वा जगन्नाथ देव
यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम् ॥

भगवन् ! जगत्‌में मेरे समान कोई पापी नहीं है और आपके समान कोई पापका हरण करनेवाला भी नहीं है; प्रभो ! यह समझकर, हे जगन्नाथ ! फिर आपको जो उचित जान पड़े, वैसा ही मेरे साथ कीजिये ॥ २४ ॥

स्तुति—संज्ञानमात्रं सदसत्परं यद्-
ध्यानाम्यशान्तं विभवं समं महत्।
त्वां ब्रह्म वन्दे हि सुदुर्गमं परं
सदा स्वधाम्ना परिभूतकैतवम् ॥

जो चेतनास्वरूप हैं, सत् एवं असत्‌से परे हैं, जो नित्य हैं, जिनका विराट्‌रूप है, जो शान्तमूर्ति हैं, ऐश्वर्यस्वरूप हैं, सर्वत्र सम हैं, जिन्हें पाना अत्यन्त कठिन है तथा जिन्होंने अपने तेजसे मायाको सदा तिरस्कृत कर रक्खा है, उन आप परम ब्रह्मकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २५ ॥

महामते ! इस प्रकार इन मन्त्रोंद्वारा देवेश्वर भगवान्‌की पूजा करे। फिर श्रीविष्णुको प्रणाम करके यत्नपूर्वक उनके सर्वाङ्गका पूजन करना चाहिये। फिर—

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने।
विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥
(२७)

—इस मन्त्रका उच्चारण करके प्राणायाम करे। तदनन्तर भगवान् विष्णु, मधुसूदन, वामन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अधोक्षज और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके लिये मेरा नमस्कार है। (यों नमस्कार करना चाहिये।)

इसी प्रकार पैर, गुल्फ, जानु, ऊरु, कटि, उदर, पीठ, भुजा, कंधे, कान, नाक, अधर, नेत्र और भगवान्‌के सिरमें मैं अलग-अलग पूजा करता हूँ—यों कहकर सर्वाङ्ग-पूजा करनी चाहिये।

फिर सखी, सखा, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, असि, धनुष, बाण, हल, मुसल, कौस्तुममणि, वनमाला, श्रीवत्स, पीताम्बर, नीलाम्बर, वंशी, बेंत आदि तथा तालध्वज एवं गरुडध्वजसे युक्त रथ, दारुक और सुमति सारथि, गरुड, कुमुद, नन्द, सुनन्द, चण्ड, महाबल, कुमुदाक्ष आदि एवं विष्वक्सेन, शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, दिक्पाल, वरुण, नवग्रह और षोडश-मातृकाओंका आवाहन करे। इनके नामके साथ ॐकार लगाकर चतुर्थ्यन्तका प्रयोग करके 'नमः' शब्द जोड़ दे। तत्पश्चात् मन्त्रोंद्वारा इन सबका पूजन करे।

ॐ नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥

—इस मन्त्रसे सौ बार आहुति देनी चाहिये। फिर भगवान्‌की प्रदक्षिणा करके महाभोग निवेदित करे। तत्पश्चात् पृथ्वीपर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करके यह मन्त्र पढ़े—'ध्येयं सदा' इत्यादि। (इसका भाव यह है—) जो निरन्तर ध्यान करने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अपमानित नहीं होना पड़ता, जो मनोरथको पूर्ण करनेवाले हैं, जो तीर्थोंके आधार हैं, शिव एवं ब्रह्माजीने जिनका स्तवन किया है, जो शरण देनेमें कुशल हैं, भृत्योंका दुःख दूर करना जिनका स्वभाव है, जो प्रणतजनोंका पालन करनेवाले तथा संसाररूपी समुद्रके लिये जहाज हैं, भगवान् पुरुषोत्तम! आपके उन चरण-कमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २६—३०॥

राजन्! इस प्रकार भक्त भगवान्‌को प्रणाम करके भगवद्भक्तोंके साथ विधिवत् पुनः आरती करे। उस समय विवेकी पुरुषको चाहिये कि घड़ी, घण्टा, वीणा, बाँसुरी, करताल और मृदङ्ग आदि बाजोंके साथ भगवान्‌का कीर्तन करे। उस समय भगवद्भक्तजन प्रेममें विह्वल हुए भगवान्‌के सामने नाचते हैं, उनके जय-जयकारकी ध्वनि प्रकट करते रहते हैं और वे भगवान्‌की सुन्दर लीला-कथाका गान करने लगते हैं। तदनन्तर प्रभुको पुनः नमस्कार करके सूर्यके समान उज्ज्वल मन्दिरमें महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको भलीभाँति शयन करावे॥ ३१—३४॥

राजन्! इस प्रकार जो दत्तचित्त होकर भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करता है, उसे स्वर्गके रहनेवाले देवतालोग प्रणाम किया करते हैं। महाराज! वह श्रीहरिका भक्त भी मृत्युके अवसरपर स्वर्गमें पैर रखकर भगवान्‌के परमधाम गोलोकको, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, चला जाता है। यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवाका विधान है। मैंने इसका वर्णन कर दिया। यह मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला है। अब तुम फिर क्या सुनना चाहते हो? ॥३५—३७॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'पूजोपचार तथा पूजन-प्रकारका वर्णन' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

परमात्माका स्वरूप-निरूपण

राजा उग्रसेनने कहा—आप भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप हैं। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की। आपके श्रीमुखसे साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा-पद्धति विस्तारपूर्वक मैंने सुन ली। इससे मैं सफल-जीवन हो गया। अहो! प्राणियोंमें बड़ी मूर्खता भरी हुई है। वे लोभ, मोह और मदके कारण मतवाले हो गये हैं। इसीसे उन्हें विराग उत्पन्न नहीं होता और न कभी वे भगवान्‌का भजन ही करते हैं। भगवन्! जगत्‌की यह मोहिका शक्ति बड़ी अद्भुत है। प्रभो! यह मोह कैसे उत्पन्न हुआ और किस प्रकार इसकी निवृत्ति होगी, यह बतानेकी कृपा कीजिये॥ १—३॥

श्रीव्यासजी बोले—जिस प्रकार जलमें कई चन्द्रमा दिखायी पड़ते हैं, जलके चञ्चल वेगसे वे हिलते-डोलते हैं, किंतु वास्तवमें हैं कुछ नहीं, बिल्कुल प्रतिबिम्ब मात्र हैं, ठीक वैसे ही परम प्रभुकी प्रतिबिम्बरूपा यह माया फैली हुई है। उसीके प्रभावसे 'मेरा और मैं' का भाव उत्पन्न हो जानेपर संसार कायम हो जाता है। माया, काल, अन्तःकरण और देहसे गुणोंकी उत्पत्ति होती है। मनुष्य इनके द्वारा विपरीत कर्म करता हुआ बन्धनमें पड़ जाता है। इन्द्रियोंका ही यह प्रभाव है कि दर्पणमें बालक, बालूमें जल और रस्सीमें साँपका भान होने लगता है। राजन्! यह जगत् मोहमय है। इसमें रजोगुण और तमोगुण कूट-कूटकर भरे हैं। कभी-कभी सत्त्वगुणका भी प्रादुर्भाव होता है। यह मनका विलास है, विकल्पमात्र है और भ्रमरूप है। अलातचक्रके समान यह शीघ्रतापूर्वक परिवर्तित होता रहता है—इस प्रकार जानो। मैंने यह सार दिया, यह कहता हूँ और

यह करूँगा; यह मेरा है, यह तेरा है; मैं सुखी हूँ, मैं दुःखमें पड़ गया; लोग मुझसे बिना कारण प्रेम करनेवाले हैं'—इस प्रकार मनुष्य कहता रहता है। मेरा तो यह मत है कि मनुष्य अहंकारके कारण सुध-बुध खो बैठा है ॥४—७॥

राजा उग्रसेनने पूछा—ब्रह्मन्! कृपापूर्वक मुझ परमात्माके लक्षणोंका वर्णन कीजिये। साथ ही यह भी बताइये कि विद्वानोंने पूजा-पद्धतिमें भगवान् श्रीकृष्णके लक्षण कितने प्रकारके बतलाये हैं? ॥ ८ ॥

श्रीव्यासजी बोले—सनातन प्रभु जन्म और मरणसे रहित हैं। शोक और मोह उनके पास भी नहीं फटकते युवावस्था तथा बुढ़ापा आदिका कोई भेद उनमें नहीं है। अहंकार-मद, दुःख-सुख, भय, रोग, क्षुधा, पिपासा, कामना, रति और मानसिक व्याधि—इनके वे अविषय हैं। मुनीश्वरोंने जिस आत्माको पहचाना है, वह निरीह है, बिना देहका है, सर्वत्र उसकी गति है, वह अहंकारशून्य है, शुद्धबल है, उसमें सभी गुण रहते हैं, वह स्वतः सबसे परे है, निष्कल एवं स्वयं मङ्गलरूप है और ज्ञानका साकार विग्रह है। वह आत्मा इस जगत्के सो जानेपर भी जागता रहता है। यह देहधारी मनुष्य उसे नहीं जानता किंतु वह सबको जानता रहता है। वही आद्यपुरुष है। वह सबको देखता है; किंतु यह प्राणी उसका साक्षात्कार नहीं कर पाता। उस स्वच्छ एवं मलसे रहित आत्माकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ९—११ ॥

जिस प्रकार घटसे आकाश, काष्ठसे अग्नि एवं धूलसे पवन व्याप्त नहीं होता तथा रंगोंसे स्वच्छ स्फटिकमणिमें किसी प्रकारकी विरूपता नहीं आती, ठीक वैसे ही यह सनातन पुरुष गुणोंके रहते हुए भी उनसे लिप्यमान नहीं होता। वह 'सत्' शब्दसे वाच्य परमात्मा लक्षणा, व्यञ्जना, वाक्चातुरी, अर्थों, पदस्फोटपरायण शब्दों तथा सर्वोत्तम गुणियोंके द्वारा भी ज्ञानका विषय नहीं होता; फिर लौकिक प्राणी तो उसे जान ही कैसे सकता है? भूमण्डलपर उसे कितने लोग 'कर्ता', कितने 'कर्म', कितने 'काल,' कितने 'परम सुन्दर' तथा कितने 'विचार' कहते हैं। परंतु वेदान्तज्ञानी तो उसे 'ब्रह्म' ही कहते हैं। उस परब्रह्मको कालसे उत्पन्न होनेवाले गुण स्पर्श नहीं करते। माया, इन्द्रिय, चित्त, मन, बुद्धि और महत्तत्त्व भी उसका ग्रहण नहीं कर सकते, वेद वर्णन नहीं कर पाता तथा अग्निमें चिनगारीकी भाँति उसमें सभी प्राणी विलीन हो जाते हैं। वही परमात्मा सर्वोपरि विराजमान है। जिन्हें संत-जन हिरण्यगर्भ, परमात्मतत्त्व और भगवान् वासुदेव कहते हैं, उन्हीं श्रेष्ठतम देवके स्वरूपका विचार करके मोह छोड़कर आसक्तिरहित होकर विचरे ॥ १२—१६ ॥

जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा अनेक जलपात्रोंमें अलग-अलग दीखता है तथा एक ही अग्नि अनन्त काष्ठोंमें वर्तमान है, उसी प्रकार एक ही परम प्रभु भगवान् अपने द्वारा बनाये हुए विभिन्न जीवोंके भीतर एवं बाहर विराज रहे हैं। जिस प्रकार सूर्योदय हो जानेपर रात्रिसम्बन्धी अन्धकार नष्ट हो जाता है और घरकी वस्तुएँ मनुष्योंके दृष्टिगोचर होने लगती हैं, ठीक वैसे ही ज्ञानका प्रादुर्भाव होते ही अज्ञानरूपी अन्धकार भाग जाता है। फिर तो शरीरमें ही मनुष्यको ब्रह्मकी उपलब्धि हो जाती है। जैसे इन्द्रियोंकी प्रवृत्तियाँ अलग-अलग हैं, उनके भेदसे गुणोंके एक ही विषयमें नाना अर्थकी प्रतीति होती है, उसी प्रकार अनन्त परम प्रभु भगवान्का तेजोमय स्वरूप एक ही है, जब कि मुनियोंके शास्त्र अनेक हैं, जिनके कारण उसका भेदपूर्वक वर्णन किया गया है। जो पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् श्रीहरि हैं, अपने भक्तोंपर कृपा करना जिनका स्वभाव बन गया है, जो कैवल्यनाथ हैं तथा जिन्होंने राजा नृगका उद्धार किया है, उन स्वयं पूर्णब्रह्म परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १७—२० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर भगवान् वेदव्यासजीने राजा उग्रसेनसे जानेके लिये स्वीकृति ली। तत्पश्चात् सम्पूर्ण यादवोंके देखते-देखते वे वहीं अन्तर्धान हो गये। मैंने भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति बढ़ानेवाला यह 'विज्ञानखण्ड' तुम्हें कह सुनाया। इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। इसे श्रोतागणोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला कहा गया है। गर्गाचार्यने इसका वर्णन किया है। अतएव गर्ग-संहिता नामसे इस ग्रन्थकी प्रसिद्धि हुई है। यह संहिता सम्पूर्ण दोषोंको हरनेवाली, परम पवित्र तथा चारों प्रकारके मनोरथोंको देनेवाली है। (अबतक) गोलोक, वृन्दावन, गिरिराज, माधुर्य, मथुरा, द्वारका, विश्वजित्, बलभद्र तथा विज्ञान—इन नौ खण्डोंमें इसका वर्णन हुआ है। महाराज! जिस प्रकार नौ उत्तम रत्नोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका श्रीविग्रह विभूषित है तथा भारत आदि नौ वर्षोंसे पृथ्वी अत्यन्त सुशोभित

है, ठीक वैसे ही इन नौ खण्डों-द्वारा मुनिप्रणीत यह 'गर्ग-संहिता' निरन्तर शोभा पा रही है। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी अँगुलियोंमें तपाये हुए सुवर्णकी मुद्रिका नौ रत्नोंसे अलंकृत है, वैसे ही चतुर्वर्गफलको देनेवालीके रूपमें यह गर्ग-संहिता सर्ग और विसर्ग आदि नौ अङ्गोंसे सुशोभित है। महाराज! जो पुरुष भक्तिपूर्वक निरन्तर मुनिप्रणीत गर्ग-संहिताका श्रवण करते हैं, उन्हें संसारमें प्रचुर सुख मिलता है और अन्तमें वे गोलोकधामको चले जाते हैं। यदि वन्ध्या स्त्री भी अनेक पुत्रोंकी उत्कट लालसासे युक्त हो पीताम्बरधर भगवान् श्रीकृष्णकी वन्दना करके इस संहिताका श्रवण करे तो वह शीघ्र ही अपने घरके आँगनमें बहुत-से बालकोंको घुमाती हुई निरन्तर उनके साथ-साथ घूमने लगती है। इस कथाको सुनकर रोगी मनुष्य रोगोंसे, भयभीत पुरुष भयसे तथा बन्धनप्राप्त पुरुष बन्धनसे मुक्त हो जाता है। निर्धनको विपुल सम्पत्ति मिल जाती है और मूर्ख तुरंत ही पण्डित हो सकता है। जो धनाढ्य राजा कार्तिकके महीनेमें मुनिप्रणीत 'गर्ग-संहिता' का श्रवण करता है, निस्संदेह वह चक्रवर्ती राजा हो जायगा और बड़े-बड़े राजालोग उसकी चरण-पादुकाको उठाकर रक्खेंगे। वह मनकी चालके समान तेज चलनेवाले सिन्धुदेशवासी घोड़ों और विन्ध्यगिरिपर उत्पन्न होनेवाले विशाल हाथियोंसे सम्पन्न होगा। वैतालिक आदि उसका यशोगान करेंगे और वारवधूजन उसकी सेवा करेंगी। जिसके सोनेके सींग हों, ताँबेकी पीठ हो, चाँदीके खुर हों और जिसे आभूषणोंसे सजाया गया हो—जो प्रत्येक खण्डको सुननेके बाद ऐसी दो गौओंका दान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। जनकजी! वही यदि निष्कामभावसे समूची 'गर्ग-संहिता' का श्रवण करता है तो भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसके हृदय-कमलपर सदा निवास करने लगते हैं ॥२१–३३॥

श्रीगर्गजी बोले—ब्रह्मन्! इस प्रकार कहकर दिव्यदर्शी भगवान् नारद मुनि राजा बहुलाश्वसे अनुमति लेकर सबके देखते-देखते आकाशमें चले गये। तब महाराज बहुलाश्वने भगवान् श्रीहरिकी इस संहिताको सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये हुए अपनेको भलीभाँति कृतकृत्य समझ लिया। ब्रह्मन्! तुम्हारे प्रश्न करनेपर मैंने यह संहिता कही है। किन्हींके द्वारा सुनने अथवा पाठ करानेसे भी यह करोड़ यज्ञोंका फल देनेवाली होती है ॥ ३४–३६ ॥

श्रीशौनकजीने कहा—मुनिवर! आपका सङ्ग मिल जानेपर मैं धन्य एवं कृतार्थ हो गया। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णमें प्रेम बढ़ानेवाली यह उत्तम भक्ति भी मुझे प्राप्त हो गयी। जो मुनियोंके विशाल हृदयरूपी मानसरोवरमें विचरनेवाले राजहंस हैं, सम्पूर्ण आनन्दोंसे पूर्ण मधुर नाद करनेवाली जिनकी बाँसुरी है, जिनकी कला संसारमें फैली हुई है, जिन्होंने शूरसेनके वंशमें अवतार धारण किया है तथा संत पुरुषोंने जिनकी प्रशंसा गायी है, वे अपने बाहुबलसे कंसका वध करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा करें। इस प्रकार मुनिवर गर्गाचार्यने सम्पूर्ण मुनियोंको आशीर्वाद दिया। साथ ही उनसे आज्ञा माँगी और प्रसन्नमन हो, जानेके लिये तैयार हो गये। फिर सर्ग-विसर्ग आदि नौ अङ्गोंसे युक्त 'गर्ग-संहिता'का, जो स्वर्ग प्रदान करनेवाली तथा चारों पदार्थोंको देनेमें कुशल है, प्रतिपादन करके गर्गजी गर्गाचलपर चले गये। मैं भगवान् श्रीराधापतिके उन युगल चरण-कमलोंको अपने हृदयमें स्थापित करता हूँ, जो शरद् ऋतुके विकसित कमलोंकी शोभा धारण करनेके कारण उनके अत्यन्त द्वेषपात्र हो रहे हैं, मुनिरूपी भ्रमर जिनका निरन्तर सेवन करते हैं, जो वज्र और कमलके चिह्नोंसे आवृत हैं, जिनपर सोनेके नूपुर चमक रहे हैं, जिन्होंने भक्तोंके तापका सदा ही निवारण किया है तथा जिनकी दिव्य ज्योति छिटक रही है ॥ ३७–४० ॥

इस प्रकार श्रीगर्ग-संहितामें श्रीविज्ञानखण्डके अन्तर्गत नारद-बहुलाश्व-संवादमें 'परमात्माका स्वरूप-निरूपण नामक' दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

श्रीमद्गर्गसंहिता, विज्ञानखण्ड सम्पूर्ण

[श्रीगर्ग-संहिताके नौ खण्ड पूरे हो गये। 'अश्वमेध'का प्रसङ्ग शेष रह गया, उसे सुनानेके लिये महर्षि गर्गाचार्यजी पुनः कथाका आरम्भ करेंगे और अश्वमेधखण्ड सुनायेंगे। तब गर्ग-संहिता पूर्ण होगी।]

क्षमा-प्रार्थना और नम्र निवेदन

इस बार 'कल्याण'के विशेषाङ्कके प्रकाशनमें बड़ी गड़बड़ी तथा देर हो गयी। इसके कारण 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको जो परेशानी हुई, हजारों पत्र लिखने पड़े, समय तथा पैसोंके व्यर्थ व्ययके साथ मानस-क्लेश हुआ, इसके लिये हमें बड़ा ही दुःख है। 'कल्याण'के लंबे जीवनमें इस प्रकारकी अनिश्चितता तथा अव्यवस्था अबतक कभी नहीं हुई।

पहले 'यन्त्र-मन्त्र-तन्त्राङ्क'के प्रकाशित करनेका विचार हुआ। लेखोंके विषयोंकी सूची हमारे परम श्रद्धेय सर्वमान्य विद्वान् तथा अनुभवी तपोमूर्ति म० डा० पं० श्रीगोपीनाथजी कविराजने बना दी थी। उनकी 'कल्याण' पर सदा ही अहैतुकी कृपा रहती है। परंतु कई कारणोंसे उसे स्थगित रखकर 'अग्निपुराणाङ्क' निकालना निश्चय हुआ। अग्निपुराणका अनुवाद प्रायः पहले हो चुका था, पर संशोधन शेष था और बीच-बीचके कुछ अंशोंका अनुवाद इसलिये नहीं हो पाया था कि उसके लिये उन-उन विषयोंके दूसरे दूसरे ग्रन्थोंके परिशीलनकी तथा उन-उन विषयोंके विद्वान् महानुभावोंके परामर्शकी आवश्यकता थी। सोचा था, काम हो जायगा। पर पूरा काम नहीं हो पाया। ऐसा लगा कि अग्निपुराणकी पूरी सामग्री तैयार करनेमें बहुत देर होगी और विशेषाङ्कके प्रकाशनमें अवाञ्छनीय विलम्ब हो जायगा। इसलिये यह निश्चय किया गया कि जितना अंश अग्निपुराणका तैयार है, उतना दे दिया जाय और शेष पृष्ठोंमें श्रीगर्ग-संहिताका अनुवाद, जितना जा सके, देकर विशेषाङ्क शीघ्र प्रकाशित कर दिया जाय; क्योंकि गर्ग-संहिताका अनुवाद भी पहलेका एक विद्वान् महोदयके द्वारा किया हुआ रक्खा था।

जल्दी विशेषाङ्क प्रकाशित हो जाय—यह इच्छा तो थी ही, साथ ही गर्ग-संहिताके प्रकाशनमें एक दूसरा हेतु भी था। अग्निपुराण बड़े ही महत्त्वका ग्रन्थ है, वह ज्ञानकोष है। विविध विषयोंपर सारगर्भित विवेचन तथा ज्ञान-विज्ञान-कला आदिके वर्णनकी दृष्टिसे अग्निपुराणकी उपयोगिता सर्वथा सिद्ध है और सर्वमान्य है। परंतु 'कल्याण'के ग्राहकों पाठकोंमें ऐसे हजारों पुरुष और महिलाएँ हैं, जो केवल भगवद्गुण-लीलामें ही विशेष अनुराग रखते हैं। उन लोगोंका यह आग्रह रहा कि 'अग्निपुराण'के साथ-साथ भगवान्के लीला-चरित्र तथा गुण-महत्त्वका सरस वर्णन करनेवाले किसी अन्य ग्रन्थको भी प्रकाशित किया जाय। अतः अग्निपुराणके साथ-साथ गर्ग-संहिताका प्रकाशन करना निश्चय किया गया। यह धारणा थी और अब भी है कि यह विशेषाङ्क 'विज्ञानमय' और 'रसमय'—दोनों प्रकारकी सुन्दर सामग्रीसे सम्पन्न होनेके कारण सभी तरहके पाठकोंके लिये अत्यन्त रुचिकर और आनन्दप्रद हो जायगा।

कुछ सज्जनोंको दो ग्रन्थोंका आधा-आधा प्रकाशन पसंद नहीं आया। उन्होंने जो युक्तियाँ दीं, वे भी अवश्य आदरणीय हैं, हम उनके सद्भावके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपनी विवशताके लिये करबद्ध क्षमा चाहते हैं।

विशेष हेतु तो हमारा था—विशेषाङ्क शीघ्र प्रकाशित हो जाय, पर दैव-दुर्विपाकसे हो गया सर्वथा विपरीत। हमारे प्रधान सम्पादक भाई श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार अस्वस्थ हो गये, वे काम देख नहीं सके। साथ ही गर्ग-संहिताके अनुवादको भी फिरसे देख जानेकी आवश्यकता समझी गयी। यह कार्य एक विद्वान् सज्जनको सौंपा गया। वे अपनी जानमें, जितना समय उनको अपने स्थायी कामके अतिरिक्त मिलता था, इसीमें लगाते थे, पर संशोधनका काम अधिक निकल आया और प्रयत्न करते रहनेपर भी देर होती गयी।

पहले सोचा था कि जनवरीके अन्ततक अङ्क तैयार हो जायगा। इसलिये बड़े संकोचसे ऐसी सूचना प्रकाशित की गयी थी, पर काम नहीं हो पाया। बीचमें चित्रकार अस्वस्थ हो गये, इससे चित्र बननेमें देर हो गयी और जितने चित्र देनेका विचार था, उतने तो अन्ततक बन ही नहीं पाये। मीलसे समयपर कागज नहीं आ सके, इसलिये भी छपाईमें बाधा आयी। इन्हीं सब कारणोंसे देर होती गयी और अब मार्चके अन्तमें विशेषाङ्क तैयार हो पाया है। प्रतिदिन पाँच हजारसे अधिक रजिस्ट्री नहीं जा पाती, इसलिये बहुत-से ग्राहकोंको तो और भी देरसे अङ्क मिलेगा।

देर हो जानेके कारण ही फरवरी तथा मार्चके 'साधारण अङ्क' भी विशेषाङ्कके साथ ही भेजे जा रहे हैं। आशा है, इससे कुछ संतोष होगा।

'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों-पाठकोंकी 'कल्याण'के प्रति जो विशुद्ध प्रीति, आत्मीयता, सद्भावना है, उसीके भरोसे हम आशा करते हैं कि वे कृपया हमें क्षमा करेंगे। हम तो उनके सदा कृतज्ञ हैं ही।

यद्यपि यह प्रार्थना कर दी गयी थी कि 'इस विशेषाङ्कमें लेख शायद ही आ सकेंगे। लेखक महानुभाव क्षमा करें।' तथापि 'कल्याण'के साथ आत्मीयता रखनेवाले कृपालु विद्वान् महानुभावोंने बहुत-से लेख भेजनेकी कृपा की। पर उनमेंसे एक भी लेख विशेषाङ्कमें नहीं जा सका। कुछ लेख फरवरी तथा मार्चके अङ्कोंमें दिये गये हैं, कुछ सम्भवतः अगले अङ्कोंमें दिये जायँ। इसके लिये हमारे श्रद्धास्पद लेखक महानुभाव क्षमा करें, यह विनीत प्रार्थना है।

परंतु भगवान्की कृपासे 'अग्निपुराण'का तथा 'गर्ग-संहिता'का जितना अंश प्रकाशित हुआ है, वह विभिन्न दृष्टिकोणवाले पाठकोंके लिये बड़ा ही उपादेय, ज्ञानवर्द्धक, सरस, उनके यथार्थ 'अभ्युदय'में सहायक तथा 'निःश्रेयस' या भगवत्प्रेम-प्राप्तिके लक्ष्यतक निश्चितरूपसे सुखपूर्वक पहुँचा देनेवाला सुन्दर राजमार्ग-रूप है।

भारतीय धर्म तथा सभ्यता-संस्कृतिमें भौतिकता या भोगोंका निषेध नहीं है, वरं उनकी मानव-जीवनके एक क्षेत्रमें आवश्यकता बतायी गयी है, पर वे होने चाहिये धर्मके द्वारा नियन्त्रित तथा मोक्ष या भगवत्प्रेम-प्राप्तिके साधनरूप। केवल 'भोग' तो आसुरी सम्पदाकी वस्तु है और वह मनुष्यका अधःपतन करनेवाली है। आधिभौतिक उन्नति हो, पर वह हो अध्यात्मकी भूमिकापर—आध्यात्मिक लक्ष्यकी पूर्तिके लिये। ऐसा न होनेपर केवल 'कामोपभोग-परायणता' तो मनुष्यको असुर—राक्षस बनाकर उसके अपने तथा जगत्के अन्यान्य प्राणियोंके लिये घोर संताप, अशान्ति, चिन्ता, पाप तथा दुर्गतिकी प्राप्ति करानेवाली होती है। आजके भौतिकवादी भोगपरायण मानव-जगत्में यही हो रहा है और इसी कारण नये-नये उपद्रव, अशान्ति, पाप तथा दुःख बढ़ रहे हैं। भारतमें भी इस अनर्थका उत्पादन करनेवाली भोगपरायणताका विस्तार बड़े जोरोंसे हो रहा है। अतएव इस समय इसकी बड़ी आवश्यकता है कि मानव पतनके प्रवाहसे निकलकर—पाप-पथसे लौटकर फिर वास्तविक उत्थान, प्रगति तथा पुण्यके पथपर आरूढ़ हो, इस दिशामें यदि उचित रूपसे अध्ययन तथा तदनुसार कार्य किये जायँ तो यह विशेषाङ्क बहुत कुछ सहायक हो सकता है और किसी अंशमें भी ऐसा हो सका तो भगवान्की बड़ी कृपा होगी और हमलोगोंके लिये बड़े आनन्दकी बात होगी। भगवान् हम सबको सद्बुद्धि दें।

ग्रन्थोंके अनुवाद तथा सम्पादनमें जो त्रुटियाँ—भूलें हैं, उसके लिये हम क्षमा चाहते हैं। दोनों ग्रन्थोंके अनुवादक महानुभावोंकी कृपाके लिये उन्हें साधुवाद। इस कार्यमें हमें आत्मीय पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीसे हमें बहुत बड़ी सहायता मिली है। उसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

इस अङ्कमें अग्निपुराणके दो सौ अध्याय और गर्ग-संहिताके नौ खण्ड प्रकाशित हो रहे हैं। आगामी वर्ष विशेषाङ्कके रूपमें अग्निपुराणका शेष अंश तथा गर्ग-संहिताका बचा हुआ दसवाँ अश्वमेध-खण्ड एवं माहात्म्य प्रकाशित करनेका विचार है। होगा तो वही, जो श्रीभगवान्के मङ्गल-विधानके अनुसार होना है।

अग्निपुराणके कई विषय बड़े कठिन हैं तथा उनमें कुछ विषयोंका तो वर्तमानमें प्रचलन भी नहीं है तथा कुछके रूपमें ही परिवर्तन हो गया है। उन विषयोंके विद्वानोंको खोजकर उनसे सहायता भी ली गयी। अपनी समझसे पूरी सतर्कता रक्खी गयी, इतनेपर भी कुछ त्रुटियाँ रह गयी ही होंगी। जानकार अधिकारी विद्वान् उन त्रुटियोंको बतानेकी कृपा करेंगे तो कभी पुस्तकरूपमें प्रकाशित करते समय उन त्रुटियोंको सुधारा जा सकता है। अनुवादके कार्यमें जिन अन्य विद्वानोंने हमारी सहायता की है, उनके हम कृतज्ञ हैं।

गर्ग-संहिताकी हिंदीमें छपी वेंकटेश्वरकी पुस्तकमें कई अध्याय नहीं थे। स्वर्गीय श्रीपञ्चानन तर्करत्न महोदयके द्वारा सम्पादित बंगलामें छपी पुस्तकमें वे अध्याय मिले। उनका अनुवाद भी इसमें दे दिया गया है।

अग्निपुराणके ३२०, गर्ग-संहिताके ३७८ कुल ६९८ पृष्ठ हुए। इस क्षमा-प्रार्थना' के दो पृष्ठ जोड़नेपर विशेषाङ्कके ७०० पृष्ठ पूरे हो गये।

वास्तवमें 'कल्याण' का यह काम भगवान्का काम है। हम तो निमित्तमात्र हैं। सब उन्हींकी कृपाशक्तिसे होता है। हमें तो इस कार्यके करनेमें यदि कहीं कुछ भगवत्स्मृति हो जाती है तो यही हमारा परम सौभाग्य है और वह भी भगवत्कृपासे ही मिला है।

हम पुनः अपनी जान-अनजानमें हुई भूलों तथा अपराधोंके लिये क्षमा चाहते हैं और नम्र निवेदन करते हैं कि पाठकगण इस विशेषाङ्कका अच्छी तरहसे अध्ययन करके लाभ उठावें।

निवेदक—

चिम्मनलाल गोस्वामी, सम्पादक

3